ओ३म्

ऋग्वेद

-हिन्दी भाष्य-

प्रथम मण्डल

~महर्षि दयानन्द सरस्वती

ओ३म्

ऋग्वेद

हिन्दी भाष्य

प्रकाशक
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
महर्षि दयानन्द भवन, रामलीला मैदान, नई दिल्ली-१

[१]

ऋग्वेद प्रथम मण्डल (हिन्दी भाष्य)
महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत

तृतीय संस्करण

सम्वत् - 2048   श्रीमद्दयानन्द जन्माब्दः 168

2000 प्रति

मूल्य - 80/-

मुद्रक प्रिंस आफसेट प्रिंटर्स नई दिल्ली

22.11

पूर्व-पीठिका

'ज्ञान' वह प्रकाश है जो मनुष्य के मन और मस्तिष्क का अंधकार समाप्त कर देता है। सृष्टि के आदि में मानव के मार्गदर्शन और कल्याण के लिए प्रभु ने जो ज्ञान-प्रकाश दिया उसका नाम है 'वेद'।

'वेद' सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है और सर्वमान्य रूप से संसार के पुस्तकालयों का सबसे प्राचीन ग्रन्थ। परम पिता परमात्मा द्वारा प्रदत्त यह 'ज्ञान' जिन ऋचाओं में प्रकट है उनके चार भाग हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद।

आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इस तथ्य को भली-भांति समझा था कि जब तक धरती पर 'वेद' का प्रकाश नहीं फैलेगा, तब तक नाना मतवादों में बँटा मानव समाज शान्ति और कल्याण के मार्ग का पथिक न बन सकेगा। अतः उन्होंने वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना परम धर्म बताया।

१९७५ में आर्यसमाज की स्थापना को १०० वर्ष होने जा रहे हैं। अतः इस अवसर पर आर्यसमाज के सर्वोच्च संघटन सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने चारों वेदों का हिन्दी भाष्य सर्वसाधारण तक वेद का प्रकाश पहुंचाने के पावन उद्देश्य से प्रकाशित करने का निश्चय किया। इस निश्चय का प्रथम पुष्प-ऋग्वेद के प्रथम मंडल का भाष्य—महर्षि दयानन्द की ऋषि-शैली में आपके हाथ में है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि ऋषि दयानन्द का भारत के इतिहास में, नहीं नहीं, मानवता और विश्व के इतिहास में विशिष्ट स्थान है। जिनकी ज्ञानगरिमा और वेदवेदाङ्गपारावारपारीणता, साक्षात्कृतधर्मता, मंत्रपारदृश्वता, अतीन्द्रिय-तत्वार्थ-ज्ञातृता वैदिक ऋषियों का स्मरण दिलाती है, जिनके अगाध दार्शनिक ज्ञान की स्मृति दर्शनकार ऋषियों को उपस्थित करती है, जिनका व्याकरण का पाण्डित्य, निरुक्त-शैली का धौरन्धर्य और अन्य वेदाङ्गों का पारगामित्व तथा ब्राह्मण ग्रन्थों की विद्या इन विद्याओं के आचार्यों को लाकर मस्तिष्क के समक्ष खड़ा कर देती है, जिनकी अपार अकाट्य ऊहा एवं तर्कशक्ति अक्षपाद की संगति में बैठा देती है, जिनकी योगविद्या और वैज्ञानिकी प्रतिभा भगवान् पतंजलि के दर्शन कराती है, ऐसे तपःपूत निरस्त-संशीति, प्रज्ञाप्रसादारूढ़, विवेकज ज्ञान के धनी महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के

362

वेदभाष्य की पूर्वपीठिका लिखना कोई सरल कार्य नहीं है। परन्तु उनके द्वारा मानी हुई वैदिक प्रक्रिया और सिद्धान्तों की सिद्धि में 'वैदिक ज्योति' 'वैदिक विज्ञानविमर्श' 'वैदिक-इतिहास-विमर्श,' 'दयानन्द-सिद्धान्त-प्रकाश,' 'तत्वार्थादर्श' तथा 'साइंसेज इन धी वेदाज' जैसे बड़े ग्रन्थों का लिखने वाला उनका एक शिष्य उनके भाष्य की पूर्व पीठिका की कुछ पंक्तियाँ लिखता है तो यह उसका दुस्साहस नहीं अपितु सत्साहस और सत्प्रयत्न ही होगा। और यह होगा गुरु ने जो ज्ञान दिया है उसका गुरु के उपकार के प्रति सच्चा समर्पण।

महर्षि के वेदभाष्य की विशिष्टता

कोई कुछ भी कहे, अभी माने वा न माने परन्तु अन्त में मानना ही पड़ेगा कि महर्षि दयानन्द ने अपने वेदभाष्य से विश्व के विद्वानों की आंखें खोल दी हैं। उनकी शैली और उनके सिद्धान्त को आगे चलकर सभी विद्यापुंगव स्वीकार करेंगे। उनका वेदभाष्य निम्न दृष्टियाँ वेद, वेदार्थ और उसकी शैली के विषय में प्रस्तुत करता है:—

१—वेद ईश्वरीय ज्ञान, ईश्वरप्रदत्त और नित्य है।

२. इसमें सभी सत्य विद्याओं का बीज विद्यमान है।

३. वेद में किसी व्यक्ति-विशेष का इतिहास या किसी प्रकार की कपोल-कल्पित गाथायें नहीं हैं।

४. वेद ईश्वरीय ज्ञान होने से तर्क आदि से रहित नहीं, बल्कि तर्कसंगत और स्वयंसिद्ध सत्य का आकर है।

५. वेद स्वतःप्रमाण है, इसके प्रमाण के लिए प्रमाणान्तर की आवश्यकता नहीं।

६. वेद के सभी शब्द यौगिक हैं।

७. सभी वेदमंत्रों का अर्थ आधियाज्ञिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक प्रक्रियाओं में हो सकता है।

८. वेदमंत्रों के अर्थ करते समय व्यत्यय मानना आवश्यक है क्योंकि वेद से व्याकरण का प्रादुर्भाव हुआ न कि व्याकरण से वेद का।

९. ऋषि मंत्रों के कर्त्ता नहीं, अपितु द्रष्टा हैं।

१०. वेदमंत्रों का प्रतिपाद्य विषय ही देवता है, वह नियत नहीं, अपितु परि-वर्त्तित भी हो सकता है।

११. मंत्र और छन्दः समानार्थक हैं। छन्दः का प्रयोग गायत्री आदि छन्दों के लिए है। छन्दः नाम इनका इसलिए है कि इन्हीं से विश्व की समस्त वस्तुएँ और

उनका ज्ञान बँधा है। विश्व की प्रत्येक वस्तु की परिधि की इयत्ता छन्द से बँधी है। मंत्र उसका नाम इसलिए कि वह मननीय है और ज्ञान का आकर है।

१२. स्वर ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत और उदात्त, अनुदात्त, स्वरित आदि हैं जिनसे उच्चारण पर बल पड़ता है और अर्थ में भी उपयोग है।

१३. वेद नाम से चारों वेदों की चार संहितायें ही व्यवहृत होती हैं। शेष शाखायें और ब्राह्मणग्रन्थ आदि वेदों के व्याख्यान हैं।

शाखायें आदि क्यों व्याख्यान हैं इसके लिए यह आवश्यक नहीं कि विस्तार से ये किन्हीं मंत्रों का भाष्य हों। व्याख्यान निम्न बातों से भी हो जाता है:—

१. मंत्र के पदों को पृथक् पृथक् करने से।

२. अनादिष्टदेवता वाले मंत्रों के देवता निश्चित कर देने से।

३. मंत्र का यज्ञ क्रिया के साथ विनियोग जोड़ देने से।

४. मंत्रस्थ पद का पर्यायवाची पद रख देने और तदनुसार स्थिति बना देने से।

५. मंत्र का कोई पद लेकर विनियोग आदि के आधार पर कल्पित व्याख्यान बना देने से।

६. मंत्रस्थ किसी पद अथवा देवता पद की यौगिक व्याख्या अथवा निरुक्ति कर देने से।

७. मंत्रों को किसी निश्चित अर्थ में क्रमबद्ध कर देने से।

इनमें से अनेक वस्तुएँ शाखाओं में पायी जाती हैं। ब्राह्मणग्रन्थों और किन्हीं शाखाओं में तो वेदसंहिताओं के मंत्रों की प्रतीक देकर व्याख्यान किये गए हैं। अतः ये मूल वेद नहीं, व्याख्यान हैं। इसके अतिरिक्त नीचे कुछ और प्रमाण दिये जाते हैं जो स्पष्ट करते हैं कि शाखायें और ब्राह्मण वेदों के व्याख्यान हैं :—

१. स एवं भूमिर्भूम्ना कसर्णीरः काद्रवेयो मन्त्रमपश्यत्। तैत्तिरीय शाखा १।५।४

२. शुनःशेपमाजीगर्त्तिं वरुणोऽगृह्णात्—स एतां वारुणीमपश्यत्—(तैत्तिरीय शाखा ५।२।१)

३. स (वामदेव) एतं सूक्तमपश्यत् कृणुष्वपाजः प्रसृतिं न पृथ्वीमिति। (काठक १७.५)

४. इति ह स्म आह भरद्वाजः (मैत्रायणी ४।८।४।७)

५. मनुः पुत्रेभ्यो दायं व्यभजत्। (तैत्तिरीय शाखा। ३।१।८।६)

६. अनमीवस्य शुष्मिण इत्याहायक्ष्मस्येति। (तै० ५।२।१।३)

७. ऋग्वेद १० । ५१ । ६ मन्त्र प्रयाजानुयाज के मन्त्र हैं। मैत्रायणी १ । ७ । ३ । ४ और काठक ६ । १ पर प्रयाज की विभक्तियाँ आदि लगाने का विधान है। यह विधान इन शाखाओं को व्याख्यान सिद्ध करता है।

८. शतपथ ब्राह्मण १० । ४ । २ । २३-२५ में त्रयी विद्यास्थ ऋचाओं का परिमाण १२००० बृहती छन्द परिमाण, यजुः का ८००० और साम का ४००० बृहती छन्दः परिमाण माना गया है। इस प्रकार चारों वेदों के २४००० बृहती छन्द परिमाण ठहरते हैं। बृहती छन्द ३६ अक्षरों का होता है। अतः इसे गुणा करने पर ८६४००० अक्षर होते हैं। यह है चारों वेदों का अक्षर परिमाण। यदि शाखा और ब्राह्मण ग्रन्थों को भी वेद माना जाए तो अक्षर परिमाण कई गुना हो जाता है।

इसी प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों में ऊपर दिये गये व्याख्यान के लक्षण तो पाये जाते ही हैं उनमें मंत्रों की व्याख्या स्पष्ट की गई है। यजुर्वेद के लगभग १६ अध्यायों के मंत्रों की क्रमशः व्याख्या पाई जाती है। ऐतरेय ब्राह्मण में भी मन्त्रों के व्याख्यान पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त निम्नलिखित आधारों पर भी ब्राह्मण वेद के व्याख्यान ठहरते हैं—वेद नहीं :—

१. वेद मन्त्रों का स्वर त्रैस्वर्य अर्थात् उदात्त, अनुदात्त और स्वरित भेद से प्रयुक्त होता है और ब्राह्मणों का स्वर भाषिक होता है।

२. शतपथ ब्राह्मण में यजुर्वेद के कई अध्यायों के मन्त्रों का क्रमिक व्याख्यान और विनियोग आदि मिलता है।

३. शतपथ १ । १ । १ । १ में "व्रतमुपैष्यन्, अग्ने व्रतपते०," १ । १ । ४ ८-९ में "अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनम्" तथा ६ । ५ । १ । २ में "आपो हिष्ठा मयोभुवः" इत्यादि मन्त्रों की प्रतीकें देकर व्याख्यान पाये जाते हैं। लगभग उपलब्ध सभी ब्राह्मणों में यह प्रक्रिया पायी जाती है।

४. चारों वेदों की आनुपूर्व्येण ओं, भूः, भुवः स्वः आदि व्याहृतियें बतलाई गई हैं [गोपथ पूर्वार्ध १ । १८] यदि ब्राह्मण वेद होते तो इनकी भी कोई व्याहृति होती। परन्तु ऐसा नहीं है।

५. वेदों के ऋषि, देवता, छन्दः आदि का वर्णन अनुक्रमणियों और बृहद्देवता आदि में पाया जाता है परन्तु ब्राह्मणों का यह क्रम नहीं पाया जाता।

६. वेद की वाणी नित्य है परन्तु ब्राह्मणों और शाखाओं की वाणी को नित्य नहीं माना गया है। व्याकरण महाभाष्य में स्पष्ट दो प्रकार के छन्दः माने गए हैं—कृत छन्द और अकृत छन्द।

महाभाष्यकार के शब्द इस प्रकार हैं :—

"तत्र कृते ग्रन्थे इत्येव सिद्धम् । ननु चोक्तं न हि छन्दांसि क्रियन्ते नित्यानि छन्दांसि, इति छन्दांस्यपि क्रियन्ते । यद्यप्यर्थो नित्यः या त्वसौ वर्णानुपूर्वी साऽनित्या तद्भेदाच्च भवति काठकं, कालापकं, मौदकं, पैप्लादकमिति (महाभाष्य ४।३।१०१) स्वरो नियत आम्नायेऽस्य वामशब्दस्य । वर्णानुपूर्वी खल्वाप्याम्नाये नियता । महाभाष्य ५।२।५६। पाणिनि की अष्टाध्यायी में छन्दः पद का प्रयोग इन्हीं अर्थों में है ।

वेदज्ञान ईश्वरीय प्रेरणा का फल है

वेद परम कारुणिक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् भगवान् की वाणी है । यह ज्ञान और भाषा से संयुक्त है । प्रत्येक कल्प के प्रारम्भ में परमेश्वर ऋषियों के हृदय में इसका प्रकाश करता है । यह अनन्त और नित्य है तथा परमेश्वर की प्रेरणा का फल है । जैसा भगवान् स्वयं व्यापक और आकाश बृहद् विस्तार वाला है उसी प्रकार यह वेद वाणी भी विस्तृत है । अथवा यों कहना चाहिए कि वेद का ज्ञान अनन्त है क्योंकि वह भगवान् का ज्ञान है । कुछ लोग ज्ञान और भाषा के विषय में विकासवादी प्रक्रिया को अपनाते हैं जो सर्वथा ही अनुपयुक्त और अप्रामाणिक है । ज्ञान प्राप्त ही प्रथमावस्था में भगवान् से होता है । गायत्री मंत्र में **"धियो यो नः प्रचोदयात्"** इसी बात का संकेत कर रहा है । जिस प्रकार माप की पराकाष्ठा आकाश में परि-समाप्त है उसी प्रकार ज्ञान की पराकाष्ठा उसके एकमात्र सर्वज्ञ आश्रय भगवान् में परिसमाप्त है । जो ज्ञान मनुष्य अर्जित करता है वह काल से परिच्छिन्न है । केवल भगवान् ही एक ऐसा ज्ञान वाला है कि जिसे कभी काल नहीं घेरता । अतः वही ज्ञान का आकर है, सब गुरुओं का आदि गुरु है और सब ज्ञानों का एकमात्र आश्रय है। गायत्री मन्त्र में **"तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य 'धीमहि'** पदों का पाठ भी है । गोपथ ब्राह्मण ने इस रहस्य का सुन्दर उद्घाटन किया है । वह कहता है कि **"वेदाश्छ-न्दांसि सवितुर्वरेण्यम्"** (गोपथ पू० १।३२) अर्थात् वेद और छन्द ही सविता के वरेण्य भर्ग हैं । परमात्मा से कर्त्तव्याकर्त्तव्य आदि का ज्ञान मिलता है अथवा वेद से । भगवान् योग से यह ज्ञान देता है और वेद के ज्ञान को प्रेरणा से देता है । इसी लिए गायत्री मंत्र के उच्चारण से ही आचार्य गुरुकुल में वेद की शिक्षा का प्रारम्भ कराता है । यह वेद का ज्ञान किसी मनुष्य का दिया नहीं किन्तु स्वयं परमेश्वर का दिया है और नित्य है । यह हर एक कल्प के प्रारम्भ में ऋषियों में प्रेरित होकर मानव को प्राप्त होता है । इस विषय में कुछ प्रमाण यहां दिये जाते हैं:—

१. **यावद् ब्रह्म विष्ठितं तावती वाक्** । (ऋग्वेद १०।११४।८) अर्थात् जितना बड़ा व्यापक ब्रह्म अथवा आकाश है उतनी ही यह वाणी है ।

२. **तस्मै नूनमभिद्यवे वाचा विरूप नित्या । वृष्णे चोदस्वसुष्टुतिम्** ॥ (ऋग्वेद

८ । ७५ । ६) अर्थात् हे विविध विद्याओं के ज्ञाता विद्वन् ! तुम नित्य वेदवाणी के द्वारा प्रकाशस्वरूप, सर्वसुखों के वर्षक उस भगवान् की स्तुति करो ।

३. अपक्रामन् पौरुषेयाद् वृणानो दैव्यं वचः ।
प्रणीतिरभ्यावर्तस्व विश्वेभिः सखिभिः सह ॥

अथर्व ७-१०५-१

अर्थात्—हे मनुष्य ! पुरुष=मनुष्य द्वारा उत्पादित ज्ञान और वाणी से हटकर दैवी वेदवाणी को चुनकर ग्रहण करते हुए समस्त मानवों के साथ अपनी नीति का निर्धारण कर ।

४. अहं विवेच पृथिवीमुत द्यामहमृतूंरजनयं सप्त साकम् ।
अहं सत्यमनृतं यद् वदाम्यहं दैवीं परिवाचं विशश्च ॥

अथर्व ६ । ६१ । २

हे मनुष्यो ! मैं परमेश्वर ही पृथिवी और द्युलोक का भेद उत्पन्न करता हूँ । मैं ही सातों ऋतुओं को अथवा सातों प्रकृति विकृतियों को एक क्रम के साथ पैदा करता हूँ । क्या सत्य है और क्या झूठ है—इसका भी परिज्ञान मैं देता हूं । मैं ही प्रजा पर दैवी वाणी (वेद वाणी) का प्रकाश करता हूँ ।

५. तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम् । (ऋग्वेद १०।७१।३) अर्थात्—मनुष्य लोग ऋषियों में प्रविष्ट वेद वाणी को प्राप्त करते हैं ।

वेदों के नाम और विषय

चारों वेदों की वाणियां चार वेदों के नाम को धारण करती हुई भी मंत्र की रचना की दृष्टि से ऋक्, यजुः और सामरूप हैं । मंत्रों की यह तीन ही संज्ञायें हैं । चौथा जो अथर्व वेद है उसके भी मंत्र इन्हीं संज्ञाओं वाले हैं जबकि वेद की दृष्टि से विचार करने पर वह चौथा वेद है । वेद में ज्ञान और भाषा दोनों गुंथे हैं । ये पृथक् नहीं हो सकते हैं । भगवान् ने जहाँ ज्ञान दिया वहां भाषा भी दी । अतः वेद ज्ञान भी है और भाषा भी । परन्तु वेद की भाषा कभी भी संसार में न बोलचाल की भाषा रही, न है, और न होगी । यदि वह किसी समय बोलचाल की भाषा बनाई जावे तो बन नहीं सकेगी । बोलचाल की भाषा में रूढ़ि शब्दों के विना कार्य नहीं चल सकता । परन्तु वेद में रूढि शब्द हैं ही नहीं । सभी शब्द यौगिक हैं । बाह्य विचार का नाम भाषा है और आन्तरिक भाषा का नाम विचार है । कोई भाषा विना विचार के नहीं रह सकती और विचार विना भाषा के नहीं हो सकता है । मन में उत्पन्न विचार भी तो वाक्य बन कर ही भाषा की लड़ी पर चलते हैं । बोली की भाषायें बाद में वेद

की भाषा के आधार पर अर्थ संकोच करके बनाई जाती हैं। भाषा का संकोच क्रम है विकासक्रम नहीं।

ऋग्वेद विज्ञान काण्ड है। विज्ञान में गुण और गुणी वर्णन एवं विश्लेषण होता है। अतः इसका नाम ऋग्वेद है। अतः ऋग्वेद वह ज्ञान है जिसमें पदार्थों के गुणों का और धर्मों का वर्णन है। 'ऋच् स्तुतौ धातु' से ऋक् पद बना है। अर्थात् जो गुण और गुणी के ज्ञान का वर्णन करता है वह ऋक् है। महर्षि दयानन्द ने यजुर्वेद के भाष्य का प्रारम्भ करते हुए स्वनिर्मित आद्यश्लोक में इसी भाव का वर्णन किया है। वे कहते हैं:—**"ऋग्वेदस्य विधाय वै गुणगुणिज्ञानप्रदातुवरं, भाष्यं काम्यमथो क्रियामययजुर्वेदस्य भाष्यं मया।"** अर्थात् ऋग्वेद जो गुण और गुणी के ज्ञान को देने वाला है उसके श्रेष्ठ भाष्य का प्रारम्भ करने के अनन्तर मेरे द्वारा क्रियामय यजुर्वेद के भाष्य की इच्छा की जाती है। तैत्तिरीय आरण्यक कहता है कि **"ऋग्भ्यो जातां सर्वशो मूर्तिमाहुः सर्वाः गतीः याजुषी चैव सिद्धा।"** अर्थात् समस्त मूर्तपदार्थ ऋग् से प्रसिद्ध होते हैं और सारी गतियाँ यजुः से सम्बन्ध रखती हैं। अतः विज्ञानकाण्डात्मक ऋग्वेद का नाम सार्थक है।

यजुः शब्द यज-धातु से बना है। जिसके देवपूजा, संगतिकरण और दान अर्थ हैं। चूंकि यजुर्वेद कर्मकाण्ड है अतः वह क्रियामय है। सारी क्रियायें एवं गतियाँ देवपूजा, संगतिकरण और दान के अन्तर्गत आती हैं। क्रिया और गति का इससे अच्छा और कोई विभाग वा वर्गीकरण नहीं हो सकता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में इसे 'यजः' और **यन्+जूः** भी कहा गया है। वस्तुतः यह देवपूजा और कलाकौशल आदि का संगतिकरण तथा दान करने से **'यजः'** है और इसे ही यजुः कहा जाता है। चूंकि यह **यन्+जूः**=अर्थात् ज्ञान, गमन, प्राप्ति और मोक्ष का समन्वय करते हुए प्रयत्न वा क्रिया के कौशल को प्रयतित कराने वाला है अतः यह **यन्+जूः** होते हुए यजुः है।

सामवेद उपासना काण्ड है। अतः सामवेद का नाम भी सार्थक ही है। यास्काचार्य ने निरुक्त दैवतकाण्ड में साम के तीन निर्वचन दिये हैं। उनमें पहला यह है कि साम मंत्र ऋचा से मापकर बने हैं अतः वह साम है। चूंकि समस्त विक्षेपों को वे क्षीण कर के परे फेंकते हैं अतः उपासना होने से वे साम हैं। नैदान आचार्य जो कि निदान सूत्रों के कर्त्ता थे वे ऋचा से परिभाषित मान कर ही साम की व्याख्या करते थे। साम का नाम **सा+अम**=साम है। **'सा'** द्युलोक है और अमः यह पृथिवी लोक है अर्थात् दोनों का समन्वय साम है। **'सा'** ऋक् है और 'अमः सामगान है अतः दोनों का समन्वय साम है। **'सा'** विद्या का नाम है और अम कर्म का नाम है। दोनों का समन्वय साम अर्थात् उपासना है। **'सा'** सर्वशक्ति परमेश्वर है और अम जीव है। दोनों का जिसमें सम्मिलन हो वह साम है। अतः साम उपासना काण्ड होने से सामवेद का नाम भी सर्वथा सार्थक है। यह वस्तुतः समन्वय है।

अथर्ववेद ज्ञानकाण्ड है। गोपथ में **'अथर्वन्'** पद का व्याख्यान करते हुए कहा गया है कि **अथ+अर्वाङ्** अर्थात् इन जगत् के पदार्थों के अन्दर उस प्रभु की सत्ता अथवा वस्तुतत्व को खोजने से यह अथर्व है। अथर्ववेद में ज्ञान का विषय है अतः यह नाम उसका अत्यन्त सार्थक है।

'वेद' पद व्याकरण से ज्ञानार्थक विद् धातु, लाभार्थक विद् धातु, विचारार्थक विद् धातु और सत्तार्थक विद् धातु से बना है। इससे वेद वह ज्ञान है जिससे महान् लाभ होता है। उसका विचार करने पर सत्ता स्थित होती है। ज्ञान के अन्दर विविध विद्यायें आतीं हैं। लाभ के अन्दर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी पुरुषार्थ आते हैं। विचार विश्लेषणात्मक और संश्लेषणात्मक तथा प्रेक्षात्मक होता है। सत्ता का सम्बन्ध इसलिए है कि सत्ता पद से—ईश्वर, जीव और प्रकृति का बोध होता है। ये वेद में वर्णित हैं। अनेक मंत्र देवताओं के रूप में इनका और जगत् का वर्णन है। अतः वेद के ज्ञान के, मानव के विचार के, जीवन की महती प्राप्ति के और सत्ता विषय के ये पदार्थ मुख्य अभिधेय हैं।

ज्ञान-विज्ञान के आकर हैं—वेद

भगवान् दयानन्द के भाष्य से यह एक अटूट सिद्धान्त सिद्ध होता है कि वेद ज्ञान-विज्ञान के भण्डार हैं और सभी सत्य विद्याओं का मूल उनमें विद्यमान है। इस विषय के प्रचुर प्रमाण ऋषि भाष्य से प्राप्त होते हैं परन्तु सबका यहाँ वर्णन नहीं किया जा सकता है। विस्तार से तो उनके वेद-भाष्य में ही देखा जा सकता है। यहाँ पर तो संक्षेप में कुछ ही उदाहरण देकर सन्तोष किया जावेगा। ऋषि दयानन्द ऋग्वेद १।६२।१-२ मन्त्रों के भाष्य में हिन्दी के भावार्थ में निम्नप्रकार लिखते हैं:—

१. "इस सृष्टि में सदैव सूर्य का प्रकाश भूगोल के आधे भाग को प्रकाशित करता है और आधे भाग में अन्धकार रहता है। सूर्य के प्रकाश के विना किसी पदार्थ का विशेष ज्ञान नहीं होता। सूर्य की किरणें क्षण-क्षण भूगोल आदि लोकों के घूमने से गमन करतीं-सी दीख पड़ती हैं। जो प्रातःकाल के रक्त प्रकाश अपने-अपने देश में हैं वे प्रत्यक्ष और दूसरे देशों में हैं अप्रत्यक्ष, ये सब प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रातःकाल की वेला सब लोकों में एक-सी सब दिशाओं में प्रवेश करती है जैसे शस्त्र आगे पीछे जाने से सीधी-उल्टी चाल को प्राप्त होते हैं वैसे अनेक प्रकार के प्रातःप्रकाश भूगोल आदि लोकों की चाल से सीधी तिरछी चालों से युक्त है—यह वात मनुष्यों को जाननी चाहिए।

२. जो सूर्य-किरणें भूगोल आदि लोकों का सेवन अर्थात् उन पर पड़ती हुई क्रम-क्रम से चलती जाती हैं वे प्रातः और सायंकाल के समय भूमि के संयोग से

लाल होकर बादलों को लाल कर देती हैं और जब ये प्रातःकाल लोकों को प्रवृत्त अर्थात् उदय को प्राप्त होती हैं तब प्राणियों को सब पदार्थों के विशेष ज्ञान होते हैं। जो भूमि पर गिरी हुई लाल वर्ण की हैं वे सूर्य के आश्रय होकर और उसको लाल कर औषधियों का सेवन करती हैं। उनका सेवन जागरितावस्था में मनुष्यों को करना चाहिए।"

इसके अतिरिक्त कुछ और भी स्थल यहाँ पर दिये जाते हैं :—

१. सामवेद उपासना काण्ड कहा जाता है। उसका प्रथम मंत्र '**अग्न आयाहि वीतये०** आदि है। इस मंत्र में आये "**वीतये**" पद की बड़ी मनोज्ञ एवं वैज्ञानिकी व्याख्या शाखा और ब्राह्मण ग्रन्थों में की गई है। पूर्वावस्था में सूर्य और पृथिवी लोक पृथक् नहीं होते। अग्नि उन्हें पृथक् करता है। अतः तैत्तिरीय शाखा का कथन है कि यह "**अग्न आयाहि वीतये**" जो कहा है, वह इन दोनों लोकों को पृथक् करने के लिए कहा गया है—

अग्न आयाहि वीतये—इति इमौ लोको व्यैताम्। अग्न आयाहि वीतये—इति यदाह—अनयोर्लोकयोर्वीतये। तै० ५। १। ५

शतपथ ब्राह्मण इसी बात की इस प्रकार पुष्टि करता है। अर्थात् यह जो 'वीतये' (वी=इति) ऐसा कहा गया है वह इसलिये कि व=इति होता है। देवों ने इच्छा की कि ये लोक किसी प्रकार पृथक् होवें। उन्होंने इन (वीतये) तीन अक्षरों से पृथक् किया और ये लोक दूर हो गए। यहाँ पर 'वी' का अर्थ पृथक् और इति का अर्थ गमन है।

शतपथ ब्राह्मण का वाक्य निम्न प्रकार है:—

अग्न आ याहि वीतये—इति। तद्वेति भवति वीतये—इति। ते देवा अकामयन्त कथन्नु इमे लोका वितरां स्युः। .....तान् एतैरेव त्रिभिरक्षरैर्व्यनयन्। 'वीतये इति त इमे विदूर लोकाः। शतपथ १। ४। १। २२-२३

२. वेद में 'सम्वत्सर' पद का अर्थ सूर्य भी है। इस पद की व्याख्या करते हुए जैमिनीय और शतपथ ब्राह्मण में एक वैज्ञानिक रहस्य का उद्घाटन किया गया है। ब्राह्मणग्रन्थ कहते हैं कि यद्विभाति तत्सम्वत् यन्न विभाति तत्सरः—अर्थात् सूर्य का जो प्रकाशमान भाग है वह सम्वत् है और जो अप्रकाशमान भाग है वह सर है। अतः सूर्य सम्वत्सर है। इससे यह सिद्ध है कि सूर्य में भी धब्बे (Spots) हैं।

३. इसी प्रकार एक बहुत ही रहस्यमय मंत्र ऋग्वेद का यहाँ पर उद्धृत किया जाता है—

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा।
मनै नु बभ्रूणामहम् शतं धामानि सप्त च॥

ऋग्वेद १०-९७-१

इसका अर्थ यह है कि जो ओषधियाँ मनुष्यों से तीन चतुर्युगी पूर्व उत्पन्न होती हैं उनके १०७ नाम हैं, १०७ स्थान हैं। यहाँ पर १०७ नामों और प्रयोग स्थानों का वर्णन है। इन १०७ ओषधियों के नाम आजकल ज्ञात नहीं हैं। परन्तु निरुक्त और ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रयोग के १०७ स्थानों का वर्णन मिलता है। वे मनुष्य के शरीर के १०७ मर्मस्थान है। आयुर्वेद में **'सप्तोत्तरमर्मशतं भवति'** का यही अभिप्राय है।

४. ऋग्वेद १।२४। ८ और १० मंत्रों में यह दिखाया गया है कि राजा वरुण अर्थात् वायु ने सूर्य को आकाश में अपनी कक्षा में घूमने का मार्ग दिया है, उसी ने पाँवरहित सूर्य को आकाश में चलने को पैर दिया है। अर्थात् वही उसकी किरणों को विस्तारित करता है और वही उसे अपनी कक्षा में घूमने का मार्ग देता है। दशम मंत्र में कहा गया है कि ये नक्षत्र जो आकाश में स्थित हैं वे रात्रि में तो दीखते हैं परन्तु दिन में कहाँ चले जाते हैं कि नहीं दिखाई पड़ते। वायु (प्रवह वायु) का यह दृढ़ नियम है कि उसके द्वारा चन्द्रमा निकलता हुआ रात्रि में दिखाई पड़ता है। यहाँ पर यह दिखाया गया है कि वायु नक्षत्रों आदि की गति में सहायक है। दोनों मंत्र इस प्रकार हैं :—

उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ।
अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदया विधश्चित् ॥

ऋग्वेद १।२४।८

अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृशे कुहचिद्दिवेयुः।
अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति ॥

ऋग्वेद १।२४।१०

ये कुछ थोड़े से उद्धरण यहा दिए गए। वेदों में विज्ञान आदि के ज्ञान के लिए ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वैदिक ज्योति, वैदिक-इतिहास-विमर्श, वैदिक विज्ञान विमर्श, दयानन्द-सिद्धान्त-प्रकाश तथा 'साइंसेज इन दी वेदाज्' आदि ग्रन्थों को पढ़ना चाहिए। इनके अध्ययन से ऋषि दयानन्द का दृष्टिकोण वेद और वेदार्थ के विषय में भली प्रकार समझा जा सकता है।

ऋषि, देवता, छन्दः और स्वर

ऋषि पद का प्रयोग साक्षात्कर्त्ता अथवा मंत्रद्रष्टा के लिए किया जाता है। ऋषि दयानन्द के अनुसार ऋषि मंत्रद्रष्टा हैं। जिन्होंने मंत्रों के अर्थों का साक्षात् किया उनका नाम ऋषि के रूप में लिखा जाता है। इन्हें मन्त्र का कर्त्ता वा बनाने वाला कहना भ्रान्त धारणा है। वैदिक साहित्य में जहाँ मंत्रकृत् पद का प्रयोग पाया जाता है। वहां पर इसका अर्थ मंत्र का प्रयोग करने वाला, मंत्र का विनियोग करने वाला मंत्र का उच्चारण करने वाला और मंत्र द्रष्टा होता है। यास्काचार्य ने स्पष्ट लिखा

है कि 'ऋषिर्दर्शनात् । स्तोमान् ददर्शेत्योपमन्यवः । नि० २ । ११ । इस पर दुर्गाचार्य कहते हैं कि ऋषिर्दर्शनात् । पश्यति ह्यसौ सूक्ष्मानप्यर्थान् । (नि दुर्ग० २ । ११) अर्थात् ऋषि मंत्रद्रष्टा है क्योंकि सूक्ष्म अर्थों को देखते हैं । सायणाचार्य जैसा इतिहासवादी भी यह घोषित करता है कि 'करोति' क्रिया जो कृञ् धातु का रूप है वह करने वा बनाने अर्थ में नहीं बल्कि देखने वा दर्शन अर्थ में है । उसके वाक्य ये हैं—

ऋषिरतीन्द्रियार्थद्रष्टा, मंत्रकृत् करोतिर्धातुस्त्र दर्शनार्थः । (ऐतरेय ब्राह्मण । ६ । १ पूना संस्करण पृ० ६७७) । इसी प्रकार अन्य आचार्यों ने भी माना है । ऋग्वेद ७ । ७९ । ३ में 'इन्द्रतमा' और 'अंगिरस्तमा' उषा के विशेषण हैं । यह आतिशायिक तमप् प्रत्यय व्यक्तिवाचक नामों में नहीं होता है । यह केवल विशेषण में ही होता है ।

ऋषि क्या है, इसका वर्णन स्वयं ही वेद करता है—

तमेव ऋषिं तमु ब्राह्मणमाहुर्यज्ञन्यं सामगामुक्थशासम् । स शुक्रस्य तन्वो वेद तिस्रो यः प्रथमो दक्षिणया रराध । ऋग्वेद १० । १० ७ । ६ अर्थात् उसी को ऋषि और उसी को ब्रह्मज्ञ अथवा वेदज्ञ कहा जाता है, जो यज्ञ का प्रयोक्ता और साम का गाने वाला और मंत्रों का ज्ञाता है । वह ज्ञान के शरीरभूत तीन प्रकार की ऋचाओं के रहस्य को जानता है और वह ऐसा है जो विस्तृत ज्ञान वाला अग्रगण्य है और ज्ञान की दक्षता को प्राप्त है ।

कभी-कभी जो पद किसी मंत्र के ऋषि के नाम में दिये गए हैं वे ही पद मंत्रों में उपलब्ध होते हैं । वहां पर भी चौंकने की कोई बात नहीं । वेद मंत्रों में जो पद हैं उन्हीं को उपर्युक्त ऋषियों ने अपनी उपाधि अथवा आख्या बनाकर प्रसिद्धि प्राप्त की अर्थात् वेदमंत्रों के पदों को देखकर अपना नाम रख लिया । महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेद प्रथम मण्डल के मंत्रों का भाष्य करते हुए ऐसे शतशः पदों की यौगिक व्याख्या करके अर्थ किया है । ऋग्वेद १ ।३१ । १ और ३ मंत्रों में आये **'अंगिरस्'** और **'अङ्गिरस्तमः'** पदों को देखो । यहां पर अग्नि को 'अङ्गिरा' और 'अङ्गिरस्तम' कहा गया है । इसी प्रकार कण्व और कण्वतम आदि पद भी हैं । **'ऋषि'** पद का अर्थ तर्क भी देखें—ऋषि का भाष्य ऋग्वेद १ । १ । २ । पर ।

देवता का अर्थ प्रतिपाद्य विषय है । मंत्र में जो विषय वर्णित है उसका नाम देवता है । जैसे **'अग्निमीडे०** आदि मन्त्रों में अग्नि का वर्णन है अतः अग्नि ही इन मन्त्रों का देवता है । यह विषय तीनों प्रक्रियाओं में है । यह देवता दो प्रकार का होता है । विनियुक्त देवता और संस्थापित अर्थ देवता । विनियुक्त देवता विनियोग पर आधारित है और संस्थापित अर्थ देवता परमेश्वर प्रदत्त है । 'इषे त्वोर्जे' मंत्र का **'सविता'** देवता संस्थापित अर्थ देवता है और **'शाखा'** विनियुक्त देवता है । इस पर निम्न प्रमाणों का मनन करना चाहिए ।

१. **यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्दैवतः स मन्त्रो भवति ।** (निरुक्त)

२. **या तेनोच्यते सा देवता । सर्वानुक्रमणी ।** इन दोनों प्रमाणों में प्रथम का अर्थ यह है कि ऋषि=परमेश्वर जिस मंत्र में जिस अर्थों के अर्थपति=विषय के वर्णन की कामना करता हुआ मन्त्र का वर्णन करता है वही उसका देवता है। अथवा मंत्रार्थद्रष्टा जिस अर्थ के विनियोग-कामना से उस मंत्र के द्वारा प्रयोग वा उस मंत्र का वर्णन करता है, वह देवता है।

दूसरे प्रमाण का भी ऐसा ही अर्थ है। अर्थात् मन्त्रस्थ वाक्य से जो अर्थ कहा जाता है वह देवता है अथवा मंत्रद्रष्टा के द्वारा जो विनियोग किया जाता है वह देवता है।

छन्दः पद से वैदिक छन्दों का ग्रहण है। ये गायत्री आदि सात छन्द ही विस्तार और भेदों सहित प्रयोग में पाये जाते हैं। ऋग्वेद १० मण्डल के १३० वें सूक्त में गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, विराट्, त्रिष्टुप्, जगती छन्दों का नाम पाया जाता है। छन्दों के लक्षण आदि का विशेष वर्णन पिङ्गल छन्दःसूत्र में पाया जाता है। यह छः वेदाङ्गों में एक है। छन्द का अक्षरपरिगणन से विशेष सम्बन्ध है। महर्षि दयानन्द की विशेषता यह है कि उन्होंने ऋषि, देवता और छन्द तो दिये ही हैं, साथ में निषाद, धैवत आदि गान के स्वरों का भी वर्णन किया है। ऋग्वेद में तो ऐसा है ही—यजुर्वेद में भी इन स्वरों का वर्णन है।

स्वर पद से यहाँ उदात्त, अनुदात्त और स्वरित अभिप्रेत हैं। इनका लक्षण आदि व्याकरण शास्त्र में किया गया है। स्वर से वेदार्थ में पर्याप्त सहायता मिलता है। निरुक्त आदि शास्त्रों में स्वर के विषय में कई विकल्प भी माने गए हैं। **'भस्मान्तं शरीरम्' में भस्मान्तम्,** पद को ही लिया जा सकता है। यदि इसे बहुव्रीहि समास मानकर पूर्वपद को प्रकृति से उदात्त माना जाय तो इसका अर्थ यह होगा कि "भस्म ही है अन्त जिसका"—ऐसा यह शरीर है। उस अवस्था में यह शरीर का विशेषण होगा। यदि इसे तत्पुरुष समास माना जावे तो अन्तोदात्त होकर यह शरीर का विशेषण नहीं होगा और मन्त्र निरर्थक होने लगेगा तथा दूसरा अनर्थ यह होगा कि फिर भस्म का अन्त करना भस्मान्त होगा। इससे सिद्धान्त की हानि होगी। इसी प्रकार **'इन्द्रशत्रु'** पद है। महाभाष्यकार पतंजलि ने इस पर विचार किया है परन्तु महाभाष्यकार की बात को बहुत कम ही लोग समझते हैं। ऋषि दयानन्द की विना शरण गए इसका परिज्ञान नहीं हो सकता है। इन्द्रः शत्रुर्यस्य अर्थात् इन्द्र है शत्रु जिसका ऐसा वह वृत्र=मेघ। इस व्युत्पत्ति से यह पद बहुव्रीहि समास होगा। और मेघ के अर्थ को देगा और इसका पूर्वपद आद्युदात्त होगा। परन्तु तत्पुरुष समास करने पर इसका अर्थ सूर्य होगा। यहाँ पर तत्पुरुष की प्रक्रिया को न समझकर लोग

बहुधा धोखे में पड़ जाते हैं। यहां पर **'इन्द्रस्य शत्रुः'** ऐसा षष्ठी तत्पुरुष करने पर भी मेघ ही अर्थ बनेगा। क्योंकि इन्द्र का शत्रु तो वृत्र अर्थात् मेघ है ही। अतः यहां पर षष्ठी तत्पुरुष नहीं है। **इन्द्रश्चासौ शत्रु-रिति इन्द्रशत्रुः अथवा इन्द्रः शत्रुरिव इति इन्द्रशत्रुः**। ये कर्मधारय समास आदि भी तत्पुरुष के ही भेद हैं। ऋषि दयानन्द ने ऐसा ही इस पद का समास दिखलाया है। ऐसा तत्पुरुष करने पर स्वर की दृष्टि से यह पद सूर्य के अर्थ का देने वाला होगा।

विकल्प भी देखा जाता है। रोदसी पद स्वरनियम से आद्युदात्त और अन्तोदात्त दोनों प्रकार का है। भेद यह है कि अन्तोदात्त समय में साधारणतया इसका अर्थ रुद्र की पत्नी होता है और आद्युदात्त पक्ष में द्यावापृथिवी अर्थ देता है। परन्तु यास्क ने निरुक्त १२। १६ में ऋग्वेद ५। ४६। ८ का भाष्य करते हुए आद्युदात्त रोदसी पद का अर्थ रुद्र की पत्नी माना है। प्रकरण से यही अर्थ ठीक भी है। इस प्रकार स्वर के विषय में भी बहुत सूक्ष्म भेद हैं।

वेद में इतिहास नहीं

इतिहासों के निराकरण में बहुत से ग्रन्थ लिखे गए हैं। 'वैदिक इतिहास-विमर्श' महान् ग्रन्थ है। इसमें मैकडानल की वैदिक इन्डेक्स में दिये गए सभी व्यक्ति वाचक पदों का और वैदिक इतिहासों का निराकरण किया गया है। वेद में व्यक्ति विशेष का नाम नहीं है। सभी पद यौगिक ही हैं।

अङ्गिरस्, इन्द्र, विश्वामित्र आदि पदों को देखकर लोग व्यक्तिवाचक इतिहास की कल्पना करते हैं। परन्तु यह सर्वथा निरर्थक है। इन अङ्गिरा और इन्द्र आदि शब्दों के साथ **'तमम्'** प्रत्यय करके अङ्गिरस्तम, इन्द्रतम आदि पद प्रयुक्त किये गए हैं। जिनका अर्थ है अत्यन्त अङ्गिरा और अत्यन्त इन्द्र। यह आतिशयिक प्रत्यय केवल विशेषण में ही होता है। कभी देवदत्ततर और देवदत्ततम नहीं होता है। विश्वामित्र सूर्य को कहा जाता है। वह सर्वमित्र है। इसी प्रकार अनेकों पद जो व्यक्तिवाची मालूम पड़ते हैं यौगिक हैं। विश्वामित्र, जमदग्नि, वशिष्ठ, भरद्वाज आदि यजुर्वेद में इन्द्रियों को कहा गया है। वेदों में नदी और पहाड़ों आदि के नाम जो कहे जाते हैं वे सब यौगिक हैं और व्यक्तिवाचक नहीं। साथ ही यह एक सिद्धान्तभूत बात है कि वेद के शब्दों से नाम रखे गए हैं। ये नाम वेद में नहीं गए हैं। वैदिक-इतिहास-विमर्श ग्रन्थ में इसका विशेष पल्लवन है।

वेदार्थ के उपयोगी ग्रन्थ

चारों वेदों की मूल चार संहितायें परम प्रमाण हैं। संहिता नाम इनका इस लिए है कि ये पदों की प्रकृति हैं। संहिता के रूप में पद विभाग आदि नहीं हुआ रहता है। संहिता नित्य होती है परन्तु पद छन्दः आदि विभक्त वाक्य नित्य नहीं

होते। संहिताओं के पद पाठ बहुत उपयोगी हैं। पदपाठ का निर्धारण भी एक विद्या है। उदाहरण के लिए 'मेहना' पद को लिया जा सकता है। ऋग्वेद ५। ३९। १ और सामवेद ४। २। १। ४ में यह पद पाया जाता है। यास्क ने दानार्थक 'मंह' धातु से इसे एक पद मानकर इसका अर्थ 'मंहनीय' किया है। परन्तु यास्क ने ही इसमें तीन पदों का संयोग एक पद माना है। वे हैं मे+इह+न जिनका अर्थ है कि "जो मेरे पास इस लोक में नहीं है। इसी प्रकार ऋग्वेद १०। ९। १ में 'वायो' पद आया है। यास्क ने इसकी व्याख्या करते हुए पदकार शाकल्य की आलोचना की है। यास्क का कथन है कि शाकल्य ने जो वा+यः पदच्छेद किया है वह ठीक नहीं। क्योंकि यदि ऐसा होता तो 'न्यधायि' क्रिया को पाणिनि के सूत्र ८। १। ६६ के अनुसार उदात्त हो जाता। परन्तु ऐसा न होकर यह है अनुदात्त। दूसरा दोष यह आता है कि मन्त्र का अर्थ पूरा नहीं होता है। अतः 'वायः' एक पद माना जाना चाहिए। ऐसी स्थिति में वायः का अर्थ वेः+पुत्रः अर्थात् पक्षीशिशु होगा। इस प्रकार पद पाठ के विषय में बड़े सूक्ष्म विचार हैं।

वेदों के चार उपवेद हैं। आयुर्वेद, अर्थवेद, धनुर्वेद और गन्धर्ववेद। यहां पर वेद पद का प्रयोग विद्या के लिए है। इसके अनन्तर आते हैं वेदाङ्ग। वेद के छः अङ्ग हैं। वे हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्दः, निरुक्त और ज्योतिष। वेदार्थ के लिए इनका परिज्ञान आवश्यक है। वेदाङ्गों के बाद उपाङ्गों का नम्बर आता है। वर्तमान में सांख्य, योग, वैशेषिक, न्याय, मीमांसा और वेदान्त नाम से छः उपाङ्ग पाये जाते हैं। ये ही छः दर्शन हैं। ये दार्शनिक विचारों के आकर ग्रन्थ हैं। वेदों की फिलासोफी इनमें पाई जाती है। उपाङ्ग नाम इनका इसलिए है क्योंकि ये अङ्गों से निकले हैं। यहां पर प्रश्न उठता है कि ये किस अङ्ग के उपाङ्ग है। व्याकरण छन्द, ज्योतिष, निरुक्त और शिक्षा से साक्षात् सम्बन्ध तो इनका पाया नहीं जाता है। रहा केवल 'कल्प' जिसके ये उपाङ्ग हो सकते हैं। कल्प शास्त्र मंत्रों के विनियोग प्रयोग, कर्तव्य, आदि से सम्बन्ध रखते हैं। ये गृह्य, श्रौत और धर्म भेदों वाले हैं। गृह्य कर्मों का विधान करने वाले गृह्यसूत्र है। श्रौतकर्मों यज्ञयागादि के विधायक श्रौत सूत्र हैं। वर्णाश्रम धर्म और विविध कर्तव्यों का विधान करने वाले धर्मसूत्र हैं। कर्तव्य का विधान बिना सत्ताविज्ञान के हो ही नहीं सकता है। धर्म जहां मनुष्य के धर्म का द्योतक है वहां पदार्थों के धर्म का भी द्योतक है। स्मृतियों के आधार ये धर्मसूत्र हैं। मनुस्मृति का आधार मानव धर्मसूत्र है। धर्मसूत्रों में कर्तव्य की विवेचना के साथ जगत्, जीव और भगवान् का भी विवेचन पाया जाता है। अतः ये धर्मसूत्र उपाङ्गों के आधार हैं और इन्हीं से उपाङ्गों का प्रादुर्भाव हुआ। स्मृतियों का कार्य श्रुति के अर्थ का स्मरण दिलाना है। अतः स्मृतियों का भी वेद के अर्थ करने में सहयोग है।

शाखाएँ वेदों के ऐसे व्याख्यान हैं जो सभी चरणों के पार्षदों ने सुविधा के लिए मन्त्रों के फेरफार से बनाये हैं। ब्राह्मण ग्रन्थ भी वेद के व्याख्यान हैं। वे बहुधा

हे वेद पति

सर्वात्मा सच्चिदानन्दो-
ऽनन्तो योन्यायकृच्छुचिः ।
भूयात्तमां सहायो नो
दयालुः सर्वशक्तिमान् ॥१॥

व्याख्यान—जो परमात्मा, सबका आत्मा, सत चित् आनन्दस्वरूप, अनन्त, अज, न्यायकारी, निर्मल, सदा पवित्र, दयालु, सब सामर्थ्य वाला हमारा इष्ट देव है वह हमको सहाय नित्य देवे, जिससे महा कठिन काम भी हम लोग सहज से करने को समर्थ हों। हे कृपा-निधे! यह काम हमारा आप ही सिद्ध करने वाले हो, हम आशा करते हैं कि आप अवश्य हमारी कामना सिद्ध करेंगे।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥

अथर्व॰१९-७१-१

स्तुति करते हम वेद ज्ञान की,
जो माता है प्रेरक~पालक,
पावन करती मनुज मात्र को।
आयु, बल, सन्तति, पशु कीर्ति,
धन, मेधा, विद्या का दान।
सब कुछ देकर हमें दिया है,
मोक्ष मार्ग का पावन ज्ञान।

वद की यज्ञ प्रक्रिया को लेकर चलते हैं। परन्तु उन्हीं के प्रसङ्ग में वे वैज्ञानिक और आध्यात्मिक रहस्यों को भी खोलते हैं। शतपथ ब्राह्मण और ताण्डय ब्राह्मण बहुत विशाल हैं। ऐतरेय छोटा है और तैत्तिरीय भी पर्याप्त बड़ा है। कुछ तो बहुत ही छोटे हैं। गोपथ अथर्ववेद का ब्राह्मण है और विशेषकर पैप्पलाद शाखा का। शतपथ ब्राह्मण वस्तुतः देखा जाए तो विद्या का कोष है। निरुक्तकारों ने जो निरुक्तियां शब्दों की की हैं उनका आधार भी ये ब्राह्मण ग्रन्थ हैं। उदाहरण के लिए 'वृत्र' पद को लेलीजिए। यास्क कहता है वृत्रो वर्ततेर्वा वर्धतेर्वा। ब्राह्मण कहता है यदवर्तत तद्वृत्रस्य वृत्रत्वं यदवर्धत तद्वृत्रस्य वृत्रत्वम्। इसी प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों से 'मख' पद को लीजिये। 'मख' का अर्थ यज्ञ है। यह इसलिए कि 'म' का अर्थ निषेध है और 'ख' का अर्थ छिद्र है। जिसमें किसी प्रकार का छिद्र वा दोष न हो वह यज्ञ है।

ज्योतिष छः अङ्गों में एक अङ्ग है। आर्यसमाज फलित ज्योतिष को नहीं मानता। मानने योग्य भी नहीं है। गणित ज्योतिष का आर्यजनों में न्यून प्रचार है। ज्योतिष-परिज्ञान न होने से वेद के बहुत से मन्त्रों के एतद्विद्या-विषयक रहस्य नहीं खुलते हैं। यदि ज्योतिष-परिज्ञान हो तो वेदों में इतिहास की धारणा भी समाप्त हो जाए। तथा सही अर्थ सामने भासने लगे।

इसी प्रकार कल्प शास्त्र का प्रचार भी आर्यजनों से कम है। बहुधा हमारे यज्ञ संस्कारों और कुछ छोटे मोटे यज्ञों को छोड़कर ब्रह्मपारायण तक ही सीमित रहते हैं। श्रौतयज्ञों की ओर हमारा ध्यान न के बराबर है। ये श्रौतयज्ञ ही हैं कि जिनके आधार पर अनेक ज्ञान विज्ञानों को हम वेदों में ढूँढ सकते हैं। ऋषि ने तो अग्निहोत्र से अश्वमेध पर्यन्त यज्ञों की बात कही है। परन्तु अश्वमेध कौन करता कराता है। श्रौत यज्ञों की प्रथा का प्रचलन कर हमें वेदार्थ के रहस्य को खोलना चाहिए। श्रौत की तीनों अग्नियों के जो कुण्ड बनाये जाते हैं वे रेखागणित के उच्च विज्ञान को बताते हैं। इसी प्रकार जिन्हें पुरोडाशों के पकाने का कपाल कहा जाता है वे भी विज्ञान के रहस्य को खोलते हैं। यजुर्वेद का एक अध्याय ही इस प्रकार का है जिसके अनेकों मन्त्रों में **'यज्ञेन कल्पन्ताम्'** पद प्रत्येक मन्त्र के अन्त में आये हैं। इनमें यज्ञ का अर्थ विशेष विद्याओं की संगति लगाना है। प्रत्येक श्रेष्ठतम कर्म का नाम यज्ञ है। ज्ञान-विज्ञान की क्रिया भी यज्ञ है। महर्षि ने 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म' पर विशेष बल दिया है। यजुर्वेद में मन्त्रों के भाष्य के अन्त में उन्होंने लिखा है—**अयं मंत्रः शतपथे व्याख्यातः**—अर्थात् यह मंत्र शतपथ में व्याख्यात है। अतः यज्ञ-प्रक्रिया में जो अर्थ हैं उसका भी विशेष स्थान है।

उपनिषदें सामान्यतः ब्रह्मविद्या के ग्रन्थ हैं। वेदों की ब्रह्मविद्या इन उपनिषदों और आरण्यकों में वर्णित की गई है। इसका यह अर्थ नहीं कि उपनिषदो में वर्णित ब्रह्मविद्या कोई स्वतंत्र विद्या है जो वेदों में नहीं है। उपनिषदें तो पुकार-

पुकार कर वेद की साक्षी देती हैं। आरण्यक बहुधा ब्राह्मण ग्रन्थों के वे भाग हैं जो अरण्य में लिखे गए हैं। उपनिषदें भी शाखाओं और ब्राह्मणों से सम्बन्ध रखती हैं। ईश उपनिषद् तो सीधे वेद से सम्बन्ध रखती है। बृहदारण्यक शतपथ ब्राह्मण का ही अन्तिम काण्ड है।

लोग वेदान्त शब्द का अर्थ यह करते हैं कि वह वेदों का अन्तिम काण्ड है। इसलिए वेदान्त है। ये लोग कहते हैं कि वेद केवल कर्मकाण्ड के ग्रन्थ है। वेदान्त उनका अन्तिम ज्ञान है और उपनिषदें भी वेदान्त हैं। वस्तुतः यह बात ऐसी नहीं है। 'अन्त' का अर्थ सिद्धान्त है। इस दृष्टि से वेदान्त का अर्थ वेद का सिद्धान्त है। उपनिषदों और वेदान्त में वेद के सिद्धान्त का वर्णन है।

महर्षि के वेद भाष्य को कैसे समझें

ऋषि दयानन्द का भाष्य बहुत ही स्पष्ट है। उसके पढ़ने पर किसी को विना कुछ मिले नहीं रह सकता है। साधारण से साधारण व्यक्ति भी उसमें से ज्ञान की प्राप्ति कर सकता है। परन्तु आवश्यकता है अवधानता और सहनशक्ति की। जितनी वार उसे पढ़ा जावेगा उतनी वार अर्थ का रहस्य नये-नये ढंग से खुलता जावेगा। वेद किसी एक विद्या का ग्रन्थ नहीं है कि उसमें केवल एक विषय का ही उपक्रम कर उपसंहार किया गया हो। एक विषय पर लिखे ग्रन्थ की स्थिति पृथक् होती है। वेद तो सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। उसकी स्थिति विश्वकोष के समान है जिसमें विविध विषय एक साथ ही वर्णित हैं।

इसके अतिरिक्त अधिकारी का भेद भी आवश्यक है। पढ़ने वाले को भी कुछ पूर्वार्जन करना चाहिए और पुनः वेदभाष्य को पढ़ना चाहिए। उदाहरण के लिए महर्षि के ऋग्वेदभाष्य में कार्य, कारण, प्रवाहसे नित्य आदि पदों का व्यवहार मिलता है। यदि कोई व्यक्ति महर्षि ग्रन्थों में इन्हें विना पढ़े वा कहीं से विना इनके अर्थों को जाने भाष्य को देखेगा तो थोड़ी निराशा अवश्य प्राप्त करेगा। इसमें भाष्य का दोष नहीं है बल्कि उस मनुष्य की योग्यता का और अधिकारित्व का दोष है। कोई कह सकता है कि इन शब्दों को सरल कर दिया जाये। परन्तु इन्हें सरल करके इनके स्थान पर इन्हीं शब्दों के अतिरिक्त और दूसरे शब्द रखे नहीं जा सकते हैं। क्योंकि इनके लिए और कोई शब्द मिलते नहीं। ये पारिभाषिक शब्द हैं। अतः ऋषिभाष्य को पढ़ने के लिए कुछ पूर्वार्जित योग्यता की आवश्यकता भी है।

कभी-कभी इस तथ्य से अनभिज्ञ लोग एक नई समस्या उत्पन्न कर देते हैं। यह ऋषिभाष्य वा संस्कृत भाषा में ही नहीं, दूसरी भाषाओं में भी यही स्थिति है। अंग्रेजी के एक पत्र में एक लेख छपा। इसमें एक शब्द 'Causal Relation' आया हुआ था। एक व्यक्ति ने बड़ा शोर मचाया और लिखा कि अंग्रेजी के लेख में लेखक

ने गलतियाँ की हैं। लेखक को अंग्रेजी नहीं आती। आदि आदि। जब उन्हें यह लिखा गया कि आप गलतियाँ दुरुस्त करके भेज दें, विचार कर लिया जावेगा तो उन्होंने दुरुस्त करके भेजा। इन पदों के लिए उन्होंने 'Casual Relation' को शुद्ध बतलाया। जो अंग्रेजी के जानकार हैं और पूरे जानकार हैं वे समझते हैं कि दर्शनशास्त्र की परिभाषा में Causal relation का अर्थ कारणात्मक सम्बन्ध है और Casual relation का अर्थ वैचित्क सम्बन्ध है। दोनों में कितना अन्तर है। यदि कहीं Causal के स्थान में Casual रख दिया जाये तो कितना अनर्थ हो जाये।

एक योग्य व्यक्ति अपने मित्रों में से हैं। वे जब वैदिक धर्म के विषय में कभी अंग्रेजी में लिखते हैं तो वैदिक Vedic religion को Primordial Vedic religion लिखते हैं। इसका अर्थ मौलिक वैदिक धर्म है। एक सज्जन उनके मत्थे हो गए कि यह तो अंग्रेजी का शब्द ही नहीं। क्योंकि उन्हें इस शब्द का परिज्ञान नहीं था। वे डिक्शनरी खोलने को उतारू हुए। डिक्शनरी में वह शब्द मिला और वैदिक धर्म के लिए उसका प्रयोग ठीक ही था। यह हैं कठिनाइयां जिनका परिमार्जन पढ़ने वालों को स्वयं करना चाहिए।

महर्षि के भाष्य का पूर्ण लाभ उठाने के लिए पाठक को—सत्यार्थ प्रकाश, संस्कारविधि, आर्योद्देश्यरत्नमाला, आर्याभिविनय, भ्रान्तिनिवारण और ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका अवश्य पढ़ लेनी चाहिए। ऐसा कर लेने पर भाष्य के समझने में कठिनाई नहीं होगी। परन्तु यदि किसी ने इन ग्रन्थों को नहीं पढ़ा है और वेदभाष्य को पढ़ता है तो उसे भी ज्ञान अवश्य प्राप्त होगा। कुछ थोड़े से पारिभाषिक शब्दों को छोड़कर अन्य वस्तुओं का परिज्ञान तो अवश्य होगा ही।

मानव-जीवन का उद्देश्य पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि करना है। वेदज्ञान धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि में परमोपयोगी है। आज के विश्व में मानवता को त्रास है। अनेकों कठिनाइयाँ उपस्थित हैं। वेद ज्ञान के बिना मानवता सुख की नींद नहीं सो सकेगी। अतः समस्त आपत्तियों का निवारक वेद का ज्ञान है। इस ज्ञान का अधिकाधिक विस्तार होना चाहिए। इस ज्ञान की प्राप्ति के लिए भगवान् दयानन्द के वेदभाष्य का अध्ययन, प्रचार और प्रसार अधिकाधिक होना चाहिए।

हमारा निश्चित विश्वास है कि प्रभु कृपा से वह दिन शीघ्र आएगा जब धरती के सारे मनुष्य अपने सारे मत-भेद मिटा, सच्चे प्रभु पुत्र बन उसी के बताए 'वेद-मार्ग' पर चल अशान्ति, दुःख और समस्त उलझनों से छुटकारा पा धरती को स्वर्ग बना जीवन-लक्ष्य को प्राप्त कर लेंगे।

आर्यसमाज शताब्दी के पावन अवसर पर प्रभु की अमरवाणी का यह प्रकाश प्रकाश और आनन्द के साधकों की सेवा में सादर अर्पित है। प्रभु कृपा करें कि हम सत्य को

जान 'वेद' भावना को हृदयंगम कर, शाश्वत सत्य के प्रचार-प्रसार के लिए गुरुदेव देव दयानन्द के मार्ग पर चलते हुए मानव-कल्याण का कारण बनें।

सार्वदेशिक सभा के प्रधान पद्मभूषण डाक्टर डी० राम जी, उपप्रधान श्री प्रताप-सिंह शूरजी वल्लभदास, मंत्री श्री ओ३म् प्रकाश जी त्यागी, सदस्य राज्यसभा का सदा सक्रिय सहयोग प्राप्त होता रहा।

इसके साथ ही सम्पादन एवं मुद्रण में अपने कुछ आन्तरिक सहयोगी विद्वानों का विशेष सहयोग प्राप्त हुआ जिन का धन्यवाद किए विना मैं नहीं रह सकता। इन्होंने प्रकाशन कार्य में अपना हार्दिक योग प्रदान किया। ये विद्वान् हैं आचार्य पं० उदयवीर जी शास्त्री, श्री मनोहर जी विद्यालंकार और श्री जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती, शास्त्री। इनमें श्री सिद्धान्ती जी और श्री मनोहर जी ने कई विषयों पर विचार विमर्श के अतिरिक्त प्रूफ देखने में भी पूरा सहयोग दिया।

सैनी प्रिण्टर्स के स्वामी पं० श्री चन्द्रमोहन जी शास्त्री ने न केवल मुद्रण अपितु प्रूफ देखने में भी सहयोग दिया और कार्य को शीघ्र पूरा कराने का पूरा प्रयत्न किया है। श्री भारतेन्द्र नाथ जी ने विशेष रूप से इसकी साज-सज्जा में मनोयोग और अवधानता से योग दिया। इनके अतिरिक्त भी इस पवित्र कार्य में जाने अनजाने जिनका भी योग प्राप्त हुआ, उन सभी का हम हार्दिक धन्यवाद करते हैं—वस्तुतः यह कार्य सभी के सम्मिलित सहयोग का ही परिणाम है। प्रभु कृपा से कार्य आरम्भ हुआ, प्रथम खंड पूर्ण हुआ। यह सब प्रभु की असीम अनुकम्पा का फल है। प्रभु के ही आशीर्वाद से शेष ९ खण्डों में चारों वेदों का हिन्दी भाष्य १९७५ में आर्य समाज स्थापना शताब्दी तक संपन्न होगा, यह हमारा विश्वास और संकल्प है। वेद भाष्य के इस पवित्र प्रकाशन का गुरुतर संपादन कार्य हमें सोंपा गया और हमने महर्षि दयानन्द के प्रति पूर्ण निष्ठा से इसे संपादित करने का प्रयास किया। महर्षि के शब्दों, भावों को ऋषि वाक्य स्वीकार करते हुए हमने उन्हें सर्वथा अपरिवर्तित रखा है।

श्रद्धा से, आदर से, प्रभु की इस वाणी का, महान् ऋषि के भाष्य के साथ स्वाध्याय कीजिए। हमने अपनी भरसक शक्ति से श्रम कर इसे सुन्दरतम शुद्ध रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है, फिर भी मुद्रण आदि की कुछ त्रुटियां यदि रह गयी हों तो विज्ञ जनों द्वारा ध्यान आकर्षित करने पर हम आभारी होंगे।

धरती पर फैले अन्धकार को समाप्त कर, जन मानस में वेद का पावन प्रकाश पहुंचाने के शुभ संकल्प के साथ प्रस्तुत है प्रभु की यह अमरवाणी। स्वीकार कीजिए।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
महर्षि दयानन्द भवन नई दिल्ली
दिनांक १३-४-७२.

(आचार्य) वैद्यनाथ शास्त्री
—प्रधान सम्पादक एवं अध्यक्ष
अनुसन्धान-विभाग

प्रकाशकीय वक्तव्य

सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा का मन्त्री पद सम्भालनेके साथ ही हमारा मस्तिष्क यह सोचने लगा कि सन् १९७५ में होने वाले आर्य समाज शताब्दी समारोह के अवसर पर सब से अधिक प्राथमिकता किस कार्य-क्रम को दी जाय ? चिन्तन का निष्कर्ष था "वेद का प्रचार।" आर्य समाज का प्रमुख लक्ष्य यही है: और वस्तुतः वैदिक विचारधारा भूमण्डल पर प्रसारित करने के उद्देश्य से ही आर्यसमाज की स्थापना भी हुई थी ।

आर्य समाज के सर्वोच्च संघटन ने भी बहुत सोच विचार और विचार-विमर्श के पश्चात् यही उचित समझा कि आर्य समाज स्थापना शताब्दी के पुनीत ऐतिहासिक अवसर पर चारों वेदों का हिन्दी भाष्य सुन्दरतम रूप में वैदिक-धर्मी जगत् को भेंट दिया जाय ताकि वह महर्षि दयानन्द की इस अभिलाषा की पूर्ति कर सके कि "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना प्रत्येक आर्य का परम धर्म है।"

कार्य बहुत बड़ा था, कार्य की पूर्ति के लिये पांच लाख रुपयों की आवश्यकता तो थी ही, इस के साथ ही कठिन श्रम, निरन्तर साधना और उत्साह भी आवश्यक था। किन्तु जब इस योजना को प्रसारित किया गया तब हमें अनुभव हुआ कि महर्षि दयानन्द के शिष्यों व अनुयायियों में 'वेद' के प्रति कितनी श्रद्धा है। हमारी प्रार्थना का सर्वत्र स्वागत हुआ, उत्साह उभरा और 'वेद' के प्रचार-प्रसार के लिये जो संकल्प हमने लिया था, उसमें स्वर मिलाकर सारा आर्य जगत् लक्ष्य-पूर्ति के लिये तत्पर हो गया।

जनता ने, समाजों ने, वेद भाष्य मंगाने में उत्साह दिखाया। धनपतियों ने उदारता से दान दिया। विद्वानों और साथियों का स्नेह और आशीर्वाद मिला और इस सब का परिणाम ऋग्वेद के प्रथम मण्डल का महर्षि दयानन्दकृत हिन्दी भाष्य अब आप के हाथ में है।

इन अंकों का इस रूप में निकलना सम्भव न था यदि विद्वद्वर्य आचार्य श्री वैद्यनाथ जी शास्त्री अपनी अपूर्व साधना से इसके संपादन का भार न संभालते । वेद भाष्य समिति के संयोजक श्री मनोहर जी विद्यालंकार ने बड़ी योग्यता से इस कार्य की भूमिका निभाई है । पं० भारतेन्द्रनाथ साहित्यालंकार भी समय-समय पर आवश्यकता-नुसार सहयोग प्रदान करते रहे हैं । सैनी प्रिण्टर्स ने भी इसे अपना कार्य ही समझ कर प्रशंसनीय योगदान दिया । वस्तुतः यह पवित्र प्रकाशन सभी के सामूहिक सहयोग का परिणाम है ।

कार्य की सफलता के लिए धन की आवश्यकता प्रथम होती है जिसकी पूर्ति के लिए सभा के मान्य कोषाध्यक्ष श्री सोमनाथ जी मरवाहा व सभा के उपप्रधान श्री ला० रामगोपाल जी ने जो योगदान किया, वह यदि न मिलता तो भाष्य का प्रकाशन कठिन पड़ता । सभा प्रधान श्री डा० डी० राम जी भी सदा तत्पर रहकर अपना सहयोग देते रहे हैं ।

बम्बई में सभा के भूतपूर्व उपप्रधान माननीय श्री प्रताप सिंह शूर जी वल्लभ दास, श्री जयदेवजी आर्य, श्री भगवती प्रसाद जी गुप्त, श्री ओंकार नाथ जी, श्री गुलजारी लाल जी आदि ने दान स्वरूप धन-संग्रह में जो सहयोग प्रदान किया वह हमें सदा प्रेरणा देता रहा है । इसके अतिरिक्त जाने-अनजाने कितनों का योग, आशीर्वाद और प्रेरणा हमें मिली है हम हृदय से सभी के प्रति आभारी हैं ।

देश, काल, परिस्थिति से ऊँचा उठकर प्राणी मात्र का समान रूप से कल्याण करने का उपदेश वेद देता है । मानव मात्र इसकी शरण में आकर सुख, शान्ति व आनन्द की प्राप्ति कर अपने जीवन को सफल बनावें, इस पुनीत कामना से हमने सभा द्वारा वेद के प्रचार का संकल्प किया है ।

सभा अपनी पूरी शक्ति से देश-देशान्तरों में 'वेद' और उसकी विचार धारा के प्रचार व प्रसार के लिये कृत संकल्प है । परम पिता परमात्मा हमें शक्ति दे कि हम सत्य, ज्ञान के प्रकाश को धरती पर फैला अज्ञान-तिमिर समाप्त कर सकें ।

ऋषि दयानन्द के अनुयायियोंके सहयोग से ऋषि का यह वेद-भाष्य प्रकाशित कर प्रचार के लिये हम ऋषि-भक्तों की सेवा में ही अर्पित कर रहे हैं ।

महर्षि दयानन्द भवन
दिनांक १३. ४. ७२

ओम्प्रकाश त्यागी संसद सदस्य
मन्त्री
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

परमहंसपरिव्राजकाचार्य्य

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मित

* ओ३म् *

ऋग्वेदः

—*:—

अथर्ग्वेदभाष्यारम्भः ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥

ऋ० ५ । ८२ । ५ ॥

विद्यानन्दं समवति चतुर्वेदसंस्तावनाया,
सम्पूर्येशं निगमनिलयं सम्प्रणम्याथ कुर्वे ।
वेदत्र्यङ्के विधुयुतसरे मार्गशुक्लेऽङ्गभौमे,
ऋग्वेदस्याखिलगुणगुणिज्ञानदातुर्हि भाष्यम् ॥ १ ॥

ऋग्भिः स्तुवन्तीत्युक्तत्वाद्विद्वांस उक्तपूर्वं वेदार्थज्ञानसाहित्यपठनपुरःसरमृग्वेदमधीत्य तत्रस्थैर्मन्त्रैरीश्वरमारभ्य भूमिपर्यन्तानां पदार्थानां गुणान् यथावद्विदित्वैते कार्येषूपकृतये मतिं जनयन्ति । ऋचन्ति स्तुवन्ति पदार्थानां गुणकर्मस्वभावाननया सा ऋक्, ऋक् चासौ वेदश्चर्ग्वेदः ।

एतस्मिन्नग्निमीड इत्यारभ्य यथा वः सुसहासतिपर्यन्तेऽष्टावष्टकाः सन्ति । तत्रैकैकस्मिन्नष्टावष्टावध्यायाः सन्ति, तेषामेकैकस्य प्रत्यध्यायं वर्गाः संख्यायन्ते—

प्रथमाष्टके		द्वितीयाष्टके		तृतीयाष्टके		चतुर्थाष्टके		पञ्चमाष्टके		षष्ठाष्टके		सप्तमाष्टके		अष्टमाष्टके	
अ०	व०	अ०	व०	अ०	व०	अ०	व०	अ०	व०	अ०	व०	अ०	व०	अ०	व०
१	३७	१	२६	१	३४	१	३३	१	२७	१	४०	१	४१	१	३०
२	३८	२	२७	२	२६	२	२८	२	३०	२	४०	२	३३	२	२४
३	३५	३	२६	३	३१	३	३१	३	३०	३	४९	३	२६	३	२८
४	२९	४	२९	४	२५	४	३६	४	३०	४	५४	४	२८	४	३१
५	३१	५	२९	५	२६	५	३०	५	२७	५	३८	५	३३	५	२७
६	३२	६	३२	६	३०	६	२५	६	२५	६	३८	६	२८	६	२७
७	३७	७	२५	७	२७	७	३५	७	३३	७	३९	७	३०	७	३०
८	२६	८	२७	८	२६	८	३२	८	३६	८	३३	८	२९	८	४९
इ	२६५	थ	२२१	सं	२२५	ख्या	२५०	प्रत्य	२३८	ष्टकं	३३१	वेदि	२४८	त	२४६ न्या,

सर्वेष्वष्टकेषु सर्वे वर्गाः संयुक्ता २०२४ चतुर्विंशत्यधिके द्वे सहस्रे सन्ति ।

तथास्मिन्नृग्वेदे दश मण्डलानि सन्ति, तत्र प्रथमे मण्डले चतुर्विंशतिरनुवाकाः एकनवतिशतं सूक्तानि । तत्रैकैकस्मिन् सूक्ते मन्त्राश्च संख्यायन्ते—

सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०
१	९	२५	२१	४९	४	७३	१०	९७	८	१२१	१५	१४५	५	१६९	८
२	९	२६	१०	५०	१३	७४	९	९८	३	१२२	१५	१४६	५	१७०	५
३	१२	२७	१३	५१	१५	७५	५	९९	१	१२३	१३	१४७	५	१७१	६
४	१०	२८	९	५२	१५	७६	५	१००	१९	१२४	१३	१४८	५	१७२	३
५	१०	२९	७	५३	११	७७	५	१०१	११	१२५	७	१४९	५	१७३	१३
६	१०	३०	२२	५४	११	७८	५	१०२	११	१२६	७	१५०	३	१७४	१०
७	१०	३१	१८	५५	८	७९	१२	१०३	८	१२७	११	१५१	९	१७५	६
८	१०	३२	१५	५६	६	८०	१६	१०४	९	१२८	८	१५२	७	१७६	६
९	१०	३३	१५	५७	६	८१	९	१०५	१९	१२९	११	१५३	४	१७७	५
१०	१२	३४	१२	५८	९	८२	६	१०६	७	१३०	१०	१५४	६	१७८	५
११	८	३५	११	५९	७	८३	६	१०७	३	१३१	७	१५५	६	१७९	६
१२	१२	३६	२०	६०	५	८४	२०	१०८	१३	१३२	६	१५६	५	१८०	१०
१३	१२	३७	१५	६१	१६	८५	१२	१०९	८	१३३	७	१५७	६	१८१	९
१४	१२	३८	१५	६२	१३	८६	१०	११०	९	१३४	६	१५८	६	१८२	८
१५	१२	३९	१०	६३	९	८७	६	१११	५	१३५	९	१५९	५	१८३	६
१६	९	४०	८	६४	१५	८८	६	११२	२५	१३६	७	१६०	५	१८४	६
१७	९	४१	९	६५	५	८९	१०	११३	२०	१३७	३	१६१	१४	१८५	११
१८	९	४२	१०	६६	५	९०	९	११४	११	१३८	४	१६२	२२	१८६	११
१९	९	४३	९	६७	५	९१	२३	११५	६	१३९	११	१६३	१३	१८७	११
२०	८	४४	१४	६८	५	९२	१८	११६	२५	१४०	१३	१६४	५२	१८८	११
२१	६	४५	१०	६९	५	९३	१२	११७	२५	१४१	१३	१६५	१५	१८९	८
२२	२१	४६	१५	७०	६	९४	१६	११८	११	१४२	१३	१६६	५	१९०	८
२३	२४	४७	१०	७१	१०	९५	११	११९	१०	१४३	८	१६७	११	१९१	१६
२४	१५	४८	१६	७२	१०	९६	९	१२०	१२	१४४	७	१६८	१०	—	—

अस्मिन्मण्डले सर्वे मन्त्रा मिलित्वा १९७६ षट्सप्तत्यधिकान्येकोनविंशतिः शतानि सन्तीति वेद्यम् ।

अथ द्वितीयमण्डले चत्वारोऽनुवाकाः, त्रयश्चत्वारिंशत् सूक्तानि सन्ति । तत्र प्रतिसूक्तमियं मन्त्रसंख्या ज्ञातव्या—

सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०
१	१६	७	६	१३	१३	१९	९	२५	५	३१	७	३७	६	४३	३
२	१३	८	६	१४	१२	२०	९	२६	४	३२	८	३८	११	—	—
३	११	९	६	१५	१०	२१	६	२७	१७	३३	१५	३९	८		
४	९	१०	६	१६	९	२२	४	२८	११	३४	१५	४०	६		
५	८	११	२१	१७	९	२३	१९	२९	७	३५	१५	४१	२१		
६	८	१२	१५	१८	९	२४	१६	३०	११	३६	६	४२	३		

अस्मिन्मंडले सर्वे मन्त्रा मिलित्वा ४२९ एकोनत्रिंशदधिकानि चत्वारिंशतानि सन्ति । अथ तृतीयमण्डले पञ्चानुवाका, द्विषष्टिश्च सूक्तानि सन्ति । तत्र प्रतिसूक्तमियं मन्त्रसंख्या वेद्या—

सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०
१	२३	९	६	१७	५	२५	५	३३	१३	४१	९	४९	५	५७	६
२	१५	१०	६	१८	५	२६	९	३४	११	४२	९	५०	५	५८	९
३	११	११	९	१९	५	२७	१५	३५	११	४३	८	५१	१२	५९	९
४	११	१२	९	२०	५	२८	६	३६	११	४४	५	५२	८	६०	७
५	११	१३	७	२१	५	२९	१६	३७	११	४५	५	५३	२४	६१	७
६	११	१४	७	२२	५	३०	२२	३८	१०	४६	५	५४	२२	६२	१८
७	११	१५	७	२३	५	३१	२२	३९	९	४७	५	५५	२२	—	—
८	११	१६	६	२४	५	३२	१७	४०	९	४८	५	५६	८		

अस्मिन् मण्डले सर्वे मन्त्रा मिलित्वा ६१७ सप्तदशोत्तरषटशतानि सन्ति।

अथ चतुर्थे मण्डले पञ्चानुवाका, अष्टपञ्चाशच्च सूक्तानि सन्ति। तत्र प्रतिसूक्तमियं मन्त्रसंख्या वेद्या—

सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०
१	२०	९	८	१७	२१	२५	८	३३	११	४१	११	४९	६	५७	८
२	२०	१०	८	१८	१३	२६	७	३४	११	४२	१०	५०	११	५८	११
३	१६	११	६	१९	११	२७	५	३५	९	४३	७	५१	११	—	—
४	१५	१२	६	२०	११	२८	५	३६	९	४४	७	५२	७		
५	१५	१३	५	२१	११	२९	५	३७	८	४५	७	५३	७		
६	११	१४	५	२२	११	३०	२४	३८	१०	४६	७	५४	६		
७	११	१५	१०	२३	११	३१	१५	३९	६	४७	४	५५	१०		
८	८	१६	२१	२४	११	३२	२४	४०	५	४८	५	५६	७		

अस्मिन् मण्डले सर्वे मन्त्रा मिलित्वा ५८९ एकोननवति पञ्चशतानि सन्ति।

अथ पञ्चममण्डले षडनुवाकाः, सप्ताशीतिः सूक्तानि च सन्ति। तत्र प्रतिसूक्तमियं मन्त्रसंख्यास्तीति वेद्यम्—

सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०
१	१२	१२	६	२३	४	३४	९	४५	११	५६	९	६७	५	७८	९
२	१२	१३	६	२४	४	३५	८	४६	८	५७	८	६८	५	७९	१०
३	१२	१४	६	२५	९	३६	६	४७	७	५८	८	६९	४	८०	६
४	११	१५	५	२६	९	३७	५	४८	५	५९	८	७०	४	८१	५
५	११	१६	५	२७	६	३८	५	४९	५	६०	८	७१	३	८२	९
६	१०	१७	५	२८	६	३९	५	५०	५	६१	१९	७२	३	८३	१०
७	१०	१८	५	२९	१५	४०	९	५१	१५	६२	९	७३	१०	८४	३
८	७	१९	५	३०	१५	४१	२०	५२	१७	६३	७	७४	१०	८५	८
९	७	२०	४	३१	१३	४२	१८	५३	१६	६४	७	७५	९	८६	६
१०	७	२१	४	३२	१२	४३	१७	५४	१५	६५	६	७६	५	८७	९
११	६	२२	४	३३	१०	४४	१५	५५	१०	६६	६	७७	५	—	—

अस्मिन् मण्डले सर्वे मन्त्रा मिलित्वा ७२७ सप्तविंशति सप्तशतानि सन्ति ।

अथ षष्ठे मण्डले षडनुवाकाः, पञ्चसप्ततिश्च सूक्तानि सन्ति । तत्र प्रतिसूक्तमियं मन्त्रसंख्या बोध्या—

सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०
१	१३	११	६	२१	१२	३१	५	४१	५	५१	१६	६१	१४	७१	६
२	११	१२	६	२२	११	३२	५	४२	४	५२	१७	६२	११	७२	५
३	८	१३	६	२३	१०	३३	५	४३	४	५३	१०	६३	११	७३	३
४	८	१४	६	२४	१०	३४	५	४४	२४	५४	१०	६४	६	७४	४
५	७	१५	१९	२५	९	३५	५	४५	३३	५५	६	६५	६	७५	१९
६	७	१६	४८	२६	८	३६	५	४६	१४	५६	६	६६	११	—	—
७	७	१७	१५	२७	८	३७	५	४७	३१	५७	६	६७	११		
८	७	१८	१५	२८	८	३८	५	४८	२२	५८	४	६८	११		
९	७	१९	१३	२९	६	३९	५	४९	१५	५९	१०	६९	८		
१०	७	२०	१३	३०	५	४०	५	५०	१५	६०	१५	७०	६		

अस्मिन् मण्डले सर्वे मन्त्रा मिलित्वा ७६५ पञ्चषष्टि सप्तशतानि सन्ति ।

अथ सप्तमे मण्डले षडनुवाकाः, चतुःशतं च सूक्तानि सन्ति । तत्र प्रतिसूक्तमियं मन्त्रसंख्यास्तीति वेदितव्यम्—

सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०
१	२५	१४	३	२७	५	४०	७	५३	३	६६	१९	७९	५	९२	५
२	११	१५	१५	२८	५	४१	७	५४	३	६७	१०	८०	३	९३	८
३	१०	१६	१२	२९	५	४२	६	५५	८	६८	९	८१	६	९४	१२
४	१०	१७	७	३०	५	४३	५	५६	२५	६९	८	८२	१०	९५	६
५	९	१८	२५	३१	१२	४४	५	५७	७	७०	७	८३	१०	९६	६
६	७	१९	११	३२	२७	४५	४	५८	६	७१	६	८४	५	९७	१०
७	७	२०	१०	३३	१४	४६	४	५९	१२	७२	५	८५	५	९८	७
८	७	२१	१०	३४	२५	४७	४	६०	१२	७३	५	८६	८	९९	७
९	६	२२	९	३५	१५	४८	४	६१	७	७४	६	८७	७	१००	७
१०	५	२३	६	३६	९	४९	४	६२	६	७५	८	८८	७	१०१	६
११	५	२४	६	३७	८	५०	४	६३	६	७६	७	८९	५	१०२	३
१२	३	२५	६	३८	८	५१	३	६४	५	७७	६	९०	७	१०३	१०
१३	३	२६	५	३९	७	५२	३	६५	५	७८	५	९१	७	१०४	२५

अस्मिन् मण्डले सर्वे मन्त्रा मिलित्वा ८४१ एकचत्वारिंशदष्टौ शतानि सन्ति ।

अथाष्टमे मण्डले दशानुवाकाः, त्रिशतं च सूक्तानि सन्ति। तत्र प्रतिसूक्तमियं मन्त्रसंख्या ज्ञेया—

सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०
१	३४	१४	१५	२७	२२	४०	१२	५३	८	६६	१५	७९	९	९२	३३
२	४२	१५	१३	२८	५	४१	१०	५४	८	६७	२१	८०	१०	९३	३४
३	२४	१६	१२	२९	१०	४२	६	५५	५	६८	१९	८१	९	९४	१२
४	२१	१७	१५	३०	४	४३	३३	५६	५	६९	१८	८२	९	९५	९
५	३९	१८	२९	३१	१८	४४	३०	५७	४	७०	१५	८३	९	९६	२१
६	४८	१९	३७	३२	३०	४५	४२	५८	३	७१	१५	८४	९	९७	१५
७	३६	२०	२६	३३	१९	४६	३३	५९	७	७२	१८	८५	९	९८	१२
८	२३	२१	१८	३४	१८	४७	१८	६०	२०	७३	१८	८६	५	९९	८
९	२१	२२	१८	३५	२४	४८	१५	६१	१८	७४	१५	८७	६	१००	१२
१०	६	२३	३०	३६	७	४९	१०	६२	१२	७५	१६	८८	६	१०१	१६
११	१०	२४	३०	३७	७	५०	१०	६३	१२	७६	१२	८९	७	१०२	२२
१२	३३	२५	२४	३८	१०	५१	१०	६४	१२	७७	११	९०	६	१०३	१४
१३	३३	२६	२५	३९	१०	५२	१०	६५	१२	७८	१०	९१	७	—	—

अस्मिन् मण्डले सर्वे मन्त्रा मिलित्वा १७२६ षड्विंशति सप्तदशशतानि सन्ति।

अथ नवमे मण्डले सप्तानुवाकाः, चतुर्दशोत्तरं शतं च सूक्तानि सन्ति। तत्र प्रतिसूक्तमियं मन्त्रसंख्या वेद्या—

सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०
१	१०	१५	८	२९	६	४३	६	५७	४	७१	९	८५	१२	९९	८
२	१०	१६	८	३०	६	४४	६	५८	४	७२	९	८६	४८	१००	९
३	१०	१७	८	३१	६	४५	६	५९	४	७३	९	८७	९	१०१	१६
४	१०	१८	७	३२	६	४६	६	६०	४	७४	९	८८	८	१०२	८
५	११	१९	७	३३	६	४७	५	६१	३०	७५	५	८९	७	१०३	६
६	९	२०	७	३४	६	४८	५	६२	३०	७६	५	९०	६	१०४	६
७	९	२१	७	३५	६	४९	५	६३	३०	७७	५	९१	६	१०५	६
८	९	२२	७	३६	६	५०	५	६४	३०	७८	५	९२	६	१०६	१४
९	९	२३	७	३७	६	५१	५	६५	३०	७९	५	९३	५	१०७	२६
१०	९	२४	७	३८	६	५२	५	६६	३०	८०	५	९४	५	१०८	१६
११	९	२५	६	३९	६	५३	४	६७	३२	८१	५	९५	५	१०९	२२
१२	९	२६	६	४०	६	५४	४	६८	१०	८२	५	९६	२४	११०	१२
१३	९	२७	६	४१	६	५५	४	६९	१०	८३	५	९७	५८	१११	३
१४	८	२८	६	४२	६	५६	४	७०	१०	८४	५	९८	१२	११२	४
														११३	११
														११४	४

अस्मिन् मण्डले सर्वे मन्त्रा मिलित्वा १०९७ सप्तनवत्येकसहस्रं सन्ति।

अथ प्रथमे मण्डले द्वादशानुवाकाः, एकनवतिशतं च सूक्तानि सन्ति । तत्र प्रतिसूक्तमियं मन्त्रसंख्या ज्ञेया—

सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०	सू०	मं०
१	७	२५	११	४९	११	७३	११	९७	२३	१२१	१०	१४५	६	१६९	४
२	७	२६	९	५०	७	७४	६	९८	१२	१२२	८	१४६	६	१७०	४
३	७	२७	२४	५१	९	७५	९	९९	१२	१२३	८	१४७	५	१७१	४
४	७	२८	१२	५२	६	७६	८	१००	१२	१२४	९	१४८	५	१७२	४
५	७	२९	८	५३	११	७७	८	१०१	१२	१२५	८	१४९	५	१७३	६
६	७	३०	१५	५४	६	७८	८	१०२	१२	१२६	८	१५०	५	१७४	५
७	७	३१	११	५५	८	७९	७	१०३	१३	१२७	८	१५१	५	१७५	४
८	९	३२	९	५६	७	८०	७	१०४	११	१२८	९	१५२	५	१७६	४
९	९	३३	९	५७	६	८१	७	१०५	११	१२९	७	१५३	५	१७७	३
१०	१४	३४	१४	५८	१२	८२	७	१०६	११	१३०	७	१५४	५	१७८	३
११	९	३५	१४	५९	१०	८३	७	१०७	११	१३१	७	१५५	५	१७९	३
१२	९	३६	१४	६०	१२	८४	७	१०८	११	१३२	७	१५६	५	१८०	३
१३	५	३७	१२	६१	२७	८५	४७	१०९	७	१३३	७	१५७	५	१८१	३
१४	१६	३८	५	६२	११	८६	२३	११०	११	१३४	७	१५८	५	१८२	३
१५	१४	३९	१४	६३	१७	८७	२५	१११	१०	१३५	७	१५९	६	१८३	३
१६	१४	४०	१४	६४	१७	८८	१९	११२	१०	१३६	७	१६०	५	१८४	३
१७	१४	४१	३	६५	१५	८९	१८	११३	१०	१३७	७	१६१	५	१८५	३
१८	१४	४२	११	६६	१५	९०	१६	११४	१०	१३८	६	१६२	६	१८६	३
१९	८	४३	११	६७	१२	९१	१५	११५	९	१३९	६	१६३	६	१८७	५
२०	१०	४४	११	६८	१२	९२	१५	११६	९	१४०	६	१६४	५	१८८	३
२१	८	४५	१२	६९	१२	९३	१५	११७	९	१४१	६	१६५	५	१८९	३
२२	१२	४६	१०	७०	११	९४	१४	११८	९	१४२	८	१६६	५	१९०	३
२३	७	४७	८	७१	११	९५	१८	११९	१३	१४३	६	१६७	९	१९१	४
२४	६	४८	११	७२	९	९६	१३	१२०	९	१४४	६	१६८	४	—	—

अस्मिन्मण्डले सर्वे मन्त्रा मिलित्वा १७५४ चतुःपञ्चाशत् सप्तदशशतानि सन्ति ।

अत्र ऋग्वेदस्य दशसु मण्डलेषु ८५ पञ्चाशीतिरनुवाकाः, १०१८ अष्टादशसहस्रं सूक्तानि, १०५८९ दशसहस्राणि पञ्चशतानि एकोननवतिश्च मन्त्राः सन्तीति वेद्यम् । स एतैः पूर्वोक्ताष्टकाध्यायवर्गमण्डलानुवाकसूक्त[illegible]हितोऽयमृग्वेदोऽस्तीति वेदितव्यम् ॥

भावार्थः—आगे मैं सब प्रकार से विद्या के आनन्द को देने वाली चारों वेद की भूमिका को समाप्त और जगदीश्वर को अच्छी प्रकार प्रणाम करके सम्वत् १९३४ मार्ग शुक्ल ६ भौमवार के दिन सम्पूर्ण ज्ञान के देने वाले ऋग्वेद के भाष्य का आरम्भ करता हूँ ॥ १ ॥

(ऋग्भिः०) इस ऋग्वेद से सब पदार्थों की स्तुति होती है, अर्थात् ईश्वर ने जिस में सब पदार्थों के गुणों का प्रकाश किया है, इसलिये विद्वान् लोगों को चाहिये कि ऋग्वेद को प्रथम पढ़के उन मन्त्रों से ईश्वर से लेके पृथिवी-पर्य्यन्त सब पदार्थों को यथावत् जानके संसार में उपकार के लिये प्रयत्न करें। ऋग्वेद शब्द का अर्थ यह है कि जिससे सब पदार्थों के गुणों और स्वभाव का वर्णन किया जाय वह 'ऋक्' और वेद अर्थात् जो यह सत्य सत्य ज्ञान का हेतु है, इन दो शब्दों से 'ऋग्वेद' शब्द बनता है।

'अग्निमीळे' यहां से लेके 'यथा वः सुसहासति' इस अन्त के मन्त्र-पर्यन्त ऋग्वेद में आठ अष्टक और एक एक अष्टक में आठ आठ अध्याय हैं। सब अध्याय मिल के चौसठ होते हैं। एक एक अध्याय की वर्गसंख्या कोष्ठों में पूर्व लिख दी है। और आठों अंष्टक के सब वर्ग २०२४ दो हजार चौबीस होते हैं।

तथा इस में दश मण्डल हैं। एक एक मण्डल में जितने जितने सूक्त और मन्त्र हैं सो ऊपर कोष्ठों में लिख दिये हैं। प्रथम मण्डल में २४ चौबीस अनुवाक, और एक-सौ इक्कानवे सूक्त, तथा १९७६ एक हजार नौ सौ छहत्तर मन्त्र। दूसरे में ४ चार अनुवाक, ४३ तितालीस सूक्त, और ४२९ चार सौ उन्तीस मन्त्र। तीसरे में ५ पांच अनुवाक, ६२ बासठ सूक्त, और ६१७ छः सौ सत्रह मन्त्र। चौथे में ५ अनुवाक, ५८ अट्ठावन सूक्त, ५८९ पांच सौ नवासी मन्त्र। पांचमे में ६ छः अनुवाक, ८७ सत्तासी सूक्त, ७२७ सात सौ सत्ताईस मन्त्र। ६ छठे में छः अनुवाक, ७५ पचहत्तर सूक्त, ७६५ सात सौ पैंसठ मन्त्र। सातमे में ६ छः अनुवाक, १०४ एक सौ चार सूक्त, ८४१ आठ सौ इकतालीस मन्त्र। आठमे में १० दश अनुवाक, १०३ एक सौ तीन सूक्त, और १७२६ एक हजार सात सौ छब्बीस मन्त्र। नवमे में ७ सात अनुवाक, ११४ एक सौ चौदह सूक्त, १०९७, और एक हजार सत्तानवे मन्त्र। और दशम मण्डल में १२ बारह अनुवाक, १९१ एक सौ इक्कानवे सूक्त, और १७५४ एक हजार सात सौ चौअन मन्त्र हैं।

तथा दशों मण्डलों में ८५ पचासी अनुवाक, १०२८ एक हजार अठ्ठाईस सूक्त, और १०५८९ दश हजार पांचसौ नवासी मन्त्र हैं। सब सज्जनों को उचित है कि इस बात को ध्यान में करलें कि जिससे किसी प्रकार का गड़बड़ न हो ॥

* ओ३म् *

अथ ऋग्वेदभाषाभाष्य

प्रथम मण्डल । प्रथम सूक्त

मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।।

अ॒ग्निमी॑ळे पु॒रोहि॑तं य॒ज्ञस्य॑ दे॒वमृ॒त्विज॑म् । होता॑रं रत्न॒धात॑मम् ।।१।।

पदार्थान्वयभाषा—(**यज्ञस्य**) हम लोग विद्वानों के सत्कार संगम महिमा और कर्म के (**होतारम्**) देने तथा ग्रहण करने वाले (**पुरोहितम्**) उत्पत्ति के समय से पहिले परमाणु आदि सृष्टि के धारण करने और (**ऋत्विजम्**) वारंवार उत्पत्ति के समय में स्थूल सृष्टि के रचनेवाले तथा ऋतु ऋतु में उपासना करने योग्य (**रत्नधातमम्**) और निश्चय करके मनोहर पृथिवी वा सुवर्ण आदि रत्नों के धारण करने वा (**देवम्**) देने तथा सब पदार्थों के प्रकाश करने वाले परमेश्वर की (**ईळे**) स्तुति करते हैं ।

तथा उपकार के लिये (**यज्ञस्य**) हम लोग विद्यादि दान और शिल्पक्रियाओं से उत्पन्न करने योग्य पदार्थों के (**होतारम्**) देनेहारे तथा (**पुरोहितम्**) उन पदार्थों के उत्पन्न करने के समय से पूर्व भी छेदन धारण और आकर्षण आदि गुणों के धारण करने वाले (**ऋत्विजम्**) शिल्प विद्या साधनों के हेतु (**रत्नधातमम्**) अच्छे अच्छे, सुवर्ण आदि रत्नों के धारण कराने तथा (**देवम्**) युद्धादिकों में कलायुक्त शस्त्रों से विजय करानेहारे भौतिक अग्नि की (**ईळे**) वारंवार इच्छा करते हैं ।

यहां अग्नि शब्द के दो अर्थ करने में प्रमाण ये हैं कि (**इन्द्रं मित्रं०**) इस ऋग्वेद के मन्त्र से यह जाना जाता है कि एक सद्ब्रह्म के इन्द्र आदि अनेक नाम हैं । तथा (**तदेवाग्नि०**) इस यजुर्वेद के मन्त्र से भी अग्नि आदि नामों करके सच्चिदानन्दादि लक्षणवाले ब्रह्म को जानना चाहिये । (**ब्रह्म ह्य०**) इत्यादि शतपथ ब्राह्मण के प्रमाणों से अग्नि शब्द ब्रह्म और आत्मा इन दो अर्थों का वाची है । (**अयं वा०**) इस प्रमाण में अग्नि शब्द से प्रजा शब्द करके भौतिक और प्रजापति शब्द से ईश्वर का ग्रहण होता है (**अग्नि०**) इस प्रमाण से सत्याचरण के नियमों का जो यथावत् पालन करना है सो ही व्रत कहाता है, और इस व्रत का पति परमेश्वर है (**त्रिभिः पवित्रैः०**) इस ऋग्वेद के प्रमाण से ज्ञानवाले तथा सर्वज्ञ प्रकाश करने वाले विशेषण से अग्नि शब्द करके ईश्वर का ग्रहण होता है ।

निरुक्तकार यास्कमुनिजी ने भी ईश्वर और भौतिक पक्षों को अग्नि शब्द की भिन्न भिन्न व्याख्या करके सिद्ध किया है, सो संस्कृत में यथावत् देख लेना चाहिये,

परन्तु सुगमता के लिये कुछ संक्षेप से यहां भी कहते हैं। यास्कमुनिजी ने स्थौलाष्ठीवि ऋषि के मत से अग्नि शब्द का अग्रणी=सब से उत्तम अर्थ किया है, अर्थात् जिसका सब यज्ञों में पहिले प्रतिपादन होता है वह सब से उत्तम ही है। इस कारण अग्नि शब्द से ईश्वर तथा दाहगुणवाला भौतिक अग्नि इन दो ही अर्थों का ग्रहण होता है।

(**प्रशासितारं०; एतमे०**) मनुजी के इन दो श्लोकों में भी परमेश्वर के अग्नि आदि नाम प्रसिद्ध हैं। (ईळे) इस ऋग्वेद के प्रमाण से भी उस अनन्त विद्यावाले और चेतनस्वरूप आदि गुणों से युक्त परमेश्वर का ग्रहण होता है।

अब भौतिक अर्थ के ग्रहण करने में प्रमाण दिखलाते हैं—(**यदश्वं०**) इत्यादि शतपथ ब्राह्मण के प्रमाणों से अग्नि शब्द करके भौतिक अग्नि का ग्रहण होता है। यह अग्नि बैल के समान सब देशदेशान्तरों में पहुंचानेवाला होने के कारण वृष और अश्व भी कहाता है, क्योंकि वह कलाओं के द्वारा अश्व अर्थात् शीघ्र चलानेवाला, होकर शिल्पविद्या के जाननेवाले विद्वान् लोगों के विमान आदि यानों को वेग से वाहनों के समान दूर दूर देशों में पहुँचाता है। (**तूर्णि०**) इस प्रमाण से भी भौतिक अग्नि का ग्रहण है, क्योंकि वह उक्त शीघ्रता आदि हेतुओं से हव्यवाट् और तूर्णि भी कहाता है। (**अग्निर्वै यो०**) इत्यादिक और भी अनेक प्रमाणों से अश्व नाम करके भौतिक अग्नि का ग्रहण किया गया है। (**वृषो**) जबकि इस भौतिक अग्नि को शिल्पविद्यावाले विद्वान् लोग यन्त्रकलाओं से सवारियों में प्रदीप्त करके युक्त करते हैं, तब (**देववाहनः**) उन सवारियों में बैठे हुए विद्वान् लोगों को देशान्तर में बैलों वा घोड़ों के समान शीघ्र पहुँचानेवाला होता है। हे मनुष्यो ! तुम लोग (**हविष्मन्तम्**) वेगादि गुणवाले अश्वरूप अग्नि के गुणों को (**ईळते**) खोजो। इस प्रमाण से भी भौतिक अग्नि का ग्रहण है ॥ १ ॥

भावार्थभाषा:—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार से दो अर्थों का ग्रहण होता है। पिता के समान कृपाकारक परमेश्वर सब जीवों के हित और सब विद्याओं की प्राप्ति के लिए कल्प कल्प के आदि में वेद का उपदेश करता है। जैसे पिता वा अध्यापक अपने शिष्य वा पुत्र को शिक्षा करता है कि तू ऐसा कर वा ऐसा वचन कह, सत्य वचन बोल, इत्यादि शिक्षा को सुनकर बालक वा शिष्य भी कहता है कि सत्य बोलूंगा, पिता और आचार्य्य की सेवा करूंगा, झूठ न कहूंगा, इस प्रकार जैसे परस्पर शिक्षक लोग शिष्यों वा लड़कों को उपदेश करते हैं, वैसे ही 'अग्निमीळे' इत्यादि वेदमन्त्रों में भी जानना चाहिये। क्योंकि ईश्वर ने वेद सब जीवों के उत्तम सुख के लिए प्रकट किया है। इसी 'अग्निमीळे०' वेद के उपदेश का परोपकार फल होने से इस मन्त्र में 'ईडे' यह उत्तम पुरुष का प्रयोग भी है।

(अग्निमीळे०) परमार्थ और व्यवहार विद्या की सिद्धि के लिये अग्नि

शब्द करके परमेश्वर और भौतिक ये दोनों अर्थ लिये जाते हैं। जो पहिले समय में आर्य लोगों ने अश्वविद्या के नाम से शीघ्र गमन का हेतु शिल्पविद्या उत्पन्न की थी वह अग्निविद्या की ही उन्नति थी। आप ही आप प्रकाशमान सब का प्रकाश और अनन्त ज्ञानवान् आदि हेतुओं से अग्निशब्द करके परमेश्वर, तथा रूप दाह प्रकाश वेग छेदन आदि गुण और शिल्पविद्या के मुख्य साधक आदि हेतुओं से प्रथम मन्त्र में भौतिक अर्थ का ग्रहण किया है ॥१॥

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत। स देवाँ एह वक्षति ॥२॥

पदार्थान्वयभाषा—(**पूर्वेभिः**) वर्त्तमान वा पहिले समय के विद्वान्, (**नूतनैः**) वेदार्थ के पढ़नेवाले ब्रह्मचारी तथा नवीन तर्क और कार्य्यों में ठहरनेवाले प्राण (**ऋषिभिः**) मन्त्रों के अर्थों को देखने वाले विद्वान्, उन लोगों के तर्क और कारणों में रहने वाले प्राण इन सभों को (**अग्निः**) वह परमेश्वर (**ईड्यः**) स्तुति करने योग्य और यह भौतिक अग्नि नित्य खोजने योग्य है।

प्राचीन और नवीन ऋषियों में प्रमाण ये हैं कि—(**ऋषिप्रशंसा०**) वे ऋषि लोग गूढ़ और अल्प अभिप्राययुक्त मन्त्रों के अर्थों को यथावत् जानने से प्रशंसा के योग्य होते हैं, और उन्हीं ऋषियो की मन्त्रों में (**दृष्टि**) अर्थात् उनके अर्थों के विचार में पुरुषार्थ से यथार्थ ज्ञान और विज्ञान की प्रवृत्ति होती है, इसी से वे सत्कार करने योग्य भी हैं। तथा (**साक्षात्कृत०**) जो धर्म और अधर्म की ठीक ठीक परीक्षा करनेवाले धर्मात्मा और यथार्थवक्ता थे, तथा जिन्होंने सब विद्या यथावत् जान ली थी, वे ही ऋषि हुए, और जिन्होंने मन्त्रों के अर्थ ठीक-ठीक नहीं जाने थे और नहीं जान सकते थे उन लोगों को अपने उपदेश द्वारा वेदमंत्रों का अर्थ सहित ज्ञान कराते हुए चले आये, इस प्रयोजन के लिये कि जिससे उत्तरोत्तर अर्थात् पीढ़ी दर पीढ़ी आगे को भी वेदार्थ का प्रचार उन्नति के साथ बना रहे, तथा जिससे कोई मनुष्य अपने और उक्त ऋषियों के लिखे हुए व्याख्यान सुनने के लिये अपने निर्बुद्धिपन से ग्लानि को प्राप्त हो, इस बात के सहाय में उनको सुगमता से वेदार्थ का ज्ञान होने के लिये उन ऋषियों ने निघण्टु और निरुक्त आदि ग्रन्थों का उपदेश किया है, जिससे कि सब मनुष्यों को वेद और वेदाङ्गों का यथार्थ बोध हो जावे। (**पुरस्तान्मनुष्या०**) इस प्रमाण से ऋषि शब्द का अर्थ तर्क ही सिद्ध होता है। (**अविज्ञात०**) यह न्यायशास्त्र में गोतम मुनिजी ने तर्क का लक्षण कहा है, इससे यही सिद्ध होता है कि जो सिद्धान्त के जानने के लिये विचार किया जाता है उसी का नाम तर्क है। (**प्राणा०**) इन शतपथ के प्रमाणों से ऋषि शब्द करके प्राण और देव शब्द करके ऋतुओं का ग्रहण होता है। (**सः उत**) वही परमेश्वर (**इह**) इस संसार वा इस जन्म में (**देवान्**) अच्छी अच्छी इन्द्रियां विद्या आदि गुण भौतिक अग्नि और अच्छे अच्छे भोगने योग्य पदार्थों को (**आवक्षति**) प्राप्त करता है।

(अग्निः पूर्वे०) इस मन्त्र का अर्थ निरुक्तकार ने जैसा कुछ किया है सो इस मन्त्र के भाष्य में लिख दिया है ।

भावार्थः—जो मनुष्य सब विद्याओं को पढ़ के औरों को पढ़ाते हैं तथा अपने उपदेश से सब का उपकार करने वाले हैं वा हुए हैं वे पूर्व शब्द से, और जो अब पढ़ने वाले विद्या ग्रहण करने के लिए अभ्यास करते हैं, वे नूतन शब्द से ग्रहण किये जाते हैं । और वे सब पूर्ण विद्वान् शुभ गुण सहित होने पर, ऋषि कहाते हैं, क्योंकि जो मन्त्रों के अर्थों को जाने हुए धर्म और विद्या के प्रचार अपने सत्य उपदेश से सब पर कृपा करनेवाले निष्कपट पुरुषार्थी धर्म के सिद्ध होने के लिये ईश्वर की उपासना करनेवाले और कार्य्यों की सिद्धि के लिये भौतिक अग्नि के गुणों को जानकर अपने कामों को सिद्ध करनेवाले होते हैं, तथा प्राचीन और नवीन विद्वानों के तत्त्व जानने के लिये युक्ति प्रमाणों से सिद्ध तर्क और कारण वा कार्य्य जगत् में रहने वाले जो प्राण हैं, इन सब से ईश्वर और भौतिक अग्नि का अपने अपने गुणों के साथ खोज करना योग्य है । और जो सर्वज्ञ परमेश्वर ने पूर्व और वर्त्तमान अर्थात् त्रिकालस्थ ऋषियों को अपने सर्वज्ञपन से जान के इस मन्त्र में परमार्थ और व्यवहार ये दो विद्या दिखलाई हैं, इससे इसमें भूत वा भविष्य काल की बातों के कहने में कोई भी दोष नहीं आ सकता, क्योंकि वेद सर्वज्ञ परमेश्वर का वचन है । वह परमेश्वर उत्तम गुणों को तथा भौतिक अग्नि व्यवहार कार्यों में संयुक्त किया हुआ उत्तम उत्तम भोग के पदार्थों का देने वाला होता है । पुराने की अपेक्षा एक पदार्थ से दूसरा नवीन और नवीन की अपेक्षा पहिला पुराना होता है ।

देखो यही अर्थ इस मन्त्र का निरुक्तकार ने भी किया है कि - प्राकृत जन अर्थात् अज्ञानी लोगों ने जो प्रसिद्ध भौतिक अग्नि पाक बनाने आदि कार्य्यों में लिया है, वह इस मन्त्र में नहीं लेना, किन्तु सब का प्रकाश करनेहारा परमेश्वर और सब विद्याओं का हेतु जिसका नाम विद्युत् है, वही भौतिक अग्नि यहां अग्नि शब्द से लिया है ।

(अग्निः पूर्वे०) इस मन्त्र का अर्थ नवीन भाष्यकारों ने कुछ का कुछ ही कर दिया है, जैसे सायणाचार्य ने लिखा है कि (पुरातनैः०) प्राचीन भृगुअङ्गिरा आदियों और नवीन अर्थात् हम लोगों को अग्नि की स्तुति करना उचित है । वह देवों को हवि अर्थात् होम में चढ़े हुये पदार्थ उनके खाने के लिये पहुंचाता है । ऐसा ही व्याख्यान यूरोपखण्डवासी और आर्यावर्त के नवीन लोगों ने अंग्रेजी भाषा में किया है, तथा कल्पित ग्रन्थों में अब भी होता है, सो यह बड़े आश्चर्य की बात है जो ईश्वर के प्रकाशित अनादि वेद का ऐसा व्याख्यान जिसका क्षुद्र आशय और निरुक्त शतपथ आदि सत्य ग्रन्थों के विरुद्ध होवे वह सत्य कैसे हो सकता है ॥२॥

अ॒ग्निना॑ र॒यिम॑श्नव॒त् पोष॑मे॒व दि॒वेदि॑वे। य॒शसं॑ वी॒रव॑त्तमम् ॥३॥

पदार्थः—यह मनुष्य (**अग्निना एव**) अच्छी प्रकार ईश्वर की उपासना और भौतिक अग्नि ही को कलाओं में संयुक्त करने से (**दिवे दिवे**) प्रतिदिन (**पोषम्**) आत्मा और शरीर की पुष्टि करनेवाला (**यशसम्**) जो उत्तम कीर्ति का बढ़ानेवाला और (**वीरवत्तमम्**) जिसको अच्छे अच्छे विद्वान् वा शूरवीर लोग चाहा करते हैं (**रयिम्**) विद्या और सुवर्णादि उत्तम उस धन को सुगमता से (**अश्नवत्**) प्राप्त होता है ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार से दो अर्थों का ग्रहण है। ईश्वर की आज्ञा में रहने तथा शिल्पविद्यासम्बन्धि कार्य्यों की सिद्धि के लिये भौतिक अग्नि को सिद्ध करने वाले मनुष्यों को अक्षय अर्थात् जिसका कभी नाश नहीं होता, सो धन प्राप्त होता है, तथा मनुष्य लोग जिस धन से कीर्ति की वृद्धि और जिस धन को पाके वीर पुरुषों से युक्त होकर नाना सुखों से युक्त होते हैं। सबको उचित है कि इस धन को अवश्य प्राप्त करें ॥३॥

अग्ने॒ यं य॒ज्ञम॑ध्व॒रं वि॒श्वतः॑ परि॒भूरसि॑। स इद्दे॒वेषु॑ गच्छति ॥४॥

पदार्थः—(**अग्ने**) हे परमेश्वर ! आप (**विश्वतः**) सर्वत्र व्याप्त होकर (**यम्**) जिस (**अध्वरम्**) हिंसा आदि दोषरहित (**यज्ञम्**) विद्या आदि पदार्थों के दानरूप यज्ञ को (**परिभूः**) सब प्रकार से पालन करनेवाले हैं, (**स इत्**) वही यज्ञ (**देवेषु**) विद्वानों के बीच में (**गच्छति**) फैलकर जगत् को सुख प्राप्त कराता है।

तथा (**अग्ने**) जो यह भौतिक अग्नि (**विश्वतः**) पृथिव्यादि पदार्थों के साथ अनेक दोषों से अलग होकर (**यम्**) जिस (**अध्वरम्**) विनाश आदि दोषों से रहित (**यज्ञम्**) शिल्पविद्यामय यज्ञ को (**परिभूः**) सब प्रकार से सिद्ध करता है (**स इत्**) वही यज्ञ (**देवेषु**) अच्छे-अच्छे पदार्थों में (**गच्छति**) प्राप्त होकर सब को लाभकारी होता है ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जिस कारण व्यापक परमेश्वर अपनी सत्ता से उक्त यज्ञ की निरन्तर रक्षा करता है, इसी से वह अच्छे-अच्छे गुणों के देने का हेतु होता है। इसी प्रकार ईश्वर ने दिव्यगुणयुक्त अग्नि भी रचा है कि जो उत्तम शिल्पविद्या का उत्पन्न करने वाला है। उन गुणों को केवल धार्मिक उद्योगी और विद्वान् मनुष्य ही प्राप्त होने के योग्य होता है ॥ ४ ॥

अ॒ग्निर्होता॑ क॒विक्र॑तुः स॒त्यश्चि॒त्रश्र॑वस्तमः।
दे॒वो दे॒वेभि॒रा ग॑मत् ॥५॥

पदार्थान्वयभाषा—जो (**सत्यः**) अविनाशी (**देवः**) आप से आप प्रकाशमान (**कविक्रतुः**) सर्वज्ञ है, जिसने परमाणु आदि पदार्थ और उनके उत्तम उत्तम

गुण रचके दिखलाये हैं, जो सब विद्यायुक्त वेद का उपदेश करता है, और जिससे परमाणु आदि पदार्थों करके सृष्टि के उत्तम पदार्थों का दर्शन होता है, वही कवि अर्थात् सर्वज्ञ ईश्वर है। तथा भौतिक अग्नि भी स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों से कला-युक्त होकर देशदेशान्तर में गमन करानेवाला दिखलाया है। (**चित्रश्रवस्तमः**) जिसका अति आश्चर्यरूपी श्रवण है, वह परमेश्वर (**देवेभिः**) विद्वानों के साथ समागम करने से (**आगमत्**) प्राप्त होता है।

तथा जो (**सत्यः**) श्रेष्ठ विद्वानों का हित अर्थात् उनके लिये सुखरूप (**देवः**) उत्तम गुणों का प्रकाश करनेवाला (**कविक्रतुः**) सब जगत् को जानने और रचनेहारा परमात्मा और जो भौतिक अग्नि—सब पृथिवी आदि पदार्थों के साथ व्यापक और शिल्पविद्या का मुख्य हेतु (**चित्रश्रवस्तमः**) जिसको अद्भुत अर्थात् अति आश्चर्यरूप सुनते हैं, वह दिव्य गुणों के साथ (**आगमत्**) जाना जाता है ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है—सब का आधार, सर्वज्ञ, सब का रचनेवाला, विनाशरहित, अनन्त शक्तिमान् और सब का प्रकाशक आदि गुण हेतुओं के पाये जाने से अग्नि शब्द करके परमेश्वर और आकर्ष-णादि गुणों से मूर्त्तिमान् पदार्थों का धारण करनेहारादि गुणों के होने से भौतिक अग्नि का भी ग्रहण होता है। सिवाय इसके मनुष्यों को यह भी जानना उचित है कि विद्वानों के समागम और संसारी पदार्थों को उनके गुण सहित विचारने से परमदयालु, परमेश्वर अनन्त सुखदाता और भौतिक अग्नि शिल्पविद्या का सिद्ध करने वाला होता है।

सायणाचार्य्य ने 'गमत्' इस प्रयोग को लोट् लकार का माना है सो यह उनका व्याख्यान अशुद्ध है क्योंकि इस प्रयोग में (छन्दसि लुङ्०) यह सामान्यकाल वतानेवाला सूत्र वर्तमान है। ॥ ५ ॥

यद॒ङ्ग दा॒शुषे॒ त्वमग्ने॑ भ॒द्रं क॑रि॒ष्यसि॑ । तवेत्तत्स॒त्यम॑ङ्गिरः ॥६॥

पदार्थः—हे (**अङ्गिरः**) ब्रह्माण्ड के अङ्ग पृथ्वी आदि पदार्थों को प्राणरूप और शरीर के अङ्गों को अन्तर्यामीरूप से रसरूप होकर रक्षा करनेवाले होने से यहां अङ्गिरः शब्द से ईश्वर लिया है। (**अङ्ग**) हे सब के मित्र (**अग्ने**) परमेश्वर! (**यत्**) जिस हेतु से आप (**दाशुषे**) निर्लोभता से उत्तम उत्तम पदार्थों के दान करने वाले मनुष्य के लिये (**भद्रम्**) कल्याण, जो कि शिष्ट विद्वानों के योग्य है उसको, (**करिष्यसि**) करते हैं, सो यह (**तवेत्**) आपही का (**सत्यम्**) सत्य व्रत=शील है ॥ ६ ॥

भावार्थः—जो न्याय, दया, कल्याण और सब का मित्रभाव करने-वाला परमेश्वर है, उसी की उपासना करके जीव इस लोक और मोक्ष के सुख को प्राप्त होता है। क्योंकि इस प्रकार सुख देने का स्वभाव और सामर्थ्य केवल परमेश्वर का है, दूसरे का नहीं, जैसे शरीरधारी अपने शरीर

को धारण करता है वैसे ही परमेश्वर सब संसार को धारण करता है, और इसी से यह संसार की यथावत् रक्षा और स्थिति होती है ॥ ६ ॥

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भरन्त एमसि ॥७॥

पदार्थान्वयभाषा—(**अग्ने**) हे सब के उपासना करने योग्य परमेश्वर ! हम लोग (**दिवेदिवे**) अनेक प्रकार के विज्ञान होने के लिये (**धिया**) अपनी बुद्धि और कर्मों से आपकी (**भरन्तः**) उपासना को धारण और (**दोषावस्तः**) रात्रिदिन में निरन्तर (**नमः**) नमस्कार आदि करते हुए (**उपैमसि**) आपके शरण को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थः—हे सब को देखने और सब में व्याप्त होनेवाले उपासना के योग्य परमेश्वर ! हम लोग सब कामों के करने में एक क्षण भी आप को नहीं भूलते, इसी से हम लोगों को अधर्म करने में कभी इच्छा भी नहीं होती, क्योंकि जो सर्वज्ञ सब का साक्षी परमेश्वर है, वह हमारे सब कामों को देखता है, इस निश्चय से ॥ ७ ॥

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्धमानं स्वे दमे ॥८॥

पदार्थान्वयभाषा—(**स्वे**) अपने (**दमे**) उस परम आनन्द पद में कि जिसमें बड़े बड़े दुःखों से छूट कर मोक्ष सुख को प्राप्त हुए पुरुष रमण करते हैं, (**वर्धमानम्**) सब से बड़ा (**राजन्तम्**) प्रकाशस्वरूप (**अध्वराणाम्**) पूर्वोक्त यज्ञादिक अच्छे अच्छे कर्म और धार्मिक मनुष्य तथा (**गोपाम्**) पृथिव्यादिकों की रक्षा (**ऋतस्य**) सत्यविद्यायुक्त चारों वेदों और कार्य जगत् के अनादि कारण के (**दीदिविम्**) प्रकाश करने वाले परमेश्वर को हम लोग उपासना योग से प्राप्त होते हैं ॥८॥

भावार्थः—जैसे विनाश और अज्ञान आदि दोष रहित परमात्मा अपने अन्तर्यामि रूप से सब जीवों को सत्य का उपदेश तथा श्रेष्ठ विद्वान् और सब जगत् की रक्षा करता हुआ अपनी सत्ता और परम आनन्द में प्रवृत्त हो रहा है, वैसे ही परमेश्वर के उपासक भी आनन्दित, वृद्धियुक्त होकर विज्ञान में विहार करते हुए परम आनन्दरूप विशेष फलों को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥९॥

पदार्थ—हे (**सः**) उक्त गुणयुक्त (**अग्ने**) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! (**पितेव**) जैसे पिता (**सूनवे**) अपने पुत्र के लिये उत्तम ज्ञान का देने वाला होता है, वैसे ही आप (**नः**) हम लोगों के लिये (**सूपायनः**) शोभन ज्ञान जो कि सब सुखों का साधक और उत्तम पदार्थों का प्राप्त करनेवाला है, उसके देनेवाले होकर (**नः**) हम लोगों को (**स्वस्तये**) सब सुख के लिये (**सचस्व**) संयुक्त कीजिये ॥ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। सब मनुष्यों को उत्तम प्रयत्न और ईश्वर की प्रार्थना इस प्रकार से करनी चाहिए कि—हे भगवन्! जैसे पिता अपने पुत्रों को अच्छी प्रकार पालन करके और उत्तम उत्तम शिक्षा देकर उनको शुभ गुण और श्रेष्ठ कर्म करने योग्य बना देता है, वैसे ही आप हम लोगों को शुभ गुणों और शुभ कर्मों में युक्त सदैव कीजिए ॥ ९ ॥

इस प्रथम सूक्त में पहिले पांच मन्त्रों करके श्लेषालङ्कार से व्यवहार और परमार्थ की विद्याओं का प्रकाश किया, और चार मन्त्रों से ईश्वर की उपासना और स्वभाव का वर्णन किया है।

सायणाचार्य्य आदि और यूरोपदेशवासी डाक्टर विलसन आदि ने इस सूक्त भर की व्याख्या उलटी की है, सो मेरे इस भाष्य और उनकी व्याख्या को मिलाकर देखने से सब को विदित हो जायगा ॥

यह पहला सूक्त समाप्त हुआ।

मधुच्छन्दा ऋषिः। १–३ वायुः; ४–६ इन्द्रवायू; ७–९ मित्रावरुणौ च देवताः। १, २ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री; ३–५, ७–९ गायत्री; ६ निचृद्गायत्री च छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

वायवायाहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः। तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥१॥

पदार्थान्वयभाषा (**दर्शत**) हे ज्ञान से देखने योग्य (**वायो**) अनन्त बलयुक्त सब के प्राणरूप अन्तर्यामी परमेश्वर ! आप हमारे हृदय में (**आयाहि**) प्रकाशित हूजिये। कैसे आप हैं कि जिन्होंने (**इमे**) इन प्रत्यक्ष (**सोमाः**) संसारी पदार्थों को (**अरंकृताः**) अलंकृत अर्थात् सुशोभित कर रक्खा है (**तेषाम्**) आप ही उन पदार्थों के रक्षक हैं, इससे उनकी (**पाहि**) रक्षा भी कीजिये और (**हवम्**) हमारी स्तुति को (**श्रुधि**) सुनिये।

तथा (**दर्शत**) स्पर्शादि गुणों से देखने योग्य (**वायो**) सब मूर्तिमान् पदार्थों का आधार और प्राणियों के जीवन का हेतु भौतिक वायु (**आयाहि**) सब को प्राप्त होता है फिर जिस भौतिक वायु ने (**इमे**) प्रत्यक्ष (**सोमाः**) संसार के पदार्थों को (**अरंकृताः**) शोभायमान किया है, वही (**तेषाम्**) उन पदार्थों की (**पाहि**) रक्षा का हेतु है और (**हवम्**) जिससे सब प्राणी लोग कहने और सुनने रूप व्यवहार को (**श्रुधि**) कहते सुनते हैं।

आगे ईश्वर और भौतिक वायु के पक्ष में प्रमाण दिखलाते हैं—(**प्रवावृजे०**) इस प्रमाण में वायु शब्द से परमेश्वर और भौतिक वायु पुष्टिकारी और जीवों को यथायोग्य कामों में पहुंचाने वाले गुणों से ग्रहण किये गये हैं। (**अथातो०**) जो जो

पदार्थ अन्तरिक्ष में हैं उनमें प्रथमागामी वायु अर्थात् उन पदार्थों में रमण करने वाला कहाता है, तथा सब जगत् को जानने से वायु शब्द करके परमेश्वर का ग्रहण होता है। तथा मनुष्य लोग वायु से प्राणायाम करके और उनके गुणों के ज्ञानद्वारा परमेश्वर और शिल्पविद्यामय यज्ञ को जान सकता है। इस अर्थ से वायु शब्द करके ईश्वर और भौतिक का ग्रहण होता है। अथवा जो चराचर जगत् में व्याप्त हो रहा है, इस अर्थ से वायु शब्द करके परमेश्वर का तथा जो सब लोकों को परिधिरूप से घेर रहा है इस अर्थ से भौतिक का ग्रहण होता है, क्योंकि परमेश्वर अन्तर्यामिरूप और भौतिक प्राणरूप से संसार में रहनेवाले हैं। इन्हीं दो अर्थों की कहनेवाली वेद की (**वायवायाहि०**) यह ऋचा जाननी चाहिये।

इसी प्रकार से इस ऋचा का (**वायवायाहि दर्शनीये०**) इत्यादि व्याख्यान निरुक्तकार ने भी किया है, सो संस्कृत में देख लेना वहां भी वायु शब्द से परमेश्वर और भौतिक इन दोनों का ग्रहण है जैसे— (**वायुः सोमस्य०**) वायु अर्थात् परमेश्वर उत्पन्न हुए जगत् की रक्षा करने वाला और उसमें व्याप्त होकर उसके अंश अंश के साथ भर रहा है। इस अर्थ से ईश्वर का तथा सोमवल्ली आदि ओषधियों के रस हरने और समुद्रादिकों के जल को ग्रहण करने से भौतिक वायु का ग्रहण जानना चाहिये। (**वायुर्वा अ०**) इत्यादि वाक्यों में वायु को अग्नि के अर्थ में भी लिया है। परमेश्वर का उपदेश है कि मैं वायुरूप होकर इस जगत् को आप ही प्रकाश करता हूँ, तथा मैं अन्तरिक्ष लोक में भौतिक वायु को अग्नि के तुल्य परिपूर्ण और यज्ञादिकों को वायुमण्डल में पहुँचाने वाला हूँ ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जैसे परमेश्वर के सामर्थ्य से रचे हुए पदार्थ नित्य ही सुशोभित होते हैं; वैसे ही जो ईश्वर का रचा हुआ भौतिक वायु है, उसकी धारणा से भी सब पदार्थों की रक्षा और शोभा तथा जैसे जीव की प्रेमभक्ति से की हुई स्तुति को सर्वगत ईश्वर प्रतिक्षण सुनता है, वैसे ही भौतिक वायु के निमित्त से भी जीव शब्दों के उच्चारण और श्रवण करने को समर्थ होता है ॥ १ ॥

वायं उक्थेभिर्जरन्ते त्वामच्छा जरितारः । सुतसोमा अहर्विदः ॥२॥

पदार्थ—(**वायो**) हे अनन्त बलवान् ईश्वर ! जो जो (**अहर्विदः**) विज्ञानरूप प्रकाश को प्राप्त होने (**सुतसोमाः**) ओषधि आदि पदार्थों के रस को उत्पन्न करने (**जरितारः**) स्तुति और सत्कार के करने वाले विद्वान् लोग हैं, वे (**उक्थेभिः**) वेदोक्त स्तोत्रों से (**त्वाम्**) आपको (**अच्छ**) साक्षात् करने के लिये (**जरन्ते**) स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थः—यहां श्लेषालङ्कार है। इस मन्त्र से जो वेदादि शास्त्रों में कहे हुए स्तुतियों के निमित्त स्तोत्र हैं, उनसे व्यवहार और परमार्थ विद्या की सिद्धि के लिए परमेश्वर और भौतिक वायु के गुणों का प्रकाश किया गया है।

इस मन्त्र में वायु शब्द से परमेश्वर और भौतिक वायु के ग्रहण करने के लिये पहिले मन्त्र में कहे हुए प्रमाण ग्रहण करने चाहियें ॥२॥

वायो तव॑ प्रपृञ्च॒ती धेना॑ जिगाति दा॒शुषे॑ । उ॒रू॒ची सोम॑पीतये ॥३॥

पदार्थ—(**वायो**) हे वेदविद्या के प्रकाश करनेवाले परमेश्वर ! (**तव**) आपकी (**प्रपृञ्चती**) सब विद्याओं के संबन्ध से विज्ञान का प्रकाश कराने और (**उरूची**) अनेक विद्याओं के प्रयोजनों को प्राप्त कराने हारी (**धेना**) चार वेदों की वाणी है सो (**सोमपीतये**) जानने योग्य संसारी पदार्थों के निरन्तर विचार करने तथा (**दाशुषे**) निष्कपटता से प्रीति के साथ विद्या देनेवाले पुरुषार्थी विद्वान् को (**जिगाति**) प्राप्त होती है ।

दूसरा अर्थ—(**वायो तव**) इस भौतिक वायु के योग से जो (**प्रपृञ्चती**) शब्दोच्चारण श्रवण कराने और (**उरूची**) अनेक पदार्थों की जनाने वाली (**धेना**) वाणी है, सो (**सोमपीतये**) संसारी पदार्थों के पान करने योग्य रस को पीने वा (**दाशुषे**) शब्दोच्चारण श्रवण करने वाले पुरुषार्थी विदान् को (**जिगाति**) प्राप्त होती है ॥ ३ ॥

भावार्थ—यहां भी श्लेषालङ्कार है । दूसरे मन्त्र में जिस वेदवाणी से परमेश्वर और भौतिक वायु के गुण प्रकाश किये हैं, उसका फल और प्राप्ति इस मन्त्र में प्रकाशित की है । अर्थात् प्रथम अर्थ से वेदविद्या और दूसरे से जीवों की वाणी का फल और उसकी प्राप्ति का निमित्त प्रकाश किया है ॥ ३ ॥

इन्द्र॑वायू इ॒मे सु॒ता उप॒ प्रयो॑भि॒रा ग॑तम् । इन्द॑वो वामु॒शन्ति॒ हि ॥४॥

पदार्थ—(**इमे सुताः**) जैसे प्रत्यक्ष जलक्रियामय यज्ञ और प्राप्त होने योग्य भोग (**इन्द्रवायू**) सूर्य्य और पवन के योग से प्रकाशित होते हैं । यहां 'इन्द्र' शब्द के लिये ऋग्वेद के मन्त्र का प्रमाण दिखलाते हैं—(**इन्द्रेण०**) सूर्य्यलोक ने अपनी प्रकाशमान किरण तथा पृथिवी आदि लोक अपने आकर्षण अर्थात् पदार्थ खेंचने के सामर्थ्य से पुष्टता के साथ स्थिर करके धारण किये हैं कि जिससे वे 'न पराणुदे' अपने अपने भ्रमणचक्र अर्थात् घूमने के मार्ग को छोड़कर इधर उधर हटके नहीं जा सकते हैं ।

(**इमे चिदिन्द्र०**) सूर्य्य भूमि आदि लोकों को प्रकाश के धारण करने के हेतु से उनका रोकनेवाला है, अर्थात् वह अपनी खेंचने की शक्ति से पृथिवी के किनारे और मेघ के जल के सोत को रोक रहा है । जैसे आकाश के बीच में फेंका हुआ मिट्टी का ढेला पृथिवी की आकर्षण शक्ति से पृथिवी ही पर लौटकर आ पड़ता है, इसी प्रकार दूर भी ठहरे हुए पृथिवी आदि लोकों को सूर्य्य ही ने आकर्षण शक्ति की खैंच से धारण कर रक्खे हैं । इससे यही सूर्य्य बड़ा भारी आकर्षण प्रकाश और

वर्षा का निमित्त है। (इन्द्रः०) यही सूर्य्य भूमि आदि लोकों में ठहरे हुए रस और मेघ को भेदन करनेवाला है। भौतिक वायु के विषय में 'वायवायाहि०' इस मन्त्र की व्याख्या में जो प्रमाण कहे हैं, वे यहां भी जानना चाहिये।

अथवा जिस प्रकार सूर्य्य और पवन संसार के पदार्थों को प्राप्त होते हैं, वैसे उनके साथ इन निमित्तों करके सब प्राणी अन्न आदि तृप्ति करनेवाले पदार्थों के सुखों की कामना कर रहे हैं। (इन्दवः) जो जलक्रियामय यज्ञ और प्राप्त होने योग्य भोग हैं, वे (हि) जिस कारण से पूर्वोक्त सूर्य्य और पवन के संयोग से (उशन्ति) प्रकाशित होते हैं, इसी कारण (प्रयोभिः) अन्नादि पदार्थों के योग से सब प्राणियों को सुख प्राप्त होता है॥ ४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमेश्वर ने, प्राप्त होने योग्य और प्राप्त करानेवाला—इन दो पदार्थों का प्रकाश किया है॥ ४॥

वायुविन्द्रश्च चेतथः सुतानां वाजिनीवसू। तावा यातमुप द्रवत्॥५॥

पदार्थ—हे (वायो) ज्ञानस्वरूप ईश्वर! आपके धारण किये हुए (वाजिनीवसू) प्रातःकाल के तुल्य प्रकाशमान (इन्द्रश्च) पूर्वोक्त सूर्य्यलोक और वायु (सुतानाम्) आपके उत्पन्न किये हुए पदार्थों का (चेतथः) धारण और प्रकाश करके उनको जीवों के दृष्टिगोचर करते हैं, इसी कारण वे (द्रवत्) शीघ्रता से (आयातमुप) उन पदार्थों के समीप होते रहते हैं॥ ५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमेश्वर की सत्ता के अवलम्ब से उक्त इन्द्र और वायु अपने-अपने कार्य्य करने को समर्थ होते हैं, यह वर्णन किया है॥ ५॥

वायुविन्द्रश्च सुन्वत आ यातमुप निष्कृतम्।
मक्ष्वि१त्था धिया नरा॥६॥

पदार्थः—(वायो) हे सब के अन्तर्य्यामी ईश्वर! जैसे आपके धारण किये हुए (नरा) संसार के सब पदार्थों को प्राप्त करानेवाले (इन्द्रश्च) अन्तरिक्ष में स्थित सूर्य्य का प्रकाश और पवन हैं, वैसे ये—'इन्द्रिय०' इस व्याकरण के सूत्र कर के इन्द्र शब्द से जीव का, और 'प्राणो०' इस प्रमाण से वायु शब्द करके प्राण का ग्रहण होता है—(मक्षु) शीघ्र गमन से (इत्था) धारण पालन वृद्धि और क्षय हेतु से सोम आदि सब ओषधियों के रस को (सुन्वतः) उत्पन्न करते हैं, उसी प्रकार (नरा) शरीर में रहनेवाले जीव और प्राणवायु उस शरीर में सब धातुओं के रस को उत्पन्न करके (इत्था) धारण पालन वृद्धि और क्षय हेतुसे (मक्षु) सब अङ्गों को शीघ्र प्राप्त होकर (धिया) धारण करनेवाली बुद्धि और कर्मों से (निष्कृतम्) कर्मों के फलों को (आयातमुप) प्राप्त होते हैं॥ ६॥

भावार्थ—ब्रह्माण्डस्थ सूर्य्य और वायु सब संसारी पदार्थों को बाहर

से तथा जीव और प्राण शरीर के भीतर के अङ्ग आदि को सब प्रकार प्रकाश और पुष्ट करने वाले हैं, परन्तु ईश्वर के आधार की अपेक्षा सब स्थानों में रहती है ॥ ६ ॥

मि॒त्रं हु॑वे पू॒तद॑क्षं॒ वरु॑णं च रि॒शाद॑सम्। धियं॑ घृ॒ताचीं॒ साध॑न्ता ॥७॥

पदार्थ—मैं विद्या का चाहने (**पूतदक्षम्**) पवित्र बल सब सुखों के देने वा (**मित्रम्**) ब्रह्माण्ड और शरीर में रहनेवाले सूर्य्य—'मित्रो०' इस ऋग्वेद के प्रमाण से मित्र शब्द करके सूर्य्य का ग्रहण है—तथा (**रिशादसम्**) रोग और शत्रुओं के नाश करने वा (**वरुणं च**) शरीर के बाहर और भीतर रहनेवाले प्राण और अपानरूप वायु को (**हुवे**) प्राप्त होऊं, अर्थात् बाहर और भीतर के पदार्थ जिस जिस विद्या के लिये रचे गये हैं, उन सबों का उस उस के लिये उपयोग करूं ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। जैसे समुद्र आदि जल-स्थलों से सूर्य्य के आकर्षण से वायु द्वारा जल आकाश में उड़कर वर्षा होने से सब की वृद्धि और रक्षा होती है, वैसे ही प्राण और अपान आदि ही से शरीर की रक्षा और वृद्धि होती है। इसलिए मनुष्यों को प्राण अपान आदि वायु के निमित्त से व्यवहार विद्या की सिद्धि करके सबके साथ उपकार करना उचित है। ॥ ७ ॥

ऋ॒तेन॑ मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा। क्रतुं॑ बृ॒हन्त॑माशाथे ॥८॥

पदार्थ—(**ऋतेन**) सत्यस्वरूप ब्रह्म के नियम में बन्धे हुए (**ऋतावृधौ**) ब्रह्मज्ञान बढ़ाने, जल के खींचने और वर्षाने (**ऋतस्पृशा**) ब्रह्म की प्राप्ति कराने में निमित्त तथा उचित समय पर जलवृष्टि के करनेवाले (**मित्रावरुणौ**) पूर्वोक्त मित्र और वरुण (**बृहन्तम्**) अनेक प्रकार के (**क्रतुम्**) जगत्‌रूप यज्ञ को (**आशाथे**) व्याप्त होते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—परमेश्वर के आश्रय से उक्त मित्र और वरुण ब्रह्मज्ञान के निमित्त, जल वर्षानेवाले सब मूर्तिमान् वा अमूर्तिमान् जगत् को व्याप्त होकर उसकी वृद्धि विनाश और व्यवहारों की सिद्धि करने में हेतु होते हैं ॥ ८ ॥

क॒वी नो॑ मि॒त्रावरु॑णा तुविजा॒ता उ॑रु॒क्षया॑। दक्षं॑ दधाते अ॒पस॑म् ॥९॥

पदार्थ—(**तुविजातौ**) जो बहुत कारणों से उत्पन्न और बहुतों में प्रसिद्ध (**उरुक्षया**) संसार के बहुत से पदार्थों में रहनेवाले (**कवी**) दर्शनादि व्यवहार के हेतु (**मित्रावरुणा**) पूर्वोक्त मित्र और वरुण हैं, वे (**नः**) हमारे (**दक्षम्**) बल तथा (**अपसम्**) सुख वा दुःखयुक्त कर्मों को (**दधाते**) धारण करते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो ब्रह्माण्ड में रहनेवाले बल और कर्म के निमित्त पूर्वोक्त मित्र और वरुण हैं, उनसे क्रिया और विद्याओं की पुष्टि तथा धारणा होती है ॥ ९ ॥

जो प्रथम सूक्त में अग्निशब्दार्थ का कथन किया है, उसके सहायकारी वायु, इन्द्र, मित्र और वरुण के प्रतिपादन करने से प्रथम सूक्तार्थ के साथ इस दूसरे सूक्तार्थ की सङ्गति समझ लेनी।

इस सूक्त का अर्थ सायणाचार्य्यादि और विलसन आदि यूरोपदेशवासी लोगों ने अन्यथा कथन किया है ॥

यह दूसरा सूक्त समाप्त हुआ ॥

मधुच्छन्दा ऋषिः। १—३ अश्विनौ; ४—६—इन्द्रः; ७—९ विश्वेदेवाः; १०—१२ सरस्वती देवताः। १, ३, ५—१०, १२ गायत्री; २ निचृद्गायत्री; ४, ११ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री च छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अश्विना यज्वरीरिषो द्रवत्पाणी शुभस्पती । पुरुभुजा चनस्यतम् ॥१॥

पदार्थः—हे विद्या के चाहनेवाले मनुष्यो! तुम लोग (**द्रवत्पाणी**) शीघ्र वेग का निमित्त पदार्थविद्या के व्यवहारसिद्धि करने में उत्तम हेतु (**शुभस्पती**) शुभ गुणों के प्रकाश को पालने और (**पुरुभुजा**) अनेक खाने पीने के पदार्थों के देने में उत्तम हेतु (**अश्विना**) अर्थात् जल और अग्नि तथा (**यज्वरीः**) शिल्पविद्या का सम्बन्ध करानेवाली (**इषः**) अपनी चाही हुई अन्न आदि पदार्थों की देनेवाली कारीगरी की क्रियाओं को (**चनस्यतम्**) अन्न के समान अति प्रीति से सेवन किया करो।

अब 'अश्विनौ' शब्द के विषय में निरुक्त आदि के प्रमाण दिखलाते हैं—हम लोग अच्छी अच्छी सवारियों को सिद्ध करने के लिये (**अश्विना**) पूर्वोक्त जल और अग्नि को कि जिनके गुणों से अनेक सवारियों की सिद्धि होती है, तथा (**देवौ**) जो कि शिल्पविद्या में अच्छे अच्छे गुणों के प्रकाशक और सूर्य्य के प्रकाश से अन्तरिक्ष में विमान आदि सवारियों से मनुष्यों को पहुँचानेवाले होते हैं, (**ता**) उन दोनों को शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये ग्रहण करते हैं। मनुष्य लोग जहां जहां साधे हुए अग्नि और जल के सम्बन्धयुक्त रथों से जाते हैं, वहां सोमविद्यावाले विद्वानों का विद्या-प्रकाश निकट ही है।

(**अथा०**) इस निरुक्त में जो कि द्युस्थान शब्द है, उससे प्रकाश में रहने-वाले और प्रकाश से युक्त सूर्य्य अग्नि जल और पृथिवी आदि पदार्थ ग्रहण किये जाते हैं। उन पदार्थों में दो दो के योग को 'अश्वि' कहते हैं, वे सब पदार्थों में प्राप्त होने-वाले हैं, उनमें से यहां अश्वि शब्द करके अग्नि और जल का ग्रहण करना ठीक है क्योंकि जल अपने वेगादि गुण और रस से तथा अग्नि अपने प्रकाश और वेगादि अश्वों से सब जगत् को व्याप्त होता है। इसी से अग्नि और जल का अश्वि नाम

है। इसी प्रकार अपने अपने गुणों से पृथिवी आदि भी दो दो पदार्थ मिलकर अश्वि कहाते हैं।

जबकि पूर्वोक्त अश्वि धारण और हनन करने के लिये शिल्पविद्या के व्यवहारों अर्थात् कारीगरियों के निमित्त विमान आदि सवारियों में जोड़े जाते हैं, तब सब कलाओं के साथ उन सवारियों के धारण करनेवाले, तथा जब उक्त कलाओं से ताड़ित अर्थात् चलाये जाते हैं, तब अपने चलने से उन सवारियों को चलाने वाले होते हैं, उन अश्वियों को 'तुर्फरी' भी कहते हैं, क्योंकि तुर्फरी शब्द के अर्थ से वे सवारियों में वेगादि गुणों के देनेवाले समझे जाते हैं। इस प्रकार वे अश्वि कलाधरों में संयुक्त किये हुए जल से परिपूर्ण देखने योग्य महासागर हैं। उनमें अच्छी प्रकार जाने आने वाली नौका अर्थात् जहाज आदि सवारियों में जो मनुष्य स्थित होते हैं, उनके जाने आने के लिये होते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में ईश्वर ने शिल्पविद्या को सिद्ध करने का उपदेश किया है, जिससे मनुष्य लोग कलायुक्त सवारियों को बनाकर ससार में अपने तथा अन्य लोगों के उपकार से सब सुख पावें ॥ १ ॥

अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया धिया । धिष्ण्या वनतं गिरः ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! तुम लोग (**पुरुदंससा**) जिनसे शिल्पविद्या के लिये अनेक कर्म सिद्ध होते हैं (**धिष्ण्या**) जो कि सवारियों में वेगादिकों की तीव्रता के उत्पन्न करने [में] प्रबल (**नरा**) उस विद्या के फल को देनेवाले और (**शवीरया**) वेग देनेवाली (**धिया**) क्रिया से कारीगरी में युक्त करने योग्य अग्नि और जल हैं, वे (**गिरः**) शिल्पविद्या (**के**) गुणों की बतानेवाली वाणियों को (**वनतम्**) सेवन करनेवाले हैं इसलिये इनसे अच्छी प्रकार उपकार लेते रहो ॥ २ ॥

भावार्थ—यहां भी अग्नि और जल के गुणों को प्रत्यक्ष दिखाने के लिए मध्यम पुरुष का प्रयोग है। इस से सब कारीगरों को चाहिए कि तीव्र वेग देनेवाली कारीगरी और अपने पुरुषार्थ से शिल्पविद्या की सिद्धि के लिए उक्त अश्वियों की अच्छी प्रकार से योजना करें। जो शिल्पविद्या को सिद्ध करने की इच्छा करते हैं, उन पुरुषों को चाहिए कि विद्या और हस्तक्रिया से उक्त अश्वियों को प्रसिद्ध कर के उनसे उपयोग लेवें।

सायणाचार्य्य आदि तथा विलसन आदि साहबों ने मध्यम पुरुष के विषय में निरुक्तकार के कहे हुए विशेष अभिप्राय को न जानकर इस मन्त्र के अर्थ का अन्यथा वर्णन किया है ॥ २ ॥

दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः । आ यातं रुद्रवर्त्तनी ॥३॥

पदार्थ—हे (**युवाकवः**) एक दूसरी से मिली वा पृथक् क्रियाओं को सिद्ध करने (**सुताः**) पदार्थविद्या के सार को सिद्ध करके प्रकट करने (**वृक्तबर्हिषः**)

उसके फल को दिखलानेवाले विद्वान् लोगो ! (रुद्रवर्त्तनी) जिनका प्राणमार्ग है, वे (दस्रा) दुःखों के नाश करनेवाले (नासत्या) जिनमें एक भी गुण मिथ्या नहीं (आयातम्) जो अनेक प्रकार के व्यवहारों को प्राप्त करानेवाले हैं, उन पूर्वोक्त अश्वियों को जब विद्या से उपकार में ले आओगे उस समय तुम उत्तम सुखों को प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

भावार्थः—परमेश्वर मनुष्यों को उपदेश करता है कि हे मनुष्य लोगो ! तुमको सब सुखों की सिद्धि से दुःखों के विनाश के लिये शिल्पविद्या में अग्नि और जल का यथावत् उपयोग करना चाहिये ॥ ३ ॥

इन्द्रायाहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः ।
अण्वीभिस्तना पूतासः ॥४॥

पदार्थ—(**चित्रभानो**) हे आश्चर्य्यप्रकाशयुक्त (**इन्द्र**) परमेश्वर ! आप हमको कृपा करके प्राप्त हूजिये । कैसे आप हैं कि जिन्होंने (**अण्वीभिः**) कारणों के भागों से (**तना**) सब संसार में विस्तृत (**पूतासः**) पवित्र और (**त्वायवः**) आपके उत्पन्न किये हुए व्यवहारों से युक्त (**सुताः**) उत्पन्न हुए मूर्तिमान पदार्थ उत्पन्न किये हैं, हम लोग जिनसे उपकार लेनेवाले होते हैं, इससे हम लोग आप ही के शरणागत हैं ।

दूसरा अर्थ—जो सूर्य्य अपने गुणों से सब पदार्थों को प्राप्त होता है, वह (**अण्वीभिः**) अपनी किरणों से (**तना**) संसार में विस्तृत (**त्वायवः**) उसके निमित्त से जीनेवाले (**पूतासः**) पवित्र (**सुताः**) संसार के पदार्थ हैं, वही इन उनको प्रकाशयुक्त करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—यहां श्लेषालङ्कार समझना । जो जो इस मन्त्र में परमेश्वर और सूर्य्य के गुण और कर्म प्रकाशित किये गये हैं, इनसे परमार्थ और व्यवहार की सिद्धि के लिए अच्छी प्रकार उपयोग लेना सब मनुष्यों को योग्य है ॥ ४ ॥

इन्द्रायाहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः ॥५॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे परमेश्वर ! (**धिया**) निरन्तर ज्ञानयुक्त बुद्धि वा उत्तम कर्म से (**इषितः**) प्राप्त होने और (**विप्रजूतः**) बुद्धिमान् विद्वान् लोगों के जानने योग्य आप (**ब्रह्माणि**) ब्राह्मण अर्थात् जिन्होंने वेदों का अर्थ और (**सुतावतः**) विद्या के पदार्थ जाने हों, तथा (**वाघतः**) जो यज्ञविद्या के अनुष्ठान से सुख उत्पन्न करनेवाले हों, इन सबों को कृपा से (**उपायाहि**) प्राप्त हूजिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को उचित है कि जो सब कार्य्यजगत् की उत्पत्ति करने में आदिकारण परमेश्वर है, उसको शुद्ध बुद्धि विज्ञान से साक्षात् करना चाहिये ॥ ५ ॥

इन्द्रायांहि तूतुंजान उप ब्रह्मांणि हरिवः । सुते दंधिष्व नश्चनः ॥६॥

पदार्थ—(हरिवः) जो वेगादिगुणयुक्त (तूतुजानः) शीघ्र चलनेवाला (इन्द्र) भौतिक वायु है, वह (सुते) प्रत्यक्ष उत्पन्न वाणी के व्यवहार में (नः) हमारे लिये (ब्रह्माणि) वेद के स्तोत्रों को (आयाहि) अच्छी प्रकार प्राप्त करता है, तथा वह (नः) हम लोगों के (चनः) अन्नादि व्यवहार को (दधिष्व) धारण करता है ॥ ६ ॥

भावार्थ:—जो शरीरस्थ प्राण है वह सब क्रिया का निमित्त होकर खाना पीना पकाना ग्रहण करना और त्यागना आदि क्रियाओं से कर्म का कराने तथा शरीर में रुधिर आदि धातुओं के विभागों को जगह जगह में पहुंचाने वाला है, क्योंकि वही शरीर आदि की पुष्टि और नाश का हेतु है ॥ ६ ॥

ओमांसश्चर्षणीधृतो विश्वें देवास आ गंत ।
दाश्वांसों दाशुषः सुतम् ॥७॥

पदार्थ—(ओमासः) जो अपने गुणों से संसार के जीवों की रक्षा करने, ज्ञान से परिपूर्ण, विद्या और उपदेश में प्रीति रखने, विज्ञान से तृप्त, यथार्थ निश्चय-युक्त, शुभ गुणों को देने और सब विद्याओं को सुनाने, परमेश्वर के जानने के लिये पुरुषार्थी, श्रेष्ठ विद्या के गुणों की इच्छा से दुष्ट गुणों के नाश करने, अत्यन्त ज्ञान-वान् (चर्षणीधृतः) सत्य उपदेश से मनुष्यों के सुख के धारण करने और कराने (दाश्वांसः) अपने शुभ गुणों से सब को निर्भय करनेहारे (विश्वेदेवासः) सब विद्वान् लोग हैं, वे (दाशुषः) सज्जन मनुष्यों के सामने (सुतम्) सोम आदि पदार्थ और विज्ञान का प्रकाश (आ गत) नित्य करते रहैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—ईश्वर विद्वानों को आज्ञा देता है कि—तुम लोग एक जगह पाठशाला में अथवा इधर उधर देशदेशान्तरों में भ्रमते हुए अज्ञानी पुरुषों को विद्यारूपी ज्ञान देके विद्वान् किया करो, कि जिससे सब मनुष्य लोग विद्या धर्म और श्रेष्ठ शिक्षायुक्त होके अच्छे अच्छे कर्मों से युक्त होकर सदा सुखी रहैं ॥ ७ ॥

विश्वें देवासों अप्तुरः सुतमागंत तूर्णयः । उस्रा इंव स्वसंराणि ॥८॥

पदार्थ—हे (अप्तुरः) मनुष्यों को शरीर और विद्या आदि का बल देने और (तूर्णयः) उस विद्या आदि के प्रकाश करने में शीघ्रता करनेवाले (विश्वे देवासः) सब विद्वान् लोगो ! जैसे (स्वसराणि) दिनों को प्रकाश करने के लिये (उस्रा इव) सूर्य्य की किरण आती जाती हैं, वैसे ही तुम भी मनुष्यों के समीप (सुतम्) कर्म उपासना और ज्ञान को प्रकाश करने के लिये (आगंत) नित्य आया जाया करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। ईश्वर ने जो आज्ञा दी है इसको सब विद्वान् निश्चय करके जान लेवें कि विद्या आदि शुभ गुणों के प्रकाश करने में किसी को कभी थोड़ा भी विलम्ब वा आलस्य करना योग्य नहीं है। जैसे दिन की निकासी में सूर्य्य सब मूर्त्तिमान् पदार्थों का प्रकाश करता है, वैसे ही विद्वान् लोगों को भी विद्या के विषयों का प्रकाश सदा करना चाहिये ॥ ८ ॥

विश्वे देवासो अस्रिध एहिमायासो अद्रुहः। मेधं जुषन्त वह्नयः ॥९॥

पदार्थ—(एहिमायासः) हे क्रिया में बुद्धि रखनेवाले (अस्रिधः) दृढ़ ज्ञान से परिपूर्ण (अद्रुहः) द्रोहरहित (वह्नयः) संसार को सुख पहुँचाने वाले (विश्वे) सब (देवासः) विद्वान् लोगो ! तुम (मेधम्) ज्ञान और क्रिया से सिद्ध करने योग्य यज्ञ को (जुषन्त)प्रीतिपूर्वक यथावत् सेवन किया करो ॥ ९ ॥

भावार्थः—ईश्वर आज्ञा देता है कि—हे विद्वान् लोगो ! तुम दूसरे के विनाश और द्रोह से रहित तथा अच्छी विद्या से क्रियावाले होकर सब मनुष्यों को सदा विद्या से सुख देते रहो ॥ ९ ॥

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती।
यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥१०॥

पदार्थ—(वाजेभिः) जो सब विद्या की प्राप्ति के निमित्त अन्न आदि पदार्थ हैं, और जो उनके साथ (वाजिनीवती) विद्या से सिद्ध की हुई क्रियाओं से युक्त (धियावसुः) शुद्ध कर्म के साथ वास देने और (पावका) पवित्र करनेवाले व्यवहारों को चितानेवाली (सरस्वती) जिसमें प्रशंसा योग्य ज्ञान आदि गुण हों ऐसी उत्तम सब विद्याओं की देनेवाली वाणी है, वह हम लोगों के (यज्ञम्) शिल्प-विद्या के महिमा और कर्मरूप यज्ञ को (वष्टु) प्रकाश करनेवाली हो ॥ १० ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिये कि वे ईश्वर की प्रार्थना और अपने पुरुषार्थ से सत्य विद्या और सत्य वचनयुक्त कामों में कुशल और सब के उपकार करनेवाली वाणी को प्राप्त रहें, यह ईश्वर का उपदेश है ॥ १० ॥

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्। यज्ञं दधे सरस्वती ॥११॥

पदार्थ—(सूनृतानाम्) जो मिथ्या वचन के नाश करने, सत्य वचन और सत्य कर्म को सदा सेवन करने (सुमतीनाम्) अत्यन्त उत्तम बुद्धि और विद्यावाले विद्वानों की (चेतन्ती) समझने तथा (चोदयित्री) शुभ गुणों को ग्रहण करानेहारी (सरस्वती) वाणी है, वही सब मनुष्यों के शुभ गुणों के प्रकाश करानेवाले यज्ञ आदि कर्म धारण करनेवाली होती है ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो आप्त अर्थात् पूर्ण विद्यायुक्त और छल आदि दोष-

रहित विद्वान् मनुष्यों की सत्य उपदेश करानेवाली यथार्थवाणी है, वही सब मनुष्यों के सत्य ज्ञान होने के लिये योग्य होती है, अविद्वानों की नहीं ॥ ११ ॥

म॒हो अर्णः॒ सर॑स्वती॒ प्र चे॑तयति के॒तुना॑ ।
धियो॒ विश्वा॒ वि रा॑जति ॥१२॥

पदार्थ—जो (**सरस्वती**) वाणी (**केतुना**) शुभ कर्म अथवा श्रेष्ठ बुद्धि से (**महः**) अगाध (**अर्णः**) शब्दरूपी समुद्र को (**प्रचेतयति**) जनानेवाली है, वही मनुष्यों की (**विश्वाः धियः**) सब बुद्धियों को (**विराजति**) विशेष करके प्रकाश करती है ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकोपमेयलुप्तोपमालङ्कार दिखलाया है। जैसे वायु से तरङ्गयुक्त, और सूर्य्य से प्रकाशित समुद्र अपने रत्न और तरङ्गों से युक्त होने के कारण बहुत उत्तम व्यवहार और रत्नादि की प्राप्ति में बड़ा भारी माना जाता है, वैसे ही जो आकाश और वेद का अनेक विद्यादि गुणवाला शब्दरूपी महासागर [उस] को प्रकाश करानेवाली वेदवाणी और विद्वानों का उपदेश है, वही साधारण मनुष्यों की यथार्थ बुद्धि का बढ़ानेवाला होता है ॥ १२ ॥

और जो दूसरे सूक्त की विद्या का प्रकाश करके क्रियाओं का हेतु अश्विशब्द का अर्थ और उसके सिद्ध करनेवाले विद्वानों का लक्षण तथा विद्वान् होने का हेतु सरस्वती शब्द से सब विद्याप्राप्ति का निमित्त वाणी के प्रकाश करने से जान लेना चाहिये कि दूसरे सूक्त के अर्थ के साथ तीसरे सूक्त के अर्थ की सङ्गति है।

इस सूक्त का अर्थ सायणाचार्य्यआदि नवीन पण्डितों ने (बुरी) प्रकार से वर्णन किया है। उनके व्याख्यानों में पहिले सायणाचार्य्य का भ्रम दिखलाते हैं। उन्होंने सरस्वती शब्द के दो अर्थ माने हैं। एक अर्थ से देहवाली देवतारूप और दूसरे से नदीरूप सरस्वती मानी है। तथा उन्होंने यह भी कहा है कि इस सूक्त में पहिले दो मन्त्र से शरीरवाली देवरूप सरस्वती का प्रतिपादन किया है, और अब इस मन्त्र से नदीरूप सरस्वती का वर्णन करते हैं। जैसे यह अर्थ उन्होंने अपनी कपोल-कल्पना से विपरीत लिखा है, इसी प्रकार अध्यापक विल्सन की व्यर्थ कल्पना जाननी चाहिये। क्योंकि जो मनुष्य विद्या के बिना किसी ग्रंथ की व्याख्या करने को प्रवृत्त होते हैं, उनकी प्रवृत्ति अन्धों के समान होती है ॥

यह तीसरा सूक्त समाप्त हुआ ॥

मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, २, ४-६ गायत्री, ३ विराड्गायत्री;
१० निचृद्गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि ॥१॥

पदार्थ—(इव) जैसे दूध की इच्छा करनेवाला मनुष्य (गोदुहे) दूध दोहने के लिये (सुदुघाम्) सुलभ दुहानेवाली गौओं का दोहके अपनी कामनाओं को पूर्ण कर लेता है, वैसे हम लोग (द्यविद्यवि) सब दिन, अपने निकट स्थित मनुष्यों को (ऊतये) विद्या की प्राप्ति के लिये (सुरूपकृत्नुम्) परमेश्वर जो कि अपने प्रकाश से सब पदार्थों को उत्तम रूपयुक्त करनेवाला है उसकी (जुहूमसि) स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे मनुष्य गाय के दूध को प्राप्त होके अपने प्रयोजन को सिद्ध करते हैं, वैसे ही विद्वान् धार्मिक पुरुष भी परमेश्वर की उपासना से श्रेष्ठ विद्या आदि गुणों को प्राप्त होकर अपने अपने कार्य्यों को पूर्ण करते हैं ॥ १ ॥

उप नः सवनागहि सोमस्य सोमपाः पिब । गोदा इद्रेवतो मदः ॥२॥

पदार्थान्वयभाषा—(सोमपाः) जो सब पदार्थों का रक्षक और (गोदाः) नेत्र के व्यवहार को देनेवाला सूर्य्य अपने प्रकाश से (सोमस्य) उत्पन्न हुए कार्य्यरूप जगत् में (सवना) ऐश्वर्य्ययुक्त पदार्थों के प्रकाश करने को अपनी किरण द्वारा सन्मुख (आगहि) आता है, इसी से यह (नः) हम लोगों तथा (रेवतः) पुरुषार्थ से अच्छे अच्छे पदार्थों को प्राप्त होनेवाले पुरुषों को (मदः) आनन्द बढ़ाता है ॥ २ ॥

भावार्थ—जिस प्रकार सब जीव सूर्य्य के प्रकाश में अपने अपने कर्म करने को प्रवृत्त होते हैं, उस प्रकार रात्रि में सुख से नहीं हो सकते ॥ २ ॥

अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् ।
मा नो अति ख्य आगहि ॥३॥

पदार्थ— हे परम ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर ! (ते) आपके (अन्तमानाम्) निकट अर्थात् आपको जानकर आपके समीप तथा आपकी आज्ञा में रहनेवाले विद्वान् लोग, जिन्हों की (सुमतीनाम्) वेदादिशास्त्र परोपकार और धर्माचरण करने में श्रेष्ठ बुद्धि हो रही है, उनके समागम से हम लोग (विद्याम) आपको जान सकते हैं और आप (नः) हमको (आगहि) प्राप्त अर्थात् हमारे आत्माओं में प्रकाशित हूजिये, और (अथ) इसके अनन्तर कृपा करके अन्तर्यामिरूप से हमारे आत्माओं में स्थित हुए (मातिख्यः) सत्य उपदेश को मत रोकिये किन्तु उसकी प्रेरणा सदा किया कीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—जब मनुष्य लोग इन धार्मिक श्रेष्ठ विद्वानों के समागम से शिक्षा और विद्या को प्राप्त होते हैं, तभी पृथिवी से लेकर परमेश्वर पर्य्यन्त पदार्थों के ज्ञान द्वारा नाना प्रकार से सुखी होके फिर से अन्तर्यामी ईश्वर के उपदेश को छोड़कर कभी इधर उधर नहीं भ्रमते ॥ ३ ॥

परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम् ।
यस्ते सखिभ्य आ वरम् ॥४॥

पदार्थ—हे विद्या की अपेक्षा करनेवाले मनुष्य लोगों ! जो विद्वान् तुझ और (ते) तेरे (सखिभ्यः) मित्रों के लिये (आवरम्) श्रेष्ठ विज्ञान को देता हो, उस (विप्रम्) जो श्रेष्ठ बुद्धिमान् (अस्तृतम्) हिंसा आदि अधर्मरहित (इन्द्रम्) विद्या परमैश्वर्ययुक्त (विपश्चितम्) यथार्थ सत्य कहनेवाले मनुष्य के समीप जाकर उस विद्वान् से (पृच्छ) अपने सन्देह पूछ; और फिर उनके कहे यथार्थ उत्तरों को ग्रहण करके औरों के लिये तू भी उपदेश कर परन्तु जो मनुष्य अविद्वान् अर्थात् मूर्ख ईर्षा करने वा कपट और स्वार्थ में संयुक्त हो उससे तू (परेहि) सदा दूर रह ॥ ४ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को यही योग्य है कि प्रथम सत्य का उपदेश करनेहारे वेद पढ़े हुए और परमेश्वर की उपासना करनेवाले विद्वानों को प्राप्त होकर अच्छी प्रकार उनके साथ प्रश्नोत्तर की रीति से अपनी सब शङ्का निवृत्त करें; किन्तु विद्याहीन मूर्ख मनुष्य का सङ्ग वा उनके दिए हुए उत्तरों में विश्वास कभी न करें ॥ ४ ॥

उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत । दधाना इन्द्र इद्दुवः ॥५॥

पदार्थ—जो कि परमेश्वर की (दुवः) सेवा को धारण किये हुए, सब विद्या धर्म और पुरुषार्थ में वर्त्तमान हैं वे ही (नः) हम लोगों के लिये सब विद्याओं का उपदेश करें, और जो कि (चित्) नास्तिक (निदः) निन्दक वा धूर्त मनुष्य हैं, वे सब हम लोगों के निवासस्थान से (निरारत) दूर चले जावें किन्तु (उत) निश्चय करके और देशों से भी दूर हो जायं । अर्थात् अधर्मी पुरुष किसी देश में न रहें ॥ ५ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को उचित है कि आप्त धार्मिक विद्वानों का सङ्ग कर और मूर्खों के सङ्ग को सर्वथा छोड़ के ऐसा पुरुषार्थ करना चाहिये कि जिससे सर्वत्र विद्या की वृद्धि, अविद्या की हानि, मानने योग्य श्रेष्ठ पुरुषों का सत्कार, दुष्टों को दण्ड, ईश्वर की उपासना आदि शुभ कर्मों की वृद्धि और अशुभ कर्मों का विनाश नित्य होता रहे ॥ ५ ॥

उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः । स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥६॥

पदार्थ—हे (दस्म) दुष्टों को दण्ड देनेवाले परमेश्वर ! हम लोग (इन्द्रस्य) आप के दिये हुए (शर्मणि) नित्य सुख वा आज्ञा पालने में (स्याम) प्रवृत्त हों और ये (कृष्टयः) सब मनुष्य लोग, प्रीति के साथ सब मनुष्यों के लिए सब विद्याओं को (वोचेयुः) उपदेश से प्राप्त करें जिससे सत्य के उपदेश को प्राप्त हुए (नः) हम लोगों को (अरिः, उत) शत्रु भी (सुभगान्) श्रेष्ठ विद्या ऐश्वर्ययुक्त जानें वा कहें ॥ ६ ॥

भावार्थ—जब सब मनुष्य विरोध को छोड़कर सब के उपकार करने में प्रयत्न करते हैं तब शत्रु भी मित्र हो जाते हैं; जिससे सब मनुष्यों को ईश्वर की कृपा से निरन्तर उत्तम आनन्द प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम् । पतयन्मन्दयत्सखम् ॥७॥

पदार्थ—हे इन्द्र परमेश्वर ! आप अपनी कृपा करके हम लोगों के अर्थ (आशवे) यानों में सब सुख वा वेगादि गुणों का शीघ्र प्राप्ति के लिये जो (आशुम्) वेग आदि गुणवाले अग्नि वायु आदि पदार्थ (यज्ञश्रियम्) चक्रवर्त्ति राज्य के महिमा की शोभा (ईम्) जल और पृथिवी आदि (नृमादनम्) जो कि मनुष्यों को अत्यन्त आनन्द देनेवाले तथा (पतयत्) स्वामिपन को करनेवाले वा (मन्दयत्सखम्) जिसमें आनन्द को प्राप्त होने वा विद्या के जनानेवाले मित्र हों ऐसे (भर) विज्ञान आदि धन को हमारे लिये धारण कीजिये ॥

भावार्थ—ईश्वर पुरुषार्थी मनुष्य पर कृपा करता है आलस करने-वाले पर नहीं, क्योंकि जब तक मनुष्य ठीक ठीक पुरुषार्थ नहीं करता तब तक ईश्वर की कृपा और अपने किए हुए कर्मों से प्राप्त हुए पदार्थों की रक्षा भी करने में समर्थ कभी नहीं हो सकता। इसलिए मनुष्यों को पुरुषार्थी होकर ही ईश्वर की कृपा के भागी होना चाहिए ॥ ७ ॥

अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः ।
प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥८॥

पदार्थ—हे पुरुषोत्तम ! जैसे यह (घनः) मूर्तिमान् होके सूर्य्यलोक (अस्य) जलरस को (पीत्वा) पीकर (वृत्राणाम्) मेघ के अङ्गरूप जलबिन्दुओं को वर्षा-के सब ओषधी आदि पदार्थों को पुष्ट करके सब की रक्षा करता है वैसे ही हे (शत-क्रतो) असंख्यात कर्मों के करनेवाले शूरवीरो ! तुम लोग भी सब रोग और धर्म के विरोधी दुष्ट शत्रुओं को नाश करनेहारे होकर (अस्य) इस जगत् के रक्षा करने-

वाले (प्रभवः) हूजिये। इसी प्रकार जो (वाजेषु) दुष्टों के साथ युद्ध में प्रवर्त्त-मान, धार्मिक और (वाजिनम्) शूरवीर पुरुष है, उसकी (प्राव:) अच्छी प्रकार रक्षा सदा करते रहिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। जैसे जो मनुष्य दुष्टों के साथ धर्मपूर्वक युद्ध करता है उसी का ही विजय होता है; और का नहीं। तथा परमेश्वर भी धर्मपूर्वक युद्धकरनेवाले मनुष्यों का ही सहाय करनेवाला होता है औरों का नहीं ॥ ८ ॥

तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो । धनानामिन्द्र सातये ॥९॥

पदार्थ—हे (शतक्रतो) असंख्यात वस्तुओं में विज्ञान रखनेवाले (इन्द्र) परम ऐश्वर्य्यवान् जगदीश्वर ! हम लोग (धनानाम्) पूर्ण विद्या और राज्य को सिद्ध करनेवाले पदार्थों का (सातये) सुखभोग वा अच्छे प्रकार सेवन करने के लिये (वाजेषु) युद्धादि व्यवहारों में (वाजिनम्) विजय करानेवाले और (तम्) उक्त गुणयुक्त (त्वा) आपको ही (वाजयामः) नित्य प्रति जानने और जनाने का प्रयत्न करते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य दुष्टों को युद्ध से निर्बल करता तथा जितेन्द्रिय वा विद्वान् होकर जगदीश्वर की आज्ञा का पालन करता है, वही उत्तम धन वा युद्ध में विजय को अर्थात् सब शत्रुओं को जीतनेवाला होता है ॥ ९ ॥

यो रायो३वनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा । तस्मा इन्द्राय गायत ॥१०॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो ! जो बड़ों से बड़ा (सुपारः) अच्छी प्रकार सब कामनाओं की परिपूर्णता करने हारा (सुन्वतः) प्राप्त हुए सोमविद्यावाले धर्मात्मा पुरुष को (सखा) मित्रता से सुख देने तथा (रायः) विद्या-सुवर्ण आदि धन का (अवनिः) रक्षक और इस संसार में उक्त पदार्थों में जीवों को पहुँचाने और उनका देनेवाला करुणामय परमेश्वर है, (तस्मै) उसकी तुम लोग (गायत) नित्य पूजा किया करो ॥ १० ॥

भावार्थ—किसी मनुष्य को केवल परमेश्वर की स्तुतिमात्र ही करने से सन्तोष न करना चाहिये, किन्तु उसकी आज्ञा में रहकर और ऐसा समझ कर कि परमेश्वर मुझको सर्वत्र देखता है, इसलिए अधर्म से निवृत्त होकर और परमेश्वर के सहाय की इच्छा करके मनुष्य को सदा उद्योग ही में वर्त्तमान रहना चाहिए ॥ १० ॥

उस तीसरे सूक्त की कही हुई विद्या से धर्मात्मा पुरुषों को परमेश्वर का ज्ञान सिद्ध करना तथा आत्मा और शरीर के स्थिर भाव आरोग्य की

प्राप्ति तथा दुष्टों के विजय और पुरुषार्थ से चक्रवर्तिराज्य को प्राप्त होना, इत्यादि अर्थ करके इस चौथे सूक्त के अर्थ की सङ्गति समझनी चाहिए।

आर्यावर्त्तवासी सायणाचार्य्य आदि विद्वान् तथा यूरोपखण्डवासी अध्यापक विलसन आदि साहबों ने इस सूक्त की भी व्याख्या ऐसी विरुद्ध की है कि यहां उसका लिखना व्यर्थ है ॥

यह चौथा सूक्त समाप्त हुआ ॥

मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ विराड्गायत्री; २ आर्च्युष्णिक्; ३ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री; ४, १० गायत्री; ५—७, ९ निचृद्गायत्री; ८ पादनिचृद्गायत्री च छन्दः । १, ३—१० षड्जः; २ ऋषभः स्वरः ॥

आ त्वेता निषीदतेन्द्रमभि प्रगायत । सखायः स्तोमवाहसः ॥१॥

पदार्थ—हे (स्तोमवाहसः) प्रशंसनीय गुणयुक्त वा प्रशंसा कराने और (सखायः) सब से मित्रभाव में वर्त्तनेवाले विद्वान् लोगो ! तुम और हम लोग सब मिलके परस्पर प्रीति के साथ मुक्ति और शिल्पविद्या को सिद्ध करने में (आनिषीदत) स्थित हों अर्थात् उसकी निरन्तर अच्छी प्रकार से यत्नपूर्वक साधना करने के लिये (इन्द्रम्) परमेश्वर वा बिजली से जुड़ा हुआ वायु को—'इन्द्रेण वायुना०' इस ऋग्वेद के प्रमाण से शिल्पविद्या और प्राणियों के जीवन हेतु से इन्द्र शब्द से स्पर्श गुणवाले वायु का भी ग्रहण किया है—(अभिप्रगायत) अर्थात् उसके गुणों का उपदेश करें और सुनें कि जिससे वह अच्छी रीति से सिद्ध की हुई विद्या सब को प्रकट होजावें, (तु) और उसी से तुम सब लोग सब सुखों को (एत) प्राप्त होओ ॥ १ ॥

भावार्थ—जबतक मनुष्य हठ, छल और अभिमान को छोड़कर सत्य प्रीति के साथ परस्पर मित्रता करके, परोपकार करने के लिए तन मन और धन से यत्न नहीं करते, तबतक उनके सुखों और विद्या आदि उत्तम गुणों की उन्नति कभी नहीं हो सकती ॥ १ ॥

पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्य्याणाम् । इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥२॥

पदार्थ—हे मित्र विद्वान् लोगो ! (वार्य्याणाम्) अत्यन्त उत्तम (पुरूणाम्) आकाश से लेके पृथिवी पर्य्यन्त असंख्यात पदार्थों को (ईशानम्) रचने में समर्थ (पुरूतमम्) दुष्ट स्वभाववाले जीवों को ग्लानि प्राप्त करानेवाले

(इन्द्रम्) और श्रेष्ठ जीवों को सब ऐश्वर्य्य के देनेवाले परमेश्वर के—तथा (वार्य्याणाम्) अत्यन्त उत्तम (पुरूणाम्) आकाश से लेके पृथिवी पर्य्यन्त बहुत से पदार्थों की विद्याओं के साधक (पुरूतमम्) दुष्ट जीवों वा कर्मों के भोग के निमित्त और (इन्द्रम्) जीवमात्र को सुख दुःख देनेवाले पदार्थों के हेतु भौतिक वायुके—गुणों को (अभिप्रगायत) अच्छी प्रकार उपदेश करो। और (तु) जो कि (सुते) रस खींचने की क्रिया से प्राप्त वा (सोमे) उस विद्या से प्राप्त होने योग्य (सचा) पदार्थों के निमित्त कार्य्य हैं, उनको उक्त विद्याओं से सब के उपकार के लिये यथा-योग्य युक्त करो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। पीछे के मन्त्र से इस मन्त्र में 'सखायः; तु; अभिप्रगायत' इन तीन शब्दों को अर्थ के लिए लेना चाहिये। इस मन्त्र में यथायोग्य व्यवस्था करके उनके किए हुए कर्मों का फल देने से ईश्वर तथा इन कर्मों के भोग कराने के कारण वा विद्या और सब क्रियाओं के साधक होने से भौतिक अर्थात् संसारी वायु का ग्रहण किया है ॥ २ ॥

स घा नो योग आभुवत्स राये स पुरंन्ध्याम् ।
गमद्वाजेभिरा स नः ॥३॥

पदार्थ—(सः) पूर्वोक्त इन्द्र परमेश्वर और स्पर्शवान् वायु (नः) हम लोगों के (योगे) सब सुखों के सिद्ध करानेवाले वा पदार्थों को प्राप्त करानेवाले योग तथा (सः) वे ही (राये) उत्तम धन के लाभ के लिये, और (सः) वे (पुरन्ध्याम्) अनेक शास्त्रों की विद्याओं से युक्त बुद्धि में (आ भुवत्) प्रकाशित हों। इसी प्रकार (सः) वे (वाजेभिः) उत्तम अन्न और विमान आदि सवारियों के सह वर्त्तमान (नः) हम लोगों को (आगमत्) उत्तम सुख होने का ज्ञान देता तथा यह वायु भी इस विद्या की सिद्धि में हेतु होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इसमें भी श्लेषालङ्कार है। ईश्वर पुरुषार्थी मनुष्य का सहायकारी होता है आलसी का नहीं, तथा स्पर्शवान् वायु भी पुरुषार्थी ही से कार्य्यसिद्धि का निमित्त होता है क्योंकि किसी प्राणी को पुरुषार्थ के विना धन वा बुद्धि का और इनके विना उत्तम सुख का लाभ कभी नहीं हो सकता। इसलिये सब मनुष्यों को उद्योगी अर्थात् पुरुषार्थी आशावाले अवश्य होना चाहिए ॥ ३ ॥

यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः । तस्मा इन्द्राय गायत ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग (यस्य) जिस परमेश्वर वा सूर्य्य के (हरी) पदार्थों को प्राप्त करानेवाले बल और पराक्रम तथा प्रकाश और आकर्षण (संस्थे) इस संसार में वर्त्तमान हैं, जिनके सहाय से (समत्सु) युद्धों में (शत्रवः)

वैरी लोग (**न वृण्वते**) अच्छी प्रकार बल नहीं कर सकते (**तस्मै**) उस (**इन्द्राय**) परमेश्वर वा सूर्य्यलोक को उनके गुणों की प्रशंसा कह और सुन के यथावत् जान लो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इसमें श्लेषालङ्कार है। जबतक मनुष्य लोग परमेश्वर को अपना इष्ट देव समझनेवाले और बलवान् अर्थात् पुरुषार्थी नहीं होते तब तक उनको दुष्ट शत्रुओं की निर्बलता करने को सामर्थ्य भी नहीं होता ॥ ४ ॥

सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये। सोमासो दध्याशिरः ॥ ५ ॥

पदार्थ—परमेश्वर ने वा वायुसूर्य से जिस कारण (**सुतपाव्ने**) अपने उत्पन्न किये हुए पदार्थों की रक्षा करनेवाले जीव के तथा (**वीतये**) ज्ञान वा भोग के लिये (**दध्याशिरः**) जो धारण करनेवाले उत्पन्न होते हैं, तथा (**शुचयः**) जो पवित्र (**सोमासः**) जिनसे अच्छे व्यवहार होते हैं, वे सब पदार्थ जिसने उत्पादन करके पवित्र किये हैं, इसी से सब प्राणिलोग इन को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जब ईश्वर ने सब जीवों पर कृपा करके उनके कर्मों के अनुसार यथायोग्य फल देने के लिये सब कार्य्यरूप जगत् को रचा और पवित्र किया है, तथा पवित्र करने करानेवाले सूर्य्य और पवन को रचा है, उसी हेतु से सब जड़ पदार्थ वा जीव पवित्र होते हैं। परन्तु जो मनुष्य पवित्र गुणकर्मों के ग्रहण से पुरुषार्थी होकर संसारी पदार्थों से यथावत् उपयोग लेते तथा सब जीवों को उनके उपयोगी कराते हैं, वे ही मनुष्य पवित्र और सुखी होते हैं ॥५॥

त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः।
इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) विद्यादि परमैश्वर्य्ययुक्त (**सुक्रतो**) श्रेष्ठ कर्म करने और उत्तम बुद्धिवाले विद्वान् मनुष्य ! (**त्वम्**) तू (**सद्यः**) शीघ्र (**सुतस्य**) संसारी पदार्थों के रस के (**पीतये**) पान वा ग्रहण और (**ज्यैष्ठ्याय**) अत्युत्तम कर्मों के अनुष्ठान करने के लिये (**वृद्धः**) विद्या आदि शुभ गुणों के ज्ञान के ग्रहण और सब के उपकार करने में श्रेष्ठ (**अजायथाः**) हो ॥ ६ ॥

भावार्थ—ईश्वर जीव के लिए उपदेश करता है कि—हे मनुष्य ! तू जबतक विद्या में वृद्ध होकर अच्छी प्रकार परोपकार न करेगा, तबतक तुझ को मनुष्यपन और सर्वोत्तम सुख की प्राप्ति कभी न होगी, इस से तू परोपकार करनेवाला सदा हो ॥ ६ ॥

आ त्वा॑ विशन्त्वा॒शवः॒ सोमा॑स इन्द्र गिर्वणः ।
शन्ते॑ सन्तु॒ प्रचे॑तसे ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे धार्मिक (**गिर्वणः**) प्रशंसा के योग्य कर्म करनेवाले (**इन्द्र**) विद्वान् जीव ! (**आशवः**) वेगादि गुण सहित सब क्रियाओं से व्याप्त (**सोमासः**) सब पदार्थ (**त्वा**) तुझ को (**आविशन्तु**) प्राप्त हों तथा इन पदार्थों को प्राप्त हुए, (**प्रचेतसे**) शुद्ध ज्ञानवाले (**ते**) तेरे लिये (**शम्**) ये सब पदार्थ मेरे अनुग्रह से सुख करनेवाले (**सन्तु**) हों ॥ ७ ॥

भावार्थ—ईश्वर ऐसे मनुष्यों को आशीर्वाद देता है कि जो मनुष्य विद्वान् परोपकारी होकर अच्छी प्रकार नित्य उद्योग करके इन सब पदार्थों से उपकार ग्रहण करके सब प्राणियों को सुखयुक्त करता है, वही सदा सुख को प्राप्त होता है, अन्य कोई नहीं ॥ ७ ॥

त्वां स्तोमा॑ अवीवृधन्॒ त्वामु॒क्था श॑तक्रतो ।
त्वां व॑र्धन्तु॒ नो॒ गिरः॑ ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (**शतक्रतो**) असंख्यात कर्मों के करने और अनन्त विज्ञान के जाननेवाले परमेश्वर ! जैसे (**स्तोमाः**) वेद के स्तोत्र तथा (**उक्था**) प्रशंसनीय स्तोत्र आपको (**अवीवृधन्**) अत्यन्त प्रसिद्ध करते हैं वैसे ही (**नः**) हमारी (**गिरः**) विद्या और सत्यभाषणयुक्त वाणी भी (**त्वाम्**) आपको (**वर्धन्तु**) प्रकाशित करें ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो विश्व में पृथिवी सूर्य्य आदि प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रचे हुए पदार्थ हैं, वे सब जगत् की उत्पत्ति करनेवाले तथा धन्यवाद देने के योग्य परमेश्वर ही को प्रसिद्ध करके जनाते हैं कि जिससे न्याय और उपकार आदि ईश्वर के गुणों को अच्छी प्रकार जान के विद्वान् भी वैसे ही कर्मों में प्रवृत्त हों ॥ ८ ॥

अक्षि॑तोतिः सनेदि॒मं वाज॒मिन्द्रः॑ सह॒स्रिण॑म् ।
यस्मि॒न् विश्वा॑नि॒ पौंस्या॑ ॥ ९ ॥

पदार्थ—जो (**अक्षितोतिः**) नित्य ज्ञानवाला (**इन्द्रः**) सब ऐश्वर्य्ययुक्त परमेश्वर है, वह कृपा करके हमारे लिये (**यस्मिन्**) जिस व्यवहार में (**विश्वानि**) सब (**पौंस्या**) पुरुषार्थ से युक्त बल हैं (**इमम्**) इस (**सहस्रिणम्**) असंख्यात सुख देनेवाले (**वाजम्**) पदार्थों के विज्ञान को (**सनेत्**) सम्यक् सेवन करावे, कि जिससे हम लोग उत्तम उत्तम सुखों को प्राप्त हों ॥ ९ ॥

भावार्थ—जिसकी सत्ता से संसार के पदार्थ बलवान् होकर अपने

अपने व्यवहारों में वर्त्तमान हैं, उन सब बल आदि गुणों से उपकार लेकर विश्व के नाना प्रकार के सुख भोगने के लिए हम लोग पूर्ण पुरुषार्थ करें, तथा ईश्वर इस प्रयोजन में हमारा सहाय करे, इसलिए हम लोग ऐसी प्रार्थना करते हैं ॥ ६ ॥

मा नो मर्त्ता अभिद्रुहन् तनूनामिन्द्र गिर्वणः ।
ईशानो यवया वधम् ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (गिर्वणः) वेद वा उत्तम उत्तम शिक्षाओं से सिद्ध की हुई वाणियों करके सेवा करने योग्य सर्वशक्तिमान् (इन्द्र) सब के रक्षक (ईशानः) परमेश्वर ! आप (नः) हमारे (तनूनाम्) शरीरों के (वधम्) नाश दोषसहित (मा) कभी मत (यवय) कीजिये तथा आपके उपदेश से (मर्त्ताः) ये सब मनुष्य लोग भी (नः) हम से (माभिद्रुहन्) वैर कभी न करें ॥ १० ॥

भावार्थ—कोई मनुष्य अन्याय से किसी प्राणी को मारने की इच्छा न करे, किन्तु परस्पर सब मित्रभाव से वर्त्तें, क्योंकि जैसे परमेश्वर विना अपराध से किसी का तिरस्कार नहीं करता, वैसे ही सब मनुष्यों को भी करना चाहिए ॥ १० ॥

इस पञ्चम सूक्त की विद्या से मनुष्यों को किस प्रकार पुरुषार्थ और सब का उपकार करना चाहिये, इस विषय के कहने से चौथे सूक्त के अर्थ के साथ इसकी सङ्गति जाननी चाहिए ।

इस सूक्त का भी अर्थ सायणाचार्य्य आदि और डाक्टर विलसन आदि साहबों ने उलटा किया है ॥

यह पाँचवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

मधुच्छन्दा ऋषिः । १–३ इन्द्रः; ४, ६, ८, ९ मरुतः; ५, ७ मरुत इन्द्रश्च; १० इन्द्रश्च देवताः । १, ३, ५–७, ९, १० गायत्री; २ विराड्गायत्री; ४, ८ निचृद्गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १ ॥

पदार्थ—जो मनुष्य (अरुषम्) अङ्ग अङ्ग में व्याप्त होनेवाले हिंसारहित सब सुख को करने (चरन्तम्) सब जगत् को जानने वा सब में व्याप्त (परितस्थुषः) सब मनुष्य वा स्थावर जङ्गम पदार्थ और चराचर जगत् में भरपूर हो रहा है (ब्रध्नम्) उस महान् परमेश्वर को (युञ्जन्ति) उपासना योग द्वारा प्राप्त होते हैं, वे

(दिवि) प्रकाशरूप परमेश्वर और बाहर सूर्य्य वा पवन के बीच में (रोचना:) ज्ञान से प्रकाशमान होके (रोचन्ते) आनन्द में प्रकाशित होते हैं।

तथा जो मनुष्य (अरुषम्) दृष्टिगोचर में रूप का प्रकाश करने तथा अग्निरूप होने से लाल गुणयुक्त (चरन्तम्) सर्वत्र गमन करनेवाले (ब्रध्नम्) महान् सूर्य्य और अग्नि को शिल्पविद्या में (परियुञ्जन्ति) सब प्रकार से युक्त करते हैं वे जैसे (दिवि) सूर्य्यादि के गुणों के प्रकाश में पदार्थ प्रकाशित होते हैं, वैसे (रोचना:) तेजस्वी होके (रोचन्ते) नित्य उत्तम उत्तम आनन्द से प्रकाशित होते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—जो लोग विद्यासम्पादन में निरन्तर उद्योग करने वाले होते हैं, वे ही सब सुखों को प्राप्त होते हैं। इसलिए विद्वान् को उचित है कि पृथिवी आदि पदार्थों से उपयोग लेकर सब प्राणियों को लाभ पहुंचावे कि जिस से उनका भी सम्पूर्ण सुख मिलें ॥ १ ॥

जो यूरोपदेशवासी मोक्षमूलर साहब आदि ने इस मन्त्र का अर्थ घोड़े को रथ में जोड़ने का लिया है, सो ठीक नहीं। इसका खण्डन भूमिका में लिख दिया है, वहां देख लेना चाहिए ॥ १ ॥

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे। शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ २ ॥

पदार्थ—जो विद्वान् (अस्य) सूर्य्य और अग्नि के (काम्या) सब के इच्छा करने योग्य (शोणा) अपने अपने वर्ण के प्रकाश करनेहारे वा गमन के हेतु (धृष्णू) दृढ़ (विपक्षसा) विविध कला और जल के चक्र घूमनेवाले पांखरूप यन्त्रों से युक्त (नृवाहसा) अच्छी प्रकार सवारियों में जुड़े हुए मनुष्यादिकों को देशदेशान्तर में पहुँचनेवाले (हरी) आकर्षण और वेग तथा शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष-रूप दो घोड़े जिनसे सब का हरण किया जाता है, इत्यादि श्रेष्ठ गुणों को पृथिवी जल और आकाश में जाने आने के लिए अपने अपने रथों में (युञ्जन्ति) जोड़ें ॥ २ ॥

भावार्थ—ईश्वर उपदेश करता है कि—मनुष्य लोग जबतक भू जल आदि पदार्थों के गुण ज्ञान और उनके उपकार से भू जल और आकाश में जाने आने के लिये अच्छी सवारियों को नहीं बनाते, तब तक उनको उत्तम राज्य और धन आदि उत्तम सुख नहीं मिल सकते ॥ २ ॥

जरमन देश के रहनेवाले मोक्षमूलर साहब ने इस मन्त्र का विपरीत व्याख्यान किया है। सो यह है कि—'(अस्य) सर्वनामवाची इस शब्द के निर्देश से स्पष्ट मालूम होता है कि इस मन्त्र में इन्द्र देवता का ग्रहण है, क्योंकि लाल रङ्ग के घोड़े इन्द्र ही के हैं। और यहां सूर्य्य तथा उषा का ग्रहण

नहीं, क्योंकि प्रथम मन्त्र में एक घोड़े का ही ग्रहण किया है।'—यह उनका अर्थ ठीक नहीं, क्योंकि 'अस्य' इस पद से भौतिक जो सूर्य्य और अग्नि हैं इन्हीं दोनों का ग्रहण है, किसी देहधारी का नहीं। 'हरी' इस पद से सूर्य्य के धारण और आकर्षण गुणों का ग्रहण तथा 'शोणा' इस शब्द से अग्नि की लाल लपटों के ग्रहण होने से और पूर्व मन्त्र में एक अश्व का ग्रहण जाति के अभिप्राय से अर्थात् एकवचन से अश्व जाति का ग्रहण होता है। और 'अस्य' यह शब्द प्रत्यक्ष अर्थ का वाची होने से सूर्य्यादि प्रत्यक्ष पदार्थों का ग्राहक होता है, इत्यादि हेतुओं से मोक्षमूलर साहब का अर्थ सच्चा नहीं ॥ २ ॥

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥ ३ ॥

पदार्थ—(मर्य्याः) हे मनुष्य लोगो ! जो परमात्मा (अकेतवे) अज्ञानरूपी अन्धकार के विनाश के लिये (केतुम्) उत्तम ज्ञान और (अपेशसे) निर्धनता दारिद्रय तथा कुरूपता विनाश के लिये (पेशः) सुवर्ण आदि धन और श्रेष्ठ रूप को (कृण्वन्) उत्पन्न करता है, उसको तथा सब विद्याओं को (समुषद्भिः) जो ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल वर्त्तनेवाले हैं उनसे मिल मिल कर जान के (अजायथाः) प्रसिद्ध हूजिये। तथा हे जानने की इच्छा करनेवाले मनुष्य ! तू भी उस परमेश्वर के समागम से (अजायथाः) इस विद्या को अवश्य प्राप्त हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को प्रति रात्रि के चौथे प्रहर में आलस्य छोड़कर फुरती से उठ कर अज्ञान और दरिद्रता के विनाश के लिए प्रयत्नवाले होकर तथा परमेश्वर के ज्ञान और संसारी पदार्थों से उपकार लेने के लिये उत्तम उपाय सदा करना चाहिये ॥ ३ ॥

'यद्यपि मर्य्याः इस पद से किसी का नाम नहीं मालूम होता, तो भी यह निश्चय करके जाना जाता है कि इस मन्त्र में इन्द्र का ही ग्रहण है कि—हे इन्द्र ! तू वहां प्रकाश करने वाला है कि ज़हां पहिले प्रकाश नहीं था।' यह मोक्षमूलरजी का अर्थ असङ्गत है, क्योंकि 'मर्य्याः' यह शब्द मनुष्य के नामों में निघण्टु में पढ़ा है, तथा 'अजायथाः' यह प्रयोग पुरुषव्यत्यय से प्रथम पुरुष के स्थान में मध्यम पुरुष का प्रयोग किया है ॥ ३ ॥

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—जैसे (मरुतः) वायु (नाम) जल और (यज्ञियम्) यज्ञ के योग्य देश को (दधानाः) सब पदार्थों को धारण किए हुए (पुनः) फिर फिर (स्वधामनु) जलों में (गर्भत्वम्) उनके समूहरूपी गर्भ को (एरिरे) सब प्रकार से प्राप्त

होते कंपाते, वैसे (आत्) उसके उपरान्त वर्षा करते हैं; ऐसे ही बार बार जलों को चढ़ाते वर्षाते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो जल सूर्य्य वा अग्नि के संयोग से छोटा छोटा हो जाता है, उसको धारण कर और मेघ के आकार का बना के वायु ही उसे फिर फिर वर्षाता है, उसी से सब का पालन और सबको सुख होता है।

'इसके पीछे वायु अपने स्वभाव के अनुकूल बालक के स्वरूप में बन गये और अपना नाम पवित्र रख लिया।' देखिये मोक्षमूलर साहब का किया अर्थ मन्त्रार्थ से विरुद्ध है, क्योंकि इस मन्त्र में बालक बनना और अपना पवन नाम रखना, यह बात ही नहीं है। यहां इन्द्र नामवाले वायु का ही ग्रहण है, अन्य किसी का नहीं ॥ ४ ॥

वीळु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः ।
अविन्द उस्रिया अनु ॥ ५ ॥

पदार्थान्वयभाषा—(**चित्**) जैसे मनुष्य लोग अपने पास के पदार्थों को उठाते धरते हैं, (**चित्**) वैसे ही सूर्य्य भी (**वीळु**) दृढ बल से (**उस्रियाः**) अपनी किरणों करके संसारी पदार्थों को (**अविन्दः**) प्राप्त होता है, (**अनु**) उसके अनन्तर सूर्य्य उनको छेदन करके (**आरुजत्नुभिः**) भंग करने और (**वह्निभिः**) आकाश आदि देशों में पहुँचानेवाले पवन के साथ ऊपर नीचे करता हुआ (**गुहा**) अन्तरिक्ष अर्थात् पोल में सदा चढ़ाता गिराता रहता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे बलवान् पवन अपने वेग से भारी-भारी दृढ़ वृक्षों को तोड़ फोड़ डालते और उनको ऊपर नीचे गिराते रहते हैं, वैसे ही सूर्य्य भी अपनी किरणों से उनका छेदन करता रहता है, इससे वे ऊपर नीचे गिरते रहते हैं। इसी प्रकार ईश्वर के नियम से सब पदार्थ उत्पत्ति और विनाश को भी प्राप्त होते रहते हैं ॥ ५ ॥

'हे इन्द्र ! तू शीघ्र चलनेवाले वायु के साथ अप्राप्त स्थान में रहने वाली गौओं को प्राप्त हुआ।' यह भी मोक्षमूलर साहब की व्याख्या असङ्गत है, क्योंकि 'उस्रा' यह शब्द निघण्टु में रश्मि नाम में पढ़ा है; इस से सूर्य्य की किरणों का ही ग्रहण होना योग्य है। तथा 'गुहा' इस शब्द से सब को ढाँपनेवाला होने से अन्तरिक्ष का ग्रहण है ॥ ५ ॥

देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद्वसुं गिरः । महामनूषत श्रुतम् ॥६॥

पदार्थ—जैसे (**देवयन्तः**) सब विज्ञानयुक्त (**गिरः**) विद्वान् मनुष्य (**विद-**

दसुम्) सुखकारक पदार्थ विद्या से युक्त (**महाम्**) अत्यन्त बड़ी (**मतिम्**) बुद्धि (**श्रुतम्**) सब शास्त्रों के श्रवण और कथन को (**अच्छ**) अच्छी प्रकार (**अनूषत**) प्रकाश करते हैं, वैसे ही अच्छी प्रकार साधन करने से वायु भी शिल्प अर्थात् सब कारीगरी को (**अनूषत**) सिद्ध करते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को वायु के उत्तम गुणों का ज्ञान, सब का उपकार और विद्या की वृद्धि के लिये प्रयत्न सदा करना चाहिये जिससे सब व्यवहार सिद्ध हों ॥ ६ ॥

'गान करनेवाले धर्मात्मा जो वायु हैं उन्होंने इन्द्र को ऐसी वाणी सुनाई कि तू जीत जीत।' यह भी उनका अर्थ अच्छा नहीं, क्योंकि 'देवयन्तः' इस शब्द का अर्थ यह है कि मनुष्य लोग अपने अन्तःकरणः से विद्वानों के मिलने की इच्छा रखते हैं, इस अर्थ से मनुष्यों का ग्रहण होता है ॥ ६ ॥

इन्द्रे॑ण॒ सं हि दृक्ष॑से संजग्मा॒नो अबि॑भ्युषा । म॒न्दू स॑मा॒नव॑र्चसा ॥७॥

पदार्थ—यह वायु (**अबिभ्युषा**) भय दूर करनेवाली (**इन्द्रेण**) परमेवर की सत्ता के साथ (**सञ्जग्मानः**) अच्छी प्रकार प्राप्त हुआ तथा वायु के साथ सूर्य्य (**संदृक्षसे**) अच्छी प्रकार दृष्टि में आता है, (**हि**) जिस कारण ये दोनों (**समान-वर्चसा**) पदार्थों में प्रसिद्ध बलवान् हैं, इसी से वे सब जीवों को (**मन्दू**) आनन्द के देनेवाले होते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—ईश्वर ने जो अपनी व्याप्ति और सत्ता से सूर्य्य और वायु आदि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं, इन सब पदार्थों के बीच में से सूर्य्य और वायु ये दोनों मुख्य हैं, क्योंकि इन्हीं के धारण आकर्षण और प्रकाश के योग से सब पदार्थ सुशोभित होते हैं। मनुष्यों को चाहिए कि पदार्थविद्या से उपकार लेने के लिए इन्हें युक्त करें।

'यह बड़ा आश्चर्य्य है कि बहुवचन के स्थान में एकवचन का प्रयोग किया गया, तथा निरुक्तकार ने द्विवचन के स्थान में एकवचन का प्रयोग माना है, सो असङ्गत है।' यह भी मोक्षमूलर साहब की कल्पना ठीक नहीं, क्यों कि '**व्यत्ययो ब० सुप्तिङुपग्रह०**' व्याकरण के इस प्रमाण से वचनव्यत्यय होता है। तथा निरुक्तकार का व्याख्यान सत्य है, क्योंकि '**सुपां सु०**' इस सूत्र से 'मन्दू' इस शब्द में द्विवचन को पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश हो गया है ॥ ७ ॥

अ॒न॒व॒द्यैर॒भिद्यु॑भिर्म॒खः सह॑स्वदर्चति । ग॒णैरिन्द्र॑स्य॒ काम्यैः॑ ॥८॥

पदार्थ—जो यह (**मखः**) सुख और पालन होने का हेतु यज्ञ है, वह (**इन्द्र-स्य**) सूर्य्य की (**अनवद्यैः**) निर्दोष (**अभिद्युभिः**) सब ओर से प्रकाशमान और

(काम्यैः) प्राप्ति की इच्छा करने योग्य (गणैः) किरणों वा पवनों के साथ मिल-कर सब पदार्थों को (सहस्वत्) जैसे दृढ़ होते हैं, वैसे ही (अर्चति) श्रेष्ठ गुण करनेवाला होता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो शुद्ध अत्युत्तम होम के योग्य पदार्थों के अग्नि में किये हुए होम से सिद्ध किया हुआ यज्ञ है, वह वायु और सूर्य्य की किरणों की शुद्धि के द्वारा रोगनाश करने के हेतु से सब जीवों को सुख देकर बलवान् करता है ॥ ८ ॥

'यहां मखशब्द से यज्ञ करनेवाले का ग्रहण है, तथा देवों के शत्रु का भी ग्रहण है ।' यह भी मोक्षमूलर साहब का कहना ठीक नहीं, क्योंकि जो मखशब्द यज्ञ का वाची है वह सूर्य्य की किरणों के सहित अच्छे अच्छे वायु के गणों से हवन किए हुए पदार्थों को सर्वत्र पहुंचाता है, तथा वायु और वृष्टि जल की शुद्धि का हेतु होने से सब प्राणियों को सुख देने वाला होता है । और मख शब्द के उपमावाचक होने से देवों के शत्रु का भी ग्रहण नहीं ॥ ८ ॥

अतः परिज्मन्नागहि दिवो वा रोचनादधि । समस्मिन्नृञ्जते गिरः ॥९॥

पदार्थ—जिस वायु में वाणी का सब व्यवहार सिद्ध होता है, वह (परि-ज्मन्) सर्वत्र गमन करता हुआ सब पदार्थों को तले ऊपर पहुँचानेवाला पवन (अतः) इस पृथिवी स्थान से जलकणों को ग्रहण करके (अध्यागहि) ऊपर पहुँ-चता और फिर (दिवः) सूर्य्य के प्रकाश से (वा) अथवा (रोचनात्) जो कि रुचि को बढ़ानेवाला मेघमण्डल है उससे जल को गिराता हुआ तले पहुँचाता है, (अस्मिन्) इसी बाहिर और भीतर रहनेवाले पवन में सब पदार्थ स्थिति को प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ—यह बलवान् वायु अपने गमन आगमन गुण से सब पदार्थों के गमन आगमन धारण तथा शब्दों के उच्चारण और श्रवण का हेतु है ॥ ९ ॥

इस मन्त्र में सायणाचार्य्य ने जो उणादिगण में सिद्ध 'परिज्मन्' शब्द था उसे छोड़कर मनिन्प्रत्ययान्त कल्पना किया है, सो केवल उनकी भूल है ।

'हे उधर उधर विचरनेवाले मनुष्यदेहधारी इन्द्र ! तू आगे पीछे और ऊपर से हमारे समीप आ, यह सब गानेवालों की इच्छा है ।' यह भी उन [मोक्षमूलर साहब] का अर्थ अत्यन्त विपरीत है, क्योंकि इस वायुसमूह में मनुष्यों की वाणी शब्दों के उच्चारण व्यवहार से प्रसिद्ध होने से प्राण-रूप वायु का ग्रहण है ॥ ९ ॥

इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि ।
इन्द्रं महो वा रजसः ॥१०॥

पदार्थ—हम लोग (**इतः**) इस (**पार्थिवात्**) पृथिवी के संयोग (**वा**) और (**दिवः**) इस अग्नि के प्रकाश (**वा**) लोकलोकान्तरों अर्थात् चन्द्र और नक्षत्रादि लोकों से भी (**सातिम्**) अच्छी प्रकार पदार्थों के विभाग करते हुए (**वा**) अथवा (**रजसः**) पृथिवी आदि लोकों से (**महः**) अति विस्तारयुक्त (**इन्द्रम्**) सूर्य्य को (**ईमहे**) जानते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ—सूर्य्य की किरणें पृथिवी में स्थित हुए जलादि पदार्थों को भिन्न भिन्न करके बहुत छोटे छोटे कर देती हैं, इसी से वे पदार्थ पवन के साथ ऊपर को चढ़ जाते हैं, क्योंकि वह सूर्य्य सब लोकों से बड़ा है ॥ १० ॥

'हम लोग आकाश पृथिवी तथा बड़े आकाश से सहाय के लिए इन्द्र की प्रार्थना करते हैं'—यह भी डाक्टर मोक्षमूलर साहब की व्याख्या अशुद्ध हैं, क्योंकि सूर्य्यलोक सब से बड़ा है, और उसका आना जाना अपने स्थान को छोड़ के नहीं होता, ऐसा हम लोग जानते हैं ॥ १० ॥

सूर्य्य और पवन से जैसे पुरुषार्थ की सिद्धि करनी चाहिये तथा वे लोक जगत्में किस प्रकार से वर्त्तते रहते हैं और कैसे उनसे उपकार की सिद्धि होती है, इन प्रयोजनों से पाँचवें सूक्त के अर्थ के साथ छठे सूक्तार्थ की सङ्गति जाननी चाहिये ।

और सायणाचार्य्य आदि तथा यूरोपदेशवासी अंग्रेज विलसन आदि लोगों ने भी इस सूक्त के मन्त्रों के अर्थ बुरी चाल से वर्णन किये हैं ।

यह छठा सूक्त समाप्त हुआ ॥

मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, ३, ५–७ गायत्री । २, ४ निचृद्-गायत्री । ८, १० पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री । ९ पादनिचृद्गायत्री च छन्दः । षड्जःस्वरः ॥

इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥१॥

पदार्थ—जो (**गाथिनः**) गान करनेवाले और (**अर्किणः**) विचारशील

विद्वान् हैं, वे (अर्केभिः) सत्कार करने के पदार्थ सत्य भाषण शिल्पविद्या से सिद्ध किए हुए कर्म मन्त्र और विचार से (वाणीः) चारों वेद की वाणियों को प्राप्त होने के लिए (बृहत्) सबसे बड़े (इन्द्रम्) परमेश्वर (इन्द्रम्) सूर्य्य और (इन्द्रम्) वायु के गुणों के ज्ञान से (अनूषत) यथावत् स्तुति करें ॥ १ ॥

भावार्थ—ईश्वर उपदेश करता है कि मनुष्यों को वेदमन्त्रों के विचार से परमेश्वर सूर्य्य और वायु आदि पदार्थों के गुणों को अच्छी प्रकार जानकर सब के सुख के लिए उनसे, प्रयत्न के साथ उपकार लेना चाहिये ॥ १ ॥

इन्द्र इद्धर्य्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा ।

इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥२॥

पदार्थ—जिस प्रकार यह (संमिश्लः) पदार्थों में मिलने तथा (इन्द्रः) ऐश्वर्य का हेतु स्पर्शगुणवाला वायु, अपने (सचा) सब में मिलनेवाले और (वचोयुजा) वाणी के व्यवहार को वर्त्तानेवाले (हर्य्योः) हरने और प्राप्त करनेवाले गुणों को (आ) सब पदार्थों में युक्त करता है, वैसे ही (वज्री) संवत्सर वा तापवाला (हिरण्ययः) प्रकाशस्वरूप (इन्द्रः) सूर्य्य भी अपने हरण और आहरण गुणों को सब पदार्थों में युक्त करता है ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । जैसे वायु के संयोग से वचन श्रवण आदि व्यवहार तथा सब पदार्थों के गमन-आगमन धारण और स्पर्श होते हैं, वैसे ही सूर्य्य के योग से पदार्थों के प्रकाश और छेदन भी होते हैं ॥ २ ॥

'संमिश्लः' इस शब्द में सायणाचार्य्य ने लकार का होना छान्दस माना है, सो उनकी भूल है, क्योंकि 'संज्ञाछन्द०' इस वार्त्तिक से लकारादेश सिद्ध ही है ॥ २ ॥

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्य्यं रोहयद्दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥३॥

पदार्थ—(इन्द्रः) जो सब संसार का बनानेवाला परमेश्वर है, उसने (दीर्घाय) निरन्तर अच्छी प्रकार (चक्षसे) दर्शन के लिये (दिवि) सब पदार्थों के प्रकाश होने के निमित्त जिस (सूर्य्यम्) प्रसिद्ध सूर्य्यलोक को (आरोहयत्) लोकों के बीच में स्थापित किया है, वह (गोभिः) जो अपनी किरणों के द्वारा (अद्रिम्) मेघ को (व्यैरयत्) अनेक प्रकार से वर्षा होने के लिये ऊपर चढ़ाकर वारंवार वर्षाता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—रचने की इच्छा करनेवाले ईश्वर ने सब लोकों में दर्शन धारण और आकर्षण आदि प्रयोजनों के लिये प्रकाशरूप सूर्य्यलोक को सब लोकों के बीच में स्थापित किया है, इसी प्रकार यह हरेक ब्रह्माण्ड का नियम है कि वह क्षण क्षण में जल को ऊपर खींच करके पवन के द्वारा ऊपर स्थापन करके बार बार संसार में वर्षाता है, इसी से यह वर्षा का कारण है॥ ३॥

इन्द्र॒ वाजे॑षु नोऽव स॒हस्र॑प्रधनेषु च। उ॒ग्र उ॒ग्राभि॑रू॒तिभिः॥४॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर! (इन्द्रः) परमैश्वर्य्य देने तथा (उग्रः) सब प्रकार से अनन्त पराक्रमवान् आप (सहस्रप्रधनेषु) असंख्यात धन को देनेवाले चक्रवर्त्ति राज्य को सिद्ध करानेवाले (वाजेषु) महायुद्धों में (उग्राभिः) अत्यन्त सुख देनेवाली (ऊतिभिः) उत्तम उत्तम पदार्थों की प्राप्ति तथा पदार्थों के विज्ञान और आनन्द में प्रवेश कराने से हम लोगों की (अव) रक्षा कीजिए॥ ४॥

भावार्थ—परमेश्वर का यह स्वभाव है कि युद्ध करनेवाले धर्मात्मा पुरुषों पर अपनी कृपा करता है और आलसियों पर नहीं। इसी से जो मनुष्य जितेन्द्रिय विद्वान् पक्षपात को छोड़नेवाले शरीर और आत्मा के बल से अत्यन्त पुरुषार्थी तथा आलस्य को छोड़े हुए धर्म से बड़े बड़े युद्धों को जीत के प्रजा को निरन्तर पालन करते हैं, वे ही महाभाग्य को प्राप्त होके सुखी रहते हैं॥ ४॥

इन्द्रं॑ व॒यं म॑हाध॒न इन्द्र॒मर्भे॑ हवामहे। युजं॑ वृ॒त्रेषु॑ व॒ज्रिण॑म्॥५॥

पदार्थ—हम लोग (महाधने) बड़े बड़े भारी संग्रामों में (इन्द्रम्) परमेश्वर का (हवामहे) अधिक स्मरण करते रहते हैं, और (अर्भे) छोटे छोटे संग्रामों में भी इसी प्रकार (वज्रिणम्) किरणवाले (इन्द्रम्) सूर्य्य वा जलवाले वायु का जो कि (वृत्रेषु) मेघ के अङ्गों में (युजम्) युक्त होनेवाले इनके प्रकाश और सब में गमनागमनादि गुणों के समान विद्या न्याय प्रकाश और दूतों के द्वारा सब राज्य का वर्त्तमान विदित करना आदि गुणों का धारण सब दिन करते रहें॥ ५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। जो बड़े-बड़े भारी और छोटे-छोटे संग्रामों में ईश्वर को सर्वव्यापक और रक्षा करने वाला मान के धर्म और उत्साह के साथ दुष्टों से युद्ध करें तो मनुष्यों का अचल विजय होता है। तथा जैसे ईश्वर भी सूर्य्य और पवन के निमित्त से वर्षा आदि के द्वारा संसार का अत्यंत सुख सिद्ध किया करता है, वैसे मनुष्य लोगों को भी पदार्थों को निमित्त करके कार्य्यसिद्धि करनी चाहिये॥ ५॥

स नो॑ वृषन्न॒मुं च॒रुं सत्रा॑दाव॒न्नपा॑ वृधि । अ॒स्मभ्य॒मप्र॑तिष्कुतः ॥६॥

पदार्थ—हे (वृषन्) सुखों के बर्षाने और (सत्रादावन्) सत्यज्ञानको देनेवाले (सः) परमेश्वर ! आप (अस्मभ्यम्) जोकि हम लोग आपकी आज्ञा वा अपने पुरुषार्थ में वर्त्तमान हैं, उनके लिये (अप्रतिष्कुतः) निश्चय करानेहारे (नः) हमारे (अमुम्) उस आनन्द करनेहारे प्रत्यक्ष मोक्ष का द्वार (चरुम्) ज्ञानलाभ को (अपावृधि) खोल दीजिये ॥ ६ ॥

तथा हे परमेश्वर ! जो यह आपका बनाया हुआ (वृषन्) जल को वर्षाने और (सत्रादावन्) उत्तम उत्तम पदार्थों को प्राप्त करनेबाला (अप्रतिष्कुतः) अपनी कक्षा ही में स्थिर रहता हुआ सूर्य्य, (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये, (अमुम्) आकाश में रहनेवाले इस (चरुम्) मेघ को (अपावृधि) भूमि में गिरा देता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अपनी दृढ़ता से सत्यविद्या का अनुष्ठान और नियम से ईश्वर की आज्ञा का पालन करता है, उसके आत्मा में से अविद्यारूपी अन्धकार का नाश अन्तर्य्यामी परमेश्वर कर देता है, जिससे वह पुरुष धर्म और पुरुषार्थ को कभी नहीं छोड़ता ॥ ६ ॥

तु॒ञ्जेतु॑ञ्जे॒ य उत्त॑रे॒ स्तोमा॒ इन्द्र॑स्य व॒ज्रिणः॑ ।
न वि॑न्धे अस्य सुष्टु॒तिम् ॥७॥

पदार्थ—(ये) जो (वज्रिणः) अनन्त पराक्रमवान् (इन्द्रस्य) सब दुःखों के विनाश करनेहारे (अस्य) इस परमेश्वर के (तुञ्जेतुञ्जे) पदार्थ पदार्थ के देने में (उत्तरे) सिद्धान्त से निश्चित किये हुए (स्तोमाः) स्तुतियों के समूह हैं उनसे भी (अस्य) परमेश्वर की (सुष्टुतिम्) शोभायमान स्तुति का पार मैं जीव (न) नहीं (विन्धे) पा सकता हूं ॥ ७ ॥

भावार्थ—ईश्वर ने इस संसार में प्राणियों के सुख के लिये इन पदार्थों में अपनी शक्ति से जितने दृष्टान्त वा उनमें जिस प्रकार की रचना और अलग अलग उनके गुण तथा उनसे उपकार लेने के लिये रक्खे हैं, उन सब के जानने को मैं अल्पबुद्धि पुरुष होने से समर्थ कभी नहीं हो सकता और न कोई मनुष्य ईश्वर के गुणों की समाप्ति जानने को समर्थ है, क्योंकि जगदीश्वर अनन्त गुण और अनन्त सामर्थ्यवाला है, परन्तु मनुष्य उन पदार्थों से जितना उपकार लेने को समर्थ हों उतना सब प्रकार से लेना चाहिये ॥ ७ ॥

वृषा॑ यू॒थेव॒ वंस॑गः कृ॒ष्टीरि॑यु॒र्त्योज॑सा । ईशा॑नो॒ अप्र॑तिष्कुतः ॥८॥

पदार्थ—जैसे (वृषा) वीर्य्यदाता रक्षा करनेहारा (वंसगः) यथायोग्य गाय के विभागों को सेवन करनेहारा बैल (ओजसा) अपने बल से (यूथेव) गाय के समूहों को प्राप्त होता है वैसे ही (वंसगः) धर्म के सेवन करनेवाले पुरुष को प्राप्त होने और (वृषा) शुभ गुणों की वर्षा करनेवाला (ईशानः) ऐश्वर्य्यवान् जगत् का रचनेवाला परमेश्वर अपने (ओजसा) बल से (कृष्टीः) धर्मात्मा मनुष्यों को तथा (वंसगः) अलग अलग पदार्थों को पहुंचाने और (वृषा) जल वर्षानेवाला सूर्य्य (ओजसा) अपने बल से (कृष्टीः) आकर्षण आदि व्यवहारों को (इर्यत्ति) प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और श्लेषालंकार है । मनुष्य ही परमेश्वर को प्राप्त हो सकते हैं, क्योंकि वे ज्ञान की वृद्धि करने के स्वभाववाले होते हैं । और धर्मात्मा ज्ञानवाले मनुष्यों का परमेश्वर को प्राप्त होने का स्वभाव है । तथा जो ईश्वर ने रचकर कक्षा में स्थापन किया हुआ सूर्य्य है वह अपने सामने अर्थात् समीप के लोकों को चुम्बक पत्थर और लोहे के समान खींचने को समर्थ रहता है ॥ ८ ॥

य एक॑श्चर्षणी॒नां वसू॑नामिर॒ज्यति॑ । इन्द्रः॒ पञ्च॑ क्षिती॒नाम् ॥९॥

पदार्थ—(यः) जो (इन्द्रः) दुष्ट शत्रुओं का विनाश करनेवाला परमेश्वर (चर्षणीनाम्) मनुष्य (वसूनाम्) अग्नि आदि आठ निवास के स्थान, और (पञ्च) जो नीच मध्यम उत्तम उत्तमतर और उत्तमतम गुणवाले पांच प्रकार के (क्षितीनाम्) पृथिवी लोक हैं, उन्हों के बीच (इरज्यति) ऐश्वर्य के देने और सब के सेवा करने योग्य परमेश्वर है वह (एकः) अद्वितीय और सब का सहाय करनेवाला है ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो सबका स्वामी अन्तर्यामी व्यापक और सब ऐश्वर्य का देनेवाला, जिससे कोई दूसरा ईश्वर और जिसको किसी दूसरे की सहाय की इच्छा नहीं है. वही सब मनुष्यों को इष्ट बुद्धि से सेवा करने योग्य है । जो मनुष्य उस परमेश्वर को छोड़ के दूसरे को इष्ट देव मानता है, वह भाग्यहीन बड़े बड़े घोर दुःखों को सदा प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

इन्द्रं॑ वो वि॒श्वत॒स्परि॒ हवा॑महे॒ जने॑भ्यः । अ॒स्माक॑मस्तु॒ केव॑लः ॥१०॥

पदार्थ—हम लोग जिस (विश्वतः) सब पदार्थों वा (जनेभ्यः) सब प्राणियों से (परि) उत्तम उत्तम गुणों करके श्रेष्ठतर (इन्द्रम्) पृथिवी में राज्य देनेवाले परमेश्वर का (हवामहे) वार वार अपने हृदय में स्मरण करते हैं, वह

परमेश्वर (वः) हे मित्र लोगो ! तुम्हारे और हमारे पूजा करने योग्य इष्टदेव (केवलः) चेतनमात्र स्वरूप एक ही है ॥ १० ॥

भावार्थ—ईश्वर इस मन्त्र में सब मनुष्यों के हित के लिये उपदेश करता है—हे मनुष्यो ! तुम को अत्यन्त उचित है कि मुझको छोड़कर उपासना करने योग्य किसी दूसरे देव को कभी मत मानो, क्योंकि एक मुझ को छोड़कर कोई दूसरा ईश्वर नहीं है। जब वेद में ऐसा उपदेश है तो जो मनुष्य अनेक ईश्वर वा उसके अवतार मानता है, वह सब से बड़ा मूढ़ है ॥ १० ॥

इस सप्तम सूक्त में जिस ईश्वर ने अपनी रचना सिद्ध रहने के लिये अन्तरिक्ष में सूर्य्य और वायु स्थापन किये हैं, वही एक सर्वशक्तिमान्, सर्वदोषरहित और सब मनुष्यों का पूज्य है। इस व्याख्यान से इस सप्तम सूक्त के अर्थ के साथ छठे सूक्त के अर्थ की संगति जाननी चाहिये।

इस सूक्त के मन्त्रों के अर्थ सायणाचार्य्य आदि आर्य्यावर्त्त वासियों और विलसन आदि अंगरेज लोगों ने भी उलटे किये हैं ॥ १० ॥

यह सातवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

मधुच्छन्दा ऋषिः। इन्द्रो देवता। १, ५, ८ निचृद्गायत्री। २ प्रतिष्ठागायत्री। ३, ४, ६, ७, ९ गायत्री। १० वर्धमाना गायत्री च छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

ऐन्द्र सा॒न॒सिं र॒यिं स॒जित्वा॑नं सदा॒सह॑म्। वर्षि॑ष्ठमू॒तये॑ भर ॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! आप कृपा करके हमारी (ऊतये) रक्षा पुष्टि और सब सुखों की प्राप्ति के लिये (वर्षिष्ठम्) जो अच्छी प्रकार वृद्धि करनेवाला (सानसिम्) निरन्तर सेवने के योग्य (सदासहम्) दुष्टशत्रु तथा हानि वा दुःखों के सहने का मुख्य हेतु (सजित्वानम्) और तुल्य शत्रुओं का जितानेवाला (रयिम्) धन है उस को (आभर) अच्छी प्रकार दीजिये ॥ १ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को सर्वशक्तिमान् अन्तर्यामी ईश्वर का आश्रय लेकर अपने पूर्ण पुरुषार्थ के साथ चक्रवर्त्ति राज्य के आनन्द को बढ़ानेवाली विद्या की उन्नति सुवर्ण आदि धन और सेना आदि बल सब प्रकार से रखना चाहिये, जिससे अपने आप को और सब प्राणियों को सुख हो ॥ १ ॥

नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै । त्वोतासो न्यर्वता ॥२॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! (**त्वोतासः**) आप के सकाश से रक्षा को प्राप्त हुए हम लोग (**येन**) जिस पूर्वोक्त धन से (**मुष्टिहत्यया**) बाहुयुद्ध और (**अर्वता**) अश्व आदि सेना की सामग्री से (**निवृत्रा**) निश्चित शत्रुओं को (**निरुणधामहै**) रोकें अर्थात् उनको निर्बल कर सकें, ऐसे उत्तम धन का दान हम लोगों के लिये कृपा से कीजिये ॥ २ ॥

भावार्थ—ईश्वर के सेवक मनुष्यों को उचित है कि अपने शरीर और बुद्धिबल को बहुत बढ़ावें, जिससे श्रेष्ठों का पालन और दुष्टों का अपमान सदा होता रहे, और जिससे शत्रुजन उनके मुष्टिप्रहार को न सह सकें, इधर उधर छिपते भागते फिरें ॥ २ ॥

इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि ।
जयेम सं युधि स्पृधः ॥३॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) अनन्तबलवान् ईश्वर ! (**त्वोतासः**) आपके सकाश से रक्षा आदि और बल को प्राप्त हुए (**वयम्**) हम लोग धार्मिक और शूरवीर होकर अपने विजय के लिये (**वज्रम्**) शत्रुओं के बल का नाश करने का हेतु आग्नेयास्त्र और (**घना**) श्रेष्ठ शस्त्रों का समूह जिनको कि भाषा में तोप बन्दूक तलवार और धनुष बाण आदि करके प्रसिद्ध कहते हैं, जो युद्ध की सिद्धि में हेतु हैं उनको (**आददीमहि**) ग्रहण करते हैं । जिस प्रकार हम लोग आपके बल का आश्रय और सेना की पूर्ण सामग्री करके (**स्पृधः**) ईर्षा करनेवाले शत्रुओं को (**युधि**) संग्राम (**जयेम**) जीतें ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि धर्म और ईश्वर के आश्रय से शरीर की पुष्टि और विद्या करके आत्मा का बल तथा युद्ध की पूर्ण सामग्री परस्पर अवरोध और उत्साह आदि श्रेष्ठ गुणों को ग्रहण करके दुष्ट शत्रुओं के पराजय करने से अपने और सब प्राणियों के लिये सुख सदा बढ़ाते रहें ॥ ३ ॥

वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयम् । सासह्याम पृतन्यतः ॥४॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) युद्ध में उत्साह के देनेवाले परमेश्वर ! (**त्वया**) आपको अन्तर्यामी इष्टदेव मानकर आपकी कृपा से धर्मयुक्त व्यवहारों में अपने सामर्थ्य के (**युजा**) योग करानेवाले के योग से (**वयम्**) युद्ध के करनेवाले हम

लोग (अस्तृभिः) सब शस्त्र अस्त्र के चलाने में चतुर (शूरेभिः) उत्तमों में उत्तम शूरवीरों के साथ होकर (पृतन्यतः) सेना आदि बल से युक्त होकर लड़नेवाले शत्रुओं को (सासह्याम) वार वार सहें, अर्थात् उनको निर्बल करें इस प्रकार शत्रुओं को जीतकर न्याय के साथ चक्रवर्ति राज्य का पालन करें॥ ४॥

भावार्थ—शूरता दो प्रकार की होती है एक तो शरीर की पुष्टि और दूसरी विद्या तथा धर्म से संयुक्त आत्मा की पुष्टि। इन दोनों से परमेश्वर की रचना के क्रमों को जानकर न्याय, धीरजपन, उत्तम स्वभाव और उद्योग आदि से उत्तम उत्तम गुणों से युक्त होकर सभाप्रबन्ध के साथ राज्य का पालन और दुष्ट शत्रुओं का निरोध अर्थात् उनको सदा कायर करना चाहिये॥ ४॥

महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे। द्यौर्न प्रथिना शवः॥५॥

पदार्थ—(न) जैसे मूर्त्तिमान् संसार को प्रकाशयुक्त करने के लिये (द्यौः) सूर्य्यप्रकाश (प्रथिना) विस्तार से प्राप्त होता है, वैसे ही जो (महान्) सब प्रकार से अनन्तगुण, अत्युत्तम स्वभाव, अतुल सामर्थ्ययुक्त और (परः) अत्यन्त श्रेष्ठ (इन्द्रः) सब जगत् की रक्षा करनेवाला परमेश्वर है, और (वज्रिणे) न्याय की रीति से दण्ड देनेवाले परमेश्वर (नु) जोकि अपने सहायरूपी हेतु से हम को विजय देता है, उसी की यह (महित्वम्) महिमा (च) तथा बल हैं॥ ५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। धार्मिक युद्ध करनेवाले मनुष्यों को उचित है कि जो शूरवीर युद्ध में अति धीर मनुष्यों के साथ होकर दुष्ट शत्रुओं पर अपना विजय हुआ है, उसका धन्यवाद अनन्त शक्तिमान् जगदीश्वर को देना चाहिये, कि जिससे निरभिमान होकर मनुष्यों के राज्य की सदैव बढ़ती होती रहे॥ ५॥

समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ।
विप्रासो वा धियायवः॥६॥

पदार्थ—(विप्रासः) जो अत्यन्त बुद्धिमान् (नरः) मनुष्य हैं, वे (समोहे) संग्राम के निमित्त शत्रुओं को जीतने के लिये (आशत) तत्पर हैं (वा) अथवा (धियायवः) जो कि विज्ञान देने की इच्छा करनेवाले हैं, वे (तोकस्य) सन्तानों के (सनितौ) विद्या की शिक्षा में (आशत) उद्योग करते रहें॥ ६॥

भावार्थ—ईश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा देता है कि "इस संसार में

मनुष्यों को दो प्रकार का काम करना चाहिये। इनमें से जो विद्वान् हैं वे अपने शरीर और सेना का बल बढ़ाते और दूसरे उत्तम विद्या की वृद्धि करके शत्रुओं के बल का सदैव तिरस्कार करते रहें। मनुष्यों को जब जब शत्रुओं के साथ युद्ध करने की इच्छा हो तब तब सावधान होके, प्रथम उनकी सेना आदि पदार्थों से कम से कम अपना दोगुना बल करके उनके पराजय से प्रजा की रक्षा करनी चाहिये। तथा जो विद्याओं के पढ़ाने की इच्छा करने वाले हैं, वे शिक्षा देने योग्य पुत्र वा कन्याओं को यथायोग्य विद्वान् करने में अच्छे प्रकार यत्न करें, जिससे शत्रुओं के पराजय और अज्ञान के विनाश से चक्रवर्ति राज्य और विद्या की वृद्धि सदैव बनी रहे॥ ६॥

यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्रइव पिन्वते। उर्वीरापो न काकुदः ॥७॥

पदार्थ—(**समुद्र इव**) जैसे समुद्र को जल (**आपो न काकुदः**) शब्दों के उच्चारण आदि व्यवहारों के करानेवाले प्राण वाणी को (**पिन्वते**) सेवन करते हैं, वैसे (**कुक्षिः**) सब पदार्थों से रस को खींचनेवाला तथा (**सोमपातमः**) सोम अर्थात् संसार के पदार्थों का रक्षक जो सूर्य्य है वह (**उर्वीः**) सब पृथिवी को (**पिन्वते**) सेवन वा सेचन करता है॥ ७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार है। ईश्वर ने जैसे जल की स्थिति और वृष्टि का हेतु समुद्र तथा वाणी के व्यवहार का हेतु प्राण बनाया है, वैसे ही सूर्य्यलोक वर्षा होने, पृथिवी के खींचने, प्रकाश और रसविभाग करने का हेतु बनाया है इसी से सब प्राणियों के अनेक व्यवहार सिद्ध होते हैं॥ ७॥

एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही।
पक्वा शाखा न दाशुषे ॥८॥

पदार्थ—(**पक्वा शाखा न**) जैसे आम और कटहर आदि वृक्ष, पकी डाली और फलयुक्त होने से प्राणियों को सुख देनेहारे होते हैं, (**अस्य हि**) वैसे ही इस परमेश्वर की (**गोमती**) जिसको बहुत से विद्वान् सेवन करनेवाले हैं, जो (**सूनृता**) प्रिय और सत्यवचन प्रकाश करनेवाली (**विरप्शी**) महाविद्यायुक्त और (**मही**) सबको सत्कार करने योग्य चारों वेदों की वाणी है, सो (**दाशुषे**) पढ़ने में मन लगानेवालों को सब विद्याओं का प्रकाश करनेवाली है।

तथा (**अस्य हि**) जैसे इस सूर्य्यलोक की (**गोमती**) उत्तम मनुष्यों के

सेवन करने योग्य (सूनृता) प्रीति के उत्पादन करनेवाले पदार्थों का प्रकाश करनेवाली (विरप्शी) बड़ी से बड़ी (मही) बड़े बड़े गुणयुक्त दीप्ति है; वैसे वेदवाणी (दाशुषे) राज्य की प्राप्ति के लिये राज्यकर्मों में चित्त देने वालों को सुख देनेवाली होती है ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे विविध प्रकार से फल-फूलों से युक्त आम और कटहर आदि वृक्ष नाना प्रकार के फलों के देनेवाले होके सुख देनेहारे होते हैं, वैसे ही ईश्वर से प्रकाश की हुई वेदवाणी बहुत प्रकार की विद्याओं को देनेहारी होकर सब मनुष्यों को परम आनन्द देनेवाली है। जो विद्वान् लोग इसको पढ़ के धर्मात्मा होते हैं, वे ही वेदों का प्रकाश और पृथिवी में राज्य करने को समर्थ होते हैं ॥ ८ ॥

एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते। सद्यश्चित्सन्ति दाशुषे ॥९॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) जगदीश्वर ! आपकी कृपा से जैसे (ते) आपके (विभूतयः) जो जो उत्तम ऐश्वर्य और (ऊतयः) रक्षा विज्ञान आदि गुण मुझ को प्राप्त (सन्ति) हैं, वैसे (मावते) मेरे तुल्य (दाशुषे चित्) सबके उपकार और धर्म में मन को देनेवाले पुरुष को (सद्य एव) शीघ्र ही प्राप्त हों ॥९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। ईश्वर की आज्ञा का प्रकाश इस रीति से किया है कि—जब मनुष्य पुरुषार्थी होके सब का उपकार करनेवाले और धार्मिक होते हैं, तभी वे पूर्ण ऐश्वर्य्य और ईश्वर की यथायोग्य रक्षा आदि को प्राप्त होके सर्वत्र सत्कार के योग्य होते हैं ॥ ९ ॥

एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या। इन्द्राय सोमपीतये ॥१०॥

पदार्थ—(अस्य) जो जो इन चार वेदों के काम्य अत्यन्त मनोहर (शंस्ये) प्रशंसा करने योग्य कर्म वा (स्तोमः) स्तोत्र हैं, (च) तथा (उक्थम्) जिनमें परमेश्वर के गुणों का कीर्तन है, वे (इन्द्राय) परमेश्वर की प्रशंसा के लिये हैं। कैसा वह परमेश्वर है कि जो (सोमपीतये) अपनी व्याप्ति से सब पदार्थों के अंश अंश में रम रहा है ॥ १० ॥

भावार्थ—जैसे इस संसार में अच्छे-अच्छे पदार्थों की रचना विशेष देखकर उस रचनेवाले की प्रशंसा होती है, वैसे ही संसार के प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध अत्युत्तम पदार्थों तथा विशेष रचना को देखकर ईश्वर ही को धन्यवाद दिये जाते हैं। इस कारण से परमेश्वर की स्तुति के समान वा उससे अधिक किसी की स्तुति नहीं हो सकती ॥ १० ॥

इस प्रकार जो मनुष्य ईश्वर की उपासना और वेदोक्त कर्मों के

करनेवाले हैं, वे ईश्वर के आश्रित होके वेदविद्या से आत्मा के सुख और उत्तम क्रियाओं से शरीर के सुख को प्राप्त होते हैं, वे परमेश्वर ही की प्रशंसा करते रहें। इस अभिप्राय से इस आठवें सूक्त के अर्थ की पूर्वोक्त सातवें सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ।

इस सूक्त के मन्त्रों के भी अर्थ सायणाचार्य आदि और यूरोपदेश-वासी अध्यापक विलसन आदि अङ्गरेज लोगों ने उलटे वर्णन किये हैं ॥ १० ॥

यह आठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

मधुछन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, ३, ७, १० निचृद्गायत्री; २, ४, ८, ९ गायत्री; ५,६ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः ।
महाँ अभिष्टिरोजसा ॥१॥

पदार्थ—जिस प्रकार से (अभिष्टिः) प्रकाशमान (महान्) पृथिवी आदि से बहुत बड़ा (इन्द्र) यह सूर्य्यलोक है, वह (ओजसा) बल वा (विश्वेभिः) सब (सोमपर्वभिः) पदार्थों के अङ्गों के साथ (अन्धसः) पृथिवी आदि अन्नादि पदार्थों के प्रकाश से (एहि) प्राप्त होता और (मत्सि) प्राणियों को आनन्द देता है, वैसे ही हे (इन्द्र) सर्वव्यापक ईश्वर ! आप (महान्) उत्तमों में उत्तम (अभिष्टिः) सर्वज्ञ और सब ज्ञान के देनेवाले (ओजसा) बल वा (विश्वेभिः सोमपर्वभिः) सब पदार्थों के अंशों के साथ वर्त्तमान होकर (एहि) प्राप्त होते और (अन्धसः) भूमि आदि अन्नादि उत्तम पदार्थों को देकर हमको (मत्सि) सुख देते हो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और लुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे ईश्वर इस संसार के परमाणु परमाणु में व्याप्त होकर सब की रक्षा निरन्तर करता है, वैसे ही सूर्य भी सब लोकों से बड़ा होने से अपने सम्मुख हुए पदार्थों को आकर्षण वा प्रकाश करके अच्छे प्रकार स्थापन करता है ॥ १ ॥

एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने । चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (सुते) उत्पन्न हुए इस संसार में (विश्वानि)

सब सुखों के उत्पन्न होने के अर्थ (**मन्दिने**) ऐश्वर्यप्राप्ति की इच्छा करने तथा (**मन्दिम्**) आनन्द बढ़ानेवाले (**चक्रये**) पुरुषार्थ करने के स्वभाव और (**इन्द्राय**) परम ऐश्वर्य होने वाले मनुष्य के लिये (**चक्रिम्**) शिल्पविद्या से सिद्ध किये हुए साधनों में (**एनम्**) इन (**ईम्**) जल और अग्नि को (**आसृजत**) अति प्रकाशित करो ॥ २ ॥

भावार्थ—विद्वानों को उचित है कि इस संसार में पृथिवी से लेके ईश्वरपर्य्यन्त पदार्थों के विशेषज्ञान उत्तम शिल्प विद्या से सब मनुष्यों को उत्तम क्रिया सिखाकर सब सुखों का प्रकाश करना चाहिये ॥ २ ॥

मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभिः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे । सचैषु सवनेष्वा ॥३॥

पदार्थ—हे (**विश्वचर्षणे**) सब संसार के देखने तथा (**सुशिप्र**) श्रेष्ठज्ञानयुक्त परमेश्वर ! आप (**मन्दिभिः**) जो विज्ञान वा आनन्द के करने वा करानेवाले (**स्तोमेभिः**) वेदोक्त स्तुतिरूप गुणप्रकाश करने हारे स्तोत्र हैं उनसे स्तुति को प्राप्त होकर (**एषु**) इन प्रत्यक्ष (**सवनेषु**) ऐश्वर्य्य देनेवाले पदार्थों में हम लोगों को (**सचा**) युक्त करके (**मत्स्व**) अच्छे प्रकार आनन्दित कीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—जिसने संसार के प्रकाश करनेवाले सूर्य्य को उत्पन्न किया है, उसकी स्तुति करने में जो श्रेष्ठ पुरुष एकाग्रचित्त हैं, अथवा सब को देखनेवाले परमेश्वर को जानकर सब प्रकार से धार्मिक और पुरुषार्थी होकर सब ऐश्वर्य्य को उत्पन्न और उसकी रक्षा करने में मिलकर रहते हैं, वे ही सब सुखों को प्राप्त होने के योग्य वा औरों को भी उत्तम सुखों के देनेवाले हो सकते हैं ॥ ३ ॥

असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत । अजोषा वृषभं पतिम् ॥४॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे परमेश्वर ! जो (**ते**) आपकी (**गिरः**) वेदवाणी हैं, वे (**वृषभम्**) सब से उत्तम सब की इच्छा पूर्ण करनेवाले (**पतिम्**) सब के पालन करनेहारे (**त्वाम्**) वेदों के वक्ता आप को (**उदहासत**) उत्तमता के साथ जनाती हैं, और जिन वेदवाणियों का आप (**अजोषाः**) सेवन करते हो, उन्हीं से मैं भी (**प्रति**) उक्त गुणयुक्त आपको (**असृग्रम्**) अनेक प्रकार से वर्णन करता हूं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जिस ईश्वर ने प्रकाश किये हुए वेदों से जैसे अपने अपने स्वभाव गुण और कर्म प्रकट किये हैं, वैसे ही वे सब लोगों को जानने योग्य हैं, क्योंकि ईश्वर के सत्य स्वभाव के साथ अनन्तगुण और कर्म हैं, उन को हम अल्पज्ञ लोग अपने सामर्थ्य से जानने को समर्थ नहीं हो सकते । तथा जैसे हम लोग अपने अपने स्वभाव गुण और कर्मों को जानते हैं, वैसे औरों को उनका यथावत् जानना कठिन होता है, इसी प्रकार सब विद्वान् मनुष्यों

को वेदवाणी के बिना ईश्वर आदि पदार्थों को यथावत् जानना कठिन है। इसलिये प्रयत्न से वेदों को जान के उन के द्वारा सब पदार्थों से उपकार लेना, तथा उसी ईश्वर को अपना इष्टदेव और पालन करनेहारा मानना चाहिये ॥ ४ ॥

सं चो॑दय चि॒त्रम॒र्वाग्राध॑ इन्द्र॒ वरे॑ण्यम्। अस॒दित्ते॑ वि॒भु प्र॒भु ॥५॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) करुणामय सब सुखों के देनेवाले परमेश्वर ! (ते) आपकी सृष्टि में जो जो (वरेण्यम्) अति श्रेष्ठ (विभु) उत्तम उत्तम पदार्थों से पूर्ण (प्रभु) बड़े बड़े प्रभावों का हेतु (चित्रम्) जिससे श्रेष्ठ विद्या चक्रवर्ति राज्य से सिद्ध होने वाले, मणि सुवर्ण और हाथी आदि अच्छे अच्छे अद्भुत पदार्थ होते हैं, ऐसा (राधः) धन (असत्) हो, सो सो कृपा करके हम लोगों के लिये (संचोदय) प्रेरणा करके प्राप्त कीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को ईश्वर के अनुग्रह और अपने पुरुषार्थ से आत्मा और शरीर के सुख के लिये विद्या और ऐश्वर्य्य की प्राप्ति वा उनकी रक्षा और उन्नति तथा सत्य मार्ग वा उत्तम दानादि धर्म अच्छी प्रकार से सदैव सेवन करना चाहिये, जिससे दारिद्र्य और आलस्य से उत्पन्न होनेवाले दुःखों का नाश होकर अच्छे अच्छे भोग करने योग्य पदार्थों की वृद्धि होती रहे ॥ ५ ॥

अ॒स्मान्सु तत्र॑ चोद॒येन्द्र॑ रा॒ये रभ॑स्वतः। तुवि॑द्युम्न॒ यश॑स्वतः ॥६॥

पदार्थ—हे (तुविद्युम्न) अत्यन्त विद्यादिधनयुक्त (इन्द्र) अन्तर्यामी ईश्वर ! (रभस्वतः) जो आलस्य को छोड़ के कार्य्यों के आरम्भ करने (यशस्वतः) सत्कीर्तिसहित (अस्मान्) हम लोग पुरुषार्थी विद्या धर्म और सर्वोपकार से नित्य प्रयत्न करनेवाले मनुष्यों को (तत्र) श्रेष्ठ पुरुषार्थ में (राये) उत्तम उत्तम धन की प्राप्ति के लिये (सुचोदय) अच्छी प्रकार युक्त कीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को उचित है कि इस सृष्टि में परमेश्वर की आज्ञा के अनुकूल वर्त्तमान तथा पुरुषार्थी और यशस्वी होकर विद्या तथा राज्यलक्ष्मी की प्राप्ति के लिये सदैव उपाय करें। इसी से उक्त गुणवाले पुरुषों ही को लक्ष्मी से सब प्रकार का सुख मिलता है, क्योंकि ईश्वर ने पुरुषार्थी सज्जनों ही के लिये सब सुख रचे हैं ॥६॥

सं गोम॑दिन्द्र॒ वाज॑वद॒स्मे पृ॒थु श्रवो॑ बृ॒हत्। वि॒श्वायु॑र्धे॒ह्यक्षि॑तम् ॥७॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अनन्त विद्यायुक्त सब को धारण करनेहारे ईश्वर !

आप (अस्मे) हमारे लिये (गोमत्) जो धन श्रेष्ठ वाणी और अच्छे अच्छे उत्तम पुरुषों को प्राप्त कराने (वाजवत्) नाना प्रकार के अन्न आदि पदार्थों को प्राप्त कराने वा (विश्वायुः) पूर्ण सौ वर्ष वा अधिक आयु को बढ़ाने (पृथु) अति विस्तृत (बृहत्) अनेक शुभ गुणों से प्रसिद्ध अत्यन्त बड़ा (अक्षितम्) प्रतिदिन बढ़नेवाला (श्रवः) जिसमें अनेक प्रकार की विद्या वा सुवर्ण आदि धन सुनने में आता है, उस धन को (संधेहि) अच्छे प्रकार नित्य के लिये दीजिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि ब्रह्मचर्य्य का धारण, विषयों की लम्पटता का त्याग, भोजन आदि व्यवहारों के श्रेष्ठ नियमों से विद्या और चक्रवर्त्ति राज्य की लक्ष्मी को सिद्ध करके संपूर्ण आयु भोगने के लिये-पूर्वोक्त धन के जोड़ने की इच्छा अपने पुरुषार्थ द्वारा करें कि जिससे इस संसार का वा परमार्थ का दृढ़ और विशाल अर्थात् अति श्रेष्ठ सुख सदैव बना रहे, परन्तु यह उक्त सुख केवल ईश्वर की प्रार्थना से ही नहीं मिल सकता, किन्तु उसकी प्राप्ति के लिये पूर्ण पुरुषार्थ भी करना अवश्य उचित है ॥ ७ ॥

अस्मे धेहि श्रवो बृहद् द्युम्नं सहस्रसातमम् । इन्द्र ता रथिनीरिषः ॥८॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अत्यन्त बलयुक्त ईश्वर ! आप (अस्मे) हमारे लिये (सहस्रसातमम्) असंख्यात सुखों का मूल (बृहत्) नित्य वृद्धि को प्राप्त होने योग्य (द्युम्नम्) प्रकाशमय ज्ञान तथा (श्रवः) पूर्वोक्त धन और (रथिनीरिषः) अनेक रथ आदि साधनसहित सेनाओं को (धेहि) अच्छे प्रकार दीजिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे जगदीश्वर ! आप कृपा करके जो अत्यन्त पुरुषार्थ के साथ जिस धन करके बहुत से सुखों को सिद्ध करनेवाली सेना प्राप्त होती है, उसको हम लोगों में नित्य स्थापन कीजिये ॥ ८ ॥

वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम् । होम गन्तारमूतये ॥९॥

पदार्थ—(गीर्भिः) वेदवाणी से (गृणन्तः) स्तुति करते हुये हम लोग (वसुपतिम्) अग्नि, पृथिवी, अन्तरिक्ष, आदित्यलोक, द्यौ अर्थात् प्रकाशमान लोक, चन्द्रलोक और नक्षत्र अर्थात् जितने तारे दीखते हैं, इन सब का नाम वसु है, क्योंकि ये ही निवास के स्थान हैं, इनका पति स्वामी और रक्षक (ऋग्मियम्) वेदमन्त्रों के प्रकाश करनेहारे (गन्तारम्) सब का अन्तर्यामी अर्थात् अपनी व्याप्ति से सब जगह प्राप्त होने तथा (इन्द्रम्) सब के धारण करनेवाले परमेश्वर को (वसोः) संसार में सुख के साथ वास कराने का हेतु जो विद्या आदि धन है उसकी (ऊतये) प्राप्ति और रक्षा के लिये (होम) प्रार्थना करते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को उचित है कि—जो ईश्वरपन का निमित्त, संसार का स्वामी, सर्वत्र व्यापक इन्द्र परमेश्वर है, उसकी प्रार्थना और ईश्वर के न्याय आदि गुणों की प्रशंसा, पुरुषार्थ के साथ सब प्रकार से अति श्रेष्ठ विद्या राज्यलक्ष्मी आदि पदार्थों को प्राप्त होकर उनकी उन्नति और रक्षा सदा करें ॥ ९ ॥

सुतेसुते न्योकसे बृहद् बृहत एदरिः । इन्द्राय शूषमर्चति ॥१०॥

पदार्थ—जो (**अरिः**) सब श्रेष्ठ गुण और उत्तम सुखों को प्राप्त होनेवाला विद्वान् मनुष्य (**सुतेसुते**) उत्पन्न हुए सब पदार्थों में (**बृहते**) संपूर्ण श्रेष्ठ गुणों में महान् सब में व्याप्त (**न्योकसे**) निश्चित जिसके निवासस्थान हैं, (**इत्**) उसी (**इन्द्राय**) परमेश्वर के लिये अपने (**बृहत्**) सब प्रकार से बड़े हुए (**शूषम्**) बल और सुख को (**आ**) अच्छी प्रकार (**अर्चति**) समर्पण करता है, वही बलवान् होता है ॥ १० ॥

भावार्थ—जब शत्रु भी मनुष्य सब में व्यापक मङ्गलमय उपमारहित परमेश्वर के प्रति नम्र होता है, तो जो ईश्वर की आज्ञा और उसकी उपासना में वर्त्तमान मनुष्य हैं, वे ईश्वर के लिये नम्र क्यों न हों ? जो ऐसे हैं वे ही बड़े बड़े गुणों से महात्मा होकर सबसे सत्कार किये जाने के योग्य होते, और वे ही विद्या और चक्रवर्ति राज्य के आनन्द को प्राप्त होते हैं। जो कि उनसे विपरीत हैं वे उस आनन्द को कभी नहीं प्राप्त हो सकते ॥ १० ॥

इस सूक्त में इन्द्र शब्द के अर्थ के वर्णन, उत्तम उत्तम धन आदि की प्राप्ति के अर्थ ईश्वर की प्रार्थना और अपने पुरुषार्थ करने की आज्ञा के प्रतिपादन करने से इस नवम सूक्त के अर्थ की संगति आठवें सूक्त के अर्थ के साथ मिलती है, ऐसा समझना चाहिये ।

इस सूक्त का भी अर्थ सायणाचार्य्य आदि आर्य्यावर्त्तवासियों तथा विलसन आदि अंगरेज लोगों ने सर्वथा मूल से विरुद्ध वर्णन किया है ॥

यह नवम सूक्त पूरा हुआ ॥

मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । १-३, ५, ६ विराडनुष्टुप् ; ४ भुरिगुष्णिक्; ७, ९-१२ अनुष्टुप्; ८ निचृदनुष्टुप् छन्दः १-२, ५-१२ गान्धारः; ४ ऋषभः स्वरः ॥

गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥१॥

पदार्थ—हे (शतक्रतो) असंख्यात कर्म और उत्तम ज्ञानयुक्त परमेश्वर ! (ब्रह्माणः) जैसे वेदों को पढ़कर उत्तम उत्तम क्रिया करनेवाले मनुष्य श्रेष्ठ उपदेश, गुण और अच्छी शिक्षाओं से (वंशम्) अपने वंश को (उद्येमिरे) प्रशस्त गुण-युक्त करके उद्यमवान् करते हैं, वैसे ही (गायत्रिणः) जिन्हों के गायत्र अर्थात् प्रशंसा करने योग्य छन्द राग आदि पढ़े हुये धार्मिक और ईश्वर की उपासना करने-वाले हैं, वे पुरुष (त्वा) आपकी (गायन्ति) सामवेदादि के गानों से प्रशंसा करते हैं, तथा (अर्किणः) अर्क अर्थात् जो कि वेद के मन्त्र पढ़ने के नित्य अभ्यासी हैं, वे (अर्कम्) सब मनुष्यों को पूजने योग्य (त्वा) आपका (अर्चन्ति) नित्य पूजन करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सब मनुष्यों को परमेश्वर ही की पूजा करनी चाहिये, अर्थात् उसकी आज्ञा के अनुकूल वेदविद्या को पढ़कर अच्छे अच्छे गुणों के साथ अपने और अन्यों के वंश को भी पुरुषार्थी करते हैं, वैसे ही अपने आप को भी होना चाहिये। और जो परमेश्वर के सिवाय दूसरे का पूजन करनेवाला पुरुष है, वह कभी उत्तम फल को प्राप्त होने योग्य नहीं हो सकता, क्योंकि न तो ईश्वर की ऐसी आज्ञा ही है, और न ईश्वर के समान कोई दूसरा पदार्थ है जिसका उसके स्थान में पूजन किया जावे। इससे सब मनुष्यों को उचति है कि परमेश्वर ही का गान और पूजन करें ॥ १ ॥

यत्सानोः सानुमारुहद्भूर्य्यस्पष्ट कर्त्त्वम् ।
तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति ॥२॥

पदार्थ—जैसे (यूथेन) वायुगण अथवा सुख के साधन हेतु पदार्थों के साथ (वृष्णिः) वर्षा करनेवाला सूर्य्य अपने प्रकाश करके (सानोः) पर्वत के एक शिखर से (सानुम्) दूसरे शिखर को (भूरि) बहुधा (आरुहत्) प्राप्त होता (अस्पष्ट) स्पर्श करता हुआ (एजति) क्रम से अपनी कक्षा में घूमता और घुमाता है, वैसे ही जो मनुष्य क्रम से एक कर्म को सिद्ध करके दूसरे को (कर्त्वम्) करने को (भूरि) बहुधा (आरुहत्) आरम्भ तथा (अस्पष्ट) स्पर्श करता हुआ (एजति) प्राप्त होता है, उस पुरुष के लिये (इन्द्रः) सर्वज्ञ ईश्वर उन कर्मों के करने को (सानोः) अनुक्रम से (अर्थम्) प्रयोजन के विभाग के साथ (भूरि) अच्छी प्रकार (चेतति) प्रकाश करता है ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में भी 'इव' शब्द की अनुवृत्ति से उपमालङ्कार समझना चाहिये। जैसे सूर्य्य अपने सम्मुख के पदार्थों को वायु के साथ वारंवार क्रम से अच्छी प्रकार आक्रमण आकर्षण और प्रकाश करके सब

पृथिवीलोकों को घुमाता है, वैसे ही जो मनुष्य विद्या से करने योग्य अनेक कर्मों को सिद्ध करने के लिये प्रवृत्त होता है, वही अनेक क्रियाओं से सब कार्य्यों के करने को समर्थ हो सकता तथा ईश्वर की सृष्टि में अनेक सुखों को प्राप्त होता, और उसी मनुष्य को ईश्वर भी अपनी कृपादृष्टि से देखता है, आलसी को नहीं ॥ २ ॥

युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा ।
अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर ॥३॥

पदार्थ—हे (**सोमपाः**) उत्तम पदार्थों के रक्षक (**इन्द्र**) सब में व्याप्त होने वाले ईश्वर ! जैसे आपका रचा हुआ सूर्य्यलोक जो अपने (**केशिना**) प्रकाश-युक्त बल और आकर्षण अर्थात् पदार्थों के खींचने का सामर्थ्य जो कि (**वृषणा**) वर्षा के हेतु और (**कक्ष्यप्रा**) अपनी अपनी कक्षाओं में उत्पन्न हुए पदार्थों को पूरण करने अथवा (**हरी**) हरण और व्याप्ति स्वभाववाले घोड़ों के समान और आकर्षण गुण हैं, उनको अपने कार्यों में जोड़ता है, वैसे ही आप (**नः**) हम लोगों को भी सब विद्या के प्रकाश के लिए उन विद्याओं में (**युङ्क्ष्व**) युक्त कीजिए। (**अथ**) इसके अनन्तर आपकी स्तुति में प्रवृत्त जो (**नः**) हमारी (**गिराम्**) वाणी हैं, उनका (**उपश्रुतिम्**) श्रवण (**चर**) स्वीकार वा प्राप्त कीजिये ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। सब मनुष्यों को सब विद्या पढ़ने के पीछे उत्तम क्रियाओं की कुशलता में प्रवृत्त होना चाहिये। जैसे सूर्य्य का उत्तम प्रकाश संसार में वर्तमान है, वैसे ही ईश्वर के गुण और विद्या के प्रकाश का सब में उपयोग करना चाहिये ॥ ३ ॥

एहि स्तोमाँ अभि स्वराभि गृणीह्यारुव ।
ब्रह्म च नो वसो सचेन्द्र यज्ञं च वर्धय ॥४॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) स्तुति करने के योग्य परमेश्वर ! जैसे कोई सब विद्याओं से परिपूर्ण विद्वान् (**स्तोमान्**) आपकी स्तुतियों के अर्थों को (**अभिस्वर**) यथावत् स्वीकार करता कराता वा गाता है, वैसे ही (**नः**) हम लोगों को प्राप्त कीजिये। तथा हे (**वसो**) सब प्राणियों को वसाने वा उनमें वसनेवाले ! कृपा से इस प्रकार प्राप्त होके (**नः**) हम लोगों के (**स्तोमान्**) वेदस्तुति के अर्थों को (**सचा**) विज्ञान और उत्तम कर्मों का संयोग कराके (**अभिस्वर**) अच्छी प्रकार उपदेश कीजिये (**ब्रह्म च**) और वेदार्थ को (**अभिगृणीहि**) प्रकाशित कीजिये। (**यज्ञं च**) हमारे लिये होम ज्ञान और शिल्पविद्यारूप क्रियाओं को (**वर्धय**) नित्य बढ़ाइये ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । जो पुरुष वेदविद्या वा सत्य के संयोग से परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करते हैं, उनके हृदय में ईश्वर अन्तर्यामी रूप से वेदमन्त्रों के अर्थों को यथावत् प्रकाश करके निरन्तर उनके लिये सुख का प्रकाश करता है, इससे उन पुरुषों में विद्या और पुरुषार्थ कभी नष्ट नहीं होते ॥ ४ ॥

उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिष्षिधे ।
शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत्सख्येषु च ॥५॥

पदार्थ—(यथा) जैसे कोई मनुष्य अपने (सुतेषु) सन्तानों और (सख्येषु) मित्रों के (उपकार) करने को प्रवृत्त होके सुखी होता है, वैसे ही (शक्रः) सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर (पुरुनिष्षिधे) पुष्कल शास्त्रों को पढ़ने पढ़ाने और धर्मयुक्त कामों में विचरनेवाले (इन्द्राय) सब के मित्र और ऐश्वर्य की इच्छा करने वाले धार्मिक जीव के लिये (वर्धनम्) विद्या आदि गुणों के बढ़ानेवाले (शंस्यम्) प्रशंसा (च) और (उक्थम्) उपदेश करने योग्य वेदोक्त स्तोत्रों के अर्थों का (रारणत्) अच्छी प्रकार प्रकाश करके सुखी बना रहे ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । इस संसार में जो जो शोभायुक्त रचना प्रशंसा और धन्यवाद हैं, वे सब परमेश्वर ही की अनन्त शक्ति का प्रकाश करते हैं, क्योंकि जैसे सिद्ध किये हुए पदार्थों में प्रशंसायुक्त रचना के अनेक गुण उन पदार्थों के रचनेवाले की ही प्रशंसा के हेतु हैं, वैसे ही परमेश्वर की प्रशंसा जानने वा प्रार्थना के लिये हैं । इस कारण जो जो पदार्थ हम ईश्वर से प्रार्थना के साथ चाहते हैं, सो सो हमारे अत्यन्त पुरुषार्थके द्वारा ही प्राप्त होने योग्य हैं, केवल प्रार्थनामात्र से नहीं ॥ ५ ॥

तमित्सखित्व ईमहे तं राये तं सुवीर्ये ।
स शक्र उत नः शकदिन्द्रो वसु दयमानः ॥६॥

पदार्थ—जो (नः) हमारे लिये (दयमानः) सुखपूर्वक रमण करने योग्य विद्या, आरोग्यता और सुवर्णादि धन का देनेवाला, विद्यादि गुणों का प्रकाशक और निरन्तर रक्षक तथा दुःख दोष वा शत्रुओं के विनाश और अपने धार्मिक सज्जन भक्तों के ग्रहण करने (शक्रः) अनन्त सामर्थ्ययुक्त (इन्द्रः) दुःखों का विनाश करनेवाला जगदीश्वर है, वही (वसु) विद्या और चक्रवर्ति राज्यादि परम धन देने को (शकत्) समर्थ है, (तमित्) उसी को हम लोग (उत) वेदादि शास्त्र सब

विद्वान् प्रत्यक्षादि प्रमाण और अपने भी निश्चय से (सखित्वे) मित्रों और अच्छे कर्मों के होने के निमित्त (तम्) उसको (राये) पूर्वोक्त विद्यादि धन के अर्थ और (तम्) उसी को (सुवीर्य्ये) श्रेष्ठ गुणों से युक्त उत्तम पराक्रम की प्राप्ति के लिये (ईमहे) याचते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को उचित है कि सब सुख और शुभ गुणों की प्राप्ति के लिये परमेश्वर ही की प्रार्थना करें, क्योंकि वह अद्वितीय सर्व-मित्र परमैश्वर्य्यवाला अनन्त शक्तिमान् ही का उक्त पदार्थों के देने में सामर्थ्य है ॥ ६ ॥

सुविवृतं सुनिरजमिन्द्र त्वादातमिद्यशः ।
गवामप व्रजं वृधि कृणुष्व राधो अद्रिवः ॥७॥

पदार्थ—जैसे यह (अद्रिवः) उत्तम प्रकाशादि धनवाला (इन्द्रः) सूर्य्य-लोक (सुनिरजम्) सुख से प्राप्त होने योग्य (त्वादातम्) उसी से सिद्ध होनेवाले (यशः) जल को (सुविवृतम्) अच्छी प्रकार विस्तार को प्राप्त (गवाम्) किरणों के (व्रजम्) समूह को संसार में प्रकाश होने के लिये (अपवृधि) फैलाता तथा (राधः) धन को प्रकाशित (कृणुष्व) करता है, वैसे हे (अद्रिवः) प्रशंसा करने योग्य (इन्द्र) महायशस्वी सब पदार्थों के यथायोग्य बांटनेवाले परमेश्वर ! आप हम लोगों के लिये (गवाम्) अपने विषय को प्राप्त होनेवाली मन आदि इन्द्रियों के ज्ञान और उत्तम उत्तम सुख देनेवाले पशुओं के (व्रजम्) समूह को (अपवृधि) प्राप्त करके उनके सुख के दरवाजे खोल तथा (सुविवृतम्) देश देशान्तर में प्रसिद्ध और (सुनिरजम्) सुख से करने और व्यवहारों में यथायोग्य प्रतीत होने योग्य (यशः) कीर्ति को वढ़ानेवाले अत्युत्तम (त्वादातम्) आपके ज्ञान से शुद्ध किया हुआ (राधः) जिससे कि अनेक सुख सिद्ध हो, ऐसे विद्या सुवर्णादि धन को हमारे लिये (कृणुष्व) कृपा करके प्राप्त कीजिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और लुप्तोपमालङ्कार हैं । हे परमेश्वर ! जैसे आपने सूर्य्यादि जगत् को उत्पन्न करके अपना यश और संसार का सब सुख प्रसिद्ध किया है, वैसे ही आप की कृपा से हम लोग भी अपने मन आदि इन्द्रयों को शुद्धि के साथ विद्या और धर्म के प्रकाश से युक्त तथा सुखपूर्वक सिद्ध और अपनी कीर्ति, विद्याधन और चक्रवर्ति राज्य का प्रकाश करके सब मनुष्यों को निरन्तर आनन्दित और कीर्तिमान् करें ॥ ७ ॥

नहि त्वा रोदसी उभे ऋघायमाणमिन्वतः ।
जेषः स्वर्वतीरपः सं गा अस्मभ्यं धूनुहि ॥८॥

पदार्थ—हे परमेश्वर ! ये (उभे) दोनों (रोदसी) सूर्य्य और पृथिवी जिस (ऋघायमाणम्) पूजा करने योग्य आपको (नहि) नहीं (इन्वतः) व्याप्त हो सकते, सो आप हम लोगों के लिये (स्वर्वतीः) जिनसे हमको अत्यन्त सुख मिले ऐसे (अपः) कर्मों को (जेषः) विजयपूर्वक प्राप्त करने के लिये हमारे (गाः) इन्द्रियों को (संधूनुहि) अच्छी प्रकार पूर्वोक्त कार्य्यों में संयुक्त कीजिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—जब कोई पूछे कि ईश्वर कितना बड़ा है, तो उत्तर यह है कि जिसको सब आकाश आदि बड़े बड़े पदार्थ भी घेर में नहीं लासकते, क्योंकि वह अनन्त है । इससे सब मनुष्यों को उचित है कि उसी परमात्मा का सेवन उत्तम उत्तम कर्म करने और श्रेष्ठ पदार्थों की प्राप्ति के लिये उसी की प्रार्थना करते रहें । जब जिसके गुण और कर्मों की गणना कोई नहीं कर सकता, तो कोई उसके अन्त पाने को समर्थ कैसे हो सकता है ? ॥ ८ ॥

आश्रुत्कर्ण श्रुधी हवं नू चिद्दधिष्व मे गिरः ।
इन्द्र स्तोममिमं मम कृष्वा युजश्चिदन्तरम् ॥९॥

पदार्थ—(आश्रुत्कर्ण) हे निरन्तर श्रवणशक्तिरूप कर्णवाले (इन्द्र) सर्वान्तर्यामि परमेश्वर ! (चित्) जैसे प्रीति बढ़ानेवाले मित्र अपनी (युजः) सत्य विद्या और उत्तम उत्तम गुणों में युक्त होनेवाले मित्र की (गिरः) वाणियों को प्रीति के साथ सुनता है, वैसे ही आप (नु) शीघ्र ही (मे) मेरी (गिरः) स्तुति तथा (हवम्) ग्रहण करने योग्य सत्य वचनों को (श्रुधि) सुनिये । तथा (मम) अर्थात् मेरी (स्तोमम्) स्तुतियों के समूह को (अन्तरम्) अपने ज्ञान के बीच (दधिष्व) धारण करके (युजः) अर्थात् पूर्वोक्त कामों में उक्त प्रकार से युक्त हुए हम लोगों की (अन्तरम्) भीतर की शुद्धि को (कृष्व) कीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को उचित है कि जो सर्वज्ञ जीवों के किये हुए वाणी के व्यवहारों का यथावत् श्रवण करनेहारा सर्वाधार अन्तर्यामि जीव और अन्तःकरण का यथावत् शुद्धि हेतु तथा सब का मित्र ईश्वर है, वही एक जानने वा प्रार्थना करने योग्य है ॥ ९ ॥

विद्मा हि त्वा वृषन्तमं वाजेषु हवनश्रुतम् ।
वृषन्तमस्य हूमह ऊतिं सहस्रसातमाम् ॥१०॥

पदार्थ—हे परमेश्वर! हम लोग (वाजेषु) संग्रामों में (हवनश्रुतम्) प्रार्थना को सुनने योग्य और (वृषन्तमम्) अभीष्ट कामों के अच्छी प्रकार देने और जाननेवाले (त्वा) आपको (विद्म) जानते हैं, (हि) जिस कारण हम लोग (वृषन्तमस्य) अतिशय करके श्रेष्ठ कामों को मेघ के समान वर्षानेवाले (तव) आपकी (सहस्रसातमाम्) अच्छी प्रकार अनेक सुखों की देनेवाली जो (ऊतिम्) रक्षा प्राप्ति और विज्ञान हैं, उनको (हूमहे) अधिक से अधिक मानते हैं॥ १०॥

भावार्थ—मनुष्यों को सब कामों की सिद्धि देने और युद्ध में शत्रुओं के विजय के हेतु परमेश्वर ही देनेवाला है, जिसने इस संसार में सब प्राणियों के सुख के लिये असंख्यात पदार्थ उत्पन्न वा रक्षित किये हैं, तथा उस परमेश्वर वा उसकी आज्ञा का आश्रय करके सर्वथा उपाय के साथ अपना वा सब मनुष्यों का सब प्रकार से सुख सिद्ध करना चाहिये॥ १०॥

आ तू न इन्द्र कौशिक मन्दसानः सुतं पिब ।
नव्यमायुः प्र सू तिर कृधि सहस्रसामृषिम् ॥११॥

पदार्थ—हे (कौशिक) सब विद्याओं के उपदेशक और उनके अर्थों के निरन्तर प्रकाश करनेवाले (इन्द्र) सर्वानन्दस्वरूप परमेश्वर! (मन्दसानः) आप उत्तम उत्तम स्तुतियों को प्राप्त हुए और सब को यथायोग्य जानते हुए (नः) हम लोगों के (सुतम्) यत्न से उत्पन्न किये हुए सोमादि रस वा प्रिय शब्दों से की हुई स्तुतियों का (आ) अच्छी प्रकार (पिब) पान कराइये (तु) और कृपा करके हमारे लिये (नव्यम्) नवीन (आयुः) अर्थात् निरन्तर जीवन को (प्रसूतिर) दीजिये, तथा (नः) हम लोगों में (सहस्रसाम्) अनेक विद्याओं के प्रकट करनेवाले (ऋषिम्) वेदवक्ता पुरुष को भी (कृधि) कीजिये॥ ११॥

भावार्थ—जो मनुष्य अपने प्रेम से विद्या का उपदेश करनेवाले होकर अर्थात् जीवों के लिये सब विद्याओं का प्रकाश सर्वदा शुद्ध परमेश्वर की स्तुति के साथ आश्रय करते हैं, वे सुख और विद्यायुक्त पूर्ण आयु तथा ऋषि भाव को प्राप्त होकर सब विद्या चाहनेवाले मनुष्यों को प्रेम के साथ उत्तम उत्तम विद्या से विद्वान् करते हैं॥ ११॥

परि॑ त्वा गिर्वणो॒ गिर॑ इ॒मा भ॑वन्तु वि॒श्वतः॑ ।
वृ॒द्धायु॒मनु॒ वृद्ध॑यो॒ जुष्टा॑ भवन्तु॒ जुष्ट॑यः ॥१२॥

पदार्थ—हे (**गिर्वणः**) वेदों तथा विद्वानों की वाणियों से स्तुति को प्राप्त होने योग्य परमेश्वर ! (**विश्वतः**) इस संसार में (**इमाः**) जो वेदोक्त वा विद्वान् पुरुषों की कही हुई (**गिरः**) स्तुति हैं, वे (**परि**) सब प्रकार से सब की स्तुतियों से सेवन करने योग्य जो आप हैं, उनको (**भवन्तु**) प्रकाश करनेहारी हों, और इसी प्रकार (**वृद्धयः**) वृद्धि को प्राप्त होने योग्य (**जुष्टाः**) प्रीति की देनेवाली स्तुतियां (**जुष्टयः**) जिनसे सेवन करते हैं, वे (**वृद्धायुम्**) जो कि निरन्तर सब कार्य्यों में अपनी उन्नति को आप ही बढ़ाने वाले आप का (**अनुभवन्तु**) अनुभव करें ॥ १२ ॥

भावार्थ—हे भगवन् परमेश्वर ! जो जो अत्युत्तम प्रशंसा है सो सो आपकी ही है, तथा जो जो सुख और आनन्द की वृद्धि होती है सो सो आप ही को सेवन करके विशेष वृद्धि को प्राप्त होती है । इस कारण जो मनुष्य ईश्वर तथा सृष्टि के गुणों का अनुभव करते हैं, वे ही प्रसन्न और विद्या की वृद्धि को प्राप्त होकर संसार में पूज्य होते हैं ॥ १२ ॥

इस मन्त्र में सायणाचार्य्य ने 'परिभवन्तु' इस पद का अर्थ यह किया है कि—'सब जगह से प्राप्त हों, यह व्याकरण आदि शास्त्रों से अशुद्ध है, क्योंकि "**परौ भुवोऽवज्ञाने**" व्याकरण के इस सूत्र से परिपूर्वक 'भू' धातु का अर्थ तिरस्कार अर्थात् अपमान करना होता है । आर्य्यावर्तवासी सायणाचार्य्य आदि तथा यूरोपखण्ड देशवासी साहबों ने इस दशवें सूक्त के अर्थ का अनर्थ किया है ।

जो लोग क्रम से विद्या आदि गुणों को ग्रहण और ईश्वर की प्रार्थना करके अपने उत्तम पुरुषार्थ का आश्रय लेकर परमेश्वर की प्रशंसा और धन्यवाद करते हैं, वे ही अविद्या आदि दुष्ट गुणों की निवृत्ति से शत्रुओं को जीत कर तथा अधिक अवस्थावाले और विद्वान् होकर सव मनुष्यों को सुख उत्पन्न करके सदा आनन्द में रहते हैं । इस अर्थ से इस दशम सूक्त की संगति नवम सूक्त के साथ जाननी चाहिये ॥ १२ ॥ १० ॥

यह दशम सूक्त पूरा हुआ ॥

जेता माधुच्छन्दस ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप् छन्दः : गान्धारः स्वरः ॥

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिम्पतिम् ॥१॥

पदार्थ—हमारी ये (**विश्वाः**) सब (**गिरः**) स्तुतियां (**समुद्रव्यचसम्**) जो आकाश में अपनी व्यापकता से परिपूर्ण ईश्वर, वा जो नौका आदि पूरण सामग्री से शत्रुओं को जीतनेवाले मनुष्य (**रथीनाम्**) जो बड़े बड़े युद्धों में विजय कराने वा करने वाले(**रथीतमम्**) जिसमें पृथिवी आदि रथ अर्थात् सब क्रीड़ाओं के साधन, तथा जिसके युद्ध के साधन बड़े बड़े रथ हैं, (**वाजानाम्**) अच्छी प्रकार जिनमें जय और पराजय प्राप्त होते हैं, उनके बीच (**सत्पतिम्**) जो विनाशरहित प्रकृति आदि द्रव्यों का पालन करनेवाला ईश्वर, वा सत्पुरुषों की रक्षा करनेहारा मनुष्य (**पतिम्**) जो चराचर जगत् और प्रजा के स्वामी, वा सज्जनों की रक्षा करनेवाले और (**इन्द्रम्**) विजय के देनेवाले परमेश्वर के, वा शत्रुओं को जीतनेवाले धर्मात्मा मनुष्य के (**अवीवृधन्**) गुणानुवादों को नित्य बढाती रहें ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। सब वेदवाणी परमैश्वर्ययुक्त सब में रहने सब जगह रमण करने सत्य स्वभाव तथा धर्मात्मा सज्जनों को विजय देनेवाले परमेश्वर और धर्म वा बल से दुष्ट मनुष्यों को जीतने तथा धर्मात्मा वा सज्जन पुरुषों की रक्षा करनेवाले मनुष्य का प्रकाश करती हैं। इस प्रकार परमेश्वर वेदवाणी से सब मनुष्यों को आज्ञा देता है ॥ १ ॥

सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।
त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम् ॥२॥

पदार्थ—हे (**शवसः**) अनन्तबल वा सेनाबल के (**पते**) पालन करनेहारे ईश्वर वा अध्यक्ष ! (**अभिजेतारम्**) प्रत्यक्ष शत्रुओं को जिताने वा जीतनेवाले (**अपराजितम्**) जिस का पराजय कोई भी न कर सके (**त्वा**) उस आप को (**वाजिनः**) उत्तम विद्या वा बल से अपने शरीर के उत्तम बल वा समुदाय को जानते हुए हम लोग (**प्रणोनुमः**) अच्छी प्रकार आप की वार वार स्तुति करते हैं, जिससे (**इन्द्र**) हे सब प्रजा वा सेना के स्वामी ! (**ते**) आप जगदीश्वर वा सभाध्यक्ष के साथ (**सख्ये**) हम लोग मित्रभाव करके शत्रुओं वा दुष्टों से कभी (**मा भेम**) भय न करें ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा के पालने वा अपने धर्मानुष्ठान से परमात्मा तथा शूरवीर आदि

मनुष्यों में मित्रभाव अर्थात् प्रीति रखते हैं, वे वलवाले होकर किसी मनुष्य से पराजय वा भय को प्राप्त कभी नहीं होते ॥ २ ॥

पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्यूतयः ।
यदि वाजस्य गोमतः स्तोतृभ्यो मंहते मघम् ॥३॥

पदार्थ—(**यदि**) जो परमेश्वर वा सभा और सेना का स्वामी (**स्तोतृभ्यः**) जो जगदीश्वर वा सृष्टि के गुणों की स्तुति करनेवाले धर्मात्मा विद्वान् मनुष्य हैं, उनके लिये (**वाजस्य**)जिसमें सव सुख प्राप्त होते हैं उस व्यवहार, तथा (**गोमतः**) जिसमें उत्तम पृथिवी, गौ आदि पशु और वाणी आदि इन्द्रियां वर्त्तमान हैं, उसके सम्बन्धी (**मघम्**) विद्या और सुवर्णादि धन को (**मंहते**) देता है, तो इस (**इन्द्रस्य**) परमेश्वर तथा सभा सेना के स्वामी की (**पूर्व्यः**) सनातन प्राचीन (**रातयः**) दानशक्ति तथा (**ऊतयः**) रक्षा हैं, वे कभी (**न**) नहीं (**विदस्यन्ति**) नाश को प्राप्त होतीं, किन्तु नित्य प्रति वृद्धि ही को प्राप्त रहती है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में भी श्लेषालङ्कार है । जैसे ईश्वर वा राजा की इस संसार में दान और रक्षा निश्चल न्याययुक्त होती हैं, वैसे अन्य मनुष्यों को भी प्रजा के बीच में विद्या और निर्भयता का निरन्तर विस्तार करना चाहिये । जो ईश्वर न होता तो यह जगत् कैसे उत्पन्न होता ? तथा जो ईश्वर सब पदार्थों को उत्पन्न करके सव मनुष्यों के लिये नहीं देता तो मनुष्यलोग कैसे जी सकते ? इससे सब कार्य्यों का उत्पन्न करने और सब सुखों का देनेवाला ईश्वर ही है, अन्य कोई नहीं, यह बात सब को माननी चाहिये ॥ ३ ॥

पुराम्भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥४॥

पदार्थ—जो यह (**अमितौजाः**) अनन्त वल वा जलवाला (**वज्री**) जिसके सब पदार्थों को प्राप्त करानेवाले शस्त्रसमूह वा किरण हैं, और (**पुराम्**) मिले हुए शत्रुओं के नगरों वा पदार्थों का (**भिन्दुः**) अपने प्रताप वा ताप से नाश वा अलग अलग करने (**युवा**) अपने गुणों से पदार्थों का मेल करने वा कराने तथा (**कविः**) राजनीति विद्या वा दृश्य पदार्थों का अपने किरणों से प्रकाश करनेवाला (**पुरुष्टुतः**) वहुत विद्वान् वा गुणों से स्तुति करने योग्य (**इन्द्रः**) सेनापति और सूर्य्यलोक (**विश्वस्य**) सब जगत् के (**कर्मणः**) कार्यों को (**धर्त्ता**) अपने बल और आकर्षण गुण से धारण करनेवाला (**अजायत**) उत्पन्न होता और हुआ है, वह सदा जगत् के व्यवहारों की सिद्धि का हेतु है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जैसे ईश्वर का रचा और धारण किया हुआ यह सूर्य्यलोक अपने वज्ररूपी किरणों से सब मूर्तिमान् पदार्थों को अलग अलग करने तथा बहुत से गुणों का हेतु और अपने आकर्षणरूप गुण से पृथिवी आदि लोकों का धारण करनेवाला है, वैसे ही सेनापति को उचित है कि शत्रुओं के बल का छेदन साम दाम और दण्ड से शत्रुओं को भिन्न भिन्न करके बहुत उत्तम गुणों को ग्रहण करता हुआ भूमि में अपने राज्य का पालन करे ॥ ४ ॥

त्वं बलस्य गोमतोऽपावरद्रिवो बिलम् ।
त्वां देवा अबिभ्युषस्तुज्यमानास आविषुः ॥५॥

पदार्थ—(**अद्रिवः**) जिसमें मेघ विद्यमान है ऐसा जो सूर्य्यलोक है, वह (**गोमतः**) जिसमें अपने किरण विद्यमान हैं उस (**अबिभ्युषः**) भयरहित (**बलस्य**) मेघ के (**बिलम्**) जलसमूह को (**अपावः**) अलग कर देता है, (**त्वाम्**) इस सूर्य्य को (**तुज्यमानासः**) अपनी अपनी कक्षाओं में भ्रमण करते हुए (**देवाः**) पृथिवी आदि लोक (**आविषुः**) विशेष करके प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्य्यलोक अपनी किरणों से मेघ के कठिन कठिन बद्दलों को छिन्न भिन्न करके भूमि पर गिराता हुआ जल की वर्षा करता है, क्योंकि यह मेघ उसकी किरणों में ही स्थिर रहता, तथा इसके चारों ओर आकर्षण अर्थात् खींचने के गुणों से पृथिवी आदि लोक अपनी अपनी कक्षा में उत्तम उत्तम नियम से घूमते हैं, इसी से समय के विभाग जो उत्तरायण, दक्षिणायन तथा ऋतु, मास, पक्ष, दिन, घड़ी, पल आदि हो जाते हैं, वैसे ही गुणवाला सेनापति होना उचित है ॥ ५ ॥

तवाहं शूर रातिभिः प्रत्यायं सिन्धुमावदन् ।
उपातिष्ठन्त गिर्वणो विदुष्टे तस्य कारवः ॥६॥

पदार्थ—हे (**शूर**) धार्मिक घोर युद्ध से दुष्टों की निवृत्ति करने तथा विद्या बल पराक्रमवाले वीर पुरुष ! जो (**तव**) आपके निर्भयता आदि दानों से मैं (**सिन्धुम्**) समुद्र के समान गम्भीर वा सुख देनेवाले आपको (**आवदन्**) निरन्तर कहता हुआ (**प्रत्यायम्**) प्रतीत करके प्राप्त होऊं। हे (**गिर्वणः**) मनुष्यों की स्तुतियों से सेवन करने योग्य ! जो (**ते**) आपके (**तस्य**) युद्ध राज्य वा शिल्प-विद्या के सहायक (**कारवः**) कारीगर हैं, वे भी आपको शूरवीर (**विदुः**) जानते

तथा (**उपातिष्ठन्त**) समीपस्थ होकर उत्तम काम करते हैं, वे सब दिन सुखी रहते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार हैं। ईश्वर सव मनुष्यों को आज्ञा देता है कि—जैसे मनुष्यों को धार्मिक प्रशंसनीय सभाध्यक्ष वा सेनापति मनुष्यों के अभयदान से निर्भयता को प्राप्त होकर जैसे समुद्र के गुणों को जानते हैं, वैसे ही उक्त पुरुष के आश्रय से अच्छी प्रकार जानकर उनको प्रसिद्ध करना चाहिये तथा दुःखों के निवारण से सब सुखों के लिये परस्पर विचार भी करना चाहिये ॥ ६ ॥

मायाभिरिन्द्र मायिनं त्वं शुष्णमवातिरः ।
विदुष्टे तस्य मेधिरास्तेषां श्रवांस्युत्तिर ॥७॥

पदार्थ—हे परमैश्वर्य को प्राप्त कराने तथा शत्रुओं की निवृत्ति करानेवाले शूरवीर मनुष्य ! (**त्वम्**) तू उत्तम बुद्धि सेना तथा शरीर के बल से युक्त हो के (**मायाभिः**) विशेष बुद्धि के व्यवहारों से (**शुष्णम्**) जो धर्मात्मा सज्जनों का चित्त व्याकुल करने (**मायिनम्**) दुर्बुद्धि दुःख देनेवाला सब का शत्रु मनुष्य है, उसका (**अवातिर**) पराजय किया कर, (**तस्य**) उसके मारने में (**मेधिराः**) जो शास्त्रों को जानने तथा दुष्टों को मारने में अति प्रवीण मनुष्य हैं, वे (**ते**) तेरे सङ्गम से सुखी और अन्नादि पदार्थों को प्राप्त हों, (**तेषाम्**) उन धर्मात्मा पुरुषों के सहाय से शत्रुओं के बलों को (**उत्तिर**) अच्छी प्रकार निवारण कर ॥ ७ ॥

भावार्थ—बुद्धिमान् मनुष्यों को ईश्वर आज्ञा देता है कि—साम, दाम, दण्ड और भेद की युक्ति से दुष्ट और शत्रु जनों की निवृत्ति करके विद्या और चक्रवर्ति राज्य की यथावत् उन्नति करनी चाहिये तथा जैसे इस संसार में कपटी, छली और दुष्ट पुरुष वृद्धि को प्राप्त न हों, वैसा उपाय निरन्तर करना चाहिये ॥ ७ ॥

इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमा अनूषत ।
सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥८॥

पदार्थ—(**यस्य**) जिस जगदीश्वर के ये सव (**स्तोमाः**) स्तुतियों के समूह (**सहस्रम्**) हजारों (**उत वा**) अथवा (**भूयसीः**) अधिक (**रातयः**) दान (**सन्ति**) हैं, उस (**ओजसा**) अनन्त बल के साथ वर्त्तमान (**ईशानम्**) कारण से सब जगत् को रचनेवाले तथा (**इन्द्रम्**) सकल ऐश्वर्ययुक्त जगदीश्वर के (**अभ्यनूषत**) सब प्रकार से गुणकीर्त्तन करते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—जिस दयालु ईश्वर ने प्राणियों के सुख के लिये जगत् में

अनेक उत्तम उत्तम पदार्थ अपने पराक्रम से उत्पन्न करके जीवों को दिये हैं, उसी ब्रह्म के स्तुतिविधायक सब धन्यवाद होते हैं, इसलिये सब मनुष्यों को उसी का आश्रय लेना चाहिये ॥ ८ ॥

इस सूक्त में इन्द्र शब्द से ईश्वर की स्तुति, निर्भयता-सम्पादन, सूर्य्य-लोक के कार्य्य, शूरवीर के गुणों का वर्णन, दुष्ट शत्रुओं का निवारण, प्रजा की रक्षा तथा ईश्वर के अनन्त सामर्थ्य से कारण करके जगत् की उत्पत्ति आदि के विधान से इस ग्यारहवें सूक्त की सङ्गति दशवें सूक्त के अर्थ के साथ जाननी चाहिये ।

यह भी सूक्त सायणाचार्य्य आदि आर्य्यावर्त्तवासी तथा यूरोपदेश-वासी विलसन साहब आदि ने विपरीत अर्थ के साथ वर्णन किया है ॥ ८ ॥

यह ग्यारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

काण्वो मेधातिथिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अ॒ग्निं दू॒तं वृ॑णीमहे॒ होता॑रं वि॒श्ववे॑दसम् । अ॒स्य य॒ज्ञस्य॑ सु॒क्रतु॑म् ॥१॥

पदार्थ—क्रिया करने की इच्छा करनेवाले हम मनुष्यलोग (**अस्य**) प्रत्यक्ष सिद्ध करने योग्य (**यज्ञस्य**) शिल्पविद्यारूप यज्ञ के (**सुक्रतुम्**) जिससे उत्तम उत्तम क्रिया सिद्ध होती हैं, तथा (**विश्ववेदसम्**) जिससे कारीगरों को सब शिल्प आदि साधनों का लाभ होता है, (**होतारम्**) यानों में वेग आदि को देने (**दूतम्**) पदार्थों को एक देश से दूसरे देश को प्राप्त करने (**अग्निम्**) सब पदार्थों को अपने तेज से छिन्न भिन्न करनेवाले भौतिक अग्नि को (**वृणीमहे**) स्वीकार करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—ईश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा देता है कि—यह प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष से विद्वानों ने जिसके गुण प्रसिद्ध किये हैं तथा पदार्थों को ऊपर नीचे पहुंचाने से दूत स्वभाव तथा शिल्पविद्या से जो कलायन्त्र बनते हैं, उनके चलाने में हेतु और विमान आदि यानों में वेग आदि क्रियाओं का देनेवाला भौतिक अग्नि अच्छी प्रकार विद्या से सब सज्जनों के उपकार के लिये निरन्तर ग्रहण करना चाहिये, जिससे सब उत्तम उत्तम सुख हों ॥ १ ॥

अ॒ग्निम॑ग्निं॒ हवी॑मभिः॒ सदा॑ हवन्त वि॒श्पति॑म् । ह॒व्य॒वाहं॑ पुरुप्रि॒यम् ॥२॥

पदार्थ—जैसे हम लोग (हवीमभिः) ग्रहण करने योग्य उपासनादिकों तथा शिल्पविद्या के साधनों से (पुरुप्रियम्) बहुत सुख करानेवाले (विश्पतिम्) प्रजाओं के पालन हेतु और (हव्यवाहम्) देने लेने योग्य पदार्थों को देने और इधर उधर पहुँचानेवाले (अग्निम्) परमेश्वर, प्रसिद्ध अग्नि और बिजली को (वृणीमहे) स्वीकार करते हैं, वैसे ही तुम लोग भी सदा (हवन्त) उस का ग्रहण करो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। और पिछले मन्त्र से 'वृणीमहे' इस पद की अनुवृत्ति आती है। ईश्वर सब मनुष्यों के लिये उपदेश करता है कि—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को विद्युत् अर्थात् बिजुलीरूप तथा प्रत्यक्ष भौतिक अग्नि से कलाकौशल आदि सिद्ध करके इष्ट सुख सदैव भोगने और भुगवाने चाहियें ॥ २ ॥

अग्ने॑ दे॒वाँ इ॒हा व॑ह जज्ञा॒नो वृ॒क्तब॑र्हिषे । असि॒ होता॑ न॒ ईड्यः॑ ॥३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) स्तुति करने योग्य जगदीश्वर ! जो आप (इह) इस स्थान में (जज्ञानः) प्रकट कराने वा (होता) हवन किये हुए पदार्थों को ग्रहण करने तथा (ईड्यः) खोज करने योग्य (असि) हैं, सो (नः) हम लोग और (वृक्तबर्हिषे) अन्तरिक्ष में होम के पदार्थों को प्राप्त करनेवाले विद्वान् के लिये (देवान्) दिव्यगुणयुक्त पदार्थों को (आवह) अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिये ॥ १ ॥

जो (होता) हवन किये हुए पदार्थों का ग्रहण करने तथा (जज्ञानः) उनकी उत्पत्ति करानेवाला (अग्ने) भौतिक अग्नि (वृक्तबर्हिषे) जिसके द्वारा होम करने योग्य पदार्थ अन्तरिक्ष में पहुँचाये जाते हैं, वह उस ऋत्विज के लिये (इह) इस स्थान में (देवान्) दिव्यगुणयुक्त पदार्थों को (आवह) सब प्रकार से प्राप्त करता है। इस कारण (नः) हम लोगों को वह (ईड्यः) खोज करने योग्य (असि) होता है ॥ २ ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। हे मनुष्य लोगो ! जिस प्रत्यक्ष अग्नि में सुगन्धि आदि गुणयुक्त पदार्थों का होम किया करते हैं, जो उन पदार्थों के साथ अन्तरिक्ष में ठहरनेवाले वायु और मेघ के जल को शुद्ध करके इस संसार में दिव्य सुख उत्पन्न करता है, इस कारण हम लोगों को इस अग्नि के गुणों का खोज करना चाहिये, यह ईश्वर की आज्ञा सब को अवश्य माननी योग्य है ॥ ३ ॥

ताँ उ॑श॒तो वि बो॑धय॒ यद॑ग्ने॒ यासि॑ दू॒त्य॑म् ।
दे॒वैरा स॑त्सि ब॒र्हिषि॑ ॥४॥

पदार्थ—यह (अग्ने) अग्नि (यत्) जिस कारण (बर्हिषि) अन्तरिक्ष में (देवैः) दिव्य पदार्थों के संयोग से (दूत्यम्) दूत भाव को (आयासि) सब प्रकार से प्राप्त होता है, (तान्) उन दिव्य गुणों को (विबोधय) विदित करानेवाला होता और उन पदार्थों के (सत्सि) दोषों का विनाश करता है, इस से सब मनुष्यों को विद्या सिद्धि के लिये इस अग्नि की ठीक ठीक परीक्षा करके प्रयोग करना चाहिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—परमेश्वर आज्ञा देता है कि–हे मनुष्यो ! यह अग्नि तुम्हारा दूत है, क्योंकि हवन किये हुए परमाणुरूप पदार्थों को अन्तरिक्ष में पहुँचाता और उत्तम उत्तम भोगों की प्राप्ति का हेतु है। इस से सब मनुष्यों को अग्नि के जो प्रसिद्ध गुण हैं, उनको संसार में अपने कार्य्यों की सिद्धि के लिये अवश्य प्रकाशित करना चाहिये ॥ ४ ॥

घृताहवन दीदिवः प्रति ष्म रिषतो दह । अग्ने त्वं रक्षस्विनः ॥५॥

पदार्थ—(घृताहवन) जिसमें घी तथा जल क्रिया सिद्ध होने के लिये छोड़ा जाता और जो अपने (दीदिवः) शुभ गुणों से पदार्थों को प्रकाश करने वाला है, (त्वम्) वह (अग्ने) अग्नि (रक्षस्विनः) जिन समूहों में राक्षस अर्थात् दुष्टस्वभाववाले और निन्दा के भरे हुए मनुष्य विद्यमान हैं, तथा जो कि (रिषतः) हिंसा के हेतु दोष और शत्रु हैं उनका (प्रति दह स्मः) अनेक प्रकार से विनाश करता है, हम लोगों को चाहिये कि उस अग्नि को कार्यों में नित्य संयुक्त करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो अग्नि इस प्रकार सुगन्ध्यादि गुणवाले पदार्थों से संयुक्त होकर सब दुर्गन्ध आदि दोषों को निवारण करके सब के लिये सुखदायक होता है, वह अच्छे प्रकार काम में लाना चाहिये। ईश्वर का यह वचन सब मनुष्यों को मानना उचित है ॥ ५ ॥

अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा । हव्यवाड् जुह्वास्यः ॥६॥

पदार्थ—मनुष्यों को उचित है कि जो (जुह्वास्यः) जिस का मुख ज्वाला तेज और (कविः) क्रान्तदर्शन अर्थात् जिसमें स्थिरता के साथ दृष्टि नहीं पड़ती, तथा जो (युवा) पदार्थों के साथ मिलने और उनको पृथक् पृथक् करने (हव्यवाट्) होम किये हुए पदार्थों को देशान्तरों में पहुँचाने और (गृहपतिः) स्थान तथा उनमें रहने वालों का पालन करनेवाला है, उससे (अग्निः) यह प्रत्यक्ष रूपवान् पदार्थों को जलाने, पृथिवी और सूर्य्यलोक में ठहरनेवाला अग्नि (अग्निना) बिजुली से (समिध्यते) अच्छी प्रकार प्रकाशित होता है, वह बहुत कामों को सिद्ध करने के लिये प्रयुक्त करना चाहिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो यह सब पदार्थों में मिला हुआ विद्युद्रूप अग्नि कहाता है, उसी से प्रत्यक्ष यह सूर्य्यलोक और भौतिक अग्नि प्रकाशित होते हैं, और फिर जिसमें छिपे हुए विद्युद्रूप हो के रहते हैं, जो इनके गुण और विद्या को ग्रहण करके मनुष्य लोग उपकार करें, तो उनसे अनेक व्यवहार सिद्ध होकर उनको अत्यन्त आनन्द की प्राप्ति होती है, यह जगदीश्वर का वचन है ॥ ६ ॥

कविमग्निमुपस्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे । देवममीवचातनम् ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! तू (**अध्वरे**) उपासना करने योग्य व्यवहार में (**सत्यधर्माणम्**) जिसके धर्म नित्य और सनातन हैं, जो (**अमीवचातनम्**) अज्ञान आदि दोषों का विनाश करने तथा (**कविम्**) सब की बुद्धियों को अपने सर्वज्ञपन से प्राप्त होकर (**देवम्**) सब सुखों का देनेवाला (**अग्निम्**) सर्वज्ञ ईश्वर है, उसको (**उपस्तुहि**) मनुष्यों के समीप प्रकाशित कर ॥ १ ॥

हे मनुष्य ! तू (**अध्वरे**) करने योग्य यज्ञ में (**सत्यधर्माणम्**) जो कि अविनाशी गुण और (**अमीवचातनम्**) ज्वरादि रोगों का विनाश करने तथा (**कविम्**) सब स्थूल पदार्थों को दिखानेवाला और (**देवम्**) सब सुखों का दाता (**अग्निम्**) भौतिक अग्नि है, उसको (**उपस्तुहि**) सब के समीप सदा प्रकाशित करें [२] ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । मनुष्यों को सत्यविद्या से धर्म की प्राप्ति तथा शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये ईश्वर और भौतिक अग्नि के गुण अलग अलग प्रकाशित करने चाहिये । जिससे प्राणियों को रोग आदि के विनाश पूर्वक सब सुखों की प्राप्ति यथावत् हो ॥ ७ ॥

यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्य्यति । तस्य स्म प्राविता भव ॥८॥

पदार्थ—हे (**देव**) सब के प्रकाश करनेवाले (**अग्ने**) विज्ञानस्वरूप जगदीश्वर ! जो मनुष्य (**हविष्पतिः**) देने लेने योग्य वस्तुओं का पालन करनेवाला (**यः**) जो मनुष्य (**दूतम्**) ज्ञान देनेवाले आपका (**सपर्य्यति**) सेवन करता है, (**तस्य**) उस सेवक मनुष्य के आप (**प्राविता**) अच्छी प्रकार जाननेवाले (**भव**) हों ॥ १ ॥

(**यः**) जो (**हविष्पतिः**) देने लेने योग्य पदार्थों की रक्षा करनेवाला मनुष्य (**देव**) प्रकाश और दाहगुणवाले (**अग्ने**) भौतिक अग्नि का (**सपर्य्यति**) सेवन करता है, (**तस्य**) उस मनुष्य का वह अग्नि (**प्राविता**) नाना प्रकार के सुखों से रक्षा करनेवाला (**भव**) होता है ॥ २ ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । दूत शब्द का अर्थ दो पक्ष में

समझना चाहिये, अर्थात् एक इस प्रकार से कि सब मनुष्यों में ज्ञान का पहुंचाना ईश्वर पक्ष, तथा एक देश से दूसरे देश में पदार्थों का पहुंचाना भौतिक पक्ष में ग्रहण किया गया है। जो आस्तिक अर्थात् परमेश्वर में विश्वास रखने वाले मनुष्य अपने हृदय में सर्वसाक्षी का ध्यान करते हैं, वे पुरुष ईश्वर से रक्षा को प्राप्त होकर पापों से बचकर धर्मात्मा हुए अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं, तथा जो युक्ति से विमान आदि रथों में भौतिक अग्नि को संयुक्त करते हैं, वे भी युद्धादिकों में रक्षा को प्राप्त होकर औरों की रक्षा करनेवाले होते हैं ॥ ८ ॥

यो अ॒ग्निं दे॒ववी॑तये ह॒विष्माँ॑ आ॒विवा॑सति । तस्मै॑ पावक मृळय ॥९॥

पदार्थ—हे (**पावक**) पवित्र करनेवाले ईश्वर ! (**यः**) जो (**हविष्मान्**) उत्तम उत्तम पदार्थ वा कर्म करनेवाला मनुष्य (**देववीतये**) उत्तम उत्तम गुण और भोगों की परिपूर्णता के लिये (**अग्निम्**) सब सुखों के देनेवाले आपको (**आविवासति**) अच्छी प्रकार सेवन करता है, (**तस्मै**) उस सेवन करनेवाले मनुष्य को आप (**मृडय**) सब प्रकार सुखी कीजिये ॥ १ ॥

यह जो (**हविष्मान्**) उत्तम पदार्थवाला मनुष्य (**देववीतये**) उत्तम भोगों की प्राप्ति के लिये (**अग्निम्**) सुख करानेवाले भौतिक अग्नि का (**आविवासति**) अच्छी प्रकार सेवन करता है, (**तस्मै**) उसको यह अग्नि (**पावक**) पवित्र करनेवाला होकर (**मृडय**) सुखयुक्त करता है ॥ २ ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जो मनुष्य अपने सत्य भाव कर्म और विज्ञान से परमेश्वर का सेवन करते हैं, वे दिव्य गुण पवित्र कर्म और उत्तम उत्तम सुखों को प्राप्त होते हैं। तथा जिससे यह दिव्य गुणों का प्रकाश करनेवाला अग्नि रचा है, उस अग्नि से मनुष्यों को उत्तम उत्तम उपकार लेने चाहियें, इस प्रकार ईश्वर का उपदेश है ॥ ९ ॥

स नः॑ पावक दीदि॒वोऽग्ने॑ दे॒वाँ इ॒हाव॑ह । उप॑ य॒ज्ञं ह॒विश्च॑ नः ॥१०॥

पदार्थ—हे (**दीदिवः**) अपने सामर्थ्य से प्रकाशवान् (**पावक**) पवित्र करने तथा (**अग्ने**) सब पदार्थों को प्राप्त करानेवाले (**सः**) जगदीश्वर ! आप (**नः**) हम लोगों के सुख के लिये (**इह**) इस संसार में (**देवान्**) विद्वानों को (**आवह**) प्राप्त कीजिये, तथा (**नः**) हमारे (**यज्ञम्**) उक्त तीन प्रकार के यज्ञ और (**हविः**) देनेलेने योग्य पदार्थों को (**उपावह**) हमारे समीप प्राप्त कीजिये ॥ १ ॥

(**यः**) जो (**दीदिवः**) प्रकाशमान तथा (**पावक**) शुद्धि का हेतु (**अग्ने**) भौतिक अग्नि अच्छी प्रकार कलायन्त्रों में युक्त किया हुआ (**नः**) हम लोगों के

सुख के लिये (इह) हमारे समीप (देवान्) दिव्य गुणों को (आवह) प्राप्त करता है, वह (नः) हमारे तीन प्रकार के उक्त (यज्ञम्) यज्ञ को तथा (हविः) उक्त पदार्थों को प्राप्त होकर सुखों को (उपावह) हमारे समीप प्राप्त करता रहता है ॥ २ ॥ * १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जिस प्राणी को किसी पदार्थ की इच्छा उत्पन्न हो, वह अपनी कामसिद्धि के लिये परमेश्वर की प्रार्थना और पुरुषार्थ करे। जैसे इस वेद में जगदीश्वर के गुण स्वभाव तथा औरों के उपपन्न किये हुए दृष्टिगोचर होते हैं, वैसे मनुष्यों को उनके अनुकूल कर्म के अनुष्ठान से अग्नि आदि पदार्थों के गुणों को ग्रहण करके अनेक प्रकार व्यवहार की सिद्धि करनी चाहिये ॥ १० ॥

स नः स्तवान आ भर गायत्रेण नवीयसा ।
रयिं वीरवतीमिषम् ॥११॥

पदार्थ—हे भगवन् ! (सः) जगदीश्वर आप ! (नवीयसा) अच्छी प्रकार मन्त्रों के नवीन पाठ गानयुक्त (गायत्रेण) गायत्री छन्दवाले प्रगाथों से (स्तवानः) स्तुति को प्राप्त किये हुए (नः) हमारे लिये (रयिम्) विद्या और चक्रवर्ति राज्य से उत्पन्न होनेवाले धन तथा जिसमें (वीरवतीम्,) अच्छे अच्छे वीर तथा विद्वान् हों, उस (इषम्) सज्जनों के इच्छा करने योग्य उत्तम क्रिया का (आभर) अच्छी प्रकार धारण कीजिये ॥ १ ॥

(सः) उक्त भौतिक अग्नि (नवीयसा) अच्छी प्रकार मन्त्रों के नवीन नवीन पाठ तथा गानयुक्त स्तुति और (गायत्रेण) गायत्री छन्द वाले प्रगाथों से (स्तवानः) गुणों के साथ ग्रहण किया हुआ (रयिम्) उक्त प्रकार का धन (च) और (वीरवतीम्, इषम्) उक्त गुणवाली उत्तम क्रिया को (आभर) अच्छी प्रकार धारण करता है (२) ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। तथा पहिले मन्त्र से 'चकार' की अनुवृत्ति की है। हरएक मनुष्य को वेद आदि के नवीन नवीन अध्ययन से वेद की उच्चारणक्रिया प्राप्त होती है, इस कारण 'नवीयसा' इस पद का उच्चारण किया है।

जिन धर्मात्मा मनुष्यों ने यथावत् शब्दार्थपूर्वक वेद के पढ़ने और वेदोक्त कर्मों के अनुष्ठान से जगदीश्वर को प्रसन्न किया है, उन मनुष्यों को वह उत्तम उत्तम विद्या आदि धन तथा शूरता आदि गुणों को उत्पन्न

* इसके आगे सर्वत्र एक (१) अङ्क से पहले अन्वय का अर्थ और दूसरे अङ्क से दूसरे अन्वय का अर्थ जानना ॥

करनेवाली श्रेष्ठ कामना को देता है, क्योंकि जो वेद के पढ़ने और परमेश्वर के सेवन से युक्त मनुष्य हैं, वे अनेक सुखों का प्रकाश करते हैं ॥ ११

अग्ने॑ शु॒क्रेण॑ शो॒चिषा॒ विश्वा॑भिर्दे॒वहू॑तिभिः ।

इ॒मं स्तोमं॑ जुषस्व नः ॥१२॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) प्रकाशमय ईश्वर ! आप कृपा करके (**शुक्रेण**) अनन्त वीर्य के साथ (**शोचिषा**) शुद्धि करने वाले प्रकाश तथा (**विश्वाभिः देवहूतिभिः**) विद्वान् और वेदों की वाणियों से सब प्राणियों के लिये (**नः**) हमारे (**इमम्**) इस प्रत्यक्ष (**स्तोमम्**) स्तुतिसमूह को (**जुषस्व**) प्रीति के साथ सेवन कीजिए ॥ १ ॥

यह (**अग्ने**) भौतिक अग्नि (**विश्वाभिः**) सब (**देवहूतिभिः**) विद्वान् तथा वेदों की वाणियों से अच्छी प्रकार सिद्ध किया हुआ (**शुक्रेण**) अपनी कान्ति वा (**शोचिषा**) पवित्र करनेवाले प्रकाश से (**नः**) हमारे (**इमम्**) इस (**स्तोमम्**) प्रशंसा करने योग्य कला की कुशलता को (**जुषस्व**) सेवन करता है ॥ २ ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। दिव्य विद्याओं के प्रकाश होने से देव शब्द से वेदों का ग्रहण किया है। जब मनुष्य लोग सत्य प्रेम के साथ वेदवाणी से जगदीश्वर की स्तुति करते हैं, तब वह परमेश्वर उन मनुष्यों को विद्यादान से प्रसन्न करता है। वैसे ही यह भौतिक अग्नि भी विद्या से कलाकुशलता में युक्त किया हुआ इन्धन आदि पदार्थों में ठहर कर सब क्रियाकाण्ड का सेवन करता है ॥ १२ ॥

इस बारहवें सूक्त के अर्थ की, अग्नि शब्द के अर्थ के योग से, ग्यारहवें सूक्त के अर्थ से, सङ्गति जाननी चाहिये।

यह भी सूक्त सायणाचार्य्य आदि आर्य्यावर्तवासी तथा यूरोपदेशवासी विलसन आदि ने विपरीतता से वर्णन किया है ॥

यह बारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

कण्व ऋषिः । इध्मः समिद्धोऽग्निः; तनूनपात्; नराशंसः; इडः; बर्हिः; देवीर्द्वारः; उषासानक्ता; दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ; सरस्वतीडा भारत्यस्तिस्रो देव्यः; त्वष्टा; वनस्पतिः; स्वाहाकृतयश्च द्वादश देवताः । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

सुसमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते । होतः पावक यक्षि च ॥१॥

पदार्थ—हे (**होतः**) पदार्थों को देने और (**पावक**) शुद्ध करनेवाले (**अग्ने**) विश्व के ईश्वर ! जिस हेतु से (**सुसमिद्धः**) अच्छी प्रकार प्रकाशवान् आप कृपा करके (**नः**) हमारे (**च**) तथा (**हविष्मते**) जिसके बहुत हवि अर्थात् पदार्थ विद्यमान हैं उस विद्वान् के लिये (**देवान्**) दिव्य पदार्थों को (**आवह**) अच्छी प्रकार प्राप्त करते हैं, इससे मैं आपका निरन्तर (**यक्षि**) सत्कार करता हूँ ॥ १ ॥

जिससे यह (**पावक**) पवित्रता का हेतु (**होता**) पदार्थों का ग्रहण करने तथा (**सुसमिद्धः**) अच्छी प्रकार प्रकाशवाला (**अग्ने**) भौतिक अग्नि (**नः**) हमारे (**च**) तथा (**हविष्मते**) उक्त पदार्थ वाले विद्वान् के लिये (**देवान्**) दिव्य पदार्थों को (**आवह**) अच्छी प्रकार प्राप्त करता है, इससे मैं उक्त अग्नि को (**यक्षि**) कार्य्यसिद्धि के लिये अपने समीपवर्त्ती करता हूँ ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । जो मनुष्य बहुत प्रकार की सामग्री को ग्रहण करके, विमान आदि यानों में, सब पदार्थों के प्राप्त करानेवाले अग्नि की, अच्छी प्रकार योजना करता है, उस मनुष्य के लिये वह अग्नि नाना प्रकार के सुखों की सिद्धि करानेवाला होता है ॥ १ ॥

मधुमन्तं तनूनपाद्यज्ञं देवेषु नः कवे । अद्या कृणुहि वीतये ॥२॥

पदार्थ—जो (**तनूनपात्**) शरीर तथा ओषधि आदि पदार्थों के छोटे छोटे अंशों का भी रक्षा करने और (**कवे**) सब पदार्थों का दिखानेवाला अग्नि है, वह (**देवेषु**) विद्वानों तथा दिव्य पदार्थों में (**वीतये**) सुख प्राप्त होने के लिये (**अद्य**) आज (**नः**) हमारे (**मधुमन्तम्**) उत्तम उत्ताम रसयुक्त (**यज्ञम्**) यज्ञ को (**कृणुहि**) निश्चित करता है ॥ २ ॥

भावार्थ—जब अग्नि में सुगन्धि आदि पदार्थों का हवन होता है, तभी वह यज्ञ वायु आदि पदार्थों को शुद्ध तथा शरीर और औषधि आदि पदार्थों की रक्षा करके, अनेक प्रकार के रसों को उत्पन्न करता है, तथा उन शुद्ध पदार्थों के भोग से, प्राणियों के विद्या ज्ञान और बल की वृद्धि भी होती है ॥ २ ॥

नराशंसमिह प्रियमस्मिन् यज्ञ उप ह्वये । मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥३॥

पदार्थ—मैं (**अस्मिन्**) इस (**यज्ञे**) अनुष्ठान करने योग्य यज्ञ तथा (**इह**) संसार में (**हविष्कृतम्**) जो कि होम करने योग्य पदार्थों से प्रदीप्त किया

जाता है, और (**मधुजिह्वम्**) जिसकी काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिङ्गिनी और विश्वरूपी ये अति प्रकाशमान चपल ज्वालारूपी जीभें हैं (**प्रियम्**) जो सब जीवों को प्रीति देने और (**नराशंसम्**) जिस सुख की मनुष्य प्रशंसा करते हैं, उसके प्रकाश करनेवाले अग्नि को (**उपह्वये**) समीप प्रज्वलित करता हूँ ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो भौतिक अग्नि इस संसार में होम के निमित्त युक्ति से ग्रहण किया हुआ प्राणियों की प्रसन्नता करानेवाला है, उस अग्निकी सात जीभे हैं। अर्थात् काली—जोकि सुपेद आदि रङ्ग का प्रकाश करनेवाली, कराली—सहने में कठिन, मनोजवा—मन के समान वेगवाली, सुलोहिता—जिनका उत्तम रक्तवर्ण है, सुधूम्रवर्णा—जिसका सुन्दर धुमलासा वर्ण है, स्फुलिङ्गिनी—जिससे बहुत से चिनगे उठते हों, तथा विश्वरूपी—जिसका सब रूप हैं। ये देवी अर्थात् अतिशय करके प्रकाशमान और लेलायमाना—प्रकाश से सब जगह जानेवाली सात प्रकार की जिह्वा हैं, अर्थात् सब पदार्थों को ग्रहण करनेवाली होती हैं। इन उक्त सात प्रकार की अग्नि की जीभों से सब पदार्थों में उपकार लेना मनुष्यों को चाहिये ॥ ३ ॥

अग्ने॑ सु॒खत॑मे॒ रथे॑ दे॒वाँ ई॑ळि॒त आ व॑ह । असि॒ होता॒ मनु॑र्हितः ॥४॥

पदार्थ—जो (**अग्ने**) भौतिक अग्नि (**मनुः**) विद्वान् लोग जिसको मानते हैं तथा (**होता**) सब सुखों का देने और (**ईडितः**) मनुष्यों को स्तुति करने योग्य (**असि**) है, वह (**सुखतमे**) अत्यन्त सुख देने तथा (**रथे**) गमन और विहार करानेवाले विमान आदि सवारियों में (**हितः**) स्थापित किया हुआ (**देवान्**) दिव्य भोगों को (**आवह**) अच्छे प्रकार देशान्तर में प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को बहुत कलाओं से संयुक्त, पृथिवी जल और अन्तरिक्ष में गमन का हेतु, तथा अग्नि वा जल आदि पदार्थों से संयुक्त तीन प्रकार का रथ कल्याणकारक तथा अत्यन्त सुख देनेवाला होकर बहुत उत्तम उत्तम कार्यों की सिद्धि को प्राप्त करानेवाला होता है ॥ ४ ॥

स्तृ॒णी॒त ब॒र्हिरा॑नु॒षग्घृ॒तपृ॑ष्ठं मनीषिणः । यत्रा॒मृत॑स्य॒ चक्ष॑णम् ॥५॥

पदार्थ—हे (**मनीषिणः**) बुद्धिमान् विद्वानो ! (**यत्र**) जिस अन्तरिक्ष में (**अमृतस्य**) जलसमूह का (**चक्षणम्**) दर्शन होता है, उस (**आनुषक्**) चारों ओर से घिरे और (**घृतपृष्टम्**) जल से भरे हुये (**बर्हिः**) अन्तरिक्ष को (**स्तृणीत**) होम के धूम से आच्छादन करो, उसी अन्तरिक्षमें अन्य भी बहुत पदार्थ जल आदि को जानो ॥ ५ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग अग्नि में जो घृत आदि पदार्थ छोड़ते हैं, वे अन्तरिक्ष को प्राप्त होकर, वहाँ के ठहरे हुए जल को शुद्धकरते हैं, और वह शुद्ध हुआ जल सुगन्धि आदि गुणों से सब पदार्थों को आच्छादन करके सब प्राणियों को सुखयुक्त करता है ॥ ५ ॥

वि श्रयन्तामृतावृधो द्वारो देवीरसश्चतः । अद्या नूनं च यष्टवे ॥६॥

पदार्थ—हे (**मनीषिणः**) बुद्धिमान् विद्वानो ! (**अद्य**) आज (**यष्टवे**) यज्ञ करने के लिये घर आदि के (**असश्चतः**) अलग अलग (**ऋतावृधः**) सत्य सुख और जल के वृद्धि करनेवाले (**देवीः**) तथा प्रकाशित (**द्वारः**) दरवाजों का (**नूनम्**) निश्चय से (**विश्रयन्ताम्**) सेवन करो अर्थात् अच्छी रचना से उनको बनाओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को अनेक प्रकार के द्वारों के घर, यज्ञशाला, और विमान, आदि यानों, को बनाकर उनमें स्थिति, होम और देशान्तरों में जाना आना करना चाहिये ॥ ६ ॥

नक्तोषसा सुपेशसास्मिन यज्ञ उप ह्वये । इदं नो बर्हिरासदे ॥७॥

पदार्थ—मैं (**अस्मिन्**) इस घर तथा (**यज्ञे**) सङ्गत करने के कामों में (**सुपेशसा**) अच्छे रूपवाले (**नक्तोषसा**) रात्रिदिन को (**उपह्वये**) उपकार में लाता हूँ, जिस कारण (**नः**) हमारा (**बर्हिः**) निवास स्थान (**आसदे**) सुख की प्राप्ति के लिये हो ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि इस संसार में विद्या से सदैव उपकार लेवें, क्योंकि रात्रि-दिन सब प्राणियों के सुख का हेतु होता है ॥ ७ ॥

ता सुजिह्वा उप ह्वये होतारा दैव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥८॥

पदार्थ—मैं क्रियाकाण्ड का अनुष्ठान करनेवाला इस घर में जो (**नः**) हमारे (**इमम्**) प्रत्यक्ष (**यज्ञम्**) हवन वा शिल्पविद्यामय यज्ञ को (**यक्षताम्**) प्राप्त करते हैं, उन (**सुजिह्वौ**) सुन्दर पूर्वोक्त सात जीभ (**होतारा**) पदार्थों का ग्रहण करने (**कवी**) तीव्र दर्शन देने और (**दैव्या**) दिव्य पदार्थों में रहनेवाले प्रसिद्ध अग्नियों को (**उपह्वये**) उपकार में लाता हूँ ॥ ८ ॥

भावार्थ—जैसे एक बिजली, वेग आदि अनेक गुणवाला अग्नि है इसी प्रकार प्रसिद्ध अग्नि भी है । तथा ये दोनों सकल पदार्थों के देखने में और अच्छे प्रकार क्रियाओं में नियुक्त किये हुए शिल्प आदि अनेक कार्य्यों की

सिद्धि के हेतु होते हैं। इसलिये इन्हों से मनुष्यों को सब उपकार लेने चाहियें ॥ ८ ॥

इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः। बर्हिः सीदन्तु अस्रिधः ॥९॥

पदार्थ—हे विद्वानों ! तुम लोग एक (इडा) जिससे स्तुति होती, दूसरी (सरस्वती) जो अनेक प्रकार विज्ञान का हेतु, और तीसरी (मही) बड़ों में बड़ी पूजनीय नीति है, वह (अस्रिधः) हिंसारहित और (मयोभुवः) सुखों का संपादन करानेवाली (देवी) प्रकाशवान् तथा दिव्य गुणों को सिद्ध कराने में हेतु जो (तिस्रः) तीन प्रकार की वाणी है, उसको (बर्हिः) घर घर के प्रति (सीदन्तु) यथावत् प्रकाशित करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को 'इडा' जो कि पठनपाठन की प्रेरणा देनेहारी, सरस्वती' जो उपदेशरूप ज्ञान का प्रकाश करने और 'मही' जो सब प्रकार से प्रशंसा करने योग्य है, ये तीनों वाणी कुतर्क से खण्डन करने योग्य नहीं हैं, तथा सब सुख के लिये तीनों प्रकार की वाणी सदैव स्वीकार करनी चाहिये, जिससे निश्चलता से अविद्या कानाश हो ॥ ९ ॥

इह त्वष्टारमग्रियं विश्वरूपमुपह्वये। अस्माकमस्तु केवलः ॥१०॥

पदार्थ—मैं जिस (विश्वरूपम्) सर्वव्यापक (अग्रियम्) सब वस्तुओं के आगे होने तथा (त्वष्टारम्) सब दुःखों के नाश करनेवाले परमात्मा को (इह) इस घर में (उपह्वये) अच्छी प्रकार आह्वान करता हूँ, वही (अस्माकम्) उपासना करनेवाले हम लोगों का (केवलः) इष्ट और स्तुति करने योग्य (अस्तु) हो ॥ १ ॥

और मैं (विश्वरूपम्) जिसमें सब गुण हैं, (अग्रियम्) सब साधनों के आगे होने तथा (त्वष्टारम्) सब पदार्थों को अपने तेज से अलग अलग करनेवाले भौतिक अग्नि को (इह) इस शिल्पविद्या में (उपह्वये) जिसको युक्त करता हूँ, वह (अस्माकम्) हवन तथा शिल्पविद्या के सिद्ध करनेवाले हम लोगों का (केवलः) अत्युत्तम साधन (अस्तु) होता है ॥ २ ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार हैं। मनुष्यों को अनन्त सुख देनेवाले ईश्वर ही की उपासना करनी चाहिये, तथा जो यह भौतिक अग्नि सब पदार्थों का छेदन करने, सब रूप गुण और पदार्थों का प्रकाश करने, सब से उत्तम और हम लोगों की शिल्पविद्या का अद्वितीय साधन है, उसका उपयोग शिल्पविद्या में यथावत् करना चाहिये ॥ १० ॥

अवं सृजा वनस्पते देवं देवेभ्यों हविः । प्रदातुरस्तु चेतनम् ॥११॥

पदार्थ—जो (**देव**) फल आदि पदार्थों को देनेवाला (**वनस्पतिः**) वनों के वृक्ष और औषधि आदि पदार्थों को अधिक वृष्टि के हेतु से पालन करनेवाला (**देवेभ्यः**) दिव्य गुणों के लिये (**हविः**) हवन करने योग्य पदार्थों को (**अवसृज**) उत्पन्न करता है, वह (**प्रदातुः**) सब पदार्थों की शुद्धि चाहने वाले विद्वान् जन के (**चेतनम्**) विज्ञान को उत्पन्न करानेवाला (**अस्तु**) होता है ॥ ११ ॥

भावार्थ—मनुष्यों से, पृथिवी तथा सब पदार्थ जलमय युक्ति से क्रियाओं में युक्त किये हुए अग्नि से प्रदीप्त होकर रोगों की निर्मूलता से, बुद्धि और बल को देने के कारण, ज्ञान के बढ़ाने के हेतु होकर दिव्यगुणों का प्रकाश करते हैं ॥ ११ ॥

स्वाहां युज्ञं कृणोतुनेन्द्रांयु यज्वंनो गृहे । तत्रं देवाँ उपं ह्वये ॥१२॥

पदार्थ—हे शिल्पविद्या के सिद्ध यज्ञ करने और करानेवाले विद्वानों ! तुम लोग जैसे जहां (**यज्वनः**) यज्ञकर्त्ता के (**गृहे**) घर यज्ञशाला तथा कलाकुशलता से सिद्ध किये हुये विमान आदि यानों में (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य की प्राप्ति के लिये परम विद्वानों को बुलाके (**स्वाहा**) उत्तम क्रियासमूह के साथ (**यज्ञम्**) जिस तीनों प्रकार के यज्ञ को (**कृणोतन**) सिद्ध करने वाले हों, वैसे वहां मैं (**देवान्**) उन उक्त चतुर श्रेष्ठ विद्वानों को (**उपह्वये**) प्रार्थना के साथ बुलाता रहूं ॥ १२ ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग विद्या तथा क्रियावान् होकर, यथायोग्य बने हुए स्थानों में, उत्तम विचार से क्रियासमूह से सिद्ध होनेवाले कर्मकाण्ड को नित्य करते हुए और वहां विद्वानों को बुलाकर वा आपही उनके समीप जाकर, उनकी विद्या और क्रिया की चतुराई को ग्रहण करें । हे सज्जन लोगो ! तुमको विद्या और क्रिया की कुशलता आलस्य से कभी नहीं छोड़नी चाहिये, क्योंकि ऐसी ही ईश्वर की आज्ञा सब मनुष्यों के लिये है ॥ १२ ॥

इस तेरहवें सूक्त के अर्थ की अग्नि आदि दिव्य पदार्थों के उपकार लेने के विधान से बारहवें सूक्त के अभिप्राय के साथ संगति जाननी चाहिये ।

यह भी सूक्त सायणाचार्य्य आदि तथा यूरोपदेशवासी विलसन आदि साहबों ने विपरीत ही वर्णन किया है ॥

यह तेरहवां सूक्त पूरा हुआ ॥

कण्वो मेधातिथिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

ऐभिरग्ने दुवो गिरो विश्वेभिः सोमपीतये । देवेभिर्याहि यक्षि च ॥१॥

पदार्थ—हे (अग्ने) जगदीश्वर ! आप (एभिः) इन (विश्वेभिः) सब (देवेभिः) दिव्य गुण और विद्वानों के साथ (सोमपीतये) सुख करनेवाले पदार्थों के पीने के लिये (दुवः) सत्कारादि व्यवहार तथा (गिरः) वेदवाणियों कों (याहि) प्राप्त हूजिये ॥ १ ॥

जो यह (अग्ने) भौतिक अग्नि (एभिः) इन (विश्वेभिः) सब (देवेभिः) दिव्यगुण और पदार्थों के साथ (सोमपीतये) जिससे सुखकारक पदार्थों का पीना हो, उस यज्ञ के लिये (दुवः) सत्कारादि व्यवहार तथा (गिरः) वेदवाणियों को (याहि) प्राप्त करता है, उसको (एभिः) इन (विश्वेभिः) सब (देवेभिः) विद्वानों के साथ (सोमपीतये) उक्त सोम के पीने के लिये (यक्षि) स्वीकार करता हूँ, तथा ईश्वर के (दुवः) सत्कारादि व्यवहार और वेदवाणियों को (यक्षि) संगत अर्थात् अपने मन और कामों में अच्छी प्रकार सर्वदा यथाशक्ति धारण करता हूं ॥ २ ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जिन मनुष्यों को व्यवहार और परमार्थ के सुख की इच्छा हो, वे वायु जल और पृथिवीमयादि यन्त्र तथा विमान आदि रथों के साथ अग्नि को स्वीकार करके उत्तम क्रियाओं को सिद्ध करते और ईश्वर की आज्ञा का सेवन, वेदों का पढ़ना पढ़ाना और वेदोक्त कर्मों का अनुष्ठान करते रहते है, वे ही सब प्रकार से आनन्द भोगते हैं ॥ १ ॥

आ त्वा कण्वा अहूषत गृणन्ति विप्र ते धियः । देवेभिरग्न आ गहि ॥२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) जगदीश्वर ! जैसे (कण्वाः) मेधावि विद्वान् लोग (त्वा) आपका (गृणन्ति) पूजन तथा (अहूषत) प्रार्थना करते हैं, वैसे ही हम लोग भी आपका पूजन और प्रार्थना करें। हे (विप्र) मेधाविन् विद्वान् ! जैसे (ते) तेरी (धियः) बुद्धि जिस ईश्वर के (गृणन्ति) गुणों का कथन और प्रार्थना करती हैं, वैसे हम सब लोग परस्पर मिलकर उसी की उपासना करते रहैं। हे मङ्गलमय परमात्मन् ! आप कृपा करके (देवेभिः) उत्तम गुणों के प्रकाश और भोगों के देने के लिये हम लोगों को (आगहि) अच्छी प्रकार प्राप्त हूजिये ॥ (१) ॥

हे (विप्र) मेधावी विद्वान् मनुष्य ! जैसे (कण्वाः) अन्य विद्वान् लोग (अग्ने) अग्नि के (गृणन्ति) गुण प्रकाश और (अहूषत) शिल्पविद्या के लिये युक्त करते हैं, वैसे तुम भी करो। जैसे (अग्ने) यह अग्नि (देवेभिः) दिव्यगुणों

के साथ (आगहि) अच्छी प्रकार अपने गुणों को विदित करता है और जिस अग्नि के (ते) तेरी (धियः) बुद्धि (गृणन्ति) गुणों का कथन तथा (अहूषत) अधिक से अधिक मानती हैं, उससे तुम बहुत से कार्य्यों को सिद्ध करो ॥ २ ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को इस संसार में ईश्वर के रचे हुए पदार्थों को देखकर यह कहना चाहिये कि ये सब धन्यवाद और स्तुति ईश्वर ही में घटती है॥ (२) ॥

इन्द्र॒वा॒यू बृह॒स्पतिं॑ मि॒त्राग्निं पू॒षणं॒ भग॑म्। आ॒दि॒त्यान् मारु॑तं ग॒णम् ॥३॥

पदार्थ—हे (**कण्वाः**) बुद्धिमान् विद्वान् लोगों ! आप क्रिया तथा आनन्द की सिद्धि के लिये (**इन्द्रवायू**) विजुली और पवन (**बृहस्पतिम्**) बड़े से बड़े पदार्थों के पालनहेतु सूर्य्यलोक (**मित्रा**) प्राण (**अग्निम्**) प्रसिद्ध अग्नि (**पूषणम्**) ओषधियों के समूह के पुष्टि करनेवाले चन्द्रलोक (**भगम्**) सुखों के प्राप्त करानेवाले चक्रवर्ति आदि राज्य के धन (**आदित्यान्**) बारहों महीने और (**मारुतम्**) पवनों के (**गणम्**) समूह को (**अहूषत**) ग्रहण तथा (**गृणान्ति**) अच्छी प्रकार जान के संयुक्त करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से 'कण्वा' 'अहूषत' और 'गृणन्ति' इन तीन पदों की अनुवृत्ति आती है। जो मनुष्य ईश्वर के रचे हुए उक्त इन्द्र आदि पदार्थों और उनके गुणों को जानकर क्रियाओं में संयुक्त करते हैं, वे आप सुखी होकर सब प्राणियों को सुखयुक्त सदैव करते हैं ॥ ३ ॥

प्र वो॑ भ्रियन्त॒ इन्द॑वो मत्स॒रा मा॑दयि॒ष्णवः॑। द्र॒प्सा मध्व॑श्चमू॒षदः॑ ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैंने धारण किये, पूर्व मन्त्र में इन्द्र आदि पदार्थ कह आये हैं, उन्हीं से (**मध्वः**) मधुर गुणवाले (**मत्सराः**) जिनसे उत्तम आनन्द को प्राप्त होते हैं (**मादयिष्णवः**) आनन्द के निमित्त (**द्रप्साः**) जिन से बल अर्थात् सेना के लोग अच्छी प्रकार आनन्द को प्राप्त होते और (**चमूषदः**) जिनके विकट शत्रुओं की सेनाओं से स्थिर होते हैं, उन (**इन्दवः**) रसवाले सोम आदि ओषधियों के समूह के समूहों को (**वः**) तुम लोगों के लिये (**भ्रियन्ते**) अच्छी प्रकार धारण कर रक्खे हैं, तैसे तुम लोग भी मेरे लिये इन पदार्थों को धारण करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—ईश्वर सब मनुष्यों के प्रति कहता है कि जो मेरे रचे हुए पहिले मन्त्र में प्रकाशित किये बिजली आदि पदार्थों से ये सब पदार्थ धारण करके मैंने पुष्ट किये हैं, तथा जो मनुष्य इनसे वैद्यक वा शिल्पशास्त्रों की रीति से उत्तम रस के उत्पादन और शिल्प कार्य्यों की सिद्धि के साथ, उत्तम

सेना के संपादन होने से, रोगों का नाश तथा विजय की प्राप्ति करते हैं, वे लोग नाना प्रकार के सुख भोगते हैं ॥ ४॥

ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः । हविष्मन्तो अरंकृतः ॥५॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! हम लोग, जिनके (**हविष्मन्तः**) देने लेने और भोजन करने योग्य पदार्थ विद्यामान हैं, तथा (**अरंकृतः**) जो सब पदार्थों को सुशोभित करनेवाले हैं, (**अवस्यवः**) जिनका अपनी रक्षा चाहने का स्वभाव है, वे (**कण्वासः**) बुद्धिमान् और (**वृक्तबर्हिषः**) यथाकाल यज्ञ करनेवाले विद्वान् जिस (**त्वाम्**) सब जगत् के उत्पन्न करनेवाले आपकी (**ईडते**) स्तुति करते हैं, उसी आपकी स्तुति करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे सृष्टि के उत्पन्न करनेवाले परमेश्वर ! जिस आपने सब प्राणियों के सुख के लिये सब पदार्थों को रचकर धारण किये हैं, इससे हम लोग आपही की स्तुति, सब की रक्षा की इच्छा शिक्षा और विद्या से सब मनुष्यों को भूषित करते हुए उत्तम क्रियाओं के लिये, निरन्तर अच्छी प्रकार यत्न करते हैं ॥ ५ ॥

घृतपृष्ठा मनोयुजो ये त्वा वहन्ति वह्नयः । आ देवान्त्सोमपीतये ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जो युक्ति से संयुक्त किये हुए (**घृतपृष्ठाः**) जिनके पृष्ठ अर्थात् आधार में जल है (**मनोयुजः**) तथा जो उत्तम ज्ञान से रथों में युक्त किये जाते (**वह्नयः**) वार्ता पदार्थ वा यानों को दूर देश में पहुँचानेवाले अग्नि आदि पदार्थ हैं, जो (**सोमपीतये**) जिसमें सोम आदि पदार्थों का पीना होता है उस यज्ञ के लिये (**त्वा**) उस भूषित करने योग्य यज्ञ को और (**देवान्**) दिव्य गुण, दिव्य भोग, और वसन्त आदि ऋतुओं को (**आवहन्ति**) अच्छी प्रकार प्राप्त करते हैं, उनको सब मनुष्य यथार्थ जानके अनेक कार्यों को सिद्ध करने के लिये ठीक प्रयुक्त करना चाहिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो मेघ आदि पदार्थ हैं, वे ही जल को ऊपर नीचे अर्थात् अन्तरिक्ष को पहुँचाते और वहां से वर्षाते हैं, और ताराख्य यन्त्र से चलाई हुई विजुली मन के वेग के समान वार्त्ताओं को एक देश से दूसरे देश में प्राप्त करती है। इसी प्रकार सब सुखों को प्राप्त करानेवाले ये ही पदार्थ हैं,—ऐसी ईश्वर की आज्ञा है ॥ ६ ॥

तान् यजत्राँ ऋतावृधोऽग्ने पत्नीवतस्कृधि । मध्वः सुजिह्व पायय ॥७॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) जगदीश्वर ! आप (**यजत्रान्**) जो कला आदि पदार्थों में संयुक्त करने योग्य तथा (**ऋतावृधः**) सत्यता और यज्ञादि उत्तम कर्मों

की वृद्धि करनेवाले हैं, (तान्) उन विद्युत् आदि पदार्थों को श्रेष्ठ करते हो, उन्हीं से हम लोगों को (पत्नीवतः) प्रशंसायुक्त स्त्रीवाले (कृधि) कीजिये । हे (सुजिह्व) श्रेष्ठता से पदार्थों को धारणाशक्तिवाले ईश्वर ! आप (मध्वः) मधुर पदार्थों के रस को कृपा करके (पायय) पिलाइये ॥ १ ॥

(सुजिह्व) जिसकी लपट में अच्छी प्रकार होम करते हैं, सो यह (अग्ने) भौतिक अग्नि (ऋतावृधः) उन जल की वृद्धि करानेवाले (यजत्रान्) कलाओं में संयुक्त करने योग्य (तान्) विद्युत् आदि पदार्थों को उत्तम (कृधि) करता है, और वह अच्छी प्रकार कलायन्त्रों में संयुक्त किया हुआ हम लोगों को (पत्नीवतः) पत्नीवान् अर्थात् श्रेष्ठ गृहस्थ (कृधि) कर देता, तथा (मध्वः) मीठे मीठे पदार्थों के रस को (पायय) पिलाने का हेतु होता है ॥ २ ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । मनुष्यों को अच्छी प्रकार ईश्वर के आराधन और अग्नि की क्रियाकुशलता से रससारादि को रचकर उनका उपकार में लाकर गृहस्थ आश्रम में सब कार्यों को सिद्ध करना चाहिये ॥ ७ ॥

ये यज॑त्रा य ईड्या॒स्ते ते॑ पिबन्तु जि॒ह्वया॑ । मधो॑रग्ने॒ वष॑ट्कृति ॥८॥

पदार्थ—(ये) जो मनुष्य विद्युत् आदि पदार्थ (यजत्राः) कलादिकों में संयुक्त करते हैं (ते) वे, वा (ये) जो गुणवाले (ईड्याः) सब प्रकार से खोजने योग्य हैं (ते) वे (जिह्वया) ज्वालारूपी शक्ति से (अग्ने) अग्नि में (वषट्कृति) यज्ञ के विशेष विशेष काम करने से (मधोः) मधुरगुणों के अंशों को (पिबन्तु) यथावत् पीते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को इस जगत् में सब संयुक्त पदार्थों से दो प्रकार का कर्म करना चाहिये, अर्थात् एक तो उनके गुणों का जानना, दूसरा उनसे कार्य्य की सिद्धि करना । जो विद्युत् आदि पदार्थ सब मूर्त्तिमान् पदार्थों से रस को ग्रहण करके फिर छोड़ देते हैं, इससे उनकी शुद्धि के लिये सुगन्धि आदि पदार्थों का होम निरन्तर करना चाहिये, जिससे वे सब प्राणियों को सुख सिद्ध करनेवाले हों ॥ ८ ॥

आकीं॒ सूर्य॑स्य रोच॒नाद्विश्वा॑न् दे॒वाँ उ॑ष॒र्बुधः॑ । विप्रो॒ होते॒ह व॑क्षति ॥९॥

पदार्थ—जो (होता) होम में छोड़ने योग्य वस्तुओं का देने लेनेवाला (विप्रः) बुद्धिमान् विद्वान् पुरुष है, वही (सूर्य्यस्य) चराचर के आत्मा परमेश्वर वा सूर्य्यलोक के (रोचनात्) प्रकाश से (इह) इस जन्म वा लोक में (उषर्बुधः) प्रातःकाल को प्राप्त होकर सुखों को चितानेवालों (विश्वान्) समस्त (देवान्)

श्रेष्ठ भोगों को (वक्षति) प्राप्त होता वा कराता है, वही सब विद्याओं को प्राप्त होके आनन्दयुक्त होता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जो ईश्वर इन पदार्थों को उत्पन्न नहीं करता, तो कोई पुरुष उपकार लेने को समर्थ नहीं हो सकता, और जब मनुष्य निद्रा में स्थित होते हैं, तब कोई मनुष्य किसी भोग करने योग्य पदार्थ को प्राप्त नहीं हो सकता, किन्तु जाग्रत अवस्था को प्राप्त होकर उनके भोग करने को समर्थ होता है। इससे इस मन्त्र में 'उषर्बुधः' इस पद का उच्चारण किया है। संसार के इन पदार्थों से बुद्धिमान् मनुष्य ही क्रिया की सिद्धि को कर सकता है, अन्य कोई नहीं ॥ ६ ॥

विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्न इन्द्रेण वायुना ।

पिबा मित्रस्य धामभिः ॥१०॥

पदार्थ—(**अग्ने**) यह अग्नि (**इन्द्रेण**) परम ऐश्वर्य करानेवाले (**वायुना**) स्पर्श वा गमन करनेहारे पवन के और (**मित्रस्य**) सब में रहने तथा सब के प्राणरूप होकर वर्त्तनेवाले वायु के साथ (**विश्वेभिः**) सब (**धामभिः**) स्थानों से (**सोम्यम्**) सोमसम्पादन के योग्य (**मधु**) मधुर आदि गुणयुक्त पदार्थ को (**पिब**) ग्रहण करता है ॥ १० ॥

भावार्थ—यह विद्युत्रूप अग्नि ब्रह्माण्ड में रहनेवाले पवन तथा शरीर में रहनेवाले प्राणों के साथ वर्त्तमान होकर सब पदार्थों से रस को ग्रहण करके उगलता है, इससे यह मुख्य शिल्पविद्या का साधन है ॥ १० ॥

त्वं होता मनुर्हितोऽग्ने यज्ञेषु सीदसि । सेमं नो अध्वरं यज ॥११॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) जो आप अतिशय करके पूजन करने योग्य जगदीश्वर ! (**मनुर्हितः**) मनुष्य आदि पदार्थों के धारण करने और (**होता**) सब पदार्थों के देनेवाले हैं, (**त्वम्**) जो (**यज्ञेषु**) क्रियाकाण्ड को आदि लेकर ज्ञान होने पर्यन्त ग्रहण करने योग्य यज्ञों में (**सीदसि**) स्थित हो रहे हो, (**सः**) सो आप (**नः**) हमारे (**इमम्**) इस (**अध्वरम्**) ग्रहण योग्य सुख के हेतु यज्ञ को (**यज**) संगत अर्थात् इसकी सिद्धि को दीजिये ॥ ११ ॥

भावार्थ—जिस ईश्वर ने सब मनुष्य आदि प्राणियों के शरीर आदि पदार्थों उत्पन्न करके धारण किये हैं, तथा जो यह सब कर्म उपासना तथा ज्ञानकाण्ड में अतिशय से पूजने के योग्य है, वही इस जगत्रूपी यज्ञ को सिद्ध करके हम लोगों को सुखयुक्त करता है ॥ ११ ॥

युक्ष्वा ह्यरुषी रथे हरितो देव रोहितः । ताभिर्देवाँ इहावह ॥१२॥

पदार्थ—हे (**देव**) विद्वान् मनुष्य ! तू (**रथे**) पृथिवी समुद्र और अन्तरिक्ष में जाने आने के लिये विमान आदि रथ में (**रोहितः**) नीची ऊँची जगह उतारने चढ़ाने (**हरितः**) पदार्थों को हरने (**अरुषीः**) लाल रङ्गयुक्त तथा गमन करानेवाली ज्वाला अर्थात् लपटों को (**युक्ष्व**) युक्त कर और (**ताभिः**) इनसे (**इह**) संसार में (**देवान्**) दिव्यक्रियासिद्ध व्यवहारों को (**आवह**) अच्छी प्रकार प्राप्त कर ॥ १२ ॥

भावार्थ—विद्वानों को कला और विमान आदि यानों में, अग्नि आदि पदार्थों को सयुक्त करके, इनसे इस संसार में मनुष्यों के सुख के लिये दिव्य पदार्थों का प्रकाश करना चाहिये ॥ १२ ॥

सब देवों के प्रकाश तथा क्रियाओं के समुदाय से इस चौदहवें सूक्त की सङ्गति पूर्वोक्त तेरहवें सूक्त के अर्थ के साथ जाननी चाहिये

इस सूक्त का भी अर्थ सायणाचार्य्य आदि विद्वान् तथा यूरोपदेशनिवासी विलसन आदि ने विपरीत ही वर्णन किया है ॥

यह चौदहवां सूक्त पूरा हुआ ॥

कण्वो मेधातिथिर्ऋषिः । ऋतवः-इन्द्रः; मरुतः त्वष्टा; अग्निः; इन्द्रः; मित्रावरुणौ; द्रविणोदाः अश्विनौ; अग्निश्च देवताः । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

इन्द्र सोमं पिब ऋतुना त्वा विशन्त्विन्दवः । मत्सरासस्तदोकसः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! यह (**इन्द्र**) समय का विभाग करनेवाला सूर्य्य (**ऋतुना**) वसन्त आदि ऋतुओं के साथ (**सोमम्**) ओषधि आदि पदार्थों के रस को (**पिब**) पीता है, और ये (**तदोकसः**) जिनके अन्तरिक्ष वायु आदि निवास के स्थान तथा (**मत्सरासः**) आनन्द के उत्पन्न करनेवाले हैं, वे (**इन्दवः**) जलों के रस (**ऋतुना**) वसन्त आदि ऋतुओं के साथ (**त्वा**) इस प्राणी वा अप्राणी को क्षण क्षण (**आविशन्तु**) आवेश करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—यह सूर्य्य वर्ष, उत्तरायण दक्षिणायन, वसन्त आदि ऋतु, चैत्र आदि बारहों महीने, शुक्ल और कृष्णपक्ष, दिनरात [जो ३० मुहूर्त्त का सयोग], मुहूर्त जोकि तीस कलाओं का संयोग, कला जो ३० (तीस) काष्ठा का संयोग, काष्ठा जोकि अठारह निमेष का संयोग तथा निमेष आदि समय के

विभागों को प्रकाशित करता है, जैसे कि मनुजी ने कहा है; और उन्हीं के साथ सब ओषधियों के रस और सब स्थानों से जलों को खींचता है, वे किरणों के साथ अन्तरिक्ष में स्थित होते हैं, तथा वायु के साथ आते जाते हैं ॥ १ ॥

मरुतः पिबत ऋतुना पोत्राद्यज्ञं पुनीतन । यूयं हि ष्ठा सुदानवः ॥२॥

पदार्थ—ये (**मरुतः**) पवन (**ऋतुना**) वसन्त आदि ऋतुओं के साथ सब रसों को (**पिबत**) पीते हैं, वे ही (**पोत्रात्**) अपने पवित्रकारक गुण से (**यज्ञम्**) उक्त तीन प्रकार के यज्ञ को (**पुनीतन**) पवित्र करते हैं, तथा (**हि**) जिस कारण (**यूयम्**) वे (**सुदानवः**) पदार्थों के अच्छी प्रकार दिलानेवाले (**स्थ**) हैं, इससे वे युक्ति के साथ क्रियाओं में युक्त हुए कार्य्यों को सिद्ध करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—ऋतुओं के अनुक्रम से पवनों में भी यथोयोग्य गुण उत्पन्न होते हैं, इसी से वे त्रसरेणु आदि पदार्थों वा क्रियाओं के हेतु होते हैं, तथा अग्नि के बीच में सुगन्धित पदार्थों के होमद्वारा, वे पवित्र होकर प्राणीमात्र को सुखसंयुक्त करते हैं, और वे ही पदार्थों के देनेलेने में हेतु होते हैं ॥ २ ॥

अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्रावो नेष्टः पिब ऋतुना ॥
त्वं हि रत्नधा असि ॥३॥

पदार्थ—यह (**नेष्टः**) शुद्धि और पुष्टि आदि हेतुओं से सब पदार्थों का प्रकाश करनेवाली विजुली (**ऋतुना**) ऋतुओं के साथ रसों को (**पिब**) पीती है, तथा (**हि**) जिस कारण (**रत्नधाः**) उत्तम पदार्थों की धारण करनेवाली (**असि**) है, (**त्वम्**) सो यह (**ग्नावः**) सब पदार्थों की प्राप्ति करानेहारी (**नः**) हमारे इस (**यज्ञम्**) यज्ञ को (**अभिगृणीहि**) सब प्रकार से ग्रहण करती है, इसलिये तुम लोग इससे सब कार्य्यों को सिद्ध करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—यह जो बिजुली अग्नि की सूक्ष्म अवस्था है, सो सब स्थूल पदार्थों के अवयवों में व्याप्त होकर उनको धारण और छेदन करती है, इसी से यह प्रत्यक्ष अग्नि उत्पन्न होके उसी में विलाय जाता है ॥ ३ ॥

अग्ने देवाँ इहावह सादया योनिषु त्रिषु । परि भूष पिब ऋतुना ॥४॥

पदार्थ—यह (**अग्ने**) प्रसिद्ध वा अप्रसिद्ध भौतिक अग्नि (**इव**) इस संसार में (**ऋतुना**) ऋतुओं के साथ (**त्रिषु**) तीन प्रकार के (**योनिषु**) जन्म नाम और स्थानरूपी लोकों में (**देवान्**) श्रेष्ठ गुणों से युक्त पदार्थों को (**आ वह**) अच्छी

प्रकार प्राप्त करता (**सादय**) हननकर्त्ता (**परिभूष**) सब ओर से भूषित करता और सब पदार्थों के रसों को (**पिब**) पीता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—दाह गुणयुक्त यह अग्नि अपने रूप के प्रकाश से सब ऊपर नीचे वा मध्य में रहनेवाले पदार्थों को अच्छी प्रकार सुशोभित करता, होम और शिल्पविद्या में संयुक्त किया हुआ दिव्य दिव्य सुखों का प्रकाश करता है ॥ ४ ॥

ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतूँरनु। तवेद्धि सख्यमस्तृतम् ॥५॥

पदार्थ—जो (**इन्द्र**) ऐश्वर्य्य वा जीवन का हेतु वायु (**ब्राह्मणात्**) बड़े का अवयव (**राधसः**) पृथिवी आदि लोकों के धन से (**अनुऋतून्**) अपने अपने प्रभाव से पदार्थों के रस को हरनेवाले वसन्त आदि ऋतुओं के अनुक्रम से (**सोमम्**) सब पदार्थों के रस को (**पिब**) ग्रहण करता है, इससे (**हि**) निश्चय से (**तव**) उस वायु का पदार्थों के साथ (**अस्तृतम्**) अविनाशी (**सख्यम्**) मित्रपन है ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जगत् के रचनेवाले परमेश्वर ने, जो जो जिस जिस वायु आदि पदार्थों में नियम स्थापन किये हैं, उन उन को जान कर कार्य्यों को सिद्ध करना चाहिये। और उन से सिद्ध किये हुए धन से सब ऋतुओं में सब प्राणिओं के अनुकूल हित संपादन करना चाहिये, तथा युक्ति के साथ सेवन किये हुए पदार्थ मित्र के समान होते और इससे विपरीत शत्रु के समान होते हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ ५ ॥

युवं दक्षं धृतव्रत मित्रावरुण दूळभम्। ऋतुना यज्ञमाशाथे ॥६॥

पदार्थ—(**युवम्**) ये (**धृतव्रतौ**) बलों को धारण करनेवाले (**मित्रावरुणौ**) प्राण और अपान (**ऋतुना**) ऋतुओं के साथ (**दूडभम्**) जो कि शत्रुओं को दुःख के साथ धर्षण कराने योग्य (**दक्षम्**) बल तथा (**यज्ञम्**) उक्त तीन प्रकार के यज्ञ को (**आशाथे**) व्याप्त होते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो सब का मित्र बाहर आनेवाला प्राण तथा शरीर के भीतर रहनेवाला उदान है, इन्हीं से प्राणी ऋतुओं के साथ सब संसाररूपी यज्ञ और बल को धारण करके व्याप्त होते हैं, जिससे सब व्यवहार सिद्ध होते हैं ॥ ६ ॥

द्रविणोदा द्रविणसो ग्रावहस्तासो अध्वरे। यज्ञेषु देवमीळते ॥७॥

पदार्थ—(**द्रविणोदाः**) जो विद्या बल राज्य और धनादि पदार्थों का देने और दिव्य गुणवाला परमेश्वर तथा उत्तम धन आदि पदार्थ देने और दिव्य गुणवाला भौतिक अग्नि है, जिस (**देवम्**) देव को (**ग्रावहस्तासः**) स्तुति समूह

ग्रहण वा हनन और पत्थर आदि यज्ञ सिद्ध करनेहारे शिल्पविद्या के पदार्थ हाथ में हैं, जिनके ऐसे जो (द्रविणसः) यज्ञ करने वा द्रव्यसंपादक विद्वान् हैं, वे (अध्वरे) अनुष्ठान करने योग्य क्रियासाध्य हिंसा के अयोग्य और (यज्ञेषु) अग्निहोत्र आदि अश्वमेध पर्य्यन्त वा शिल्पविद्यामय यज्ञों में (ईळते) पूजन वा उसके गुणों का खोज करके संयुक्त करते हैं वही मनुष्य सदा आनन्दयुक्त रहते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । सब मनुष्यों को सब कर्म उपासना तथा ज्ञानकाण्ड यज्ञों में परमेश्वर ही की पूजा तथा भौतिक अग्नि होम वा शिल्पादि कामों में अच्छी प्रकार संयुक्त करने योग्य हैं ॥ ७ ॥

द्रविणोदा ददातु नो वसूनि यानि शृण्विरे । देवेषु ता वनामहे ॥८॥

पदार्थ—हम लोगों के (**यानि**) जिन (**देवेषु**) विद्वान् वा दिव्य सूर्य्य आदि अर्थात् शिल्पविद्या से सिद्ध विमान आदि पदार्थों में (**वसूनि**) जो विद्या चक्रवर्ति राज्य और प्राप्त होने योग्य उत्तम धन (**शृण्विरे**) सुनने में आते तथा हम लोग (**वनामहे**) जिनका सेवन करते हैं, (**ता**) उनको (**द्रविणोदाः**) जगदीश्वर (**नः**) हम लोगों के लिये (**ददातु**) देवे तथा अच्छी प्रकार सिद्ध किया हुआ भौतिक अग्नि भी देता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—परमेश्वर ने इस संसार में जीवों के लिये जो पदार्थ उत्पन्न किये हैं, उपकार में संयुक्त किये हैं, उन पदार्थों से जितने प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष वस्तु से सुख उत्पन्न होते हैं, वे विद्वानों ही के सङ्ग से सुख देनेवाले होते हैं ॥ ८ ॥

द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत । नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**द्रविणोदाः**) यज्ञ का अनुष्ठान करनेवाला विद्वान् मनुष्य यज्ञों में सोम आदि ओषधियों के रस को (**पिपीषति**) पीने की इच्छा करता है, वैसे ही तुम भी उन यज्ञों को (**नेष्ट्रात्**) विज्ञान से (**जुहोत**) देनेलेने का व्यवहार करो, तथा उन यज्ञों को विधि के साथ सिद्ध करके (**ऋतुभिः**) ऋतु ऋतु के संयोग से सुखों के साथ (**प्रतिष्ठत**) प्रतिष्ठा को प्राप्त हो और उनकी विद्या को सदा (**इष्यत**) जानो ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को अच्छे ही काम सीखने चाहियें, दुष्ट नहीं, और सब ऋतुओं में सब सुखों के लिये यथायोग्य कर्म्म करना चाहिये, तथा जिस ऋतु में जो देश स्थित करने वा जाने आने योग्य हो, उसमें उसी समय स्थिति वा जाना आना तथा उस देश के अनुसार खाना पीना वस्त्रधारणादि व्यवहार करके. सब व्यवहारों में सुखों को निरन्तर सेवन करना चाहिये ॥ ९ ॥

यत्त्वां तुरीयमृतुभिर्द्रविणोदो यजामहे । अध स्मा नो ददिर्भव ॥१०॥

पदार्थ—हे (**द्रविणोदः**) आत्मा की शुद्धि करनेवाले विद्या आदि धनदायक ईश्वर ! हम लोग (**यत्**) जिस (**तुरीयम्**) स्थूल सूक्ष्म कारण और परम कारण आदि पदार्थों में चौथी संख्या पूरण करनेवाले (**त्वा**) आपको (**ऋतुभिः**) पदार्थों को प्राप्त करानेवाले ऋतुओं के योग में (**यजामहे स्म**) सुखपूर्वक पूजते हैं, सो आप (**नः**) हमारे लिये धनादि पदार्थों को (**अध**) निश्चय करके (**ददिः**) देनेवाले (**भव**) हूजिये ॥ १० ॥

भावार्थ—परमेश्वर तीन प्रकार के अर्थात् स्थूल सूक्ष्म और कारण रूप जगत् से अलग होने के कारण चौथा है, जो कि सब मनुष्यों को सर्वव्यापी सब का अन्तर्यामी और आधार नित्य पूजन करने योग्य है, उसको छोड़कर ईश्वरबुद्धि करके किसी दूसरे पदार्थ की उपासना न करनी चाहिये, क्योंकि इससे भिन्न कोई कर्म के अनुसार जीवों को फल देनेवाला नहीं है ॥ १० ॥

अश्विना पिबतं मधु दीद्यग्नी शुचिव्रता । ऋतुना यज्ञवाहसा ॥११॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! तुम को जो (**शुचिव्रता**) पदार्थों की शुद्धि करने (**यज्ञवाहसा**) होम किये हुए पदार्थों को प्राप्त कराने तथा (**दीद्यग्नी**) प्रकाशहेतुरूप अग्निवाले (**अश्विना**) सूर्य्य और चन्द्रमा (**मधु**) मधुर रस को (**पिबतम्**) पीते हैं, जो (**ऋतुना**) ऋतुओं के साथ रसों को प्राप्त करते हैं, उनको यथावत् जानो ॥ ११ ॥

भावार्थ—ईश्वर उपदेश करता है कि मैंने जो सूर्य्य चन्द्रमा तथा इस प्रकार मिले हुए अन्य भी दो दो पदार्थ कार्यों की सिद्धि के लिये संयुक्त किये हैं, हे मनुष्यो [तुम्हें वे] अच्छी प्रकार सब ऋतुओं के सुख तथा व्यवहार की सिद्धि को प्राप्त करते हैं । इनको सब लोग समझें ॥ ११ ॥

गार्हपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनीरसि । देवान् देवयते यज ॥१२॥

पदार्थ—जो (**सन्त्य**) क्रियाओं के विभाग में अच्छी प्रकार प्रकाशित होने वाला भौतिक अग्नि (**गार्हपत्येन**) गृहस्थों के व्यवहार से (**ऋतुना**) ऋतुओं के साथ (**यज्ञनीः**) तीन प्रकार के यज्ञ को प्राप्त करानेवाला (**असि**) है, सो (**देवयते**) यज्ञ करनेवाले विद्वान् के लिये शिल्पविद्या में (**देवान्**) दिव्य व्यवहारों का (**यज**) संगम करता है ॥ १२ ॥

भावार्थ—जो विद्वानों से सब व्यवहाररूप कामों में ऋतु के प्रति विद्या के साथ अच्छी प्रकार प्रयोग किया हुआ अग्नि है, सो मनुष्य आदि प्राणियों के लिये दिव्य सुखों को प्राप्त करता है ॥ १२ ॥

जो सब देवों के अनुयोगी वसन्त आदि ऋतु हैं, उनके यथायोग्य गुण प्रतिपादन से चौदहवें सूक्त के अर्थ के साथ इस पन्द्रहवें सूक्त के अर्थ की सङ्गति जाननी चाहिये ।

इस सूक्त का भी अर्थ सायणाचार्य्य आदि तथा यूरोपदेशवासी विलसन आदि लोगों ने कुछ का कुछ वर्णन किया है ॥

यह पन्द्रहवां सूक्त पूरा हुआ ॥

काण्वो मेधातिथिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वर ॥

आ त्वा॑ वहन्तु॒ हर॑यो॒ वृष॑णं॒ सोम॑पीतये । इन्द्रं॑ त्वा॒ सूर॑चक्षसः ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जिस (वृषणम्) वर्षा करनेहारे सूर्य्यलोक को (सोमपीतये) जिस व्यवहार में सोम अर्थात् ओषधियों के अर्क खिंचे हुए पदार्थों का पान किया जाता है, उसके लिये (सूरचक्षसः) जिनका सूर्य्य में दर्शन होता है, (हरयः) हरण करनेहारे किरण प्राप्त करते हैं, (त्वा) उसको तू भी प्राप्त हो, जिसको सब कारीगर लोग प्राप्त होते हैं, उसको सब मनुष्य (आवहन्तु) प्राप्त हों । हे मनुष्यो ! जिसको हम लोग जानते हैं (त्वा) उसको तुम भी जानो ॥ १ ॥

भावार्थ—जो सूर्य्य की प्रत्यक्ष दीप्ति सब रसों के हरने सब का प्रकाश करने तथा वर्षा करानेवाली हैं, वे यथायोग्य अनुकूलता के साथ सेवन करने से मनुष्यों को उत्तम उत्तम सुख देती हैं ॥ १ ॥

इ॒मा धा॒ना घृ॑त॒स्नुवो॒ हरी॑ इ॒होप॑वक्षतः । इन्द्रं॑ सु॒खत॑मे॒ रथे॑ ॥२॥

पदार्थ—(हरी) जो पदार्थों को हरनेवाले सूर्य्य के कृष्ण वा शुक्ल पक्ष हैं, वे (इह) इस लोक में (इमाः) इन (धानाः) दीप्तियों को तथा (इन्द्रम्) सूर्य्यलोक को (सुखतमे) जो बहुत अच्छी प्रकार सुखहेतु (रथे) रमण करने योग्य विमान आदि रथों के (उप) समीप (वक्षतः) प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—जो इस संसार में रात्रि और दिन शुक्ल तथा कृष्णपक्ष दक्षिणायन और उत्तरायण हरण करनेवाले कहलाते हैं, उनसे सूर्य्यलोक आनन्दरूप व्यवहारों को प्राप्त करता है ॥ २ ॥

इन्द्रं॑ प्रा॒तर्ह॑वामह॒ इन्द्रं॑ प्रय॒त्य॑ध्व॒रे । इन्द्रं॒ सोम॑स्य पी॒तये॑ ॥३॥

पदार्थ—हम लोग (प्रातः) नित्य प्रति (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य देनेवाले

ईश्वर का (प्रयत्यध्वरे) बुद्धिप्रद उपासना यज्ञ में (हवामहे) आह्वान करें। हम लोग (प्रयति) उत्तम ज्ञान देनेवाले (अध्वरे) क्रिया से सिद्ध होने योग्य यज्ञ में (प्रातः) प्रतिदिन (इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्यसाधक विद्युत् अग्नि को (हवामहे) क्रियाओं में उपदेश कह सुनके संयुक्त करें, तथा हम लोग (सोमस्य) सब पदार्थों के सार रस को (पीतये) पीने के लिये (प्रातः) प्रतिदिन यज्ञ में (इन्द्रम्) बाहरले वा शरीर के भीतरले प्राण को (हवामहे) विचार में लावें, और उसके सिद्ध करने का विचार करें॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को परमेश्वर प्रतिदिन उपासना करने योग्य है, और उसकी आज्ञा के अनुकूल वर्त्तना चाहिये, बिजुली तथा जो प्राणरूप वायु हैं उसकी विद्या से पदार्थों का भोग करना चाहिये ॥ ३ ॥

उप॑ नः सु॒तमा ग॑हि॒ हरि॑भिरिन्द्र के॒शिभिः॑ । सु॒ते हि त्वा॒ हवा॑महे ॥४॥

पदार्थ—(हि) जिस कारण यह (इन्द्र) वायु (केशिभिः) जिनके बहुत से केश अर्थात् किरण विद्यमान हैं, वे (हरिभिः) पदार्थों के हरने वा स्वीकार करने वाले अग्नि विद्युत् और सूर्य्य के साथ (नः) हमारे (सुतम्) उत्पन्न किये हुए होम वा शिल्प आदि व्यवहार के (उपागहि) निकट प्राप्त होता है, इससे (त्वा) उसको (सुते) उत्पन्न किये हुए होम वा शिल्प आदि व्यवहारों में हम लोग (हवामहे) ग्रहण करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो पदार्थ हम लोगों को शिल्प आदि व्यवहारों में उपकार-युक्त करने चाहियें, वे अग्नि विद्युत और सूर्य्य वायु ही के निमित्त से प्रकाशित होते तथा जाते आते हैं ॥ ४ ॥

सेमं नः॒ स्तोम॒मा ग॒ह्युपे॒दं सव॑नं सु॒तम् । गौ॒रो न तृ॑षि॒तः पि॑ब ॥५॥

पदार्थ—जो उक्त सूर्य्य (नः) हमारे (इमम्) अनुष्ठान किये हुए (स्तोमम्) प्रशंसनीय यज्ञ वा (सवनम्) ऐश्वर्य प्राप्त करानेवाले क्रियाकाण्ड को (न) जैसे (तृषितः) प्यासा (गौरः) गौरगुणविशिष्ट हरिन (उपागहि) समीप प्राप्त होता है, वैसे (सः) वह (इदम्) इस (सुतम्) उत्पन्न किये ओषधि आदि रस को (पिब) पीता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। जैसे अत्यन्त प्यासे मृग आदि पशु और पक्षी वेग से दौड़कर नदी तालाब आदि स्थान को प्राप्त होके जल को पीते हैं, वैसे ही यह सूर्य्यलोक अपनी वेगवती किरणों से औषधि आदि को प्राप्त होकर उसके रस को पीता है, सो यह विद्या की वृद्धि के लिये मनुष्यों को यथावत् उपयुक्त करना चाहिये ॥ ५ ॥

इमे सोमास इन्दवः सुतासो अधि बर्हिषि। ताँ इन्द्र सहसे पिब ॥६॥

पदार्थ—जो (अधि बर्हिषि) जिसमें सब पदार्थ वृद्धि को प्राप्त होते हैं, उस अन्तरिक्ष में (इमे) ये (सोमासः) जिनसे सुख उत्पन्न होते हैं, (इन्दवः) और सब पदार्थों को गीला करनेवाले रस हैं, वे (सहसे) बल आदि गुणों के लिये ईश्वर ने (सुतासः) उत्पन्न किये हैं, (ताॅ) उन्हीं को (इन्द्र) वायु क्षण क्षण में (पिब) पिया करता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—ईश्वर ने इस संसार में प्राणियों के बल आदि वृद्धि के लिये जितने मूर्त्तिमान् पदार्थ उत्पन्न किये हैं, सूर्य्य से छिन्न भिन्न किये हुए उनको पवन अपने निकट करके धारण करता है, उसके संयोग से प्राणी और अप्राणी बलपराक्रमवाले होते हैं ॥ ६ ॥

अयं ते स्तोमो अग्रियो हृदिस्पृगस्तु शन्तमः। अथा सोमं सुतं पिब ॥७॥

पदार्थ—मनुष्यों को जैसे यह वायु प्रथम (सुतम्) उत्पन्न किये हुए (सोमम्) सब पदार्थों के रस को (पिब) पीता है, (अथ) उसके अनन्तर (ते) जो उस वायु का (अग्रियः) अत्युत्तम (हृदिस्पृक्) अन्तःकरण में सुख का स्पर्श करानेवाला (स्तोमः) उसके गुणों से प्रकाशित होकर क्रियाओं का समूह विदित (अस्तु) हो, वैसे काम करने चाहियें ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों के लिये उत्तम गुण तथा शुद्ध किया हुआ यह पवन अत्यन्त सुखकारी होता है ॥ ७ ॥

विश्वमित् सवनं सुतमिन्द्रो मदाय गच्छति। वृत्रहा सोमपीतये ॥८॥

पदार्थ—यह (वृत्रहा) मेघ को हनन करनेवाला (इन्द्रः) वायु (सोमपीतये) उत्तम उत्तम पदार्थों का पिलानेवाला तथा (मदाय) आनन्द के लिये (इत्) निश्चय करके (सवनम्) जिससे सब सुखों को सिद्ध करते हैं, जिससे (सुतम्) उत्पन्न हुए (विश्वम्) जगत् को (गच्छति) प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—वायु आकाश में अपने गमनागमन से सब संसार को प्राप्त होकर, मेघ की वृष्टि करने या सब से वेगवाला होकर, सब प्राणियों को सुखयुक्त करता है। इसके विना कोई प्राणी किसी व्यवहार को सिद्ध करने को समर्थ नहीं हो सकता ॥ ८ ॥

सेमं नः काममा पृण गोभिरश्वैः शतक्रतो। स्तवाम त्वा स्वाध्यः ॥९॥

पदार्थ—हे (शतक्रतो) असंख्यात कामों को सिद्ध करने वाले अनन्तविज्ञान-

युक्त जगदीश्वर ! जिस (त्वा) आपकी (स्वाध्यः) अच्छे प्रकार ध्यान करनेवाले हम लोग (स्तवाम) नित्य स्तुति करें, (सः) सो आप (गोभिः) इन्द्रिय पृथिवी विद्या का प्रकाश और पशु तथा (अश्वैः) शीघ्र चलने और चलाने वाले अग्नि आदि पदार्थ वा घोड़े हाथी आदि से (नः) हमारी (कामम्) कामनाओं को (आपृण) सब ओर से पूर्ण कीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—ईश्वर में यह सामर्थ्य सदैव रहता है कि पुरुषार्थी धर्मात्मा मनुष्यों का उन के कर्मों के अनुसार सब कामनाओं से पूरण करना तथा जो संसार में परम उत्तम उत्तम पदार्थों का उत्पादन तथा धारण करके सब प्राणियों को सुखयुक्त करता है, इससे सब मनुष्यों को उसी परमेश्वर की नित्य उपासना करनी चाहिये ॥ ९ ॥

ऋतुओं के संपादक जो कि सूर्य्य और वायु आदि पदार्थ हैं, उन के यथायोग्य प्रतिपादन से सोलहवें सूक्त के अर्थ के साथ पूर्व पन्द्रहवें सूक्त के अर्थ की संगति समझनी चाहिये।

इस सूक्त का भी अर्थ सायणाचार्य्य आदि तथा यूरोपदेशवासी अध्यापक विलसन आदि ने विपरीत वर्णन किया है ॥

यह सोलहवाँ सूक्त पूरा हुआ ॥

काण्वो मेधातिथिर्ऋषिः । इन्द्रावरुणौ देवते १, ३, ७, ९, गायत्री; २ यवमध्याविराड्गायत्री; ४ पादनिचृद्गायत्री; ५ भुरिगार्च्ची गायत्री; ६ निचृद्गायत्री; ८ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

इन्द्रावरुणयोरहं सम्राजोरव आ वृणे । ता नो मृळात ईदृशे ॥१॥

पदार्थ—मैं जिन (सम्राजोः) अच्छी प्रकार प्रकाशमान (इन्द्रावरुणयोः) सूर्य्य और चन्द्रमा के गुणों से (अवः) रक्षा को (आवृणे) अच्छी प्रकार स्वीकार करता हूं, और (ता) वे (ईदृशे) चक्रवर्त्ति राज्य सुखरूप व्यवहार में (नः) हम लोगों को (मृळातः) सुखयुक्त करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—जैसे प्रकाशमान, संसार के उपकार करने, सब सुखों के देने, व्यवहारों के हेतु और चक्रवर्त्ति राजा के समान सब की रक्षा करने वाले सूर्य्य और चन्द्रमा हैं, वैसे ही हम लोगों को भी होना चाहिये ॥ १ ॥

गन्तारा हि स्थोऽवसे हवं विप्रस्य मावतः । धर्त्तारा चर्षणीनाम् ॥२॥

पदार्थ—जो (हि) निश्चय करके ये संप्रयोग किये हुए अग्नि और जल

(भावतः) मेरे समान पण्डित तथा (विप्रस्य) बुद्धिमान् विद्वान् के (हवम्) पदार्थों का लेना देना करानेवाले होम वा शिल्प व्यवहार को (गन्तारा) प्राप्त होते तथा (चर्षणीनाम्) पदार्थों के उठानेवाले मनुष्य आदि जीवों के (धर्त्तारा) धारण करनेवाले (स्थः) होते हैं, इससे मैं इनको अपने सब कामों की (अवसे) क्रिया की सिद्धि के लिये (आवृणे) स्वीकार करता हूँ ॥ २ ॥

भावार्थ—पूर्वमन्त्र से इस मन्त्र में 'आवृणे' इस पदका ग्रहण किया है। विद्वानों से युक्ति के साथ कलायन्त्रों में युक्त किये हुए अग्नि जल जब कलाओं से बल में आते हैं, तब रथों को शीघ्र चलाने, उनमें बैठे हुए मनुष्य आदि प्राणी पदार्थों के धारण कराने और सब को सुख देनेवाले होते हैं ॥ २ ॥

अनुकामं तर्पयेथामिन्द्रावरुण राय आ । ता वां नेदिष्ठमीमहे ॥३॥

पदार्थ—जो (इन्द्रावरुण) अग्नि और जल (अनुकामम्) हर एक कार्य्य में (रायः) धनों को देकर (तर्पयेथाम्) तृप्ति करते हैं, (ता) उन (वाम्) दोनों को हम लोग (नेदिष्ठम्) अच्छी प्रकार अपने निकट जैसे हों, वैसे (ईमहे) प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जिस प्रकार अग्नि और जल के गुणों को जानकर क्रियाकुशलता में संयुक्त किये हुए ये दोनों बहुत उत्तम उत्तम सुखों को प्राप्त करें, उस युक्ति के साथ कार्य्यों में अच्छी प्रकार इनका प्रयोग करना चाहिये ॥ ३ ॥

युवाकु हि शचीनां युवाकु सुमतीनाम् । भूयाम वाजदाव्नाम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हम लोग (हि) जिस कारण (शचीनाम्) उत्तम वाणी वा श्रेष्ठ कर्मों के (युवाकु) मेल तथा (वाजदाव्नाम्) विद्या वा अन्न के उपदेश करने वा देने और (सुमतीनाम्) श्रेष्ठ बुद्धिवाले विद्वानों के (युवाकु) पृथग्भाव करने को (भूयाम) समर्थ होवें, इस कारण से इनको साधें ॥ ४ ॥

भावार्थ— मनुष्यों को सदा आलस्य छोड़कर अच्छे कामों का सेवन तथा विद्वानों का समागम नित्य करना चाहिये, जिससे अविद्या और दरिद्र-पन जड़ मूल से नष्ट हों ॥ ४ ॥

इन्द्रः सहस्रदाव्नां वरुणः शंस्यानाम् । क्रतुर्भवत्युक्थ्यः ॥५॥

पदार्थ—सब मनुष्यों को योग्य है कि जो (इन्द्रः) अग्नि बिजुली और सूर्य्य (हि) जिस कारण (सहस्रदाव्नाम्) असंख्यात धन के देनेवालों के मध्य में

(क्रतुः) उत्तमता के कार्य्यों को सिद्ध करनेवाले (भवति) होते हैं, तथा जो (वरुणः) जल पवन और चन्द्रमा भी (शंस्यानाम्) प्रशंसनीय पदार्थों में उत्तमता से कार्य्यों के साधक हैं, इससे जानना चाहिये कि उक्त बिजुली आदि पदार्थ (उक्थ्यः) साधुता के साथ विद्या की सिद्धि करने में उत्तम हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—पहिले मन्त्र से इस मन्त्र में 'हि' इस पद की अनुवृत्ति है । जितने पृथिवी आदि वा अन्न आदि पदार्थ दान आदि के साधक हैं, उनमें अग्नि विद्युत और सूर्य्य मुख्य हैं, इससे सब को चाहिये कि उनके गुणों का उपदेश करके उनकी स्तुति वा उनका उपदेश सुनें और करें, क्योंकि जो पृथिवी आदि पदार्थों में जल वायु और चन्द्रमा अपने अपने गुणों के साथ प्रशंसा करने और जानने योग्य हैं, वे क्रियाकुशलता में संयुक्त किये हुए उन क्रियाओं की सिद्धि करानेवाले होते हैं ॥ ५ ॥

तयोरिदवसा वयं सनेम नि च धीमहि । स्यादुत प्ररेचनम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हम लोग जिन इन्द्र और वरुण के (**अवसा**) गुण ज्ञान वा उनके उपकार करने से (**इत्**) ही जिन सुख और उत्तम धनों को (**सनेम**) सेवन करें (**तयोः**) उनके निमित्त से (**च**) और उनसे पाये हुए असंख्यात धन को (**निधीमहि**) स्थापित करें, अर्थात् कोश आदि उत्तम स्थानों में भरें, और जिन धनों से हमारा (**प्ररेचनम्**) अच्छी प्रकार अत्यन्त खर्च (**उत**) भी (**स्यात्**) सिद्ध हो ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि अग्नि आदि पदार्थों के उपयोग से पूरण धन को सम्पादन और उसकी रक्षा वा उन्नति करके, यथायोग्य खर्च करने से विद्या और राज्य की वृद्धि से, सब के हित की उन्नति करनी चाहिये ॥ ६ ॥

इन्द्रावरुण वामहं हुवे चित्राय राधसे । अस्मान्त्सु जिग्युषस्कृतम् ॥७॥

पदार्थ—जो अच्छी प्रकार क्रिया कुशलता में प्रयोग किये हुए (**अस्मान्**) हम लोगों को (**सुजिग्युषः**) उत्तम विजययुक्त (**कृतम्**) करते हैं, (**वाम्**) उन इन्द्र और वरुण को (**चित्राय**) जो कि आश्चर्यरूप राज्य सेना नौकर पुत्र मित्र सोना रत्न हाथी घोड़े आदि पदार्थों से भरा हुआ (**राधसे**) जिससे उत्तम उत्तम सुखों को सिद्ध करते हैं, उस धन के लिये (**अहम्**) मैं मनुष्य (**हुवे**) ग्रहण करता हूँ ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अच्छी प्रकार साधन किये हुए मित्र और वरुण को कामों में युक्त करते हैं, वे नाना प्रकार के धन आदि पदार्थ वा विजय

आदि सुखों को प्राप्त होकर आप सुखसंयुक्त होते तथा औरों को भी सुख-संयुक्त करते हैं ॥ ७ ॥

इन्द्रावरुण नू नु वाँ सिषासन्तीषु धीष्वा । अस्मभ्यं शर्म यच्छतम् ॥८॥

पदार्थ—जो (सिषासन्तीषु) उत्तम कर्म करने को चाहने और (धीषु) शुभ अशुभ वृत्तान्त धारण करनेवाली बुद्धियों में (नु) शीघ्र (नु) जिस कारण (अस्मभ्यम्) पुरुषार्थी विद्वानों के लिये (शर्म) दुःखविनाश करनेवाले उत्तम सुख का (आयच्छतम्) अच्छी प्रकार विस्तार करते हैं, इससे (वाम्) उन (इन्द्रा-वरुणा) इन्द्र और वरुण को कार्य्यों की सिद्धि के लिये मैं निरन्तर (हुवे) ग्रहण करता हूँ ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से 'हुवे' इस पद का ग्रहण किया है । जो मनुष्य शास्त्र से उत्तमता को प्राप्त हुई बुद्धियों से, शिल्प आदि उत्तम व्यवहारों में, उक्त इन्द्र और वरुण को अच्छी रीति से युक्त करते हैं, वे ही इस संसार में सुखों को फैलाते हैं ॥ ८ ॥

प्र वामश्नोतु सुष्टुतिरिन्द्रावरुण यां हुवे । यामृधाथे सधस्तुतिम् ॥९॥

पदार्थ—मैं जिस प्रकार से इस संसार में जिन इन्द्र और वरुण के गुणों की यह (सुष्टुतिः) अच्छी स्तुति (प्राश्नोतु) अच्छी प्रकार व्याप्त होवे, उसको (हुवे) ग्रहण करता हूँ, और (याम्) जिस (सधस्तुतिम्) कीर्त्ति के साथ शिल्पविद्या को (वाम्) जो (इन्द्रावरुणौ) इन्द्र और वरुण (ऋधाथे) बढ़ाते हैं, उस शिल्पविद्या को (हुवे) ग्रहण करता हूं ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को जिस पदार्थ के जैसे गुण हैं उनको वैसे ही जानकर और उनसे सदैव उपकार ग्रहण करना चाहिये, इस प्रकार ईश्वर का उपदेश है ॥ ९ ॥

पूर्वोक्त सोलहवें सूक्त के अनुयोगी मित्र और वरुण के अर्थ का इस सूक्त में प्रतिपादन करने से इस सत्रहवें सूक्त के अर्थ के साथ सोलहवें सूक्त के अर्थ की सङ्गति करनी चाहिये ।

इस सूक्त का भी अर्थ सायणाचार्य्य आदि तथा यूरोपदेशवासी विलसन ने कुछ का कुछ ही वर्णन किया है ॥

यह सत्रहवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

काण्वो मेधातिथिर्ऋषिः। १—३ ब्रह्मणस्पतिः; ४ बृहस्पतीन्द्रसोमाः; ५ बृहस्पतिदक्षिणे; ६—८ सदसस्पतिः; ९ सदसस्पतिर्नाराशंसो वा देवताः। १ विराड्गायत्री; २, ७, ९ गायत्री; ३, ६, ८ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री; ४ निचृद्गायत्री; ५ पादनिचृद्गायत्री च छन्दः। षड्जः स्वरः॥

सो॒मानं॒ स्वर॑णं कृणु॒हि ब्र॑ह्मणस्पते। क॒क्षीव॑न्तं॒ य औ॑शि॒जः॥ १॥

पदार्थ—(ब्रह्मणस्पते) वेद के स्वामी ईश्वर! (यः) जो मैं (औशिजः) विद्या के प्रकाश में संसार को विदित होनेवाला और विद्वानों के पुत्र के समान हूँ, उस मुझ को (सोमानम्) ऐश्वर्य्य सिद्ध करने वाले यज्ञ का कर्त्ता (स्वरणम्) शब्द अर्थ के सम्बन्ध का उपदेशक और (कक्षीवन्तम्) कक्षा अर्थात् हाथ वा अंगुलियों की क्रियाओं में होनेवाली प्रशंसनीय शिल्पविद्या का कृपा से सम्पादन करनेवाला (कृणुहि) कीजिये॥ १॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो कोई विद्या के प्रकाश में प्रसिद्ध मनुष्य है, वही पढ़ानेवाला और सम्पूर्ण शिल्पविद्या के प्रसिद्ध करने योग्य है। क्योंकि ईश्वर भी ऐसे ही मनुष्य को अपने अनुग्रह से चाहता है।

इस मन्त्र का अर्थ सायणाचार्य्य ने कल्पित पुराण ग्रन्थ की भ्रान्ति से कुछ का कुछ ही वर्णन किया है॥ १॥

यो रे॒वान् यो अ॑मीव॒हा व॑सु॒वित्पु॑ष्टि॒वर्ध॑नः। स नः॑ सिषक्तु॒ यस्तु॒रः॥२॥

पदार्थ—(यः) जो जगदीश्वर (रेवान्) विद्या आदि अनन्त धनवाला, (यः) जो (पुष्टिवर्धनः) शरीर और आत्मा की पुष्टि बढ़ाने तथा (वसुवित्) सब पदार्थों का जानने (अमीवहा) अविद्या आदि रोगों का नाश करने तथा (यः) जो (तुरः) शीघ्र सुख करने वाला वेद का स्वामी जगदीश्वर है, (सः) सो (नः) हम लोगों को विद्या आदि धनों के साथ (सिषक्तु) अच्छी प्रकार संयुक्त करे॥ २॥

भावार्थ—जो मनुष्य सत्यभाषण आदि नियमों से संयुक्त ईश्वर की आज्ञा का अनुष्ठान करते हैं, वे अविद्या आदि रोगों से रहित और शरीर वा आत्मा की पुष्टिवाले होकर चक्रवर्त्ति राज्य आदि धन तथा सब रोगों को हरनेवाली ओषधियों को प्राप्त होते हैं॥ २॥

मा नः॒ शंसो॒ अर॑रुषो धू॒र्तिः प्रण॒ङ् मर्त्य॑स्य। रक्षा॑ णो ब्रह्मणस्पते॥३॥

पदार्थ—हे (ब्रह्मणस्पते) वेद वा ब्रह्माण्ड के स्वामी जगदीश्वर! आप (अररुषः) जो दान आदि धर्मरहित मनुष्य है, उस (मर्त्यस्य) मनुष्य के सम्बन्ध

से (नः) हमारी (रक्ष) रक्षा कीजिये, जिससे कि वह (नः) हम लोगों के बीच में कोई मनुष्य (धूर्त्तिः) विनाश करने वाला न हो, और आपकी कृपा से जो (नः) हमारा (शंसः) प्रशंसनीय यज्ञ अर्थात् व्यवहार है वह (मा प्रणक्) कभी नष्ट न होवे ॥ ३ ॥

भावार्थ—किसी मनुष्य को धूर्त्त अर्थात् छल कपट करने वाले मनुष्यों का सङ्ग न करना तथा अन्याय से किसी की हिंसा न करनी चाहिये, किन्तु सब को सब की न्याय ही से रक्षा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

स घा वीरो न रिष्यति यमिन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः ।

सोमो हिनोति मर्त्यम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—उक्त इन्द्र (**ब्रह्मणस्पतिः**) ब्रह्माण्ड का पालन करनेवाला जगदीश्वर और (**सोमः**) सोमलता आदि ओषधियों का रस समूह (**यम्**) जिस (**मर्त्यम्**) मनुष्य आदि प्राणी को (**हिनोति**) उन्नतियुक्त करते हैं (**सः**) वह (**वीरः**) शत्रुओं का जीतने वाला वीर पुरुष (**न घ रिष्यति**) निश्चय है कि वह विनाश को प्राप्त कभी नहीं होता ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य वायु विद्युत् सूर्य्य और सोम आदि ओषधियों के गुणों को ग्रहण करके अपने कार्य्यों को सिद्ध करते हैं, वे कभी दुःखी नहीं होते ॥ ४ ॥

त्वं तं ब्रह्मणस्पते सोम इन्द्रश्च मर्त्यम् । दक्षिणा पात्वंहसः ॥ ५ ॥

पदार्थ— हे (**ब्रह्मणस्पते**) ब्रह्माण्ड के पालन करनेवाले जगदीश्वर ! (**त्वम्**) आप (**अंहसः**) पापों से जिसको (**पातु**) रक्षा करते हैं (**तम्**) उस धर्मात्मा यज्ञ करने वाले (**मर्त्यम्**) विद्वान् मनुष्य की (**सोमः**) सोमलता आदि ओषधियों के रस (**इन्द्रः**) वायु और (**दक्षिणा**) जिससे वृद्धि को प्राप्त होते हैं, ये सब (**पातु**) रक्षा करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अधर्म से दूर रहकर अपने सुखों के बढ़ाने की इच्छा करते हैं, वे ही परमेश्वर के सेवक और उक्त सोम इन्द्र और दक्षिणा इन पदार्थों को युक्ति के साथ सेवन कर सकते हैं ॥ ५ ॥

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् । सनिं मेधामयासिषम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—मैं (**इन्द्रस्य**) जो सब प्राणियों को ऐश्वर्य्य देने (**काम्यम्**) उत्तम (**सनिम्**) पापपुण्य कर्मों के यथायोग्य फल देने और (**प्रियम्**) सब

प्राणियों को प्रसन्न करानेवाले (**अद्भुतम्**) आश्चर्य्यमय गुण और स्वभाव स्वरूप (**सदसस्पतिम्**) और जिसमें विद्वान् धार्मिक न्याय करने वाले स्थित हों, उस सभा के स्वामी परमेश्वर की उपासना और सब उत्तम गुण स्वभाव परोपकारी सभापति को प्राप्त होके (**मेधाम्**) उत्तम ज्ञान को धारण करने वाली बुद्धि को (**अयासिषम्**) प्राप्त होऊं ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सर्वशक्तिमान् सब के अधिष्ठाता और सब आनन्द के देने वाले परमेश्वर की उपासना करते और उत्कृष्ट न्यायाधीश को प्राप्त होते हैं, वे ही सब शास्त्रों के बोध से प्रसिद्ध क्रियाओं से युक्त बुद्धियों को प्राप्त और पुरुषार्थी होकर विद्वान् होते हैं ॥ ६ ॥

यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन । स धीनां योगमिन्वति ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यस्मात्**) जिस (**विपश्चितः**) अनन्त विद्या वाले सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर के (**ऋते**) विना (**यज्ञः**) जो कि दृष्टिगोचर संसार है, सो (**चन**) कभी (**न सिध्यति**) सिद्ध नहीं हो सकता, (**सः**) वह जगदीश्वर सब मनुष्यों की (**धीनाम्**) बुद्धि और कर्मों को (**योगम्**) संयोग को (**इन्वति**) व्याप्त होता वा जानता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—व्यापक ईश्वर, सब में रहने वाले और व्याप्त जगत् का नित्य सम्बन्ध है । वही सब संसार को रचकर तथा धारण करके, सब की बुद्धि और कर्मों को अच्छी प्रकार जानकर, सब प्राणियों के लिये उनके शुभ अशुभ कर्मों के अनुसार सुख दुःखरूप फल को देता है । कभी ईश्वर को छोड़ के, अपने आप स्वभाव मात्र से सिद्ध होनेवाला अर्थात् जिस का कोई स्वामी न हो ऐसा संसार नहीं हो सकता, क्योंकि जड़ पदार्थों के अचेतन होने से यथायोग्य नियम के साथ उत्पन्न होने की योग्यता कभी नहीं होती ॥ ७ ॥

आदृध्नोति हविष्कृतिं प्राञ्चं कृणोत्यध्वरम् । होत्रा देवेषु गच्छति ॥८॥

पदार्थ—जो उक्त सर्वज्ञ सभापति देव परमेश्वर (**प्राञ्चम्**) सब में व्याप्त और जिस को प्राणी अच्छी प्रकार प्राप्त होते हैं, (**हविष्कृतिम्**) होम करने योग्य पदार्थों का जिस में व्यवहार और (**अध्वरम्**) क्रियाजन्य अर्थात् क्रिया से उत्पन्न होने वाले जगत्रूप यज्ञ में (**होत्राणि**) होम से सिद्ध करानेवाली क्रियाओं को (**कृणोति**) उत्पन्न करता तथा (**आदृध्नोति**) अच्छी प्रकार बढ़ाता है, फिर वही यज्ञ (**देवेषु**) दिव्य गुणों में (**गच्छति**) प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—जिस कारण परमेश्वर सकल संसार को रचता है, इस से सब पदार्थ परस्पर अपने अपने संयोग से बढ़ते, और ये पदार्थ क्रियामययज्ञ और शिल्पविद्या में अच्छी प्रकार संयुक्त किये हुए बड़े बड़े सुखों को उत्पन्न करते हैं ॥ ८ ॥

नराशंसं सुधृष्टममपश्यं सप्रथस्तमम् । दिवो न सद्ममखसम् ॥९॥

पदार्थ—मैं (न) जैसे प्रकाशमय सूर्य्यादिकों के प्रकाश से (सद्ममखसम्) जिसमें प्राणी स्थिर होते और जिसमें जगत् प्राप्त होता है, (सप्रथस्तमम्) जो बड़े बड़े आकाश आदि पदार्थों के साथ अच्छी प्रकार व्याप्त (सुधृष्टमम्) उत्तमता से सब संसार को धारण करने (नराशंसम्) सब मनुष्यों को अवश्य स्तुति करने योग्य पूर्वोक्त (सदसस्पतिम्) सभापति परमेश्वर को (अपश्यम्) ज्ञानदृष्टि से देखता हूं, वैसे तुम भी सभाओं के पति को प्राप्त होके न्याय से सब प्रजा का पालन करके नित्य दर्शन करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे मनुष्य सब जगह विस्तृत हुए सूर्य्यादि के प्रकाश को देखता है, वैसे ही सब जगह व्याप्त ज्ञान-प्रकाश रूप परमेश्वर को जानकर सुख के विस्तार को प्राप्त होता है।

इस मन्त्र में सातवें मन्त्र से 'सदसस्पतिम्' इस पद की अनुवृत्ति जाननी चाहिये ॥ ६ ॥

पूर्व सत्रहवें सूक्त के अर्थ के साथ मित्र और वरुण के साथ अनुयोगि बृहस्पति आदि अर्थों के प्रतिपादन से इस अठारहवें सूक्त के अर्थ की सङ्गति जाननी चाहिये।

यह भी सूक्त सायणाचार्य्य आदि और यूरोपदेशवासी विलसन आदि ने कुछ का कुछ ही वर्णन किया है ॥

यह अठारहवां सूक्त पूरा हुआ ॥

काण्वो मेधातिथिर्ऋषिः। अग्निर्मरुतश्च देवताः। १, ३–८ गायत्री; २ निचृद्-गायत्री; ६ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री च छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥१॥

पदार्थ—जो (अग्ने) भौतिक अग्नि (मरुद्भिः) विशेष पवनों के साथ (आगहि) सब प्रकार से प्राप्त होता है, वह विद्वानों की क्रियाओं से (त्वम्) उक्त (चारुम्, अध्वरम् प्रति) प्रत्येक उत्तम उत्तम यज्ञ में उनकी सिद्धि वा (गोपीथाय) अनेक प्रकार की रक्षा के लिये (प्रहूयसे) अच्छी प्रकार क्रिया में युक्त किया जाता है ॥ १ ॥

भावार्थ—जो यह भौतिक अग्नि प्रसिद्ध सूर्य्य और विद्युत्रूप करके पवनों के साथ प्रदीप्त होता है, वह विद्वानों को प्रशंसनीय बुद्धि से हरएक

क्रिया की सिद्धि वा सब की रक्षा के लिये गुणों के विज्ञानपूर्वक उपदेश करना वा सुनना चाहिये ॥ १ ॥

नहि देवो न मर्त्यो महस्तव क्रतुं परः । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥२॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! आप कृपा करके (**मरुद्भिः**) प्राणों के साथ (**आगहि**) प्राप्त हूजिये, आप कैसे हैं कि जिनकी (**परः**) अत्युत्तम (**महः**) महिमा है, (**तव**) आपके (**क्रतुम्**) कर्मों की पूर्णता से अन्त जानने को (**नहि**) न कोई (**देवः**) विद्वान् (**न**) और न कोई (**मर्त्यः**) अज्ञानी मनुष्य योग्य है, तथा जो (**अग्ने**) जिस भौतिक अग्नि का (**परः**) अति श्रेष्ठ (**महः**) महिमा है, वह (**क्रतुम्**) कर्म और बुद्धि को प्राप्त करता है, (**तव**) उसके गुणों को (**न देवः**) न कोई विद्वान् और (**न मर्त्यः**) न कोई अज्ञानी मनुष्य जान सकता है, वह अग्नि (**मरुद्भिः**) प्राणों के साथ (**आगहि**) सब प्रकार से प्राप्त होता है ॥ २ ॥

भावार्थ—परमेश्वर की सर्वोत्तमता से उत्तम महिमा वा कर्म अपार है, इससे उनका पार कोई नहीं पा सकता, किन्तु जितनी जिसकी बुद्धि वा विद्या है, उसके अनुसार समाधियोगयुक्त प्राणायाम से, जो कि अन्तर्यामीरूप करके वेद और संसार में परमेश्वर ने अपनी रचना स्वरूप वा गुण वा जितने अग्नि आदि पदार्थ प्रकाशित किये हैं, उतने ही जान सकता है, अधिक नहीं ॥ २ ॥

ये महो रजसो विदुर्विश्वे देवासो अद्रुहः । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥३॥

पदार्थ—(**ये**) जो (**अद्रुहः**) किसी से द्रोह न रखनेवाले (**विश्वे**) सब (**देवासः**) विद्वान् लोग हैं, जो कि (**मरुद्भिः**) पवन और अग्नि के साथ संयोग में (**महः**) बड़े बड़े (**रजसः**) लोकों को (**विदुः**) जानते हैं, वे ही सुखी होते हैं। हे (**अग्ने**) स्वयंप्रकाश होनेवाले परमेश्वर ! आप (**मरुद्भिः**) पवनों के साथ (**आगहि**) विदित हूजिये, और जो आपका बनाया हुआ (**अग्ने**) सब लोकों का प्रकाश करनेवाला भौतिक अग्नि है, सो भी आपकी कृपा से (**मरुद्भिः**) पवनों के साथ कार्य्यसिद्धि के लिये (**आगहि**) प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् लोग, अग्नि से आकर्षण वा प्रकाश करके तथा पवनों से चेष्टा करके धारण किये हुए लोक हैं, उनको जानकर उनसे कार्य्यों में उपयोग लेने को जानते हैं, वे ही अत्यन्त सुखी होते हैं ॥ ३ ॥

य उग्रा अर्कमानृचुरनाधृष्टास ओजसा । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥४॥

पदार्थ—(**ये**) जो (**उग्राः**) तीव्र वेग आदि गुणवाले (**अनाधृष्टासः**) किसी के रोकने में न आ सकें, वे पवन (**ओजसा**) अपने बल आदि गुणों से संयुक्त

हुए (अर्कम्) सूर्य्यादि लोकों को (आनृचुः) गुणों को प्रकाशित करते हैं, इन (मरुद्भिः) पवनों के साथ (अग्ने) यह विद्युत् और प्रसिद्ध अग्नि (आगहि) कार्य्य में सहाय करनेवाला होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—जितना बल वर्त्तमान है उतना वायु और विद्युत् के सकाश से उत्पन्न होता है, ये वायु सब लोकों के धारण करनेवाले हैं, इनके संयोग से बिजुली वा सूर्य्य आदि लोक प्रकाशित होते तथा धारण भी किये जाते हैं, इससे वायु के गुणों का जानना वा उनसे उपकार ग्रहण करने से अनेक प्रकार के कार्य्य सिद्ध होते हैं ॥ ४ ॥

ये शुभ्रा घोरवर्पसः सुक्षत्रासो रिशादसः। मरुद्भिरग्न आ गहि ॥५॥

पदार्थ—(ये) जो (घोरवर्पसः) घोर अर्थात् जिनका पदार्थों को छिन्न भिन्न करनेवाला रूप जो और (रिशादसः) रोगों को नष्ट करने वाला (सुक्षत्रासः) तथा अन्तरिक्ष में निर्भय राज्य करनेहारे और (शुभ्राः) अपने गुणों से सुशोभित पवन हैं, उनके साथ (अग्ने) भौतिक अग्नि (आगहि) प्रकट होता अर्थात् कार्य्यसिद्धि को देता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो यज्ञ के धूम से शोधे हुए पवन हैं, वे अच्छे राज्य के करानेवाले होकर रोग आदि दोषों का नाश करते हैं। और जो अशुद्ध अर्थात् दुर्गन्ध आदि दोषों से भरे हुए हैं वे सुखों का नाश करते हैं। इस से मनुष्यों को चाहिये कि अग्नि में होम द्वारा वायु की शुद्धि से अनेक प्रकार के सुखों को सिद्ध करें ॥ ५ ॥

ये नाकस्याधि रोचने दिवि देवास आसते। मरुद्भिरग्न आ गहि ॥६॥

पदार्थ—(ये) जो (देवासः) प्रकाशमान और अच्छे अच्छे गुणों वाले पृथिवी वा चन्द्र आदि लोक (नाकस्य) सुख की सिद्धि करने वाले सूर्य्य लोक के (रोचने) रुचिकारक (दिवि) प्रकाश में (अध्यासते) उन के धारण और प्रकाश करने वाले हैं, उन पवनों के साथ (अग्ने) यह अग्नि (आगहि) सुखों की प्राप्ति कराता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—सब लोक परमेश्वर के प्रकाश से प्रकाशवान् हैं, परन्तु उसके रचे हुए सूर्य्यलोक की दीप्ति अर्थात् प्रकाश से पृथिवी और चन्द्रलोक प्रकाशित होते हैं, उन अच्छे अच्छे गुणवालों के साथ रहने वाले अग्नि को सब कार्य्यों में संयुक्त करना चाहिये ॥ ६ ॥

य ईङ्खयन्ति पर्वतान् तिरः समुद्रमर्णवम्। मरुद्भिरग्न आ गहि ॥७॥

पदार्थ—(**ये**) जो वायु (**पर्वतान्**) मेघों को (**ईङ्खयन्ति**) छिन्न भिन्न करते और वर्षाते हैं, (**अर्णवम्**) समुद्र का (**तिरः**) तिरस्कार करते वा (**समुद्रम्**) अन्तरिक्ष को जल से पूर्ण करते हैं, उन (**मरुद्भिः**) पवनों के साथ (**अग्ने**) अग्नि अर्थात् बिजुली (**आगहि**) प्राप्त होती अर्थात् सन्मुख आती जाती है ॥ ७ ॥

भावार्थ—वायु के संयोग से ही वर्षा होती है और जल के कण वा रेणु अर्थात् सब पदार्थों के अत्यन्त छोटे छोटे कण पृथिवी से अन्तरिक्ष को जाते तथा वहां से पृथिवी को आते हैं, उनके साथ वा उनके निमित्त से बिजुली उत्पन्न होतीं और बद्दलों में छिप जाती है ॥ ७ ॥

आ ये त॒न्वन्ति॑ र॒श्मिभि॑स्ति॒रः स॑मु॒द्रमोज॑सा ।

म॒रुद्भि॑रग्न॒ आ ग॑हि ॥ ८ ॥

पदार्थ—(**ये**) जो वायु अपने (**ओजसा**) बल वा वेग से (**समुद्रम्**) अन्तरिक्ष को प्राप्त होते तथा जलमय समुद्र का (**तिरः**) तिरस्कार करते हैं, तथा जो (**रश्मिभिः**) सूर्य्य को किरणों के साथ (**आतन्वन्ति**) विस्तार को प्राप्त होते हैं, उन (**मरुद्भिः**) पवनों के साथ (**अग्ने**) भौतिक अग्नि (**आगहि**) कार्य्य की सिद्धि को देता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस पवनों की व्याप्ति से सब पदार्थ बढ़कर बल देनेवाले होते हैं, इससे मनुष्यों को वायु और अग्नि के योग से अनेक प्रकार कार्य्यों की सिद्धि करनी चाहिये ॥ ८ ॥

अ॒भि त्वा॑ पू॒र्वपी॑तये सृ॒जामि॑ सो॒म्यं मधु॑ । म॒रुद्भि॑रग्न॒ आ ग॑हि ॥९॥

पदार्थ—जिन (**मरुद्भिः**) पवनों से (**अग्ने**) भौतिक अग्नि (**आगहि**) कार्य्यसाधक होता है, उनमें (**पूर्वपीतये**) पहिले जिसमें पीति अर्थात् सुख का भोग है, उस उत्तम आनन्द के लिये (**सोम्यम्**) जो कि सुखों के उत्पन्न करने योग्य है, (**त्वा**) उस (**मधु**) मधुर आनन्द देनेवाले पदार्थों के रस को मैं (**अभिसृजामि**) उत्पन्न करता हूँ ॥ ९ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग जिन वायु अग्नि आदि पदार्थों के अनुयोग से सब शिल्पक्रियारूपी यज्ञ को सिद्ध करते हैं, उन्हीं पदार्थों से सब मनुष्यों को सब कार्य्य करने चाहियें ॥ ९ ॥

अठारहवें सूक्त में कहे हुए बृहस्पति आदि पदार्थों के साथ इस सूक्त से जिन अग्नि वा वायु का प्रतिपादन है, उनकी विद्या की एकता होने से इस उन्नीसवें सूक्त की सङ्गति जाननी चाहिये ।

इस अध्याय में अग्नि और वायु आदि पदार्थों की विद्या के उपयोग के लिये प्रतिपादन करता और पवनों के साथ रहने वाले अग्नि का प्रकाश करता हुआ परमेश्वर अध्याय की समाप्ति को प्रकाशित करता है।

यह भी सूक्त सायणाचार्य्य आदि तथा यूरोपदेशवासी विलसन आदि ने कुछ का कुछ ही वर्णन किया है॥

यह उन्नीसवां सूक्त समाप्त हुआ॥

काण्वो मेधातिथिर्ऋषिः। ऋभवो देवताः। १, २, ६, ७ गायत्री; ३ विराड्गायत्री; ४ निचृद्गायत्री; ५, ८ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री च छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अयं देवाय जन्मने स्तोमो विप्रेभिरासया। अकारि रत्नधातमः॥१॥

पदार्थ—(**विप्रेभिः**) ऋभु अर्थात् बुद्धिमान् विद्वान् लोग (**आसया**) अपने मुख से (**देवाय**) अच्छे अच्छे गुणों के भोगों से युक्त (**जन्मने**) दूसरे जन्म के लिये (**रत्नधातमः**) रमणीय अर्थात् अति सुन्दरता से सुखों की दिलानेवाली जैसी (**अयम्**) विद्या के विचार से प्रत्यक्ष की हुई परमेश्वर की (**स्तोमः**) स्तुति है, वह वैसे जन्म के भोग करनेवाली होती है॥ १॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पुनर्जन्म का विधान जानना चाहिये। मनुष्य जैसे कर्म किया करते हैं, वैसे ही जन्म और भोग उनको प्राप्त होते हैं॥ १॥

य इन्द्राय वचोयुजा ततक्षुर्मनसा हरी। शमीभिर्यज्ञमाशत॥२॥

पदार्थ—(**ये**) जो ऋभु अर्थात् उत्तम बुद्धिवाले विद्वान् लोग (**मनसा**) अपने विज्ञान से (**वचोयुजा**) वाणियों से सिद्ध किये हुए (**हरी**) गमन और धारण गुणों को (**ततक्षुः**) अति सूक्ष्म करते और उनको (**शमीभिः**) दण्डों से कलायन्त्रों को घुमा के (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य्य प्राप्ति के लिये (**यज्ञम्**) पुरुषार्थ से सिद्ध करने योग्य यज्ञ को (**आशत**) परिपूर्ण करते हैं, वे सुख को बढ़ा सकते हैं॥ २॥

भावार्थ—जो विद्वान् पदार्थों के संयोग वा वियोग से धारण आकर्षण वा वेगादि गुणों को जानकर, क्रियाओं से शिल्पव्यवहार आदि यज्ञ को सिद्ध करते हैं, वे ही उत्तम उत्तम ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं॥ २॥

तक्षन्नासत्याभ्यां परिज्मानं सुखं रथम् । तक्षन् धेनुं सबर्दुघाम् ॥३॥

पदार्थ—जो बुद्धिमान् विद्वान् लोग (नासत्याभ्याम्) अग्नि और जल से (परिज्मानम्) जिससे सब जगह में जाना आना बने उस (सुखम्) सुशोभित विस्तारवाले (रथम्) विमान आदि रथ को (तक्षन्) क्रिया से बनाते हैं, वे (सबर्दुघाम्) सब ज्ञान को पूर्ण करने वाली (धेनुम्) वाणी को (तक्षन्) सूक्ष्म करते हुये धीरज से प्रकाशित करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अङ्ग उपाङ्ग और उपवेदों के साथ वेदों को पढ़कर, उनसे प्राप्त हुए विज्ञान से अग्नि आदि पदार्थों के गुणों को जानकर, कलायन्त्रों से सिद्ध होने वाले विमान आदि रथों में संयुक्त करके, उनको सिद्ध किया करते हैं, वे कभी दुःख और दरिद्रता आदि दोषों को नहीं देखते ॥ ३ ॥

युवाना पितरा पुनः सत्यमन्त्रा ऋजूयवः । ऋभवो विष्ट्यक्रत ॥४॥

पदार्थ—जो (ऋजूयवः) कर्मों से अपनी सरलता को चाहने और (सत्यमन्त्राः) सत्य अर्थात् यथार्थ विचार के करने वाले (ऋभवः) बुद्धिमान् सज्जन पुरुष हैं, वे (विष्टी) व्याप्त होने (युवाना) मेल अमेल स्वभाव वाले तथा (पितरा) पालनहेतु पूर्वोक्त अग्नि और जल को क्रिया की सिद्धि के लिये वारम्वार (अक्रत) अच्छी प्रकार प्रयुक्त करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो आलस्य को छोड़े हुए सत्य में प्रीति रखने और सरल बुद्धिवाले मनुष्य हैं, वे ही अग्नि और जल आदि पदार्थों से उपकार लेने को समर्थ हो सकते हैं ॥ ४ ॥

सं वो मदासो अग्मतेन्द्रेण च मरुत्वता । आदित्येभिश्च राजभिः ॥५॥

पदार्थ—हे मेधावि विद्वानो ! तुम लोग जिन (मरुत्वता) जिसके सम्बन्धी पवन हैं, उस (इन्द्रेण) बिजुली वा (राजभिः) प्रकाशमान् (आदित्येभिः) सूर्य्य की किरणों के साथ युक्त करते हों, इससे (मदासः) विद्या के आनन्द (वः) तुम लोगों को (अग्मत) प्राप्त होते हैं, इससे तुम लोग उनसे ऐश्वर्य्यवाले हूजिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् लोग, जब वायु और विद्युत् का आलम्ब लेकर सूर्य्य की किरणों के समान आग्नेयादि अस्त्र, असि आदि शस्त्र और विमान आदि यानों को सिद्ध करते हैं, तब वे शत्रुओं को जीत राजा होकर सुखी होते हैं ॥ ५ ॥

उत त्यं चमसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम् । अकर्त्त चतुरः पुनः ॥६॥

पदार्थ—जब विद्वान् लोग जो (त्वष्टुः) शिल्पी अर्थात् कारीगर (देवस्य) विद्वान् का (निष्कृतम्) सिद्ध किया हुआ सुख का देनेवाला है (त्यम्) उस (नवम्) नवीन दृष्टिगोचर कर्म को देखकर (उत) निश्चय से (पुनः) उसके अनुसार फिर (चतुरः) भू जल अग्नि और वायु से सिद्ध होने वाले शिल्पकामों को (अकर्त्त) अच्छी प्रकार सिद्ध करते हैं, तब आनन्दयुक्त होते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग किसी क्रियाकुशल कारीगर के निकट बैठकर उसकी चतुराई को दृष्टिगोचर करके फिर सुख के साथ कारीगरी के काम करने को समर्थ हो सकते हैं ॥ ६ ॥

ते नो रत्नानि धत्तन त्रिरासाप्तानि सुन्वते । एकमेकं सुशस्तिभिः ॥७॥

पदार्थ—जो विद्वान् (सुशस्तिभिः) अच्छी अच्छी प्रशंसा वाली क्रियाओं से (साप्तानि) जो सात संख्या के वर्ग अर्थात् ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासियों के कर्म, यज्ञ का करना विद्वानों का सत्कार तथा उनसे मिलाप और दान अर्थात् सब के उपकार के लिये विद्या का देना है, इनसे (एकमेकम्) एक एक कर्म करके (त्रिः) त्रिगुणित सुखों को (सुन्वते) प्राप्त करते हैं (ते) वे बुद्धिमान् लोग (नः) हमारे लिये (रत्नानि) विद्या और सुवर्णादि धनों को (धत्तन) अच्छी प्रकार धारण करें ॥ ७ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को उचित है कि जो ब्रह्मचारी आदि चार आश्रमों के कर्म तथा यज्ञ के अनुष्ठान आदि तीन प्रकार के हैं उनको मन वाणी और शरीर से यथावत् करें । इस प्रकार मिलकर सात कर्म होते हैं, जो मनुष्य इनको किया करते हैं उनके सङ्ग उपदेश और विद्या से रत्नों को प्राप्त होकर सुखी होते हैं, वे एक एक कर्म को सिद्ध वा समाप्त करके दूसरे का आरम्भ करें, इस क्रम से शान्ति और पुरुषार्थ से सब कर्मों का सेवन करते रहें ॥ ७ ॥

अधारयन्त वह्नयोऽभजन्त सुकृत्यया । भागं देवेषु यज्ञियम् ॥८॥

पदार्थ—जो (वह्नयः) संसार में शुभ कर्म वा उत्तम गुणों को प्राप्त कराने वाले बुद्धिमान् सज्जन पुरुष (सुकृत्यया) श्रेष्ठ कर्म से (देवेषु) विद्वानों में रहकर (यज्ञियम्) यज्ञ से सिद्ध कर्म को (अधारयन्त) धारण करते हैं, वे (भागम्) आनन्द को निरन्तर (अभजन्त) सेवन करते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि अच्छे कर्म वा विद्वानों की सङ्गति तथा पूर्वोक्त यज्ञ के अनुष्ठान से, व्यवहार सुख से लेकर मोक्षपर्यन्त सुख की प्राप्ति करनी चाहिये ॥ ८ ॥

उन्नीसवें सूक्त में कहे हुए पदार्थों से उपकार लेने को बुद्धिमान् ही समर्थ होते हैं। इस अभिप्राय से इस वीसवें सूक्त के अर्थ का मेल पिछले उन्नीसवें सूक्त के साथ जानना चाहिये।

इस सूक्त का भी अर्थ सायणाचार्य्य आदि तथा यूरोपदेशवासी विलसन आदि ने विपरीत वर्णन किया है ॥

यह बीसवां सूक्त पूरा हुआ ॥

काण्वो मेधातिथिर्ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । १, ३, ४, ६ गायत्री; २ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री; ५ निचृद्गायत्रीच्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

इहेन्द्राग्नी उप ह्वये तयोरित्स्तोममुश्मसि । ता सोमं सोमपातमा ॥१॥

पदार्थ—(इह) इस संसार होमादि शिल्प में जो (सोमपातमा) पदार्थों की अत्यन्त पालन के निमित्त और (सोमम्) संसारी पदार्थों की निरन्तर रक्षा करने वाले (इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि हैं (ता) उनको मैं (उपह्वये) अपने समीप काम की सिद्धि के लिये वश में लाता हूं, और (तयोः) उनके (इत्) और (स्तोमम्) गुणों के प्रकाश करने को हम लोग (उश्मसि) इच्छा करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को वायु अग्नि के गुण जानने की इच्छा करनी चाहिये, क्योंकि कोई भी मनुष्य उनके गुणों के उपदेश वा श्रवण के विना उपकार लेने को समर्थ नहीं हो सकते हैं ॥ १ ॥

ता यज्ञेषु प्र शंसतेन्द्राग्नी शुम्भता नरः । ता गायत्रेषु गायत ॥२॥

पदार्थ—हे (नरः) यज्ञ करने वाले मनुष्यो ! तुम जिस पूर्वोक्त (इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि के (प्रशंसत) गुणों को प्रकाशित तथा (शुम्भत) सब जगह कामों में प्रदीप्त करते हो (ता) उनको (गायत्रेषु) गायत्री छन्द वाले वेद के स्तोत्रों में (गायत) षड्ज आदि स्वरों से गाओ ॥ २ ॥

भावार्थ—कोई भी मनुष्य अभ्यास के विना वायु और अग्नि के गुणों के जानने वा उनसे उपकार लेने को समर्थ नहीं हो सकते ॥ २ ॥

ता मित्रस्य प्रशस्तय इन्द्राग्नी ता हवामहे । सोमपा सोमपीतये ॥३॥

पदार्थ—जैसे विद्वान् लोग वायु और अग्नि के गुणों को जानकर उपकार लेते हैं, वैसे हम लोग भी (ता) उन पूर्वोक्त (मित्रस्य) सब के उपकार करनेहारे और

सब के मित्र के (**प्रशस्तये**) प्रशंसनीय सुख के लिये तथा (**सोमपीतये**) सोम अर्थात् जिस व्यवहार में संसारी पदार्थों की अच्छी प्रकार रक्षा होती है उसके लिये (**ता**) उन (**सोमपा**) सब पदार्थों की रक्षा करने वाले (**इन्द्राग्नी**) वायु और अग्नि को (**हवामहे**) स्वीकार करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। जब मनुष्य मित्रपन का आश्रय लेकर एक दूसरे के उपकार के लिये विद्या से वायु और अग्नि को कार्य्यों में संयुक्त करके रक्षा के साथ पदार्थ और व्यवहारों की उन्नति करते हैं तभी वे सुखी होते हैं ॥ ३ ॥

उ॒ग्रा स॒न्ता ह॑वामह॒ उपे॒दं सव॑नं सु॒तम् । इ॒न्द्रा॒ग्नी एह ग॑च्छताम् ॥४॥

पदार्थ—हम लोग विद्या की सिद्धि के लिये जिन (**उग्रा**) तीव्र (**सन्ता**) वर्त्तमान (**इन्द्राग्नी**) वायु और अग्नि का (**हवामहे**) उपदेश वा श्रवण करते हैं वे (**इदम्**) इस प्रत्यक्ष (**सवनम्**) अर्थात् जिससे पदार्थों को उत्पन्न और (**सुतम्**) उत्तम शिल्पक्रिया से सिद्ध किये हुए व्यवहार को (**उपागच्छताम्**) हमारे निकट-वर्त्ती करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को जिस कारण ये दृष्टिगोचर हुए तीव्र वेग आदि गुण वाले वायु और अग्नि शिल्पक्रियायुक्त व्यवहार में सम्पूर्ण कार्य्यों के उपयोगी होते हैं, इससे इनको विद्या की सिद्धि के लिये कार्य्यों में सदा संयुक्त करना चाहिये ॥ ४ ॥

ता म॒हान्ता॒ सद॒स्पती॒ इन्द्रा॑ग्नी॒ रक्ष॑ उब्जतम् । अप्र॑जाः सन्त्व॒त्रिण॑ः ॥५॥

पदार्थ—मनुष्यों ने जो अच्छी प्रकार क्रिया की कुशलता में संयुक्त किये हुये (**महान्ता**) बड़े बड़े उत्तम गुण वाले (**ता**) पूर्वोक्त (**सदस्पती**) सभाओं के पालन के निमित्त (**इन्द्राग्नी**) वायु और अग्नि हैं, जो (**रक्षः**) दुष्ट व्यवहारों को (**उब्जतम्**) नाश करते और उनसे (**अत्रिणः**) शत्रुजन (**अप्रजाः**) पुत्रादिरहित (**सन्तु**) हों, उनका उपयोग सब लोग क्यों न करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—विद्वानों को योग्य है कि जो सब पदार्थों के स्वरूप वा गुणों से अधिक वायु और अग्नि हैं उनको अच्छी प्रकार जानकर क्रियाव्यवहार में संयुक्त करें तो वे दुःखों को निवारण करके अनेक प्रकार की रक्षा करने वाले होते हैं ॥ ५ ॥

तेन॑ स॒त्येन॑ जागृत॒मधि॑ प्रचे॒तुने॑ प॒दे । इन्द्रा॑ग्नी॒ शर्म॑ यच्छतम् ॥६॥

पदार्थ—जो (**इन्द्राग्नी**) प्राण और बिजुली हैं वे (**तेन**) उस (**सत्येन**)

अविनाशी गुणों के समूह से (प्रचेतुने) जिस में आनन्द से चित्त प्रफुल्लित होता है (पदे) उस सुखप्रापक व्यवहार में (अधिजागृतम्) प्रसिद्ध गुणवाले होते और (शर्म) उत्तम सुख को भी (यच्छतम्) देते हैं, उनको क्यों उपयुक्त न करना चाहिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो नित्य पदार्थ हैं उन के गुण भी नित्य होते हैं, जो शरीर में वा बाहर रहने वाले प्राणवायु तथा बिजुली हैं, वे अच्छी प्रकार सेवन किये हुए चेतनता कराने वाले होकर सुख देने वाले होते हैं ॥ ६ ॥

बीसवें सूक्त में कहे हुए बुद्धिमानों की पदार्थविद्या की सिद्धि के वायु और अग्नि मुख्य हेतु होते हैं, इस अभिप्राय के जानने से पूर्वोक्त बीसवें सूक्त के अर्थ के साथ इस इक्कीसवें सूक्त के अर्थ का मेल जानना चाहिये ।

यह भी सूक्त सायणाचार्य्य आदि तथा यूरोपदेशवासी विलसन आदि ने विरुद्ध अर्थ से वर्णन किया है ॥

यह इक्कीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

काण्वो मेधातिथिर्ऋषिः । १-४ अश्विनौ; ५-८ सविता; ९-१० अग्निः; ११ देव्यः; १२ इन्द्राणीवरुणान्यग्नाय्यः; १३-१४ द्यावापृथिव्यौ; १५ पृथिवी; १६ विष्णुर्देवो वा; १७-२१ विष्णुश्च देवताः । १-३, ८, १२, १७, १८ पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री; ४-५, ७, ९-११, १३-१४, १६, २०-२१ गायत्री; ६, १९ निचृद्गायत्री; १५ विराड्गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

प्रातर्युजा वि बोधयाश्विनावेह गच्छताम् । अस्य सोमस्य पीतये ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्य ! जो (**प्रातर्युजा**) शिल्पविद्या सिद्ध यन्त्रकलाओं में पहिले बल देनेवाले (**अश्विनौ**) अग्नि और पृथिवी (**इह**) इस शिल्पव्यवहार में (**गच्छताम्**) प्राप्त होते हैं, इससे उनको (**अस्य**) इस (**सोमस्य**) उत्पन्न करने योग्य सुख समूह को (**पीतये**) प्राप्ति के लिये तुम हम को (**विबोधय**) अच्छी प्रकार विदित कराइये ॥ १ ॥

भावार्थ—शिल्प कार्य्यों की सिद्धि करने की इच्छा करने वाले मनुष्यों को चाहिये कि उस में भूमि और अग्नि का पहिले ग्रहण करें, क्योंकि इनके विना विमान आदि यानों की सिद्धि वा गमन का सम्भव नहीं हो सकता ॥ १ ॥

या सुरथा रथीतमोभा देवा दिविस्पृशा । अश्विना ता हवामहे ॥२॥

पदार्थ—हम लोग (**या**) जो (**दिविस्पृशा**) आकाशमार्ग से विमान आदि

यानों को एक स्थान से दूसरे स्थान में शीघ्र पहुँचाने (रथीतमा) निरन्तर प्रशंसनीय रथों को सिद्ध करने वाले (सुरथा) जिनके योग से उत्तम उत्तम रथ सिद्ध होते हैं (देवा) प्रकाशादि गुणवाले (अश्विनौ) व्याप्तिस्वभाववाले पूर्वोक्त अग्नि और जल हैं, (ता) उन (उभा) एक दूसरे के साथ संयोग करने योग्यों को (हवामहे) ग्रहण करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—जो मनुष्यों के लिये अत्यन्त सिद्धि कराने वाले अग्नि और जल हैं वे शिल्पविद्या में संयुक्त किये हुए कार्य्यसिद्धि के हेतु होते हैं ॥ २ ॥

या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती । तया यज्ञं मिमिक्षतम् ॥३॥

पदार्थ—हे उपदेश करने वा सुनने तथा पढ़ने पढ़ाने वाले मनुष्यो ! (वाम्) तुम्हारे (अश्विना) गुणप्रकाश करनेवालों की (या) जो (सूनृतावती) प्रशंसनीय बुद्धि से सहित (मधुमती) मधुरगुणयुक्त (कशा) वाणी है (तया) उससे तुम (यज्ञम्) श्रेष्ठ शिक्षारूप यज्ञ को (मिमिक्षतम्) प्रकाश करने की इच्छा नित्य किया करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—उपदेश के विना किसी मनुष्य को ज्ञान की वृद्धि कुछ भी नहीं हो सकती, इससे सब मनुष्यों को उत्तम विद्या का उपदेश तथा श्रवण निरन्तर करना चाहिये ॥ ३ ॥

नहि वामस्ति दूरके यत्रा रथेन गच्छथः । अश्विना सोमिनो गृहम् ॥४॥

पदार्थ—हे रथों के रचने वा चलानेहारे सज्जन लोगो ! तुम (यत्र) जहां उक्त (अश्विना) अश्वियों से संयुक्त (रथेन) विमान आदि यान से (सोमिनः) जिसके प्रशंसनीय पदार्थ विद्यमान हैं उस पदार्थविद्या वाले के (गृहम्) घर को (गच्छथः) जाते हो वह दूर स्थान भी (वाम्) तुम को (दूरके) दूर (नहि) नहीं है ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस कारण अग्नि और जल के वेग से युक्त किया हुआ रथ अति दूर भी स्थानों को शीघ्र पहुँचाता है, इससे तुम लोगों को भी यह शिल्पविद्या का अनुष्ठान निरन्तर करना चाहिये ॥ ४ ॥

हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुप ह्वये । स चेत्ता देवता पदम् ॥५॥

पदार्थ—मैं (ऊतये) प्रीति के लिये जो (पदम्) सब चराचर जगत् को प्राप्त और (हिरण्यपाणिम्) जिससे व्यवहार में सुवर्ण आदि रत्न मिलते हैं, उस (सवितारम्) सब जगत् के अन्तर्यामी ईश्वर को (उपह्वये) अच्छी प्रकार स्वीकार करता हूँ (सः) वह परमेश्वर (चेत्ता) ज्ञानस्वरूप और (देवता) पूज्यतम देव है ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को जो चेतनमय सब जगह प्राप्त होने और निरन्तर पूजन करने योग्य प्रीति का एक पुञ्ज और सब ऐश्वर्य्यों का देनेवाला परमेश्वर है वही निरन्तर उपासना के योग्य है, इस विषय में इसके विना कोई दूसरा पदार्थ उपासना के योग्य नहीं है ॥ ५ ॥

अपां नपातमवसे सवितारमुप स्तुहि । तस्य व्रतान्युश्मसि ॥६॥

पदार्थ—हे धार्मिक विद्वान् मनुष्य ! जैसे मैं (अवसे) रक्षा आदि के लिये (अपाम्) जो सब पदार्थों को व्याप्त होने वाले अन्तरिक्ष आदि पदार्थों के वर्त्ताने तथा (नपातम्) अविनाशी और (सवितारम्) सकल ऐश्वर्य्य के देनेवाले परमेश्वर की स्तुति करता हूँ, वैसे तूं भी उसकी (उपस्तुहि) निरन्तर प्रशंसा कर । हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग जिसके (व्रतानि) निरन्तर धर्मयुक्त कर्मों को (उश्मसि) प्राप्त होने की कामना करते हैं, वैसे (तस्य) उसके गुण कर्म्म और स्वभाव को प्राप्त होने की कामना तुम भी करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वान् मनुष्य परमेश्वर की स्तुति करके उसकी आज्ञा का आचरण करता है, वैसे तुम लोगों को भी उचित है कि उस परमेश्वर के रचे हुए संसार में अनेक प्रकार के उपकार ग्रहण करो ॥ ६ ॥

विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः । सवितारं नृचक्षसम् ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! जैसे हम लोग (नृचक्षसम्) मनुष्यों में अन्तर्यामि-रूप से विज्ञान प्रकाश करने (वसोः) पदार्थों से उत्पन्न हुए (चित्रस्य) अद्भुत (राधसः) विद्या सुवर्ण वा चक्रवर्ति राज्य आदि धन के यथायोग्य (विभक्तारम्) जीवों के कर्म के अनुकूल विभाग से फल देने वा (सवितारम्) जगत् के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर और (नृचक्षसम्) जो मूर्तिमान् द्रव्यों का प्रकाश करने (वसोः) (चित्रस्य) (राधसः) उक्त धन सम्बन्धी पदार्थों को (विभक्तारम्) अलग अलग व्यवहारों में वर्त्ताने और (सवितारम्) ऐश्वर्य्य हेतु सूर्य्यलोक को (हवामहे) स्वीकार करें वैसे तुम भी उनका ग्रहण करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार है । मनुष्यों को उचित है कि जिससे परमेश्वर सर्वशक्तिपन वा सर्वज्ञता से सब जगत् की रचना करके सब जीवों को उसके कर्मों के अनुसार सुख दुःखरूप फल को देता और जैसे सूर्य्यलोक अपने ताप वा छेदनशक्ति से मूर्त्तिमान् द्रव्यों का विभाग और प्रकाश करता है इससे तुम भी सब को न्यायपूर्वक दण्ड वा सुख और यथा-योग्य व्यवहार में चला के विद्यादि शुभ गुणों को प्राप्त कराया करो ॥ ७ ॥

सखाय आ नि षीदत सविता स्तोम्यो नु नः ।

दाता राधांसि शुम्भति ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग सदा (सखायः) आपस में मित्र सुख वा उपकार करने वाले होकर (आनिषीद) सब प्रकार स्थित रहो और जो (स्तोम्यः) प्रशंसनीय (नः) हमारे लिये (राधांसि) अनेक प्रकार के उत्तम धनों को (दाता) देनेवाला (सविता) सकल ऐश्वर्य्ययुक्त जगदीश्वर (शुम्भति) सब को सुशोभित करता है उसकी (नु) शीघ्रता के साथ नित्य प्रशंसा करो । तथा हे मनुष्यो ! जो (स्तोम्यः) प्रशंसनीय (नः) हमारे लिये (राधांसि) उक्त धनों को (शुम्भति) सुशोभित कराता वा उनके (दाता) देने का हेतु (सविता) ऐश्वर्य्य देने का निमित्त सूर्य्य है उसकी (नु) नित्य शीघ्रता के साथ प्रशंसा करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । मनुष्यों को परस्पर मित्रभाव के विना कभी सुख नहीं हो सकता । इससे सब मनुष्यों को योग्य है कि एक दूसरे के साथी होकर जगदीश्वर वा अग्निमय सूर्य्यादि का उपदेश कर वा सुनकर उनसे सुखों के लिये सदा उपकार ग्रहण करें ॥ ८ ॥

अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप । त्वष्टारं सोमपीतये ॥९॥

पदार्थ—(अग्ने) जो यह भौतिक अग्नि (सोमपीतये) जिस व्यवहार में सोम आदि पदार्थों का ग्रहण होता है उसके लिये (देवानाम्) इकत्तीस जो कि पृथिवी आदि लोक हैं उनकी (उशतीः) अपने अपने आधार के गुणों का प्रकाश करने वाला (पत्नीः) स्त्रीवत् वर्त्तमान अदिति आदि पत्नी और (त्वष्टारम्) छेदन करने वाले सूर्य्य वा कारीगर को (उपावह) अपने सामने प्राप्त करता है उसका प्रयोग ठीक ठीक करें ॥ ९ ॥

भावार्थ—विद्वानों को उचित है कि जो बिजुली प्रसिद्ध और सूर्य्यरूप से तीन प्रकार का भौतिक अग्नि शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये पृथिवी आदि पदार्थों के सामर्थ्य प्रकाश करने में मुख्य हेतु है उसी का स्वीकार करें और यह इस शिल्पविद्यारूपी यज्ञ में पृथिवी आदि पदार्थों के सामर्थ्य का पत्नी नाम विधान किया है उसको जानें ॥ ९ ॥

आ ग्ना अग्न इहावसे होत्रां यविष्ठ भारतीम् । वरूत्रीं धिषणां वह ॥१०॥

पदार्थ—हे (यविष्ठ) पदार्थों को मिलाने वा उन में मिलने वाले (अग्ने) क्रियाकुशल विद्वान् ! तू (इह) शिल्पकार्य्यों में (अवसे) प्रवेश करने के लिये (ग्नाः) पृथिवी आदि पदार्थ (होत्राम्) होम किये हुए पदार्थों को बहाने (भारतीम्) सूर्य्य की प्रभा (वरूत्रीम्) स्वीकार करने योग्य दिन रात्रि और (धिषणाम्) जिससे पदार्थों को ग्रहण करते हैं, उस वाणी को (आवह) प्राप्त हो ॥ १० ॥

भावार्थ—विद्वानों को इस संसार में मनुष्य जन्म पाकर वेद द्वारा सब

विद्या प्रत्यक्ष करनी चाहिये; क्योंकि कोई भी विद्या पदार्थों के गुण और स्वभाव को प्रत्यक्ष किये विना सफल नहीं हो सकती ॥ १० ॥

अभि नो देवीरवसा महः शर्म्मणा नृपत्नीः ।

अच्छिन्नपत्राः सचन्ताम् ॥११॥

पदार्थ—(**अच्छिन्नपत्राः**) जिन के अविनष्ट कर्मसाधन और (**देवीः**) (**नृपत्नीः**) जो क्रियाकुशलता में चतुर विद्वान् पुरुषों की स्त्रियां हैं वे (**महः**) बड़े (**शर्मणा**) सुखसम्बन्धी घर (**अवसा**) रक्षा विद्या में प्रवेश आदि कर्मों के साथ (**नः**) हम लोगों को (**अभिसचन्ताम्**) अच्छी प्रकार मिलें ॥ ११ ॥

भावार्थ—जैसी विद्या गुण कर्म और स्वभाव वाले पुरुष हों उनकी स्त्री भी वैसी ही होनी ठीक हैं, क्योंकि जैसा तुल्य रूप विद्या गुण कर्म स्वभाव वालों को सुख का सम्भव होता है, वैसा अन्य को कभी नहीं हो सकता । इस से स्त्री अपने समान पुरुष वा पुरुष अपने समान स्त्रियों के साथ आपस में प्रसन्न होकर स्वयंवर विधान से विवाह करके सब कर्मों को सिद्ध करें ॥ ११ ॥

इहेन्द्राणीमुप ह्वये वरुणानीं स्वस्तये । अग्नायीं सोमपीतये ॥१२॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! जैसे हम लोग (**इह**) इस व्यवहार में (**स्वस्तये**) अविनाशी प्रशंसनीय सुख वा (**सोमपीतये** ऐश्वर्य्यों का जिस में भोग होता है उस कर्म के लिये जैसा (**इन्द्राणीम्**) सूर्य्य (**वरुणानीम्**) वायु वा जल और (**अग्नायीम्**) अग्नि की शक्ति हैं, वैसी स्त्रियों को पुरुष और पुरुषों को स्त्री लोग (**उपह्वये**) उपयोग के लिये स्वीकार करें वैसे तुम भी ग्रहण करो ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा और उपमालङ्कार हैं । मनुष्यों को उचित है कि ईश्वर के बनाये हुए पदार्थों के आश्रय से अविनाशी निरन्तर सुख की प्राप्ति के लिये उद्योग करके परस्पर प्रसन्नता युक्त स्त्री और पुरुष का विवाह करें, क्योंकि तुल्य स्त्री पुरुष और पुरुषार्थ के विना किसी मनुष्य को कुछ भी ठीक ठीक सुख का सम्भव नहीं हो सकता ॥ १२ ॥

मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम् ।

पिपृतां नो भरीमभिः ॥१३॥

पदार्थ—हे उपदेश के करने और सुनने वाले मनुष्यो ! तुम दोनों जो (**मही**) बड़े बड़े गुण वाले (**द्यौः**) प्रकाशमय बिजुली, सूर्य्य आदि और (**पृथिवी**) अप्रकाश वाले पृथिवी आदि लोकों का समूह (**भरीमभिः**) धारण और पुष्टि करने वाले गुणों

से (नः) हमारे (इमम्) इस (यज्ञम्) शिल्पविद्यामय यज्ञ (च) और (नः) हम लोगों को (पिपृताम्) सुख के साथ अङ्गों से अच्छी प्रकार पूर्ण करते हैं, वे (इमम्) इस (यज्ञम्) शिल्पविद्यामय यज्ञ को (मिमिक्षताम्) सिद्ध करने की इच्छा करो तथा (पिपृताम्) उन्ही से अच्छी प्रकार सुखों को परिपूर्ण करो ॥ १३ ॥

भावार्थ—'द्यौः' यह नाम प्रकाशमान लोकों का उपलक्षण अर्थात् जो जिसका नाम उच्चारण किया हो वह उसके समतुल्य सब पदार्थों के ग्रहण करने में होता है तथा 'पृथिवी' यह विना प्रकाश वाले लोकों का है। मनुष्यों को इन से प्रयत्न के साथ सब उपकारों को ग्रहण करके उत्तम उत्तम सुखों को सिद्ध करना चाहिये ॥ १३ ॥

तयोरिद् घृतवत्पयो विप्रा रिहन्ति धीतिभिः। गन्धर्वस्य ध्रुवे पदे ॥१४॥

पदार्थ—जो (विप्राः) बुद्धिमान् पुरुष जिन से प्रशंसनीय होते हैं (तयोः) उन प्रकाशमय और अप्रकाशमय लोकों के (धीतिभिः) धारण और आकर्षण आदि गुणों से (गन्धर्वस्य) पृथिवी को धारण करने वाले वायु का (ध्रुवे) जो सब जगह भरा निश्चल (पदे) अन्तरिक्ष स्थान है, उस में विमान आदि यानों को (रिहन्ति) गमनागमन करते हैं, वे प्रशंसित होके, उक्त लोकों ही के आश्रय से (घृतवत्) प्रशंसनीय जल वाले (पयः) रस आदि पदार्थों को ग्रहण करते हैं ॥ १४ ॥

भावार्थ—विद्वानों को पृथिवी आदि पदार्थों से विमान आदि यान बनाकर उनकी कलाओं में जल और अग्नि के प्रयोग से भूमि, समुद्र और आकाश में जाना आना चाहिये ॥ १४ ॥

स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म सप्रथः ॥१५॥

पदार्थ—जो यह (पृथिवी) अति विस्तार युक्त (स्योना) अत्यन्त सुख देने तथा (अनृक्षरा) जिस में दुःख देने वाले कण्टक आदि न हों (निवेशनी) और जिस में सुख से प्रवेश कर सकें, वैसी (भव) होती है, सो (नः) हमारे लिये (सप्रथः) विस्तारयुक्त सुखकारक पदार्थ वालों के साथ (शर्म्म) उत्तम सुख को (यच्छ) देती है ॥ १५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि यह भूमि ही सब मूर्तिमान् पदार्थों के रहने की जगह और अनेक प्रकार के सुखों की कराने वाली और बहुत रत्नों को प्राप्त कराने वाली होती है, ऐसा ज्ञान करें ॥ १५ ॥

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे। पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥१६॥

पदार्थ—(यतः) जिस सदा वर्त्तमान नित्य कारण से (विष्णुः) चराचर संसार में व्यापक जगदीश्वर (पृथिव्याः) पृथिवी को लेकर (सप्त) सात अर्थात्

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, विराट्, परमाणु और प्रकृति पर्य्यन्त लोकों को (धामभिः) जो सब पदार्थों को धारण करते हैं उनके साथ (विचक्रमे) रचता है (अतः) उसी से (देवाः) विद्वान् लोग (नः) हम लोगों को (अवन्तु) उक्त लोकों की विद्या को समझते वा प्राप्त कराते हुए हमारी रक्षा करते रहें ॥ १६ ॥

भावार्थ—विद्वानों के उपदेश के विना किसी मनुष्य को यथावत् सृष्टि-विद्या का बोध कभी नहीं हो सकता। ईश्वर के उत्पादन करने के विना किसी पदार्थ का साकार होना नहीं बन सकता और इन दोनों कारणों के जाने विना कोई मनुष्य पदार्थों से उपकार लेने को समर्थ नहीं हो सकता।

और जो यूरोपदेश वाले विलसन साहिब ने 'पृथिवी उस खण्ड के अवयव से तथा विष्णु की सहायता से देवता हमारी रक्षा करें' यह इस मन्त्र का अर्थ अपनी झूठी कल्पना से वर्णन किया है, सो समझना चाहिये ॥ १६ ॥

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूढमस्य पांसुरे ॥१७॥

पदार्थ—मनुष्य लोग जो (विष्णुः) व्यापक ईश्वर (त्रेधा) तीन प्रकार का (इदम्) यह प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष (पदम्) प्राप्त होने वाला जगत् है, उसको (विचक्रमे)यथायोग्य प्रकृति और परमाणु आदि के पद वा अंशों को ग्रहण कर सावयव अर्थात् शरीर वाला करता और जिसने (अस्य) इस तीन प्रकार के जगत् का (समूढम्) अच्छी प्रकार तर्क से जानने योग्य और आकाश के बीच में रहने वाला परमाणुमय जगत् है उसको (पांसुरे) जिसमें उत्तम उत्तम मिट्टी आदि पदार्थों के अति सूक्ष्म कण रहते हैं, उनको आकाश में (निदधे) धारण किया है।

जो प्रजा का शिर अर्थात् उत्तम भाग कारण रूप और जो विद्या आदि धनों का शिर अर्थात् उत्तम फल आनन्दरूप तथा जो प्राणों का शिर अर्थात् प्रीति उत्पादन करने वाला सुख है, ये सब 'विष्णुपद' कहाते हैं, यह और्णवाभ आचार्य्य का मत है। 'पादैः सूयन्त इति वा' इसके कहने से कारणों से कार्य्य की उत्पत्ति की है ऐसा जानना चाहिये। 'पदं न दृश्यते' जो इन्द्रियों से ग्रहण नहीं होते वे परमाणु आदि पदार्थ अन्तरिक्ष में रहते भी हैं परन्तु आंखों से नहीं दीखते। 'इदं त्रेधाभावाय' इस तीन प्रकार के जगत् को जानना चाहिये, अर्थात् एक प्रकाशरहित पृथिवीरूप, दूसरा कारणरूप जो कि देखने में नहीं आता, और तीसरा प्रकाशमय सूर्य्य आदि लोक हैं। इस मन्त्र में विष्णु शब्द से व्यापक ईश्वर का ग्रहण है ॥ १७ ॥

भावार्थ—परमेश्वर ने इस संसार में तीन प्रकार का जगत् रचा है अर्थात् एक पृथिवीरूप, दूसरा अन्तरिक्ष आकाश में रहने वाला प्रकृति परमाणुरूप और तीसरा प्रकाशमय सूर्य्य आदि लोक तीन आधाररूप हैं,

इनमें से आकाश में वायु के आधार से रहने वाला जो कारणरूप है, वही पृथिवी और सूर्य्य आदि लोकों का बढ़ाने वाला है और इस जगत् को ईश्वर के विना कोई बनाने को समर्थ नहीं हो सकता, क्योंकि किसी का ऐसा सामर्थ्य ही नहीं ॥ १७ ॥

त्रीणि॑ प॒दा वि च॑क्रमे॒ विष्णु॑र्गो॒पा अदा॑भ्यः। अतो॒ धर्मा॑णि धा॒रय॑न्॥१८॥

पदार्थ—जिस कारण यह (अदाभ्यः) अपने अविनाशीपन से किसी की हिंसा में नहीं आ सकता (गोपाः) और सब संसार की रक्षा करने वाला. सब जगत् को (धारयन्) धारण करने वाला (विष्णुः) संसार का अन्तर्यामी परमेश्वर (त्रीणि) तीन प्रकार के (पदानि) जाने, जानने और प्राप्त होने योग्य पदार्थों और व्यवहारों को (विचक्रमे) विधान करता है, इसी कारण से सब पदार्थ उत्पन्न होकर अपने अपने (धर्माणि) धर्मों को धारण कर सकते हैं ॥ १८ ॥

भावार्थ—ईश्वर के धारण के विना किसी पदार्थ की स्थिति होने का सम्भव नहीं हो सकता। उस की रक्षा के विना किसी के व्यवहार की सिद्धि भी नहीं हो सकती ॥ १८ ॥

विष्णोः॒ कर्मा॑णि पश्यत॒ यतो॑ व्र॒तानि॑ पस्प॒शे। इन्द्र॑स्य॒ युज्यः॒ सखा॑॥१९॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! तुम जो (इन्द्रस्य) जीव का (युज्यः) अर्थात् जो अपनी व्याप्ति से पदार्थों में संयोग करने वाले दिशा, काल और आकाश हैं, उनमें व्यापक होके रमने वा (सखा) सब सुखों के सम्पादन करने से मित्र है (यतः) जिससे जीव (व्रतानि) सत्य बोलने और न्याय करने आदि उत्तम कर्मों को (पस्पशे) प्राप्त होता है उस (विष्णोः) सर्वत्र व्यापक शुद्ध और स्वभावसिद्ध अनन्त सामर्थ्य वाले परमेश्वर के (कर्माणि) जो कि जगत् की रचना पालना न्याय और प्रयत्न करना आदि कर्म हैं, उनको तुम लोग (पश्यत) अच्छे प्रकार विदित करो ॥ १९ ॥

भावार्थ—जिस कारण सब के मित्र जगदीश्वर ने पृथिवी आदि लोक तथा जीवों के साधन सहित शरीर रचे हैं। इसी से सब प्राणी अपने २ कार्यों के करने को समर्थ होते हैं ॥ १९ ॥

तद्विष्णोः॑ प॒र॒मं प॒दं सदा॑ पश्यन्ति सू॒रयः॑। दि॒वी॑व॒ चक्षु॒रात॑तम्॥२०॥

पदार्थ—(सूरयः) धार्मिक बुद्धिमान् पुरुषार्थी विद्वान् लोग (दिवि) सूर्य आदि के प्रकाश में (आततम्) फैले हुए (चक्षुरिव) नेत्रों के समान जो (विष्णोः) व्यापक आनन्दस्वरूप परमेश्वर का विस्तृत (परमम्) उत्तम से उत्तम(पदम्) चाहने जानने और प्राप्त होने योग्य उक्त वा वक्ष्यमाण पद है (तत्) उसको (सदा) सब काल में विमल शुद्ध ज्ञान के द्वारा अपने आत्मा में (पश्यन्ति) देखते हैं ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे प्राणी सूर्य्य के प्रकाश में शुद्ध नेत्रों से मूर्तिमान् पदार्थों को देखते हैं। वैसे ही विद्वान् लोग निर्मल विज्ञान से विद्या वा श्रेष्ठ विचारयुक्त शुद्ध अपने आत्मा में जगदीश्वर को सब आनन्दों से युक्त और प्राप्त होने योग्य मोक्ष पद को देखकर प्राप्त होते हैं। इस की प्राप्ति के विना कोई मनुष्य सब सुखों को प्राप्त होने में समर्थ नहीं हो सकता। इस से इसकी प्राप्ति के निमित्त सब मनुष्यों को निरन्तर यत्न करना चाहिये।

इस मन्त्र में 'परमम्' 'पदम्' इन पदों के अर्थ में यूरोपियन विलसन साहब ने कहा है कि इस का अर्थ स्वर्ग नहीं हो सकता, यह उनकी भ्रान्ति है, क्योंकि परमपद का अर्थ स्वर्ग ही है ॥ २० ॥

तद्विप्रा॑सो विप॒न्यवो॑ जागृ॒वांस॒ः समि॑न्धते । विष्णो॒र्यत्प॑र॒मं प॒दम् ॥२१॥

पदार्थ—(**विष्णोः**) व्यापक जगदीश्वर का (**यत्**) जो उक्त (**परमम्**) सब उत्तम गुणों से प्रकाशित (**पदम्**) प्राप्त होने योग्य पद है (**तत्**) उसको (**विपन्यवः**) अनेक प्रकार के जगदीश्वर के गुणों की प्रशंसा करने वाले (**जागृवांसः**) सत्कर्म में जागृत (**विप्रासः**) बुद्धिमान् सज्जन पुरुष हैं, वे ही (**समिन्धते**) अच्छे प्रकार प्रकाशित करके प्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अविद्या और अधर्माचरणरूप नींद को छोड़कर विद्या और धर्माचरण में जाग रहे हैं, वे ही सच्चिदानन्दस्वरूप सब प्रकार से उत्तम सब को प्राप्त होने योग्य निरन्तर सर्वव्यापी विष्णु अर्थात् जगदीश्वर को प्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥

पहिले सूक्त में जो दो पदों के अर्थ कहे थे उनके सहचारि अश्वि, सविता, अग्नि, देवी, इन्द्राणी, वरुणानी, अग्नायी, द्यावापृथिवी, भूमि, विष्णु और इनके अर्थों का प्रकाश इस सूक्त में किया है इससे पहिले सूक्त के साथ इस सूक्त की सङ्गति जाननी चाहिये।

इसके आगे सायण और विलसन आदि के विषय में जो यह सूक्त के अन्त में खण्डन द्योतक पंक्ति लिखते हैं सो न लिखी जायगी क्योंकि जो सर्वथा अशुद्ध है उसको बारम्बार लिखना पुनरुक्त और निरर्थक है जहां कहीं लिखने योग्य होगा वहां तो लिखा ही जायगा परन्तु इतने लेख से यह अवश्य जानना कि ये टीका वेदों की व्याख्या तो नहीं हैं, किन्तु इनको व्यर्थ दूषित करनेहारी हैं ॥

यह बाइसवां सूक्त समाप्त हुआ।

काण्वो मेधातिथिर्ऋषिः । १ वायुः; २, ३ इन्द्रवायू; ४-६ मित्रावरुणौ; ७-९ इन्द्रोमरुत्वान्; १०-१२ विश्वेदेवाः; १३-१५ पूषा; १६-२२ आपः; २३, २४ अग्निश्च देवताः । १-१८ गायत्री; १९ पुर उष्णिक्; २० अनुष्टुप्; २१ प्रतिष्ठा; २२-२४ अनुष्टुप् च छन्दांसि । १-१८ षड्जः; १९ ऋषभः; २० गान्धारः । २१ षड्जः; २२-२४ गान्धारश्च स्वराः ॥

तीव्राः सोमास आ गह्याशीर्वन्तः सुता इमे । वायो तान् प्रस्थितान् पिब ॥१॥

पदार्थ—जो (इमे) (तीव्राः) तीक्ष्ण वेगयुक्त (आशीर्वन्तः) जिनकी कामना प्रशंसनीय होती है (सुताः) उत्पन्न हो चुके वा (सोमासः) प्रत्यक्ष में होते हैं (तान्) उन सभों को (वायो) पवन (आगहि) सर्वथा प्राप्त होता है तथा यही उन (प्रस्थितान्) इधर उधर अति सूक्ष्मरूप से चलायमानों को (पिब) अपने भीतर कर लेता है, जो इस मन्त्र में (आशीर्वन्तः) इस पद को सायणचार्य ने 'श्रीञ् पाके' इस धातु का सिद्ध किया है सो भाष्यकार की व्याख्या से विरुद्ध होने से अशुद्ध ही है ॥ १ ॥

भावार्थ—प्राणी जिनको प्राप्त होने की इच्छा करते और जिन के मिलने में श्रद्धालु होते हैं उन सभों को पवन ही प्राप्त करके यथावत् स्थिर करता है, इससे जिन पदार्थों के तीक्ष्ण वा कोमल गुण हैं उन को यथावत जानके मनुष्य लोग उन से उपकार लेवें ॥ १ ॥

उभा देवा दिविस्पृशेन्द्रवायू हवामहे । अस्य सोमस्य पीतये ॥२॥

पदार्थ—हम लोग (अस्य) इस प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष (सोमस्य) उत्पन्न करने वाले संसार के सुख के (पीतये) भोगने के लिये (दिविस्पृशा) जो प्रकाशयुक्त आकाश में विमान आदि यानों को पहुचाने और (देवा) दिव्यगुण वाले (उभा) दोनों (इन्द्रवायू) अग्नि और पवन हैं उन को (हवामहे) साधने की इच्छा करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—जो अग्नि पवन और जो वायु अग्नि से प्रकाशित होता है, जो ये दोनों परस्पर आकांक्षायुक्त अर्थात् सहायकारी हैं, जिनसे सूर्य्य प्रकाशित होता है, मनुष्य लोग जिनको साध और युक्ति के साथ नित्य क्रियाकुशलता में सम्प्रयोग करते हैं, जिनके सिद्ध करने से मनुष्य बहुत से सुखों को प्राप्त होते हैं, उन के जानने की इच्छा क्यों न करनी चाहिये ॥ २ ॥

इन्द्रवायू मनोजुवा विप्रा हवन्त ऊतये । सहस्राक्षा धियस्पती ॥३॥

पदार्थ—(विप्राः) विद्वान् लोग (ऊतये) क्रियासिद्धि की इच्छा के लिये जो (सहस्राक्षा) जिन से असंख्यात अक्ष अर्थात् इन्द्रियवत् साधन सिद्ध होते (धियः)

शिल्प कर्म के (पती) पालने और (मनोजुवा) मन के समान वेगवाले हैं उन (इन्द्रवायू) विद्युत् और पवन को (हवन्ते) ग्रहण करते हैं, उन के जानने की इच्छा अन्य लोग भी क्यों न करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—विद्वानों को उचित है कि शिल्पविद्या की सिद्धि के लिये असंख्यात व्यवहारों को सिद्ध कराने वाले वेग आदि गुणयुक्त विजुली और वायु के गुणों की क्रियासिद्धि के लिये अच्छे प्रकार सिद्धि करनी चाहिये ॥ ३ ॥

मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये । जज्ञाना पूतदक्षसा ॥४॥

पदार्थ—(वयम्) हम पुरुषार्थी लोग जो (सोमपीतये) जिस में सोम अर्थात् अपने अनुकूल सुखों को देने वाले रसयुक्त पदार्थों का पान होता है उस व्यवहार के लिये (पूतदक्षसा) पवित्र बल करने वाले (जज्ञाना) विज्ञान के हेतु (मित्रम्) जीवन के निमित्त बाहिर वा भीतर रहने वाले प्राण और (वरुणम्) जो श्वासरूप ऊपर को आता है उस बल करने वाले उदान वायु को (हवामहे) ग्रहण करते हैं उनको तुम लोगों को भी क्यों न जानना चाहिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को प्राण और उदान वायु के विना सुखों का भोग और बल का सम्भव कभी नहीं हो सकता, इस हेतु से इन के सेवन की विद्या को ठीक ठीक जानना चाहिये ॥ ४ ॥

ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती । ता मित्रावरुणा हुवे ॥५॥

पदार्थ—मैं (यौ) जो (ऋतेन) परमेश्वर ने उत्पन्न करके धारण किये हुए (ऋतावृधौ) जल को बढ़ाने और (ऋतस्य) यथार्थ स्वरूप (ज्योतिषः) प्रकाश के (पती) पालन करने वाले (मित्रावरुणौ) सूर्य और वायु हैं उनको (हुवे) ग्रहण करता हूं ॥ ५ ॥

भावार्थ—न सूर्य और वायु के विना जल और ज्योति अर्थात् प्रकाश की योग्यता न ईश्वर के उत्पादन किये विना सूर्य्य और वायु की उत्पत्ति का सम्भव और न इन के विना मनुष्यों के व्यवहारों की सिद्धि हो सकती है ॥ ५ ॥

वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः । करतां नः सुराधसः ॥६॥

पदार्थ—जैसे यह अच्छे प्रकार सेवन किया हुआ (वरुणः) बाहर वा भीतर रहने वाला वायु (विश्वाभिः) सब (ऊतिभिः) रक्षा आदि निमित्तों से सब प्राणियों को पदार्थों करके (प्राविता) सुख प्राप्त करने वाला (भुवत्) होता है (मित्रश्च) और सूर्य्य भी जो (नः) हम लोगों को (सुराधसः) सुन्दर विद्या और चक्रवर्ति

राज्य सम्बन्धी धनयुक्त (करताम्) करते हैं जैसे विद्वान् लोग इन से बहुत कार्य्यों को सिद्ध करते हैं वैसे हम लोग भी इसी प्रकार इन का सेवन क्यों न करें ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिसलिये इन उक्त वायु और सूर्य के आश्रय करके सब पदार्थों के रक्षा आदि व्यवहार सिद्ध होते हैं, इसलिये विद्वान् लोग भी इनसे बहुत कार्य्यों को सिद्ध करके उत्तम उत्तम धनों को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

मरुत्वन्तं हवामह इन्द्रमा सोमपीतये । सजूर्गणेन तृम्पतु ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! जैसे इस संसार में हम लोग (सोमपीतये) पदार्थों के भोगने के लिये जिस (मरुत्वन्तम्) पवनों के सम्बन्ध से प्रसिद्ध होने वाली (इन्द्रम्) बिजली को (हवामहे) ग्रहण करते हैं (सजूः) जो सब पदार्थों में एकसी वर्तने वाली (गरोन) पवनों के समूह के साथ (नः) हम लोगों को (आतृम्पतु) अच्छे प्रकार तृप्त करती है वैसे उसको तुम लोग भी सेवन करो ॥ ७ ॥

भावार्थ— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को योग्य है कि जिस सहायकारी पवन के विना अग्नि कभी प्रज्वलित होने को समर्थ और उक्त प्रकार बिजली रूप अग्नि के विना किसी पदार्थ की बढ़ती का सम्भव नहीं हो सकता, ऐसा जानें ॥ ७ ॥

इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः । विश्वे मम श्रुता हवम् ॥८॥

पदार्थ—जो (पूषरातयः) सूर्य्य के सम्बन्ध से पदार्थों को देने (इन्द्रज्येष्ठाः) जिन के बीच में सूर्य्य बड़ा प्रशंसनीय होरहा है और (देवासः) दिव्य गुण वाले (विश्वे) सब (मरुद्गणाः) पवनों के समूह (मम) मेरे (हवम्) कार्य्य करने योग्य शब्दव्यवहार को (श्रुत) सुनाते हैं वे ही आप लोगों को भी ॥ ८ ॥

भावार्थ—कोई भी मनुष्य जिन पवनों के विना कहना, सुनना और पुष्ट होनादि व्यवहारों को प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकता । जिनके मध्य में सूर्य्य लोक सब से बड़ा विद्यमान, जो इसके प्रदीपन कराने वाले हैं, जो यह सूर्य्य लोक अग्निरूप ही है, जिन और जिस बिजुली के विना कोई भी प्राणी अपनी वाणी के व्यवहार करने को भी समर्थ नहीं हो सकता इत्यादि इन सब पदार्थों की विद्या को जान के मनुष्यों को सदा सुखी होना चाहिये ॥ ८ ॥

हत वृत्रं सुदानव इन्द्रेण सहसा युजा । मा नो दुःशंस ईशत ॥९॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! आप जो (सुदानवः) उत्तम पदार्थों को प्राप्त कराने (सहसा) बल और (युजा) अपने अनुषङ्गी (इन्द्रेण) सूर्य्य वा बिजुली

के साथी होकर (वृत्रम्) मेघ को (हत) छिन्न भिन्न करते हैं उनसे (नः) हम लोगों के (दुःशंसः) दुःख कराने वाले (मा) (ईशत) कभी मत हूजिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—हम लोग ठीक पुरुषार्थ और ईश्वर की उपासना करके विद्वानों की प्रार्थना करते हैं कि जिससे हम लोगों को जो पवन, सूर्य्य की किरण वा बिजुली के साथ मेघमण्डल में रहने वाले जल को छिन्न भिन्न और वर्षा करके और फिर पृथिवी से जल समूह को उठाकर ऊपर को प्राप्त करते हैं, उनकी विद्या मनुष्यों को प्रयत्न से अवश्य जाननी चाहिये ॥ ९ ॥

विश्वान् देवान् हवामहे मरुतः सोमपीतये । उग्रा हि पृश्निमातरः ॥१०॥

पदार्थ—विद्या की इच्छा करने वाले हम लोग (हि) जिस कारण से जो ज्ञान क्रिया के निमित्त से शिल्पव्यवहारों को प्राप्त कराने वाले (उग्राः) तीक्ष्णता वा श्रेष्ठ वेग के सहित और (पृश्निमातरः) जिनकी उत्पत्ति का निमित्त आकाश वा अन्तरिक्ष है इससे उन (विश्वान्) सब (देवान्) दिव्यगुणों के सहित उत्तम गुणों के प्रकाश कराने वाले वायुओं को (हवामहे) उत्तम विद्या की सिद्धि के लिये जानना चाहते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ—जिस से यह वायु आकाश ही से उत्पन्न आकाश में आने जाने और तेजस्विभाव वाले हैं, इसी से विद्वान् लोग कार्य्य के अर्थ इनका स्वीकार करते हैं ॥ १० ॥

जयतामिव तन्यतुर्मरुतामेति धृष्णुया । यच्छुभं याथना नरः ॥११॥

पदार्थ—हे (नरः) धर्मयुक्त शिल्पविद्या के व्यवहारों को प्राप्त करने वाले मनुष्यो ! आप लोग भी (जयतामिव) जैसे विजय करने वाले योद्धाओं के सहाय से राजा विजय को प्राप्त होता और जैसे (मरुताम्) पवनों के सङ्ग से (धृष्णुया) दृढ़ता आदि गुण युक्त (तन्यतुः) अपने वेग को अति शीघ्र विस्तार करने वाली बिजुली मेघ को जीतती है वैसे (यत्) जितना (शुभम्) कल्याणयुक्त सुख है उस सब को प्राप्त हूजिये ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् लोग शूरवीरों की सेना से शत्रुओं के विजय वा जैसे पवनों के घिसने से बिजुली के पत्र को चलाकर दूरस्थ देशों को जा वा आग्नेयादि अस्त्रों की सिद्धि को करके सुखों को प्राप्त होते हैं वैसे ही तुमको भी विज्ञान वा पुरुषार्थ करके इनसे व्यावहारिक और पारमार्थिक सुखों को निरन्तर बढ़ाना चाहिये ॥ ११ ॥

हस्काराद्विद्युतस्पर्य्यतो जाता अवन्तु नः । मरुतो मृळयन्तु नः ॥१२॥

पदार्थ—हम लोग जिस कारण (हस्कारात्) अति प्रकाश से (जाताः)

प्रकट हुई (विद्युतः) जो कि चपलता के साथ प्रकाशित होती हैं वे बिजली (नः) हम लोगों के सुखों को (अवन्तु) प्राप्त करती हैं। जिनसे अन्न को (परि) सब प्रकार से साधते और जिससे (मरुतः) पवन (नः) हम लोगों को (मृळयन्तु) सुखयुक्त करते हैं (अतः) इससे उनको भी शिल्प आदि कार्यों में (परि) अच्छे प्रकार से साधें ॥ १२ ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग जब पहिले वायु फिर बिजुली के अनन्तर जल पृथिवी और ओषधी की विद्या को जानते हैं तब अच्छे प्रकार सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ १२ ॥

आ पूषञ्चित्रबर्हिषमाघृणे धरुणं दिवः। आजा नष्टं यथा पशुम् ॥१३॥

पदार्थ—जैसे कोई पशुओं को पालने वाला मनुष्य (नष्टम्) खोये (पशुम्) गौ आदि पशुओं को प्राप्त होकर प्रकाशित करता है वैसे यह (आघृणे) परिपूर्ण किरणों (पूषन्) पदार्थों को पुष्ट करने वाला सूर्यलोक (दिवः) अपने प्रकाश से (चित्रबर्हिषम्) जिससे विचित्र आश्चर्यरूप अन्तरिक्ष विदित होता है (धरुणम्) धारण करनेहारे भूगोलों को (आज) अच्छे प्रकार प्रकाश करता है ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे पशुओं को पालने वाले अनेक काम करके, गौ आदि पशुओं को पुष्ट करके, उनके दुग्ध आदि पदार्थों से मनुष्यों को सुखी करते हैं, वैसे ही यह सूर्य्यलोक चित्र विचित्र लोकों से युक्त आकाश वा आकाश में रहने वाले पदार्थों को, अपनी किरणें वा आकर्षण शक्ति से पुष्ट करके प्रकाशित करता है ॥ १३ ॥

पूषा राजानमाघृणिरपगूळ्हं गुहा हितम्। अविन्दच्चित्रबर्हिषम् ॥१४॥

पदार्थ—जिस से यह (आघृणिः) पूर्ण प्रकाश वा (पूषा) जो अपनी व्याप्ति से सब पदार्थों को पुष्ट करता है वह जगदीश्वर (गुहा) (हितम्) आकाश वा बुद्धि में यथायोग्य स्थापन किये हुए वा स्थित (चित्रबर्हिषम्) जो अनेक प्रकार के कार्य्य को करता (अपगूळ्हम्) अत्यन्त गुप्त (राजानम्) प्रकाशमान प्राणवायु और जीव को (अविन्दत्) जानता है इससे वह सर्वशक्तिमान् है ॥ १४ ॥

भावार्थ—जिस कारण जगत् का रचने वाला ईश्वर सब को पुष्ट करनेहारे हृदयस्थ प्राण और जीव को जानता है इससे सब का जानने वाला है ॥ १४ ॥

उतो स मह्यमिन्दुभिः षड्युक्ताँ अनुसेषिधत्। गोभिर्यवं न चर्कृषत् ॥१५॥

पदार्थ—जैसे खेती करने वाला मनुष्य हरएक अन्न की सिद्धि के लिये भूमि

को (चर्क्कृषत्) वारंवार जोतता है (न) वैसे (सः) वह ईश्वर (मह्यम्) जो मैं धर्मात्मा पुरुषार्थी हूँ उसके लिये (इन्दुभिः) स्निग्ध मनोहर पदार्थों और वसन्त आदि (षट्) छः (ऋतून्) ऋतुओं को (युक्तान्) (गोभिः) गौ, हाथी और घोड़े आदि पशुओं के साथ सुखसंयुक्त और (यवम्) यव आदि अन्न को (अनुसेषिधत्) वारंवार हमारे अनुकूल प्राप्त करे इससे मैं उसी को इष्टदेव मानता हूँ ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य वा खेती करने वाला किरण वा हल आदि से वारंवार भूमि को आकर्षित वा खन, बो और धान्य आदि की प्राप्ति कर सचिक्कन कर पदार्थों के सेवन के साथ वसन्त आदि छः ऋतुओं को सुखों से संयुक्त करता है, वैसे ईश्वर भी समय के अनुकूल सब जीवों को कर्मों के अनुसार रस को उत्पन्न वा ऋतुओं के विभाग से उक्त ऋतुओं को सुख देने वाली करता है ॥ १५ ॥

अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम् । पृञ्चतीर्मधुना पयः ॥१६॥

पदार्थ—जैसे भाइयों को (जामयः) भाई लोग अनुकूल आचरण सुख सम्पादन करते हैं वैसे ये (अम्बयः) रक्षा के करने वाले जल (अध्वरीयताम्) जो कि हम लोग अपने आप को यज्ञ करने की इच्छा करते हैं उनको (मधुना) मधुरगुण के साथ (पयः) सुखकारक रस को (अध्वभिः) मार्गों से (पृञ्चतीः) पहुँचाने वाले (यन्ति) प्राप्त होते हैं ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । जैसे बन्धुजन अपने भाई को अच्छे प्रकार पुष्ट करके सुख करते हैं, वैसे ये जल ऊपर नीचे जाते आते हुए मित्र के समान प्राणियों के सुखों का सम्पादन करते हैं और इनके विना किसी प्राणी वा अप्राणी की उन्नति नहीं हो सकती । इससे ये रस को उत्पत्ति के द्वारा सब प्राणियों को माता पिता के तुल्य पालन करते हैं ॥१६॥

अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह । ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥१७॥

पदार्थ—(याः) जो (अमूः) जल दृष्टिगोचर नहीं होते (सूर्य्ये) सूर्य वा इस के प्रकाश के मध्य में वर्त्तमान हैं (वा) अथवा (याभिः) जिन जलों के (सह) साथ सूर्यलोक वर्त्तमान है (ताः) वे (नः) हमारे (अध्वरम्) हिंसा-रहित सुखरूप यज्ञ को (उपहिन्वन्तु) प्रत्यक्ष सिद्ध करते हैं ॥ १७ ॥

भावार्थ—जो जल पृथिवी आदि मूर्त्तिमान् पदार्थों से सूर्य्य की किरणों करके छिन्न भिन्न अर्थात् कण कण होता हुआ सूर्य के सामने ऊपर को

जाता है, वही ऊपर से वृष्टि के द्वारा गिरा हुआ पान आदि व्यवहार वा विमान आदि यानों में अच्छे प्रकार संयुक्त किया हुआ सुख बढ़ाता है॥ १७॥

अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः। सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः॥१८॥

पदार्थ—(**यत्र**) जिस व्यवहार में (**गावः**) सूर्य की किरणें (**सिन्धुभ्यः**) समुद्र और नदियों से (**देवीः**) दिव्य गुणों को प्राप्त करने वाले (**अपः**) जलों को (**पिबन्ति**) पीती हैं उन जलों को (**नः**) हम लोगों के (**हविः**) हवन करने योग्य पदार्थों के (**कर्त्वम्**) उत्पन्न करने के लिए मैं (**उपह्वये**) अच्छे प्रकार स्वीकार करता हूँ॥ १८॥

भावार्थ—सूर्य की किरणें जितना जल छिन्न भिन्न अर्थात् कण कण कर वायु के संयोग से खैंचती हैं उतना ही वहां से निवृत्त होकर भूमि और ओषधियों को प्राप्त होता है। विद्वान् लोगों को वह जल, पान, स्नान और शिल्पकार्य आदि में संयुक्त कर नाना प्रकार के सुख सम्पादन करने चाहियें॥ १८॥

अप्स्व१न्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये। देवा भवत वाजिनः॥१९॥

पदार्थ—हे (**देवाः**) विद्वानो! तुम (**प्रशस्तये**) अपनी उत्तमता के लिये (**अप्सु**) जलों के (**अन्तः**) भीतर जो (**अमृतम्**) मार डालने वाले रोग का निवारण करने वाला अमृतरूप रस (**उत**) तथा (**अप्सु**) जलों में (**भेषजम्**) औषध हैं उनको जानकर (**अपाम्**) उन जलों की क्रियाकुशलता से (**वाजिनः**) उत्तम श्रेष्ठ ज्ञान वाले (**भवत**) हो जाओ॥ १९॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! तुम अमृतरूपी रस वा ओषधि वाले जलों से शिल्प और वैद्यकशास्त्र की विद्या से उनके गुणों को जानकर कार्य्य की सिद्धि वा सब रोगों की निवृत्ति नित्य करो॥ १९॥

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।
अग्निं च विश्वशम्भुवमापश्च विश्वभेषजीः॥२०॥

पदार्थ—जैसे यह (**सोमः**) ओषधियों का राजा चन्द्रमा वा सोमलता (**मे**) मेरे लिये (**अप्सु**) जलों के (**अन्तः**) बीच में (**विश्वानि**) सब (**भेषजा**) ओषधि (**च**) तथा (**विश्वशम्भुवम्**) सब जगत् के लिये सुख करने वाले (**अग्निम्**) बिजुली को (**अब्रवीत्**) प्रसिद्ध करता है इसी प्रकार (**विश्वभेषजीः**) जिनके निमित्त से सब ओषधियाँ होती हैं वे (**आपः**) जल भी अपने में उक्त सब ओषधियों और उक्त गुण वाले अग्नि को जानते हैं॥ २०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सब पदार्थ अपने गुणों से अपने अपने स्वभावों और उनमें ओषधियों की पुष्टि कराने वाला चन्द्रमा और जो ओषधियों में मुख्य सोमलता है ये दोनों जल के निमित्त और ग्रहण करने योग्य सब ओषधियों का प्रकाश करते हैं, वैसे सब ओषधियों के हेतु जल अपने अन्तर्गत समस्त सुखों का हेतु मेघ का प्रकाश और जो जलों में ओषधियों का निमित्त और जो जल में अग्नि का निमित्त है ऐसा जानना चाहिये ॥ २० ॥

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३ मम । ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥२१॥

पदार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि सब पदार्थों को व्याप्त होने वाले प्राण (सूर्य्यम्) सूर्यलोक के (दृशे) दिखलाने वा (ज्योक्) बहुत काल जिवाने के लिये (मम) मेरे (तन्वे) शरीर के लिये (वरूथम्) श्रेष्ठ (भेषजम्) रोग नाश करने वाले व्यवहार को (पृणीत) परिपूर्णता से प्रकट कर देते हैं उनका सेवन युक्ति ही से करना चाहिये ॥ २१ ॥

भावार्थ—प्राणों के विना कोई प्राणी वा वृक्ष आदि पदार्थ बहुत काल शरीर धारण करने को समर्थ नहीं हो सकते, इससे क्षुधा और प्यास आदि रोगों के निवारण के लिये परम अर्थात् उत्तम से उत्तम ओषधों को सेवने से योगयुक्ति से प्राणों का सेवन ही परम उत्तम है, ऐसा जानना चाहिये ॥ २१ ॥

इदमापः प्र वहत यत्किञ्च दुरितं मयि ।
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम् ॥२२॥

पदार्थ—मैं (यत्) जैसा (किम्) कुछ (मयि) कर्म का अनुष्ठान करने वाले मुझ में (दुरितम्) दुष्ट स्वभाव के अनुष्ठान से उत्पन्न हुआ पाप (च) वा श्रेष्ठता से उत्पन्न हुआ पुण्य (वा) अथवा (यत्) अत्यन्त क्रोध से (अभिदुद्रोह) प्रत्यक्ष किसी से द्रोह करता वा मित्रता करता (वा) अथवा (यत्) जो कुछ अत्यन्त ईर्ष्या से किसी सज्जन को (शेपे) शाप देता वा किसी को कृपादृष्टि से चाहता हुआ जो (अनृतम्) झूठ (उत) वा सत्य काम करता हूं (इदम्) यह सब आचरण किये हुए को (आपः) मेरे प्राण मेरे साथ होके (प्रवहत) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग जैसा कुछ पाप वा पुण्य करते हैं, सो ईश्वर अपनी न्याय व्यवस्था से उनको प्राप्त कराता ही है ॥ २२ ॥

आपो॑ अ॒द्यान्व॑चारिषं॒ रसे॑न॒ सम॑गस्महि ।
पय॑स्वानग्न॒ आ ग॑हि॒ तं मा॒ सं सृ॑ज॒ वर्च॑सा ॥२३॥

पदार्थ—हम लोग जो (रसेन) स्वाभाविक रसगुण संयुक्त (आपः) जल हैं उनको (समगस्महि) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं जिनसे मैं (पयस्वान्) रस युक्त शरीर वाला होकर जो कुछ (अन्वचारिषम्) विद्वानों के अनुचरण अर्थात् अनुकूल उत्तम काम करके उसको प्राप्त होता और जो यह (अग्ने) भौतिक अग्नि (मा) मुझ को इस जन्म और जन्मान्तर अर्थात् एक जन्म से दूसरे जन्म में (आगहि) प्राप्त होता है अर्थात् वही पिछले जन्म में (तम्) उसी कर्मों के नियम से पालने वाले (मा) मुझे (अद्य) आज वर्त्तमान भी (वर्चसा) दीप्ति (संसृज) सम्बन्ध कराता है उन और उसको युक्ति से सेवन करना चाहिये ॥ २३ ॥

भावार्थ—सब प्राणियों को पिछले जन्म में किये हुए पुण्य वा पाप का फल वायु जल और अग्नि आदि पदार्थों के द्वारा इस जन्म वा अगले जन्म में प्राप्त होता ही है ॥ २३ ॥

सं मा॑ग्ने॒ वर्च॑सा सृज॒ सं प्र॒जया॒ समायु॑षा ।
वि॒द्युर्मे॑ अस्य दे॒वा इन्द्रो॑ वि॒द्यात्स॒ह ऋषि॑भिः ॥२४॥

पदार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जो (ऋषिभिः) वेदार्थ जानने वालों के (सह) साथ (देवाः) विद्वान् लोग और (इन्द्रः) परमात्मा (अग्ने) भौतिक अग्नि (वर्चसा) दीप्ति (प्रजया) संतान आदि पदार्थ और (आयुषा) जीवन से (मा) मुझे (संसृज) संयुक्त करता है उस और (मे) मेरे (अस्य) इस जन्म के कारण को जानते और (विद्यात्) जानता है इससे उसका संग और उसकी उपासना नित्य करें ॥ २४ ॥

भावार्थ—जब जीव पिछले शरीर को छोड़कर अगले शरीर को प्राप्त होता है तब उसके साथ जो स्वाभाविक मानस अग्नि जाता है वही फिर शरीर आदि पदार्थों को प्रकाशित करता है जो जीवों के पाप पुण्य और जन्म का कारण है उसको वे [विद्वान्] ही परमेश्वर के सिवाय जानते हैं किन्तु परमेश्वर तो निश्चय के साथ यथायोग्य जीवों के पाप वा पुण्य को जानकर, उनके कर्म के अनुसार शरीर देकर, सुख दुःख का भोग कराता ही है ॥ २४ ॥

पूर्व सूक्त से कहे हुए अश्वि आदि पदार्थों के अनुषङ्गी जो वायु आदि

पदार्थ हैं, उनके वर्णन से पिछले बाईसवें सूक्त के अर्थ के साथ इस तेईसवें सूक्त के अर्थ की सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह तेईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

आजीगर्त्तिः शुनःशेपः कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातिर्ऋषिः । १ प्रजापतिः । २ अग्निः । ३–५ सविता भगो वा । ६–१५ वरुणश्च देवताः । १, २, ६–१५ त्रिष्टुप् । ३–५ गायत्री छन्दः । १, २, ६—१५ धैवतः । ३–५ षड्जश्च स्वरौ ॥

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम ।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात्पितरं च दृशेयं मातरं च ॥१॥

पदार्थ—हम लोग (कस्य) कैसे गुण कर्म स्वभाव युक्त (कतमस्य) किस बहुतों (अमृतानाम्) उत्पत्ति विनाशरहित अनादि मोक्षप्राप्त जीवों और जो जगत् के कारण नित्य के मध्य में व्यापक अमृतस्वरूप अनादि तथा एक पदार्थ (देवस्य) प्रकाशमान सर्वोत्तम सुखों को देने वाले देव का निश्चय के साथ (चारु) सुन्दर (नाम) प्रसिद्ध नाम को (मनामहे) जानें कि जो (नूनम्) निश्चय करके (कः) कौन सुखस्वरूप देव (नः) मोक्ष को प्राप्त हुए भी हम लोगों को (मह्यै) बड़ी कारणरूप नाश रहित (अदितये) पृथिवी के बीच में (पुनः) पुनर्जन्म) (दात्) देता है । जिस से कि हम लोग (पितरम्) पिता (च) और (मातरम्) माता (च) और स्त्री पुत्र बन्धु आदि को (दृशेयम्) देखने की इच्छा करें ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में प्रश्न का विषय है कौन ऐसा पदार्थ है जो सनातन अर्थात् अविनाशी पदार्थों में भी सनातन अविनाशी है कि जिसका अत्यन्त उत्कर्ष युक्त नाम का स्मरण करें वा जानें और कौन देव हम लोगों के लिए किस किस हेतु से एक जन्म से दूसरे जन्म का संपादन करता और अमृत वा आनन्द के कराने वाली मुक्ति को प्राप्त होकर भी फिर हम लोगों को माता पिता से दूसरे जन्म में शरीर को धारण कराता है ॥ १ ॥

अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम ।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात्पितरं च दृशेयं मातरं च ॥२॥

पदार्थ—हम लोग जिस (अग्ने) ज्ञानस्वरूप (अमृतानाम्) विनाश धर्म रहित पदार्थ वा मोक्ष प्राप्त जीवों में (प्रथमस्य) अनादि विस्तृत अद्वितीय स्वरूप (देवस्य) सब जगत् के प्रकाश करने वा संसार में सब पदार्थों के देने वाले परमेश्वर

का (चारु) पवित्र (नाम) गुणों का गान करना (मनामहे) जानते हैं (सः) वही (नः) हमको (मह्यै) बड़े बड़े गुण वाला (अदितये) पृथिवी के बीच में (पुनः) फिर जन्म (दात्) देता है जिससे हम लोग (पुनः) फिर (पितरम्) पिता (च) और (मातरम्) माता (च) और स्त्री पुत्र बन्धु आदि को (दृशेयम्) देखते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! हम लोग जिस अनादि स्वरूप सदा अमर रहने वा जो हम सब लोगों के किये हुए पाप और पुण्यों के अनुसार यथायोग्य सुख दुःख फल देने वाले जगदीश्वर देव को निश्चय करते और जिसकी न्याययुक्त व्यवस्था से पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं तुम लोग भी उसी देव को जानो किन्तु इससे और कोई उक्त कर्म करने वाला नहीं है ऐसा निश्चय हम लोगों को है कि वही मोक्षपदवी को पहुंचे हुए जीवों का भी महाकल्प के अन्त में फिर पाप पुण्य की तुल्यता से पिता माता और स्त्री आदि के बीच में मनुष्य-जन्म धारण कराता है ॥ २॥

अभि त्वा देव सवितरीशानं वार्य्याणाम् । सदावन्भागमीमहे ॥३॥

पदार्थ—हे (सवितः) पृथिवी आदि पदार्थों की उत्पत्ति वा (अवन्) रक्षा करने और (देव) सब आनन्द के देने वाले जगदीश्वर हम लोग (वार्य्याणाम्) स्वीकार करने योग्य पृथिवी आदि पदार्थों की (ईशानम्) यथायोग्य व्यवस्था करने (भागम्) सब के सेवा करने योग्य (त्वा) आपको (सदा) सब काल में (अभि) (ईमहे) प्रत्यक्ष याचते हैं अर्थात् आप ही से सब पदार्थों को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जो सबका प्रकाशक सकल जगत् को उत्पन्न वा सब की रक्षा करने वाला जगदीश्वर है वही सब समय में उपासना करने योग्य है क्योंकि इसको छोड़ के अन्य किसी की उपासना करके ईश्वर की उपासना का फल चाहे तो कभी नहीं हो सकता, इससे इसकी उपासना के विषय में कोई भी मनुष्य किसी दूसरे पदार्थ का स्थापन कभी न करे ॥३॥

यश्चिद्धि त इत्था भगः शशमानः पुरा निदः । अद्वेषो हस्तयोर्दधे ॥४॥

पदार्थ—हे जीव ! जैसे (अद्वेषः) सब से मित्रतापूर्वक वर्तने वाला द्वेषादि दोषरहित मैं ईश्वर (इत्था) इस प्रकार सुख के लिये (यः) जो (शशमानः) स्तुति (भगः) और स्वीकार करने योग्य धन है उसको (ते) तेरे धर्मात्मा के लिये (हि) निश्चय करके (हस्तयोः) हाथों में आमले का फल वैसे धर्म के साथ प्रशंस-नीय धन को (दधे) धारण करता हूं और जो (निदः) सब की निन्दा करने हारा

है उस के लिये उस धन समूह का विनाश कर देता हूँ वैसे तुम लोग भी किया करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—यहां वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे मैं ईश्वर सबके निन्दक मनुष्य के लिये दुःख और स्तुति करने वाले के लिये सुख देता हूं वैसे तुम भी सदा किया करो ॥ ४ ॥

भगभक्तस्य ते वयमुदशेम तवावसा । मूर्धानं राय आरभे ॥५॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! जिससे हम लोग (भगभक्तस्य) जो सब के सेवने योग्य पदार्थों का यथायोग्य विभाग करने वाले (ते) आपकी कीर्ति को (उदशेम) अत्यन्त उन्नति के साथ व्याप्त हों कि उससे) (तव) आपकी (अवसा) रक्षणादि कृपा-दृष्टि से (रायः) अत्यन्त धन के (मूर्धानम्) उत्तम से उत्तम भाग को प्राप्त होकर (आरभे) आरम्भ करने योग्य व्यवहारों में नित्य प्रवृत्त हों अर्थात् उसकी प्राप्ति के लिये नित्य प्रयत्न कर सकें ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अपने क्रिया कर्म से ईश्वर की आज्ञा में प्राप्त होते हैं वे ही उससे रक्षा को सब प्रकार से प्राप्त और सब मनुष्यों में उत्तम ऐश्वर्य वाले होकर प्रशंसा को प्राप्त होते हैं क्योंकि वही ईश्वर जीवों को उनके कर्मों के अनुसार न्याय व्यवस्था से विभाग कर फल देता है इससे ॥ ५ ॥

नहि ते क्षत्रं न सहो न मन्युं वयश्चनामी पतयन्त आपुः ।
नेमा आपो अनिमिषं चरन्तीर्न ये वातस्य प्रमिनन्त्यभ्वम् ॥६॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! (क्षत्रम्) अखण्ड राज्य को (पतयन्तः) इधर उधर चलायमान होते हुए (अमी) ये लोक लोकान्तर (न) नहीं (आपुः) व्याप्त होते है और न (वयः) पक्षी भी (न) नहीं (सहः) बल को (न) नहीं (मन्युं) जो कि दुष्टों पर क्रोध है उसको भी (न) नहीं व्याप्त होते हैं (न) नहीं ये (अनिमिषम्) निरन्तर (चरन्तीः) बहने वाले (आपः) जल वा प्राण आपके सामर्थ्य को (प्रमिनन्ति) परिमाण कर सकते और (ये) जो (वातस्य) वायु के वेग हैं वे भी आपकी सत्ता का परिमाण (न) नहीं कर सकते इसी प्रकार और भी सब पदार्थ आपकी (अभ्वम्) सत्ता का निषेध भी नहीं कर सकते ॥ ६ ॥

भावार्थ—ईश्वर के अनन्त सामर्थ्य होने से उसका परिमाण वा उसकी बराबरी कोई भी नहीं कर सकता है । ये सब लोक चलते हैं परन्तु लोकों के चलने से उनमें व्याप्त ईश्वर नहीं चलता क्योंकि जो सब जगह पूरण है वह कभी चलेगा ? इस ईश्वर की उपासना को छोड़कर किसी जीव

का पूर्ण अखण्डित राज्य वा सुख कभी नहीं हो सकता इससे सब मनुष्यों को अक्षय वा विनाश रहित परमेश्वर की सदा उपासना करनी योग्य है ॥ ६ ॥

अबुध्ने राजा वरुणो वनस्योर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः ।
नीचीनाः स्थुरुपरि बुध्न एषामस्मे अन्तर्निहिताः केतवः स्युः ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जो (पूतदक्षः) पवित्र बल वाला (राजा) प्रकाशमान (वरुणः) श्रेष्ठ जलसमूह वा सूर्य्यलोक (अबुध्ने) अन्तरिक्ष से पृथक् असदृश्य बड़े आकाश में (वनस्य) जो कि व्यवहारों के सेवने योग्य संसार है जो (ऊर्ध्वम्) उस पर (स्तूपम्) अपनी किरणों को (ददते) छोड़ता है जिसकी (नीचीनाः) नीचे को गिरते हुए (केतवः) किरणें (एषाम्) इन संसार के पदार्थों (उपरि) पर (स्थुः) ठहरती हैं (अन्तर्हिताः) जो उनके बीच में जल और (बुध्नः) मेघादि पदार्थ (स्युः) हैं और जो (केतवः) किरणें वा प्रज्ञान (अस्मे) हम लोगों में (निहिताः) स्थिर (स्युः) होते हैं उनको यथावत् जानो ॥ ७ ॥

भावार्थ—जिससे यह सूर्य्यरूप के न होने से अन्तरिक्ष का प्रकाश नहीं कर सकता इससे जो ऊपरली वा बिचली किरणें हैं वे ही मेघ की निमित्त हैं जो उनमें जल के परमाणु रहते तो हैं परन्तु वे अतिसूक्ष्मता के कारण दृष्टिगोचर नहीं होते इसी प्रकार वायु अग्नि और पृथिवी आदि के भी अतिसूक्ष्म अवयव अन्तरिक्ष में रहते तो अवश्य हैं परन्तु वे भी दृष्टिगोचर नहीं होते ॥ ७ ॥

उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ ।
अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित् ॥८॥

पदार्थ—(चित्) जैसे (अपवक्ता) मिथ्यावादी छली दुष्ट स्वभावयुक्त पराये पदार्थ (हृदयाविधः) अन्याय से परपीड़ा करने हारे शत्रु को दृढ़ बन्धनों से वश में रखते हैं वैसे जो (वरुणः) (राजा) अतिश्रेष्ठ और प्रकाशमान परमेश्वर वा श्रेष्ठता और प्रकाश का हेतु वायु (सूर्याय) सूर्य के (अन्वेतवै) गमनागमन के लिये (उरुम्) विस्तारयुक्त (पन्थाम्) मार्ग को (चकार) सिद्ध करते (उत) और (अपदे) जिसके कुछ भी चाक्षुष चिन्ह नहीं है उस अन्तरिक्ष में (प्रतिधातवे) धारण कराने के लिये सूर्य के (पादा) जिनसे जाना और आना बने उन गमन और आगमन गुणों को (अकः) सिद्ध करते हैं (उ) और जो परमात्मा सबका धर्त्ता (हि) और वायु इस काम के सिद्ध कराने का हेतु है उसकी सब मनुष्य उपासना और प्राण का उपयोग क्यों न करें ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार है । जिस परमेश्वर ने निश्चय के साथ जिस सब से बड़े सूर्य लोक के लिये बड़ीसी कक्षा अर्थात् उसके घूमने का मार्ग बनाया है । जो इसको वायुरूपी इंधन से प्रदीप्त करता और जो सब लोक अन्तरिक्ष में अपनी अपनी परिधियुक्त हैं कि किसी लोक का किसी लोकान्तर के साथ सङ्ग नहीं है किन्तु सब अन्तरिक्ष में ठहरे हुए अपनी अपनो परिधि पर चारों ओर घूमा करते हैं और जो आपस में जिस ईश्वर और वायु के आकर्षण और धारणशक्ति से अपनी अपनी परिधि को छोड़कर इधर उधर चलने को समर्थ नहीं हो सकते तथा जिस परमेश्वर और वायु के विना अन्य कोई भी इनका धारण करने वाला नहीं है जैसे परमेश्वर मिथ्यावादी अधर्म करने वाले से पृथक् है वैसे प्राण भी हृदय के विदीर्ण करने वाले रोग से अलग है उसको उपासना वा कार्य्यों में योजना सब मनुष्य क्यों न करें ॥८॥

शतं ते राजन् भिषजः सहस्रमुर्वी गभीरा सुमतिष्टे अस्तु ।
बाधस्व दूरे निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥९॥

पदार्थ—(राजन्) हे प्रकाशमान प्रजाध्यक्ष प्रजाजन वा जिस (भिषजः) सर्व रोग निवारण करने वाले (ते) आपकी (शतम्) असंख्यात औषधि और (सहस्रम्) असंख्यात (गभीरा) गहरी (उर्वी) विस्तारयुक्त भूमि है उस (निर्ऋतिम्) भूमि की (त्वम्) आप (सुमतिः) उत्तम बुद्धिमान् हो के रक्षा करे जो दुष्ट स्वभाव युक्त प्राणी को (प्रमुमुग्धि) दुष्ट कर्मों को छुड़ादे और जो (पराचैः) धर्म से अलग होने वालों ने (कृतम्) किया हुआ (एनः) पाप है उसको (अस्मत्) हम लोगों से (दूरे) दूर रखिये और उन दुष्टों को उनके कर्म के अनुकूल फल देकर आप (बाधस्व) उनकी ताड़ना और हम लोगों के दोषों को भी निवारण किया कीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । मनुष्यों को जानना चाहिये कि जो सभाध्यक्ष और प्रजा के उत्तम मनुष्य पाप वा सर्व रोग निवारण और पृथिवी के धारण करने, अत्यन्त बुद्धि बल देकर दुष्टों को दण्ड दिवाने वाले होते हैं वे ही सेवा के योग्य हैं और यह भी जानना कि किसी का किया हुआ पाप भोग के विना निवृत्त नहीं होता और इस के निवारण के लिये कुछ परमेश्वर की प्रार्थना वा अपना पुरुषार्थ करना भी योग्य नहीं है किन्तु यह तो है जो कर्म जीव वर्त्तमान में कर्त्ता वा करेगा उसकी निवृत्ति के लिये तो परमेश्वर की प्रार्थना वा उपदेश भी होता है ॥९॥

अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुह चिद्दिवेयुः ।

अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति ॥१०॥

पदार्थ—हम पूछते हैं कि जो ये (अमी) प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष (ऋक्षाः) सूर्य्यचन्द्रतारादिक नक्षत्र लोक किसने (उच्चाः) ऊपर को ठहरे हुए (निहितासः) यथा योग्य अपनी अपनी कक्षा में ठहराये हैं क्यों ये (नक्तम्) रात्रि में (ददृश्रे) देख पड़ते हैं और (दिवा) दिन में (कुहचित्) कहां (ईयुः) जाते हैं। इन प्रश्नों के उत्तर—जो (वरुणस्य) परमेश्वर वा सूर्य के (अदब्धानि) हिंसा रहित (व्रतानि) नियम वा कर्म हैं कि जिन से ये ऊपर ठहरे हैं (नक्तम्) रात्रि में (विचाकशत्) अच्छे प्रकार प्रकाशमान होते हैं ये कहीं नहीं जाते न आते हैं किन्तु आकाश के बीच में रहते हैं (चन्द्रमाः) चन्द्र आदि लोक (एति) अपनी अपनी दृष्टि के सामने आते और दिन में सूर्य्य के प्रकाश वा किसी लोक की आड़ से नहीं दीखते हैं ये प्रश्नों के उत्तर हैं ॥१० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है तथा इस मन्त्र के पहिले भाग से प्रश्न और पिछले भाग से उनका उत्तर जानना चाहिये कि जब कोई किसी से पूछे कि ये नक्षत्र लोक अर्थात् तारागण किसने बनाये और किसने धारण किये हैं और रात्रि में दीखते तथा दिन में कहां जाते हैं ? इनके उत्तर ये हैं कि ये सब ईश्वर ने बनाये और धारण किये हैं इनमें आपही प्रकाश नहीं किन्तु सूर्य के ही प्रकाश से प्रकाशमान होते हैं और ये कहीं नहीं जाते किन्तु दिन में छपे हुए दीखते नहीं और रात्रि में सूर्य की किरणों से प्रकाशमान होकर दीखते हैं ये सब धन्यवाद देने योग्य ईश्वर के ही कर्म हैं ऐसा सब सज्जनों को जानना चाहिये ॥१०॥

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः ।

अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः ॥११॥

पदार्थ—हे (उरुशंस) सर्वथा प्रशंसनीय (वरुण) जगदीश्वर ! जिस (त्वा) आपका आश्रय लेके (यजमानः) उक्त तीन प्रकार यज्ञ करने वाला विद्वान् (हविर्भिः) होम आदि साधनों से (तत्) अत्यन्त सुख की (आशास्ते) आशा करता है उन आप को (ब्रह्मणा) वेद से स्मरण और अभिवादन तथा (अहेडमानः) आपका अनादर अर्थात् अपमान नहीं करता हुआ मैं (यामि) आपको प्राप्त होता हूं आप कृपा करके मुझे (इह) इस संसार में (बोधि) बोधयुक्त कीजिये और (नः) हमारी (आयुः) उमर (मा) (प्रमोषीः) मत व्यर्थ खोइये अर्थात् अति शीघ्र मेरे आत्मा को प्रकाशित कीजिये ॥ १ ॥ (तत्) सुख की इच्छा करता हुआ (यजमानः) तीन प्रकार के यज्ञ

का अनुष्ठान करने वाला जिस (उरुशंस) अत्यन्त प्रशंसनीय (वरुण) सूर्य को (आशास्ते) चाहता है (त्वा) उस सूर्य्य को (ब्रह्मणा) वेदोक्त क्रियाकुशलता से (वन्दमानः) स्मरण करता हुआ (अहेडमानः) किन्तु उसके गुणों को न भूलता और (इह) इस संसार में (तत्) उक्त सुख की इच्छा करता हुआ मैं (यामि) प्राप्त होता हूं कि जिस से यह (उरुशंस) अत्यन्त प्रशंसनीय सूर्य्य हमको (बोधि) विदित होकर (नः) हम लोगों की (आयुः) उमर (मा) (प्रमोषीः) न नष्ट करे अर्थात् अच्छे प्रकार बढ़ावे ॥ २ ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को वेदोक्त रीति से परमेश्वर और सूर्य को जानकर सुखों को प्राप्त होना चाहिये और किसी मनुष्य को परमेश्वर वा सूर्य विद्या का अनादर न करना चाहिये सर्वदा ईश्वर की आज्ञा का पालन और उसके रचे हुए जो कि सूर्यादिक पदार्थ हैं उन के गुणों को जानकर उनसे उपकार लेके अपनी उमर निरन्तर बढ़ानी चाहिये ॥११॥

तदिन्नक्तं तद्दिवा मह्यमाहुस्तदयं केतो हृद आविचष्टे ।
शुनः शेपो यमह्वद्गृभीतः सो अस्मान्राजा वरुणो मुमोक्तु ॥१२॥

पदार्थ—विद्वान् लोग (नक्तम्) रात (दिवा) दिन जिस ज्ञान का (आहुः) उपदेश करते हैं (तत्) उस और जो (मह्यम्) विद्या धन की इच्छा करने वाले मेरे लिये (हृदः) मन के साथ आत्मा के बीच में (केतः) उत्तम बोध (आविचष्टे) सब प्रकार से सत्य प्रकाशित होता है (तदित्) उसी वेद बोध अर्थात् विज्ञान को मैं मानता कहता और करता हूं (यम्) जिसको (शुनःशेपः) अत्यन्त ज्ञान वाले विद्या-व्यवहार के लिये प्राप्त और परमेश्वर वा सूर्य्य का (अह्वत्) उपदेश करते हैं जिस से (वरुणः) श्रेष्ठ (राजा) प्रकाशमान परमेश्वर हमारी उपासना को प्राप्त होकर (अस्मान्) हम पुरुषार्थी धर्मात्माओं को पाप और दुःखों से (मुमोक्तु) छुड़ावे और उक्त सूर्य्य भी अच्छे प्रकार और क्रियाकुशलता में युक्त किया हुआ बोध (मह्यम्) विद्याधन की इच्छा करने वाले मुझ को प्राप्त होता है (सः) हम लोगों को योग्य है कि उस ईश्वर की उपासना और सूर्य्य का उपयोग यथावत् किया करें ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। सब मनुष्यों को इस प्रकार उपदेश करना तथा मानना चाहिये कि विद्वान वेद और ईश्वर हमारे लिये जिस ज्ञान का उपदेश करते हैं तथा हम जो अपनी शुद्ध बुद्धि से निश्चय करते हैं वही मुझ को और हे मनुष्यो ! तुम सब लोगों को स्वीकार करके पाप और अधर्म करने से दूर रक्खा करे ॥१२॥

शुनःशेपो ह्यह्वद्गृभीतस्त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः ।
अवैनं राजा वरुणः ससृज्याद्विद्वाँ अदब्धो वि मुमोक्तु पाशान् ॥१३॥

पदार्थ—जैसे (शुनःशेपः) उक्त गुण वाला विद्वान् (त्रिषु) कर्म उपासना और ज्ञान में (आदित्यम्) अविनाशी परमेश्वर का (अह्वत्) आह्वान करता है वह हम लोगों ने (गृभीतः) स्वीकार किया हुआ उक्त तीनों कर्म उपासना और ज्ञान को प्रकाशित कराता है और जो (द्रुपदेषु) क्रियाकुशलता की सिद्धि के लिये विमान आदि यानों के खम्भों में (बद्धः) नियम से युक्त किया हुआ वायु ग्रहण किया है वैसे वह लोगों को भी ग्रहण करना चाहिये जैसे जैसे गुणवाले पदार्थ को (अदब्धः) अति प्रशंसनीय (वरुणः) अत्यन्त श्रेष्ठ (राजा) और प्रकाशमान परमेश्वर (अवससृज्यात्) पृथक् पृथक् बनाकर सिद्ध करे वह हम लोगों को भी वैसे ही गुणवाले कामों में संयुक्त करे । हे भगवन् परमेश्वर ! आप हमारे (पाशान्) बन्धनों को (विमुमोक्तु) बार बार छुड़वाइये । इसी प्रकार हम लोगों की क्रियाकुशलता में संयुक्त किये हुए प्राण आदि पदार्थ (पाशान्) सकल दरिद्ररूपी बन्धनों को (विमुमोक्तु) बार बार छुड़वा देवें वा देते हैं ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में भी लुप्तोपमा और श्लेषालङ्कार है । परमेश्वर ने जिस जिस गुण वाले जो जो पदार्थ बनाये हैं उन उन पदार्थों के गुणों को यथावत् जानकर इन इन को कर्म उपासना और ज्ञान में नियुक्त करे जैसे परमेश्वर न्याय्य अर्थात् न्याययुक्त कर्म करता है वैसे ही हम लोगों को भी कर्म नियम के साथ नियुक्त कर जो बन्धनों के करने वाले पापात्मक कर्म हैं उनको दूर ही से छोड़कर पुण्यरूप कर्मों का सदा सेवन करना चाहिये ॥१३॥

अव ते हेळो वरुण नमोभिरव यज्ञेभिरीमहे हविर्भिः ।
क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेता राजन्नेनांसि शिश्रथः कृतानि ॥१४॥

पदार्थ—हे (राजन्) प्रकाशमान (प्रचेतः) अत्युत्तम विज्ञान (असुर) प्राणों में रमने (वरुण) अत्यन्त प्रशंसनीय (अस्मभ्यम्) हम को विज्ञान देनेहारे भगवन् जगदीश्वर जिसलिये हम लोगों के (कृतानि) किये हुए (एनांसि) पापों को (क्षयन्) विनाश करते हुए (अवशिश्रथः) विज्ञान आदि दान से उनके फलों को शिथिल अच्छे प्रकार करते हैं इसलिये हम लोग (नमोभिः) नमस्कार वा (यज्ञेभिः) कर्म उपासना और ज्ञान और (हविर्भिः) होम करने योग्य अच्छे अच्छे पदार्थों से (ते) आपका (हेडः) निरादर (अव) न कभी (ईमहे) करना जानते और मुख्य प्राण की भी विद्या को चाहते हैं ॥ १४ ॥

भावार्थ—जिन मनुष्यों ने परमेश्वर के रचे हुए संसार में पदार्थ करके प्रकट किए हुए बोध से किये हुए पाप कर्मों को फलों से शिथिल कर दिया वैसा अनुष्ठान करें। जैसे अज्ञानी पुरुष को पापफल दुःखी करते हैं वैसे ज्ञानी पुरुष को दुःख नहीं दे सकते ॥१४॥

उदु॑त्त॒मं व॑रुण॒ पाश॑म॒स्मदवा॑ध॒मं वि म॑ध्य॒मं श्र॑थाय ।

अथा॑ व॒यमा॑दित्य व्र॒ते तवाना॑गसो॒ अदि॑तये स्याम ॥१५॥

पदार्थ—हे (वरुण) स्वीकार करने योग्य ईश्वर ! आप (अस्मत्) हम लोगों से (अधमम्) निकृष्ट (मध्यमम्) मध्यम अर्थात् निकृष्ट से कुछ विशेष (उत्) और (उत्तमम्) अति दृढ़ अत्यन्त दुःख देने वाले (पाशम्) बन्धन को (व्यवश्रथाय) अच्छे प्रकार नष्ट कीजिये (अथ) इसके अनन्तर हे (आदित्य) विनाशरहित जगदीश्वर ! (तव) उपदेश करने वाले सब के गुरु आपके (व्रते) सत्याचरण रूपी व्रत को करके (अनागसः) निरपराधी होके हम लोग (अदितये) अखण्ड अर्थात् विनाशरहित सुख के लिये (स्याम) नियत होवें ॥ १५ ॥

भावार्थ—जो ईश्वर की आज्ञा को यथावत् नित्य पालन करते हैं वे ही पवित्र और सब दुःख बन्धनों से अलग होकर सुखों को निरन्तर प्राप्त होते हैं ॥२४॥

तेईसवें सूक्त के कहे हुए वायु आदि अर्थों के अनुकूल प्रजापति आदि अर्थों के कहने से इस चौबीसवें सूक्त की उक्त सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह चौबीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥२४॥

आजीगर्तिः शुनःशेप ऋषिः । वरुणो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

यच्चि॒द्धि ते॒ विशो॑ यथा॒ प्र दे॑व वरुण व्र॒तम् । मि॒नी॒मसि॒ द्यवि॑द्यवि ॥१॥

पदार्थ—हे (देव) सुख देने (वरुण) उत्तमों में उत्तम जगदीश्वर ! आप (यथा) जैसे अज्ञान से किसी राजा वा मनुष्य के (विशः) प्रजा वा संतान आदि (द्यवि द्यवि) प्रतिदिन अपराध करते हैं किन्हीं कामों को नष्ट कर देते हैं वह उन पर न्याययुक्त दण्ड और करुणा करता है वैसे ही हम लोग (ते) आपका (यत्) जो (व्रतम्) सत्य आचरण आदि नियम हैं (हि) उनको कदाचित् (प्रमिणीमसि) अज्ञानपन से छोड़ देते हैं उसका यथायोग्य न्याय (चित्) और हमारे लिये करुणा करते हैं ॥१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे भगवन् जगदीश्वर ! जैसे पिता आदि विद्वान् और राजा छोटे छोटे अल्पबुद्धि उन्मत्त बालकों पर करुणा न्याय और शिक्षा करते हैं वैसे ही आप भी प्रतिदिन हमारे न्याय करुणा और शिक्षा करने वाले हैं ॥१॥

मा नो॑ व॒धाय॑ ह॒त्नवे॑ जिहीळा॒नस्य॑ रीरधः । मा हृ॑णा॒नस्य॑ म॒न्यवे॑ ॥२॥

पदार्थ— हे वरुण जगदीश्वर ! आप जो (जिहीळानस्य) अज्ञान से हमारा अनादर करे उसके (हत्नवे) मारने के लिये (नः) हम लोगों को कभी (मा रीरधः) प्रेरित और इसी प्रकार (हृणानस्य) जो कि हमारे सामने लज्जित हो रहा है उसपर (मन्यवे) क्रोध करने को हम लोगों को (मा रीरधः) कभी मत प्रवृत्त कीजिये ॥ २ ॥

भावार्थ—ईश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! जो अल्पबुद्धि अज्ञान जन अपनी अज्ञानता से तुम्हारा अपराध करें तुम उसको दण्ड ही देने को मत प्रवृत्त और वैसे ही जो अपराध करके लज्जित हो अर्थात् तुम से क्षमा करवावे तो उस पर क्रोध मत छोड़ो किन्तु उसका अपराध सहो और उसको यथावत् दण्ड भी दो ॥२॥

वि मृ॑ळी॒काय॑ ते॒ मनो॑ र॒थीरश्वं॒ न संदि॑तम् । गी॒र्भिर्व॑रुण सीमहि ॥३॥

पदार्थ—हे (वरुण) जगदीश्वर ! हम लोग (रथीः) रथवाले के (संदितम्) रथ में जोड़े हुए (अश्वम्) घोड़े के (न) समान (मृळीकाय) उत्तम सुख के लिये (ते) आपके सम्बन्ध में (गीर्भिः) पवित्र वाणियों द्वारा (मनः) ज्ञान (विषीमहि) बांधते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे भगवन् जगदीश्वर ! जैसे रथ के स्वामी का भृत्य घोड़े को चारों ओर से बांधता है वैसे ही हम लोग आपका जो ज्ञान है उसको अपनी बुद्धि के अनुसार मन में दृढ़ करते हैं ॥३॥

परा॒ हि मे॒ विम॑न्यवः॒ पत॑न्ति॒ वस्य॑ इष्टये । वयो॒ न व॑स॒तीरुप॑ ॥४॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! जैसे (वयः) पक्षी (वसतीः) अपने रहने के स्थानों को छोड़ छोड़ दूर देश को (उपपतन्ति) उड़ जाते हैं (नः) वैसे (मे) मेरे निवास स्थान से (वस्य इष्टये) अत्यन्त धन होने के लिये (विमन्यवः) अनेक प्रकार के क्रोध करने वाले दुष्ट जन (परापतन्ति) (हि) दूर ही चले जावें ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे उड़ाये हुए पक्षी दूर जाके

बसते हैं वैसे ही क्रोधी जीव मुझ से दूर बसें और मैं भी उनसे दूर बसूं, जिससे हमारा उलटा स्वभाव और धन की हानि कभी न होवे ॥४॥

कुदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे । मृळीकायोरुचक्षसम् ॥५॥

पदार्थ—हम लोग (कदा) कब (मृळीकाय) अत्यन्त सुख के लिये (उरुचक्षसम्) जिसको वेद अनेक प्रकार से वर्णन करते हैं और (नरम्) सब को सन्मार्ग पर चलाने वाले उस (वरुणम्) परमेश्वर को सेवन करके (क्षत्रश्रियम्) चक्रवर्त्ति राज्य की लक्ष्मी को (करामहे) अच्छे प्रकार सिद्ध करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को परमेश्वर की आज्ञा का यथावत् पालन करके सब सुख और चक्रवर्ति राज्य न्याय के साथ सदा सेवन करने चाहियें ॥५॥

तदित्समानमाशाते वेनन्ता न प्रयुच्छतः । धृतव्रताय दाशुषे ॥६॥

पदार्थ—ये (प्रयुच्छतः) आनन्द करते हुए (वेनन्ता) बाजा बजाने वालों के (न) समान सूर्य और वायु (धृतव्रताय) जिसने सत्य भाषण आदि नियम वा क्रियामय यज्ञ धारण किया है । उस (दाशुषे) उत्तम दान आदि धर्म करने वाले पुरुष के लिये (तत्) जो उसका होम में चढ़ाया हुआ पदार्थ वा विमान आदि रथों की रचना (इत्) उसी को (समानम्) बराबर (आशाते) व्याप्त होते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे अति हर्ष करने वाले बाजा बजाने में अति कुशल दो पुरुष बाजों को लेकर चलाकर बजाते हैं वैसे ही सिद्ध किये विद्या के धारण करने वाले मनुष्य से होमे हुए पदार्थों को सूर्य और वायु चालन करके धारण करते हैं । ॥६॥

वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम् । वेद नावः समुद्रियः ॥७॥

पदार्थ—(यः) जो (समुद्रियः) समुद्र अर्थात् अन्तरिक्ष वा जलमय प्रसिद्ध समुद्र में अपने पुरुषार्थ से युक्त विद्वान् मनुष्य (अन्तरिक्षेण) आकाश मार्ग से (पतताम्) जाने आने वाले (वीनाम्) विमान सब लोक वा पक्षियों के और समुद्र में जाने वाली (नावः) नौकाओं के (पदम्) रचन चालन ज्ञान और मार्ग को (वेद) जानता है वह शिल्प विद्या की सिद्धि के करने को समर्थ हो सकता है अन्य नहीं ॥ ७॥

भावार्थ—जो ईश्वर ने वेदों में अन्तरिक्ष भू और समुद्र में जाने आने वाले यानों की विद्या का उपदेश किया है उनको सिद्ध करने को जो पूर्ण विद्या शिक्षा और हस्तक्रियाओं के कलाकौशल में कुशल मनुष्य होता है वही बनाने में समर्थ हो सकता है ॥७॥

वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः । वेदा य उपजायते ॥८॥

पदार्थ—(यः) जो (धृतव्रतः) सत्य नियम विद्या और बल को धारण करने वाला विद्वान् मनुष्य (प्रजावतः) जिन में नाना प्रकार के संसारी पदार्थ उत्पन्न होते हैं (द्वादश) बारह (मासः) महीनों और जोकि (उपजायते) उन में अधिक मास अर्थात् तेरहवां महीना उत्पन्न होता है उस को (वेद) जानता है वह काल के सब अवयवों को जान कर उपकार करने वाला होता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—जैसे परमेश्वर सर्वज्ञ होने से सब लोक वा काल की व्यवस्था को जानता है वैसे मनुष्यों को सब लोक तथा काल के महिमा की व्यवस्था को जानकर इसको एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खोना चाहिये ॥ ८ ॥

वेद वातस्य वर्त्तनिमुरोर्ऋष्वस्य बृहतः । वेदा ये अध्यासते ॥९॥

पदार्थ—जो मनुष्य (ऋष्वस्य) सब जगह जाने आने (उरोः) अत्यन्त गुणवान् (बृहतः) बड़े अत्यन्त बलयुक्त (वातस्य) वायु के (वर्त्तनिम्) मार्ग को (वेद) जानता है (ये) और जो पदार्थ इस में (अध्यासते) इस वायु के आधार से स्थित हैं उन के भी (वर्त्तनिम्) मार्ग को (वेद) जाने वह भूगोल वा खगोल के गुणों का जानने वाला होता है ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अग्नि आदि पदार्थों में परिमाण वा गुणों से बड़ा सब मूर्त्ति वाले पदार्थों का धारण करने वाला वायु है उसका कारण अर्थात् उत्पत्ति और जाने आने के मार्ग और जो उस में स्थूल वा सूक्ष्म पदार्थ ठहरे हैं उनको भी यथार्थता से जान इनसे अनेक कार्य सिद्ध करकरा के सब प्रयोजनों को सिद्ध कर लेता है वह विद्वानों में गणनीय विद्वान् होता है ॥ ९ ॥

नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्या३स्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः ॥१०॥

पदार्थ—जैसे जो (धृतव्रतः) सत्य नियम पालने। (सुक्रतुः) अच्छे अच्छे कर्म वा उत्तम बुद्धियुक्त (वरुणः) अति श्रेष्ठ सभा सेना का स्वामी (पस्त्यासु) अत्युत्तम घर आदि पदार्थों से युक्त प्रजाओं में (साम्राज्याय) चक्रवर्ती राज्य को करने की योग्यता से युक्त मनुष्य (आनिषसाद) अच्छे प्रकार स्थित होता है वैसे ही हम लोगों को भी होना चाहिये ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे परमेश्वर सब प्राणियों का उत्तम राजा है वैसे जो ईश्वर की आज्ञा में वर्त्तमान धार्मिक शरीर और बुद्धि बलयुक्त मनुष्य हैं वे ही उत्तम राज्य करने योग्य होते हैं ॥ १० ॥

अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वाँ अभि पश्यति । कृतानि या च कर्त्वा ॥११॥

पदार्थ—जिस कारण जो (चिकित्वान्) सब को चेताने वाला धार्मिक सकल विद्याओं को जानने न्याय करने वाला मनुष्य (या) जो (विश्वानि) सब (कृतानि) अपने किये हुए (च) और (कर्त्वा) जो आगे करने योग्य कर्मों और (अद्भुतानि) आश्चर्यरूप वस्तुओं को (अभिपश्यति) सब प्रकार से देखता है (अतः) इसी कारण वह न्यायाधीश होने को समर्थ होता है ॥ ११ ॥

भावार्थ—जिस प्रकार ईश्वर सब जगह व्याप्त और सर्वशक्तिमान् होने से सृष्टि रचनादि रूपी कर्म और जीवों के तीनों कालों के कर्मों को जानकर इनको उन उन कर्मों के अनुसार फल देने को योग्य है। इसी प्रकार जो विद्वान् मनुष्य पहिले हो गये उनके कर्मों और आगे अनुष्ठान करने योग्य कर्मों के करने में युक्त होता है वही सब को देखता हुआ सब के उपकार करने वाले उत्तम से उत्तम कर्मों को कर सब का न्याय करने को योग्य होता है ॥११॥

स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत् । प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥१२॥

पदार्थ—जैसे (आदित्यः) अविनाशी परमेश्वर, प्राण वा सूर्य्य (विश्वाहा) सब दिन (नः) हम लोगों को (सुपथा) अच्छे मार्ग में चलाने और (नः) हमारी (आयूंषि) उमर (प्रतारिषत्) सुख के साथ परिपूर्ण (करत्) करते हैं वैसे ही (सुक्रतुः) श्रेष्ठ कर्म और उत्तम उत्तम जिससे ज्ञान हो वह (आदित्यः) विद्या धर्म प्रकाशित न्यायकारी मनुष्य (विश्वाहा) सब दिनों में (नः) हम लोगों को (सुपथा) अच्छे मार्ग में (करत्) कर। और (नः) हम लोगों की (आयूंषि) उमरों को (प्रतारिषत्) सुख से परिपूर्ण करें ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार है। जो मनुष्य ब्रह्मचर्य्य और जितेन्द्रियता आदि से आयु बढ़ाकर धर्ममार्ग में विचरते हैं उन्हीं को जगदीश्वर अनुगृहीत कर आनन्द युक्त करता है। जैसे प्राण और सूर्य अपने बल और तेज से ऊंचे नीचे स्थानों को प्रकाशित कर प्राणियों को सुख के मार्ग से युक्त करके उचित समय पर दिन-रात आदि सब कालविभागों को अच्छे प्रकार सिद्ध करते हैं वैसे ही अपने आत्मा शरीर और सेना के बल से न्यायाधीश मनुष्य धर्मयुक्त छोटे मध्यम और बड़े कर्मों के प्रचार से अधर्मयुक्त को छुड़ा उत्तम और नीच मनुष्यों का विभाग सदा किया करे ॥१२॥

बिभ्रद्द्रापिं हिरण्ययं वरुणो वस्त निर्णिजम् । परि स्पशो नि षेदिरे ॥१३॥

पदार्थ—जैसे इस वायु वा सूर्य्य के तेज में (स्पशः) स्पर्शवान् अर्थात् स्थूल सूक्ष्म सब पदार्थ (निषेदिरे) स्थिर होते हैं और वे दोनों (वरुणः) वायु और सूर्य्य (निर्णिजम्) शुद्ध (हिरण्ययम्) अग्न्यादिरूप पदार्थों को (बिभ्रत्) धारण करते हुए (द्रापि) बल तेज और निद्रा को (परिवस्त) सब प्रकार से प्राप्त कर जीवों के ज्ञान को ढांप देते हैं वैसे (निर्णिजम्) शुद्ध (हिरण्ययम्) ज्योतिर्मय प्रकाशयुक्त को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (द्रापिम्) निद्रादि के हेतु रात्रि को (परिवस्त) निवारण कर अपने तेज से सब को ढांप लेता है ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । जैसे वायु बल का करने हारा होने से सब अग्नि आदि स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों को धरके आकाश में गमन और आगमन करता हुआ चलता और जैसे सूर्य्यलोक भी स्वयं प्रकाशरूप होने से रात्रि को निवारण कर अपने प्रकाश से सब को प्रकाशता है वैसे विद्वान् लोग भी विद्या और उत्तम शिक्षा के बल से सब मनुष्यों को धारण कर धर्म में चल सब अन्य मनुष्यों को चलाया करें ॥१३॥

न यं दिप्सन्ति दिप्सवो न द्रुह्वाणो जनानाम् । न देवमभिमातयः ॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम सब लोग (जनानाम्) विद्वान् धार्मिक वा मनुष्य आदि प्राणियों से (दिप्सवः) झूठे अभिमान और झूठे व्यवहार को चाहने वाले शत्रुजन (यम्) जिस (देवम्) दिव्य गुणवाले परमेश्वर वा विद्वान् को (न) (दिप्सन्ति) विरोध से न चाहें (द्रुह्वाणः) द्रोह करने वाले जिस को द्रोह से (न) न चाहें । तथा जिसके साथ (अभिमातयः) अभिमानी पुरुष (न) अभिमान से न वर्तें उन उपासना करने योग्य परमेश्वर वा विद्वानों को जानो ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है जो हिंसक परद्रोही अभिमानयुक्त जन हैं वे अज्ञानपन से परमेश्वर वा विद्वानों के गुणों को जानकर उनसे उपकार लेने को समर्थ नहीं हो सकते इसलिये सब मनुष्यों को योग्य है कि उन के गुण कर्म और स्वभाव का सदैव ग्रहण करें ॥१४॥

उत यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्या । अस्माकमुदरेष्वा ॥१५॥

पदार्थ—(यः) जो हमारे (उदरेषु) अर्थात् भीतर (उत) और बाहिर भी (असामि) पूर्ण (यशः) प्रशंसा के योग्य कर्म को (आचक्रे) सब प्रकार से करता है जो (मानुषेषु) जीवों और जड़ पदार्थों में सर्वथा कीर्ति को किया करता है । सो वरुण अर्थात् परमात्मा वा विद्वान् सब मनुष्यों को उपासनीय और सेवनीय क्यों न होवे ॥ १५ ॥

भावार्थ—जिस सृष्टि करने वाले अन्तर्यामी जगदीश्वर ने परोपकार वा जीवों को उनके कर्म के अनुसार भोग कराने के लिये संपूर्ण जगत् कल्प कल्प में रचा है जिस की सृष्टि में पदार्थों के बाहिर भीतर चलने वाला वायु सब कर्मों का हेतु है और विद्वान् लोग विद्या का प्रकाश और अविद्या का हनन करने वाले प्रयत्न कर रहे हैं इसलिये इस परमेश्वर के धन्यवाद के योग्य कर्म सब मनुष्यों को जानना चाहिये ॥१५॥

परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु । इच्छन्तीरुरुचक्षसम् ॥१६॥

पदार्थ—जैसे (गव्यूतिः) अपने स्थानों को (इच्छन्तीः) जाने की इच्छा करती हुई (गावः) गो आदि पशु जाति के (न) समान (मे) मेरी (धीतयः) कर्म की वृत्तियां (उरुचक्षसम्) बहुत विज्ञान वाले मुझ को (परायन्ति) अच्छे प्रकार प्राप्त होती हैं वैसे सब कर्त्ताओं को अपने अपने किये हुए कर्म प्राप्त होते ही हैं ऐसा जानना योग्य है ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को ऐसा निश्चय करना चाहिये कि जैसे गौ आदि पशु अपने अपने वेग के अनुसार दौड़ते हुए चाहे हुए स्थान को पहुंच कर थक जाते हैं वैसे ही मनुष्य अपनी अपनी बुद्धि बल के अनुसार परमेश्वर वायु और सूर्य्य आदि पदार्थों के गुणों को जानकर थक जाते हैं । किसी मनुष्य की बुद्धि वा शरीर का वेग ऐसा नहीं हो सकता कि जिसका अन्त न हो सके जैसे पक्षी अपने अपने बल के अनुसार आकाश को जाते हुए आकाश का पार कोई भी नहीं पाता इसी प्रकार कोई मनुष्य विद्या विषय के अन्त को प्राप्त होने को समर्थ नही हो सकता है ॥१६॥

सं नु वोचावहै पुनर्यतो मे मध्वाभृतम् । होतेव क्षदसे प्रियम् ॥१७॥

पदार्थ—(यतः) जिस से हम आचार्य और शिष्य दोनों (होतेव) जैसे यज्ञ कराने वाला विद्वान् (नु) परस्पर (क्षदसे) अविद्या और रोगजन्य दुःखान्धकार विनाश के लिये (आभृतम्) विद्वानों के उपदेश से जो धारण किया जाता है उस यजमान के (प्रियम्) प्रियसंपादन करने के समान (मधु) मधुर गुण विशिष्ट विज्ञान का (वोचावहै) उपदेश नित्य करें कि उससे (मे) हमारी और तुम्हारी (पुनः) बार बार विद्यावृद्धि होवे ॥ १७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे यज्ञ कराने और करने वाले प्रीति के साथ मिलकर यज्ञ को सिद्ध कर पूरण करते हैं, वैसे ही गुरु शिष्य मिलकर सब विद्याओं का प्रकाश करें । सब मनुष्यों को इस बात की

चाहना निरन्तर रखनी चाहिये कि जिससे हमारी विद्या की वृद्धि प्रतिदिन होती रहे ॥१७॥

दर्शन्नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि । एता जुषत मे गिरः ॥१८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (अधिक्षमि) जिन व्यवहारों में उत्तम और निकृष्ट बातों का सहना होता है उन में ठहर कर (विश्वदर्शतम्) जो कि विद्वानों की ज्ञानदृष्टि से देखने के योग्य परमेश्वर है उसको (दर्शम्) बारंबार देखने (रथम्) विमान आदि यानों को (नु) भी (दर्शम्) पुनः पुनः देख के सिद्ध करने के लिये (मे) मेरी (गिरः) वाणियों को (जुषत) सदा सेवन करो ॥१८॥

भावार्थ—जिससे क्षमा आदि गुणों से युक्त मनुष्यों को यह जानना योग्य है कि प्रश्न और उत्तर के व्यवहार के किये विना परमेश्वर को जानने और शिल्पविद्या सिद्ध विमानादि रथों को कभी बनाने को शक्य नहीं और जो उन में गुण हैं वे भी इससे इन के विज्ञान होने के लिये सदैव प्रयत्न करना चाहिये ॥१८॥

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय । त्वामवस्युरा चके ॥१९॥

पदार्थ—हे (वरुण) सब से उत्तम विपश्चित् ! (अद्य) आज (अवस्युः) अपनी रक्षा वा विज्ञान को चाहता हुआ मैं (त्वाम्) आपकी (आ चके) अच्छी प्रकार प्रशंसा करता हूँ आप (मे) मेरी की हुई (हवम्) ग्रहण करने योग्य स्तुति को (श्रुधि) श्रवण कीजिये तथा मुझ को (मृळय) विद्यादान से सुख दीजिये ॥ १९ ॥

भावार्थ—जैसे परमात्मा जो उपासकों द्वारा निश्चय करके सत्य भाव और प्रेम के साथ की हुई स्तुतियों को अपने सर्वज्ञपन से यथावत् सुन कर उनके अनुकूल स्तुति करने वालों को सुख देता है वैसे विद्वान् लोग भी धार्मिक मनुष्यों की योग्य प्रशंसा को सुन सुखयुक्त किया करें ॥१९॥

त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि । स यामनि प्रति श्रुधि ॥२०॥

पदार्थ—हे (मेधिर) अत्यन्त विज्ञान युक्त वरुण विद्वान् ! (त्वम्) आप जैसे जो ईश्वर (दिवः) प्रकाशवान् सूर्य्य आदि (च) वा अन्य सब लोक (ग्मः) प्रकाशरहित पृथिवी आदि (विश्वस्य) सब लोकों के (यामनि) जिस जिस काल में जीवों का आना जाना होता है उस उस में प्रकाश हो रहे हैं (सः) सो हमारी स्तुतियों को सुनकर आनन्द देते हैं वैसे होकर इस राज्य के मध्य में (राजसि) प्रकाशित हूजिये और हमारी स्तुतियों को (प्रतिश्रुधि) सुनिये ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे परब्रह्म ने इस सब संसार के दो भेद किये हैं एक प्रकाश वाला सूर्य्य आदि और दूसरा प्रकाश रहित पृथिवी आदि लोक जो इन की उत्पत्ति वा विनाश का निमित्त कारण काल है उसमें सदा एकसा रहने वाला परमेश्वर सब प्राणियों के संकल्प से उत्पन्न हुई बातों का भी श्रवण करता है इससे कभी अधर्म के अनुष्ठान की कल्पना भी मनुष्यों को नहीं करनी चाहिये वैसे इस सृष्टिक्रम को जानकर मनुष्यों को ठीक ठीक वर्त्तना चाहिये ॥२०॥

उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत। अवाधमानि जीवसे ॥२१॥

पदार्थ—हे अविद्यान्धकार के नाश करने वाले जगदीश्वर ! आप (नः) हम लोगों के (जीवसे) बहुत जीने के लिये हमारे (उत्तमम्) श्रेष्ठ (मध्यमम्) मध्यम दुःखरूपी (पाशम्) बन्धनों को (उन्मुमुग्धि) अच्छे प्रकार छुड़ाइये तथा (अधमानि) जो कि हमारे दोषरूपी निकृष्ट बन्धन हैं उनका भी (व्यवचृत) विनाश कीजिये ॥ २१ ॥

भावार्थ—जैसे धार्मिक परोपकारी विद्वान् होकर ईश्वर को प्रार्थना करते हैं जगदीश्वर उनके सब दुःख बन्धनों को छुड़ाकर सुखयुक्त करता है वैसे कर्म हम लोगों को क्या न करना चाहिये ॥२१॥

चौबीसवें सूक्त में कहे हुए प्रजापति आदि अर्थों के बीच जो वरुण शब्द है उसके अर्थ को इस पच्चीसवें सूक्त में कहने से इस सूक्त के अर्थ की संगति पहिले सूक्त के अर्थ के साथ जाननी चाहिये ॥

यह पच्चीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥२५॥

आजीगर्त्तिः शुनःशेप ऋषिः। अग्निर्देवता। १। ८। ९ आर्च्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः। २। ६ निचृद्गायत्री। ३ प्रतिष्ठागायत्री। ४। १० गायत्री ५। ७ विराड्गायत्री च छन्दः। षड्जः स्वरः॥

वसिष्वा हि मियेध्य वस्त्राण्यूर्जां पते। सेमं नो अध्वरं यज ॥१॥

पदार्थ—हे (ऊर्जाम्) बल पराक्रम और अन्न आदि पदार्थों का (पते) पालन करने और कराने वाले तथा (मियेध्य) अग्नि द्वारा पदार्थों को फैलाने वाले विद्वान् तू (वस्त्राणि) वस्त्रों को (वसिष्व) धारणकर (सः) (हि) ही (नः) हम लोगों के (इमम्) इस प्रत्यक्ष (अध्वरम्) तीन प्रकार के यज्ञों का (यज) सिद्ध कर ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । यज्ञ करने वाला विद्वान् हस्तक्रियाओं से बहुत पदार्थों को सिद्ध करने वाले विद्वानों का स्वीकार और उनका सत्कार कर अनेक कार्य्यों को सिद्ध कर सुख को प्राप्त करे वा करावे । न कोई भी मनुष्य उत्तम विद्वान् पुरुषों के प्रसङ्ग किये विना कुछ भी व्यवहार वा परमार्थरूपी कार्य्य को सिद्ध करने को समर्थ हो सकता है ॥१॥

नि नो होता वरेण्यः सदा यविष्ठ मन्मभिः । अग्ने दिवित्मता वचः ॥२॥

पदार्थ—हे (यविष्ठ) अत्यन्त बल वाले (अग्ने) यजमान ! (मन्मभिः) जिनसे पदार्थ जाने जाते हैं उन पुरुषार्थों के साथ वर्तमान (वरेण्यः) स्वीकार करने योग्य (होता) सुख देने वाला (नः) हम लोगों के (दिवित्मता) जिनसे अत्यन्त प्रकाश होता है उससे प्रसिद्ध (वचः) वाणी को (यज) सिद्ध करता है उसी का (सदा) सब काल में सङ्ग करना चाहिये ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से (यज) इस पद की अनुवृत्ति आती है । मनुष्यों को योग्य है कि सज्जन मनुष्यों के सङ्ग से सकल कामनाओं की सिद्धि करें इसके विना कोई भी मनुष्य सुखी रहने को समर्थ नहीं हो सकता ॥२॥

आ हि ष्मा सूनवे पितापिर्यजत्यापये । सखा सख्ये वरेण्यः ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (पिता) पालन करने वाला (सूनवे) पुत्र के (सखा) मित्र (सख्ये) मित्र के और (आपिः) सुख देने वाला विद्वान् (आपये) उत्तम गुण व्याप्त होने विद्यार्थी के लिये (आयजति) अच्छे प्रकार यत्न करता है । वैसे परस्पर प्रीति के साथ कार्यों को सिद्ध कर (हि) निश्चय करके (स्म) वर्त्तमान में उपकार के लिये तुम सङ्गत हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अपने लड़कों को सुखसंपादक उन पर कृपा करने वाला पिता स्वमित्रों को सुख देने वाला मित्र और विद्यार्थियों को विद्या देने वाला विद्वान् अनुकूल वर्त्तता है वैसे ही सब मनुष्य सब के उपकार के लिये अच्छे प्रकार निरन्तर यत्न करें ऐसा ईश्वर का उपदेश है ॥३॥

आ नो बर्हीरिशादसो वरुणो मित्रो अर्यमा । सीदन्तु मनुषो यथा ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यथा) जैसे (रिशादसः) दुष्टों के मारने वाले (वरुणः) सब विद्याओं में श्रेष्ठ (मित्रः) सब का सुहृद् (अर्यमा) न्यायकारी

(मनुषः) सभ्य मनुष्य (नः) हम लोगों के (बर्हिः) सब सुख के देने वाले आसन में बैठते हैं वैसे आप भी बैठिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सभ्यतापूर्वक सभाचतुर मनुष्य सभा में वर्त्तें वैसे ही सब मनुष्यों को सब दिन वर्त्तना चाहिये ॥४॥

पूर्व्य॑ होतर॒स्य नो॒ मन्द॑स्व स॒ख्यस्य॑ च । इ॒मा उ॒ षु श्रु॑धी॒ गिरः॑ ॥५॥

पदार्थ—हे (पूर्व्य) पूर्व विद्वानों ने किये हुये मित्र (होतः) यज्ञ करने वा कराने वाले विद्वान् तू (नः) हमारे (अस्य) इस (सख्यस्य) मित्र कर्म की (मन्दस्व) इच्छा कर (उ) निश्चय है कि हम लोगों को (इमाः) ये जो प्रत्यक्ष (गिरः) वेदविद्या से संस्कार की हुई वाणी हैं उनको (सुश्रुधि) अच्छे प्रकार सुन और सुनाया कर ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि सब मनुष्यों में मित्रता रखकर उत्तम शिक्षा और विद्या को पढ़ सुन और विचार के विद्वान् होवें ॥५॥

यच्चि॒द्धि शश्व॑ता॒ तना॑ दे॒वंदे॑वं॒ यजा॑महे । त्वे इद्धू॑यते ह॒विः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! जैसे हम लोग (यत्) जिससे ये (शश्वता) अनादि (तना) विस्तारयुक्त कारण से (इत्) ही उत्पन्न हैं । इससे उन (देवं-देवम्) विद्वान् विद्वान् और सब पृथिवी आदि दिव्यगुण वाले पदार्थ पदार्थ को (चित्) भी (यजामहे) सङ्गत अर्थात् सिद्ध करते हैं (त्वे) उसमें (हि) ही (हविः) हवन करने योग्य वस्तु (हूयते) छोड़ते हैं वैसे तुम भी किया करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—यहाँ वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । इस संसार में जितने प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष पदार्थ हैं वे सब अनादि अति विस्तार वाले कारण से उत्पन्न हैं ऐसा जानना चाहिये ॥६॥

प्रि॒यो नो॑ अस्तु वि॒श्पति॒र्होता॑ म॒न्द्रो वरे॑ण्यः । प्रि॒याः स्व॒ग्नयो॑ व॒यम् ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (स्वग्नयः) जिन्होंने अग्नि को सुखकारक किया है वे हम लोग (प्रियाः) राजपुरुष को प्रिय हैं जैसे (होता) यज्ञ का करने कराने (मन्द्रः) स्तुति के योग्य धर्मात्मा (वरेण्यः) स्वीकार करने योग्य विद्वान् (विश्पतिः) प्रजा का स्वामी सभाध्यक्ष (नः) हम को प्रिय है वैसे अन्य भी मनुष्य हों ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे हम लोग सब के साथ मित्र भाव से वर्त्तते और ये सब लोग हम लोगों के साथ मित्रभाव और प्रीति से वर्त्तते हैं वैसे आप लोग भी होवें ॥७॥

स्वग्नयो हि वार्यं देवासो दधिरे च नः । स्वग्नयो मनामहे ॥८॥

पदार्थ—जैसे (स्वग्नयः) उत्तम अग्नियुक्त (देवासः) दिव्यगुण वाले विद्वान् (च) वा पृथिवी आदि पदार्थ (नः) हम लोगों के लिये (वार्यम्) स्वीकार करने योग्य पदार्थों को (दधिरे) धारण करते हैं वैसे हम लोग (स्वग्नयः) अग्नि के उत्तम अनुष्ठान युक्त होकर इन्हों से विद्यासमूह को (मनामहे) जानते हैं वैसे तुम भी जानो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को योग्य है कि ईश्वर ने इस संसार में जितने पदार्थ उत्पन्न किये हैं उनके जानने के लिये विद्याओं का संपादन करके कार्यों की सिद्धि करें ॥८॥

अथा न उभयेषाममृत मर्त्यानाम् । मिथः सन्तु प्रशस्तयः ॥९॥

पदार्थ—हे (अमृत) अविनाशिस्वरूप जगदीश्वर ! आपकी कृपा से जैसे उत्तम गुण कर्मों के ग्रहण से (अथ) अनन्तर (नः) हम लोग जो कि विद्वान् वा मूर्ख हैं (उभयेषाम्) उन दोनों प्रकार के (मर्त्यानाम्) मनुष्यों की (मिथः) परस्पर संसार में (प्रशस्तयः) प्रशंसा (सन्तु) हों वैसे सब मनुष्यों की हों ऐसी प्रार्थना करते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ—जब तक मनुष्य लोग राग वा द्वेष को छोड़ कर परस्पर उपकार के लिये विद्या शिक्षा और पुरुषार्थ से उत्तम उत्तम कर्म नहीं करते तब तक वे सुखों के संपादन करने को समर्थ नहीं हो सकते इसलिये सब को योग्य है कि परमेश्वर की आज्ञा में वर्त्तमान होकर सब का कल्याण करें ॥९॥

विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः । चनो धाः सहसो यहो ॥१०॥

पदार्थ—हे (यहो) शिल्पकर्म में चतुर के अपत्य कार्य्यरूप अग्नि के उत्पन्न करने वाले (अग्ने) विद्वन् ! जैसे आप सब सुखों के लिये (सहसः) अपने बल स्वरूप से (विश्वेभिः) सब (अग्निभिः) विद्युत् सूर्य्य और प्रसिद्ध कार्य्यरूप अग्नियों से (इमम्) इस प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष (यज्ञम्) संसार के व्यवहाररूप यज्ञ और (इदम्) हम लोगों ने कहा हुआ (वचः) विद्यायुक्त प्रशंसा का वाक्य (चनः) और खाने स्वाद लेने चाटने और चूषने योग्य पदार्थों को (धाः) धारण कर चुका हो वैसे तू भी सदा धारण कर ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को योग्य है कि अपने सन्तानों को निम्नलिखित ज्ञान कार्य्य में युक्त करें जो

कारणरूप नित्य अग्नि है उससे ईश्वर रचना में बिजुली आदि कार्य्यरूप पदार्थ सिद्ध होते हैं फिर उनसे जो सब जीवों के अन्न के पचाने वाले अग्नि के समान अनेक पदार्थ उत्पन्न होते हैं उन सब अग्नियों को कारण रूप ही अग्नि धारण करता है जितने अग्नि के कार्य हैं वे वायु के निमित्त से ही प्रसिद्ध होते हैं उन सब को संसारी लोग पदार्थ धारण करते हैं अग्नि और वायु के बिना कभी किसी पदार्थ का धारण नहीं हो सकता है इत्यादि ॥१०॥

पहिले सूक्त में वरुण के अर्थ के अनुषङ्गी अर्थात् सहायक अग्नि शब्द के इस सूक्त में प्रतिपादन करने से पिछले सूक्त के अर्थ के साथ इस छब्बीसवें सूक्त के अर्थ की सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह छब्बीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

आजीगर्तिः शुनःशेप ऋषिः । १—१२ अग्निः । १३ विश्वेदेवा देवताः । १–१२ गायत्री । १३ त्रिष्टुप् छन्दः । १—१२ षड्जः । १३ धैवतः स्वरश्च ॥

अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्यां अग्निं नमोभिः । सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥१॥

पदार्थ—हम लोग (नमोभिः) नमस्कार स्तुति और अन्न आदि पदार्थों के साथ (वारवन्तम्) उत्तम केशवाले (अश्वम्) वेगवान् घोड़े के (न) समान (अध्वराणम्) राज्य के पालन अग्निहोत्र से लेकर शिल्प पर्य्यन्त यज्ञों में (सम्राजन्तम्) प्रकाशयुक्त (त्वा) आप विद्वान् को (वन्दध्यै) स्तुति करने को प्रवृत्त हुए भये सेवा करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जैसे विद्वान् स्वविद्या के प्रकाश आदि गुणों से अपने राज्य में अविद्या अन्धकार को निवारण कर प्रकाशित होते हैं वैसे परमेश्वर सर्वज्ञपन आदि से प्रकाशमान है ॥१॥

स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः । मीढ्वां अस्माकं बभूयात् ॥२॥

पदार्थ—जो (सूनुः) धर्मात्मा पुत्र (शवसा) अपने पुरुषार्थ बल आदि गुण से (पृथुप्रगामा) अत्यन्त विस्तारयुक्त विमानादि रथों से उत्तम गमन करने तथा (मीढ्वान्) योग्य सुख का सींचने वाला है वह (नः) हम लोगों की (घ) ही उत्तम क्रिया से धर्म और शिल्प कार्यों को करने वाला (बभूयात्) हो । इस मन्त्र में सायणाचार्य्य ने लिट् के स्थान में लिङ् लकार कहकर तिङ् को तिङ् होना यह अशुद्धता से व्याख्यान किया है क्योंकि (तिङां तिङो भवन्तीति वक्तव्यम्) इस वार्तिक से तिङों का व्यत्यय होता है कुछ लकारों का व्यत्यय नहीं होता है ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्या सुशिक्षा से धार्म्मिक सुशील पुत्र अनेक अपने कहे के अनुकूल कामों को करके पिता माता आदि के सुखों को नित्य सिद्ध करता है वैसे ही बहुत गुण वाला यह भौतिक अग्नि विद्या के अनुकूल रीति से संप्रयुक्त किया हुआ हम लोगों के सब सुखों को सिद्ध करता है ॥ २ ॥

स नो॑ दू॒राच्चा॒साच्च॒ नि मर्त्या॑दघा॒योः । पा॒हि सद॒मिद्वि॒श्वायुः॑ ॥३॥

पदार्थ—(विश्वायुः) जिससे कि समस्त आयु सुख से प्राप्त होती है (सः) वह जगदीश्वर वा भौतिक अग्नि (अघायोः) जो पाप करना चाहते हैं उन (मर्त्यात्) शत्रुजनों से (दूरात्) दूर वा (आसात्) समीप से (नः) हम लोगों की वा हम लोगों के (सदः) सब सुख रहने वाले शिल्पव्यवहार वा देहादिकों की (नि) (पाहि) निरन्तर रक्षा करता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषाङ्कार है। मनुष्यों से उपासना किया हुआ ईश्वर वा सम्यक् सेवित विद्वान् युद्ध में शत्रुओं से रक्षा करने वाला वा रक्षा का हेतु होकर शरीर आदि वा विमानादि की रक्षा करके हम लोगों के लिये सब आयु देता है ॥ ३ ॥

इ॒ममू॒ षु त्वम॒स्माकं॑ स॒निं गा॑य॒त्रं नव्यां॑सम् । अग्ने॑ दे॒वेषु॒ प्र वो॑चः ॥४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अनन्त विद्यामय जगदीश्वर ! (त्वम्) सब विद्याओं का उपदेश करने और सब मङ्गलों के देने वाले आप जैसे सृष्टि के आदि में (देवेषु) पुण्यात्मा अग्नि वायु आदित्य अङ्गिरा नामक मनुष्यों के आत्माओं में (नव्यांसम्) नवीन नवीन बोध कराने वाला (गायत्रम्) गायत्री आदि छन्दों से युक्त (सुसनिम्) जिन में सब प्राणी सुखों का सेवन करते हैं उन चारों वेदों का (प्रवोचः) उपदेश किया और अगले कल्प कल्पादि में फिर भी करोगे वैसे उसको (उ) विविध प्रकार से (अस्माकम्) हमारे आत्माओं में (सु) अच्छे प्रकार कीजिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे जगदीश्वर आप ने जैसे ब्रह्मा आदि महर्षि धार्मिक विद्वानों के आत्माओं में वेदद्वारा सत्य बोध का प्रकाश कर उनको उत्तम सुख दिया वैसे ही हम लोगों के आत्माओं में बोध प्रकाशित कीजिये जिस से हम लोग विद्वान् होकर उत्तम उत्तम धर्मकार्यों का सदा सेवन करते रहें ॥ ४ ॥

आ नो॑ भज पर॒मेष्वा वाजे॑षु मध्य॒मेषु॑ । शिक्षा॒ वस्वो॒ अन्त॑मस्य ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्य ! (परमेषु) उत्तम (मध्यमेषु) मध्यम आनन्द

के देने वाले वा (वाजेषु) सुख प्राप्तिमय युद्धों वा उत्तम अन्नादि में (अन्तमस्य) जिस प्रत्यक्ष सुख मिलने वाले संग्राम के बीच में (नः) हम लोगों को (आशिक्ष) सब विद्याओं की शिक्षा कीजिये इसी प्रकार हम लोगों के (वस्वः) धन आदि उत्तम उत्तम पदार्थों का (आभज) अच्छे प्रकार स्वीकार कीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस प्रकार जिन धार्मिक पुरुषार्थी पुरुषों से सेवन किया हुआ विद्वान् सब विद्याओं को प्राप्त कराके उनको सुख युक्त करे तथा इस जगत् में उत्तम मध्यम और निकृष्ट भेद से तीन प्रकार के भोग लोक और मनुष्य हैं इन को यथाबुद्धि विद्या देता रहे ॥ ५ ॥

विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ । सद्यो दाशुषे क्षरसि ॥६॥

पदार्थ—जैसे हे (चित्रभानो) विविधविद्यायुक्त विद्वान् मनुष्य ! आप (सिन्धोः) समुद्र की (ऊर्मौ) तरंगों में जल के बिन्दुकणों के समान सब पदार्थ-विद्या के (विभक्ता) अलग अलग करने वाले (असि) हैं और (दाशुषे) विद्या का ग्रहण वा अनुष्ठान करने वाले मनुष्य के लिये (उपाके) समीप सत्य बोध उपदेश को (सद्यः) शीघ्र (आक्षरसि) अच्छे प्रकार वर्षाते हो वैसे भाग्यशाली विद्वान् आप हम सब लोगों के सत्कार के योग्य हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे समुद्र के जलकण अलग हुए आकाश को प्राप्त होकर वहां इकट्ठे होकर वर्षते हैं वैसे ही विद्वान् अपनी विद्या से सब पदार्थों का विभाग करके उनका बार-बार मनुष्यों के आत्माओं में प्रवेश किया करते हैं ॥ ६ ॥

यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः । स यन्ता शश्वतीरिषः ॥७॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सेनाध्यक्ष ! आप (यम्) जिस युद्ध करने वाले (मर्त्यम्) मनुष्य को (पृत्सु) सेनाओं के बीच (अवाः) रक्षा करें (यम्) जिस धार्मिक शूरवीर को (वाजेषु) संग्रामों में (जुनाः) प्रेरें जो इस (शश्वतीः) अनादि काल से वर्तमान (इषः) प्रजा को निरन्तर रक्षा करें इस कारण से (सः) सो आप हमारा (यन्ता) नियमों में चलाने वाला नायक हूजिये इस प्रकार हम प्रतिज्ञा करते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे जगदीश्वर जो अनादि काल से वर्त्तमान प्रजा है उस की रक्षा रचना और व्यवस्था करने वाला है वैसे जो मनुष्य इस सर्वव्यापी सब प्रकार को रक्षा करने वाले परमेश्वर की उपासना कर यथोक्त काम करता है उसको न कभी पीड़ा वा पराजय होता है ॥ ७ ॥

नकिरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित् । वाजो अस्ति श्रवाय्यः ॥८॥

पदार्थ—हे (सहन्त्य) सहनशील विद्वान्! (नकिः) जो धर्म की मर्यादा उल्लंघन न करने और (पर्येता) सब पर पूर्ण कृपा करने वाले आप (यस्य) जिस (कयस्य) युद्ध करने और शत्रुओं को जीतने वाले शूरवीर पुरुष का (श्रवाय्यः) श्रवण करने योग्य (वाजः) युद्ध करना (अस्ति) होता है उसको सब उत्तम पदार्थ सदा दिया कीजिये इस प्रकार आपका नियोग हम लोग करते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—जैसे कोई भी जीव जिस अनन्त शुभ गुणयुक्त परिमाण सहित सब से उत्तम परमेश्वर के गुणों की न्यूनता वा उसका परिमाण करने को योग्य नहीं हो सकता जिसका सब ज्ञान निर्भ्रम है वैसे जो मनुष्य वर्त्तता है वही सब राज कार्यों का स्वामी नियत करना चाहिये ॥ ८ ॥

स वाजं॑ वि॒श्वच॑र्षणि॒रर्व॑द्भिरस्तु॒ तरु॑ता । विप्रे॑भिरस्तु॒ सनि॑ता ॥९॥

पदार्थ—जो (विश्वचर्षणिः) जिस के सब मनुष्य रक्षा के योग्य (तरुता) शत्रु निमित्तक दुःखों के पार पहुँचाने वाला (सनिता) ज्ञान और सुख का विभाग करके देनेहारा सेनापति हमारी सेना में (विप्रेभिः) बुद्धि चातुर्ययुक्त पुरुष (अर्वद्भिः) घोड़े आदि से सहित हो हमको (वाजम्) युद्ध में विजय की प्राप्ति और सत्रुओं का पराजय करनेहारा सेनापति है वही हमारे बीच में सेना स्वामी (अस्तु) हो ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्यों को सब दुःखरूपी सागर से पार करने और युद्ध में विजय देने वाला विद्वान् है वही अच्छे विद्वानों के समागम से सेना का अधिपति होने योग्य है ॥ ९ ॥

जरा॑बोध॒ तद्वि॑विड्ढि वि॒शेवि॑शे य॒ज्ञिया॑य । स्तोमं॑ रु॒द्राय॒ दृशी॑कम् ॥१०॥

पदार्थ—हे (जराबोध) गुण कीर्त्तन से प्रकाशित होने वाले सेनापति ! आप जिससे (विशेविशे) प्राणी प्राणी के सुख के लिये (यज्ञियाय) यज्ञ कर्म के योग्य (रुद्राय) दुष्टों को रुलाने वाले के लिये सब पदार्थों को प्रकाशित करने वाले (दृशीकम्) देखने योग्य (स्तोतम्) स्तुतिसमूह गुण कीर्त्तन को (विविड्ढि) व्याप्त करते हो (तत्) इससे माननीय हो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पूर्णोपमालङ्कार है । युद्धविद्या के जानने वाले के गुणों को श्रवण करे विना इस का ज्ञान नहीं होता और जो प्रजा के सुख के लिये अति तीक्ष्ण स्वभाव वाले शत्रुओं के बल के नाश करनेहारे भृत्यों को अच्छी शिक्षा कर रखता है वही प्रजापालन में योग्य होता है ॥ १० ॥

स नो॑ म॒हाँ अ॑निमा॒नो धू॒मके॑तुः पुरुश्च॒न्द्रः । धि॒ये वाजा॑य हिन्वतु ॥११॥

पदार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जो (धूमकेतुः) जिसका धूम ध्वजा के

समान (पुरुश्चन्द्रः) बहुतों को आनन्द देने (अनिमानः) जिसका निमान अर्थात् परिमाण नहीं है (महान्) अत्यन्त गुणयुक्त भौतिक अग्नि है (सः) वह (धिये) उत्तम कर्म वा (वाजाय) विज्ञानरूप वेग के लिये (नः) हम लोगों को (हिन्वतु) तृप्त करता है ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो सब प्रकार श्रेष्ठ किसी के छिन्न भिन्न करने में नहीं आता सब का आधार सब आनन्द का देने वा विज्ञानसमूह परमेश्वर है और जिसने महागुण युक्त भौतिक अग्नि रचा है वही उत्तम कर्म वा शुद्ध विज्ञान में लोगों को सदा प्रेरणा करे ॥ ११ ॥

स रे॒वाँ इ॑व वि॒श्पति॒र्दैव्यः॑ के॒तुः शृ॑णोतु नः । उ॒क्थैर॒ग्निर्बृ॒हद्भा॑नुः ॥१२॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्य ! तुम जो (दैव्यः) देवों में कुशल (केतुः) रोग को दूर करने में हेतु (विश्वपतिः) प्रजा को पालने वाला (बृहद्भानुः) बहुत प्रकाश युक्त (रेवान् इव) अत्यन्त धन वाले के समान (अग्निः) सब को सुख प्राप्त करने वाला अग्नि है (उक्थैः) वेदोक्त स्तोत्रों के साथ सुना जाता है उसको (शृणोतु) सुन और (नः) हम लोगों के लिये सुनाइये ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे पूर्ण धन वाला विद्वान् मनुष्य धन भोगने योग्य पदार्थों से सब मनुष्यों को सुख संयुक्त करता और सब की वार्त्ताओं को सुनता है वैसे ही जगदीश्वर सब की किई हुई स्तुति को सुनकर उनको सुखसंयुक्त करता है ॥ १२ ॥

नमो॑ म॒हद्भ्यो॒ नमो॑ अर्भ॒केभ्यो॒ नमो॒ युव॑भ्यो॒ नम॑ आशि॒नेभ्यः॑ ।

यजा॑म दे॒वान् यदि॑ श॒क्नवा॑म॒ मा ज्याय॑सः॒ शंस॒मा वृ॑क्षि देवाः ॥१३॥

पदार्थ—हे (देवाः) सब विद्याओं को प्रकाशित करने वाले विद्वानो ! हम लोग (महद्भ्यः) पूर्ण विद्यायुक्त विद्वानों के लिये (नमः) सत्कार अन्न (यजाम) करें और दें (अर्भकेभ्यः) थोड़े गुण वाले विद्यार्थियों के (नमः) तृप्ति (युवभ्यः) युवावस्था से जो बल वाले विद्वान् हैं उनके लिये (नमः) सत्कार (आशिनेभ्यः) समस्त विद्याओं में व्याप्त जो वृद्ध विद्वान् हैं उन के लिये (नमः) सेवापूर्वक देते हुए (यदि) जो सामर्थ्य के अनुकूल विचार में (शक्नवाम) समर्थ हों तो (ज्यायसः) विद्या आदि उत्तम गुणों से अति प्रशंसनीय (देवान्) विद्वानों को (आयजाम) अच्छे प्रकार विद्या ग्रहण करें इसी प्रकार हम सब जने (शंसम्) इन की स्तुति प्रशंसा को (मावृक्षि) कभी न काटें ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में ईश्वर का यह उपदेश है कि मनुष्यों को चाहिये अभिमान छोड़कर अन्नादि से सब उत्तम जनों का सत्कार करें

आर्थात् जितना धन पदार्थ आदि उत्तम बातों से अपना सामर्थ्य हो उतना उनका सङ्ग करके विद्या प्राप्त करें किन्तु उनकी कभी निन्दा न करें ॥ १३ ॥

पिछले सूक्त में अग्नि का वर्णन है उसको अच्छे प्रकार जानने वाले विद्वान् ही होते हैं उनका यहां वर्णन करने से छब्बीसवें सूक्तार्थ के साथ इस सत्ताईसवें सूक्त की संगति जाननी चाहिये ।

यह सत्ताईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

आजीगर्तिः शुनःशेप ऋषिः । इन्द्रयज्ञसोमा देवताः । १—६ अनुष्टुप् ७—९ गायत्री च छन्दसी । १—६ गान्धारः ७—९ षड्जश्च स्वरौ ॥

यत्र ग्रावा पृथुबुध्न ऊर्ध्वो भवति सोतवे ।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) ऐश्वर्ययुक्त कर्म के करने वाले मनुष्य ! तुम (यत्र) जिन यज्ञ आदि व्यवहारों में (पृथुबुध्नः) बड़ी जड़ का (ऊर्ध्वः) जो कि भूमि से कुछ ऊंचे रहने वाले (ग्रावा) पत्थर और मुसल को (सोतवे) अन्न आदि कूटने के लिये (भवति) युक्त करते हो उन में (उलूखलसुतानाम्) उखली मुशल के कूटे हुए पदार्थों को ग्रहण करके उनकी सदा उत्तमता के साथ रक्षा करो (उ) और अच्छे विचारों से युक्ति के साथ पदार्थ सिद्ध होने के लिये (जल्गुलः) इस को नित्य ही चलाया करो ॥ १ ॥

भावार्थ—ईश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! तुम यव आदि ओषधियों के असार निकालने और सार लेने के लिये भारी से पत्थर में जैसा चाहिये वैसा गड्ढा करके उसको भूमि में गाड़ो और वह भूमि से कुछ ऊंचा रहे जिससे कि नाज के सार वा असार का निकालना अच्छे प्रकार बने उस में यव आदि अन्न स्थापन करके मुसल से उसको कूटो ॥१॥

यत्र द्वाविव जघनाधिषवण्या कृता ।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्रजल्गुलः ॥२॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) भीतर बाहर के शरीर साधनों से ऐश्वर्य वाले विद्वान् मनुष्य ! तुम (द्वाविव) (जघना) दो जंघों के समान (यत्र) जिस व्यवहार में

(अधिषवण्या) अच्छे प्रकार वा असार अलग अलग करने के पात्र अर्थात् शिलबट्टे होते हैं उनको (कृता) अच्छे प्रकार सिद्ध करके (उलूखलसुतानाम्) शिलबट्टे से शुद्ध किये हुए पदार्थों के सकाश से सार को (अव) प्राप्त हो (उ) और उत्तम विचार से (इत्) उसी को (जल्गुलः) वार २ पदार्थों पर चला ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जैसे दोनों जांघों के सहाय से मार्ग का चलना चलाना सिद्ध होता है वैसे ही एक तो पत्थर की शिला नीचे रक्खें और दूसरा उपर से पीसने के लिये बट्टा जिसको हाथ में लेकर पदार्थ पीसे जायं इनसे औषधि आदि पदार्थों को पीसकर यथावत् भक्ष्य आदि पदार्थों को सिद्ध करके खावें यह भी दूसरा साधन उखली मुसल के समान बनाना चाहिये ॥२॥

यत्र नार्यपच्यवमुपच्यवं च शिक्षते ।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥३॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) इन्द्रियों के स्वामी जीव ! तू (यत्र) जिस कर्म में घर के बीच (नारी) स्त्रियां काम करने वाली अपनी सङ्गि स्त्रियों के लिये (उलूखलसुतानाम्) उक्त उलूखलों से सिद्ध की हुई विद्या को (अपच्यवम्) (उपच्यवम्) (च) अर्थात् जैसे डालना निकालनादि क्रिया करनी होती है वैसे उस विद्या को (शिक्षते) शिक्षा से ग्रहण करतीं और कराती हैं उसको (उ) अनेक तर्कों के साथ (जल्गुलः) सुनो और इस विद्या का उपदेश करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—यह उलूखलविद्या जो कि भोजनआदि के पदार्थ सिद्ध करने वाली है गृहसंबन्धि कार्य करने वाली होने से यह विद्या स्त्रियों को नित्य ग्रहण करनी और अन्य स्त्रियों को सिखाना भी चाहिये जहां पाक सिद्ध किये जाते हों वहां ये सब उलूखल आदि साधन स्थापन करने चाहियें क्योंकि इन के विना कूटना पीसना आदि क्रिया सिद्ध नहीं हो सकतीं ॥३॥

यत्र मन्थां विबध्नते रश्मीन्यमितवा इव ।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सुख की इच्छा करने वाले विद्वान् मनुष्य ! तू (रश्मीन्) (इव) जैसे (यमितवै) सूर्य्य अपनी किरणों को वा सारथी जैसे घोड़े आदि पशुओं की रस्सियों को (यत्र) जिस क्रिया से सिद्ध होने वाले व्यवहार में (मन्थाम्) घृत आदि पदार्थों के निकालने के लिये मन्थनियों को (विबध्नते) अच्छे प्रकार बांधते हैं वहां (उलूखलसुतानाम्) उलूखल से सिद्ध हुए पदार्थों को

(अव) वैसे ही सिद्ध करने की इच्छा कर (उ) और (इत्) उसी विद्या को (उलूखलः) युक्ति के साथ उपदेश कर ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। ईश्वर उपदेश करता है कि हे विद्वानों ! जैसे सूर्य्य अपनी किरणों के साथ भूमि को आकर्षण शक्ति से बाँधता और जैसे सारथी रश्मियों से घोड़ों को नियम में रखता है वैसे ही मथने बाँधने और चलाने की विद्या से दूध आदि वा औषधि आदि पदार्थों से मक्खन आदि पदार्थों को युक्ति के साथ सिद्ध करो ॥४॥

यच्चिद्धि त्वं गृहेगृह उलूखलक युज्यसे ।
इह द्युमत्तमं वद जयतामिव दुन्दुभिः ॥५॥

पदार्थ—हे (उलूखलक) उलूखल से व्यवहार लेने वाले विद्वान् ! तू (यत्) जिस कारण (हि) प्रसिद्ध (गृहेगृहे) घर घर में (युज्यसे) उक्त विद्या का व्यवहार वर्त्तता है (इह) इस संसार गृह वा स्थान में (जयताम्) शत्रुओं को जीतने वालों के (दुन्दुभिः) नगारों के (इव) समान (द्युमत्तमम्) जिसमें अच्छे शब्द निकलें वैसे उलूखल के व्यवहार को (वद) इस विद्या का उपदेश करे ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। सब घरों में उलूखल और मुसल को स्थापन करना चाहिये जैसे शत्रुओं के जीतने वाले शूरवीर मनुष्य अपने नगरों को वचा कर युद्ध करते हैं वैसे ही रस चाहने वाले मनुष्यों को उलूखल में यव आदि ओषधियों को डाल कर मुसल से कूटकर बूसा आदि दूर करके सार सार लेना चाहिये ॥५॥

उत स्म ते वनस्पते वातो वि वात्यग्रमित् ।
अथो इन्द्राय पातवे सुनु सोममुलूखल ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (वातः) वायु (इत्) ही (वनस्पते) वृक्ष आदि पदार्थों के (अग्रम्) ऊपरले भाग को (उत) भी (विवाति) अच्छे प्रकार पहुँचाता (स्म) पहुँचा वा पहुँचेगा (अथो) इस के अनन्तर (इन्द्राय) प्राणियों के लिये (सोमम्) सब ओषधियों के सार को (पातवे) पान करने को सिद्ध करता है वैसे (उलूखल) उखरी में यव आदि ओषधियों के समुदाय के सार को (सुनु) सिद्ध कर ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जब पवन सब वनस्पतियों ओषधियों को अपने वेग से स्पर्श कर बढ़ाता है तभी प्राणी

उनको उलूखल में स्थापन करके उनका सार ले सकते और रस भी पीते हैं इस वायु के विना किसी पदार्थ की वृद्धि वा पुष्टि होने का संभव नहीं हो सकता है ॥६॥

आयजी वाजसातमा ता ह्यु१च्चा विजर्भृतः । हरीइवान्धांसि बप्सता ॥७॥

पदार्थ—(आयजी) जो अच्छे प्रकार पदार्थों को प्राप्त होने वाले (वाजसातमा) संग्रामों को जीतते हैं (ता) वे स्त्री पुरुष (अंधांसि) अन्नों को (बप्सता) खाते हुए (हरी) घोड़ों के (इव) समान उलूखल आदि से (उच्चा) जो अति उत्तम काम हैं उनको (विजर्भृतः) अनेक प्रकार से सिद्ध कर धारण करते रहें ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे खाने वाले घोड़े रथ आदि को वहते हैं वैसे ही मुसल और ऊखरी से पदार्थों को अलग अलग करने आदि अनेक कार्यों को सिद्ध करते हैं ॥७॥

ता नो अद्य वनस्पती ऋष्वावृष्वेभिः सोतृभिः । इन्द्राय मधुमत्सुतम् ॥८॥

पदार्थ—जो (सोतृभिः) रस खींचने में चतुर (ऋष्वेभिः) बड़े विद्वानों ने (ऋष्वौ) अति स्थूल (वनस्पती) काठ के उखली मुसल सिद्ध किये हों जो (नः) हमारे (इन्द्राय) ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाले व्यवहार के लिये (अद्य) आज (मधुमत्) मधुर आदि प्रशंसनीय गुण वाले पदार्थों को (सुतम्) सिद्ध करने के हेतु होते हों (ता) वे सब मनुष्यों को साधने योग्य हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—जैसे पत्थर के मूसल और उखरी होते हैं वैसे ही काष्ठ लोहा पीतल चांदी सोना तथा औरों के भी किये जाते हैं, उन उत्तम उलूखल मुसलों से मनुष्य औषध आदि पदार्थों के अभिषव अर्थात् रस आदि खींचने के व्यवहार करें ॥८॥

उच्छिष्टं चम्वोर्भर सोमं पवित्र आसृज । नि धेहि गोरधि त्वचि ॥९॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! तुम (चम्वोः) पैदर और सवारों की सेनाओं के समान (शिष्टम्) शिक्षा करने योग्य (सोमम्) सर्व रोगविनाशक बलपुष्टि और बुद्धि को बढ़ाने वाले उत्तम ओषधि के रस को (उत् भर) उत्कृष्टता से धारण कर उससे दो सेनाओं को (पवित्रे) उत्तम (आसृज) कीजिये (गोः) पृथिवी के (अधि) ऊपर अर्थात् (त्वचि) उस की पीठ पर उन सेनाओं को (निधेहि) स्थापन करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिये कि दो प्रकार की सेना रक्खें अर्थात्

एक तो सवारों की दूसरी पैदरों की। उन के लिये उत्तम रस और शस्त्र आदि सामग्री इकट्ठी करें अच्छी शिक्षा और औषधि देकर शुद्ध बलयुक्त और नीरोग कर पृथिवी पर एकचक्र राज्य नित्य करें ॥९॥

सत्ताईसवें सूक्त से अग्नि और विद्वान् जिस जिस गुण को कहे हैं वे मूशल और ऊखरी आदि साधनों को ग्रहण कर ओषध्यादि पदार्थों से संसार के पदार्थों से अनेक प्रकार के उत्तम उत्तम पदार्थ उत्पन्न करें इस अर्थ का इस सूक्त में संपादन करने से सत्ताईसवें सूक्त के कहे हुए अर्थ के साथ अट्ठाईसवें सूक्त की सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥९॥

यह अठाईसवां सूक्त समाप्त हुआ॥

आजीगर्तिः शुनःशेप ऋषिः। इन्द्रो देवता। पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥१॥

पदार्थ—हे (सोमपाः) उत्तम पदार्थों की रक्षा करने वाले (तुविमघ) अनेक प्रकार के प्रशंसनीय धनयुक्त (सत्य) अविनाशि स्वरूप (इन्द्र) उत्तम ऐश्वर्यप्रापक न्यायाधीश! आप (यच्चित्) जो कभी हम लोग (अनाशस्ताइव) अप्रशंसनीय गुण सामर्थ्य वालों के समान (स्मसि) हों (तु) तो (नः) हम लोगों को (सहस्रेषु) असंख्यात (शुभ्रिषु) अच्छे सुख देने वाले (गोषु) पृथिवी इन्द्रियां वा गौ बैल (अश्वेषु) घोड़े आदि पशुओं में (हि) ही (आशंसय) प्रशंसा वाले कीजिये॥ १॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे आलस्य के मारे अश्रेष्ठ अर्थात् कीर्ति रहित मनुष्य होते हैं वैसे हम लोग भी जो कभी हों तो हे न्यायाधीश! हम लोगों को प्रशंसनीय पुरुषार्थ और गुणयुक्त कीजिये जिस से हम लोग पृथिवी आदि राज्य और बहुत उत्तम उत्तम हाथी घोड़े गौ बैल आदि पशुओं को प्राप्त होकर उनका पालन वा उन की वृद्धि कर के उन के उपकार से प्रशंसा वाले हों॥१॥

शिप्रिन् वाजानां पते शचीवस्तव दंसना।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥२॥

पदार्थ—हे (शिप्रिन्) प्राप्त होने योग्य प्रशंसनीय ऐहिक वा पारमार्थिक सुखों को देनेहारे (शचीवः) बहुविध प्रजा वा कर्मयुक्त (वाजानाम्) बड़े बड़े युद्धों के (पते) पालन करने और (तुवीमघ) अनेक प्रकार के प्रशंसनीय विद्या-धन युक्त (इन्द्र) परमैश्वर्य सहित सभाध्यक्ष जो ! (तव) आप की (दंसना) वेदविद्यायुक्त वाणी सहित क्रिया है उस से आप (सहस्रेषु) हजारह (शुभ्रिषु) शोभन विमान आदि रथ वा उनके उत्तम साधन (गोषु) सत्य भाषण और शास्त्र की शिक्षा सहित वाक् आदि इन्द्रियां (अश्वेषु) तथा वेग आदि गुण वाले अग्नि आदि पदार्थों से युक्त घोड़े आदि व्यवहारों में (नः) हम लोगों को (आशंसय) अच्छे गुण युक्त कीजिये ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को इस प्रकार जगदीश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये कि हे भगवन् ! कृपा करके जैसे न्यायधीश अत्युत्तम राज्य आदि को प्राप्त कराता है वैसे हम लोगों को पृथिवी के राज्य सत्य बोलने और शिल्पविद्या आदि व्यवहारों को सिद्धि करने में बुद्धिमान् नित्य कीजिये ॥ २ ॥

नि ष्वा॑पया मिथू॒दृशा॑ स॒स्ताम॑बुध्यमाने ।

आ तू न॑ इन्द्र शंसय॒ गोष्वश्वे॑षु शु॒भ्रिषु॑ स॒हस्रे॑षु तुवीमघ ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (तुविमघ) अनेक प्रकार के धनयुक्त (इन्द्र) अविद्यारूपी निद्रा और दोषों को दूर करने वाले विद्वान् ! जो जो (मिथूदृशा) विषयासक्ति अर्थात् खोटे काम वा प्रमाद अच्छे कामों के विनाश को दिखाने वाले वा (अबुध्यमाने) बोधनिवारक शरीर और मन (सस्ताम्) शयन और पुरुषार्थ का नाश करते हैं उनको आप (निष्वापय) अच्छे प्रकार निवारण कर दीजिये (तु) फिर (सहस्रेषु) हजारहों (शुभ्रिषु) प्रशंसनीय गुण वाले (गोषु) पृथिवी आदि पदार्थ वा (अश्वेषु) वस्तु वस्तु में रहने वाले अग्नि आदि पदार्थों में (नः) हम लोगों को (आशंसय) अच्छे गुण वाले कीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को शरीर और आत्मा के आलस्य को दूर छोड़ के उत्तम कर्मों में नित्य प्रयत्न करना चाहिये ॥ ३ ॥

स॒सन्तु॒ त्या अरा॑तयो॒ बोध॑न्तु शूर रा॒तयः॑ ।

आ तू न॑ इन्द्र शंसय॒ गोष्वश्वे॑षु शु॒भ्रिषु॑ स॒हस्रे॑षु तुवीमघ ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (तुवीमघ) विद्या सुवर्ण सेना आदि धनयुक्त (शूर) शत्रुओं के बल को नष्ट करने वाले सेनापते ! आप के (अरातयः) जो दान आदि धर्म से रहित शत्रुजन हैं वे (ससन्तु) सो जावें और जो (रातयः) दान आदि धर्म के

कर्त्ता हैं (त्याः) वे (बोधन्तु) जाग्रत होकर शत्रु और मित्रों को जानें (तु) फिर हे (इन्द्र) अत्युत्तम ऐश्वर्ययुक्त सभाध्यक्ष सेनापते वीरपुरुष ! तू (सहस्रेषु) हजारह (शुभ्रिषु) अच्छे अच्छे गुण वाले (गोषु) गौ वा (अश्वेषु) घोड़े हाथी सुवर्ण आदि धनों में (नः) हम लोगों को (आशंसय) शत्रुओं के विजय से प्रशंसा वाले करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—हम लोगों को अपनी सेना में शूर ही मनुष्य रखकर आनन्दित करने चाहियें जिससे भय के मारे दुष्ट और शत्रुजन जैसे निद्रा में शान्त होते हैं वैसे सर्वदा हों जिससे हम लोग निष्कंटक अर्थात् बेखटके चक्रवर्ति राज्य का सेवन नित्य करें ॥ ४ ॥

समिन्द्र गर्द॒भं मृ॑ण नु॒वन्तं॑ पा॒पया॑मु॒या ।

आ तू न॑ इन्द्र शंसय॒ गोष्वश्वे॑षु शु॒भ्रिषु॑ स॒हस्रे॑षु तुवीमघ ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सभाध्यक्ष ! तू (गर्दभम्) गदहे के समान (अमुया) हमारे पीछे (पापया) पाप रूप मिथ्याभाषण से युक्त गवाही और भाषण आदि कपट से हम लोगों की (नुवन्तम्) स्तुति करते हुए शत्रु को (संमृण) अच्छे प्रकार दण्ड दे (तु) फिर (तुवीमघ) हे बहुत से विद्या वा धर्मरूपी धनवाले (इन्द्र) न्यायधीश तू (सहस्रेषु) हजारह (शुभ्रिषु) शुद्धभाव वा धर्मयुक्त व्यवहारों से ग्रहण किये हुए (गोषु) पृथिवी आदि पदार्थ वा (अश्वेषु) हाथी घोड़ा आदि पशुओं के निमित्त (नः) हम लोगों को (आशंसय) सच्चे व्यवहार वर्त्तने वाले अपराध रहित कीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सभा स्वामी न्याय से अपने सिंहासन पर बैठकर जैसे गधा रूखे और खोटे शब्द के उच्चारण से औरों की निन्दा करते हुए जन को दण्ड दे और जो सत्यवादी धार्मिक जन का सत्कार करे जो अन्याय के साथ औरों के पदार्थ को लेते हैं उनको दण्ड दे के जिस का जो पदार्थ हो वह उसको दिला देवे इस प्रकार सनातन न्याय करने वालों के धर्म में प्रवर्त्त पुरुष का सत्कार हम लोग निरन्तर करें ॥ ५ ॥

पता॑ति कु॒ण्डृणाच्या॑ दू॒रं वातो॒ वना॒दधि॑ ।

आ तू न॑ इन्द्र शंसय॒ गोष्वश्वे॑षु शु॒भ्रिषु॑ स॒हस्रे॑षु तुवीमघ ॥६॥

पदार्थ—हे (तुवीमघ) अनेकविध धनों को सिद्ध करनेहारे (इन्द्र) सर्वोत्कृष्ट विद्वान् ! आप जैसे (वातः) पवन (कुण्डृणाच्या) कुटिलगति से (वनात्) जगत् और सूर्य की किरणों से (अधि) ऊपर वा इन के नीचे से प्राप्त होकर आनन्द

करता है वैसे (तु) वारंवार (सहस्रेषु) हजारह (अश्वेषु) वेग आदि गुण वाले घोड़े आदि (गोषु) पृथिवी इन्द्रिय किरण और चौपाए (शुभ्रिषु) शुद्ध व्यवहारों सब प्राणियों और अप्राणियों को सुशोभित करता है वैसे (नः) हमको (आशंसय) प्रशंसित कीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को ऐसा जानना चाहिए जो यह पवन है वही सब जगह जाता हुआ अग्नि आदि पदार्थों से अधिक कुटिलता से गमन करने हारा और वहुत से ऐश्वर्य की प्राप्ति तथा पशु वृक्षादि पदार्थों के व्यवहार उनके बढ़ने घटने और समस्त वाणी के व्यवहार का हेतु है ॥ ६ ॥

सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम् ।
आ तू नं इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (तुवीमघ) अनन्त बलरूप धनयुक्त (इन्द्र) सब शत्रुओं के विनाश करने वाले जगदीश्वर ! आप जो (नः) हमारे (सहस्रेषु) अनेक (शुभ्रिषु) शुद्ध कर्मयुक्त व्यवहार वा (गोषु) पृथिवी के राज्य आदि व्यवहार तथा (अश्वेषु) घोड़े आदि सेना के अंगों में विनाश का कराने वाला व्यवहार हो उस (परिक्रोशम्) सब प्रकार से रुलाने वाले व्यवहार को (जहि) विनष्ट कीजिये तथा जो (नः) हमारा शत्रु हो (कृकदाश्वम्) उस दुःख देने वाले को भी (जम्भय) विनाश को प्राप्त कीजिये इस रीति से (तु) फिर (नः) हम लोगों को (आशंसय) शत्रुओं से पृथक् कर सुख युक्त कीजिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को इस प्रकार जगदीश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये कि हे परमात्मन् ! आप हम लोगों में जो दुष्ट व्यवहार अर्थात् खोटे चलन तथा जो हमारे शत्रु हैं उनको दूर कर हम लोगों के लिये सकल ऐश्वर्य दीजिये ॥ ७ ॥

पिछले सूक्त में पदार्थविद्या और उसके साधन कहे हैं उनके उपादान अत्यन्त प्रसिद्ध करानेहारे संसार के पदार्थ हैं जो कि परमेश्वर ने उत्पन्न किये हैं इस सूक्त में उन पदार्थों से उपकार ले सकने वाली सभाध्यक्ष सहित सभा होती है उसके वर्णन करने से पूर्वोक्त अट्ठाईसवें सूक्त के अर्थ के साथ इस उनतीसवें सूक्त के अर्थ की संगति जाननी चाहिये ।

यह उनतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥२९॥

आजीगर्त्तिः शुनःशेप ऋषिः । १—१६ इन्द्रः । १७—१९ अश्विनौ । २०—२२ उषादेवताः । १—१० । १२—१५ । १७—२२ गायत्री । ११ पादनिचृद्गायत्री । १६ त्रिष्टुप् च छन्दांसि; १—२२ षड्जः । १६ धैवतश्च स्वरः ॥

आ व॒ इन्द्रं॒ क्रिविं॑ यथा वाज॒यन्तः॑ श॒तक्र॑तुम् । मंहि॑ष्ठं सिञ्च॒ इन्दु॑भिः ॥१॥

पदार्थ—हे सभाध्यक्ष मनुष्य ! (यथा) जैसे खेती करने वाले किसान (क्रिविम्) कुंए को खोद प्राप्त होकर उसके जल से खेतों को (सिञ्च) सींचते हैं और जैसे (वाजयन्तः) वेगयुक्त वायु (इन्दुभिः) जलों से (शतक्रतुम्) जिस से अनेक कर्म होते हैं (मंहिष्ठम्) बड़े (इन्द्रम्) सूर्य को सींचते वैसे तू भी प्रजाओं को सुखों से अभिषिक्त कर ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे मनुष्य पहिले कुंए को खोद कर उसके जल से स्नान पान और खेत बगीचे आदि स्थानों के सींचने से सुखी होते हैं वैसे ही विद्वान् लोग यथायोग्य कलायन्त्रों में अग्नि को जोड़ के उसकी सहायता से कलों में जल को स्थापन करके उनको चलाने से बहुत कार्य्यों को सिद्ध कर के सुखी होते हैं ॥ १ ॥

श॒तं वा॒ यः शुची॑नां स॒हस्रं॑ वा॒ समा॑शिराम् । एदु॑ नि॒म्नं न री॑यते ॥२॥

पदार्थ—जो शुद्ध गुण कर्म स्वभावयुक्त विद्वान् है उसी से यह जो भौतिक अग्नि है वह (निम्नम्) (न) जैसे नीचे स्थान को जाते हैं वैसे (शुचीनाम्) शुद्ध कलायन्त्र वा प्रकाश वाले पदार्थों का (शतम्) (वा) सौगुना अथवा (समाशिराम्) जो सब प्रकार से पकाए जावें उन पदार्थों का (सहस्रम्) वा हजारगुना (आ) (इत्) (उ) आधार और दाह गुण वाला (रीयते) जानता है ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । यह अग्नि सूर्य्य और बिजली जो इस के प्रसिद्ध रूप हैं सैकड़ह पदार्थों की शुद्धि करता है और पचाने योग्य पदार्थों में हजारह पदार्थों को अपने वेग से पकाता है जैसे जल नीची जगह को जाता है वैसे ही यह अग्नि ऊपर को जाता है इन अग्नि और जल को लौट पौट करने अर्थात् अग्नि को नीचे और जल को ऊपर स्थापन करने से वा दोनों के संयोग से वेग आदि गुण उत्पन्न होते हैं ॥ २ ॥

सं यन्मदा॑य शु॒ष्मिण॑ ए॒ना ह्य॑स्यो॒दरे॑ । स॒मु॒द्रो न व्यचो॑ द॒धे ॥ ३ ॥

पदार्थ—मैं (हि) अपने निश्चय से (मदाय) आनन्द और (शुष्मिणे) प्रशंसनीय बल और ऊर्ज जिस व्यवहार में हों उसके लिये (समुद्रः) (न) जैसे

समुद्र (व्यचः) अनेक व्यवहार (न) सैकड़ह हजार गुणों सहित (यत्) जो क्रिया हैं उन क्रियाओं को (संदधे) अच्छे प्रकार धारण करूं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जसे समुद्र के मध्य में अनेक गुण रत्न और जीव जन्तु और अगाध जल है वैसे ही अग्नि और जल के सकाश से प्रयत्न के साथ बहुत प्रकार का उपकार लेना चाहिये ॥ ३ ॥

अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् । वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ ४ ॥

पदार्थ—(अयम्) यह इन्द्र अग्नि जो कि परमेश्वर का रचा है (उ) हम जानते हैं कि जैसे (गर्भधिम्) कबूतरी को (कपोत इव) कबूतर प्राप्त हो वैसे (नः) हमारी (वचः) वाणी को (समोहसे) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है (चित्) वही सिद्ध किया हुआ (नः) हम लोगों को (तत्) पूर्व कहे हुये बल आदि गुण बढ़ाने वाले आनन्द के लिये (अतसि) निरन्तर प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे कबूतर अपने वेग से कबूतरी को प्राप्त होता है वैसे ही शिल्पविद्या से सिद्ध किया हुआ अग्नि अनुकूल अर्थात् जैसी चाहिये वैसी गति को प्राप्त होता है मनुष्य इस विद्या को उपदेश वा श्रवण से पा सकते हैं ॥ ४ ॥

स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते । विभूतिरस्तु सूनृता ॥५॥

पदार्थ—हे (गिर्वाहः) जानने योग्य पदार्थों के जानने और सब दुःखों के नाश करने वाले तथा (राधानाम्) जिन पृथिवी आदि पदार्थों में सुख सिद्ध होते हैं उन के (पते) पालन करने वाले सभा वा सेना के स्वामी विद्वान् ! (यस्य) जिन (ते) आप का (सूनृता) श्रेष्ठता से सब गुण का प्रकाश करने वाला (विभूतिः) अनेक प्रकार का ऐश्वर्य्य है सो आप के सकाश से हम लोगों के लिये (स्तोत्रम्) स्तुति (नः) हमारे पूर्वोक्त (मदाय) आनन्द और (शुष्मिणे) बल के लिये (अस्तु) हो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पिछले तीसरे मन्त्र से (मदाय) (शुष्मिणे) (नः) इन तीन पदों की अनुवृत्ति है । हम लोगों को सब का स्वामी जोकि वेदों से परिपूर्ण विज्ञानरत ऐश्वर्य्ययुक्त और यथायोग्य न्याय करने वाला सभाध्यक्ष वा सेनापति विद्वान् है उसी को न्यायाधीश मानना चाहिए ॥ ५ ॥

ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन्वाजे शतक्रतो । समन्येषु ब्रवावहै ॥६॥

पदार्थ—हे (शतक्रतो) अनेक प्रकार के कर्म वा अनेक प्रकार की बुद्धियुक्त सभा वा सेना के स्वामी जो आप के सहाय के योग्य हैं उन सब कार्यों में हम (संब्रवावहै) परस्पर कह सुन सम्मति से वर्ते और तू (नः) हम लोगों की

(ऊतये) रक्षा करने के लिये (ऊर्ध्वः) सभों से ऊंचे (तिष्ठ) बैठ इस प्रकार आप और हम सभों में से प्रतिजन अर्थात् दो दो होकर (वाजे) युद्ध तथा (अन्येषु) अन्य कर्त्तव्य जो कि उपदेश वा श्रवण है उस को नित्य करें ॥ ६ ॥

भावार्थ—सत्य आचार विचारशील पुरुषों को योग्य है कि जो अपने आत्मा में अन्तर्यामी जगदीश्वर है उस की आज्ञा से सभापति वा सेनापति के साथ सत्य और मिथ्या वा करने और न करने योग्य कामों का निश्चय करना चाहिये इस के विना कभी किसी को विजय या सत्य बोध नहीं हो सकता जो सर्वव्यापी जगदीश्वर न्यायाधीश को मानकर वा धार्मिक शूरवीर को सेनापति करके शत्रुओं के साथ युद्ध करते हैं उन्हीं का निश्चय से विजय होता है औरों का नहीं ॥ ६ ॥

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥ ७ ॥

पदार्थ—हम लोग (सखायः) परस्पर मित्र होकर अपनी (ऊतये) उन्नति वा रक्षा के लिये (योगेयोगे) अति कठिनता से प्राप्त होने वाले पदार्थ पदार्थ में वा (वाजेवाजे) युद्ध युद्ध में (तवस्तरम्) जो अच्छे प्रकार वेदों से जाना जाता है उस (इन्द्रम्) सब से विजय देने वाले जगदीश्वर वा दुष्ट शत्रुओं को दूर करने और आत्मा वा शरीर के बल वाले धार्म्मिक सभाध्यक्ष को (हवामहे) बुलावें अर्थात् बार बार उसकी विज्ञप्ति करते रहें ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को परस्पर मित्रता सिद्ध कर अलभ्य पदार्थों की रक्षा और सब जगह विजय करना चाहिये तथा परमेश्वर और सेनापति का नित्य आश्रय करना चाहिये और यह भी स्मरण रखना चाहिये कि उक्त आश्रय से ही उत्तम कार्यसिद्धि होने के योग्य हो सो ही नहीं किन्तु विद्या और पुरुषार्थ भी उनके लिये करने चाहियें ॥७॥

आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्रिणीभिरूतिभिः । वाजेभिरुप नो हवम् ॥८॥

पदार्थ—(यदि) जो वह सभा वा सेना का स्वामी (नः) हम लोगों की (आ) (हवम्) प्रार्थना को (श्रवत्) श्रवण करे (घ) वही (सहस्रिणीभिः) हज़ारों प्रशंसनीय पदार्थ प्राप्त होते हैं जिन में उन (ऊतिभिः) रक्षा आदि व्यवहार वा (वाजेभिः) अन्न ज्ञान और युद्ध निमित्तक विजय के साथ प्रार्थना को (उपागमत्) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ॥ ८ ॥

भावार्थ—जहां मनुष्य सभा वा सेना के स्वामी का सेवन करते हैं वहां वह सभाध्यक्ष अपनी सेना के अङ्ग वा अन्नादि पदार्थों के साथ उनके समीप

स्थिर होता है इस की सहायता के विना किसी को सत्य सत्य सुख वा विजय नहीं होते हैं ॥ ८ ॥

अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् । यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! (ते) तेरा (पिता) जनक वा आचार्य्य (यम्) जिस (प्रत्नस्य) सनातन कारण वा (ओकसः) सब के ठहरने योग्य आकाश के सकाश से (तुविप्रतिम्) बहुत पदार्थों को प्रसिद्ध करने और (नरम्) सब को यथायोग्य कार्य्यों में लगाने वाले परमेश्वर वा सभाध्यक्ष का (पूर्वं) पहिले (हुवे) आह्वान करता रहा उन का मैं भी (अनुहुवे) तदनुकूल आह्वान वा स्तवन करता हूं ॥ ९ ॥

भावार्थ—ईश्वर मनुष्यों को उपदेश करता है, कि हे मनुष्यो ! तुम को औरों के लिये ऐसा उपदेश करना चाहिये कि जो अनादि कारण से अनेक प्रकार के कार्य्यों को उत्पन्न करता है, तथा जिस की उपासना पहिले विद्वानों ने की वा अब के करते और अगले करेंगे उसी की उपासना नित्य करनी चाहिये । इस मन्त्र में ऐसा विषय है कि कोई किसी से पूछे कि तुम किसकी उपासना करते हो उस के लिये ऐसा उत्तर देवे कि जिस की तुम्हारे पिता वा सब विद्वान् जन करते तथा वेद जिस निराकार सर्वव्यापी सर्वशक्तिमान् अज और अनादिस्वरूप जगदीश्वर का प्रतिपादन करते हैं उसी की उपासना मैं निरन्तर करता हूँ ॥ ९ ॥

तं त्वा वयं विश्ववारा शास्महे पुरुहूत । सखे वसो जरितृभ्यः ॥१०॥

पदार्थ—हे (विश्ववार) संसार को अनेक प्रकार सिद्ध करने (पुरुहूत) सभों से स्तुति को प्राप्त होने (वसो) सब में रहने वा सब को अपने में बसाने वाले (सखे) सब के मित्र जगदीश्वर ! (तम्) पूर्वोक्त (त्वा) आपकी (वयम्) हम लोग (जरितृभ्यः) स्तुति करने वाले धार्मिक विद्वानों से (आ) सब प्रकार से (शास्महे) आशा करते हैं अर्थात् आप के विशेष ज्ञान प्रकाश हम सभों में होने की इच्छा करते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को विद्वानों के समागम ही से सब जगत् के रचने सब के पूजने योग्य सब के मित्र सब के आधार पिछले मन्त्र से प्रतिपादित किये हुए परमेश्वर के विज्ञान वा उपासना की नित्य इच्छा करनी चाहिये क्योंकि विद्वानों के उपदेश के विना किसी को यथायोग्य विशेष ज्ञान नहीं हो सकता है ॥१०॥

अस्माकं शिप्रिणीनां सोमपाः सोमपाव्नाम् । सखे वज्रिन्त्सखीनाम् ॥११॥

पदार्थ—(सोमपाः) उत्पन्न किये हुए पदार्थ की रक्षा करने वाले (वज्रिन्) सब अविद्यारूपी अन्धकार के विनाशक उत्तम ज्ञानयुक्त (सखे) समस्त सुख देने और (सोमपाव्नाम्) सांसारिक पदार्थों की रचना करने वाले (सखीनाम्) सब के मित्र हम लोगों के तथा (सखीनाम्) सब का हित चाहनेहारी (शिप्रिणीनाम्) वा इस लोक और परलोक के व्यवहार ज्ञानवाली हमारी स्त्रियों को सब प्रकार से प्रधान (त्वा) आपको (वयम्) करने वाले हम लोग (आशास्महे) प्राप्त होने की इच्छा करते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है और पूर्व मन्त्र से (त्वा) (वयम्) (आ) (शास्महे) इन चार पदों की अनुवृत्ति है । सब पुरुष वा सब स्त्रियों को परस्पर मित्रभाव का वर्त्ताव कर व्यवहार की सिद्धि के लिये परमेश्वर की प्रार्थना वा आर्य्य राजविद्या और धर्म सभा प्रयत्न के साथ सदा संपादन करनी चाहिये ॥११॥

तथा तद॑स्तु सोमपाः सखे॑ वज्रिन् तथा॑ कृणु । यथा॑ त उश्मसीष्टये॑ ॥१२॥

पदार्थ—हे (सोमपाः) सांसारिक पदार्थों से जीवों की रक्षा करने वाले (वज्रिन्) सभाध्यक्ष ! जैसे हम लोग (इष्टये) अपने सुख के लिये (ते) आप शस्त्रास्त्रवित् (सखे) मित्र की मित्रता के अनुकूल जिस मित्राचरण के करने को (उश्मसि) चाहते और करते हैं (तथा) उसी प्रकार से आपकी (तत्) मित्रता हमारे में (अस्तु) हो आप (तथा) वैसे (कृणु) कीजिये ॥ १२ ॥

भावार्थ—जैसे सब का हित चाहने वाला और सकलविद्यायुक्त सभा सेनाध्यक्ष निरन्तर प्रजा की रक्षा करे वैसे ही प्रजा सेना के मनुष्यों को भी उसकी रक्षा की संभावना करनी चाहिये ॥१२॥

रेवती॑र्नः सधमाद इन्द्रे॑ सन्तु तुविवा॑जाः । क्षुमन्तो॒ याभि॒र्मदे॑म ॥१३॥

पदार्थ—(क्षुमन्तः) जिन के अनेक प्रकार के अन्न विद्यमान हैं वे हम लोग (याभिः) जिन प्रजाओं के साथ (सधमादे) आनन्दयुक्त एक स्थान में जैसे आनन्दित होवें वैसे (तुविवाजाः) बहुत प्रकार के विद्याबोधवाली (रेवतीः) जिनके प्रशंसनीय धन हैं वे प्रजा (इन्द्रे) परमैश्वर्य के निमित्त (सन्तु) हों ॥ १३ ॥

भावार्थ—यहां वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को सभाध्यक्ष सेनाध्यक्ष सहित सभाओं में सब राज्य विद्या और धर्म के प्रचार करने वाले कार्य स्थापन करके सब सुख भोगना वा भोगाना चाहिये और वेद की आज्ञा से एकसे रूप स्वभाव और एकसी विद्या तथा युवा अवस्था वाले स्त्री और

पुरुषों की परस्पर इच्छा से स्वयंवर विधान से विवाह होने योग्य हैं और वे अपने घर के कामों में तथा एक दूसरे के सत्कार में नित्य यत्न करें और वे ईश्वर की उपासना वा उस की आज्ञा तथा सत्पुरुषों की आज्ञा में सदा चित्त देवें किन्तु उक्त व्यवहार से विरुद्ध व्यवहार में कभी किसी पुरुष वा स्त्री को क्षणभर भी रहना न चाहिये ॥१३॥

आ घ त्वावान्त्मनाप्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः। ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥१४॥

पदार्थ—हे (धृष्णो) अति धृष्ट (त्मना) अपनी कुशलता से (आप्तः) सर्वविद्यायुक्त सत्य के उपदेश करने और (इयानः) राज्य को जानने वाले राजन् (त्वावान्) आप से (घ) आप ही हो जो आप (चक्र्योः) रथ के पहियों की (अक्षम्) धुरी के (न) समान (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने वालों को (आऋणोः) प्राप्त होते हो ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार और प्रतीपालङ्कार है । जैसे पहियों की धुरी रथ को धारण करने वाली घूमती भी अपने ही में ठहरीसी रहती है और रथ को देशान्तर में प्राप्त करने वाली होती है वसे ही आप राज्य को व्याप्त होकर यथायोग्य नियम रखते हो ॥१४॥

आ यद्दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम् । ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥१५॥

पदार्थ—हे (शतक्रतो) अनेकविध विद्या बुद्धि वा कर्मयुक्त राजसभा स्वामिन् ! आप स्तुति करने वाले धार्मिक जनों से (यत्) जो आप का (दुवः) सेवन है उसको प्राप्त होकर (शचीभिः) रथ के योग्य कर्मों से (अक्षम्) उसकी धुरी के (न) समान उन (जरितॄणाम्) स्तुति करने वाले धार्मिक जनों की (कामम्) कामनाओं को (आ) (ऋणोः) अच्छी प्रकार पूरी करते हो ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जैसे विद्वानों का सेवन विद्यार्थियों का अभीष्ट अर्थात् उन की इच्छा के अनुकूल कामों को पूरा करता है वैसे परमेश्वर का सेवन धार्मिक सज्जन मनुष्यों का अभीष्ट पूरा करता है इसलिये उनको चाहिये कि परमेश्वर की सेवा नित्य करें ॥१५॥

शश्वदिन्द्रः पोप्रुथद्भिर्जिगाय नानदद्भिः शाश्वसद्भिर्धनानि ।
स नो हिरण्यरथं दंसनावान्त्स नः सनिता सनये स नोऽदात् ॥१६॥

पदार्थ—(इन्द्रः) जगत् का रचने वाला ईश्वर (शश्वत्) अनादि सनातन कारण से (नानदद्भिः) तड़फ और गर्जना आदि शब्दों को करती हुईं बिजली और नदी अचेतन और जीव तथा (शाश्वसद्भिः) अति प्रशंसनीय प्राण वाले चर

वा (प्रोष्ठुअद्भिः) स्थूल जो कि अचर हैं उन कार्य्यरूपी पदार्थों से (धनानि) पृथिवी सुवर्ण और विद्या आदि धनों को (जिगाय) प्रकर्षता अर्थात् उन्नति को प्राप्त करता है (सः) वह (वंसनावान्) कर्मों का फल देनेहारा और साधनों से संयुक्त ईश्वर (नः) हमारे लिये (हिरण्यरथम्) ज्योति वाले सूर्य आदि लोक वा सुवर्ण आदि पदार्थों के प्राप्त कराने वाले पदार्थों को और विमान आदि रथों को (अदात्) प्रत्यक्ष करता है (सः) वह (नः) हमको सुखों के (सनये) भोग के लिये (सनिता) विद्या कर्म और उपदेश से विभाग करने वाला होकर सब सुखों को (अदात्) देता है वैसे सभा सेनापति और न्यायाधीश भी वर्ते ॥ १६ ॥

भावार्थ—जैसे जगदीश्वर सनातन कारण से चर और अचर कार्यों को उत्पन्न करके इन्हों से सब जीवों को सुख देता है वैसे सभा सेनापति न्यायाधीश लोग सब सभा सेना और न्याय के अंगों को सिद्ध कर सब प्रजा को निरन्तर आनन्दयुक्त करते हैं जैसे इससे और कोई संसार का रचने वा कर्म फल का देने और ठीक न्याय से राज्य का पालन करने वाला नहीं हो सकता वैसे वे भी सब कार्य्य करें ॥१६॥

आश्विनावश्वावत्येषा यातं शवीरया । गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे (दस्रा) दारिद्रय विनाश कराने वाले (अश्विनौ) बिजली और पृथिवी के समान विद्या और क्रियाकुशल शिल्पि लोगो ! तुम (इषा) चाही हुई (अश्ववत्या) वेग आदि गुणयुक्त (शवीरया) देशान्तर को प्राप्त कराने वाली गति के साथ (हिरण्यवत्) जिसके सुवर्ण आदि साधन हैं और (गोमत्) जिस में सिद्ध किये हुए धन से सुख प्राप्त कराने वाली बहुत सी क्रिया हैं उस रथ को (आयातम्) अच्छे प्रकार देशान्तर को पहुँचाइये ॥ १७ ॥

भावार्थ—पूर्वोक्त अश्वि अर्थात् सूर्य्य और पृथिवी के गुणों से चलाया हुआ रथ शीघ्र गमन से भूमि जल और अन्तरिक्ष में पदार्थों को प्राप्त करता है इस लिये इस को शीघ्र साधना चाहिये ॥१७॥

समानयोजनो हि वां रथो दस्रावमर्त्यः । समुद्रे अश्विनेयते ॥१८॥

पदार्थ—हे (दस्रौ) मार्ग चलने की पीड़ा को हरने वाले (अश्विना) उक्त अश्वि के समान शिल्पकारी विद्वानो ! (वाम्) तुम्हारा जो सिद्ध किया हुआ (समयोजनः) जिस में तुल्य गुण से अश्व लगाये हों (अमर्त्यः) जिसके खींचने में मनुष्य आदि प्राणि न लगे हों वह (रथः) नाव आदि रथसमूह (समुद्रे) जल से पूर्ण सागर वा अन्तरिक्ष में (ईयते) (अश्ववत्या) वेग आदि गुणयुक्त (शवीरया) देशान्तर को प्राप्त कराने वाली गति के साथ समुद्र के पार और वार को प्राप्त कराने वाला होता है उस को सिद्ध कीजिये ॥ १८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से (अश्ववत्या) (शवीरया) इन दो पदों की अनुवृत्ति है। मनुष्यों की जो अग्नि वायु और जलयुक्त कलायन्त्रों से सिद्ध किई हुई नाव हैं वे निस्संदेह समुद्र के अन्त को जल्दी पहुंचपाती हैं। ऐसी ऐसी नावों के बिना अभीष्ट समय में चाहे हुए एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना नहीं हो सकता है ॥१८॥

न्य१घ्न्यस्य मूर्धनि चक्रं रथस्य येमथुः । परि द्यामन्यदीयते ॥१९॥

पदार्थ—हे अश्विनौ विद्यायुक्त शिल्पि लोगो ! तुम दोनों (अघ्न्यस्य) जो कि विनाश करने योग्य नहीं है उस (रथस्य) विमान आदि यान के (मूर्धनि) उत्तम अङ्ग अग्रभाग में जो एक और (अन्यत्) दूसरा नीचे की ओर कलायन्त्र बनाओ तो वे दो चक्र समुद्र वा (द्याम्) आकाश पर भी (नियेमथुः) देश देशान्तर में जाने के वास्ते बहुत अच्छे हों। इन दोनों चक्करों से जुड़ा हुआ रथ जहां चाहो वहां (ईयते) पहुँचाने वाला होता है ॥ १९ ॥

भावार्थ—शिल्पि विद्वानों को योग्य है कि जो शीघ्र जाने आने के लिये रथ बनाया चाहें तो उस के आगे एक एक कलायन्त्रयुक्त चक्र तथा सब कलाओं के घूमने के लिये दूसरा चक्र नीचे भाग में रच के उस में यन्त्र के साथ जल और अग्नि आदि पदार्थों का प्रयोग करें इस प्रकार रचे हुए यान भार सहित शिल्पि विद्वान् लोगों को भूमि समुद्र और अन्तरिक्ष मार्ग से सुखपूर्वक देशान्तर को प्राप्त करता है ॥१९॥

कस्त उषः कधप्रिये भुजे मर्तो अमर्त्ये । कं नक्षसे विभावरि ॥२०॥

पदार्थ—हे विद्याप्रियजन ! जो यह (अमर्त्ये) कारण प्रवाह रूप से नाश-रहित (कधप्रिये) कथनप्रिय (विभावरि) और विविध जगत् को प्रकाश करने वाली (उषा) प्रातःकाल की बेला (भुजे) सुख भोग कराने के लिये प्राप्त होती है उसको प्राप्त होकर तू (कम्) किस मनुष्य को (नक्षसे) प्राप्त नहीं होता और (कः) कौन (मर्त्तः) मनुष्य (भुजे) सुख भोगने के लिये (ते) तेरे आश्रय को नहीं प्राप्त होता ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में काक्वर्थ है। कौन मनुष्य इस काल की सूक्ष्म गति जो व्यर्थ खोने के अयोग्य है उसको जाने जो पुरुषार्थ के आरम्भ का आदि समय प्रातःकाल है उस के निश्चय से प्रातःकाल उठ कर जब तक सोने का समय न हो एक भी क्षण व्यर्थ न खोवे। इस प्रकार समय के सार्थपन को जानते हुए मनुष्य सब काल सुख भोग सकते हैं, किन्तु आलस्य करने वाले नहीं ॥२०॥

व॒यं हि ते॒ अम॑न्मह्या॒न्ताद् परा॒कात् । अश्वे॒ न चि॑त्रे अरुषि ॥२१॥

पदार्थ—हे कालविद्यावित् जन ! जैसे (वयम्) समय के प्रभाव को जानने वाले हम लोग जो (चित्रे) आश्चर्यरूप (अरुषि) कुछ एक लाल गुणयुक्त उषा है उस को (आ अन्तात्) प्रत्यक्ष समीप वा (आपराकात्) एक नियम किये हुये दूर देश से (अश्वे) नित्य शिक्षा के योग्य घोड़े पर बैठ के जाने आने वाले के (न) समान (अमन्महि) जानें वैसे इस को तू भी जान ॥ २१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल का यथायोग्य उपयोग लेने को जानते हैं उनके पुरुषार्थ से समीप वा दूर के सब कार्य सिद्ध होते हैं । इस से किसी मनुष्य को कभी क्षण भर भी व्यर्थ काल खोना न चाहिये ॥ २१ ॥

त्वं त्येभि॒रा ग॑हि॒ वाजे॑भिर्दुहितर्दिवः । अ॒स्मे र॒यिं नि धा॑रय ॥२२॥

पदार्थ—हे काल के महात्म्य को जानने वाले विद्वान् ! (त्वम्) तू जो (दिवः) सूर्य किरणों से उत्पन्न हुई उन की (दुहितः) लड़की के समान प्रातःकाल की वेला (त्येभिः) उसके उत्तम अवयव अर्थात् दिन महीना आदि विभागों से वह हम लोगों को (वाजेभिः) अन्न आदि पदार्थों के साथ प्राप्त होती और धनादि पदार्थों की प्राप्ति का निमित्त होती है उस से (अस्मे) हम लोगों के लिये (रयिम्) विद्या सुवर्णादि धनों को (निधारय) निरन्तर ग्रहण कराओ और (आगहि) इस प्रकार विद्या की प्राप्ति कराने के लिये प्राप्त हुआ कीजिये कि जिससे हम लोग भी समय को निरर्थक न खोवें ॥ २२ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य कुछ भी व्यर्थ काल नहीं खोते उन का सब काल कामों की सिद्धि का करने वाला होता है ॥ २२ ॥

इस मन्त्र में पिछले सूक्त के अनुषंगी (इन्द्र) (अश्वि) और (उषा) समय के वर्णन से अनुषंगी अर्थों के साथ इस सूक्त के अर्थ की सङ्गति जाननी चाहिये ।

यह तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

———

आङ्गिरसोहिरण्यस्तूप ऋषिः । अग्निर्देवता । १—७ । ९—१५ जगती छन्दो निषादः स्वरः । ८ । १६ । १८ त्रिष्टुप् च छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

त्वम॑ग्ने प्रथ॒मो अङ्गि॑रा॒ ऋषि॑र्दे॒वो दे॒वाना॑मभवः शि॒वः सखा॑ ।

तव॑ व्र॒ते क॒वयो॑ विद्म॒नाप॒सोऽजा॑यन्त म॒रुतो॒ भ्राज॑दृष्टयः ॥१॥

पदार्थ—हे (अग्ने) आप ही प्रकाशित और विज्ञान स्वरूप युक्त जगदीश्वर ! जिस कारण (त्वम्) आप (प्रथमः) अनादि स्वरूप अर्थात् जगत्कल्प की आदि में सदा वर्त्तमान (अङ्गिराः) ब्रह्माण्ड के पृथ्वी आदि, शरीर के हस्त पाद आदि अङ्गों के रस रूप अर्थात् अन्तर्यामी (ऋषिः) सर्व विद्या से परिपूर्ण वेद के उपदेश करने और (देवानाम्) विद्वानों के (देवः) आनन्द उत्पन्न करने (शिवः) मंगल-मय तथा प्राणियों को मंगल देने तथा (सखा) उनके दुःख दूर करने से सहायकारी (अभवः) होते हो और जो (विद्मनापसः) ज्ञान के हेतु काम युक्त (मरुतः) धर्म को प्राप्त मनुष्य (तव) आप की (व्रते) आज्ञा नियम में रहते हैं, इससे वही (भ्राजदृष्टयः) प्रकाशित अर्थात् ज्ञान वाले (कवयः) कवि विद्वान् (अजायन्त) होते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—जो ईश्वर की आज्ञा पालन धर्म और विद्वानों के संग के सिवाय और कुछ काम नहीं करते हैं उनकी परमेश्वर के साथ मित्रता होती है फिर उस मित्रता से उनके आत्मा में सत् विद्या का प्रकाश होता है और वे विद्वान् होकर उत्तम काम का अनुष्ठान करके सब प्राणियों के सुख करने के लिये प्रसिद्ध होते हैं ॥ १ ॥

त्वम॑ग्ने प्रथ॒मो अङ्गि॑रस्तमः क॒विर्दे॒वानां॒ परि॑ भूषसि व्र॒तम् ।
वि॒भुर्विश्व॑स्मै॒ भुव॑नाय॒ मेधि॑रो द्विमा॒ता श॒युः क॑ति॒धा चि॑दा॒यवे॑ ॥२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सब दुःखों के नाश करने और सब दुष्ट शत्रुओं के दाह करने वाले जगदीश्वर वा सभासेनाध्यक्ष ! जिस कारण (त्वम्) आप (प्रथमः) अनादिस्वरूप वा पहिले मानने योग्य (शयुः) प्रलय में सब प्राणियों को सुलाने (मेधिरः) सृष्टि समय में सब को चिताने (द्विमाता) प्रकाशवान् वा लोकों के निर्माण अर्थात् सिद्ध करने वा तद्विद्या जनाने वाले (अङ्गिरस्तमः) जीव प्राण और मनुष्यों में अत्यन्त उत्तम (विभुः) सर्वव्यापक वा सभा सेना के अङ्गों से शत्रु बलों में व्याप्त स्वभाव (कविः) और सब को जानने वाले हैं (चित्) उसी कारण से (आयवे) मनुष्य वा (विश्वस्मै) सब (भुवनाय) संसार के लिये (देवानाम्) विद्वान् वा सूर्य और पृथिवी आदि लोकों के (व्रतम्) धर्मयुक्त नियमों को [कतिधा-कई प्रकार से] (परिभूषसि) सुशोभित करते हो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । परमेश्वर वेद द्वारा वा उसके पढ़ाने से विद्वान् मनुष्य के विद्या धर्म रूपी व्रत वा लोकों के नियमरूपी व्रत को सुशोभित करता है जिस ईश्वर ने सूर्य आदि प्रकाशमान् वा वायु पृथ्वी आदि अप्रकाशवान् लोक समूह रचा है वह सर्वव्यापी है । और ईश्वर की रची हुई सृष्टि से विद्या को प्रकाशित करता है वह विद्वान् होता है उस ईश्वर वा विद्वान् के विना कोई पदार्थ

विद्या वा कारण से कार्यरूप सब लोकों के रचने धारणे और जानने को समर्थ नही हो सकता ॥ २ ॥

त्वम॑ग्ने प्रथ॒मो मा॑त॒रिश्व॑न आ॒विर्भ॑व सुक्रतू॒या वि॒वस्व॑ते ।
अरे॑जेतां॒ रोद॑सी होतृ॒वूर्येऽस॑घ्नोर्भा॒रमय॑जो म॒हो व॑सो ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) परमात्मन् वा विद्वन् ! (प्रथमः) अनादिस्वरूप वा समस्त कार्यों में अग्रगंता (त्वम्) आप जिस (सुक्रतुया) श्रेष्ठ बुद्धि और कर्मों को सिद्ध कराने वाले पवन से (होतृवूर्ये) होताओं को ग्रहण करने योग्य (रोदसी) विद्युत् और पृथिवी (अरेजेताम्) अपनी कक्षा में घूमा करते हैं उस (मातरिश्वने) अपनी आकाश रूपी माता में सोने वाले पवन वा (विवस्वते) सूर्यलोक के लिये उनको (आविः, भव) प्रकट कराइये हे (वसो) सब को निवास करानेहारे ! आप शत्रुओं को (असघ्नोः) विनाश कीजिये जिनसे (महः) बड़े २ (भारम्) भारयुक्त यान को (अयजः) देश देशान्तरमें पहुँचाते हो उनका बोध हमको कराइये ॥ ३ ॥

भावार्थ—कारण रूप अग्नि अपने कारण और वायु के निमित्त से सूर्य रूप से प्रसिद्ध तथा अन्धकार विनाश करके पृथिवी वा प्रकाश का धारण करता है वह यज्ञ वा शिल्पविद्या के निमित्त से कलायंत्रों में संयुक्त किया हुआ । बड़े बड़े भारयुक्त विमान आदि यानों को शीघ्र ही देश देशान्तर में पहुंचाता है ॥ ३ ॥

त्वम॑ग्ने॒ मन॑वे॒ द्याम॑वाशयः पुरू॒रव॑से सु॒कृते॑ सु॒कृत्त॑रः ।
श्वा॒त्रेण॒ यत्पि॒त्रोर्मुच्य॑से॒ पर्या त्वा॒ पूर्व॑मनय॒न्नाप॑रं॒ पुन॑ः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) जगदीश्वर ! (सुकृत्तरः) अत्यन्त सुकृत कर्म करने वाले (त्वम्) सर्व प्रकाशक आप (पुरूरवसे) जिसके बहुत से उत्तम उत्तम विद्या-युक्त वचन हैं और (सुकृते) अच्छे अच्छे कामों को करने वाला है उस (मनवे) ज्ञानवान् विद्वान् के लिये (द्याम्) उत्तम सूर्यलोक को (अवाशयः) प्रकाशित किये हुए हैं । विद्वान् लोग (श्वात्रेण) धन और विज्ञान के साथ वर्त्तमान (पूर्वम्) पूर्वकल्प वा पूर्वजन्म में प्राप्त होने योग्य और (अपरम्) इसके आगे जन्म मरण आदि से अलग प्रतीत होने वाले आपको (पुनः) बार-बार (अनयन्) प्राप्त होते हैं । हे जीव !तू जिस परमेश्वर को वेद और विद्वान् लोगउपदेश से प्रतीत कराते हैं जो (त्वा)तुझे (श्वात्रेण) धन और विज्ञान के साथ वर्त्तमान (पूर्वम्) पिछले (अपरम्) अगले देह को प्राप्त कराता है और जिसके उत्तम ज्ञान से मुक्त दशा में (पित्रोः) माता और पिता से तू (पर्यामुच्यसे) सब प्रकार के दुःख से छूट जाता तथा जिसके

नियम से मुक्ति से महाकल्प के अन्त में फिर संसार में आता है उसका विज्ञान वा सेवन तू (आ) अच्छे प्रकार कर ॥ ४ ॥

भावार्थ—जिस जगदीश्वर ने सूर्य आदि जगत् रचा वा जिस विद्वान् से सुशिक्षा का ग्रहण किया जाता है उस परमेश्वर वा विद्वान् की प्राप्ति अच्छे कर्मों से होती है तथा चक्रवर्त्ति राज्य आदि धन का सुख भी वैसे ही होता है ॥ ४ ॥

त्वमग्ने वृषभः पुष्टिवर्द्धन उद्यतस्रुचे भवसि श्रवाय्यः ।
य आहुतिं परि वेदा वषट्कृतिमेकायुरग्रे विश आविवासति ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) यज्ञक्रिया फलवित् जगद्गुरो परेश ! जो (त्वम्) आप (अग्रे) प्रथम (उद्यतस्रुचे) स्रुक् अर्थात् होम और ग्रहण करने वाली वस्तु चढ़ाने के पात्र को अच्छे प्रकार ग्रहण करने वाले मनुष्य के लिये (श्रवाय्यः) सुनने सुनाने योग्य (वृषभः) और सुख वर्षाने वाले (एकायुः) एक सत्य गुण कर्म स्वभाव रूप वर्त्तमान युक्त तथा (पुष्टिवर्द्धनः) पुष्टि वृद्धि करने वाले (भवसि) होते हैं (यः) जो आप (वषट्कृतिम्) जिसमें कि उत्तम उत्तम क्रिया की जायं (आहुतिम्) तथा जिससे धर्मयुक्त आचरण किये जायं उसका विज्ञान कराते हैं (विशः) प्रजा पुष्टि वृद्धि के साथ उन आप और सुखों को (पर्याविवासति) अच्छे प्रकार से सेवन करती है ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि पहिले जगत् का कारण ब्रह्मज्ञान और यज्ञ की विद्या में जो क्रिया जिस जिस प्रकार के होम करने योग्य पदार्थ हैं उनको अच्छे प्रकार जानकर उनकी यथायोग्य क्रिया जानने से शुद्ध वायु और वर्षा जल की शुद्धि के निमित्त जो पदार्थ हैं उनका होम अग्नि में करने से इस जगत् में बड़े बड़े उत्तम उत्तम सुख बढ़ते हैं और उनसे सब प्रजा आनन्दयुक्त हाती है ॥ ५ ॥

त्वमग्ने वृजिनवर्त्तनिं नरं सक्मन् पिपर्षि विदथे विचर्षणे ।
यः शूरसाता परितक्म्ये धने दभ्रेभिश्चित्समृता हंसि भूयसः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (सक्मन्) सब पदार्थों का सम्बन्ध कराने (विचर्षणे) अनेक प्रकार के पदार्थों को अच्छे प्रकार देखने वाले (अग्ने) राजनीतिविद्या से शोभायमान सेनापति ! (यः) जो तू (विदथे) धर्मयुक्त यज्ञरूपी (शूरसातौ) संग्राम में (दभ्रेभिः) थोड़े ही साधनों से (वृजिनवर्त्तनिम्) अधर्म मार्ग में चलने वाले (नरम्) मनुष्य और (भूयसः) बहुत शत्रुओं का (हंसि) हननकर्त्ता है और (समृता) अच्छे प्रकार सत्य कर्मों को (पिपर्षि) पालनकर्त्ता है । जो चोर पराये पदार्थों के

हरने की इच्छा से (परितक्म्ये) सब ओर से देखने योग्य (धने) सुवर्ण विद्या और चक्रवर्त्ति राज्य आदि धन की रक्षा करने के निमित्त आप हमारे सेनापति हूजिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—परमेश्वर का यह स्वभाव है कि जो पुरुष अधर्म छोड़ धर्म करने की इच्छा करते हैं उनको अपनी कृपा से शीघ्र ही धर्म में स्थिरकर्त्ता है। जो धर्म से युद्ध वा धन को सिद्ध करना चाहते हैं उनकी रक्षा कर उनके कर्मों के अनुसार उनके लिये धन देता और जो खोटे आचरण करते हैं उन को उनके कर्मों के अनुसार दण्ड देता है। जो ईश्वर की आज्ञा में वर्त्तमान धर्मात्मा थोड़े भी युद्ध के पदार्थों से युद्ध करने को प्रवृत्त होते हैं ईश्वर उन्हीं को विजय देता है औरों को नहीं ॥ ६ ॥

त्वं तम॑ग्ने अमृतत्व उ॑त्तमे मर्तं॑ दधासि श्रव॑से दि॒वेदि॑वे ।

यस्ता॑तृषाण उ॒भया॑य जन्म॑ने मयः॑ कृणोषि प्रय आ च॑ सू॒रये॑ ॥७॥

पदार्थ—हे (अग्ने) जगदीश्वर ! आप (यः) जो (सूरिः) बुद्धिमान् मनुष्य (दिवेदिवे) प्रतिदिन (श्रवसे) सुनने के योग्य अपने लिये मोक्ष को चाहता है उस (मर्त्तम्) मनुष्य को (उत्तमे) अत्युत्तम (अमृतत्वे) मोक्षपद में स्थापन करते हो और जो बुद्धिमान् अत्यन्त सुख भोग कर फिर (उभयाय) पूर्व और पर (जन्मने) जन्म के लिये चाहना करता हुआ उस मोक्षपद से निवृत्त होता है उस (सूरये) बुद्धिमान् सज्जन के लिये (मयः) सुख और (प्रयः) प्रसन्नता को (आ कृणोषि) सिद्ध करते हो॥ ७ ॥

भावार्थ—जो ज्ञानी धर्मात्मा मनुष्य मोक्षपद को प्राप्त होते हैं उनका उस समय ईश्वर ही आधार है जो जन्म हो गया वह पहिला और जो मृत्यु वा मोक्ष होके होगा वह दूसरा, जो है वह तीसरा और जो विद्या वा आचार्य से होता है वह चौथा जन्म है, ये चार जन्म मिल के जो मोक्ष के पश्चात् होता है वह दूसरा जन्म है इन दोनों जन्मों के धारण करने के लिये सब जीव प्रवृत्त हो रहे हैं, मोक्षपद से छूटकर संसार की प्राप्ति होती है यह भी व्यवस्था ईश्वर के आधीन है ॥७॥

त्वं नो॑ अग्ने स॒नये॒ धना॑नां य॒शसं॑ का॒रुं कृ॑णुहि॒ स्तवा॑नः ।

ऋ॒ध्याम॒ कर्मा॒पसा॒ नवे॑न दे॒वैर्द्या॑वापृथिवी॒ प्राव॑तं नः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) कीर्ति और उत्साह के प्राप्त कराने वाले जगदीश्वर वा परमेश्वरोपासक ! (स्तवानः) आप स्तुति को प्राप्त होते हुए (नः) हम लोगों के

(धनानाम्) विद्या सुवर्ण चक्रवर्ति राज्य प्रसिद्ध धनों के (सनये) यथायोग्य काय्यों में व्यय करने के लिये (यशसम्) कीर्तियुक्त (कारुम्) उत्साह से उत्तम कर्म करने वाले उद्योगी मनुष्य को नियुक्त (कृद्धि) कीजिये जिस से हम लोग नवीन (अपसा) (पुरुषार्थ) से नित्य नित्य वृद्धियुक्त होते रहें और आप दोनों विद्या की प्राप्ति के लिये (देवैः) विद्वानों के साथ करते हुए (नः) हम लोगों की ओर (द्यावापृथिवी) सूर्य प्रकाश और भूमि को (प्रावतम्) रक्षा कीजिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को परमेश्वर की इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये कि हे परमेश्वर ! कृपा करके हम लोगों में उत्तम धन देने वाली सब शिल्पविद्या के जानने वाले उत्तम विद्वानों को सिद्ध कीजिये जिससे हम लोग उनके साथ नवीन नवीन पुरुषार्थ करके पृथिवी के राज्य और सब पदार्थों से यथायोग्य उपकार ग्रहण करें ॥८॥

त्वन्नो॑ अग्ने पि॒त्रोरु॒पस्थ॒ आ दे॒वो दे॒वेष्व॑नवद्य॒ जागृ॑विः ।

त॒नू॒कृद्बो॑धि॒ प्रम॑तिश्च का॒रवे॒ त्वं क॑ल्याण॒ वसु॒ विश्व॒मोपि॑षे ॥९॥

पदार्थ—हे (अनवद्य) उत्तम कर्मयुक्त सब पदार्थों के जानने वाले सभापते (जागृविः) धर्मयुक्त पुरुषार्थ में जागने (देवः) सब प्रकाश करने (तनूकृत्) और बड़े बड़े पृथिवी आदि बड़े लोकों में ठहरनेहारे आप (देवेषु) विद्वान् वा अग्नि आदि तेजस्वी दिव्य गुणयुक्त लोकों में (पित्रोः) माता पिता के (उपस्थे) समीपस्थ व्यवहार में (नः) हम लोगों को (ओपिषे) वार वार नियुक्त कीजिये (कल्याण) हे अत्यन्त सुख देने वाले राजन् ! (प्रमतिः) उत्तम ज्ञान देते हुए आप (कारवे) कारीगरी के चाहने वाले मुझ को (वसु) विद्या चक्रवर्ति राज्य पदार्थों से सिद्ध होने वाले (विश्वम्) समस्त धन का (आबोधि) अच्छे प्रकार बोध कराइये ॥ ९ ॥

भावार्थ - फिर भी ईश्वर की इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये कि हे भगवन् ! जब जब आप जन्म दें तब तब श्रेष्ठ विद्वानों के सम्बन्ध में जन्म दें और वहां हम लोगों को सर्व विद्यायुक्त कीजिये जिस से हम लोग सब धनों को प्राप्त होकर सदा सुखी हों ॥९॥

त्वम॑ग्ने॒ प्रम॑ति॒स्त्वं पि॒तासि॑ न॒स्त्वं व॑य॒स्कृत्तव॑ जा॒मयो॑ व॒यम् ।

सन्त्वा॒ रायः॑ श॒तिनः॒ सं स॑ह॒स्रिणः॑ सु॒वीरं॑ यन्ति व्रत॒पाम॑दाभ्य ॥१०॥

पदार्थ—हे (अदाभ्य) उत्तमकर्मयुक्त (अग्ने) यथायोग्य रचना कर्म जानने वाले सभाध्यक्ष ! (प्रमतिः) अत्यन्त मान को प्राप्त हुए (त्वम्) समस्त सुख के

प्रकट करनेहारे आप (नः) हम लोगों के (पिता) पालने वाले तथा (त्वम्) आयुर्दा के बढ़वानेहारे तथा आप हम लोगों को (वयःकृत्) बुढ़ापे तक विद्या सुख में आयुर्दा व्यतीत करानेहारे हैं (तव) सुख उत्पन्न करने वाले आपकी कृपा से हम लोग (जामयः) ज्ञानवान् संतान युक्त हों दयायुक्त (त्वम्) आप वैसा प्रबन्ध कीजिये और जैसे (शतिनः) सैकड़ों वा (सहस्रिणः) हज़ारों प्रशंसित पदार्थविद्या वा कर्मयुक्त विद्वान् लोग (व्रतपाम्) सत्य पालने वाले (सुवीरम्) अच्छे अच्छे वीर युक्त आपको प्राप्त होकर (रायः) धन को (सम्) (यन्ति) अच्छी प्रकार प्राप्त होते हैं वैसे आपका आश्रय किये हुए हम लोग भी उन धनों को प्राप्त होवें ॥ १० ॥

भावार्थ—जैसे पिता सन्तानों को मान और सत्कार करने के योग्य है वैसे प्रजाजनों को सभापति राजा है ॥ १० ॥

त्वाम॑ग्ने प्रथ॒मम॒ायुम॒ायवे॑ दे॒वा अ॑कृण्व॒न्नहु॑षस्य वि॒श्पति॑म् ।
इळा॑मकृण्व॒न्मनु॑षस्य॒ शास॑नीं पि॒तुर्यत्पु॒त्रो मम॑कस्य॒ जाय॑ते ॥११॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अमृतस्वरूप सभापते ! तू जैसे (देवाः) विद्वान् लोग (शासनीम्)सत्यासत्य के निर्णय का निमित्त (इळाम्) चार वेदों की वाणी को (अकृण्वन्) करें । (नहुषस्य) मनुष्य के (आयवे) विशेष ज्ञान के लिए (शासनीम्) जिससे सब विद्या और धर्माचार युक्त नीति से उसको ग्रहण करके (प्रथमम्) अनादिस्वरूप जिस न्याय से प्रजा योग्य (आयुम्) प्राप्त होने (विश्पतिम्) प्रजा पुत्र आदिकों के रक्षा करने वाले सभापति राजा को चारों वेदों की वाणी व सत्य व्यवस्था को (अकृण्वन्) प्रकाशित करते हैं वैसे ही (ममकस्य) ज्ञानवान् (नहुषस्य) मनुष्य की जो वेदवाणी है उसको आप प्रकाशित कीजिये ॥११॥

भावार्थ—ईश्वरोक्त व्यवस्था करने वाले वेद शास्त्र और राजनीति के विना प्रजा पालनेहारा सभापति राजा प्रजा नहीं पाल सकता है और प्रजा राजा के अज्ञ संतान के तुल्य होती है इससे सभापति राजा पुत्र के समान प्रजा को शिक्षा देवे ॥ ११ ॥

त्वन्नो॑ अग्ने॒ तव॑ देव पा॒युभि॑र्म॒घोनो॑ रक्ष त॒न्व॑श्च वन्द्य ।
त्रा॒ता तो॒कस्य॒ तन॑ये॒ गवा॑म॒स्यनि॑मेषं॒ रक्ष॑माण॒स्तव॑ व्र॒ते ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (देव)सब सुख देने और (वन्द्य) स्तुति करने योग्य (अग्ने) तथा यथोचित सब की रक्षा करने वाले परमेश्वर ! (तव) सर्वाधिपति आपके (व्रते) सत्य पालन आदि नियम में प्रवृत्त और (मघोनः) प्रशंसनीय धनयुक्त (नः) हम लोगों को और हमारे (तन्वः) शरीरों को (पायुभिः) उत्तम

रक्षादि व्यवहारो से (अनिमेषम्) प्रतिक्षण (रक्ष) पालियें (रक्षमाणः) रक्षा करते हुए आप जो कि आपके उक्त नियम में वर्त्तमान (तोकस्य) छोटे-छोटे बालक वा (गवाम्) प्राणियों की मन आदि इन्द्रियां और गाय बैल आदि पशु हैं उनके तथा (अस्य) सब चराचर जगत् के प्रतिक्षण (त्राता) रक्षक अर्थात् अत्यन्त आनन्द देने वाले हूजिये ॥ १२ ॥

भावार्थ—सभापति राजा ईश्वर के जो संसार की धारणा और पालना आदि गुण हैं उनके तुल्य उत्तम गुणों से अपने राज्य के नियम में प्रवृत्तजनों की निरन्तर रक्षा करे ॥ १२ ॥

त्वमग्ने यज्यवे पायुरन्तरोऽनिषङ्गाय चतुरक्ष इध्यसे ।

यो रातहव्योऽवृकाय धायसे कीरेश्चिन्मन्त्रं मनसा वनोषि तम् ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे सभापति ! तू (मनसा) विज्ञान से (मन्त्रम्) विचार वा वेद-मन्त्र को सेवने वाले के (चित्) सदृश (रातहव्यः) रातहव्य अर्थात् होम में लेने देने योग्य पदार्थों का दाता (पायुः) पालना का हेतु (अन्तरः) मध्य में रहने वाला और (चतुरक्षः) सेना के अङ्ग अर्थात् हाथी घोड़े और रथ के आश्रय से युद्ध करने वाले और पैदर योद्धाओं में अच्छी प्रकार चित्त देता हुआ (अनिषङ्गाय) जिस पक्षपात रहित न्याययुक्त (अवृकाय) चोरी आदि दोष के सर्वथा त्याग और (धायसे) उत्तम गुणों के धारण (यज्यवे) तथा यज्ञ वा शिल्पविद्या सिद्ध करने वाले मनुष्य के लिये (इध्यसे) तेजस्वी होकर अपना प्रताप दिखाता है याकि जिसको (वनोषि) सेवन करता है उस (कीरेः) प्रशंसनीय वचन कहने वाले विद्वान् से विनय को प्राप्त होके प्रजा का पालन किया कर ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे विद्यार्थी लोग अध्यापक अर्थात् पढ़ाने वालों से उत्तम विचार के साथ उत्तम-उत्तम विद्यार्थियों का सेवन करते हैं, वैसे तू भी धार्मिक विद्वानों के उपदेश के अनुकूल होके राज-धर्म का सेवन करता रह ॥ १३ ॥

त्वमग्न उरुशंसाय वाघते स्पार्हं यद्रेक्णः परमं वनोषि तत् ।

आध्रस्य चित् प्रमतिरुच्यसे पिता प्र पाकं शास्सि प्र दिशो विदुष्टरः ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विज्ञानप्रिय न्यायकारिन् ! (यत्) जिस कारण (प्रमतिः) उत्तम ज्ञानयुक्त (विदुष्टरः) नाना प्रकार के दुःखों से तारने वाले आप (उरुशंसाय) बहुत प्रकार की स्तुति करने वाले (वाघते) ऋत्विक् मनुष्य के लिये (स्पार्हम्) चाहने योग्य (परमम्) अत्युत्तम (रेक्णः) धन (पाकम्) पवित्र-धर्म और (दिशः) उत्तम विद्वानों को (वनोषि) अच्छे प्रकार चाहते हैं और

राज्य को धर्म से (आध्रस्य) धारण किये हुए (पिता) पिता के (चित्) तुल्य सब को (प्रशास्ति) शिक्षा करते हैं (तत्) इसी से आप सब के माननीय हैं ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे पिता अपने सन्तानों की पालना वा उनको धन देता वा शिक्षा आदि करता है वैसे राजा सब प्रजा के धारण करने और सब जीवों को धन के यथायोग्य देने से उनके कर्मों के अनुसार सुख दुःख देता रहे ॥ १४ ॥

त्वम॑ग्ने प्रय॑तदक्षिणं नरं॒ वर्म्मे॑व स्यू॒तं परि॑ पासि वि॒श्वतः॑ ।
स्वा॒दु॒क्ष॒द्मा॒ यो व॑स॒तौ स्यो॑न॒कृज्जी॑वया॒जं यज॑ते॒ सो॑प॒मा दि॒वः ॥१५॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सब को अच्छे प्रकार जानने वाले सभापति ! आप (वर्म्मेव) कवच के समान (यः) जो (स्वादुक्षद्मा) शुद्ध अन्न जल का भोक्ता (स्योनकृत्) सब को सुखकारी मनुष्य (वसतौ) निवासदेश में नाना साधन युक्त यज्ञों से (यजते) यज्ञ करता है उस (प्रयतदक्षिणम्) अच्छे प्रकार विद्या धर्म के उपदेश करने (जीवयाजम्) और जीवों को यज्ञ कराने वाले (स्यूतम्) अनेक साधनों से कारीगरी में चतुर (नरम्) नम्र मनुष्य को (विश्वतः) सब प्रकार से (परिपासि) पालते हो (सः) ऐसे धर्मात्मा परोपकारी विद्वान् आप (दिवः) सूर्य से प्रकाश की (उपमा) उपमा पाते हो ॥१५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो सब के सुख करने वाले पुरुषार्थी मनुष्य यत्न के साथ यज्ञों को करते हैं वे जैसे सूर्य सब को प्रकाशित करके सुख देता है वैसे ही सब को सुख देने वाले होते हैं जैसे युद्ध में प्रवृत्त हुए वीरों को शस्त्रों के घाओं से बख्तर बचाता है वैसे ही सभापति राजा और राज जन सब धार्मिक सज्जनों को सब दुःखों से रक्षा करते रहें ॥१५॥

इ॒माम॑ग्ने श॒रणिं॑ मीमृषो न इ॒मम॒ध्वानं॒ यमगा॑म दू॒रात् ।
आ॒पिः पि॒ता प्रम॑तिः सो॒म्यानां॒ भृमि॑रस्यृषि॒कृन्मर्त्या॑नाम् ॥१६॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सब को सहने वाले सर्वोत्तम विद्वान् ! जो आप (सोम्यानाम्) शान्त्यादि गुणयुक्त (मर्त्यानाम्) मनुष्यों को (आपिः) प्रीति से प्राप्त (पिता) और सर्वपालक (प्रमतिः) उत्तम विद्यायुक्त (भृमिः) नित्य भ्रमण करने और (ऋषिकृत्) वेदार्थ का बोध कराने वाले हैं तथा (नः) हमारी (इमाम्) वे इस (शरणिम्) विद्यानाशक अविद्या को (मीमृषः) अत्यन्त दूर करने हारे हैं वे आप और हम (यम्) जिसको हम लोग (दूरात्) दूर से उल्लंघन करके (इमम्) [वक्ष्यमाण] (अध्वानम्) धर्ममार्ग के (अगाम) सम्मुख आवें उसकी सेवा करें ॥ १६ ॥

भावार्थ—जब मनुष्य सत्य भाव से अच्छे मार्ग को प्राप्त होना चाहते हैं तब जगदीश्वर उनको उत्तम ज्ञान का प्रकाश करने वाले विद्वानों का संग होने के लिये प्रीति और जिज्ञासा अर्थात् उनके उपदेश के जानने की इच्छा उत्पन्न करता है इससे वे श्रद्धालु हुए अत्यन्त दूर भी बसने वाले सत्यवादी योगी विद्वानों के समीप जाय उनका संग कर अभीष्ट बोध को प्राप्त होकर धर्मात्मा होते हैं ॥ १६ ॥

मनुष्वदंग्ने अङ्गिरस्वदंङ्गिरो ययातिवत्सदंने पूर्ववच्छुंचे ।
अच्छं याह्यावंहा दैव्यं जनमा सांदय बर्हिषि यक्षिं च प्रियम् ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे (शुचे) पवित्र (अङ्गिरः) प्राण के समान धारण करने वाले (अग्ने) विद्याओं से सर्वत्र व्याप्त सभाध्यक्ष ! आप (मनुष्यवत्) मनुष्यों के जाने आने के समान वा (अङ्गिरस्वत्) शरीर व्याप्त प्राण वायु के सदृश राज्य कर्म व्याप्त पुरुष के तुल्य वा (ययातिवत्) जैसे पुरुष यज्ञ के साथ कामों को सिद्ध करते कराते हैं वा (पूर्ववत्) जैसे उत्तम प्रतिष्ठा वाले विद्वान् विद्या देने वाले हैं वैसे (प्रियम्) सब को प्रसन्न करनेहारे (दैव्यम्) विद्वानों में अति चतुर (जनम्) मनुष्य को (अच्छ) अच्छे प्रकार (आयाहि) प्राप्त हूजिये उस मनुष्य को विद्या और धर्म की ओर (वह) प्राप्त कीजिये तथा (बर्हिषि) (सदने) उत्तम मोक्ष के साधन में (आसादय) स्थित और (यक्षि) वहां उसको प्रतिष्ठित कीजिये ॥ १७ ॥

भावार्थ—जिन मनुष्यों ने विद्या धर्मानुष्ठान और प्रेम से सभापति की सेवा की है वह उनको उत्तम उत्तम धर्म के कामों में लगाता है ॥ १७ ॥

एतेनांग्ने ब्रह्मणा वावृधस्व शक्ती वा यत्ते चकृमा विदा वा ।
उत प्र णेष्यभि वस्यो अस्मान्त्सं नः सृज सुमत्या वाजंवत्या ॥१८॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सर्वोत्कृष्ट विद्वान् ! आप (ब्रह्मणा) वेदविद्या (वाजवत्या) उत्तम अन्न युद्ध और विज्ञान वा (सुमत्या) श्रेष्ठ विचारयुक्त से (नः) हमारे लिए (वस्यः) अत्यन्त धन (अभिसृज) सब प्रकार से प्रकट कीजिये (उत) और आप (विदा) अपने उत्तम ज्ञान से (वावृधस्व) नित्य नित्य उन्नति को प्राप्त हूजिये (ते) आपका (यत्) जो प्रेम है वह हम लोग (चकृम) करें और आप (अस्मान्) हम लोगों को (प्रणेषि) श्रेष्ठ बोध को प्राप्त कीजिये ॥ १८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य वेद की रीति से धर्मयुक्त व्यवहार को करते हैं

वे ज्ञानवान् और श्रेष्ठमति वाले होकर उत्तम विद्वान् की सेवा करते हैं वह उन को श्रेष्ठ सामर्थ्य और उत्तम विद्यासंयुक्त करता है ॥ १८ ॥

इस सूक्त में सेनापति आदि के अनुयोगी अर्थों के प्रकाश से पिछले सूक्त के साथ इस सूक्त की संगति जाननी चाहिये ।

यह इकतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥३१॥

हिरण्यस्तूप ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वर ॥

इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम लोग जैसे (इन्द्रस्य) सूर्य्य के (यानि) जिन (प्रथमानि) प्रसिद्ध (वीर्य्याणि) पराक्रमों को कहो उनको मैं भी (नु) (प्रवोचम्) शीघ्र कहूं जैसे वह (वज्री) सब पदार्थों के छेदन करने वाले किरणों से युक्त सूर्य्य (अहिम्) मेघ को (अहन्) हनन करके वर्षाता उस मेघ के अवयव रूप (अपः) जलों को नीचे ऊपर (चकार) करता उसको (ततर्द) पृथिवी पर गिराता और (पर्वतानाम्) उन मेघों के सकाश से (प्रवक्षणाः) नदियो को छिन्न भिन्न करके बहाता है। वैसे मैं शत्रुओं को मारूं उनको इधर उधर फेंकूं और उनको तथा किला आदि स्थानों से युद्ध करने के लिये आई सेनाओं को छिन्न भिन्न करूं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। ईश्वर का उत्पन्न किया हुआ वह अग्निमय सूर्यलोक जैसे अपने स्वाभाविक गुणों से युक्त अनादि प्रकाश आकर्षण दाह छेदन और वर्षा की उत्पत्ति के निमित्त कामों को दिन रात करता है वैसे जो प्रजा के पालन में तत्पर राजपुरुष हैं उनको भी नित्य प्रति करना चाहिये ॥ १ ॥

अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष ।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः ॥ २ ॥

पदार्थ—जैसे यह (त्वष्टा) सूर्य्यलोक (पर्वते) मेघमण्डल में (शिश्रियाणम्) रहने वाले (स्वर्य्यम्) गर्जनशील (अहिम्) मेघ को (अहन्) मारता है (अस्मै) इस मेघ के लिये (वज्रम्) काटने के स्वभाव वाले किरणों को (ततक्ष) छोड़ता है। इस कर्म से (वाश्रा धेनव इव) बछड़ों को प्रीतिपूर्वक चाहती

हुई गौओं के समान (स्यन्दमानाः) चलते हुए (अंजः) प्रकट (आपः) जल (समुद्रम्) जल से पूर्ण समुद्र को (अवजग्मुः) नदियों के द्वारा जाते हैं। वैसे ही सभाध्यक्ष राजा को चाहिये कि किला में रहने वाले दुष्ट शत्रु को मारे इस शत्रु के लिये उत्तम शस्त्र छोड़े इस प्रकार उसके बछड़ों को चाहने वाली गौओं के समान चलते हुए प्रसिद्ध प्राणों को अन्तरिक्ष में प्राप्त करे उन कण्टक शत्रुओं को मार के प्रजा को सुख देवे ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। सूर्य्य अपनी किरणों से अन्तरिक्ष में रहने वाले मेघ को भूमि पर गिराकर जगत् को जिलाता है वैसे ही सेनापति किला पर्वत आदि में रहने वाले भी शत्रु को पृथिवी में गिरा के प्रजा को निरन्तर सुखी कराता है ॥ २ ॥

वृषायमाणोऽवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्य ।
आ सायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—जो (वृषायमाणः) वीर्य्यवृद्धि का आचरण करता हुआ सूर्य्यलोक मेघ के समान (सुतस्य) इस उत्पन्न हुए जगत् के (त्रिकद्रुकेषु) जिनकी उत्पत्ति स्थिरता और विनाश ये तीन कला व्यवहार में वर्त्तने वाले हैं उन पदार्थों में (सोमम्) उत्पन्न हुये रस को (अवृणीत) स्वीकार करता (अपिबत्) उसको अपने ताप में भर लेता और (मघवा) यह बहुत सा धन दिलाने वाला सूर्य (सायकम्) शस्त्ररूप (वज्रम्) किरण समूह को (आदत्त) लेते हुए के समान (अहीनाम्) मेघों में (प्रथमजाम्) प्रथम प्रकट हुए (एनम्) इस मेघ को (अहन्) मारता है। वैसे गुण कर्म स्वभावयुक्त पुरुष सेनापति का अधिकार पाने योग्य होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे बैल वीर्य को बढ़ा बलवान् हो सुखी होता है वैसे सेनापति दूध आदि पीकर बलवान् हो के सुखी होवे और जैसे सूर्य्य रस को पी अच्छे प्रकार वरसाता है वैसे शत्रुओं के बल को खींच अपना बल बढ़ा के प्रजा में सुखों की वृष्टि करे ॥ ३ ॥

यदिन्द्राहन्प्रथमजामहीनामान्मायिनाममिनाः प्रोत मायाः ।
आत्सूर्य्यं जनयन्द्यामुषासं तादीत्ना शत्रुं न किलाऽविवित्से ॥४॥

पदार्थ—हे सेनापते ! जैसे (इन्द्रः) सब पदार्थों को विदीर्ण अर्थात् भिन्न भिन्न करने वाला सूर्य्यलोक (अहीनाम्) छोटे छोटे मेघों के मध्य में (प्रथमजाम्) संसार के उत्पन्न होने समय में उत्पन्न हुए मेघ को (अहन्) हनन करता है। जिनकी (मायिनाम्) सूर्य्य के प्रकाश का आवरण करने वाली बड़ी बड़ी घटा

उठती हैं उन मेघों की (मायाः) उक्त अन्धकार रूप घटाओं को (प्रमिणाः) अच्छे प्रकार हरता है (तादीत्ना) तब (यत्) जिस (सूर्य्यम्) किरणसमूह (उषसम्) प्रातःकाल और (द्याम्) अपने प्रकाश को (प्रजनयन्) प्रकट करता हुआ दिन उत्पन्न करता है (न) वैसे ही तू शत्रुओं को (विवित्से) प्राप्त होता हुआ उनकी छल कपट आदि मायाओं को हनन कर और उस समय सूर्य्यरूप न्याय को प्रसिद्ध करके सत्य विद्या के व्यवहाररूप सूर्य्य का प्रकाश किया कर ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे कोई राजपुरुष अपने वैरियों के बल और छल का निवारण कर और उनको जीत के अपने राज्य में सुख तथा न्याय का प्रकाश करता है वैसे ही सूर्य भी मेघ की घटाओं की घनता और अपने प्रकाश के ढाँपने वाले मेघ को निवारण कर अपनी किरणों को फैला मेघ को छिन्न भिन्न और अन्धकार को दूर कर अपनी दीप्ति को प्रसिद्ध करता है ॥ ४ ॥

अहन्वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन ।
स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णाहिः शयत उपपृक् पृथिव्याः ॥५॥

पदार्थ—हे महावीर सेनापते ! आप जैसे (इन्द्रः) सूर्य वा बिजुली (महता) अतिविस्तार युक्त (कुलिशेन) अत्यन्त धारवाली तलवार रूप (वज्रेण) पदार्थों के छिन्न भिन्न करने वाले अतिताप युक्त किरणसमूह से (विवृक्णा) कटे हुए (स्कन्धांसीव) कन्धों के समान (व्यंसम्) छिन्न भिन्न अङ्ग जैसे हों वैसे (वृत्रतरम्) अत्यन्त सघन (वृत्रम्) मेघ को (अहन्) मारता है अर्थात् छिन्न भिन्न कर पृथिवी पर वरसाता है और वह (वधेन) सूर्य्य के गुणों से मृतकवत् होकर (अहिः) मेघ (पृथिव्याः) पृथिवी के (उपपृक्) ऊपर (शयते) सोता है वैसे ही वैरियों का हनन कीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा और उपमालङ्कार है । जैसे कोई अतितीक्ष्ण तलवार आदि शस्त्रों से शत्रुओं के शरीर को छेदन कर भूमि में गिरा देता और वह मरा हुआ शत्रु पृथिवी पर निरन्तर सो जाता है वैसे ही यह सूर्य्य और बिजुली मेघ के अङ्गों को छेदन कर भूमि में गिरा देती और वह भूमि में गिरा हुआ सोते के समान दीख पड़ता है ॥ ५ ॥

अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे महावीरं तुविबाधमृजीषम् ।
नातारीदस्य समृतिं वधानां सं रुजानाः पिपिष इन्द्रशत्रुः ॥ ६ ॥

पदार्थ—(दुर्मदः) दुष्ट अभिमानी (अयोद्धेव) युद्ध की इच्छा न करने वाले पुरुष के समान मेघ (ऋजीषम्) पदार्थों के रस को इकट्ठे करने और

(तुविबाधम्) बहुत शत्रुओं को मारनेहारे के तुल्य (महावीरम्) अत्यन्त बलयुक्त शूरवीर के समान सूर्य्यलोक को (आजुह्वे) ईर्ष्या से पुकारते हुए के सदृश वर्त्तता है जब उसको रोते हुए के सदृश सूर्य ने मारा तब वह मारा हुआ (इन्द्रशत्रुः) सूर्य्य का शत्रु मेघ (पिपिषे) सूर्य से पिस जाता है और वह (अस्य) इस सूर्य की (वधानाम्) ताड़नाओं के (समृतिम्) समूह को (नातारीत्) सह नहीं सकता और (हि) निश्चय है कि इस मेघ के शरीर से उत्पन्न हुई (रुजानाः) नदियां पर्वत और पृथिवी के बड़े बड़े टीलों को छिन्न भिन्न करती हुई बहती हैं वैसे ही सेनाओं में प्रकाशमान सेनाध्यक्ष शत्रुओं में चेष्टा किया करें ॥ ६ ॥

भावार्थ---इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे मेघ संसार के प्रकाश के लिये वर्त्तमान सूर्य के प्रकाश को अकस्मात् पृथिवी से उठा और रोक कर उस के साथ युद्ध करते हुए के समान वर्त्तता है तो भी वह मेघ सूर्य के सामर्थ्य का पार नहीं पाता। जब यह सूर्य मेघ को मारकर भूमि में गिरा देता है तब उसके शरीर के अवयवों से निकले हुए जलों से नदी पूर्ण होकर समुद्र में जा मिलती है। वैसे राजा को उचित है कि शत्रुओं को मार के निर्मूल करता रहे ॥६॥

अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रमास्य वज्रमधि सानौ जघान ।
वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन् पुरुत्रा वृत्रो अशयद् व्यस्तः ॥७॥

पदार्थ—हे सब सेनाओं के स्वामी ! आप (वृत्रः) जैसे मेघ (वृष्णः) वीर्य सींचने वाले पुरुष की (प्रतिमानम्) समानता को (बुभूषन्) चाहते हुये (वध्रिः) निर्बल नपुंसक के समान जिस (इन्द्रम्) सूर्यलोक के प्रति (अपृतन्यत्) युद्ध के लिये इच्छा करने वाले के समान (अस्य) इस मेघ के (सानौ) (अधि) पर्वत के शिखरों के समान बद्दलों पर सूर्यलोक (वज्रम्) अपने किरण रूपी वज्र को (आजघान) छोड़ता है उस से मरा हुआ मेघ (अपादहस्तः) पैर हाथ कटे हुए मनुष्य के तुल्य (व्यस्तः) अनेक प्रकार फैला पड़ा हुआ (पुरुत्रा) अनेक स्थानों में (अशयत्) सोता सा मालूम देता है वैसे इस प्रकार के शत्रुओं को छिन्न भिन्न कर सदा जीता कीजिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे कोई निर्बल पुरुष बड़े बलवान् के साथ युद्ध चाहे वैसे ही वृत्र मेघ सूर्य के साथ प्रवृत्त होता है और जैसे अन्त में वह मेघ सूर्य से छिन्न छिन्न होकर पराजित हुए के समान पृथिवी पर गिर पड़ता है वैसे जो धर्मात्मा बलवान् पुरुष के सङ्ग लड़ाई को प्रवृत्त होता है उसकी भी ऐसी ही दशा होती है ॥७॥

नदं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्यापः ।
याश्चिद्वृत्रो महिना पर्य्यतिष्ठत्तासामहिः पत्सुतःशीर्बभूव ॥८॥

पदार्थ—भो राजाधिराज ! आप जैसे यह (वृत्रः) मेघ (महिना) अपनी महिमा से (पर्यतिष्ठत्) सब ओर से एकता को प्राप्त और (अहिः) सूर्य के ताप से मारा हुआ (तासाम्) उन जलों के बीच में स्थित (पत्सुतःशीः) पादों के तले सोने वाला सा (बभूव) होता है उस मेघ का शरीर (मनः) मननशील अन्तःकरण के सदृश (रुहाणाः) उत्पन्न होकर चलने वाली नदी आ अन्तरिक्ष में रहने वाले (चित्) ही (याः) जो अन्तरिक्ष में वा भूमि में रहने वाले (आपः) जल (भिन्नम्) विदीर्ण तट वाले (शयानम्) सोते हुये के (न) तुल्य (नदम्) महाप्रवाहयुक्त नद को (यन्ति) जाते और वे जल (न) (अमुया) इस पृथिवी के साथ प्राप्त होते हैं वैसे सब शत्रुओं को बांध के वश में कीजिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा और उपमालङ्कार है जितना जल सूर्य से छिन्न भिन्न होकर पवन के साथ मेघमण्डल को जाता है वह सब जल मेघरूप ही हो जाता है जब मेघ के जल का समूह अत्यन्त बढ़ता है तब मेघ घनी घनी घटाओं से घुमड़ि घुमड़ि के सूर्य के प्रकाश को ढांप लेता है उसको सूर्य अपनी किरणों से जब छिन्न भिन्न करता है तब इधर उधर आए हुए जल बड़े बड़े नद ताल और समुद्र आदि स्थानों को प्राप्त होकर सोते हैं वह मेघ भी पृथिवी को प्राप्त होकर जहां तहां सोता है अर्थात् मनुष्य आदि प्राणियों के पैरों में सोता सा मालूम होता है वैसे अधार्मिक मनुष्य भी प्रथम बढ़ के शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥८॥

नीचावया अभवद्वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव बधर्जभार ।
उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद्दानुः शये सहवत्सा न धेनुः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे सभापते ! (वृत्रपुत्रा) जिसका मेघ लड़के के समान है वह मेघ की माता (नीचावयाः) निकृष्ट उमर को प्राप्त हुई । (सूः) पृथिवी और (उत्तरा) ऊपरली अन्तरिक्षनामवाली (अभवत्) है (अस्याः) इसके पुत्र मेघ के (बधः) वध अर्थात् ताड़न को (इन्द्रः) सूर्य (अवजभार) करता है इससे इसका (नीचावयाः) निकृष्ट उमर को प्राप्त हुआ (पुत्रः) पुत्र मेघ (अधरः) नीचे (आसीत्) गिर पड़ता है और जो (दानुः) सब पदार्थों की देने वाली भूमि जैसे (सहवत्सा) बछड़े के साथ (धेनुः) गाय हो (न) वैसे अपने पुत्र के साथ (शये) सोती सी दीखती है वैसे आप अपने शत्रुओं को भूमि के साथ सोते के सदृश किया कीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मेघ की दो माता हैं, एक पृथिवी दूसरी अन्तरिक्ष अर्थात् इन्हीं दोनों से मेघ उत्पन्न होता है । जैसे कोई गाय अपने बछड़े के साथ रहती है वैसे ही जब जल का समूह मेघ अन्तरिक्ष में जाकर ठहरता है तब उसकी माता अन्तरिक्ष अपने पुत्र मेघ के साथ और जब वह वर्षा से भूमि को आता है तब भूमि उस अपने पुत्र मेघ के साथ सोती सी दीखती है । इस मेघ का उत्पन्न करने वाला सूर्य है, इसलिये वह पिता के स्थान में समझा जाता है । उस सूर्य की भूमि वा अन्तरिक्ष दो स्त्री के समान हैं । वह पदार्थों से जल को वायु के द्वारा खींच कर जब अन्तरिक्ष में चढ़ाता है जब वह पुत्र मेघ प्रमत्त के सदृश बढ़कर उठता और सूर्य के प्रकाश को ढक लेता है तब सूर्य उसको मार कर भूमि में गिरा देता अर्थात् भूमि में वीर्य छोड़ने के समान जल पहुँचाता है । इसी प्रकार यह मेघ कभी ऊपर कभी नीचे होता है वैसे ही राजपुरुषों को उचित है कि कंटकरूप शत्रुओं को इधर उधर निर्जीव करके प्रजा का पालन करें ॥९॥

अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम् ।
वृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्यापो दीर्घन्तम आशयदिन्द्रशत्रुः ॥१०॥

पदार्थ—हे सभास्वामिन् ! तुम को चाहिये कि जिस (वृत्रस्य) मेघ के (अनिवेशनानाम्) जिनको स्थिरता नहीं होती (अतिष्ठन्तीनाम्) जो सदा बहने वाले हैं उन जलों के बीच (निण्यम्) निश्चय करके स्थिर (शरीरम्) जिसका छेदन होता है ऐसा शरीर है वह (काष्ठानाम्) सब दिशाओं के बीच (निहितम्) स्थित होता है । तथा जिसके शरीर रूप (अपः) जल (दीर्घम्) बड़े (तमः) अन्धकार रूप घटाओं में (विचरन्ति) इधर उधर जाते हैं वह (इन्द्रशत्रुः) मेघ उन जलों में इकट्ठा वा अलग अलग छोटा छोटा बद्दल रूप होके (अशयत्) सोता है । वैसे ही प्रजा के द्रोही शत्रुओं को उन के सहायियों के सहित बांध के सब दिशाओं में सुलाना चाहिये ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सभापति को योग्य है कि जैसे यह मेघ अन्तरिक्ष में ठहरने वाले जलों में सूक्ष्मपन से नहीं दीखता फिर जब घन के आकार वर्षा के द्वारा जल का समुदाय रूप होता है तब वह देखने में आता है और जैसे ये जल एक क्षणभर भी स्थिति को नहीं पाते हैं किन्तु सब काल में ऊपर जाना वा नीचे आना इस प्रकार घूमते ही रहते हैं और जो मेघ के शरीर रूप हैं वे अन्तरिक्ष में रहते हुए अतिसूक्ष्म होने से नहीं दीख पड़ते वैसे बड़े बड़े बल वाले शत्रुओं को भी अल्प बल वाले करके वशीभूत किया करे ॥ १० ॥

दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन्निरुद्धा आपः पणिनेव गावः ।
अपां बिलमपिहितं यदासीद्वृत्रं जघन्वाँ अप तद्ववार ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे सभापते ! (पणिनेव) गाय आदि पशुओं के पालने और (गावः) गौओं को यथायोग्य स्थानों में रोकने वाले के समान (दासपत्नीः) अति बल देने वाला मेघ जिनका पति के समान और (अहिगोपाः) रक्षा करने वाला है वे (निरुद्धाः) रोके हुए (आपः) जल (अतिष्ठन्) स्थित होते हैं उन (अपाम्) जलों का (यत्) जो (बिलम्) गर्त अर्थात् एक गढ़े के समान स्थान (अपिहितम्) ढांपसा रक्खा (आसीत्) है उस (वृत्रम्) मेघ को सूर्य (जघन्वान्) मारता है मारकर (तत्) उस जल की (अपववार) रुकावट तोड़ देता है वैसे आप शत्रुओं को दुष्टाचार से रोक के न्याय अर्थात् धर्ममार्ग को प्रकाशित रखिये ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे गोपाल अपनी गौओं को अपने अनुकूल स्थानों में रोक रखता और फिर उस स्थान का दरवाजा खोल के निकाल देता है और जैसे मेघ अपने मंडल में जलों को वश में रखता है वैसे सूर्य उस मेघ को ताड़ना देता और उस जल की रुकावट को तोड़ के अच्छे प्रकार उसे बरसाता है वैसे ही राजपुरुषों को चाहिये कि शत्रुओं को रोककर प्रजा का यथायोग्य पालन किया करें ॥११॥

अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र सृके यत्त्वा प्रत्यहन्देव एकः ।
अजयो गा अजयः शूर सोममवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून् ॥१२॥

पदार्थ—हे (शूर) वीर के तुल्य भयरहित (इन्द्र) शत्रुओं को विदीर्ण करनेहारे सेना के स्वामी ! आप वैसे (यत्) जो (अश्व्यः) वेग और तड़फ आदि गुणों में निपुण (वारः) स्वीकार करने योग्य (एकः) असहाय और (देवः) उत्तम उत्तम गुण देने वाला मेघ सूर्य के साथ युद्ध करनेहारा (अभवः) होता है (सृके) किरणरूपी वज्र में अपने बद्दलों के जाल को (प्रत्यहन्) छोड़ता है अर्थात् किरणों को उस घन जाल से रोकता है सूर्य उस मेघ को जीत कर (गाः) उससे अपनी किरणों को (अजयः) अलग करता अर्थात् एक देश से दूसरे देश में पहुँचाता और (सोमम्) पदार्थों के रस को (अजयः) जीतता है इस प्रकार करता हुआ वह सूर्यलोक जलों को (सर्तवे) ऊपर नीचे जाने आने के लिये सब लोकों में स्थिर होने वाले (सप्त) (सिन्धून्) बड़े बड़े जलाशय, नदी, कुंआ और साधारण तालाब ये चार जल के स्थान पृथिवी पर और समीप, बीच और दूर देश में रहने वाले तीन जलाशय इन सात जलाशयों को (अवासृज) उत्पन्न

करता है वैसे शत्रुओं में चेष्टा करते हो (तत्) इसी कारण (त्वा) आपको युद्धों में हम लोग अधिष्ठाता करते है ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे यह मेघ सूर्य के प्रकाश को ढांप देता तब वह सूर्य अपनी किरणों से उसको छिन्न भिन्न कर भूमि में जल को वर्षाता है इसी से यह सूर्य उस जल समुदाय को पहुंचाने न पहुंचाने के लिये समुद्रों को रचने का हेतु होता है वैसे प्रजा का रक्षक राजा शत्रुओं को बांध शस्त्रों से काट और नीच गति को प्राप्त करके प्रजा को धर्मयुक्त मार्ग में चलाने का निमित्त होवे ॥ १२ ॥

नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध न यां मिहमकिरद्ध्रादुनिं च ।

इन्द्रश्च यद्युयुधाते अहिश्चोतापरीभ्यो मघवा वि जिग्ये ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे सेनापते ! आप जैसे मेघ ने (अस्मै) इस सूर्य लोक के लिये छोड़ी हुई (विद्युत) बिजुली (न) (सिषेध) इसकी कुछ रुकावट नहीं कर सकती (तन्यतुः) उस मेघ की गर्जना भी उस सूर्य को (न) (सिषेध) नहीं रोक सकती और वह (अहिः) मेघ (याम्) जिस (ह्रादुनिम्) गर्जना आदि गुण वाली (मिहम्) बरसा को (च) भी (अकिरत्) छोड़ता है वह भी सूर्य की (न) (सिषेध) हानि नहीं कर सकती है यह (इन्द्र) सूर्य लोक अपनी किरण-रूपी पूर्ण सेना से युक्त (उत) और अपनी (अपरीभ्यः) अधूरी सेना से युक्त (अहि) मेघ (च) भी ये दोनों (युयुधाते) परस्पर युद्ध किया करते हैं (यत्) अधिक बलयुक्त होने के कारण (मघवा) अत्यन्त प्रकाशवान् सूर्य लोक उस मेघ को (च) भी (विजिग्ये) अच्छे प्रकार जीत लेता है वैसे ही धर्मयुक्त पूर्ण बल करके शत्रुओं का विजय कीजिये ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है राजपुरुषों को योग्य है कि जैसे वृत्र अर्थात् मेघ के जितने बिजली आदि युद्ध के साधन हैं, वे सब सूर्य्य के आगे क्षुद्र अर्थात् सब प्रकार निर्बल और थोड़े हैं और सूर्य के युद्ध साधन उसकी अपेक्षा से बड़े बड़े हैं इसी से सब समय में सूर्य ही का विजय और मेघ का पराजय होता है वैसे ही धर्म से शत्रुओं को जीतें ॥ १३ ॥

अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र हृदि यत्ते जघ्नुषो भीरगच्छत् ।

नव च यन्नवतिं च स्रवन्तीः श्येनो न भीतो अतरो रजांसि ॥१४॥

पदार्थ—हे इन्द्र ! योधा जिस व्यवहार में शत्रुओं का (जघ्नुषः) हनने वाले (ते) आपका प्रभाव (अहेः) मेघ के गर्जन आदि शब्दों से प्राणियों को (यत्) जो (भीः) भय (अगच्छत्) प्राप्त होता है विद्वान् लोग उस मेघ के

(यातारम्) देश देशान्तर में पहुँचाने वाले सूर्य को छोड़ और (कम्) किसको देखें ? सूर्य से ताड़ना को प्राप्त हुआ मेघ (भीतः) डरे हुए (श्येनः) (न) बाज के समान (च) भूमि में गिर के (नवनवतिम्) अनेक (स्रवन्तीः) जल बहाने वाली नदी वा नाडियों को पूरित करता है (यत्) जिस कारण सूर्य अपने प्रकाश आकर्षण और छेदन आदि गुणों से बड़ा है इसी से (रजांसि) सब लोकों को (अतरः) तरता अर्थात् प्रकाशित करता है इस के समान आप हैं वे आप (हृदि) अपने मन में जिसको शत्रु (अपश्यः) देखो उसी को मारा करो ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। राजसेना के वीर पुरुषों को योग्य है कि जैसे किसी से पीड़ा को पाकर डरा हुआ श्येन पक्षी इधर उधर गिरता पड़ता उड़ता है वा सूर्य से अनेक प्रकार की ताड़ना और खैंच कढ़ेर को प्राप्त होकर मेघ इधर उधर देशदेशान्तर में अनेक नदी वा नाडियों का पूर्ण करता है इस मेघ की उत्पत्ति का सूर्य से भिन्न कोई निमित्त नहीं है। और जैसे अन्धकार में प्राणियों को भय होता है वैसे ही मेघ के बिजली और गर्जना आदि गुणों से भय होता है उस भय का दूर करने वाला भी सूर्य ही है तथा सब लोकों के व्यवहारों को अपने प्रकाश और आकर्षण आदि गुणों में चलाने वाला है वैसे ही दुष्ट शत्रुओं को जीता करें। इस मन्त्र में (नवनवतिम्) यह संख्या का उपलक्षण होने से पद असंख्यात अर्थ में है ॥ १४ ॥

इन्द्रो॑ या॒तोऽव॑सितस्य॒ राजा॒ शम॑स्य च शृ॒ङ्गिणो॒ वज्र॑बाहुः ।
सेदु॒ राजा॑ क्षयति चर्षणी॒नाम॒रान्न ने॒मिः परि॒ ता ब॑भूव ॥१५॥

पदार्थ—सूर्य्य के समान (वज्रबाहुः) शस्त्रास्त्रयुक्त बाहु (इन्द्रः) दुष्टों का निवारणकर्त्ता (यातः) गमन आदि व्यवहार को वर्त्ताने वाला सभापति (अवसितस्य) निश्चित चराचर जगत् (शमस्य) शान्ति करने वाले मनुष्य आदि प्राणियों (शृङ्गिणः) सींगों वाले गाय आदि पशुओं और (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के बीच (अरान्) पहियों को धारने वाले (नेमिः) धुरी के (न) समान (राजा) प्रकाशमान होकर (ता) उत्तम तथा नीच कर्मों के कर्त्ताओं को सुख दुःखों को तथा (रजांसि) उक्त लोकों को (परिक्षयति) पहुंचाता और निवास करता है (उ) (इत्) वैसे ही (सः) वह सभी के (राजा) न्याय का प्रकाश करने वाला (बभूव) होवे ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार और पूर्व मन्त्र से (रजांसि) इस पद की अनुवृत्ति आती है। राजा को चाहिये कि जैसे रथ का पहिया धुरियों को चलाता और जैसे यह सूर्य चराचर शांत अशांत संसार में प्रकाशमान

होकर सब लोकों को धारण किये हुए उन सभों को अपनी अपनी कक्षा में चलाता है जैसे सूर्य के विना अति निकट मूर्तिमान् लोक को धारण आकर्षण प्रकाश और मेघ की वर्षा आदि काम किसी से नहीं हो सकते हैं । वैसे धर्म से प्रजा का पालन किया करे ॥ १५ ॥

इस सूक्त में सूर्य और मेघ के युद्ध वर्णन करने से इस सूक्त की पिछले सूक्त में प्रकाशित किये अग्नि शब्द के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ।

यह बत्तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

आङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । २ । ४ । ८ । ९ । १२ । १३ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ । ६ । १० त्रिष्टुप् । ५ । ७ । ११ विराट् त्रिष्टुप् । १४ । १५ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पङ्क्ते पञ्चमः । त्रिष्टुभो धैवतः स्वरश्च ।

एतायामोप गव्यन्त इन्द्रमस्माकं सु प्रमतिं वावृधाति ।
अनामृणः कुविदादस्य रायो गवां केतं परमावर्जते नः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**गव्यन्तः**) अपने आत्मा गौ आदि पशु और शुद्ध इन्द्रियों की इच्छा करने वाले हम लोग जो (**अस्माकम्**) हम लोगों और (**अस्य**) इस जगत् के (**कुवित्**) अनेक प्रकार के (**रायः**) उत्तम धनों को (**वावृधाति**) बढ़ाता और जो (**आत्**) इसके अनन्तर (**नः**) हम लोगों के लिये (**अनामृणः**) हिंसा वैर पक्षपातरहित होकर (**गवाम्**) मन आदि इन्द्रिय पृथिवी आदि लोक तथा गौ आदि पशुओं के (**परम्**) उत्तम (**केतम्**) ज्ञान को बढ़ाता और अज्ञान का (**आवर्जते**) नाश करता है उस (**सुप्रमतिम्**) उत्तम ज्ञानयुक्त (**इन्द्रम्**) परमेश्वर और न्यायकर्ता को (**उपायाम**) प्राप्त होते हैं वैसे तुम लोग भी (**एत**) प्राप्त होओ ॥ १ ॥

भावार्थ—यहां श्लेषालङ्कार है—मनुष्यों को योग्य है कि जो पुरुष संसार में अविद्याका नाश तथा विद्याके दानसे उत्तम उत्तम धनों को बढ़ाता है परमेश्वर की आज्ञा का पालन और उपासना करके उसीके शरीर तथा आत्मा का वल नित्य वढ़ावे और इसकी सहायता के विना कोई भी मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी फल प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकता ॥ १ ॥

उपेदहं धनदामप्रतीतं जुष्टां न श्येनो वसतिं पतामि ।
इन्द्रं नमस्यन्नुपमेभिरर्कैर्यः स्तोतृभ्यो हव्यो अस्ति यामन् ॥२॥

पदार्थ—(यः) जो (हव्यः) ग्रहण करने योग्य ईश्वर (स्तोतृभ्यः) अपनी स्तुति करने वालों के लिये धन देने वाला (अस्ति) है उस (अप्रतीतम्) चक्षु आदि इन्द्रियों से अगोचर (धनदाम्) धन देने वाले (इन्द्रम्) परमेश्वर को (नमस्यन्) नमस्कार करता हुआ (अहम्) मैं (न) जैसे (जुष्टाम्) पूर्व काल में सेवन किये हुए (वसतिम्) घुसला को (श्येनः) बाज पक्षी प्राप्त होता है वैसे (यामन्) गमनशील अर्थात् चलायमान इस संसार में (उपमेभिः) उपमा देने के योग्य (अर्कैः) अनेक सूर्यों से (इत्) ही (उपपतामि) प्राप्त होता हूँ ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे श्येन अर्थात् वेगवान् पक्षी अपने पहिले सेवन किये हुए सुख देने वाले स्थान को स्थानान्तर से चलकर प्राप्त होता है वैसे ही परमेश्वर को नमस्कार करते हुए मनुष्य उसी के बनाये इस संसार से सूर्य्य आदि लोकों के दृष्टान्तों में ईश्वर का निश्चय करके उसी की प्राप्ति करें क्योंकि जितने इस संसार में रचे हुए पदार्थ हैं वे सब रचने वाले का निश्चय कराते हैं और रचने वाले के विना किसी जड़ पदार्थ की रचना कभी नहीं हो सकती जैसे इस व्यवहार में रचने वाले के विना कुछ भी पदार्थ नहीं बन सकता वैसे ही ईश्वर की सृष्टि में भी जानना चाहिये, बड़ा आश्चर्य है कि ऐसे निश्चय हो जाने पर भी जो ईश्वर का अनादर करके नास्तिक हो जाते हैं उनको यह बड़ा अज्ञान क्योंकर प्राप्त होता है ॥ २ ॥

नि सर्वसेन इषुधीँरसक्त समर्यो गा अजति यस्य वष्टि ।
चोष्कूयमाण इन्द्र भूरि वामं मा पणिर्भूरस्मदधि प्रवृद्ध ॥३॥

पदार्थ—हे (अधिप्रवृद्ध) महोत्तमगुणयुक्त ! (इन्द्र) शत्रुओं को विदीर्ण करने वाले (सर्वसेनः) जिसके सब सेना (पणिः) सत्य व्यवहारी (चोष्कूयमाणः) सब शत्रुओं को भगाने वाले आप (भूरि)बहुत (इषुधीन्) जिसमें बाण रखे जाते हैं उसको धर के जैसे (अर्य्यः) वैश्य (गाः) पशुओं को (समजति) चलाता और खवाता है वैसे (न्यसक्त) शत्रुओं को दृढ़बन्धनों से बांध और (अस्मत्) हम से (वामम्) अरुचिकर कर्म का कर्त्ता (मा भूः) मत हो जिससे (यस्य) आपका प्रताप (वष्टि) प्रकाशित हो और आप विजयी हों ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। राजा को चाहिये कि जैसे वैश्य गौओं का पालन तथा चरा कर दुग्धादिकों से व्यवहार सिद्ध करता है और जैसे ईश्वर से उत्पन्न हुए सब लोकों में बड़े सूर्यलोक की किरणें बाण के समान छेदन करने वाली सब पदार्थों को प्रवेश करके वायु से ऊपर नीचे

चलाकर रस सहित सब पदार्थों करके सब सुख सिद्ध करते हैं इस के समान प्रजा का पालन करे ॥ ३ ॥

वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेनँ एकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र ।
धनोरधि विषुणक्ते व्यायन्नयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः ॥४॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्ययुक्त शूरवीर ! एकाकी आप जैसे ईश्वर वा सूर्यलोक (**उपशाकेभिः**) सामर्थ्यरूपी कर्मों से (**एकः**) एक ही (**चरन्**) जानता हुआ दुष्टों को मारता है वैसे (**घनेन**) वज्ररूपी शस्त्र से (**दस्युम्**) वल और अन्याय से दूसरे के धन को हरने वाले दुष्ट को (**वधीः**) नाश कीजिये और (**विषुणक्**) अधर्म से धर्मात्माओं को दुःख देने वालों के नाश करने वाले आप (**धनोः**) धनुष के (**अधि**) ऊपर बाणों को निकाल कर दुष्टों को निवारण करके (**धनिनम्**) धार्मिक धनाढ्य की वृद्धि कीजिये जैसे ईश्वर की निन्दा करने वाले तथा सूर्यलोक के शत्रु मेघावयव (**घनेन**) सामर्थ्य वा किरण समूह से नाश को (**व्यायन्**) प्राप्त होते हैं वैसे (**हि**) निश्चय करके (**ते**) तुम्हारे (**अयज्वानः**) यज्ञ को न करने तथा (**सनकाः**) अधर्म से औरों के पदार्थों का सेवन करने वाले मनुष्य (**प्रेतिम्**) मरण को (**ईयुः**) प्राप्त हों वैसा यत्न कीजिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ईश्वर शत्रुओं से रहित तथा सूर्यलोक भी मेघ से निवृत्त हो जाता है वैसे ही मनुष्यों को चोर, डाकू वा शत्रुओं को मार और धनवाले धर्मात्माओं की रक्षा करके शत्रुओं से रहित होना अवश्य चाहिये ॥ ४ ॥

परा चिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्रायज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः ।
प्र यद्दिवो हरिवः स्थातरुग्र निरव्रताँ अधमो रोदस्योः ॥५॥

पदार्थ—हे (**हरिवः**) प्रशंसित सेना आदि के साधन घोड़े हाथियों से युक्त (**प्रस्थातः**) युद्ध में स्थित होने और (**उग्र**) दुष्टों के प्रति तीक्ष्ण व्रत धारण करने वाले (**इन्द्र**) सेनापति (**चित्**) जैसे हरण आकर्षण गुणयुक्त किरणवान् युद्ध में स्थित होने और दुष्टों को अत्यन्त ताप देने वाला सूर्यलोक (**रोदस्योः**) अन्तरिक्ष और पृथिवी का प्रकाश और आकर्षण करता हुआ मेघ के अवयवों को छिन्न भिन्न कर उसका निवारण करता है वैसे आप (**यत्**) जो (**अयज्वानः**) यज्ञ के न करने वाले (**यज्वभिः**) यज्ञ के करने वालों से (**स्पर्द्धमानाः**) ईर्ष्या करते हैं वे जैसे (**शीर्षाः**) अपने शिरों को (**ते**) तुम्हारे सकाश से (**ववृजुः**) छोड़ने वाले हों वैसे उन (**अव्रतान्**) सत्याचरण आदि व्रतों से रहित मनुष्यों को (**निरधमः**) अच्छे प्रकार दण्ड देकर शिक्षा कीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सूर्य दिन और पृथिवी और आकाश को धारण तथा मेघ रूप अन्धकार को निवारण करके वृष्टि द्वारा सब प्राणियों को सुखयुक्त करता है वैसे ही मनुष्यों को उत्तम उत्तम गुणों का धारण और खोटे गुणों को छोड़ धार्मिकों की रक्षा और अधर्म्मी दुष्ट मनुष्यों को दण्ड देकर विद्या उत्तम शिक्षा और धर्मोपदेश की वर्षा से सब प्राणियों को सुख देके सत्य के राज्य का प्रचार करना चाहिये ॥ ५ ॥

अयुयुत्सन्ननवद्यस्य सेनामयातयन्त क्षितयो नवग्वाः ।
वृषायुधो न वध्रयो निरष्टाः प्रवद्भिरिन्द्राच्चितयन्त आयन् ॥६॥

पदार्थ—हे (नवग्वाः) नवीन नवीन शिक्षा वा विद्या के प्राप्त करने और कराने (वृषायुधः) अति प्रवल शत्रुओं के साथ युद्ध करने (चितयन्तः) युद्धविद्या से युक्त (क्षितयः) मनुष्य लोगो ! आप (अनवद्यस्य) जिस उत्तम गुणों से प्रशंसनीय सेनाध्यक्ष की (सेनाम्) सेना को (अयातयन्त) उत्तम शिक्षा से यत्नवाली करके शत्रुओं के साथ (अयुयुत्सन्) युद्ध की इच्छा करो जिस (इन्द्रात्) शूरवीर सेनाध्यक्ष से (वध्रयः) निर्वल नपुंसकों के (न) समान शत्रुलोग (निरष्टाः) दूर दूर भागते हुए (प्रवद्भिः) पलायन योग्य मार्गों से (आयन्) निकल जावें उस पुरुष को सेनापति कीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य शरीर और आत्मबल वाले शूरवीर धार्मिक मनुष्य को सेनाध्यक्ष और सर्वथा उत्तम सेना को संपादन करके जब दुष्टों के साथ युद्ध करते हैं तभी जैसे सिंह के समीप बकरी और मनुष्य के समीप से भीरु मनुष्य और सूर्य के ताप से मेघ के अवयव नष्ट होते हैं वैसे ही उक्त वीरों के समीप से शत्रु लोग सुख से रहित और पीठ दिखाकर इधर उधर भाग जाते हैं इस से सब मनुष्यों को इस प्रकार का सामर्थ्य संपादन करके राज्य का भोग सदा करना चाहिये ॥६॥

त्वमेतान् रुदतो जक्षतश्चायोधयो रजस इन्द्र पारे ।
अवादहो दिव आ दस्युमुच्चा प्र सुन्वतः स्तुवतः शंसमावः ॥७॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सेना के ऐश्वर्य से युक्त सेनाध्यक्ष ! (त्वम्) आप (एतान्) इन दूसरों को पीड़ा देने दुष्ट कर्म करने वाले (रुदतः) रोते हुए जीवों (च) और (दस्युम्) डाकुओं को दण्ड दीजिये तथा अपने भृत्यों को (जक्षतः) अनेक प्रकार के भोजन आदि देते हुए आनन्द करने वाले मनुष्यों को उनके साथ (अयोधयः) अच्छे प्रकार युद्ध कराइये और इन धर्म के शत्रुओं को (रजसः) पृथिवी लोक के (पारे) परभाग में करके (अवादहः) भस्म कीजिये इसी प्रकार

(दिवः) उत्तम शिक्षा से ईश्वर धर्म शिल्प युद्धविद्या और परोपकार आदि के प्रकाशन से (उच्चा) उत्तम उत्तम कर्म वा सुखों को (प्रसुन्वतः)सिद्ध करने तथा (आस्तुवतः) गुणस्तुति करने वालों की (प्रावः) रक्षा कीजिये और उनकी (शसम्) प्रशंसा को प्राप्त हूजिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को युद्ध के लिये अनेक प्रकार के कर्म करने अर्थात् पहिले अपनी सेना के मनुष्यों की पुष्टि आनन्द तथा दुष्टों का दुर्बलपन वा उत्साहभङ्ग नित्य करना चाहिये जैसे सूर्य अपनी किरणों से सब को प्रकाशित कर के मेघ के अन्धकार निवारण के लिये प्रवृत्त होता है वैसे सब काल में उत्तम कर्म वा गुणों के प्रकाश और दुष्ट कर्म दोषों की निवृत्ति के लिये नित्य यत्न करना चाहिये ॥ ७ ॥

चक्राणासः परीणहं पृथिव्या हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः

न हिन्वानासस्तितिरुस्त इन्द्रं परि स्पशो अदधात् सूर्येण ॥८॥

पदार्थ—जैसे जिनको सूर्य्य (पर्य्यदधात्) सब ओर से धारण करता है (ते) वे मेघ के अवयव बादल सूर्य के प्रकाश को (स्पशः) बाधने वाले (पृथिव्या) पृथिवी को (परीणहम्) चौतर्फी घेरे हुए के समान (चक्राणासः) युद्ध करते हुए (हिरण्येन) प्रकाशरूप (मणिना) मणि से जैसे (सूर्य्येण) सूर्य्य के तेज से (शुम्भमानाः) शोभायमान (हिन्वानासः) सुखों को संपादन करते हुए (इन्द्रम्) सूर्य्यलोक को (न) नहीं (तितिरुः) उल्ललंघन कर सकते हैं वैसे ही सेनाध्यक्ष अपने धार्मिक शूरवीर आदि को शत्रुजन जैसे जीतने को समर्थ न हों वैसा प्रयत्न सब लोग किया करें ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे परमेश्वर ने सूर्य के साथ प्रकाश आकर्षणादि कर्मों का निबन्धन किया है वैसे ही विद्या धर्म न्याय शूरवीरों की सेनादि सामग्री को प्राप्त हुए पुरुष के साथ इस पृथिवी के राज्य को नियुक्त किया है ॥ ८ ॥

परि यदिन्द्र रोदसी उभे अबुभोजीर्महिना विश्वतः सीम्।

अमन्यमानाँ अभि मन्यमानैर्निर्ब्रह्मभिरधमो दस्युमिन्द्र ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य का योग करने वाले राजन्! आपको योग्य है कि जैसे सूर्यलोक (महिना) अपनी महिमा से (उभे) दोनों (रोदसी) प्रकाश और भूमि को (सीम्) जीवों के सुख की प्राप्ति के लिये (विश्वतः) सब प्रकार आकर्षण से पालन करता और (मन्यमानैः) ज्ञानसंपादक (ब्रह्मभिः) बड़े आकर्षणादि बलयुक्त किरणों से (दस्युम्) मेघ और (अमन्यमानान्) सूर्य्यप्रकाश

के रोकने वाले मेघ के अवयवों को (**निरधमः**) चारों ओर से अपने तापरूप अग्नि करके निवारण करता है वैसे सब प्रकार अपनी महिमा से प्राणियों के सुख के लिये (**उभे**) दोनों (**रोदसी**) प्रकाश और पृथिवी का (**पर्य्यबुभोजीः**) भोग कीजिये इसी प्रकार हे (**इन्द्र**) राज्य के ऐश्वर्य से युक्त सेनाध्यक्ष शूरवीर पुरुष ! आप (**मन्यमानैः**) विद्या की नम्रता से युक्त हठ दुराग्रह रहित (**ब्रह्मभिः**) वेद के जानने वाले विद्वानों से (**अमन्मानान्**) अज्ञानी दुराग्रही मनुष्यों को (**अभिनिरधमः**) साक्षात्कार शिक्षा कराया कीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्यलोक सब पृथिव्यादि मूर्त्तिमान् लोकों का प्रकाश आकर्षण से धारण और पालन करने वाला होकर मेघ और रात्रि के अन्धकार को निवारण करता है वैसे ही हे मनुष्यो ! आप लोग उत्तम शिक्षित विद्वानों से मूर्खों की मूढ़ता छुड़ा और दुष्ट शत्रुओं को शिक्षा देकर बड़े राज्य के सुख का भोग नित्य कीजिये ॥९॥

न ये दिवः पृथिव्या अन्तमापुर्न मायाभिर्धनदां पर्यभूवन् ।
युजं वज्रं वृषभश्चक्र इन्द्रो निर्ज्योतिषा तमसो गा अदुक्षत् ॥१०॥

पदार्थ—हे सभा के स्वामी ! आप जैसे इस मेघ के (**ये**) जो बद्दलादि अवयव (**दिवः**) सूर्य के प्रकाश और (**पृथिव्याः**) अन्तरिक्ष की (**अन्तम्**) मर्यादा को (**नापुः**) नहीं प्राप्त होते (**मायाभिः**) अपनी गर्जना अन्धकार और बिजली आदि माया से (**धनदाम्**) पृथिवी का (**न**) (**पर्यभूवन्**) अच्छे प्रकार आच्छादन नहीं कर सकते हैं उन पर (**वृषभः**) वृष्टिकर्त्ता (**इन्द्रः**) छेदन करनेहारा सूर्य (**युजम्**) प्रहार करने योग्य (**वज्रम्**) किरण समूह को फेंक के (**ज्योतिषा**) अपने तेज प्रकाश से (**तमसः**) अन्धेरे को (**निचक्रे**) निकाल देता और (**गाः**) पृथिवी लोकों को वर्षा से (**अधुक्षत्**) पूर्ण कर देता है वैसे जो शत्रुजन न्याय के प्रकाश और भूमि के राज्य के अन्त को न पावें धन देनेवाली राजनीति का नाश न कर सकें उन वैरियों पर अपनी प्रभुता विद्यादान से अविद्या की निवृत्ति और प्रजा को सुखों से पूर्ण किया कीजिये ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि सूर्य के तेजरूप स्वभाव और प्रकाश के सदृश कर्म कर और सब शत्रुओं के अन्यायरूप अन्धकार का नाश करके धर्म से राज्य का सेवन करें। क्योंकि छली कपटी लोगों का राज्य स्थिर कभी नहीं होता इससे सब को छलादि दोष रहित विद्वान् होके शत्रुओं की माया में न फँस के राज्य का पालन करने के लिये अवश्य उद्योग करना चाहिये ॥ १० ॥

अनु॑ स्व॒धाम॑क्षर॒न्नापो॑ अ॒स्याव॑र्द्धत॒ मध्य॒ आ ना॒व्या॑नाम् ।
स॒ध्री॒ची॒नेन॒ मन॑सा॒ तमि॑न्द्र॒ ओजि॑ष्ठेन॒ हन्म॑नाहन्न॒भि द्यून् ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे सेना के अध्यक्ष ! आप जैसे (**अस्य**) इस मेघ का शरीर (**नाव्यानाम्**) नदी, तड़ाग और समुद्रों में (**आवर्द्धत**) जैसे इस मेघ में स्थित हुए (**आपः**) जल सूर्य से छिन्न भिन्न होकर (**अनुस्वधाम्**) अन्न अन्न के प्रति (**अक्षरन्**) प्राप्त होते और जैसे यह मेघ (**सध्रीचीनेन**) साथ चलने वाले (**ओजिष्ठेन**) अत्यन्त बलयुक्त (**हन्मना**) हनन करने के साधन (**मनसा**) मन के सदृश वेग से इस सूर्य के (**अभिद्यून्**) प्रकाशयुक्त दिनों को (**अहन्**) अन्धकार से ढांप लेता और जैसे सूर्य अपने साथ चलने वाले किरणसमूह के बल वा वेग से (**तम्**) उस मेघ को (**अहन्**) मारता और अपने (**अभिद्यून्**) प्रकाशयुक्त दिनों का प्रकाश करता है वैसे नदी तड़ाग और समुद्र के बीच नौका आदि साधन के सहित अपनी सेना को बढ़ा तथा इस युद्ध में प्राण आदि सब इन्द्रियों को अन्नादि पदार्थों से पुष्ट करके अपनी सेना से (**तम्**) उस शत्रु को (**अहन्**) मारा कीजिये ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विजुली ने मेघ को मार कर पृथिवी पर गेरी हुई वृष्टि यव आदि अन्न को बढ़ाती और और नदी तड़ाग समुद्र के जल को बढ़ाती है वैसे ही मनुष्यों को चाहिये कि सब प्रकार शुभ गुणों की वर्षा से प्रजासुख शत्रुओं का मारण और विद्या वृद्धि से उत्तम गुणों का प्रकाश करके धर्म का सेवन सदैव करें ॥ ११ ॥

न्यवि॑ध्यदिली॒बिश॑स्य दृ॒ळ्हा वि शृ॒ङ्गिण॑मभिन॒च्छुष्ण॒मिन्द्रः॑ ।
याव॒त्तरो॑ मघव॒न्याव॒दोजो॒ वज्रे॑ण॒ शत्रु॑मवधीः पृत॒न्युम् ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (**मघवन्**) अत्यन्त धनदाता महाधनयुक्त वीर ! आप जैसे (**इन्द्रः**) बिजुली आदि बलयुक्त सूर्य्यलोक (**इलीविशस्य**) पृथिवी के गढ़ों में सोने वाले मेघ के सम्बन्धी (**दृढा**) दृढ़रूप बद्दलादिकों को (**अभिनत्**) भिन्न भिन्न करता और अपना (**यावत्**) जितना (**तरः**) बल और (**यावत्**) जितना (**ओजः**) पराक्रम है उससे युक्त हुए (**वज्रेण**) किरण समूह से (**शृङ्गिणम्**) सींगों के समान ऊंचे (**शुष्णम्**) ऊपर चढ़ते पदार्थों को सुखाने वाले मेघ को (**न्यविध्यत्**) नष्ट और (**पृतन्युम्**) सेना की इच्छा करते हुए (**शत्रुम्**) शत्रु के के समान मेघ का (**अवधीः**) हनन करता है वैसे शत्रुओं में चेष्टा किया करें ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विजुली मेघ के अवयवों को भिन्न भिन्न और जल को वर्षा कर सब को सुखयुक्त करती

है वैसे ही सब मनुष्यों को उचित है कि उत्तम उत्तम शिक्षायुक्त सेना से दुष्ट गुण वाले दुष्ट मनुष्यों को उपदेश दे और शस्त्र अस्त्र वृष्टि से शत्रुओं को निवारण कर प्रजा में सुखों की वृष्टि निरन्तर किया करें ॥ १२ ॥

अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून्वि तिग्मेन वृषभेणा पुरोऽभेत् ।
सं वज्रेणासृजद्वृत्रमिन्द्रः प्र स्वां मतिमतिरच्छाशदानः ॥ १३ ॥

पदार्थ—जैसे (**अस्य**) इस सूर्य का (**सिध्मः**) विजय प्राप्त कराने वाला वेग (**तिग्मेन**) तीक्ष्ण (**वृषभेण**) वृष्टि करने वाले तेज से (**शत्रून्**) मेघ के अवयवों को (**व्यजिगात्**) प्राप्त होता और इस मेघ के (**पुरः**) नगरों के सदृश समुदायों को (**व्यभेत्**) भेदन करता है जैसे (**शाशदानः**) अत्यन्त छेदन करने वाली (**इन्द्रः**) बिजुली (**वृत्रम्**) मेघ को (**प्रातिरत्**) अच्छे प्रकार नीचा करती है वैसे ही इस सेनाध्यक्ष को होना चाहिये ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे बिजुली मेघ के अवयव बद्दलों को तीक्ष्ण वेग से छिन्न भिन्न और भूमि में गेर कर उसको वश में करती है वैसे ही सभासेनाध्यक्ष को चाहिये कि बुद्धि शरीरबल वा सेना के वेग से शत्रुओं को छिन्न भिन्न और शस्त्रों के अच्छे प्रकार प्रहार से पृथिवी पर गिरा कर अपनी सम्मति में लावें ॥ १३ ॥

आवः कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्प्रावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् ।
शफच्युतो रेणुर्नक्षत द्यामुच्छ्वैत्रेयो नृषाह्याय तस्थौ ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे इन्द्र सभापते ! जैसे सूर्यलोक (**यस्मिन्**) जिस युद्ध में (**युध्यन्तम्**) युद्ध करते हुए (**वृषभम्**) वृष्टि के कराने वाले (**दशद्युम्**) दश दिशाओ में प्रकाशमान मेघ के प्रति (**कुत्सम्**) वज्रमार के जगत् की (**प्रावः**) रक्षा करता है और (**श्वैत्रेयः**) भूमि का पुत्र मेघ (**शफच्युतः**) गौ आदि पशुओं के खुरों के चिन्हों में गिरी हुई (**रेणुः**) धूलि (**द्याम्**) प्रकाशयुक्त लोक को (**नक्षत**) प्राप्त होती है उसको (**नृषाह्याय**) मनुष्यों के लिये (**चाकन्**) वह कान्ति वाला मेघ (**उत्तस्थौ**) उठता और सुखों को देता है वैसे सभासहित आपको प्रजा के पालन में यत्न करना चाहिये ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्यलोक अपनी किरणों से पृथिवी में मेघ को गिरा कर सब प्राणियों को सुखयुक्त करता है वैसे ही हे सभाध्यक्ष तू भी सेना शिक्षा और शस्त्रबल से शत्रुओं को अस्तव्यस्त कर नीचे गिरा के प्रजा की रक्षा निरन्तर किया कर ॥ १४ ॥

आवः शमं वृषभं तुग्र्यासु क्षेत्रजेषे मघवञ्छ्वित्र्यं गाम् ।
ज्योक् चिदत्र तस्थिवांसो अक्रञ्छत्रूयतामधरा वेदनाकः ॥१५॥

पदार्थ—हे (मघवन्) बड़े धन के हेतु सभा के स्वामी ! आप जैसे सूर्यलोक (क्षेत्रजेषे) अन्नादि सहित पृथिवी राज्य को प्राप्त कराने के लिये (श्वित्र्यम्) भूमि के ढांप लेने में कुशल (वृषभम्) वर्षण स्वभाव वाले मेघ के (तुग्र्यासु) जलों में (गाम्) किरण समूह को (आवः) प्रवेश करता हुआ (शत्रूयताम्) शत्रु के समान आचरण करने वाले उन मेघावयवों के (अधरा) नीचे के (वेदना) दुष्टों को वेदनारूप पापफलों को (तस्थिवांसः) हुए किरणों छेदन (ज्योक्) निरन्तर (अक्रन्) करते हैं (अत्र) और फिर इस भूमि में वह मेघ (अकः) गमन करता है उसके (चित्) समान शत्रुओं का निवारण और प्रजा को सुख दिया कीजिये ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सूर्य अन्तरिक्ष से मेघ के जल को भूमि पर गिरा के सब प्राणियों के लिये सुख देता है वैसे सेनाध्यक्षादि लोग दुष्ट मनुष्य शत्रुओं को बांधकर धार्मिक मनुष्यों की रक्षा करके सुखों का भोग करें और करावें ॥ १५ ॥

इस सूक्त में सूर्य मेघ के युद्धार्थ के वर्णन तथा उपमान उपमेय अलङ्कार वा मनुष्यों के युद्धविद्या के उपदेश करने से पिछले सूक्तार्थ के साथ इस सूक्तार्थ की सङ्गति जाननी चाहिये ।

यह तेतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः । अश्विनौ देवते । १ । ६ विराड् जगती । २ । ३ । ७ । ८ निचृज्जगती । ५ । १० । ११ । जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ४ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । १२ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ६ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

त्रिश्चिन्नो अद्या भवतं नवेदसा विभुर्वां याम उत रातिरश्विना ।
युवोर्हि यन्त्रं हिम्येव वाससोऽभ्यायंसेन्या भवतं मनीषिभिः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे परस्पर उपकारक और मित्र (अभ्यायंसेन्या) साक्षात् कार्य्यसिद्धि के लिये मिले हुए (नवदेसा) सब विद्याओं के जानने वाले (अश्विना) अपने प्रकाश से व्याप्त सूर्य्य चन्द्रमा के समान सब विद्याओं में व्यापी कारीगर लोगो ! आप (मनीषिभिः) सब विद्वानों के साथ दिनों के साथ (हिम्याइव) शीतकाल की

रात्रियों के समान (नः) हम लोगों के (अद्य) इस वर्तमान दिवस में शिल्पकार्य्य के साधक (भवतम्) हूजिये (हि) जिस कारण (युवोः) आपके सकाश से (यन्त्रम्) कलायन्त्र को सिद्ध कर यानसमूह को चलाया करें जिससे (नः) हम लोगों को (वाससः) रात्रि, दिन के बीच (रातिः) वेगादि गुणों से दूर देश को प्राप्त होवे (उत) और (वाम्) आपके सकाश से (विभुः) सब मार्ग में चलने वाला (यामः) रथ प्राप्त हुआ हम लोगों को देशान्तर को सुख से (त्रिः) तीन वार पहुँचावे इसलिये आप का संग हम लोग करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये जैसे रात्रि वा दिन की क्रम से संगति होती है वैसे संगति करें जैसे विद्वान् लोग पृथिवी विकारों के यानकला कील और यन्त्रादिकों को रचकर उनके घुमाने और उस में अग्न्यादि के संयोग से भूमि समुद्र वा आकाश में जाने आने के लिये यानों को सिद्ध करते हैं । वैसे ही मुझ को भी विमानादि यान सिद्ध करने चाहियें। क्योंकि इस विद्या के बिना किसी के दारिद्र्य का नाश वा लक्ष्मी की वृद्धि कभी नहीं हो सकती इससे इस विद्या में सब मनुष्यों को अत्यन्त प्रयत्न करना चाहिये, जैसे मनुष्य लोग हेमन्त ऋतु में वस्त्रों को अच्छे प्रकार धारण करते हैं वैसे ही सब प्रकार कील कला यन्त्रादिकों से यानों को संयुक्त रखना चाहिये ॥ १ ॥

त्रयः पवयो मधुवाहने रथे सोमस्य वेनामनु विश्व इद्विदुः ।
त्रयः स्कम्भासः स्कभितास आरभे त्रिर्नक्तं याथस्त्रिर्वश्विना दिवा ॥२॥

पदार्थ—हे अश्वि अर्थात् वायु और बिजुली के समान संपूर्ण शिल्पविद्याओं को यथावत् जानने वाले लोगो ! आप जिस (मधुवाहने) मधुर गुणयुक्त द्रव्यों की प्राप्ति होने के हेतु (रथे) विमान में (त्रयः) तीन (पवयः) वज्र के समान कला घूमने के चक्र और (त्रयः) तीन (स्कम्भासः) बन्धन के लिये खंभ (स्कभितासः) स्थापित और धारण किये जाते हैं, उसमें स्थित अग्नि और जल के समान कार्य्यसिद्धि करके (त्रिः) तीन वार (नक्तम्) रात्रि और (त्रिः) तीन वार (दिवा) दिन में इच्छा किये हुए स्थान को (उपयाथः) पहुँचो वहां भी आपके विना कार्य्यसिद्धि कदापि नहीं होती । मनुष्य लोग जिसमें बैठ के (सोमस्य) ऐश्वर्य की (वेनाँ) प्राप्ति को करती हुई कामना वा चन्द्रलोक की कान्ति को प्राप्त होते और जिसको (आरभे) आरम्भ करने योग्य गमनागमन व्यवहार में (विश्वे) सब विद्वान् (इत्) ही (विदुः) जानते हैं उस (उ) अद्भुत रथ को ठीक ठीक सिद्ध कर अभीष्ट स्थानों में शीघ्र जाया आया करो ॥ २ ॥

भावार्थ—भूमि समुद्र और अन्तरिक्ष में जाने की इच्छा करने वाले

मनुष्यों को योग्य है कि तीन चक्रयुक्त अग्नि के घर और स्तम्भयुक्त यान को रच कर उस में बैठ कर एक दिन रात में भूगोल समुद्र अन्तरिक्ष मार्ग से तीन तीन वार जाने का समर्थ हो सकें उस यान में इस प्रकार के खंभ रचने चाहिये कि जिसमें कलावयव अर्थात् काष्ठ लोष्ठ आदि खंभों के अवयव स्थित हों फिर वहां अग्नि जल का संप्रयोग कर चलावें । क्योंकि इनके विना कोई मनुष्य शीघ्र भूमि समुद्र अन्तरिक्ष में जाने आने को समर्थ नहीं हो सकता इस से इनकी सिद्धि के लिये सब मनुष्यों को वड़े बड़े यत्न अवश्य करने चाहियें ॥ २ ॥

समाने अहन्त्रिरवद्यगोहना त्रिरद्य यज्ञं मधुना मिमिक्षतम् ।
त्रिर्वाजवतीरिषो अश्विना युवं दोषा अस्मभ्यमुषसश्च पिन्वतम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) अग्नि जल के समान यानों को सिद्ध करके प्रेरणा करने और चलाने तथा (**अवद्यगोहना**) निन्दित दुष्ट कर्मों को दूर करने वाले विद्वान् मनुष्यो ! (**युवम्**) तुम दोनों (**समाने**) एक (**अहन्**) दिन में (**मधुना**) जल से (**यज्ञम्**) ग्रहण करने योग्य शिल्पादि विद्यासिद्धि करने वाले यज्ञ को (**त्रिः**) तीन वार (**मिमिक्षतम्**) सींचने की इच्छा करो और (**अद्य**) आज (**अस्मभ्यम्**) शिल्पक्रियाओं को सिद्ध करने और कराने वाले हम लोगों के लिये (**दोषाः**) रात्रियों और (**उषसः**) प्रकाश को प्राप्त हुए दिनों में (**त्रिः**) तीन वार यानों का (**पिन्वतम्**) सेवन करो और (**वाजवतीः**) उत्तम उत्तम सुखदायक (**इषः**) इच्छासिद्धि करने वाले नौकादि यानों को (**त्रिः**) तीन वार (**पिन्वतम्**) प्रीति से सेवन करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—शिल्पविद्या को जानने और कलायन्त्रों से यान को चलाने वाला ये दोनों प्रतिदिन शिल्पविद्या से यानों को सिद्ध कर तीन प्रकार अर्थात् शारीरिक आत्मिक और मानसिक सुख के लिये धन आदि अनेक उत्तम उत्तम पदार्थों को इकट्ठा कर सब प्राणियों को सुखयुक्त करें जिससे दिन रात में सब लोग अपने पुरुषार्थ से इस विद्या की उन्नति कर और आलस्य को छोड़ के उत्साह से उसकी रक्षा में निरन्तर प्रयत्न करें ॥ ३ ॥

त्रिर्वर्तिर्यातं त्रिरनुव्रते जने त्रिः सुप्राव्ये त्रेधेव शिक्षतम् ।
त्रिर्नान्द्यं वहतमश्विना युवं त्रिः पृक्षो अस्मे अक्षरेव पिन्वतम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) विद्या देने वा ग्रहण करने वाले विद्वान् मनुष्यो ! (**युवम्**) तुम दोनों (**अस्मे**) हम लोगों के (**वर्त्तिः**) मार्ग को (**त्रिः**) तीन वार (**यातम्**) प्राप्त हुआ करो । तथा (**सुप्राव्ये**) अच्छे प्रकार प्रवेश करने योग्य

(अनुव्रते) जिसके अनुकूल सत्याचरण व्रत है उस (जने) बुद्धि के उत्पादन करने वाले मनुष्य के निमित्त (त्रिः) तीन वार (यातम्) प्राप्त हूजिये और शिष्य के लिये (त्रेधेव) तीन प्रकार अर्थात् हस्तक्रिया रक्षा और यान चालन के ज्ञान को शिक्षा करते हुए अध्यापक के समान (अस्मे) हम लोगों को (त्रिः) तीन वार (शिक्षतम्) शिक्षा और (नान्द्यम्) समृद्धि होने योग्य शिल्प ज्ञान को (त्रिः) तीन वार (वहतम्) प्राप्त करो और (अक्षरेव) जैसे नदी तालाब और समुद्र आदि जलाशय मेघ के सकाश से जल को प्राप्त होते हैं वैसे हम लोगों को (पृक्षः) विद्यासंपर्क को (त्रिः) तीन वार (पिन्वतम्) प्राप्त करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में दो उपमालङ्कार हैं। शिल्पविद्या के जानने वाले मनुष्यों को योग्य है कि इच्छा करने वाले अनुकूल बुद्धिमान् मनुष्यों को पदार्थविद्या पढ़ा और उत्तम उत्तम शिक्षा वार वार देकर कार्यों को सिद्ध करने में समर्थ करें और उनको भी चाहिये कि इस विद्या को संपादन करके यथावत् चतुराई और पुरुषार्थ से सुखों के उपकारों को ग्रहण करें॥ ४ ॥

त्रिर्नो र॒यिं व॑हतमश्विना यु॒वं त्रिर्दे॒वता॑ता त्रिरु॒ताव॑तं॒ धियः॑ ।
त्रिः सौ॑भग॒त्वं त्रिरु॒त श्रवां॑सि न॒स्त्रिष्ठं वां॒ सूरे॑ दुहि॒ता रु॑ह॒द्रथ॑म् ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (देवताता) शिल्पक्रिया और यज्ञसंपत्ति के मुख्य कारण वा विद्वान् तथा शुभ गुणों के बढ़ाने और (अश्विना) आकाश पृथिवी के तुल्य प्राणियों को सुख देने वाले विद्वान् लोगो ! (युवम्) आप (नः) हम लोगों के लिये (रयिम्) उत्तम धन (त्रिः) तीन वार अर्थात् विद्या राज्य श्री की प्राप्ति और रक्षण क्रियारूप ऐश्वर्य को (वहतम्) प्राप्त करो (नः) हम लोगों की (धियः) बुद्धियों (उत) और बल को (त्रिः) तीन वार (अवतम्) प्रवेश कराइये (नः) हम लोगों के लिये (त्रिष्ठम्) तीन अर्थात् शरीर आत्मा और मन के सुख में रहने और (सौभगत्वम्) उत्तम ऐश्वर्य्य के उत्पन्न करने वाले पुरुषार्थ को (त्रिः) तीन अर्थात् भृत्य, संतान और स्वात्म भार्यादि को प्राप्त कीजिये (उत) और (श्रवांसि) वेदादि शास्त्र वा धनों को (त्रिः) शरीर प्राण और मन की रक्षा सहित प्राप्त करते और (वाम्) जिन अश्वियों के सकाश से (सूरेः) सूर्य की (दुहिता) पुत्री के समान कान्ति (नः) हम लोगों के (रथम्) विमानादि यान-समूह को (त्रिः) तीन अर्थात् प्रेरक साधक और चालन क्रिया से (आरुहत्) ले जाती है उन दोनों को हम लोग शिल्पकार्यों से अच्छे प्रकार युक्त करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि अग्नि भूमि के अवलंब से शिल्प-कार्यों को सिद्ध और बुद्धि बढ़ाकर सौभाग्य और उत्तम अन्नादि पदार्थों को प्राप्त हो तथा इस सब सामग्री से सिद्ध हुए यानों में बैठ के देश देशान्तरों

को जा आ और व्यवहार द्वारा धन को बढ़ा कर सब काल में आनन्द में रहें ॥ ५ ॥

त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा त्रिः पार्थिवानि त्रिरु दत्तमद्भ्यः ।
ओमानं शंयोर्ममकाय सूनवे त्रिधातु शर्म वहतं शुभस्पती ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (**शुभस्पती**) कल्याण कारक मनुष्यों के कर्मों की पालना करने और (**अश्विना**) विद्या की ज्योति को बढ़ाने वाले शिल्पि लोगो ! आप दोनों (**नः**) हम लोगों के लिये (**अद्भ्यः**) जलों से (**दिव्यानि**) विद्यादि उत्तम गुण प्रकाश करने वाले (**भेषजा**) रसमय सोमादि औषधियों को (**त्रिः**) तीन ताप निवारणार्थ (**दत्तम्**) दीजिये (**उ**) और (**पार्थिवानि**) पृथिवी के विकारयुक्त औषधि (**त्रिः**) तीन प्रकार से दीजिये और (**ममकाय**) मेरे (**सूनवे**) औरस अथवा विद्यापुत्र के लिये (**शंयोः**) सुख तथा (**ओमानम्**) विद्या में प्रवेश और क्रिया के बोध कराने वाले रक्षणीय व्यवहार को (**त्रिः**) तीन वार कीजिये और (**त्रिधातु**) लोहा ताँबा पीतल इन तीन धातुओं के सहित भू जल और अन्तरिक्ष में जाने वाले (**शर्म**) गृहस्वरूप यान को मेरे पुत्र के लिये (**त्रिः**) तीन वार (**वहतम्**) पहुँचाइये ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जो जल और पृथिवी में उत्पन्न हुई रोग नष्ट करने वाली औषधी हैं उनका एक दिन में तीन वार भोजन किया करें और अनेक धातुओं से युक्त कष्टमय घर के समान यान को बना उसमें उत्तम उत्तम जव आदि औषधी स्थापन, अग्नि के घर में अग्नि को काष्ठों से प्रज्वलित, जल के घर में जलों को स्थापन, भाफ के बल यानों को चला, व्यवहार के लिये देशदेशान्तरों को जा और वहां से आकर जल्दी अपने देश को प्राप्त हों इस प्रकार करने से बड़े बड़े सुख प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

त्रिर्नो अश्विना यजता दिवेदिवे परि त्रिधातु पृथिवीमशायतम् ।
तिस्रो नासत्या रथ्या परावत आत्मेव वातः स्वसराणि गच्छतम् ॥७॥

पदार्थ—हे (**नासत्या**) असत्य व्यवहार रहित (**यजता**) मेल करने (**रथ्या**) विमानादि यानों को प्राप्त करने वाले (**अश्विना**) जल और अग्नि के समान कारीगर लोगो ! तुम दोनों (**पृथिवी**) भूमि वा अन्तरिक्ष को प्राप्त होकर (**त्रिः**) तीन वार (**पर्य्यशायतम्**) शयन करो (**आत्मेव**) जैसे जीवात्मा के समान (**वातः**) प्राण (**स्वसराणि**) अपने कार्यों में प्रवृत्त करने वाले दिनों को नित्य नित्य प्राप्त होते हैं वैसे (**गच्छतम्**) देशान्तरों को प्राप्त हुआ करो और जो (**नः**) हम लोगों के (**त्रिधातु**) सोना चांदी आदि धातुओं से बनाये हुए यान

(परावतः) दूर स्थानों को (तिस्रः) ऊंची नीची और सम चाल चलते हुए मनुष्यादि प्राणियों को पहुँचाते हैं उन को कार्यसिद्धि के अर्थ हम लोगों के लिये बनाओ ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। संसार सुख की इच्छा करने वाले पुरुष जैसे जीव अन्तरिक्ष आदि मार्गों से दूसरे शरीरों को शीघ्र प्राप्त होता और जैसे वायु शीघ्र चलता है वैसे ही पृथिव्यादि विकारों से कलायन्त्र युक्त यानों को रच और उनमें अग्नि जल आदि का अच्छे प्रकार प्रयोग करके चाहे हुए दूर देशों को शीघ्र पहुँचा करें इस काम के विना संसारसुख होने को योग्य नहीं है ॥ ७ ॥

त्रिरश्विना सिन्धुभिः सप्तमातृभिस्त्रय आहावास्त्रेधा हविष्कृतम् ।
तिस्रः पृथिवीरुपरि प्रवा दिवो नाकं रक्षेथे द्युभिरक्तुभिर्हितम् ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (प्रवा) गमन कराने वाले (अश्विना) सूर्य और वायु के समान कारीगर लोगो ! आप (सप्तमातृभिः) जिन की सप्त अर्थात् पृथिवी अग्नि सूर्य वायु बिजुली जल और आकाश सात माता के तुल्य उत्पन्न करने वाले हैं (उन) (सिन्धुभिः) नदियों और (द्युभिः) दिन (अक्तुभिः) रात्रि के साथ जिस के (त्रयः) ऊपर नीचे और मध्य में चलने वाले (आहावाः) जलाधार मार्ग हैं उस (त्रेधा) तीन प्रकार से (हविष्कृतम्) ग्रहण करने योग्य शोधे हुए (नाकम्) सब दुःखों से रहित (हितम्) स्थित द्रव्य को (उपरि) ऊपर चढ़ा के (तिस्रः) स्थूल त्रसरेणु और परमाणु नाम वाली तीन प्रकार की (पृथिवीः) विस्तारयुक्त पृथिवी और (दिवः) प्रकाशस्वरूप किरणों को प्राप्त करा के उसको इधर उधर चला और नीचे वर्षा के इस से सब जगत् की (त्रिः) तीन वार (रक्षेथे) रक्षा कीजिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जो सूर्य वायु के छेदन आकर्षण और वृष्टि कराने वाले गुणों से नदी चलतीं तथा हवन किया हुआ द्रव्य दुर्गन्धादि दोषों को निवारण कर सब दुःखों से रहित सुखों को सिद्ध करता है जिससे दिन रात सुख बढ़ता है इसके विना कोई प्राणी जीवने को समर्थ नहीं हो सकता इससे इसकी शुद्धि के लिए यज्ञरूप कर्म नित्य करें ॥ ८ ॥

क्व१त्री चक्रा त्रिवृतो रथस्य क्व१त्रयो बन्धुरो ये सनीळाः ।
कदा योगो वाजिनो रासभस्य येन यज्ञं नासत्योपयाथः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (नासत्या) सत्य गुण और स्वभाव वाले कारीगर लोगो ! तुम दोनों (यज्ञम्) दिव्यगुणयुक्त विमान आदि यान से जाने आने योग्य मार्ग को

(कदा) कब (उपयाथ) शीघ्र जैसे निकट पहुँच जावें वैसे पहुंचते हो और (येन) जिस से पहुँचते हो उस (रासभस्य) शब्द करने वाले (वाजिनः) प्रशंसनीय वेग से युक्त (त्रिवृतः) रचन चालन आदि सामग्री से पूर्ण (रथस्य) और भूमि जल अन्तरिक्ष मार्ग में रमण कराने वाले विमान में (क्व) कहां (त्री) तीन (चक्रा) चक्र रचने चाहियें और इस विमानादि यान में (ये) जो (सनीडाः) बराबर बन्धनों के स्थान वा अग्नि रहने का घर (बन्धुरः) नियमपूर्वक चलाने के हेतु कोष्ठ होते हैं उन का (योगः) योग (क्व) कहां रहना चाहिये ये तीन प्रश्न हैं ।। ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में कहे हुए तीन प्रश्नों के ये उत्तर जानने चाहियें । विभूति की इच्छा रखने वाले पुरुषों को उचित है कि रथ के आदि, मध्य और अन्त में सब कलाओं के बन्धनों के आधार के लिये तीन बन्धनविशेष संपादन करें तथा तीन कला घूमने घुमाने के लिए संपादन करें—एक मनुष्यों के बैठने दूसरी अग्नि की स्थिति और तीसरी जल की स्थिति के लिए करके जब जब चलने की इच्छा हो तब तब यथायोग्य जलकाष्ठों को स्थापन, अग्नि को युक्त और कला को वायु से प्रदीप्त करके भाफ के वेग से चलाये हुए यान से शीघ्र दूर स्थान को भी निकट के समान जाने को समर्थ होवें । क्योंकि इस प्रकार किये बिना निर्विघ्नता से स्थानान्तर को कोई मनुष्य शीघ्र नहीं जा सकता ॥ ९ ॥

आ नासत्या गच्छतं हूयते हविर्मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिः ।

युवोर्हि पूर्वं सवितोषसो रथमृताय चित्रं घृतवन्तमिष्यति ॥ १० ॥

पदार्थ—हे शिल्पिलोगो ! तुम दोनों (नासत्या) जल और अग्नि के सदृश जिस (हविः) सामग्री का (हूयते) हवन करते हो उस हवि से शुद्ध हुए (मध्वः) मधुर जल (मधुपेभिः) शुद्ध जल पीने वाले (आसभिः) अपने मुखों से (पिबतम्) पियो और हम लोगों को आनन्द देने के लिये (घृतवन्तम्) बहुत जल की कलाओं से युक्त (चित्रम्) वेगादि आश्चर्य्य गुणसहित (रथम्) विमानादि यानों से देशान्तरों को (गच्छतम्) शीघ्र जाओ आओ (युवोः) तुम्हारा जो रथ (उषसः) प्रातःकाल से (पूर्वम्) पहिले (सविता) सूर्यलोक के समान प्रकाशमान (इष्यति) शीघ्र चलता है (हि) वही (ऋताय) सत्य सुख के लिए समर्थ होता है ॥ १० ॥

भावार्थ—जब यानों में जल और अग्नि को प्रदीप्त करके चलाते हैं तब ये यान और स्थानों को शीघ्र प्राप्त कराते हैं उन में जल और भाफ के निकलने का एक ऐसा स्थान रच लेवें कि जिसमें होकर भाफ के निकलने से वेग की वृद्धि होवे । इस विद्या का जानने वाला ही अच्छे प्रकार सुखों को प्राप्त होता है ॥ १० ॥

आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना ।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥११॥

पदार्थ—हे शिल्पि लोगो ! तुम दोनों (नासत्या) सत्यगुण स्वभावयुक्त (सचाभुवा) मेल कराने वाले जल और अग्नि के समान (देवेभिः) विद्वानों के साथ (इह) इन उत्तम यानों में बैठ के (त्रिभिः) तीन दिन और तीन रात्रियों में महासमुद्र के पार और (एकादशभिः) ग्यारह दिन और ग्यारह रात्रियों में भूगोल पृथिवी के अन्त को (यातम्) पहुँचो (द्वेषः) शत्रु और (रपांसि) पापों को (निर्मृक्षतम्) अच्छे प्रकार दूर करो (मधुपेयम्) मधुर गुण युक्त पीने योग्य द्रव्य और (आयुः) उमर को (प्रतारिष्टम्) प्रयत्न से बढ़ाओ उत्तम सुखों को (सेधतम्) सिद्ध करो और शत्रुओं को जीतने वाले (भवतम्) होवो ॥ ११ ॥

भावार्थ—जब मनुष्य ऐसे यानों में बैठ और उनको चलाते हैं तब तीन दिन और तीन रात्रियों में सुख से समुद्र के पार तथा ग्यारह दिन और ग्यारह रात्रियों में ब्रह्माण्ड के चारों ओर जाने को समथ हो सकते हैं इसी प्रकार करते हुए विद्वान् लोग सुखयुक्त पूर्ण आयु को प्राप्त हो दुःखों को दूर और शत्रुओं को जीत कर चक्रवर्त्तिराज्य भोगने वाले होते हैं ॥ ११ ॥

आ नो अश्विना त्रिवृता रथेनार्वाञ्चं रयिं वहतं सुवीरम ।
शृण्वन्ता वामवसे जोहवीमि वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे कारीगरी में चतुरजनो ! (शृण्वन्ता) श्रवण कराने वाले (अश्विना) दृढ़ विद्या बलयुक्त आप दोनों जल और पवन के समान (त्रिवृता) तीन अर्थात् स्थल जल और अन्तरिक्ष में पूर्णगति से जाने के लिये वर्त्तमान (रथेन) विमान आदि यान से (नः) हम लोगों को (अर्वाञ्चम्) ऊपर से नीचे अभीष्ट स्थान को प्राप्त होने वाले (सुवीरम्) उत्तम वीर युक्त (रयिम्) चक्रवर्ति राज्य से सिद्ध हुए धन को (आवहतम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होके पहुँचाइये (च) और (नः) हम लोगों के (वाजसातौ) सङ्ग्राम में (वृधे) वृद्धि के अर्थ विजय को प्राप्त कराने वाले (भवतम्) हूजिये जैसे मैं (अवसे) रक्षादि के लिये (वाम्) तुम्हारा (जोहवीमि) बारंबार ग्रहण करता हूं वैसे आप मुझ को ग्रहण कीजिये ॥ १२ ॥

भावार्थ—जल अग्नि से प्रयुक्त किये हुए रथ के विना कोई मनुष्य स्थल जल और अन्तरिक्षमार्गों में शीघ्र जाने को समर्थ नहीं हो सकता। इससे राज्यश्री, उत्तम सेना और वीर पुरुषों को प्राप्त होके ऐसे विमानादि

यानों से युद्ध में विजय को पा सकते हैं। इस कारण इस विद्या में मनुष्य सदा युक्त हों॥ १२॥

पूर्व सूक्त से इस विद्या के सिद्ध करने वाले इन्द्र शब्द के अर्थ का प्रतिपादन किया तथा इस सूक्त से इस विद्या के साधक अश्वि अर्थात् द्यावापृथिवी आदि अर्थ प्रतिपादन किये हैं इससे इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये!

यह चौंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ॥३४॥

आङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषिः। आदिमस्य मन्त्रस्याग्निर्मित्रावरुणौ रात्रिः सविता च। २—११ सविता च देवता। १ विराड् जगती। ६ निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः। २। ५। १०। ११। विराट् त्रिष्टुप्। ३। ४। ६। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ७। ८। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

ह्वया॑म्य॒ग्निं प्र॑थ॒मं स्व॒स्तये॒ ह्वया॑मि मि॒त्रावरु॑णावि॒हाव॑से।
ह्वया॑मि॒ रात्रीं॒ जग॑तो नि॒वेश॑नीं॒ ह्वया॑मि दे॒वं स॑वि॒तार॑मू॒तये॑॥ १॥

पदार्थ—मैं (इह) इस शरीर धारणादि व्यवहार में (स्वस्तये) उत्तम सुख होने के लिये (प्रथमम्) शरीर धारण के आदि साधन (अग्निम्) रूप गुण-युक्त अग्नि के (ह्वयामि) ग्रहण की इच्छा करता हूं (अवसे) रक्षणादि के लिये (मित्रावरुणौ) प्राण वा उदान वायु को (ह्वयामि) स्वीकार करता हूं (जगतः) संसार को (निवेशनीम्) निद्रा में निवेश कराने वाली (रात्रीम्) सूर्य के अभाव से अन्धकार रूप रात्री को (ह्वयामि) प्राप्त होता हूं (ऊतये) क्रिया-सिद्धि की इच्छा के लिये (देवम्) द्योतनात्मक (सवितारम्) सूर्य लोक को (ह्वयामि) ग्रहण करता हूं॥ १॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि दिन रात सुख के लिये अग्नि वायु और सूर्य के सकाश से उपकार को ग्रहण करके सब सुखों को प्राप्त होवें क्योंकि इस विद्या के विना कभी किसी पुरुष को पूर्ण सुख का संभव नहीं हो सकता॥ १॥

आ कृ॒ष्णेन॒ रज॑सा॒ वर्त॑मानो निवे॒शय॑न्न॒मृतं॒ मर्त्यं॑ च।
हि॒र॒ण्यये॑न सवि॒ता रथे॒ना दे॒वो या॑ति॒ भुव॑नानि॒ पश्य॑न्॥ २॥

पदार्थ—यह (सविता) सब जगत् को उत्पन्न करने वाला (देवः) सब से अधिक प्रकाशयुक्त परमेश्वर (आकृष्णेन) अपनी आकर्षण शक्ति से (रजसा)

सब सूर्य्यादि लोकों के साथ व्यापक (**वर्त्तमानः**) हुआ (**अमृतम्**) अन्तर्यामिरूप वा वेद द्वारा मोक्ष साधक सत्य ज्ञान (**च**) और (**मर्त्यम्**) कर्मों और प्रलय की व्यवस्था से मरण युक्त जीव को (**निवेशयन्**) अच्छे प्रकार स्थापन करता हुआ (**हिरण्ययेन**) यशोमय (**रथेन**) ज्ञानस्वरूप रथ से युक्त (**भुवनानि**) लोकों को (**पश्यन्**) देखता हुआ (**आयाति**) अच्छे प्रकार सब पदार्थों को प्राप्त होता है ॥ १ ॥ यह (**सविता**) प्रकाश वृष्टि और रसों का उत्पन्न करने वाला (**कृष्णेन**) प्रकाश रहित (**रजसा**) पृथिवी आदि लोकों के साथ (**आवर्त्तमानः**) अपनी आकर्षण शक्ति से वर्त्तमान इस जगत् में (**अमृतम्**) वृष्टि द्वारा अमृतस्वरूप रस (**च**) तथा (**मर्त्यम्**) काल व्यवस्था से मरण को (**निवेशयन्**) अपने अपने सामर्थ्य में स्थापन करता हुआ (**हिरण्ययेन**) प्रकाशस्वरूप (**रथेन**) गमन शक्ति से (**भुवनानि**) लोकों को (**पश्यन्**) दिखाता हुआ (**आयाति**) अच्छे प्रकार वर्षा आदि रूपों की अलग अलग प्राप्ति कराता है ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जैसे सब पृथिवी आदि लोक मनुष्यादि प्राणियों वा सूर्यलोक अपने आकर्षण से पृथिवी आदि लोकों वा ईश्वर अपनी सत्ता से सूर्यादि सब लोकों का धारण करता है। ऐसे क्रम से सब लोकों का धारण होता है इसके विना अन्तरिक्ष में किसी अत्यन्त भार युक्त लोक का अपनी परिधि में स्थिति होने का संभव नहीं होता और लोकों के घूमने विना क्षण, मुहूर्त, प्रहर, दिन, रात, पक्ष, मास, ऋतु और संवत्सर आदि कालों के अवयव उत्पन्न नहीं हो सकते ॥ २ ॥

याति॑ दे॒वः प्र॒वता॒ यात्यु॒द्वता॒ याति॑ शु॒भ्राभ्यां॑ यज॒तो हरि॑भ्याम् ।
आ दे॒वो या॑ति सवि॒ता प॑रा॒वतोऽप॒ विश्वा॑ दुरि॒ता बाध॑मानः ॥३॥

पदार्थ—जैसे (**विश्वा**) सब (**दुरिता**) दुष्ट दुःखों को (**अप**) (**बाधमानः**) दूर करता हुआ (**यजतः**) संगम करने योग्य (**देवः**) श्रवण आदि ज्ञान का प्रकाशक वायु (**प्रवता**) नीचे मार्ग से (**याति**) जाता आता और (**उद्वता**) ऊर्ध्व मार्ग से (**याति**) जाता आता है और जैसे सब दुःख देने वाले अन्धकारादिकों को दूर करता हुआ (**यजतः**) संगत होने योग्य (**सविता**) प्रकाशक सूर्यलोक (**शुभ्राभ्याम्**) शुद्ध (**हरिभ्याम्**) कृष्ण वा शुक्लपक्षों से (**परावतः**) दूरस्थ पदार्थों को अपनी किरणों से प्राप्त होकर पृथिव्यादि लोकों को (**आयाति**) सब प्रकार प्राप्त होता है वैसे शूरवीरादि लोग सेना आदि सामग्री सहित ऊंचे नीचे मार्ग में जा आ के शत्रुओं को जीत कर प्रजा की रक्षा निरन्तर किया करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ईश्वरकी उत्पन्न की हुई सृष्टि में वायु नीचे ऊपर वा समगति से चलता हुआ नीचे के पदार्थों

को ऊपर और ऊपर के पादार्थों को नीचे करता है और जैसे दिनरात वा आकर्षण धारण गुण वाले अपने किरण समूह से युक्त सूर्यलोक अन्धकारादिकों के दूर करने से दुःखों का विनाश कर सुख और सुखों का विनाश कर दुःखों को प्रकट करता है वैसे ही सभापति आदि को भी अनुष्ठान करना चाहिये॥ ३॥

अभीवृतं कृशनैर्विश्वरूपं हिरण्यशम्यं यजतो बृहन्तम्।

आस्थाद्रथं सविता चित्रभानुः कृष्णा रजांसि तविषीं दधानः॥ ४॥

पदार्थ—हे सभा के स्वामी राजन्! आप जैसे (**यजतः**) संगति करने वा प्रकाश का देने वाला (**चित्रभानुः**) चित्र विचित्र दीप्ति युक्त (**सविता**) सूर्यलोक वा वायु (**कृशनैः**) तीक्ष्ण करने वाले किरण वा विविध रूपों से (**बृहन्तम्**) बड़े (**हिरण्यशम्यम्**) जिस में सुवर्ण वा ज्योति शांत करने योग्य हो (**अभीवृतम्**) चारों ओर से वर्त्तमान (**विश्वरूपम्**) जिसके प्रकाश वा चाल में बहुत रूप हैं उस (**रथम्**) रमणीय रथ (**कृष्णा**) आकर्षण वा कृष्णवर्ण युक्त (**रजांसि**) पृथिव्यादि लोकों और (**तविषीम्**) बल को (**दधानः**) धारण करता हुआ (**आस्थात्**) अच्छे प्रकार स्थित होता है वैसे अपना वर्त्ताव कीजिये॥ ४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे सूर्य आदि की उत्पत्ति का निमित्त सूर्य आदि लोक का धारण करने वाला बलवान् सब लोकों और आकर्षणरूपी बल को धारण करता हुआ वायु विचरता है और जैसे सूर्यलोक अपने समीप स्थलों को धारण और सब रूप विषय को प्रकट करता हुआ बल या आकर्षण शक्ति से सबको धारण करता है और इन दोनों के विना किसी स्थूल वा सूक्ष्म वस्तु के धारण का संभव नहीं होता वैसे ही राजा को होना चाहिये कि उत्तम गुणों से युक्त होकर राज्य का धारण किया करे॥ ४॥

विजनाञ्छ्यावाः शितिपादो अख्यन् रथं हिरण्यप्रउगं वहन्तः।

शश्वद्विशः सवितुर्दैव्यस्योपस्थे विश्वा भुवनानि तस्थुः॥ ५॥

पदार्थ—हे सज्जन पुरुष! आप जैसे जिस (**दैव्यस्य**) विद्वान् वा दिव्य पदार्थों में उत्पन्न होने वाले (**सवितुः**) सूर्यलोक की (**उपस्थे**) गोद अर्थात् आकर्षण शक्ति में (**विश्वा**) सब (**भुवनानि**) पृथिवी आदि लोक (**तस्थुः**) स्थित होते हैं उस के (**शितिपादः**) अपने श्वेत अवयवों से युक्त (**श्यावाः**) प्राप्ति होने वाले किरण (**जनान्**) विद्वानों (**हिरण्यप्रउगम्**) जिस में ज्योतिरूप अग्नि के मुख के समान स्थान हैं उस (**रथम्**) विमान आदि यान और (**शश्वत्**) अनादि रूप (**विशः**) प्रजाओं को (**वहन्तः**) धारण और बढ़ाते हुए (**अख्यन्**)

अनेक प्रकार प्रकट होते हैं वैसे तेरे समीप विद्वान् लोग रहें और तू भी विद्या तथा धर्म का प्रचार कर ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जैसे सूर्यलोक के प्रकाश वा आकर्षण आदि गुण सब जगत् को धारणपूर्वक यथायोग्य प्रकट करते हैं। और जो सूर्य के समीप लोक हैं वे सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। जो अनादि रूप प्रजा है उसका भी वायु धारण करता है इस प्रकार होने से सब लोक अपनी अपनी परिधि में स्थित होते हैं वैसे तुम सद्गुणों को धारण और अपने अपने अधिकारों में स्थित होकर अन्य सब को न्याय मार्ग में स्थापन किया करो ॥ ५ ॥

तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वा उपस्थाँ एका यमस्य भुवने विराषाट् ।
आणिं न रथ्यममृताधि तस्थुरिह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! तू (**रथ्यम्**) रथ आदि के चलाने योग्य (**आणिम्**) संग्राम को जीतने वाले राजभृत्यों के (**न**) समान इस (**सवितुः**) सूर्यलोक के प्रकाश में जो (**तिस्रः**) तीन अर्थात् (**द्यावः**) सूर्य अग्नि और विद्युत् रूप के साधनों से युक्त (**अधितस्थुः**) स्थित होते हैं उन में से (**द्वौ**) दो प्रकाश वा भूगोल सूर्य मण्डल के (**उपस्था**) समीप में रहते हैं और (**एका**) एक (**विराषाट्**) शूरवीर ज्ञानवान् प्राप्ति स्वभाव वाले जीवों को सहने वाली बिजुली रूप दीप्ति (**यमस्य**) नियम करने वाले वायु के (**भुवने**) अन्तरिक्ष में ही रहती है और जो (**अमृता**) कारणरूप से नाशरहित चन्द्र तारे आदि लोक हैं वे इस सूर्य लोक के प्रकाश में प्रकाशित होकर (**अधितस्थुः**) स्थित होते हैं (**यः**) जो मनुष्य (**उ**) वादविवाद से इन को (**चिकेतत्**) जाने और उस ज्ञान को [(**इह**) इस संसार या विद्या में] (**ब्रवीतु**) अच्छे प्रकार उपदेश करे उसी के समान हो के हम को सद्गुणों का उपदेश किया कर ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जिस ईश्वर ने अग्निरूप कारण से सूर्य, अग्नि और बिजुली रूप तीन प्रकार की दीप्ति रची है जिनके द्वारा सब कार्य सिद्ध होते हैं। जब कोई ऐसा पूछे कि जीव अपने शरीरों को छोड़ के जिस यम के स्थान को प्राप्त होते हैं वह कौन है तब उत्तर देनेवाला अन्तरिक्ष में रहने वाले वायु को प्राप्त होते हैं ऐसा कहै। जैसे युद्ध में रथ भृत्य आदि सेना के अङ्गों में स्थित होते हैं वैसे मरे और जीते हुए जीव वायु के अवलम्ब से स्थित होते हैं। पृथिवी चन्द्रमा और नक्षत्रादि लोक सूर्यप्रकाश के आश्रय से स्थित होते हैं। जो विद्वान् हो वही प्रश्नों के उत्तर कह सकता

है, मूर्ख नहीं। इसलिये मनुष्यों को मूर्ख अर्थात् अनाप्तों के कहने में विश्वास और विद्वानों के कथन में अश्रद्धा कभी न करनी चाहिये॥ ६॥

वि सुपर्णो अन्तरिक्षाण्यख्यद् गभीरवेपा असुरः सुनीथः।
क्वे३दानीं सूर्यः कश्चिकेत कतमां द्यां रश्मिरस्या ततान॥ ७॥

पदार्थ—हे विद्वज्जन! जैसे यह सूर्यलोक जो (**असुरः**) सब के लिये प्राणदाता अर्थात् रात्रि में सोये हुओं को उदय के समय चेतनता देने (**गभीरवेपाः**) जिसका कम्पन गभीर अर्थात् सूक्ष्म होने से साधारण पुरुषों के मन में नहीं बैठता (**सुनीथः**) उत्तम प्रकार से पदार्थों की प्राप्ति कराने और (**सुपर्णः**) उत्तम पतन स्वभाव किरण युक्त सूर्य्य (**अन्तरिक्षाणि**) अन्तरिक्ष में ठहरे हुए सब लोकों को (**व्यख्यत्**) प्रकाशित करता है (**इदानीम्**) इस वर्त्तमान समय रात्रि में (**क**) कहां है? इस बात को (**कः**) कौन (**चिकेत**) जानता तथा (**कतमाम्**) बहुतों में किस (**द्याम्**) प्रकाश को (**अस्य**) इस सूर्य्य के (**रश्मिः**) किरण (**आततान**) व्याप्त हो रहे हैं इस बात को भी कौन जानता है? अर्थात् कोई कोई जो विद्वान् हैं वे ही जानते हैं सब साधारण पुरुष नहीं। इसलिये सूर्य्यलोक का स्वरूप और गति आदि को तू जान॥ ७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जब यह भूगोल अपने भ्रमण से सूर्य्य के प्रकाश का आच्छादन कर अन्धकार करता है तब साधारण मनुष्य पूछते हैं कि अब वह सूर्य्य कहाँ गया? उस प्रश्न का उत्तर से समाधान करे कि पृथिवी के दूसरे पृष्ठ में है। जिसका चलना अति सूक्ष्म है जैसे वह मूर्ख मनुष्यों से जाना नहीं जाता वैसे ही महाशय मनुष्यों का आशय भी अविद्वान् लोग नहीं जान सकते॥ ७॥

अष्टौ व्यख्यत्ककुभः पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून्।
हिरण्याक्षः सविता देव आगाद्दधद्रत्ना दाशुषे वार्य्याणि॥ ८॥

पदार्थ—हे सभेश! जैसे जो (**हिरण्याक्षः**) जिसके सुवर्ण के समान ज्योति हैं वह (**सविता**) वृष्टि उत्पन्न करने वाला (**देवः**) द्योतनात्मक सूर्यलोक (**पृथिव्याः**) पृथिवी से सम्बन्ध रखने वाली (**अष्टौ**) आठ (**ककुभः**) दिशा अर्थात् चार दिशा और चार उपदिशाओं (**त्री**) तीन भूमि अन्तरिक्ष और प्रकाश के अर्थात् ऊपर नीचे और मध्य में ठहरने वाले (**धन्व**) प्राप्त होने योग्य (**योजना**) सब वस्तु के आधार तीन लोकों और (**सप्त**) सात (**सिन्धून्**) भूमि अंतरिक्ष वा ऊपर स्थित हुए जलसमुदायों को (**व्यख्यत्**) प्रकाशित करता है वह (**दाशुषे**) सर्वोपकारक विद्यादि उत्तम पदार्थ देने वाले यजमान के लिये (**वार्य्याणि**) स्वीकार

करने योग्य (**रत्ना**) पृथिवी आदि वा सुवर्ण आदि रमणीय रत्नों को (**दधत्**) धारण करता हुआ (**आगात्**) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी वर्तो ॥ ८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे यह सूर्यलोक सब मूर्तिमान् पदार्थों का प्रकाश छेदन वायु द्वारा अन्तरिक्ष में प्राप्त और वहां से नीचे गेर कर सब रमणीय सुखों को जीवों के लिये उत्पन्न करता और पृथिवी में स्थित और उनचास क्रोश पर्यन्त अन्तरिक्ष में स्थूल सूक्ष्म लघु और गुरु रूप से स्थित हुए जलों को अर्थात् जिन का सप्तसिंधु नाम है आकर्षणशक्ति से धारण करता है वैसे सब विद्वान् लोग विद्या और धर्म से सब प्रजा को धारण कर के सब को आनन्द में रखें॥ ८॥

हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते।
अपामीवां बाधते वेति सूर्यमभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति॥ ९॥

पदार्थ—हे सभाध्यक्ष! जैसे (**हिरण्यपाणिः**) जिस के हिरण्यरूप ज्योति हाथों के समान ग्रहण करने वाले हैं (**विचर्षणिः**) पदार्थों को छिन्न भिन्न और (**सविता**) रसों को उत्पन्न करने वाला सूर्यलोक (**उभे**) दोनों (**द्यावापृथिवी**) प्रकाशभूमि को (**अन्तः**) अन्तरिक्ष के मध्य में (**ईयते**) प्राप्त (**अमीवाम्**) रोग पीड़ा का (**अपबाधते**) निवारण (**सूर्य्यं**) सब को प्राप्त होने वाले अपने किरण समूह को (**अभिवेति**) साक्षात् प्रकट और (**कृष्णेन**) पृथिवी आदि प्रकाश रहित (**रजसा**) लोकसमूह के साथ अपने (**द्याम्**) प्रकाश को (**ऋणोति**) प्राप्त करता है वैसे तुझ को भी होना चाहिये॥ ९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे सभापते! जैसे यह सूर्य्यलोक बहुत लोकों के साथ आकर्षण सम्बन्ध से वर्त्तमान सब वस्तु-मात्र को प्रकाशित करता हुआ प्रकाश तथा पृथिवी लोक का मेल करता है वैसे स्वभावयुक्त आप हूजिये॥ ९॥

हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ्।
अपसेधन्रक्षसो यातुधानानस्थाद्देवः प्रतिदोषं गृणानः॥ १०॥

पदार्थ—हे सभापते! आप जैसे यह (**हिरण्यहस्तः**) जिसका चलना हाथ के समान है (**असुरः**) प्राणों की रक्षा करने वाला रूप गुण रहित (**सुनीथः**) सुन्दर रीति से सब को प्राप्त होने (**सुमृडीकः**) उत्तम व्यवहारों से सुखयुक्त करने और (**स्ववान्**) उत्तम उत्तम स्पर्श आदि गुण वाला (**अर्वाङ्**) अपने नीचे ऊपर टेढ़े जाने वाले वेगों को प्राप्त होता हुआ वायु चारों ओर से चलता है तथा (**प्रतिदोषम्**) रात्रि रात्रि के प्रति (**गृणानः**) गुणकथन से स्तुति करने योग्य

(**देवः**) सुखदायक वायु दुःखों को निवृत्त और सुखों को प्राप्त करके (**अस्थात्**) स्थित होता है वैसे (**रक्षसः**) दुष्ट कर्म करने वाले (**यातुधानान्**) जिनसे पीड़ा आदि दुःख होते हैं उन डाकुओं को (**अपसेधन्**) निवारण करते हुए श्रेष्ठों को प्राप्त हूजिये ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे सभापते ! जैसे यह वायु अपने आकर्षण और बल आदि गुणों से सब पदार्थों को व्यवस्था में रखता है और जैसे दिन में चोर प्रबल नहीं हो सकते हैं वैसे आप भी हूजिये और तुम को जिस जगदीश्वर ने बहुत गुणयुक्त सुखप्राप्त करने वाले वायु आदि पदार्थ रचे हैं उसी को सब धन्यवाद देने योग्य हैं ॥ १० ॥

ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे ।
तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ॥११॥

पदार्थ—हे (**सवितः**) सकल जगत् के रचने और (**देव**) सब सुख देने वाले जगदीश्वर ! (**ये**) जो (**ते**) आपके (**अरेणवः**) जिनमें कुछ भी धूलि के अंशों के समान विघ्नरूप मल नही हैं तथा (**पूर्व्यासः**) जो हमारी अपेक्षा से प्राचीनों ने सिद्ध और सेवन किये हैं (**सुकृताः**) अच्छे प्रकार सिद्ध किये हुए (**पन्थाः**) मार्ग (**अन्तरिक्षे**) अपने व्यापकता रूप ब्रह्माण्ड में वर्त्तमान हैं (**तेभिः**) उन (**सुगेभिः**) सुखपूर्वक सेवने योग्य (**पथिभिः**) मार्गों से (**नः**) हम लोगों की (**अद्य**) आज (**रक्ष**) रक्षा कीजिये (**च**) और (**नः**) हम लोगों के लिये सब विद्याओं का (**अधिब्रूहि**) उपदेश (**च**) भी कीजिये ॥ ११ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! आपने जो सूर्य आदि लोकों के घूमने और प्राणियों के सुख के लिये आकाश या अपने महिमारूप संसार में शुद्ध मार्ग रचे हैं जिन में सूर्यादि लोक यथानियम से घूमते और सब प्राणी विचरते हैं उन सब पदार्थों के मार्गों तथा गुणों का उपदेश कीजिये कि जिससे हम लोग इधर उधर चलायमान न होवें ॥ ११ ॥

इस सूक्त में सूर्यलोक वायु और ईश्वर के गुणों का प्रतिपादन करने से चौंतीसवें सूक्त के साथ इस सूक्त की संगति जाननी चाहिये ॥

यह पैंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

घोरः काण्व ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । १२ भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । २ निचृत्सतः पङ्क्तिः । ४ निचृत्पङ्क्तिः । १० । १४ निचृद्विष्टारपङ्क्तिः । १८ विष्टारपङ्क्तिः । २० सतः पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३ । ११ निचृत्पथ्या बृहती । ५ । १६ निचृद्बृहती । ६ भुरिग् बृहती । ७ बृहती । ८ स्वराड् बृहती । ९ निचृदुपरिष्टाद् बृहती १३ उपरिष्टाद् बृहती । १५ विराट् पथ्या बृहती । १७ विराडुपरिष्टाद्बृहती । १९ पथ्याबृहती च छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

प्र वो॑ य॒ह्वं पु॑रू॒णां वि॒शां दे॑वय॒तीना॑म् ।

अ॒ग्निं सू॒क्तेभि॒र्वचो॑भिरीमहे॒ यं सी॒मिद॒न्य ईळ॑ते ॥ १ ॥

पदार्थ—हम लोग जैसे (अन्ये) अन्य परोपकारी धर्मात्मा विद्वान् लोग (सूक्तेभिः) जिन में अच्छे प्रकार विद्या कही हैं उन (वचोभिः) वेद के अर्थ ज्ञान-युक्त बचनों से (देवयतीनाम्) अपने लिये दिव्य भोग वा दिव्य गुणों की इच्छा करने वाले (पुरूणाम्) बहुत (वः) तुम (विशाम्) प्रजा लोगों के सुख के लिए (यम्) जिस (यह्वम्) अनन्त गुणयुक्त (अग्निम्) परमेश्वर को (सीम्+ईळते) सब प्रकार स्तुति करते हैं वैसे उस (इत्) ही की (प्रेमहे) अच्छे प्रकार याचना और गुणों का प्रकाश करें ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे तुम लोग पूर्ण विद्यायुक्त विद्वान् लोग प्रजा के सुख की संपत्ति के लिये सर्वव्यापी परमेश्वर का निश्चय तथा उपदेश करके प्रयत्न से जानते हैं वैसे ही हम लोग भी उसके गुण प्रकाशित करें। जैसे ईश्वर अग्नि आदि पदार्थों रचन और पालन से जीवों में सब सुखों को धारण करता है वैसे हम लोग भी सब प्राणियों के लिये सदा सुख वा विद्या को सिद्ध करते रहें ऐसा जानो ॥ १ ॥

जना॑सो अ॒ग्निं द॑धिरे सहो॒वृधं॑ ह॒विष्म॑न्तो विधेम ते ।

स त्वं नो॑ अ॒द्य सु॒मना॑ इ॒हावि॒ता भवा॒ वाजे॑षु संत्य ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (सन्त्य) सब वस्तु देने हारे ईश्वर ! जैसे (हविष्मन्तः) उत्तम देने लेने योग्य वस्तु वाले (जनासः) विद्या में प्रसिद्ध हुए विद्वान् लोग जिस (ते) आपके आश्रय का (दधिरे) धारण करते हैं वैसे उन (सहोवृधम्) बल को बढ़ाने वाले (अग्निम्) सब के रक्षक आप को हम लोग (विधेम) सेवन करें (सः) सो (सुमनाः) उत्तम ज्ञान वाले (त्वम्) आप (अद्य) आज (नः) हम लोगों के (इह) संसार और (वाजेषु) युद्धों में (अविता) रक्षक और सब विद्याओं में प्रवेश कराने वाले (भव) हूजिये ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को एक अद्वितीय परमेश्वर की उपासना ही से संतुष्ट रहना चाहिये क्योंकि विद्वान् लोग परमेश्वर के स्थान में अन्य वस्तु को उपासना भाव से स्वीकार कभी नहीं करते इसी कारण उनका युद्ध वा इस संसार में कभी पराजय दीख नहीं पड़ता क्योंकि वे धार्मिक ही होते हैं और इसी से ईश्वर की उपासना नहीं करने वाले उनके जीतने को समर्थ नहीं होते, क्योंकि ईश्वर जिनकी रक्षा करने वाला है उनका कैसे पराजय हो सकता है ॥ २ ॥

प्र त्वा दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
महस्ते सतो वि चरन्त्यर्चयो दिवि स्पृशन्ति भानवः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् राजदूत ! जैसे हम लोग (विश्ववेदसम्) सब शिल्पविद्या का हेतु (होतारम्) ग्रहण करने और (दूतम्) सब पदार्थों को तपाने वाले अग्नि को (वृणीमहे) स्वीकार करते हैं वैसे (त्वा) तुझ को भी ग्रहण करते हैं तथा जैसे (महः) महागुणविशिष्ट (सतः) सत्कारणरूप से नित्य अग्नि के (भानवः) किरण सब पदार्थों से (स्पृशन्ति) संबन्ध करते और (अर्चयः) प्रकाशरूप ज्वाला (दिवि) द्योतनात्मक सूर्य के प्रकाश में (विचरन्ति) विशेष करके प्राप्त होती हैं वैसे तेरे भी सब काम होने चाहियें ॥ ३ ॥

भावार्थ - इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे अपने काम में प्रवीण राजदूत ! जैसे सब मनुष्य महाप्रकाशादिगुणयुक्त अग्नि को पदार्थों की प्राप्ति वा अप्राप्ति के कारण दूत के समान जान और शिल्पकार्यों को सिद्ध करके सुखों को स्वीकार करते और जैसे इस बिजुली रूप अग्नि की दीप्ति सब जगह वर्तती है और प्रसिद्ध अग्नि की दीप्ति छोटी होने तथा वायु के छेदक होने से अवकाश करने वाली होकर ज्वाला ऊपर जाती है वैसे तू भी अपने कामों में प्रवृत्त हो ॥ ३ ॥

देवासस्त्वा वरुणो मित्रो अर्यमा सं दूतं प्रत्नमिन्धते ।
विश्वं सो अग्ने जयति त्वया धनं यस्ते ददाश मर्त्यः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) धर्म विद्या श्रेष्ठ गुणों से प्रकाशमान सभापते ! (यः) जो (ते) तेरा (दूतः) दूत (मर्त्यः) मनुष्य तेरे लिये (धनम्) विद्या राज्य सुवर्णादि श्री को (ददाश) देता है तथा जो (त्वया) तेरे साथ शत्रुओं को (जयति) जीतता है (मित्रः) सब का सुहृद् (वरुणः) सब से उत्तम (अर्यमा) न्यायकारी (देवासः) ये सब सभ्य विद्वान् मनुष्य जिसको (समिन्धते) अच्छे प्रकार प्रशंसित जानकर स्वीकार के लिये शुभ गुणों से प्रकाशित करें जो (त्वा)

तुझ और सब प्रजा को प्रसन्न रक्खे (सः) वह दूत (प्रत्नम्) जो कि कारणरूप से अनादि है (विश्वम्) राज्य को सुरक्षित रखने को योग्य होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—कोई भी मनुष्य सब शास्त्रों में प्रवीण राजधर्म को ठीक ठीक जानने, पर अपर इतिहासों के वेत्ता, धर्मात्मा, निर्भयता से सब विषयों के वक्ता, शूरवीर दूतों और उत्तम राजा सहित सभासदों के विना राज्य को पाने, पालने, बढ़ाने और परोपकार में लगाने को समर्थ नहीं हो सकते इससे पूर्वोक्त प्रकार ही से राज्य की प्राप्ति आदि का विधान सब लोग सदा किया करें ॥ ४ ॥

मन्द्रो होता गृहपतिरग्ने दूतो विशामसि ।
त्वे विश्वा संगतानि व्रता ध्रुवा यानि देवा अकृण्वत ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) शरीर और आत्मा के बल से सुशोभित ! जिससे आप (**मन्द्रः**) पदार्थों की प्राप्ति करने से सुख का हेतु (**होता**) सुखों के देने (**गृहपतिः**) गृहकार्यों का पालन (**दूतः**) दुष्ट शत्रुओं को तप्त और छेदन करने वाले (**विशाम्**) प्रजाओं के (**पतिः**) रक्षक (**असि**) हैं इससे सब प्रजा (**यानि**) जिन (**विश्वा**) सब (**ध्रुवा**) निश्चल (**संगतानि**) सम्यक् युक्त समयानुकूल प्राप्त हुए (**व्रता**) धर्मयुक्त कर्मों को (**देवाः**) धार्मिक विद्वान् लोग (**अकृण्वत**) करते हैं उनका सेवन (**त्वे**) आपके रक्षक होने से सदा कर सकती हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो प्रशस्त राजा, दूत और सभासद् होते हैं वे ही राज्य को पालन कर सकते हैं इन से विपरीत मनुष्य नहीं कर सकते ॥ ५ ॥]

त्वे इदग्ने सुभगे यविष्ठ्य विश्वमाहूयते हविः ।
स त्वं नो अद्य सुमना उतापरं यक्षि देवान्त्सुवीर्या ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (**यविष्ठ्य**) पदार्थों के मेल करने में बलवान् (**अग्ने**) सुख देने वाले राजन् ! जैसे होता [से] (**अग्नौ**) अग्नि में (**विश्वम्**) सब (**हविः**) उत्तमता से संस्कार किया हुआ पदार्थ (**आहूयते**) डाला जाता है वैसे जिस (**सुभगे**) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त (**त्वे**) आप में न्याय करने का काम स्थापित करते हैं सो (**सुमनाः**) अच्छे मनवाले (**त्वम्**) आप (**अद्य**) आज (**उत**) और (**अपरम्**) दूसरे दिन में भी (**नः**) हम लोगों को (**सुवीर्या**) उत्तम वीर्य वाले (**देवान्**) विद्वान् (**इत्**) ही (**यक्षि**) कीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् लोग वह्नि में पवित्र होम करके योग्य घृतादि पदार्थों को होम के संसार के लिये

सुख उत्पन्न करते हैं वैसे ही दुष्टों को बन्धीघर में डाल के सज्जनों को आनन्द सदा दिया करें ॥ ६ ॥

तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते ।

होत्राभिरग्निं मनुषः समिन्धते तितिर्वांसो अति स्रिधः ॥ ७ ॥

पदार्थ—जो (**नमस्विनः**) उत्तम सत्कार करने वाले (**मनुषः**) मनुष्य (**होत्राभिः**) हवनयुक्त सत्य क्रियाओं से (**स्वराजम्**) अपने राजा (**अग्निम्**) ज्ञानवान् सभाध्यक्ष को (**घ**) ही (**उपासते**) उपासना और (**तम्**) उसी का (**समिन्धते**) प्रकाश करते हैं वे मनुष्य (**स्रिधः**) हिंसा नाश करने वाले शत्रुओं को (**अति तितिर्वांसः**) अच्छे प्रकार जीतकर पार हो सकते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—कोई भी मनुष्य सभाध्यक्षकी उपासना करने वाले भृत्य और सभासदों के विना अपने राज्य की सिद्धि को प्राप्त होकर शत्रुओं से विजय को प्राप्त नहीं हो सवता ॥ ७ ॥

घ्नन्तो वृत्रमतरन्रोदसी अप उरु क्षयाय चक्रिरे।

भुवत्कण्वे वृषा द्युम्न्याहुतः क्रन्ददश्वो गविष्टिषु ॥ ८ ॥

पदार्थ—राजपुरुष ! जैसे बिजुली सूर्य और उसके किरण (**वृत्रम्**) मेघ का छेदन करते और वर्षावते हुए आकाश और पृथिवी को जल से पूर्ण तथा इन कर्मों को प्राणियों के संसार में अधिक निवास के लिए करते हैं वैसे ही शत्रुओं को (**घ्नन्तः**) मारते हुए (**रोदसी**) प्रकाश और अंधेरे में (**अपः**) कर्म को करें और सब जीवों को (**अतरन्**) दुःखों के पार करें तथा (**गविष्टिषु**) गाय आदि पशुओं के संघातों में (**क्रन्दत्**) शब्द करते हुए (**अश्वः**) घोड़े के समान (**आहुतः**) राज्याधिकार में नियत किया (**वृषा**) सुख की वृष्टि करने वाला (**उरुक्षयाय**) बहुत निवास के लिए (**कण्वे**) बुद्धिमान् में (**द्युम्नी**) बहुत ऐश्वर्य को धरता हुआ सुखी (**भुवत्**) होवे ॥ ८ ॥

भावार्थ—जैसे बिजुली, भौतिक और सूर्य यही तीन प्रकार के अग्नि मेघ को छिन्न भिन्न कर सब लोकों को जल से पूर्ण करते हैं उनका युद्ध-कर्म सब प्राणियों के अधिक निवास के लिये होता है वैसे ही सभाध्याक्षादि राजपुरुषों को चाहिए कि कण्टकरूप शत्रुओं को मार के प्रजा को निरन्तर तृप्त करें ॥ ८ ॥

सं सीदस्व महाँ असि शोचस्व देववीतमः ।

वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (तेजस्विन्) विद्याविनययुक्त (मियेध्य) प्राज्ञ (अग्ने) विद्वन् सभापते ! जो आप (महान्) बड़े बड़े गुणों से युक्त (असि) हैं सो (देववीतमः) विद्वानों को व्याप्त होने हारे आप न्याय धर्म में स्थित होकर (संसीदस्व) सब दोषों का नाश कीजिये और (शोचस्व) प्रकाशित हूजिये हे (प्रशस्त) प्रशंसा करने योग्य राजन् ! आप (विधूमम्) धूम सदृश मल से रहित (दर्शतम्) देखने योग्य (अरुषम्) रूप को (सृज) उत्पन्न कीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—प्रशंसित बुद्धिमान् राजपुरुषों को चाहिये कि अग्नि के समान तेजस्वि और बड़े बड़े गुणों से युक्त हों और श्रेष्ठ गुणवाले पृथिवी आदि भूतों के तत्व को जान के प्रकाशमान होते हुए निर्मल देखने योग्य स्वरूपयुक्त पदार्थों को उत्पन्न करें ॥ ९ ॥

यं त्वा देवासो मनवे दधुरिह यजिष्ठं हव्यवाहन ।

यं कण्वो मेध्यातिथिर्धनस्पृतं यं वृषा यमुपस्तुतः ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (हव्यवाहन) ग्रहण करने योग्य वस्तुओं की प्राप्ति कराने वाले सभ्यजन ! (यम्) जिस विचारशील (यजिष्ठम्) अत्यन्त यज्ञ करने वाले (त्वा) आप को (देवासः) विद्वान् लोग (मनवे) विचारने योग्य राज्य की शिक्षा के लिये (इह) इस पृथिवी में (दधुः) धारण करते (यम्) जिस शिक्षा पाये हुए (धनस्पृतम्) विद्या सुवर्ण आदि धन से युक्त आपको (मेध्यातिथिः) पवित्र अतिथियों से युक्त अध्यापक (कण्वः) विद्वान् पुरुष स्वीकार करता (यम्) जिस सुख की वृष्टि करने वाले (त्वा) आप को (वृषा) सुखों का फैलाने वाला धारण करता और (यम्) जिस स्तुति के योग्य आप को (उपस्तुतः) समीपस्थ सज्जनों की स्तुति करने वाला राजपुरुष धारण करता है उन आप को हम लोग सभापति के अधिकार में नियत करते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ—इस सृष्टि में सब मनुष्यों को चाहिये कि विद्वान् और अन्य सब श्रेष्ठ चतुर पुरुष मिल के जिस विचारशील ग्रहण के योग्य वस्तुओं के प्राप्त कराने वाले शुभ गुणों से भूषित विद्या सुवर्णादिधनयुक्त सभा के योग्य पुरुष को राज्य शिक्षा के लिये नियुक्त करें वही पिता के तुल्य पालन करने वाला जन राजा होवे ॥ १० ॥

यमग्निं मेध्यातिथिः कण्व ईध ऋतादधि ।

तस्य प्रेषो दीदियुस्तमिमा ऋचस्तमग्निं वर्धयामसि ॥ ११ ॥

पदार्थ—(मेध्यातिथिः) पवित्र सेवक शिष्यवर्गों से युक्त (कण्वः) विद्यासिद्ध कर्मकाण्ड में कुशल विद्वान् (ऋतादधि) मेघमण्डल के ऊपर से सामर्थ्य होने

के लिए (यम्) जिस (अग्निम्) दाहयुक्त सब पदार्थों के काटने वाले अग्नि को (ईधे) प्रदीप्त करता है (तस्य) उस अग्नि के (इषः) घृतादि पदार्थों को मेघमण्डल में प्राप्त करने वाले किरण (प्र) अत्यन्त (दीदियुः) प्रज्वलित होते हैं और (इमाः) ये (ऋचः) वेद के मन्त्र जिस अग्नि के गुणों का प्रकाश करते हैं (तम्) उसी (अग्निम्) अग्नि को सभाध्यक्षादि राजपुरुष हम लोग शिल्पक्रिया सिद्धि के लिए (वर्धयामसि) बढ़ाते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—सभाध्यक्षादि राजपुरुषों को चाहिये कि होता आदि विद्वान् लोग वायु वृष्टि के शोधक हवन के लिये जिस अग्नि को प्रकाशित करते हैं जिसके किरण ऊपर को प्रकाशित होते और जिसके गुणों को वेदमन्त्र कहते हैं उसी अग्नि को राज्यसाधक क्रियासिद्धि के लिये बढ़ावें ॥११॥

रायस्पूर्धि स्वधावोऽस्ति हि तेऽग्ने देवेष्वाप्यम् ।
त्वं वाजस्य श्रुत्यस्य राजसि स नो मृड महाँ असि ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (स्वधावः) भोगने योग्य अन्नादि पदार्थों से युक्त (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी सभाध्यक्ष ! (हि) जिस कारण (ते) आपकी (देवेषु) विद्वानों के बीच में (आप्यम्) ग्रहण करने योग्य मित्रता (अस्ति) है इसलिये आप (रायः) विद्या, सुवर्ण और चक्रवर्त्ति राज्यादि धनों को (पूर्धि) पूर्ण कीजिये जो आप (महान्) बड़े बड़े गुणों से युक्त (असि) हैं और (श्रुत्यस्य) सुनने के योग्य (वाजस्य) युद्ध के बीच में प्रकाशित होते हैं (सः) सो (त्वम्) पुत्र के तुल्य प्रजा की रक्षा करने हारे आप (नः) हम लोगों को (मृड) सुखयुक्त कीजिये ॥ १२ ॥

भावार्थ—वेदों को जानने वाले उत्तम विद्वानों में मित्रता रखते हुए सभाध्यक्षादि राजपुरुषों को उचित है कि अन्नधन आदि पदार्थों के कोशों को निरन्तर भर और प्रसिद्ध डाकुओं के साथ निरन्तर युद्ध करने को समर्थ होके प्रजा के लिये बड़े बड़े सुख देने वाले होवें ॥ १२ ॥

ऊर्ध्व ऊ षु णं ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे सभापते ! आप (देवः) सब प्रकाशित करने हारे (सविता) सूर्य लोक के (न) समान (नः) हम लोगों की रक्षा आदि के लिये (ऊर्ध्वः) ऊंचे आसन पर (सुतिष्ठ) सुशोभित हूजिये (उ) और (ऊर्ध्वः) उन्नति को प्राप्त हुए (वाजस्य) युद्ध के (सनिता) सेवने वाले हूजिये इसलिये हम लोग (अञ्जिभिः) यज्ञ के साधनों को प्रसिद्ध करने तथा (वाघद्भिः) सब ऋतुओं में

यज्ञ करने वाले विद्वानों के साथ (विह्वयामहे) विविध प्रकार के शब्दों से आपकी स्तुति करते हैं ॥ १३ ॥

भावार्थ—सूर्य्य के समान अति तेजस्वी सभापति को चाहिये कि संग्राम सेवन से दुष्ट शत्रुओं को हटा के सब प्राणियों की रक्षा के लिए प्रसिद्ध विद्वानों के साथ सभा के बीच में ऊंचे आसन पर बैठे ॥ १३ ॥

ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह ।
कृधी न ऊर्ध्वान् चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः ॥१४॥

पदार्थ—हे सभापते ! आप (केतुना) बुद्धि के दान से (नः) हम लोगों को (अंहसः) दूसरे का पदार्थ हरणरूप पाप से (निपाहि) निरन्तर रक्षा (विश्वम्) सब दूसरे के पदार्थों को खाने वाले शत्रुमात्र को (संदह) अच्छे प्रकार जलाइये और (अत्रिणम्) अन्याय से (ऊर्ध्वः) सब से उत्कृष्ट आप (चरथाय) ज्ञान और सुख की प्राप्ति के लिए (नः) हम लोगों को (ऊर्ध्वान्) बड़े बड़े गुण कर्म और स्वभाव वाले (कृधि) कीजिये तथा (नः) हम को (देवेषु) धार्मिक विद्वानों में (जीवसे) संपूर्ण अवस्था होने के लिये (दुवः) सेवा को (विदाः) प्राप्त कीजिये ॥ १४ ॥

भावार्थ—अच्छे गुण कर्म और स्वभाव वाले सभाध्यक्ष राजा को चाहिये कि राज्य की रक्षा नीति और दण्ड के भय से सब मनुष्यों को पाप से हटा सब शत्रुओं को मार और विद्वानों की सब प्रकार सेवा करके प्रजा में ज्ञान सुख और अवस्था बढ़ाने के लिये सब प्राणियों को शुभगुणयुक्त सदा किया करें ॥ १४ ॥

पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः ।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे (बृहद्भानो) बड़े बड़े विद्यादि ऐश्वर्य के तेजवाले (यविष्ठ्य) अत्यन्त तरुणावस्थायुक्त (अग्ने) सब से मुख्य सब की रक्षा करने वाले मुख्य सभाध्यक्ष महाराज ! आप (धूर्तेः) कपटी अधर्मी (अराव्णः) दान धर्म रहित कृपण (रक्षसः) महाहिंसक दुष्ट मनुष्य से (नः) हम को (पाहि) बचाइये (रिषतः) सब को दुःख देने वाले सिंह आदि दुष्ट जीव दुष्टाचारी मनुष्य से हम को पृथक् रखिये (उत) और (वा) भी (जिघांसतः) मारने की इच्छा करते हुए शत्रु से हमारी रक्षा कीजिये ॥ १५ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिए कि सब प्रकार रक्षा के लिये सर्व-रक्षक धर्मोन्नति की इच्छा करने वाले सभाध्यक्ष की सर्वदा प्रार्थना करें

और अपने आप भी दुष्ट स्वभाव वाले मनुष्य आदि प्राणियों और सब पापों से मन वाणी और शरीर से दूर रहें क्योंकि इस प्रकार रहने के विना कोई मनुष्य सर्वदा सुखी नहीं रह सकता ॥ १५ ॥

घनेव विष्वग्वि जह्यराव्णस्तपुर्जम्भ यो अस्मध्रुक् ।
यो मर्त्यः शिशीते अत्यक्तुभिर्मा नः स रिपुरीशत ॥ १६ ॥

पदार्थ—(तपुर्जम्भ) शत्रुओं को सताने और नाश करने के शस्त्र बांधने वाले सेनापते ! (विष्वक्) सर्वथा सेनादि बलों से युक्त हो के आप (अराव्णः) सुखदान रहित शत्रुओं को (घनेव) घन के समान (विजहि) विशेष करके जीत और (यः) जो (मर्त्यः) मनुष्य (अक्तुभिः) रात्रियों से (अस्मद्ध्रुक्) हमारा द्रोही (अतिशिशीते) अति हिंसा करता हो (सः) सो (रिपुः) वैरी (नः) हम लोगों को पीड़ा देने में (मेशत) मत समर्थ होवे ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है। सेनाध्यक्षादि लोग जैसे लोहा के घन से लोहे और पाषाणादिकों को तोड़ते हैं वैसे ही अधर्म्मी दुष्ट शत्रुओं के अंगों को छिन्न भिन्न कर दिन रात धर्मात्मा प्रजाजनों के पालन में तत्पर हों जिससे शत्रूजन इन प्रजाओं को दुःख देने को समर्थ न हो सकें ॥ १६ ॥

अग्निर्वव्ने सुवीर्यमग्निः कण्वाय सौभगम् ।
अग्निः प्रावन्मित्रोत मेध्यातिथिमग्निः साता उपस्तुतम् ॥ १७ ॥

पदार्थ—जो विद्वान् (अग्नि) भौतिक अग्नि के समान (सातौ) युद्ध में (उपस्तुतम्) उपगत स्तुति के योग्य (सुवीर्य्यम्) अच्छे प्रकार शरीर और आत्मा के बल पराक्रम (अग्निः) विद्युत् के सदृश (कण्वाय) उसी बुद्धिमान् के लिये (सौभगम्) अच्छे ऐश्वर्य को (वव्ने) किसी ने याचित किया हुआ देता है (अग्निः) पावक के तुल्य (मित्रा) मित्रों को (आवत्) पालन करता (उत) और (अग्निः) जाठराग्निवत् (उपस्तुतम्) शुभ गुणों से स्तुति करने योग्य (मेध्यातिथिम्) कारीगर विद्वान् को सेवे वही पुरुष राजा होने को योग्य होता है ॥ १७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे यह भौतिक अग्नि विद्वानों का ग्रहण किया हुआ उनके लिये बल पराक्रम और सौभाग्य को देकर शिल्पविद्या में प्रवीण और उसके मित्रों की सदा रक्षा करता है वैसे ही प्रजा और सेना के भद्रपुरुषों से प्रार्थना किया हुआ यह सभाध्यक्ष

राजा उनके लिये बल पराक्रम उत्साह और ऐश्वर्य का सामर्थ्य देकर युद्धविद्या में प्रवीण और उनके मित्रों को सब प्रकार पाले ॥ १७ ॥

अग्निना तुर्वशं यदुं परावत उग्रादेवं हवामहे ।
अग्निर्नयन्नववास्त्वं बृहद्रथं तुर्वीतिं दस्यवे सहः ॥ १८ ॥

पदार्थ—हम लोग जिस (**अग्निना**) अग्नि के समान तेजस्वी सभाध्यक्ष राजा के साथ मिलके (**उग्रादेवम्**) तेज स्वभाव वालों को जीतने की इच्छा करने तथा (**तुर्वशम्**) शीघ्र ही दूसरे के पदार्थों को ग्रहण करने वाले (**यदुम्**) दूसरे का धन मारने के लिये यत्न करते हुये डाकू पुरुष को (**परावतः**) दूसरे देश से (**हवामहे**) युद्ध के लिये बुलावें वह (**दस्यवे**) अपने विशेष बल से दूसरे का पदार्थ हरने वाले डाकू का (**सहः**) तिरस्कार करने योग्य बल को (**अग्निः**) सब मुख्य राजा (**नववास्त्वम्**) एकान्त में नवीन घर बनाने (**बृहद्रथम्**) बड़े बड़े रमण के साधन रथों वाले (**तुर्वीतिम्**) हिंसक दुष्टपुरुषों को यहां (**नयत्**) कैद में रक्खे ॥ १८ ॥

भावार्थ—सब धार्मिक पुरुषों को चाहिये कि तेजस्वी सभाध्यक्ष राजा के साथ मिल के वेग से अन्य पदार्थों को हरने खोटे स्वभावयुक्त और अपने विजय की इच्छा करने वाले डाकुओं को बुला उनके पर्वतादि एकान्त स्थानों में बने हुए घरों को खासकर और बांध के उनको कैद में रक्खे ॥ १८ ॥

सायणाचार्य ने यह मन्त्र नवीन पुराण मिथ्या ग्रन्थों की रीति के अवलंब से भ्रम के साथ कुछ का कुछ विरुद्ध वर्णन किया है ॥

नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ॥ १९ ॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) परमात्मन् ! (**यम्**) जिस परमात्मा (**त्वाम्**) आप को (**शश्वते**) अनादि स्वरूप (**जनाय**) जीवों की रक्षा के लिये (**कृष्टयः**) सब विद्वान् मनुष्य (**नमस्यन्ति**) पूजा और हे विद्वान् लोगो ! जिस को आप (**दीदेथ**) प्रकाशित करते हैं उस (**ज्योतिः**) ज्ञान के प्रकाश करने वाले परब्रह्म को (**ऋतजातः**) सत्याचरण से प्रसिद्ध (**उक्षितः**) आनन्दित (**मनुः**) विज्ञानयुक्त मैं (**कण्वे**) बुद्धिमान् मनुष्य में (**निदधे**) स्थापित करता हूं उसकी सब मनुष्य लोग उपासना करें ॥ १९ ॥

भावार्थ—सब के पूजने योग्य परमात्मा के कृपाकटाक्ष से प्रजा की रक्षा के लिये राज्य के अधिकारी सब मनुष्यों को योग्य है कि सत्य व्यवहार की प्रसिद्धि से धर्मात्माओं को आनन्द और दुष्टों को ताड़ना देवें ॥१९॥

त्वेषासो॑ अ॒ग्नेरम॑वन्तो अ॒र्चयो॑ भी॒मासो॒ न प्रती॑तये ।

र॒क्ष॒स्विनः॒ सद॒मिद्या॑तु॒माव॑तो॒ विश्वं॒ सम॒त्रिणं॑ दह ॥ २० ॥

पदार्थ—हे तेजस्वी सभास्वामिन् ! आप (**अग्नेः**) सूर्य विद्युत् और प्रसिद्ध रूप अग्नि की (**त्वेषासः**) प्रकाशस्वरूप (**भीमासः**) भयकारक (**अर्चयः**) ज्वाला के (**न**) समान जो (**अमवन्तः**) निन्दित रोग करने वाले (**रक्षस्विनः**) राक्षस अर्थात् निन्दित पुरुष हैं उन और (**अत्रिणम्**) बल से दूसरे के पदार्थों को हरने वाले शत्रु को (**इत्**) ही (**संदह**) अच्छे प्रकार भस्म कीजिये और (**प्रतीतये**) विज्ञान वा उत्तम सुख की प्रतीति होने के लिये (**विश्वम्**) सब (**सदम्**) संसार तथा (**यातुमावतः**) मेरे समान होने वालों की रक्षा कीजिये ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में सायणाचार्य ने यातु पूर्वपद और मावान् उत्तर पद नहीं जान (यातुमा) इस पूर्वपद से मतुप् प्रत्यय माना है सो पद-पाठ से विरुद्ध होने के कारण अशुद्ध है । सभाध्यक्ष आदि राजपुरुषों और प्रजा के मनुष्यों को चाहिये कि जिस प्रकार अग्नि आदि पदार्थ वन आदि को भस्म कर देते हैं वैसे दुःख देने वाले शत्रु जनों के विनाश के लिये इस प्रकार प्रयत्न करें ॥ २० ॥

इस सूक्त में सब की रक्षा करने वाले परमेश्वर तथा दूत के दृष्टान्त से भौतिक अग्नि के गुणों का वर्णन, दूत के गुणों का उपदेश, अग्नि के दृष्टान्त से राजपुरुषों के गुणों का वर्णन, सभापति का कृत्य, सभापति होने के अधिकारी का कथन, अग्नि आदि पदार्थों से उपयोग लेने की रीति, मनुष्यों की सभापति से प्रार्थना, सब मनुष्यों को सभाध्यक्ष के साथ मिलके दुष्टों को मारना और राजपुरुषों के सहायक जगदीश्वर के उपदेश से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ साथ संगति जाननी चाहिये ।

यह छत्तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

घौरः कण्व ऋषिः । मरुतो देवताः । १ । २ । ४ । ६—८ । १२ गायत्री । ३ । ९ ११ । १४ निचृद्गायत्री । ५ विराड् गायत्री । १० । १५ पिपीलिकामध्या निचृद् गायत्री । १३ पादनिचृद्गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

इस सूक्त भर में मोक्षमूलर आदि साहिबों का किया हुआ व्याख्यान असंगत है । उस में एक एक मन्त्र से उन की असंगति कहेंगे ।

क्रीळं वः शर्धो मारुतमनर्वाणं रथे शुभम् । कण्वा अभि प्र गायत ॥१॥

पदार्थ—हे (कण्वाः) मेधावी विद्वान्मनुष्यो ! तुम जो (वः) आप लोगों के (अनर्वाणम्) घोड़ों के योग से रहित (रथे) विमानादियानों में (क्रीडम्) क्रीड़ा का हेतु क्रिया में (शुभम्) शोभनीय (मारुतम्) पवनों का समूह रूप (शर्धः) बल है उसको (अभि प्रगायत) अच्छे प्रकार सुनो वा उपदेश करो ॥ १ ॥

भावार्थ—सायणाचार्य (मारुतम्) इस पद को पवनों का संबन्धि (तस्येदम्) इस सूत्र से अण् प्रत्यय और व्यत्यय से आद्युदात्त स्वर अशुद्ध व्याख्यान किया है । बुद्धिमान् पुरुषों को चाहिये कि जो पवन प्राणियों के चेष्टा, बल, वेग, यान और मंगल आदि व्यवहारों को सिद्ध करते इस से इनके गुणों की परीक्षा कर के इन पवनों से यथायोग्य उपकार ग्रहण करें ॥ १ ॥

मोक्षमूलर साहिब ने अर्व शब्द से अश्व के ग्रहण का निषेध किया है सो भ्रममूल होने से अशुद्ध ही है और फिर अर्व शब्द से सब जगह अश्व का ग्रहण किया है यह भी प्रमाण के न होने से अशुद्ध ही है । इस मन्त्र में अश्वरहित विमान आदि रथ की विवक्षा होने से । उन यानों में कलाओं से चलाये हुये पवन तथा अग्नि के प्रकाश और जल की बाफ के वेग से यानों के गमन का संभव है इस से यहां कुछ पशुरूप अश्व नहीं लिये हैं ॥ १ ॥

ये पृषतीभिर्ऋष्टिभिः साकं वाशीभिरञ्जिभिः । अजायन्त स्वभानवः ॥२॥

पदार्थ—(ये) जो (पृषतीभिः) पदार्थों को सींचने (ऋष्टिभिः) व्यवहारों को प्राप्त और (अञ्जिभिः) पदार्थों को प्रकट कराने वाली (वाशीभिः) वाणियों के (साकम्) साथ क्रियाओं के करने की चतुराई में प्रयत्न करते हैं वे (स्वभानवः) अपने ऐश्वर्य के प्रकाश से प्रकाशित (अजायन्त) होते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम लोगों को उचित है कि ईश्वर की रची हुई इस कार्य्यसृष्टि में जैसे अपने अपने स्वभाव के प्रकाश करने वाले वायु के सकाश से जल की वृष्टि चेष्टा का करना अग्नि आदि की प्रसिद्धि और वाणी के व्यवहार अर्थात् कहना सुनना स्पर्श करना आदि सिद्ध होते हैं वैसे ही विद्या और धर्मादि शुभ गुणों का प्रचार करो ॥ २ ॥

मोक्षमूलर साहिब कहते हैं कि जो वे पवन चित्र विचित्र हरिण लोह की शक्ति तथा तलवारों और प्रकाशित आभूषणों के साथ उत्पन्न हुए हैं इति । यह व्याख्या असंभव है क्योंकि पवन निश्चय करके वृष्टि कराने वाली क्रिया तथा स्पर्शादि गुणों के योग और सब चेष्टा के हेतु होने से

वाणी और अग्नि के प्रकट करने के हेतु हुए अपने आप प्रकाश वाले हैं। जो उन्होंने कहा है कि सायणाचार्य ने वाशी शब्द का व्याख्यान यथार्थ किया है सो भी असंगत है क्योंकि वह भी मन्त्र पद और वाक्यार्थ से विरुद्ध है। और जो मेरे भाष्य में प्रकरण पद वाक्य और भावार्थ के अनुकूल अर्थ है उसको विद्वान् लोग स्वयं विचार लेंगे कि ठीक है या नहीं॥ २॥

इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान्। नियाँमञ्चित्रमृञ्जते॥ ३॥

पदार्थ—मैं (यत्) जिस कारण (एषाम्) इन पवनों की (कशाः) रज्जु के समान चेष्टा के साधन नियमों को प्राप्त कराने वाली क्रिया (हस्तेषु) हस्त आदि अंगों में हैं इससे सब चेष्टा और जिससे प्राणी व्यवहार सम्बन्धी वचन को (वदान्) बोलते हैं उसको (इहेव) जैसे इस स्थान में स्थित होकर वैसे करता और (शृण्वे) श्रवण करता हूं और जिससे सब प्राणी और अप्राणी (यामन्) सुख हेतु व्यवहारों के प्राप्त कराने वाले मार्ग में (चित्रम्) आश्चर्य्यरूप कर्म को (न्यृञ्जते) निरन्तर सिद्ध करते हैं उस के करने को समर्थ उसी से मैं भी होता हूँ॥ ३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। वायु (पदार्थ) विद्या की इच्छा करनेवाले विद्वानों को चाहिए कि मनुष्य आदि प्राणी जितने कर्म करते हैं उन सभी के हेतु पवन हैं जो वायु न हों तो कोई मनुष्य कुछ भी कर्म करने को समर्थ न हो सके और दूरस्थित मनुष्य ने उच्चारण किये हुये शब्द निकट के उच्चारण के समान वायु की चेष्टा के विना कोई भी कह वा सुन न सके और मनुष्य मार्ग में चलने आदि जितने बल वा पराक्रम-युक्त कर्म करते हैं वे सब वायु ही के योग से होते है। इस से यह सिद्ध है कि वायु के विना कोई नेत्र के चलाने को भी समर्थ नहीं हो सकता। इसलिये इसके शुभ गुणों का खोज सर्वदा किया करें॥ ३॥

मोक्षमूलर साहिब कहते हैं कि मैं सारथियों के कशा अर्थात् चाबुक के शब्दों को सुनता हूं तथा अति समीप हाथों में उन पवनों को प्रहार करते हैं वे अपने मार्ग में अत्यन्त शोभा को प्राप्त होते हैं और यामन् यह मार्ग का नाम है जिस मार्ग से देव जाते हैं वा जिस मार्ग से बलिदानों को प्राप्त होते हैं जैसे हम लोगों के प्रकरण में मेघ के अवयवों का भी ग्रहण होता है। यह सब अशुद्ध है क्योंकि इस मन्त्र में कशा शब्द से सब क्रिया और यामन शब्द से मार्ग में सब व्यवहार प्राप्त करने वाले कर्मों का ग्रहण है॥ ३॥

प्र वः शर्धाय घृष्वये त्वेषद्युम्नाय शुष्मिणे। देवत्तं ब्रह्म गायत॥ ४॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो ! जो ये पवन (वः) तुम लोगों के (शर्धाय)

बल प्राप्त करने वाले (घृष्वये) जिसके लिये परस्पर लड़ते भिड़ते हैं उस (शुष्मिणे) अत्यन्त प्रशंसित बलयुक्त व्यवहार वाले (त्वेषद्युम्नाय) प्रकाशमान यश के लिये हैं तुम लोग उनके नियोग से (देवत्तम्) ईश्वर ने दिये वा विद्वानों ने पढ़ाये हुए (ब्रह्म) वेद को (प्रगायत) अच्छे प्रकार षड्जादि स्वरों से स्तुतिपूर्वक गाया करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर के कहे हुए वेदों को पढ़ वायु के गुणों का जान और यश वा बल के कर्मों का अनुष्ठान करके सब प्राणियों के लिए सुख देवें ॥ ४ ॥

मोक्षमूलर साहिब का अर्थ जिनके घरों में वायु देवता आते हैं हे बुद्धिमान् मनुष्यो ! तुम उन के आगे उन देवताओं की स्तुति करो तथा देवता कैसे हैं कि उन्मत्त विजय करने वा वेग वाले। इस में चौथे मंडल सत्रहवें सूक्त दूसरे मन्त्र का प्रमाण है। सो यह अशुद्ध है, क्योंकि सब जगह पवनों की स्थिति के आने जाने वाली क्रिया होने वा उनके सामीप्य के विना वायु के गुणों की स्तुति के संभव होने से और वायु से भिन्न वायु की कोई देवता नहीं है इससे तथा जो मन्त्र का प्रमाण दिया है वहां भी उनका अभीष्ट अर्थ इनके अर्थ के साथ नहीं है ॥ ४ ॥

प्र शंसा गोष्वघ्न्यं क्रीळं यच्छर्धो मारुतम् । जम्भे रसस्य वावृधे ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वान्मनुष्यो ! तुम (यत्) जो (गोषु) पृथिवी आदि भूत वा वाणी आदि इन्द्रिय तथा गौ आदि पशुओं में (क्रीडम्) क्रीडा का निमित्त (अघ्न्यम्) नहीं हनन करने योग्य वा इन्द्रियों के लिए हितकारी (मारुतम्) पवनों का विकाररूप (रसस्य) भोजन किये हुये अन्नादि पदार्थों से उत्पन्न (जम्भे) जिससे गात्रों का संचलन हो मुख में प्राप्त होके शरीर में स्थित (शर्द्धः) बल (वबृधे) वृद्धि को प्राप्त होता है उसको मेरे लिये नित्य (प्रशंस) शिक्षा करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जो वायुसम्बन्धी शरीर आदि में क्रीड़ा और बल का बढ़ना है उसको नित्य उन्नति देवें और जितना रस आदि प्रतीत होता है वह सब वायु के संयोग से होता है इससे परस्पर इस प्रकार सब शिक्षा करनी चाहिये कि जिससे सब लोगों को वायु के गुणों की विद्या विदित होजावे ॥ ५ ॥

मोक्षमूलर साहिब का कथन है कि यह प्रसिद्ध वायु पवनों के दलों में उपाधि से बढ़ा हुआ जैसे उस पवन ने मेघावयों को स्वादयुक्त किया है क्योंकि इस ने पवनों का आदर किया इस से। सो यह अशुद्ध है, कैसे कि

जो इस मन्त्र में इन्द्रियों के मध्य में पवनों का बल कहा है उसकी प्रशंसा करनी और जो प्राणि लोग मुख से स्वाद लेते हैं वह भी पवनों का बल है। और इस [जम्भ] शब्द के अर्थ में विलसन और मोक्षमूलर साहिब का वादविवाद निष्फल है ॥

को वो वर्षिष्ठ आ नरो दिवश्च ग्मश्च धूतयः । यत्सीमन्तं न धूनुथ ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो ! (धूतयः) शत्रुओं को कंपाने वाले (नरः) नीतियुक्त (यत्) ये तुम लोग (दिवः) प्रकाशवाले सूर्य आदि (च) वा उनके सम्बन्धी और तथा (ग्मः) पृथिवी (च) और उन के संबन्धी प्रकाश रहित लोकों को (सीम्) सब ओर से अर्थात् तृण वृक्ष आदि अवयवों के सहित ग्रहण करके कम्पाते हुए वायुओं के (न) समान शत्रुओं का (अन्तम्) नाश कर दुष्टों को जब (आधूनुथ) अच्छे प्रकार कम्पाओ तब (वः) तुम लोगों के बीच में (कः) कौन (वर्षिष्ठः) यथावत् श्रेष्ठ विद्वान् प्रसिद्ध न हो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। विद्वान् राजपुरुषों को चाहिये कि जैसे कोई बलवान् मनुष्य निर्बल मनुष्य के केशों का ग्रहण करके कम्पाता और जैसे वायु सब लोकों का ग्रहण तथा चलायमान करके अपनी अपनी परिधि में प्राप्त करते हैं वैसे ही सब शत्रुओं को कम्पा और उन के स्थानों से चलायमान करके प्रजा की रक्षा करें ॥ ६ ॥

मोक्षमूलर साहिब का अर्थ कि हे मनुष्यो ! तुम्हारे बीच में बड़ा कौन है ? तथा तुम आकाश वा पृथिवी लोक को कम्पाने वाले हो, जब तुम धारण किये हुये वस्त्र का प्रान्त भाग कम्पने समान उनको कम्पित करते हो। सायणाचार्य के कहे हुए अन्त शब्द के अर्थ को मैं स्वीकार नहीं करता किन्तु विलसन आदि के कहे हुए को स्वीकार करता हूं। यह अशुद्ध और विपरीत है क्योंकि इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे राजपुरुष शत्रुओं और अन्य मनुष्य तृण काष्ठ आदि को ग्रहण करके कम्पाते हैं वैसे वायु भी हैं। इस अर्थ का विद्वानों के सकाश से निश्चय करना चाहिये इस प्रकार कहे हुए व्याख्यान से। जैसे सायणाचार्य का किया हुआ अर्थ व्यर्थ है वैसे ही मोक्षमूलर साहिब का किया हुआ अर्थ अनर्थ है ऐसा हम सब सज्जन लोग जानते हैं ॥ ६ ॥

नि वो यामाय मानुषो दध्र उग्राय मन्यवे । जिहीत पर्वतो गिरिः ॥७॥

पदार्थ—हे प्रजासेना के मनुष्यो ! जिस सभापति राजा के भय से वायु के बल से (गिरिः) जल को रोकने गर्जना करने वाले (पर्वतः) मेघ शत्रु लोग

(जिहीत) भागते हैं वह (मानुषः) सभाध्यक्ष राजा (वः) तुम लोगों के (यामाय) यथार्थ व्यवहार चलाने और (मन्यवे) क्रोधरूप (उग्राय) तीव्र दण्ड देने के लिये राज्यव्यवस्था को (दध्रे) धारण कर सकता है ऐसा तुम लोग जानो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे प्रजा सेनास्थ मनुष्यो ! तुम लोगों के सब व्यवहार वायु के समान राजव्यवस्था ही से ठीक ठीक चल सकते हैं और जब तुम लोग अपने नियमोपनियमों पर नहीं चलते हो तब तुम को सभाध्यक्ष राजा वायु के समान शीघ्र दण्ड देता है और जिसके भय से वायु से मेघों के समान शत्रुजन पलायमान होते हैं उसको तुम लोग पिता के समान जानो ॥ ७ ॥

मोक्षमूलर कहते हैं कि—हे पवनो ! आप के आने से मनुष्य का पुत्र अपने आप ही नम्र होता है तथा तुम्हारे क्रोध से डर के भागता है । यह उनका कथन व्यर्थ है क्योंकि इस मन्त्र में गिरि और पर्वत शब्द से मेघ का ग्रहण किया है । तथा मानुष शब्द का अर्थ धारण क्रिया का कर्त्ता है और और न इस मन्त्र में बालक के शिर के नमन होने का ग्रहण है । जैसा कि सायणाचार्य का अर्थ व्यर्थ है वैसा ही मोक्षमूलर का भी जानना चाहिये । वेद का करने वाला ईश्वर ही है और मनुष्य नहीं इतनी भी परीक्षा मोक्षमूलर साहिब ने नहीं की पुनः वेदार्थज्ञान की तो क्या ही कथा है !! ॥ ७ ॥

येषामज्मेषु पृथिवी जुजुर्वाँ इव विश्पतिः । भिया यामेषु रेजते ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! (येषाम्) जिन पवनों के (अज्मेषु) पहुंचाने फेंकने आदि गुणों में (भिया) भय से (जुजुर्वानिव) जैसे वृद्धावस्था को प्राप्त हुआ (विश्पतिः) प्रजा की पालना करने वाला राजा शत्रुओं से कम्पता है वैसे (पृथिवी) पृथिवी आदि लोक (यामेषु) अपने अपने चलने रूप परिधि मार्गों में (रेजते) चलायमान होते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे कोई राजा जीर्ण अवस्था का प्राप्त हुआ रोग वा शत्रुओं के भय से कम्पता है वैसे पवनों से सब प्रकार धारण किये हुये पृथिवी आदि लोक घूमते है । और सूत्र के समान बंधे हुये वायु के विना किसी लोक की स्थिति वा भ्रमण का संभव कभी नहीं हो सकता ॥ ८ ॥

मोक्षमूलर साहिब का कथन कि जिन पवनों के दौड़ने में पृथिवी निर्बल राजा के समान भय से मार्गों में कम्पित होती है । संस्कृत की रीति

से यह बड़ा दोष है कि जो स्त्रीलिङ्ग उपमेय के साथ पुँल्लिङ्ग वाची उपमान दियागया है । सो यह मोक्षमूलर का कथन मिथ्या है क्योंकि वायु के योग ही से पृथिवी के धारण वा भ्रमण का संभव होकर वायु के भीषण ही से पृथिवी आदि लोकों के स्वरूप की स्थिति होती है तथा यह लिङ्ग-व्यत्यय से उपमालङ्कार में दोष नहीं हो सकता, जैसे मनुष्यके तुल्य वायु और वायु के समान मन चलता है, श्येनपक्षी के समान मेना, स्त्री के समान पुरुष वा पुरुष के समान स्त्री, हाथी के समान भैंसी अथवा हथिनी के समान, चन्द्रमा के समान मुख, सूर्य प्रकाश के समान राजनीति, इस प्रकार उपमा-लङ्कार में लिङ्ग भेद से कोई भी दोष नहीं आ सकता ॥ ८ ॥

स्थिरं हि जानमेषां वयो मातुर्निरेतवे । यत्सीमनु द्विता शवः ॥९॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**एषाम्**) इन (**वायूनाम्**) पवनों का (**यत्**) जो (**स्थिरम्**) निश्चल (**जानम्**) जन्मस्थान आकाश (**शवः**) बल और जिसमें (**द्विता**) शब्द और स्पर्श गुण का योग है जिसके आश्रय से (**वयः**) पक्षी (**मातुः**) अन्तरिक्ष के बीच में (**सीम्**) सब प्रकार (**निरेतवे**) निरन्तर जाने आने को समर्थ होते हैं उन वायुओं को आप लोग (**अनु**) पश्चात् विशेषता से जानिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—ये कार्यरूप पवन आकाश में उत्पन्न होकर इधर उधर जाते आते हैं, जहां अवकाश है वहां जिनके सब प्रकार गमन का संभव होता और जिनकी अनुकूलता से सब प्राणी जीवन को प्राप्त होकर बल वाले होते हैं उनको युक्ति के साथ तुम लोग सेवन किया करो ॥

मोक्षमूलर की उक्ति है कि सत्य ही है कि पवनों की उत्पत्ति बल-वाली तथा उनका सामर्थ्य आकाश से आता है उनका सामर्थ्य द्विगुण वा पुष्कल है । सो यह निष्प्रयोजन है क्योंकि सब द्रव्यों की उत्पत्ति अपने अपने कारण के अनुकूल बलवाली होती है उनके कार्यों में कारण के गुण आते ही हैं और वयः शब्द से पक्षियों का ग्रहण है ॥ ९ ॥

उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा अज्मेष्वत्नत । वाश्रा अभिज्ञु यातवे ॥१०॥

पदार्थ—हे राज प्रजा के मनुष्यो ! आप लोग (**त्ये**) वे अन्तरिक्ष में रहने वा (**सूनवः**) प्राणियों के गर्भ छुड़ाने वाले पवन (**अभिज्ञु**) जिनकी सम्मुख जंघा हों (**वाश्राः**) उन शब्द करती वा बछड़ों को सब प्रकार प्राप्त होती हुई गौओं के समान (**गिरः**) वाणी वा (**काष्ठाः**) जलों को (**अज्मेषु**) जाने के मार्गों में (**उ**) और (**आयातवे**) प्राप्त होने को विस्तार करते हुओं के समान सुख का (**उत् अत्नत**) अच्छे प्रकार विस्तार कीजिये ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। राजा और प्रजा के मनुष्यों को [जानना] चाहिये कि जैसे ये वायु ही वाणी और जलों को चलाकर विस्तृत करके अच्छे प्रकार शब्दों को श्रवण कराते हुये जाना-आना जन्म-वृद्धि और नाश के हेतु हैं वैसे ही शुभाशुभ कर्मों का अनुष्ठान सुख दुःख का निमित्त है ॥

मोक्षमूलर की उक्ति है कि जो गान करने वाले पुत्र अपनी गति में गौओं के स्थानों को विस्तारयुक्त लम्बीभूत करते हैं तथा गौ जांघ के बल से आती हैं। सो यह व्यर्थ है क्योंकि इस मन्त्र में 'सूनु' शब्द से प्रिय वाणी को उच्चारण करते हुए बालक ग्रहण किये हैं जैसे गौ बछड़ों को चाटने के लिये पृथिवी में जघाओं को स्थापन करके सुखयुक्त होती है इस प्रकार विवक्षा के होने से ॥ १० ॥

त्यं चिद् घा दीर्घं पृथुं मिहो नपातममृध्रम्।
प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे राजपुरुषो ! तुम लोग जैसे (मिहः) वर्षा जलसे सींचने वाले पवन (**यामभिः**) अपने जाने के मार्गों से (घ) ही (त्यम्) उस (**नपातम्**) जल को न गिराने और (**अमृध्रम्**) गीला न करने वाले (**पृथुम्**) बड़े (**चित्**) भी (**दीर्घम्**) स्थूल मेघ को (**प्रच्यावयन्ति**) भूमि पर गिरा देते हैं वैसे शत्रुओं को गिरा के प्रजा को आनन्दित करो ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। राजपुरुषों को चाहिये कि जैसे पवन ही मेघ के निमित्त बहुत जल को ऊपर पहुँचा कर परस्पर घिसने से बिजुली को उत्पन्न कर उस न गिरने योग्य तथा न गीला करने और बड़े आकार वाले मेघ को भूमि में गिराते हैं वैसे ही धर्मविरोधी सब व्यवहारों को छोड़ें और छुड़ावें ॥

मोक्षमूलर की उक्ति है कि वे पवन इस बहुत काल वर्षा कराते हुए अप्रतिबद्ध मेघ के निमित्त और मार्ग के ऊपर गिराने के लिये हैं यह कुछेक अशुद्ध है। क्योंकि (मिहः) यह पद पवनों का विशेषण है और इन्होंने मेघ का विशेषण किया है ॥ ११ ॥

मरुतो यद्ध वो बलं जनाँ अचुच्यवीतन। गिरीँरचुच्यवीतन ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (**मरुतः**) पवनों के समान सेनाध्यक्षादि राजपुरुषो ! तुम लाग (**यत्**) जिस कारण (**वः**) तुम्हारा (**ह**) प्रसिद्ध (**बलम्**) सेना आदि दृढ़ बल

है इसलिये जैसे वायु (गिरीन्) मेघों को (अचुच्यवीतन) इधर उधर आकाश पृथिवी में घुमाया करते हैं वैसे (जनान्) प्रजा के मनुष्यों को (अचुच्यवीतन) अपने अपने उत्तम व्यवहारों में प्रेरित करो ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सभाध्यक्षादि राजपुरुषों को चाहिये कि जैसे वायु मेघों को इधर उधर घुमा के वर्षाते हैं वैसे ही प्रजा के सब मनुष्यों को न्याय की व्यवस्था से अपने अपने कर्मों में आलस्य छोड़के सदा नियुक्त करते रहें ॥ १२ ॥

मोक्षमूलर की उक्ति है—हे पवनो ! ऐसे बल के साथ जैसी आपकी शक्ति है और तुम पुरुष वा पर्वतों को गमन कराने के निमित्त हो सो यह अशुद्ध है, क्योंकि गिरि शब्द से इस मन्त्र से मेघ का ग्रहण है [पर्वतों का नहीं] और जन शब्द से सामान्य गति वाले का ग्रहण है गमनमात्र का नहीं है ॥ १२ ॥

यद्ध यान्ति मरुतः सं ह ब्रुवतेऽध्वन्ना । शृणोति कश्चिदेषाम् ॥१३॥

पदार्थ—जैसे (यत्) ये (मरुतः) पवन (यान्ति) जाते आते हैं वैसे (अध्वन्) विद्यामार्ग में कारीगर विद्वान् लोग (ह) स्पष्ट (समाब्रुवते) मिलके अच्छे प्रकार परस्पर उपदेश करते हैं और (एषाम्) इन वायुओं की विद्या को (कश्चित्) कोई विद्वान् पुरुष (शृणोति) सुनता और जानता है, सब साधारण पुरुष नहीं ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस वायुविद्या को कोई विद्वान् ही ठीक ठीक जान सकता है जड़बुद्धि नहीं जान सकता ॥ १३ ॥

मोक्षमूलर की उक्ति है कि जब निश्चय करके पवन परस्पर साथ साथ जाते वा अपने मार्गों के ऊपर बोलते हैं तब कोई मनुष्य क्या श्रवण करता है अर्थात् नहीं, यह अशुद्ध है क्योंकि पवनों का जड़त्व होने से वार्त्ता करना असंभव है और कहने वाले चेतन जीवों के बोलने [सुनने] में हेतु तो होते हैं ॥ १३ ॥

प्र यात शीभमाशुभिः सन्ति कण्वेषु वो दुवः । तत्रो षु मादयाध्वै ॥१४॥

पदार्थ—हे राजपुरुषो ! तुम लोग (आशुभिः) शीघ्र ही गमनागमन कराने वाले यानों से (शीभम्) शीघ्र वायु के समान (प्रयात) अच्छे प्रकार अभीष्ट स्थान को प्राप्त हुआ करो जिन (कण्वेषु) बुद्धिमान् विद्वानों में (वः) तुम लोगों की (दुवः) सत् क्रिया हैं (तत्रो) उन विद्वानों में तुम लोग (सुमादयाध्वै) सुन्दर रीति से प्रसन्न रहो ॥ १४ ॥

भावार्थ—राजा और प्रजा के विद्वानों को चाहिये कि वायु के समान अभीष्ट स्थानों को शीघ्र जाने आने के लिये विमानादि यान बना के अपने कार्यों को निरन्तर सिद्ध करें और धर्मात्माओं की सेवा तथा दुष्टों को ताड़ने में सदैव आनन्दित रहैं॥ १४॥

मोक्षमूलर की उक्ति है कि तुम तीव्र गति वाले घोड़ों के ऊपर स्थित होकर जल्दी आओ। वहां आपके पुजारी कण्वों के मध्य में हैं। तुम उनमें आनन्दित होओ सो यह अशुद्ध है क्योंकि बड़े बड़े वेग आदि गुण ही वायु के हैं, वे गुण उनमें समवाय-सम्बन्ध से रहते हैं, उनके ऊपर इन पवनों की स्थिति होने का ही संभव नहीं और कण्व शब्द से विद्वानों का ग्रहण है उन में निवास करने से विद्या की प्राप्ति और आनन्द का प्रकाश होता है॥ १४॥

अस्ति हि ष्मा मदाय वः स्मसि ष्मा वयमेषाम्।

विश्वं चिदायुर्जीवसे॥ १५॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो! (एषाम्) जानी है विद्या जिनकी उन पवनों के सकाश से (हि) जिस कारण (स्म) निश्चय करके (वः) तुम लोगों के (मदाय) आनन्दपूर्वक (जीवसे) जीने के लिए (विश्वम्) सब (आयुः) अवस्था है। इसी प्रकार (वयम्) आप से उपदेश को प्राप्त हुए हम लोग (चित्) भी (स्मसि, स्म) निरन्तर होवें॥ १५॥

भावार्थ—जैसे योगाभ्यास करके प्राणविद्या और वायु के विकारों को ठीक ठीक जानने वाले पथ्यकारी विद्वान् लोग आनन्दपूर्वक सब वायु भोगते हैं वैसे अन्य मनुष्यों को भी करनी चाहिये कि उन विद्वानों के सकाश से उस वायुविद्या को जान के सम्पूर्ण आयु भोगें॥ १५॥

मोक्षमूलर की उक्ति है कि निश्चय करके वहां तुम्हारी प्रसन्नता पुष्कल है हम लोग सब दिन तुम्हारे भृत्य हैं जो भी हम सम्पूर्ण आयु भर जीते हैं—यह अशुद्ध है क्योंकि यहां प्राणरूप वायु से जीवन होता है, हम लोग इस विद्या को जानते हैं इस प्रकार इस मन्त्र का अर्थ है॥ १५॥

इसी प्रकार कि जैसे यहां मोक्षमूलर साहेब ने अपनी कपोल कल्पना से मन्त्रों के अर्थ विरुद्ध वर्णन किये हैं वैसे आगे भी इनकी उक्ति अन्यथा ही है ऐसा सब को जानना चाहिये। जब पक्षपात को छोड़ कर मेरे रचे हुए मन्त्रार्थ भाष्य वा मोक्षमूलरादिकों के कहे हुए की परीक्षा करके विवेचन करेंगे तब इनके किये हुए ग्रन्थों की अशुद्धि जान पड़ेगी। बहुत को थोड़े ही लिखने से जान लेवें, आगे अब बहुत लिखने से क्या है?

इस सूक्त में अग्नि के प्रकाश करने वाले सब चेष्टा, बल और आयु के निमित्त वायु और उस वायुविद्या को जानने वाले राज प्रजा के विद्वानों के गुण वर्णन से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥ १५ ॥

यह सैंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ।

घौरः कण्व ऋषिः । मरुतो देवताः । १ । ४ । ८ । ११ । १३ । १५ गायत्री । २ । ६ । ७ । ९ । १० निचृद् गायत्री । ३ । पादनिचृत्गायत्री । ५ । १२ । पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री । १४ यवमध्या विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।

कद्ध॑ नू॒नं क॑धप्रियः पि॒ता पु॒त्रं न हस्त॑योः । द॒धि॒ध्वे वृ॑क्तबर्हिषः ॥१॥

पदार्थ—हे (कधप्रियाः) सत्य कथाओं से प्रीति कराने वाले (वृक्तबर्हिषः) ऋत्विज् विद्वान् लोगो ! (न) जैसे (पिता) उत्पन्न करने वाला जनक (पुत्रम्) पुत्र को (हस्तयोः) हाथों से धारण करता है, और जैसे पवन, लोकों को धारण कर रहे हैं वैसे (कद्ध) कब प्रसिद्धि से (नूनम्) निश्चय करके यज्ञ कर्म को (दधिध्वे) धारण करोगे ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे पिता हाथों से अपने पुत्र को ग्रहण कर शिक्षापूर्वक पालना तथा अच्छे कार्यों में नियुक्त करके सुखी होता और जैसे पवन सब लोकों को धारण करते हैं वैसे विद्या से यज्ञ का ग्रहण कर युक्ति से अच्छे प्रकार सेवन करते हैं वे ही सुखी होते हैं ॥ १ ॥

क्व॑ नू॒नं कद्वो॒ अर्थं॒ गन्ता॑ दि॒वो न पृ॑थि॒व्याः ।
क्व॑ वो॒ गावो॒ न र॑ण्यन्ति ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (न) जैसे (कत्) कब (नूनम्) निश्चय से (पृथिव्याः) भूमि के वाष्प और (दिवः) प्रकाश कर्म वाले सूर्य की (गावः) किरणें (अर्थम्) पदार्थों को (गन्त) प्राप्त होती हैं वैसे (क्व) कहां (वः) तुम्हारे अर्थ को (गन्त) प्राप्त होते हो जैसे (गावः) गौ आदि पशु अपने बछड़ों के प्रति (रण्यन्ति) शब्द करते हैं वैसे तुम्हारी गाय आदि शब्द करते हुओं के समान वायु कहां शब्द करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं । हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य की किरणें पृथिवी में स्थित हुए पदार्थों को प्रकाश करती हैं वैसे तुम भी विद्वानों

के समीप जाकर, कहां पवनों का नियोग करना चाहिये ऐसा पूछ कर अर्थों को प्रकाश करो और जैसे गौ अपने बछड़ों के प्रति शब्द करके दौड़ती हैं वैसे तुम भी विद्वानों के सङ्ग करने को प्राप्त हो, तथा हम लोगों की इन्द्रियां वायु के समान कहां स्थित होकर अर्थों को प्राप्त होती हैं ऐसा पूछ कर निश्चय करो ॥ २ ॥

क्व॑ वः सु॒म्ना नव्यां॑सि॒ मरु॑तः॒ क्व॑ सुवि॒ता । क्वो॒३ विश्वा॑नि॒ सौभ॑गा ॥३॥

पदार्थ—हे (मरुतः) वायु के समान शीघ्र गमन करने वाले मनुष्यो ! तुम लोग विद्वानों के समीप प्राप्त होकर (वः) आप लोगों के (विश्वानि) सब (नव्यांसि) नवीन (सुम्ना) सुख (क्व) कहां सब (सुविता) प्रेरणा कराने वाले गुण (क्व) कहां और सब नवीन (सौभगा) सौभाग्य प्राप्ति कराने वाले कर्म (क्वो) कहां हैं ऐसा पूछो ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे शुभ कर्मों में वायु के समान शीघ्र चलने वाले मनुष्यो ! तुम लोगों को चाहिये कि विद्वानों के प्रति पूछ कर जिस प्रकार नवीन क्रिया की सिद्धि के निमित्त कर्म प्राप्त होवें वैसा अच्छे प्रकार निरन्तर यत्न किया करो ॥ ३ ॥

यद्यू॒यं पृ॑श्निमातरो॒ मर्ता॑सः॒ स्यात॑न । स्तो॒ता वो॑ अ॒मृतः॑ स्यात् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (पृश्निमातरः) जिन वायुओं का माता आकाश है उनके सदृश (मर्त्तासः) मरणधर्म युक्त राजा और प्रजा के पुरुषो ! आप पुरुषार्थयुक्त (यत्) जो अपने अपने कामों में (स्यातन) हों तो (वः) तुम्हारी [(स्तोता)] रक्षा करने वाला सभाध्यक्ष राजा (अमृतः) अमृत सुखयुक्त (स्यात्) होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—राजा और प्रजा के पुरुषों को उचित है कि आलस्य छोड़ वायु के समान अपने अपने कामों में नियुक्त होवें, जिससे सबका रक्षक सभाध्यक्ष राजा शत्रुओं से मारा नहीं जा सकता ॥ ४ ॥

मा वो॑ मृ॒गो न यव॑से जरि॒ता भू॒दजो॑ष्यः । प॒था य॒मस्य॑ गा॒दुप॑ ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे राजा और प्रजा के जनो ! आप लोग (न) जैसे (मृगः) हिरन (यवसे) खाने योग्य घास खाने के निमित्त प्रवृत्त होता है वैसे (वः) तुम्हारा (जरिता) विद्याओं का दाता (अजोष्यः) असेवनीय अर्थात् पृथक् (मा भूत्) न होवे तथा (यमस्य) निग्रह करने वाले वायु के (पथा) मार्ग से (मोप गात्) कभी अल्पायु होकर मृत्यु को प्राप्त न हो, वैसा काम किया करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे हिरन युक्ति से निरन्तर

घास खाकर सुखी होते हैं वैसे प्राणवायु की विद्या को जानने वाला मनुष्य युक्ति के साथ आहार विहार कर वायु के मार्ग से अर्थात् मृत्यु को प्राप्त नहीं होता और संपूर्ण अवस्था को भोग के सुख से शरीर को छोड़ता है अर्थात् सदा विद्या पढ़ें पढ़ावें कभी विद्यार्थी और आचार्य वियुक्त न हों प्रमाद करके अल्पायु में न मर जायं ॥ ५ ॥

मो षु णः परा॑परा निर्ऋ॑तिर्दु॒र्हणा॑ वधीत् । प॒दीष्ट तृष्ण॑या स॒ह ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे अध्यापक लोगो ! आप जैसे (पराऽपरा) उत्तम मध्यम और निकृष्ट (दुर्हणा) दुख से हटने योग्य (निर्ऋतिः) पवनों की रोग करने वा दुःख देने वाली गति (तृष्णया) प्यास वा लोभ गति के (सह) साथ (नः) हम लोगों को (मोपदीष्ट) कभी न प्राप्त हो और (मावधीत्) बीच में न मरें किन्तु जो इन पवनों की सुख देने वाली गति है वह हम लोगों को नित्य प्राप्त होवे वैसा प्रयत्न किया कीजिये ॥ ६ ॥

भावर्थ—पवनों की दो प्रकार की गति होती है एक सुखकारक और दूसरी दुःख करने वाली; उनमें से जो उत्तम नियमों से सेवन की हुई रोगों का हनन करती हुई शरीर आदि के सुख का हेतु है वह प्रथम और जो खोटे नियम और प्रमाद से उत्पन्न हुई क्लेश दुःख और रोगों की देने वाली वह दूसरी; इन्हीं के मध्य में से मनुष्यों को अति उचित है कि परमेश्वर के अनुग्रह और अपने पुरुषार्थों से पहिली गति को उत्पन्न करके दूसरी गति का नाश करके सुखकी उन्नति करनी चाहिये और जो पिपासा आदि धर्म हैं वह वायु के निमित्ति से तथा जो लोभ का वेग है वह अज्ञान से ही उत्पन्न होता है ॥ ६ ॥

स॒त्यं त्वे॒षा अम॑वन्तो॒ धन्व॑ञ्चि॒दा रु॒द्रिया॑सः । मिहं॑ कृण्वन्त्यवा॒ताम् ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे (धन्वन्) अन्तरिक्ष में (त्वेषाः) बाहर भीतर घिसने से उत्पन्न हुई बिजुली से प्रदीप्त (अमवन्तः) जिनका रोगों और गमनागमन रूप वालों के साथ सम्बन्ध है (रुद्रियासः) प्राणियों के जीने के निमित्त वायु (अवाताम्) हिंसा रहित (मिहम्) सींचने वाली वृष्टि को (आकृण्वन्ति) अच्छे प्रकार संपादन करते हैं और इनका (सत्यम्) सत्य कर्म है (चित्) वैसे ही सत्य कर्म का अनुष्ठान किया करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जैसे अन्तरिक्ष में रहने तथा सत्यगुण और स्वभाव वाले पवन वृष्टि के हेतु हैं वे ही युक्ति से सेवन किये हुए अनुकूल होकर सुख देते और युक्ति रहित सेवन किये प्रतिकूल होकर दुःखदायक होते हैं वैसे युक्ति से धर्मानुकूल कर्मों का सेवन करें ॥ ७ ॥

वाश्रेव विद्युन् मिमाति वत्सं न माता सिषक्ति। यदेषां वृष्टिरसर्जि॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग (यत्) जो (एषाम्) इन वायुओं के योग से उत्पन्न हुई (विद्युत्) बिजुली (वाश्रेव) जैसे गौ अपने (वत्सम्) बछड़े को इच्छा करती हुई सेवन करती है वैसे (मिहम्) वृष्टि को (मिमाति) उत्पन्न करती और इच्छा करती हुई (माता) मान्य देने वाली माता पुत्र का दूध से (सिषक्ति न) जैसे सींचती है वैसे पदार्थों को सेवन करती है (वृष्टिः) वर्षा को (असर्जि) करती है वैसे शुभ गुण कर्मों से एक दूसरों के सुख करनेहारे हूजिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम लोगों को उचित है कि जैसे अपने अपने बछड़ों को सेवन करने के लिए इच्छा करती हुई गौ और अपने छोटे बालक को सेवने हारी माता ऊंचे स्वर से शब्द करके उनकी ओर दौड़ती हैं वैसे ही बिजुली बड़े बड़े शब्दों को करती हुई मेघ के अवयवों के सेवन के लिये दौड़ती है ॥ ८ ॥

दिवा चित्तमः कृण्वन्ति पर्जन्येनोदवाहेन। यत्पृथिवीं व्युन्दन्ति ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! आप (यत्) जो पवन (उद्वाहेन) जलों को धारण वा प्राप्त कराने वाले (पर्जन्येन) मेघ से (दिवा) दिन में (तमः) अन्धकाररूप रात्री के (चित्) समान अन्धकार (कृण्वन्ति) करते हैं (पृथिवीम्) भूमि को (व्युन्दन्ति) मेघ के जल से आर्द्र करते हैं उनका युक्ति से सेवन करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। पवन ही जल के अवयवों को कठिन सघनाकार मेघ को उत्पन्न उस बिजुली से उन मेघों के अवयवों को छिन्नभिन्न और पृथिवी में गेर कर जलों से स्निग्ध करके अनेक ओषधी आदि समूहों को उत्पन्न करते हैं उनका उपदेश विद्वान् लोग अन्य मनुष्यों को सदा किया करें ॥ ९ ॥

अध स्वनान्मरुतां विश्वमा सद्म पार्थिवम्। अरेजन्त प्र मानुषाः ॥१०॥

पदार्थ—हे (मानुषाः) मननशील मनुष्यो ! तुम जिन (मरुताम्) पवनों के (स्वनात्) उत्पन्न शब्द के होने से (अध) अनन्तर (विश्वम्) सब (पार्थिवम्) पृथिवी में विदित वस्तुमात्र का (सद्म) स्थान कांपता और प्राणिमात्र (प्रारेजन्त) अच्छे प्रकार कंपित होते हैं इस प्रकार जानो ॥ १० ॥

भावार्थ—हे ज्योतिष्य शास्त्र के विद्वान् लोगो ! आप पवनों के योग ही से सब मूर्तिमान् द्रव्य चेष्टा को प्राप्त होते प्राणी लोग बिजुली के

भयंकर शब्द में भय को प्राप्त होकर कंपित होते और भूगोल आदि प्रतिक्षण भ्रमण किया करते हैं ऐसा निश्चित समझो ॥ १० ॥

मरु॑तो वीळुपा॒णिभि॑श्चि॒त्रा रोध॑स्वती॒रनु॑ या॒तेमखि॑द्रयामभिः ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (मरुतः) योगाभ्यासी योगव्यवहार सिद्धि चाहने वाले पुरुषो ! तुम लोग (अखिद्रयामभिः) निरन्तर गमनशील (वीळुपाणिभिः) दृढ़ बलरूप ग्रहण के साधक व्यवहार वाले पवनों के साथ (रोधस्वतीः) बहुत प्रकार के बांध वा आवरण और (चित्राः) आश्चर्य्य गुण वाली नदी वा नाडियों के (ईम्) (अनु) अनुकूल (यात) प्राप्त हों ॥ ११ ॥

भावार्थ—पवनों में गमन बल और व्यवहार होने के हेतु स्वाभाविक धर्म हैं और ये निश्चय करके नदियों को चलाने वाले नाडियों के मध्य में गमन करते हुये रुधिर रसादि को शरीर के अवयवों में प्राप्त करते हैं इस कारण योगी लोग योगाभ्यास और अन्य मनुष्य बल आदि के साधनरूप वायुओं से बड़े बड़े उपकार ग्रहण करें ॥ ११ ॥

स्थि॒रा वः॑ सन्तु ने॒मयो॒ रथा॒ अश्वा॑स एषाम् । सुसं॑स्कृता अ॒भीश॑वः ॥१२॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! (वः) तुम्हारे (एषाम्) इन पवनों के सकाश से (सुसंस्कृताः) उत्तम शिल्पविद्या से संस्कार किये हुये (नेमयः) कलाचक्र युक्त (रथाः) विमान आदि रथ (अभीशवः) मार्गों को व्याप्त करने वाले (अश्वासः) अग्नि आदि वा घोड़ों के सदृश (स्थिराः) दृढ़ बलयुक्त (सन्तु) होवें ॥ १२ ॥

भावार्थ—ईश्वर उपदेश करता है। हे मनुष्यो ! तुम को चाहिये कि अनेक प्रकार के कलाचक्र युक्त विमान आदि यानों को रच कर उनमें जल्दी चलने वाले अग्नि जल के सम्प्रयोग वा पवनों के योग से सुखपूर्वक जाने आने और शत्रुओं को जीतने आदि सब व्यवहारों को सिद्ध करो ॥ १२ ॥

अच्छा॑ वदा॒ तना॑ गि॒रा ज॒रायै॒ ब्रह्म॑ण॒स्पति॑म् । अ॒ग्निं मि॒त्रं न द॑र्श॒तम् ॥१३॥

पदार्थ—हे सब विद्या के जानने वाले विद्वान् ! तू (न) जैसे (ब्रह्मणः) वेद के पढ़ाने और उपदेश से (पतिम्) पालने हारे (दर्शतम्) देखने योग्य (अग्निम्) तेजस्वी (मित्रम्) जैसे मित्र को मित्र उपदेश करता है वैसे (जरायै) गुणज्ञान के लिये (तना) गुणों के प्रकाश को बढ़ाने हारी (गिरा) अपनी वेदयुक्त वाणी से विमानादि यानविद्या का (अच्छा वद) अच्छे प्रकार उपदेश कर ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम लोगों को चाहिये कि जैसे प्रिय मित्र अपने प्रिय तेजस्वी वेदोपदेशक मित्र

को सेवा और गुणों की स्तुति से तृप्त करता है वैसे सब विद्याओं का विस्तार करने वाली वेदवाणी से विमानादि यानों के रचने की विद्या का उस के गुणज्ञान के लिये निरन्तर उपदेश करो ॥ १३ ॥

मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्यइव ततनः । गाय गायत्रमुक्थ्यम् ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्य ! तू (**आस्ये**) अपने मुख में (**श्लोकम्**) वेद की शिक्षा से युक्त वाणी को (**मिमीहि**) निर्माण कर और उस वाणी को (**पर्जन्य इव**) जैसे मेघ वृष्टि करता है वैसे (**ततनः**) फैला और (**उक्थ्यम्**) कहने योग्य (**गायत्रम्**) गायत्री छन्द वाले स्तोत्ररूप वैदिक सूक्तों को (**गाय**) पढ़ तथा पढ़ा ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे विद्वानों से विद्या पढ़े हुए मनुष्यो ! तुम लोगों को उचित है कि सब प्रकार प्रयत्न के साथ वेदविद्या से शिक्षा की हुई वेदवाणी से वाणी के वेत्ता के समान वक्ता होकर वायु आदि पदार्थों के गुणों की स्तुति तथा उपदेश किया करो ॥ १४ ॥

वन्दस्व मारुतं गणं त्वेषं पनस्युमर्किणम् । अस्मे वृद्धा असन्निह ॥१५॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्य ! तू जैसे (**इह**) इस सब व्यावहार में) **अस्मे**) हम लोगों के मध्य में (**वृद्धाः**) बड़ी विद्या और आयु से युक्त वृद्ध पुरुष सत्याचरण करने वाले (**असन्**) होवें वैसे (**अर्किणम्**) प्रशंसनीय (**त्वेषम्**) अग्नि आदि प्रकाशवान् द्रव्यों से युक्त (**पनस्युम्**) अपने आत्मा के व्यवहार की इच्छा के हेतु (**मारुतम्**) वायु के इस (**गणम्**) समूह की (**वन्दस्व**) कामना कर ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिए कि जैसे पवन कार्यों को सिद्ध करने के साधन होने से सुख देने वाले होते हैं वैसे विद्या और अपने पुरुषार्थ से सुख किया करें ॥ १५ ॥

इस सूक्त में वायु के दृष्टान्त से विद्वानों के गुण वर्णन करने से पूर्व सूक्त के साथ इस सूक्त की संगति जाननी चाहिये ॥

यह अड़तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥३८॥

घोरपुत्रः कण्व ऋषिः । मरुतो देवताः । १ । ५ । ९ पथ्याबृहती । ७ उपरिष्टा-द्विराड् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । २ । ८ । १० विराड् सतः पङ्क्तिः । ४ । ६ निचृत्सतः पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३ अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । अत्र सायणाचार्य्यादिभिर्विलसनमोक्षमूलराख्यादिभिश्चैतत्सूक्तस्था मन्त्राः सतो बृहती

छन्दस्काश्च आयुजो बृहती छन्दस्काश्च छन्दःशास्त्राभिप्रायमविदित्वाऽन्यथा व्याख्याता इति मन्तव्यम् ॥

प्र यदि॒त्था प॑रा॒वतः॑ शो॒चिर्न मान॒मस्य॑थ ।

कस्य॒ क्रत्वा॑ मरुतः॒ कस्य॒ वर्प॑सा॒ कं या॑थ॒ कं ह॑ धूतयः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (**मरुतः**) विद्वान् लोगो ! आप (**यत्**) जो (**धूतयः**) सब को कंपाने वाले वायु (**शोचिर्न**) जैसे सूर्य की ज्योति और वायु पृथिवी पर दूर से गिरते हैं इस प्रकार (**परावतः**) दूर से (**कस्य**) किसके (**मानम्**) परिमाण को (**अस्यथ**) छोड़ देते (**इत्था**) इसी हेतु से (**कस्य**) सुखस्वरूप परमात्मा के (**क्रत्वा**) कर्म वा ज्ञान और (**वर्पसा**) रूप के साथ (**कम्**) सुखदायक देश को (**याथ**) प्राप्त होते हो इन प्रश्नों के उत्तर दीजिये ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। सुख की इच्छा करने वाले विद्वान् पुरुषों को चाहिये कि जैसे सूर्य की किरणें दूर देश से भूमि को प्राप्त होकर पदार्थों को प्रकाश करती हैं वैसे ही अभिमान को दूर से त्याग के सब सुख देने वाले परमात्मा और भाग्यशाली परमविद्वान् के गुण, कर्म, स्वभाव और मार्ग को ठीक ठीक जान के उन्हीं में रमण करें। ये वायु कारण से आते कारणस्वरूप से स्थित और कारण में लीन भी हो जाते हैं॥ १॥

स्थि॒रा वः॑ सन्त्वायु॑धा परा॒णुदे॑ वी॒ळू उ॒त प्र॑ति॒ष्कभे॑ ।

यु॒ष्माक॑मस्तु॒ तवि॑षी॒ पनी॑यसी॒ मा मर्त्य॑स्य मा॒यिनः॑ ॥ २ ॥

पदार्थ—हे धार्मिक मनुष्यो ! (**वः**) तुम्हारे (**आयुधा**) आग्नेय आदि अस्त्र और तलवार, धनुष् बाण, भुसुंडी (**बन्दूक**) शतघ्नी (**तोप**) आदि शस्त्र अस्त्र (**पराणुदे**) शत्रुओं को व्यथा करने वाले युद्ध (**उत**) और (**प्रतिष्कभे**) रोकने बांधने और मारने रूप कर्मों के लिये (**स्थिरा**) दृढ़ चिरस्थायी (**वीळू**) दृढ़ बड़े बड़े उत्तम [**बल**] युक्त (**तविषी**) प्रशस्त सेना (**पनीयसी**) अतिशय करके स्तुति करने योग्य वा व्यवहार को सिद्ध करने वाली (**अस्तु**) हो और पूर्वोक्त पदार्थ (**मायिनः**) कपट आदि अधर्माचरण युक्त (**मर्त्यस्य**) दुष्ट मनुष्यों के (**मा**) कभी मत हों ॥ २ ॥

भावार्थ—धार्मिक मनुष्य ही परमात्मा के कृपापात्र होकर सदा विजय को प्राप्त होते हैं दुष्ट नहीं। परमात्मा भी धार्मिक मनुष्यों ही को आशीर्वाद देता है पापियों को नहीं। पुण्यात्मा मनुष्यों को उचित है कि उत्तम उत्तम शस्त्र अस्त्र रच कर उनके फेंकने का अभ्यास करके सेना को

उत्तम शिक्षा देकर शत्रुओं का विरोध वा पराजय करके न्याय से मनुष्यों की निरन्तर रक्षा करनी चाहिये ॥ २॥

परा॑ ह॒ यत् स्थि॒रं ह॒थ नरो॑ व॒र्तय॑था गु॒रु।

वि या॑थन व॒निनः॑ पृथि॒व्या व्याशाः॒ पर्व॑तानाम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (नरः) नीतियुक्त मनुष्यो! तुम जैसे (वनिनः) सम्यक् विभाग और सेवन करने वाले किरण सम्बन्धी वायु अपने बल से (यत्) जिन (पर्वतानाम्) पहाड़ और मेघों (पृथिव्याः) और भूमि को (व्याशाः) चारों दिशाओं में व्याप्तवत् व्याप्त होकर उस (स्थिरम्) दृढ़ और (गुरु) बड़े बड़े पदार्थों को धरते और वेग से वृक्षादि को उखाड़ के तोड़ देते हैं वैसे विजय के लिये शत्रुओं की सेनाओं को (पराहथ) अच्छे प्रकार नष्ट करो और (ह) निश्चय से इन शत्रुओं को (विवर्त्तयथ) तोड़ फोड़ उलट पलट कर अपनी कीर्त्ति से (आशाः) दिशाओं को (वियाथन) अनेक प्रकार व्याप्त करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वेगयुक्त वायु वृक्षादि को उखाड़ तोड़ झंझोड़ देते और पृथिव्यादि को धरते हैं वैसे धार्मिक न्यायाधीश अधर्माचारों को रोक के धर्मयुक्त न्याय से प्रजा का धारण करें और सेनापति दृढ़ बलयुक्त हो उत्तम सेना का धारण शत्रुओं को मार पृथिवी पर चक्रवर्त्ति राज्य का सेवन कर सब दिशाओं में अपनी उत्तम कीर्ति का प्रचार करें और जैसे प्राण सब से अधिक प्रिय होते हैं वैसे राजपुरुष प्रजा को प्रिय हों ॥ ३ ॥

न॒हि वः॒ शत्रु॑र्विवि॒दे अधि॒ द्यवि॒ न भूम्यां॑ रिशादसः।

यु॒ष्माक॑मस्तु॒ तवि॑षी॒ तना॑ यु॒जा रुद्रा॑सो॒ नू चि॑दा॒धृषे॑ ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (रिशादसः) शत्रुओं के नाशकारक (रुद्रासः) अन्यायकारी मनुष्यों को रुलाने वाले वीर पुरुष! (चित्) जो (युष्माकम्) तुम्हारे (आधृषे) प्रगल्भ होने वाले व्यवहार के लिये (तना) विस्तृत (युजा) बलादि सामग्री युक्त (तविषी) सेना (अस्तु) हो तो (अधिद्यवि) न्याय प्रकाश करने में (वः) तुम लोगों को (शत्रुः) विरोधी शत्रु (नु) शीघ्र (नहि) नहीं (विविदे) प्राप्त हो और (भूम्याम्) भूमि के राज्य में भी तुम्हारा कोई मनुष्य विरोधी उत्पन्न न हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—जैसे पवन आकाश में शत्रु रहित विचरते हैं वैसे मनुष्य विद्या, धर्म, बल, पराक्रम वाले न्यायाधीश हो सब को शिक्षा दें और दुष्ट शत्रुओं को दण्ड देके शत्रुओं से रहित होकर धर्म में वर्त्तें ॥ ४ ॥

प्र वेपयन्ति पर्वतान्वि विञ्चन्ति वनस्पतीन्।
प्रो आरत मरुतो दुर्मदा इव देवासः सर्वया विशा॥ ५॥

पदार्थ—हे (मरुतः) वायुवत् बलिष्ठ और प्रिय (देवासः) न्यायाधीश सेनापति सभाध्यक्ष विद्वान् लोगो ! तुम जैसे वायु (वनस्पतीन्) वड़ और पिप्पल आदि वनस्पतियों को (प्रवेपयन्ति) कंपाते और जैसे (पर्वतान्) मेघों को (विविञ्चन्ति) पृथक् पृथक् कर देते हैं वैसे (दुर्मदा इव) मदोन्मत्तों के समान वर्त्तते हुए शत्रुओं को युद्ध से (प्रो आरत) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये और (सर्वया) सब (विशा) प्रजा के साथ सुख से वर्त्तिये॥ ५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। जैसे राजधर्म में वर्त्तने वाले विद्वान् लोग दंड से घमंडी डाकुओं को वश में करके धर्मात्मा प्रजाओं का पालन करते हैं वैसे तुम भी अपनी प्रजा का पालन करो और जैसे पवन भूगोल के चारों ओर विचरते हैं वैसे आप लोग भी सर्वत्र जाओ आओ।

उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं प्रष्टिर्वहति रोहितः।
आ वो यामाय पृथिवी चिदश्रोदबीभयन्त मानुषाः॥ ६॥

पदार्थ—हे (मानुषाः) विद्वान् लोगो ! तुम (वः) अपने (यामाय) स्थानान्तर में जाने के लिये (प्रष्टि) प्रश्नोत्तरादि विद्या व्यवहार से विदित (रोहितः) रक्त गुणयुक्त अग्नि (पृथिवी) स्थल जल अन्तरिक्ष में जिनको (उपोवहति) अच्छे प्रकार चलाता है जिनके शब्दों को (अश्रोत्) सुनते और (अबीभयन्त) भय को प्राप्त होते हैं उन (रथेषु) रथों में (पृषतीः) वायुओं को (अयुग्ध्वम्) युक्त करो॥ ६॥

भावार्थ—जो मनुष्य यानों में जल अग्नि और वायु को युक्त कर उन में बैठ गमनागमन करें तो सुख ही से सर्वत्र जाने आने को समर्थ हों॥६॥

आ वो मक्षू तनाय कं रुद्रा अवो वृणीमहे।
गन्ता नूनं नोऽवसा यथा पुरेत्था कण्वाय बिभ्युषे॥ ७॥

पदार्थ—हे (रुद्राः) दुष्टों के रोदन कराने वाले ४४ वर्ष पर्यन्त अखण्डित ब्रह्मचर्य सेवन से सकल विद्याओं को प्राप्त विद्वान् लोगो ! (यथा) जैसे हम लोग (वः) आप लोगों के लिये (अवसा) रक्षादि से (मक्षु) शीघ्र (नूनम्) निश्चित (कम्) सुख को (वृणीमहे) सिद्ध करते हैं (इत्था) ऐसे तुम भी (नः) हमारे वास्ते (अवः) सुख वर्द्धक रक्षादि कर्म (गन्त) किया करो और जैसे ईश्वर (बिभ्युषे) दुष्ट प्राणी वा दुखों से भयभीत (तनाय) सत्र को सद्विद्या

और धर्म के उपदेश से सुखकारक (कण्वाय) आप्त विद्वान् के अर्थ रक्षा करता है वैसे तुम और हम मिलके सब प्रजा की रक्षा सदा किया करें ।। ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे मेधावी विद्वान् लोग वायु आदि के द्रव्य और गुणों के योग से भय को निवारण करके तुरन्त सुखी होते हैं वैसे हम लोगों को भी होना चाहिये ॥ ७ ॥

युष्मेषितो मरुतो मर्त्येषित आ यो नो अभ्व ईषते ।
वि तं युयोत शवसा व्योजसा वि युष्माकाभिरूतिभिः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (मरुतः) विद्वानो ! तुम (यः) जो (अभ्वः) विरोधी मित्र-भाव रहित (युष्मेषितः) तुम लोगों को जीतने और (मर्त्येषित) मनुष्यों से विजय की इच्छा करने वाला शत्रु (नः) हम लोगों को (ईषते) मारता है उस को (शवसा) बलयुक्त सेना वा (व्योजसा) अनेक प्रकार के पराक्रम और (युष्माकाभि) तुम्हारी कृपापात्र (ऊतिभिः) रक्षा प्रीति तृप्ति ज्ञान आदिकों से युक्त सेनाओं से (वियुयोत) विशेषता से दूर कर दीजिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि स्वार्थी परोपकार से रहित दूसरे को पीड़ा देने में अत्यन्त प्रसन्न शत्रु हैं उन को विद्या वा शिक्षा के द्वारा खोटे कर्मों से निवृत्त कर वा उत्तम सेना बल को संपादन [कर] युद्ध से जीत [उनका] निवारण करके सब के हित का विस्तार करना चाहिये ॥ ८ ॥

असामि हि प्रयज्यवः कण्वं दद प्रचेतसः ।
असामिभिर्मरुत आ न ऊतिभिर्गन्ता वृष्टिं न विद्युतः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (प्रयज्यवः) अच्छे प्रकार परोपकार करने (प्रचेतसः) उत्तम ज्ञानयुक्त (मरुतः) विद्वान् लोगो ! तुम (असामिभिः) नाशरहित (ऊतिभिः) रक्षा सेना आदि से (न) जैसे (विद्युतः) सूर्य बिजुली आदि (वृष्टिम्) वर्षा कर सुखी करते हैं वैसे (नः) हम लोगों को (असामि) अखंडित सुख (दद) दीजिये (हि) निश्चय से दुष्ट शत्रुओं को जीतने के वास्ते (कण्वम्) और आप्त विद्वान् के समीप नित्य (आगन्त) अच्छे प्रकार जाया कीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे पवन सूर्य बिजुली आदि वर्षा करके सब प्राणियों के सुख के लिये अनेक प्रकार के फल पत्र पुष्प अन्न आदि को उत्पन्न करते हैं वैसे विद्वान् लोग भी सब प्राणिमात्र को वेदविद्या देकर उत्तम उत्तम सुखों को निरन्तर संपादन करें ॥ ९ ॥

असाम्योजो बिभृथा सुदानवोऽसामि धूतयः शवः ।
ऋषिद्विषे मरुतः परिमन्यव इषुं न सृजत द्विषम् ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (**धूतयः**) दुष्टों को कंपाने (**सुदानवः**) उत्तम दान स्वभाव वाले (**मरुतः**) विद्वान् लोगो ! तुम (**न**) जैसे (**परिमन्यवः**) सब प्रकार क्रोध-युक्त शूरवीर मनुष्य (**द्विषम्**) शत्रु के प्रति (**इषुम्**) बाण आदि शस्त्र समूहों को छोड़ते हैं वैसे (**ऋषिद्विषे**) वेद, वेदों को जानने वाले और ईश्वर के विरोधी दुष्ट मनुष्यों के लिये (**असामि**) अखिल (**ओजः**) विद्या पराक्रम (**असामि**) संपूर्ण (**शवः**) बल को (**बिभृथ**) धारण करो और उस शत्रु के प्रति शस्त्र वा अस्त्रों को (**सृजत**) छोड़ो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे धार्मिक शूरवीर मनुष्य क्रोध को उत्पन्न [कर] शस्त्रों के प्रहारों से शत्रुओं को जीत निष्कंटक राज्य को प्राप्त होकर प्रजा को सुखी करते हैं वैसे ही सब मनुष्य वेद विद्वान् या ईश्वर के विरोधियों के प्रति सम्पूर्ण बल पराक्रमों से शस्त्र अस्त्रों को छोड़ उनको जीत कर ईश्वर वेद विद्या और विद्वान् युक्त राज्य को संपादन करें ॥ १० ॥

इस सूक्त में वायु और विद्वानों के गुण वर्णन करने से पूर्व सूक्तार्थ के साथ इस सूक्त के अर्थ की संगति जाननी चाहिये।

यह उनतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

घोरपुत्रः कण्व ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । १ । २ । ८ । निचृदुपरिष्टाद्बृहती-छन्दः । ५ पथ्या बृहतीछन्दः । मध्यमः [स्वरः] । ३ । ७ आर्चीत्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ । ६ । सतः पङ्क्तिर्निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे ।
उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥ १ ॥

पदार्थ— हे (**ब्रह्मणस्पते**) वेद की रक्षा करने वाले (**इन्द्र**) अखिल विद्यादि परमैश्वर्ययुक्त विद्वन् ! जैसे (**सचा**) विज्ञान से (**देवयन्तः**) सत्य विद्याओं की कामना करने (**सुदानवः**) उत्तम दान स्वभाव वाले (**मरुतः**) विद्याओं के सिद्धान्तों के प्रचार के अभिलाषी हम लोग (**त्वा**) आपको) (**ईमहे**) प्राप्त होते और जैसे सब धार्मिक जन (**उपप्रयन्तु**) समीप आवें वैसे आप (**प्राशूः**) सब सुखों के प्राप्त कराने वाले (**भव**) हूजिये और सब के हितार्थ प्रयत्न कीजिये ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सब मनुष्य अति पुरुषार्थ से विद्वानों का संग उन की सेवा विद्या योग धर्म और सब का उपकार करना आदि उपायों से समग्र विद्याओं के अध्येता परमात्मा के विज्ञान और प्राप्ति से सब मनुष्यों को प्राप्त हों और इसी से अन्य सब को सुखी करें ॥ १ ॥

त्वामिद्धि सहसस्पुत्र मर्त्यं उपब्रूते धने हिते ।
सुवीर्यं मरुत आ स्वश्व्यन्दधीत यो व आचके ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (**सहसस्पुत्र**) ब्रह्मचर्य और विद्यादि गुणों से शरीर आत्मा के पूर्ण बलयुक्त के पुत्र ! (**यः**) जो (**मर्त्यः**) विद्वान् मनुष्य (**त्वाम्**) तुझ को सब विद्या (**उपब्रूते**) पढ़ाता हो और हे (**मरुतः**) बुद्धिमान् लोगो ! आप जो (**वः**) आप लोगों को (**हिते**) कल्याणकारक (**धने**) सत्यविद्यादि धन में (**आचके**) तृप्त करें (**इत्**) उसी के लिये (**स्वश्व्यम्**) उत्तम विद्या विषयों में उत्पन्न (**सुवीर्यम्**) अत्युत्तम पराक्रम को तुम लोग धारण करो ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग पढ़ने पढ़ाने आदि धर्मयुक्त कर्मों ही से एक दूसरे का उपकार करके सुखी हों ॥ २ ॥

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् (**ब्रह्मणः**) वेदों का (**पतिः**) प्रचार करने वाले ! आप जिस (**पङ्क्तिराधसम्**) धर्मात्मा और वीर पुरुषों को सिद्धकारक (**अच्छावीरम्**) शुद्ध पूर्ण शरीर आत्मबलयुक्त वीरों की प्राप्ति के हेतु (**यज्ञम्**) पठन पाठन श्रवण आदि क्रियारूप यज्ञ को (**प्रैतु**) प्राप्त होते और हे विद्यायुक्त स्त्री ! (**सूनृता**) उस वेदवाणी की शिक्षा सहित (**देवी**) सब विद्या सुशीलता से प्रकाशमान होकर आप भी जिस यज्ञ को प्राप्त हो उस यज्ञ को (**देवाः**) विद्वान् लोग (**नः**) हम लोगों को (**प्रणयन्तु**) प्राप्त करावें ॥ ३ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को ऐसी इच्छा करनी चाहिये कि जिससे विद्या की वृद्धि होती जाय ॥ ३ ॥

यो वाघते ददाति सूनरं वसु स धत्ते अक्षिति श्रवः ।
तस्मा इळां सुवीरामा यजामहे सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—(**यः**) जो मनुष्य (**वाघते**) विद्वान् के लिये (**सूनरम्**) जिससे उत्तम मनुष्य हों उस (**वसु**) धन को (**ददाति**) देता है और जिस (**अनेहसम्**)

हिंसा के अयोग्य (सुप्रतूर्त्तिम) उत्तमता से शीघ्र प्राप्ति कराने (सुवीराम्) जिस से उत्तम शूरवीर प्राप्त हों (इडाम्) पृथिवी वा वाणी को हम लोग (आयजामहे) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं उस से (सः) वह पुरुष (अक्षिति) जो कभी क्षीणता को न प्राप्त हो उस (श्रवः) धन और विद्या के श्रवण को (धत्ते) करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—ो मनुष्य शरीर वाणी मन और धन से विद्वानों का सेवन करता है वही अक्षय विद्या को प्राप्त हो और पृथिवी के राज्य को भोग कर मुक्ति को प्राप्त होता है। जो पुरुष वाणीविद्या को प्राप्त होते हैं, वे विद्वान् दूसरे को भी पण्डित कर सकते हैं आलसी अविद्वान् पुरुष नहीं ॥ ४ ॥

प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम् ।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे ॥ ५ ॥

पदार्थ—जो (ब्रह्मणस्पतिः) बड़े भारी जगत् और वेदों का पति स्वामी न्यायाधीश ईश्वर (नूनम्) निश्चय करके (उक्थ्यम्) कहने सुनने योग्य वेदवचनों में होने वाले (मन्त्रम्) वेदमन्त्र-समूह का (प्रवदति) उपदेश करता है वा (यस्मिन्) जिस जगदीश्वर में (इन्द्रः) बिजुली (वरुणः) समुद्र चन्द्र तारे आदि लोकान्तर (मित्रः) प्राण (अर्यमा) वायु और (देवाः) पृथिवी आदि लोक और विद्वान् लोग (ओकांसि) स्थानों को (चक्रिरे) किये हुए हैं, उसी परमेश्वर का हम लोग सत्कार करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि जिस ईश्वर ने वेदों का उपदेश किया है, जो सब जगत् में व्याप्त होकर स्थित है जिस में सब पृथिवी आदि लोक रहते और मुक्ति समय में विद्वान् लोग निवास करते हैं, उसी परमेश्वर की उपासना करनी चाहिये इस से भिन्न किसी की नहीं ॥ ५ ॥

तमिद्वोचेमा विदथेषु शम्भुवं मन्त्रं देवा अनेहसम् ।
इमां च वाचं प्रतिहर्यथा नरो विश्वेद्वामा वो अश्नवत् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (देवाः) विद्वानो ! (वः) तुम लोगों के लिये हम लोग (विदथेषु) जानने योग्य पढ़ने पढ़ाने आदि व्यवहारों में जिस (अनेहसम्) अहिंसनीय सर्वदा रक्षणीय दोषरहित (शंभुवम्) कल्याणकारक (मन्त्रम्) पदार्थों को मनन कराने वाले मन्त्र अर्थात् श्रुतिसमूह को (वोचेम) उपदेश करें (तम्) उस वेद को (इत्) ही तुम लोग ग्रहण करो (इत्) जो (इमाम्) इस (वाचम्) वेद वाणी को [(प्रतिहर्य्यथ)] बार बार जानो तो (विश्वा) सब (वामा) प्रशंसनीय वाणी (वः) तुम लोगो को (अश्नवत्) प्राप्त होवे ॥ ६ ॥

भावार्थ—विद्वानों को योग्य है कि विद्या के प्रचार के लिए मनुष्यों को निरन्तर अर्थ अंग उपांग रहस्य स्वर और हस्तक्रिया सहित वेदों का उपदेश करें और ये लोग अर्थात् मनुष्यमात्र इन विद्वानों से सब वेदविद्या को साक्षात् करें जो कोई पुरुष सुख चाहे तो वह विद्वानों के संग से विद्या को प्राप्त करे तथा इस विद्या के विना किसी को सत्य सुख नहीं होता इस से पढ़ने पढ़ाने वालों को प्रयत्न से सकल विद्याओं को ग्रहण करनी वा करानी चाहिए ॥ ६ ॥

को दे॑व॒यन्त॑मश्नव॒ज्जनं॒ को वृ॒क्तब॑र्हिषम् ।
प्रप्र॑ दा॒श्वान् प॒स्त्या॑भिरस्थितान्त॒र्वाव॑त् क्षयं॑ दधे ॥ ७ ॥

पदार्थ—(कः) कौन मनुष्य (देवयन्तम्) विद्वानों की कामना करने और (कः) कौन (वृक्तबर्हिषम्) सब विद्याओं में कुशल सब ऋतुओं में यज्ञ करने वाले (जनम्) सकल विद्याओं में प्रकट हुए मनुष्य को (अश्नवत्) प्राप्त तथा कौन (दाश्वान्) दानशील पुरुष (प्रास्थित) प्रतिष्ठा को प्राप्त होवे और कौन (पस्त्याभिः) उत्तमगृह वाली भूमि में (अन्तर्वावत्) सब के अन्तर्गत चलने वाले वायु से युक्त (क्षयम्) निवास करने योग्य घर को (दधे) धारण करे ॥ ७ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य विद्याप्रचार की कामना वाले उत्तम विद्वान् को नहीं प्राप्त होते और न सब दानशील होकर सब ऋतुओं में सुखरूप घर को धारण कर सकते हैं, किन्तु कोई ही भाग्यशाली विद्वान् मनुष्य इन सब को प्राप्त हो सकता है ॥ ७ ॥

उप॑ क्ष॒त्रं पृ॑ञ्ची॒त हन्ति॒ राज॑भि॒र्भये॑ चि॒त्सुक्षि॒तिं द॑धे ।
नास्य॑ व॒र्ता न त॑रु॒ता म॑हाध॒ने नार्भे॑ अस्ति व॒ज्रिणः॑ ॥ ८ ॥

पदार्थ—जो मनुष्य (क्षत्रम्) राज्य को (पृञ्चीत) संबन्ध तथा (सुक्षितिम्) उत्तमोत्तम भूमि को प्राप्ति कराने वाले व्यवहार को (दधे) धारण करता है (अस्य) इस सर्व सभाध्यक्ष (वज्रिणः) बली के (राजभिः) रजपूतों के साथ (भये) युद्ध भीति में अपने मनुष्यों को कोई भी शत्रु (न) नहीं (हन्ति) मार सकता (न) (महाधने) नहीं महाधन की प्राप्ति के हेतु बड़े युद्ध में (वर्त्ता) विपरीत वर्त्तने वाला और (न) इस वीर्य वाले के समीप (अर्भे) छोटे युद्ध में (चित्) भी (तरुता) बल को उल्लंघन करने वाला कोई (अस्ति) होता है ॥ ८ ॥

भवार्थ—जो रजपूत लोग महाधन की प्राप्ति के निमित्त बड़े युद्ध वा थोड़े युद्ध में शत्रुओं को जीत वा बांध के निवारण करने और धर्म से प्रजा

का पालन करने को समर्थ होते हैं वे इस संसार में आनन्द को भोग परलोक में भी बड़े भारी आनन्द को भोगते हैं ॥ ८ ॥

अब उनतालीसवें सूक्त में कहे हुए विद्वानों के कार्यरूप अर्थ के साथ ब्रह्मणस्पति आदि शब्दों के अर्थों के संबंध से पूर्व सूक्त की संगति जाननी चाहिये ॥

यह चालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥ ४० ॥

घोरः कण्व ऋषिः । १—३ । ७—९ वरुणमित्रार्यम्णः । ४—६ आदित्याश्च देवताः । १ । ४ । । ८ गायत्री । २ । ३ । ६ विराड्गायत्री ७ । ९ निचृद्गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा । नू चित्स दभ्यते जनः ॥१॥

पदार्थ—(**प्रचेतसः**) उत्तम ज्ञानवान् (**वरुणः**) उत्तम गुण वा श्रेष्ठपन होने से सभाध्यक्ष होने योग्य (**मित्रः**) सब का मित्र (**अर्यमा**) पक्षपात छोड़ कर न्याय करने को समर्थ ये सब (**यम्**) जिस मनुष्य वा राज्य तथा देश की (**रक्षन्ति**) रक्षा करते हों (**सः**) (**चित्**) वह भी (**जनः**) मनुष्य आदि (**नु**) जल्दी सब शत्रुओं से कदाचित् (**दभ्यते**) मारा जाता है ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि सब से उत्कृष्ट सेना सभाध्यक्ष सब का मित्र दूत पढ़ाने वा उपदेश करने वाले धार्मिक मनुष्य को न्यायाधीश करें; तथा उन विद्वानों के सकाश से रक्षा आदि को प्राप्त हो सब शत्रुओं को शीघ्र मार और चक्रवर्तिराज्य का पालन करके सब के हित को संपादन करें किसी को भी मृत्यु से भय करना योग्य नहीं है क्योंकि जिनका जन्म हुआ है उनका मृत्यु अवश्य होता है। इसलिए मृत्यु से डरना मूर्खों का काम है ॥ १ ॥

यं बाहुतेव पिप्रति पान्ति मर्त्यं रिषः । अरिष्टः सर्व एधते ॥ २ ॥

पदार्थ—ये वरुण आदि धार्मिक विद्वान् लोग (**बाहुतेव**) जैसे शूरवीर बाहुबलों से चोर आदि को निवारण कर दुःखों को दूर करते हैं वैसे (**यम्**) जिस (**मर्त्यम्**) मनुष्य को (**पिप्रति**) सुखों से पूर्ण करते और (**रिषः**) हिंसा करने वाले शत्रु से (**पान्ति**) बचाते हैं (**सः**) वे (**सर्वः**) समस्त मनुष्यमात्र (**अरिष्टः**) सब विघ्नों से रहित होकर वेदविद्या आदि उत्तम गुणों से नित्य (**एधते**) वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सभा और सेनाध्यक्ष के सहित राजपुरुष बाहुबल वा उपाय के द्वारा शत्रु डाकू चोर आदि और दरिद्रपन को निवारण कर मनुष्यों की अच्छे प्रकार रक्षा पूर्ण सुखों को संपादन सब विघ्नों को दूर पुरुषार्थ में संयुक्त कर ब्रह्मचर्य सेवन वा विषयों की लिप्सा छोड़ने से शरीर की वृद्धि और विद्या वा उत्तम शिक्षा से आत्मा की उन्नति करते हैं; वैसे ही प्रजाजन भी किया करें॥ २॥

वि दुर्गा वि द्विषः पुरो घ्नन्ति राजान एषाम्। नयन्ति दुरिता तिरः॥३॥

पदार्थ—जो (**राजानः**) उत्तम कर्म वा गुणों से प्रकाशमान राजा लोग (**एषाम्**) इन शत्रुओं के (**दुर्गा**) दुःख से जाने योग्य प्रकोटों और (**पुरः**) नगरों को [**वि**] (**घ्नन्ति**) छिन्न भिन्न करते और (**द्विषः**) शत्रुओं को [तथा (**दुरिता**) दुःखों को (**वि**)] (**तिरो नयन्ति**) नष्ट कर देते हैं, वे चक्रवर्ति राज्य को प्राप्त होने को समर्थ होते हैं॥ ३॥

भावार्थ—जो अन्याय करने वाले मनुष्य धार्मिक मनुष्यों को पीड़ा देकर दुर्ग में रहते और फिर आकर दुःखी करते हों उनको नष्ट और श्रेष्ठों के पालन करने के लिये विद्वान् धार्मिक राजा लोगों को चाहिये उनके प्रकोट और नगरों का विनाश और शत्रुओं को छिन्न भिन्न मार और वशीभूत करके धर्म से राज्य का पालन करें॥ ३॥

सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते। नात्रावखादो अस्ति वः॥४॥

पदार्थ—जहां (**आदित्यासः**) अच्छे प्रकार सेवन से अड़तालीस वर्षयुक्त ब्रह्मचर्य से शरीर आत्मा के बल सहित होने से सूर्य के समान प्रकाशित हुए अविनाशी धर्म्म को जानने वाले विद्वान् लोग रक्षा करने वाले हों वा जहां इन्हों से जिस (**अनृक्षर**) कण्टक गड्ढ़ा चोर डाकू अविद्या अधर्माचरण से रहित सरल (**सुगः**) सुख से जानने योग्य (**पन्थाः**) जल स्थल अन्तरिक्ष में जाने के लिये वा विद्या धर्म न्याय प्राप्ति के मार्ग का सम्पादन किया हो उस और (**ऋतम्**) ब्रह्म सत्य वा यज्ञ को (**यते**) प्राप्त होने के लिये तुम लोगों को (**अत्र**) इस मार्ग में (**अव-खादः**) भय (**नास्ति**) कभी नहीं होता॥ ४॥

भावार्थ—मनुष्यों को भूमि समुद्र अन्तरिक्ष में रथ नौका विमानों के लिये सरल दृढ़ कण्टक चोर डाकू भय आदि दोष रहित मार्गों को संपादन करना चाहिये; जहां किसी को कुछ भी दुःख वा भय न होवे इन सब को सिद्ध करके अखण्ड चक्रवर्ती राज्य को भोग करना वा कराना चाहिये॥४॥

यं यज्ञं नयथा नर आदित्या ऋजुना पथा। प्र वः स धीतये नशत्॥५॥

पदार्थ—हे (**आदित्याः**) सकल विद्याओं से सूर्य्यवत् प्रकाशमान (**नरः**),

न्याययुक्त राजसभासदो ! आप लोग (**धीतये**) सुखों को प्राप्त कराने वाली क्रिया के लिये (**यम्**) जिस (**यज्ञम्**) राजधर्मयुक्त व्यवहार को (**ऋजुना**) शुद्ध सरल (**पथा**) मार्ग से (**नयथ**) प्राप्त होते हो (**सः**) सो (**वः**) तुम लोगों को (**प्रणशत्**) नष्ट करने हारा नहीं होता ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से (न) इस पद की अनुवृत्ति है। जहां विद्वान् लोग सभा सेनाध्यक्ष सभा में रहने वाले भृत्य होकर विनयपूर्वक न्याय करते हैं, वहां सुख का नाश कभी नहीं होता ॥ ५ ॥

स रत्नं मर्त्यो वसु विश्वं तोकमुत त्मना । अच्छां गच्छत्यस्तृतः ॥६॥

पदार्थ—जो (**अस्तृतः**) हिंसा रहित (**मर्त्यः**) मनुष्य है (**सः**) वह (**त्मना**) आत्मा मन वा प्राण से (**विश्वम्**) सब (**रत्नम्**) मनुष्यों के मनों के रमण कराने वाले (**वसु**) उत्तम से उत्तम द्रव्य (**उत**) और (**तोकम्**) सब उत्तम गुणों से युक्त पुत्रों को (**अच्छ गच्छति**) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—विद्वान् मनुष्यों से अच्छे प्रकार रक्षा किये हुए मनुष्य आदि प्राणी सब उत्तम से उत्तम पदार्थ और सन्तानों को प्राप्त होते है। रक्षा के विना किसी पुरुष वा प्राणी की बढ़ती नहीं होती ॥ ६ ॥

कथा राधाम सखायः स्तोमं मित्रस्यार्यम्णः । महि प्सरो वरुणस्य ॥७॥

पदार्थ—हम लोग (**सखायः**) सब के मित्र होकर (**मित्रस्य**) सब के सखा (**अर्य्यम्णः**) न्यायाधीश (**वरुणस्य**) और सब से उत्तम अध्यक्ष के (**महि**) बड़े (**स्तोमम्**) गुण स्तुति के समूह को (**कथा**) किस प्रकार से (**राधाम**) सिद्ध करें और किस प्रकार हम को (**प्सरः**) सुखों का भोग सिद्ध होवे ॥ ७ ॥

भावार्थ—जब कोई मनुष्य किसी को पूछे कि हम किस प्रकार से मित्रपन न्याय और उत्तम विद्याओं को प्राप्त होवें वह उनको ऐसा कहे कि परस्पर मित्रता विद्यादान और परोपकार ही से यह सब प्राप्त हो सकता है। इस के विना कोई भी मनुष्य किसी सुख को सिद्ध करने को समर्थ नहीं हो सकता ॥ ७ ॥

मा वो घ्नन्तं मा शपन्तं प्रति वोचे देवयन्तम् । सुम्नैरिद्व आ विवासे ॥८॥

पदार्थ—मैं (**वः**) मित्ररूप तुम को (**घ्नन्तम्**) मारते हुए जन से (**मा प्रतिवोचे**) संभाषण भी न करूं (**वः**) तुम को (**शपन्तम्**) कोसते हुए मनुष्य से प्रिय (**मा०**) न बोलूं किन्तु (**सुम्नैः**) सुखों से सहित तुम को सुख देने हारे (**इत्**) ही (**देवयन्तम्**) दिव्यगुणों की कामना करने हारे की (**आविवासे**) अच्छे प्रकार सेवा सदा किया करूं ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्य को योग्य है कि न अपने शत्रु और न मित्र के शत्रु में प्रीति करे मित्र की रक्षा और विद्वानों की प्रिय वाक्य, भोजन वस्त्र पान आदि से सेवा करनी चाहिये, क्योंकि मित्र रहित पुरुष सुख की वृद्धि नहीं कर सकता, इस से विद्वान् लोग बहुत से धर्मात्माओं को मित्र करें॥ ८॥

चतुरश्चिद्ददमानाद् बिभीयादा निधातोः। न दुरुक्ताय स्पृहयेत्॥९॥

पदार्थ—मनुष्य (चतुरः) मारने शाप देने और (ददमानात्) विषादि देने और (निधातोः) अन्याय से दूसरे के पदार्थों को हरने वाले इन चार प्रकार के मनुष्यों का विश्वास न करे (चित्) और इन से (बिभीयात्) नित्य डरे और (दुरुक्ताय) दुष्ट वचन कहने वाले मनुष्य के लिये (न स्पृहयेत्) इन पांचों को मित्र करने की इच्छा कभी न करें॥ ९॥

भावार्थ—जैसे मनुष्य को दुष्ट कर्म्म करने वा दुष्ट वचन बोलने वाले मनुष्यों का संग विश्वास और मित्र से द्रोह, दूसरे का अपमान और विश्वासघात आदि कर्म्म कभी न करें॥ ९॥

इस सूक्त में प्रजा की रक्षा, शत्रुओं को जीतना, मार्ग का शोधना, यान की रचना और उनका चलाना, द्रव्यों की उन्नति करना, श्रेष्ठों के साथ मित्रता, दुष्टों में विश्वास न करना और अधर्माचरण से नित्य डरना; इस प्रकार कथन से पूर्व—सूक्तार्थ के साथ इस सूक्त के अर्थ की संगति जाननी चाहिये।

यह इकतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ॥ ४१॥

घौरः कण्व ऋषिः। पूषा देवता। १। ६ निचृद्गायत्री। २। ३। ५—८। १० गायत्री। ४ विराड् गायत्री च छन्दः। षड्जः स्वरः।

सम्पूषन्नध्वनस्तिर व्यंहो विमुचो नपात्। सक्ष्वा देव प्र णस्पुरः॥१॥

पदार्थ—हे (पूषन्) सब जगत् का पोषण करने वाले (नपात्) नाश रहित (देव) दिव्य गुण संपन्न विद्वन्! दुःख के (अध्वनः) मार्ग से (वितिर) पार होकर हमको भी पार कीजिये (अंहः) रोगरूपी दुःखों के वेग को (विमुचः) दूर कीजिये (पुरः) पहिले (नः) हम लोगों को (प्रसक्ष्व) उत्तम उत्तम गुणों में प्रसक्त कीजिये॥ १॥

भावार्थ—मनुष्य जैसे परमेश्वर की उपासना वा उस की आज्ञा के पालन से सब दुःखों के पार प्राप्त होकर सब सुखों को प्राप्त करें; इसी

प्रकार धर्म्मात्मा सब के मित्र परोपकार करने वाले विद्वानों के समीप वा उनके उपदेश से अविद्या जालरूपी मार्ग से पार होकर विद्यारूपी सूर्य्य को प्राप्त करें ॥ १ ॥

यो नः॑ पूषन्नघो वृको॑ दुःशेव॑ आदिदे॑शति। अप॑ स्म तं प॒थो ज॑हि ॥२॥

पदार्थ—हे (**पूषन्**) सब जगत् को विद्या से पुष्ट करने वाले विद्वन् ! आप (**यः**) जो (**अघः**) पाप करने (**दुःशेवः**) दुःख में शयन कराने योग्य (**वृकः**) स्तेन अर्थात् दुःख देने वाला चोर (**नः**) हम लोगों को (**आदिदेशति**) उद्देश करके पीड़ा देता हो (**तम्**) उस दुष्ट स्वभाव वाले को (**पथः**) राजधर्म और प्रजामार्ग से (**अपजहि**) नष्ट वा दूर कीजिये ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि शिक्षा विद्या तथा सेना के बल से दूसरे के धन को लेने वाले शठ और चोरों को मारना सर्वथा दूर करना निरन्तर बाँध के राजनीति के मार्गों को भय से रहित संपादन करें । जैसे जगदीश्वर दुष्टों को उनके कर्मों के अनुसार दण्ड के द्वारा शिक्षा करता है वैसे हम लोग भी दुष्टों को दण्ड द्वारा शिक्षा देकर श्रेष्ठ स्वभावयुक्त करें ॥ २ ॥

अप॒ त्यं प॑रिप॒न्थिनं॑ मुषी॒वाणं॑ हुर॒श्चित॑म् । दू॒रमधि॑ स्रु॒तेर॑ज ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् राजन् ! आप (**त्यम्**) उस (**परिपन्थिनम्**) प्रतिकूल चलने वाले डाकू (**मुषीवाणम्**) चोर कर्म से भित्ति को फोड़ कर दृष्टि का आच्छादन कर दूसरे के पदार्थों को हरने (**हुरश्चितम्**) उत्कोचक अर्थात् हाथ से दूसरे के पदार्थ को ग्रहण करने वाले अनेक प्रकार से चोरों को (**स्रुतेः**) राजधर्म और प्रजामार्ग से (**दूरम्**) (**अध्यपाज**) उन पर दण्ड और शिक्षा कर दूर कीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—चोर अनेक प्रकार के होते हैं, कोई डाकू कोई कपट से हरने, कोई मोहित करके दूसरे के पदार्थों को ग्रहण करने, कोई रात में सुरंग लगाकर ग्रहण करने, कोई उत्कोचक अर्थात् हाथ से छीन लेने, कोई नाना प्रकार के व्यवहारी दुकानों में बैठ छल से पदार्थों को हरने, कोई शुल्क अर्थात् रिशवत लेने, कोई भृत्य होकर स्वामी के पदार्थों को हरने, कोई छल कपट से औरों के राज्य को स्वीकार करने, कोई धर्मोपदेश से मनुष्यों को भ्रमाकर गुरु बन शिष्यों के पदार्थों को हरने, कोई प्राड्विवाक अर्थात् वकील होकर मनुष्यों को विवाद में फंसाकर पदार्थों को हरलेने और कोई कोई न्यायासन पर बैठ प्रजा से धन लेके अन्याय करने वाले इत्यादि हैं, इन

सब को चोर जानो, इन को सब उपायों से निकाल कर मनुष्यों को धर्म से राज्य का पालन करना चाहिये ॥ ३ ॥

त्वं तस्य॑ द्वया॒विनो॒ऽघशं॑सस्य॒ कस्य॑ चित् । प॒दाभि ति॑ष्ठ॒ तपु॑षिम् ॥४॥

पदार्थ—हे सेनासभाध्यक्ष ! (**त्वम्**) आप (**तस्य**) उस (**द्वयाविनः**) प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष औरों के पदार्थों को हरने वाले (**कस्यचित्**) किसी (**अघशंसस्य**) (**तपुषिम्**) चोरों की सेना को (**पदाभितिष्ठ**) बल से वशीभूत कीजिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—न्याय करने वाले मनुष्यों को उचित है कि किसी अपराधी चोर को दण्ड देने विना छोड़ना कभी न चाहिये, नहीं तो, प्रजा पीड़ायुक्त होकर नष्ट भ्रष्ट होने से राज्य का नाश हो जाय, इस कारण प्रजा की रक्षा के लिये दुष्ट कर्म करने वाले अपराध किये हुए माता पिता [पुत्र] आचार्य्य और मित्र आदि को भी अपराध के योग्य ताड़ना अवश्य देनी चाहिये ॥४ ॥

आ तत्ते॑ दस्र मन्तु॒मः पूष॒न्नवो॑ वृणीमहे । येन॑ पि॒तॄनचो॑दयः ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (**दस्र**) दुष्टों को नाश करने (**मन्तुमः**) उत्तम ज्ञानयुक्त (**पूषन्**) सर्वथा पुष्टि करने वाले विद्वान् ! आप (**येन**) जिस रक्षादि से (**पितॄन्**) अवस्था वा ज्ञान से वृद्धों को (**अचोदयः**) प्रेरणा करो (**तत्**) उस (**ते**) आपके (**अवः**) रक्षादि को हम लोग (**आवृणीमहे**) सर्वथा स्वीकार करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—जैसे प्रेम प्रीति के साथ सेचन करने से उत्पन्न करने वा पढ़ाने वाले ज्ञान वा अवस्था से वृद्धों को तृप्त करें वैसे ही सब प्रजाओं के सुख के लिये दुष्ट मनुष्यों को दण्ड दे के धार्मिकों को सदा सुखी रक्खें ॥५॥

अधा॑ नो विश्वसौभग॒ हिर॑ण्यवाशीमत्तम । धना॑नि सु॒षणा॑ कृधि ॥६॥

पदार्थ—हे (**विश्वसौभग**) संपूर्ण ऐश्वर्य्यों को प्राप्त होने (**हिरण्यवाशीमत्तम**) अतिशय करके सत्य के प्रकाशक उत्तम कीर्ति और सुशिक्षित वाणीयुक्त सभाध्यक्ष ! आप (**नः**) हम लोगों के लिये (**सुषणा**) सुख से सेवन करने योग्य (**धनानि**) विद्याधर्म और चक्रवर्ति राज्य की लक्ष्मी से सिद्ध किये हुए धनों को प्राप्त कराके (**अध**) पश्चात् हम लोगों को सुखी (**कृधि**) कीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—ईश्वर के अनन्त सौभाग्य वा सभासेना न्यायाधीश धार्मिक मनुष्य के चक्रवर्त्ति राज्य आदि सौभाग्य होने से इन दोनों के आश्रय से मनुष्यों को असंख्यात विद्या सुवर्ण आदि धनों की प्राप्ति से अत्यन्त सुखों के भोग को प्राप्त होना वा कराना चाहिये ॥ ६ ॥

अति॑ नः स॒श्चतो॑ नय सु॒गा नः॑ सु॒पथा॑ कृणु । पूष॑न्नि॒ह क्रतुं॑ विदः ॥७॥

पदार्थ—हे (पूषन्) सब को पुष्ट करने वाले जगदीश्वर वा प्रजा का पोषण करने हारे सभाध्यक्ष विद्वान् ! आप (इह) इस संसार वा जन्म में (सश्चतः) विज्ञानयुक्त विद्या धर्म को प्राप्त हुए (नः) हम लोगों को (सुगा) सुख पूर्वक जाने के योग्य (सुपथा) उत्तम विद्या धर्मयुक्त विद्वानों के मार्ग से (अतिनय) अत्यन्त प्रयत्न से चलाइये और हम लोगों को उत्तम विद्यादि धर्म मार्ग से (क्रतुम्) उत्तम कर्म वा उत्तम प्रज्ञा से (विदः) जानने वाले कीजिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार हैं। सब मनुष्यों को ईश्वर की प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिये कि हे जगदीश्वर ! आप कृपा करके अधर्म मार्ग से हम लोगों को अलग कर धर्म मार्ग में नित्य चलाइये, तथा विद्वान् से पूछना वा उसका सेवन करना चाहिये कि हे विद्वान् ! आप हम लोगों को शुद्ध सरल वेदविद्या से सिद्ध किये हुए मार्ग में सदा चलाया कीजिये ॥ ७ ॥

अभि सूयवसं नय न नवज्वारो अध्वने । पूषन्निह क्रतुं विदः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (पूषन्) सभाध्यक्ष ! इस संसार वा जन्मांतर में (अध्वने) श्रेष्ठ मार्ग के लिए हम लोगों को (सुयवसम्) उत्तम यव आदि ओषधी होने वाले देश को (अभिनय) सब प्रकार प्राप्त कीजिये और (क्रतुम्) उत्तम कर्म वा प्रज्ञा को (विदः) प्राप्त हूजिये जिससे इस मार्ग में चल के हम लोगों में (नवज्वारः) नवीन नवीन संताप (न) न हो ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे सभाध्यक्ष ! आप अपनी कृपा से श्रेष्ठ देश या उत्तम गुण हम लोगों को दीजिये और सब दुखों को निवारण कर सुखों को प्राप्त कीजिये, हे सभा सेनाध्यक्ष ! विद्वान् लोगों को विनयपूर्वक पालन से विद्या पढ़ाकर इस राज्य में सुख युक्त कीजिये ॥ ८ ॥

शग्धि पूर्धि प्र यंसि च शिशीहि प्रास्युदरम् । पूषन्निह क्रतुं विदः ॥९॥

पदार्थ—हे (पूषन्) सभासेनाधिपते ! आप हम लोगों के (शग्धि) सुख देने के लिये समर्थ (पूर्धि) सब सुखों की पूर्त्ति कर (प्रयंसि) दुष्ट कर्मों से पृथक् रह (शिशीहि) सुखपूर्वक सो, वा दुष्टों का छेदन कर (प्रासि) सब सेना वा प्रजा के अङ्गों को पूरण कीजिये और हम लोगों के (उदरम्) उदर को उत्तम अन्नों से (इह) इस प्रजा के सुख से पूर्ण तथा (क्रतुम्) युद्ध विद्या को (विदः) प्राप्त हूजिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषाऽलङ्कार है। सभा सेनाध्यक्ष के विना इस संसार में कोइ सामर्थ्य को देने, वा सुखों से अलंकृत करने, पुरुषार्थ

को देने, चोर डाकुओं से भय निवारण करने, सबको उत्तम भोग देने और न्यायविद्या का प्रकाश करने वाला अन्य नहीं हो सकता, इस से दोनों का आश्रय सब मनुष्य करें ॥ ९ ॥

न पूषणं मेथामसि सूक्तैरभि गृणीमसि । वसूनि दस्ममीमहे ॥ १० ॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! जैसे हम लोग (सूक्तैः) वेदोक्त स्तोत्रों से (पूषणम्) सभा और सेनाध्यक्ष को (अभिगृणीमसि) गुण ज्ञानपूर्वक स्तुति करते हैं (दस्मम्) शत्रु को (मेथामसि) मारते हैं । (वसूनि) उत्तम वस्तुओं को (ईमहे) याचना करते हैं और आपस में द्वेष कभी (न) नहीं करते वैसे तुम भी किया करो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । किसी मनुष्य को नास्तिक वा मूर्खपन से सभाध्यक्ष की आज्ञा को छोड़ शत्रु की याचना न करनी चाहिये किन्तु वेदों से राजनीति को जान के इन दोनों के सहाय से शत्रुओं को मार विज्ञान वा सुवर्ण आदि धनों को प्राप्त होकर उत्तम मार्ग में सुपात्रों के लिये दान देकर विद्या का विस्तार करना चाहिये ॥ १० ॥

इस सूक्त में पूषन् शब्द का वर्णन, शक्ति का बढ़ाना, दुष्ट शत्रुओं का निवारण, संपूर्ण ऐश्वर्य्य की प्राप्ति, सुमार्ग में चलना, बुद्धि वा कर्म का बढ़ाना कहा है, इस से इस सूक्त के अर्थ की संगति पूर्व सूक्तार्थ के साथ जाननी चाहिये ।

यह बयालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ।

घोरः कण्व ऋषिः । १ । २ । ४—६ रुद्रः । ३ मित्रावरुणौ । ७—९ सोमश्च देवताः । १—४ । ७ । ८ गायत्री । ५ विराड् गायत्री । ६ पादनिचृद् गायत्री । च छन्दः । षड्जः स्वरः । ९ अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कद्रुद्राय प्रचेतसे मीढुष्टमाय तव्यसे । वोचेम शन्तमं हृदे ॥ १ ॥

पदार्थ—हम लोग (कत्) कब (प्रचेतसे) उत्तम ज्ञानयुक्त (मीढुष्टमाय) अतिशय करके सेवन करने वा (तव्यसे) अत्यन्त वृद्ध (हृदे) हृदय में रहने वाले (रुद्राय) परमेश्वर जीव वा प्राण वायु के लिये (शन्तमम्) अत्यन्त सुखरूप वेद का (वोचेम) अच्छे प्रकार उपदेश करें ॥ १ ॥

भावार्थ—रुद्र शब्द से तीन अर्थों का ग्रहण है, परमेश्वर जीव और वायु; उन में से परमेश्वर अपने सर्वज्ञपन से जिसने जैसा पाप कर्म किया उस कर्म के अनुसार फल देने से उसको रोदन कराने वाला है । जीव निश्चय

करके मरते समय अन्य सम्बन्धियों को इच्छा कराता हुआ शरीर को छोड़ता है, तब अपने आप रोता है। और वायु शूल आदि पीड़ा कर्म से रोदन कर्म का निमित्त है, इन तीनों के योग से मनुष्यों को अत्यन्त सुखों को प्राप्त होना चाहिये ॥ १ ॥

यथा॑ नो॒ अदि॑तिः॒ कर॒त् पश्वे॒ नृभ्यो॒ यथा॒ गवे॑। यथा॑ तो॒काय॑ रु॒द्रिय॑म् ॥२॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (तोकाय) उत्पन्न हुए बालक के लिये (अदितिः) माता (यथा) जैसे (पश्वे) पशु समूह के लिये पशुओं का पालक (यथा) जैसे (नृभ्यः) मनुष्यों के लिये राजा (यथा) जैसे (गवे) इन्द्रियों के लिये जीव वा पृथिवी के लिये खेती करने वाला (करत्) सुखों को करता है वैसे (नः) हम लोगों के लिये (रुद्रियम्) परमेश्वर वा पवनों का कर्म प्राप्त हो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमाऽलङ्कार है। जैसे माता, पिता, पुत्र के लिये, गोपाल पशुओं के लिये, और राजसभा प्रजा के लिये सुखकारी होते हैं वैसे ही सुखों के करने और कराने वाले परमेश्वर और पवन भी हैं ॥ २ ॥

यथा॑ नो मि॒त्रो वरु॑णो॒ यथा॑ रु॒द्रश्चिके॑तति। यथा॒ विश्वे॑ स॒जोष॑सः ॥३॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (मित्रः) सखा वा प्राण (वरुणः) उत्तम उपदेष्टा वा उदान (यथा) जैसे (रुद्रः) परमेश्वर (नः) हम लोगों को (चिकेतति) ज्ञान युक्त करते हैं (यथा) जैसे (विश्वे) सब (सजोषसः) स्वतुल्य प्रीति सेवन करने वाले विद्वान् लोग सब विद्याओं के जानने वाले होते हैं, वैसे यथार्थवक्ता पुरुष सब को जनाया करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग सब मनुष्यों को मित्रपन और उत्तम शील धारण कराकर उनके लिये यथार्थ विद्याओं की प्राप्ति और जैसे परमेश्वर ने वेदद्वारा सब विद्याओं का प्रकाश किया है, वैसे विद्वान् अध्यापकों को भी सब मनुष्यों को विद्यायुक्त करना चाहिये ॥ ३ ॥

गा॒थप॑तिं मे॒धप॑तिं रु॒द्रं जला॑षभेषजम्। तच्छं॒योः सु॒म्नमी॑महे ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (गाथपतिम्) स्तुति करने वालों के पालक (मेध-पतिम्) यज्ञ वा पवित्र पुरुषों की पालना करने वाले (जलाषभेषजम्) जिस से सुख के लिये भेषज अर्थात् औषध हो उस (रुद्रम्) परमेश्वर के आश्रय होकर (तत्) उस विज्ञान वा (शंयोः) व्यावहारिक पारमार्थिक सुख से भी (सुम्नम्) मोक्ष के सुख की (ईमहे) याचना करते हैं वैसे तुम भी करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—कोई भी मनुष्य स्तुति यज्ञ वा दुखों के नाश करने वाली ओषधियों की प्राप्ति कराने वाले परमेश्वर विद्वान् और प्राणायाम के बिना विज्ञान और लौकिक सुख वा मोक्ष सुख प्राप्त होने के योग्य नहीं हो सकता ॥ ४ ॥

यः शुक्र इव सूर्यो हिरण्यमिव रोचते । श्रेष्ठो देवानां वसुः ॥ ५ ॥

पदार्थ—(यः) जो पूर्व कहा हुआ रुद्र सेनापति (सूर्य्यः शुक्र इव) तेजस्वी शुद्ध भास्कर सूर्य के समान (हिरण्यमिव) सुवर्ण के तुल्य प्रीतिकारक (देवानाम्) सब विद्वान् वा पृथिवी आदि के मध्य में (श्रेष्ठः) अत्युत्तम (वसुः) सम्पूर्ण प्राणी मात्र का बसाने वाला (रोचते) प्रीतिकारक हो उस को सेना का प्रधान करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि जैसा परमेश्वर सब ज्योतियों का ज्योति आनन्दकारियों का आनन्दकारी श्रेष्ठों का श्रेष्ठ विद्वानों का विद्वान् आधारों का आधार है, वैसे ही जो न्यायकारियों में न्यायकारी आनन्द देने वालों में आनन्द देने वाला श्रेष्ठ स्वभाव वालों में श्रेष्ठ स्वभाव वाला विद्वानों में विद्वान् और वास हेतुओं का वासहेतु वीर पुरुष हो उसको सभाध्यक्ष मानना चाहिये ॥ ५ ॥

शन्नः करत्यर्वते सुगं मेषाय मेष्ये । नृभ्यो नारिभ्यो गवे ॥ ६ ॥

पदार्थ—जो रुद्रस्वामी (नः) हम लोगों की (अर्वते) अश्वजाति (मेषाय) मेषजाति (मेष्ये) भेड़ बकरी (नृभ्यः) मनुष्य जाति (नारिभ्यः) स्त्री जाति और (गवे) गो जाति के लिये (सुगम्) सुगम (शम्) सुख को (करति) निरन्तर करै वही न्यायाधीश करना चाहिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को अपनी वा अपने पशु, मनुष्यों के लिये परमेश्वर की प्रार्थना, विद्वानों की सहायता, प्राणवायुओं से यथावत् उपयोग और अपना पुरुषार्थ करना चाहिये ॥ ६ ॥

अस्मे सोम श्रियमधि नि धेहि शतस्य नृणाम् । महि श्रवस्तुविनृम्णम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (सोम) जगदीश्वर सभाध्यक्ष वा आप ! (अस्मे) हम लोगों के लिये वा हम लोगों के (शतस्य) बहुत (नृणाम्) वीर पुरुषों के (तुविनृम्णम्) अनेक प्रकार के धन (महि) पूज्य वा बहुत (श्रवः) विद्या का श्रवण और (श्रियम्) राज्य लक्ष्मी को (अधि निधेहि) स्थापन कीजिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। कोई प्राणी परमेश्वर की कृपा सभाध्यक्ष की सहायता वा अपने पुरुषार्थ के बिना पूर्ण विद्या, पशु, चक्रवर्ती राज्य और लक्ष्मी को प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ७ ॥

मा नः सोमपरिबाधो मारातयो जुहुरन्त। आ न इन्दो वाजे भज ॥८॥

पदार्थ—हे (**इन्दो**) सुशिक्षा से आर्द्र करने वाले सभाध्यक्ष ! (**नः**) हम लोगों को (**सोमपरिबाधः**) जो उत्तम पदार्थों को सब प्रकार दूर करने वाले विरोधी पुरुष हैं वे हम पर (**मा जुहुरन्त**) प्रबल न होवें और (**अरातयः**) जो दान आदि धर्मरहित शत्रु हठ करने वाले हैं वे (**नः**) हम लोगों को इन शत्रुओं को (**वाजे**) युद्ध में पराजय करने को (**आभज**) अच्छे प्रकार युक्त कीजिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को अत्यन्त उत्तम बल के साहित्य से परमेश्वर वा सभासेनाध्यक्ष के आश्रय वा अपने पुरुषार्थयुक्त युद्ध में सब शत्रुओं को जीत कर न्याययुक्त होके राज्य का पालन करना चाहिये ॥ ८ ॥

यास्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन्धामन्नृतस्य ।
मूर्द्धा नाभा सोम वेन आभूषन्तीः सोम वेदः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (**सोम**) विज्ञान के देने वाले (**वेनः**) कमनीयस्वरूप (**मूर्द्धा**) सर्वोत्तम ! तू (**ऋतस्य**) सत्यस्वरूप वा सत्यप्रिय (**अमृतस्य**) नाशरहित (**नाभा**) स्थिर सुख के बन्धन रूप (**धामन्**) न्याय वा आनन्दमय स्थान में वर्त्तमान ईश्वर के समान न्यायकारी (**ते**) तेरी (**याः**) जो (**प्रजाः**) प्रजा हैं उनको (**आभूषन्तीः**) सब प्रकार भूषणयुक्त होने की (**वेनः**) इच्छा कर और उनको (**वेदः**) सब विद्याओं से प्राप्त हो ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जहां मनुष्य ईश्वर ही की उपासना करने हारे अत्युत्तम सभाध्यक्ष का आश्रय करते हैं वहां वे दुःख के लेश को भी नहीं प्राप्त होते। जैसे परमेश्वर और सभाध्यक्ष श्रेष्ठ आचरण करने वाले मनुष्यों की इच्छा करते हैं वैसे ही प्रजा में रहने वाले मनुष्य परमेश्वर वा सभाध्यक्ष की नित्य इच्छा करें क्योंकि इस के बिना बहुत सुख कभी प्राप्त नहीं हो सकते ॥ ९ ॥

इस युक्त में रुद्र शब्द के अर्थ का वर्णन, सब सुखों का प्रतिपादन, मित्रपन का आचरण, परमेश्वर वा समाध्यक्ष के आश्रय से सेखों की प्राप्ति, एक ईश्वर ही की उपासना, परमसुख की प्राप्ति और सभाध्यक्ष का आश्रय कहा है इस से सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह तेंतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥ ४३ ॥

प्रस्कण्व ऋषिः। अग्निर्देवता। १। ५ उपरिष्टाद्विराड्बृहती। ३ निचृदुपरिष्टाद्बृहती। ७। ११ निचृत्पथ्याबृहती। १२ भुरिग्बृहती। १३ पथ्याबृहती च छन्दः। मध्यमः स्वरः। २। ४। ६। ८। १४ विराट् सतःपङ्क्तिः। १० विराड् विस्तारपङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वर,। ६ आर्ची त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

इस सूक्त में सायणाचार्य्यादि वा विलसन मोक्षमूलरादिकों ने युजो-बृहती अयुजो बृहती छन्द कहे हैं, सो मिथ्या हैं। इसी प्रकार छन्दों का ज्ञान इनको सब जगह जानो॥

अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य।

आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः॥ १॥

पदार्थ—हे (विवस्वत्) स्वप्रकाशस्वरूप वा विद्याप्रकाशयुक्त (अमर्त्य) मरण धर्म से रहित वा साधारण मनुष्य स्वभाव से विलक्षण (जातवेदः) उत्पन्न हुए पदार्थों को जानने वा प्राप्त होने वाले (अग्ने) जगदीश्वर वा विद्वान्! जिस से [त्वम्] आप (अद्य) आज (दाशुषे) पुरुषार्थी मनुष्य के लिये (उषसः) प्रातःकाल से (चित्रम्) अद्भुत (विवस्वत्) सूर्य्य के समान प्रकाश करने वाले (राधः) धन को देते हो वह आप (उषर्बुधः) प्रातःकाल में जागने वाले विद्वानों को (आवह) अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिये॥ १॥

भावार्थ—मनुष्यों को परमेश्वर की आज्ञा पालन के लिये अपने पुरुषार्थ से परमेश्वर वा आलस्य रहित उत्तम विद्वानों का आश्रय लेकर चक्रवर्ति राज्य, विद्या और राज्यलक्ष्मी का स्वीकार करना चाहिये। सब विद्याओं के जानने वाले विद्वान् लोग जो उत्तम गुण और श्रेष्ठ अपने करने योग्य कर्म हैं उसी को नित्य करें और जो दुष्ट कर्म हैं उस को कभी न करें॥१॥

जुष्टो हि दूतोऽसि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम्।

सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत्॥ २॥

पदार्थ—हे (अग्ने) पावक के समान राजविद्या के जानने वाले विद्वान्! (हि) जिस कारण आप (जुष्टः) प्रसन्न प्रकृति और (दूतः) शत्रुओं को ताप कराने वाले होकर (अध्वराणाम्) अहिंसनीय यज्ञों को सिद्ध करते (रथीः) प्रशंसनीय रथयुक्त (हव्यवाहनः) देने लेने योग्य वस्तुओं को प्राप्त होने (सजूः) अपने तुल्यों के सेवन करने वाले (असि) हो इस से (अस्मे) हम लोगों में (अश्विभ्याम्) वायु जल (उषसा) प्रातःकाल में सिद्ध हुई क्रिया से सिद्ध किये हुए (बृहत्) बड़े (सुवीर्य्यम्) उत्तम पराक्रमकारक (श्रवः) सब विद्या के श्रवण का निमित्त अन्न को (धेहि) धारण कीजिये॥ २॥

भावार्थ—कोई मनुष्य विद्वानों के संग के विना विद्या को प्राप्त, शत्रु को जीत के उत्तम पराक्रम चक्रवर्त्ति राज्य लक्ष्मी के प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकता और अग्नि जल आदि के योग के बिना उत्तम व्यवहार की सिद्धि भी नहीं कर सकता॥ २॥

अद्या दूतं वृणीमहे वसुमग्निं पुरुप्रियम्।

धूमकेतुं भाऋजीकं व्युष्टिषु यज्ञानामध्वरश्रियम्॥ ३॥

पदार्थ—हम लोग (अद्य) आज मनुष्य जन्म वा विद्या के प्रति समय को प्राप्त होकर (व्युष्टिषु) अनेक प्रकार की कामनाओं में (भाऋजीकम्) कामनाओं के प्रकाश (यज्ञानाम्) अग्निहोत्र आदि अश्वमेध पर्यन्त वा योग उपासना ज्ञान शिल्पविद्यारूप यज्ञों के मध्य (अध्वरश्रियम्) अहिंसनीय यज्ञों की श्री शोभारूप (धूमकेतुम्) जिस का धूम ही ध्वजा है (वसुम्) सब विद्याओं का घर वा बहुत धन की प्राप्ति का हेतु (पुरुप्रियम्) बहुतों को प्रिय (दूतम्) पदार्थों को दूर पहुँचाने वाले (अग्निम्) भौतिक अग्नि के सदृश विद्वान् दूत को (वृणीमहे) अंगीकार करें॥ ३॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है विद्या वा राज्य की प्राप्ति के लिये सब विद्याओं के कथन करने वा सब बातों का उत्तर देने वाले विद्वान् को दूत करें और बहुत गुणों के योग से बहुत कार्य्यों को प्राप्त कराने वाली बिजुली को स्वीकार करके सब कार्यों को सिद्ध करें॥ ३॥

श्रेष्ठं यविष्ठमतिथिं स्वाहुतं जुष्टं जनाय दाशुषे।

देवाँ अच्छा यातवे जातवेदसमग्निमीळे व्युष्टिषु॥ ४॥

पदार्थ—मैं (व्युष्टिषु) विशिष्ट पढ़ने योग्य कामनाओं में (यातवे) प्राप्ति के लिये (दाशुषे) दाता (जनाय) धार्मिक विद्वान् मनुष्य के अर्थ (श्रेष्ठम्) अति उत्तम (यविष्ठम्) परम बलवान् (जुष्टम्) विद्वान् से प्रसन्न वा सेवित (स्वाहुतम्) अच्छे प्रकार बुला के सत्कार के योग्य (जातवेदसम्) सब पदार्थों में व्याप्त (अतिथिम्) सेवा करने के योग्य (अग्निम्) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान सज्जन अतिथि और (देवान्) दिव्य गुण वाले विद्वानों को (अच्छ) अच्छे प्रकार सत्कार करूं॥ ४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को अति योग्य है कि उत्तम धर्म बल वाले प्रसन्न स्वभाव सहित सब के उपकारक विद्वान् और अतिथियों का सत्कार करें जिस से सब जनों का हित हो॥ ४॥

स्तविष्यामि त्वामहं विश्वस्यामृत भोजन ।

अग्ने त्रातारममृतं मियेध्य यजिष्ठं हव्यवाहन ॥ ५ ॥

पदार्थ—(अमृत) अविनाशिस्वरूप (भोजन) पालनकर्त्ता (मियेध्य) प्रमाण करने (हव्यवाहन) लेने देने योग्य पदार्थों को प्राप्त कराने वाले (अग्ने) परमेश्वर (अहम्) मैं (विश्वस्य) सब जगत् के (त्रातारम्) रक्षक (यजिष्ठम्) अत्यन्त यजन करने वाले (अमृतम्) नित्य स्वरूप (त्वा) तुझ ही की (स्तविष्यामि) स्तुति करूंगा ॥ ५ ॥

भावार्थ—विद्वानों को योग्य है कि इस सब जगत् के रक्षक मोक्ष देने, विद्या काम आनन्द के देने वा उपासना करने योग्य परमेश्वर को छोड़ अन्य किसी का भी ईश्वरभाव से आश्रय न करें ॥ ५ ॥

सुशंसो बोधि गृणते यविष्ठ्य मधुजिह्वः स्वाहुतः ।

प्रस्कण्वस्य प्रतिरन्नायुर्जीवसे नमस्या दैव्यं जनम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (यविष्ठ्य) अत्यन्त बलवान् (नमस्य) पूजने योग्य विद्वान् (मधुजिह्वः) मधुर ज्ञानरूप जिह्वा युक्त (सुशंसः) उत्तम स्तुति से प्रशंसित (स्वाहुतः) सुख से आह्वान बोलने योग्य (प्रस्कण्वस्य) उत्तम मेधावी विद्वान् के (जीवसे) जीवन के लिये (आयुः) जीवन को (प्रतिरन्) दुःखों से पार करते जो आप (गृणते) सत्य की स्तुति करते हुए मनुष्य के लिये शास्त्रों का (बोधि) बोध कीजिये और जिस से (दैव्यम्) विद्वानों में उत्पन्न हुए (जनम्) मनुष्य की रक्षा करते हो इस से सत्कार के योग्य हो ॥ ६ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को उचित है कि जो सब से उत्कृष्ट विद्वान् है उसी का सत्कार करें ऐसे ही इस का अच्छे प्रकार आश्रय कर सब उमर और विद्या को प्राप्त करें ॥ ६ ॥

होतारं विश्ववेदसं सं हि त्वा विश इन्धते ।

स आ वह पुरुहूत प्रचेतसोऽग्ने देवाँ इह द्रवत् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (पुरुहूत) बहुत विद्वानों ने बुलाये हुए (अग्ने) विशिष्ट ज्ञानयुक्त विद्वन् ! (प्रचेतसः) उत्तम ज्ञानयुक्त (विशः) प्रजा जिस (होतारम्) हवन के कर्त्ता (विश्ववेदसम्) सब सुख प्राप्त (त्वा) आप को (हि) निश्चय करके (समिन्धते) अच्छे प्रकार प्रकाश करती हैं (सः) सो आप (इह) इस युद्ध आदि कर्मों में उत्तम ज्ञान वाले (देवान्) शूरवीर विद्वानों को (आवह) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—विद्वानों के सहाय के बिना प्रजा के सुख को वा दिव्य गुणों की प्राप्ति और शत्रुओं से विजय नहीं हो सकता इस से यह सब मनुष्यों को प्रयत्न के साथ सिद्ध करना चाहिये ॥ ७ ॥

सवितारमुषसमश्विना भगमग्निं व्युष्टिषु क्षपः ।

कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (स्वध्वर) उत्तम यज्ञ वाले विद्वान् ! जो (सुतसोमाः) उत्तम पदार्थों को सिद्ध करते (कण्वासः) मेधावी विद्वान् लोग (व्युष्टिषु) कामनाओं में (सवितारम्) सूर्य्यप्रकाश (उषसम्) प्रातःकाल (अश्विना) वायुजल [(भगम्) ऐश्वर्य (अग्निम्) विद्युत्] (क्षपः) रात्रि और (हव्यवाहम्) होम करने योग्य द्रव्यों को प्राप्त कराने वाले (त्वा) आप को (समिन्धते) अच्छे प्रकार प्रकाशित करते हैं, वह आप भी उन को प्रकाशित कीजिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि सब क्रियाओं में दिन रात प्रयत्न से सूर्य्य आदि पदार्थों को संयुक्त कर वायु वृष्टि की शुद्धि करने वाले शिल्परूप यज्ञ को प्रकाश करके कार्य्यों को सिद्ध और विद्वानों के संग से इन के गुण जानें ॥ ८ ॥

पतिर्ह्यध्वराणामग्ने दूतो विशामसि ।

उषर्बुध आ वह सोमपीतये देवाँ अद्य स्वर्दृशः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! जो तू (हि) निश्चय करके (अध्वराणाम्) यज्ञ और (विशाम्) प्रजाओं के (पतिः) पालक (असि) हो इस से आप (अद्य) आज (सोमपीतये) अमृत रूपी रसों को पीने रूप व्यवहार के लिये (उषर्बुधः) प्रातःकाल में जागने वाले (स्वर्दृशः) विद्यारूपी सूर्य्य के प्रकाश से यथावत् देखने वाले (देवान्) विद्वान् वा दिव्यगुणों को (आवह) प्राप्त हूजिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—सभासेनाध्यक्षादि विद्वान् लोग विद्या पढ़ के प्रजापालनादि यज्ञों की रक्षा के लिये प्रजा में दिव्य गुणों का प्रकाश नित्य किया करें ॥ ९ ॥

अग्ने पूर्वा अनूषसो विभावसो दीदेथ विश्वदर्शतः ।

असि ग्रामेष्वविता पुरोहितोऽसि यज्ञेषु मानुषः ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (विभावसो) विशेष दीप्त को वसाने वाले (अग्ने) विद्या को प्राप्त करने हारे विद्वान् ! (विश्वदर्शतः) सभों को देखने योग्य आप (पूर्वाः)

पहिले व्यतीत (अनु) फिर (उषसः) आने वाली और वर्त्तमान प्रभात और रात दिनों को (बोधेय) जानकर एक क्षण भी व्यर्थ न खोवे आप ही (ग्रामेषु) मनुष्यों के निवास योग्य ग्रामों में (अविता) रक्षा करने वाले (असि) हो और (यज्ञेषु) अश्वमेध आदि शिल्प पर्य्यन्त क्रियाओं में (मानुषः) मनुष्य व्यक्ति (पुरोहितः) सब साधनों के द्वारा सब सुखों को सिद्ध करने वाले (असि) हो ॥ १० ॥

भावार्थ—विद्वान् सब दिन एक क्षण भी व्यर्थ न खोवें सर्वथा वहुत उत्तम उत्तम कार्यों के अनुष्ठान ही के लिये सब दिनों को जान कर प्रजा की रक्षा वा यज्ञ का अनुष्ठान करने वाला निरन्तर हो ॥ १० ॥

नि त्वा यज्ञस्य साधनमग्ने होतारमृत्विजम् ।

मनुष्वद्देव धीमहि प्रचेतसं जीरं दूतममर्त्यम् ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (देव) दिव्य विद्यासम्पन्न (अग्ने) भौतिक अग्नि के सदृश उत्तम पदार्थों को सम्पादन करने वाले मेधावी विद्वान् ! हम लोग (यज्ञस्य) तीन प्रकार के यज्ञ के (साधनम्) मुख्य साधक (होतारम्) हवन करने वा ग्रहण करने वाले (ऋत्विजम्) यज्ञसाधक (प्रचेतसम्) उत्तम विज्ञायुक्त (जीरम्) वेगवान् (अमर्त्यम्) साधारण मनुष्यस्वभाव से रहित वा स्वरूप से नित्य (दूतम्) प्रशंसनीय बुद्धियुक्त वा पदार्थों को देशान्तर में प्राप्त करने वाले (त्वा) आपको (मनुष्वत्) मननशील मनुष्य के समान (निधीमहि) निरन्तर धारण करें ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । और आठवें मन्त्र से (सुतसोमासः) (कण्वासः) इन दो पदों की अनुवृत्ति है । विद्वान् अग्नि आदि साधन और द्रव्य आदि सामग्री के विना यज्ञ की सिद्धि नहीं कर सकता ॥ ११ ॥

यद्देवानां मित्रमहः पुरोहितोऽन्तरो यासि दूत्यम् ।

सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयोऽग्नेर्भ्राजन्तेऽअर्चयः ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (मित्रमहः) मित्रों में बड़े पूजनीय विद्वान् ! आप मध्यस्थ होकर (दूत्यम्) दूत कर्म को (यासि) प्राप्त करते हो जिस (अग्नेः) आत्मा की (सिन्धोरिव) समुद्र के सदृश (प्रस्वनितासः) शब्द करती हुई (ऊर्मयः) लहरियां (अग्नेः) अग्नि के (देवानाम्) विद्वानों के (दूत्यम्) दूत के स्वभाव को (यासि) प्राप्त होते हैं सो आप हम लोगों को सत्कार के योग्य क्यों न हों ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! तुम जैसे परमेश्वर सब का मित्र पूजनीय पुरोहित अन्तर्यामी होकर दूत के समान सत्य असत्य कर्मों का प्रकाश करता है; जैसे ईश्वर की अनन्त दीप्ति विचरती है जो ईश्वर सब का धाता, रचने वा पालन करने वा न्यायकारी महाराज सब को उपासने योग्य है, वैसे उत्तम दूत भी राजपुरुषों को माननीय होता है ॥ १२ ॥

श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।

आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्य्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् ॥१३॥

पदार्थ—हे (श्रुत्कर्ण) श्रवण करने वाले (अग्ने) विद्याप्रकाशक विद्वन् ! आप प्रीति के साथ (सयावभिः) तुल्य जानने वाले (वह्निभिः) सत्याचार के भार धरनेहारे मनुष्य आदि (देवैः) विद्वान् और दिव्यगुणों के साथ (अस्माकम्) हम लोगों की वार्त्ताओं को (श्रुधि) सुनो, तुम और हम लोग (मित्रः) सब के हितकारी (अर्य्यमा) न्यायाधीश (प्रातर्य्यावाणः) प्रतिदिन पुरुषार्थ से युक्त (सर्वे) सब (अध्वरम्) अहिंसनीय पहिले कहे हुए यज्ञ को प्राप्त होकर (बर्हिषि) उत्तम व्यवहार में (आसीदन्तु) ज्ञान को प्राप्त हों वा स्थित हों ॥ १३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि सब विद्याओं को श्रवण किये हुए धार्मिक मनुष्यों को राजव्यवहार में विशेष करके युक्त विद्वान् लोग शिक्षा से युक्त भृत्यों से सब कार्य्यों को सिद्ध और सर्वदा आलस्य को छोड़ निरन्तर पुरुषार्थ में यत्न करें। निदान इसके बिना निश्चय है कि, व्यवहार वा परमार्थ कभी सिद्ध नहीं होते ॥ १३ ॥

शृण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।

पिबतु सोमं वरुणो धृतव्रतोऽश्विभ्यामुषसा सजूः ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (अग्निजिह्वाः) जिनकी अग्नि के समान शब्दविद्या से प्रकाशित हुई जिह्वा है (ऋतावृधः) सत्य के बढ़ाने वाले (सुदानवः) उत्तम दानशील (मरुतः) विद्वानो ! तुम लोग हम लोगों के (स्तोमम्) स्तुति वा न्यायप्रकाश को (शृण्वन्तु) श्रवण करो, इसी प्रकार प्रतिजन × (सजूः) तुल्य सेवने (वरुणः) श्रेष्ठ (धृतव्रतः) सत्य व्रत का धारण करने हारे सब मनुष्यजन (उषसा) प्रभात (अश्विभ्याम्) व्याप्तिशील सभा सेना शाला धर्माध्यक्ष अध्वर्युओं के साथ (सोमम्) पदार्थविद्या से उत्पन्न हुए आनन्दरूपी रस को (पिबतु) पीओ ॥ १४ ॥

भावार्थ—जो विद्या धर्म वा राजसभाओं से आज्ञा प्रकाशित हो सब मनुष्य उनका श्रवण तथा अनुष्ठान करें, जो सभासद हों वे भी पक्षपात को छोड़कर प्रतिदिन सब के हित के लिये सब मिल कर जैसे अविद्या, अधर्म, अन्याय का नाश होवे वैसा यत्न करें ॥ १४ ॥

इस सूक्त में धर्म की प्राप्ति, दूत का करना, सब विद्याओं का श्रवण उत्तम श्री की प्राप्ति, श्रेष्ठ सङ्ग, स्तुति और सत्कार, पदार्थविद्याओं, सभाध्यक्ष, दूत और यज्ञ का अनुष्ठान, मित्रादिकों का ग्रहण, परस्पर मिल कर सब कार्य्यों की सिद्धि, उत्तम व्यवहारों में स्थिति, परस्पर विद्या धर्म राजसभाओं का सुनकर अनुष्ठान करना कहा है इससे इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ।

यह चवालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥ ४४ ॥

प्रस्कण्वः काण्व ऋषिः । अग्निर्देवाश्च देवताः । १ भुरिगुष्णिक् । ५ उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । २ । ३ । ७ । ८ अनुष्टुप् । ४ निचृदनुष्टुप् । ६ । ९ । १० विराडनुष्टुप् च छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

त्वम॑ग्ने॒ वसूँ॑रि॒ह रु॒द्राँ आ॑दि॒त्याँ उ॒त ।

यजा॑ स्वध्व॒रं जनं॒ मनु॑जातं घृत॒प्रुष॑म् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) बिजुली के समान वर्त्तमान विद्वन् ! आप (इह) इस संसार में (वसून्) जो चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य से विद्या को प्राप्त हुए पण्डित (रुद्रान्) जिन्होंने चवालीस वर्ष ब्रह्मचर्य किया हो उन महाबली विद्वान् और (आदित्यान्) जिन्होंने अड़तालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य किया हो उन महाविद्वान् लोगों को (उत) और भी (घृतप्रुषम्) यज्ञ से सिद्ध हुए घृत से सेचन करने वाले (मनुजातम्) मननशील मनुष्य से उत्पन्न हुए (स्वध्वरम्) उत्तम यज्ञ को सिद्ध करने हारे (जनम्) पुरुषार्थी मनुष्य को (यज) समागम कराया करें ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि अपने पुत्रों को कम से कम चौबीस और अधिक से अधिक अड़तालीस वर्ष तक और कन्याओं को कम से कम सोलह और अधिक से अधिक चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य करावें । जिससे संपूर्ण विद्या और सुशिक्षा को पाकर वे परस्पर परीक्षा और अति प्रीति से विवाह करें जिससे सब सुखी रहें ॥ १ ॥

श्रुष्टीवानो हि दाशुषे देवा अग्ने विचेतसः ।
तान्रोहिदश्व गिर्वणस्त्रयस्त्रिंशतमा वह ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (**रोहिदश्व**) वेग आदि गुणयुक्त (**गिर्वणः**) वाणियों से सेवित (**अग्ने**) विद्वन् ! (**त्वम्**) आप इस संसार में जो (**विचेतसः**) नाना प्रकार के शास्त्रोक्त ज्ञानयुक्त (**श्रुष्टीवानः**) यथार्थ के सेवन करने वाले (**देवाः**) दिव्य गुणवान् विद्वान् (**दाशुषे**) दानशील पुरुषार्थी मनुष्य के लिये सुख देते हैं (**तान्**) उन (**त्रयस्त्रिंशतम्**) भूमि आदि तेंतीस दिव्य गुण वालों को (**हि**) निश्चय करके (**आवह**) प्राप्त हूजिये ॥ २ ॥

भावार्थ—जब विद्वान् लोग विद्यार्थियों को तेंतीस देव अर्थात् पृथिवी आदि तेंतीस पदार्थों की विद्या को अच्छे प्रकार साक्षात्कार कराते हैं तब वे विजुली आदि अनेक पदार्थों से उत्तम उत्तम व्यवहारों की सिद्धि कर सकते हैं ॥ २ ॥

प्रियमेधवदत्रिवज्जातवेदो विरूपवत् ।
अङ्गिरस्वन्महिव्रत प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (**जातवेदः**) उत्पन्न हुए पदार्थों को जानने हारे (**महिव्रत**) बड़े व्रतयुक्त विद्वन् ! आप (**प्रियमेधवत्**) विद्याप्रिय बुद्धि वाले के तुल्य (**अत्रिवत्**) तीन अर्थात् शरीर अन्य प्राणी और मन आदि इन्द्रियों के दुःखों से रहित के समान (**विरूपवत्**) अनेक प्रकार के रूपवाले के तुल्य (**अङ्गिरस्वत्**) अङ्गों के रसरूप प्राणों के सदृश (**प्रस्कण्वस्य**) उत्तम मेधावी मनुष्य के (**हवम्**) देने लेने पढ़ने पढ़ाने योग्य व्यवहार को (**श्रुधि**) श्रवण किया करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यों ! जैसे सब के प्रिय करने वाले विद्वान् लोग शरीर, वाणी और मन के दोषों से रहित नाना विद्याओं को प्रत्यक्ष करने और अपने प्राण के समान सब को जानते हुए विद्वान् लोग मनुष्यों के प्रिय कार्य्यों को सिद्ध करते हैं और जैसे पढ़ाये हुए बुद्धिमान् विद्यार्थी भी बहुत उत्तम ऊत्तम कार्य्यों को सिद्ध कर सकें वैसे तुम भी किया करो ॥ ३ ॥

महिकेरव ऊतये प्रियमेधा अहूषत ।
राजन्तमध्वराणामग्निं शुक्रेण शोचिषा ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे महाविद्वानो ! (**महिकेरवः**) जिनके बड़े बड़े शिल्पविद्या के सिद्ध करने वाले कारीगर हों ऐसे (**प्रियमेधाः**) सत्य विद्या वा शिक्षाओं की प्राप्त कराने

वाली मेधा बुद्धियुक्त आपलोग (**अध्वराणाम्**) पालनीय व्यवहाररूपी कर्मों की (**ऊतये**) रक्षा आदि के लिये (**शुक्रेण**) शुद्ध शीघ्रकारक (**शोचिषा**) तेज से (**राजन्तम्**) प्रकाशमान (**अग्निम्**) प्रसिद्ध वा बिजुली रूप आग के सदृश सभापति को (**अहूषत**) उपदेश वा उससे श्रवण किया करो॥ ४॥

भावार्थ—कोई मनुष्य धार्मिक बुद्धिमानों के सङ्ग के विना उत्तम उत्तम व्यवहारों की सिद्ध करने को समर्थ नहीं हो सकता इस से सब मनुष्यों को योग्य है कि इन के सङ्ग से इन विद्याओं को साक्षात्कार अवश्य करें॥ ४॥

घृताहवन सन्त्येमा उ षु श्रुधी गिरः।

याभिः कण्वस्य सूनवो हवन्तेऽवसे त्वा॥ ५॥

पदार्थ—हे (**सन्त्य**) सुखों की क्रियाओं में कुशल (**घृताहवन**) घी को अच्छे प्रकार ग्रहण करने वाले विद्वान् मनुष्य! जैसे (**कण्वस्य**) मेधावी विद्वान् के (**सूनवः**) पुत्र विद्यार्थी (**अवसे**) रक्षा आदि के लिये (**याभिः**) जिन वेदवाणियों से जिस (**त्वा**) तुझ को (**हवन्ते**) ग्रहण करते हैं सो आप (**उ**) भी उन से उनकी (**इमा**) इन प्रत्यक्ष कारक (**गिरः**) वाणियों को (**सुश्रुधि**) अच्छे प्रकार सुन और ग्रहण कर॥ ५॥

भावार्थ—जो मनुष्य इस संसार में विद्वान् माता, विद्वान् पिता और सब उत्तर देने वाले आचार्य्य आदि से शिक्षा वा विद्या को ग्रहण कर परमार्थ और व्यवहार को सिद्ध कर विज्ञान और शिल्प को करने में प्रवृत्त होते हैं वे सब सुखों को प्राप्त होते हैं, आलसी कभी नहीं होते॥ ५॥

त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विक्षु जन्तवः।

शोचिष्केशं पुरुप्रियाग्ने हव्याय वोढवे॥ ६॥

पदार्थ—हे (**चित्रश्रवस्तम**) अत्यन्त अद्भुत अन्न वा श्रवणों से व्युत्पन्न (**पुरुप्रिय**) बहुतों को तृप्त करने वाले (**अग्ने**) बिजुली के तुल्य विद्याओं में व्यापक विद्वन्! जो (**जन्तवः**) प्राणी लोग (**विक्षु**) प्रजाओं में (**वोढवे**) विद्या प्राप्ति कराने हारे (**हव्याय**) करने योग्य पठन पाठनरूप यज्ञ के लिये जिस (**शोचिष्केशम्**) जिसके पवित्र आचरण हैं उस (**त्वाम्**) आप को (**हवन्ते**) ग्रहण करते हैं, वह आप उनको विद्या और शिक्षा देकर विद्वान् और शीलयुक्त शीघ्र कीजिये॥ ६॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि अनेक गुणयुक्त अग्नि के समान विद्वान् को प्राप्त होके विद्याओं को ग्रहण करें॥ ६॥

नि त्वा होतारमृत्विजं दधिरे वसुवित्तमम् ।
श्रुत्कर्णं सप्रथस्तम विप्रा अग्ने दिविष्टिषु ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) बहुश्रुत सत्यपुरुष ! जो (विप्राः) मेधावी विद्वान् लोग (दिविष्टिषु) पवित्र पठन पाठनरूप क्रियाओं में अग्नि के तुल्य जिस (होतारम्) ग्रहण कारक (ऋत्विजम्) ऋतुओं को संगत करने (श्रुत्कर्णम्) सब विद्याओं को सुनने (सप्रथस्तमम्) अत्यन्त विस्तार के साथ वर्त्तने (वसुवित्तमम्) पदार्थों को ठीक-ठीक जानने वाले (त्वा) तुझको (निदधिरे) धारण करते हैं उन को तू भी धारण कर ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य उत्तम कार्यसिद्धि के लिये प्रयत्न करते और चक्रवर्ती राज्य श्री और विद्याधन की सिद्धि करने को समर्थ हो सकते हैं वे शोक को प्राप्त नहीं होते ॥ ७ ॥

आ त्वा विप्रा अचुच्यवुः सुतसोमा अभि प्रयः ।
बृहद्भा बिभ्रतो हविरग्ने मर्त्ताय दाशुषे ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) बिजुली के समान वर्त्तमान विद्वन् ! जो तू जैसे क्रियाओं में कुशल (दाशुषे) दानशील मनुष्य के लिये (प्रयः) अन्न (बृहत्) बड़े सुख करने वाले (हविः) देने लेने योग्य पदार्थ और (भाः) जो प्रकाशकारक क्रियाओं को (बिभ्रतः) धारण करते हुए (सुतसोमाः) ऐश्वर्ययुक्त (विप्राः) विद्वान् लोग (त्वा) तुझ को (अभ्यचुच्यवुः) सब प्रकार प्राप्त हों वैसे तू भी इन को प्राप्त हो ॥ ८ ॥

भावार्थ—विद्वान् मनुष्यों को चाहिये जिस प्रकार उत्तम सुख हों उस को विद्याविशेष परीक्षा से प्रत्यक्ष कर अनुक्रम से सब को ग्रहण करावें जिस से इन लोगों के भी सब काम निश्चय करके सिद्ध होवें ॥ ८ ॥

प्रातर्याव्णः सहस्कृत सोमपेयाय सन्त्य ।
इहाद्य दैव्यं जनं बर्हिरा सादया वसो ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (सहस्कृत) सब को सिद्ध करने (सन्त्य) जो संभजनीय क्रियाओं में कुशल विद्वानों में सज्जन (वसो) श्रेष्ठ गुणों में वसने वाले विद्वन् ! तू (इह) इस विद्या व्यवहार में (अद्य) आज (सोमपेयाय) सोम रस के पीने के लिये (प्रातर्याव्णः) प्रातःकाल पुरुषार्थ को प्राप्त होने वाले विद्वानों और (दैव्यम्) विद्वानों में कुशल (जनम्) पुरुषार्थयुक्त धार्मिक मनुष्य और (बर्हिः) उत्तम आसन को (आसादय) प्राप्त कर ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य उत्तम गुणयुक्त मनुष्यों ही को उत्तम वस्तु देते हैं ऐसे मनुष्यों ही का संग सब लोग करें। कोई भी मनुष्य विद्या वा पुरुषार्थयुक्त मनुष्यों के संग वा उपदेश के विना पवित्र गुण, पवित्र वस्तुओं और शुद्ध सुखों को प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ९ ॥

अर्वाञ्चं दैव्यं जनमग्ने यक्ष्व सहूतिभिः।

अयं सोमः सुदानवस्तं पात तिरोअह्न्यम् ॥ १० ॥

पदार्थ—(हे सुदानवः) उत्तम दानशील विद्वान् लोगो ! आप (सहूतिभिः) तुल्य आह्वानयुक्त क्रियाओं से (अर्वाञ्चम्) वेगादि गुण वाले घोड़ों को प्राप्त करने वा कराने (दैव्यम्) दिव्य गुणों में प्रवृत्त (तिरोअह्न्यम्) चोर आदि का तिरस्कार करने हारे दिन में प्रसिद्ध (जनम्) पुरुषार्थ में प्रकट हुए मनुष्य की (पात) रक्षा कीजिये और जैसे (अयम्) यह (सोमः) पदार्थों का समूह सब के सत्कारार्थ हैं तथा [(अग्ने) विद्वन्] (तम्) उसको तू भी (यक्ष्व) सत्कार में संयुक्त कर ॥ १० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि सर्वदा सज्जनों को बुला सत्कार कर सब पदार्थों का विज्ञान शोधन और उन उन से उपकार ले और उत्तरोत्तर इस को जान कर इस विद्या का प्रचार किया करें ॥ १० ॥

इस सूक्त में वसु, रुद्र और आदित्यों की गति तथा प्रमाण आदि कहा है इससे इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥ ४५ ॥

यह पैंतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

प्रस्कण्व ऋषिः। अश्विनौ देवते। १। १० विराड्गायत्री ३। ६। ११। १२। १४ गायत्री २। ४। ५। ७—९। १३। १५ निचृद्गायत्री च छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः। स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे विदुषि ! जो तू जैसे (एषो) यह (अपूर्व्या) किसी की की हुई न (दिवः) सूर्य्यप्रकाश से उत्पन्न हुई (प्रिया) सब को प्रीति की बढ़ाने वाली (उषाः) दाहनशील उषा अर्थात् प्रातःकाल की वेला (बृहत्) बड़े दिन को प्रकाशित करती है वैसे मुझ को (व्युच्छसि) आनन्दित करती हो और जैसें वह (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा के तुल्य पढ़ाने और उपदेश करने हारी स्त्रियों के (स्तुषे) गुणों का प्रकाश करती हो वैसे मैं भी तुझ को सुखों में वसाऊं और तेरी प्रशंसा भी करूं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो स्त्री लोग सूर्य चन्द्र और उषा के सदृश सब प्राणियों को सुख देती हैं वे आनन्द को प्राप्त होती हैं इन से विपरीत कभी नहीं हो सकतीं ॥ १ ॥

या दुस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् । धिया देवा वसुविदा ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! तुम लोग (**या**) जो (**दस्रा**) दुःखों को नष्ट (**सिन्धुमातरा**) समुद्र नदियों के प्रमाणकारक (**मनोतरा**) मन के समान पार करने हारे (**धिया**) कर्म से (**रयीणाम्**) धनों के (**देवा**) देने हारे (**वसुविदा**) बहुत धन को प्राप्त कराने वाले अग्नि और जल के तुल्य वर्त्तमान अध्यापक और उपदेशक हैं उनकी सेवा करो ॥ २ ॥

भावार्थ—जैसे कारीगर लोगों ने ठीक ठीक युक्त किये हुए अग्नि जल यानों को मन के वेग के समान तुरन्त पहुंचाने वा बहुत धन को प्राप्त करानें वाले हैं उसी प्रकार अध्यापक और उपदेशकों को होना चाहिये ॥ २ ॥

वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि । यद्वां रथो विभिष्पतात् ॥३॥

पदार्थ—हे कारीगरो ! जो (**जूर्णायां**) वृद्धावस्था में वर्त्तमान (**ककुहासः**) बड़े विद्वान् (**वाम्**) तुम शिल्पविद्या पढ़ने पढ़ाने वालों को विद्याओं का (**वच्यन्ते**) उपदेश करें तो (**वाम्**) आप लोगों का बनाया हुआ (**रथः**) विमानादि सवारी (**विभिः**) पक्षियों के तुल्य (**विष्टपि**) अन्तरिक्ष में (**अधि**) ऊपर (**पतात्**) चलें ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य लोग बड़े ज्ञानी के समीप से कारीगरी और शिक्षा को ग्रहण करें तो विमानादि सवारियों को रच के पक्षी के तुल्य आकाश में जाने आने को समर्थ होवें ॥ ३ ॥

हविषा जारो अपां पिपर्त्ति पपुरिर्नरा । पिता कुटस्य चर्षणिः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (**नरा**) नीति के सिखाने पढ़ाने और उपदेश करने हारे लोगो ! तुम जैसे (**जारः**) विभाग कर्त्ता (**पपुरिः**) अच्छे प्रकार पूर्ति (**पिता**) पालन करने (**कुटस्य**) कुटिल मार्ग को (**चर्षणिः**) दिखलाने हारा सूर्य (**हविषा**) आहुति से बढ़कर (**अपाम्**) जलों के योग से (**पिपर्त्ति**) पूर्ण कर प्रजाओं का पालन करता है वैसे प्रजा का पालन करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जैसे गवित वर्षा के द्वारा जिलाते के योग्य प्राणी और अप्राणियों को तुष्ट करता है वैसे ही सब को पुष्ट करें ॥ ४ ॥

आदारो वां मतीनां नासत्या मतवचसा । पातं सोमस्य धृष्णुया ॥५॥

पदार्थ—हे (नासत्या) पवित्र गुण स्वभावयुक्त (मतवचसा) ज्ञान से बोलने वाले सभा सेना के पति ! तुम जो (वाम्) तुम्हारे (आदारः) सब प्रकार से शत्रुओं को विदारणकर्त्ता गुण है उस और (धृष्णुया) प्रगल्भता से (सोमस्य) ऐश्वर्य्य और (मतीनाम्) मनुष्यों की (पातम्) रक्षा करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिये कि दृढ़ बलयुक्त सेना से शत्रुओं को जीत अपनी प्रजा के ऐश्वर्य्य की निरन्तर वृद्धि किया करें ॥ ५ ॥

या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः । तामस्मे रासाथामिषम् ॥६॥

पदार्थ—हे (अश्विना) सभासेनाध्यक्षो ! जैसे सूर्य्य और चन्द्रमा की (ज्योतिष्मती) उत्तम प्रकाशयुक्त कान्ति (तमः) रात्रि का निवारण करके प्रभात और शुक्लपक्ष से सब का पोषण करते हैं वैसे (अस्मे) हमारी अविद्या को छुड़ा विद्या का प्रकाश कर (नः) हम सब को [(ताम्) उस] (इषम्) अन्न आदि को (रासाथाम्) दिया करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—यहां वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिस प्रकार सूर्य्य और चन्द्रमा अन्धकार को दूर कर प्राणियों को सुखी करते हैं वैसे ही सभा और सेना के अध्यक्षों को चाहिये कि अन्याय दूर कर प्रजा को सुखी करें ॥ ६ ॥

आ नो नावा मतीनां यातं पाराय गन्तवे । युञ्जाथामश्विना रथम् ॥७॥

पदार्थ—हे (अश्विना) व्यवहार करने वाले कारीगरो ! आप (मतीनाम्) मनुष्यों की (नावा) नौका से (पाराय) पार (गन्तवे) जाने के लिये (नः) हमारे वास्ते [(आयातम्) प्राप्त हूजिये और] (रथम्) विमान आदि यान समूहों को (युञ्जाथाम्) युक्त कर चलाइये ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि रथ से स्थल अर्थात् सूखे में, नाव से जल में, विमान से आकाश में जाया आया करें ॥ ७ ॥

अरित्रं वां दिवस्पृथु तीर्थे सिन्धूनां रथः । धिया युयुज्र इन्दवः ॥८॥

पदार्थ—हे कारीगरो ! जो (वाम्) आप लोगों का [(पृथु) विस्तृत] (रथः) यानसमूह अर्थात् अनेकविध सवारी हैं उनको (सिन्धूनाम्) समुद्रों के (तीर्थे) तराने वाले में (अरित्रम्) यान रोकने और बहुत जल के थाह ग्रहणार्थ लोहे का साधन (दिवः) प्रकाशमान बिजुली अग्न्यादि और (इन्दवः) जलादि को आप [(धिया) क्रिया से] (युयुज्रे) युक्त कीजिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—कोई भी मनुष्य अग्नि आदि से चलने वाले यान अर्थात्

सवारी के विना पृथिवी समुद्र और अन्तरिक्ष में सुख से आने जाने को समर्थ नहीं हो सकता ॥ ८ ॥

दि॒वस्क॑ण्वास॒ इन्द॑वो॒ वसु॒ सिन्धू॑नां प॒दे । स्वं व॒व्रिं कुह॑ धित्सथः ॥९॥

पदार्थ—हे (कण्वासः) मेधावी विद्वान् लोगो ! तुम इन कारीगरों को पूछो कि तुम लोग (सिन्धूनाम्) समुद्रों के (पदे) मार्ग में जो (दिवः) प्रकाशमान अग्नि और (इन्दवः) जल आदि हैं उन्हें और (स्वम्) अपना (वव्रिम्) सुन्दर रूपयुक्त (वसु) धन (कुह) कहां (धित्सथः) धरने की इच्छा करते हो ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य लोग विद्वानों की शिक्षा के अनुकूल अग्नि जल के प्रयोग से युक्त यानों पर स्थित होके राजा प्रजा के व्यवहार की सिद्धि के लिये समुद्रों के अन्त में जावें आवें तो बहुत उत्तमोत्तम धन को प्राप्त होवें ॥ ९ ॥

अभू॑दु भा उ॑ अं॒शवे॒ हिर॑ण्यं॒ प्रति॒ सूर्यः॑ । व्य॑ख्यज्जि॒ह्वयाऽसि॑तः ॥१०॥

पदार्थ—हे कारीगरो ! तुम लोग जैसे (असितः) अबद्ध अर्थात् जिस का किसी के साथ बन्धन नहीं है (भाः) प्रकाशयुक्त (सूर्य्यः) सूर्य्य के (अंशवे) किरणों के विभागार्थ (जिह्वया) जीभ के समान (व्यख्यत्) प्रसिद्धता से प्रकाशमान सम्मुख (अभूत्) होता है वैसे उसी पर यान का स्थापन कर उसमें उचित स्थान में (हिरण्यम्) सुवर्णादि उत्तम पदार्थों को धरो ॥ १० ॥

भावार्थ—हे सवारी पर चलने वाले मनुष्यो ! तुम दिशाओं के जानने वाले चुम्बक, ध्रुवयंत्र और सूर्यादि कारण से दिशाओं को जान; यानों को चलाओ और ठहराया भी करो जिससे भ्रान्ति में पड़कर अन्यत्र गमन न हो, अर्थात् जहां जाना चाहते हो ठीक वहीं पहुँचो, भटकना न हो ॥ १० ॥

अभू॑दु पा॒रमेत॑वे॒ पन्था॑ ऋ॒तस्य॑ साधु॒या । अद॑र्शि॒ वि स्रु॒तिर्दि॒वः ॥११॥

पदार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि समुद्रादि के (पारम्) पार (एतवे) जाने के लिये जहां (दिवः) प्रकाशमान सूर्य्य और (ऋतस्य) जल का (विस्रुतिः) अनेक प्रकार गमनार्थ (पन्था) मार्ग (अभूत्) हो वहां स्थिर हो के (साधुया) उत्तम सवारी से सुखपूर्वक देश देशान्तरों को (अदर्शि) देखें तो श्रीमन्त क्यों न होवें ॥ ११ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि सर्वत्र आने जाने के लिये सीधे और शुद्ध मार्गों को रच और विमानादि यानों से इच्छापूर्वक गमन करके नाना प्रकार के सुखों को प्राप्त करें ॥ ११ ॥

तत्तदिद॒श्विनो॒रवो॑ जरि॒ता प्रति॑ भूषति । मदे॒ सोम॑स्य॒ पिप्र॑तोः ॥१२॥

पदार्थ—जो (**जरिता**) स्तुति करने वाला विद्वान् मनुष्य (**पिप्रतोः**) पूरण करने वाले (**अश्विनोः**) सभा और सेनापति से (**सोमस्य**) उत्पन्न हुए जगत् के बीच (**मदे**) आनन्दयुक्त व्यवहार में (**अवः**) रक्षादि को (**प्रतिभूषति**) अलंकृत करता है (**तत्तत्**) उस उस सुख को [(**इत्**) ही] प्राप्त होता है ॥ १२ ॥

भावार्थ—कोई भी विद्वानों से शिक्षा वा क्रिया को ग्रहण किये विना सब सुखों को प्राप्त नहीं हो सकता इस से उस का खोज नित्य करना चाहिये ॥ १२ ॥

वा॒व॒सा॒ना वि॒वस्व॑ति॒ सोम॑स्य पी॒त्या गि॒रा । म॒नु॒ष्वच्छं॑भू॒ आ ग॑तम् ॥१३॥

पदार्थ—हे (**वावसाना**) अत्यन्त सुख में बसाने (**शम्भू**) सुखों के उत्पन्न करने वाले पढ़ाने और सत्य के उपदेश करने हारे ! आप (**विवस्वति**) सूर्य्य के प्रकाश में (**सोमस्य**) उत्पन्न हुए जगत् के मध्य में (**पीत्या**) रक्षारूपी क्रिया वा (**गिरा**) वाणी से हम को (**मनुष्वत्**) रक्षा करने हारे मनुष्यों के तुल्य (**आ**) (**गतम्**) सब प्रकार प्राप्त हूजिये ॥ १३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जिस प्रकार परोपकारी मनुष्य प्राणियों के निवास और विद्याप्रकाश के दान से सुखों को प्राप्त कराते हैं वैसे तुम भी उन को प्राप्त कराओ ॥ १३ ॥

यु॒वोरु॒षा अनु॒ श्रियं॒ परि॑ज्मनोरु॒पाच॑रत् । ऋ॒ता व॑नथो अ॒क्तुऽभिः॑ ॥१४॥

पदार्थ—हे (**ऋता**) उचित गुण सुन्दरस्वरूप सभासेनापति ! जैसे (**उषाः**) प्रभात समय (**अक्तुभिः**) रात्रियों के साथ (**उपाचरत्**) प्राप्त होता है वैसे जिन (**परिज्मनोः**) सर्वत्र गमन कर्त्ता पदार्थों को प्रकाश से फेंकने हारे सूर्य और चन्द्रमा के सदृश वर्त्तमान (**युवोः**) आपका न्याय और रक्षा हमको प्राप्त होवे आप (**श्रियम्**) उत्तम लक्ष्मी को (**अनुवनथः**) अनुकूलता से सेवन कीजिये ॥ १४ ॥

भावार्थ—राजा और प्रजाजनों को चाहिये कि परस्पर प्रीति से बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होकर सदा सब के उपकार में यत्न किया करें ॥ १४ ॥

उ॒भा पि॑बतमश्विनो॒भा नः॒ शर्म॑ यच्छतम् । अ॒वि॒द्रि॒याभि॑रू॒तिभिः॑ ॥१५॥

पदार्थ—हे सभा और सेना के ईश ! (**अश्विना**) संपूर्ण विद्या और सुख में व्याप्त होने वाले ! तुम दोनों अमृतरूप औषधियों के रस को (**पिबतम्**) पीओ और (**उभा**) दोनों (**अविद्रियाभिः**) अखण्डित क्रियायुक्त (**ऊतिभिः**) रक्षाओं से (**नः**) हम को (**शर्म**) सुख (**यच्छतम्**) देओ ॥ १५ ॥

भावार्थ—जो सभा और सेनापति आदि राजपुरुष प्रीति और विनय से प्रजा की पालना करें तो प्रजा भी उन की रक्षा अच्छे प्रकार करें ॥ १५ ॥

इस सूक्त में उषा और अश्वियों का प्रत्यक्षार्थ वर्णन किया है इस से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छयालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

प्रस्कण्व ऋषिः । अश्विनौ देवते १ । ५ । निचृत्पथ्या बृहती । ३ । ७ पथ्या बृहती । ६ विराट् पथ्या बृहती च छन्दः । मध्यमः स्वरः । २ । ६ । ८ । निचृत्सतः पङ्क्तिः । ४ । १० सतः पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमःस्वरः ॥

अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोमं ऋतावृधा ।
तमश्विना पिबतं तिरो अह्न्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥१॥

पदार्थ—हे (ऋतावृधा) जल वा यथार्थ शिल्पक्रिया करके बढ़ाने वाले ! (अश्विना) सूर्य्य वायु के तुल्य सभा और सेना के ईश ! (वाम्) जो (अयम्) यह (मधुमत्तमः) अत्यन्त मधुरादि गुणयुक्त (सोमः) यान व्यापार वा वैद्यक शिल्पक्रिया से हमने (सुतः) सिद्ध किया है (तम्) उस (तिरो अह्न्यम्) तिरस्कृत दिन में उत्पन्न हुये रस को तुम लोग (पिबतम्) पीओ और विद्यादान करने वाले विद्वान् के लिये (रत्नानि) सुवर्णादि वा सवारी आदि को (धत्तम्) धारण करो ॥ १ ॥

भावार्थ—सभा के मालिक आदि लोग सदा औषधियों के रसों की सेवा से अच्छे प्रकार बलवान् होकर प्रजा की शोभाओं को बढ़ावें ॥ १ ॥

त्रिबन्धुरेण त्रिवृता सुपेशसा रथेनायातमश्विना ।
कण्वासो वां ब्रह्म कृण्वन्त्यध्वरे तेषां सुशृणुतं हवम् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (अश्विना) पावक और जल के तुल्य सभा और सेना के ईश ! तुम लोग जैसे (कण्वासः) बुद्धिमान् लोग (अध्वरे) अग्निहोत्रादि वा शिल्पक्रिया से सिद्ध यज्ञ में जिस (त्रिबन्धुरेण) तीन बन्धनयुक्त (त्रिवृता) तीन शिल्पक्रिया के प्रकारों से पूरित (सुपेशसा) उत्तम रूप वा सोने से जटित (रथेन) विमान आदि यान से देशदेशान्तरों में शीघ्र जा आ के (ब्रह्म) अन्नादि पदार्थों को (कृण्वन्ति) करते हैं वैसे उस से देश देशान्तर और दीपद्वीपान्तरों को (आयातम्)

जाओ आओ (तेषाम्) उन बुद्धिमानों का (हवम्) ग्रहण करने योग्य विद्याओं के उपदेश को (शृणुतम्) सुनो और अन्नादि समृद्धि को बढ़ाया करो ॥ २ ॥

भावार्थ—यहां वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को योग्य है कि विद्वानों के सङ्ग से पदार्थविज्ञानपूर्वक यज्ञ और शिल्पविद्या की हस्तक्रिया को साक्षात् करके व्यवहाररूपी कार्यों को सिद्ध करें ॥ २ ॥

अश्विना मधुमत्तमं पातं सोममृतावृधा ।
अथाद्य दस्रा वसु बिभ्रता रथे दाश्वांसमुपगच्छतम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (अश्विना) सूर्य्य वायु के समान कर्म और (दस्रा) दुःखों के दूर करने वाले ! (वसु) सब से उत्तम धन को (बिभ्रता) धारण करते तथा (ऋतावृधा) यथार्थ गुणसंयुक्त प्राप्ति साधन से बढ़े हुए सभा और सेना के पति आप (अद्य) आज वर्त्तमान दिन में (मधुमत्तमम्) अत्यन्त मधुरादि गुणों से युक्त (सोमम्) वीर रस की (पातम्) रक्षा करो (अथ) तत्पश्चात् पूर्वोक्त (रथे) विमानादि यान में स्थित होकर (दाश्वांसम्) देने वाले मनुष्य के (उपगच्छतम्) समीप प्राप्त हुआ कीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—यहां वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे वायु से सूर्य्य चन्द्रमा की पुष्टि और अन्धेरे का नाश होता है वैसे ही सभा और सेना के पतियों से प्रजास्थ प्राणियों को संतुष्टि, दुखों का नाश और धन की वृद्धि होती है ॥ ३ ॥

त्रिषधस्थे बर्हिषि विश्ववेदसा मध्वा यज्ञं मिमिक्षतम् ।
कण्वासो वां सुतसोमा अभिद्यवो युवां हवन्ते अश्विना ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (विश्ववेदसा) अखिल धनों के प्राप्त करने वाले (अश्विना) क्षत्रियों के धर्म में स्थित के सदृश सभा सेनाओं के रक्षक ! आप जैसे (अभिद्यवः) सब प्रकार से विद्याओं के प्रकाशक और विद्युदादि पदार्थों के साधक (सुतसोमा) उत्पन्न पदार्थों के ग्राहक (कण्वासः) मेधावी विद्वान् लोग (त्रिसधस्थे) जिस में तीनों भूमि जल पवन स्थिति के लिये हों उस (बर्हिषि) अन्तरिक्ष में (मध्वा) मधुर रस से (वाम्) आप और (यज्ञम्) शिल्प कर्म को (हवन्ते) ग्रहण करते हैं वैसे (मिमिक्षतम्) सिद्ध करने की इच्छा करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—जैसे मनुष्य लोग विद्वानों से विद्या सीख यान रच और उसमें जल आदि युक्त करने शीघ्र जाने आने के वास्ते समर्थ होते हैं वैसे अन्य उपाय से नहीं, इसलिये उसमें परिश्रम अवश्य करें ॥ ४ ॥

याभिः कण्वमभिष्टिभिः प्रावतं युवमश्विना ।
ताभिः ष्व१स्माँ अवतं शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (ऋतावृधा) सत्य अनुष्ठान से बढ़ने वाले (शुभस्पती) कल्याणकारक कर्म्म वा श्रेष्ठ गुण समूह के पालक ! (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा के गुणयुक्त सभा सेनाध्यक्ष ! (युवम्) आप दोनों (याभिः) जिन (अभिष्टिभिः) इच्छाओं से (सोमम्) अपने ऐश्वर्य और (कण्वम्) मेधावी विद्वान् की (पातम्) रक्षा करें उनसे (अस्मान्) हम लोगों को (सु) अच्छे प्रकार (आवतम्) रक्षा कीजिये और जिन से हमारी रक्षा करें उन से सब प्राणियों की (आवतम्) रक्षा कीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—सभा और सेना के पति राजपुरुष जैसे अपने ऐश्वर्य की रक्षा करें वैसे ही प्रजा और सेनाओं की रक्षा सदा किया करें ॥ ५ ॥

सुदासे दस्रा वसु बिभ्रता रथे पृक्षो वहतमश्विना ।
रयिं समुद्रादुत वा दिवस्पर्यस्मे धत्तं पुरुस्पृहम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (दस्रा) शत्रुओं के नाश करने वाले (वसु) विद्यादि धन समूह को (बिभ्रता) धारण करते हुए (अश्विना) वायु और बिजुली के समान पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त ! आप जैसे (सुदासे) उत्तम सेवकयुक्त (रथे) विमानादि यान में (समुद्रात्) सागर वा सूर्य से (उत) और (दिवः) प्रकाशयुक्त आकाश से पार (पृक्षः) सुख प्राप्ति का निमित्त (पुरुस्पृहम्) जो बहुत का इच्छित हो उस (रयिम्) राज्यलक्ष्मी को धारण करें वैसे (अस्मे) हमारे लिये (परिधत्तम्) धारण कीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—राजपुरुषों को योग्य है कि सेना और प्रजा के अर्थ नाना प्रकार का धन और समुद्रादि के पार जाने के लिये विमान आदि यान रच कर सब प्रकार सुख की उन्नति करें ॥ ६ ॥

यन्नासत्या परावति यद्वा स्थो अधि तुर्वशे ।
अतो रथेन सुवृता न आ गतं साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (नासत्या) सत्य गुण कर्म स्वभाव वाले सभा सेना के ईश ! आप (यत्) जिस (सुवृता) उत्तम अङ्गों से परिपूर्ण (रथेन) विमान आदि यान से (यत्) जिस कारण (परावति) दूर देश में गमन करने तथा (तुर्वशे) वेद और शिल्पविद्या के जानने वाले विद्वान् जन के (अधिष्ठः) ऊपर स्थित होते हैं

(अतः) इस से (सूर्य्यस्य) सूर्य के (रश्मिभिः) किरणों के (साकम्) साथ (नः) हम लोगों को (आगतम्) सब प्रकार प्राप्त हूजिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—राजसभा के पति जिस सवारी से अन्तरिक्ष मार्ग करके देश देशान्तर जाने को समर्थ होवें उस को प्रयत्न से बनावें ॥ ७ ॥

अर्वाञ्चा वां सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप ।

इषं पृञ्चन्ता सुकृते सुदानव आ बर्हिः सीदतं नरा ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (अर्वाञ्चा) घोड़े के समान वेगों को प्राप्त (पृञ्चन्ता) सुखों के कराने वाले (नरा) सभा सेनापति ! आप जो (वाम्) तुम्हारे (सप्तयः) भाफ आदि अश्वयुक्त (सुकृते) सुन्दर कर्म करने (सुदानवे) उत्तम दाता मनुष्य के वास्ते (इषम्) धर्म की इच्छा वा उत्तम अन्न आदि (बर्हिः) आकाश वा श्रेष्ठ पदार्थ (सवना) यज्ञ की सिद्धि की क्रिया (अध्वरश्रियः) और पालनीय चक्रवर्त्ती राज्य की लक्ष्मियों को (आवहन्तु) प्राप्त करावें उन पुरुषों का (उपसीदतम्) सङ्ग सदा किया करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—राजा और प्रजाजनों को चाहिये कि आपस में उत्तम पदार्थों को दे लेकर सुखी हों ॥ ८ ॥

तेन नासत्यागतं रथेन सूर्य्यत्वचा ।

येन शश्वदूहथुर्दाशुषे वसु मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (नासत्या) सत्याचरण करने हारे सभासेना के स्वामी ! आप (येन) जिस (सूर्य्यत्वचा) सूर्य्य की किरणों के समान भास्वर (रथेन) गमन कराने वाले विमानादि यान से (आगतम्) अच्छे प्रकार आगमन करें (तेन) उस से (दाशुषे) दानशील मनुष्य के लिये (मध्वः) मधुरगुणयुक्त (सोमस्य) पदार्थ समूह के (पीतये) पान वा भोग के अर्थ (वसु) कार्य्यरूपी द्रव्य को (ऊहथुः) प्राप्त कराईये ॥ ९ ॥

भावार्थ—राजपुरुष जैसे अपने हित के लिये प्रयत्न करते हैं उसी प्रकार प्रजा के सुख के लिये भी प्रयत्न करें ॥ ९ ॥

उक्थेभिरर्वागवसे पुरूवसू अर्कैश्च नि ह्वयामहे ।

शश्वत्कण्वानाᳮसदसि प्रिये हि कं सोमं पपथुरश्विना ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (पुरूवसू) बहुत विद्वानों में बसने वाले (अश्विना) वायु और सूर्य के समान वर्त्तमान धर्म्म और न्याय के प्रकाशक ! (अवसे) रक्षादि के अर्थ

हम लोग (**उक्थेभिः**) वेदोक्त स्तोत्र वा वेदविद्या के जानने वाले विद्वानों के इष्ट वचनों के (**अर्कैः**) विचार से जहाँ (**कण्वानाम्**) विद्वानों की (**प्रिये**) पियारी (**सदसि**) सभा में आप लोगों को (**निह्वयामहे**) अतिशय श्रद्धा कर बुलाते हैं वहां तुम लोग (**अर्वाक्**) पीछे (**शश्वत्**) सनातन (**कम्**) सुख को प्राप्त होओ (**च**) और (**हि**) निश्चय से (**सोमम्**) सोमबल्ली आदि ओषधियों के रसों को (**पपथुः**) पिओ ॥ १० ॥

भावार्थ—राज प्रजाजनों को चाहिये कि विद्वानों की सभा में जाकर नित्य उपदेश सुनें जिससे सब करने और न करने योग्य विषयों का बोध हो ॥ १० ॥

यहां राजा और प्रजा के धर्म्म का वर्णन होने से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सैंतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥ ४७ ॥

प्रस्कण्व ऋषिः । उषा देवता । १ । ३ । ७ । ६ विराट् पथ्याबृहती । ५ । ११ । १३ निचृत्पथ्याबृहती । १२ बृहती । १५ पथ्याबृहती च छन्दः । मध्यमःस्वरः । ४ । ६ । १४ विराट् सतः पङ्क्तिः । २ । १० । १६ निचृत्सतः पङ्क्तिः । ८ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

सह वामेन न उषो व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
सह द्युम्नेन बृहता विभावरि राया देवि दास्वती ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (**दिवः**) सूर्यप्रकाश की (**दुहितः**) पुत्री के समान (**उषः**) उषा के तुल्य वर्त्तमान (**विभावरि**) विविध दीप्तियुक्त (**देवि**) विद्या सुशिक्षाओं से प्रकाशमान कन्या (**दास्वती**) प्रशस्त दानयुक्त ! तू (**बृहता**) बड़े (**वामेन**) प्रशंसित प्रकाश (**द्युम्नेन**) न्यायप्रकाश करके सहित (**राया**) विद्या चक्रवर्त्ति राज्य लक्ष्मी के (**सह**) सहित (**नः**) हम लोगों को (**व्युच्छ**) विविध प्रकार प्रेरणा कर ॥ १ ॥

भावार्थ—यहां वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे कोई स्वामी भृत्य को वा भृत्य स्वामी को सचेत कर व्यवहारों में प्रेरणा करता है और जैसे उषा अर्थात् प्रातःकाल की वेला प्राणियों को पुरुषार्थ युक्त कर बड़े बड़े पदार्थ समूह युक्त सुख से आनन्दित कर सायंकाल में सब व्यवहारों से निवृत्त कर आरामस्थ करती है वैसे ही माता पिता विद्या और अच्छी शिक्षा आदि व्यवहारों में अपनी कन्याओं को प्रेरणा करें ॥ १ ॥

अश्वा॑वती॒र्गोम॑ती॒र्विश्वसु॒विदो॒ भूरि॑ च्यवन्त॒ वस्त॑वे ।
उदी॑रय॒ प्रति॑ मा सू॒नृता॑ उष॒श्चोद॒ राधो॑ म॒घोना॑म् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (**उषः**) उषा के सदृश स्त्री ! तू जैसे यह शुभ गुणयुक्ता उषा है वैसे (**अश्वावतीः**) प्रशंसनीय व्याप्तियुक्त (**गोमतीः**) बहुत गो आदि पशु सहित (**विश्वसुविदः**) सब वस्तुओं को अच्छे प्रकार जानने वाली (**सूनृताः**) अच्छे प्रकार प्रियादियुक्त वाणियों को (**वस्तवे**) सुख में निवास के लिये (**भूरि**) बहुत (**उदीरय**) प्रेरणा कर और जो व्यवहारों से (**च्यवन्त**) निवृत्त होते हैं उन को (**मघोनाम्**) धनवानों के सकाश से (**राधः**) उत्तम से उत्तम धन को (**चोद**) प्रेरणा कर उन से (**मा**) मुझे (**प्रति**) आनन्दित कर ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अच्छी शोभित उषा सब प्राणियों को सुख देती है वैसे स्त्रियां अपने पतियों को निरन्तर सुख दिया करें ॥ २ ॥

उ॒वासो॒षा उ॒च्छाच्च॒ नु दे॒वी जी॒रा रथा॑नाम् ।
ये अ॑स्या आ॒चर॑णेषु दध्रि॒रे स॑मु॒द्रे न श्र॑व॒स्यवः॑ ॥ ३ ॥

पदार्थ—जो स्त्री उषा के समान (**जीरा**) वेगयुक्त (**देवी**) सुख देने वाली (**रथानाम्**) आनन्ददायक यानों के (**उवास**) वसती है (**ये**) जो (**अस्याः**) इस सती स्त्री के (**आचरणेषु**) धर्म्मयुक्त आचरणों में (**समुद्रे**) (**न**) जैसे सागर में (**श्रवस्यवः** अपने आप विद्या के सुनने वाले विद्वान् लोग उत्तम नौका से जाते आते हैं वैसे (**दध्रिरे**) प्रीति को धरते हैं वे पुरुष अत्यन्त आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जिस को अपने समान विदुषी पण्डिता और सर्वथा अनुकूल स्त्री मिलती है वह सुख को प्राप्त होता है और नहीं ॥ ३ ॥

उषो॒ ये ते॒ प्र यामे॑षु यु॒ञ्जते॒ मनो॑ दा॒नाय॑ सू॒रयः॑ ।
अत्राह॒ तत्कण्व॑ एषां॒ कण्व॑तमो॒ नाम॑ गृणाति नृ॒णाम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो (**सूरयः**) स्तुति करने वाले विद्वान् लोग (**ते**) आप से उपदेश पा के (**अत्र**) इस (**उषः**) प्रभात के (**यामेषु**) प्रहरों में (**दानाय**) विद्यादि दान के लिये (**मनः**) विज्ञानयुक्त चित्त को (**प्रयुञ्जते**) प्रयुक्त करते हैं वे जीवन्मुक्त होते हैं और जो (**कण्वः**) मेधावी (**एषाम्**)

इन (नृणाम्) प्रधान विद्वानों के (नाम) नामों को (गृणाति) प्रशंसित करता है वह (कण्वतमः) अतिशय मेधावी होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य एकान्त पवित्र निरुपद्रव देश में स्थिर होकर यमादि संयमान्त उपासना के नव अंगों का अभ्यास करते हैं वे निर्मल आत्मा होकर ज्ञानी श्रेष्ठ सिद्ध होते हैं और जो इनका संग और सेवा करते हैं वे भी शुद्ध अन्तःकरण हो के आत्मयोग के जानने के अधिकारी होते हैं ॥ ४ ॥

आ घा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुञ्जती ।

जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत उत्पातयति पक्षिणः ॥ ५ ॥

पदार्थ—जो (योषेव) सत्स्त्री के समान (प्रभुञ्जती) अच्छे प्रकार भोगती (सूनरी) अच्छे प्रकार प्राप्त होती (जरयन्ती) जीर्णावस्था को करती (उषाः) प्रातः समय (पद्वत्) पगों के तुल्य (वृजनम्) मार्ग को (ईयते) प्राप्त होती हुई (याति) जाती और (पक्षिणः) पक्षियों को (उत्पातयति) उड़ाती है उस काल में सब को योगाभ्यास (घ) ही करना चाहिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—जैसे प्रातःकाल की वेला निर्मल तथा सब प्रकार से सुख की देने वाली योगाभ्यास का कारण है उसी प्रकार स्त्रियों को होना चाहिये ॥ ५ ॥

वि या सृजति समनं व्य१र्थिनः पदं न वेत्योदती ।

वयो नकिष्टे पप्तिवांस आसते व्युष्टौ वाजिनीवती ॥ ६ ॥

पदार्थ – हे योगाभ्यास करने हारी स्त्री ! आप जैसे (या) जो (ओदती) आर्द्रता को करती हुई (नकिः) शब्द को न करती (वाजिनीवती) बहुत क्रियाओं का निमित्त (उषाः) प्रातः समय (अर्थिनः) प्रशस्त अर्थ वाले का (पदं न) प्राप्ति के योग्य के समान (समनम्) सुन्दर संग्राम को जैसे (विवेति) व्याप्त होती है जिसकी (व्युष्टौ) दहन करने वाली कान्ति में (पप्तिवांसः) पतनशील (वयः) पक्षी (आसते) स्थिर होते हैं वह वेला (ते) तेरे योगाभ्यास के लिये है इस को तू जान ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे स्त्रियां व्यवहार से अपने पदार्थों को प्राप्त होती हैं वैसे उषा अपने प्रकाश से अधिकार को प्राप्त होती है जैसे वह दिन को उत्पन्न और सब प्राणियों को उठाकर अपने अपने व्यवहार में प्रवृत्त मान कर रात्रि को निवृत्त करती और दिन के होने से दाह को भी उत्पन्न करती है वैसे ही सब स्त्रीजनों को भी होना चाहिये ॥ ६ ॥

एषायुक्त परावतः सूर्यस्योदयनादधि ।

शतं रथेभिः सुभगोषा इयं वि यात्यभि मानुषान् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे स्त्रीजनो ! जैसे (एषा) यह (उषाः) प्रातः काल [(परावतः) दूर देश से] (सूर्यस्य) सूर्यमण्डल के (उदयनात्) उदय से (अधि) उपरान्त (अध्यभ्ययुक्त) ऊपर सन्मुख से सब में युक्त होती है जिस प्रकार (इयम्) यह (सुभगा) उत्तम ऐश्वर्य्ययुक्त (रथेभिः) रमणीय यानों से (शतम्) असंख्यात (मानुषान्) मनुष्यादिकों को (वियाति) विविध प्रकार प्राप्त होती है वैसे तुम भी युक्त होओ ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे पतिव्रता स्त्रियाँ नियम से अपने पतियों की सेवा करती हैं। जैसे उषा से सब पदार्थों का दूर देश से संयोग होता है वैसे दूरस्थ कन्या पुत्रों का युवाऽवस्था में स्वयंवर विवाह करना चाहिये जिससे दूर देश में रहने वाले मनुष्यों से प्रीति बढ़े। जैसे निकटस्थों का विवाह दुःखदायक होता है वैसे ही दूरस्थों का विवाह आनन्दप्रद होता है ॥ ७ ॥

विश्वमस्या नानाम चक्षसे जगज्ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।

अप द्वेषो मघोनी दुहिता दिव उषा उच्छदप स्रिधः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे स्त्रीजनो ! तुम जैसे (मघोनी) प्रशंसनीय धननिमित्त (सूनरी) अच्छे प्रकार प्राप्त कराने वाली (दिवः) प्रकाशमान सूर्य्य की (दुहिता) पुत्री के सदृश (उषाः) प्रकाशने वाली प्रभात की वेला (विश्वम्) सब जगत् (नानाम)आदर करता है, और उस को (चक्षसे) देखने के लिये (ज्योतिः) प्रकाश को (कृणोति) करती है और (स्रिधः) हिंसक (द्वेषः) बुरा द्वेष करने वाले शत्रुओं को (अपोच्छत्) दूर वास करती है वैसे पति आदिकों में वर्त्तो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है जैसे सती स्त्री विघ्नों को दूर कर कर्त्तव्य कर्मों को सिद्ध कराती है, वैसे ही उषा डाकू, चोर, शत्रु आदि को दूर कर कार्य्य की सिद्धि कराने वाली होती है ॥ ८ ॥

उप आ भाहि भानुना चन्द्रेण दुहितर्दिवः ।

आवहन्ती भूर्यस्मभ्यं सौभगं व्युच्छन्ती दिविष्टिषु ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (दिवः) सूर्य्य के प्रकाश की (दुहितः) पुत्री के तुल्य कन्ये ! जैसे (उषाः) प्रकाशमान उषा (भानुना) सूर्य्य और (चन्द्रेण) चन्द्रमा से (अस्मभ्यम्) हम पुरुषार्थी लोगों के लिये (भूरि) बहुत (सौभगम्) ऐश्वर्य्य

के समूहों को (आवहन्ती) सब ओर से प्राप्त कराती (दिविष्टिषु) प्रकाशित कान्तियों में (व्युच्छन्ती) निवास कराती हुई संसार को प्रकाशित करती है वैसे ही तू विद्या और शमादि से [आ भाहि] सुशोभित हो ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विदुषी धार्मिक कन्या दोनों माता और पति के कुलों को उज्ज्वल करती है वैसे उषा दोनों स्थूल सूक्ष्म अर्थात् बड़ी छोटी वस्तुओं को प्रकाशित करती है ॥ ९ ॥

विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वियदुच्छसि सूनरि ।
सा नो रथेन बृहता विभावरि श्रुधि चित्रामघे हवम् ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (सूनरि) अच्छे प्रकार व्यवहारों को प्राप्त (विभावरि) विविध प्रकाशयुक्त (चित्रामघे) चित्र विचित्र धन से सुशोभित स्त्री ! जैसे उषा (बृहता) बड़े (रथेन) रमणीय स्वरूप वा विमानादि यान से विद्यमान जिस में (विश्वस्य) सब प्राणियों के (प्राणनम्) प्राण और (जीवनम्) जीविका की प्राप्ति का संभव होता है वैसे ही (त्वे) तेरे में होता है (यत्) जो तू (नः) हम लोगों को (व्युच्छसि) विविध प्रकार वास करती है वह तू हमारा (हवम्) सुनने सुनाने योग्य वाक्यों को (श्रुधि) सुन ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे उषा से सब प्राणिजाति को सुख होते हैं वैसे ही पतिव्रता स्त्री से प्रसन्न पुरुष को सब आनन्द होते हैं ॥ १० ॥

उषो वाजं हि वंस्व यश्चित्रो मानुषे जने ।
तेनावह सुकृतो अध्वराँ उप ये त्वा गृणन्ति वह्नयः ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (उषः) प्रभात वेला के तुल्य वर्त्तमान स्त्री ! तू (यः) जो (चित्रः) अद्भुत गुण कर्म स्वभावयुक्त (सुकृतः) उत्तम कर्म करने वाला तेरा पति है (मानुषे) मनुष्य (जने) विद्याधर्मादि गुणों से प्रसिद्ध में (वाजम्) ज्ञान वा अन्न को (हि) निश्चय करके (वंस्व) सम्यक् प्रकार से सेवन कर (ये) जो (वह्नयः) प्राप्ति करने वाले विद्वान् मनुष्य जिस कारण से (अध्वरान्) अध्वरयज्ञ वा अहिंसनीय विद्वानों की (उपगृणन्ति) अच्छे प्रकार स्तुति करते और तुझ को उपदेश करते हैं (तेन) उस से उनको (आवह) सुखों को प्राप्त कराती रह ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य जैसे सूर्य उषा को प्राप्त होके दिन को कर सब को सुख देता है वैसे अपनी स्त्रियों को भूषित करते हैं उन को स्त्रीजन भी

भूषित करती हैं इस प्रकार परस्पर प्रीति उपकार मे सदा सुखी रहें ॥ ११ ॥

विश्वान्देवाँ आ वह सोमपीतयेऽन्तरिक्षादुषस्त्वम् ।
सास्मासु धा गोमदश्वावदुक्थ्य१मुषो वाजं सुवीर्य्यम् ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (उषः) प्रभात के तुल्य स्त्रि ! मैं (सोमपीतये) सोम आदि पदार्थों को पीने के लिये (अन्तरिक्षात्) ऊपर से (विश्वान्) अखिल (देवान्) दिव्य-गुणयुक्त पदार्थों और जिस तुझ को प्राप्त होता हूँ उन्हीं को तू भी (आवह) अच्छे प्रकार प्राप्त हो, हे (उषः) उषा के समान हित करने और (सा) तू (सब) इष्ट पदार्थों को प्राप्त कराने वाली (अस्मासु) हम लोगों इन्द्रिय किरण और पृथिवी आदि से (अश्वावत्) और अत्युत्तम तुरंगों से युक्त (सुवीर्य्यम्) उत्तम वीर्य्य पराक्रमकारक (वाजम्) विज्ञान वा अन्न को (धाः) धारण कर ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे यह उषा अपने प्रादुर्भाव में शुद्ध वायु जल आदि दिव्य गुणों को प्राप्त करा के दोनों का नाश कर सब उत्तम पदार्थसमूह को प्रकट करती है वैसे उत्तम स्त्री गृह कार्य्य में हो ॥ १२ ॥

यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रति भद्रा अदृक्षत ।
सा नो रयिं विश्ववारं सुपेशसमुषा ददातु सुग्म्यम् ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! (यस्या) जिसके सकाश से ये (रुशन्तः) चोर डाकू अन्धकार आदि का नाश और (भद्राः) कल्याण करने वाली (अर्चयः) दीप्ति (प्रत्यदृक्षत) प्रत्यक्ष होती हैं (सा) जैसे वह (उषा) सुरूप के देने वाली प्रभात की वेला (नः) हम लोगों के लिए (विश्ववारम्) सब आच्छादन करने योग्य (सुपेशसम्) शोभनरूपयुक्त (रयिम्) चक्रवर्त्ति राज्यलक्ष्मी (सुग्म्यम्) सुख को (ददाति) देती है वैसी होकर तू भी हम को सुखदायक हो ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे दिन की निमित्त ऊषा के विना सुख वा राज्य के कार्य्य सिद्ध नहीं होते और सुरूप की प्राप्ति भी नहीं होती वैसे हो समीचीन स्त्री के बिना यह सब नहीं होता ॥ १३ ॥

ये चिद्धि त्वामृषयः पूर्व ऊतये जुहूरेऽवसे महि ।
सा नः स्तोमाँ अभि गृणीहि राधसोषः शुक्रेण शोचिषा ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे उषा के तुल्य वर्त्तमान (**महि**) महागुणविशिष्ट पण्डिता स्त्री ! (**ये**) जो (**पूर्वे**) अध्ययन किये हुये वेदार्थ के जानने वाले विद्वान् लोग (**ऊतये**) अत्यन्त गुण प्राप्ति वा (**अवसे**) रक्षण आदि प्रयोजन के लिये (**त्वाम्**) तुझे (**जुहुरे**) प्रशंसित करें (**सा**) सो तू (**शुक्रेण**) शुद्ध कामों के हेतु (**शोचिषा**) धर्मप्रकाश से युक्त (**राधसा**) बहुत धन से (**नः**) हमारे (**चित्**) ही (**स्तोमान्**) स्तुतिसमूहों का (**हि**) निश्चय से (**अभि**) सम्मुख (**गृणीहि**) स्वीकार कर ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जिन्होंने वेदों को अध्ययन किया वे पूर्व ऋषि, और जो वेदों को पढ़ते हों उनको नवीन ऋषि जानें, और जैसे विद्वान् लोग जिन पदार्थों को जान कर उपकार लेते हों वैसे अन्य पुरुषों को भी करना चाहिये किसी मनुष्य को मूर्खों की चालचलन पर न चलना चाहिये और जैसे विद्वान् लोग अपनी विद्या के पदार्थों के गुणों को प्रकाश कर उपकार करते हैं जैसे यह उषा अपने प्रकाश से सब पदार्थों को प्रकाशित करती है वैसे ही विद्वान् स्त्रियां विश्व को सुभूषित कर देती हैं ॥ १४ ॥

उषो यद॒द्य भा॒नुना॒ वि द्वारा॑वृ॒णवो॑ दि॒वः ।

प्र नो॑ यच्छतादवृ॒कं पृ॒थु छ॒र्दिः प्र दे॑वि॒ गोम॑ती॒रिषः॑ ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे (**देवि**) दिव्य गुणयुक्त स्त्री ! जैसे (**उषाः**) प्रभात समय (**अद्य**) इस दिन में (**भानुना**) अपने प्रकाश से (**द्वारौ**) गृहादि वा इन्द्रियों के प्रवेश और निकलने के निमित्त छिद्र (**प्रार्णवः**) अच्छे प्रकार प्राप्त होती और जैसे (**नः**) हम लोगों के लिये (**यत्**) (**अवृकम्**) हिंसक प्राणियों से भिन्न (**पृथु**) सब ऋतुओं के स्थान और अवकाश के योग्य होने से विशाल (**छर्दिः**) शुद्ध आच्छादन से प्रकाशमान घर है और जैसे (**दिवः**) प्रकाशादि गुण (**गोमतीः**) बहुत किरणों से युक्त (**इषः**) इच्छाओं को देती है वैसे [वि] (**प्रयच्छतात्**) संपूर्ण दिया कर ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे उषा अपने प्रकाश से अतीत वर्तमान और आने वाले दिनों में सब मार्ग और द्वारों को प्रकाश करती है वैसे ही मनुष्यों को चाहिये कि सब ऋतुओं में सुख देने वाले घरों को रच उन में सब भोग्य पदार्थों को स्थापन और वह सब स्त्री के आधीन कर प्रति दिन सुखी रहैं ॥ १५ ॥

सन्नो॑ रा॒या बृ॑ह॒ता वि॒श्वपे॑शसा मिमि॒क्ष्वा समि॒ळा॑भि॒रा।

सं द्यु॒म्नेन॑ वि॒श्वतु॒रो॑षो महि॒ सं वाजै॑र्वाजिनीवति ॥ १६ ॥

पदार्थ—हे (उषः) प्रातः समय के सम तुल्य वर्त्तमान (वाजिनीवति) प्रशंसनीय क्रियायुक्त (महि) पूजनीय विद्वान् स्त्री ! तू जैसे (उषाः) सब रूप को प्रकाश करने वाली प्रातः समय की वेला (विश्वपेशसा) सब सुन्दर रूपयुक्त (बृहता) बड़े (विश्वतुरा) सब को प्रवृत्त करने (संद्युम्नेन) विद्या धर्मादि गुण प्रकाशयुक्त (राया) प्रशंसनीय धन (समिडाभिः) भूमि वाणी नीति और (संवाजैः) अच्छे प्रकार युद्ध अन्न विज्ञान से (नः) हम लोगों को सुख देती है वैसे ही इन से तू हमें सुख दे ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वानों की विद्या शिक्षा से उषा के गुण का ज्ञान हो के उस से पुरुषार्थसिद्धि फिर उस से सब सुखों की निमित्त विद्या प्राप्त होती है वैसे ही माता की शिक्षा से पुत्र उत्तम होते हैं और प्रकार से नहीं ॥ १६ ॥

इस सूक्त में उषा के दृष्टान्त करके कन्या और स्त्रियों के लक्षणों का प्रतिपादन करने से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह अड़तालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

प्रस्कण्व ऋषिः । उषा देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

उषो॑ भ॒द्रेभि॒रा ग॑हि दि॒वश्चि॑द्रोच॒नादधि॑।

वह॑न्त्वरु॒णप्स॑व॒ उप॑ त्वा सो॒मिनो॑ गृ॒हम् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे शुभ गुणों से प्रकाशमान ! जैसे (उषः) कल्याणनिमित्त (रोचनात्) अच्छे प्रकार प्रकाशमान से (अधि) ऊपर (भद्रेभिः) कल्याणकारक गुणों से अच्छे प्रकार आती है वैसे ही तू (आगहि) प्राप्त हो और जैसे यह (दिवः) प्रकाश के समीप प्राप्त होती हैं वैसे ही (त्वा) तुझ को (अरुणप्सवः) रक्त गुणविशिष्ट छेदन करके भोक्ता (सोमिनः) उत्तम पदार्थ वाले विद्वान् के (गृहम्) निवास स्थान को (उपवहन्तु) समीप प्राप्त करें ॥ १ ॥

भावार्थ—जिस [उषा] की, भूमि-संयुक्त सूर्य के प्रकाश से उत्पत्ति है वह दिन रूप परिणाम को प्राप्त होकर पदार्थों को प्रकाशित करती हुई

सब को आह्लादित करती है वैसे ही ब्रह्मचर्य, विद्या, योग से युक्त स्त्री श्रेष्ठ हो ॥ १॥

सुपेशसं सुखं रथं यमध्यस्थां उषस्त्वम्।
तेना सुश्रवसं जनं प्रावाद्य दुहितर्दिवः ॥ २॥

पदार्थ—हे (दिवः) प्रकाशमान सूर्य्य की (दुहितः) पुत्री ही के तुल्य (उषः) वर्त्तमान स्त्रि ! तू (यम्) जिस (सुपेशसम्) सुन्दर रूप (सुखम्) आनन्दकारक (रथम्) क्रीड़ा के साधन यान के (अध्यस्थाः) ऊपर बैठने वाले प्राणी आनन्द को बढ़ाते हैं (तेन) उस रथ से (सुश्रवसम्) उत्तम श्रवणयुक्त (जनम्) विद्वान् मनुष्य की (प्राव) अच्छे प्रकार रक्षा आदि कर ॥ २॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्य लोग जैसे सूर्य्य के प्रकाश से सुरूप की प्रसिद्धि होती है वैसे ही विदुषी स्त्री से घर का काम और पुत्रों की उत्पत्ति होती है ऐसा जान कर उनसे उपकार लेवें ॥ २॥

वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपच्चतुष्पदर्जुनि।
उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥ ३॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! जैसे (अर्जुनि) अच्छे प्रकार प्रयत्न का निमित्त (उषः) उषा (दिवः) सूर्य्यप्रकाश के (अन्तेभ्यः) समीप से (ऋतून्) ऋतुओं को सिद्ध और (द्विपत्) मनुष्यादि तथा (चतुष्पत्) पशु आदि का बोध कराती हुई सब को प्राप्त हो के जैसे इस से (पतत्रिणः) नीचे ऊंचे उड़ने वाले (वयः) पक्षी (प्रारन्) इधर उधर जाते (चित्) वैसे ही (ते) तेरे गुण हों ॥ ३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे उषा मुहूर्त्त प्रहर दिन मास ऋतु अयन अर्थात् दक्षिणायन और वर्षों का विभाग करती हुई सब प्राणियों के व्यवहार और चेतनता को करती है वैसे ही स्त्री सब गृहकृत्यों को पृथक् पृथक् करें ॥ ३॥

व्युच्छन्ती हि रश्मिभिर्विश्वमाभासि रोचनम्।
तां त्वामुषर्वसूयवो गीर्भिः कण्वा अहूषत ॥ ४॥

पदार्थ—हे (वसुयवः) ! जो पृथिवी आदि वसुओं को संयुक्त और वियुक्त करने वाले (कण्वाः) बुद्धिमान् लोग जैसे (उषः) उषा (व्युच्छन्ती) विविध प्रकार से वसाने वाली (हि) निश्चय करके (रश्मिभिः) किरणों से (रोचनम्) रुचिकारक (विश्वम्) सब संसार को (आभासि) अच्छे प्रकार प्रकाशित करती

है वैसी (ताम्) उस (त्वाम्) तुझ स्त्री को (गीर्भिः) वेदशिक्षायुक्त अपनी वाणियों से (अनूषत) प्रशंसित करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—विद्वानों को चाहिये कि उषा के गुणों के तुल्य स्त्री उत्तम होती है इस बात को जानें और सब को उपदेश करें ॥ ४ ॥

इस में उषा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ।

यह उनचासवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्यो देवता । १ । ६ निचृद्गायत्री २ । ४ । ८ । ९ पिपीलिका मध्या निचृद्गायत्री । ३ गायत्री । ५ यवमध्या विराड्गायत्री ७ विराड्गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः । १० । ११ निचृदनुष्टुप् । १२ । १३ । अनुष्टुप् च छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

उदु॒ त्यं जा॒तवे॑दसं दे॒वं व॑हन्ति के॒तवः॑ । दृ॒शे विश्वा॑य॒ सूर्य॑म् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जैसे (केतवः) किरणें (विश्वाय) सब के (दृशे) दीखने (उ) और दिखलाने के योग्य व्यवहार के लिये (त्यम्) उस (जातवेदसम्) उत्पन्न किये हुए पदार्थों को प्राप्त करने वाले (देवम्) प्रकाशमान (सूर्य्यम्) रविमण्डल को (उद्वहन्ति) ऊपर वहते हैं वैसे ही गृहाश्रमका सुख देने के लिये सुशोभित स्त्रियों को विवाह विधि से प्राप्त होओ ॥ १ ॥

भावार्थ—धार्मिक माता पिता आदि विद्वान् लोग जैसे घोड़े रथ को और किरणें सूर्य्य को प्राप्त कराती हैं ऐसे ही विद्या और धर्म के प्रकाश-युक्त अपने तुल्य स्त्रियों से सब पुरुषों का विवाह करावें ॥ १ ॥

अप॒ त्ये ता॒यवो॑ यथा॒ नक्ष॑त्रा य॒न्त्य॒क्तुभिः॑ । सूरा॑य वि॒श्वच॑क्षसे ॥२॥

पदार्थ—हे स्त्री पुरुषो ! तुम (यथा) जैसे (अक्तुभिः) रात्रियों के साथ (नक्षत्रा) नक्षत्र आदि क्षय रहित लोक और (तायवः) वायु (विश्वचक्षसे) विश्व के दिखाने वाले (सूराय) सूर्य्यलोक के अर्थ (अपयन्ति) संयुक्त वियुक्त होते हैं वैसे ही विवाहित स्त्रियों के साथ संयुक्त वियुक्त हुआ करो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे रात्रि में नक्षत्र लोक चन्द्रमा के साथ और प्राण शरीर के साथ वर्त्तते हैं वैसे विवाह करके स्त्री पुरुष आपस में वर्त्ता करें ॥ २ ॥

अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥३॥

पदार्थ—(**यथा**) जैसे (**अस्य**) इस सविता के (**भ्राजन्तः**) प्रकाशमान (**अग्नयः**) प्रज्ज्वलित (**केतवः**) जनाने वाली (**रश्मयः**) किरणें (**जनान्**) मनुष्यादि प्राणियों को (**अनु**) अनुकूलता से प्रकाश करती हैं वैसे मैं अपनी विवाहित स्त्री और अपने पति ही को समागम के योग्य देखूँ अन्य को नहीं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे प्रज्ज्वलित हुए अग्नि और सूर्य्यादिक बाहर सब में प्रकाशमान हैं वैसे ही अन्तरात्मा में ईश्वर का प्रकाश वर्त्तमान है इसके जानने के लिये सब मनुष्यों को प्रयत्न करना योग्य है, उस परमात्मा की आज्ञा से परस्त्री के साथ पुरुष और परपुरुष के संग स्त्री व्यभिचार को सब प्रकार छोड़ के पाणिगृहीत अपनी अपनी स्त्री और अपने अपने पुरुष के साथ ऋतुगामी ही होवें ॥ ३ ॥

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य्य । विश्वमा भासि रोचनम् ॥४॥

पदार्थ—हे (**सूर्य्य**) चराचर के आत्मा ईश्वर ! जिससे (**विश्वदर्शतः**) विश्व के दिखाने और (**तरणिः**) शीघ्र सब का आक्रमण करने (**ज्योतिष्कृत्**) स्वप्रकाशस्वरूप आप ! (**रोचनम्**) रुचिकारक (**विश्वम्**) सब जगत् को प्रकाशित करते हैं इसी से आप स्वप्रकाशस्वरूप हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य और बिजुली बाहर भीतर रहने वाले सब स्थूल पदार्थों को प्रकाशित करते हैं वैसे ही ईश्वर भी सब वस्तुमात्र को प्रकाशित करता है ॥ ४ ॥

प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान् । प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥५॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! जो आप (**देवानाम्**) दिव्य पदार्थों वा विद्वानों के (**विशः**) प्रजा (**मानुषान्**) मनुष्यों को (**प्रत्यङ्ङुदेषि**) अच्छे प्रकार प्राप्त हो और सब के आत्माओं में (**प्रत्यङ्**) प्राप्त होते हो इस से (**विश्वं स्वर्दृशे**) सब सुखों के देखने के अर्थ सबों के (**प्रत्यङ्**) प्रत्यगात्मरूप से उपासनीय हो ॥ ५ ॥

भावार्थ—जिससे ईश्वर सब कहीं व्यापक सब के आत्मा का जानने वाला और सब कर्मों का साक्षी है इसलिये यही सब सज्जन लोगों को नित्य उपासना करने के योग्य है ॥ ५

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (**पावक**) पवित्रकारक (**वरुण**) सब से उत्तम जगदीश्वर !

आप (येन) जिस (चक्षसा) विज्ञान प्रकाश से (भुरण्यन्तम्) धारण वा पोषण करते हुए लोकों वा जनान् मनुष्यादि को (अनुपश्यसि) अच्छे प्रकार देखते हो उस ज्ञानप्रकाश से हम लोगों को संयुक्त कृपापूर्वक कीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—परमेश्वर की उपासना के विना किसी मनुष्य को विज्ञान वा पवित्रता होने का संभव नहीं हो सकता इससे सब मनुष्यों को एक परमेश्वर ही की उपासना करनी चाहिये ॥ ६ ॥

वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः । पश्यन् जन्मानि सूर्य ॥७॥

पदार्थ—हे (सूर्य्य) चराचराऽत्मन् परमेश्वर ! आप, जैसे सूर्य्यलोक (अक्तुभिः) प्रसिद्ध रात्रियों से (पृथु) विस्तारयुक्त (रजः) लोकसमूह और (अहा) दिनों को (मिमानः) निर्माण करता हुआ (पृथु) बड़े बड़े (रजः) लोकों को प्राप्त होके नियम व्यवस्था करता है वैसे हम लोगों के (जन्मानि) पहिले पिछले और वर्त्तमान जन्मों को (पश्यन्) देखते हुए (व्येषि) अनेक प्रकार से जानने और प्राप्त होने वाले हो ॥ ७ ॥

भावार्थ—जिसने सूर्य्य आदि लोक बनाये और सब जीवों के पाप पुण्य को देख के ठीक ठीक उनके सब दुःख रूप फलों को देता है वही सब का सत्य सत्य न्यायकारी राजा है ऐसा सब मनुष्य जानें ॥ ७ ॥

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षण ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (विचक्षण) सब को देखने (देव) सुख देने हारे (सूर्य्य) ज्ञानस्वरूप जगदीश्वर ! जैसे (सप्त) हरितादि सात (हरितः) जिनसे रसों को हरता है वे किरणें (शोचिष्केशम्) पवित्र दीप्ति वाले सूर्य्यलोक को (रथे) रमणीय सुन्दरस्वरूप रथ में (वहन्ति) प्राप्त करते हैं वैसे (त्वा) आपको गायत्री आदि वेदस्थ सात छन्द प्राप्त कराते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे रश्मियों के विना सूर्य्य का दर्शन नहीं हो सकता वैसे ही वेदों को ठीक ठीक जाने विना परमेश्वर का दर्शन नहीं हो सकता ऐसा निश्चय जानो ॥ ८ ॥

अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः । ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥९॥

पदार्थ—हे ईश्वर ! जैसे (सूरः) सब का प्रकाशक जो (सप्त) पूर्वोक्त सात (नप्त्यः) नाश से रहित (शुन्ध्युवः) शुद्धि करने वाली किरणें हैं उन को (रथस्य) रमणीय स्वरूप में (अयुक्त) युक्त करता और उनसे सहित प्राप्त होता है वैसे आप (ताभिः) उन (स्वयुक्तिभिः) अपनी युक्तियों से सब संसार को संयुक्त रखते हो ऐसा हम को दृढ़ निश्चय है ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सूर्य्य के समान आप ही आप से प्रकाशस्वरूप आकाश के तुल्य सर्वत्र व्यापक उपासकों को पवित्रकर्त्ता परमात्मा है वही सब मनुष्यों का उपास्य देव है ॥ ९ ॥

उद्वयन्तमंसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ १० ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**ज्योतिः**) ईश्वर ने उत्पन्न किये प्रकाशमान सूर्य्य को (**पश्यन्तः**) देखते हुए (**वयम्**) हम लोग (**तमसः**) अज्ञानान्धकार से अलग हो के (**ज्योतिः**) प्रकाशस्वरूप (**उत्तरम्**) सब से उत्तम प्रलय से ऊर्ध्व वर्त्तमान वा प्रलय करने हारा (**देवत्रा**) देव मनुष्य पृथिव्यादिकों में व्यापक (**देवम्**) सुख देने (**उत्तमम्**) उत्कृष्ट गुण कर्म स्वभावयुक्त (**सूर्यम्**) सर्वात्मा ईश्वर को (**पर्युदगन्म**) सब प्रकार प्राप्त होवें वैसे तुम भी उस को प्राप्त होओ ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि परमेश्वर के सदृश कोई भी उत्तम पदार्थ नहीं और न इस की प्राप्ति के विना मुक्ति सुख को प्राप्त होने योग्य कोई भी मनुष्य हो सकता है ऐसा निश्चित जानें ॥ १० ॥

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम् ।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (**मित्रमहः**) मित्रों से सत्कार के योग्य (**सूर्य्य**) सब ओषधी और रोगनिवारण विद्याओं के जानने वाले विद्वान् ! आप जैसे (**अद्य**) आज (**उद्यन्**) उदय को प्राप्त हुआ वा (**उत्तरान्**) कारणरूपी (**दिवम्**) दीप्ति को (**आरोहन्**) अच्छे प्रकार करता हुआ अन्धकार का निवारण कर दिन को प्रकट करता है वैसे मेरे (**हृद्रोगम्**) हृदय के रोगों और (**हरिमाणम्**) हरणशील। चोर आदि को (**नाशय**) नष्ट कीजिये ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य के उदय में अन्धेर और चोरादि निवृत्त हो जाते हैं वैसे उत्तम वैद्य की प्राप्ति से कुपथ्य और रोगों का निवारण हो जाता है ॥ ११ ॥

शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि ।
अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं नि दध्मसि ॥ १२ ॥

पदार्थ—जैसे श्रेष्ठ वैद्य लोग कहें वैसे हम लोग (शुकेषु) शुओं के समान किये हुये कर्मों और (रोपणाकासु) लेप आदि क्रियाओं से (मे) मेरे (हरिमाणम्) चित्त को खेंचने वाले रोगनाशक औषधियों को (दध्मसि) धारण करें (अथो) इस के पश्चात् (हारिद्रवेषु) जो सुख हरने मल बहाने वाले रोग हैं उन में (मे) अपने (हरिमाणम्) हरणशील चित्त को (निदध्मसि) निरन्तर स्थिर करें ॥ १२ ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग लेपनादि क्रियाओं से रोगों का निवारण करके बल को प्राप्त होवें ॥ १२ ॥

उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह ।

द्विषन्तम्मह्यं रन्धयन्मो अहं द्विषते रधम् ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! यथा (अयम्) यह (आदित्यः) नाशरहित सूर्य्य (उद्गात्) उदय को प्राप्त होता है वैसे तू (विश्वेन) अखिल (सहसा) बल के साथ उदित हो जैसे तू (मह्यम्) धार्मिक मनुष्य के (द्विषन्तम्) द्वेष करते हुए शत्रु को (रन्धयन्) मारता हुआ वर्त्तता है वैसे (अहम्) मैं (द्विषते) शत्रु के लिये वर्त्तूं । जैसे यह शत्रु मुझ को मारता है वैसे इस को मैं भी मारूं जो मुझे न मारे उसे मैं भी (मो रधम्) न मारूँ ॥ १३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि अनन्त बल युक्त परमेश्वर के बल के निमित्त प्राण वा बिजुली के दृष्टान्त से वर्त्तें के सत्पुरुषों के साथ मित्रता कर सब प्रजाओं का पालन यथावत् किया करें ॥ १३ ॥

इस सूक्त में परमेश्वर वा अग्नि के कार्य कारण के दृष्टान्त से राजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

पचासवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

आङ्गिरसः सव्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ६ । १० जगती । २ । ५ । ८ विराड् जगती । ११—१३ निचृज्जगती च छन्दः । निषादः स्वरः । ३ । ४ भुरिक् त्रिष्टुप् । ६ । ७ त्रिष्टुप् । १४ । १५ विराट् त्रिष्टुप् च छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम् ।

यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषा भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (अर्णवम्) समुद्र के तुल्य (त्यम्) उस (मेषम्)

वृष्टि द्वारा सेचन करने हारे (पुरुहूतम्) बहुत विद्वानों से स्तुत (ऋग्मियम्) ऋचाओं से मान करने योग्य (मंहिष्ठम्) गुणों से बड़े (इन्द्रम्) समग्र ऐश्वर्य से (अभिमदत) हर्षित करो और सूर्य्य के (द्यावः) किरणों के (न) समान (यस्य) जिस को (भुजे) भोग के लिये (मानुषा) मनुष्यों के हित करने वाले गुण (विचरन्ति) विचरते हैं उस (वस्वः) धन के (विप्रम्) देने वाले विद्वान् का (अभ्यर्चत) सदा सत्कार करो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार। मनुष्यों को योग्य है कि जो बहुत गुणों के योग से सूर्य्य के सदृश विद्यायुक्त राजा हो, उसी का सत्कार सदा किया करें ॥ १ ॥

अभीमवन्वन्त्स्वभिष्टिमूतयोऽन्तरिक्षप्रान्तविषीभिरावृतम् ।
इन्द्रं दक्षास ऋभवो मदच्युतं शतक्रतुं जवनी सूनृतारुहत् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे सेनापते ! जिस आप की (ऊतयः) रक्षा प्रजा का पालन करती हैं (दक्षासः) विज्ञानवृद्ध शीघ्र कार्य को सिद्ध करने वाले (ऋभवः) मेधावी विद्वान् लोग जिस (स्वभिष्टिम्) उत्तम इष्टियुक्त (अन्तरिक्षप्राम्) अपने तेज से अन्तरिक्ष अर्थात् अवकाश में सब को सुख से पूर्ण करने (मदच्युतम्) हर्षादि को देने वाले (शतक्रतुम्) अनेक कर्मों के कर्ता (तविषीभिः) बल आकर्षण आदि गुणों से युक्त सेना से (आवृतम्) संयुक्त (इन्द्रम्) बिजुली के सदृश वर्त्तमान आप को (अभ्यवन्वन्) कार्यों को करने के लिए सब प्रकार से वृद्धियुक्त करते हैं। युक्त शत्रुओं को विदारण करने वाले राजा को (गीर्भिः) सत्य प्रशंसित वाणियों से जिस को (जवनी) वेगयुक्त (सूनृता) अन्नादि पदार्थों को सिद्ध करनेहारी राजनीति (आरुहत्) बढ़ के प्राप्त होवे उस आपकी रक्षा हम किया करें ॥ २ ॥

भावार्थ—धर्मात्मा बुद्धिमान् लोग जिस का आश्रय करें उसी का शरण ग्रहण सब मनुष्य करें ॥ २ ॥

त्वं गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरपोतात्रये शतदुरेषु गातुवित् ।
ससेनं चिद्विमदायावहो वस्वाजावद्रिं वावसानस्य नर्तयन् ॥३॥

पदार्थ—हे (ससेन) सेना से सहित सेनाध्यक्ष ! आप जैसे सूर्य (अङ्गिरोभ्यः) प्राणस्वरूप पवनों से (अद्रिम्) पर्वत और मेघ के तुल्य वर्त्तमान (अत्रये) जिसमें तीन अर्थात् आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक दुःख नहीं हैं उस (आजौ) संग्राम में शत्रुओं के बल को (अपावृणोः) दूर कर देते हो (वावसानस्य) ढांकने वाले शत्रुपक्ष की सेना को (नर्तयन्) नचाते के समान कंपाते हुए (विमदाय) विविध आनन्द के वास्ते (वसु) धन को (आवहः)

अच्छे प्रकार प्राप्त कर (उत) और (गातुवित्) भूगर्भ विद्या के जानने वाले आप (शतदुरेषु) असंख्य मेघ के अवयवों में ढके हुए पदार्थों के समान ढकी हुई अपनी सेना को बचाते हो सो आप सरकार के योग्य हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सेनापति आदि जब तक वायु के सकाश से उत्पन्न हुए सूर्य के समान पराक्रमी नहीं होते तब तक शत्रुओं को नहीं जीत सकते ॥ ३ ॥

त्वमपामपिधानावृणोरपाधारयः पर्वते दानुमद्वसु ।
वृत्रं यदिन्द्र शवसावधीरहिमादित्सूर्यं दिव्यारोहयो दृशे ॥४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) जगदीश्वर ! (यत्) जिस कारण (त्वम्) आप जैसे सूर्य (अपाम्) जलों के (अपिधाना) आच्छादनों को दूर करता है वैसे शत्रुओं के बल को (अपावृणोः) दूर करते हो जैसे (पर्वते) मेघमें (दानुमत्) उत्तम शिखरयुक्त (वसु) द्रव्य वा जल को (अधारयः) धारण करता और (शवसा) बल से (अहिम्) व्याप्त होने योग्य (वृत्रम्) मेघ को (अवधीः) मारता है वैसे शत्रुओं को छिन्न-भिन्न करते हो और जैसे किरणसमूह (सूर्यम्) सूर्य को (अरोहयः) अच्छे प्रकार स्थापित करते हैं वैसे न्याय के प्रकाश से युक्त हैं इस से राज्य करने के योग्य हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जिस ईश्वर ने मेघ के द्वार का छेदन कर आकर्षण कर अन्तरिक्ष में स्थापन वर्षा और सब को प्रकाशित कर के सुखों को देता है उस सूर्य को ईश्वर ने रच कर स्थापन किया है ऐसा जानें ॥ ४ ॥

त्वं मायाभिरप मायिनोऽधमः स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत ।
त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथ ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (नृमणः) मनुष्यों में मन रखने वाले सभाध्यक्ष ! (त्वम्) आप (पुरः) प्रथम (स्वधाभिः) अन्नादि पदार्थों से (पिप्रोः) न्याय को पूर्ण करने हारे न्यायाधीशों की आज्ञा और (ऋजिश्वानम्) ज्ञान आदि सरल गुणों से युक्त की (प्राविथ) रक्षा कर और जो (मायिनः) निन्दित बुद्धि वाले (मायाभिः) कपट छलादि से वा (शुप्तौ) सोने के उपरान्त पराये पदार्थों को (अजुह्वत) हरण करते हैं उन डाकू आदि दुष्टों को (अपाधमः) दूर कीजिये और उन को (दस्युहत्येषु) डाकुओं के हननरूप संग्रामों में (प्रारुज) छिन्न-भिन्न कर दीजिये ॥५॥

भावार्थ—जो सभाध्यक्ष अपने सत्यरूपी न्याय से उत्तम वा दुष्ट कर्मों के करने वाले मनुष्यों के लिये फलों को देकर दोनों की यथायोग्य रक्षा करता है वही इस जगत् में सत्कार के योग्य होता है ॥ ५ ॥

त्वं कुत्सं शुष्णहत्येष्वाविथारन्धयोऽतिथिग्वाय शम्बरम् ।
महान्तं चिदर्बुदं नि क्रमीः पदा सनादेव दस्युहत्याय जज्ञिषे ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! शूरवीर मनुष्य ! जिससे (**त्वम्**) तू (**पदा**) पाद से आक्रान्त हुए शत्रुसमूह को मारने वाले के (**चित्**) समान (**शुष्णहत्येषु**) शत्रुओं के बलों के हनने योग्य व्यवहारों में (**महान्तम्**) महागुणविशिष्ट (**कुत्सम्**) शस्त्रवर वज्र को धारण करके प्रजा की (**आविथ**) रक्षा करते और दुष्टों को (**अरन्धयः**) मारते हो (**अतिथिग्वाय**) अतिथियों के जाने-आने को शुद्ध मार्ग के लिये (**अर्बुदम्**) असंख्यातगुणविशिष्ट (**शम्बरम्**) बल को (**नित्यशः**) क्रम से बढ़ाते हो (**सनात्**) अच्छे प्रकार सेवन करने से (**पदा**) पदाक्रान्त शत्रुसेना को नाश करते हो (**दस्युहत्याय**) शत्रुओं के मारने रूप व्यवहार के लिये (**एव**) ही (**जज्ञिषे**) उत्पन्न हुए हो इस से हम लोग आपका सत्कार करते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—सभाध्यक्षादिकों को योग्य है कि जैसे शत्रुओं को मार श्रेष्ठों की रक्षा मार्गों को शुद्ध और असंख्यात बल को धारण कर शत्रुओं के मारने के लिये अत्यन्त प्रभाव बढ़ावें ॥ ६ ॥

त्वे विश्वा तविषी सध्र्यग्घिता तव राधः सोमपीथाय हर्षते ।
तव वज्रश्चिकिते बाह्वोर्हितो वृश्चा शत्रोरव विश्वानि वृष्ण्या ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् मनुष्य ! (**त्वे**) आप में जो (**विश्वा**) सब (**तविषी**) बल (**हिता**) स्थापित किया हुआ (**सध्र्यक्**) साथ सेवन करने वाला (**राधः**) धन (**सोमपीथाय**) सुख करने वाले पदार्थों के भोग के लिये (**हर्षते**) हर्षयुक्त करता है जो (**तव**) आपके (**बाह्वोः**) भुजाओं में (**हितः**) धारण किया (**वज्रः**) शस्त्रसमूह है जिससे आप (**चिकिते**) सुखों को जानते हो उससे हम लोगों के (**विश्वानि**) सब (**वृष्ण्या**) वीरों के लिये हित करने वाले बल की (**अव**) रक्षा और (**शत्रोः**) शत्रु के बल का नाश कीजिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो श्रेष्ठों में बल उत्पन्न हो तो उससे सब मनुष्यों को सुख होवे, जो दुष्टों में बल होवे तो उससे सब मनुष्यों को दुःख होवे, इससे श्रेष्ठों के सुख की वृद्धि और दुष्टों केबल की हानि निरन्तर करनी चाहिये ॥ ७ ॥

वि जानीह्यार्य्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् ।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! तू (**बर्हिष्मते**) उत्तम सुखादि गुणों के उत्पन्न करने वाले व्यवहार की सिद्धि के लिये (**आर्य्यान्**) सर्वोपकारक धार्मिक विद्वान् मनुष्यों को (**विजानीहि**) जान और (**ये**) जो (**दस्यवः**) परपीड़ा करने वाले अधर्मी दुष्ट मनुष्य हैं उनको जान कर (**बर्हिष्मते**) धर्म की सिद्धि के लिये (**रन्धय**) मार और उन (**अव्रतान्**) सत्यभाषणादि धर्म रहित मनुष्यों को (**शासत्**) शिक्षा करते हुए (**यजमानस्य**) यज्ञ के कर्त्ता का (**चोदिता**) प्रेरणाकर्त्ता और (**शाकी**) उत्तम शक्तियुक्त सामर्थ्य को (**भव**) सिद्ध कर जिससे (**ते**) तेरे उपदेश वा सङ्ग से (**सधमादेषु**) सुखों के साथ वर्त्तमान स्थानों में (**ता**) उन (**विश्वा**) सब कर्मों को सिद्ध करने की (**इत्**) ही मैं (**चाकन**) इच्छा करता हूँ ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को दस्यु अर्थात् दुष्ट स्वभाव को छोड़ कर आर्य्य अर्थात् श्रेष्ठ स्वभावों के आश्रय से वर्त्तना चाहिये । वे ही आर्य्य हैं कि जो उत्तम विद्यादि के प्रचार से सब के उत्तम भोग की सिद्धि और अधर्मी दुष्टों के निवारण के लिये निरन्तर यत्न करते हैं । निश्चय करके कोई मनुष्य आर्य्यों के संग उन से अध्ययन वा उपदेशों के विना यथावत् विद्वान् धर्मात्मा आर्यस्वभावयुक्त होने को समर्थ नहीं हो सकता । इससे निश्चय करके आर्य के गुण और कर्मों को सेवन कर निरन्तर सुखी रहना चाहिये ॥ ८ ॥

अनुव्रताय रन्धयन्नपव्रतानाभूभिरिन्द्रः श्नथयन्ननाभुवः ।
वृद्धस्य चिद्वर्धतो द्यामिनक्षतः स्तवानो वम्रो विजघान सन्दिहः ॥९॥

पदार्थ—मनुष्यों को उचित है कि जो (**इन्द्रः**) परम विद्या आदि ऐश्वर्य्य सभा शाला सेना और न्याय का अध्यक्ष (**आभूभिः**) उत्तम वीरों को शिक्षा करने वाली क्रियाओं के साथ वर्त्तमान (**अनुव्रताय**) अनुकूल धर्मयुक्त व्रतों के धारण करने वाले आर्य मनुष्य के लिये (**अपव्रतान्**) मिथ्याभाषणादि दुष्ट कर्मयुक्त डाकू मनुष्यों को (**रन्धयन्**) अति ताड़ना करता हुआ (**अनाभुवः**) जो धर्मात्माओं से विरुद्ध मनुष्य हैं उन पापियों को (**श्नथयन्**) शिथिल करता (**इनक्षतः**) व्याप्तियुक्त (**वर्धतः**) गुण दोषों से बढ़ने वाले (**वृद्धस्य**) ज्ञानादि गुणों से युक्त श्रेष्ठ की (**स्तवानः**) स्तुति का कर्त्ता (**वम्र**) अधर्म का नाश (**संदिहः**) धर्माऽधर्म को संदेह से निश्चय करने वाला (**द्याम्**) सूर्यप्रकाश के (**चित्**) समान विद्या के प्रकाश को विस्तारयुक्त करता हुआ दुष्टों को

(विजधान) विशेष करके मारता है उसी कुल को सुभूषित करने वाले आर्य मनुष्य को सभाधि पतिपन में स्वीकार कर राजधर्म का यथावत् पालन करें ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। सब धार्मिक मनुष्यों को उचित है कि सब मनुष्यों को अविद्या से निवारण और विद्या पढ़ा विद्वान् करके धर्माऽधर्म के विचारपूर्वक निश्चय से धर्म का ग्रहण और अपने अधर्म का त्याग करें। सदैव आर्यों का सङ्ग डाकुओं के सङ्ग का त्याग कर सब से उत्तम व्यवस्था में वर्त्ते ॥ ९ ॥

तक्षद्यत्त उशना सहसा सहो वि रोदसी मज्मना बाधते शवः ।
आ त्वा वातस्य नृमणो मनोयुज आ पूर्यमाणमवहन्नभि श्रवः ॥१०॥

पदार्थ—हे (**नृमणः**) मनुष्यों में मन देने वाले (**उशना**) कामयमान विद्वान् ! आप (**सहसा**) अपने सामर्थ्य से शत्रुओं के (**सहः**) बल का हनन करके जैसे सूर्य (**रोदसी**) भूमि और प्रकाश को करता है वैसे (**मज्मना**) शुद्ध बल से (**शवः**) शत्रुओं के बल को (**विबाधते**) विलोड़न वा (**आतक्षत्**) छेदन करते हो और (**ते**) आपके (**मनोयुजः**) मन से युक्त होने वाले भृत्य (**त्वा**) आपका आश्रय ले के (**ते**) आप के (**वातस्य**) बलयुक्त वायु के सम्बन्धी (**आपूर्यमाणम्**) न्यूनता रहित (**श्रवः**) श्रवण और अन्नादि की (**अभ्यावहन्**) प्राप्त होवें ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वान् सेनाध्यक्ष के विना पृथिवी के राज्य की व्यवस्था शत्रुओं के बल की हानि विद्यादि सद्गुणों का प्रकाश और उत्तम अन्नादि की प्राप्ति नहीं होती ॥ १० ॥

मन्दिष्ट यदुशने काव्ये सचाँ इन्द्रो वङ्कू वङ्कुतराधितिष्ठति ।
उग्रो ययिं निरपः स्रोतसासृजद्वि शुष्णस्य दृंहिता ऐरयत्पुरः ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (**मन्दिष्ठ**) अतिशय करके स्तुति करने वाले जो (**उग्रः**) दुष्टों को मारने वाले (**इन्द्रः**) सभाध्यक्ष ! आप जैसे सूर्य (**स्रोतसा**) स्रोताओं से (**आपः**) जलों को बहाता है वैसे (**उशने**) अतीव सुन्दर (**यत्**) जिस (**काव्ये**) कवियों के कर्म में जो (**वङ्कू**) कुटिल (**वङ्कुतरा**) अतिशय करके कुटिल चाल वाले शत्रु और उदासी मनुष्यों के (**अधितिष्ठति**) राज्य में अधिष्ठाता होते हो जैसे सविता [(**सचा**) अपने गुणों से] (**ययिम्**) मेघ को (**निरसृजत्**) नित्य सर्जन करता है वैसे (**शुष्णस्य**) बल की (**दृंहिताः**) वृद्धि कराने हारी क्रियाओं को (**पुरः**) पहिले (**व्यैरयत्**) प्राप्त करते हो सो आप सब को सत्कार करने योग्य हो ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जो कवि, सब शास्त्र का वक्ता, कुटिलता का विनाश करने, दुष्टों में कठोर, श्रेष्ठों में कोमल, सर्वथा बल को बढ़ाने वाला पुरुष है उसी को सभा आदि के अधिकारों में स्वीकार करें ॥ ११ ॥

आ स्म रथं वृषपाणेषु तिष्ठसि शार्यातस्य प्रभृता येषु मन्दसे ।
इन्द्र यथा सुतसोमेषु चाकनोऽनर्वाणं श्लोकमारोहसे दिवि ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) उत्तम ऐश्वर्य वाले सभाध्यक्ष ! जिससे तू (यथा) जैसे विद्वान् लोग पदार्थविद्या को सिद्ध करके सुखों को प्राप्त होते और जो (शार्यातस्य) वीर पुरुष के (येषु) जिन (सुतसोमेषु) उत्तम रसों से युक्त (वृषपाणेषु) पुष्टि करने वाले सोमलतादि पदार्थों अर्थात् वैद्यक शास्त्र की रीति से अति श्रेष्ठ बनाये हुए और उत्तम व्यवहारों में (प्रभृताः) धारण किये हों वैसे उनको प्राप्त हो के (मन्दसे) आनन्दित होने और (अनर्वाणम्) अग्नि आदि अश्व सहित पशु आदि अश्व रहित (श्लोकम्) सब अवयवों से सहित रथ के मध्य (स्म) ही (आतिष्ठसि) स्थित और उस की (चाकनः) इच्छा करते हैं और (दिवि) प्रकाशरूप सूर्य्यलोक में (आरोहसे) आरोहण करते हो (स्म) इसीलिये आप योग्य हो ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। विमानादि यान वा विद्वानों के सङ्ग के विना किसी मनुष्य को सुख नहीं हो सकता इससे विद्वानों का सभा वा पदार्थों के ज्ञान का उपयोग करके सब मनुष्यों को आनन्द में रहना चाहिये ॥ १२ ॥

अददा अर्भां महते वचस्यवे कक्षीवते वृचयामिन्द्र सुन्वते ।
मेनाऽभवो वृषणश्वस्य सुक्रतो विश्वेत्ता ते सवनेषु प्रवाच्या ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे (सुक्रतो) शोभनकर्मयुक्त (इन्द्र) शिल्पविद्या को जानने वाले विद्वान् ! तू (वचस्यवे) अपने को शास्त्रोपदेश की इच्छा करने वा (महते) महागुण विशिष्ट (सुन्वते) शिल्पविद्या को सिद्ध करने (कक्षीवते) विद्याप्रान्त अङ्गुली वाले मनुष्य के लिये जिस (वृचयाम्) छेदनभेदनरूप (अर्भाम्) थोड़ी भी शिल्पक्रिया को (अददाः) देते हो (सवनेषु) प्रेरणा करने वाले कर्मों में (प्रवाच्या) अच्छे प्रकार कथन करने योग्य (मेना) वाणी (वृषणश्वस्य) शिल्पक्रिया की इच्छा करने वाले (ते) आपके (विश्वा) सब कार्य्य हैं (ता) (इत्) उन ही के सिद्ध करने को समर्थ (अभवः) हूजिये ॥ १३ ॥

भावार्थ—विद्वान् मनुष्यों को अग्नि आदि पदार्थों से विद्यादान करके सब मनुष्यों के लिये हित के काम करने चाहियें ॥ १३ ॥

इन्द्रो॑ अश्रायि सु॒ध्यो॑ निरे॒के प॒ज्रेषु॒ स्तोमो॒ दुर्यो॒ न यूप॑: ।
अ॒श्वा॒युर्ग॒व्यू र॑थ॒युर्व॑सू॒युरिन्द्र॒ इद्रा॒यः क्ष॑यति प्र॒य॒न्ता ॥ १४ ॥

पदार्थ—जो (**अश्वयुः**) अपने अश्वों (**गव्युः**) अपने [**गौ**] पृथिवी इन्द्रिय किरणों (**रथयुः**) अपने रथ और (**वसूयुः**) अपने द्रव्यों की इच्छा और (**प्रयन्ता**) अच्छे प्रकार नियम करने वाले के (**इत्**) समान (**इन्द्रः**) विद्यादि ऐश्वर्ययुक्त विद्वान् (**रायः**) धनों को (**क्षयति**) निवासयुक्त करता है वह (**सुध्यः**) जो उत्तम बुद्धि वाले विद्वान् मनुष्य हैं उनसे (**दुर्यः**) गृहसम्बन्धी (**यूपः**) खंभा के (**न**) समान (**इन्द्रः**) विद्यादि ऐश्वर्यवान् विद्वान् (**निरेके**) शंकारहित (**पज्रेषु**) शिल्पादि व्यवहारों में (**स्तोमः**) स्तुति करने योग्य (**अश्रायि**) सेवनयुक्त होता है ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सूर्य से वहुत उत्तम उत्तम कार्य सिद्ध होते हैं वैसे विद्वान् वा अग्नि जलादि के सकाश से रथ की सिद्धि के द्वारा धन की प्राप्ति होती है ॥ १४ ॥

इ॒दं नमो॑ वृष॒भाय॑ स्व॒राजे॑ स॒त्यशु॑ष्माय त॒वसे॑ऽवाचि ।
अ॒स्मिन्नि॑न्द्र वृ॒जने॒ सर्व॑वीराः स्मत्सू॒रिभि॒स्तव॒ शर्म॑न्त्स्याम ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) परम पूजनीय सभापते ! जैसे (**सूरिभिः**) विद्वानों ने (**वृषभाय**) सुख की वृष्टि करने (**सत्यशुष्माय**) विनाशरहित बलयुक्त (**तवसे**) अति बल से प्रवृद्ध (**स्वराजे**) अपने आप प्रकाशमान परमेश्वर को (**इदम्**) इस (**नमः**) सत्कार को (**अवाचि**) कहा है वैसे हम भी करें ऐसे कर के हम लोग (**तव**) आपके (**अस्मिन्**) इस जगत् वा इस (**वृजने**) दुःखों को दूर करने वाले बल से युक्त (**शर्मन्**) गृह में (**स्मत्**) अच्छे प्रकार सुखी (**स्याम**) होवें ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब मनुष्यों को विद्वान् के साथ वर्त्तमान रह कर परमेश्वर ही की उपासना पूर्ण प्रीति से विद्वानों का सङ्ग कर परम आनन्द को प्राप्त करना और कराना चाहिये ॥ १५ ॥

इस सूक्त में सूर्य अग्नि और बिजुली आदि पदार्थों का वर्णन, बलादि की प्राप्ति, अनेक अलङ्कारों के कथन से विविध अर्थों का वर्णन और

सभाध्यक्ष तथा परमेश्वर के गुणों का प्रतिपादन किया है, इससे इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह इक्यावनवां सूक्त समाप्त हुआ ।

आङ्गिरसः सव्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ८ भुरिक् त्रिष्टुप् । ७ त्रिष्टुप् । ९ । १० स्वराट् त्रिष्टुप् । १२ । १३ । १५ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवत स्वरः । २—४ निचृज्जगती । ५ । १४ जगती । ६ । ११ विराट् जगती च छन्दः । निषादः स्वरः ॥

त्यं सु मेषं महया स्वर्विदं शतं यस्य सुभ्वः साकमीरते ।

अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथमेन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥ १ ॥

पदार्थ—(यस्य) जिस परमैश्वर्य्ययुक्त सभाध्यक्ष के (शतम्) असंख्यात (सुभ्वः) सुखों को उत्पन्न करने वाले कारीगर लोग (सुवृक्तिभिः) दुःखों को दूर करने वाली उत्तम क्रियाओं के (साकम्) साथ (अत्यम्) अश्व के (न) समान अग्नि जलादि से (अवसे) रक्षादि के लिये (हवनस्यदम्) सुखपूर्वक आकाश मार्ग में प्राप्त करने वाले (वाजम्) वेगयुक्त (इन्द्रम्) परमोत्कृष्ट ऐश्वर्य के दाता (स्वर्विदम्) जिससे आकाश मार्ग से जा आ सकें उस (रथम्) विमान आदि यान को (ईरते) प्राप्त होते हैं और जिससे मैं (ववृत्याम्) वर्त्तता हूं (त्यम्) उस (मेषम्) सुख को वर्षाने वाले को हे विद्वान् मनुष्य ! तू उनका (सुमहय) अच्छे प्रकार सत्कार कर ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को जैसे अश्व को युक्त कर रथ आदि को चलाते हैं वैसे अग्नि आदि से यानों को चला के कार्यों को सिद्ध कर सुखों को प्राप्त होना चाहिये ॥ १ ॥

स पर्वतो न धरुणेष्वच्युतः सहस्रमूतिस्तविषीषु वावृधे ।

इन्द्रो यद्वृत्रमवधीन्नदीवृतमुब्जन्नर्णांसि जर्हृषाणो अन्धसा ॥ २ ॥

पदार्थ—हे राजप्रजाजन ! जैसे (धरुणेषु) धारकों में (अच्युतः) सत्य सामर्थ्ययुक्त (अर्णांसि) जलों को (उब्जन्) बल पकड़ता हुआ (इन्द्रः) सविता (नदीवृतम्) नदियों से युक्त वा नदियों को वर्त्तने वाले (वृत्रम्) मेघ को (अवधीत्) मारता है (सः) वह (पर्वतः) पर्वत के (न) समान (ववृधे) बढ़ता है वैसे (यत्) जो तू शत्रुओं को मार (सहस्रमूतिः) असंख्यात रक्षा करने हारे (तविषीषु) बलों में (जर्हृषाणः) बार बार हर्ष को प्राप्त करता हुआ (अन्धसा) अन्नादि के साथ वर्त्तमान बार बार बढ़ाता रह ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सेना आदि को धारण कर और मेघ के तुल्य अन्नादि सामग्री के साथ वर्त्तमान हो के वलों को बढ़ाता है वह पर्वत के समान स्थिर सुखी हो शत्रुओं को मार राज्य के बढ़ाने में समर्थ होता है ॥ २ ॥

स हि द्वरो द्वरिषु वव्र ऊधनि चन्द्रबुध्नो मदवृद्धो मनीषिभिः।
इन्द्रं तमह्वे स्वपस्यया धिया मंहिष्ठरातिं स हि पप्रिरन्धसः ॥ ३ ॥

पदार्थ—जो (**ऊधनि**) प्रातः काल में (**द्वरिषु**) अन्धकारावृत व्यवहारों में (**द्वरः**) अन्धकार से आवृत द्वार (**चन्द्रबुध्नः**) बुध्न अर्थात् अन्तरिक्ष में सुवर्ण वा चन्द्रमा के वर्ण से युक्त (**मदवृद्धः**) हर्ष से बढ़ा हुआ (**अन्धसः**) अन्नादि को (**पप्रिः**) पूर्ण करने वाला (**वव्रः**) कूप के समान मेघ है उसके तुल्य (**मनीषिभिः**) मेधावियों के साथ (**हि**) निश्चय करके वर्त्तमान सभाध्यक्ष है (**तम्**) उस (**मंहिष्ठरातिम्**) अत्यन्त पूजनीय दानयुक्त (**इन्द्रम्**) विद्वान् को (**स्वपस्यया**) उत्तम कर्मयुक्त व्यवहार में होने वाली (**धिया**) बुद्धि से मैं (**अह्वे**) आह्वान करता हूँ ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जो मेघ के तुल्य प्रजापालन करता है उस परमैश्वर्ययुक्त पुरुष को सभाध्यक्ष का अधिकार देवें ॥ ३ ॥

आ यं पृणन्ति दिवि सद्मबर्हिषः समुद्रं न सुभ्व१ः स्वा अभिष्टयः।
तं वृत्रहत्ये अनु तस्थुरूतयः शुष्मा इन्द्रमवाता अह्रुतप्सवः ॥ ४ ॥

पदार्थ—(**सद्मबर्हिषः**) उत्तम स्थान आसनयुक्त (**सुभ्वः**) उत्तम होने वाले मनुष्य (**अवाताः**) वायु के चलाने से रहित नदियां (**समुद्रं न**) जैसे सागर वा आकाश को प्राप्त होकर स्थित होती हैं वैसे जिस (**इन्द्रम्**) सभासदों सहित सभापति को (**स्वाः**) अपने (**अभिष्टयः**) शुभेच्छा युक्त (**शुष्माः**) बल सहित (**अह्रुतप्सवः**) कुटिलता रहित (**ऊतयः**) सुरक्षित प्रजा (**आपृणन्ति**) सुखी करें (**तम्**) परमैश्वर्यकारक वीर पुरुष के (**अनुतस्थुः**) अनुकूल स्थित होवें वही चक्रवर्त्ती राज्य करने को योग्य होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे नदी समुद्र वा अन्तरिक्ष को प्राप्त होकर स्थिर होती है वैसे ही सभासदों के सहित विद्वान् को प्राप्त होकर सब प्रजा स्थिर सुखवाली होती हैं ॥ ४ ॥

अभि स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यतो रघ्वीरिव प्रवणे सस्रुरूतयः ।
इन्द्रो यद्वज्री धृषमाणो अन्धसा भिनद्वलस्य परिधीँरिव त्रितः ॥५॥

पदार्थ—(यत्) जो सूर्य्य के समान (स्ववृष्टिम्) अपने शस्त्रों की वृष्टि करता हुआ (धृषमाणः) शत्रुओं को प्रगल्भता दिखाने हारा (वज्री) शत्रुओं को छेदन करने वाले शस्त्रसमूह से युक्त (इन्द्रः) सभाध्यक्ष (मदे) हर्ष में (अस्य) इस (युध्यतः) युद्ध करते हुए (बलस्य) शत्रु के (त्रितः) ऊपर, मध्य और टेढ़ी तीन रेखाओं से (परिधींरिव) सब प्रकार ऊपर की गोल रेखा के समान बल को (अभिभिनत्) सब प्रकार से भेदन करता है उसके (अन्धसा) अन्नादि वा जल से (रघ्वीरिव) जैसे जल से पूर्ण नदियाँ (प्रवणे) नीचे स्थान में जाती हैं वैसे (ऊतयः) रक्षा आदि (सस्रुः) गमन करती हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे जल नीचे स्थान को जाते हैं वैसे सभाध्यक्ष नम्र होकर विनय को प्राप्त होवें ॥ ५ ॥

परीं घृणा चरति तित्विषे शवोऽपो वृत्वी रजसो बुध्नमाशयत् ।
वृत्रस्य यत् प्रवणे दुर्गृभिश्वनो निजघन्थ हन्वोरिन्द्र तन्यतुम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सूर्य के समान वर्त्तमान सभाध्यक्ष ! जैसे (तित्विषे) प्रकाश के लिये (यत्) जिस सूर्य का (शवः) बल वा (घृणा) दीप्ति (ईम्) जल को (परिचरति) सेवन करती है (दुर्गृभिश्वनः) दुःख से जिसका ग्रहण हो (वृत्रस्य) मेघ का (बुध्नम्) शरीर (रजसः) अन्तरिक्ष के मध्य में (आपः) जल को (वृत्वी) आवरण करके (अशयत्) सोता है उस के (हन्वोः) आगे पीछे के मुख के अववों में (तन्यतुम्) बिजली को छोड़कर उसे (प्रवणे) नीचे (निजघन्थ) मार कर गेर देता है वैसे वर्त्तमान होकर न्याय में प्रवृत्त हूजिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जो सूर्य वा मेघ के समान वर्त्तके विद्या और न्याय की वर्षा का प्रकाश करें ॥ ६ ॥

ह्रदं न हि त्वा न्यृषन्त्यूर्मयो ब्रह्माणीन्द्र तव यानि वर्धना ।
त्वष्टा चित्ते युज्यं वावृधे शवस्ततक्ष वज्रमभिभूत्योजसम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—(इन्द्र) बिजुली के समान वर्त्तमान (ते) आप के (वर्द्धना) बढ़ानेहारे (ब्रह्माणि) बड़े बड़े अन्न (ऊर्मयः) तरंग आदि (ह्रदम्) (न)

जैसे नदी जलस्थान को प्राप्त होती हैं वैसे (हि) निश्चय करके ज्योतियों को (न्यृषन्ति) प्राप्त होते हैं वह (त्वष्टा) मेघाऽवयव वा मूर्तिमान् द्रव्यों का छेदन करने वाले [(शवः) बल] (अभिभूत्योजसम्) ऐश्वर्थयुक्त पराक्रम तथा (युज्यम्) युक्त करने योग्य (वज्रम्) प्रकाशसमूह का प्रहार करके सब पदार्थों को (ततक्ष) छेदन करता है वैसे आप भी हूजिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे जल नीचे स्थानों को जाकर स्थिर वा स्वच्छ होता है वैसे ही राजपुरुष उत्तम उत्तम गुणयुक्त तथा विनय वाले पुरुष को प्राप्त होकर स्थिर और शुद्धि करने वाले होते हैं ॥ ७ ॥

जघन्वाँ उ हरिभिः संभृतक्रतविन्द्र वृत्रं मनुषे गातुयन्नपः ।

अयच्छथा बाह्वोर्वज्रमायसमधारयो दिव्या सूर्यं दृशे ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (संभृतक्रतो) क्रियाप्रज्ञाओं को धारण किये हुए (इन्द्र) मेघावयवों का छेदन करने वाले सूर्य्य के समान शत्रुओं को ताड़ने वाले सभापति ! आप जैसे सूर्य अपने किरणों से (वृत्रम्) मेघ को (जघन्वान्) गिराता हुआ (आपः) जलों को (मनुषे) मनुष्यों को (गातुयन्) पृथिवी पर प्राप्त करता हुआ प्रजा को धारण करता है वैसे ही प्रजा की रक्षा के लिये (बाह्वोः) बल तथा आकर्षणों के समान भुजाओं के मध्य (आयसम्) लोहे के (वज्रम्) किरण समूह के तुल्य शस्त्रों को (आधारयः) अच्छे प्रकार धारण कीजिये, वीरों को कराइये और सब मनुष्यों को सुख होने के लिये (दिवि) शुद्ध व्यवहार में (सूर्यम्) सूर्यमण्डल के समान न्याय और विद्या के प्रकाश को (दृशे) दिखाने के लिये (अयच्छथाः) सब प्रकार से प्रदान कीजिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्यलोक बल और आकर्षण गुणों से सब लोकों के धारण से जल को आकर्षण कर वर्षा से दिव्य सुखों को उत्पन्न करता है वैसे ही सभा सब गुणों को धर धनकार्य्य से सुपात्रों को सुमार्ग की प्रवृत्ति के लिये दान देकर प्रजा के लिये आनन्द को प्रकट करे ॥ ८ ॥

बृहत्स्वश्चन्द्रममवद्यदुक्थ्य१मकृण्वत भियसा रोहणं दिवः ।

यन्मानुषप्रधना इन्द्रमूतयः स्वर्नृषाचो मरुतोऽमदन्ननु ॥ ९ ॥

पदार्थ—जो (मानुषप्रधनाः) मनुष्यों को उत्तम धन प्राप्त करने तथा (नृषाचः) मनुष्यों को कर्म में संयुक्त करने वाले (मरुतः) प्राण आदि हैं वे (इन्द्रम्) बिजुली को प्राप्त होकर (यत्) जिस (बृहत्) बड़े (स्वश्चन्द्रम्) अपने आह्लादकारक प्रकाश से युक्त (अमवत्) उत्तम ज्ञान (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय

(स्वः) सुख को (अकृण्वत) संपादन करते हैं और (यत्) जो (भियसा) दुःख के भय से (दिवः) प्रकाशमान मोक्ष सुख का (रोहणम्) आरोहण (ऊतयः) रक्षा आदि होती हैं उन को करके (अन्वमदन्) उसके अनुकूल आनन्द करते हैं वे मनुष्य मुख्य सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ—विद्याधन राज्य पराक्रम वल वा पुरुषों की सहायता ये सब जिस धार्मिक विद्वान् मनुष्य को प्राप्त होते हैं उस को उत्तम सुख उत्पन्न करते हैं ॥ ९ ॥

द्यौश्चिदस्यामवाँ अहेः स्वनादयोयवीद्भियसा वज्र इन्द्र ते ।
वृत्रस्य यद्बद्बधानस्य रोदसी मदे सुतस्य शवसाभिनच्छिरः ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्य के हेतु सेनापति ! जो (अस्य) इस (ते) आप का और इस सूर्य्य का (द्यौः) प्रकाश (अहेः) (बद्बधानस्य) रोकने वाले मेघ के (सुतस्य) उत्पन्न हुए (वृत्रस्य) आवरणकारक जल के अवयवों को (अयोयवीत्) मिलाता वा पृथक् करता है (चित्) वैसे (अमवान्) बलकारी (वज्रः) वज्र के (स्वनात्) शब्दों से (भियसा) और भय से (शवसा) वल के साथ शत्रु लोग भागते हैं (रोदसी) आकाश और पृथिवी के समान (मदे) आनन्दकारी व्यवहार में वर्त्तमान शत्रु का (शिरः) शिर (अभिनत्) काटते हैं सो आप हम लोगों का पालन कीजिये ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य के किरण और बिजुली मेघ के साथ प्रवृत्त होती है वैसे ही सेनापति आदि के साथ सेना को होना चाहिये ॥ १० ॥

यदिन्न्विन्द्र पृथिवी दशभुजिरहानि विश्वा ततनन्त कृष्टयः ।
अत्राह ते मघवन् विश्रुतं सहो द्यामनु शवसा बर्हणा भुवत् ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (मघवन्) उत्कृष्ट धन और विद्या के ऐश्वर्य से युक्त (इन्द्र) सभा सेनाध्यक्ष ! आप (यत्) जो (दशभुजिः) दश इन्द्रियों से (पृथिवी) भूमि को भोगते हो (ते) आप के (बर्हणा) सब सुख प्राप्त कराने वा [(शवसा) (अह) बल से ही] (द्याम्) राज्य पालन (अनुविश्रुतम्) अनुकूल कीर्ति करने वाला यश (सहः) बल (भुवत्) होवे उस से युक्त होके आप प्रयत्न कीजिये जिससे (अत्र) इस राज्य में (कृष्टयः) मनुष्य लोग (विश्वा) सब (अहानि) दिनों को (इत्) ही सुख से (नु) जल्दी (ततनन्त) विस्तार करें ॥ ११ ॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिये कि जैसे अपने राज्य में सुखों की वृद्धि और अनेक प्रकार से गुणों की प्राप्ति हो वैसा अनुष्ठान करें ॥ ११ ॥

त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः ।
चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसोऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम् ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (**धृषन्मनः**) अनन्त प्रगल्भ विज्ञानयुक्त जगदीश्वर ! जो (**परिभूः**) सब प्रकार होने (**स्वभूत्योजाः**) अपने ऐश्वर्य वा पराक्रमयुक्त से (**त्वम्**) आप (**अवसे**) रक्षा आदि के लिये (**अस्य**) इस संसार के (**रजसः**) पृथिवी आदि लोकों तथा (**व्योमनः**) आकाश के (**पारे**) अपरभाग में भी (**एषि**) प्राप्त हैं और आप (**ओजसः**) पराक्रम आदि के (**प्रतिमानम्**) अवधि (**स्वः**) सुख (**दिवम्**) शुद्ध विज्ञान के प्रकाश (**भूमिम्**) भूमि और (**अपः**) जलों को (**आचकृषे**) अच्छे प्रकार किया है उन आपकी हम सब लोग उपासना करते हैं ॥ १२ ॥

भावार्थ—जैसे परमेश्वर सब से उत्तम सब से परे वर्त्तमान होकर सामर्थ्य से लोकों को रच के उन में सब प्रकार से व्याप्त हो धारण कर सब का व्यवस्था में युक्त करता हुआ जीवों के पाप पुण्य की व्यवस्था करने से न्यायाधीश होकर वर्त्तता है वैसे ही न्यायधीश भी सब भूमि के राज्य को संपादन करता हुआ सब के लिये सुखों को उत्पन्न करे ॥ १२ ॥

त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिर्भूः ।
विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वा सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वावान् ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! जो (**त्वम्**) आप (**पृथिव्याः**) विस्तृत आकाश और (**भुवः**) भूमि के (**प्रतिमानम्**) परिमाणकर्त्ता तथा (**बृहतः**) महाबलयुक्त (**ऋष्ववीरस्य**) बड़े गुणयुक्त जगत् का वा महावीर मनुष्य के (**पतिः**) पालन करने वाले (**भूः**) हैं तथा आप (**विश्वम्**) सब जगत् (**अन्तरिक्षम्**) अनेक लोकों के मध्य में अवकाशस्वरूप आकाश और (**सत्यम्**) कारणरूप से अविनाशी अच्छे प्रकार परीक्षा किये हुए चारों वेदों को (**महित्वा**) बड़ी व्याप्ति से व्याप्त होकर (**अद्धाप्राः**) साक्षात्कार पूरण करते हो इस से (**त्वावान्**) आपके सदृश (**अन्यः**) दूसरा (**नकिः**) विद्यमान कोई भी नहीं है ॥ १३ ॥

भावार्थ—जैसे परमेश्वर ही सब जगत् की रचना परिमाण व्यापक और सत्य का प्रकाश करने वाला है इससे ईश्वर के सदृश कोई भी पदार्थ न हुआ और न होगा ऐसा समझ के हम लोग उसी की उपासना करें ॥ १३ ॥

न यस्य॒ द्यावा॑पृथि॒वी अनु॒ व्यचो॒ न सिन्ध॑वो॒ रज॑सो॒ अन्त॑मान॒शुः ।
नोत स्ववृ॑ष्टिं॒ मदे॑ अस्य॒ युध्य॑त॒ एको॑ अ॒न्यच्च॑कृषे॒ विश्व॑मानु॒षक् ॥१४॥

पदार्थ—(यस्य) जिस (रजसः) ऐश्वर्ययुक्त जगदीश्वर की (अनुव्यचः) अनन्तव्याप्ति के अनुकूल वर्त्तमान (द्यावापृथिवी) प्रकाश अप्रकाशयुक्त लोक और चन्द्रमादि भी (अन्तम्) अन्त अर्थात् सीमा को (न) नहीं (आनशुः) प्राप्त होते हैं। हे परमात्मन् ! जैसे (स्ववृष्टिम्) अपनी पदार्थों की वर्षा के प्रति (मदे) आनन्द में (युध्यतः) युद्ध करते हुए मेघ का सूर्य के सामने विजय नहीं होता वैसे (एकः) सहाय रहित अद्वितीय जगदीश्वर (अन्यत्) अपने से भिन्न द्वितीय (विश्वम्) जगत् को (आनुषक्) अपनी व्याप्ति से युक्त किया है इससे आप उपासना के योग्य हैं॥ १४ ॥

भावार्थ—जैसे परमेश्वर के किसी गुण की कोई मनुष्य वा कोई लोक सीमा को ग्रहण नहीं कर सकता और जैसे जगदीश्वर पापयुक्त कर्म करने वाले मनुष्यों के लिये दुःखरूप फल देने से पीड़ा देता, विद्वान् दुष्टों को ताड़ना, और सूर्य मेघाऽवयवों को विदारण करता है युद्ध करने वाले मनुष्य के समान वर्त्तता है वैसे ही सब सज्जन मनुष्यों को वर्त्तना चाहिये ॥ १४ ॥

आर्च॒न्नत्र॑ म॒रुतः॒ सस्मि॑न्ना॒जौ विश्वे॑ दे॒वासो॑ अमद॒न्ननु॑ त्वा ।
वृ॒त्रस्य॒ यद्भृ॑ष्टि॒मता॑ व॒धेन॒ नि त्वमि॑न्द्र॒ प्रत्या॒नं ज॒घन्थ॑ ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त सभा सेना के स्वामी ! (यत्) जो (त्वम्) आप (भृष्टिमता) प्रशंसनीय नीति वाले न्याय व्यवहार से युक्त (वधेन) हनन से (वृत्रस्य) अधर्मी मनुष्य के समान (आनम्) प्राण को (जघन्थ) नष्ट करते हो उन (त्वा) आपको (सस्मिन्) सब (आजौ) संग्राम वा (अत्र) इस आप में श्रद्धा करने वाले (विश्वेदेवासः) सब विद्वान् और (मरुतः) ऋत्विज् लोग (न्यार्चन्) नित्य सत्कार करते हैं इससे वे प्रजा के प्राणी (प्रत्यन्वमदन्) सब को आनन्दित करके आप आनन्दित होते हैं॥ १५ ॥

भावार्थ—जो एक परमेश्वर की उपासना विद्या को ग्रहण और शत्रुओं को ताड़ [विजय को प्राप्त] कर प्रजा को निरन्तर आनन्दित करते हैं वही धार्मिक विद्वान् सुखी रहते हैं ॥ १५ ॥

इस सूक्त में विद्वान्, बिजुली आदि अग्नि और ईश्वर के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह बावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

———

आङ्गिरसः सव्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ३ निचृज्जगती । २ भुरिग्जगती । ४ जगती । ५ । ७ विराड्जगती च छन्दः । निषादः स्वरः । ६ । ८ । ९ त्रिष्टुप् । १० भुरिक् त्रिष्टुप् च छन्दः । धैवतः स्वरः । ११ सतः पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

जब सायणाचार्य्यादि वा मोक्षमूलरादिकों को छन्द और षड्जादि स्वरों का भी ज्ञान नहीं तो भाष्य करने की योग्यता तो कैसे होगी ॥

न्यू३षु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः ।

नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (**महे**) महासुखप्रापक (**सदने**) स्थान में (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य के लिये (**सु**) शुभ लक्षणयुक्त (**वाचम्**) वाणी को (**निभरामहे**) निश्चित धारण करते हैं स्वप्न में (**ससतामिव**) सोते हुए पुरुषों के समान (**विवस्वतः**) सूर्यप्रकाश में (**रत्नम्**) रमणीय सुवर्णादि के समान (**गिरः**) स्तुतियों को धारण करते हैं किन्तु (**द्रविणोदेषु**) सुवर्णादि वा विद्यादिकों के देने वाले हम लोगों में (**दुष्टुतिः**) दुष्ट स्तुति और पाप की कीर्ति अर्थात् निन्दा (**न प्रशस्यते**) श्रेष्ठ नहीं होती वैसे तुम भी होओ ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को जैसे निद्रा में स्थित हुए मनुष्य आराम को प्राप्त होते हैं वैसे सर्वदा विद्या उत्तम शिक्षाओं से संस्कार की हुई वाणी को स्वीकार प्रशंसनीय कर्म को सेवन और निन्दा को दूर कर स्तुति का प्रकाश होने के लिये अच्छे प्रकार प्रयत्न करना चाहिये ॥ १ ॥

दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः ।

शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि ॥२॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) विद्वान् ! जो (**अकामकर्शनः**) आलस्ययुक्त मनुष्यों को कृश (**शिक्षानरः**) शिक्षाओं को प्राप्त करने वा (**सखिभ्यः**) मित्रों के (**सखा**) मित्र (**पतिः**) पालन करने वा (**इनः**) ईश्वर के तुल्य सामर्थ्ययुक्त आप (**अश्वस्य**) व्याप्तिकारक अग्नि आदि वा तुरंग आदि के द्वारों को प्राप्त होके सुख देने वाली (**गोः**) वाणी वा दूध देने वाली गौ के (**दुरः**) सुख देने वाले द्वारों को जान (**यवस्य**) उत्तम यव आदि अन्न (**प्रदिवः**) उत्तम विज्ञान प्रकाश और (**वसुनः**) उत्तम धन देने वाले (**असि**) हैं (**तम्**) उस आपकी (**इदम्**) पूजा वा सत्कारपूर्वक (**गृणीमसि**) स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । परमेश्वर के तुल्य धार्मिक विद्वान् के बिना किसी के लिये सब पदार्थ वा सब सुखों का

देने वाला कोई नहीं है परन्तु जो निश्चय करके सब के मित्र शिक्षाओं को प्राप्त किये हुए आलस्य को छोड़कर उद्योग, ईश्वर की उपासना विद्या वा विद्वानों के संग को प्रीति से सेवन करने वाले मनुष्य हैं वे ही इन सब सुखों को प्राप्त होते हैं आलसी लनुष्य नही ॥ २ ॥

शचीव इन्द्र पुरुकृद्द्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु ।
अतः सङ्गृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः ॥३॥

पदार्थ—हे (शचीवः) प्रशंसनीय प्रज्ञा वाणी और कर्मयुक्त (द्युमत्तम) अतिशय करके सर्वज्ञता विद्याप्रकाशयुक्त (पुरुकृत्) बहुत सुखों के दाता (इन्द्र) परमैश्वर्य युक्त जगदीश्वर वा ऐश्वर्यप्रापक सभापति विद्वान् ! आप की कृपा वा आपके सहाय से मनुष्य (अभितः) सब ओर से (इदम्) इस (वसु) उत्तम धन को (चेकिते) जानता है । हे (अभिभूते) शत्रुओं के पराज्य करने वाले ! जिस कारण आप (त्वायतः) आप वा उसके आत्मा की इच्छा करते हुए (जरितुः) स्तुति करने वाले धार्मिक भक्तजन की (कामम्) इष्टसिद्धि को (आभरः) पूर्ण करें (अतः) इस पुरुषार्थ से आप को (संगृभ्य) ग्रहण करके मैं वर्त्तता हूँ और आप मुझे सब कामों से पूर्ण कीजिये आप की इच्छा करते हुए स्तुति करने वाले मेरी इष्टसिद्धि को (मोनयीः) कभी क्षीण मत कीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को निश्चय करके परमेश्वर वा विद्वान् मनुष्य के संग के विना कोई भी मनुष्य इष्टसिद्धि को पूरण करने वाला होने को योग्य नहीं है इससे इसी की उपासना वा विद्वान् मनुष्य का सत्संग करके इष्टसिद्धि को संपादन करना चाहिये ॥ ३ ॥

एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना ।
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ॥ ४ ॥

पदार्थ—हम लोग जो (अमतिम्) विज्ञान वा सुख से अविद्या दरिद्रता तथा सुन्दर रूप को (निरुन्धानः) निरोध वा ग्रहण करता हुआ (सुमनाः) उत्तम विज्ञानयुक्त सभाध्यक्ष है उस की प्राप्ति कर उसके सहाय वा (एभिः) इन (द्युभिः) प्रकाशयुक्त द्रव्य (एभिः) इन (इन्दुभिः) आह्लादकारक गुण वा पदार्थ इन (गोभिः) प्रशंसनीय गौ पृथिवी (अश्विना) अग्नि जल सूर्य्य चन्द्र आदि (इषा) इच्छा का अन्नादि [(इन्दुभिः) बलकारक सोमरसादि पेयों] (इन्द्रेण) बिजुली और उसके रचे हुए विदारण करने वाले शस्त्र से (दस्युम्) बल से दूसरे के धन को लेने वाले दुष्ट को (दरयन्तः) विदारण करते हुए

(युतद्वेषसः) द्वेष से अलग होने वाले शत्रुओं के साथ युद्ध को सुख से (समारभेमहि) आरम्भ करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो सभाध्यक्ष सब विद्यार्थों की शिक्षा कर हम लोगों को सुखी करता है उस का सब मनुष्यों को सेवन करना चाहिये, इसके सहाय के बिना कोई भी मनुष्य व्यावहारिक और परमार्थविषयक आनन्द को प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकता, इस से इस के सहाय से सब धर्मयुक्त कार्यों का आरम्भ वा सुख का सेवन करना चाहिये ॥ ४ ॥

समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः ।

सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गो अग्रयाऽश्वावत्या रभेमहि ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सभाध्यक्ष ! जैसे हम लोग आपके सहाय से (सम्राया) उत्तम राज्यलक्ष्मी (समिषा) धर्म की इच्छा वा अन्नादि (अभिद्युभिः) विद्या व्यवहार और प्रकाशयुक्त (पुरुश्चन्द्रैः) बहुत अह्लादकारक सुवर्ण और उत्तम चांदी आदि धातु (संवाजेभिः) विज्ञानादि गुण वा संग्राम तथा (प्रमत्या) उत्तम मतियुक्त (देव्या) दिव्य गुण सहित विद्या से युक्त सेना से (गोअग्रया) श्रेष्ठ इन्द्रिय गो और पृथिवी से युक्त (वीरशुष्मया) शूरवीर योद्धाओं के बल से युक्त अश्ववत्या प्रशंसनीय वेग बल युक्त घोड़े वाली सेना के साथ वर्त्तमान होके शत्रुओं के साथ (संरभेमहि) अच्छे प्रकार संग्राम को करें इस सब कार्य्य को करके लौकिक और पारमार्थिक सुखों को (रभेमहि) सिद्ध करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—कोई भी मनुष्य विद्वान् की सहायता के बिना अच्छे प्रकार पुरुषार्थ की सिद्धि को प्राप्त नहीं हो सकता और निश्चय करके बल आरोग्य पूर्ण सामग्री और उत्तम शिक्षा से युक्त धार्मिक शूरवीर युक्त चतुरङ्गिणी अर्थात् चौतर्फी अङ्ग से युक्त सेना के विना शत्रुओं का पराजय वा विजय के प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकता इससे मनुष्यों को इन कार्यों की उन्नति करनी चाहिये ॥ ५ ॥

ते त्वा मदा अमदन्तानि वृष्ण्या ते सोमासो वृत्रहत्येषु सत्पते ।

यत्कारवे दश वृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते नि सहस्राणि बर्हयः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (सत्पते) सत्पुरुषों के पालन करने वाले सभाध्यक्ष ! (यत्) जो आप (बर्हिष्मते) विज्ञानयुक्त (कारवे) कर्म करने वाले मनुष्य के लिये (वृत्राणि) शत्रुओं को रोकने हारे कर्म (दश) दश (सहस्राणि) हजार अर्थात् असंख्यात सेनाओं के (अप्रति) अप्रतीति जैसे हो वैसे प्रतिकूल कर्मों को (निबर्हयः) निरन्तर बढ़ाइये उस आप के आश्रित होकर (ते) वे (सोमासः) उत्तम उत्तम

पदार्थों को उत्पन्न करने (मदाः) आनन्दित करने वाले शूरवीर धार्मिक विद्वान् लोग (त्वा) आप को (वृत्रहत्येषु) शत्रुओं के मारने योग्य संग्रामों में (तानि) उन (वृष्ण्या) सुख वर्षाने वाले उत्तम उत्तम कर्मों को आचरण करते हुए (अमदन्) प्रसन्न होते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिये कि सत्पुरुषों के संग से अनेक साधनों को प्राप्त कर आनन्द भोगें ॥ ६ ॥

युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा ।
नम्या यदिन्द्र सख्यां परावति निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सभा सेनाध्यक्ष ! (यत्) जिस कारण तुम (धृष्णुया) दृढ़ता आदि गुणयुक्त (सख्या) मित्र समूह (युधा) युद्ध करने वाले (ओजसा) बल के साथ (पुरा) पहिले (इदम्) इस (पुरम्) शत्रुओं के नगर को (हंसि) नष्ट करते तथा (युधम्) युद्ध करते हुए शत्रु को (इत्) भी (घ) निश्चय करके (एषि) प्राप्त करते और (नम्या) जैसे रात्रि अन्धकार से सब पदार्थों का आवरण करती है वैसे अन्याय से अन्धकार करने वाले (नाम) प्रसिद्ध (नमुचिम्) छुट्टी से रहित (मायिनम्) छल कपटयुक्त दुष्ट कर्म करने वाले मनुष्य वा पश्वादि को (परावति) दूर देश में (निबर्हयः) निःसारण करते हो इससे आप को मुर्द्धाभिषिक्त करके हम लोग सभाध्यक्ष के अधिकार में स्वीकार करके राजपदवी से मान्य करते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि बहुत उत्तम उत्तम मित्रों को प्राप्त दुष्ट शत्रुओं का निवारण, दुष्ट दल वा शत्रुओं के पुरों को विदारण, सब अन्यायकारी मनुष्यों को निरन्तर कैद घर में बांध, ताड़ना दे और धर्मयुक्त चक्रवर्त्ति राज्य को पालन करके उत्तम ऐश्वर्य को सिद्ध करें ॥ ७ ॥

त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्त्तनी ।
त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत् पुरोऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे सभाध्यक्ष ! जिस कारण (त्वम्) आप इस युद्ध व्यवहार में (तेजिष्ठया) अत्यन्त तीक्ष्ण सेना वा नीतियुक्त बल से (करञ्जम्) धार्मिकों को दुःख देने (पर्णयम्) दूसरे के वस्तु को लेने वाले चोर को (उत) भी (वधीः) मारते और जो (अतिथिग्वस्य) अतिथियों के जाने आने के वास्ते (वर्त्तनी) सत्कार करने वाली क्रिया है उस की रक्षा कर (अनानुदः) अनुकूल न वर्त्तने (वङ्गृदस्य) जहर आदि पदार्थों को देने वा दुष्ट व्यवहारों का उपदेश करने वाले दुष्ट मनुष्य के

(शता) असंख्यात (पुरः) नगरों को (अभिनत्) भेदन करते और जो (परिसृताः) सब प्रकार से उत्पन्न किये हुए पदार्थ हैं उन की (ऋजिश्वना) कोमल गुणयुक्त कुत्तों की शिक्षा करने वाले के समान व्यवहार के साथ रक्षा करते हो इससे आप ही सभा आदि के अध्यक्ष होने योग्य हो ऐसा हम लोग निश्चय करते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—राजमनुष्यों को दुष्ट शत्रुओं को छेदन से पूर्ण विद्यायुक्त परोपकारी धार्मिक अतिथियों के सत्कार के लिये सब प्राणी वा सब पदार्थों की रक्षा करके धर्मयुक्त राज्य का सेवन करना चाहिये, जैसे कि कुत्ते अपने स्वामी की रक्षा करते हैं वैसो अन्य जन्तु रक्षा नहीं कर सकते इससे इन कुत्तों को सिखा कर और इन की रक्षा करनी चाहिये ॥ ८ ॥

त्वमेताञ्जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः ।

षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे सभा और सेना के अध्यक्ष ! जैसे (श्रुतः) श्रवण करने वाले (त्वम्) तुम (एतान्) इन (अबन्धुना) अबन्धु अर्थात् मित्र रहित अनाथ वा (सुश्रवसा) उत्तम श्रवण अन्नयुक्त मित्र के साथ वर्त्तमान (उपजग्मुषः) समीप होने वाले (षष्ठिम्) साठ (नवतिम्) नव्वे (नव) नौ (दश) (सहस्राणि) दस हजार (जनराज्ञः) धार्मिक राजायुक्त मनुष्यादिकों को (दुष्पदा) दुःख से प्राप्त होने योग्य (रथ्या) रथ को प्राप्त करने वाले (चक्रेण) शस्त्र विशेष वा चक्रादि अङ्गयुक्त यान समूह से (द्विः) दो बार (न्यवृणक्) नित्य दुःखों से अलग करते वा दुष्टों को दूर करते हो वैसे तू भी पापाचरण से सदा दूर रह ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । चक्रवर्त्ति राजा को मांडलिक वा महामांडलिक राजा भृत्य गृहस्थ वा बिरक्तों को प्रसन्न और शरणागत आये हुए मनुष्य की रक्षा कर के धर्मयुक्त सार्वभौम राज्य का यथावत् पालन करना चाहिये । और दश से आदि ले के सब संख्या-वाची शब्द उपलक्षण के लिये हैं इससे राजपुरुषों को योग्य है कि सब की यथावत् रक्षा वा दुष्टों को दण्ड देवे ॥ ९ ॥

त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्रतूर्वयाणम् ।

त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनायः ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सभासेनाध्यक्ष ! (त्वम्) आप (अस्मै) इस (महे) महा उत्तम उत्तम गुणयुक्त (यूने) युवावस्था में वर्त्तमान (राज्ञे) न्याय विनय और विद्यादि गुणों से देदीप्यमान राजा के लिये (तव) आप के

(ऊतिभिः) रक्षण आदि कर्मों से सेनादि सहित और (तव) वर्त्तमान आप के (त्रामभिः) रक्षा करने वाले धार्मिक विद्वानों से रक्षा किये हुए जिस (अतिथिग्वम्) अथितियों को प्राप्त करने कराने (तूर्वयाणम्) शत्रु वलों के हिंसा करने वाले यान सहित (आयुम्) जीवन युक्त (सुश्रवसम्) उत्तम श्रवण वा अन्नादि युक्त मनुष्यों को (अरंधनायः) पूर्ण धन वाले मनुष्य के समान आचार करते और (त्वम्) आप जिस (कुत्सम्) वज्र के समान वीर पुरुष की (आविथ) रक्षा करते हो उसको कुछ भी दुःख नहीं होता ॥ १० ॥

भावार्थ—राजपुरुषों को योग्य है कि शत्रुओं को निवारण कर सब की रक्षा करके सर्वथा उन को सुखयुक्त करें तथा ये निश्चय करके राजोन्नतिरूप लक्ष्मी से सदा युक्त रहें और विद्याशाला अध्यक्ष उत्तम शिक्षा से सब शस्त्रास्त्र विद्या में कुशल, निपुण विद्वानों को सम्पन्न करके इन से प्रजा की निरन्तर रक्षा करें ॥ १० ॥

य उदृचीन्द्र देवगोपाः सखायस्ते शिवतमा असाम ।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सभासेनाध्यक्ष ! (ते) आप के (देवगोपाः) रक्षक विद्वान्वा दिव्य गुण कर्मों की रक्षा करने (शिवतमाः) अतिशय करके कल्याण लक्षणयुक्त (सखायः) परस्पर मित्र हम लोग (असाम) होवें (त्वया) आपके साथ रक्षा वा शिक्षा किये (सुवीराः) उत्तम वीरयुक्त (प्रतरम्) दुःख दूर करते (द्राघीयः) अत्यन्त विस्तारयुक्त सौ वर्ष से अधिक (आयुः) उमर को (दधानाः) धारण करके (उदृचि) उत्तम ऋचायुक्त अध्ययन व्यवहार में (त्वाम्) शुभ लक्षणयुक्त आप के (स्तोषाम) गुणों का कीर्त्तन करें ॥ ११ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को परस्पर निश्चित मैत्री, सब स्त्री पुरुषों को उत्तम विद्यायुक्त जितेन्द्रियपन आदि गुणों को ग्रहण कर और कराके पूर्ण आयु का भोग करना चाहिये ॥ ११ ॥

इस सूक्त में विद्वान् सभाध्यक्ष तथा प्रजा के पुरुषों को परस्पर प्रीति से वर्त्तमान रहकर सुख को प्राप्त करना कहा है; इससे इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह तिरेपनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

——

आङ्गिरसः सव्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ४ । १० विराड्जगती । २ । ३ । ५ । निचृज्जगती । ७ जगती च छन्दः निषादः स्वरः ६ । विराट्त्रिष्टुप् । ८ । ९ । ११ निचृत् त्रिष्टुप् च छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मा नो अस्मिन्मघवन् पृत्स्वंहसि नहि ते अन्तः शवसः परीणशे ।
अक्रन्दयो नद्यो३रोरुवद्वना कथा न क्षोणीर्भियसा समारत ॥ १ ॥

पदार्थ—हे(मघवन्) उत्तम धनयुक्त जगदीश्वर ! जो आप (पृत्सु) सेनाओं (अस्मिन्) इस जगत् और (परीणशे) सब प्रकार से नष्ट करने वाले (अंहसि) पाप में हम लोगों को (माक्रन्दयः) मत फँसाइये जिस (ते) आपके (शवसः) बल के (अन्तः) अन्त को कोई भी (नहि) नहीं पा सकता वह आप (नद्यः) नदियों के समान हम को मत भ्रमाइये (भियसा) भय से (मारोरुवत्) बार बार मत रुलाइये जो आप (क्षोणीः) बहुत गुणयुक्त पृथिवी के निर्माण वा धारण करने को समर्थ हैं इसलिये मनुष्य आप को (कथा) क्यों (न) नहीं (समारत) प्राप्त होवें ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जो परमेश्वर अनन्त होने से सत्य प्रेम के साथ उस की उपासना किया हुआ दुःख उत्पन्न करने वाले अधर्म मार्ग से निवृत्त कर मनुष्यों को सुखी करता है, उसके अनन्त स्वरूप गुण होने से कोई भी अन्त को ग्रहण नहीं कर सकता। इस से उस ईश्वर की उपासना को छोड़ के कौन अभागी पुरुष दूसरे की उपासना करे ॥ १ ॥

अर्चा शक्राय शाकिने शचीवते शृण्वन्तमिन्द्रं महयन्नभिष्टुहि ।
यो धृष्णुना शवसा रोदसी उभे वृषा वृषत्वा वृषभो न्यृञ्जते ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जैसे (वृषा) जल वर्षाने और (वृषभः) वर्षा के निमित्त बादलों को प्रसिद्ध कराने हारा सूर्य्य (वृषत्वा) सुखों की वर्षा के तरव और (धृष्णुना) दृढ़ता आदि गुणयुक्त (शवसा) आकर्षण बल से (उभे) दोनों (रोदसी) द्यावा पृथिवी को (न्यृञ्जते) निरन्तर प्रसिद्ध करता है वैसे (यः) जो तू राज्य का यथायोग्य प्रबन्ध करता है उस (शाकिने) प्रशंसनीय शक्ति आदि गुणयुक्त (शचीवते) प्रशंसनीय बुद्धिमान् (शक्राय) समर्थ के लिये (अर्च) सत्कार कर उस सब के न्याय को (शृण्वन्तम्) श्रवण करने वाले (इन्द्रम्) प्रशंसनीय ऐश्वर्ययुक्त सभाध्यक्ष का (महयन्) सत्कार करता हुआ (अभिष्टुहि) गुणों की प्रशंसा किया कर ॥ २ ॥

भावार्थ—जो गुणों की अधिकता होने से सार्वभौम सभाध्यक्ष धर्म

से सब को शिक्षा देकर धर्म के नियमों में स्थापन करता है उसी का सब मनुष्यों को सेवन वा आश्रय करना चाहिये ॥ २ ॥

अर्चा दिवे बृहते शूष्यं१वचः स्वक्षत्रं यस्य धृषतो धृषन्मनः ।
बृहच्छ्रवा असुरो बर्हणा कृतः पुरो हरिभ्यां वृषभो रथो हि षः ॥३॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्य ! तू (यस्य) जिस (धृषतः) अधार्मिक दुष्टों को कर्मों के अनुसार फल प्राप्त करने वाले सभाध्यक्ष का (धृषत्) दृढ़ कर्म करने वाला (मनः) क्रियासाधक विज्ञान (हि) निश्चय करके है जो (बृहच्छ्रवाः) महाश्रवणयुक्त (असुरः) जैसे प्रज्ञा देने वाले (पुरः) पूर्व (हरिभ्याम्) हरण आहरण करने वा अग्नि जल वा घोड़े से युक्त मेघ (दिवे) सूर्य के अर्थ वर्त्तता है वैसे (वृषभः) पूर्वोक्त वर्षाने वालों के प्रकाश करने वाले (रथः) यान समूह को (बर्हणा) वृद्धि से (कृतः) निर्मित किया है उस (बृहते) विद्यादि गुणों से वृद्ध (दिवे) शुभ गुणों के प्रकाश करने वाले के लिये (स्वक्षत्रम्) अपने राज्य बढ़ा और (शूष्यम्) बल तथा निपुणतायुक्त (वचः) विद्या शिक्षा प्राप्त करने वाले वचन का (अर्च) पूजन अर्थात् उनके सहाय युक्त शिक्षा कर ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को अपना राज्य ईश्वर इष्ट वाले सभाध्यक्ष के शिक्षा किये हुए को संपादन कर एक मनुष्य राज के प्रशासन से अलग राज्य को संपादन करना चाहिये जिससे कभी दुःख, अन्याय, आलस्य, अज्ञान और शत्रुओं के परस्पर विरोध से प्रजा पीड़ित न होवे ॥ ३ ॥

त्वं दिवो बृहतः सानु कोपयोऽव त्मना धृषता शम्बरं भिनत् ।
यन्मायिनो व्रन्दिनो मन्दिना धृषच्छितां गभस्तिमशनिं पृतन्यसि ॥४॥

पदार्थ—हे सभाध्यक्ष ! जो (धृषत्) शत्रुओं का धर्षण करता (त्वम्) आप जैसे सूर्य्य (बृहतः) महा सत्य शुभ गुणयुक्त (दिवः) प्रकाश से (सानु) सवने योग्य मेघ के शिखरों पर (शिताम्) अतितीक्ष्ण (अशनिम्) छेदन भेदन करने से वज्रस्वरूप बिजुली और (गभस्तिम्) वज्ररूप किरणों का प्रहार कर (शम्बरम्) मेघ को (भिनत्) काट के भूमि में गिरा देता है वैसे शस्त्र और अस्त्रों को चला के अपने (त्मना) आत्मा से दुष्ट मनुष्यों को (अवकोपयः) कोप कराते (व्रन्दिनः) निंदित मनुष्यादि समूहों वाले (मायिनः) कपटादि दोषयुक्त शत्रुओं को विदीर्ण करते और उनके निवारण के लिये (पृतन्यसि) अपने न्यायादि गुणों की प्रकाश करने वाली विद्या वा वीर पुरुषों से युक्त सेना की इच्छा करते हो सो आप राज्य के योग्य होते हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे जगदीश्वर

पापकर्म करने वाले मनुष्यों के लिये अपने अपने पाप के अनुसार दुःख के फलों को देकर यथा योग्य पीड़ा देता है इसी प्रकार सभाध्यक्ष को चाहिये कि शस्त्रों और अस्त्रों की शिक्षा से युक्त धार्मिक शूर वीर पुरुषों की सेना को सिद्ध और दुष्ट कर्म करने वाले मनुष्यों का निवारण करके धर्मयुक्त प्रजा का निरन्तर पालन करे ॥ ४ ॥

नि यद्वृणक्षि श्वसनस्य मूर्द्धनि शुष्णस्य चिद् व्रन्दिनो रोरुवद्वना ।
प्राचीनेन मनसा बर्हणावता यदद्या चित्कृणवः कस्त्वा परि ॥५॥

पदार्थ—हे सभाध्यक्ष विद्वान् ! (**यत्**) जो आप जैसे सविता (**वना**) रश्मियुक्त मेघ का निवारण करता है वैसे (**प्राचीनेन**) सनातन (**बर्हणावता**) अनेक प्रकार वृद्धियुक्त (**मनसा**) विज्ञान से (**श्वसनस्य**) प्राणवद्बलवान् (**शुष्णस्य**) शोषणकर्ता के (**मूर्द्धनि**) उत्तम अङ्ग में प्रहार के (**चित्**) समान (**व्रन्दिनः**) निन्दित कर्म करने वाले दुष्ट मनुष्यों को (**रोरुवत्**) रोदन कराते हुए (**यत्**) जिस कारण (**अद्य**) आज (**निवृणक्षि**) निरन्तर उन दुष्टों को अलग करते हो इससे (**चित्**) भी (**त्वा**) आपके (**कृणवः**) मारने को (**कः**) कोई भी समर्थ (**परि**) नहीं हो सकता ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे परमेश्वर अपने अनादि विज्ञानयुक्त न्याय से सब को शिक्षा देता और सूर्य मेघ को काट काट कर गिराता है वैसे ही सभापति आदि धर्म से सब को शिक्षा देवें और शत्रुओं को नष्टभ्रष्ट करें ॥ ५ ॥

त्वमाविथ नर्यं तुर्वशं यदुं त्वं तुर्वीतिं वय्यं शतक्रतो ।
त्वं रथमेतशं कृत्व्ये धने त्वं पुरो नवतिं दम्भयो नव ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (**शतक्रतो**) बहुत बुद्धियुक्त विद्वन् सभाध्यक्ष ! जिस कारण (**त्वम्**) आप (**नर्य्यम्**) मनुष्यों में कुशल (**तुर्वशम्**) उत्तम (**यदुम्**) यत्न करने वाले मनुष्य की रक्षा (**त्वम्**) आप (**तुर्वीतिम्**) दोष वा दुष्ट प्राणियों को नष्ट करने वाले (**वय्यम्**) ज्ञानवान् मनुष्य की रक्षा और (**त्वम्**) आप (**कृत्व्ये**) सिद्ध करने योग्य (**धने**) विद्या चक्रवर्त्ति राज्य से सिद्ध हुए द्रव्य के विषय (**एतशम्**) वेगादि गुण वाले अश्वादि से युक्त (**रथम्**) सुन्दर रथ की (**आविथ**) रक्षा करते और (**त्वम्**) आप दुष्टों से (**नव**) नौ संख्यायुक्त (**नवतिम्**) नव्वे अर्थात् निन्नाणवे (**पुरः**) नगरों को (**दम्भयः**) नष्ट करते हो इस कारण इस राज्य में आप ही का आश्रय हम लोगों को करना चाहिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जो राज्य की रक्षा करने में समर्थ न होवे उस को राजा कभी न बनावें ॥ ६ ॥

स घा राजा सत्पतिः शूशुवज्जनो रातहव्यः प्रति यः शासमिन्वति ।
उक्था वा यो अभिगृणाति राधसा दानुरस्मा उपरा पिन्वते दिवः ॥७॥

पदार्थ—(**यः**) जो (**रातहव्यः**) हव्य पदार्थों को देने (**सत्पतिः**) सत्पुरुषों का पालन करने (**जनः**) उत्तम गुण और कर्मों से सहित वर्त्तमान (**राजा**) न्याय विनयादि गुणों से प्रकाशमान सभाध्यक्ष (**प्रतिशासम्**) शास्त्र शास्त्र के प्रति प्रजा को (**इन्वति**) न्याय में व्याप्त करता (**वा**) अथवा (**शूशुवत्**) राज्य करने को जानता है और जो (**राधसा**) न्याय करके प्राप्त हुए धन से (**दानुः**) दानशील हुआ (**उक्था**) कहने योग्य वेदस्तोत्र वा बचनों को (**अभिगृणाति**) सब मनुष्यों के लिये उपदेश करता है (**अस्मै**) इस सभाध्यक्ष के लिये (**दिवः**) (**उपरा**) जैसे सूर्य के प्रकाश से मेघ उत्पन्न होकर भूमि को (**पिन्वते**) सींचता है वसे सब सुखों को (**पिन्वते**) सेवन करे (**सः**) वही राज्य कर सकता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । कोई भी मनुष्य उत्तम विद्या, विनय, न्याय और वीर पुरुषों की सेना के ग्रहण वा अनुष्ठान के विना राज्य के लिये शिक्षा करने, शत्रुओं के जीतने और सब सुखों को प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकता, इसलिये सभाध्यक्ष को अवश्य इन वातों का अनुष्ठान करना चाहिये ॥ ७ ॥

असमं क्षत्रमसमा मनीषा प्र सोमपा अपसा सन्तु नेमे ।
ये त इन्द्र ददुषो वर्धयन्ति महि क्षत्रं स्थविरं वृष्ण्यं च ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) सभाध्यक्ष ! जो (**ददुषः**) दान करते हुए (**ते**) आप का (**असमम्**) समता रहित कर्म वा सादृश्य रहित (**क्षत्रम्**) राज्य तथा (**असमा**) समता वा उपमा रहित (**मनीषा**) बुद्धि होवे तो (**ये**) जो (**नेमे**) सब (**सोमपाः**) सोम आदि ओषधीरसों के पीने वाले धार्मिक विद्वान् पुरुष (**अपसा**) कर्म से (**स्थविरम्**) वृद्ध (**वृष्ण्यम्**) शत्रुओं के बलनाशक सुख वर्षाने वाले के लिये कल्याणकारक (**महि**) महागुणयुक्त (**क्षत्रम्**) राज्य को (**प्रवर्धयन्ति**) बढ़ाते हैं वे सव आप की सभा में वैठने योग्य सभासद् (**च**) और भृत्य (**सन्तु**) होवें ॥ ८ ॥

भावार्थ—राजपुरुषों को प्रजा से और प्रजा में रहने वाले पुरुषों को राजपुरुषों से विरोध कभी न करना चाहिये किन्तु परस्पर प्रीति वा उपकार

बुद्धि के साथ सब राज्य को सुखों से बढ़ाना चाहिये क्योंकि इस प्रकार किये बिना राज्य पालन की व्यवस्था निश्चय नहीं हो सकती ॥ ८ ॥

तुभ्येदेते बहुला अद्रिदुग्धाश्चमूषदश्चमसा इन्द्रपानाः ।
व्यश्नुहि तर्पया काममेषामथा मनो वसुदेयाय कृष्व ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) सभाध्यक्ष ! जैसे (**एते**) ये (**बहुलाः**) बहुत सुख वा कर्मों को देने वाले (**इन्द्रपानाः**) परमैश्वर्य के हेतु सूर्य्य को प्राप्त होने हारे (**चमसाः**) मेघ सब कामों को पूर्ण करते हैं वैसे (**अद्रिदुग्धाः**) मेघ वा पर्वतों से प्राप्तविद्या (**चमूषदः**) सेनाओं में स्थित शूरवीर पुरुष (**तुभ्यम्**) आप को तृप्त करें तथा आप इन को (**वसुदेयाय**) सुन्दर धन देने के लिये (**मनः**) मन (**कृष्व**) कीजिये और आप इनको (**तर्पय**) तृप्त वा (**एषाम्**) इन की (**कामान्**) कामना पूर्ण कीजिये (**अथ**) इस के अनन्तर (**इत्**) ही सब कामनाओं को (**व्यश्नुहि**) प्राप्त हूजिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—सभा आदि के अध्यक्ष उत्तम शिक्षा वा पालन से उत्पादन किये हुए शूरवीरों और प्रजा की निरन्तर पालना करके इन के लिये सब सुखों को देवें और वे प्रजा के पुरुष भी सभाध्यक्षादिकों को निरन्तर सन्तुष्ट रक्खें जिससे सब कामना पूर्ण होवें ॥ ९ ॥

अपामतिष्ठद् धरुणह्वरन्तमोऽन्तर्वृत्रस्य जठरेषु पर्वतः ।
अभीमिन्द्रो नद्यो वव्रिणा हिता विश्वा अनुष्ठाः प्रवणेषु जिघ्नते ॥१०॥

पदार्थ—हे सभेश ! (**इन्द्रः**) परम ऐश्वर्य देनेहारे आप जैसे सूर्य्य (**वृत्रस्य**) मेघ सम्बन्धी (**अपाम्**) जलों के (**अन्तः**) मध्यस्थ (**जठरेषु**) जहाँ से वर्षा होती है उनमें (**धरुणह्वरम्**) धारण करने वाला कुटिल कर्मों का हेतु (**तमः**) अन्धकार (**अतिष्ठत्**) स्थित है उसका निवारण कर (**वव्रिणा**) रूप से सह वर्त्तमान जो (**पर्वतः**) पक्षीवत् आकाश में उड़ने हारा मेघ (**ईम्**) जल को (**अभि**) सम्मुख गिराता है जिससे (**प्रवणेषु**) नीचे स्थानों में (**अनुष्ठाः**) अनुकूलता से बहने हारी (**विश्वा**) सब (**हिताः**) प्रतिक्षण चलने वाली (**नद्यः**) नदियां (**जिघ्नते**) समुद्र पर्यन्त चली जाती हैं वैसे आप हूजिये ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य जिस जल को आकर्षण कर अन्तरिक्ष में पहुंचाता और उस को वायु धारण करता है जब वह जल मिल तथा पर्वताकार होकर सूर्य के प्रकाश को आवरण करता है उस को बिजुली छेदन करके भूमि में गिरा देती है उससे उत्पन्न हुई नानारूपयुक्त नीचे चलने वाली चलती हुई नदियां पृथिवी, पर्वत और वृक्षादिकों

को छिन्न भिन्न कर फिर वह जल समुद्र वा अन्तरिक्ष को प्राप्त होकर बार बार इसी प्रकार वर्षता है वैसे सभाध्यक्षादिकों को होना चाहिये ॥ १० ॥

स शेवृधमधि धा द्युम्नमस्मे महि क्षत्रं जनाषाडिन्द्र तव्यम् ।
रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीन्राये च नः स्वपत्या इषे धाः ॥११॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य्य संपादक सभाध्यक्ष ! जो (जनाषाट्) जनों को सहन करने हारे आप (अस्मे) हम लोगों के लिये (शेवृधम्) सुख (तव्यम्) बलयुक्त (महि) महासुखदायक पूजनीय (क्षत्रम्) राज्य को (अधि) (धा) अच्छे प्रकार सर्वोपरि धारण कर (मघोनः) प्रशंसनीय धन वा (नः) हम लोगों की (रक्ष) रक्षा (च) और (सूरीन्) बुद्धिमान् विद्वानों की (पाहि) रक्षा कीजिये (च) और (नः) हम लोगों के (राये) धन (च) और (स्वपत्यै) उत्तम अपत्ययुक्त (इषे) इष्टरूप राजलक्ष्मी के लिये (द्युम्नम्) कीर्तिकारक धन को (धाः) धारण करते हो (सः) वह आप हम लोगों से सत्कार योग्य क्यों न होवें ? ॥ ११ ॥

भावार्थ—सभाध्यक्ष को योग्य है कि सब प्रजा की अच्छे प्रकार रक्षा और शिक्षा से युक्त विद्वान् करके चक्रवर्त्ती राज्य वा धन की उन्नति करे ॥ ११ ॥

इस सूक्त में सूर्य्य, बिजुली, सभाध्यक्ष, शूरवीर और राज्य की पालना आदि का विधान किया है इससे इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ।

यह चौअनवां सूक्त समाप्त हुआ ।

आङ्गिरसः सव्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ४ जगती । २ । ५—७ निचृज्जगती । ३ । ८ विराड्जगती च छन्दः । निषादः स्वरः ॥

दिवश्चिदस्य वरिमा वि पप्रथ इन्द्रं न मह्ना पृथिवी चन प्रति ।
भीमस्तुविष्मान् चर्षणिभ्य आतपः शिशीते वज्रं तेजसे न वंसगः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (अस्य) इस सविता के (दिवः) प्रकाश से (वरिमा) उत्तमता का भाव (मह्ना) बड़ाई से (विपप्रथे) विशेष करके प्रसिद्ध करता है (पृथिवी) जिसके बराबर भूमि (चन) भी तुल्य (न) नहीं और न (आतपः) सब प्रकार प्रतापयुक्त (वंसगः) बलवान् विभाग कर्त्ता के समान (पृथिवी) भूमि के (प्रति) मध्य में (तेजसे) प्रकाशार्थ (वज्रम्) किरणों

को (शिशीते) अति शीतल उदक में प्रक्षेप करता है वैसे जो दुष्टों के लिये भयंकर धर्मात्माओं के वास्ते सुखदाता हो के प्रजाओं का पालन करे वह सब से सत्कार के योग्य है, अन्य नहीं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य मण्डल सब लोकों से उत्कृष्ट गुणयुक्त और बड़ा है और जैसे बैल गोसमूहों में उत्तम और महा बलवान् होता है वैसे ही उत्कृष्ट गुणयुक्त सब से बड़े मनुष्य को सब मनुष्यों को सभा आदि का पति करना चाहिये और वे सभाध्यक्षादि दुष्टों को भय देने और धार्मिकों के लिये आप भी धर्मात्मा हो के सुख देने वाले सदा होवें ॥ १ ॥

सो अर्णवो न नद्यः समुद्रियः प्रति गृभ्णाति विश्रिता वरीमभिः ।
इन्द्रः सोमस्य पीतये वृषायते सनात्स युध्म ओजसा पनस्यते ॥ २ ॥

पदार्थ—जो (इन्द्रः) सभाध्यक्ष सूर्य के समान (सोमस्य) वैद्यक विद्या से सम्पादित वा स्वभाव से उत्पन्न हुए रस के (पीतये) पीने के लिये (वृषायते) बैल के समान आचरण करता है (सः) वह (युध्मः) युद्ध करने वाला पुरुष (न) जैसे (विश्रिताः) नाना प्रकार के देशों का सेवन करने हारी (नद्यः) नदियाँ (अर्णवः) समुद्र को प्राप्त होके स्थिर होतीं और जैसे (समुद्रियः) सागरों में चलने योग्य नौकादि यान समूह पार पहुँचाता है जैसे (सनात्) निरन्तर (ओजसा) बल से (वरीमभिः) धर्म वा शिल्पी क्रिया से (पनस्यते) व्यवहार करने वाले के समान आचरण और पृथिवी आदि के राज्य को (प्रतिगृभ्णाति) ग्रहण कर सकता है वह राज्य करने और सत्कार के योग्य है उस को सब मनुष्य स्वीकार करें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे समुद्र नाना प्रकार के रत्न और नाना प्रकार की नदियों की अपनी महिमा से अपने में रक्षा करता है वैसे ही सभाध्यक्ष आदि भी अनेक प्रकार के पदार्थ और अनेक प्रकार की सेनाओं को स्वीकार कर दुष्टों को जीत और श्रेष्ठों की रक्षा करके अपनी महिमा फैलावें ॥ २ ॥

त्वं तमिन्द्र पर्वतं न भोजसे महो नृम्णस्य धर्मणामिरज्यसि ।
प्र वीर्येण देवताति चेकिते विश्वस्मा उग्रः कर्मणे पुरोहितः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सभाद्यध्यक्ष ! जो (देवता) विद्वान् (उग्रः) तीव्रकारी (पुरोहितः) पुरोहित के समान उपकार करने वाले (त्वम्) आप जैसे बिजुली (पर्वतम्) मेघ के आश्रय करने वाले बद्दलों न) समान (वीर्येण)

पराक्रम से (ओजसे) पालन वा भोग के लिये (तम्) उस शत्रु को हनन कर (महः) बड़े (नृम्णस्य) धन और (धर्मणाम्) धर्मों के योग से (अतीरज्यसि) अतिशय ऐश्वर्य करते हो जो आप (विश्वस्मै) सब (कर्मणे) कर्मों के लिये (प्रचेकिते) जानते हो वह आप हम लोगों में राजा हूजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। जो मनुष्य प्रवृत्ति का आश्रय और धन को संपादन कर के भोगों को प्राप्त करते हैं वे सभाध्यक्ष के सहित विद्या, बुद्धि, विनय और धर्मयुक्त वीर पुरुषों की सेना को प्राप्त होकर दुष्ट जनों के विषय [में] तेजधारी और धर्मात्माओं में क्षमायुक्त हों, वे ही सब के हितकारक होते हैं ॥ ३ ॥

स इद्वने नमस्युभिर्वचस्यते चारु जनेषु प्रब्रुवाण इन्द्रियम् ।
वृषा छन्दुर्भवति हर्य्यतो वृषा क्षेमेण धेनां मघवा यदिन्वति ॥ ४ ॥

पदार्थ—(यत्) जो अध्यापक वा उपदेशकर्त्ता (वने) एकान्त में एकाग्र चित्त से (जनेषु) प्रसिद्ध मनुष्यों में (चारु) सुन्दर (इन्द्रियम्) मन को (ब्रुवाणः) अच्छे प्रकार कहता (हर्य्यतः) और सब को उत्तम बोध की कामना करता हुआ (प्रभवति) समर्थ होता है (वृषा) दृढ़ (मघवा) प्रशंसित विद्या और धनवाला (छन्दुः) स्वच्छन्द (वृषा) सुख वर्षाने वाला (क्षेमेण) रक्षण के सहित (धेनाम्) विद्या शिक्षायुक्त वाणी को (इन्वति) व्याप्त करता है (स इत्) वही (नमस्युभिः) नम्र विद्वानों से (वचस्यते) प्रशंसा को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—उत्तम विद्वान् सभाध्यक्ष सब मनुष्यों के लिये सब विद्याओं को प्राप्त करके सब को विद्यायुक्त बहुश्रुत रक्षा वा स्वच्छन्दतायुक्त करे कि जिससे सब निस्सन्देह होकर सदा सुखी रहें ॥ ४ ॥

स इन्महानि समिथानि मज्मना कृणोति युध्म ओजसा जनेभ्यः ।
अधा चन श्रद्दधति त्विषीमत इन्द्राय वज्रं निघनिघ्नते वधम् ॥५॥

पदार्थ—जो (सः) वह (युध्मः) युद्ध करने वाला उपदेशक (मज्मना) बल वा (ओजसा) पराक्रम से युक्त हो के (जनेभ्यः) मनुष्यादिकों के सुख के लिये उपदेश से (महानि) बड़े पूजनीय (समिथानि) संग्रामों को जीतने वाले के तुल्य अविद्या विजय को (कृणोति) करता है (वज्रम्) वज्रप्रहार के समान शत्रुओं के (वधम्) मारने को (निघनिघ्नते) मारने वाले के समान आचरण करता है तो (अध) इस के अनन्तर (इत्) ही (अस्मै) इस (त्विषीमते) प्रशंसनीय प्रकाशयुक्त (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य की प्राप्ति कराने वाले के लिये सब

मनुष्य लोग (चन) भी (श्रद्दधति) प्रीति से सत्य का धारण करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य मेघ को उत्पन्न, काट और वर्षा करके अपने प्रकाश से सब मनुष्यों को आनन्दयुक्त करता है वैसे ही अध्यापक और उपदेशक लोग विद्या को प्राप्त करा और अविद्या को जीत के अन्धपरम्परा को निवारण कर विद्या न्यायादि का प्रकाश करके सब प्रजा को सुखी करें ॥ ५ ॥

स हि श्र॑व॒स्युः सद॑नानि कृ॒त्रिमा॑ क्ष्म॒या वृ॑धा॒न ओज॑सा विना॒शय॑न् ।
ज्योतीं॑षि कृ॒ण्वन्न॑वृ॒काणि॑ य॒ज्यवेऽव॑ सु॒क्रतुः॒ सर्त॒वा अ॒पः सृ॑जत् ॥६॥

पदार्थ—जो (**सुक्रतुः**) श्रेष्ठ बुद्धि वा कर्मयुक्त (**ओजसा**) पराक्रम से (**क्ष्मया**) पृथिवी के साथ (**वृधानः**) बढ़ता हुआ और (**श्रवस्युः**) अपने आत्मा के वास्ते अन्न की इच्छा से सब शास्त्रों का श्रवण कराता हुआ (**यज्यवे**) राज्य के अनुष्ठान के वास्ते (**सर्त्तवै**) जाने आने को (**कृत्रिमाणि**) किये हुए (**अवृकाणि**) चोरादि रहित (**सदनानि**) मार्ग और सुन्दर घरों को सुशोभित (**कृण्वन्**) करता हुआ (**अपः**) जलों को वर्षानिहारा (**ज्योतींषि**) चन्द्रादि नक्षत्रों को प्रकाशित करते हुए सूर्य्य के तुल्य (**विनाशयन्**) अविद्या का नाश करता हुआ राज्य (**अवसृजत्**) बनावे, वही सब मनुष्यों को माता पिता, मित्र और रक्षक मानने योग्य है ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब मनुष्य; जो सूर्य्य के सदृश विद्या धर्म और राजनीति का प्रचारकर्त्ता होके सब मनुष्यों को उत्तम बोधयुक्त करता है वह मनुष्यादि प्राणियों का कल्याणकारी है ऐसा निश्चित जानें ॥ ६ ॥

दा॒नाय॒ मनः॑ सोमपाव॒न्नस्तु ते॒ऽर्वाञ्चा॒ हरी॑ वन्दनश्रु॒दा कृ॑धि ।
यमि॑ष्ठासः॒ सार॑थयो॒ य इ॑न्द्र ते॒ न त्वा॒ केता॒ आ द॑भ्नुवन्ति॒ भूर्ण॑यः ॥७॥

पदार्थ—हे (**वन्दनश्रुत्**) स्तुति वा भाषण के सुनने सुनाने और (**सोमपावन्**) श्रेष्ठ रसों के पीने वाले (**इन्द्र**) परमैश्वर्ययुक्त सभाध्यक्ष ! (**ते**) आप का (**मनः**) मन (**दानाय**) पुत्रों को विद्यादि दान के लिये (**अस्तु**) अच्छे प्रकार होवे जैसे वायु वा सूर्य्य के (**अर्वाञ्चा**) वेगादि गुणों को प्राप्त कराने वाली (**हरी**) धारणाऽऽकर्षण गुण और जैसे (**भूर्णयः**) पोषक (**यमिष्ठासः**) अतिशय करके यमन करता (**सारथयः**) रथों को चलाने वाले सारथि घोड़े आदि को सुशिक्षा कर नियम में रखते हैं वैसे तू सब मनुष्यादि को धर्म में चला और सब में (**केताः**) शास्त्रीय प्रज्ञाओं को (**आकृधि**) अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिये, इस प्रकार करने से

(ये) जो तेरे शत्रु हैं वे (ते) तेरे वश में हो जायं, जिससे (त्वा) तुझ को (न दभ्नुवन्ति) दुःखित न कर सकें ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे उत्तम सारथि लोग घोड़े को अच्छे प्रकार शिक्षा करके नियम में चलाते हैं और जैसे तिर्च्छा चलने वाला वायु नियन्ता है वैसे धार्मिक पढ़ाने और उपदेश करने हारे विद्वान् लोग सत्य विद्या और सत्य उपदेशों से सब को सत्याचार में निश्चित करें । इन दोनों के विना मनुष्यों को धर्मात्मा करने के वास्ते कोई भी समर्थ नहीं हो सकता ॥ ७ ॥

अप्रक्षितं वसु बिभर्षि हस्तयोरषाळ्हं सहस्तन्वि श्रुतो दधे ।
आवृतासोऽवतासो न कर्तृभिस्तनूषु ते क्रतव इन्द्र भूरयः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सभाध्यक्ष ! (श्रुतः) प्रशंसायुक्त तू जिस (अप्रक्षितम्) क्षय रहित (वसु) धन और (अषाढम्) शत्रुओं से असह्य (सहः) बल को (तन्वि) शरीर में (हस्तयोः) हाथ में आंवले के फल के समान (बिभर्षि) धारण करता है जो (आवृतासः) सुखों से युक्त (अवतासः) अच्छे प्रकार रक्षित मनुष्यों के (न) समान (ते) आप की (भूरयः) बहुत शास्त्र विद्यायुक्त (क्रतवः) बुद्धि और कर्मों को (कर्तृभिः) पुरुषार्थी मनुष्य (तनूषु) शरीरों में धारण करते हैं उन को मैं (दधे) धारण करता हूँ ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सभाध्यक्ष वा सभासद् विद्वान् लोग क्षय रहित विज्ञान बल धन श्रवण और बहुत उत्तम कर्मों को धारण करते हैं वैसे ही इन सब कामों का सब प्रजा के मनुष्यों को धारण करना चाहिये ॥ ८ ॥

इस सूक्त में सूर्य्य, प्रजा और सभाध्यक्ष के कृत्य का वर्णन किया है, इसी से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

पचपनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

आङ्गिरसः सव्यः ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ३ । ४ निचृज्जगती । २ जगती च छन्दः । निषादः स्वरः । ५ त्रिष्टुप् । ६ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

एष प्र पूर्वीरव तस्य चम्रिषोऽत्यो न योपा मुदयँस्त भुर्वणिः ।

दक्षं महे पाययते हिरण्ययं रथमावृत्या हरियोगमृभ्वसम् ॥ १ ॥

पदार्थ—जो (**एषः**) यह (**भुर्वणिः**) धारण वा पोषण करने वाला सभा का अध्यक्ष वा सुर्य (**न**) जैसे (**अत्यः**) घोड़ा घोड़ियों से संयोग करता है वैसे (**योषाम्**) विद्वान् स्त्री से युक्त होके (**तस्य**) उस परमैश्वर्य की प्राप्ति के लिये (**चम्रिषः**) भोगों को करने वाली (**पूर्वीः**) सनातन प्रजा को (**प्रावोदयंस्त**) अच्छे प्रकार अधर्म वा निकृष्टता से निवृत्त कर वह उस प्रजा के वास्ते (**महे**) पूजनीय मार्ग में कान आदि इन्द्रियों को (**आवृत्य**) युक्त कर (**हिरण्यम्**) बहुत तेज वा सुवर्ण (**ऋभ्वसम्**) मनुषदिकों के प्रक्षेपण करने वाला (**हरियोगम्**) अग्नियुक्त वा अश्वादि युक्त बुए (**दक्षम्**) बल चतुर शिल्पी मनुष्ययुक्त (**रथम्**) यानसमूह को (**आवृत्य**) सामग्री से आच्छादन करके सुखरूपी रसों को (**पाययते**) पान कराता है, वह सब से मान्य को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार हैं । उपदेशक अपने तुल्य विदुषी स्त्री के साथ विवाह करके जैसे आप पुरुषों को उपदेश और बालकों को पढ़ावे वैसे उस की स्त्री स्त्रियों को उपदेश और कन्याओं को पढ़ावे, ऐसे करने से किसी ओर से अविद्या और भय से दुःख नहीं हो सकता ॥ १ ॥

तं गर्त्तयो नेमन्निषः परीणसः समुद्रं न सञ्चरणे सनिष्यवः ।

पतिं दक्षस्य विदथस्य नू सहो गिरिं न वेना अधि रोह तेजसा ॥२॥

पदार्थ—हे कन्ये ! तू (**संचरणे**) अच्छे प्रकार समागम में (**न**) जैसे (**सनिष्यवः**) सम्यक् विविध देशों को सेवन करने हारी नदियां (**समुद्रम्**) सागर को प्राप्ति होती हैं और (**न**) जैसे बद्दल (**गिरिम्**) मेघ को प्राप्त होते हैं वैसे जो (**परीणसः**) बहुत (**नेमन्निषः**) प्राप्त होने योग्य इष्ट सुखदायक (**गूर्त्तयः**) उद्यमयुक्त बुद्धिमती ब्रह्मचारिणी और (**वेनाः**) बुद्धिमान् ब्रह्मचारी लोग समावर्त्तन के पश्चात् परस्पर प्रीति के साथ विवाह करें (**दक्षस्य**) हे कन्ये ! तू सब विद्याओं में अति चतुर (**विदथस्य**) पूर्णविद्यायुक्त विद्वान् से विद्या को प्राप्त हुए (**पतिम्**) स्वामी को (**अधिरोह**) प्राप्त हो (**तेजसा**) अतीव तेज से (**तम्**) उस को प्राप्त होके (**सहः**) बल को (**नु**) शीघ्र प्राप्त हो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । सब लड़के और लड़कियों को योग्य है कि यथोक्त ब्रह्मचर्य्य के सेवन से संपूर्ण विद्याओं को पढ़ के पूर्ण युवावस्था में अपने तुल्य गुण कर्म और स्वभाव वाले परस्पर

परीक्षा करके अतीव प्रेम के साथ विवाह कर पुनः जो पूर्ण विद्या वाले हों तो लड़का लड़कियों को पढ़ाया करें, जो क्षत्रिय हों तो राजपालन और न्याय किया कर, जो वैश्य हों तो अपने वर्ण के कर्म और जो शूद्र हों तो अपने कर्म किया करें ॥ २ ॥

स तुर्वणिर्महाँ अरेणु पौंस्ये गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजा शवः ।

येन शुष्णं मायिनमायसो मदे दुध्र आभूषु रामयन्नि दामनि ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे उत्तम वर की इच्छा करनेहारी कन्या ! जैसे तू जो (**तुर्वणिः**) शीघ्र सुखकारी (**दुध्रः**) बल से पूर्ण (**आयसः**) विज्ञान से युक्त (**महान्**) सर्वोत्कृष्ट (**पौंस्ये**) पुरुषार्थयुक्त व्यवहार में प्रवीण (**तुजा**) दुःखों का नाशक (**आभूषु**) सब प्रकार सब को सुभूषितकारक (**अरेणु**) क्षय रहित कर्म को (**मदे**) हर्षित होने में (**रामयत्**) क्रीड़ा का हेतु (**शवः**) उत्तम् बल को प्राप्त होके (**न**) जैसे (**गिरेः**) मेघ के (**भृष्टिः**) उत्तम शिखरें (**भ्राजते**) प्रकाशित होते हैं वैसे (**तम्**) उस (**शुष्णम्**) बलयुक्त (**मायिनम्**) अत्युत्तम बुद्धिमान् वर को (**येन**) जिस बल से (**दामनि**) सुखदायक गृहाश्रम में स्वीकार करती हो वैसे (**सः**) वह वर भी तुझे उसी बल से प्रेमबद्ध करे ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । अति उत्तम विवाह वह है जिस में तुल्य रूप स्वभावयुक्त कन्या और वर का सम्बन्ध होवे, परन्तु कन्या से वर का बल और आयु दूना वा ड्योढ़ा होना चाहिये ॥ ३ ॥

देवी यदि तविषी त्वावृधोतय इन्द्रं सिषक्त्युषसं न सूर्यः ।

यो धृष्णुना शवसा बाधते तम इयर्ति रेणुं बृहदर्हरिष्वणिः ॥४॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! (**यः**) जो (**अर्हरिष्वणिः**) अहिंसक धार्मिक और पापी लोगों का विवेककर्त्ता पुरुष (**धृष्णुना**) दृढ़ (**शवसा**) बल से (**न**) जैसे (**सूर्य्य**) रवि (**उषम्**) प्रातः समय को प्राप्त होके (**बृहत्**) बड़े (**तमः**) अन्धकार को दूर कर देता है वैसे तेरे दुःख को दूर कर देता है । हे पुरुष ! (**यदि**) जो (**त्वावृधा**) तुझे सुख से बढ़ानेहारी (**तविषी**) पूर्ण बलयुक्त (**देवी**) विदुषी अतीव प्रिया स्त्री (**रेणुम्**) रमणीय स्वरूप तुझ को (**इयर्ति**) प्राप्त होती है और (**ऊतये**) रक्षादि के वास्ते (**इन्द्रम्**) परम् सुखप्रद तुझे (**सिषक्ति**) उत्तम सुख से युक्त करती है सो तू और वह स्त्री तुम दोनों एक दूसरे के आनन्द के लिए सदा वर्त्ता करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जब स्त्री के प्रसन्न पुरुष और पुरुष के प्रसन्न स्त्री होवे तभी गृहाश्रम में निरन्तर आनन्द होवे ॥ ४ ॥

वि यत्तिरो धरुणमच्युतं रजोऽतिष्ठिपो दिव आतासु बर्हणा ।
स्वर्मीळ्हे यन्मद इन्द्र हर्ष्याऽहन् वृत्रं निरपामौब्जो अर्णवम् ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे परमैश्वर्य्ययुक्त (**इन्द्र**) सभेश ! जैसे (**औब्जः**) कोमल करने वाले से सिद्ध हुआ (**यत्**) जो सूर्य (**दिवः**) प्रकाश वा आकर्षण से (**आतासु**) दिशाओं में (**तिरः**) तिरछा किया हुआ (**बर्हणा**) वृद्धियुक्त (**अच्युतम्**) कारणरूप वा प्रवाहरूप से अविनाशी (**धरुणम्**) आधारकर्त्ता (**रजः**) पृथिवी आदि सब लोकों को (**व्यतिष्ठिपः**) विशेष करके स्थापन करता और (**मदे**) आनन्दयुक्त (**स्वर्मीढे**) अन्तरिक्ष में वर्त्तमान (**हर्ष्या**) हर्ष उत्पन्न कराने योग्य कर्मों को करता हुआ (**यत्**) जिस वृत्रम् मेघ को (**अहन्**) नष्ट कर (**आतासु**) दिशाओं में (**आपाम्**) जलों के सकाश से (**अर्णवम्**) समुद्र को सिद्ध करता है। वैसे अपने राज्य और न्याय को धारण कर शत्रुओं को मार अपनी स्त्री को आनन्द दिया कर ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्यलोक अपने प्रकाश और आकर्षणादि गुणों से सब लोकों को अपनी अपनी कक्षा में भ्रमण कराता, सब दिशाओं में अपना तेज वा रस को विस्तार और वर्षा को उत्पन्न करता हुआ प्रजा के पालन का हेतु होता है। वैसे स्त्री पुरुषों को भी वर्त्तना चाहिये ॥ ५ ॥

त्वं दिवो धरुणं धिष ओजसो पृथिव्या इन्द्र सदनेषु माहिनः ।
त्वं सुतस्य मदे अरिणा अपो वि वृत्रस्य समया पाष्यारुजः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) परमैश्वर्य्यसंपादक सभाध्यक्ष ! (**माहिनः**) पूजनीय महत्व गुणवाले (**त्वम्**) आप (**ओजसा**) बल से जैसे सविता (**दिवः**) दिव्य-गुणयुक्त प्रकाश से (**पृथिव्याः**) पृथिवी और पदार्थों का (**धरुणम्**) आधार है वैसे (**सदनेषु**) गृहादिकों में (**धिषे**) धारण करते हो वा जैसे बिजुली (**वृत्रस्य**) मेघ को मार कर (**अपः**) जलों को वर्षाती है वैसे (**त्वम्**) आप (**सुतस्य**) उत्पन्न हुए वस्तुओं के (**मदे**) आनन्दकारक व्यवहार में (**समया**) समय में (**अपः**) जलों की वर्षा से सब को सुख देते हो वैसे (**पाष्या**) अच्छे प्रकार चूर्ण करने रूप सिद्ध किये हुये रस के (**मदे**) आनन्द रूपी व्यवहार में (**पाष्या**)

चूर्णकारक क्रिया से शत्रुओं को (व्यरुजः) मरणप्राय करके (अरिणाः) सुख को प्राप्त कीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वान् सूर्य्य के समान राज्य को सुप्रकाशित कर शत्रुओं को निवार के प्रजा का पालन करते हैं वैसा ही हम लोगों को भी अनुष्ठान करना चाहिये ॥ ६ ॥

इस सूक्त में सूर्य्य वा विद्वान् के गुण वर्णन से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह छप्पनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

आङ्गिरसः सव्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । २ । ४ जगती । ३ विराट् । ६ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् ॥ १ ॥

पदार्थ—जैसे मैं (यस्य) जिस सभा आदि के अध्यक्ष के (शवसे) बल के लिये (प्रवणे) नीचे स्थान में (अपामिव) जलों के समान (अपावृतम्) दान वा भोग के लिये प्रसिद्ध (विश्वायु) पूर्ण आयुयुक्त (दुर्धरम्) दुष्ट जनों को दुःख से धारण करने योग्य (राधः) विद्या वा राज्य से सिद्ध हुआ धन है उस (सत्यशुष्माय) सत्य बलों का निमित्त (तवसे) बलवान् (बृहद्रये) बड़े उत्तम उत्तम धनयुक्त (बृहते) गुणों से बड़े (मंहिष्ठाय) अत्यन्त दान करने वाले सभाध्यक्ष के लिये (मतिम्) विज्ञान को (प्रभरे) उत्तम रीति से धारण करता हूं वैसे तुम भी धारण कराओ ॥ १ ।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे जल ऊंचे देश से आकर नीचे देश अर्थात् जलाशय को प्राप्त होके स्वच्छ, स्थिर होता है, वैसे नम्र बलवान् पुरुषार्थी धार्मिक विद्वान् मनुष्य को प्राप्त हुआ विद्यारूप धन निश्चल होता है । जो राजलक्ष्मी को प्राप्त हो के सब के हित न्याय वा विद्या की वृद्धि तथा शरीर आत्मा के बल की उन्नति के लिये देता है उसी शूरवीर विद्यादि देने वाले सभा शाला सेनापति मनुष्य का हम लोग अभिषेक करें ॥ १ ॥

अधं ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवंना हविष्मंतः ।

यत्पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः ॥ २ ॥

पदार्थ—(**यत्**) जिस (**हविष्मतः**) उत्तम दानग्रहणकर्त्ता (**इन्द्रस्य**) ऐश्वर्य वाले सभाध्यक्ष का (**हिरण्ययः**) ज्योतिःस्वरूप (**वज्रः**) शस्त्ररूप किरणें (**पर्वते**) मेघ में (**न**) जैसे (**श्नथिता**) हिंसा करने वाला होता है वैसे (**हर्यतः**) उत्ताम व्यवहार (**समशीत**) प्रसिद्ध हो (**अध**) इस के अनन्तर (**ते**) आप के समाश्रय से (**विश्वम्**) सब जगत् (**सवना**) ऐश्वर्य को (**आपः**) जल (**निम्नेव**) जैसे नीचे स्थान को जाते हैं वैसे (**इष्टये**) अभीष्ट सिद्धि के लिये (**ह**) निश्चय करके (**अन्वसत्**) हो उसी सभाध्यक्ष वा बिजुली का हम सब मनुष्यों को समाश्रय वा उपयोग करना चाहिये ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पर्वत वा मेघ का समाश्रय कर सिंह आदि वा जल रक्षा को प्राप्त होकर स्थित होते हैं जैसे नीचे स्थानों में रहने वाला जलसमूह सुख देने वाला होता है; वैसे ही सभाध्यक्ष के आश्रय से प्रजा की रक्षा तथा बिजुली की विद्या से शिल्पविद्या की सिद्धि को प्राप्त होकर सब प्राणी सुखी होवें ॥ २ ॥

अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।

यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्य ! तू (**यस्य**) जिस सभाध्यक्ष का (**धाम**) विद्यादि सुखों का धारण करने वाला (**श्रवसे**) श्रवण वा अन्न के लिये है जिसने (**अयसे**) विज्ञान के वास्ते (**हरितः**) दिशाओं के (**न**) समान (**नाम**) प्रसिद्ध (**इन्द्रियम्**) प्रशंसनीय बुद्धिमान आदि वा चक्षु आदि (**अकारि**) किया है (**अस्मै**) इह (**भीमाय**) दुष्ट वा पापियों को भय देने (**पनीयसे**) यथायोग्य व्यवहार स्तुति करने योग्य सभाध्यक्ष के लिये (**शुभ्रे**) शोभायमान शुद्धिकारक (**अहिंसनीय**) धर्मयुक्त यज्ञ (**उषः**) प्रातःकाल के (**न**) समान (**नमसा**) नमस्ते वाक्य के साथ (**समाभर**) अच्छे प्रकार धारण वा पोषण कर ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को समुचित है कि जैसे प्रातःकाल सब अन्धकार का निवारण और सब को प्रकाश से आनन्दित करता है वैसे ही शत्रुओं को भय करने वाले मनुष्य को गुणों की अधिकता से स्तुति सत्कार वा संग्रामादि व्यवहारों में स्थापन करें जैसे

दिशा व्यवहार की जनानेहारी होती है वैसे ही जो विद्या उत्तम शिक्षा सेना विनय न्यायादि से सब को सुभूषित धन अन्न आदि से संयुक्त कर सुखी करे उसी को सभा आदि अधिकारों में सब मनुष्यों को अधिकार देना चाहिये ॥ ३ ॥

इमे तं इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघंत् क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद्वचः ॥४॥

पदार्थ—हे (**प्रभूवसो**) समर्थ वा सुखों में वास देने (**गिर्वणः**) वेदविद्या से संस्कार किई हुई वाणियों से सेवनीय (**पुरुष्टुत**) बहुतों से स्तुति करने वाले (**हर्य**) कमनीय वा सर्वसुखप्रापक (**इन्द्र**) जगदीश्वर ! (**ते**) आपकी कृपा के सहाय से हम लोग (**सघत्**) (**क्षोणीरिव**) जैसे शूरवीर शत्रुओं को मारते हुए पृथिवी-राज्य को प्राप्त होते हैं वैसे (**नः**) हम लोगों के लिये (**गिरः**) वेदविद्या से अधिष्ठित वाणियों को प्राप्त कराने की इच्छा करने वाले (**त्वत्**) आप से (**अन्यः**) भिन्न (**नहि**) कोई भी नहीं है (**तत्**) उन (**वचः**) वचनों को सुन कर वा प्राप्त करा जो (**इमे**) ये सम्मुख मनुष्य वा (**ये**) जो (**ते**) दूर रहने वाले मनुष्य और (**वयम्**) हमलोग परस्पर मिलकर (**ते**) आपके शरण होकर (**त्वारभ्य**) आप के सामर्थ्य का आश्रय करके निर्भय हुए (**प्रतिचरामसि**) परस्पर सदा सुखयुक्त विचरते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार है। जैसे शूरवीर शत्रुओं के बलों को निवारण और राज्य को प्राप्त कर सुखों को भोगते हैं, वैसे ही हे जगदीश्वर ! हम लोग अद्वितीय आप का आश्रय करके सब प्रकार विजय वाले होकर विद्या की वृद्धि को कराते हुए सुखी होते हैं ॥ ४ ॥

भूरिं त इन्द्र वीर्यं१ तवं स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन्काममा पृंण ।
अनुं ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इयं चं ते पृथिवी नेंम ओजसे ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (**मघवन्**) उत्तम धनयुक्त (**इन्द्र**) सेनादि बल वाले सभाध्यक्ष ! जिस (**ते**) आप का जो (**भूरि**) बहुत (**वीर्यम्**) पराक्रम है जिस के हम लोग (**स्मसि**) आश्रित और जिस (**तव**) आपकी (**इयम्**) यह (**बृहती**) बड़ी (**द्यौः**) विद्या विनययुक्त न्यायप्रकाश और राज्य के वास्ते (**पृथिवी**) भूमि (**ओजसे**) बलयुक्त के लिये और भोगने के लिये (**नेमे**) नम्र के समान है वह आप (**अस्य**) इस (**स्तोतुः**) स्तुतिकर्ता के (**कामम्**) कामना को (**आपृण**) परिपूर्ण करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि ईश्वर का आश्रय करके सब कामनाओं की सिद्धि वा पृथिवी के राज्य की प्राप्ति करके निरन्तर सुखी रहें ॥ ५ ॥

त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन्पर्वशश्चकर्तिथ ।
अवासृजो निवृताः सर्तवा अपः सत्रा विश्वं दधिषे केवलं सहः ॥६॥

पदार्थ—हे (**वज्रिन्**) प्रशस्त शस्त्रविद्यावित् (**इन्द्र**) दुष्टों के विदारण करनेहारे सभाध्यक्ष ! जो (**त्वम्**) आप (**महाम्**) श्रेष्ठ (**उरुम्**) बड़ी वीर पुरुषों की सत्कार के योग्य उत्तम सेना को (**अवासृजः**) बनाइये और (**वज्रेण**) वज्र से जैसे सूर्य्य (**पर्वतम्**) मेघ को छिन्न-भिन्न कर (**निवृताः**) निवृत्त हुए (**अपः**) जलों को धारण करता और पुनः पृथिवी पर गिराता है वैसे शत्रुदल को (**पर्वशः**) अङ्ग अङ्ग से (**चकर्तिथ**) छिन्न भिन्न कर शत्रुओं का निवारण करते हो (**सत्रा**) कारण रूप से सत्यस्वरूप (**विश्वम्**) जगत् को अर्थात् राज्य को धारण करके (**केवलम्**) असहाय (**सहः**) बल को (**सर्त्तवै**) सब को सुख से जाने आने के न्यायमार्ग में चलने को (**दधिषे**) धरते हो (**तम्**) उस आपको सभा आदि के पति हम लोग स्वीकार करते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जो शत्रुओं के छेदन प्रजा के पालन में तत्पर बल और विद्या से युक्त है उसी को सभा आदि का रक्षक अधिष्ठाता स्वामी बनावें ॥ ६ ॥

इस सूक्त में अग्नि और सभाध्यक्ष आदि के गुणों के वर्णन से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सत्तावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

गौतमो नोधा ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ५ जगती । २ विराड् जगती । ४ निचृज्जगती च छन्दः । निषादः स्वरः । ३ त्रिष्टुप् । ६ । ७ । ९ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ विराड् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतःस्वरः ॥

नूचित्सहोजा अमृतो नि तुन्दते होता यद्दूतो अभवद्विवस्वतः ।
वि साधिष्ठेभिः पथिभी रजो मम आ देवताता हविषा विवासति ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (**यत्**) जो (**चित्**) विद्युत् के समान स्वप्रकाश (**अमृतः**) स्वस्वरूप के नाशरहित (**सहोजाः**) बल को उत्पादन करनेहारा

(**होता**) कर्मफल का भोक्ता सब मन और शरीर आदि का धर्त्ता (**दूतः**) सब को चलानेहारा (**अभवत्**) होता है (**देवताता**) दिव्य पदार्थों के मध्य में दिव्यस्वरूप (**साधिष्ठेभिः**) अधिष्ठानों से सह वर्त्तमान (**पथिभिः**) मार्गों से (**रजः**) पृथिवी आदि लोकों को (**नु**) शीघ्र बनानेहारे (**विवस्वतः**) स्वप्रकाशस्वरूप परमेश्वर के मध्य में वर्त्तमान होकर (**हविषा**) ग्रहण किये हुए शरीर से सहित (**नि तुन्दते**) निरन्तर जन्म मरण आदि में पीड़ित होता और अपने कर्मों के फलों का (**विवासति**) सेवन और अपने कर्म में (**व्यानशे**) सब प्रकार से वर्त्तता है सो जीवात्मा है ऐसा तुम लोग जानो ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्य लोगो ! तुम अनादि अर्थात् उत्पत्तिरहित, सत्यस्वरूप, ज्ञानमय, आनन्दस्वरूप, सर्वशक्तिमान्, स्वप्रकाश, सब को धारण और सब विश्व के उत्पादक, देश, काल और वस्तुओं के परिच्छेद से रहित और सर्वत्र व्यापक परमेश्वर में नित्य व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध से जो अनादि नित्य चेतन अल्प एकदेशस्थ और अल्पज्ञ है वही जीव है ऐसा निश्चित जानो ॥ १ ॥

आ स्वमद्म युवमानो अजरस्तृष्वविष्यन्नतसेषु तिष्ठति ।
अत्यो न पृष्ठं प्रुषितस्य रोचते दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदत् ॥२॥

पदार्थः— हे मनुष्यो ! तुम जो (**युवमानः**) संयोग और विभागकर्ता (**अजरः**) जरादि रोग रहित देह आदि की (**अविष्यन्**) रक्षा करने वाला होता हुआ (**अतसेषु**) आकाशादि पदार्थों में (**तिष्ठति**) स्थित होता (**प्रुषितस्य**) पूर्ण परमात्मा में कार्य्य का सेवन करता हुआ (**न**) जैसे (**अत्यः**) घोड़ा (**पृष्ठम्**) अपनी पीठ पर भार को बहाता है वैसे देहादि को बहाता है (**न**) जैसे (**दिवः**) प्रकाश से (**सानु**) पर्वत के शिखर वा मेघ की घटा प्रकाशित होती है वैसे (**रोचते**) प्रकाशमान होता है जैसे (**स्तनयन्**) बिजुली शब्द करती है वैसे (**अचिक्रदत्**) सर्वथा शब्द करता है जो (**स्वम्**) अपने किये (**अद्म**) भोक्तव्य कर्म को (**तृषु**) शीघ्र (**आ**) सब प्रकार से भोगता है वह देह का धारण करने वाला जीव है ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो पूर्ण ईश्वर से धारण किया आकाशादि तत्त्वों में प्रयत्नकर्त्ता, सब बुद्धि आदि का प्रकाशक, ईश्वर के न्याय नियम से अपने किये शुभाशुभ कर्म के सुखदुःखस्वरूप फल को भोगता है सो इस शरीर में स्वतन्त्रकर्त्ता भोक्ता जीव है ऐसा सब मनुष्य जानें ॥ २ ॥

क्राणा रुद्रेभिर्वसुभिः पुरोहितो होता निषत्तो रयिषाळमर्त्यः ।
रथो न विक्ष्वृञ्जसान आयुषु व्यानुषग्वार्या देव ऋण्वति ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम जो (रुद्रेभिः) प्राणों और (वसुभिः) वास देनेहारे पृथिवी आदि पदार्थों के साथ (निसत्तः) स्थित चलता फिरता (होता) देहादि का धारण करने हारा (पुरोहितः) प्रथम ग्रहण करने योग्य (रयिषाट्) धन का सहनकर्त्ता (अमर्त्यः) मरण धर्म रहित (क्राणा) कर्मों का कर्त्ता (ऋञ्जसानः) जो किये हुए कर्म को प्राप्त होता (विक्षु) प्रजाओं में (रथो न) रथ के समान शरीर सहित होके (आयुषु) बाल्यादि जीवनावस्थाओं में (अनुषक्) अनुकूलता से वर्त्तमान (वार्या) उत्तम पदार्थ और सुख को (व्यृण्वति) विविध प्रकार सिद्ध करता है वही (देवः) शुद्ध प्रकाशस्वरूप जीवात्मा है ऐसा जानो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो पृथिवी में प्राणों के साथ चेष्टा, मन के अनुकूल रथ के समान शरीर के साथ क्रीडा, श्रेष्ठ वस्तु और सुख की इच्छा करते हैं, ऐसा सब लोग जानें ॥ ३ ॥

वि वातजूतो अतसेषु तिष्ठते वृथा जुहूभिः सृण्या तुविष्वणिः ।
तृषु यदग्ने वनिनो वृषायसे कृष्णन्त एम रुशदूर्मे अजर ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (रुषदूर्मे) अपने स्वभाव की लहरीयुक्त (अजर) वृद्धावस्था से रहित (अग्ने) बिजुली के तुल्य वर्त्तमान जीव ! जो तू (अतसेषु) आकाशादि व्यापक पदार्थों में (वितिष्ठते) ठहरता (यत्) जो (वातजूतः) वायु का प्रेरक और वायु के समान वेग वाला (तुविष्वणिः) बहुत पदार्थों का सेवक (जुहूभिः) ग्रहण करने के साधनरूप क्रियाओं और (सृण्या) धारण तथा हननरूप कर्म्म से सह वर्त्तमान (वनिनः) विद्युत्युक्त प्राणों को प्राप्त होके तू (तृषु) शीघ्र (वृषायसे) बलवान् होता है जिस (ते) तेरे (कृष्णम्) कर्षणरूप गुण को हम लोग (एम) प्राप्त होते हैं सो तू (वृथा) वृथा अभिमान को छोड़ के अपने स्वरूप को जान ॥ ४ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को ईश्वर उपदेश करता है कि जैसा मैंने जीव के स्वभाव का उपदेश किया है वही तुम्हारा स्वरूप है यह निश्चित जानो ॥४ ॥

तपुर्जम्भो वन आ वातचोदितो यूथे न साह्वाँ अव वाति वंसगः ।
अभिव्रजन् नक्षितं पाजसा रजः स्थातुश्चरथं भयते पतत्रिणः ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो ! जो (**वंसगः**) भिन्न भिन्न पदार्थों को प्राप्त होता (**वातचोदितः**) प्राणों से प्रेरित (**तपुर्जम्भः**) जिसका मुख के समान प्रताप, वह जीव अग्नि के सदृश जैसे (**यूथे**) सेना में (**साह्वान्**) हननशील जीव (**आववाति**) सब शरीर को चेष्टा कराता है जो विस्तृत होके दुःखों का हनन करता जो (**अभिव्रजन्**) जाता आता हुआ (**चरथम्**) चरनेहारे (**अक्षितम्**) क्षयरहित (**रजः**) कारण के सहित लोकसमूह को (**पाजसा**) बल से धरता जो (**स्थातुः**) स्थिर वृक्ष में बैठे हुए (**पतत्रिणः**) पक्षी के समान (**भयते**) भय करता है सो तुम्हारा आत्मस्वरूप है इस प्रकार तुम लोग जानो ।। ५ ।।

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जो अन्तःकरण [अर्थात्] मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार; प्राण अर्थात् प्राणादि दशवायु, इन्द्रिय अर्थात् श्रोत्रादि दश इन्द्रियों का प्रेरक, इन का धारण और नियन्ता स्वामी, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख दुख और ज्ञान आदि गुण वाला है, वह इस देह में जीव है ऐसा निश्चित जानो ॥ ५ ॥

दधुष्ट्वा भृगवो मानुषेष्वा रयिं न चारुं सुहवं जनेभ्यः ।
होतारमग्ने अतिथिं वरेण्यं मित्रं न शेवं दिव्याय जन्मने ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्नि के सदृश स्वप्रकाशस्वरूप जीव ! तू जिस (**त्वा**) तुझ को (**भृगवः**) परिपक्व ज्ञान वाले विद्वान् (**मानुषेषु**) मनुष्यों में (**जनेभ्यः**) विद्वानों से विद्या को प्राप्त होके (**चारुम्**) सुन्दरस्वरूप (**सुहवम्**) सुखों के देनेहारे (**रयिम्**) धन के (**न**) समान (**होतारम्**) दानशील (**अतिथिम्**) अनियत स्थिति अर्थात् अतिथि के सदृश देह देहान्तर और स्थान स्थानान्तर में जानेहारा (**वरेण्यम्**) ग्रहण करने योग्य (**शेवम्**) सुखरूप जीव को प्राप्त हो के (**दिव्याय**) शुद्ध (**जन्मने**) जन्म के लिये (**मित्रन्न**) मित्र के सदृश तुझको (**आदधुः**) सब प्रकार धारण करते हैं उसी को जीव जान ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे मनुष्य विद्या वा लक्ष्मी तथा मित्रों को प्राप्त होकर सुखों को प्राप्त होते हैं वैसे ही जीव के स्वरूप को जानने वाले विद्वान् लोग अत्यन्त सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

होतारं सप्त जुह्वो३ यजिष्ठं यं वाघतो वृणते अध्वरेषु ।
अग्निं विश्वेषामरतिं वसूनां सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस के (**सप्त**) सात (**जुह्वः**) सुख की इच्छा के साधन हैं उस (**होतारम्**) सुखों के दाता (**यजिष्ठम्**) अतिशय संगति में निपुण (**विश्वेषाम्**) सब (**वसूनाम्**) पृथिव्यादि लोकों को (**अरतिम्**) प्राप्त होने हारा

(यम्) जिस को (वाघतः) बुद्धिमान् लोग (प्रयसा) प्रीति से (अध्वरेषु) अहिंसनीय गुणों में (अग्निम्) अग्नि के सदृश (वृणते) स्वीकार करते हैं उस (रत्नम्) रमणीयानन्द स्वरूप वाले जीव को मैं (यामि) प्राप्त होता और (सपर्यामि) सेवा करता हूँ ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अपने आत्मा को जान के परब्रह्म को जानते हैं वे ही मोक्ष पाते हैं ॥ ७ ॥

अच्छिद्रा सूनो सहसो नो अद्य स्तोतृभ्यो मित्रमहः शर्म यच्छ ।
अग्ने गृणन्तमंहस उरुष्योर्जो नपात्पूर्भिरायसीभिः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (सहसः) पूर्णब्रह्मचर्य्य से शरीर और विद्या से आत्मा के बलयुक्त जन का (सूनो) पुत्र (मित्रमहः) सब के मित्र और पूजनीय (अग्ने) अग्निवत् प्रकाशमान विद्वन् ! (नपात्) नीच कक्षा में न गिरने वाला तू (अद्य) आज अपने आत्मस्वरूप के उपदेश से (नः) हम को (अंहसः) पापाचरण से (पाहि) अलग रक्षा कर (अच्छिद्रा) छेद भेद रहित (शर्म) सुखों को (यच्छ) प्राप्त कर (स्तोतृभ्यः) विद्वानों से विद्याओं की प्राप्ति हमको करा । हे विद्वन् ! तू आत्मा की (गृणन्तम्) स्तुति के कर्ता को (आयसीभिः) सुवर्ण आदि आभूषणों की ईश्वर की रचनारूप (पूर्भिः) रक्षा करने में समर्थ अन्न आदि क्रियाओं के साथ (ऊर्जः) पराक्रम के बल से (उरुष्य) दुःख से पृथक् रख ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे आत्मा और परमात्मा को जानने वाले योगी लोगो ! तुम आत्मा और परमात्मा के उपदेश से सब मनुष्यों को दुःख से दूर करके निरन्तर सुखी किया करो ॥ ८ ॥

भवा वरूथं गृणते विभावो भवा मघवन्मघवद्भ्यः शर्म ।
उरुष्याग्ने अंहसो गृणन्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (मघवन्) उत्तम धन वाले (अग्ने) विज्ञान आदि गुणयुक्त सभाध्यक्ष विद्वन् ! तू (गृणते) गुणों के कीर्त्तन करने वाले और (मघवद्भ्यः) विद्यादि धनयुक्त विद्वानों के लिए (वरूथम्) घर को और (शर्म) सुख को (विभावः) प्राप्त कीजिये तथा आप भी घर और सुख को (भव) प्राप्त हो (गृणन्तम्) स्तुति करते हुए मनुष्य को (अंहसः) पाप से (मक्षु) शीघ्र (उरुष्य) रक्षा कीजिये; आप भी पाप से अलग (भव) हूजिये; ऐसा जो (धियावसुः) प्रज्ञा वा कर्म से वास कराने योग्य (प्रातः) प्रति दिन प्रजा की रक्षा करता है वह सुखों को (जगम्यात्) अतिशय करके प्राप्त होवे ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जो विद्वान् धर्म वा विनय से सब प्रजा को शिक्षा देकर पालना करता है उसी को सभा आदि का अध्यक्ष करें ॥ ६ ॥

इस सूक्त में अग्नि वा विद्वानों के गुण वर्णन करने से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह अट्ठावनवां सूक्त समाप्त हुआ।

गौतमो नोधा ऋषिः। अग्निर्वैश्वानरो देवता। १ निचृत् त्रिष्टुप्। २। ४ विराट् त्रिष्टुप्। ५-७ त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ३ पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

वया इद॑ग्ने अ॒ग्नय॑स्ते अ॒न्ये त्वे विश्वे॑ अ॒मृता॑ मादयन्ते।
वैश्वा॑नर॒ नाभि॑रसि क्षिती॒नां स्थूणे॑व॒ जनाँ॑ उप॒मिद्य॑यन्थ ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (वैश्वानर) संपूर्ण को नियम में रखने हारे (अग्ने) जगदीश्वर! जिस (ते) आप के सकाश से जो (अन्ये) भिन्न (विश्वे) सब (अमृताः) अविनाशी (अग्नयः) सूर्य आदि ज्ञानप्रकाशक पदार्थों के तुल्य जीव (त्वे) आप में (वयाः) शाखा के (इत्) समान बढ़ के (मादयन्ते) आनन्दित होते हैं जो आप (क्षितीनाम्) मनुष्यादिकों के (नाभिः) मध्यवर्त्ति (असि) हो (जनान्) मनुष्यादिकों को (उपमित्) धर्मविद्या स्थापित करते हुए (स्थूणेव) धारण करने वाले खंभ के समान (ययन्थ) सब को नियम में रखते हो वही आप हमारे उपास्य देवता हो ॥ १ ॥

भावार्थ—जैसे वृक्ष अपनी शाखा और खंभा गृहों को धारण करके आनन्दित करता है वैसे ही परमेश्वर सब को धारण करके आनन्द देता है ॥

मू॒र्द्धा दि॒वो नाभि॑र॒ग्निः पृ॑थि॒व्या अथा॑भवदर॒ती रोद॑स्योः।
तं त्वा॑ दे॒वासो॑ऽजनयन्त दे॒वं वैश्वा॑नर॒ ज्योति॒रिदार्या॑य ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (वैश्वानर) सब संसार के नायक! जो आप (अग्निः) बिजुली के समान (दिवः) प्रकाश वा (पृथिव्याः) भूमि के मध्य समान (मूर्द्धा) उत्कृष्ट और (नाभिः) मध्यवर्तिव्यापक (अभवत्) होते हो (अथ) इन सब लोकों की रचना के अनन्तर जो (रोदस्यो) प्रकाश और अप्रकाश रूप सूर्य्यादि और भूमि आदि लोकों के (अरतिः) आप व्यापक होके अध्यक्ष (अभवत्) होते

हो जो (आर्याय) उत्तम गुण कर्म स्वभाव वाले मनुष्य के लिये (ज्योतिः) ज्ञान प्रकाश वा मूर्त द्रव्यों के प्रकाश को (इत्) ही करते हैं जिस (देवम्) प्रकाशमान (त्वा) आपको (देवासः) विद्वान् लोग (अजनयन्त) प्रकाशित करते हैं वा जिस बिजुलीरूप अग्नि को विद्वान् लोग "अजनयन्त" प्रकट करते हैं (तम्) उस आप ही की उपासना हम लोग करें ॥ २ ॥

भावार्थ—जिस जगदीश्वर ने आर्य अर्थात् उत्तम मनुष्यों के विज्ञान के लिये सब विद्याओं के प्रकाश करने वाले वेदों को प्रकाशित किया है तथा जो सब से उत्तम सब का आधार जगदीश्वर है उस को जानकर मनुष्यों को उसी की उपासना करनी चाहिये ॥ २ ॥

आ सूर्ये न रश्मयो ध्रुवासो वैश्वानरे दधिरेऽग्ना वसूनि ।

या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु या मानुषेष्वसि तस्य राजा ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! जिस इस द्रव्यसमूह जगत् के आप (राजा) प्रकाशक (असि) हैं (तस्य) उस के मध्य में (या) जो (पर्वतेषु) पर्वतों में (या) जो (ओषधीषु) ओषधियों में जो (अप्सु) जलों में और (मानुषेषु) जो मनुष्यों में (वसूनि) द्रव्य हैं उन सब को (सूर्ये) सवितृलोक में (रश्मयः) किरणों के (न) समान (अग्ना) (वैश्वानरे) आप में (ध्रुवासः) निश्चल प्रजाओं को विद्वान् लोग (आदधिरे) धारण कराते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । तथा पूर्व मन्त्र से (देवासः) इस पद की अनुवृत्ति आती है । मनुष्यों को योग्य है कि जैसे प्राणी लोग प्रकाशमान सूर्य के विद्यमान होने में सब कार्यों को सिद्ध करते हैं वैसे मनुष्यों को उपासना किये हुए जगदीश्वर में सब कार्यों को सिद्ध करना चाहिये । इसी प्रकार करते हुए मनुष्यों को कभी सुख और धन का नाश दुःख वा दरिद्रता उत्पन्न नहीं होते ॥ ३ ॥

बृहती इव सूनवे रोदसी गिरो होता मनुष्यो३ न दक्षः ।

स्वर्वते सत्यशुष्माय पूर्वीर्वैश्वानराय नृतमाय यह्वीः ॥ ४ ॥

पदार्थ—जैसे (सूनवे) पुत्र के लिये (बृहतीइव) महागुणयुक्त माता वर्त्तती है जैसे (रोदसी) प्रकाश भूमि और (दक्षः) चतुर (मनुष्यः) पढ़ाने हारे विद्वान् मनुष्य पिता के (न) समान (होता) देने लेने वाला विद्वान् ईश्वर वा सभापति विद्वान् में प्रसन्न होता है जैसे विद्वान् लोग इस (स्वर्वते) प्रशंसनीय सुख वर्त्तमान (सत्यशुष्माय) सत्यबलयुक्त (नृतमाय) पुरुषों में उत्तम (वैश्वानराय) परमेश्वर के लिये (पूर्वीः) सनातन (यह्वीः) महागुण लक्षण-

युक्त (गिरः) वेदवाणियों को (दधिरे) धारण करते हैं वैसे ही उस परमेश्वर के उपासक सभाध्यक्ष में सब मनुष्यों को वर्तना चाहिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे भूमि वा सूर्यप्रकाश सब को धारण करके सुखी करते हैं; जैसे पिता वा अध्यापक पुत्र के हित के लिये प्रवृत्त होता है; जैसे परमेश्वर प्रजासुख के वास्ते वर्तता है; वैसे सभापति प्रजा के अर्थ वर्ते, इस प्रकार सब वेदवाणियां प्रतिपादन करती हैं ॥ ४ ॥

दि॒वश्चि॑त्ते बृह॒तो जा॑तवेदो॒ वैश्वा॑नर॒ प्र रि॑रिचे महि॒त्वम् ।
राजा॑ कृष्टी॒नाम॑सि॒ मानु॑षीणां यु॒धा दे॒वेभ्यो॒ वरि॑वश्चकर्थ ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (जातवेदः) जिससे वेद उत्पन्न हुए वेदों को जानने वा उन को प्राप्त कराने तथा उत्पन्न हुए पदार्थों में विद्यमान (वैश्वानर) सब को प्राप्त होने वाले (प्रजापते) जगदीश्वर ! जिस (ते) आपका (महित्वम्) महागुण-युक्त प्रभाव (बृहतः) बड़े (दिवः) सूर्य्यादि प्रकाश से (चित्) भी (प्ररिरिचे) अधिक है जो आप (कृष्टीनाम्) मनुष्यादि (मानुषीणाम्) मनुष्य सम्बन्धी प्रजाओं के (राजा) प्रकाशमान अधीश (असि) हो और जो आप (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (युधा) संग्राम से (वरिवः) सेवा को (चकर्थ) प्राप्त कराते हो सो आप ही हम लोगों के न्यायाधीश हूजिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है । सभा में रहने वाले मनुष्यों को अनन्त सामर्थ्यवान् होने से परमेश्वर की सब के अधिष्ठाता होने से उपासना वा महाशुभगुणयुक्त होने से सभा आदि के अध्यक्ष अधीश का सेवन और युद्ध से दुष्टों को जीत के प्रजा पालन करके विद्वानों की सेवा तथा सत्सङ्ग को सदा करना चाहिये ॥ ५ ॥

प्र नू म॑हि॒त्वं वृ॑ष॒भस्य॑ वोचं॒ यं पू॒रवो॑ वृत्र॒हणं॒ सच॑न्ते ।
वै॒श्वा॒न॒रो दस्यु॑म॒ग्निर्ज॑घ॒न्वाँ अधू॑नो॒त्काष्ठा॒ अव॒ शम्ब॑रं भेत् ॥६॥

पदार्थ—(तम्) जिस परमेश्वर को (पूरवः) विद्वान् लोग अपने आत्मा के साथ (सचन्ते) युक्त करते हैं जैसे (अग्नि) सर्वत्र व्यापक विद्युत् (वृत्रहणम्) मेघ के नाशकर्त्ता सूर्य को दिखलाती है जैसे (वैश्वानरः) सम्पूर्ण प्रजा को नियम में रखने वाला सूर्य्य (दस्युम्) डाकू के तुल्य (शम्बरम्) मेघ को (जघन्वान्) हनन (अधूनोत्) कंपाता (अवभेत्) विदीर्ण करता है जिस के बीच में (काष्ठाः) दिशा भी व्याप्य हैं उस (वृषभस्य) सब से उत्तम सूर्य के (महि-

त्वम्) महिमा को मैं (**नु**) शीघ्र (**प्रवोचम्**) प्रकाशित करूं वैसे सब विद्वान् लोग किया करें ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जिस की महिमा को सब संसार प्रकाशित करता है वही अनन्त शक्तिमान् परमेश्वर सब को उपासना के योग्य है ॥ ६ ॥

वैश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टिर्भरद्वाजेषु यजतो विभावा ।
शातवनेये शतिनीभिरग्निः पुरुणीथे जरते सूनृतावान् ॥ ७ ॥

पदार्थ—जो (**विश्वकृष्टिः**) सब को उत्पन्नकर्त्ता (**यजतः**) पूजन के योग्य (**विभावा**) विशेष करके प्रकाशमान (**सूनृतावान्**) प्रशंसनीय अन्नादि का आधार (**वैश्वानरः**) सब को प्राप्त कराने वाला (**अग्निः**) सूर्य के समान जगदीश्वर अपने जगद्रूप (**महिम्ना**) महिमा के साथ (**भरद्वाजेषु**) धारण करने वा जानने योग्य पृथिवी आदि पदार्थों में (**शतिनीभिः**) असंख्यात गतियुक्त क्रियाओं से सहित (**पुरुनीथे**) बहुत प्राणियों में प्राप्त (**शातवनेये**) असंख्यात विभागयुक्त क्रियाओं से सिद्ध हुए संसार में वर्त्तता है उसका जो मनुष्य (**जरते**) अर्चन पूजन करता है वह निरन्तर सत्कार को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो असंख्यात पदार्थों में असंख्यात क्रियाओं का हेतु बिजुलीरूप अग्नि के समान ईश्वर है वही सब जगत् को धारण करता है उसका पूजन जो मनुष्य करता है वह सदा महिमा को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

इस सूक्त में वैश्वानर शब्दार्थ वर्णन से इसके अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह उनसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

गौतमो नोधा ऋषिः। अग्निर्देवता। १ विराट् त्रिष्टुप्। ३। ५ त्रिष्टुप् च छन्दः। धैवतः स्वरः। २। ४ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

वह्निं यशसं विदथस्य केतुं सुप्राव्यं दूतं सद्योअर्थम् ।
द्विजन्मानं रयिमिव प्रशस्तं रातिं भरद्भृगवे मातरिश्वा ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**मातरिश्वा**) अन्तरिक्ष में शयन करता वायु (**भृगवे**) भूजने वा पकाने के लिये (**विदथस्य**) युद्ध के (**केतुम्**) ध्वजा के

समान (**यशसम्**) कीर्तिकारक (**सुप्राव्यम्**) उत्तमता से चलाने के योग्य (**दूतम्**) देशान्तर को प्राप्त करने (**रातिम्**) दान का निमित्त (**प्रशस्तम्**) अत्यन्त श्रेष्ठ (**द्विजन्मानम्**) वायु वा कारण से जन्मसहित (**वह्निम्**) सब को बहनेहारे अग्नि को (**रयिमिव**) उत्तम लक्ष्मी के समान (**सद्यो अर्थम्**) शीघ्रगामी पृथिव्यादि द्रव्य को (**भरत्**) धरता है वैसे तुम भी काम किया करो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे वायु; विजुली आदि वस्तु का धारण करके सब चराऽचर लोकों का धारण करता है वैसे राजपुरुष विद्या धर्म धारणपूर्वक प्रजाओं को न्याय में रक्खें ॥ १ ॥

अस्य शासुरुभयासः सचन्ते हविष्मन्त उशिजो ये च मर्त्ताः ।
दिवश्चित्पूर्वो न्यसादि होतापृच्छ्यो विश्पतिर्विक्षु वेधाः ॥ २ ॥

पदार्थ—(**ये**) जो (**हविष्मन्तः**) उत्तम सामग्रीयुक्त (**उशिजः**) शुभ गुण कर्मों की कामना करने हारे (**उभयासः**) राजा और प्रजा के (**मर्त्ताः**) मनुष्य जिस (**अस्य**) इस (**शासुः**) सत्य न्याय के शासन करने वाले (**विक्षु**) प्रजाओं में (**सचन्ते**) संयुक्त होते हैं जो (**होता**) शुभ कर्मों का ग्रहण करने हारा (**आपृच्छ्यः**) सब प्रकार के प्रश्नों के पूछने योग्य (**वेधाः**) विविध विद्या का धारण करने वाला (**विश्पतिः**) प्रजाओं का स्वामी (**दिवः**) प्रकाश के (**पूर्वः**) पूर्व स्थित सूर्य के (**चित्**) समान धार्मिक जनों ने जो राज्यपालन के लिये नियुक्त किया हो (**च**) वही सब मनुष्यों को आश्रय करने के योग्य है ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को योग्य है कि जो विद्वान् धर्मात्मा और न्यायाधीशों से प्रशंसा को प्राप्त हों, जिन के शील से सब प्रजा सन्तुष्ट हो, उन की सेवा पिता के समान सब लोग करें ॥ २ ॥

तं नव्यसी हृद आ जायमानमस्मत्सुकीर्त्तिर्मधुजिह्वमश्याः ।
यमृत्विजो वृजने मानुषासः प्रयस्वन्त आयवो जीजनन्त ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! जैसे (**ऋत्विजः**) ऋतुओं के योग्य कर्मकर्ता (**प्रयस्वन्तः**) उत्तम विज्ञानयुक्त (**आयवः**) सत्याऽसत्य का विवेक करने हारे (**हृदः**) सब के मित्र (**मानुषासः**) विद्वान्मनुष्य जानने की इच्छा करने वालों को (**वृजने**) अधर्म रहित धर्ममार्ग में (**जीजनन्त**) विद्याओं से प्रकट कर देते हैं जिस (**जायमानम्**) प्रसिद्ध हुए (**मधुजिह्वम्**) स्वादिष्ट भोग को (**नव्यसी**) अति नूतन प्रजा सेवन करती है (**तम्**) उस को (**अस्मत्**) हम से प्राप्त हुई शिक्षा से युक्त (**सुकीर्त्तिः**) अति प्रशंसा के योग्य तू (**अश्याः**) अच्छे प्रकार भोग कर ॥३॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि जो अधर्म को छुड़ा के धर्म का ग्रहण कराते हैं उन का सब प्रकार से सम्मान किया करें॥ ३॥

उशिक् पा॑व॒को व॒सुर्मानु॑षेषु॒ वरे॑ण्यो॒ होता॑धायि वि॒क्षु।
दमू॑ना गृ॒हप॑तिर्द॒म आँ अ॒ग्निर्भु॑वद्रयि॒पती॑ रयी॒णाम्॥ ४॥

पदार्थ—मनुष्यों को उचित है कि जो (**उशिक्**) सत्य की कामनायुक्त (**पावकः**) अग्नि के तुल्य पवित्र करने (**वसुः**) वास कराने (**वरेण्यः**) स्वीकार करने योग्य (**दमूनाः**) दम अर्थात् शांतियुक्ति (**गृहपति**) गृह का पालन करने तथा (**रयिपतिः**) धनों को पालने (**अग्निः**) अग्नि के समान (**मानुषेषु**) युक्ति पूर्वक आहार विहार करने वाले मनुष्य (**विक्षु**) प्रजा और (**दमे**) गृह में (**रयीणाम्**) राज्य आदि धन और (**होता**) सुखों का देने वाला (**भुवत्**) होवे वही प्रजामें राजा (**अधायि**) धारण करने योग्य है॥ ४॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि अधर्मी मूर्खजन को राज्य की रक्षा का अधिकार कदापि न देवें॥ ४॥

तं त्वा॑ व॒यं पति॑मग्ने रयी॒णां प्र शं॑सामो म॒तिभि॒र्गोत॑मासः।
आ॒शुं न वा॑जंभ॒रं म॒र्जय॑न्तः प्रा॒तर्म॒क्षू धि॒याव॑सुर्जगम्यात्॥ ५॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) पावकवत्पवित्र स्वरूप विद्वन्! जैसे (**धियावसुः**) बुद्धियों में वसाने वाला (**मतिभिः**) बुद्धिमानों के साथ (**वाजंभरम्**) वेग को धारण करने वाले को (**प्रातः**) प्रतिदिन (**आशुमश्वं न**) जैसे शीघ्र चलने वाले घोड़े को जोड़ के स्थानान्तर को तुरन्त जाते आते हैं वैसे (**मक्षु**) शीघ्र (**रयीणाम्**) चक्रवर्त्ति राज्यलक्ष्मी आदि धनों के (**पतिम्**) पालन करने वाले को (**जगम्यात्**) अच्छे प्रकार प्राप्त होवे। वैसे (**तम्**) उस (**त्वा**) तुझको (**मर्जयन्तः**) शुद्ध कराते हुए (**गोतमासः**) अतिशय करके स्तुति करने वाले (**वयम्**) हम लोग (**प्रशंसामः**) स्तुति से प्रशंसित करते हैं॥ ५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे मनुष्य लोग उत्तम यान अर्थात् सवारियों में घोड़ों को जोड़ कर शीघ्र देशान्तर को जाते हैं वैसे ही विद्वानों के सङ्ग से विद्या के पाराऽवार को प्राप्त होते हैं॥ ५॥

इस मन्त्र में शरीर और यान आदि में संयुक्त करने योग्य अग्नि के दृष्टान्त से विद्वानों के गुण वर्णन से सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के सङ्गति जाननी चाहिये॥

यह साठवां सूक्त समाप्त हुआ॥

गोतमो नोधा ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । १४ । १६ विराट् त्रिष्टुप् । २ । ७ । ६ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ । ४ । ६ । ८ । १० । १२ पङ्क्तिः ५ । १५ विराट् पङ्क्तिः । ११ भुरिक् पङ्क्तिः । १३ निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय ।

ऋचीषमायाध्रिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा ॥ १ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! जैसे मैं (उ) वितर्कपूर्वक (प्रयः) तृप्ति करने वाले कर्म्म के (न) समान (तवसे) बलवान् (तुराय) कार्यसिद्धि के लिये शीघ्र करता (ऋचीषमाय) स्तुति करने को प्राप्त होने तथा (अध्रिगवे) शत्रुओं से असह्य वीरों को प्राप्त होने हारे (माहिनाय) उत्तम उत्तम गुणों से बड़े (अस्मै) इस (इन्द्राय) सभाध्यक्ष के लिये (इत्) ही (ओहम्) प्राप्त करने वाले (स्तोमम्) स्तुति को (राततमा) अतिशय करने के योग्य (ब्रह्माणि) संस्कार किये हुए अन्न वा धनों को [(प्र)] (हर्मि) देता हूं वैसे तुम भी क्रिया करो ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि स्तुति के योग्य पुरुषों को राज्य का अधिकार देकर उन के लिये यथायोग्य हाथों से प्रयुक्त किये हुए धनों को देकर उत्तम उत्तम अन्नादिकों से सदा सत्कार करें। और राजपुरुषों को भी चाहिये कि प्रजा के पुरुषों का सत्कार करें ॥ १ ॥

अस्मा इदु प्रयइव प्र यंसि भराम्याङ्गूषं बाधे सुवृक्ति ।

इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त ॥ २ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् मनुष्य ! तुम (अस्मै) इस (प्रत्नाय) प्राचीन सब के मित्र (पत्ये) स्वामी (इन्द्राय) शत्रुओं को विदारण करने वाले के लिये (प्रयइव) जैसे प्रीतिकारक अन्न वा धन वैसे (प्रयंसि) सुख देते हो जिस परमैश्वर्ययुक्त धार्मिक के लिये मैं सब सामग्री अर्थात् (हृदा) हृदय (मनीषा) बुद्धि (मनसा) विज्ञानपूर्वक मन से (सुवृक्ति) उत्तमता से गमन कराने वाले यान को (भरामि) धारण करता वा पुष्ट करता हूँ जैसे (आङ्गूषम्) युद्ध में प्राप्त हुए शत्रु को (बाधे) ताड़ना देता जिस वीर के वास्ते सब प्रजा के मनुष्य (धियः) बुद्धि वा कर्म को (मर्जयन्त) शुद्ध करते हैं उस पुरुष के लिये (इत्) ही (उ) तर्क के साथ मैं भी बुद्धि शुद्ध करूं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि पहिले परीक्षा किये पूर्ण विद्यायुक्त धार्मिक सब के उपकार करने वाले

प्राचीन पुरुष को सभा का अधिपति करें तथा इससे विरुद्ध मनुष्य को स्वीकार नहीं करें और सब मनुष्य उसके प्रिय आचरण करें ॥ २ ॥

अस्माइदु त्यमुपमं स्वर्षां भराम्याङ्गूषमास्येन ।
मंहिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीनां सुवृक्तिभिः सूरिं वावृधध्यै ॥ ३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (अस्मै) इस सभाध्यक्ष के लिये (मतीनाम्) मनुष्यों के (वावृधध्यै) अत्यन्त बढ़ाने को (आस्येन) मुख से (सुवृक्तिभिः) जिन में अच्छे प्रकार अधर्म और अविद्या छोड़ सकें (अच्छोक्तिभिः) श्रेष्ठ वचन स्तुतियों से (इत्) भी (उ) (त्यम्) उसी (उपमा) करने योग्य (स्वर्षाम्) सुखों को प्राप्त कराने (आङ्गूषम्) स्तुति को प्राप्त किये हुए (मंहिष्ठम्) अतिशय करके विद्या से वृद्ध (सूरिम्) शास्त्रों को जानने वाले विद्वान् को (भरामि) धारण करता हूँ । वैसे तुम लोग भी किया करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्वानों से मनुष्यों के लिये सब से उत्तम उपमा रहित यत्न किया जाता है, वैसे इन के सत्कार के वास्ते सब मनुष्य भी प्रयत्न किया करें ॥ ३ ॥

अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि रथं न तष्टेव तत्सिनाय ।
गिरश्च गिर्वाहसे सुवृक्तीन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (मेधिराय) अच्छे प्रकार जानने (गिर्वाहसे) विद्यायुक्त वाणियों को प्राप्त कराने वाले (अस्मै) इस (इन्द्राय) विद्या की वृष्टि करने वाले विद्वान् (इ) ही के लिये (उ) तर्कपूर्वक (रथम्) यानसमूह के (न) समान (तत्सिनाय) यानसमूह के बन्धन के लिये (तष्टेव) तीक्ष्ण करने वाले कारीगर के तुल्य (विश्वमिन्वम्) सब विज्ञान को प्राप्त कराने (सुवृक्ति) जिससे सब दोषों को छोड़ते हैं उस (स्तोमम्) शास्त्रों के अभ्यासयुक्त स्तुति (च) और (गिरः) वेदवाणियों को (संहिनोमि) सम्यक् बढ़ाता हूँ वैसे तुम भी प्रयत्न किया करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे रथ के बनाने वाला दृढ़ रथ के बनाने के वास्ते उत्तम बन्धनों के सहित यन्त्रकलाओं को अच्छे प्रकार रच कर अपने प्रयोजनों को सिद्ध करता और सुखपूर्वक जाना आना करके आनन्दित होता है वैसे ही मनुष्य विद्वान् का आश्रय लेकर उस के सम्बन्ध से धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष को सिद्ध करके सदा आनन्द में रहें ॥ ४ ॥

अस्माइदु सप्तिमिव श्रवस्येन्द्रायार्कं जुह्वा३समञ्जे ।
वीरं दानौकसं वन्दध्यै पुरां गूर्त्तश्रवसं दर्माणम् ।। ५ ।।

पदार्थ—हे मनुष्या ! जैसे मैं (श्रवस्या) अपने करने की इच्छा (जुह्वा) विद्याओं के लेने देने वाला क्रियाओं से (अस्मै) इस (इन्द्राय) परमैश्वर्य प्राप्त करने वाले (इत्) सभाध्यक्ष का ही (उ) विशेष तर्क के साथ (वन्दध्यै) स्तुति कराने के लिये (सप्तिमिव) वेग वाले घोड़े के समान (गूर्त्तश्रवसम्) जिसने सब शास्त्रों के श्रवणों को ग्रहण किया है (पुराम्) शत्रुओं के नगरों के (दर्माणम्) विदारण करने वा (दानौकसम्) दान वा स्थानयुक्त (अर्कम्) सत्कार के हेतु (वीरम्) विद्या शौर्यादि गुणयुक्त वीर (इत्) ही को (समञ्जे) अच्छे प्रकार कामना करता हूँ वैसी तुम भी कामना किया करो ।। ५ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे मनुष्य लोग रथ में घोड़े को जोड़ उस के ऊपर स्थित होकर जाने आने से कार्यों को सिद्ध करते हैं, वैसे वर्त्तमान विद्वान् वीर पुरुषों के सङ्ग से सब कार्यों को मनुष्य लोग सिद्ध करें ।। ५ ।।

अस्माइदु त्वष्टा तक्षद्वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं १रणाय ।
वृत्रस्य चिद्विदद्येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः ।। ६ ।।

पदार्थः—मनुष्यों को उचित है कि जो (त्वष्टा) प्रकाश करने (ईशानः) समर्थ (कियेधाः) कितनों को धारण करने वाला शत्रुओं को (तुजन्) मारता हुआ (वृत्रस्य) मेघ के ऊपर अपने किरणों को छोड़ता (विदत्) प्राप्त होते हुए सूर्य्य के समान (स्वर्यम्) सुख के हेतु (स्वपस्तमम्) अतिशय करके उत्तम कर्मों के उत्पन्न करने वाले (वज्रम्) किरणसमूह को (तक्षत्) छेदन करते हुए सूर्य्य के (चित्) समान (अस्मै) इस (रणाय) सङ्ग्राम के वास्ते जिस (मर्म) जीवननिमित्त स्थान को (तुजता) काटते हुए (येन) जिस वज्र से शत्रुओं को जीतता है (इदु) उसी को सभा आदि का अध्यक्ष करना चाहिये ।। ६ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सूर्य अपने प्रताप से मेघ को छिन्न भिन्न कर भूमि में जल को गिरा के सब को सुखी करता है वैसे ही सभा आदि का अध्यक्ष विद्या विनय वा शस्त्र अस्त्रों के सीखने सिखाने से युद्धों में कुशल सेना को सिद्ध कर शत्रुओं को जीत कर सब प्राणियों को आनन्दित किया करे ।। ६ ।।

अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना ।
मुषायद्विष्णुः पचतं सहीयान् विध्यद्वराहं तिरो अद्रिमस्ता ॥ ७ ॥

पदार्थ—जो (**अस्य**) इस (**मातुः**) शत्रु और अपने बल का परिमाण करने वाले सभाध्यक्ष के (**सवनेषु**) ऐश्वर्यों में (**महः**) बड़े (**पचतम्**) परिपक्व (**चारु**) सुन्दर (**पितुम्**) संस्कार किये हुए अन्न को (**पपिवान्**) खाने पीने तथा (**सहीयान्**) अतिशय करके सहन करने वाला वीर मनुष्य (**अन्ना**) अन्नों को (**अस्ता**) प्रक्षेपण करने (**मुषायत्**) अपने को चोर की इच्छा करते हुए के तुल्य (**विष्णुः**) सब विद्याओं के अङ्गों में व्यापक (**अद्रिम्**) पर्वताकार (**वराहम्**) मेघ को (**तिरः**) नीचे (**विध्यत्**) गिराते हुए सूर्य के समान शत्रुओं को (**सद्यः**) शीघ्र नष्ट करे (**इदु**) वही मनुष्य सेनाध्यक्ष होने के योग्य होता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य अन्न जल के रसों को चोर के समान हरता वा रक्षा करता हुआ अपने किरणों से मेघ का हनन कर प्रकट करता हुआ छिन्न भिन्न कर अपने विजय को प्राप्त होता है, वैसे ही सेना आदि के अध्यक्ष के सेना आदि ऐश्वर्यों में स्थित हुए शूरवीर पुरुष शत्रुओं का पराजय करें ॥ ७ ॥

अस्मा इदु ग्नाश्चिद्देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः ।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः ॥८॥

पदार्थ—हे सभापति ! जैसे यह सूर्य्य (**द्यावापृथिवी**) प्रकाश और भूमि को (**जभ्रे**) धारण करता वा जिसके वश में (**उर्वी**) बहुधा रूपप्रकाशयुक्त पृथिवी है (**अस्य**) जिस इस सभाध्यक्ष के (**अहिहत्ये**) मेघों के हनन व्यवहार में (**चित्**) प्रकाशभूमि की (**महिमानम्**) महिमा के (**न**) (**परिस्तः**) सब प्रकार छेदन को समर्थ नहीं हो सकते वैसे उस (**अस्मै**) इस (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य प्राप्त करने वाले सभाध्यक्ष के लिये (**इदु**) ही (**देवपत्नीः**) विद्वानों से पालनीय पतिव्रता स्त्रियों के सदृश (**ग्नाः**) वेदवाणी (**अर्कम्**) दिव्य गुण सम्पन्न अर्चनीय वीर पुरुष को (**पर्यूवुः**) सब प्रकार तंतुओं के समान विस्तृत करती हैं वही राज्य करने के योग्य होता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य के प्रताप और महत्व के आगे पृथिवी आदि लोकों की गणना स्वल्प है, वैसे ही पूर्ण विद्या वाले पुरुष के महिमा के आगे मूर्ख की गणना तुच्छ है ॥ ८ ॥

अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात्।
स्वराळिन्द्रो दम आ विश्वगूर्त्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय॥ ९॥

पदार्थ—जो (विश्वगूर्त्तः) सब भोज्य वस्तुओं को भक्षण करने (स्वरिः) उत्तम शत्रुवाला (अमत्रः) ज्ञानवान् वा ज्ञान का हेतु (स्वराट्) अपने आप प्रकाश सहित (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त सूर्य वा सभाध्यक्ष (दमे) उत्तम घर वा संसार में (रणय) संग्राम के लिये (आववक्षे) रोष वा अच्छे प्रकार घात करता है वा जिस की (दिवः) प्रकाश (पृथिव्याः) भूमि और (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से (इत्) भी (परि) सब प्रकार (महित्वम्) पूज्य वा महागुणविशिष्ट महिमा (प्ररिरिचे) विशेष हैं उस (अस्य) इस सूर्य वा सभाध्यक्ष का (एव) ही कार्यों में उपयोग वा सभा आदि में अधिकार देना चाहिये॥ ९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को जैसे सूर्य; पृथिव्यादिकों से गुण वा परिणाम के द्वारा अधिक है, वैसे ही उत्तमगुण युक्त सभा आदि के अधिपति राजा को अधिकार देकर सब कार्यों की सिद्धि करनी चाहिये॥ ९॥

अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद्वज्रेण वृत्रमिन्द्रः।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः॥१०॥

पदार्थ—जो (सचेताः) तुल्य ज्ञानवान् (इन्द्रः) सेनाधिपति (अस्य) इस सभाध्यक्ष (एव) ही के (शवसा) बल तथा (वज्रेण) तेज से (शुषन्तम्) द्वेष से क्षीण हुये (वृत्रम्) प्रकाश के आवरण करने वाले मेघ के समान आवरण करने वाले शत्रु को (विवृश्चत्) छेदन करता है वह (गाः) पशुओ को पशुओं के पालने वाले बंधन से छुड़ाकर वन को प्राप्त करते हुए के (न) समान (अवनीः) पृथिवी को (व्राणाः) आवरण किये हुये जल के तुल्य (दावने) देने वाले के लिये (श्रवः) अन्न को (इत्) भी (अभ्यमुञ्चत्) सब प्रकार से छोड़ता है वह राज्य करने को समर्थ होता है॥ १०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार है। जैसे बिजुली के सहाय से वा सूर्य्य के सहाय से बिजुली बढ़ के विश्व को प्रकाशित और मेघ को छिन्न भिन्न कर भूमि में गेर देती है, जैसे गौओं का पालने वाला गौओं को बंधन से छोड़कर सुखी करता है, वैसे ही सभा सेना के अध्यक्ष मनुष्य न्याय की रक्षा और शत्रुओं को छिन्न भिन्न और धार्मिकों को दुःखरूपी बंधनों से छुड़ाकर सुखी करें॥ १०॥

अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद्वज्रेण सीमयच्छत् ।
ईशानकृद्दाशुषे दशस्यन्तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ॥ ११ ॥

पदार्थ—(अस्य) इस सभाध्यक्ष के (त्वेषसा) विद्या, न्याय, बल के प्रकाश के साथ जो वर्त्तमान शूरवीर बिजुली के समान (रन्त) रमण करते हैं (सिन्धवः) समुद्र के समान (वज्रेण) शस्त्र से (सीम्) सब प्रकार शत्रु की सेनाओं को (पर्यच्छत्) निग्रह करता है वह (दाशुषे) दानशील मनुष्य के (ईशानकृत्) ऐश्वर्ययुक्त करने वाला (तुर्वीतये) शीघ्र करने वालों के लिये (दशस्यन्) दशन के समान आचरण करता हुआ (तुर्वणिः) शीघ्र करने वालों को सेवन करने वाला मनुष्य (गाधम्) शत्रुओं का विलोडन (कः) करता है ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । जो मनुष्य सभाध्यक्ष वा सूर्य के सहाय से शत्रु वा मेघादिकों को जीत कर पृथ्वी राज्य का सेवन कर सुखी और प्रतापी होता है वह सब शत्रुओं के विलोडन करने को योग्य है ॥ ११ ॥

अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः ।
गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे सभाध्यक्ष ! (कियेधाः) कितने गुणों को धारण करने वाला (ईशानः) ऐश्वर्ययुक्त (तूतुजानः) शीघ्र करने हारे आप जैसे सूर्य्य (अपाम्) जलों के सम्बन्ध से (अर्णांसि) जलों के प्रवाहों को (चरध्यै) बहाने के अर्थ (वृत्राय) मेघ के वास्ते वर्त्तता है वैसे (अस्मै) इस शत्रु के वास्ते शस्त्र को (प्र) अच्छे प्रकार (भर) धारण कर (तिरश्चा) टेढ़ी गति वाले वज्र से (गोर्न) वाणियों के विभाग के समान (पर्व) उस के अंग अंग को काटने को (इष्यन्) इच्छा करता हुआ (इदु) ऐसे ही (विरद) अनेक प्रकार हनन कीजिये ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । हे सेनापते ! आप; जैसे प्राण वायु से तालु आदि स्थानों में जीभ का ताड़न कर भिन्न भिन्न अक्षर वा पदों के विभाग प्रसिद्ध होते हैं वैसे ही सभाध्यक्ष शत्रु बल को छिन्न भिन्न और अङ्गों को विभागयुक्त करके इसी प्रकार शत्रुओं को जीता कर ॥ १२ ॥

अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः ।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून् ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् मनुष्य ! (यत्) जो सभा आदि का पति जैसे (ऋघायमाणः) मरे हुए के समान आचरण करने वाले (आयुधानि) तोप, बन्दूक, तलवार आदि शस्त्र अस्त्रों को (इष्णानः) नित्य नित्य सम्हालते और शोधते हुए (नव्यः) नवीन शस्त्रास्त्र विद्या को पढ़े हुए आप (युधे) संग्राम में (शत्रून्) दुष्ट शत्रुओं को (निरिणाति) मारते हो उस (तुरस्य) शीघ्रतायुक्त (अस्य) सभापति आदि के (इत्) ही (उक्थैः) कहने योग्य वचनों से (पूर्व्याणि) प्राचीन सत्पुरुषों ने किये (कर्माणि) करने योग्य और करने वाले को अत्यन्त इष्ट कर्मों को करता है वैसे (प्रब्रूहि) अच्छे प्रकार कहो ॥ १३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि सभाध्यक्ष आदि के विद्या, विनय, न्याय और शत्रुओं को जीतना आदि कर्मों की प्रशंसा करके और उत्साह देकर इनका सदा सत्कार करें, तथा इन सभाध्यक्ष आदि राजपुरुषों से शस्त्राऽस्त्र चलाने की शिक्षा और शिल्पविद्या की चतुराई को प्राप्त हुए सेना में रहने वाले वीर पुरुषों के साथ शत्रुओं को जीत कर प्रजा की निरन्तर रक्षा करें ॥ १३ ॥

अस्येदु॑ भि॒या गि॒रय॑श्च दृ॒ळ्हा द्यावा॑ च॒ भूमा॑ ज॒नुष॑स्तुजेते ।
उपो॑ वे॒नस्य॒ जोगु॑वान ओ॒णिं स॒द्यो भु॑वद्वी॒र्या॑य नो॒धाः ॥ १४ ॥

पदार्थ—जो (जोगुवानः) अव्यक्त शब्द करने (नोधाः) सेना का नायक सभा आदि का अध्यक्ष (सद्यः) शीघ्र (वीर्याय) पराक्रम के सिद्ध करने के लिए (भुवत्) हो जैसे सूर्य से (दृळ्हाः) पुष्ट (गिरयः) मेघ के समान (अस्य) इस (वेनस्य) मेधावी के (इत्) (उ) ही (भिया) भय से (च) शत्रुजन कम्पायमान होते हैं जैसे (द्यावा) प्रकाश (च) और भूमि (तुजेते) काँपते हैं वैसे (जनुषः) मनुष्य लोग भय को प्राप्त होते हैं वैसे हम लोग उस सभाध्यक्ष के (उपो) निकट भय को प्राप्त न (भूम) हों और वह सभाध्यक्ष भी (ओणिम्) दुःख को दूर कर सुख को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। यह सब को निश्चय समझना चाहिये कि विद्या आदि उत्तम गुण तथा ईश्वर से जगत् के उत्पन्न होने विना सभाध्यक्ष आदि प्रजा का पालन करने और जैसे सूर्य सब लोकों को प्रकाशित तथा धारण करने को समर्थ नहीं हो सकता। इसलिए विद्या आदि श्रेष्ठ गुणों और परमेश्वर ही की प्रशंसा और स्तुति करना उचित है ॥ १४ ॥

अस्माइदु त्यदनु दाय्येषामेको यद्वव्ने भूरेरीशानः ।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ॥ १५ ॥

पदार्थ—जैसे विद्वानों ने (**एषाम्**) इन मनुष्यादि प्राणियों को सुख (**दायि**) दिया हो वैसे जो (**एकः**) उत्तम से उत्तम सहाय रहित (**भूरेः**) अनेक प्रकार के ऐश्वर्य्य का (**ईशानः**) स्वामी (**इन्द्रः**) सभा आदि का पति (**सूर्ये**) सूर्य्यमण्डल में है वैसे (**सौवश्व्ये**) उत्तम उत्तम घोड़े से युक्त सेना में (**यत्**) जिस (**पस्पृधानम्**) परस्पर स्पर्द्धा करते हुए (**सुष्विम्**) उत्तम ऐश्वर्य्य के देने वाले (**एतशम्**) घोड़े की (**अनुवव्ने**) यथायोग्य याचना करता है (**त्यत्**) उस को (**अस्मै**) इस (**इदु**) सभाध्यक्ष ही के लिये (**प्रावत्**) अच्छे प्रकार रक्षा करता है वह सभा के योग्य होता है ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। मनुष्यों को उचित है कि जो बहुत सुख देने तथा घोड़ों की विद्या को जानने वाला और उपमा रहित पुरुषार्थी विद्वान् मनुष्य है उसी को प्रजा की रक्षा करने में नियुक्त करें और बिजुली की विद्या का ग्रहण भी अवश्य करें ॥ १५ ॥

एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन् ।
एषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १६ ॥

पदार्थ—हे (**हारियोजन**) यानों में घोड़े वा अग्नि आदि पदार्थ युक्त होने वालों को पढ़ने वा जानने वाले (**इन्द्र**) परम ऐश्वर्य के प्राप्त कराने वाले (**धियावसुः**) बुद्धि और कर्म के निवास करने वाले आप जो (**एषु**) इन स्तुति तथा विद्या पढ़ने वाले मनुष्यों में (**विश्वपेशसम्**) सब विद्यारूप गुणयुक्त (**धियम्**) धारणा वाली बुद्धि को (**प्रातः**) प्रतिदिन (**मक्षु**) शीघ्र (**आधाः**) अच्छे प्रकार धारण करते हो तो जिन को ये सब विद्या (**जगम्यात्**) वार वार प्राप्त होवें (**गोतमासः**) अत्यन्त सब विद्याओं की स्तुति करने वाले (**ते**) आप के लिये (**एव**) ही (**सुवृक्ति**) अच्छे प्रकार दोषों को अलग करने वाले शुद्धि किये हुए (**ब्रह्माणि**) बड़े बड़े सुख करने वाले अन्नों को देने के लिये (**अक्रन्**) संपादन करते हैं उनकी अच्छे प्रकार सेवा कीजिये ॥ १६ ॥

भावार्थ—परोपकारी विद्वानों को उचित है कि नित्य प्रयत्नपूर्वक अच्छी शिक्षा और विद्या के दान से सब मनुष्यों को अच्छी शिक्षा से युक्त विद्वान् करें। तथा इतर मनुष्यों को भी चाहिये कि पढ़ाने वाले विद्वानों को अपने निष्कपट मन, वाणी और कर्मों से प्रसन्न करके ठीक ठीक पकाए हुए अन्न आदि पदार्थों से नित्य सेवा करें। क्योंकि पढ़ने से पृथक् दूसरा कोई

उत्तम धर्म नहीं है इसलिये सब मनुष्यों को परस्पर प्रीतिपूर्वक विद्या की वृद्धि करनी चाहिये ॥ १६ ॥

इस सूक्त में सभाध्यक्ष आदि का वर्णन और अग्निविद्या का प्रचार करना आदि कहा है, इस से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये ॥

यह इकसठवां सूक्त समाप्त हुआ ।

गौतमो नोधा ऋषिः । इन्द्रो देवता । १—४—६ विराडार्षी त्रिष्टुप् ५—५—६ निचृदार्षीत्रिष्टुप्, १०—१३—आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । १—२—४—६—६—१३ धैवतः स्वरः । ३ । ७ । ८, भूरिगार्षीपंक्तिः छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

प्र मन्महे शवसानाय शूषमाङ्गूषं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत् ।

सुवृक्तिभिः स्तुवत ऋग्मियायार्चामार्कं नरे विश्रुताय ॥ १ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! जैसे हम, (सुवृक्तिभिः) दोषों को दूर करने हारी क्रियाओं से (शवसानाय) ज्ञान बलयुक्त (गिर्वणसे) वाणियों से स्तुति के योग्य (ऋग्मियाय) ऋचाओं से प्रसिद्ध (नरे) न्याय करने (विश्रुताय) अनेक गुणों के सह वर्त्तमान होने के कारण श्रवण करने योग्य (स्तुवते) सत्य की प्रशंसा वाले सभाध्यक्ष के लिये (अङ्गिरस्वत्) प्राणों के बल के समान (शूषम्) बल और (अर्कम्) पूजा करने योग्य (आङ्गूषम्) विज्ञान और स्तुति समूह को (अर्चाम) पूजा करें और (प्रमन्महे) मानें और उससे प्रार्थना करें वैसे तुम भी किया करो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि जैसे परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना से सुख को प्राप्त होते हैं वैसे सभाध्यक्ष के आश्रय से व्यवहार और परमार्थ के सुखों को सिद्ध करें ॥ १ ॥

प्र वो महे महि नमो भरध्वमाङ्गूष्यं शवसानाय साम ।

येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा अर्चन्तो अङ्गिरसो गा अविन्दन् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (वः) तुम वा (नः) हम लोगों को (अङ्गिरसः) प्राणादि विद्या और (पदज्ञाः) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को जानने वाले (महे) बड़े (शवसानाय) ज्ञान बलयुक्त सभाध्यक्ष के लिये (महि) बहुत (साम) दुःख नाश करने वाले (आङ्गूष्यम्) विज्ञानयुक्त (नमः) नमस्कार वा अन्न का

(अर्चन्तः) सत्कार करते हुये (पूर्वे) पहिले सब विद्याओं को पढ़ते हुए (पितरः) विद्यादि सद्गुणों से रक्षा करने वाले विद्वान् लोग (येन) जिस विज्ञान वा कर्म से (गाः) विद्या प्रकाशयुक्त वाणियों को (अविन्दन्) प्राप्त हों उनका तुम लोग (प्रभरध्वम्) भरण पोषण सदा किया करो ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् लोग जिन वेद सृष्टिक्रम और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से कहे हुए धर्मयुक्त मार्ग से चलते हुए सब प्रकार परमेश्वर का पूजन करके सब के हित को धारण करते हैं वैसे ही तुम लोग भी करो ॥ २ ॥

इन्द्रस्याङ्गिरसां चेष्टौ विदत्सरमा तनयाय धासिम् ।

बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद्गाः समुस्रियाभिर्वावशन्त नरः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (नरः) सुखों को प्राप्त कराने वाले मनुष्यो ! जैसे (सरमा) विद्या धर्मादि बोधों को उत्पन्न करने वाली माता (तनयाय) पुत्र के लिये (धासिम्) अन्न आदि अच्छे पदार्थों को (विदत्) प्राप्त करती है। जैसे (बृहस्पतिः) बड़े-बड़े पदार्थों को रक्षा करने वाला सभाध्यक्ष जैसे सूर्य (उस्रियाभिः) किरणों से (अद्रिम्) मेघ को (भिनत्) विदारण और जैसे (गाः) सुशिक्षित वाणियों को (विदत्) प्राप्त करता है। वैसे तुम भी (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य वाले परमेश्वर सभाध्यक्ष वा सूर्य (च) और (अङ्गिरसाम्) विद्या धर्म और राज्य वाले विद्वानों की (इष्टौ) इष्ट की सिद्ध करने वाली नीति में विद्यादि उत्तम गुणों का (संवावशन्त) अच्छे प्रकार बार-बार प्रकाश करो जिससे सब संसार में अविद्यादि दुष्ट गुण नष्ट हों ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को उचित है कि माता के समान प्रजा में वर्त्त सूर्य के समान विद्यादि उत्तम गुणों का प्रकाश कर ईश्वर की कही वा विद्वानों से अनुष्ठान की हुई नीति में स्थित हो और सब के उपकार को करते हुए विद्यादि सद्गुण के आनन्द में सदा मग्न रहें ॥ ३ ॥

स सुष्टुभा स स्तुभा सप्त विप्रैः स्वरेणाद्रिं स्वर्यो३नवग्वैः ।

सरण्युभिः फलिगमिन्द्र शक्र वलं रवेण दरयो दशग्वैः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (सः) वह (इन्द्र) परमैश्वर्य युक्त (शक्र) शक्ति को प्राप्त करने वाले सभाध्यक्ष ! जो आप (नवग्वैः) नवों से प्राप्त हुई गति वा (दशग्वैः) दश दिशाओं में जाने (सरण्युभिः) सब शास्त्रों में विज्ञान करने वाली गतियों से युक्त (विप्रैः) बुद्धिमान् विद्वानों के साथ जैसे सूर्य्य (सुष्टुभा) उत्तम

द्रव्य गुण और क्रियाओं के स्थिर करने वा (स्तुभा) धारण करने वाले (रवेण) शस्त्रों के शब्द से जैसे सूर्य (सप्त) सात संख्या वाले स्वरों के मध्य में वर्त्तमान (स्वरेण) उदात्तादि वा षड्जादि स्वर से (अद्रिम्) बलयुक्त (फलिगम्) मेघ का हनन करता है वैसे शत्रुओं को (दरयः) विदारण करते हो (सः) सो आप हम लोगों से (स्वर्यः) स्तुति करने योग्य हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे बिजुली अपने उत्तम उत्तम गुणों से वर्त्तमान हुई जीवन के हेतु मेघ के उत्पन्न करने आदि कार्यों को सिद्ध करती हैं। वैसे ही सभाध्यक्ष आदि अत्यन्त उत्तम उत्तम विद्या बल से युक्तों के साथ वर्त्त के विद्यारूपी न्याय के प्रकाश से अन्याय वा दुष्टों का निवारण कर चक्रवर्त्ति राज्य का पालन करें ॥ ४ ॥

गृणानो अङ्गिरोभिर्दस्म वि वरुषसा सूर्येण गोभिरन्धः ।
वि भूम्या अप्रथय इन्द्र सानु दिवो रज उपरमस्तभायः ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) शत्रुओं के (दस्म) नाश करने वाले सभाध्यक्ष ! (गृणानः) उपदेश करते हुए आप जैसे बिजुली (अङ्गिरोभिः) प्राण (उषसा) प्रातःकाल के (सूर्येण) सूर्य के प्रकाश तथा (गोभिः) किरणों से (अन्धः) अन्न को प्रकट करती है वैसे धर्मराज्य और सेना को (विवः) प्रकट करो वैसे बिजुली को (व्यप्रथयः) विविधप्रकार से विस्तृत कीजिये जैसे सूर्य (भूम्याः) पृथिवी में श्रेष्ठ (दिवः) प्रकाश के (सानु) ऊपरले भाग (रजः) सब लोकों और (उपरम्) मेघ को (अस्तभायः) संयुक्त करता है वैसे धर्मयुक्त राज्य की सेना को विस्तार युक्त कीजिये और शत्रुओं को बन्धन करते हुए आप हम सब लोगों से स्तुति करने के योग्य हो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को प्रातः-काल सूर्य के किरण और प्राणों के समान उक्त गुणों का प्रकाश करके दुष्टों का निवारण करना चाहिये। जैसे सूर्य प्रकाश को फैला और मेघ को उत्पन्न कर वर्षाता है वैसे ही सभाध्यक्ष आदि मनुष्यों को प्रजा में उत्तम विद्या उत्पन्न करके सुखों की वर्षा करनी चाहिये ॥ ५ ॥

तदु प्रयक्षतममस्य कर्म दस्मस्य चारुतममस्ति दंसः ।
उपह्वरे यदुपरा अपिन्वन्मध्वर्णसो नद्य१श्चतस्रः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को उचित है कि (अस्य) इस (दस्मस्य) दुःख नष्ट करने वाले सभाध्यक्ष वा बिजुली के (उपह्वरे) कुटिलतायुक्त व्यवहार में (यत्) जो (प्रयक्षतमम्) अत्यन्त पूजने योग्य (चारुतमम्) अतिसुन्दर

(दंसः) विद्या वा सुखों के जानने का हेतु (कर्म) कर्म (अस्ति) है (तत्) उसको जानकर आचरण करना वा जिन के इस प्रकार के कर्म से (मध्वर्णसः) मधुर जल वाली (नद्याः) नदी और (चतस्रः) चार (उपराः) दिशा (अपिन्वत्) सेवन वा सेचन करती हैं। उन दोनों को विद्या से अच्छे प्रकार सेवन करना चाहिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि अति उत्तम उत्तम कर्मों का सेवन यज्ञ का अनुष्ठान और राज्य का पालन करके सब दिशाओं में कीर्त्ति की वर्षा करें ॥ ६ ॥

द्विता वि वंव्रे सनजा सनीळे अयास्यः स्तवमानेभिरर्कैः ।
भगो न मेनें परमे व्योमन्नधारयद्रोदसी सुदंसाः ॥ ७ ॥

पदार्थ—जैसे विद्वानों से जो (सनीडे) समीप (स्तवमानेभिः) स्तुति युक्त (अर्कैः) स्तोत्रों से (सनजा) सनातन कारण से उत्पन्न हुई (द्विता) दो अर्थात् प्रजा और सभाध्यक्ष को (विवव्रे) विशेष करके स्वीकार किया जाता है वैसे मनुष्य (अयास्यः) अनायास से सिद्ध करने वाला (सुदंसाः) उत्तम कर्मयुक्त मैं जैसे (परमे) (व्योमन्) उत्तम अन्तरिक्ष में (रोदसी) प्रकाश और भूमि को (भगो न) सूर्य के समान विद्वान् (मेने) मानता और (अधारयत्) धारण करता है वैसे इस को धारण करता और मानता हूँ ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जैसे सभा आदि का अध्यक्ष ऐश्वर्य को और जैसे सूर्य प्रकाश तथा पृथिवी को धारण करता है वैसे ही न्याय और विद्या का धारण करें ॥ ७ ॥

सनाद्दिवं परि भूमा विरूपे पुनर्भुवा युवती स्वेभिरेवैः ।
कृष्णेभिरक्तोषा रुशद्भिर्वपुर्भिरा चरतो अन्यान्या ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे स्त्री पुरुषो! तुम जैसे (सनात्) सनातन कारण से (दिवम्) सूर्य प्रकाश और (भूमा) भूमि को प्राप्त होकर (पुनर्भुवा) वार वार पर्याय से उत्पन्न होके (युवती) युवावस्था को प्राप्त हुए स्त्री पुरुष के समान (विरूपे) विविध रूप से युक्त (अक्ता) रात्रि (उषाः) दिन (स्वेभिः) क्षण आदि अवयव (रुशद्भिः) प्राप्ति के हेतु रूपादि गुणों के साथ (वपुर्भिः) अपनी आकृति आदि शरीर वा (कृष्णेभिः) परस्पर आकर्षणादि को (एवैः) प्राप्त करने वाले गुणों के साथ (अन्यान्या) भिन्न भिन्न परस्पर मिले हुए (पर्य्याचरतः) जाते आते हैं वैसे स्वयंवर अर्थात् परस्पर की प्रसन्नता से विवाह करके एक दूसरे के साथ प्रीति युक्त होके सदा आनन्द में वर्त्तें ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जैसे चक्र के समान सर्वदा वर्त्तमान रात्रि दिन परस्पर संयुक्त वर्त्तते हैं वैसे विवाहित स्त्री और पुरुष अत्यन्त प्रेम के साथ वर्त्ता करें॥ ८॥

सनेमि सख्यं स्वपस्यमानः सूनुर्दाधार शवसा सुदंसाः।
आमासु चिद्दधिषे पक्वमन्तः पयः कृष्णासु रुशद्रोहिणीषु ॥९॥

पदार्थ—जो (स्वपस्यमानः) उत्तम कर्मों को करते हुए के समान (सुदंसा) उत्तम कर्म्मयुक्त (रुशत्) शुभ गुणों की प्राप्ति करता हुआ तू जैसे (सूनुः) सत्पुत्र अपने माता पिता का पोषण करते हुए के समान रात्रि दिन (सनेमि) प्राचीन (सख्यम्) मित्रपन के कालावयवों को (दाधार) धारण करता और (रोहिणीषु) उत्पन्नशील (कृष्णासु) सब प्रकार से पकी हुई (चित्) और (आमासु) कच्ची ओषधियों के (अन्तः) मध्य में (पयः) रस को धारण करता है वैसे (शवसा) बल के साथ गृहाश्रम को (दधिषे) धारण कर॥ ९॥

भावार्थ—विद्वानों को जैसे ये दिन रात कच्चे पक्के रसों के उत्पन्न करने और उत्पन्न हुए पदार्थों की वृद्धि वा नाश करने वाले सबों के मित्र के समान वर्त्तमान हैं वैसे सब मनुष्यों के साथ वर्त्तना योग्य है॥ ९॥

सनात्सनीळा अवनीरवाता व्रता रक्षन्ते अमृताः सहोभिः।
पुरू सहस्रा जनयो न पत्नीर्दुवस्यन्ति स्वसारो अह्रयाणम् ॥१०॥

पदार्थ—जैसे (अवाताः) हिंसारहित (अवनीः) भूमि सब की रक्षा (पुरुसहस्रा) बहुत हजारह (जनयः) उत्पन्न करने हारे पति (पत्नीः) (न) जैसे अपनी स्त्रियों की रक्षा करते हैं वैसे (सनीडाः) समीप में वर्त्तमान (अमृता) नाशरहित विद्वान् लोग (सहोभिः) विद्या योग धर्म वालों से (सनात्) सनातन (व्रता) सत्य धर्म के आचरणों की (रक्षन्ते) रक्षा करते हैं और जैसे (स्वसारः) बहिनें (अह्रयाणम्) लज्जा को अप्राप्त अपने भाई की (दुवस्यन्ति) सेवा करती हैं वैसे विद्या और धर्म ही को सेवते हैं वे मुक्ति को प्राप्त होते हैं॥ १०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पति लोग अपनी स्त्रियों बहिनों और भाइयों तथा विद्यार्थी लोग आचार्य्यों की सेवा से सुख और विद्याओं को प्राप्त होते हैं वैसे धर्मात्मा विद्वान् स्त्री पुरुष लोग घर में वसते हुए मुक्ति को प्राप्त होते हैं॥ १०॥

सनायुवो नमसा नव्यो अर्कैर्वसूयवो मतयो दस्म दद्रुः।
पतिं न पत्नीरुशतीरुशन्तं स्पृशन्ति त्वा शवसावन्मनीषाः ॥११॥

पदार्थ—हे (**शवसावन्**) बलयुक्त (**दस्म**) अविद्यान्धकार विनाशक सभापते ! तू जैसे (**सनायुवः**) सनातन कर्म के करने वालों के समान आचरण करते (**नमसा**) अन्न वा नमस्कार तथा (**अर्कैः**) मन्त्र अर्थात् विचारों के साथ वर्त्तमान (**वसूयवः**) अपने लिये विद्या धनों और (**मनीषाः**) विज्ञानों के इच्छा करने (**मतयः**) सब को जानने वाले विद्वान् लोग (**न**) जैसे (**नव्यः**) नवीन (**उशन्तीः**) काम की चेष्टा से युक्त (**पत्नीः**) स्त्री (**उशन्तम्**) काम की इच्छा करने वाले (**पतिम्**) पति का (**स्पृशन्ति**) आलिङ्गन करती हैं और जैसे (**दस्रुः**) कुटिल गति को प्राप्त होने वालों को जानते हैं वैसे (**त्वा**) तुझ को प्रजा सेवें ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को समझना चाहिये कि जैसे स्त्री पुरुषों के साथ वर्त्तमान होने से सन्तानों की उत्पत्ति होती है वैसे ही रात दिन के एक साथ वर्त्तमान होने से सब व्यवहार सिद्ध होते हैं और जैसे सूर्य का प्रकाश और पृथिवी की छाया के विना रात और दिन का सम्भव नहीं होता वैसे ही स्त्री पुरुष के विना मैथुनी सृष्टि नहीं हो सकती ॥ ११ ॥

सनादेव तव रायो गभस्तौ न क्षीयन्ते नोप दस्यन्ति दस्म ।
द्युमाँ असि क्रतुमाँ इन्द्र धीरः शिक्षा शचीवस्तव नः शचीभिः ॥१२॥

पदार्थ—हे (**दस्म**) शत्रुओं के नाश करने वाले (**शचीवः**) उत्तम बुद्धि वा वाणी से युक्त (**इन्द्र**) उत्तम धन वाले सभाध्यक्ष ! जो आप (**द्युमान्**) विद्यादि श्रेष्ठ गुणों के प्रकाश से युक्त (**क्रतुमान्**) बुद्धि से विचार कर कर्म करने वाले (**धीरः**) ध्यानी (**असि**) हैं उस (**तव**) आप के (**गभस्तौ**) राजनीति के प्रकाश में (**सनात्**) सनातन से (**रायः**) धन (**नेव**) नहीं (**क्षीयन्ते**) क्षीण तथा (**तव**) आपके प्रबन्ध में (**न**) नहीं (**उपदस्यन्ति**) नष्ट होते हैं। सो आप अपनी (**शचीभिः**) बुद्धि वाणी और कर्म से (**नः**) हम लोगों को (**शिक्ष**) उपदेश दीजिये ॥ १२ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जो सनातन वेद के ज्ञान से शिक्षा को और सभापति आदि के अधिकार को प्राप्त हो के प्रजा का पालन करे उसी मनुष्य को धर्मात्मा जानें ॥ १२ ॥

सनायते गोतम इन्द्र नव्यमतक्षद्ब्रह्म हरियोजनाय ।
सुनीथाय नः शवसान नोधाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥१३॥

पदार्थ—हे (**शवसान**) बलयुक्त (**इन्द्र**) उत्तम धन वाले सभाध्यक्ष

(धियावसुः) बुद्धि और कर्म के साथ वसने वाले (गोतमः) अत्यन्त स्तुति के योग्य तथा (नोधाः) स्तुति करने वाले आप (हरियोजनाय) मनुष्यों के समाधान के लिये (नव्यम्) नवीन (ब्रह्म) बड़े धन को (अतक्षत्) क्षीण करते हो (नः) हम लोगों को (सुनीथाय) सुखों की प्राप्ति के लिये (प्रातः) प्रतिदिन (मक्षू) शीघ्र (सनायते) सनातन के समान आचरण करते हो तथा (नः) हम लोगों के सुखों के लिये शीघ्र (जगम्यात्) प्राप्त हो ॥ १३ ॥

भावार्थ—सभापति आदि को चाहिये कि मनुष्यों के हित के लिये प्रतिदिन नवीन नवीन धन और अन्न को उत्पन्न करें । जैसे प्राणवायु से मनुष्यों को सुख होते हैं वैसे ही सभाध्यक्ष सब को सुखी करे ॥ १३ ॥

इस सूक्त में ईश्वर, सभाध्यक्ष, दिन, रात, विद्वान्, सूर्य और वायु के गुणों का वर्णन होने से पूर्व सूक्तार्थ के साथ इस सूक्तार्थ की सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह वासठवां सूक्त समाप्त हुआ ।

गोतमो नोधा ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ७ । ८ भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । ३ विराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । ४ विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ भुरिगार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ६ स्वराडार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

त्वं महाँ इन्द्र यो ह शुष्मैर्द्यावा जज्ञानः पृथिवी अमे धाः ।
यद्ध ते विश्वा गिरयश्चिदभ्वा भिया दृळ्हासः किरणा नैजन् ॥१॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) उत्तम संपदा के देने वाले परमात्मन् ! जो (**त्वम्**) आप (**महान्**) गुणों से अनन्त (**जज्ञानः**) प्रसिद्ध (**शुष्मैः**) बलादि के (**अमे**) प्रकाश में (**ह**) निश्चय करके (**द्यावापृथिवी**) प्रकाश और पृथिवी को (**धाः**) धारण करते हो (**ते**) आप के (**अभ्वा**) उत्पन्न रहित सामर्थ्य के (**भिया**) भयसे (**ह**) ही (**यत्**) जो (**विश्वा**) सब (**गिरयः**) पर्वत वा मेघ (**दृढासः**) दृढ़ हुए (**चित्**) और (**किरणाः**) कान्ति (**नैजन्**) कभी कम्प को नहीं प्राप्त होते ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को ऐसा समझना चाहिये कि जो परमेश्वर अपने सामर्थ्य और बल आदि से सब जगत् को रच के दृढ़ता से धारण करता है उसी की सब काल में उपासना करें । तथा जिस सूर्य्यलोक ने अपने आकर्षण आदि गुणों से पृथिवी आदि लोकों

को धारण किया है उसी को भी परमेश्वर का बनाया और धारण किया जानें ॥ १ ॥

आ यद्धरी इन्द्र विव्रंता वेरा ते वज्रं जरिता बाह्वोर्धात् ।
येनाविहर्य्यतक्रतो अमित्रान् पुर इष्णासि पुरुहूत पूर्वीः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (अविहर्य्यतक्रतो) दुष्ट बुद्धि और पाप कर्मों से रहित (पुरुहूत) बहुत विद्वानों से सत्कार को प्राप्त कराने वाले सभाध्यक्ष ! आप (यत्) जिस कारण (विव्रता) नाना प्रकार के नियमों के उत्पन्न करने वाले (हरी) सेना और न्याय के प्रकाश को (आवेः) अच्छे प्रकार जानते हो (येन) जिस वज्र से (अमित्रान्) शत्रुओं को मारते तथा जिससे उन के (पूर्वीः) बहुत (पुरः) नगरों को (इष्णासि) जीतने के लिये इच्छा करते और शत्रुओं के पराजय और अपने विजय के लिये प्रतिक्षण जाते हो इस से (जरिता) सब विद्याओं की स्तुति करने वाला मनुष्य (ते) आप के (बाह्वोः) भुजाओं के बल के आश्रय से (वज्रम्) वज्र को (आधात्) धारण करता है ॥ २ ॥

भावार्थ—सभापति आदि को उचित है कि इस प्रकार के उत्तम स्वभाव गुण और कर्मों का स्वीकार करें कि जिससे सब मनुष्य इस कर्म को देख तथा शिष्ट होकर निष्कण्टक राज्य के सुख को सदा भोगें ॥ २ ॥

त्वं सत्य इन्द्र धृष्णुरेतान् त्वमृभुक्षा नर्य्यस्त्वं षाट् ।
त्वं शुष्णं वृजने पृक्ष आणौ यूने कुत्साय द्युमते सचाहन् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) उत्तम संपदा के देने वाले सभाध्यक्ष ! (त्वम्) आप जिस कारण (सत्यः) जीव स्वरूप से अनादि हो जिस कारण (त्वम्) आप (धृष्णुः) दृढ़ हो तथा जिस कारण (त्वम्) आप (ऋभुक्षाः) गुणों से बड़े (नर्य्यः) मनुष्यों के बीच चतुर और (षाट्) सहनशील हो इससे (वृजने) जिसमें शत्रुओं को प्राप्त होते हैं (पृक्षे) संयुक्त इकट्ठे होते हैं जिस में उस (आणौ) संग्राम में (सचा) शिष्टों के सम्बन्ध से (कुत्साय) शस्त्रों को धारण किये (द्युमते) उत्तम प्रकाशयुक्त (यूने) शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त हुए मनुष्य के लिये (शुष्णम्) पूर्ण बल को देते हो । जिस कारण आप शत्रुओं को (अहन्) मारते तथा (एतान्) इन धर्मात्मा श्रेष्ठ पुरुषों का पालन करते हो इससे पूजने योग्य हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—सभा और सभापति के विना शत्रुओं का पराजय और राज्य का पालन किसी से नहीं हो सकता । इसलिये श्रेष्ठ गुण वालों की सभा और सभापति से इन सब काय्यों को सिद्ध कराना मनुष्यों का मुख्य काम है ॥ ३ ॥

त्वं ह॒ त्यदि॑न्द्र चोदीः॒ सखा॑ वृ॒त्रं यद्व॑ज्रिन्वृषकर्मन्नु॒भ्नाः ।
यद्ध॑ शूर वृषमणः परा॒चैर्वि दस्यूँ॒र्योना॒वकृ॑तो वृथा॒षाट् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (वज्रिन्) उत्तम शस्त्रों के धारण करने तथा (इन्द्र) उत्तम गुणों के जानने वाले सभाध्यक्ष ! जिस कारण (त्वम्) आप (ह) निश्चय करके (त्यत्) उस (वृत्रम्) शत्रु को (पराचैः) दूर (चोदीः) कर देते हो इसी कारण श्रेष्ठ पुरुषों के धारण और पालन करने को समर्थ हो। हे (वृषकर्मन्) श्रेष्ठ मनुष्यों के समान उत्तम कर्मों के करने वाले सभाध्यक्ष ! (यत्) जिस कारण आप (सखा) सब के मित्र हो इसी से मित्रों की रक्षा करते हो। हे (शूर) निर्भय सेनाध्यक्ष ! (यत्) जो आप (ह) निश्चय करके (दस्यून्) दूसरे के पदार्थों को छीन लेने वाले दुष्टों को (अकृतः) दूर से (वि) विशेष कर के छेदन करते हो इससे प्रजा की रक्षा करने के योग्य हो। हे (वृषमणः) शूरवीरों में विचारशील सभाध्यक्ष ! आप जिस कारण सुखों को (उभ्नाः) पूर्ण करते हो इस से सत्कार करने के योग्य हो। तथा हे सभाध्यक्ष ! जिस कारण आप (वृथाषाट्) सहज स्वभाव से सहन करने वाले हो इससे (योनौ) घर में रहने वाले सब मनुष्यों के सुखों को पूर्ण करते हो॥ ४॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जैसे सूर्य्य अपने प्रकाश से सब को आनन्दित कर तथा मेघ को उत्पन्न करके वर्षाता है और अन्धकार को निवारण करके अपने प्रकाश को फैलाता है वैसे ही सभाध्यक्ष विद्यादि उत्तम गुणों से सब को सुखी शरीर वा आत्मा के बल को सिद्ध धर्म शिक्षा अभय आदि को वर्षा अधर्मरूपी अन्धकार और शत्रुओं का निवारण करके राज्य में प्रकाशित होवे॥ ४॥

त्वं ह॒ त्यदि॑न्द्रारिषण्यन्दृ॒ळ्हस्य॑ चि॒न्मर्त्ता॑नामजु॑ष्टौ ।
व्य१॒स्मदा काष्ठा॒ अर्व॑ते व॒र्घने॑व वज्रिञ्छ्नथिह्य॒मित्रा॑न् ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (अरिषण्यन्) अपने शरीर से हिंसा अधर्म्म की इच्छा नहीं करने वाले (वज्रिन्) उत्तम आयुधों से युक्त (इन्द्र) सभापते ! (त्वम्) आप (ह) प्रसिद्ध (अस्मत्) हम लोगों से (अर्वते) घोड़े आदि धनों से युक्त सेना के लिये (व्यावः) अनेक प्रकार स्वीकार करते हो (त्यत्) उस (दृळस्य) स्थिर राज्य (चित्) और (मर्त्तानाम्) प्रजा के मनुष्यों को शत्रुओं की (अजुष्टौ) अप्रीति होने में (घनेव) जैसे सूर्य मेघों को काटता (अमित्रान्) धर्म्मविरोधी शत्रुओं को (काष्ठाः) दिशाओं के प्रति (श्नथिहि) मारो॥ ५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। सभा सभापति आदि को

उचित है कि राज्य तथा सेना में प्रीति उत्पन्न और शत्रुओं में द्वेष करके जैसे सूर्य मेघों का नित्य छेदन करता है वैसे दुष्ट शत्रुओं का सदैव छेदन किया करें ॥ ५ ॥

त्वां ह त्यदिन्द्रार्णसातौ स्वर्मीळ्हे नर आजा हवन्ते ।
तव स्वधाव इयमा समर्य ऊतिर्वाजेष्वतसाय्या भूत् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (**स्वधावः**) उत्तम अन्न और (**इन्द्र**) श्रेष्ठ ऐश्वर्य के प्राप्त कराने वाले जगदीश्वर वा सभाध्यक्ष (**नरः**) राजनीति के जानने वाले मनुष्य (**त्यत्**) उस (**अर्णसातौ**) विजय की प्राप्ति कराने वाले शूरवीर योधा मनुष्यों का सेवन हो जिस (**स्वर्मीढे**) सुख के सींचने से युक्त (**आजौ**) संग्राम में (**त्वाम्**) आप को (**ह**) निश्चय करके (**आहवन्ते**) पुकारते हैं । जिस कारण (**तव**) आप की जो (**इयम्**) यह (**समर्य्ये**) संग्राम वा (**वाजेषु**) विज्ञान अन्न और सेनादिकों में (**अतसाय्या**) निरन्तर सुखों की प्राप्ति कराने वाले (**ऊतिः**) रक्षण आदि क्रिया है वह हम लोगों को प्राप्त (**भूत्**) होवे ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि सब धर्मसम्बन्धि कार्य्यों में ईश्वर वा सभाध्यक्ष का सहाय लेके सम्पूर्ण कार्यों को सिद्ध करें ॥ ६ ॥

त्वं ह त्यदिन्द्र सप्त युध्यन् पुरो वज्रिन् पुरुकुत्साय दर्दः ।
बर्हिर्न यत्सुदासे वृथा वर्गंहो राजन्वरिवः पूरवे कः ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (**वज्रिन्**) उत्तम शस्त्रों से युक्त (**राजन्**) प्रकाश करने तथा (**इन्द्र**) विजय के देनेवाले सभा के अधिपति ! जो आपके (**सप्त**) सभा, सभासद्, सभापति, सेना, सेनापति, भृत्य, प्रजा ये सात हैं उन्हीं के साथ प्रेम से वर्त्तमान हो के शत्रुओं के साथ (**युध्यन्**) युद्ध करते हुए जिस कारण तुम उन उन शत्रुओं के (**पुरः**) नगरों को (**दर्दः**) विदारण करते हो । जो आप (**अंहोः**) प्राप्त होने योग्य राज्य के (**पुरुकुत्साय**) बहुत मनुष्यों को ग्रहण करने योग्य (**पूरवे**) पूर्ण सुख के लिये (**यत्**) जो (**वरिवः**) सेवन करने योग्य पदार्थों को (**सुदासे**) उत्तम दान करने वाले मनुष्यों से युक्त देश में (**बर्हिः**) अन्तरिक्ष के (**न**) समान (**कः**) करते हो (**यत्**) जो (**वृथा**) व्यर्थ काम करने वाले मनुष्य हों (**त्यत्**) उनको (**वर्क्**) वर्जित करते हो इस कारण हम सब लोगों को सत्कार करने योग्य हो ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्य्य सब जगत् के हित के लिये मेघ को वर्षाता है वैसे ही सब का स्वामी सभापति सभों का हित सिद्ध करे ॥ ७ ॥

त्वं त्यां न इन्द्र देव चित्रामिषमापो न पीपयः परिज्मन् ।
यया शूर प्रत्यस्मभ्यं यंसि त्मनमूर्जं न विश्वध क्षरध्यै ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे बिजुली के समान (**परिज्मन्**) सब ओर से दुष्टों के नष्ट करने (**विश्वध**) विश्व के धारण करने (**शूर**) निर्भय (**देव**) विद्या और शिक्षा के प्रकाश करने और (**इन्द्र**) सुखों के देने वाले सभाध्यक्ष ! जैसे (**त्वम्**) आप (**यया**) जिससे (**नः**) हम लोगों के (**त्मनम्**) आत्मा को (**क्षरध्यै**) चलायमान होने को (**ऊर्जम्**) अन्न वा पराक्रम के (**न**) समान (**यंसि**) दुष्ट काम से रोक देते हो (**त्यम्**) उस (**चित्राम्**) अद्भुत सुखों को करने वाली (**इषम्**) इच्छा वा अन्न को (**अस्मभ्यम्**) हम लोगों के लिये (**आपो न**) जलों के समान (**प्रतिपीपयः**) वार वार पिलाते हो वैसे हम भी आप को अच्छे प्रकार प्रसन्न करें ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे अन्न क्षुधा को और जल तृषा को निवारण करके सब प्राणियों को सुखी करते हैं । वैसे सभापति आदि सब को सुखी करें ॥ ८ ॥

अकारि त इन्द्र गोतमेभिर्ब्रह्माण्योक्ता नमसा हरिभ्याम् ।
सुपेशसं वाजमा भरा नः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) सभा आदि के पति ! (**ते**) आप के जिन (**गोतमेभिः**) विद्या से उत्तम शिक्षा को प्राप्त हुए शिक्षित पुरुषों से (**नमसा**) अन्न और धन (**हरिभ्याम्**) बल और पराक्रम से जिन (**ओक्ता**) अच्छे प्रकार प्रशंसा किये हुए (**ब्रह्माणि**) बड़े बड़े अन्न और धनों को (**अकारि**) करते हैं उनके साथ (**नः**) हम लोगों के लिये उन को जैसे (**धियावसुः**) कर्म और बुद्धि से सुखों में बसाने वाला विद्वान् (**सुपेशसम्**) उत्तमरूप युक्त (**वाजम्**) विज्ञान समूह को (**प्रातः**) प्रतिदिन (**जगम्यात्**) पुनः पुनः प्राप्त होवे और इसका धारण करे वैसे आप पूर्वोक्त सब को (**मक्षु**) शीघ्र (**आभर**) सब ओर से धारण कीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—जैसे बिजुली सूर्य्य आदि रूप से सब जगत् को आनन्दों से पुष्ट करती है वैसे सभाध्यक्ष आदि भी उत्तम धन और श्रेष्ठ गुणों से प्रजा को पुष्ट करें ॥ ९ ॥

इस सूक्त में ईश्वर सभाध्यक्ष और अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्तार्थ के साथ संगति समझनी चाहिये ॥

यह त्रेसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

गौतमो नोधा ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ४ । ६ । ६ । १४ विराड्जगती । २ । ३ । ५ । ७ । १०—१३ निचृज्जगती । ८ । १२ जगती छन्दः । निषादः स्वरः । १५ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधसे नोधः सुवृक्तिं प्र भरा मरुद्भ्यः ।
अपो न धीरो मनसा सुहस्त्यो गिरः समञ्जे विदथेष्वाभुवः ॥१॥

पदार्थ—हे (नोधः) स्तुति करने वाले मनुष्य ! (आभुवः) अच्छे प्रकार उत्पन्न होने वाले (अपः) कर्म वा प्राणों के समान (धीरः) संयम से रहने वाला विद्वान् (सुहस्त्यः) उत्तम हस्तक्रियाओं में कुशल मैं (मनसा) विज्ञान और (मरुद्भ्यः) पवनों के सकाश से (विदथेषु) युद्धादि चेष्टामय यज्ञों में (गिरः) वाणी (सुवृक्तिम्) उत्तमता से दुष्टों को रोकने वाली क्रिया को (समञ्जे) अपनी इच्छा से ग्रहण करता हूँ । वैसे ही तू (प्रभर) धारण कर ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि जितनी चेष्टा, भावना, बल, विज्ञान, पुरुषार्थ, धारण करना, छोड़ना, कहना, सुनना, वढ़ना, नष्ट होना, भूख, प्यास आदि हैं वे सब वायु के निमित्त से ही होते हैं । जिस प्रकार कि इस विद्या को मैं जानता हूं वैसे ही तुम भी ग्रहण करो ऐसा उपदेश सब को करो ॥ १ ॥

ते जज्ञिरे दिव ऋष्वास उक्षणो रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपसः ।
पावकासः शुचयः सूर्या इव सत्वानो न द्रप्सिनो घोरवर्पसः ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को उचित है कि जो (रुद्रस्य) जीव वा प्राण के सम्बन्धी पवन (दिवः) प्रकाश से (जज्ञिरे) उत्पन्न होते हैं जो (सूर्याइव) सूर्य के किरणों के समान (ऋष्वासः) ज्ञान के हेतु (उक्षणः) सेचन और (पावकासः) पवित्र करने वाले (शुचयः) शुद्ध जो (सत्वानः) बल पराक्रम वाले प्राणिलों के (न) समान (मर्याः) मरण धर्मयुक्त (असुराः) प्रकाश रहित (अरेपसः) पापों से पृथक् (द्रप्सिनः) नाना प्रकार के मोहों से युक्त (घोरवर्पसः) भयङ्कर वायु के हैं (ते) उन्हीं के संग से विद्यादि उत्तम गुणों का ग्रहण करो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं । जैसे ईश्वर की सृष्टि में सिंह हाथी और मनुष्य आदि प्राणी वलवान् हाते हैं वैसे वायु भी है । जैसे सूर्य की किरणें पवित्र करने वाली हैं वैसे वायु भी । इन दोनों के विना रोग, रोग का नाश, मरण और जन्म आदि व्यवहार नहीं हो सकते । इससे मनुष्यों

को चाहिये कि इनके गुणों को जानके सब कार्यों में यथावत् संप्रयोग करें ॥ २ ॥

युवानो रुद्रा अजरा अभोग्घनो ववक्षुरध्रिगावः पर्वता इव ।
दृळ्हा चिद्विश्वा भुवनानि पार्थिवा प्र च्यावयन्ति दिव्यानि मज्मना ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो ये (**पर्वताइव**) पर्वत वा मेघ के समान धारण करने वाले (**युवानः**) पदार्थों के मिलाने तथा पृथक् करने में बढ़ बलवान् (**अभोग्घनः**) भोजन करने तथा मरने से पृथक् (**अध्रिगावः**) किरणों को नहीं धारण करने वाले अर्थात् प्रकाशरहित (**अजराः**) जन्म लेके वृद्ध होना फिर मरना इत्यादि कामों से रहित तथा कारण रूप से नित्य (**रुद्राः**) ज्वर आदि की पीड़ा से रुलाने वाले वायु जीवों को (**ववक्षुः**) रुष्ट करते हैं (**मज्मना**) बल से (**पार्थिवा**) भूगोल आदि (**दिव्यानि**) प्रकाश में रहने वाले सूर्य आदि लोक (**चित्**) और (**विश्वा**) सब (**भुवनानि**) लोक (**दृढा**) दृढ़ स्थिरों को भी (**प्रच्यावयन्ति**) चलायमान करते हैं उन को विद्या से यथावत् जान कर कार्य्यों के बीच लगाओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को जैसे मेघ जलों के आधार और पर्वत ओषधि आदि के आधार पर हैं । वैसे ही ये संयोग वियोग करने वाले सब के आधार सुख दुःख होने के हेतु नित्यरूप गुण से अलग स्पर्श गुण वाले पवन हैं ऐसा समझना योग्य है । और इन्हों के विना जल अग्नि और भूगोल तथा इनके परमाणु भी जाने आने को समर्थ नहीं हो सकते ॥ ३ ॥

चित्रैरञ्जिभिर्वपुषे व्यञ्जते वक्षःसु रुक्माँ अधि येतिरे शुभे ।
अंसेष्वेषां नि मिमृक्षुर्ऋष्टयः साकं जज्ञिरे स्वधया दिवो नरः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो ये (**ऋष्टयः**) इधर उधर चलने तथा (**नरः**) पदार्थों को प्राप्त कराने वाले पवन (**चित्रैः**) आश्चर्य्य रूप क्रिया गुण और स्वभाव तथा (**अञ्जिभिः**) प्रकट करना आदि धनों से (**शुभे**) सुन्दर (**वपुषे**) शरीर के धारण वा पोषण के लिये (**व्यञ्जते**) विशेष करके प्राप्त होते हैं जो (**वक्षःसु**) हृदयों में (**रुक्मान्**) बिजुली तथा जाठराग्नि के प्रकाशों को (**अधियेतिरे**) यत्नपूर्वक सिद्ध करते (**स्वधया**) पृथिवी, आकाश तथा अन्न के (**साकम्**) साथ (**जायन्ते**) उत्पन्न होते और (**दिवः**) सूर्य आदि के प्रकाशों को उत्पन्न करते हैं (**एषाम्**) इन पवनों के योग से (**अंसेषु**) बल पराक्रम के मूल कन्धों में (**निमिमृक्षुः**) सब पदार्थ समूह को प्राप्त हो सकते हैं उन को यथावत् जान कर अपने कार्य्यों में सम्प्रयुक्त करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—विद्वानों को उचित है कि ऐसे ऐसे विलक्षण गुण वाले वायुओं को जानकर शुद्ध शुद्ध सुखों को भोगें ॥ ४ ॥

ईशानकृतो धुनयो रिशादसो वातान्विद्युतस्तविषीभिरक्रत ।
दुहन्त्यूधर्दिव्यानि धूतयो भूमिं पिन्वन्ति पयसा परिज्रयः ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो ये (**ईशानकृतः**) जीवों को ऐश्वर्य्य युक्त करने (**धुनयः**) धूलि के वर्षाने वृक्ष आदि के कम्पाने (**रिशादसः**) जीवों को दुःख देने वाले रोगों के नाश करने (**धूतयः**) सब पदार्थों को कम्पाने और (**परिज्रयः**) सब ओर से पदार्थों को जीर्ण करने वाले वायु (**तविषीभिः**) अपने बलों से (**विद्युतः**) बिजुली आदि को (**अक्रत**) उत्पन्न करते हैं तथा जो (**पयसा**) जल वा रस से (**ऊधः**) उषा को (**दुहन्ति**) पूर्ण करते हैं जो (**भूमिम्**) पृथिवी (**दिव्यानि**) शुद्ध जल आदि वस्तु तथा उत्तम कार्य्यों का (**पिन्वन्ति**) सेवन वा सेचन करते हैं (**वातान्**) उन पवनों को जानो ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोगों के लिये परमेश्वर वायु के गुणों का उपदेश करता है कि कहे वा न कहे गुणवाले वायु बिजुली को उत्पन्न करके वर्षा द्वारा भूमि पर ओषधि आदि के सेचन से सब प्राणियों को सुख देने वाले होते हैं ऐसा तुम सब लोग जानो ॥ ५ ॥

पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयो घृतवद्विदथेष्वाभुवः ।
अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनमुत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम् ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे (**आभुवः**) अच्छे प्रकार उत्पन्न होने तथा (**सुदानवः**) उत्तम दान देने के हेतु (**मरुतः**) पवन (**विदथेषु**) यज्ञों में (**घृतवत्**) घृत की तुल्य (**पयः**) जल वा रस को (**पिन्वन्ति**) सेवन वा सेचन करते हैं (**मिहे**) वीर्य वृष्टि के लिये (**अत्यम्**) घोड़े के (**न**) समान (**अपः**) प्राण जल वा अन्तरिक्ष के अवयवों को (**विनयन्ति**) नाना प्रकार से प्राप्त करते हैं (**उत्सम्**) और कूप के समान (**अक्षितम्**) नाशरहित (**स्तनयन्तम्**) शब्द करते हुए (**वाजिनम्**) उत्तम वेगवाले पुरुष को (**दुहन्ति**) पूर्ण करते हैं वैसे हों और उन को कार्यों में लगाओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा तथा वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे यज्ञ में घृत आदि पदार्थ क्षेत्र पशु आदि की तृप्ति के लिये कूप और घोड़ा है वैसे विद्या से संप्रयोग किये हुए पवन सब कार्यों को सिद्ध करते हैं ॥ ६ ॥

महिषासो मायिनश्चित्रभानवो गिरयो न स्वतवसो रघुस्यदः ।
मृगा इव हस्तिनः खादथा वना यदारुणीषु तविषीरयुग्ध्वम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग (यत्) जैसे (महिषासः) बड़े बड़े सेवन करने योग्य गुणों से युक्त (चित्रभानवः) चित्र विचित्र दीप्ति वाले (मायिनः) उत्तम बुद्धि होने के हेतु (स्वतवसः) अपने बल से बलवान् (रघुस्यदः) अच्छे स्वाद के कारण वा उत्तम चलन क्रिया से युक्त (गिरयो न) मेघों के समान जलों को तथा (हस्तिनः) हाथी और (मृगाइव) बलवाले हरिणों के समान वेगयुक्त वायु (वना) जल वा वनों को (खादथ) भक्षण करते हैं वैसे इन (तविषीः) बलों को (आरुणीषु) प्राप्त होते हैं सुख जिन्हों में उन सेना और यानों की क्रियाओं में (अयुग्ध्वम्) ठीक ठीक विचारपूर्वक संयुक्त करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। मनुष्यों को चाहिये कि पवनों के विना हमारे चलना खाना यान का चलाना आदि काम भी सिद्ध नहीं हो सकते इससे इन वायुओं को सेना विमान और नौका आदि यानों में संयुक्त करके अग्नि जलों के संयोग से यानों को शीघ्र चलाया करें ॥ ७ ॥

सिंहा इव नानदति प्रचेतसः पिशा इव सुपिशो विश्ववेदसः ।
क्षपो जिन्वन्तः पृषतीभिर्ऋष्टिभिः समित्सबाधः शवसाहिमन्यवः ॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो ये (प्रचेतसः) उत्तम विज्ञान होने के हेतु (सुपिशः) सुन्दर अवयवों के करने वाले (सबाधः) पदार्थों को अपने नियम में रखने वाले (अहिमन्यवः) मेघ की वर्षा का ज्ञान कराने वाले वायु (इत्) ही (ऋष्टिभिः) व्यवहारों के प्राप्त कराने और (पृषतीभिः) अपने गमनागमन वेगादिगुणों से (क्षपः) रात्रि को (संजिन्वन्तः) तृप्त करते हुए (विश्ववेदसः) सब कर्मों के प्राप्त कराने वाले पवन (शवसा) अपने बलों से (सिंहा इव) सिंहों के समान तथा (पिशा इव) बड़े बल वाले हाथियों के समान (नानदति) अत्यन्त शब्द करते हैं उन को कार्यों की सिद्धि के लिये यथावत् संयुक्त करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो ! तुम ऐसा जानो कि जितना बल पराक्रम जीवन सुनना विचारना आदि क्रिया हैं वे सब वायु के सकाश से ही होती हैं ॥ ८ ॥

रोदसी आ वदता गणश्रियो नृषाचः शूराः शवसाहिमन्यवः ।
आ वन्धुरेष्वमतिर्न दर्शता विद्युन्न तस्थौ मरुतो रथेषु वः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (गणश्रियः) इकठ्ठे होके शोभा को प्राप्त होने (नृषाचः) मनुष्यों को कर्मों में संयुक्त करने और (अहिमन्यवः) अपनी व्याप्ति को जानने वाले (शूराः) शूरवीर के तुल्य (मरुतः) शिल्पविद्या के जानने वाले ऋत्विज विद्वान् लोग जो (अमतिर्न) जैसे रूप तथा (दर्शता) देखने योग्य (विद्युत्) बिजुली (तस्थौ) वर्त्तमान होती वैसे वर्त्तमान वायु (बन्धुरेषु) यान यन्त्रों के बन्धनों में जो (शवसा) बल से (रोदसी) प्रकाश और भूमि को धारण करते हैं तथा जो (वः) तुम लोगों के (रथेषु) रथों में जोड़े हुए कार्य्यों को सिद्ध करते हैं उनका हम लोगों के लिये (आवदत) उपदेश कीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। मनुष्यों को ऐसा जानना योग्य है कि सब मूर्त्तिमान् द्रव्यों के आधार शूरवीरता के तुल्य तथा शिल्पविद्या और अन्य कार्य्यों के हेतु मुख्य करके पवन ही हैं अन्य नहीं ॥ ९ ॥

विश्ववेदसो रयिभिः समोकसः संमिश्लासस्तविषीभिर्विरप्शिनः ।
अस्तार इषुं दधिरे गभस्त्योरनन्तशुष्मा वृषखादयो नरः ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (नरः) विद्या को प्राप्त होने वाले मनुष्यो ! तुम लोग जो (समोकसः) जिन से अच्छे प्रकार निवास होता है (संमिश्लासः) अग्नि आदि चार तत्वों के साथ अत्यन्त मिले हुए (इषुम्) वाण वा इच्छा विशेष छोड़ते हुए (वृषखादयः) रसों को वर्षाने वाले पदार्थों के खाने वाले (अनन्तशुष्माः) अनन्त बलवान् (विरप्शिनः) बड़े (विश्ववेदसः) सब पदार्थों की प्राप्ति के हेतु होके सब पदार्थों को इधर उधर चलाने वाले वायु (रयिभिः) चक्रवर्त्ती राज्य की शोभा आदि तथा (तविषीभिः) बल पराक्रम सेना आदि प्रजा और (गभस्त्योः) किरण युक्त सूर्य्य वा प्रसिद्ध अग्नि के समान भुजाओं में बल को (दधिरे) धारण करते हैं उनके गुणों को ठीक ठीक जान कर उनसे विद्या शिक्षा और यान के चलाने की क्रियाओं को ग्रहण करो ॥ १० ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग विद्वान् तथा वायु आदि पदार्थविद्या के विना परलोक और इस लोक के सुखों की सिद्धि कभी नहीं कर सकते ॥ १० ॥

हिरण्ययेभिः पविभिः पयोवृध उज्जिघ्नन्त आपथ्यो३ न पर्वतान् ।
मखा अयासः स्वसृतो ध्रुवच्युतो दुध्रकृतो मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम लोग (आपथ्यो न) अच्छे प्रकार (हिरण्ययेभिः) सुवर्ण आदि के योग से प्रकाश रूप (पविभिः) पवित्र चक्रों के रथ से मार्ग में चलने के समान (भ्राजदृष्टयः) जिनसे व्यवहार प्राप्त कराने वाली

क्रान्ति प्रसिद्ध हों (बुध्नकृतः) धारण करने वाले बल आदि के उत्पन्न करने (ध्रुवच्युतः) निश्चल आकाश से चलायमान (स्वसृतः) अपने गुणों को प्राप्त हो के चलनेहारे (पयोवृधः) जल वा रात्रि के बढ़ाने वाले (मखाः) यज्ञ के योग्य (अयासः) प्राप्त होने के स्वभाव से युक्त (मरुतः) पवन (पर्वतान्) मेघ वा पर्वतों को (उज्जिद्नमान्ते) नष्ट करते हैं उन पवनों के गुणों को जानकर अपने कार्यों में संयुक्त करो ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जिन वायुओं से वृष्टि आदि की उत्पत्ति होती है उन का युक्ति के साथ सेवन किया करें ॥ ११ ॥

घृषुं पावकं वनिनं विचर्षणिं रुद्रस्य सूनुं हवसा गृणीमसि ।
रजस्तुरं तवसं मारुतं गणमृजीषिणं वृषणं सश्चत श्रिये ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (हवसा) दान और ग्रहण से (श्रिये) विद्या शिक्षा और चक्रवर्ती राज्य की प्राप्ति के लिये जिस (रुद्रस्य) मुख्य वायु के (सूनुम्) पुत्र के समान वर्त्तमान (विचर्षणिम्) भेद करने तथा (वनिनम्) संग्राम करने वाले (घृषुम्) घिसने के स्वभाव से युक्त (पावकम्) पवित्र करने वाले (तवसम्) महा बलवान् (रजस्तुरम्) लोकों को शीघ्र चलाने (ऋजीषिणम्) उत्तम शुद्धि होने के कारण और (वृषणम्) वृष्टि करने वाले (मारुतम्) पवनों के (गणम्) समूह का (गृणीमसि) उपदेश करते हैं उसको तुम भी (सश्चत) जानो ॥ १२ ॥

भवार्थ—मनुष्यो को चाहिये कि वायुसमुदाय के विना हमारे कोई काम सिद्ध नहीं हो सकते ऐसा निश्चयतया वायुविद्या का स्वीकार करके अपने कार्यों की सिद्धि अवश्य करें ॥ १२ ॥

प्र नू स मर्त्तः शवसा जनाँ अति तस्थौ व ऊती मरुतो यमावत ।
अर्वद्भिर्वाजं भरते धना नृभिरापृच्छ्यं क्रतुमा क्षेति पुष्यति ॥१३॥

पदार्थ—हे (मरुतः) युक्ति से सेवन किये हुये वायु के समान तुम (यम्) जिस मनुष्य की (आवत) रक्षा आदि करते हो (सः) वह (मर्त्तः) मनुष्य (ऊती) रक्षा आदि के सहित (शवसा) विद्या क्रियायुक्त बल (अर्वद्भिः) घोड़ों और (नृभिः) मनुष्यों के साथ (वाजम्) वेग अन्न (वः) तुम (जनान्) मनुष्यादि प्राणियों और (धना) धनों को पूजने योग्य (क्रतुम्) बुद्धि वा कर्म्म को (नु) शीघ्र (प्रभरते) अच्छे प्रकार धारण करता (आक्षेति) अच्छे प्रकार

निवास युक्त करता शरीर और आत्मा अन्तःकरण से (पुष्यति) बल को पुष्ट करता (तस्थौ) स्थिर होता है ॥ १३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य प्राणवायु की विद्या को जानकर उपयोग करते हैं वे बलवान् प्रतिष्ठा को प्राप्त हो और दुःख तथा शत्रुओं को जीत कर उत्तम हाथी घोड़े मनुष्य धन और बुद्धि से युक्त होके सदा सब को पुष्ट करते हैं ॥ १३ ॥

चर्कृत्यं मरुतः पृत्सु दुष्टरं द्युमन्तं शुष्मं मघवत्सु धत्तन ।

धनस्पृतमुक्थ्यं विश्वचर्षणिं तोकं पुष्येम तनयं शतं हिमाः ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे (मरुतः) पवनवद्वर्त्तमान मनुष्यो ! जैसे हम (पृत्सु) सेनाओं में (चर्कृत्यम्) वार वार करने योग्य कार्यों में कुशल (दुष्टरम्) दुःख से पार होने योग्य (द्युमन्तम्) अति प्रकाशयुक्त (शुष्मम्) सुखाने वाले बल को (मघवत्सु) प्रशंसनीय धनयुक्त राजकार्य्यों में (धनस्पृतम्) धन से प्रसन्न वा सेवा को प्राप्त हुए (उक्थ्यम्) कहने सुनने योग्य (विश्वचर्षणिम्) सब को देखने योग्य (तोकम्) पुत्र तथा (तनयम्) विद्वान् पौत्र को प्राप्त होके (शतं हिमाः) हेमन्त ऋतु युक्त सौ वर्ष पर्य्यन्त (पुष्येम) बल पराक्रम आदि से पुष्ट होवें वैसे कर्म करके तुम भी सुख को (धत्तन) धारण कीजिये ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् लोग पवनों के योग से हमारे बिजुली, यन्त्र, बैल, सौ वर्ष पर्य्यन्त जीना और शरीर आदि में पुष्टि का होना ये सब काम होते हैं इसलिये इन वायुओं की विद्या को युक्ति के साथ जान कर इनसे उपयोग लिया करते हैं वैसे अन्य लोग भी आचरण करें ॥ १४ ॥

नू ष्ठिरं मरुतो वीरवन्तमृतीषाहं रयिमस्मासु धत्त ।

सहस्रिणं शतिनं शूशुवांसं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे (मरुतः) पवन के तुल्य वर्त्तमान ! जैसे विद्वान् लोग (अस्मासु) हम लोगों में (स्थिरम्) निश्चल (वीरवन्तम्) प्रशंसा करने योग्य वीर पुरुषों से युक्त (ऋतिषाहम्) सत्य के सहन करने वाले (रयिम्) विद्याराज्य और सुवर्ण आदि धन को धारण करें और (धियावसुः) बुद्धि और कर्मों से युक्त विद्वान् (जगम्यात्) शीघ्र प्राप्त हो वैसे उनको तुम (प्रातः) प्रतिदिन (मक्षु) शीघ्र (धत्त) धारण करो ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे अति प्रशंसा करने योग्य बुद्धि वाला विद्या पुरुषार्थों से युक्त

विद्वान् जन वायु आदि पदार्थों के सकाश से दृढ़ निश्चल बहुत सुखों को सिद्ध करके आनन्द को प्राप्त होता है वैसे तुम भी इस विद्या को प्राप्त होकर आनन्द भोगो ॥ १५ ॥

इस सूक्त में वायु के गुणों का उपदेश करने से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति समझनी चाहिये ॥

॥ यह चौसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

पराशर ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । २ । ३ । ५ निचृत्पङ्क्तिः । ४ विराट्-पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

पश्वा न तायुं गुहा चतन्तं नमो युजानं नमो वहन्तम् ।
सजोषा धीराः पदैरनु ग्मन्नुप त्वा सीदन् विश्वे यजत्राः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे सर्व विद्यायुक्त सभेश ! (**विश्वे**) सब (**यजत्राः**) संगति प्रिय (**सजोषाः**) सब तुल्य प्रीति को सेवन करने वाले (**धीराः**) बुद्धिमान् लोग (**पदैः**) प्रत्यक्ष प्राप्त जो गुणों के नियम उन्हों से (**न**) जैसे (**पश्वा**) पशु के ले जाने वाले (**तायुम्**) चोर को प्राप्त कर आनन्द होता है वैसे जिस (**गुहा**) गुफा में (**चतन्तम्**) व्याप्त (**नमः**) वज्र के समान आज्ञा का (**युजानम्**) समाधान करने (**नमः**) सत्कार को (**वहन्तम्**) प्राप्त करते हुए (**त्वा**) आपको (**अनुग्मन्**) अनुकूलता पूर्वक प्राप्त तथा (**उपसीदन्**) समीप स्थित होते हैं उस आप को हम लोग भी इस प्रकार प्राप्त होके आप के समीप स्थित होते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे वस्तु को चुराए हुए चोर के पाद आदि अङ्ग वा स्वरूप देखने से उस को पकड़कर चोरे हुए पशु आदि पदार्थों का ग्रहण करते हैं वैसे ही अन्तःकरण में उपदेश करने वाले सब के आधार विज्ञान से जानने योग्य परमेश्वर तथा बिजुलीरूप अग्नि को जान और प्राप्त होके सब आनन्द का स्वीकार करो ॥ १ ॥

ऋतस्य देवा अनु व्रता गुर्भुवत् परिष्टिर्द्यौर्न भूम ।
वर्धन्तीमापः पन्वा सुशिश्विमृतस्य योना गर्भे सुजातम् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**न**) जैसे विद्वान् लोग (**परिष्टिः**) सब प्रकार

खोजने योग्य (द्यौर्न) सूर्य्य के प्रकाश के तुल्य (भुवत्) होकर सब पदार्थों को दृष्टिगोचर करता हैं। वैसे (ऋतस्य) सत्य धर्म स्वरूप आज्ञा विज्ञान से (व्रता) सत्य भाषण आदि नियमों को (अनुगुः) प्राप्त होकर आचरण करते हैं तथा जैसे ये (ऋतस्य) कारण रूपी सत्य की (योना) योनि अर्थात् निमित्त में स्थित (सुजातम्) अच्छी प्रकार प्रसिद्ध (सुशिश्विम्) अच्छे पढ़ाने वाले सभापति की (पन्वा) स्तुति करने योग्य कर्म्म से (ईम्) पृथिवी को (आपः) जल वा प्राण को (वर्धन्ति) बढ़ा कर ज्ञानयुक्त कर देते हैं वैसे हम लोग (भूम) होवें और तुम भी होओ ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य के प्रकाश से सब पदार्थ दृष्टि में आते हैं वैसे ही विद्वानों के संग से वेदविद्या के उत्पन्न होने और धर्माचरण की प्रवृत्ति में परमेश्वर और बिजुली आदि पदार्थ अपने अपने गुण कर्म स्वभावों से अच्छे प्रकार देखे जाते हैं ऐसा तुम लोग जान कर अपने विचार से निश्चित करो ॥ २ ॥

पुष्टिर्न रण्वा क्षितिर्न पृथ्वी गिरिर्न भुज्म क्षोदो न शम्भु ।
अत्यो नाज्मन्त्सर्गप्रतक्तः सिन्धुर्न क्षोदः क ईं वराते ॥ ३ ॥

पदार्थ—जो मनुष्य उस परमेश्वर को (रण्वा) सुख से प्राप्त कराने वाला (पुष्टिः) शरीर आत्मा और इन्द्रियों की पुष्टि के (न) समान (क्षोदः) जल (शम्भु) सुख सम्पन्न करने वाले के (न) समान तथा (अज्मन्) मार्ग में (अत्यः) घोड़े के समान (सर्गप्रतक्तः) जल को संकोच करने वाले (सिन्धुः) समुद्र (क्षोदः) जल के (न) समान (ईम्) जनाने तथा प्राप्त करने योग्य परमेश्वर वा बिजुलीरूप अग्नि को (कः) कौन विद्वान् मनुष्य (वराते) स्वीकार करता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र से उपमालङ्कार है। कोई विद्वान् मनुष्य परमेश्वर को प्राप्त होके और बिजुलीरूप अग्नि को जान के उससे उपकार लेने को समर्थ होता है जैसे उत्तम पुष्टि पृथिवी का राज्य मेघ की वृष्टि उत्तम जल उत्तम घोड़े और समुद्र बहुत सुखों को प्राप्त कराते हैं। वैसे ही परमेश्वर और बिजुली भी सब आनन्दों को प्राप्त कराते हैं परन्तु इन दोनों का जानने वाला विद्वान् मनुष्य दुर्लभ है ॥ ३ ॥

जामिः सिन्धूनां भ्रातेव स्वस्रामिभ्यान्न राजा वनान्यत्ति ।
यद्वातजूतो वना व्यस्थादग्निर्ह दाति रोमा पृथिव्याः ॥ ४ ॥

पदार्थ—(यत्) जो (वातजूतः) वायु से वेग को प्राप्त हुआ (अग्निः) अग्नि (वना) वनों का (दाति) छेदन करता तथा (पृथिव्याः) पृथिवी के (ह) निश्चय करके (रोमा) रोमों के समान वेदन करता है वह (सिन्धूनाम्) समुद्र और नदियों के (जामिः) सुख प्राप्त कराने वाला बन्धु (स्वस्राम्) बहिनों के (भ्रातेव) भाई के समान तथा (इभ्यान्) हाथियों की रक्षा करने वाले पीलवानों को (राजेव)राजा के समान (व्यस्थात्) स्थित होता और (वनानि) वनों को (अत्ति) अनेक प्रकार भक्षण करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। जब मनुष्य लोग यान चालन आदि कार्यों में वायु से संयुक्त किये हुए अग्नि को चलाते हैं तब वह बहुत कार्यों को सिद्ध करता है ऐसा सब मनुष्यों को जानना चाहिये ॥ ४ ॥

श्वसित्यप्सु हंसो न सीदन् क्रत्वा चेतिष्ठो विशामुषर्भुत् ।

सोमो न वेधा ऋतप्रजातः पशुर्न शिश्वा विभुर्दूरेभाः ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो (अप्सु) जलों में (हंसः) हंस पक्षी के (न) समान (सीदन्) जाता आता डूबता उछलता हुआ (विशाम्) प्रजाओं को (उषर्भुत्) प्रातःकाल में बोध कराने वा (क्रत्वा) अपनी बुद्धि वा कर्म्म से (चेतिष्ठः) अत्यन्त ज्ञान कराने वाले (सोमः) ओषधि समूह के (न) समान (ऋतप्रजातः) कारण से उत्पन्न होकर वायु जल में प्रसिद्ध (वेधाः) पुष्ट करने वाले (शिशुना) बछड़ा आदि से (पशुः) गौ आदि के (न) समान (विभुः) व्यापक हुआ (दूरेभाः) दूर देश में दीप्तियुक्त बिजुली आदि अग्नि के समान (श्वसिति) प्राण अपान आदि को करता है, उस को शिल्पादि कार्यों में संप्रयुक्त करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे बिजुली के विना किसी मनुष्य के व्यवहार की सिद्धि नहीं हो सकती इस अग्नि विद्या से परीक्षा करके कार्यों में संयुक्त किया हुआ अग्नि बहुत सुखों को सिद्ध करता है ॥ ५ ॥

इस सूक्त में ईश्वर अग्निरूप बिजुली के वर्णन से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

॥ यह पैंसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

शाक्त्यः पराशरऋषिः । अग्निर्देवता । १ पङ्क्तिः । २ भुरिक्पङ्क्तिः । ३ । ४ । निचृत्पंक्ति ५ विराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

रयिर्न चित्रा सूरो न संदृगायुर्न प्राणो नित्यो न सूनुः ।
तक्वा न भूर्णिर्वना सिषक्ति पयो न धेनुः शुचिर्विभावा ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप सब लोग (रयिर्न) द्रव्य समूह के समान (चित्रा) आश्चर्य गुण वाले (सूरः) सूर्य्य के (न) समान (संदृक्) अच्छे प्रकार दिखाने वाला (आयुः) जीवन के (न) समान (प्राणः) सब शरीर में रहने वाला (नित्यः) कारणरूप से अविनाशिस्वरूप वायु के (न) समान (सूनुः) कार्य्यरूप से वायु के पुत्र के तुल्य वर्त्तमान (पयः) दूध के (न) समान (धेनुः) दूध देने वाली गौ (तक्वा) चोर के (न) समान (भूर्णिः) धारण करने (विभावा) अनेक पदार्थों का प्रकाश करने वाला (शुचिः) पवित्र अग्नि (वना) वन वा किरणों को (सिसक्ति) संयुक्त होता वा संयोग करता है उसको यथावत् जान के कार्यों में उपयुक्त करो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को उचित है कि जिस ईश्वर ने प्रजा के हित के लिये बहुत गुण वाले अनेक कार्य्यों के उपयोगी सत्य स्वभाव वाले इस अग्नि को रचा है उसी की सदा उपासना करें ॥ १ ॥

दाधार क्षेममोको न रण्वो यवो न पक्वो जेता जनानाम् ।
ऋषिर्न स्तुभ्वा विक्षु प्रशस्तो वाजी न प्रीतो वयो दधाति ॥ २ ॥

पदार्थ—जो मनुष्य (ओकः) घर के (न) समान (रण्वः) रमणीय-स्वरूप (पक्वः) पके (यवः) सुख करने वाले यव के (न) समान (ऋषिः) मन्त्रों के अर्थ को जानने वाले विद्वान् के (न) समान (स्तुभ्वा) सत्कार के योग्य (वाजी) वेगवान् घोड़े के समान (प्रीतः) कमनीय (विक्षु) प्रजाओं में (प्रशस्तः) श्रेष्ठ (जनानाम्) मनुष्य आदि प्राणियों को (जेता) सुख प्राप्त कराने वाला (वयः) जीवन (दधाति) धारण करता है वह (क्षेमम्) रक्षा को (दाधार) धारण करता है ॥ २ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य जीवन के निमित्त ब्रह्मचर्य्यादि कर्मों को काम की सिद्धि के लिये अच्छे प्रकार जानके युक्तिपूर्वक आहार और व्यवहार के अर्थ यथायोग्य पदार्थों को धारण करते हैं वे बहुत काल पर्यन्त जी के सदा सुखी होते हैं ॥ २ ॥

दुरोकशोचिः क्रतुर्न नित्यो जायेव योनावरं विश्वस्मै ।
चित्रो यदभ्राट् श्वेतो न विक्षु रथो न रुक्मी त्वेषः समत्सु ॥ ३ ॥

पदार्थः—(यत्) जो मनुष्य (क्रतुः) बुद्धि वा कर्म के (न) समान (नित्यः) अविनाशि स्वभाव (जायेव) भार्या के समान (योनौ) कारण रूप में (अरम्) अलंकरता (श्वेतः) शुद्ध शुक्लवर्ण के (न) समान (विक्षु) प्रजाओं में शुद्ध करने (रथः) सुवर्णादि से निर्मित विमानादि यान के (न) समान (रुक्मी) रुचि करने वाले कर्म वा गुणयुक्त (दुरोकशोचिः) दूरस्थानों में दीप्तियुक्त (विश्वस्मै) सब जगत् के लिये सुख करने (समत्सु) संग्रामों में (चित्रः) अद्भुत स्वभावयुक्त (अभ्राट्) आपही प्रकाशमान होने से शुद्ध (त्वेषः) प्रदीप्त स्वभाव वाला है वही चक्रवर्ती राजा होने के योग्य होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जो ज्ञान और कर्मकाण्ड के समान सदा वर्त्तमान अनुकूल स्त्री के समान सब सुखों का निमित्त सूर्य के समान शुभगुणों को प्रकाश करने आश्चर्य गुण वाले रथ के समान मोक्ष में प्राप्त करने वीर के समान युद्धों में विजय करने वाला हो वह राज्यलक्ष्मी को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

सेनेव सृष्टामं दधात्यस्तुर्न दिद्युत्त्वेषप्रतीका ।
यमो ह जातो यमो जनित्वं जारः कनीनां पतिर्जनीनाम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो सेनापति (यमः) नियम करने वाला (जातः) प्रकट (यमः) सर्वथा नियमकर्ता (जनित्वम्) जन्मादि कारणयुक्त (कनीनाम्) कन्यावत् वर्त्तमान रात्रियों के (जारः) आयु का हननकर्त्ता सूर्य के समान (जनीनाम्) उत्पन्न हुई प्रजाओं का (पतिः) पालनकर्त्ता (सृष्टा) प्रेरित (सेनेव) अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुई वीर पुरुषों की विजय करने वाली सेना के समान (अस्तुः) शत्रुओं के ऊपर शस्त्र अस्त्र चलाने वाले (त्वेषप्रतीका) दीप्तियों के प्रतीति करने वाले (दिद्युन्न) बिजुली के समान (अमम्) अपरिपक विज्ञानयुक्त जन को (दधाति) धारण करता है उसका सेवन करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि विद्या से अच्छे प्रयत्न द्वारा जैसे की हुई उत्तम शिक्षा से सिद्ध की हुई सेना शत्रुओं को जीत कर विजय करती है जैसे धनुर्वेद के जानने वाले विद्वान् लोग शत्रुओं के ऊपर शस्त्र अस्त्रों को छोड़ उन का छेदन करके भगा देते हैं वैसे उत्तम सेनापति सब दुःखों का नाश करता है ऐसा तुम जानो ॥ ४ ॥

तं वंश्चराथां वयं वसत्याऽस्तं न गावो नक्षन्त इद्धम् ।
सिन्धुर्न क्षोदः प्र नीचीरैनोन्नवन्त गावः स्वर्दृशीके ॥ ५ ॥

पदार्थ—जो (चराथा) चररूप (वसत्या) वास करने योग्य पृथिवी के सह वर्त्तमान (गावः) गौ (न) जैसे (अस्तम्) घर को (नक्षन्ते) प्राप्त होती जैसे (गावः) किरण (स्वर्दृशीके) देखने के हेतु व्यवहार में (इद्धम्) सूर्य्य को (नवन्ते) प्राप्त होते हैं (न) जैसे (सिन्धुः) समुद्र (नीचीः) नीचे के (क्षोदः) जल को प्राप्त होता है वैसे (वः) तुम लोगों को (प्रैनोत्) प्राप्त होता है उसी की सेवा हम लोग करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जो सभापति आदि इस प्रकार परमेश्वर का सेवन और विद्युत् अग्नि को सिद्ध करते हैं उनको जैसे गौ घर और किरण सूर्य को प्राप्त होते हैं और जैसे मनुष्य समुद्र को प्राप्त होके नाना प्रकार के कामों को सुशोभित करता है वैसे ही सज्जन पुरुषों को उचित है कि अन्तर्य्यामी परमेश्वर की उपासना तथा विद्युत् विद्या को यथावत् सिद्ध करके अपनी सब कामनाओं को पूर्ण करें ॥ ५ ॥

इस सूक्त में ईश्वर और अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह छासठवां सूक्त समाप्त हुआ ।

शाक्त्यः पराशर ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । २ । ४ । निचृत् पङ्क्तिः । ३ पङ्क्तिः । ५ विराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

वनेषु जायुर्मर्तेषु मित्रो वृणीते श्रुष्टिं राजेवाजुर्य्यम् ।
क्षेमो न साधुः क्रतुर्न भद्रो भुवत्स्वाधीर्होता हव्यवाट् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो विद्वान् (वनेषु) सम्यक् सेवने योग्य पदार्थ (जायुः) जीतने के हेतु सूर्य्य के समान (अजुर्य्यम्) युद्ध विद्या से सङ्गत सेना के तुल्य योग्य (श्रुष्टिम्) शीघ्रता करने वाले को (राजेव) राजा के समान (क्षेमः) रक्षक (साधुः) सत्पुरुष के समान (भद्रः) कल्याणकारी (क्रतुर्न) उत्तम बुद्धि और कर्मकर्त्ता के तुल्य (स्वाधीः) अच्छे प्रकार धारण करने (होता) देने तथा अनुग्रह करने और (हव्यवाट्) लेने देने योग्य पदार्थों

का प्राप्त कराने वाला (भुवत्) हो तथा धर्मात्मा मनुष्यों को (वृणीते) स्वीकार करें उस का सदा सेवन करो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को उचित है कि विद्वानों का संग करके सदैव आनन्द भोग करें ॥ १ ॥

हस्ते दधानो नृम्णा विश्वान्यमे देवान्धाद्गुहा निषीदन् ।
विदन्तीमत्र नरो धियन्धा हृदा यत्तष्टान्मन्त्राँ अशंसन् ॥ २ ॥

पदार्थ—(यत्) जो (नरः) प्राप्ति करने वाला मनुष्य जैसे (धियन्धाः) प्रज्ञा कर्म को धारण करने वाले विद्वान् लोग (तष्टान्) विद्याओं को तीक्ष्ण करने वाले (मन्त्रान्) वेदों के अवयव वा विचाररूपी मन्त्रों को (विदन्ति) जानते (अशंसन्) स्तुति करते हैं। जैसे देने वाला उदार मनुष्य (हस्ते) हाथ में (विश्वानि) सब (नृम्णा) धनों को (दधानः) धारण किया हुआ अन्य सुपात्र मनुष्यों को देता है । जैसे (गुहा) सब विद्याओं से युक्त बुद्धि में (निषीदन्) स्थित हुआ ईश्वर वा योगी विद्वान् (अत्र) इस (अमे) विज्ञान आदि में (देवान्) विद्वान् दिव्य गुणों को (धात्) धारण करता है वैसे होते हैं वे अत्यन्त आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! तुम लोगों को चाहिये कि जो अन्तर्यामी आत्मा सत्य झूठ का उपदेश करता और वाह्य अध्ययन कराने वाला विद्वान् वर्त्तमान है उसको छोड़ कर किसी की उपासना वा संगत कभी मत करो ॥ २ ॥

अजो न क्षां दाधार पृथिवीं तस्तम्भ द्यां मन्त्रेभिः सत्यैः ।
प्रिया पदानि पश्वो नि पाहि विश्वायुरग्ने गुहा गुहं गाः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) पूर्ण विद्यायुक्त विद्वान् ! तू जैसे परमात्मा (सत्यैः) सत्य लक्षणों से प्रकाशित ज्ञानयुक्त (मन्त्रेभिः) विचारों से (क्षाम्) भूमि को (दाधार) अपने बल से धारण करता (पृथिवीम्) अन्तरिक्ष में स्थित जो अन्य लोक (द्याम्) तथा प्रकाशमय सूर्य्यादि लोको को (तस्तम्भ) प्रतिबन्धयुक्त करता और (प्रिया) प्रीतिकारक (पदानि) प्राप्त करने योग्य ज्ञानों को प्राप्त कराता है (गुहा) बुद्धि में स्थित हुए (गुहम्) गूढ़ विज्ञान भीतर के स्थान को (गाः) प्राप्त हों वा होते हैं (पश्वः) बन्धन से हम लोगों की रक्षा करता है वैसे धर्म से प्रजा की (निपाहि) निरन्तर रक्षा कर और (अजो न) न्यायकारी ईश्वर के समान हूजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे परमेश्वर वा जीव कभी उत्पन्न वा नष्ट नहीं होता वैसे कारण भी विनाश में नहीं आता जैसे परमेश्वर अपने विज्ञान बल आदि गुणों से पृथिवी आदि जगत् को रच कर धारण करता है वैसे सत्य विचारों से सभाध्यक्ष राज्य का धारण करे जैसे प्रिय मित्र अपने मित्र को दुःख के बन्धों से पृथक् करके उत्तम उत्तम सुखों को प्राप्त करता है वैसे ईश्वर और सूर्य्य भी सब सुखों को प्राप्त करते हैं जैसे अन्तर्य्यामि रूप से ईश्वर जीवादि को धारण करके प्रकाश करता है वैसे सभाध्यक्ष सत्य न्याय से राज्य और सूर्य्य अपने आकर्षणादि गुणों से जगत् को धारण करता है ॥ ३ ॥

य ईं चिकेत गुहा भवन्तमा यः ससाद धारामृतस्य ।
वि ये चृतन्त्यृता सपन्त आदिद्वसूनि प्र ववाचास्मै ॥ ४ ॥

पदार्थ—(**यः**) जो मनुष्य (**गुहा**) बुद्धि तथा विज्ञान में (**ईम्**) विज्ञान-स्वरूप (**भवन्तम्**) विज्ञानस्वरूप जगदीश्वर वा सभाध्यक्ष को (**चिकेत**) जानता हैं (**यः**) जो (**ऋतस्य**) सत्य विद्यारूप चारों वेद वा जल के (**धाराम्**) वाणी वा प्रवाह को (**आससाद**) प्राप्त कराता है (**ये**) जो मनुष्य (**ऋता**) सत्यों को (**सपन्तः**) संयुक्त करते हुए (**वसूनि**) विद्या सुवर्ण आदि धनों को (**विचृतन्ति**) ग्रन्थियुक्त करते हैं जिस लिये परमेश्वर ने (**प्रववाच**) कहा है (**आत्**) इस के पीछे (**इत्**) उसी के लिये सब सुख प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। किसी मनुष्य को परमेश्वर की उपासना वा विज्ञान सत्य विद्या और उत्तम आचरणों के विना सुख प्राप्त नहीं हो सकते ॥ ४ ॥

वि यो वीरुत्सु रोधन्महित्वोत प्रजा उत प्रसूष्वन्तः ।
चित्तिरपां दमे विश्वायुः सद्मेव धीराः संमाय चक्रुः ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (**धीराः**) ज्ञान वाले विद्वान् मनुष्यो ! (**संमाय**) अच्छे प्रकार मान कर (**सद्मेव**) जैसे घर वा संग्राम के लिये जिस लाभ को (**चक्रुः**) करते हो वैसे (**यः**) जो जगदीश्वर वा बिजुली (**महित्वा**) सत्कार करके (**वीरुत्सु**) रचना विशेष से निरोध प्राप्त हुए कारण कार्य द्रव्यों में (**प्रजाः**) प्रजा (**विरोधत्**) विशेष करं के आवरण करता है जो (**उत**) (**प्रसूषु**) उत्पन्न होने वालों में भी (**अन्तः**) मध्य में वर्त्तमान है जो (**उत**) (**विश्वायुः**) पूर्ण आयु युक्त भी (**चित्तिः**) अच्छे प्रकार जानने वाला (**दमे**) शान्तियुक्त घर तथा

(अपाम्) प्राण वा जलों के मध्य में प्रजा को धारण करता है उस की सेवा अच्छे प्रकार करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालंकार हैं। मनुष्यों को चाहिये कि जो अन्तर्यामीरूप तथा रूप वेगादि गुणों से प्रजा में नियत करता है उसी जगदीश्वर की उपासना और विद्युत् अग्नि को अपने कार्यों में संयुक्त करके जैसे विद्वान् लोग घर में स्थित हुए संग्राम में शत्रुओं को जीत कर सुखी करते हैं वैसे सुखी करें ॥ ५ ॥

इस सूक्त में ईश्वर, सभाध्यक्ष और विद्युत् अग्नि के गुणों का वर्णन होने से पूर्व सूक्तार्थ के साथ इस सूक्तार्थ की सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सड़सठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

शाक्त्यः पराशर ऋषिः। अग्निर्देवता। १। ४। निचृत्पङ्क्तिः। २। ३। ५ पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

श्रीणन्नुप स्थाद्दिवं भुरण्युः स्थातुश्चरथमक्तून् व्यूर्णोत्।

परि यदेषामेको विश्वेषां भुवद्देवो देवानां महित्वा ॥ १ ॥

पदार्थ—(यत्) जो (भुरण्युः) धारण वा पोषण करने वाला (श्रीणन्) परिपक्व करता हुआ मनुष्य (दिवम्) प्रकाश करने वाले परमेश्वर वा विद्युत् अग्नि के (उपस्थात्) उपस्थित होवे और (स्थातुः) स्थावर (चरथम्) जङ्गम तथा (अक्तून्) प्रकट प्राप्त करने योग्य पदार्थों को (पर्यूर्णोत्) आच्छादन वा स्वीकार करता है वह (एषाम्) इन वर्त्तमान (विश्वेषाम्) सब (देवानाम्) विद्वानों के बीच (एकः) सहाय रहित (देवः) दिव्य गुणयुक्त (महित्वा) पूजा को प्राप्त होकर (विभुवत्) विभव अर्थात् ऐश्वर्य्य को प्राप्त होवे ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। कोई मनुष्य परमेश्वर की उपासना वा विद्युत् अग्नि के आश्रय को छोड़कर सब परमार्थ और व्यवहार के सुखों को प्राप्त होने को योग्य नहीं हो सकता ॥ १ ॥

आदित्ते विश्वे क्रतुं जुषन्त शुष्काद्यद्देव जीवो जनिष्ठाः।

भजन्त विश्वे देवत्वं नाम ऋतं सपन्तो अमृतमेवैः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (देव) जगदीश्वर ! आप का आश्रय करके (यत्) जो

(विश्वे) सब (जनिष्ठाः) अतिज्ञान युक्त (सपन्तः) एक संमत विद्वान् लोग (एवैः) प्राप्तिकारक गुणों और (शुष्कात्) धर्मानुष्ठान के तप से (ते) आप के (देवत्वम्) दिव्य गुण प्राप्त करने वाले (क्रतुम्) बुद्धि और कर्म (नाम) प्रसिद्ध अर्थयुक्त संज्ञा को सिद्ध (जुषन्त) प्रीति से सेवा करें वे (ऋतम्) सत्य रूप को (भजन्त) सेवन करते हैं वैसे (अमृतम्) मोक्ष को (जीवः) इच्छादि गुणवाला चेतन स्वरूप मनुष्य (आत्) इस के अनन्तर (इत्) ही इस सब को प्राप्त हो ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्य परमेश्वर की उपासना वा आज्ञानुष्ठान के विना व्यवहार और परमार्थ के सुखों को प्राप्त नहीं हो सकते ॥ २ ॥

ऋतस्य प्रेषा ऋतस्य धीतिर्विश्वायुर्विश्वे अपांसि चक्रुः ।

यस्तुभ्यं दाशाद्यो वा ते शिक्षात्तस्मै चिकित्वान्रयिं दयस्व ॥ ३ ॥

पदार्थ—जिस ईश्वर वा विद्युत् अग्नि से (विश्वे) सब (प्रेषाः) अच्छी प्रकार जिन की इच्छा की जाती है वे बोधसमूह को प्राप्त होते हैं (ऋतस्य) सत्य विज्ञान तथा कारण का (धीतिः) धारण और (विश्वायुः) सब आयु प्राप्त होती है उसका आश्रय करके जो (ऋतस्य) स्वरूप प्रवाह से सत्य के बीच वर्तमान विद्वान् लोग (अपांसि) न्याययुक्त कामों को (चक्रुः) करते हैं (यः) जो मनुष्य इस विद्या को (तुभ्यम्) ईश्वरोपासना धर्म पुरुषार्थयुक्त मनुष्य के लिये (दाशात्) देवे वा उस से ग्रहण करे (यः) जो (चिकित्वान्) ज्ञानवान् मनुष्य (ते) तेरे लिये (शिक्षात्) शिक्षा करे वा तुझ से शिक्षा लेवे (तस्मै) उस के लिये आप (रयिम्) सुवर्णादि धन को (दयस्व) दीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । मनुष्यों को ऐसा जानना चाहिये कि ईश्वर की रचना के विना जड़ कारण से कुछ भी कार्य उत्पन्न वा नष्ट होने तथा आधार के विना आधेय भी स्थित होने को समर्थ नहीं हो सकता । और कोई मनुष्य कर्म के विना क्षण भर भी स्थित नहीं हो सकता । जो विद्वान् लोग विद्या आदि उत्तम गुणों को अन्य सज्जनों के लिये देते तथा उन से ग्रहण करते हैं, उन्हीं दोनों का सत्कार करें औरों का नहीं ॥ ३ ॥

होता निषत्तो मनोरपत्ये स चिन्न्वासां पती रयीणाम् ।

इच्छन्त रेतो मिथस्तनूषु सं जानत स्वैर्दक्षैरमूराः ॥ ४ ॥

पदार्थ—जो (निषत्तः) सर्वत्र स्थित (मनोः) मनुष्य के (अपत्ये) सन्तान में (रयीणाम्) राज्यश्री आदि धनों का (होता) देने वाला है (सः)

यह ईश्वर विद्युत् अग्नि (आसाम्) इन प्रजाओं का (पतिः) पालन करने वाला है । हे (अमूराः) मूढ़पन आदि गुणों से रहित ज्ञानवाले (स्वैः) अपने (दक्षैः) शिक्षा सहित चतुराई आदि गुणों के साथ (तनूषु) शरीरों में वर्त्तमान होते हुए (मिथः) परस्पर (रेतः) विद्या शिक्षारूपी वीर्य का विस्तार करते हुए तुम लोग इसकी (समिच्छन्त) अच्छे प्रकार शिक्षा करो (चित्) और तुम सब विद्याओं को (नु) शीघ्र (जानत) अच्छे प्रकार जानो ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि परस्पर मित्र हो और समग्र विद्याओं को शीघ्र जानकर निरन्तर आनन्द भोगें ॥ ४ ॥

पितुर्न पुत्राः क्रतुं जुषन्त श्रोषन्ये अस्य शासं तुरासः ।
वि राय और्णोद्दुरः पुरुक्षुः पिपेश नाकं स्तृभिर्दमूनाः ॥ ५ ॥

पदार्थ—(ये) जो (तुरासः) अच्छे कर्मों को शीघ्र करने वाले मनुष्य (पितुः) पिता के (पुत्राः) पुत्रों के (न) समान (अस्य) जगदीश्वर वा सत्पुरुष की (शासम्) शिक्षा को (श्रोषन्) सुनते हैं वे सुखी होते हैं जो (दमूनाः) शान्तिवाला (पुरुक्षुः) बहुत अन्नादि पदार्थों से युक्त (स्तृभिः) प्राप्त करने योग्य गुणों से (रायः) धनों के (व्यौर्णोत्) स्वीकारकर्त्ता तथा (नाकम्) सुख को स्वीकार कर और (दुरः) हिंसा करने वाले शत्रुओं के (पिपेश) अवयवों को पृथक् पृथक् करता है उसी की सेवा सब मनुष्य करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर की आज्ञा पालने विना किसी मनुष्य का कुछ भी सुख का सम्भव नहीं होता तथा जितेन्द्रियता आदि गुणों के विना किसी मनुष्य को सुख प्राप्त नहीं हो सकता । इससे ईश्वर की आज्ञा और जितेन्द्रियता आदि का सेवन अवश्य करें ॥ ५ ॥

इस सूक्त में ईश्वर और अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्तार्थ को पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह अड़सठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

शक्तिपुत्रः पराशर ऋषिः । अग्निर्देवता । १ पङ्क्तिः । २ । ३ निचृत्पङ्क्तिः । ४ भुरिक्पङ्क्तिः । ५ विराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

शुक्रः शुशुक्वाँ उषो न जारः पप्राः समीची दिवो न ज्योतिः ।
परि प्रजातः क्रत्वा बभूथ भुवो देवानां पिता पुत्रः सन् ॥ १ ॥

पदार्थ—जो मनुष्य (उषः) प्रातःकाल की वेला के (जारः) आयु के हन्ता सूर्य के (न) समान (शुक्रः) वीर्यवान् शुद्ध (शुशुक्वान्) शुद्ध कराने (पप्राः) अपनी विद्या से पूर्ण (भुवः) भूमि के मध्य (दिवः) प्रकाश से (समीची) पृथिवी को प्राप्त हुए (ज्योतिः) दीप्ति के (न) समान (परि) सब प्रकार (प्रजातः) प्रसिद्ध उत्पन्न (क्रत्वा) उत्तम बुद्धि वा कर्म्म के साथ वर्त्तमान (देवानाम्) विद्वानों के (पुत्रः) पुत्र के तुल्य पढ़ने वाला सब विद्याओं को पढ़ के (पिता) पढ़ाने वाला (बभूथ) होता है उस का सेवन सब मनुष्य करें ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार है । विद्यार्थी न होके कोई भी मनुष्य विद्वान् नहीं हो सकता और किसी मनुष्य को बिजुली आदि विद्या तथा उसके संप्रयोग के विना बड़ा भारी सुख भी नहीं हो सकता ॥ १ ॥

वेधा अदृप्तो अग्निर्विजानन्नूधर्न गोनां स्वाद्मा पितूनाम् ।
जने न शेव आहूर्यः सन्मध्ये निषत्तो रण्वो दुरोणे ॥ २ ॥

पदार्थ—सब मनुष्यों को चाहिये कि जो (गोनाम्) गौओं के (ऊधः) दूध के स्थान के (न) समान (जने) गुणों से उत्तम सेवने योग्य मनुष्य में (शेवः) सुख करने वाले के (न) समान (वेधाः) पूर्ण ज्ञानयुक्त (अदृप्तः) मोह रहित (स्वाद्मः) स्वादिष्ट (पितूनाम्) अन्नों का भोक्ता (दुरोणे) घर में (रण्वः) रमण कराने वाला (आहूर्य्यः) आह्वान करने योग्य सभा के मध्य में (निषत्तः) स्थित (विजानन्) सब विद्या का अनुभव करता हुआ (अग्निः) अग्नि के तुल्य ज्ञानप्रकाश से युक्त सभाध्यक्ष है उस का सदा सेवन करो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! तुम लोगों को चाहिये कि जैसे गौओं का ऐन दूध आदि से सब को सुख देता है वैसे विद्वान् मनुष्य सब का उपकारी होता है वैसे ही सब में अभिव्याप्त जीव के मध्य में अन्तर्य्यामी रूप से व्याप्त ईश्वर पक्षपात को छोड़ के न्याय करता है वैसे सभा आदि में स्थित सभापति तुम सब को सुख कराने वाले होओ ॥ २ ॥

पुत्रो न जातो रण्वो दुरोणे वाजी न प्रीतो विशो वि तारीत्।
विशा यदह्वे नृभिः सनीळा अग्निर्देवत्वा विश्वान्यश्याः॥ ३॥

पदार्थ— हे मनुष्य! (यत्) जो (अग्निः) अग्नि के तुल्य सभाध्यक्ष (दुरोणे) गृह में (जातः) उत्पन्न हुआ (पुत्रः) पुत्र के (न) समान (रण्वः) रमणीय (वाजी) अश्व के (न) समान (प्रीतः) आनन्ददायक (विशः) प्रजा को (वितारीत्) दुःखों से छुड़ाता है (अह्वे) व्याप्त होने वाले व्यवहार में (सनीडाः) समानस्थान (विशः) प्रजाओं को (विश्वानि) सब (देवत्वा) विद्वानों के गुण कर्मों को प्राप्त करता है उस को तू (अश्याः) प्राप्त हो॥ ३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को विज्ञान और विद्वानों के सङ्ग के विना सब सुख प्राप्त नहीं हो सकते ऐसा जानना चाहिये॥ ३॥

नकिष्ट एता व्रता मिनन्ति नृभ्यो यदेभ्यः श्रुष्टिं चकर्थ।
तत्तु ते दंसो यदहन्त्समानैर्नृभिर्यद्युक्तो विवे रपांसि॥ ४॥

पदार्थ—हे विद्वन्! जो (ते) आप के (एता) ये (व्रता) व्रत हैं वे कोई भी (नकिः) नहीं (मिनन्ति) हिंसा कर सकते हैं (यत्) जो आप (एभ्यः) इन (नृभ्यः) मनुष्यों के लिये (यत्) जिस (श्रुष्टिम्) शीघ्र सत्य-विद्यासमूह को (चकर्थ) करते हो वा (अपांसि) सत्कर्म और व्यक्त उपदेशयुक्त वचनों को (विवेः) प्राप्त करते हो तथा (यत्) जो (ते) आप का (इदम्) यह (समानैः) विद्यादि गुणों में तुल्य (नृभिः) मनुष्यों के साथ (दंसः) कर्म है (तत्) उस को (तु) कोई मनुष्य (नकिः) नहीं (अहन्) हनन कर सकता जो (युक्तः) युक्त होकर आप करते हो उस को हम लोग भी सत्य ही जानते हैं॥ ४॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिये कि जैसे परमेश्वर वा पूर्णविद्या-युक्त विद्वान् पक्षपात छोड़कर मनुष्यादि प्राणियों में सत्य उपकार करने वाले कर्मों के साथ वर्त्तमान है वैसे सदा वर्तें॥ ४॥

उषो न जारो विभावोस्रः संज्ञातरूपश्चिकेतदस्मै।
त्मना वहन्तो दुरो व्यृण्वन्नवन्त विश्वे स्व१र्दृशीके॥ ५॥

पदार्थ—जो (उषः) प्रातःकाल के (न) समान (जारः) दुःख का नाश

करने वाला (उस्रः) किरणों के समान (संज्ञातरूपः) अच्छी प्रकार रूप जानने (विभावा) सब प्रकाश करने वाला है उसको मनुष्य (चिकेतत्) जाने (अस्मै) उस ईश्वर वा विद्वान् के लिये सब कुछ उत्तम पदार्थ समर्पण करे। हे मनुष्यो ! जैसे इस प्रकार करते हुए (विश्वे) सब विद्वान् लोग (त्मना) आत्मा से (स्वः) सुख प्राप्त करने वाले विद्यासमूह को (वहन्तः) प्राप्त होते हुए (दृशीके) देखने योग्य व्यवहार में (दुरः) शत्रुओं को (व्यृण्वन्) मारते तथा सज्जनों की प्रशंसा करते हैं वैसे तुम भी शत्रुओं को मारो तथा (नवन्त) सज्जनों की स्तुति करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष उपमा और लुप्तोपमालंकार हैं। मनुष्यों को चाहिये कि जो सूर्य्य के समान विद्या का प्रकाशक अग्नि के समान सब दुःखों को भस्म करने वाला परमेश्वर वा विद्वान् है उसको अपने आत्मा से आश्रय कर दुष्टव्यवहारों को त्याग और सत्यव्यवहारों में स्थित होकर सदा सुख को प्राप्त हों ॥ ५ ॥

इस सूक्त में विद्वान् विजुली और ईश्वर के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्तार्थ को पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह उनहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

पराशर ऋषिः । अग्निर्देवता । १। ४ विराट्पङ्क्तिः । २ पङ्क्तिः । ३ । ५ निचृत् पङ्क्तिः । ६ याजुषी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

वनेम॑ पू॒र्वीर॒र्यो म॑नी॒षा अ॒ग्निः सु॒शोको॒ विश्वा॒न्यश्याः॑ ।

आ दैव्या॑नि व्र॒ता चि॑कि॒त्वाना मानु॑षस्य॒ जन॑स्य॒ जन्म॑ ॥ १ ॥

पदार्थ—हम लोग जो (सुशोकः) उत्तम दीप्तियुक्त (चिकित्वान्) ज्ञानवान् (अग्निः) ज्ञान आदि गुण वाला (अर्य्यः) ईश्वर वा मनुष्य (मनीषा) बुद्धि तथा विज्ञान से (पूर्वीः) पूर्व हुई प्रजा और (विश्वानि) सब (दैव्यानि) दिव्य गुण वा कर्मों से सिद्ध हुए (व्रता) विद्याधर्मानुष्ठान और (मानुषस्य) मनुष्य जाति में हुए (जनस्य) श्रेष्ठ विद्वान् मनुष्य के (जन्म) शरीरधारण से उत्पत्ति को (अश्याः) अच्छी प्रकार प्राप्त करता है उसका (आवनेम) अच्छे प्रकार विभाग से सेवन करें ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को जिस जगदीश्वर वा मनुष्य के कार्य्य कारण और जीव प्रजा शुद्ध गुण और कर्मों को व्याप्त

किया करे उसी की उपासना वा सत्कार करना चाहिये क्योंकि इस के विना मनुष्यजन्म ही व्यर्थ जाता है ॥ १ ॥

गर्भो यो अपां गर्भो वनानां गर्भश्च स्थातां गर्भश्चरथाम् ।
अद्रौ चिदस्मा अन्तर्दुरोणे विशां न विश्वो अमृतः स्वाधीः ॥२॥

पदार्थ—हम लोग जो जगदीश्वर वा जीव (अपाम्) प्राण वा जलों के (अन्तः) वीच (गर्भः) स्तुति योग्य वा भीतर रहने वाला (वनानाम्) सम्यक् सेवा करने योग्य पदार्थ वा किरणों में (गर्भः) गर्भ के समान आच्छादित (अद्रौ) पर्वत आदि बड़े बड़े पदार्थों में (चित्) भी गर्भ के समान (दुरोणे) घर में गर्भ के समान (विश्वः) सब चेतन तत्त्वस्वरूप (अमृतः) नाशरहित (स्वाधीः) अच्छी प्रकार पदार्थों का चिन्तवन करने वाला (विशाम्) प्रजाओं के वीच आकाश वायु के (न) समान बाह्यदेशों में भी सब दिव्य गुण कर्मयुक्त व्रतों को (अश्याः) प्राप्त होवे (अस्मै) उसके यिये सब पदार्थ हैं उसका (आवनेम) सेवन करें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार हैं। पूर्व मन्त्र से (अश्याः) (वनेम) (विश्वानि) (दैव्यानि) (व्रता) इन पांच पदों की अनुवृत्ति आती है। मनुष्योंको ज्ञानस्वरूप परमेश्वरके विना कोई भी वस्तु अभिव्याप्त नहीं है और चेतनस्वरूप जीव अपने कर्म के फल भोग से एक क्षण भी अलग नहीं रहता इससे उस सब में अभिव्याप्त अन्तर्य्यामी ईश्वर को जानकर सर्वदा पापों को छोड़ कर धर्मयुक्त कार्यों में प्रवृत्त होना चाहिये। जैसें पृथिवी आदि कार्यरूप प्रजा अनेक तत्त्वों के संयोग से उत्पन्न और वियोग से नष्ट होती है। वैसे यह ईश्वर जीव कारणरूप आदि वा संयोग वियोग से अलग होने से अनादि है ऐसा जानना चाहिये ॥ २ ॥

स हि क्षपावाँ अग्नी रयीणां दाशद्यो अस्मा अरं सूक्तैः ।
एता चिकित्वो भूमा नि पाहि देवानां जन्म मर्तांश्च विद्वान् ॥३॥

पदार्थ—हे (चिकित्वः) ज्ञानवान् जगदीश्वर वा (विद्वान्) जानने वाले ! (यः) जो (क्षपावान्) जिस में उत्तम बहुत रात्रि हैं (अग्निः) सब सुखों की देनेवाली बिजुली के समान (अस्मै) इन (रयीणाम्) विद्यारत्न राज्य आदि पदार्थों की (अरम्) पूर्णप्राप्ति के लिये (एता) इन (अरम्) पूर्ण (सूक्तैः) उत्तम वचनों से (भूम) बहुत (देवानाम्) दिव्य गुण वा विद्वानों के (जन्म) जन्म (मर्त्तान्) मनुष्य (च) मनुष्य से भिन्नों को (दाशत्) देते हो (सः) सो आप (हि) निश्चय करके इन की (नि पाहि) निरन्तर रक्षा कीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को जो परमेश्वर वा विद्वान् वेद अन्तर्यामि द्वारा तथा उपदेशों से सब मनुष्यों के लिये सब विद्याओं को देता है उसकी उपासना तथा सत्सङ्ग करना चाहिये ॥ ३ ॥

वर्धान्यं पूर्वीः क्षपो विरूपाः स्थातश्च रथमृतप्रवीतम् ।
अराधि होता स्वर्निषत्तः कृण्वन् विश्वान्यपांसि सत्या ॥ ४ ॥

पदार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जो (अराधि) सिद्ध हुआ वा (यम्) जिस परमेश्वर तथा जीव को (पूर्वीः) सनातन (क्षपः) शान्ति युक्त रात्रि (विरूपाः) नाना प्रकार के रूपों से युक्त प्रजा (वर्धान्) बढ़ाती हैं जिसने (स्थातुः) स्थित जगत् के (ऋतप्रवीतम्) सत्य कारण से उत्पन्न वा जल से चलाये हुए (रथम्) रमण करने योग्य संसार वा यान को बनाया जो (स्वः) सुखस्वरूप वा सुख करने हारा (निषत्तः) निरन्तर स्थित (होता) ग्रहण करने वा देने वाला (विश्वानि) सब (सत्या) सत्य धर्म से शुद्ध हुए (अपांसि) कर्मों को (कृण्वन्) करता हुआ वर्त्तता है उसको जाने वा सत्सङ्ग करे ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है मनुष्यों को उचित है कि जिस परमेश्वर का ज्ञान कराने वाली यह सब प्रजा है वा जिसको जानना चाहिये । जिसके उत्पन्न करने के विना किसी की उत्पत्ति का सम्भव नहीं होता । जिसके पुरुषार्थ के विना कुछ भी सुख प्राप्त नहीं हो सकता और जो सत्यमानी, सत्यकारी, सत्यवादी हो उसी का सदा सेवन करें ॥ ४ ॥

गोषु प्रशस्तिं वनेषु धिषे भरन्त विश्वे बलिं स्वर्णः ।
वि त्वा नरः पुरुत्रा सपर्यन् पितुर्न जिव्रेर्वि वेदो भरन्त ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (भरन्त) सब विश्व वा सब गुणों को धारण करने वाले जगदीश्वर ! जिस कारण (पुरुत्रा) बहुत दान करने योग्य आप (गोषु) पृथिवी आदि पदार्थों में (बलिम्) संवरण (स्वः) आदित्य (वनेषु) किरणों में (प्रशस्तिम्) उत्तम व्यवहार और (नः) हम लोगों को (विधिषे) विशेष धारण करते हो (विश्वे) सब (नरः) इससे विद्वान् लोग जैसे (पुत्राः) पुत्र (जिव्रेः) वृद्धावस्था को प्राप्त हुए (पितुः) पिता के सकाश से (वेदः) विद्याधन को (भरन्त) धारण करें (न) वैसे (त्वा) आप का (सपर्यन्) सेवन करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! तुम सब लोग जिस जगदीश्वर ने सनातन कारण से सब कार्य अर्थात् स्थूलरूप वस्तुओं

को उत्पन्न करके स्पर्श आदि गुणों को प्रकाशित किया है। जिस की सृष्टि में उत्पन्न हुए सब पदार्थों के पिता पुत्र के समान सब जीव दायभागी हैं जो सब प्राणियों के लिये सब सुखों को देता है उसी की आत्मा मन वाणी शरीर और धनों से सेवा करो॥ ५॥

साधुर्न गृध्नुरस्तेव शूरो यातेव भीमस्त्वेषः समत्सु॥ ६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! तुम जो (गृध्नुः) दूसरे के उत्कर्ष की इच्छा करने वाले (साधुः) परोपकारी मनुष्य के (न) समान (अस्ताइव) शत्रुओं के ऊपर शस्त्र पहुँचाने वाले (शूरः) शूरवीर के समान (भीमः) भयङ्कर (यातेव) तथा दण्ड प्राप्त करने वाले के समान (समत्सु) संग्रामों में (त्वेषः) प्रकाशमान परमेश्वर वा सभाध्यक्ष है उसका नित्य सेवन करो॥ ६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उमपालङ्कार हैं। हे मनुष्यो! तुम लोग परमेश्वर वा धर्मात्मा विद्वान् को छोड़ कर शत्रुओं को जीतने और दण्ड देने तथा सुखों का बढ़ाने वाला अन्य कोई अपना राजा नहीं है ऐसा निश्चय करके सब लोग परोपकारी होके सुखों को बढ़ाओ॥ ६॥

इस सूक्त में ईश्वर मनुष्य और सभा आदि अध्यक्ष के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त की पूर्वसूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

यह सत्तरवां सूक्त पूरा हुआ॥

पराशर ऋषिः। अग्निर्देवता। १। ६। ७ त्रिष्टुप्। २। ५ निचृत् त्रिष्टुप्। ३। ४। ८। १० विराट् त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः। ९ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

उप प्र जिन्वन्नुशतीरुशन्तं पतिं न नित्यं जनयः सनीळाः।
स्वसारः श्यावीमरुषीमजुषञ्चित्रमुच्छन्तीमुषसं न गावः॥ १॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! तुम विद्वान् लोग जिस (नित्यम्) व्यभिचार रहित स्वरूप से नित्य अविनाशी (चित्रम्) आश्चर्यगुणकर्म और स्वभावयुक्त परमेश्वर वा सभाध्यक्ष के (सनीडाः) एक ईश्वर के बीच रहने से समानस्थान वाले (जनयः) प्रजा वा (उशन्तीः) शोभायमान (स्वसारः) युवती भगिनी (उशन्तम्) शोभायमान अपने अपने (पतिम्) पाजुन करने वाले पति वो (न) समान तथा (गाव:) किरण वा धेनु (श्यावीम्) धुमैले वर्ण से युक्त वा (अरुषीम्) अत्यन्त लालवर्ण वाली (उच्छन्तीम्) विशेष वास कराती हुई

(उशसम्) प्रातः काल की वेला के (न) समान (उपाजुषून्) सेवन करके (प्रजिन्वन्) अत्यन्त तृप्त रहो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार है। सब मनुष्यों को चाहिये कि जैसे धर्मात्मा विद्वान् स्त्री विवाहित पति का और धर्मात्मा विद्वान् मनुष्य विवाहित स्त्री का सेवन करता है। जैसे प्रातःकाल होते ही किरण वा गौ आदि पशु पृथिवी आदि पदार्थों का सेवन करते हैं वैसे ही परमेश्वर वा सभाध्यक्ष का निरन्तर सेवन करें ॥ १ ॥

वीळु चिद् दृळ्हा पितरो न उक्थैरद्रिं रुजन्नङ्गिरसो रवेण।
चक्रुर्दिवो बृहतो गातुमस्मे अहः स्वर्विविदुः केतुमुस्राः ॥ २ ॥

पदार्थ—हम लोगों को चाहिये कि जो (पितरः) ज्ञानी मनुष्य (उक्थैः) कहे हुए उपदेशों से (नः) हम लोगों के (दृढा) दृढ़ (केतुम्) प्रज्ञा (वीळु) बल (स्वः) (चित्) और सुख को (उस्राः) किरण वा (गातुम्) पृथिवी के समान (अहः) तथा दिन और (बृहतः) बड़े (दिवः) द्योतमान पदार्थों के समान (विविदुः) जानते हैं वा (अङ्गिरसः) वायु (रवेण) स्तुतिसमूह से (अद्रिम्) मेघ को (रुजन्) पृथिवी पर गिराते हुए के समान (अस्मे) हम लोगों के दुःखों को (चक्रुः) नष्ट करते हैं उनको सेवें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि पूर्णविद्यायुक्त विद्वानों का सेवन तथा विद्या बुद्धि को उत्पन्न करके धर्म अर्थ काम मोक्ष फलों का सेवन करें ॥ २ ॥

दधन्नृतं धनयन्नस्य धीतिमादिदर्यो दिधिष्वो३विभृत्राः।
अतृष्यन्तीरपसो यन्त्यच्छा देवाञ्जन्म प्रयसा वर्धयन्तीः ॥ ३ ॥

पदार्थ—जो (विभृत्राः) विशेष धारण करने वाली (दिधिष्वः) भूषण आदि से युक्त (अतृष्यन्तीः) तृष्णा आदि दोषों से पृथक् (वर्धयन्तीः) उन्नति करने वाली कुमारी कन्या (देवान्) दिव्य गुणों को प्राप्त होकर (अर्य्यः) वैश्य के (इत्) समान (ऋतम्) सत्य विज्ञान को (धनयन्) विद्याधनयुक्त कर (आत्) इस के अनन्तर (अस्य) ब्रह्मचर्य की (धीतिम्) धारणा को (दधन्) धारण कर (प्रयसा) अन्न के समान वर्त्तमान (अपसः) कर्म्म (देवान्) विद्वान् (जन्म) और विद्या की प्राप्ति को (अच्छ) अच्छे प्रकार (यन्ति) प्राप्त होती हैं वेदादि शास्त्रों में विद्वान् होकर सब सुखों को प्राप्त होती हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे वैश्य लोग धर्म्म के अनुकूल धन का संचय करते हैं वैसे ही कन्या विवाह से पहिले ब्रह्मचर्य-

पूर्वक पूर्ण विद्वान् पढ़ाने वाली स्त्रियों को प्राप्त हो पूर्णशिक्षा और विद्या का ग्रहण तथा विवाह करके प्रजासुख को सम्पादन करे। विवाह के पीछे विद्याध्ययन का समय नहीं समझना चाहिये। किसी पुरुष वा स्त्री को विद्या के पढ़ने का अधिकार नहीं है ऐसा किसी को नहीं समझना चाहिये किन्तु सर्वथा सब को पढ़ने का अधिकार है ॥ ३ ॥

मथीद्यदीं विभृतो मातरिश्वा गृहेगृहे श्येतो जेन्यो भूत् ।

आदीं राज्ञे न सहीयसे सचा सन्ना दूत्यं१ भृगवाणो विवाय ॥४॥

पदार्थ—(भृगवाणः) अनेकविध पदार्थविद्या से पदार्थों को व्यवहार में लाने हारों के तुल्य विद्याग्रहण की हुई कन्याओं जैसे यह (विभृतः) अनेक प्रकार की पदार्थविद्या का धारण करने वाला (श्येतः) प्राप्त होने का (जेन्यः) और विजय का हेतु तथा (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष में सोने आदि विहारों का करने वाला वायु (यत्) जो (दूत्यम्) दूत का कर्म है उस को (आविवाय) अच्छे प्रकार स्वीकार करता और (गृहे गृहे) घर घर अर्थात् कलायन्त्रों के कोठे कोठे में (ईम्) प्राप्त हुए अग्नि को (मथीत्) मथता है (आत्) अथवा (सहीयसे) यश से सहने वाले (राज्ञे) राजा के लिये (न) जैसे (ईम्) विजय सुख प्राप्त कराने वाली सेना (सचा) सङ्गति के साथ (सन्) वर्त्तमान (भूत्) होती है वैसे विद्या के योग से सुख कराने वाली होओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्याग्रहण के विना स्त्रियों को कुछ भी सुख नहीं होता जैसे अविद्याओं का ग्रहण किये हुए मूढ़ पुरुष उत्तम लक्षण युक्त विद्वान् स्त्रियों को पीड़ा देते हैं। वैसे विद्या शिक्षा से रहित स्त्री अपने विद्वान् पतियों को दुःख देती हैं। इससे विद्या ग्रहण के अनन्तर ही परस्पर प्रीति के साथ स्वयंवर विधान से विवाह कर निरन्तर सुखयुक्त होना चाहिये ॥ ४ ॥

महे यत्पित्र ईं रसं दिवे करवं त्सरत्पृशन्यश्चिकित्वान् ।

सृजदस्ता धृषता दिद्युमस्मै स्वायां देवो दुहितरि त्विषिं धात् ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोगों का जैसे (यत्) जो (कः) सुखदाता (पृशन्यः) स्पर्श करने (अस्ता) फेंकने (चिकित्वान्) जानने (देवः) विद्या प्रकाश के देखने वाला सूर्य्य (महे) बड़े (पित्रे) प्रकाश के देने से पालन करने वाले (दिवे) प्रकाश के लिये (ईम्) प्राप्त करने योग्य (रसम्) ओषधि के फल को (अवसृजत्) रचता (ईम्) (त्सरत्) अन्धकार को दूर करता

(स्वायाम्) अपनी (दुहितरि) कन्या के समान उषा में (त्विषिम्) प्रकाश वा तेज को (धात्) धारण करता उस के अनन्तर (दिद्युम्) दीप्ति की (धृषता) दृढ़ता से सुख देता है वैसे किया करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब माता पिता आदि मनुष्यों को अपने अपने सन्तानों में विद्या स्थापन करना चाहिये। जैसे प्रकाशमान सूर्य सब को प्रकाश करके आनन्दित करता है वैसे ही विद्यायुक्त पुत्र वा पुत्री सब सुखों को देते हैं ॥ ५ ॥

स्व आ यस्तुभ्यं दम आ विभाति नमो वा दाशादुशतो अनु द्यून् ।

वर्धो अग्ने वयो अस्य द्विबर्हा यासद्राया सरथं यं जुनासि ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विज्ञानप्रद ! (**वर्धो**) (**द्विबर्हाः**) विद्या और शिक्षा से वार वार बढ़ानेहारे आप जैसे सविता (**स्वे**) अपने (**दमे**) घर में (**तुभ्यम्**) तुम को (**नमः**) अन्न (**आदाशात्**) अच्छे प्रकार देता (**आविभाति**) और अत्यन्त प्रकाश को करता (**वा**) अथवा (**अस्य**) इस जगत् की (**वयः**) अवस्था को (**यासत्**) पहुँचाता है वैसे (**यः**) जो शिष्य अपने घर में तुम्हारे लिये अन्न देता अर्थात् यथायोग्य सत्कार करता और आप से गुणों को प्राप्त हुआ प्रकाशित होता अथवा इस अपने पुत्र आदि की अवस्था को पहुंचाता अर्थात् औषधि आदि पदार्थों से नीरोगता को प्राप्त करता है और (**राया**) विद्यादि धन (**सरथम्**) मनोहर कर्म वा गुणों सहित से (**यम्**) जिस मनुष्य को (**जुनासि**) व्यवहार में चलाते हो उन सब को (**अनुद्यून्**) प्रतिदिन (**उशतः**) अति उत्तम कीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! तुम लोगों को चाहिये कि जो तुम्हारे पिता अर्थात् उत्पन्न करने वाले वा पढ़ाने वाले आचार्य्य तुम्हारे लिये उत्तम शिक्षा से सूर्य के समान विद्याप्रकाश वा अन्नादि दे कर सुखी रखते हैं उन का निरन्तर सेवन करो ॥ ६ ॥

अग्निं विश्वा अभि पृक्षः सचन्ते समुद्रं न स्रवतः सप्त यह्वीः ।

न जामिभिर्वि चिकिते वयो नो विदा देवेषु प्रमतिं चिकित्वान् ॥७॥

पदार्थ—जो (**चिकित्वान्**) ज्ञानवान् ज्ञान का हेतु (**नः**) हम लोगों को (**देवेषु**) विद्वान् वा दिव्यगुणों में (**प्रमतिम्**) उत्तम ज्ञान को (**विदाः**) प्राप्त करता (**वयः**) जीवन का (**विचिकिते**) विशेष ज्ञान कराता है उस (**अग्निम्**) अग्नि के समान विद्वान् (**विश्वाः**) सब (**पृक्षः**) विद्यासंपर्क करने वाले पुत्र वा दीप्ति (**समुद्रम्**) समुद्र वा (**स्रवतः**) नदी के समान शरीर को गमन कराते हुए (**सप्त**) सात अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान इन पांच के और

सूत्ररूप आत्मा के समान तथा (यह्वीः) रुधिर वा विजुली आदि की गतियों के (न) समान (अपिसचन्ते) सम्बन्ध करती हैं जिससे हम लोग मूर्ख वा दुःख देने वाली (जामिभिः) स्त्रियों के साथ (न) नहीं वसें ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा तथा वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे समुद्र को नदी वा प्राणों को विजुली आदि गतिसंयुक्त करती हैं वैसे ही मनुष्य सब पुत्र वा कन्या ब्रह्मचर्य्य से विद्या वा व्रतों को समाप्त करके युवावस्था वाले हो कर विवाह से सन्तानों को उत्पन्न कर उन को इसी प्रकार विद्या शिक्षा सदा ग्रहण करावें। पुत्रों के लिये विद्या वा उत्तम शिक्षा करने के समान कोई बड़ा उपकार नहीं है ॥ ७ ॥

आ यदिषे नृपतिं तेज आनट् छुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीके ।
अग्निः शर्धमनवद्यं युवानं स्वाध्यं जनयत्सूदयच्च ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे युवते ! जैसे (द्यौः) प्रकाशस्वरूप (अग्निः) विद्युत् (अभीके) संग्राम में (इषे) इच्छा की पूर्णता के लिये (यत्) जो (निषिक्तम्) स्थापन किये हुए (शुचि) पवित्र (रेतः) वीर्य और (तेजः) प्रगल्भता को (आनट्) प्राप्त करती है उससे युक्त तू वैसे (शर्धम्) बली (अनवद्यम्) निन्दारहित (युवानम्) युवावस्था वाले (स्वाध्यम्) उत्तम विद्यायुक्त विद्वान् (नृपतिम्) मनुष्यों में राजमान पति को स्वेच्छा से प्रसन्नतापूर्वक प्राप्त होके (आजनयत्) सन्तानों को उत्पन्न (च) और अविद्या दुःख को (सूदयत्) दूर कर ॥ ८ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को जानना चाहिये कि कभी उत्तम विद्या वा प्रदीप्त अग्नि के समान विद्वान् के सङ्ग के विना व्यवहार और परमार्थ के सुख प्राप्त नहीं होते और अपने सन्तानों को विद्या देने के विना माता पिता आदि कृतकृत्य नहीं हो सकते ॥ ८ ॥

मनो न योऽध्वनः सद्य एत्येकः सत्रा सूरो वस्व ईशे ।
राजाना मित्रावरुणा सुपाणी गोषु प्रियममृतं रक्षमाणा ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे स्त्री पुरुषो ! तुम विद्वान्मनुष्य जैसे (मनः) सङ्कल्पविकल्परूप अन्तःकरण की वृत्ति के (न) समान वा (सूरः) प्राणियों के गर्भों को बाहर करने हारी प्राणस्थ बिजुली के तुल्य विमान आदि यानों से (अध्वनः) मार्गों को (सद्यः) शीघ्र (एति) जाता और (यः) जो (एकः) सहायरहित एकाकी (सत्रा) सत्यगुण कर्म और स्वभाव वाला (वस्वः) द्रव्यों को शीघ्र (ईशे) प्राप्त करता है वैसे (गोषु) पृथिवीराज्य में (प्रियम्) प्रीतिकारक (अमृतम्) सब सुखों दुःखों

के नाश करने वाले अमृत की (रक्षमाणा) रक्षा करने वाले (सुपाणी) उत्तम व्यवहारों से युक्त (मित्रावरुणौ) सब के मित्र सब से उत्तम (राजाना) सभा वा विद्या के अध्यक्षों के सदृश हो के धर्म अर्थ काम और मोक्ष को सिद्ध किया करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे मनुष्य विद्या और विद्वानों के संग के विना विमानादि यानों को रच और उन में स्थित होकर देश देशान्तर में शीघ्र जाना आना सत्य विज्ञान उत्तम द्रव्यों की प्राप्ति और धर्मात्मा राजा राज्य के सम्पादन करने को समर्थ नहीं हो सकते वैसे स्त्री और पुरुषों में निरन्तर विद्या और शरीरबल की उन्नति के विना सुख की बढ़ती कभी नहीं हो सकती ॥ ९ ॥

मा नो अग्ने सख्या पित्र्याणि प्र मर्षिष्ठा अभि विदुष्कविः सन् ।
नभो न रूपं जरिमा मिनाति पुरा तस्या अभिशस्तेरधीहि ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सब विद्याओं को प्राप्त हुए विद्वान् ! (जरिमा) स्तुति के योग्य (कविः) पूर्णविद्या को (विदुः) जानने वाले (सन्) हो कर आप (नभोरूपं न) जैसे आकाश सब रूप वाले पदार्थों को अपने में नाश के समय गुप्त कर लेता है वैसे (नः) हम लोगों के (पुरा) प्राचीन (पित्र्याणि) पिता आदि से आए हुए (सख्या) मित्रता आदि कर्मों को (माभि प्र मर्षिष्ठाः) नष्ट मत कीजिये और (तस्याः) उस (अभिशस्तेः) नाश को (अधीहि) अच्छी प्रकार स्मरण रखिये इसी प्रकार हो कर जो सुख को (मिनाति) नष्ट करता है उस को दूर कीजिये ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे रूप वाले पदार्थ सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त होकर अन्तरिक्ष में नहीं दीखते वैसे हम लोगों के मित्रपन आदि व्यवहार नष्ट न होवें किन्तु हम सब लोग विरोध सर्वथा छोड़ कर परस्पर मित्र होके सब काल में सुखी रहें ॥ १० ॥

इस सूक्त में ईश्वर सभाध्यक्ष स्त्री पुरुष और बिजुली विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये ॥

यह इकहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

पराशर ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । २ । ५ । ६ । ९ विराट् त्रिष्टुप् । ४ । १० त्रिष्टुप् । ७ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ । ८ भुरिक्पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

नि काव्या वेधसः शश्वतस्कर्हस्ते दधानो नर्या पुरूणि ।
अग्निर्भुवद्रयिपती रयीणां सत्रा चक्राणो अमृतानि विश्वा ॥ १ ॥

पदार्थ—जो (अग्निः) अग्नि के तुल्य विद्वान् मनुष्य (वेधसः) सब विद्याओं के धारण और विधान करने वाले (शश्वतः) अनादि स्वरूप परमेश्वर के सम्बन्ध से प्रकाशित हुए (पुरूणि) बहुत (सत्रा) सत्य अर्थ के प्रकाश करने तथा (अमृतानि) मोक्षपर्यन्त अर्थों को प्राप्त करने वाले (विश्वा) सब (नर्या) मनुष्यों को सुख होने के हेतु (काव्या) सर्वज्ञ निर्मित वेदों के स्तोत्र हैं उन को (हस्ते) हाथ में प्रत्यक्ष पदार्थ के तुल्य (दधानः) धारण कर तथा विद्याप्रकाश को (चक्राणः) करता हुआ धर्माचरण को (नि कः) निश्चय करके सिद्ध करता है वह (रयीणाम्) विद्या चक्रवर्ति राज्य आदि धनों का (रयिपतिः) पालन करने वाला श्रीपति (भुवत्) होता है ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! अनन्त सत्यविद्यायुक्त अनादि सर्वज्ञ परमेश्वर ने तुम लोगों के हित के लिये जिन अपनी विद्यामय अनादि रूप वेदों को प्रकाशित किये हैं उन को पढ़ पढ़ा और धर्मात्मा विद्वान् होकर धर्म अर्थ काम मोक्ष आदि फलों को सिद्ध करो ॥ १ ॥

अस्मे वत्सं परि षन्तं न विन्दन्निच्छन्तो विश्वे अमृता अमूराः ।
श्रमयुवः पदव्यो धियन्धास्तस्थुः पदे परमे चार्वग्नेः ॥ २ ॥

पदार्थ—जो (विश्वे) सब (अमृताः) उत्पत्तिमृत्युरहित अनादि (अमूराः) मूढ़तादि दोषरहित (श्रमयुवः) श्रम से युक्त (पदव्यः) सुखों को प्राप्त (धियन्धाः) बुद्धि वा कर्म को धारण करने वाले (इच्छन्तः) श्रद्धालु होकर मनुष्य (अस्मे) हम लोगों को (वत्सम्) पुत्रवत्सुखों में निवास कराती हुई प्रसिद्ध चारों वेद से युक्त वाणी के (सन्तम्) वर्त्तमान को (परिविन्दन्) प्राप्त करते हैं वे (अग्नेः) (चारु) श्रेष्ठ जैसे हो वैसे परमात्मा के (परमे) सब से उत्तम (पदे) प्राप्त होने योग्य सुखरूपी मोक्ष पद में (तस्थुः) स्थित होते हैं और जो नहीं जानते वे उस ब्रह्म पद को प्राप्त नहीं होते ॥ २ ॥

भावार्थ—सब जीव अनादि हैं जो इन के बीच मनुष्य देहधारी हैं उन के प्रति ईश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! तुम सब लोग वेदों को पढ़ पढ़ा कर अज्ञान से ज्ञानवाले पुरुषार्थी होके सुख भोगो क्योंकि वेदार्थज्ञान के विना कोई भी मनुष्य सब विद्याओं को प्राप्त नहीं हो सकता इससे तुम लोगों को वेदविद्या की वृद्धि निरन्तर करनी उचित है ॥ २ ॥

तिस्रो यदग्ने शरदस्त्वामिच्छुचिं घृतेन शुचयः सपर्यान् ।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियान्यसूदयन्त तन्वः सुजाताः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! (यत्) जो (शुचयः) पवित्र (सुजाताः) विद्याक्रियाओं में उत्तम कुशलता से प्रसिद्ध मनुष्य (शुचिम्) पवित्र (त्वाम्) तुझ को (तिस्रः) तीन (शरदः) ऋतु वाले संवत्सरों को (सपर्यान्) सेवन करें वे (इत्) ही (यज्ञियानि) कर्म्म उपासना और ज्ञान को सिद्ध करने योग्य व्यवहार (नामानि) अर्थज्ञान सहित संज्ञाओं को (दधिरे) धारण करें (चित्) और (घृतेन) घृत वा जलों के साथ (तन्वः) शरीरों को भी (असूदयन्त) चलावें ॥३ ॥

भावार्थ—कोई भी मनुष्य वेदविद्या के विना पढ़े विद्वान् नहीं हो सकता और विद्याओं के विना निश्चय करके मनुष्य-जन्म की सफलता तथा पवित्रता नहीं होती इसलिये सब मनुष्यों को उचित है कि इस धर्म्म का सेवन नित्य करें ॥ ३ ॥

आ रोदसी बृहती वेविदानाः प्र रुद्रिया जभ्रिरे यज्ञियासः ।
विदन्मर्तो नेमधिता चिकित्वानग्निं पदे परमे तस्थिवांसम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—जो (रुद्रिया) दुष्ट शत्रुओं को रुलाने वाले के सम्बन्धी (वेविदानाः) अत्यन्त ज्ञानयुक्त (यज्ञियासः) यज्ञ की सिद्धि करने वाले विद्वान् लोग (बृहती) बड़े (रोदसी) भूमि राज्य वा विद्या प्रकाश को (आजभ्रिरे) धारण पोषण करते और समग्र विद्याओं को जानते हैं उनसे विज्ञान को प्राप्त होकर जो (चिकित्वान्) ज्ञानवान् (नेमधिता) प्राप्त पदार्थों का धारण करने वाला (मर्त्तः) मनुष्य (परमे) सबसे उत्तम (पदे) प्राप्त करने योग्य मोक्ष पद में (तस्थिवांसम्) स्थित हुए (अग्निम्) परमेश्वर को (प्रविदत्) जानता है वही सुख भोक्ता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि वेद के जानने वाले विद्वानों से उत्तम नियम द्वारा वेदविद्या को प्राप्त हो विद्वान् हो के परमेश्वर तथा उसके रचे हुए जगत् को जान अन्य मनुष्यों के लिये निरन्तर विद्या देवें ॥ ४ ॥

संजानाना उप सीदन्नभिज्ञु पत्नीवन्तो नमस्यं नमस्यन् ।
रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत स्वाः सखा सख्युर्निमिषि रक्षमाणाः ॥५॥

पदार्थ—जो (संजानानाः) अच्छी प्रकार जानते हुए (पत्नीवन्तः) प्रशंसा योग्य विद्यायुक्त यज्ञ को जानने वाली स्त्रियों के सहित (रक्षमाणाः) धर्म और

विद्या की रक्षा करते हुए विद्वान् लोग (रिरिक्वांसः) विशेष करके पापों से पृथक् (अभिज्ञु) जङ्घाओं से (उपसीदन्) सन्मुख समीप बैठना जानते हैं तथा (नमस्यम्) नमस्कार करने योग्य परमेश्वर और पढ़ाने वाले विद्वान् का (नमस्यन्) सत्कार करते और (निमिषि) अधिक विद्या के होने से स्पर्द्धायुक्त निरन्तर व्यवहार में क्षण क्षण में (सख्युः) मित्र के (सखा) मित्र के समान (स्वाः) अपने (तन्वः) शरीरों को (कृण्वत) बल और रोगरहित करते हैं वे मनुष्य भाग्यशाली होते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालंकार है । ईश्वर और विद्वान् के सत्कार करने के विना किसी मनुष्य को विद्या के पूर्ण सुख नहीं हो सकते । इसलिये मनुष्यों को चाहिये कि सत्कार करने ही योग्य मनुष्यों का सत्कार और अयोग्यों का असत्कार करें ॥ ५ ॥

त्रिः सप्त यद्गुह्यानि त्वे इत्पदाविदन् निहिता यज्ञियासः ।

तेभी रक्षन्ते अमृतं सजोषाः पशूँश्च स्थातॄँश्चरथं च पाहि ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो ! जैसे (त्वे) कोई (यज्ञियासः) यज्ञ के सिद्ध करने वाले विद्वान् (यत्) जिन (निहिता) स्थापित विद्यादि धनरूप (गुह्यानि) गुप्त वा सब प्रकार स्वीकार करने (पदा) प्राप्त होने योग्य (सप्त) सात अर्थात् चार वेदों और तीन क्रियाकौशल, विज्ञान और पुरुषार्थों को (त्रिः) श्रवण मनन और विचार करने से (अविन्दन्) प्राप्त करते हैं वैसे तुम भी इन को प्राप्त होओ । हे जानने की इच्छा करने हारे सज्जन ! जैसे (सजोषाः) समान प्रीति के सेवन करने वाले (तेभिः) उन्होंसे (अमृतम्) धर्म अर्थ काम और मोक्षरूपी सुख (पशून्) पशुओं के तुल्य मूर्खत्व युक्त मनुष्य वा पशु आदि (च) और भृत्य आदि (स्थातॄन्) भूमि आदि स्थावर (च) और राज्य रत्नादि संपदा (चरथम्) मनुष्य आदि जङ्गम (च) और स्त्री पुत्र आदि की (रक्षन्ते) रक्षा करते हैं । वैसे इन की तू (इत्) भी (पाहि) रक्षा कर ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों का अनुकरण करें मूर्खों का नहीं जैसे सज्जन पुरुष उत्तम कार्यों में प्रवृत्त होते और दुष्ट कर्मों का त्याग कर देते हैं वैसा ही सब मनुष्य करें ॥ ६ ॥

विद्वाँ अग्ने वयुनानि क्षितीनां व्यानुषक् शुरुधो जीवसे धाः ।

अन्तर्विद्वाँ अध्वनो देवयानानतन्द्रो दूतो अभवो हविर्वाट् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सब सुख प्राप्त कराने वाले जगदीश्वर जिस कारण

(अन्तर्विद्वान्) अन्तःकरण के सब व्यवहारों को तथा (विद्वान्) बाहर के कार्य्यों को जानने वाले (अतन्द्रः) आलस्य रहित (हविर्वाट्) विज्ञान आदि प्राप्त कराने वाले आप (क्षितीनाम्) मनुष्यों के (वयुनानि) विज्ञानों को (जीवसे) जीवन के लिये (शुरुधः) प्राप्त करने योग्य सुखों को (आनुषक्) अनुकूलता पूर्वक (विधाः) विविध प्रकार से धारण करते हो वेदद्वारा (देवयानान्) विद्वानों के जाने आने वाले (अध्वनः) मार्गों के (दूतः) विज्ञान कराने वाले (अभवः) होते हो इस से आप का सत्कार हम लोग अवश्य करें ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो प्रार्थना वा सेवन किया हुआ ईश्वर धर्ममार्ग वा विज्ञान को दिखाकर सुखों को देता है उस का सेवन अवश्य करना चाहिये ॥ ७ ॥

स्वाध्यो दिव आ सप्त यह्वी रायो दुरो व्यृतज्ञा अंजानन् ।
विदद्गव्यं सरमा दृढमूर्वं येना नु कं मानुषी भोजते विट् ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे जैसे (स्वाध्यः) सब के कल्याण को यथावत् विचारने (ऋतज्ञाः) सत्य के जानने वाले (येन) जिस पुरुषार्थ से (यह्वीः) बड़े (सप्त) सात संख्या वाले (दिवः) सूर्य के तुल्य विद्या (रायः) अति उत्तम धनों के (दुरः) प्रवेश के स्थानों को (व्यजानन्) जानते तथा (सरमा) बोध के समान करने वाली (मानुषी) मनुष्यों की (विट्) प्रजा (दृढम्) दृढ़ निश्चल (ऊर्वम्) दोषों का नाश (गव्यम्) पशु और इन्द्रियों के हितकारक सुख को (नु) शीघ्र (विदत्) प्राप्त होती है वैसे इस कर्म का सदा सेवन करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । मनुष्यों को यह योग्य है कि जैसी विद्या को पढ़ें वैसी ही कपट छल छोड़ कर सब मनुष्यों को पढ़ावें और उपदेश करें जिस से मनुष्य लोग सब सुखों को प्राप्त हों ॥ ८ ॥

आ ये विश्वा स्वपत्यानि तस्थुः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम् ।
मह्ना महद्भिः पृथिवी वि तस्थे माता पुत्रैरदितिर्धायसे वेः ॥ ९ ॥

पदार्थ—जैसे (ये) जो (अमृतत्वाय) मोक्षादि सुख होने के लिये (गातुम्) भूमि के समान बोध के कोश को (कृण्वानासः) सिद्ध करते हुए विद्वान् लोग (महद्भिः) अतिसुख करने वाले गुणों के साथ (विश्वा) सब (स्वपत्यानि) उत्तम शिक्षायुक्त पुत्रादिकों को (मह्ना) बड़े बड़े गुणों से (धायसे) धारण के लिये (पृथिवी) भूमि के तुल्य (पुत्रैः) पुत्रों के साथ (माता) माता के समान (अदितिः) प्रकाशस्वरूप सूर्य स्थूल पदार्थों में (वेः) व्याप्ति करने वाले पक्षि के

समान (आतस्थुः) स्थित होते हैं वैसे मैं इस कर्म का (वितस्थे) विशेष करके ग्रहण करता हूँ ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । मनुष्यों को विद्वानों के समान अपने सन्तानों को विद्या शिक्षा से युक्त करके धर्म अर्थ काम और मोक्ष रूपी सुखों को प्राप्त करना चाहिये ॥ ९ ॥

अधि श्रियं नि दधुश्चारुमस्मिन् दिवो यदक्षी अमृता अकृण्वन् ।
अध क्षरन्ति सिन्धवो न सृष्टाः प्र नीचीरग्ने अरुषीरजानन् ॥१०॥

पदार्थ—जैसे (यत्) जो (अमृताः) मरण जन्म रहित मोक्ष को प्राप्त हुए विद्वान् लोग (अस्मिन्) इस लोक में (श्रियम्) विद्या तथा राज्य के ऐश्वर्य की शोभा को (अधिनिदधुः) अधिक धारण (चारुम्) श्रेष्ठ व्यवहार (दिवः) प्रकाश और विज्ञान से (अक्षी) बाहर भीतर से देखने की विद्याओं को (अकृण्वन्) सिद्ध करते (सृष्टाः) उत्पन्न की हुई (सिन्धवः) नदियों के (न) समान (अध) अनन्तर सुखों को (क्षरन्ति) देते हैं (नीचीः) निरन्तर सेवन करने तथा (अरुषीः) प्रभात के समान सब सुख प्राप्त करने वाली विद्या और क्रिया को (प्राजानन्) अच्छा जानते हैं वैसे हे (अग्ने) विद्वान् मनुष्य तू भी यथाशक्ति सब कामों को सिद्ध कर ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं । हे मनुष्यो ! तुम लोग यथायोग्य विद्वानों के आचरण को स्वीकार करो और अविद्वानों का नहीं । तथा जैसे नदी सुखों के होने की हेतु होती है वैसे सब के लिये सुखों को उत्पन्न करो ॥ १० ॥

इस सूक्त में ईश्वर और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति समझनी चाहिये ॥

यह बहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

पराशर ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । २ । ४ । ५ । ७ । ९ । १० निचृत्त्रिष्टुप् । ३ । ६ त्रिष्टुप् । ८ विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

रयिर्न यः पितृवित्तो वयोधाः सुप्रणीतिश्चिकितुषो न शासुः ।
स्योनशीरतिथिर्न प्रीणानो होतेव सद्म विधतो वि तारीत् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (यः) जो विद्वान् (पितृवित्तः) पिता पिता-

महादि अध्यापकों से प्रतीत विद्यायुक्त हुए (रयिः) धनसमूह के (न) समान (वयोधाः) जीवन को धारण करने (सुप्रणीतिः) उत्तम नीतियुक्त तथा (चिकितुषः) उत्तमविद्यावाले (शासुः) उपदेशक मनुष्य के (न) समान (स्योनशीः) विद्या धर्म्म और पुरुषार्थयुक्त सुख मे सोने (प्रीणानः) प्रसन्न तथा (अतिथिः) महाविद्वान् भ्रमण और उपदेश करने वाले परोपकारी मनुष्य के (न) समान (विधतः) वा सब व्यवहारों को विधान करता है उस के (होतेव) देने लेने वाले (सद्म) घर के तुल्य वर्त्तमान शरीर का (वितारीत्) सेवन और उस से उपकार लेके सब को देता है उसका नित्य सेवन और उससे परोपकार कराया करो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । विद्याधर्मानुष्ठान विद्वानों का संग तथा उत्तम विचार के विना किसी मनुष्य को विद्या और सुशिक्षा का साक्षात्कार पदार्थों का ज्ञान नहीं होता और निरन्तर भ्रमण करने वाले अतिथि विद्वानों के उपदेश के विना कोई मनुष्य सन्देह रहित नहीं हो सकता इस से सब मनुष्यों को अच्छा आचरण करना चाहिये ॥ १ ॥

देवो न यः सविता सत्यमन्मा क्रत्वा निपाति वृजनानि विश्वा ।
पुरुप्रशस्तो अमतिर्न सत्य आत्मेव शेवो दिधिषाय्यो भूत् ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम (यः) जो (सविता) सूर्य (देवः) दिव्य गुण के (न) समान (सत्यमन्मा) सत्य को जनाने वा जानने वाला विद्वान् (क्रत्वा) बुद्धि वा कर्म से (विश्वा) सब (वृजनानि) बलों की (निपाति) रक्षा करता है (पुरुप्रशस्तः) बहुतों में अति श्रेष्ठ (अमतिः) उत्तम स्वरूप के (न) समान (सत्यः) अविनाशिस्वरूप (दिधिषाय्यः) धारण वा पोषण करने वाले (आत्मेव) आत्मा के समान (शेवः) सुखस्वरूप अध्यापक वा उपदेष्टा (भूत्) है उसका सेवन करके विद्या की उन्नति करो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । मनुष्य विद्वानों के सत्संग से सत्यविद्या बल सुख और सौन्दर्य आदि के प्राप्त होने को समर्थ हो सकते हैं इस से इन दोनों का सेवन निरन्तर करें ॥ २ ॥

देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा ।
पुरःसदः शर्मसदो न वीरा अनवद्या पतिजुष्टेव नारी ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग (यः) जो (देवः) अच्छे सुखों का देने वाला परमेश्वर वा विद्वान् (पृथिवीम्) भूमि के समान (विश्वधायाः) विश्व को धारण करने वाले (हितमित्रः) मित्रों को धारण किये हुए (राजा) सभा-

आदि के अध्यक्ष के (न) समान (उपक्षेति) जानता वा निवास करता है तथा (पुरःसदः) प्रथम शत्रुओं को मारने वा युद्ध के जानने (शर्मसदः) सुख में स्थिर होने और (वीराः) युद्ध में शत्रुओं के फेंकने वाले के (न) समान तथा (अनवद्या) विद्यासौन्दर्यादि शुद्धगुणयुक्त (नारी) नर की स्त्री (पतिजुष्टेव) जो कि पति की सेवा करने वाली उसके समान सुखों में निवास कराता है उसको सदा सेवन करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। मनुष्य लोग परमेश्वर वा विद्वानों के साथ प्रेम प्रीति से वर्त्तने के विना सब बल वा सुखों को प्राप्त नहीं हो सकते इस से इन्हीं के साथ सदा प्रीति करें ॥ ३ ॥

तं त्वा नरो दम आ नित्यमिद्धमग्ने सचन्त क्षितिषु ध्रुवासु ।

अधि द्युम्नं नि दधुर्भूर्यस्मिन् भवा विश्वायुर्धरुणो रयीणाम् ॥४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विज्ञान कराने वाले विद्वान् ! (रयीणाम्) विद्या और सब पृथिवी के राज्य के सिद्ध किये हुए धनों के (धरुणः) धारण करने वाले (विश्वायुः) सम्पूर्णजीवन युक्त आप (अस्मिन्) इस मनुष्य जन्म वा जगत् में सहायकारी (भव) हूजिये जो (भूरि) बहुत (द्युम्नम्) विद्याप्रकाशरूपी धन और कीर्ति को धारण करते हो (तम्) उन (नित्यम्) निरन्तर (इद्धम्) प्रदीप्त (त्वा) आप को (ध्रुवासु) दृढ़ (क्षितिषु) भूमियों में जो (नरः) नयन करने वाले सब मनुष्य (अधिनिदधुः) धारण करें और (दमे) शान्तियुक्त घर में (आसचन्त) सेवन करें उन का सेवन नित्य किया करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जिस जगदीश्वर ने अनेक पदार्थों को रच कर धारण किये हैं और जिस विद्वान् ने जाने हैं उस की उपासना वा सत्संग के विना किसी मनुष्य को सुख नहीं होता ऐसा जानो ॥ ४ ॥

वि पृक्षो अग्ने मघवानो अश्युर्वि सूरयो ददतो विश्वमायुः ।

सनेम वाजं समिथेष्वर्यो भागं देवेषु श्रवसे दधानाः ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सुखस्वरूप विद्वान् आपके उपदेश से जैसे (अर्यः) स्वामी वा वैश्य (भागम्) सेवनीय पदार्थों के समान (मघवानः) सत्कारयुक्त धन वाले (ददतः) दानशील (सूरयः) मेधावि लोग (समिथेषु) संग्रामों तथा (देवेषु) विद्वान् वा दिव्यगुणों में (वाजम्) विज्ञान को (दधानाः) धारण करते हुए (श्रवसे) श्रवण करने योग्य कीर्ति के लिये (पृक्षः) अत्युत्तम अन्न और (विश्वम्) सब (आयुः) जीवन को (व्यश्युः) विशेष करके भोगें वा (विसनेम) विशेष कर के सेवन करें वैसे हम भी किया करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। मनुष्य ईश्वर और विद्वानों के सहाय और अपने पुरुषार्थ से सब सुखों को प्राप्त हो सकते हैं अन्यथा नहीं ॥ ५ ॥

ऋतस्य हि धेनवो वावशानाः स्मदूध्नीः पीपयन्त द्युभक्ताः ।
परावतः सुमतिं भिक्षमाणा वि सिन्धवः समया सस्रुरद्रिम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे (**वावशानाः**) अत्यन्त शोभायमान (**स्मदूधीः**) बहुत दूध देने वाली (**धेनवः**) गायें (**पीपयन्त**) दूध आदि से बढ़ाती हैं जैसे (**द्युभक्ताः**) प्रकाश से भिन्न भिन्न किरणें (**परावतः**) दूर देश से (**अद्रिम्**) मेघ को (**समया**) समय पर वर्षाते हैं (**सिन्धवः**) नदियां (**सस्रुः**) बहती हैं वैसे तुम (**सुमतिम्**) उत्तम विज्ञान को (**भिक्षमाणाः**) जिज्ञासा से (**वि**) विशेष जान कर अन्य मनुष्यों के लिये विद्या और सुशिक्षा पूर्वक (**ऋतस्य हि**) मेघ से उत्पन्न हुए जल के समान सत्य ही की वर्षा करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे यज्ञ से सम्यक् प्रकार शोधा हुआ जल शक्ति को बढ़ाने वाला हो कर विज्ञान को बढ़ाता है वैसे ही धर्म्मात्मा विद्वान् हों ॥ ६ ॥

त्वे अग्ने सुमतिं भिक्षमाणा दिवि श्रवो दधिरे यज्ञियासः ।
नक्ता च चक्रुरुषसा विरूपे कृष्णं च वर्णमरुणं च सं धुः ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) पढ़ाने हारे विद्वान् ! जो (**दिवि**) प्रकाशस्वरूप (**त्वे**) आप के समीप स्थित हुए (**भिक्षमाणाः**) विद्याओं ही की भिक्षा करने वाले (**यज्ञियासः**) अध्ययनरूप कर्मचतुर विद्वन् लोग (**सुमतिम्**) उत्तम बुद्धि को (**दधिरे**) धारण करते तथा (**श्रवः**) श्रवण वा अन्न को (**संधुः**) धारण करते हैं (**नक्ता**) रात्री (**च**) और (**उषसा**) दिन के साथ (**कृष्णम्**) श्याम (**अरुणम्**) लाल (**वर्णम्**) वर्ण को (**च**) तथा इन से भिन्न वर्णों से युक्त पदार्थों को धारण करते हैं (**च**) और (**विरूपे**) विरुद्ध रूपों का विज्ञान (**चक्रुः**) करते हैं वे सुखी होते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—परमेश्वर की सृष्टि के विज्ञान के विना कोई मनुष्य पूर्ण विद्वान् होने को समर्थ नहीं होता। जैसे रात्री दिवस भिन्न भिन्न रूप वाले हैं वैसे ही अनुकूल और विरुद्ध धर्मादि के विज्ञान से सब पदार्थों को जान के उपयोग में लेवें ॥ ७ ॥

यान् राये मर्त्तान्त्सुषूदो अग्ने ते स्याम मघवानो वयं च ।
छायेव विश्वं भुवनं सिसक्ष्यापप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम् ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) जगदीश्वर ! जो आप (यान्) जिन (सुसूदः) क्षय वृद्धि धर्म्मयुक्त (मर्त्तान्) मनुष्यों को (राये) विद्यादि धन के लिये (सिसक्षि) संयुक्त करते हो (ते) वे (वयम्) हम लोग (मघवानः) प्रशंसा योग्य धन वाले (स्याम) होवें (च) और जो आप (छायेव) शरीरों की छाया के समान (विश्वम्) सब (भुवनम्) जगत् और (रोदसी) आकाश पृथिवी और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (आपप्रिवान्) पूर्ण करने वाले हो उन आप की सब लोग उपासना करें ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर की उपासना और अपने पुरुषार्थ से आप विद्यादि धन वाले होकर सब मनुष्यों को भी करें ॥ ८ ॥

अर्वद्भिरग्ने अर्वतो नृभिर्नॄन् वीरैर्वीरान् वनुयामा त्वोताः ।
ईशानासः पितृवित्तस्य रायो वि सूरयः शतहिमा नो अश्युः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सब सुखों को प्राप्त कराने वाले परमेश्वर ! आप से (त्वोताः) रक्षित हम लोग (अर्वद्भिः) प्रशंसा योग्य घोड़ों से (अर्वतः) घोड़ों को (नृभिः) विद्यादिश्रेष्ठगुणयुक्त मनुष्यों से (नॄन्) शिक्षा धर्म्मवाले मनुष्यों और (वीरैः) शौर्यादियुक्त शूरवीरों से (वीरान्) शूरता आदि गुण वाले शूरवीरों की प्राप्ति (वनुयाम) होने को चाहें और याचना करें । आप की कृपा से (पितृवित्तस्य) पिता के भोगे हुए (रायः) धन के (ईशानासः) समर्थ स्वामी हम लोग हों और (सूरयः) मेधावी विद्वान् (नः) हम लोगों को (शतहिमा) सौ हेमन्त ऋतु पर्यन्त (व्यश्युः) प्राप्त होते रहें ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग ईश्वर के गुण कर्म्म स्वभाव के अनुकूल वर्तने और अपने पुरुषार्थ के विना उत्तम विद्या और पदार्थों के प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकते इस से इस का सदा अनुष्ठान कराना उचित है ॥ ९ ॥

एता ते अग्न उचथानि वेधो जुष्टानि सन्तु मनसे हृदे च ।
शकेम रायः सुधुरो यमं तेऽधि श्रवो देवभक्तं दधानाः ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (वेधः) सब के अन्तःकरण में रहने से सब को बुद्धिप्रद धर्त्ता (अग्ने) विज्ञान के देने वाले जगदीश्वर (ते) आप की कृपा से (एता)

(उचथानि) वेदवचन हम लोगों के (मनसे) मन (च) और (हृदे) आत्मा के लिये (जुष्टानि) सेवन किये हुए प्रीतिकारक (सन्तु) होवें वे (ते) आपके सम्बन्ध से (यमम्) नियम करने (देवभक्तम्) विद्वानों ने सेवन किये हुए (श्रवः) श्रवण को (दधानाः) धारण करते हुए (सुधुरः) उत्तम पदार्थों के धारण करने वाले हम लोग (रायः) धनों के प्राप्त होने को (अधि शकेम) समर्थ हों ॥ १० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि आप सब सुखों को प्राप्त होकर और सभों के लिये प्राप्त करावें ॥ १० ॥

इस सूक्त में ईश्वर अग्नि विद्वान् और सूर्य के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्तार्थ को पूर्वसूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी उचित है ॥

यह तिहत्तरवां सूक्त पूरा हुआ ॥

राहूगणो गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । २ । ८ । ९ निचृद्गायत्री ३ । ५ । ६ गायत्री । ४ । ७ विराड्गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये । आरे अस्मे च शृण्वते ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (उपप्रयन्तः) समीप प्राप्त होने वाले हम लोग इस (अस्मे) हम लोगों के (आरे) दूर (च) और समीप में (शृण्वते) श्रवण करते हुए (अग्नये) परमेश्वर के लिये (अध्वरम्) हिंसारहित (मन्त्रम्) विचार को निरन्तर (वोचेम्) उपदेश करें वैसे तुम भी किया करो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि बाहर भीतर व्याप्त होके हम लोगों के दूर समीप व्यवहार के कर्मों को जानते हुए परमात्मा को जान कर अधर्म से अलग हो कर सत्य धर्म का सेवन कर के आनन्द युक्त रहें ॥ १ ॥

यः स्नीहितीषु पूर्व्यः संजग्मानासु कृष्टिषु । अरक्षद्दाशुषे गयम् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (पूर्व्यः) पूर्वज विद्वान् लोगों ने साक्षात्कार किये हुए जगदीश्वर (संजग्मानासु) एक दूसरे के सङ्ग चलती हुई (स्नीहितीषु) स्नेह करने वाली (कृष्टिषु) मनुष्य आदि प्रजा में (दाशुषे) विद्यादि शुभ गुण देने वाले के लिये (गयम्) धन को (अरक्षत्) रक्षा करता है उस (अग्नये) ईश्वर के लिये (अध्वरम्) हिंसारहित (मन्त्रम्) विचार को हम लोग (वोचेम) कहें वैसे तुम भी कहा करो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। पूर्व मन्त्र से (अग्नये) (अध्वरम्) (मन्त्रम्) (वोचेम) इन चार पदों की अनुवृत्ति आती है। प्रजा में रहनेवाले किसी जीव की परमेश्वर के विना रक्षा और सुख नहीं हो सकता इस से सब मनुष्यों को उचित है कि इस का सेवन सर्वदा करें॥ २॥

उत ब्रु॑वन्तु ज॒न्तव॒ उद॒ग्निर्वृ॑त्र॒हाज॑नि। ध॒न॒ञ्ज॒यो रणे॑रणे॥ ३॥

पदार्थ—जो (रणे रणे) युद्ध युद्ध में (धनञ्जयः) धन से जिताने वाला (वृत्रहा) मेघ को नष्ट करने हारे सूर्य्य के समान (अग्निः) परमेश्वर (दाशुषे) विद्या शुभ गुणों के दान करने वाले मनुष्य के लिये (गयम्) धन को (उदजनि) उत्पन्न करता है (उत) और भी जिसका विद्वान् लोग उपदेश करते हैं (जन्तवः) सब मनुष्य (अध्वरम्) हिंसारहित (मन्त्रम्) उसी के विचार को (उतब्रुवन्तु) परस्पर उपदेश करें॥ ३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो तुम जिसके आश्रय से शत्रुओं के पराजय द्वारा अपने विजय से राज्य धनों की प्राप्ति होती है उस परमेश्वर का नित्य सेवन किया करो॥ ३॥

यस्य॑ दू॒तो असि॒ क्षये॒ वेषि॑ ह॒व्यानि॑ वी॒तये॑। द॒स्मत्कृ॒णोष्य॑ध्व॒रम्॥ ४॥

पदार्थ—हे विद्वान् आप (यस्य) जिस मनुष्य के (वीतये) विज्ञान के लिये अग्नि के तुल्य (दूतः) दुःख नाश करने वाले (असि) हैं (क्षये) घर में (हव्यानि) हवन करने योग्य उत्तम द्रव्यगुणकर्मों को (वेषि) प्राप्त वा उत्पन्न करते हो (दस्मत्) दुःख नाश करने वाले (अध्वरम्) अग्निहोत्रादि यज्ञ के समान विद्याविज्ञान को बढ़ानें वाले यज्ञ को (कृणोषि) सिद्ध करते हो उसका सब मनुष्य सेवन करें॥ ४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जिस मनुष्य ने परमेश्वर के समान विद्वान् पढ़ाने और उपदेश करने वाले की चाहना की है उसको कभी दुःख नहीं होता॥ ४॥

तमित्सु॑ह॒व्यम॑ङ्गिरः सु॒देवं॑ सहसो यहो। जना॑ आहुः सुब॒र्हिष॑म्॥ ५॥

पदार्थ—हे (अङ्गिरः) अङ्गों के रस रूप (सहसः) बल के (यहो) पुत्ररूप विद्वान् मनुष्य जिस तुझ को बिजुली के तुल्य (सुदेवम्) दिव्यगुणों के देने (सुबर्हिषम्) विज्ञानयुक्त (सुहव्यम्) उत्तम ग्रहण करने वाले आप को (जनाः)

विद्वान् लोग (आहुः) कहते हैं (तम्) उनको (इत्) ही हम लोग सेवन करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के सङ्ग से पदार्थविद्या को जान और सम्यक् परीक्षा करके अन्य मनुष्यों को जनावें ॥ ५ ॥

आ च वहासि ताँ इह देवाँ उप प्रशस्तये । हव्या सुश्चन्द्र वीतये ॥६॥

पदार्थ—हे (सुश्चन्द्र) अच्छे आनन्द के देने वाले विद्वान् आप (इह) इस संसार में (प्रशस्तये) प्रशंसा (च) और (वीतये) सुखों की प्राप्ति के लिये जिन (हव्या) ग्रहण के योग्य (देवान्) दिव्य गुणों वा विद्वानों को (उपावहासि) समीप में सब प्रकार प्राप्त हों (तान्) उन आप को हम लोग प्राप्त होवें ॥ ६ ॥

भावार्थ—जब तक मनुष्य परमेश्वर के जानने के लिये धर्मात्मा विद्वान् पुरुषों से शिक्षा और अग्नि आदि पदार्थों से उपकार लेने में ठीक ठीक पुरुषार्थ नहीं करते तब तक पूर्ण विद्या को प्राप्त कभी नहीं हो सकते ॥ ६ ॥

न योरुपब्दिरश्व्यः शृण्वे रथस्य कच्चन । यदग्ने यासि दूत्यम् ॥७॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य विद्या से प्रकाशित विद्वान् आप जैसे (उपब्दिः) अत्यन्त शब्द करने (अश्व्यः) शीघ्र चलने वाले यानों में अत्यन्त वेगकारक (यत्) जिस अग्नियुक्त और (योः) चलने चलाने वाले (रथस्य) विमानादि यानसमूह के बीच स्थिर होके (दूत्यम्) दूत के तुल्य अपने कर्म को (यासि) प्राप्त होते हो मैं उस अग्नि के समीप और शब्दों को (कच्चन) कभी (न) नहीं (शृण्वे) सुनता (किन्तु) प्राप्त होता हूँ तू भी नहीं सुन सकता परन्तु प्राप्त हो सकता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्य लोग शिल्पविद्या से सिद्ध किये हुए यान और यन्त्रादिकों में युक्त अत्यन्त गमन कराने वाले अग्नि के समीपस्थ शब्द के निकट अन्य शब्दों को नहीं सुन सकते ॥ ७ ॥

त्वोतो वाज्यह्रयोऽभि पूर्वस्मादपरः । प्र दाश्वा अग्ने अस्थात् ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्यायुक्त जैसे (अह्रयः) शीघ्रयान मार्गों को प्राप्त कराने वाले अग्नि आदि (अपरः) और भिन्न देश वा भिन्न कारीगर (त्वोतः)

आप से संगम को प्राप्त हुआ (वाजी) प्रशंसा के योग्य वेगवाला (दाश्वान्) दाता (पूर्वस्मात्) पहले स्थान से (अभि) सन्मुख (प्रास्थात्) देशान्तर को चलाने वाला होता है वैसे अन्य मन आदि पदार्थ भी हैं ऐसा तू जान ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को यह जानना चाहिये कि शिल्पविद्यासिद्ध यन्त्रों के विना अग्नि यानों का चलाने वाला नहीं होता ॥ ८ ॥

उत द्युमत्सुवीर्य्यं बृहदग्ने विवाससि । देवेभ्यो देव दाशुषे ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (देव) दिव्य गुण कर्म्म और स्वभाव वाला (अग्ने) अग्निवत् प्रज्ञा से प्रकाशित विद्वान् तू (दाशुषे) देने के स्वभाव वाले कार्य्यों के अध्यक्ष (उत) अथवा (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (द्युमत्) अच्छे प्रकाश वाले (बृहत्) बड़े (सुवीर्य्यम्) अच्छे पराक्रम को (विवाससि) सेवन करता है वैसे हम भी उस का सेवन करें ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो कार्यों के स्वामी होवें उन विद्वानों के सकाश से विद्या और पुरुषार्थ करके विद्वान् तथा भृत्यों को बड़े बड़े उपकारों का ग्रहण करना चाहिये ॥ ९ ॥

इस सूक्त में ईश्वर विद्वान् और विद्युत् अग्नि के गुणों का वर्णन होने से पूर्व सूक्तार्थ के साथ इस सूक्त की सङ्गति है ॥

यह चौहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ।

राहूगणो गोतम ऋषिः अग्निर्देवता । १ गायत्री । २ । ४ । ५ निचृद्गायत्री । ३ विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

जुषस्व सप्रथस्तमं वचो देवप्सरस्तमम् । हव्या जुह्वान आसनि ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वन् (आसनि) अपने मुख में (हव्या) भोजन करने योग्य पदार्थों को (जुह्वानः) खाने वाले आप जो विद्वानों का (सप्रथस्तमम्) अतिविस्तारयुक्त (देवप्सरस्तमम्) विद्वानों को अत्यन्त ग्रहण करने योग्य व्यवहार वा (वचः) वचन है (तम्) उस को (जुषस्व) सेवन करो ॥ १ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य युक्तिपूर्वक भोजन, पान और चेष्टाओं से युक्त ब्रह्मचारी हों वे शरीर और आत्मा के सुख को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

अथा ते अङ्गिरस्तमाग्ने वेधस्तम प्रियम् । वोचेम ब्रह्म सानसि ॥२॥

पदार्थ—हे (**अङ्गिरस्तम**) सब विद्याओं के जानने और (**वेधस्तम**) अत्यन्त धारण करने वाले (**अग्ने**) विद्वान् जैसे हम लोग वेदों को पढ़ के (**अथ**) इस के पीछे (**ते**) तुझे (**सानसि**) सदा से वर्त्तमान (**प्रियम्**) प्रीतिकारक (**ब्रह्म**) चारों वेदों का (**वोचेम**) उपदेश करें वसे ही तू कर ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । वेदादि सत्यशास्त्रों के उपदेश के विना किसी मनुष्य को परमेश्वर और विद्युत् अग्नि आदि पदार्थों के विषय का ज्ञान नहीं होता ॥ २ ॥

कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः । को ह कस्मिन्नसि श्रितः ॥३॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विद्वन् ! (**जनानाम्**) मनुष्यों के बीच (**ते**) आप का (**कः**) कौन मनुष्य (**ह**) निश्चय करके (**जामिः**) जानने वाला है (**कः**) कौन (**दाश्वध्वरः**) दान देने और रक्षा करने वाला है तू (**कः**) कौन है और (**कस्मिन्**) किस में (**श्रितः**) आश्रित (**असि**) है इस सब बात का उत्तर दे ॥ ३ ॥

भावार्थ—बहुत मनुष्यों में कोई ऐसा होता है कि जो परमेश्वर और अग्न्यादि पदार्थों को ठीक ठीक जाने और जनावे क्योंकि ये दोनों अत्यन्त आश्चर्य्य गुण कर्म और स्वभाव वाले हैं ॥ ३ ॥

त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः । सखा सखिभ्य ईड्यः ॥४॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) पण्डित जिस कारण (**जनानाम्**) मनुष्यों को (**जामिः**) जल के तुल्य सुख देने वाले (**मित्रः**) सब के मित्र (**प्रियः**) कामना को पूर्ण करने वाले योग्य विद्वान् (**त्वम्**) आप (**सखिभ्यः**) सब के मित्र मनुष्यों को (**ईड्यः**) स्तुति करने योग्य (**सखा**) मित्र हो इसी से सब को सेवन योग्य विद्वान् (**असि**) हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उस परमेश्वर और उस विद्वान् मनुष्य की सेवा क्यों नहीं करना चाहिये कि जो संसार में विद्यादि शुभ गुण और सब को सुख देता है ॥ ४ ॥

यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत् । अग्ने यक्षि स्वं दमम् ॥५॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) पूर्ण विद्यायुक्त विद्वान्मनुष्य जिस कारण (**स्वम्**) आप अपने (**दमम्**) उत्तम स्वभावरूपी घर को (**यक्षि**) प्राप्त होते हैं इसी से

(नः) हमारे लिये (मित्रावरुणा) वल और पराक्रम के करने वाले प्राण और उदान को (यज) अरोग कीजिये (बृहत्) बड़े बड़े विद्यादि-गुणयुक्त (ऋतम्) सत्य विज्ञान को (यज) प्रकाशित कीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—जैसे परमेश्वर का परोपकार के लिये न्याय आदि शुभ गुण देने का स्वभाव है वैसे ही विद्वानों को भी अपना स्वभाव रखना चाहिये ॥ ५ ॥

इस सूक्त में ईश्वर अग्नि और विद्वान् के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये ॥

यह पचहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

राहूगणो गोतम ऋषिः। अग्निर्देवता। १। ३। ४ निचृत्त्रिष्टुप्। २। ५ विराट् त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

का त उपेतिर्मनसो वराय भुवदग्ने शन्तमा का मनीषा।

को वा यज्ञैः परि दक्षं त आप केन वा ते मनसा दाशेम ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) शान्ति के देने वाले विद्वान् मनुष्य ! (ते) तुझ अति श्रेष्ठ विद्वान् की (का) कौन (उपेतिः) सुखों को प्राप्त करने वाली नीति (मनसः) चित्त की (वराय) श्रेष्ठता के लिये (भुवत्) होती है (का) कौन (शन्तमा) सुख को प्राप्त करने वाली (मनीषा) बुद्धि होती है (कः) कौन मनुष्य (वा) निश्चय करके (ते) आपके (दक्षम्) वल को (यज्ञैः) पढ़ने पढ़ाने आदि यज्ञों को करके (परि) सब ओर से (आप) प्राप्त होता है (वा) अथवा हम लोग (केन) किस प्रकार के (मनसा) मन से (ते) आप के लिये क्या (दाशेम) देवें ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को परमेश्वर और विद्वान् की ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये कि हे परमात्मन् वा विद्वान् पुरुष ! आप कृपा करके हमारी शुद्धि के लिये श्रेष्ठ कर्म श्रेष्ठ, बुद्धि और श्रेष्ठ वल को दीजिये जिस से हम लोग आप को जान और प्राप्त हो के सुखी हों ॥ १ ॥

एह्यग्न इह होता नि षीदादब्धः सु पुरएता भवा नः।

अवतां त्वा रोदसी विश्वमिन्वे यजा महे सौमनसाय देवान् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सब के उपकार करने वाले विद्वान् ! (अदब्धः)

अहिंसक हम लोगों को सेवा करने योग्य आप (इह) इस संसार में (होता) देने वाले (नः) हम लोगों को (आ, इहि) प्राप्त हूजिये (सु) अच्छे प्रकार (नि) नित्य (सीद) ज्ञान दीजिये (पुर एता) पहिले प्राप्त करने वाले (भव) हूजिये जिस (त्वा) आप को (विश्वमिन्वे) सब संसार को तृप्त करने वाले (रोदसी) विद्याप्रकाश और भूगोल का राज्य अथवा आकाश और पृथिवी (अवताम्) प्राप्त हों सो आप (महे) बड़े (सौमनसाय) मन का वैरभाव छुड़ाने के लिये (देवान्) विद्वान् दिव्य गुणों को स्वात्मा में (यज) संगत कीजिये ॥ २ ॥

भावार्थ—इस प्रकार सत्यभाव से प्रार्थना किया हुआ परमेश्वर और सेवा किया हुआ धर्मात्मा विद्वान् सब सुख मनुष्यों को देता है ॥ २ ।

प्र सु विश्वान्रक्षसो धक्ष्यग्ने भवा यज्ञानामभिशस्तिपावा ।
अथा वह सोमपतिं हरिभ्यामातिथ्यमस्मै चकृमा सुदाव्ने ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) दुष्टों को शिक्षा करने वाले सभाध्यक्ष जिस प्रकार आप (विश्वान्) सब (रक्षसः) दुष्ट मनुष्यों वा दोषों का (प्र) अच्छे प्रकार (धक्षि) नाश करते हैं इसी कारण (यज्ञानाम्) जो जानने योग्य कारीगरी है उन के साधकों की (अभिशस्तिपावा) हिंसा से रक्षा करने वाले (सु) अच्छे प्रकार (भव) हूजिये जैसे सूर्य्य (हरिभ्याम्) धारण और आकर्षण से सब सुखों को प्राप्त करता है वैसे (सोमपतिम्) ऐश्वर्यों के स्वामी को (आवह) प्राप्त हूजिये (अथ) इसके पीछे (अस्मै) इस (सुदाव्ने) विद्या विज्ञान अच्छी शिक्षा राज्यादि धनों के देने वाले आप के लिये हम लोग (आतिथ्यम्) सत्कार (चकृम) करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे ईश्वर ने जगत् में प्राणियों के वास्ते सब पदार्थ दिये हैं वैसे मनुष्य जो उत्तम विद्या और शिक्षा देवे उसी का सत्कार करें अन्य का नहीं ॥ ३ ॥

प्रजावता वचसा वह्निरासा च हुवे नि च सत्सीह देवैः ।
वेषि होत्रमुत पोत्रं यजत्र बोधि प्रयन्तर्जनितर्वसूनाम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (यजत्र) दाता (वह्निः) सुखों को प्राप्त कराने वाले तू (इह) इस संसार में (देवैः) विद्वानों के साथ (सत्सि) सभा में (प्रजावता) प्रजा की संमति के अनुकूल (वचसा) वचनों से (बोधि) बोध कराता है । जिस से (होत्रम्) हवन करने योग्य (च) और (पोत्रम्) पवित्र करने वाले वस्तुओं को (उत) भी (नि) निरन्तर (वेषि) प्राप्त होता है (जनितः) सुखोत्पन्न करने वाले (प्रयन्तः) प्रयत्न से तू जैसे (वसूनाम्) पृथिव्यादि पदार्थों का जानने

वाला है वैसे मैं (आसा) मुख से तेरी (च) अन्य विद्वानों की भी (आहुवे) स्तुति करता हूँ ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। मनुष्य परमेश्वर और धार्मिक विद्वानों के सहाय और संग से शुद्धि को प्राप्त होकर सब श्रेष्ठ वस्तुओं को प्राप्त हों ॥ ४ ॥

यथा विप्रस्य मनुषो हविर्भिर्देवाँ अयजः कविभिः कविः सन् ।
एवा होतः सत्यतर त्वमद्याग्ने मन्द्रया जुह्वा यजस्व ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (सत्यतर) अतिशय सत्याचारनिष्ठ (होतः) सत्यग्रहण करने हारे दाता (अग्ने) विद्वान् (यथा) जैसे कोई धार्मिक विद्वान् अथवा विद्यार्थी (विप्रस्य) बुद्धिमान् अध्यापक विद्वान् (मनुषः) मनुष्य के अनुकूल हो के सब का सुखदायक होता है वैसे (एव) ही (त्वम्) तू (अद्य) इसी समय (कविभिः) पूर्ण विद्यायुक्त बहुदर्शी विद्वानों के साथ (कविः) विद्वान् बहुदर्शी (सन्) हो के जिन (हविर्भिः) ग्रहण करने योग्य गुण कर्म स्वभावों के साथ (देवान्) विद्वान् और दिव्य गुणों को (अयजः) प्राप्त होता है उस (मन्द्राया) आनन्द करने हारी (जुह्वा) दान क्रिया से हम को (यजस्व) प्राप्त हो ॥ ५ ॥

भावार्थ—जैसे कोई मनुष्य विद्वानों से सब विद्याओं को प्राप्त सब का उपकारक हो सब प्राणियों को सुख दे सब मनुष्यों को विद्वान् करके आनन्दित होता है वैसे ही आप्त अर्थात् पूर्ण विद्वान् धार्मिक होता है ॥ ५ ॥

इस सूक्त में ईश्वर और विद्वान् के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये ॥

यह छहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

राहूगणो गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । १ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ निचृत्त्रिष्टुप् ३—५ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कथा दाशेमाग्नये कास्मै देवजुष्टोच्यते भामिने गीः ।
यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा होता यजिष्ठ इत्कृणोति देवान् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग विद्वानों के साथ होते हैं वैसे (यः) जो (मर्त्येषु) मरणधर्मयुक्त शरीरादि में (अमृतः) मृत्युरहित (ऋतावा) सत्य गुण कर्म स्वभाव युक्त (होता) दाता और ग्रहण करने हारा (यजिष्ठः) अत्यन्त

सत्संगी (**देवान्**) दिव्य गुण वा दिव्य पदार्थों वा विद्वानों को (**कृणोति**) करता है (**अस्मै**) इस उपदेशक (**भामिने**) दुष्टों पर क्रोधकारक (**अग्नये**) सत्यासत्य जनाने हारे के लिये (**का**) कौन (**कथा**) किस हेतु से (**देवजुष्टा**) विद्वानों ने सेवी हुई (**गीः**) वाणी (**उच्यते**) कही है उस (**इत्**) ही को (**दाशेम**) विद्या देवें वैसे तुम भी किया करो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् ईश्वर की स्तुति और विद्वानों को सेवन करके दिव्य गुणों को प्राप्त होकर सुखों को प्राप्त होता है वैसे ही हम लोगों को सेवन करना चाहिये ॥ १ ॥

यो अध्वरेषु शन्तम ऋतावा होता तमू नमोभिरा कृणुध्वम् ।
अग्निर्यद्वेर्मर्त्ताय देवान्त्स चा बोधाति मनसा यजाति ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग (**यः**) जो (**अग्निः**) विज्ञानस्वरूप परमेश्वर वा विद्वान् (**अध्वरेषु**) सदैव ग्रहण करने योग्य यज्ञों में (**शन्तमः**) अत्यन्त आनन्द को देने हारा तथा (**ऋतावा**) शुभ गुण कर्म और स्वभाव से सत्य है (**होता**) सब जगत् और विज्ञान का देने वाला है तथा (**यत्**) जो (**मर्त्ताय**) मनुष्य के लिये (**देवान्**) विज्ञान आदि श्रेष्ठ गुणों को (**बोधाति**) अच्छे प्रकार जाने (**च**) और (**यजाति**) संगत करे इसलिये (**तम् उ**) उसी परमेश्वर वा विद्वान् को (**नमोभिः**) नमस्कार वा अन्नों से प्रसन्न (**आकृणुध्वम्**) करो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । परमेश्वर और धर्मात्मा मनुष्य के विना मनुष्यों को विद्या का देने वाला दूसरा कोई नहीं है तथा उन दोनों को छोड़ के उपासना तथा सत्कार भी किसी का न करना चाहिये ॥ २ ॥

स हि क्रतुः स मर्यः स साधुर्मित्रो न भूदद्भुतस्य रथीः ।
तं मेधेषु प्रथमं देवयन्तीर्विश उप ब्रुवते दस्ममारीः ॥ ३ ॥

पदार्थ—(**देवयन्तीः**) कामनायुक्त (**आरीः**) ज्ञानवाली (**विशः**) प्रजा (**मेधेषु**) पढ़ने पढ़ाने और संग्राम आदि यज्ञों में (**तम्**) उस (**दस्मम्**) दुःख नाश करने वाले को सभाध्यक्ष मान कर (**प्रथमम्**) सब से उत्तम (**उपब्रुवते**) कहती है कि जो (**मित्रः**) सब का मित्र (**न**) जैसा (**भूत्**) हो (**सः**) (**हि**) वही सब प्रकार (**क्रतुः**) बुद्धि और सुकर्म से युक्त (**सः**) वही (**मर्य्यः**) मनुष्यपन का रखने वाला और (**सः**) वही (**साधुः**) सबका उपकार करने तथा श्रेष्ठ मार्ग में चलने वाला विद्वान् (**अद्भुतस्य**) आश्चर्यकर्मों से युक्त सेना का (**रथीः**) उत्तम रथ वाला रथी होवे ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जो सब से अधिक गुण कर्म और स्वभाव तथा सब का उपकार करने वाला सज्जन मनुष्य है उसी को सभाध्यक्ष का अधिकार देके राजा माने अर्थात् किसी एक मनुष्य को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार न देवें किन्तु शिष्ट पुरुषों की जो सभा है उसके आधीन राज्य के सब काम रक्खें ॥ ३ ॥

स नो॑ नृणां नृत॑मो रिशादा॑ अग्निर्गिरोऽव॑सा वेतु धीतिम् ।

तना॑ च ये मघवा॑नः शवि॑ष्ठा वाज॑प्रसूता इषय॑न्त मन्म॑ ॥ ४ ॥

पदार्थ—जो (नः) हमारे (नृणाम्) मनुष्यों के बीच (नृतमः) अत्यन्त उत्तम मनुष्य (अग्निः) पावक के तुल्य अधिक ज्ञान प्रकाश वाला (अवसा) रक्षण आदि से (गिरः) वाणी और (धीतिम्) धारणा को चाहता है (सः) वह मनुष्य हमारे बीच में सभाध्यक्ष के अधिकार को (वेतु) प्राप्त हो जो (नृणाम्) मनुष्यों में (रिशादाः) शत्रुओं को नष्ट करने हारे (वाजप्रसूताः) विज्ञान आदि गुणों से शोभायमान (शविष्ठाः) अत्यन्त बलवान् (मघवानः) प्रशंसित धनवाले (तना) विस्तृत धनों की और (मन्म) विज्ञान (च) विद्या आदि अच्छे अच्छे गुणों की (इषयन्त) इच्छा करते हैं । इसी से हमारी सभा में वे लोग सभासद् हों ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि अत्युत्तम सभाध्यक्ष मनुष्यों के सहित सभा बना के राज्य व्यवहार की रक्षा से चक्रवर्त्ति राज्य की शिक्षा करें इस के विना कभी स्थिर राज्य नहीं हो सकता इसलिये पूर्वोक्त कर्म का अनुष्ठान करके एक को राजा नहीं मानना चाहिये ॥ ४ ॥

एवाग्निर्गोत॑मेभिर्ऋतावा विप्रे॑भिरस्तोष्ट जातवे॑दाः ।

स एषु द्युम्नं पी॑पयत्स वाजं स पुष्टिं या॑ति जोषमा चिकि॑त्वान् ॥५॥

पदार्थ—(गोतमेभिः) अत्यन्त स्तुति करने वाले (विप्रेभिः) बुद्धिमान् लोगों से जो (जातवेदाः) ज्ञान और प्राप्त होने वाला (ऋतावा) सत्य हैं गुण कर्म्म और स्वभाव जिस के (अग्निः) वह ईश्वर स्तुति किया जाता और (अस्तोष्ट) जिस की विद्वान् स्तुति करता है (एव) वही (एषु) इन धार्मिक विद्वानों में (चिकित्वान्) ज्ञान वाला (द्युम्नम्) विद्या के प्रकाश को प्राप्त होता है (सः) वह (वाजम्) उत्तम अन्नादि पदार्थों को (पीपयत्) प्राप्त कराता और (सः) वही (जोषम्) प्रसन्नता और (पुष्टिम्) धातुओं की समता को (आ याति) प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि श्रेष्ठ धर्मात्मा विद्वानों के साथ उन की सभा में रह कर उन से विद्या और शिक्षा को प्राप्त हो के सुखों का सेवन करें ॥ ५ ॥

इस सूक्त में ईश्वर विद्वान् और अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति समझनी चाहिये ॥

॥ यह सतहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

राहूगणो गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अभि त्वा गोतमा गिरा जातवेदो विचर्षणे । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥१॥

पदार्थ—हे (जातवेदः) पदार्थों के जानने वाले (विचर्षणे) सब से प्रथम देखने योग्य परमेश्वर ! आप की जैसे (गोतमाः) अत्यन्त स्तुति करने वाले (द्युम्नैः) धन और विमानादिक गुणों तथा (गिरा) उत्तम वाणियों के साथ (अभि) चारों ओर से स्तुति करते हैं और जैसे हम लोग (अभि, प्रणोनुमः) अत्यन्त नम्र हो के (त्वा) आप की प्रशंसा करते हैं वैसे सब मनुष्य करें ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर की उपासना और विद्वानों का सङ्ग करके विद्या का विचार करें ॥ १ ॥

तमु त्वा गोतमो गिरा रायस्कामो दुवस्यति । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥२॥

पदार्थ—हे धनपते (रायस्कामः) धन की इच्छा करने वाला (गोतमः) विद्वान् मनुष्य (गिरा) वाणी से (त्वा) तेरी (दुवस्यति) सेवा करता है वैसे (तम् उ) उसी आप की (द्युम्नैः) श्रेष्ठ कीर्ति से सह वर्त्तमान हम लोग (अभि) सब ओर से (प्रणोनुमः) अति प्रशंसा करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को ऐसा विचार अपने मन में सदैव रखना चाहिये कि परमेश्वर की उपासना और विद्वान् मनुष्य के संग के विना हम लोगों की धन की कामना पूरी कभी नहीं हो सकती ॥ २ ॥

तमु त्वा वाजसातममङ्गिरस्वद्धवामहे । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् (द्युम्नैः) पुण्यरूपी कीर्तियों के साथ जिस (वाजसातमम्) अतिप्रशंसित बोधों से युक्त विद्वान् की और (त्वा) आप की हम लोग

(हवामहे) स्तुति करें (उ) अच्छे प्रकार (अङ्गिरस्वत्) प्रशंसित प्राण के समान (अभि) सब ओर से (प्रणोनुमः) सत्कार करते हैं सो तुम (तम्) उसी की स्तुति और प्रणाम किया करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग विद्वान् को उक्त प्रकार के सत्कार से सन्तुष्ट करके धर्म अर्थ काम और मोक्ष को सिद्ध करो ॥ ३ ॥

तमु॑ त्वा वृत्र॒हन्त॑मं॒ यो दस्यूँ॑रव॒धूनु॒षे । द्यु॒म्नैर॒भि प्र णो॑नुमः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (यः) जो (त्वम्) तू (दस्यून्) महादुष्ट डाकुओं को (अवधूनुषे) कंपा के नष्ट करता है (तम्) उसी (वृत्रहन्तमम्) मेघ वर्षाने वाले सूर्य्य के समान (त्वा) तेरी (द्युम्नैः) कीर्तिकारी शस्त्रों के सहित हम लोग (अभि) सम्मुख होके (प्रणोनुमः) सब प्रकार स्तुति करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जिस का कोई शत्रु न हो ऐसा विद्वान् सभाध्यक्ष जो कि दुष्ट शत्रुओं को परास्त कर सके उसकी सदैव सेवा करो ॥ ४ ॥

अवो॑चाम॒ रहू॑गणा अ॒ग्नये॒ मधु॑म॒द्वचः॑ । द्यु॒म्नैर॒भि प्र णो॑नुमः ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् लोगो ! (रहूगणाः) अधर्मयुक्त पापियों के समूह के त्याग करने वाले तुम जैसे (द्युम्नैः) उत्तम कीर्ति के साथ वर्तमान (अग्नये) विद्वान् के लिये (मधुमत्) मिष्ट (वचः) वचन बोलते हो वैसे हम भी (अवोचाम) बोला करें । जैसे हम लोग उस को (अभि प्रणोनुमः) नमस्कारादि से प्रसन्न करते हैं वैसे तुम भी किया करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को अत्यावश्यक है कि धर्मयुक्त कीर्ति वाले मनुष्यों ही की प्रशंसा करें अन्य की नहीं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में ईश्वर और विद्वानों के गुण कथन से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ।

यह अठहत्तरवां सूक्त पूरा हुआ ॥

राहूगणो गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । १ विराट् त्रिष्टुप् । २ । ३ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ आर्ष्युष्णिक् । ५ । ६ निचृदार्ष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । ७ । ८ । १० । ११ निचृद्गायत्री । ९ । १२ गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

हिर॑ण्यकेशो॒ रज॑सो वि॒सा॒रेऽहि॒र्धुनि॒र्वात॑इव॒ ध्रजी॑मान् ।
शुचि॑भ्राजा उ॒षसो॒ नवे॑दा॒ यश॑स्वतीरप॒स्युवो॒ न स॒त्याः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे कुमारि ब्रह्मचर्य्ययुक्त कन्या लोगो ! (रजसः) ऐश्वर्य के (विसारे) स्थिरता में (हिरण्यकेशः) हिरण्य सुवर्णवत् वा प्रकाशवत् न्याय के प्रचार करने वाले (धुनिः) शत्रुओं को कंपाने वाले (अहिः) मेघ के समान (ध्रजीमान्) शीघ्र चलने वाले (वात इव) वायु के तुल्य (उषसः) प्रातःकाल के समान (शुचिभ्राजाः) पवित्र विद्याविज्ञान से युक्त (नवेदाः) अविद्या का निषेध करने वाली विद्यायुक्त (यशस्वतीः) उत्तम कीर्त्तियुक्त (अपस्युवः) प्रशस्त कर्म्म करने वाली के (न) समान तुम (सत्याः) सत्य गुण कर्म्म स्वभाव वाली हों ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो कन्या लोग चौवीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य्य सेवन और जितेन्द्रिय होकर छः अङ्ग अर्थात् शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष । उपाङ्ग अर्थात् मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त तथा आयुर्वेद अर्थात् वैद्यक विद्या आदि को पढ़ती हैं वे सब संसारस्थ मनुष्य जाति की शोभा करने वाली होती हैं ॥ १ ॥

आ ते॑ सुप॒र्णा अ॑मिनन्तँ॒ एवैः॑ कृ॒ष्णो नो॑नाव वृष॒भो यदी॒दम् ।
शि॒वाभि॒र्न स्मय॑मानाभि॒राऽगा॒त्पत॑न्ति॒ मिहः॑ स्त॒नय॑न्त्य॒भ्रा ॥ २ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप जैसे (सुपर्णाः) किरणें (आऽमिनन्त) सब ओर से वर्षा को प्रेरणा करती हैं (एवैः) प्राप्त होने वाले गुणों से सहित (कृष्णः) आकर्षण करता (वृषभः) वर्षाने वाला सूर्य (इदम्) जल को वर्षाता है वैसे विद्या की (नोनाव) प्रशंसित वृष्टि करे तथा (स्मयमानाभिः) सदा प्रसन्न वदन (शिवाभिः) शुभ गुण कर्म्म युक्त कन्याओं के साथ तत्तुल्य ब्रह्मचारियों के विवाह के (न) समान सुख की (यदि) जो (अगात्) प्राप्त हो और जैसे (अभ्रा) मेघ (स्तनयन्ति) गर्जते तथा (मिहः) वर्षा के जल (आपतन्ति) वर्षते हैं वैसे विद्या को वर्षावे तो (ते) तुझ को क्या अप्राप्त हो अर्थात् सब सुख प्राप्त हों ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा और उपमालङ्कार है । जिन विद्वान् ब्रह्मचारियों की विदुषी ब्रह्मचारिणी स्त्री हों वे पूर्ण सख को क्यों न प्राप्त हों ॥ २ ॥

यदीमृतस्य पयसा पियानो नयन्नृतस्य पथिभी रजिष्ठैः ।

अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा त्वचं पृञ्चन्त्युपरस्य योनौ ॥ ३ ॥

पदार्थ—(यत्) जब (ऋतस्य) उदक के (पयसा) रस को (पियानः) पीने वाला (रजिष्ठैः) अत्यन्त धूलियुक्त (पथिभिः) मार्गों से (उपरस्य) मेघ के (योनौ) कारणरूप मण्डल में (ईम्) जल को (नयन्) प्राप्त करता हुआ (अर्यमा) नियन्ता सूर्य (मित्रः) प्राण (वरुणः) उदान और (परिज्मा) सब ओर आने जाने वाला जीव (ऋतस्य) सत्य के (त्वचम्) त्वचा रूप उपरि भाग को (पृञ्चन्ति) सम्बन्ध करते हैं तब सब के जीवन का सम्बन्ध होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जब कार्य्य और कारण में रहने वाले प्राण और जलादि पदार्थों के साथ जीव सम्बन्ध को प्राप्त होते हैं तब शरीरों के धारण करने को समर्थ होते हैं ॥ ३ ॥

अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।

अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (जातवेदः) प्राप्त विज्ञान (अग्ने) विद्युत् के समान विद्या प्रकाशयुक्त विद्वन् (सहसः) बलयुक्त पुरुष के (यहो) पुत्र (गोमतः) धन से युक्त (वाजस्य) अन्न के (ईशानः) स्वामी आप (अस्मे) हम लोगों में (महि) बड़े (श्रवः) विद्याश्रवण को (धेहि) धारण कीजिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य विद्वान् माता और पिताओं के सन्तान होके माता पिता और आचार्य्य से विद्या की शिक्षा को प्राप्त होकर बहुत अन्नादि ऐश्वर्य और विद्याओं को प्राप्त हों वे अन्य मनुष्यों में भी यह सब बढ़ावें ॥ ४ ॥

स इधानो वसुष्कविरग्निरीळेन्यो गिरा ।

रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (पुर्वणीक) बहुत सेनाओं से युक्त जो तू जैसे इन्धनों से (अग्निः) अग्नि प्रकाशमान होता है वैसे (इन्धानः) प्रकाशमान (गिरा) वाणी से (ईळेन्यः) स्तुति करने योग्य (वसुः) सुख में बसाने वाला और (कविः) सर्व-शास्त्रवित् होता है (सः) सो (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (रेवत्) बहुत धन करने वाला सब विद्या के श्रवण को (दीदिहि) प्रकाशित करे ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। पूर्व मन्त्र से (श्रवः) इस पद की अनुवृत्ति आती है। जैसे विजुली प्रसिद्ध पावक सूर्य अग्नि सब मूर्त्तिमान् द्रव्य को प्रकाश करता है वैसे सर्वविद्यावित्सत्पुरुष सब विद्या का प्रकाश करता है ॥ ५ ॥

क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः।

स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (तिग्मजम्भ) तीव्र मुख से बोलने हारे (अग्ने) विद्वन् (राजन्) न्याय विनय से प्रकाशमान तू (त्मना) अपने आत्मा से जैसे सूर्य (क्षपः) रात्रियों को निवर्त करके (सः) वह (वस्तोः) दिन (उत) और (उषसः) प्रभातों को विद्यमान करता है वैसे धार्मिक सज्जनों में विद्या और विनय का प्रकाश कर (उत) और (रक्षसः) दुष्टाचारियों को (प्रतिदह) प्रत्यक्ष दग्ध कर ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सविता निकट प्राप्त जगत् को प्रकाशित कर वृष्टि करके सब जगत् की रक्षा और अन्धकार का निवारण करता है वैसे सज्जन राजा लोग धार्मिकों की रक्षा कर दुष्टों के दण्ड से राज्य की रक्षा करें ॥ ६ ॥

अवा नो अग्न ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि। विश्वासु धीषु वन्द्य ॥७॥

पदार्थ—हे (वन्द्य) अभिवादन और प्रशंसा करने योग्य (अग्ने) विज्ञान स्वरूप सभाध्यक्ष आप (ऊतीभिः) रक्षण आदि से (गायत्रस्य) गायत्री के प्रगाथ वा आनन्दकारक व्यवहार का (प्रभर्मणि) अच्छी प्रकार राज्यादि का धारण हो जिस में उस तथा (विश्वासु) सब (प्रज्ञासु) बुद्धियों में (नः) हम लोगों की (अव) रक्षा कीजिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिये कि जो सभाध्यक्ष विद्वान् हमारी बुद्धि को शुद्ध करता है उस का सत्कार करें ॥ ७ ॥

आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम्। विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् ॥८॥

पदार्थ—हे (अग्ने) दान देने वा दिलाने वाले सभाध्यक्ष आप (नः) हम लोगों के लिये (विश्वासु) सब (पृत्सु) सेनाओं में (सत्रासाहम्) सत्य का सहन करते हैं जिस से उस (वरेण्यम्) अच्छे गुण और स्वभाव होने का हेतु (दुष्टरम्) शत्रुओं के दुःख [से] तरने योग्य (रयिम्) अच्छे द्रव्यसमह को (आभर) अच्छी प्रकार धारण कीजिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को सभाध्यक्ष आदि के आश्रय और अग्न्यादि पदार्थों के विज्ञान के विना संपूर्ण सुख प्राप्त कभी नहीं हो सकता ॥ ८ ॥

आ नों अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम् । मार्डीकं धेहि जीवसें ॥९॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विज्ञान और सुख के देने वाले विद्वान् आप (**नः**) हमारे (**जीवसे**) जीवन के लिये (**सुचेतुना**) अच्छे विज्ञान से युक्त (**विश्वायुपोषसम्**) सम्पूर्ण अवस्था में पुष्टि करने (**मार्डीकम्**) सुखों के सिद्ध करने वाले (**रयिम्**) धन को (**आधेहि**) सब प्रकार धारण कीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को अच्छी प्रकार सेवा किया हुआ विद्वान् विज्ञान और धन को देके पूर्ण आयु भोगने के लिये विद्या धन को देता है ॥ ९ ॥

प्र पूतास्तिग्मशोचिषे वाचों गोतमाग्नयें । भरस्व सुम्नयुर्गिरः ॥१०॥

पदार्थ—हे (**गोतम**) अत्यन्त स्तुति और (**सुम्नयुः**) सुख की इच्छा करने वाले विद्वान् तू (**तिग्मशोचिषे**) तीक्ष्ण बुद्धि प्रकाश वाले (**अग्नये**) विज्ञान रूप और विज्ञान वाले विद्वान् के लिये (**पूताः**) पवित्र करने वाली (**गिरः**) विद्या की शिक्षा और उपदेश से युक्त वाणियों को धारण करते हैं उन (**वाचः**) वाणियों को (**प्रभरस्व**) सब प्रकार धारण कर ॥ १० ॥

भावार्थ—जिस कारण परमेश्वर और परमविद्वान् के विना कोई दूसरा सत्यविद्या के प्रकाश करने को समर्थ नहीं होता इसलिये ईश्वर और विद्वान् की सदा सेवा करनी चाहिये ॥ १० ॥

यो नों अग्नेऽभिदासत्यन्ति दूरे पंदीष्ट सः । अस्माकमिद्वृधे भंव ॥११॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) विज्ञान देने वाले (**यः**) जो विद्वान् आप (**अन्ति**) समीप और (**दूरे**) दूर (**नः**) हमारे लिये (**अभिदासति**) अभीष्ट वस्तुओं को देते और (**पदीष्ट**) प्राप्त होते हो (**सः**) सो आप (**अस्माकम्**) हमारी (**इत्**) ही (**वृधे**) वृद्धि करने वाले (**भव**) हूजिये ॥ ११ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उस ईश्वर की सेवा अवश्य करनी क्यों नहीं चाहिये कि जो बाहर भीतर सर्वत्र व्यापक होके ज्ञान देता है तथा जो विद्वान् दूर वा समीप स्थित होके सत्य उपदेश से विद्या देता है ॥ ११ ॥

सहस्राक्षो विचर्षणिरग्नी रक्षांसि सेधति । होता गृणीत उक्थ्यः ॥१२॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (**उक्थ्यः**) स्तुति करने योग्य (**सहस्राक्षः**) असंख्य नेत्रों की सामर्थ्य से युक्त (**विचर्षणिः**) साक्षात् देखने वाला (**होता**) अच्छे अच्छे विद्या आदि पदार्थों को देने वाला (**अग्निः**) परमेश्वर (**रक्षांसि**) दुष्ट कर्म वा दुष्ट कर्म वाले प्राणियों को (**सेधति**) दूर और वेदों का (**गृणीते**) उपदेश करता है वैसे तू हो ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । परमेश्वर वा विद्वान् जिन कर्मों के करने की आज्ञा देवे उन को करो और जिन का निषेध करें उन को छोड़ दो ॥ १२ ॥

इस सूक्त में अग्नि ईश्वर और विद्वान् के गुणों का वर्णन होने से इसके अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये ॥

यह उन्नासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

राहूगणो गोतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । १।११ निचृदास्तारपङ्क्तिः । ५ । ६ । ६ । १० । १३ । १४ विराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २—४ । ७ । १२ । १५ भुरिग् बृहती । ८ । १६ बृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

इत्था हि सोम इन्मदे ब्रह्मा चकार वर्धनम् ।

शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१॥

पदार्थ—हे (शविष्ठ) बलयुक्त (वज्रिन्) शस्त्रास्त्रविद्या से सम्पन्न सभापति जैसे सूर्य (अहिम्) मेघ को जैसे (ब्रह्मा) चारों वेद के जानने वाला (ओजसा) अपने पराक्रम से (पृथिव्याः) विस्तृत भूमि के मध्य (मदे) आनन्द और (सोमे) ऐश्वर्य की प्राप्ति कराने वाले में (स्वराज्यम्) अपने राज्य की (अन्वर्चन्) अनुकूलता से सत्कार करता हुआ (इत्था) इस हेतु से (वर्धनम्) बढ़ती को (चकार) करे वैसे ही तू सब अन्यायाचरणों को (इत्) (हि) ही (निश्शशाः) दूर कर दे ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि चक्रवर्त्तिराज्य की सामग्री इकट्ठी कर और उस की रक्षा करके विद्या और सुख की निरन्तर वृद्धि करें ॥ १ ॥

स त्वामदद्वृषा मदः सोमः श्येनाभृतः सुतः ।

येना वृत्रं निरद्भ्यो जघन्थ वज्रिन्नोजसार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (वज्रिन्) शस्त्र और अस्त्रों की विद्या को धारण करने वाले और सभाध्यक्ष (येन) जिस न्याय वर्षाने और मद करने वाले जो कि बाज पक्षी के समान धारण किया जावे उस उत्पादन किये हुए पदार्थों के समूह से तू (ओजसा) पराक्रम से (स्वराज्यम्) अपने राज्य को (अन्वर्चन्) शिक्षानुकूल किये हुए जैसे

सूर्य (अद्भ्यः) जलों से अलग कर (वृत्रम्) जल को स्वीकार अर्थात् पत्थर सा कठिन करते हुए मेघ को निरन्तर छिन्न-भिन्न करता है वैसे प्रजा से अलग कर प्रजा सुख को स्वीकार करते हुए शत्रु को (निर्जघन्थ) छिन्न-भिन्न करते हो (सः) वह (वृषा, मदः, श्येनाभृतः, सुतः) उक्त गुण वाला (सोमः) पदार्थों का समूह, (त्वा) तुझको (अमदत्) आनन्दित करावे ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि जिन पदार्थ और कामों से प्रजा प्रसन्न हो उन से प्रजा की उन्नति करें और शत्रुओं को निवृत्ति करके धर्मयुक्त राज्य की नित्य प्रशंसा करें ॥ २ ॥

प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते ।
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परम सुखकारक जैसे सूर्य का (वज्रः) किरणसमूह (वृत्रम्) मेघ को (हनः) मारता और (अपः) जलों को (नियंसते) नियम में रखता है । वैसे जो (ते) आपके शत्रु हैं उन शत्रुओं का हनन करके (स्वराज्यम्) अपने राज्य का (अन्वर्चन्) सत्कार करता हुआ (हि) निश्चय करके (नृम्णम्) धन को (प्रेहि) प्राप्त हो (शवः) बल को (अभीहि) चारों ओर से बढ़ा शरीर और आत्मा के बल से (धृष्णुहि) ढीठ हो तथा (जयाः) जीत को प्राप्त हो इस प्रकार करते हुए (ते) आप का पराजय (न) न होगा ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजपुरुष सूर्यप्रकाश के तुल्य प्रसिद्ध कीर्त्ति वाले हैं वे राज्य के ऐश्वर्य के भोगने हारे होते हैं ॥ ३ ॥

निरिन्द्र भूम्या अधि वृत्रं जघन्थ निर्दिवः ।
सृजा मरुत्वतीरव जीवधन्या इमा अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य के देने हारे ! तू जैसे सूर्य्य (वृत्रम्) मेघ का ताड़न कर (भूम्याः) पृथिवी के (अधि) ऊपर (इमाः) ये (जीवधन्याः) जीवों में धनादि की सिद्धि में हितकारक (मरुत्वतीः) मनुष्यादि प्रजा के व्यवहारों को सिद्ध करने वाले (अपः) जलों को (निर्जघन्थ) नित्य पृथिवी में पहुँचाता है और (दिवः) प्रकाशों को प्रकट करता है वैसे अधर्मियों को दण्ड दे धर्माचार का प्रकाश कर (स्वराज्यम्) अपने राज्य का (अन्वर्चन्) यथायोग्य सत्कार करता हुआ प्रजाशासन किया कर और नाना प्रकार के सुखों को (निरवसृज) निरन्तर सिद्ध कर ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राज्य करने की इच्छा करे वह विद्या, धर्म और विशेषनीति का प्रचार करके आप धर्म्मात्मा होकर सब प्रजाओं में पिता के समान वर्ते ॥ ४ ॥

इन्द्रो वृत्रस्य दोधंतः सानुं वज्रेण हीळितः ।
अभिक्रम्यावंजिघ्नतेऽपः समीय चोदयन्नर्चन्ननुं स्वराज्यंम् ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (इन्द्रः) सूर्य्य (वज्रेण) किरणों से (वृत्रस्य) मेघ के (अपः) जलों को (अभिक्रम्य) आक्रमण करके (सानुम्) मेघ के शिखरों को छेदन करता है वैसे (स्वराज्यम्) अपने राज्य का (अन्वर्चन्) सत्कार करता हुआ राजा (जिघ्नते) हनन करने वाले (सर्माय) प्राप्त हुए शत्रु के पराजय के लिये अपनी सेनाओं को (चोदयन्) प्रेरणा करता हुआ (दोधतः) क्रुद्ध शत्रु के बल के आक्रमण से सेना को छिन्न भिन्न करके (हीळितः) प्रजाओं से अनादर को प्राप्त होता हुआ शत्रु पर क्रोध को (अव) कर ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो सूर्य के समान अविद्यान्धकार को छुड़ा विद्या का प्रकाश कर दुष्टों को दण्ड और धर्मात्माओं का सत्कार करते हैं वे विद्वानों में सत्कार को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

अधि सानौ नि जिंघ्नते वज्रेण शतपर्वणा ।
मन्दान इन्द्रो अन्धंसः सखिंभ्यो गातुमिंच्छत्यर्चन्ननुं स्वराज्यंम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे राजन् ! जैसे (इन्द्रः) विद्युत् अग्नि (शतपर्वणा) असंख्यात अच्छे अच्छे कर्मों से युक्त (वज्रेण) अपने किरणों से मेघ के (सानावधि) अवयवों पर प्रहार करता हुआ (निजिघ्नते) प्रकाश को रोकसे वाले मेघ के लिये सदैव प्रतिकूल रहता है वैसे ही जो आप (गातुम्) उत्तम रीति से शिक्षायुक्त वाणी की (इच्छति) इच्छा करते हैं सो (सखिभ्यः) मित्रों के लिये (मन्दानः) आनन्द बढ़ाते हुए और (स्वराज्यम्) अपने राज्य का (अन्वर्चन्) सत्कार करते हुए (अन्धसः) अन्न के दाता हों ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सब जगत् का उपकार करने वाला सूर्य्य है वैसे ही सभाध्यक्ष आदि को भी होना चाहिये ॥ ६ ॥

इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन्वीर्यम् ।

यद्ध त्यं मायिनं मृगं तमु त्वं माययावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥७॥

पदार्थ—हे (अद्रिवः) मेघ शिखरवत् पर्वतादि युक्त स्वराज्य से सुभूषित (वज्रिन्) अत्युत्तम शस्त्रास्त्रों से युक्त (इन्द्र) सभेश ! (यत्) जिस से (त्यम्) उस (मायिनम्) कपटी (मृगम्) मृग के तुल्य पदार्थ भोगने वाले को (मायया) बुद्धि से (ह) निश्चय करके (अवधीः) हनन करता है (दिवः) सूर्य्य के समान (अनुत्तम्) स्वाधीन पुरुषार्थ से ग्रहण किये हुए (वीर्यम्) पराक्रम को ग्रहण करके (स्वराज्यम्) अपने राज्य का (अन्वर्चन्) सत्कार करता हुआ (तमु) उसी दुष्ट को दण्ड देता है उस (तुभ्यमित्) तेरे ही लिये उत्तम उत्तम धन हम लोग देवें ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो प्रजा की रक्षा के लिये सूर्य के समान शरीर और आत्मा तथा न्यायविद्याओं का प्रकाश करके कपटियों को दण्ड देते हैं वे राज्य के बढ़ाने और करों को प्राप्त होने में समर्थ होते हैं ॥ ७ ॥

वि ते वज्रासोऽअस्थिरन्नवतिं नाव्या३अनु ।

महत्त इन्द्र वीर्यं बाह्वोस्ते बलं हितमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) ! जो (ते) तेरे (वज्रासः) शस्त्रास्त्रयुक्त दृढ़तर सेना (नवतिम्) नव्वे (नाव्याः) तारने वाली नौकाओं को (अनुव्यस्थिरन्) अनुकूलता से व्यवस्थित करते हैं और जो (ते) तेरे (बाह्वोः) भुजाओं में (महत्) बड़ा (वीर्यम्) पराक्रम और (ते) तेरे भुजाओं में (बलम्) बल (हितम्) स्थित है उस से (स्वराज्यम्) अपने राज्य का (अन्वर्चन्) यथावत् सत्कार करता हुआ राज्यलक्ष्मी को तू प्राप्त हो ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् राज्य के बढ़ाने की इच्छा करें वे बड़ी अग्नि-यन्त्र से चलाने योग्य नौकाओं को बना कर द्वीप द्वीपान्तरों में जा आ के व्यवहार से धन आदि के लाभों को बढ़ा के अपने राज्य को धन धान्य से सुभूषित करें ॥ ८ ॥

सहस्रं साकमर्चत परि ष्टोभत विंशतिः ।

शतैनमन्वनोनवुरिन्द्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो सभाध्यक्ष (स्वराज्यम्) अपने राज्य का (अन्वर्चन्) सत्कार करता हुआ वर्त्तमान होता है (एनम्) उस का आश्रय करके

उस अपने राज्य को सब प्रकार से अधर्माचरण से (परिष्टोभत) रोको (साकम्) परस्पर मिल के (सहस्रम्) असंख्यात गुणों से युक्त पुरुषों से सहित (अर्चत) सत्कार करो । जिस को (विंशतिः) बीस (शता) सैंकड़े (अनु) अनुकूलता से (अनोनवुः) स्तुति करो जो (उद्यतम्) प्रसिद्ध (ब्रह्म) वेद वा अन्न को (अर्चन्) सत्कार करता हुआ वर्त्तता है उस (इन्द्राय) अधिक सम्पत् वाले सभाध्यक्ष के लिये अनुकूल हो के स्तुति करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को विरोध के विना छोड़े परस्पर सुख कभी नहीं होता । मनुष्यों को उचित है कि विद्या तथा उत्तम सुख से रहित और निन्दित मनुष्य को सभाध्यक्ष आदि का अधिकार कभी न देवें ॥ ९ ॥

इन्द्रो॑ वृ॒त्रस्य॒ तवि॑षीं॒ निर॑ह॒न्त्सह॑सा॒ सहः॑ ।
म॒हत्तद॑स्य॒ पौंस्यं॑ वृ॒त्रं ज॑घ॒न्वाँ अ॑सृज॒दर्च॒न्ननु॑ स्व॒राज्य॑म् ॥ १० ॥

पदार्थ—जो (इन्द्रः) सभाध्यक्ष विद्युत्रूप सूर्य्य (वृत्रम्) मेघ को नष्ट करने के समान शत्रु को (जघन्वान्) मारता हुआ निरन्तर हनन करता है तथा जो (सहसा) बल से सूर्य जैसे (वृत्रस्य) मेघ के बल को वैसे शत्रु के (तविषीम्) बल को (निरहन्) निरन्तर हनन करता और (स्वराज्यम्) अपने राज्य का (अन्वर्चन्) सत्कार करता हुआ सुख को (असृजत्) उत्पन्न करता है (तत्) वही (अस्य) इस का (महत्) बड़ा (पौंस्यम्) पुरुषार्थरूप बल के (सहः) सहन का हेतु है ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य अत्यन्त बल और तेज से सब का आकर्षण और प्रकाश करता है वैसे सभाध्यक्ष आदि को भी उचित है कि अपने अत्यन्त बल से शुभ गुणों के आकर्षण और न्याय के प्रकाश से राज्य की शिक्षा करें ॥ १० ॥

इ॒मे चि॒त्तव॑ म॒न्यवे॒ वेप॑ते भि॒यसा॑ म॒ही ।
यदि॑न्द्र वज्रि॒न्नोज॑सा वृ॒त्रं म॒रुत्वाँ॒ अव॑धी॒रर्च॒न्ननु॑ स्व॒राज्य॑म् ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (वज्रिन्) शस्त्रविद्या को ठीक ठीक जानने वाले (इन्द्र) सभाध्यक्ष राजन् (यत्) जिस (तव) आप के (ओजसा) सेना के बल से जैसे सूर्य के आकर्षण और ताड़न से (इमे) ये (मही) लोक (वेपेते) कँपते हैं उन के समान जो आप (भियसा) भयबल से (मन्यवे) क्रोध की शान्ति के लिये शत्रुलोग (अनु) अनुकूल होके कम्पते रहते हैं जैसे (मरुत्वान्) बहुत वायु से युक्त सूर्य (वृत्रम्) मेघ को मारता है वैसे ही (स्वराज्यम्) अपने राज्य का

(अर्चन्) सत्कार करता हुआ (चित्) और शत्रु को (अवधीः) मारा कर ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सभाप्रबन्ध के होने से सुखपूर्वक प्रजा के मनुष्य अच्छे मार्ग में चलते चलाते हैं वैसे ही सूर्य के आकर्षण से सब भूगोल इधर उधर चलते फिरते हैं । जैसे सूर्य मेघ को वरसा के सब प्रजा का पालन करता है वैसे सभा और सभापति आदि को भी चाहिये कि शत्रु और अन्याय का नाश करके विद्या और न्याय के प्रचार से प्रजा का पालन करें ॥ ११ ॥

न वेपसा न तन्यतेन्द्रं वृत्रो वि बीभयत् ।
अभ्येनं वज्र आयसः सहस्रभृष्टिरायतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे सभापते ! (स्वराज्यमन्वर्चन्) अपने राज्य का सत्कार करता हुआ तू जैसे (वृत्रः) मेघ (वेपसा) वेग से (इन्द्रम्) सूर्य्य को (न विबीभयत्) भय प्राप्त नहीं करा सकता और उस मेघ ने प्रकाश की हुई (तन्यता) बिजुली से भी भय को (न) नहीं दे सकता (एनम्) इस मेघ के ऊपर सूर्यप्रेरित (सहस्रभृष्टिः) सहस्र प्रकार के दाह से युक्त (आयसः) लोहा के शस्त्र वा आग्नेयास्त्र के तुल्य (वज्रः) वज्ररूप किरण (अभ्यायत) चारों ओर से प्राप्त होता है वैसे शत्रुओं पर आप हूजिये ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । जैसे मेघ आदि सूर्य्य को नहीं जीत सकते वैसे ही शत्रु भी धर्मात्मा, सभा और सभापति का तिरस्कार कभी नहीं कर सकते ॥ १२ ॥

यद्वृत्रं तव चाशनिं वज्रेण समयोधयः ।
अहिमिन्द्र जिघांसतो दिवि ते बद्बधे शवोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य्य युक्त सभेश (स्वराज्यम्) अपने राज्य का (अन्वर्चन्) सत्कार करता हुआ तू (यत्) जैसे (दिवि) आकाश में सूर्य्य (अशनिम्) बिजुली का प्रहार करके (वृत्रम्) कुटिल (अहिम्) मेघ का (बद्बधे) हनन करता है वैसे (वज्रेण) शस्त्रास्त्रों से सहित अपनी सेनाओं का शत्रुओं के साथ (समयोधयः) अच्छे प्रकार युद्ध करा शत्रुओं को (जिघांसतः) मारने वाले (तव) आपके (शवः) बल अर्थात् सेना का विजय हो इस प्रकार वर्त्तमान करने हारे (ते) आपका (च) यश बढ़ेगा ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य अपने

बहुत से किरणों से बिजुली और मेघ का परस्पर युद्ध कराता है वैसे ही सेनापति आग्नेय आदि अस्त्रयुक्त सेना को शत्रुसेना के साथ युद्ध करावे । इस प्रकार के सेनापति का कभी पराजय नहीं हो सकता ॥ १३ ॥

अभिष्टने तें अद्रिवोयत् स्था जगंच्च रेजते ।

त्वष्टा चित्तव मन्यव इन्द्रं वेविज्यतें भियार्चन्ननु स्वराज्यंम् ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे (**अद्रिवः**) बहुमेघयुक्त सूर्य्य के समान (**इन्द्र**) परमैश्वर्य युक्त सभाध्यक्ष (**यत्**) जब (**ते**) आप के (**अभिष्टने**) सर्वथा उत्तम न्याययुक्त व्यवहार में (**स्थाः**) स्थावर (**जगच्च**) और जङ्गम (**रेजते**) कम्पायमान होता है तथा जो (**त्वष्टा**) शत्रुच्छेदक सेनापति है (**तव**) उस के (**मन्यवे**) क्रोध के लिये (**भियाचित्**) भय से भी (**वेविज्यते**) उद्विग्न होता है तब आप (**स्वराज्यम्**) अपने राज्य का (**अन्वर्चन्**) सत्कार करते हुए सुखी हो सकते हैं ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि जैसे सूर्य के योग से प्राणधारी अपने अपने कर्म में वर्त्तते और सब भूगोल अपनी अपनी कक्षा में यथावत् भ्रमण करते हैं वैसे ही सभा से प्रशासन किये राज्यके संयोग से सब मनुष्यादि प्राणि धर्म के साथ अपने अपने व्यवहार में वर्त्त के सन्मार्ग में अनुकूलता से गमनागमन करते हैं ॥ १४ ॥

नहि नु यादधीमसीन्द्रं को वीर्या परः ।

तस्मिन्नृम्णमुत क्रतुं देवा ओजांसि सन्दधुरर्चन्ननु स्वराज्यंम् ॥१५॥

पदार्थ—जो (**परः**) उत्तमगुणयुक्त राजा (**स्वराज्यम्**) अपने राज्य का (**अन्वर्चन्**) अनुकूलता से सत्कार करता हुआ वर्त्तता है जिस राज्य में (**देवाः**) दिव्यगुणयुक्त विद्वान् लोग (**नृम्णम्**) धन को (**क्रतुम्**) और बुद्धि वा पुरुषार्थ को (**उत**) और भी (**ओजांसि**) शरीर आत्मा और मन के पराक्रमों को (**संदधुः**) धारण करते हैं तथा जिस परमेश्वर को प्राप्त होकर हम लोग (**वीर्य्या**) विद्या आदि वीर्यों को (**अधीमसि**) प्राप्त होवें उस (**इन्द्रम्**) अनन्तपराक्रमी जगदीश्वर वा पूर्ण वीर्य्य युक्त राजा को प्राप्त होकर (**कः**) कौन मनुष्य धन को (**नु**) शीघ्र (**नहि**) (**यात्**) प्राप्त हो उस राज्य में कौन पुरुष धन को तथा बुद्धि वा पुरुषार्थ वा बलों को शीघ्र नहीं धारण करता ॥ १५ ॥

भावार्थ—कोई भी मनुष्य परमेश्वर वा परम विद्वान् की प्राप्ति के विना उत्तम विद्या और श्रेष्ठ सामर्थ्य को नहीं प्राप्त हो सकता इस हेतु से इन का सदा आश्रय करना चाहिये ॥ १५ ॥

यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियमत्नंत ।

तस्मिन् ब्रह्माणि पूर्वथेन्द्रे उक्था समंग्मतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १६ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे (स्वराज्यम्) अपने राज्य की उन्नति से सबका (अन्वर्चन्) सत्कार करता हुआ (दध्यङ्) उत्तम गुणों को प्राप्त होने वाला (अथर्वा) हिंसा आदि दोषरहित (पिता) वेद का प्रवक्ता अध्यापक वा (मनुः) विज्ञान वाला मनुष्य ये (याम्) जिस (धियम्) शुभ विद्या आदि गुण क्रिया के धारण करने वाली बुद्धि को प्राप्त होकर जिस व्यवहार में सुखों को (अत्नत) विस्तार करते हैं वैसे इस को प्राप्त होकर (तस्मिन्) उस व्यवहार में सुखों का विस्तार करो और जिस (इन्द्रे) अच्छे प्रकार सेवित परमेश्वर में (पूर्वथा) पूर्व पुरुषों के तुल्य (ब्रह्माणि) उत्तम अन्न धन (उक्था) कहने योग्य वचन प्राप्त होते हैं (तस्मिन्) उसको सेवित कर तुम भी उनको (समग्मत) प्राप्त होओ ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । मनुष्य परमेश्वर की उपासना करने वाले विद्वानों के संग प्रीति के सदृश कर्म करके सुन्दर बुद्धि उत्तम अन्न धन और वेदविद्या से सुशिक्षित सभाषणों को प्राप्त होकर उनको सब मनुष्यों के लिये देने चाहियें ॥ १६ ॥

इस सूक्त में सभा आदि अध्यक्ष, सूर्य, विद्वान् और ईश्वर शब्दार्थ का वर्णन करने से पूर्वसूक्त के साथ इस सूक्त के अर्थ की संगति जाननी चाहिये ॥

यह अस्सीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

राहूगणो गोतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ७ । ८ विराट् पङ्क्तिः । ३—६ । ९ निचृदास्तारपङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ भुरिग् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।

तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥ १ ॥

पदार्थ— हम लोग जो (**वृत्रहा**) सूर्य्य के समान (**इन्द्रः**) सेनापति (**नृभिः**) शूरवीर नायकों के साथ (**शवसे**) बल और (**मदाय**) आनन्द के लिये (**वावृधे**) बढ़ता है जिस (**महत्सु**) बड़े (**आजिषु**) संग्रामों में (**उतापि**) और (**अर्भे**) छोटे संग्रामों में (**हवामहे**) बुलाते और (**तमित्**) उसी को (**ईम्**) सब प्रकार से सेनाध्यक्ष कहते हैं (**सः**) वह (**वाजेषु**) संग्रामों में (**नः**) हम लोगों को (**प्राविषत्**) अच्छे प्रकार रक्षा करे ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि जो पूर्ण विद्वान् अति बलिष्ठ धार्मिक सब का हित चाहने वाला शस्त्रास्त्र क्रिया और शिक्षा में अतिचतुर भृत्य और वीर पुरुष योद्धाओं में पिता के समान देशकाल के अनुकूलता से युद्ध करने के लिये समय के अनुकूल व्यवहार जानने वाला हो उसी को सेनापति करना चाहिये अन्य को नहीं ॥ १ ॥

असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि पराददिः ।
असि दभ्रस्य चिद्वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥२॥

पदार्थ—हे वीर सेनापते ! जो तू (**हि**) निश्चय करके (**भूरि**) बहुत (**सेन्यः**) सेनायुक्त (**असि**) है (**भूरि**) बहुत प्रकार से (**परावदिः**) शत्रुओं के बल को नष्ट कर ग्रहण करने वाला है (**दभ्रस्य**) छोटे (**चित्**) और (**महतः**) बड़े युद्ध का जीतने वाला (**असि**) है (**वृधः**) बल से बढ़ने वाले वीरों को (**शिक्षसि**) शिक्षा करता है उस (**सुन्वते**) विजय की प्राप्ति करने हारे (**यजमानाय**) सुखदाता के (**ते**) तेरे लिए (**भूरि**) बहुत (**वसु**) धन प्राप्त हो ॥ २ ॥

भावार्थ—भृत्य लोग जैसे सेनापतियों से सेना शिक्षित, पाली और सुखी की जाती है वैसे सेनास्थ भृत्यों से सेनापतियों का पालन और उनको आनन्द करना योग्य हो ॥ २ ॥

यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना ।
युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ॥३॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) सेना के स्वामी ! (**यत्**) जब (**आजयः**) संग्राम (**उदीरते**) उत्कृष्टता से प्राप्त हों तब (**धृष्णवे**) दृढ़ता के लिये (**धना**) धनों को (**धीयते**) करता है सो तू (**मदच्युता**) बड़े बलिष्ठ (**हरी**) घोड़ों को रथादि में (**युक्ष्व**) युक्त कर (**कं**) किसी शत्रु को (**हनः**) मार (**कं**) किसी मित्र को (**वसौ**) धन कोष में (**दधः**) धारण कर और (**अस्मान्**) हम को (**वसौ**) धन में (**दधः**) अधिकारी कर ॥ ३ ॥

भावार्थ—जब युद्ध करना हो तब सेनापति लोग सवारी शतघ्नी (तोप) भुशुण्डी (बंदूक) आदि शस्त्र आग्नेय आदि अस्त्र और भोजन आच्छादन आदि सामग्री को पूर्ण करके किन्ही शत्रुओं को मार किन्हीं मित्रों का सत्कार कर युद्धादि कर्मों से धर्मात्मा जनों का संयुक्त कर युक्ति से युद्ध करा के सदा विजय को प्राप्त हों ॥ ३ ॥

क्रत्वा॑ म॒हाँ अ॑नुष्व॒धं भी॒म आ वा॑वृधे॒ शवः॑ ।
श्रि॒य ऋ॒ष्व उ॑पा॒कयो॒र्नि शि॒प्री हरि॑वान्दधे॒ हस्त॑यो॒र्वज्र॑माय॒सम् ॥४॥

पदार्थ—जो (हरिवान्) बहुत उत्तम अश्वों से युक्त (शिप्री) शत्रुओं को रुलाने (भीमः) और भय देने वाला (महान्) बड़ा (ऋष्वः) प्राप्तविद्या सेनापति (शवः) बल (श्रिये) शोभा और लक्ष्मी के अर्थ (उपाकयोः) समीप में प्राप्त हुई अपनी और शत्रुओं की सेना के समीप (हस्तयोः) हाथों में (आयसम्) लोहे आदि से बनाये हुए (वज्रम्) शस्त्रसमूह को धारण करके शत्रुओं को जीतता है वही राज्याऽधिकारी होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जो बुद्धिमान् बड़े बड़े उत्तम गुणों से युक्त शत्रुओं को भयकर्त्ता सेनाओं का शिक्षक अत्यन्त युद्ध करने हारा पुरुष है उसको सेनापति करके धर्म से राज्य के पालन की न्याय-व्यवस्था करनी चाहिये ॥ ४ ॥

आ प॑प्रौ॒ पार्थि॑वं॒ रजो॑ बद्ब॒धे रो॑च॒ना दि॒वि ।
न त्वावाँ॑ इन्द्र॒ कश्च॒न न जा॒तो न ज॑निष्य॒तेऽति॒ विश्वं॑ ववक्षिथ ॥५॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य्ययुक्त ईश्वर जिससे (कश्चन) कोई भी (त्वावान्) तेरे सदृश (न जातः) न हुआ (न जनिष्यते) न होगा और तू (विश्वम्) जगत् को (ववक्षिथ) यथायोग्य नियम में प्राप्त करता है और जो (पार्थिवम्) पृथिवी और आकाश में वर्त्तमान (रजः) परमाणु और लोक में (आपप्रौ) सब ओर से व्याप्त हो रहा है (दिवि) प्रकाशरूप सूर्यादि जगत् में (रोचना) प्रकाशमान भूगोलों को (अतिबद्बधे) एक दूसरे वस्तु के घर्षण से बद्ध करता है वह सब का उपास्य देव है ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग जिसने सब जगत् को रच के व्याप्त कर रक्षित किया है जो जन्म और उपमा से रहित जिसके तुल्य कुछ भी वस्तु नहीं है तो उस परमेश्वर से अधिक कुछ कैसे होवे । इसकी उपासना को छोड़ के अन्य किसी पृथक् वस्तु का ग्रहण वा गणना मत करो ॥ ५ ॥

यो अर्यो मर्त्तभोजनं परादद्दाति दाशुषे ।
इन्द्रोऽअस्मभ्यं शिक्षतु वि भंजा भूरि ते वसु भक्षीय तव राधसः ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (यः) जो (इन्द्र) परम ऐश्वर्य का देने हारा (अर्यः) ईश्वर (ते) तुझ (दाशुषे) दाता और (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (भूरि) बहुत (वसु) धन को (मर्त्तभोजनम्) वा मनुष्यों के भोजनार्थ पदार्थ को (परादद्दाति) देता है उस ईश्वर निर्मित्त पदार्थों की आप हम को सदा (शिक्षतु) शिक्षा करो और (तव) आपके (राधसः) शिक्षित कार्यरूप धन का मैं (भक्षीय) सेवन करूं ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो ईश्वर इस जगत् को रच धारण कर जीवों को न देता तो किसी को कुछ भी भोग सामग्री प्राप्त न हो सकती । जो यह परमात्मा वेद द्वारा मनुष्यों को शिक्षा न करता तो किसी को विद्या का लेश भी प्राप्त न होता इससे विद्वान् को योग्य है कि सब के सुख के लिये विद्या का विस्तार करना चाहिये ॥ ६ ॥

मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः ।
सं गृभाय पुरू शतो भया हस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर ॥७॥

पदार्थ—हे विद्वान् (ऋजुक्रतुः) सरल ज्ञान और कर्मयुक्त (ददिः) दाता आप ईश्वर की आज्ञापलन और उपासना से (मदेमदे) आनन्द आनन्द में (हि) निश्चय से (नः) हमारे लिये (उभयाहस्त्या) दोनों हाथों की क्रिया में उत्तम (पुरु) बहुत (शता) सैकड़ह (वसु) द्रव्यों का (शिशीहि) प्रबन्ध कीजिये (गवाम्) किरण इन्द्रियाँ और पशुओं के (यूथा) समूहों को (आभर) चारों ओर से धारण कर (रायः) धनों को (संगृभाय) सम्यक् ग्रहण कर ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो सब आनन्दों का देने वाला सब साधन साध्य रूप पदार्थों का उत्पादक सब धनों को देता है वही ईश्वर हमारा उपास्य है अन्य नहीं ॥ ७ ॥

मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे ।
विद्मा हि त्वा पुरूवसुमुप कामान्त्ससृज्महेऽथा नोऽविता भव ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (शूर) दुष्ट दोष और शत्रुओं का निवारण करने हारे हम (सुते) इस उत्पन्न जगत् में (पुरुवसुम्) बहुतों को वसाने वाले (त्वा) आप का (उप) आश्रय करके (अथ) पश्चात् (कामान्) अपनी कामनाओं को

(ससृज्महे) सिद्ध करते हैं (हि) निश्चय करके (विद्म) जानते भी हैं तू (नः) हमारा (अविता) रक्षक (भव) हो और इस जगत् में (सचा) संयुक्त (शवसे) बलकारक (राधसे) धन के लिये (मादयस्व) आनन्द कराया कर ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को सेनापति के आश्रय के विना शत्रु का विजय, काम की सिद्धि, अपना रक्षण उत्तम धन बल और परम सुख प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ८ ॥

एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर ॥९॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! जिस (ते) तेरी सृष्टि में जो (एते) ये (जन्तवः) जीव (वार्यम्) स्वीकार के योग्य (विश्वम्) जगत् को (पुष्यन्ति) पुष्ट करते हैं (तेषाम्) उन (जनानाम्) मनुष्य आदि प्राणियों के (अन्तः) मध्य में वर्त्तमान (अदाशुषाम्) दानादिकर्मरहित मनुष्यों के (अर्यः) ईश्वर तू (वेदः) जिससे सुख प्राप्त होता है उस को (हि) निश्चय करके (ख्यः) उपदेश करता है वह तू (नः) हमारे लिये (वेदः) विज्ञान रूप धन का (आभर) दान कीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो ईश्वर बाहर भीतर सर्वत्र व्याप्त होकर सब भीतर बाहर के व्यवहारों को जानता सत्य उपदेश और सब जीवों के हित की इच्छा करता है उसका आश्रय लेकर परमार्थ और व्यवहार सिद्ध करके सुखों को तुम प्राप्त होओ ॥ ९ ॥

इस सूक्त में सेनापति ईश्वर और सभाध्यक्ष के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की सङ्गति पूर्व सूक्तार्थ के साथ समझनी चाहिये ॥

यह इक्यासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

राहूगणो गोतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ४ निचृदास्तारपङ्क्तिः । २ । ३ । ५ विराडास्तारपङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ६ विराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः॥

उपो षु शृणुही गिरो मघवन्मातथा इव ।
यदा नः सूनृतावतः कर आदर्थयास इद्योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) सेनापते ! जो (**ते**) आप के (**हरी**) धारणाऽऽकर्षण के लिये घोड़े वा अग्नि आदि पदार्थ हैं उन को (**नु**) शीघ्र (**योज**) युक्त करो प्रियवाणी बोलने हारे विद्वान् से (**अर्थयासे**) याच्ञा कीजिये । हे (**मघवन्**) अच्छे गुणों के प्राप्त करने वाले (**नः**) हमारी (**गिरः**) वाणियों को (**उपोसु शृणुहि**) समीप होकर सुनिये (**आत्**) पश्चात् हमारे लिये (**अतथाइवेत्**) विपरीत आचरण करने वाले जैसे ही (**मा**) मत हो (**यदा**) जब हम तुम से सुखों की याचना करते हैं तब आप (**नः**) हम को (**सूनृतावतः**) सत्य वाणीयुक्त (**करः**) कीजिये ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जैसे राजा ईश्वर के सेवन [या] सेनापति से वा सेनापति से पालन की हुई सेना सुखों को प्राप्त होती है जैसे सभाध्यक्ष प्रजा और सेना के अनुकूल वर्त्तमान करें वैसे उनके अनुकूल प्रजा और सेना के मनुष्यों को आचरण करना चाहिये ॥ १ ॥

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत ।

अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) सभापते ! जो (**ते**) तेरे (**हरी**) धारण आकर्षण करने हारे वाहन वा घोड़े हैं उन को तू हमारे लिये (**नुयोज**) शीघ्र युक्त कर हे (**स्वभानवः**) स्वप्रकाश स्वरूप सूर्यादि के तुल्य (**विप्राः**) बुद्धिमान् लोगो ! आप (**नविष्ठया**) अतिशय नवीन (**मती**) बुद्धि के सहित हो के (**प्रियाः**) प्रिय हूजिये सब के लिये सब शास्त्रों की (**हि**) निश्चय से (**अस्तोषत**) प्रशंसा आप किया करिये शत्रु और दुःखों को (**अवाधूषत**) छुड़ाइये (**अक्षन्**) विद्यादि शुभगुणों में व्याप्त हूजिये (**अमीमदन्त**) अतिशय करके आनन्दित हूजिये और हम को भी ऐसे ही कीजिये ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि श्रेष्ठ गुणकर्म्मस्वभावयुक्त सब प्रकार उत्तम आचरण करने हारे सेना और सभापति तथा सत्योपदेशक आदि के गुणों की प्रशंसा और कर्मों से नवीन नवीन विज्ञान और पुरुषार्थ को बढ़ा कर सदा प्रसन्नता से आनन्द का भोग करें ॥ २ ॥

सुसंदृशं त्वा वयं मघवन्वन्दिषीमहि ।

प्र नूनं पूर्णबन्धुरः स्तुतो याहि वशाँ अनु योजा न्विन्द्र ते हरी ॥३॥

पदार्थ—हे (**मघवन्**) परमपूजित धनयुक्त (**इन्द्र**) सुखप्रद ! जैसे (**वयम्**) हम (**सुसंदृशम्**) कल्याणदृष्टियुक्त (**त्वा**) आप को (**वन्दिषीमहि**) प्रशंसित करें वैसे हम से सहित हो के (**पूर्णबन्धुरः**) समस्त सत्य प्रबन्ध और प्रेम-

युक्त (स्तुतः) प्रशंसा को प्राप्त होके आप जो प्रजा के शत्रु हैं उन को (नु) शीघ्र (वशान्) वश करो जो (ते) आप के (हरी) सूर्य के धारणाकर्षणादिगुणवत् सुशिक्षित अश्व हैं उन को (अनुयोज) युक्त करो विजय के लिये (नूनम्) निश्चय करके (प्रयाहि) अच्छे प्रकार जाया करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है जब मनुष्य सब के द्रष्टा परमेश्वर की स्तुति करने हारे सभापति का आश्रय लेते हैं तब इन शत्रुओं का शीघ्र निग्रह कर सकते हैं ॥ ३ ॥

स घा तं वृषणं रथमधि तिष्ठाति गोविदम् ।
यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमविद्याधनयुक्त (यः) जो आप (हारियोजनम्) अग्नि वा घोड़ों से युक्त किये इस (पूर्णम्) सब सामग्री से युक्त (पात्रम्) रक्षा निमित्त (रथम्) रथ को बनाना (चिकेतति) जानते हो (सः) सो उस रथ में (हरी) वेगादिगुणयुक्त घोड़ों को (नुयोज) शीघ्र युक्त कर हे (इन्द्र) सेनापते ! जो (ते) आप के (वृषणम्) शत्रु के सामर्थ्य का नाशक (गोविदम्) जिससे भूमि का राज्य प्राप्त हो (तम्) उस रथ पर (अधितिष्ठाति) बैठे (घ) वही विजय को प्राप्त क्यों न होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—सेनापति को योग्य है कि शिक्षा बल से हृष्ट पुष्ट हाथी घोड़े रथ शस्त्र अस्त्रादि सामग्री से पूर्ण सेना को प्राप्त कर के शत्रुओं को जीता करे ॥ ४ ॥

युक्तस्ते अस्तु दक्षिण उत सव्यः शतक्रतो ।
तेन जायामुप प्रियां मन्दानो याह्यन्धसो योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्रः) सब को सुख के देनेहारे (शतक्रतो) असंख्य उत्तम बुद्धि और क्रियाओं से युक्त (ते) आप के जो सुशिक्षित (हरी) घोड़े हैं उनको रथ में तू (नुयोज) शीघ्र युक्त कर जिस (ते) तेरे रथ के (एकः) एक घोड़ा (दक्षिणः) दाहिने (उत) और (सव्यः) बांई ओर (अस्तु) हो (तेन) उस रथ पर बैठ शत्रुओं को जीत के (प्रियाम्) अतिप्रिय (जायाम्) स्त्री को साथ बैठा (मन्दानः) आप प्रसन्न और उस को प्रसन्न करता हुआ (अन्धसः) अन्नादि सामग्री के (उपयाहि) समीपस्थ हो के तुम दोनों शत्रुओं को जीतने के अर्थ जाया करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—राजा को योग्य है कि अपनी राणी के साथ अच्छे सुशिक्षित घोड़ों से युक्त रथ में बैठ के युद्ध में विजय और व्यवहार में आनन्द को

प्राप्त होवें। जहां जहां युद्ध में वा भ्रमण के लिये जावें वहां वहां उत्तम कारीगरों से बनाये सुन्दर रथ में स्त्री के सहित स्थित हो के ही जावें ॥ ५ ॥

युनज्मि ते ब्रह्मणा केशिना हरी उप प्र याहि दधिषे गभस्त्योः ।
उत्त्वा सुतासो रभसा अमन्दिषुः पूषण्वान्वज्रिन्त्समु पत्न्यामदः ॥६॥

पदार्थ—हे (वज्रिन्) उत्तम शस्त्रयुक्त सेनाध्यक्ष ! जैसे मैं (ते) तेरे (ब्रह्मणा) अन्नादि से युक्त नौका रथ में (केशिना) सूर्य की किरण के समान प्रकाशमान (हरी) घोड़ों को (युनज्मि) जोड़ता हूँ जिस में बैठ के तू (गभस्त्योः) हाथों में घोड़ों की रस्सी को (दधिषे) धारण करता है उस रथ से (उपप्रयाहि) अभीष्ट स्थानों को जा जैसे बलवेगादि युक्त (सुतासः) सुशिक्षित (भृत्याः) नौकर लोग जिस (त्वा) तुझ को (उ) अच्छे प्रकार (उदमन्दिषुः) आनन्दित करें वैसे इनको तू भी आनन्दित कर और (पूषण्वान्) शत्रुओं की शक्तियों को रोकने हारा तू अपनी (पत्न्या) स्त्री के साथ (सममदः) अच्छे प्रकार आनन्द को प्राप्त हो ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जो अश्वादि की शिक्षा सेवा करने हारे और उन को सवारियों में चलाने वाले भृत्य हों वे अच्छी शिक्षायुक्त हों और अपनी स्त्रियादि को भी अपने से प्रसन्न रख के आप भी उन में यथावत् प्रीति करे सर्वदा युक्त होके सुपरीक्षित स्त्री आदि में धर्म कार्यों को साधा करें ॥ ६ ॥

इस सूक्त में सेनापति और ईश्वर के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये ॥

यह बयासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

राहूगणो गोतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । १—३ । ५ निचृज्जगती । २ जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ६ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभिः ।
तमित्पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो विचेतसः ॥१॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सब की रक्षा करने हारे राजन् जो (मर्त्यः) अच्छी शिक्षायुक्त धार्मिक मनुष्य (तव) तेरी (ऊतिभिः) रक्षा आदि से रक्षित भृत्य

(अश्वावति) उत्तम घोड़ों से युक्त रथ में बैठ के (गोषु) पृथिवी विभागों में युद्ध के लिये (प्रथमः) प्रथम (गच्छति) जाता है उससे तू प्रजाओं को (सुप्रावीः) अच्छे प्रकार रक्षा कर (तमित्) उसी को (यथा) जैसे (विचेतसः) चेतनता रहित जड़ (आपः) जल वा वायु (अभितः) चारों ओर से (सिन्धुम्) नदी को प्राप्त होते हैं जैसे (भवीयसा) अत्यन्त उत्तम (वसुना) धन से तू प्रजा को (पृणक्षि) युक्त करता है वैसे ही सब प्रजा और राजपुरुष पुरुषार्थ करके ऐश्वर्य से संयुक्त हों ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। सेनापति आदि राजपुरुषों को योग्य है कि जो भृत्य अपने अपने अधिकार के कर्मों में यथायोग्य न वर्त्तें उन उन को अच्छे प्रकार दण्ड और जो न्याय के अनुकूल वर्त्तें उन का सत्कार कर शत्रुओं को जीत प्रजा की रक्षा कर पुरुषों को प्रसन्न रखके राजकार्यों को सिद्ध करना चाहिये कोई भी पुरुष अपराधी के योग्य दण्ड और अच्छे कर्मकर्त्ता के योग्य प्रतिष्ठा किये विना यथावत् राज्य की व्यवस्था को स्थिर करने को समर्थ नहीं हो सकता इससे इस कर्म का अनुष्ठान सदा करना चाहिये ॥ १ ॥

आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमवः पश्यन्ति विततं यथा रजः ।
प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वराइव ॥ २ ॥

पदार्थ—जो (देवासः) विद्वान् लोग मेघ को (आपो न) जैसे जल प्राप्त होते हैं वैसे (देवीः) विदुषी स्त्रियों को (उपयन्ति) प्राप्त होते हैं और (यथा) जैसे (प्राचैः) प्राचीन विद्वानों के साथ (विततम्) विशाल और जैसे (रजः) परमाणु आदि जगत् का कारण (होत्रियम्) देने लेने के योग्य (अवः) रक्षण को (पश्यन्ति) देखते हैं (वरा इव) उत्तम पतिव्रता विद्वान् स्त्रियों के समान (ब्रह्मप्रियम्) वेद और ईश्वर की आज्ञा में प्रसन्न (देवयुम्) अपने आत्मा को विद्वान् होने की चाहनायुक्त (प्रणयन्ति) नीतिपूर्वक करते और (जोषयन्ते) इसका सेवन करते औरों को ऐसा कराते हैं वे निरन्तर सुखी क्यों न हों ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। किस हेतु से विद्वान् और अविद्वान् भिन्न भिन्न कहाते हैं इस का उत्तर—जो धर्मयुक्त शुद्ध क्रियाओं को करें, सब के शरीर और आत्मा का यथावत् रक्षण करना जानें और भूगर्भादि विद्याओं से प्राचीन आप्त विद्वानों के तुल्य वेदद्वारा ईश्वरप्रणीत सत्यधर्म मार्ग का प्रचार करें। वे विद्वान् हैं और जो इन से विपरीत हों वे अविद्वान् हैं इस प्रकार निश्चय से जानें ॥ २ ॥

अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं१वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः ।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! जैसे (**या**) जो (**यतस्रुचा**) साधनोपसाधनयुक्त पढ़ाने और उपदेश करने हारे (**मिथुना**) दोनों मिल के (**द्वयोः**) अपना और पराया कल्याण करके जो (**उक्थ्यम्**) प्रशंसा के योग्य (**वचः**) वचन को (**सपर्यतः**) सेवते हैं वैसे इस का तू (**अदधाः**) धारण कर जो (**असंयतः**) अजितेन्द्रिय भी (**ते**) तेरे (**व्रते**) सत्यभाषणादि नियम पालने में (**क्षेति**) निवास करता है उस में (**भद्रा**) कल्याण करने हारी (**शक्तिः**) सामर्थ्य (**क्षेति**) वसती है और वह (**पुष्यति**) पुष्ट होता है तब (**सुन्वते**) ऐश्वर्य्य प्राप्ति होने वाले (**यजमानाय**) सब को सुख के दाता के लिये निरन्तर सुख कैसे न बढ़े ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य परोपकार बुद्धि से सब के शरीर और आत्मा के मध्य पुष्टि और विद्याबल को उत्पन्न कर विरोध छोड़ के धर्मयुक्त व्यवहार को सेवन करके निरन्तर सब मनुष्यों को सत्य व्यवहार में प्रवृत्त करते हैं वे मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया ।
सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (**इद्धाग्नय**) अग्नि विद्या को प्रदीप्त करने हारे (**ये**) (**नरः**) नायक मनुष्यो ! आप जैसे (**सुकृत्यया**) सुकृत युक्त (**शम्या**) कर्म और (**पणेः**) प्रशंसनीय व्यवहार करने वाले के उपदेश से (**प्रथमम्**) पहिले (**वयः**) उमर को ब्रह्मचर्य के लिये (**आदधिरे**) सब प्रकार से धारण करते हैं वे (**सर्वम्**) सब (**भोजनम्**) आनन्द को भोग और पालन को (**समविन्दन्त**) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं (**आत्**) इस के अनन्तर जैसे (**अङ्गिराः**) प्राणवत प्रिय बछड़ा (**पशुम्**) अपनी माता को प्राप्त होके आनन्दित होता है वैसे आप (**अश्वावन्तम्**) उत्तम घोड़ों से युक्त (**गोमन्तम्**) श्रेष्ठ गाय और भूमि आदि से सहित राज्य को प्राप्त होके आनन्दित हूजिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। कोई भी मनुष्य ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़े विना साङ्गोपाङ्ग विद्याओं को प्राप्त होने को समर्थ नहीं हो सकते और विद्या सत्कर्म के विना राज्याधिकार को प्राप्त योग्य नहीं होते उक्त प्रकार से रहित मनुष्य सत्य सुख को प्राप्त नहीं हो सकते ॥ ४ ॥

यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि ।
आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ॥ ५ ॥

पदार्थ—जैसे (प्रथमः) प्रसिद्ध विद्वान् (अथर्वा) हिंसारहित (पथः) सन्मार्ग को (तते) विस्तृत करता है जैसे (वेनः) बुद्धिमान् (व्रतपाः) सत्य का पालन करने हारा सब प्रकार (आजनि) प्रसिद्ध होता है जैसे (ततः) विस्तृत (सूर्यः) सूर्य लोक (गाः) पृथिवी में देशों को (आजत्) धारण करके घुमाता है जैसे (काव्यः) कवियों में शिक्षा को प्राप्त (उशना) विद्या की कामना करने वाला विद्वान् विद्याओं को प्राप्त होता है वैसे हम लोग (यज्ञैः) विद्या के पढ़ने पढ़ाने सत्संयोगादि क्रियाओं से (यमस्य) सब जगत् के नियन्ता परमेश्वर के (सचा) साथ (जातम्) प्राप्त हुए (अमृतम्) मोक्ष को (आयजामहे) प्राप्त होवें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को योग्य है कि सत्य मार्ग में स्थित होके सत्य क्रिया और विज्ञान से परमेश्वर को जान के मोक्ष की इच्छा करें, वे विद्वान् मुक्ति को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

बर्हिर्वा यत्स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि ।
ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्य१स्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति ॥ ६ ॥

पदार्थ—(यत्र) जिस (दिवि) प्रकाशयुक्त व्यवहार में (उक्थ्यः) कथनीय व्यवहारों में निपुण प्रशंसनीय शिल्प कामों का कर्त्ता (इन्द्रः) परमैश्वर्य को प्राप्त कराने हारा विद्वान् (अभिपित्वेषु) प्राप्त होने के योग्य व्यवहारों में (यत्) जिस (स्वपत्याय) सुन्दर सन्तान के अर्थ (बर्हिः) विज्ञान को (वृज्यते) छोड़ता है (अर्कः) पूजनीय विद्वान् (श्लोकम्) सत्यवाणी को (वा) विचारपूर्वक (आघोषते) सब प्रकार सुनाता है (ग्रावा) मेघ के समान गम्भीरता से (वदति) बोलता है (वा) अथवा (रण्यति) उत्तम उपदेशों को करता है वहां (तस्येत्) उसी सन्तान को विद्या प्राप्त होती है ॥ ६ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोगों को योग्य है कि जैसे जल छिन्न भिन्न होकर आकाश में जा वहां से वर्ष के सुख करता है वैसे कुव्यसनों को छिन्न भिन्न कर विद्या को ग्रहण करके सब मनुष्यों को सुखी करें । जैसे सूर्य अन्धकार का नाश और प्रकाश कर के सब प्राणियों को सुखी और दुष्ट चोरों को दुःखी करता है वैसे मनुष्यों के अज्ञान का नाश विज्ञान को प्राप्ति करा के सब को सुखी करें । जैसे मेघ गर्जना कर और वर्ष के दुर्भिक्ष को छुड़ा सुभिक्ष

करता है वैसे ही सत्योपदेश की वृष्टि से अधर्म का नाश धर्म के प्रकाश से सब मनुष्यों को आनन्दित किया करें ॥ ६ ॥

इस सूक्त में सेनापति और उपदेशक के कर्त्तव्य-गुणों का वर्णन करने से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये ॥

॥ यह त्र्यासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

राहूगणो गोतम ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ३—५ निचृदनुष्टुप् । २ विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ६ भुरिगुष्णिक् । ७—९ उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । १० । १२ । विराडास्तारपङ्क्तिः । ११ आस्तारपङ्क्तिः । २० पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । १३—१५ निचृद्गायत्रीछन्दः षड्जः स्वरः । १६ निचृत्त्रिष्टुप् । १७ विराट् त्रिष्टुप् । १८ त्रिष्टुप् । १९ आर्ची त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

असा॑वि॒ सोम॑ इन्द्र ते॒ शवि॑ष्ठ धृष्ण॒वा ग॑हि ।
आ त्वा॑ पृणक्त्वि॒न्द्रियं॒ रजः॒ सूर्यो॒ न र॒श्मिभिः॑ ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (धृष्णो) प्रगल्भ (शविष्ठ) प्रशंसित बलयुक्त (इन्द्र) परमैश्वर्य देने हारे सत्पुरुष (ते) तेरे लिये जो (सोमः) अनेक प्रकार के रोगों को विनाश करने हारी औषधियों का सार हम ने (असावि) सिद्ध किया है जो तेरी (इन्द्रियम्) इन्द्रियों को (सूर्यः) सविता (रश्मिभिः) किरणों से (रजः) लोकों का प्रकाश करने के (न) तुल्य प्रकाश करे उसको तू (आगहि) प्राप्त हो वह (त्वा) तुझे (आपृणक्तु) बल और आरोग्यता से युक्त करे ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । प्रजा सेना और पाठशालाओं की सभाओं में स्थित पुरुषों को योग्य है कि अच्छे प्रकार सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को प्रजा सेना और पाठशालाओं में अध्यक्ष करके सब प्रकार से उसका सत्कार करना चाहिये वैसे सभ्यजनों की भी प्रतिष्ठा करनी चाहिये ॥ १ ॥

इन्द्र॒मिद्धरी॑ वह॒तोऽप्र॑तिधृष्टशवसम् ।
ऋषी॑णां च स्तु॒तीरुप॑ य॒ज्ञं च॒ मानु॑षाणाम् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जिस (अप्रतिधृष्टशवसम्) अहिंसित अत्यन्त बलयुक्त (ऋषीणाम्) वेदों के अर्थ जानने हारों की (स्तुतीः) प्रशंसा को प्राप्त (च) महागुणसम्पन्न (मानुषाणाम्) मनुष्यों (च) और प्राणियों के विद्यादान

संरक्षणनाम (यज्ञम्) यज्ञ को पालन करने हारे (इन्द्रम्) प्रजा सेना और सभा आदि ऐश्वर्य को प्राप्त कराने वाले को (हरी) दुःख हरण स्वभाव श्री बल वीर्य नाम गुण रूप अश्व (उपवहतः) प्राप्त होते हैं उस को (इत्) ही सदा प्राप्त हूजिये ॥ २ ॥

भावार्थ—जो प्रशंसा सत्कार अधिकार को प्राप्त हैं उन के विना प्राणियों को सुख नहीं हो सकता तथा सत्क्रिया के विना चक्रवर्त्ति राज्य आदि की प्राप्ति और रक्षण नहीं हो सकते इस हेतु से सब मनुष्यों को यह अनुष्ठान करना उचित है ॥ २ ॥

आ तिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी ।
अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (वृत्रहन्) मेघ को सविता के समान शत्रुओं के मारने हारे शूरवीर (ते) तेरे जिस (ब्रह्मणा) अन्नादिसामग्री से युक्त शिल्पि वा सारथि ने चलाये हुए (हरी) पदार्थ को पहुँचाने वाले जलाग्नि वा घोड़े (युक्ता) युक्त हैं उस (अर्वाचीनम्) भूमि जल में नीचे ऊपर आदि को जाने वाले (रथम्) रथ में तू (आतिष्ठ) बैठ (ग्रावा) मेघ के समान (वग्नुना) सुन्दर मधुर वाणी में वक्तृत्व को (सुकृणोतु) अच्छे प्रकार कर उससे (ते) तेरा (मनः) विज्ञान वीरों को अच्छे प्रकार उत्साहित किया करे ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सभापतियों को योग्य है कि सेना में दो प्रकार के अधिकारी रक्खें उन में एक सेना को लड़ावे और दूसरा अच्छे भाषणों से योद्धाओं को उत्साहित करे जब युद्ध हो तब सेनापति अच्छी प्रकार परीक्षा और उत्साह से शत्रुओं के साथ ऐसा युद्ध करावे कि जिससे निश्चित विजय हो और जब युद्ध बन्द हो जाय तब उपदेशक योद्धा और सब सेवकों को धर्मयुक्त कर्म के उपदेश से अच्छे प्रकार उत्साहित करें ऐसे करने हारे मनुष्यों का कभी पराजय नहीं हो सकता ॥ ३ ॥

इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) शत्रुओं को विदारण करने हारे जिस (त्वा) तुझे जो (धाराः) वाणी (ऋतस्य) सत्य (शुक्रस्य) पराक्रम के (सदने) स्थान में (अभ्यक्षरन्) प्राप्त करती हैं उनको प्राप्त होके (इमम्) इस (सुतम्) अच्छे प्रकार से सिद्ध किये उत्तम ओषधियों के रस को (पिब) पी उससे (ज्येष्ठम्) प्रशंसित (अमर्त्यम्) साधारण मनुष्य को अप्राप्त दिव्यस्वरूप (मदम्) आनन्द को प्राप्त होके शत्रुओं को जीत ॥ ४ ॥

भावार्थ—कोई भी मनुष्य विद्या और अच्छे पान भोजन के विना पराक्रम को प्राप्त होने को समर्थ नहीं और इस के विना सत्य का विज्ञान और विजय नहीं हो सकता ॥ ४ ॥

इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन ।
सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जिस को (**सुताः**) सिद्ध (**इन्दवः**) उत्तम रसीले पदार्थ (**अमत्सुः**) आनन्दित करें जिस को (**ज्येष्ठम्**) उत्तम (**सहः**) बल प्राप्त हो उस (**इन्द्राय**) सभाध्यक्ष को (**नमस्यत**) नमस्कार करो और उस को मुख्य कामों में युक्त करके (**नूनम्**) निश्चय से (**अर्चत**) सत्कार करो (**उक्थानि**) अच्छे अच्छे वचनों से (**ब्रवीतन**) उपदेश करो उस से सत्कारों को (**च**) भी प्राप्त हो ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि जो सब का सत्कार करे शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त होके परोपकारी हो उसको छोड़ के अन्य को सेनापति आदि अधिकारों में कभी स्थापन न करें ॥ ५ ॥

नकिष्ट्वद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे ।
नकिष्ट्वानु मज्मना नकिः स्वश्व आनशे ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) सेना का धारण करने हारे सेनापति ! (**यत्**) जो तू (**रथीतरः**) अतिशय करके रथयुक्त योद्धा है सो (**हरी**) अग्न्यादि वा घोड़ों को (**नकिः**) (**यच्छसे**) क्या रथ में नहीं देता अर्थात् युक्त नहीं करता क्या (**त्वा**) तुझ को (**मज्मना**) बल से कोई भी (**नकिः**) (**अन्वानशे**) व्याप्त नहीं हो सकता क्या (**त्वत्**) तुझ से अधिक कोई भी (**स्वश्वः**) अच्छे घोड़ों वाला (**नकिः**) नहीं है इस से तू सब अङ्गों से युक्त हो ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम सेनापति को इस प्रकार उपदेश करो कि क्या तू सब से बड़ा है क्या तेरे तुल्य कोई तेरे जीतने को भी समर्थ नहीं है । इस से तू निरभिमानता से सावधान होकर वर्त्ता कर ॥ ६ ॥

य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे । ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥७॥

पदार्थ—हे (**अङ्ग**) मित्र मनुष्य ! (**यः**) जो (**इन्द्रः**) सभा आदि का अध्यक्ष (**एकः**) सहायरहित (**इत्**) ही (**दाशुषे**) दाता (**मर्त्ताय**) मनुष्य के लिये (**वसु**) द्रव्य को (**विदयते**) बहुत प्रकार देता है और (**ईशानः**) समर्थ (**अप्रतिष्कुतः**) निश्चल है उसी को सेना आदि में अध्यक्ष कीजिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो सहायरहित भी निर्भय होके युद्ध से नहीं हटता तथा अत्यन्त शूर है उसी को सेना का स्वामी करो ॥ ७ ॥

कदा मर्त्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।
कदा नः शुश्रवद्गिर इन्द्रो अङ्ग ॥ ८ ॥

पदार्थ—(अङ्ग) शीघ्रकर्त्ता (इन्द्रः) सभा आदि का अध्यक्ष (पदा) विज्ञान वा धन की प्राप्ति से (क्षुम्पमिव) जैसे सर्प फण को (स्फुरत्) चलाता है वैसे (अराधसम्) धन रहित (मर्त्तम्) मनुष्य को (कदा) किस काल में चलाओगे (कदा) किस काल में (नः) हम को उक्त प्रकार से अर्थात् विज्ञान वा धन की प्राप्ति से जैसे सर्प फण को चलाता है वैसे (गिरः) वाणियों को (शुश्रवत्) सुन कर सुनाओगे ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो दरिद्रों को भी धनयुक्त आलसियों को पुरुषार्थी और श्रवणरहितों को श्रवणयुक्त करे उस पुरुष ही को सभा आदि का अध्यक्ष करो । कब यहां हमारी बात को सुनोगे और हम कब आप की बात को सुनेंगे ऐसी आशा हम करते हैं ॥ ८ ॥

यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति ।
उग्रं तत्पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (अङ्ग) मित्र ! तू जो (सुतावान्) अन्नादि पदार्थों से युक्त (इन्द्रः) परमैश्वर्य का प्रापक (बहुभ्यः) मनुष्यों से (त्वा) तुझ को (आविवासति) सेवा करता है जो शत्रुओं का (उग्रम्) अत्यन्त (शवः) बल (तत्) उस को (चित्) भी (आपत्यते) प्राप्त होता है (तम्) (हि) उसी को राजा मानो ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो शत्रुओं के बल का हनन करके तुम को दुःखों से हटाकर सुखयुक्त करने को समर्थ हो तथा जिस के भय और पराक्रम से शत्रु नष्ट होते हैं उसे सेनापति करके आनन्द को प्राप्त होओ ॥ ९ ॥

स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः ।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥१०॥

पदार्थ—जैसे (वृष्णा) सुख के वर्षाने (इन्द्रेण) सूर्य के साथ (सयावरीः) तुल्य गमन करने वाली (वस्वीः) पृथिवी (गौर्यः) किरणों से (स्व-

राज्यम्) अपने प्रकाश रूप राज्य के (शोभसे) शोभा के लिये (अनुमदन्ति) हर्ष का हेतु होती हैं वे (इत्था) इस प्रकार से (स्वादोः) स्वादयुक्त (विषुवतः) व्याप्ति वाले (मध्वः) मधुर आदि गुण को (पिबन्ति) पीती हैं वैसे तुम भी वर्त्ता करो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । अपनी सेना के पति और वीर पुरुषों की सेना के विना निज राज्य की शोभा तथा रक्षा नहीं हो सकती जैसे सूर्य की किरणें सूर्य के विना स्थित और वायु के विना जल का आकर्षण करके वर्षाने के लिये समर्थ नहीं हो सकती वैसे सेनाध्यक्ष के विना और राजा के विना प्रजा आनन्द करने को समर्थ नहीं हो सकती ॥ १० ॥

ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग (अस्य) इस (इन्द्रस्य) सूर्य वा सेना के अध्यक्ष की (पृश्नायुवः) अपने को स्पर्श करने वाली अर्थात् उलट पलट अपना स्पर्श करना चाहती (पृश्नयः) स्पर्श करती और (प्रियाः) प्रसन्न करने हारी (धेनवः) किरण वा गौ वा वाणी (सोमम्) ओषधि रस वा ऐश्वर्य को (श्रीणन्ति) सिद्ध करती और (सायकम्) दुर्गुणों को क्षय करने हारे ताप वा शस्त्रसमूह को (हिन्वन्ति) प्रेरणा देती हैं (वस्वीः) और वे पृथिवी से सम्बन्ध करने वाली (स्वराज्यम्) अपने राज्य के (अनु) अनुकूल होती हैं उनको प्राप्त होओ ॥ ११ ॥

भावार्थ—जैसे गोपाल की गौ जल रस को पी निज सुख को बढ़ा कर आनन्द को बढ़ाती हैं वैसे ही सेनाध्यक्ष की सेना और सूर्य की किरण ओषधियों से वैद्यकशास्त्र के अनुकूल वा उत्पन्न हुए परिपक्व रस को पीकर विजय और प्रकाश को करके आनन्द कराती हैं ॥ ११ ॥

ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे (स्वराज्यम्) अपने राज्य का सत्कार करता हुआ न्यायाधीश सब का पालन करता है वैसे (अस्य) इस अध्यक्ष के (नमसा) अन्न वा वज्र के साथ वर्त्तमान (प्रचेतसः) उत्तम ज्ञानयुक्त सेना (सहः) बल को (सपर्यन्ति) सेवन करती हैं (याः) जो (अस्य) सेनाध्यक्ष के (पूर्वचित्तये) पूर्वज्ञान के लिये (पुरूणि) बहुत (व्रतानि) सत्यभाषण नियम

आदि को (सश्चिरे) प्राप्त होती हैं (ताः) उन (वस्त्रीः) पृथिवी सम्बन्धियों को देशों के आनन्द भोगने के लिये सेवन करो ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि सामग्री बल और अच्छे नियमों के विना बहुत राज्य आदि के सुख नहीं प्राप्त होते इस हेतु से यम नियमों के अनुकूल जैसा चाहिये वैसा इस का विचार करके विजय आदि धर्मयुक्त कर्मों को सिद्ध करें॥ १२ ॥

इन्द्रो॑ दधी॒चो अ॒स्थभि॑र्वृ॒त्राण्यप्र॑तिष्कुतः । ज॒घान॑ नव॒तीर्नव॑ ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे सेनापते ! जैसे (अप्रतिष्कुतः) सब ओर से स्थिर (इन्द्र) सूर्यलोक (अस्थभिः) अस्थिर किरणों से (नवनवतीः) निन्नानवे प्रकार के दिशाओं के अवयवों को प्राप्त हुए (दधीचः) जो धारण करने हारे वायु आदि को प्राप्त होते हैं उन (वृत्राणि) मेघ के सूक्ष्म अवयव रूप जलों को (जघान) हनन करता है वैसे तू अनेक अधर्मी शत्रुओं का हनन कर ॥ १३ ॥

भावार्थ—यहाँ वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। वही सेनापति होने के योग्य होता है जो सूर्य के समान दुष्ट शत्रुओं का हन्ता और अपनी सेना का रक्षक है ॥१३॥

इ॒च्छन्नश्व॑स्य॒ यच्छिरः॒ पर्व॑ते॒ष्वप॑श्रितम् । तद्वि॑दच्छर्य॒णाव॑ति ॥ १४ ॥

पदार्थ—जैसे (इन्द्रः) सूर्य (अश्वस्य) शीघ्रगामी मेघ का (यत्) जो (शर्यणावति) आकाश में (पर्वतेषु) पहाड़ वा मेघों में (अपश्रितम्) आश्रित (शिरः) उत्तमाङ्ग के समान अवयव है उस को छेदन करता है वैसे शत्रु की सेना के उत्तमाङ्ग के नाश की (इच्छन्) इच्छा करता हुआ सुखों को सेनापति (विदत्) प्राप्त होवे ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य आकाश में रहने हारे मेघ का छेदन कर भूमि में गिराता है वैसे पर्वत और किलों में भी रहने हारे दुष्ट शत्रु का हनन करके भूमि में गिरा देवे इस प्रकार किये विना राज्य को व्यवस्था स्थिर नहीं हो सकती ॥ १४ ॥

अत्राह॒ गोर॑मन्वत॒ नाम॒ त्वष्टु॑रपी॒च्य॑म् । इ॒त्था च॒न्द्रम॑सो गृ॒हे ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे (अत्र) इस जगत् में (नाम) प्रसिद्ध (गोः) पृथिवी और (चन्द्रमसः) चन्द्रलोक के मध्य में (त्वष्टुः) छेदन करने हारे सूर्य का (अपीच्यम्) प्राप्त होने वालों में योग्य प्रकाशरूप

व्यवहार है (इत्था) इस प्रकार (अमन्वत) मानते हैं वैसे (अह) निश्चय से जा के (गृहे) घरों में न्यायप्रकाशार्थ वर्त्तो ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को जानना चाहिये कि ईश्वर की विद्यावृद्धि की हानि और विपरीतता नहीं हो सकती सब काल सब क्रियाओं में एकरस सृष्टि के नियम होते हैं जैसे सूर्य का पृथिवी के साथ आकर्षण और प्रकाश आदि सम्बन्ध है वैसे ही अन्य भूगोलों के साथ । क्योंकि ईश्वर ने स्थिर किये नियम का व्यभिचार अर्थात् भूल कभी नहीं होती ॥ १५ ॥

को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून् ।
असन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून्य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात् ॥ १६ ॥

पदार्थ—(कः) कौन (अद्य) इस समय (ऋतस्य) सत्य आचरण सम्बन्धी (शिमीवतः) उत्तम क्रियायुक्त (भामिनः) शत्रुओं के ऊपर क्रोध करने (दुर्हृणायून्) शत्रुओं को जिन का दुर्लभ सहसा कर्म उनके समान आचरण करने (आसन्निषून्) अच्छे स्थान में बाण पहुँचाने (हृत्स्वसः) शत्रुओं के हृदय में शस्त्र प्रहार करने और (मयोभून्) स्वराज्य के लिये सुख करने हारे श्रेष्ठ वीरों को (धुरि) संग्राम में (युङ्क्ते) युक्त करता है वा (यः) जो (एषाम्) इन की जीविका के निमित्त (गाः) भूमियों को (ऋणधत्) समृद्धियुक्त करे (सः) वह (जीवात्) बहुत समय पर्यन्त जीवे ॥ १६ ॥

भावार्थ—सब का अध्यक्ष राजा सब को प्रकट आज्ञा देवे सब सेना वा प्रजास्थ पुरुषों को सत्य आचरणों में नियुक्त करे सर्वदा उनकी जीविका बढ़ा के आप बहुत काल पर्यन्त जीवे ॥ १६ ॥

क ईषते तुज्यते को बिभाय को मंसते सन्तमिन्द्रं को अन्ति ।
कस्तोकाय क इभायोत रायेऽधि ब्रवत्तन्वे३ को जनाय ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे सेनापते ! सेनाओं में स्थित भृत्यों में (कः) कौन शत्रुओं को (ईषते) मारता है (कः) कौन शत्रुओं से (तुज्यते) मारा जाता है (कः) कौन युद्ध में (बिभाय) भय को प्राप्त होता है (कः) कौन (सन्तम्) राजधर्म में वर्त्तमान (इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्य के दाता को (मंसते) जानता है (कः) कौन (तोकाय) सन्तानों के (अन्ति) समीप में रहता है (कः) कौन (इभाय) हाथी के उत्तम होने के लिये शिक्षा करता है (उत) और (कः) कौन (राये) बहुत धन करने के लिये वर्त्तता और (तन्वे) शरीर और (जनाय) मनुष्यों के लिये (अधिब्रवत्) आज्ञा देवे इसका उत्तर आप कहिये ॥ १७ ॥

भावार्थ—जो अड़तालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य उत्तम शिक्षा और अन्य शुभ गुणों से युक्त होते हैं वे विजयादि कर्मों को कर सकते हैं जैसे राजा सेनापति को सब अपनी सेना के नौकरों की व्यवस्था को पूछे वैसे सेनापति भी अपने अधीन छोटे सेनापतियों को स्वयं सब वार्त्ता पूछे जैसे राजा सेनापति को आज्ञा देवे वैसे [स्वयं] सेना के प्रधान पुरुषों को करने योग्य कर्म की आज्ञा देवे ॥ १७ ॥

को अग्निमीट्टे हविषा घृतेन स्रुचा यजाता ऋतुभिर्ध्रुवेभिः ।
कस्मै देवा आ वहानाशु होम को मंसते वीतिहोत्रः सुदेवः ॥ १८ ॥

पदार्थ— हे विद्वान् ! (**कः**) कौन (**वीतिहोत्रः**) विज्ञान और श्रेष्ठ क्रियायुक्त पुरुष (**हविषा**) विचार और (**घृतेन**) घी से (**अग्निम्**) अग्नि को (**ईट्टे**) ऐश्वर्य प्राप्ति का हेतु करता है (**कः**) कौन (**स्रुचा**) कर्म से (**ध्रुवेभिः**) निश्चल (**ऋतुभिः**) वसन्तादि ऋतुओं में (**यजाते**) ज्ञान और क्रियायज्ञ को करे (**देवाः**) विद्वान् लोग (**कस्मै**) किस के लिये (**होम**) ग्रहण वा दान को (**आशु**) शीघ्र (**आवहान्**) प्राप्त करावें कौन (**सुदेवः**) उत्तम विद्वान् इस सब को (**मंसते**) जानता है इसका उत्तर कहिये ॥ १८ ॥

भावार्थ—हे विद्वन् ! किस साधन वा कर्म से अग्निविद्या को प्राप्त हों और किससे ज्ञान और क्रियारूप यज्ञ सिद्ध होवे किस प्रयोजन के लिये विद्वान् लोग यज्ञ का विस्तार करते हैं ॥ १८ ॥

त्वमङ्ग प्रशंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥ १९ ॥

पदार्थ—हे (**अङ्ग**) मित्र (**शविष्ठ**) परमबलयुक्त ! जिस से (**त्वम्**) तू (**देवः**) विद्वान् है उस से (**मर्त्यम्**) मनुष्य को (**प्रशंसिषः**) प्रशंसित कर । हे (**मघवन्**) उत्तम धन के दाता (**इन्द्र**) दुःखों का नाशक ! जिस से (**त्वम्**) तुझ से (**अन्यः**) भिन्न कोई भी (**मर्डिता**) सुखदायक (**नास्ति**) नहीं है उस से (**ते**) तुझे (**वचः**) धर्म्मयुक्त वचनों का (**ब्रवीमि**) उपदेश करता हूं ॥ १९ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि उत्तम कर्म करने असाधारण सदा सुख देने हारे धार्मिक मनुष्य के साथ ही मित्रता करके एक दूसरे को सुख देने का उपदेश किया करें ॥ १९ ॥

मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान् कदा चना दभन् ।
विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ ॥ २० ॥

पदार्थ—हे (**वसो**) सुख में वास कराने हारे (**ते**) आप के (**राधांसि**) धन (**अस्मान्**) हम को (**कदाचन**) कभी भी (**मा दभन्**) दुःखदायक न हों (**ते**) तेरी (**ऊतयः**) रक्षा (**अस्मान्**) हम को (**मा**) मत दुःखदायी होवे । हे (**मानुष**) जैसे तू (**चर्षणिभ्यः**) उत्तम मनुष्यों को (**विश्वा**) विज्ञान आदि सब प्रकार के (**वसूनि**) धनों को देता है वैसे हम को भी दे (**च**) और (**नः**) हम को विद्वान् धार्मिकों की (**आ**) सब ओर से (**उपमिमीहि**) उपमा को प्राप्त कर ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । वे ही धार्मिक मनुष्य हैं जिन का शरीर मन और धन सब को सुखी करे, वे ही प्रशंसा के योग्य हैं जो जगत् के उपकार के लिये प्रयत्न करते हैं ॥ २० ॥

इस सूक्त में सेनापति के गुण वर्णन होने से इस सूक्तार्थ की संगति पूर्व सूक्तार्थ के साथ जाननी चाहिये ॥

यह चौरासीवां सूक्त समाप्त हुआ ।

राहूगणो गोतम ऋषिः । मरुतो देवताः । १ । २ । ६ । ११ जगती । ३ । ७ । ८ निचृज्जगती । ४ । ९ । १० विराड्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ५ विराट् त्रिष्टुप् । १२ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयो यामन्रुद्रस्य सूनवः सुदंससः ।
रोदसी हि मरुतश्चक्रिरे वृधे मदन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः ॥१॥

पदार्थ—(**ये**) जो (**रुद्रस्य**) दुष्टों के रुलाने वाले के (**सूनवः**) पुत्र (**सुदंससः**) उत्तम कर्म करने हारे (**घृष्वयः**) आनन्दयुक्त (**वीराः**) वीरपुरुष (**हि**) निश्चय (**यामन्**) मार्ग में जैसे अलङ्कारों से सुशोभित (**जनयः**) सुशील स्त्रियों के (**न**) तुल्य और (**सप्तयः**) अश्व के समान शीघ्र जाने आने हारे (**मरुतः**) वायु (**रोदसी**) प्रकाश और पृथिवी के धारण के समान (**वृधे**) बढ़ने के अर्थ राज्य का धारण करते (**विदथेषु**) संग्रामों में विजय को (**चक्रिरे**) करते हैं वे (**प्रशुम्भन्ते**) अच्छे प्रकार शोभायुक्त और (**मदन्ति**) आनन्द को प्राप्त होते हैं उनसे तू प्रजा का पालन कर ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे अच्छी शिक्षा और विद्या को प्राप्त हुई पतिव्रता स्त्रियां अपने पतियों का अथवा स्त्रीव्रत सदा अपनी स्त्रियों ही से प्रसन्न ऋतुगामी पति लोग अपनी स्त्रियों का सेवन करके सुखी और जैसे सुन्दर बलवान् घोड़े मार्ग में शीघ्र पहुंचा के आनन्दित करते हैं वैसे धार्मिक राजपुरुष सब प्रजा को आनन्दित किया करें ॥ १ ॥

त उ॑क्षि॒तासो॑ महि॒मान॑माशत दि॒वि रु॒द्रासो॒ अधि॑ चक्रिरे॒ सदः॑ ।
अर्च॑न्तो अ॒र्कं ज॒नय॑न्त इन्द्रि॒यमधि॒ श्रियो॑ दधिरे॒ पृश्नि॑मातरः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**उक्षितासः**) वृष्टि से पृथिवी का सेचन करनेहारे (**पृश्निमातरः**) जिन की आकाश माता है (**ते**) वे (**रुद्रासः**) वायु (**दिवि**) आकाश में (**सदः**) स्थिर (**महिमानम्**) प्रतिष्ठा को (**अध्याशत**) अधिक प्राप्त होते और उसी को (**अधिचक्रिरे**) अधिक करते और (**इन्द्रियम्**) धन को (**दधिरे**) धारण करते हैं वैसे (**अर्कम्**) पूजनीय का (**अर्चन्तः**) पूजन करते हुए आप लोग (**श्रियः**) लक्ष्मी को (**जनयन्तः**) बढ़ा के आनन्दित रहो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वायु वृष्टि का निमित्त होके उत्तम सुखों [प्रतिष्ठा] को प्राप्त करते हैं वैसे सभाध्यक्ष लोग विद्या से सुशिक्षित हो के परस्पर उपकारी और प्रीतियुक्त होवें ॥ २ ॥

गोमा॑तरो॒ यच्छु॒भय॑न्ते अ॒ञ्जिभि॑स्त॒नूषु॑ शु॒भ्रा द॑धिरे वि॒रुक्म॑तः ।
बाध॑न्ते॒ विश्व॑मभिमा॒तिन॒मप॒ वर्त्मा॑न्येषा॒मनु॑ रीयते॒ घृ॒तम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यत्**) जो (**गोमातरः**) पृथिवी के समान माता वाले (**विरुक्मतः**) विशेष अलंकृत (**शुभ्राः**) शुद्ध स्वभावयुक्त शूरवीर लोग जैसे प्राण (**तनूषु**) शरीरों में (**अञ्जिभिः**) प्रसिद्ध विज्ञानादि गुणनिमित्तों से (**शुभयन्ते**) शुभ कर्मों का आचरण कराके शोभायमान करते हैं (**विश्वम्**) जगत् के सब पदार्थों का (**अनुदधिरे**) अनुकूलता से धारण करते हैं (**एषाम्**) इन के सम्बन्ध से (**घृतम्**) जल (**रीयते**) प्राप्त और (**वर्त्मानि**) मार्गों को जाते हैं वैसे (**अभिमातिनम्**) अभिमान युक्त शत्रुगण का (**अपबाधन्ते**) बाध करते हैं उनके साथ तुम लोग विजय को प्राप्त हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वायुओं से अनेक सुख और प्राण के बल से पुष्टि होती है वैसे ही शुभगुणयुक्त विद्या

शरीर और आत्मा के वलयुक्त सभाध्यक्षों से प्रजाजन अनेक प्रकार के रक्षणों को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

वि ये भ्राजंन्ते सुमंखास ऋष्टिभिः प्रच्यावयंन्तो अच्युंता चिदोजंसा ।
मनोजुवो यन्मंरुतो रथेष्वा वृषंव्रातासः पृषंतीरयुंग्ध्वम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे प्रजा और सभा के मनुष्यो ! (ये) जो (मनोजुवः) मन के समान वेगवाले (मरुतः) वायुओं के (चित्) समान (वृषव्रातासः) शस्त्र और अस्त्रों को शत्रुओं के ऊपर वर्षाने वाले मनुष्यों से युक्त (सुमखासः) उत्तम शिल्पविद्या सम्बन्धी वा संग्रामरूप क्रियाओं के करने हारे (ऋष्टिभिः) यन्त्र कलाओं को चलाने वाले दण्डों और (अच्युता) अक्षय (ओजसा) वल पराक्रम युक्त सेना से शत्रु की सेनाओं को(प्रच्यावयन्तः) नष्ट भ्रष्ट करते हुए (व्याभ्राजन्ते) अच्छे प्रकार शोभायमान होते हैं उन के साथ (यत्) जिन (रथेषु) रथों में (पृषतीः) वायु से युक्त जलों को (अयुग्ध्वम्) मंयुक्त करो उनसे शत्रुओं को जीतो ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि मन के समान वेगयुक्त विमानादि यानों में जल अग्नि और वायु को संयुक्त कर उस में बैठ के सर्वत्र भूगोल में जा आके शत्रुओं को जीत कर प्रजा को उत्तम रीति से पाल के शिल्पविद्या से कर्मों को बढ़ा के सव का उपकार किया करें ॥ ४ ॥

प्र यद्रथेषु पृषंतीरयुंग्ध्वं वाजे अद्रिं मरुतो रंहयंन्तः ।
उतारुषस्य वि ष्यंन्ति धाराश्चर्मेवोदभिर्व्युंन्दन्ति भूमं ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जैसे शिल्पी लोग (यत्) जिन (रथेषु) विमान आदि यानों में (पृषतीः) अग्नि और पावनयुक्त जलों को (प्रयुग्ध्वम्) संयुक्त करें (उत) और (अद्रिम्) मेघ को (रंहयन्तः) अपने वेग से चलाते हुए (मरुतः) पवन जैसे (अरुस्यः) घोड़े के समान (वाजे) युद्ध में (चर्मेव) चमड़े के तुल्य काष्ठ धातु और चमड़े से भी मढ़े कलाघरों में (उद्भिः) जलों से (धाराः) उन के प्रवाहों को (विष्यन्ति) काम की समाप्ति करने के लिये समर्थ करते और (भूम) भूमि को (व्युन्दन्ति) गीली करते अर्थात् रथ को चलाते हुए जल टपकाते जाते हैं वैसे उन यानों से अन्तरिक्ष मार्ग से देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर में जा आ के लक्ष्मी को बढ़ाओ ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्य ! जैसे वायु बद्दलों को संयुक्त करता और चलाता है वैसे शिल्पिलोग उत्तम शिक्षा और हस्तक्रिया अग्नि आदि अच्छे प्रकार जाने हुए वेगकर्त्ता पदार्थों के योग से स्थानान्तर को प्राप्त हो के कार्यों को सिद्ध करते हैं ॥ ५ ॥

आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः ।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः ॥६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (रघुस्यदः) गमन करने कराने हारे (रघुपत्वानः) थोड़े वा बहुत गमन करने वाले (मरुतः) वायुओं के समान (सप्तयः) शीघ्र चलने हारे अश्व (वः) तुम को (वहन्तु) देश देशान्तर में प्राप्त करें उनको (बाहुभिः) बल पराक्रम युक्त हाथों से (प्राजिगात) उत्तम गतिमान् करो उन से (उरु) बहुत (बर्हिः) उत्तम आसन पर (आसीदत) बैठ के आकाशादि में गमनागमन करो जिन से तुम्हारे (सदः) स्थान (कृतम्) सिद्ध (भवेत्) होवे उन से (मध्वः) मधुर (अन्धसः) अन्नों को प्राप्त हो के हम को (मादयध्वम्) आनन्दित करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—सभाध्यक्षादि मनुष्य लोग क्रियाकौशल से शिल्पविद्या से सिद्ध करने योग्य कार्यों को करके अच्छे भोगों को प्राप्त हों कोई भी मनुष्य इस जगत् में पदार्थविज्ञान क्रिया के बिना उत्तम भोगों को प्राप्त होने में समर्थ नहीं होता इससे इस काम का नित्य अनुष्ठान करना चाहिये ॥ ६ ॥

तेऽवर्धन्त स्वतवसो महित्वना नाकं तस्थुरुरु चक्रिरे सदः ।
विष्णुर्यद्धावद्वृषणं मदच्युतं वयो न सीदन्नधि बर्हिषि प्रिये ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (विष्णुः) सूर्यवत् शिल्पविद्या में निपुण मनुष्य (प्रिये) अत्यन्त सुन्दर (बर्हिषि) आकाश में (वृषणम्) अग्नि जल की वर्षायुक्त विमान के (अधिसीदन्) ऊपर बैठ के (वयो न) जैसे पक्षी आकाश में उड़ते और भूमि में आते हैं वैसे (यत्) जिस (मदच्युतम्) हर्ष को प्राप्त दुष्टों को रोकने हारे मनुष्यों की (आवत्) रक्षा करता है उस को जो (स्वतवसः) स्वकीय बलयुक्त मनुष्य प्राप्त होते हैं (ते ह) वे ही (महित्वना) महिमा से (अवर्धन्त) बढ़ते हैं और जो विमानादि यानों में (आतस्थुः) बैठ के (उरु) बहुत सुखसाधक (सदः) स्थान को जाते आते हैं वे (नाकम्) विशेष सुख (चक्रिरे) करते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे पक्षी आकाश में सुख-

पूर्वक जाके आते हैं वैसे ही साङ्गोपाङ्ग शिल्पविद्या को साक्षात् करके उस से उत्तम यानादि सिद्ध करके अच्छी सामग्री को रख के बढ़ाते हैं वे ही उत्तम प्रतिष्ठा और धनों को प्राप्त होकर नित्य बढ़ा करते हैं ॥ ७ ॥

शूरा इवेद्युयुधयो न जग्मयः श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे ।
भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भ्यो राजान इव त्वेषसंदृशो नरः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! तुम लोग जो वायु (**शूरा इव**) शूरवीरों के समान (**इत्**) ही मेघ के साथ (**युयुधयो न**) युद्ध करने वाले के समान (**जग्मयः**) जाने आने हारे (**पृतनासु**) सेनाओं में (**श्रवस्यवः**) अन्नादि पदार्थों को अपने लिये बढ़ाने हारे के समान (**येतिरे**) यत्न करते हैं (**राजान इव**) राजाओं के समान (**त्वेषसंदृशः**) प्रकाश को दिखाने हारे (**नरः**) नायक के समान हैं जिन (**मरुद्भ्यः**) वायुओं से (**विश्वा**) सब (**भुवना**) संसारस्थ प्राणी (**भयन्ते**) डरते हैं उन वायुओं का अच्छी युक्ति से उपयोग करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे भयरहित पुरुष युद्ध से निवर्त्त नहीं होते जैसे युद्ध करने हारे लड़ने के लिये शीघ्र दौड़ते हैं जैसे क्षुधातुर मनुष्य अन्न की इच्छा और जैसे सेनाओं में युद्ध को इच्छा करते हैं जैसे दण्ड देनेहारे न्यायाधीशों से अन्यायकारी मनुष्य उद्विग्न होते हैं वैसे ही कुपथ्यकारी अच्छे प्रकार उपयोग न करने हारे मनुष्य वायुओं से भय को प्राप्त होते और अपनी मर्यादा में रहते हैं ॥ ८ ॥

त्वष्टा यद्वज्रं सुकृतं हिरण्ययं सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्त्तयत् ।
धत्त इन्द्रो नर्यपांसि कर्त्तवेऽहन्वृत्रं निरपामौब्जदर्णवम् ॥ ९ ॥

पदार्थ—प्रजा और सेना में स्थित पुरुष जैसे (**स्वपाः**) उत्तम कर्म करता (**त्वष्टा**) छेदन करने हारा (**इन्द्रः**) सूर्य (**कर्त्तवे**) करने योग्य (**अपांसि**) कर्मों को और (**यत्**) जिस (**सुकृतम्**) अच्छे प्रकार सिद्ध किये (**हिरण्ययम्**) प्रकाशयुक्त (**सहस्रभृष्टिम्**) जिस से हजारह पदार्थ पकते हैं उस (**वज्रम्**) वज्र का प्रहार करके (**वृत्रम्**) मेघ का (**अहन्**) हनन करता है (**अपाम्**) जलों के (**अर्णवम्**) समुद्र को (**निरौब्जत्**) निरन्तर सरल करता है वैसे दुष्टों को (**पर्यवर्त्तयत्**) छिन्न-भिन्न करता हुआ शत्रुओं का हनन करके (**नरि**) मनुष्यों में श्रेष्ठों का (**आधत्ते**) धारण करता है वह राजा होने को योग्य होता है ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य मेघ को धारण और हनन कर वर्षा के समुद्र को भरता है वैसे सभापति लोग विद्या

न्याययुक्त प्रजा के पालन का धारण करके अविद्या अन्याययुक्त दुष्टों का ताड़न करके सब के हित के लिये सुखसागर को पूर्ण भरें ॥ ९ ॥

ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवतं त ओजसा दादृहाणं चिद्बिभिदुर्वि पर्वतम् ।
धमन्तो वाणं मरुतः सुदानवो मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे ॥ १० ॥

पदार्थ—जैसे (**मरुतः**) वायु (**ओजसा**) बल से (**अवतम्**) रक्षणादि का निमित्त (**दादृहाणम्**) बढ़ाने के योग्य (**पर्वतम्**) मेघ को (**विभिदुः**) विदीर्ण करते और (**ऊर्ध्वम्**) ऊंचे को (**नुनुद्रे**) ले जाते हैं वैसे जो (**वाणम्**) वाण से लेके शस्त्रास्त्र समूह को (**धमन्तः**) कंपाते हुए (**सुदानवः**) उत्तम पदार्थ के दान करने हारे (**सोमस्य**) उत्पन्न हुए जगत् के मध्य में (**मदे**) हर्ष में (**रण्यानि**) संग्रामों में उत्तम साधनों को (**विचक्रिरे**) करते हैं (**ते**) वे राजाओं के (**चित्**) समान होते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्य लोग इस जगत् में जन्म पा विद्या शिक्षा का ग्रहण और वायु के समान कर्म्म करके सुखों को भोगें ॥ १० ॥

जिह्मं नुनुद्रेऽवतं तया दिशासिञ्चन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे ।
आ गच्छन्तीमवसा चित्रभानवः कामं विप्रस्य तर्पयन्त धामभिः ॥११॥

पदार्थ—जैसे दाता लोग (**अवतम्**) निम्नदेशस्थ (**जिह्मम्**) कुटिल (**उत्सम्**) कूप को खोद के (**तृष्णजे**) तृषायुक्त (**गोतमाय**) बुद्धिमान् पुरुष को (**ईम्**) जल से (**असिचन्**) तृप्त करके (**तया**) (**दिशा**) उस अभीष्ट दिशा से (**नुनुद्रे**) उसकी तृषा को दूर कर देते हैं जैसे (**चित्रभानवः**) विविध प्रकार के आधार प्राणों के समान (**धामभिः**) जन्म नाम और स्थानों से (**विप्रस्य**) विद्वान् के (**अवसा**) रक्षण से (**कामम्**) कामना को (**तर्पयन्त**) पूर्ण करते और सब ओर से सुख को (**आगच्छन्ति**) प्राप्त होते हैं वैसे उत्तम मनुष्यों को होना चाहिये ॥ ११ ॥

भावार्थ—जैसे मनुष्य कूप को खोद खेत वा वगीचे आदि को सींच के उस में उत्पन्न हुए अन्न और फलादि से प्राणियों को तृप्त करके सुखी करते हैं वैसे ही सभाध्यक्ष आदि लोग वेदशास्त्रों में विशारद विद्वानों को कामों से पूर्ण करके इनसे विद्या उत्तम शिक्षा और धर्म का प्रचार कराके सब प्राणियों को आनन्दित करें ॥ ११ ॥

या वः शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताधि ।
अस्मभ्यं तानि मरुतो वि यन्त रयिं नो धत्त वृषणः सुवीरम् ॥१२॥

पदार्थ—हे सभाध्यक्ष आदि मनुष्यो ! तुम लोग (मरुतः) वायु के समान (वः) तुम्हारे (या) जो (त्रिधातूनि) वात पित्त कफ युक्त शरीर अथवा लोहा सोना चांदी आदि धातुयुक्त (शर्म) घर (सन्ति) हैं (तानि) उन्हें (शशमानाय) विज्ञानयुक्त (दाशुषे) दाता के लिये (यच्छत) देओ और (अस्मभ्यम्) हमारे लिये भी वैसे घर (वियन्त) प्राप्त करो हे (वृषणः) सुख की वृष्टि करने हारे (नः) हमारे लिये (सुवीरम्) उत्तम वीर की प्राप्ति करानेहारे (रयिम्) धन को (अधिधत्त) धारण करो ॥ १२ ॥

भावार्थ—सभाध्यक्षादि लोगों को योग्य है कि सुख दुःख की अवस्था में सब प्राणियों को अपने आत्मा के समान मान के सुख धनादि से युद्ध करके पुत्रवत् पालें और प्रजा सेना के मनुष्यों को योग्य है कि उन का सत्कार पिता के समान करें ॥ १२ ॥

इस सूक्त में वायु के समान सभाध्यक्ष राजा और प्रजा के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्तार्थ की संगति पूर्व सूक्तार्थ के साथ समझनी चाहिये ॥

यह पिचासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

राहूगणो गोतम ऋषिः । मरुतो देवताः । १ । ४ । ८ । ९ गायत्री । २ । ३ । ७ । पिपीलिका मध्या निचृद्गायत्री । ५ । ६ । १० निचृद्गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः । स सुगोपातमो जनः ॥१॥

पदार्थ—हे (विमहसः) नाना प्रकार पूजनीय कर्मों के कर्त्ता (दिवः) विद्यान्यायप्रकाशक तुम लोग (मरुतः) वायु के समान विद्वान् जन (यस्य) जिस के (क्षये) घर में (पाथ) रक्षक हो (स हि) वही (सुगोपातमः) अच्छे प्रकार (जनः) मनुष्य होवे ॥ १ ॥

भावार्थ--जैसे प्राण के विना शरीरादि का रक्षण नहीं हो सकता वैसे सत्योपदेशकर्त्ता के विना प्रजा की रक्षा नहीं होती ॥ १ ॥

यज्ञैर्वा यज्ञवाहसो विप्रस्य वा मतीनाम् । मरुतः शृणुता हवम् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (यज्ञवाहसः) सत्सङ्गरूप प्रिय यज्ञों को प्राप्त कराने वाले विद्वानो ! तुम लोग (मरुतः) वायु के समान (यज्ञैः) अपने (वा) पराये पढ़ने पढ़ाने और उपदेशरूप यज्ञों से (विप्रस्य) विद्वान् (वा) वा (मतीनाम्) बुद्धिमानों के (हवम्) परीक्षा के योग्य पठन-पाठन रूप व्यवहार को (श्रृणुत) सुना कीजिये ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को योग्य है कि जानने जनाने वा क्रियाओं से सिद्ध यज्ञों से युक्त होकर अन्य मनुष्यों को युक्त करा यथावत् परीक्षा करके विद्वान् करना चाहिये ॥ २ ॥

उत वा यस्य॑ वाजिनोऽनु विप्रमत॑क्षत । स गन्ता गोम॑ति व्रजे ॥३॥

पदार्थ—(वाजिनः) उत्तम विज्ञानयुक्त विद्वानो ! तुम (यस्य) जिस क्रियाकुशल विद्वान् (वा) पढ़ाने हारे के समीप से विद्या को प्राप्त हुए (विप्रम्) विद्वान् को (अन्वतक्षत) सूक्ष्म प्रज्ञायुक्त करते हो (सः) वह (गोमति) उत्तम इन्द्रिय विद्या प्रकाशयुक्त (व्रजे) प्राप्त होने के योग्य मार्ग में (उत) भी (गन्ता) प्राप्त होवे ॥ ३ ॥

भावार्थ—तीव्रबुद्धि और शिल्पविद्या सिद्ध विमानादि यानों के विना मनुष्य देश देशान्तर में सुख से जाने आने को समर्थ नहीं हो सकते उस कारण अति पुरुषार्थ से विमानादि यानों को यथावत् सिद्ध करें ॥ ३ ॥

अस्य वीरस्य॑ बर्हिषि सुतः सोमो दिवि॑ष्टिषु । उक्थं मद॑श्च शस्यते ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! आप के सुशिक्षित (अस्य) इस (वीरस्य) वीर का (सुतः) सिद्ध किया हुआ (सोमः) ऐश्वर्य (दिविष्टिषु) उत्तम इष्टिरूप कर्मों से सुखयुक्त व्यवहारों में (उक्थम्) प्रशंसित वचन (बर्हिषि) उत्तम व्यवहार के करने में (मदः) आनन्द (च) और सद्विद्यादि गुणों का समूह (शस्यते) प्रशंसित होता है अन्य का नहीं ॥ ४ ॥

भावार्थ—विद्वानों की शिक्षा के विना मनुष्यों में उत्तम गुण उत्पन्न नहीं होते इससे इसका अनुष्ठान नित्य करना चाहिये ॥ ४ ॥

अस्य श्रोषन्त्वा भुवो विश्वा यश्चर्षणीरभि । सूरं चित्सस्रुषीरिषः ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग (अस्य) इस सुशिक्षित विद्वान् के (इषः) (चित्) समान (विश्वाः) सब (सस्रुषीः) प्राप्त होने के योग्य (आभुवः) सब ओर से सुखयुक्त (चर्षणीः) मनुष्यरूप प्रजा को जैसे किरणें (सूरम्) सूर्य को प्राप्त होती हैं वैसे (अभिश्रोषन्तु) सब ओर से सुनो ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अच्छी शिक्षा से युक्त अच्छे प्रकार परीक्षित शुभ लक्षणयुक्त संपूर्ण विद्याओं का वेत्ता दृढ़ाङ्ग अतिबली पढ़ाने हारा श्रेष्ठ सहाय से सहित पुरुषार्थी धार्मिक विद्वान् है वही धर्म अर्थ काम और मोक्ष को प्राप्त होके प्रजा के दुःख का निवारण कर पराविद्या को सुन के प्राप्त होता है इससे विरुद्ध मनुष्य नहीं ॥ ५ ॥

पूर्वीभिर्हि ददाशिम शरद्भिर्मरुतो वयम् । अवोभिश्चर्षणीनाम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (मरुतः) सभा ध्यक्ष आदि सज्जनो ! जैसे तुम लोग (पूर्वीभिः) प्राचीन सनातन (शरद्भिः) सब ऋतु वा (अवोभिः) रक्षा आदि अच्छे अच्छे व्यवहारों से (चर्षणीनाम्) सब मनुष्यों के सुख के लिये अच्छे प्रकार अपना वर्त्ताव वर्त्त रहे हो वैसे (हि) निश्चय से (वयम्) हम प्रजा सभा और पाठशालास्थ आदि प्रत्येक शाला के पुरुष आप लोगों को सुख (ददाशिम) देवें ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सब ऋतु में ठहरने वाले वायु प्राणियों की रक्षा कर उन को सुख पहुँचाते हैं वैसे ही विद्वान् लोग सब के सुख के लिये प्रवृत्त हों, न कि किसी के दुःख के लिये ॥ ६ ॥

सुभगः स प्रयज्यवो मरुतो अस्तु मर्त्यः । यस्य प्रयांसि पर्षथ ॥७॥

पदार्थ—हे (प्रयज्यवः) अच्छे अच्छे यज्ञादि कर्म करने वाले (मरुतः) सभाध्यक्ष आदि विद्वानो ! तुम (यस्य) जिस के लिये (प्रयांसि) अत्यन्त प्रीति करने योग्य मनोहर पदार्थों को (पर्षथ) परसते अर्थात् देते हो (सः) वह (मर्त्यः) मनुष्य (सुभगः) श्रेष्ठ धन और ऐश्वर्ययुक्त (अस्तु) हो ॥ ७ ॥

भावार्थ—जिन मनुष्यों के सभाध्यक्ष आदि विद्वान् रक्षा करने वाले हैं वे क्योंकर सुख और ऐश्वर्य्य को न पावें ॥ ७ ॥

शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः । विदा कामस्य वेनतः ॥८॥

पदार्थ—हे (नरः) मनुष्यो ! तुम सभाध्यक्षादिकों के संग (वा) पुरुषार्थ से (शशमानस्य) जानने योग्य (सत्यशवसः) जिस में नित्य पुरुषार्थ करना हो (वेनतः) जो कि सब शास्त्रों से सुना जाता हो तथा कामना के योग्य और (स्वेदस्य) पुरुषार्थ से सिद्ध होता है उस (कामस्य) काम को (विद) जानो अर्थात् उस को स्मरण से सिद्ध करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—कोई पुरुष विद्वानों के सङ्ग के विना सत्य काम और अच्छे बुरे को जान नहीं सकता इससे सब को विद्वानों का सङ्ग करना चाहिये ॥ ८ ॥

यूयं तत्संत्यशवस आविष्कर्त्त महित्वना । विध्यता विद्युता रक्षः ॥९॥

पदार्थ—हे (सत्यशवसः) नित्य बलयुक्त सभाध्यक्ष आदि सज्जनो ! (यूयम्) तुम (महित्वना) उत्तम यश से (तत्) उस काम को (आविः) प्रकट (कर्त्त) करो कि जिससे (विद्युता) बिजुली के लोहे से बनाये हुए शस्त्र वा आग्नेयादि अस्त्रों के समूह से (रक्षः) खोटे काम करने वाले दुष्ट मनुष्यों को (विध्यता) ताड़ना देते हुए मेरी सब कामना सिद्ध हों ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि परस्पर प्रीति और पुरुषार्थ के साथ विद्युत् आदि पदार्थविद्या और अच्छे अच्छे गुणों को पाकर दुष्ट स्वभावी और दुर्गुणी मनुष्यों को दूर कर नित्य अपनी कामना सिद्ध करें ॥ ९ ॥

गूहता गुह्यं तमो वि यात विश्वमत्रिणम् । ज्योतिष्कर्त्ता यदुश्मसि ॥१०॥

पदार्थ—हे (सत्यशवसः) नित्यबलयुक्त सभाध्यक्ष आदि सज्जनो ! जैसे तुम (महित्वना) अपने उत्तम यश से (गुह्यम्) गुप्त करने योग्य व्यवहार को (गूहत) ढांपो और (विश्वम्) समस्त (तमः) अविद्या रूपी अन्धकार को जो कि (अत्रिणम्) उत्तम सुख का विनाश करने वाला है उस को (वि+यात) दूर पहुँचाओ तथा हम लोग (यत्) जो (ज्योतिः) विद्या के प्रकाश को (उश्मसि) चाहते हैं उस को (कर्त्त) प्रकट करो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में (मरुतः, सत्यशवसः, महित्वना) इन तीन पदों की अनुवृत्ति है । सभाध्यक्षादि को परम पुरुषार्थ से निरन्तर राज्य की रक्षा करनी तथा अविद्यारूपी अन्धकार और शत्रु जन दूर करने चाहियें तथा विद्या धर्म और सज्जनों के सुखों का प्रचार करना चाहिये ॥ १० ॥

इस सूक्त में जैसे शरीर में ठहरने हारे प्राण आदि पवन चाहे हुए सुखों को सिद्ध कर सब की रक्षा करते हैं वैसे ही सभाध्यक्षादिकों को चाहिये कि समस्त राज्य की यथावत् रक्षा करें । इस अर्थ के वर्णन से इस सूक्त में कहे हुए अर्थ की उस पिछले सूक्त के अर्थ के साथ एकता जाननी चाहिये ॥

यह छियासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

राहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः । मरुतो देवताः । १ । २ । ५ । विराड् जगती ३ । जगती । ६ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ४ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरप्शिनोऽनानता अविथुरा ऋजीषिणः ।
जुष्टतमासो नृतमासो अञ्जिभिर्व्यानज्रे के चिदुस्रा इव स्तृभिः ॥१॥

पदार्थ—हे सभाध्यक्ष आदि सज्जनो ! आप लोगों को (के, चित्) उन लोगों की प्रतिदिन रक्षा करनी चाहिये जो कि अपनी सेनाओं में (स्तृभिः) शत्रुओं को लज्जित करने के गुणों से (अञ्जिभिः) प्रकट रक्षा और उत्तम ज्ञान आदि व्यवहारों के साथ वर्त्ताव रखते और (उस्रा इव) जैसे सूर्य की किरण जल को छिन्न भिन्न करती हैं वैसे (प्रत्वक्षसः) शत्रुओं को अच्छे प्रकार छिन्न भिन्न करते हैं तथा (प्रतवसः) प्रवल जिनके सेनाजल (विरप्शिनः) समस्त पदार्थों के विज्ञान से महानुभाव (अनानताः) कभी शत्रुओं के सामने न दीन हुए और (अविथुराः) न कँपे हों (ऋजीषिणः) समस्त विद्याओं को जाने और उत्कर्षयुक्त सेना केअङ्गों को इकट्टे करें (जुष्टतमासः) राजा लोगों ने जिनकी वार वार चाहना करी हो (नृतमासः) सब कर्मों को यथायोग्य व्यवहार में अत्यन्त वर्त्ताने वाले हों (व्यानज्रे) शत्रुओं के बलों को अलग करें उन का सत्कार किया करो ॥ १ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्य की किरणें तीव्र प्रताप वाली हैं वैसे प्रवल प्रताप वाले मनुष्य जिन के समीप हैं क्योंकर उन की हार हो । इस से सभाध्यक्ष आदिकों को उक्त लक्षण वाले पुरुष अच्छी शिक्षा सत्कार और उत्साह देकर रखने चाहियें विना ऐसा किये कोई राज्य नहीं कर सकते हैं ॥ १ ॥

उपह्वरेषु यदचिध्वं ययिं वय इव मरुतः केन चित्पथा ।
श्चोतन्ति कोशा उप वो रथेष्वा घृतमुक्षता मधुवर्णमर्चते ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (मरुतः) सभा आदि कामों में नियत किये हुए मनुष्यो ! तुम (उपह्वरेषु) प्राप्त हुए टेढ़े सूधे भूमि आकाशादि मार्गों में (रथेषु) विमान आदि रथों पर बैठ (वय इव) पक्षियों के समान (केनचित्) किसी (पथा) मार्ग से (यत्) जिस (ययिम्) प्राप्त होने योग्य विजय को (अचिध्वम्) संपादन करो जाओ आओ उस को (अर्चते) जिसका सत्कार करते और सभा आदि कामों के अधीश जिस को प्यारे हैं उन के लिये देओ जो (वः) तुम्हारे रथ (कोशाः) मेघों के समान आकाश में (श्चोतन्ति) चलते हैं उन में (मधुवर्णम्) मधुर और निर्मल जल (घृतम्) जल को (उद+आ+उक्षत) अच्छे प्रकार उपसिक्त करो अर्थात् उन रथों के आग और पवन के कलघरों के समीप अच्छे प्रकार छिड़को ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि विमान आदि रथ वनाकर उन में आग पवन और जल के घरों में आग पवन जल धर कर कलों से उनको चला कर उन की भाप

रोक रथों को ऊपर ले जायं जैसे कि पखेरू वा मेघ जाते हैं वैसे आकाश-मार्ग से अभीष्ट स्थान को जा आकर व्यवहार से धन और युद्ध सर्वथा जीत वा राज्यधन को प्राप्त होकर उन धन आदि पदार्थों से परोपकार कर निरभिमानी होकर सब प्रकार के आनन्द पावें और उन आनन्दों को सब के लिये पहुंचावें ॥ २ ॥

प्रैषामज्मेषु विथुरेव रेजते भूमिर्यामेषु यद्ध युञ्जते शुभे ।
ते क्रीळयो धुनयो भ्राजदृष्टयः स्वयं महित्वं पनयन्त धूतयः ॥ ३ ॥

पदार्थ—(**यत्**) जो (**क्रीडयः**) अपने सत्य चालचलन को वर्तते हुए (**धुनयः**) शत्रुओं को कंपावें (**भ्राजदृष्टयः**) ऐसे तीव्र शस्त्रों वाले (**धूतयः**) जो कि युद्ध की क्रियाओं में विचार के वे वीर (**शुभे**) श्रेष्ठ विजय के लिये (**अज्मेषु**) संग्रामों में (**प्र+युञ्जते**) प्रयुक्त अर्थात् प्रेरणा को प्राप्त होते हैं (**ते**) वे (**महित्वम्**) बड़प्पन जैसे हो वैसे (**स्वयम्**) आप (**ह**) ही (**पनयन्त**) व्यवहारों को करते हैं (**एषाम्**) इन के (**यामेषु**) उन मार्गों में कि जिन में मनुष्य आदि प्राणी जाते हैं चलते हुए रथों से (**भूमिः**) धरती (**विथुरा+इव+एजते**) ऐसी कम्पती है कि मानो शीतज्वर से पीड़ित लड़की कंपे ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे शीघ्र चलने वाले वृक्ष पवन तृण ओषधि और धूलि को कंपाते हैं वैसे ही वीरों की सेना के रथों के पहियों के प्रहार से धरती और उनके शस्त्रों की चोटों से डरने हारे मनुष्य कांपा करते हैं और जैसे व्यापार वाले मनुष्य व्यवहार से धन को पाकर बड़े धनाढ्य होते हैं वैसे ही सभा आदि कामों के अधीश शत्रुओं के जीतने से अपना बड़प्पन और प्रतिष्ठा विख्यात करते हैं ॥ ३ ॥

स हि स्वसृत्पृषदश्वो युवा गणो३ऽया ईशानस्तविषीभिरावृतः ।
असि सत्य ऋणयावाऽनेद्योऽस्या धियः प्राविताथा वृषा गणः ॥४॥

पदार्थ—हे सेनापते ! (**सः**) (**हि**) वही तू (**अया**) जिस से सब विद्या जानी जाती हैं उस बुद्धि से युक्त (**वृषा**) शीतल मन्द सुगन्धिपन से सुखरूपी वर्षा करने में समर्थ (**गणः**) पवनों के समान वेग बल युक्त (**स्वसृत्**) अपने लोगों को प्राप्त होने वाला (**पृषदश्वः**) वा मेघ के समान जिस के घोड़े हैं (**युवा**) तथा जवानी को पहुँचा हुआ (**गणः**) अच्छे सज्जनों में गिनती करने के योग्य (**ईशानः**) परिपूर्णसामर्थ्य युक्त (**सत्यः**) सज्जनों में सीधे स्वभाव वा (**ऋणयावा**) दूसरों का ऋण चुकाने वाला (**अनेद्यः**) प्रशंसनीय और (**अस्याः**) इस (**धियः**) बुद्धि वा कर्म की (**प्राविता**) रक्षा करने हारा (**तविषीभिः**) परिपूर्णबलयुक्त

सेनाओं से (आवृतः) युक्त (असि) है (अथ) इस के अनन्तर हम लोगों के सत्कार करने योग्य भी है ॥ ४ ॥

भावार्थ—ब्रह्मचर्य्य और विद्या से परिपूर्ण शारीरिक और आत्मिक बल युक्त अपनी सेना से रक्षा को प्राप्त सेनापति सेना की निरन्तर रक्षा कर शत्रुओं को जीत के प्रजा का पालन करे ॥ ४ ॥

पितुः प्रत्नस्य जन्मना वदामसि सोमस्य जिह्वा प्र जिगाति चक्षसा ।
यदीमिन्द्रं शम्यृक्वाण आशतादिन्नामानि यज्ञियानि दधिरे ॥ ५ ॥

पदार्थ—(ऋक्वाणः) प्रशंसित स्तुतियों वाले हम लोग (प्रत्नस्य) पुरातन अनादि (पितुः) पालने हारे जगदीश्वर की व्यवस्था से अपने कर्म्म के अनुसार पाये हुए मनुष्य देह के (जन्मना) जन्म से (सोमस्य) प्रकट संसार के (चक्षसा) दर्शन से जिन (यज्ञियानि) शिल्प आदि कर्मों के योग्य (नामानि) जलों को (वदामसि) तुम्हारे प्रति उपदेश करें वा (यत्) जो (ईम्) प्राप्त होने योग्य (इन्द्रम्) विजुली अग्नि के तेज को (शमि) कर्म के निमित्त (जिह्वा) जीभ वा वाणी (प्रजिगाति) स्तुति करती है उन सब को तुम लोग (आशत) प्राप्त होओ और (आत्+इत्) उसी समय इन को (दधिरे) सब लोग धारण करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि इस मनुष्य देह को पाकर पितृभाव से परमेश्वर की आज्ञापालन रूप प्रार्थना उपासना और परमेश्वर का उपदेश संसार के पदार्थ और उन के विशेष ज्ञान से उपकारों को लेकर अपने जन्म को सफल करें ॥ ५ ॥

श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे ते रश्मिभिस्त ऋक्वभिः सुखादयः ।
ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः ॥६॥

पदार्थ—जो (भानुभिः) दिन दिन से (कम्) सुख को (श्रियसे) सेवन करने के लिये (ते) वे (प्रियस्य) प्रेम उत्पन्न कराने वाले (मारुतस्य) कला के पवन वा प्राणवायु के (धाम्नः) घर से विद्या वा जल को (सम्+मिमिक्षिरे) अच्छे प्रकार छिड़कना चाहते हैं (ते) वे शिल्पविद्या के जानने वाले होते हैं तथा जो (रश्मिभिः) अग्निकिरणों से सुख के सेवन के लिये कलाओं से यानों को चलाते हैं वे शीघ्र एक स्थान से दूसरे स्थान का (विद्रे) लाभ पाते हैं (ऋक्वभिः) जिन में प्रशंसनीय स्तुति विद्यमान है उन से जो सुख के सेवन करने के लिये (सुखादयः) अच्छे अच्छे पदार्थों के भोजन करने वाले होते हैं (ते) वे आरोग्यपन को पाते हैं (वाशीमन्तः) प्रशंसित जिन की वाणी वा (इष्मिणः) विशेष

ज्ञान है वे (अभीरवः) निर्भय पुरुष प्रेम उत्पन्न कराने हारे प्राणवायु वा कलाओं के पवन के घर से युद्ध में प्रवृत्त होते हैं वे विजय को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य प्रतिदिन सृष्टिपदार्थविद्या को पा अनेक उपकारों को ग्रहण कर उस विद्या के पढ़ने और पढ़ाने से वाचाल अर्थात् बातचीत में कुशल हो और शत्रुओं को जीतकर अच्छे आचरण में वर्त्तमान होते हैं वे ही सब कभी सुखी होते हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त में राजा प्रजाओं के कर्त्तव्य काम कहे हैं इस कारण इस सूक्त के अर्थ से पिछले सूक्त के अर्थ की सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह सत्तासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

राहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः । मरुतो देवताः । १ पङ्क्तिः । २ भुरिक्पङ्क्तिः ५ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३ निचृत्त्रिष्टुप् ४ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥६ निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वर्कै रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः ।
आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पप्तता सुमायाः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (सुमायाः) उत्तम बुद्धि वाले (मरुतः) सभाध्यक्ष वा प्रजा पुरुषो ! तुम (नः) हमारे (वर्षिष्ठया) अत्यन्त बुढ़ापे से (इषा) उत्तम अन्न आदि पदार्थों (स्वर्कैः) श्रेष्ठ विचार वाले विद्वानों (ऋष्टिमद्भिः) तार विद्या में चलाने के अर्थ दण्डे और शस्त्रास्त्र (अश्वपर्णैः) अग्नि आदि पदार्थ रूपी घोड़ों के गमन के साथ वर्त्तमान (विद्युन्मद्भिः) जिनमें कि तार बिजली हैं उन (रथेभिः) विमान आदि रथों से (वयः) पक्षियों के (न) समान (पप्तत) उड़ जाओ (आ) उड़ आओ (यात) जाओ (आ) आओ ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि जैसे पखेरू ऊपर नीचे आके चाहे हुए एक स्थान से दूसरे स्थान को सुख से जाते हैं वैसे अच्छे प्रकार सिद्ध किये हुए तारविद्यायुक्त प्रयोग से चलाये हुए विमान आदि यानों से आकाश और भूमि वा जल में अच्छे प्रकार जा आके अभीष्ट देशों को सुख से जा आके अपने कार्य्यों को सिद्ध करके निरन्तर सुख को प्राप्त हों ॥ १ ॥

तेऽरुणेभिर्वरमा पिशङ्गैः शुभे कं यान्ति रथतूर्भिरश्वैः ।

रुक्मो न चित्रः स्वधितीवान् पव्या रथस्य जङ्घनन्त भूम ॥ २ ॥

पदार्थ—जैसे कारीगरी को जानने हारे विद्वान् लोग (शुभे) उत्तम व्यवहार के लिये (अरुणेभिः) अच्छे प्रकार अग्नि के ताप से लाल (पिशंगैः) वा अग्नि और जल के संयोग की उठी हुई भाफों में कुछेक श्वेत (रथतूर्भिः) जो कि विमान आदि रथों को चलाने वाले अर्थात् अति शीघ्र उन को पहुँचाने के कारण आग और पानी की कलों के घररूपी (अश्वैः) घोड़े हैं उन के साथ (रथस्य) विमान आदि रथ की (पव्या) वज्र के तुल्य पहियों की धार से (स्वधितिवान्) प्रशंसित वज्र से अन्तरिक्ष वायु को काटने (रुक्मः) और उत्तेजना रखने वाले (चित्रः) शूरता धीरता बुद्धिमत्ता आदि गुणों से अद्भुत मनुष्य के (न) समान मार्ग को (जङ्घनन्त) हनन करते और देश देशान्तर को जाते आते हैं (ते) वे (वरम्) उत्तम (कम्) सुख को (आयान्ति) चारों ओर से प्राप्त होते हैं वैसे हम भी (भूम) इस को करके आनन्दित होवें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्त और उपमालङ्कार हैं। जैसे शूरवीर अच्छे शस्त्र रखने वाला पुरुष वेग से जाकर शत्रुओं को मारता है वैसे मनुष्य वेग वाले रथों पर बैठ देश देशान्तर को जा आ के शत्रुओं को जीतते हैं ॥ २ ॥

श्रिये कं वो अधि तनूषु वाशीर्मेधा वना न कृणवन्त ऊर्ध्वा ।

युष्मभ्यं कं मरुतः सुजातास्तुविद्युम्नासो धनयन्ते अद्रिम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (मरुतः) सभाध्यक्षादि सज्जनो ! जो (वः) तुम्हारे (तनूषु) शरीरों में (श्रिये) लक्ष्मी के लिये (कम्) सुख (ऊर्ध्वा) अच्छे सुख को प्राप्त करने वाली (वाशीः) वेदवाणी (मेधा) शुद्ध बुद्धियों को (वना) ऊंचे ऊंचे बनैले पेड़ों के (न) समान (अधिः+कृणवन्ते) अधिकृत करते हैं अर्थात् उनके आचरण के लिये अधिकार देते हैं। हे (सुजाताः) विद्यादि श्रेष्ठ गुणों में प्रसिद्ध उक्त सज्जनो ! जो (तुविद्युम्नासः) बहुत विद्या प्रकाश वाले महात्मा जन (युष्मभ्यम्) तुम लोगों के लिये (कम्) अत्यन्त सुख जैसे हो वैसे (अद्रिम्) पर्वत के समान (धनयन्ते) बहुत धन प्रकाशित कराते हैं, वे तुम लोगों को सदा सेवने योग्य हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे मेघ वा कूप जल से सिंचे हुए वन और उपवन बाग बगीचे अपने फलों से प्राणियों को सुखी करते हैं वैसे विद्वान् लोग विद्या और अच्छी शिक्षा करके अपने परिश्रम के फल से सब मनुष्यों को सुख संयुक्त करते हैं ॥ ३ ॥

अहा॑नि॒ गृध्राः॒ पर्या व॒ आगु॑रि॒मां धियं॑ वार्का॒र्यां॑ च दे॒वीम् ।
ब्रह्म॑ कृ॒ण्वन्तो॒ गोत॑मासो अ॒र्कैरू॒र्ध्वं नु॑नुद्र उत्स॒धिं पिब॑ध्यै ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (गृध्राः) सब प्रकार से अच्छी काङ्क्षा करने वाले (गोतमासः) अत्यन्त ज्ञानवान् सज्जन (ब्रह्म) धन अन्न और वेद का पठन (कृण्वन्तः) करते हुए (अर्कैः) वेदमन्त्रों से (अहनि) दिनों दिन (ऊर्ध्वम्) उत्कर्षता से (पिबध्यै) पीने के लिये (उत्सधिम्) जिस भूमि में कुएं नियत किये जावें उस के समान (आ+नुनुद्रे) सर्वथा उत्कर्ष होने के लिये (वः) तुम्हारे सामने होकर प्रेरणा करते हैं वे (वार्कार्य्याम्) जल के तुल्य निर्मल होने के योग्य (देवीम्) प्रकाश को प्राप्त होती हुई (इमाम्) इस (धियम्) धारणवती बुद्धि (च) और धन को (परि+आ+अगुः) सब कहीं से अच्छे प्रकार प्राप्त हो के अन्य को प्राप्त कराते हैं वे सदा सेवा के योग्य हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे ज्ञानगौरव चाहने वालो ! जैसे मनुष्य पिआस के खोने आदि प्रयोजनों के लिये परिश्रम के साथ कुंआ, बावरी, तलाव आदि खुदाकर अपने कामों को सिद्ध करते हैं वैसे आप लोग अत्यन्त पुरुषार्थ और विद्वानों के सङ्ग से विद्या के अभ्यास को जैसे चाहिये वैसा करके समस्त विद्या से प्रकाशित उत्तम बुद्धि को पाकर उसके अनुकूल क्रिया को सिद्ध करो ॥ ४ ॥

ए॒तत्त्यन्न योज॑नमचेति स॒स्वर्ह॒ यन्म॑रुतो॒ गोत॑मो वः ।
पश्य॒न् हिर॑ण्यचक्रा॒नयो॑दंष्ट्रान्वि॒धाव॑तो व॒राहू॑न् ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (मरुतः) मनुष्यो ! तुम (गोतमः) विद्वान् के (न) तुल्य (वः) विद्या का ज्ञान चाहने वाले तुम लोगों को (यत्) जो (योजनम्) जोड़ने योग्य विमान आदि यान (हिरण्यचक्रान्) जिन के पहियों में सोने का काम वा अति चमक दमक हो उन (अयोदंष्ट्रान्) बड़ी लोहे की कीलों वाले (वराहून्) अच्छे शब्दों को करने (विधावतः) न्यारे न्यारे मार्गों को चलने वाले विमान आदि रथों को (एतत्) प्रत्यक्ष (पश्यन्) देख के (ह) ही (सस्वः) उपदेश करता है (त्यत्) वह उसका उपदेश किया हुआ तुम लोगों को (अचेति) चेत कराता है उसको तुम जान के मानो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे अगली पिछली बातों को जानने वाला विद्वान् अच्छे अच्छे काम कर आनन्द को भोगता है वैसे आप लोग भी विद्या से सिद्ध हुए कामों को करके सुखों को भोगो ॥ ५ ॥

एषा स्या वो मरुतोऽनुभर्त्री प्रति ष्टोभति वाघतो न वाणी ।
अस्तोभयद्वृथासामनु स्वधां गभस्त्योः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (मरुतः) मनुष्यो ! तुम लोगों की जो (एषा) यह कही हुई वा (स्या) कहने को है वह (अनुभर्त्री) इष्ट सुख धारण कराने हारी (वाणी) वाक् (वाघतः) ऋतु ऋतु में यज्ञ करने कराने हारे विद्वान् के (न) समान विद्याओं का (प्रति+स्तोभति) प्रतिबन्ध करती अर्थात् प्रत्येक विद्याओं को स्थिर करती हुई (आसाम्) विद्या के कामों की (गभस्त्योः) भुजाओं में (अनु) (स्वधाम्) अपने साधारण सामर्थ्य के अनुकूल प्रतिबन्धन करती है तथा (वृथा) झूंठ व्यवहारों को (अस्तोभ्यत्) रोक देती है इस वाणी को आप लोगों से हम सुनें ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे ऋतु ऋतु में यज्ञ कराने वाले की वाणी यज्ञ कामों का प्रकाश कर दोषों को निवृत्त करती है वैसे ही विद्वानों की वाणी विद्याओं का प्रकाश कर अविद्या को निवृत्त करती है इसी से सब मनुष्यों को विद्वानों के सङ्ग का निरन्तर सेवन करना चाहिये ॥ ६ ॥

इस सूक्त में मनुष्यों को विद्यासिद्धि के लिये पढ़ने पढ़ाने की रीति प्रकाशित की है इसके अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है ॥

॥ यह अठासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

राहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । १ । ५ निचृज्जगती । २ । ३ । ७ जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ४ भुरिक् त्रिष्टुप् । ८ विराट् त्रिष्टुप् । ९ । १० त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ६ स्वराड् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः ।
देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥ १ ॥

पदार्थ—(यथा) जैसे जो (विश्वतः) सब ओर से (भद्राः) सुख करने और (क्रतवः) अच्छी क्रिया वा शिल्पयज्ञ में बुद्धि रखने वाले (अदब्धासः) अहिंसक (अपरीतासः) न त्याग के योग्य (उद्भिदः) अपने उत्कर्ष से दुःखों का विनाश करने वाले (अप्रायुवः) जिन की उमर का वृथा नाश होना प्रतीत न हो (देवाः) ऐसे दिव्यगुण वाले विद्वान् लोग जैसे (नः) हम लोगों को (सदम्

विज्ञान घर को (आ+यन्तु) अच्छे प्रकार पहुँचावें वैसे (दिवेदिवे) प्रतिदिन (नः) हमारे (वृधे) सुख के बढ़ाने के लिये (रक्षितारः) रक्षा करने वाले (इत्) ही (असन्) हों ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सब श्रेष्ठ सब ऋतुओं में सुख देने योग्य घर सब सुखों को पहुंचाता है वैसे ही विद्वान्, लोग विद्या और शिल्पयज्ञ सुख करने वाले होते हैं यह जानना चाहिये ॥ १ ॥

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभि नो नि वर्तताम् ।
देवानां सख्यमुप सेदिमा वयं देवा न आयुः प्र तिरन्तु जीवसे ॥२॥

पदार्थ—(वयम्) हम लोग जो (ऋजूयताम्) अपने को कोमलता चाहते हुए (देवानाम्) विद्वान् लोगों की (भद्रा) सुख करने वाली (सुमतिः) श्रेष्ठ बुद्धि वा जो अपने को निरभिमानता चाहने वाले (देवानाम्) दिव्य गुणों की (रातिः) विद्या का दान और जो अपने को सरलता चाहते हुए (देवानाम्) दया से विद्या की वृद्धि करना चाहते हैं उन विद्वानों का जो सुख देने वाला (सख्यम्) मित्रपन है यह सब (नः) हमारे लिये (अभि+नि+वर्त्तताम्) सम्मुख नित्य रहे। और उक्त समस्त व्यवहारों को (उप+सेदिम) प्राप्त हों। और उक्त जो (देवाः) विद्वान् लोग हैं वे (नः) हम लोगों के (जीवसे) जीवन के लिये (आयुः) उमर को (प्र+तिरन्तु) अच्छी शिक्षा से बढ़ावें ॥ २ ॥

भावार्थ—उत्तम विद्वानों के सङ्ग और ब्रह्मचर्य्य आदि नियमों के विना किसी का शरीर और आत्मा का बल बढ़ नहीं सकता इससे सब को चाहिये कि इन विद्वानों का सङ्ग नित्य करें और जितेन्द्रिय रहें ॥ २ ॥

तान्पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम् ।
अर्य्यमणं वरुणं सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (वयम्) हम लोग (पूर्वया) सनातन (निविदा) वेदवाणी जिससे सब प्रकार से निश्चित किये हुए पदार्थों को प्राप्त होते हैं उस से कहे हुए वा जिन को कहेंगे (तान्) उन सब विद्वानों को वा (अस्रिधम्) अहिंसक अर्थात् जो हिंसा नहीं करता उस (भगम्) ऐश्वर्ययुक्त (मित्रम्) सब का मित्र (अदितिम्) समस्त विद्याओं का प्रकाश (दक्षम्) और उनकी चतुराइयों वाला विद्वान् (अर्य्यमणम्) न्यायकारी (वरुणम्) उत्तमगुणयुक्त दुष्टों का बन्धन-कर्त्ता (सोमम्) सृष्टि के क्रम से सब पदार्थों का निचोड़ करने वाला तथा जो शान्तचित्त है उस (अश्विना) विद्या के पढ़ने पढ़ाने का काम रखने वाले वा जल और आग दो दो पदार्थों को (हूमहे) स्तुति करते हैं और जो संग से उत्पन्न हुई

(सरस्वती) विद्या और (सुभगा) श्रेष्ठ शिक्षा से युक्त वाणी (नः) हम लोगों को (मयः) सुख (करन्) करें वैसे तुम भी करो और वाणी तुम्हारे लिये भी वैसे कहें ॥ ३ ॥

भावार्थ—किसी से वेदोक्त लक्षणों के विना विद्वान् और मूर्खों के लक्षण जाने नहीं जा सकते और न उनके विना विद्या और श्रेष्ठ शिक्षा से सिद्ध की हुई वाणी सुख करने वाली हो सकती है इस से सब मनुष्य वेदार्थ के विशेष ज्ञान से विद्वान् और मूर्खों के लक्षण जानकर विद्वानों का सङ्ग कर मूर्खों का सङ्ग छोड़ के समस्त विद्या वाले हों ॥ ३ ॥

तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः ।
तद् ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ॥४॥

पदार्थ—हे (धिष्ण्या) शिल्पविद्या के उपदेश करने और (अश्विना) पढ़ने पढ़ाने वालो ! (युवम्) तुम दोनों जो (शृणुतम्) सुनो (तत्) उस (मयोभु) सुखदायक उत्तम (भेषजम्) सब दुःखों को दूर करने हारी ओषधि को (नः) हम लोगों के लिये (वातः) पवन के तुल्य वैद्य (वातु) प्राप्त करे वा (पृथिवी) विस्तारयुक्त भूमि जो कि (माता) माता के समान मान सम्मान देने की निदान है वह (तत्) उस मान कराने हारे जिससे कि अत्यन्त सुख होता और समस्त दुःख की निवृत्ति होती है ओषधि को प्राप्त करावे वा (द्यौः) प्रकाशमय सूर्य्य (पिता) पिता के तुल्य जो कि रक्षा का निदान है वह (तत्) उस रक्षा कराने हारे जिस सेकि समस्त दुःख की निवृत्ति होती है ओषधि को प्राप्त करे वा (सोमसुतः) ओषधियों का रस जिन से निकाला जाय (तत्) वह कर्म तथा (ग्रावाणः) मेघ आदि पदार्थ (तत्) जो उस से रस का निकालना वा जो (मयोभुवः) सुख के कराने हारे उक्त पदार्थ हैं वे (तत्) उस क्रियाकुशलता और अत्यन्त दुःख की निवृत्ति कराने वाले ओषधि को प्राप्त करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—शिल्पविद्या की उन्नति करने हारे जो उसके पढ़ने पढ़ाने हारे विद्वान् हैं वे जितना पढ़ के समझें उतना यथार्थ सब के सुख के लिये नित्य प्रकाशित करें जिससे हम लोग ईश्वर की सृष्टि के पवन आदि पदार्थों से अनेक उपकारों को लेकर सुखी हों ॥ ४ ॥

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! (यथा) जैसे (पूषा) पुष्टि करने वाला परमेश्वर (नः) हम लोगों के (वेदसाम्) विद्या आदि धनों की (वृद्ध) वृधि के लिये

(रक्षिता) रक्षा करने वाला (स्वस्तये) सुख के लिये (अदब्धः) अहिंसक अर्थात् जो हिंसा में प्राप्त न हुआ हो (पूषा) सब प्रकार की पुष्टि का दाता और (पायुः) सब प्रकार से पालना करने वाला (असत्) होवे वैसे तू हो जैसे (वयम्) हम (अवसे) रक्षा के लिये (तम्) उस सृष्टि का प्रकाश करने (जगतः) जङ्गम और (तस्थुषः) स्थावरमात्र जगत् के (पतिम्) पालने हारे (धियम्) समस्त पदार्थों का चिन्तनकर्त्ता (जिन्वम्) सुखों से तृप्त करने (ईशानम्) समस्त सृष्टि की विद्या के विधान करनेहारे ईश्वर को (हूमहे) आवाहन करते हैं वैसे तू भी कर ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । मनुष्यों को चाहिये कि वैसा अपना व्यवहार करें कि जैसा ईश्वर के उपदेश के अनुकूल हो और जैसे ईश्वर सब का अधिपति है वैसे मनुष्यों को भी सदा उत्तम विद्या और शुभ गुणों की प्राप्ति और अच्छे पुरुषार्थ से सब पर स्वामिपन सिद्ध करना चाहिये और जैसे ईश्वर विज्ञान से पुरुषार्थयुक्त सब सुखों को देने संसार की उन्नति और सब की रक्षा करने वाला सब के सुख के लिये प्रवृत्त हो रहा है वैसे ही मनुष्यों को भी होना चाहिये ॥ ५ ॥

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ६ ॥

पदार्थ—(वृद्धश्रवाः) संसार में जिसकी कीर्ति वा अन्न आदि सामग्री अति उन्नति को प्राप्त है वह (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (नः) हम लोगों के लिये (स्वस्ति) शरीर के सुख को (दधातु) धारण करावे (विश्ववेदाः) जिस को संसार का विज्ञान और जिसका सब पदार्थों में स्मरण है वह (पूषा) पुष्टि करने वाला परमेश्वर (नः) हम लोगों के लिये (स्वस्ति) धातुओं की समता के सुख को धारण करावे जो (अरिष्टनेमिः) दुखों का वज्र के तुल्य विनाश करने वाला (तार्क्ष्यः) और जानने योग्य परमेश्वर है वह (नः) हम लोगों के लिये (स्वस्ति) इन्द्रियों की शान्तिरूप सुख को धारण करावे और जो (बृहस्पतिः) वेदवाणी का प्रभु परमेश्वर है वह (नः) हम लोगों को (स्वस्ति) विद्या से आत्मा के सुख को धारण करावे ॥ ६ ॥

भावार्थ—ईश्वर की प्रार्थना और अपने पुरुषार्थ के विना किसी को शरीर इन्द्रिय और आत्मा का परिपूर्ण सुख नहीं होता इससे उस का अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये ॥ ६ ॥

पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः ।
अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (शुभंयावानः) जो श्रेष्ठ व्यवहार की प्राप्ति कराने (अग्निजिह्वाः) और अग्नि को हवनयुक्त करने वाले (मनवः) विचारशील (सूरचक्षसः) जिन के प्राण और सूर्य में प्रसिद्ध वचन वा दर्शन है (पृषदश्वाः) सेना में रङ्ग विरङ्ग घोड़ों से युक्त पुरुष (विदथेषु) जो कि संग्राम वा यज्ञों में (जग्मथः) जाते हैं वे (विश्वे) समस्त (देवाः) विद्वान् लोग (इह) इस संसार में (नः) हम लोगों को (अवसा) रक्षा आदि व्यवहारों के साथ (पृश्निमातरः) आकाश से उत्पन्न होने वाले (मरुतः) पवनों के तुल्य (आ+अगमन्) आवें प्राप्त हुआ करें॥ ७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे बाहर और भीतरले पवन सब प्राणियों के सुख के लिये प्राप्त होते हैं वैसे विद्वान् लोग सब के सुख के लिये प्रवृत्त होवें॥ ७॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥ ८॥

पदार्थ—हे (यजत्राः) संगम करने वाले (देवाः) विद्वानो ! आप लोगों के संग से (तनूभिः) बढ़े हुए बलों वाले शरीर (स्थिरैः) दृढ़ (अङ्गैः) पुष्ट शिर आदि अङ्ग वा ब्रह्मचर्य्यादि नियमों से (तुष्टुवांसः) पदार्थों के गुणों की स्तुति करते हुए हम लोग (कर्णेभिः) कानों से (यत्) जो (भद्रम्) कल्याणकारक पढ़ना पढ़ाना है उस को (शृणुयाम) सुनें सुनावें (अक्षभिः) बाहरी भीतरली आंखों से जो (भद्रम्) शरीर और आत्मा का सुख है उस को (पश्येम) देखें इस प्रकार उक्त शरीर और अङ्गों से जो (देवहितम्) विद्वानों की हित करने वाली (आयुः) अवस्था है उस को (वि+अशेम) वार वार प्राप्त होवें॥ ८॥

भावार्थ—विद्वान् आप्त और सज्जनों के संग के विना कोई सत्य विद्या का वचन सत्य-दर्शन और सत्य-व्यवहारमय अवस्था को नही पा सकता और न इन के विना किसी का शरीर और आत्मा दृढ़ हो सकता है इस से सब मनुष्यों को यह उक्त व्यवहार वर्त्तना योग्य है॥ ८॥

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः॥ ९॥

पदार्थ—हे (अन्ति) विद्या आदि सुख साधनों से जीवने वाले (देवाः) विद्वानो ! तुम (यत्र) जिस सत्य व्यवहार में (तनूनाम्) अपने शरीरों के (शतम्) सौ (शरदः) वर्ष (जरसम्) वृद्धापन का (चक्र) व्यतीत कर सको (यत्र) जहां (नः) हमारे (मध्या) मध्य में (पुत्रासः) पुत्र लोग

(इत्) ही (पितरः) अवस्था और विद्या से युक्त वृद्ध (नु) शीघ्र (भवन्ति) होते हैं उस (आयुः) जीवन को (गन्तोः) प्राप्त होने को प्रवृत्त हुए (नः) हम लोगों को शीघ्र (मारीरिषत) नष्ट मत कीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—जिस विद्या में बालक भी वृद्ध होते वा जिस शुभ आचरण में वृद्धावस्था होती है वह सब व्यवहार विद्वानों के संग ही से हो सकता है और विद्वानों को चाहिये कि यह उक्त व्यवहार सब को प्राप्त करावें ॥ ९॥

अदि॑ति॒र्द्यौरदि॑तिर॒न्तरि॑क्ष॒मदि॑तिर्मा॒ता स पि॒ता स पु॒त्रः ।
विश्वे॑ दे॒वा अदि॑तिः॒ पञ्च॒ जना॒ अदि॑तिर्जा॒तमदि॑ति॒र्जनि॑त्वम् ॥ १० ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम को चाहिये कि (द्यौः) प्रकाशयुक्त परमेश्वर वा सूर्य आदि प्रकाशमय पदार्थ (अदितिः) अविनाशी (अन्तरिक्षम्) आकाश (अदितिः) अविनाशी (माता) मा वा विद्या (अदितिः) अविनाशी (सः) वह (पिता) उत्पन्न करने वा पालने हारा पिता (सः) वह (पुत्रः) औरस अर्थात् निज विवाहित पुरुष से उत्पन्न वा क्षेत्रज अर्थात् नियोग करके दूसरे से क्षेत्र में हुआ वा विद्या से उत्पन्न पुत्र (अदितिः) अविनाशी है तथा (विश्व) समस्त (देवाः) विद्वान् वा दिव्य गुण वाले पदार्थ (अदितिः) अविनाशी हैं (पञ्च) पांचों ज्ञानेन्द्रिय और (जनाः) जीव भी (अदितिः) अविनाशी हैं इस प्रकार जो कुछ (जातम्) उत्पन्न हुआ वा (जनित्वम्) होने हारा है वह सब (अदितिः) अविनाशी अर्थात् नित्य है ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में परमाणुरूप वा प्रवाहरूप से सब पदार्थ नित्य मानकर दिव् आदि पदार्थों की अदिति संज्ञा की है जहां जहां वेद में अदिति शब्द पढ़ा है वहां वहां प्रकरण की अनुकूलता से दिव् आदि पदार्थों में से जिस जिस की योग्यता हो उस उस का ग्रहण करना चाहिये । ईश्वर जीव और प्रकृति अर्थात् जगत् का कारण इनके अविनाशी होने से उस की भी अदिति संज्ञा है ॥ १० ॥

इस सूक्त में विद्वान् विद्यार्थी और प्रकाशमय पदार्थों का विश्वे देव पद के अन्तर्गत होने से वर्णन किया है इससे इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है, ऐसा जानना चाहिये ॥

यह उनासीवां सूक्त समाप्त हुआ ।

———

रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । १ । ८ पिपीलिकमध्या निचृद्गायत्री । २ । ७ । गायत्री । ३ पिपीलिकामध्या विराड् गायत्री । ४ । विराड् गायत्री । ५ । ६ निचृद्गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः । ९ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । गान्धार स्वरः ॥

ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान् । अर्यमा देवैः सजोषाः ॥१॥

पदार्थ—जैसे परमेश्वर धार्मिक मनुष्यों को धर्म प्राप्त कराता है वैसे (**देवैः**) दिव्य गुण, कर्म और स्वभाव वाले विद्वानों से (**सजोषाः**) समान प्रीति करने वाला (**वरुणः**) श्रेष्ठ गुणों में वर्त्तने (**मित्रः**) सब का उपकारी और (**अर्यमा**) न्याय करने वाला (**विद्वान्**) धर्मात्मा सज्जन विद्वान् (**ऋजुनीती**) सीधी नीति से (**नः**) हम लोगों को धर्मविद्यामार्ग को (**नयतु**) प्राप्त करावें ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । परमेश्वर वा आप्त मनुष्य सत्यविद्या के ग्राहकस्वभाववाले पुरुषार्थी मनुष्य को उत्तम धर्म और उत्तम क्रियाओं को प्राप्त कराता है और को नहीं ॥ १ ॥

ते हि वस्वो वसवानास्तेअप्रमूरा महोभिः । व्रता रक्षन्ते विश्वाहा ॥२॥

पदार्थ—(**ते**) वे पूर्वोक्त विद्वान् लोग (**वसवानाः**) अपने गुणों से सब को ढांपते हुए (**हि**) निश्चय से (**महोभिः**) प्रशंसनीय गुण और कर्मों से (**विश्वाहा**) सब दिनों में (**वस्वः**) धन आदि पदार्थों की (**रक्षन्ते**) रक्षा करते हैं तथा जो (**अप्रमूराः**) मूढ़त्वप्रमादरहित धार्मिक विद्वान् हैं (**ते**) वे प्रशंसनीय गुण कर्मों से सब दिन (**व्रता**) सत्यपालन आदि नियमों को रखते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—विद्वानों के विना किसी से धन और धर्मयुक्त आचार रक्खे नहीं जा सकते इससे सब मनुष्यों को नित्य विद्याप्रचार करना चाहिये जिससे सब मनुष्य विद्वान् होके धार्मिक हों ॥ २ ॥

ते अस्मभ्यं शर्म यंसन्नमृता मर्त्येभ्यः । बाधमाना अप द्विषः ॥ ३ ॥

पदार्थ—जो (**द्विषः**) दुष्टों को (**अप, बाधमानाः**) दुर्गति के साथ निवारण करते हुए (**अमृताः**) जीवनमुक्त विद्वान् हैं (**ते**) वे (**मर्त्येभ्यः**) (**अस्मभ्यम्**)अस्मदादि मनुष्यों के लिये (**शर्म**) सुख (**यंसन्**) देवें ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि कि विद्वानों से शिक्षा को पाकर खोटे स्वभाव वालों को दूर कर नित्य आनन्दित हों ॥ ३ ॥

वि नः पथः सुवितायं चियन्त्विन्द्रो मरुतः । पूषा भगो वन्द्यासः ॥४॥

पदार्थ—जो (**इन्द्रः**) विद्या और ऐश्वर्ययुक्त वा (**पूषा**) दूसरे का

पोषण पालन करने वाला (भगः) और उत्तम भाग्यशाली (वन्द्यासः) स्तुति और सत्कार करने योग्य (मरुतः) मनुष्य हैं वे (नः) हम लोगों को (सुविताय) ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (पथः) उत्तम मार्गों को (वि, चियन्तु) नियत करें ॥४॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों से ऐश्वर्य पुष्टि और सौभाग्य पाकर उस सौभाग्य की योग्यता को औरों को भी प्राप्त करावें ॥ ४ ॥

उत नो धियो गोअग्राः पूषन् विष्णवेवयावः । कर्त्ता नः स्वस्तिमतः ॥५॥

पदार्थ—हे (पूषन्) विद्या और उत्तम शिक्षा से पोषण करने वा (विष्णो) समस्त विद्याओं में व्यापक होने (एवयावः) वा जिस से सब व्यवहार को उस अगाध बोध को प्राप्त होने वाले विद्वान् लोगो ! तुम (नः) हम लोगों के लिये (गोअग्राः) इन्द्रिय अग्रगामी जिन में हों उन (धियः) उत्तम बुद्धि वा उत्तम कर्मों को (कर्त्त) प्रसिद्ध करो (उत) उस के पश्चात् (नः) हम लोगों को (स्वस्तिमतः) सुखयुक्त करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—पढ़ने वालों को चाहिये कि पढ़ाने वाले जैसी विद्या की शिक्षा करें वैसे उनका ग्रहण कर अच्छे विचार से नित्य उनकी उन्नति करें ॥ ५ ॥

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥६॥

पदार्थ—हे पूर्ण विद्या वाले विद्वानो ! जैसे तुम्हारे लिये और (ऋतायते) अपने को सत्य व्यवहार चाहने वाले पुरुष के लिये (वाताः) वायु (मधु) मधुरता और (सिन्धवः) समुद्र वा नदियां (मधु) मधुर गुण को (क्षरन्ति) वर्षा करती हैं वसे (नः) हमारे लिये (ओषधीः) सोमलता आदि ओषधि (माध्वीः) मधुर गुण के विशेष ज्ञान कराने वाली (सन्तु) हों ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे पढ़ाने वालो ! तुम और हम ऐसा अच्छा यत्न करें कि जिससे सृष्टि के पदार्थों से समग्र आनन्द के लिये विद्या करके उपकारों को ग्रहण कर सकें ॥ ६ ॥

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥७॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जैसे (नः) हम लोगों के लिये (नक्तम्) रात्रि (मधु) मधुर (उषसः) दिन मधुर गुण वाले (पार्थिवम्) पृथिवी में (रजः) अणु और त्रसरेणु आदि छोटे छोटे भूमि के कण के (मधुमत्) मधुरगुणों से युक्त सुख करने वाले (उत) और (पिता) पालन करने वाली (द्यौः) सूर्य्य की कान्ति (मधु) मधुर गुण वाली (अस्तु) हो वैसे तुम लोगों के लिये भी हो ॥ ७ ॥

भावार्थ—पढ़ाने वाले लोगों से जैसे मनुष्यों के लिये पृथिवीस्थ पदार्थ

आनन्ददायक हों । वैसे सब मनुष्यों को गुण ज्ञान और हस्तक्रिया से विद्या का उपयोग करना चाहिये ॥ ७ ॥

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥८॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जैसे (नः) हम लोगों के लिये (मधुमान्) जिस में प्रशंसित मधुर सुख है ऐसा (वनस्पतिः) वनों में रक्षा के योग्य वट आदि वृक्षों का समूह वा मेघ और (सूर्यः) ब्रह्माण्डों में स्थिर होने वाला सूर्य वा शरीरों में ठहरने वाला प्राण (मधुमान्) जिस में मधुर गुणों का प्रकाश है ऐसा (अस्तु) हो तथा (नः) हम लोगों के हित के लिये (गावः) सूर्य की किरणें (माध्वीः) मधुर गुणवाली (भवन्तु) होवें वैसी तुम लोग हम को शिक्षा करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे विद्वान् लोगो ! तुम और हम आओ मिल के ऐसा पुरुषार्थ करें कि जिससे हम लोगों के सब काम सिद्ध होवें ॥ ८ ॥

शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्य्यमा ।
शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ ९ ॥

पादर्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हमारे लिये (उरुक्रमः) जिस के बहुत पराक्रम हैं वह (मित्रः) सब का सुख करने वाला (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुखकारी वा जिस के बहुत पराक्रम हैं वह (वरुणः) सब में अति उन्नति वाला हम लोगों के लिये (शम्) शान्ति सुख का देने वाला वा जिस के बहुत पराक्रम हैं वह (अर्य्यमा) न्याय करने वाला (नः) हम लोगों के लिये (शम्) आरोग्य सुख का देने वाला जिस के बहुत पराक्रम हैं वह (बृहस्पतिः) महत् वेदविद्या का पालने वाला वा जिस के बहुत पराक्रम हैं वह (इन्द्रः) परमैश्वर्य देने वाला (नः) हम लोगों के लिये (शम्) ऐश्वर्य सुखकारी वा जिस के बहुत पराक्रम हैं वह (विष्णुः) सब गुणों में व्याप्त होने वाला परमेश्वर तथा उक्त गुणों वाला विद्वान् सज्जन पुरुष (नः) हम लोगों के लिये पूर्वोक्त सुख और (शम्) विद्या में सुख देने वाला (भवतु) हो ॥ ९ ॥

भावार्थ—परमेश्वर के समान मित्र उत्तम न्याय का करने वाला ऐश्वर्य्यवान् बड़े बड़े पदार्थों का स्वामी तथा व्यापक सुख देने वाला और विद्वान् के समान प्रेम उत्पादन करने धार्मिक सत्य व्यवहार वर्त्तने विद्या आदि धनों को देने और विद्या पालने वाला शुभ गुण और सत्कर्मों में व्याप्त महापराक्रमी कोई नहीं हो सकता। इससे सब मनुष्यों को चाहिये कि परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना, उपासना निरन्तर विद्वानों की सेवा और संग करके नित्य आनन्द में रहें ॥ ९ ॥

इस सूक्त में पढ़ने पढ़ाने वालों के और ईश्वर के कर्त्तव्य काम तथा उन के फल का कहना है इससे इस सूक्त के अर्थ के साथ पिछले सूक्त के अर्थ की संगति जाननी चाहिये ।

यह नब्बेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः । सोमो देवता । १।३।४ स्वराट् पङ्क्तिः । २ पङ्क्तिः । १८ । २० भुरिक्पङ्क्तिः । २२ विराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ५ पादनिचृद्गायत्री । ६ । ८ । ९ । ११ निचृद्गायत्री । ७ वर्धमाना गायत्री । १० । १२ गायत्री १३ । १४ विराड्गायत्री । १५ । १६ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः । १७ परोष्णिक्छन्दः । ऋषभ : स्वरः १९ । २१ । २३ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

त्वं सो॑म॒ प्र चि॑कितो मनी॒षा त्वं रजि॑ष्ठ॒मनु॑ नेषि॒ पन्था॑म् ।
तव॒ प्रणी॑ती पि॒तरो॑ न इन्दो दे॒वेषु॒ रत्न॑मभजन्त॒ धीराः॑ ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (इन्दो) सोम के समान (सोम) समस्त ऐश्वर्य्ययुक्त (त्वम्) परमेश्वर वा अति-उत्तम विद्वान् ! जिस (मनीषा) मन को वश में रखने वाली बुद्धि से (चिकितः) जानते हो वा (तव) आपकी (प्रणीती) उत्तम नीति से (धीराः) ध्यान और धैर्ययुक्त (पितरः) ज्ञानी लोग (देवेषु) विद्वान् वा दिव्य गुण कर्म और स्वभावों में (रत्नम्) अत्युत्तम धन को (प्र) (अभजन्त) सेवते हैं उससे शान्तिगुणयुक्त आप (नः) हम लोगों को (रजिष्ठम्) अत्यन्त सीधे (पन्थाम्) मार्ग को (अनु) अनुकूलता से (नेषि) पहुँचाते हो इससे (त्वम्) आप हमारे सत्कार के योग्य हो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जैसे परमेश्वर अत्यन्त उत्तम विद्वान् अविद्या विनाश करके विद्या और धर्ममार्ग को पहुंचाता है वैसे ही वैद्यकशास्त्र की रीति से सेवा किया हुआ सोम आदि ओषधियों का समूह सब रोगों का विनाश करके सुखों को पहुँचाता है ॥ १ ॥

त्वं सो॑म॒ क्रतु॑भिः सु॒क्रतु॑र्भू॒स्त्वं दक्षैः॑ सु॒दक्षो॑ वि॒श्ववे॑दाः ।
त्वं वृषा॑ वृष॒त्वेभि॑र्महि॒त्वा द्यु॒म्नेभि॑र्द्यु॒म्न्य॑भवो नृ॒चक्षाः॑ ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (सोम) शान्ति गुणयुक्त परमेश्वर वा उत्तम विद्वान् ! जिस कारण (त्वम्) आप (क्रतुभिः) उत्तम बुद्धि कर्मों से (सुक्रतुः) श्रेष्ठ बुद्धिशाली

वा श्रेष्ठ काम करने वाले तथा (दक्षैः) विज्ञान आदि गुणों से (सुदक्षः) अति श्रेष्ठ ज्ञानी (विश्ववेदाः) और सब विद्या पाये हुए (भूः) होते हैं वा जिस कारण (त्वम्) आप (महित्वा) बड़े बड़े गुणों वाले होने से (वृषत्वेभिः) विद्यारूपी सुखों की (वृषा) वर्षा और (द्युम्नेभिः) कीर्ति और चक्रवर्त्ति आदि राज्य धनों से (द्युम्नी) प्रशसित धनी (नृचक्षाः) मनुष्यों में दर्शनीय (अभवः) होते हो इससें (त्वम्) आप सब में उत्तम उत्कर्षयुक्त हूजिये ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जैसे अच्छी रीति से सेवा किया हुआ सोम आदि ओषधियों का समूह बुद्धि चतुराई वीर्य और धनों को उत्पन्न कराता है वैसे ही अच्छी उपासना को प्राप्त हुआ ईश्वर वा अच्छी सेवा को प्राप्त हुआ विद्वान् उक्त कामों को उत्पन्न कराता है ॥ २ ॥

राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद्गभीरं तव सोम धाम ।
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम ॥३॥

पदार्थ—हे (सोम) महा ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर वा विद्वान् ! जिससे (त्वम्) आप (प्रियः) प्रसन्न (मित्रः) मित्र के (न) तुल्य (शुचिः) पवित्र और पवित्रता करने वाले (असि) हैं तथा (अर्यमेव) यथार्थ न्याय करने वाले के समान (दक्षाय्यः) विज्ञान करने वाले (असि) हैं। हे (सोम) शुभ कर्म और गुणों में प्रेरणे वाले (वरुणस्य) श्रेष्ठ (राज्ञः) सब जगत् के स्वामी वा विद्या-प्रकाशयुक्त ! (ते) आप के (व्रतानि) सत्यप्रकाश करने वाले काम हैं जिस से (तव) आपका (बृहत्) बड़ा (गभीरम्) अत्यन्त गुणों से अथाह (धाम) जिस में पदार्थ धरे जायें वह स्थान है इस से आप (नु) शीघ्र और सदा उपासना और सेवा करने योग्य हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार है। मनुष्य जैसे जैसे इस सृष्टि में सृष्टि की रचना के नियमों से ईश्वर के गुण कर्म और स्वभावों को देख के अच्छे यत्न को करें वैसे वैसे विद्या और सुख उत्पन्न होते हैं ॥३॥

या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेळन् राजन्त्सोम प्रति हव्या गृभाय ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (सोम) सब को उत्पन्न करने वाले (राजन्) राजा ! (ते) आप के (या) जो (धामानि) नाम, जन्म और स्थान (दिवि) प्रकाशमय सूर्य्य आदि पदार्थ वा दिव्य व्यहार में वा (या) जो (पृथिव्याम्) पृथिवी में वा (या) जो (पर्वतेषु) पर्वतों वा (ओषधीषु) ओषधियों वा (अप्सु) जलों में हैं (तेभिः) उन (विश्वैः) सब से (अहेडन्) अनादर न करते हुए (सुमनाः)

उत्तम ज्ञान वाले आप (हव्याः) देने लेने योग्य कामों को (नः) हम को (प्रति+गृभाय) प्रत्यक्ष ग्रहण कराइये ॥ ४ ॥

भावार्थ—जैसे जगदीश्वर अपनी रची सृष्टि में वेद के द्वारा इस सृष्टि के कामों को दिखाकर सब विद्याओं का प्रकाश करता है वैसे ही विद्वान् पढ़े हुए अङ्ग और उपाङ्ग सहित वेदों से हस्त क्रिया के साथ कलाओं की चतुराई को दिखाकर सब को समस्त विद्या का ग्रहण करावें ॥ ४ ॥

त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा । त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥५॥

पदार्थ—हे (सोम) समस्त संसार के उत्पन्न करने वा सब विद्याओं के देने वाले ! (त्वम्) परमेश्वर वा पाठशाला आदि व्यवहारों के स्वामी विद्वान् आप (सत्पतिः) अविनाशी जो जगत् कारण का विद्यमान कार्य्य जगत् है उस के पालने हारे (असि) हैं (उत) और (त्वम्) आप (वृत्रहा) दुःख देने वाले दुष्टों के विनाश करने हारे (राजा) सब के स्वामी विद्या के अध्यक्ष हैं वा जिस कारण (त्वम्) आप (भद्रः) अत्यन्त सुख करने वाले हैं वा (क्रतुः) समस्त बुद्धियुक्त वा बुद्धि देने वाले (असि) हैं इसी से आप सब विद्वानों के सेवने योग्य हैं ॥ १ ॥ द्वितीय–(सोम) सब ओषधियों का गुणदाता सोम ओषधि (त्वम्) यह ओषधियों में उत्तम (सत्पतिः) ठीक ठीक पथ्य करने वाले जनों की पालना करने हारा है (उत) और (त्वम्) यह सोम (वृत्रहा) मेघ के समान दोषों का नाशक (राजा) रोगों के विनाश करने के गुणों का प्रकाश करने वाला है वा जिस कारण (त्वम्) यह (भद्रः) सेवने के योग्य वा (क्रतुः) उत्तम बुद्धि का हेतु है इसीसे वह सब विद्वानों के सेवने के योग्य है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । परमेश्वर विद्वान् सोमलता आदि ओषधियों का समूह ये समस्त ऐश्वर्य को प्रकाश करने, श्रेष्ठों की रक्षा करने और उन के स्वामी, दुःख का विनाश करने, और विज्ञान के देने हारे और कल्याणकारी हैं ऐसा अच्छी प्रकार जान के सब को इन का सेवन करना योग्य है ॥ ५ ॥

त्वं च सोम नो वशो जीवातुं न मरामहे । प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ॥६॥

पदार्थ—हे (सोम) श्रेष्ठ कामों से प्रेरणा देने हारे परमेश्वर वा श्रेष्ठ कामों में प्रेरणा देता जो (त्वम्) सो यह (च) और आप (नः) हम लोगों के (जीवातुम्) जीवन को (वशः) वश होने के गुणों का प्रकाश करने वा (प्रियस्तोत्रः) जिन के गुणों का कथन प्रेम करने कराने वाला है वा (वनस्पतिः) सेवनीय पदार्थों की पालना करने हारे वा यह सोम जङ्गली ओषधियों में अत्यन्त श्रेष्ठ है

इस व्यवस्था से इन दोनों को जान कर हम लोग शीघ्र (न) (मरामहे) अकाल-मृत्यु और अनायास मृत्यु न पावें ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जो मनुष्य ईश्वर की आज्ञा पालने हारे विद्वानों और ओषधियों का सेवन करते हैं वे पूरी आयुर्दा पाते हैं ॥ ६ ॥

त्वं सोम महे भगं त्वं यून ऋतायते। दक्षं दधासि जीवसे ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (**सोम**) परमेश्वर वा सोम अर्थात् ओषधियों का समूह (**त्वम्**) विद्या और सौभाग्य के देने हारे आप वा यह सोम (**ऋतायते**) अपने को विशेष ज्ञान की इच्छा करने हारे (**महे**) अति उत्तम गुण युक्त (**यूने**) ब्रह्मचर्य्य और विद्या से शरीर और आत्मा की तरुण अवस्था को प्राप्त हुए ब्रह्मचारी के लिये (**भगम्**) विद्या और धनराशि तथा (**त्वम्**) आप (**जीवसे**) जीने के अर्थ (**दक्षम्**) बल को (**दधासि**) धारण कराने से सब को चाहने योग्य हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को परमेश्वर विद्वान् और ओषधियों के सेवन के बिना सुख होने को योग्य नहीं है इससे यह आचरण सब को नित्य करने योग्य है ॥ ७ ॥

त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः।
न रिष्येत् त्वावतः सखा ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (**सोम**) सब के मित्र वा मित्रता देने वाला (**त्वम्**) आप वा यह ओषधिसमूह (**विश्वतः**) समस्त (**अघायतः**) अपने को दोष की इच्छा करते हुए वा दोषकारी से (**नः**) हम लोगों की (**रक्ष**) रक्षा कीजिये वा यह ओषधि-राज रक्षा करता है, हे (**राजन्**) सब की रक्षा का प्रकाश करने वाले ! (**त्वावतः**) तुम्हारे समान पुरुष का (**सखा**) कोई मित्र (**न**) न (**रिष्येत्**) विनाश को प्राप्त होवे वा सब का रक्षक जो ओषधिगण इस के समान ओषधि का सेवने वाला पुरुष विनाश को न प्राप्त होवे ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को इस प्रकार ईश्वर की प्रार्थना करके उत्तम यत्न करना चाहिये कि जिससे धर्म के छोड़ने और अधर्म के ग्रहण करने को इच्छा भी न उठे। धर्म और अधर्म की प्रवृत्ति में मन की इच्छा ही कारण है उस की प्रवृत्ति और उसके रोकने से कभी धर्म का त्याग और अधर्म का ग्रहण उत्पन्न न हो ॥ ८ ॥

सोम यास्ते मयोभुव ऊतयः सन्ति दाशुषे। ताभिर्नोऽविता भव ॥९॥

पदार्थ—हे (**सोम**) परमेश्वर ! (**याः**) जो (**ते**) आप की वा सोम

आदि ओषधिगण की (मयोभुवः) सुख को उत्पन्न करने वाली (ऊतयः) रक्षा आदि क्रिया (दाशुषे) दानी मनुष्य के लिये (सन्ति) हैं (ताभिः) उन से (नः) हम लोगों के (अविता) रक्षा आदि के करने वाले (भव) हूजिये वा जो यह ओषधिगण होता है इन का उपयोग हम लोग सदा करें ॥ ९ ॥

भावार्थ—जिन प्राणियों की परमेश्वर, विद्वान् और अच्छी सिद्ध की हुई ओषधि रक्षा करने वाली होती हैं वे कहां से दुःख देखें ॥ ९ ॥

इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि ।
सोम त्वं नो वृधे भव ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (सोम) परमेश्वर वा विद्वन् ! जिससे (इमम्) इस (यज्ञम्) विद्या की रक्षा करने वाले वा शिल्प कर्मों से सिद्ध किये हुए यज्ञ को तथा (इदम्) इस विद्या और धर्मसंयुक्त (वचः) वचन को (जुजुषाणः) प्रीति से सेवन करते हुए (त्वम्) आप (उपागहि) समीप प्राप्त होते हैं वा यह सोम आदि ओषधिगण समीप प्राप्त होता है (नः) हम लोगों की (वृधे) वृद्धि के लिये (भव) हूजिये वा उक्त ओषधिगण होवे ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । जब विज्ञान से ईश्वर और सेवा तथा कृतज्ञता से विद्वान् वैद्यकविद्या वा उत्तम क्रिया से ओषधियां मिलती हैं तब मनुष्यों के सब सुख उत्पन्न होते हैं ॥ १० ॥

सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्द्धयामो वचोविदः ।
सुमृळीको न आ विश ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (सोम) जानने योग्य गुण कर्म स्वभावयुक्त परमेश्वर ! जिस कारण (सुमृडीकः) अच्छे सुख के करने वाले वैद्य आप और सोम आदि ओषधिगण (नः) हम लोगों को (आ) (विश) प्राप्त हो इससे (त्वा) आप को और उस ओषधिगण को (वचोविदः) जानने योग्य पदार्थों को जानते हुए (वयम्) हम (गीर्भिः) विद्या से शुद्ध की हुई वाणियों से नित्य (वर्द्धयामः) बढ़ाते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । ईश्वर विद्वान् और ओषधि समूह के तुल्य प्राणियों को कोई सुख करने वाला नहीं है इससे उत्तम शिक्षा और विद्याऽध्ययन से उक्त पदार्थों के बोध की वृद्धि करके मनुष्यों को नित्य वैसे ही आचरण करना चाहिये ॥ ११ ॥

गयस्फानो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्धनः । सुमित्रः सोम नो भव ॥१२॥

पदार्थ—हे (**सोम**) परमेश्वर वा विद्वन् ! जिस कारण आप वा यह उत्तमौषध (**नः**) हम लोगों के (**गयस्फानः**) प्राणों के बढ़ाने वा (**अमीवहा**) अविद्या आदि दोषों तथा ज्वर आदि दुःखों के विनाश करने वा (**वसुवित्**) द्रव्य आदि पदार्थों के ज्ञान कराने वा (**सुमित्रः**) जिन से उत्तम कामों के करने वाले मित्र होते हैं वैसे (**पुष्टिवर्द्धनः**) शरीर और आत्मा की पुष्टि को बढ़ाने वाले (**भव**) हूजिये वा यह औषधिसमूह हम लोगों को यथायोग्य उक्त गुण देने वाला होवे इससे आप और यह हम लोगो के सेवन योग्य हैं ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । प्राणियों को ईश्वर और ओषधियों के सेवन और विद्वानों के सङ्ग के विना रोगनाश बलवृद्धि पदार्थों का ज्ञान धन की प्राप्ति तथा मित्रमिलाप नहीं हो सकता इससे उक्त पदार्थों का यथायोग्य आश्रय और सेवा सब को करनी चाहिये ॥ १२ ॥

सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा । मर्य्यइव स्व ओक्ये ॥१३॥

पदार्थ—हे (**सोम**) परमेश्वर ! जिस कारण आप (**नः**) हम लोगों के (**हृदि**) हृदय में (**न**) जैसे (**यवसेषु**) खाने योग्य घास आदि पदार्थों में (**गावः**) गौ रमती हैं वैसे वा जैसे (**स्वे**) अपने (**ओक्ये**) घर में (**मर्य्यइव**) मनुष्य विरमता है वैसे (**आ**) अच्छे प्रकार (**रारन्धि**) रमिये वा ओषधिसमूह उक्त प्रकार से रमे, इससे सब के सेवने योग्य आप वा यह है ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और दो उपमालङ्कार हैं । हे जगदीश्वर जैसे प्रत्यक्षता से गौ और मनुष्य अपने भोजन करने योग्य पदार्थ वा स्थान में उत्साहपूर्वक अपना वर्त्ताव वर्त्तते हैं वैसे हम लोगों के आत्मा में प्रकाशित हूजिये जैसे पृथिवी आदि कार्य्य पदार्थों में प्रत्यक्ष सूर्य्य की किरणें प्रकाशमान होती हैं वैसे हम लोगों के आत्मा में प्रकाशमान हूजिये । इस मन्त्र में असंभव होने से विद्वान् का ग्रहण नहीं किया ॥ १३ ॥

यः सोम सख्ये तव रारणद्देव मर्त्यः । तं दक्षः सचते कविः ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे (**देव**) दिव्य गुणों को प्राप्त कराने वाले वा अच्छे गुणों का हेतु (**सोम**) वैद्यराज विद्वान् वा यह उत्तम ओषधि । (**यः**) जो (**तव**) आप वा इसके (**सख्ये**) मित्रपन वा मित्र के काम मे (**दक्षः**) शरीर और आत्मबलयुक्त (**कविः**) दर्शनीय वा अव्याहत प्रज्ञायुक्त (**मर्त्यः**) मनुष्य (**रारणत्**) संवाद करता और (**सचते**) संबन्ध रखता है (**तम्**) उस मनुष्य को सुख क्यों न प्राप्त होवे ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जो मनुष्य परमेश्वर विद्वान् वा उत्तम ओषधि के साथ मित्रपन करते हैं वे विद्या को प्राप्त होके कभी दुःखभागी नहीं होते ॥ १४ ॥

उरुष्या णो अभिशस्तेः सोम नि पाह्यंहसः। सखा सुशेव एधिनः।१५।

पदार्थ—हे (सोम) रक्षा करने और (सुशेवः) उत्तम सुख देने वाले (सखा) मित्र ! जो आप (अभिशस्तेः) सुखविनाश करने वाले काम से (नः) हम लोगों को (उरुष्य) बचाओ वा (अंहसः) अविद्या तथा ज्वरादिरोग सेहम लोगों की (नि) निरन्तर (पाहि) पालना करो और (नः) हम लोगों के सुख करने वाले (एधि) होओ वह आप हम को सत्कार करने योग्य क्यों न होवें ॥ १५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को अच्छी प्रकार सेवा किया हुआ वैद्य उत्तम विद्वान् समस्त अविद्या आदि राजरोगों से अलग कर उनको आनन्दित करता है इस से यह सदैव संगम करने योग्य है ॥ १५ ॥

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् ।
भवा वाजस्य संगथे॥ १६ ॥

पदार्थ—हे (सोम) अत्यन्त पराक्रमयुक्त वैद्यक शास्त्र को जानने हारे विद्वान् ! (ते) आप का (विश्वतः) संपूर्ण सृष्टि से (वृष्ण्यम्) वीर्य्यवानों में उत्पन्न पराक्रम है वह हम लोगों को (सम्+एतु) अच्छी प्रकार प्राप्त हो तथा आप (आप्यायस्व) उन्नति को प्राप्त और (वाजस्य) वेग वाली सेना के (संगथे) संग्राम में रोगनाशक (भव) हूजिये ॥ १६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वान् और ओषधिगणों का सेवन कर बल और विद्या को प्राप्त हो समस्त सृष्टि को अत्युत्तम विद्याओं की उन्नति कर शत्रुओं को जीत और सज्जनों की रक्षा कर शरीर और आत्मा की पुष्टि निरन्तर बढ़ावें ॥ १६ ॥

आ प्यायस्व मदिन्तम सोमविश्वेभिरंशुभिः ।
भवा नः सुश्रवस्तमः सखा वृधे ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे (मदिन्तम) अत्यन्त प्रशंसित आनन्दयुक्त (सोम) विद्या और ऐश्वर्य के देने वाले ! जो (सुश्रवस्तमः) बहुश्रुत वा अच्छे अन्नादि पदार्थों से युक्त (सखा) आप मित्र हैं सो (नः) हम लोगों के (वृधे) उन्नति के लिये (भव) हूजिये और (विश्वेभिः) समस्त (अंशुभिः) सृष्टि के सिद्धान्तभागों से (आ) अच्छे प्रकार (प्यायस्व) वृद्धि को प्राप्त हूजिये ॥ १७ ॥

भावार्थ—जो उत्तम विद्वान् समस्त उत्तम ओषधिगण से सृष्टिक्रम की विद्याओं में मनुष्यों की उन्नति करता है उस के अनुकूल सब को चलना चाहिये ॥ १७ ॥

सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे (**सोम**) ऐश्वर्य को पहुँचाने वाले विद्वान् ! (**ते**) आप के जो (**वृष्ण्यानि**) पराक्रम वाले (**पयांसि**) जल वा अन्न हम लोगों को (**संयन्तु**) अच्छे प्रकार प्राप्त हों और (**अभिमातिषाहः**) जिन से शत्रुओं को सहें वे (**वाजाः**) संग्राम (**सम्**) प्राप्त हों उनसे (**दिवि**) विद्याप्रकाश में (**अमृताय**) मोक्ष के लिये (**आप्यायमानः**) दृढ़ बल वाले आप वा उत्तम रस के लिये दृढ़ बलकारक ओषधिगण (**उत्तमानि**) अत्यन्त श्रेष्ठ (**श्रवांसि**) वचनों और अन्नों को (**संधिष्व**) धारण कीजिये वा करता है ॥ १८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि विद्या और पुरुषार्थ से विद्वानों के संग ओषधियों के सेवन और प्रयोजन से जो जो प्रशंसित कर्म प्रशंसित गुण और श्रेष्ठ पदार्थ प्राप्त होते हैं उनका धारण और उन की रक्षा तथा धर्म अर्थ कामों की सिद्धि कर मोक्ष की सिद्धि करें ॥ १८ ॥

या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम् ।
गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्र चरा सोम दुर्यान् ॥ १९ ॥

पदार्थ—हे (**सोम**) परमेश्वर वा विद्वन् ! (**ते**) आपके वा इस ओषधिसमूह के (**या**) जो (**विश्व**) समस्त (**धामानि**) स्थान वा पदार्थ (**हविषा**) क्रियादान वा ग्रहण करने की क्रियाओं से (**यज्ञम्**) क्रियामय यज्ञ को (**यजन्ति**) संगत करते हैं (**ता**) वे सब (**ते**) आप के वा इस ओषधिसमूह के हम लोगों को प्राप्त हों जिससे आप (**परिभूः**) सब के ऊपर विराजमान होने (**गयस्फानः**) धन बढ़ाने और (**प्रतरणः**) दुःख से प्रत्यक्ष तारने वाले (**सुवीरः**) उत्तम उत्तम वीरों से युक्त (**अवीरहा**) अच्छी शिक्षा और विद्या से कायरों को भी सुख देने वाले (**अस्तु**) हों इससे हम लोगों के (**दुर्यान्**) उत्तम स्थानों को (**चर**) प्राप्त हूजिये ॥ १९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। कोई भी सृष्टि के पदार्थों के गुणों को विन जाने उनसे उपकार नहीं ले सकता है इससे विद्वानों के संग से पृथिवी से लेकर ईश्वर पर्यन्त यथायोग्य सब पदार्थों को जानकर मनुष्यों को चाहिये कि क्रियासिद्धि सदैव करें ॥ १९ ॥

सोमो॑ धे॒नुं सोमो॒ अर्व॑न्तमा॒शुं सोमो॑ वी॒रं क॑र्म॒ण्यं॑ ददाति ।
सा॒द॒न्यं॑ विद॒थ्यं॑ स॒भेयं॑ पितृ॒श्रव॑णं॒ यो ददा॑शदस्मै ॥ २० ॥

पदार्थ—(यः) जो सभाध्यक्ष आदि (अस्मै) इस धर्मात्मा पुरुष को (सादन्यम्) घर बनाने के योग्य सामग्री (विदथ्यम्) यज्ञ वा युद्धों में प्रशंसनीय तथा (सभेयम्) सभा में प्रशंसनीय सामग्री और (पितृश्रवणम्) ज्ञानी लोग जिससे सुने जाते हैं ऐसे व्यवहार को (ददाशत्) देता है वह (सोमः) सोम अर्थात् सभाध्यक्ष आदि सोमलतादि ओषधि के लिये (धेनुम्) वाणी को (आशुम्) शीघ्र गमन करने वाले (अर्वन्तम्) अश्व को या (सोमः) उत्तम कर्मकर्त्ता सोम (कर्मण्यम्) अच्छे अच्छे कामों से सिद्ध हुए (वीरम्) विद्या और शूरता आदि गुणों से युक्त मनुष्य को (ददाति) देता है ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । जैसे विद्वान् उत्तम शिक्षा को प्राप्त वाणी का उपदेश कर अच्छे पुरुषार्थ को प्राप्त होकर कार्यसिद्धि कराते हैं वैसे ही सोम ओषधियों का समूह श्रेष्ठ वल और पुष्टि को कराता है ॥ २० ॥

अषा॑ळ्हं यु॒त्सु पृत॑नासु॒ पप्रिं॑ स्व॒र्षाम॒प्सां वृ॒जन॑स्य गो॒पाम् ।
भ॒रे॒षु॒जां सु॑क्षि॒तिं सु॒श्रव॑सं॒ जय॑न्तं॒ त्वामनु॑ मदेम सोम ॥ २१ ॥

पदार्थ—हे (सोम) सेना आदि कार्यों के अधिपति ! जैसे सोमलतादि ओषधिगण (युत्सु) संग्रामों में (अषाढम्) शत्रुओं से तिरस्कार को न प्राप्त होने योग्य (पृतनासु) सेनाओं में (पप्रिम्) सब प्रकार की रक्षा करने वाले (वृजनस्य) पराक्रम के (गोपाम्) रक्षक (भरेषुजाम्) राज्यसामग्री के साधक बाणों को बनवाने वाले (सुक्षितिम्) जिस के राज्य में उत्तम उत्तम भूमि हैं (स्वर्षाम्) सब के सुखदाता (अप्साम्) जलों को देने वाले (सुश्रवसम्) जिस के उत्तम यश वा वचन सुने जाते हैं (जयन्तम्) विजय के करने वाले (त्वाम्) आप को रोग-रहित करके आनन्दित करता है वैसे उसको प्राप्त होकर हम लोग (अनुमदेम) अनुमोद को प्राप्त होवें ॥ २१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को सब गुणों से युक्त सेनाध्यक्ष और समस्त गुण करने वाले सोमलता आदि ओषधियों के विज्ञान और सेवन के विना कभी उत्तम राज्य और आरोग्यपन प्राप्त नहीं हो सकता इससे उक्त प्रबन्धों का आश्रय सब को करना चाहिये ॥ २१ ॥

त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अंजनयस्त्वं गाः ।
त्वमा ततन्थोर्वं१न्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥ २२ ॥

पदार्थ—हे (सोम) समस्त गुणयुक्त आरोग्यपन और बल के देने वाले ईश्वर ! जिस कारण (त्वम्) आप (इमाः) प्रत्यक्ष (विश्वाः) समस्त (ओषधीः) रोगों का विनाश करने वाली सोमलता आदि ओषधियों को (अजनयः) उत्पन्न करते हो (त्वम्) आप (अपः) जलों (त्वम्) आप (गाः) इन्द्रियों और किरणों को प्रकाशित करते हो (त्वम्) आप (ज्योतिषा) विद्या और श्रेष्ठशिक्षा के प्रकाश से (अन्तरिक्षम्) आकाश को (उरु) बहुत (आ) अच्छी प्रकार (ततन्थ) विस्तृत करते हो और (त्वम्) आप उक्त विद्या आदि गुणों से (तमः) अविद्या निन्दित शिक्षा वा अन्धकार को (वि ववर्थ) स्वीकार नहीं करते इससे आप सब लोगों से सेवा करने योग्य हैं ॥ २२ ॥

भावार्थ—जिस ईश्वर ने नाना प्रकार की सृष्टि बनाई है वही सब मनुष्यों को उपासना के योग्य इष्टदेव है ॥ २२ ॥

देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागं संहसावन्नभि युध्य ।
मा त्वा तनदीशिषे वीर्यस्योभयेभ्यः प्र चिकित्सा गविष्टौ ॥२३॥

पदार्थ - हे (सहसावन्) अत्यन्त बलवान् (देव) दिव्यगुणसम्पन्न (सोम) सर्व विद्या और सेना के अध्यक्ष ! आप (देवेन) दिव्यगुणयुक्त (मनसा) विचार से (रायः) राज्यधन के लाभ को (अभि) शत्रुओं के सम्मुख (युध्य) युद्ध कीजिये जो आप (नः) हमारे लिये धन के (भागम्) भाग के (ईशिषे) स्वामी हो उस (त्वा) तुझको (गविष्टौ) इन्द्रिय और भूमि के राज्य के प्रकाशों की सङ्गतियों में शत्रु (मा तनत्) पीड़ायुक्त न करें आप (वीर्यस्य) पराक्रम को (उभयेभ्यः) अपने और पराये योद्धाओं से (मा प्रचिकित्स) संशययुक्त मत हो ॥ २३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि परम उत्तम सेनाध्यक्ष और ओषधिगण का आश्रय और युद्ध में प्रवृत्ति कर उत्साह के साथ अपनी सेना को जोड़ और शत्रुओं की सेना का पराजय कर चक्रवर्त्ति राज्य के ऐश्वर्य को प्राप्त हों ॥ २३ ॥

इस सूक्त में पढ़ने पढ़ाने वालों आदि की विद्या के पढ़ने आदि कामों की सिद्धि करने वाले (सोम) शब्द के अर्थ के कथन से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह इक्कानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

———

राहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः । उषा देवता । १ । २ निचृज्जगती । ३ जगती । ४ विराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ५ । ७ १२ विराट् त्रिष्टुप् । ६ । १० निचृत्त्रिष्टुप् । ८ । ९ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ११ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । १३ निचृत्परोष्णिक् । १४ । १५ विराट्परोष्णिक् । १६—१८ उष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते ।
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जो (एताः) देखे जाते (उ) और जो (त्याः) देखे नहीं जाते अर्थात् दूर देश में वर्त्तमान हैं वे (उषसः) प्रातःकाल के सूर्य्य के प्रकाश (केतुम्) सब पदार्थों के ज्ञान को (अक्रतः) कराते हैं जो (रजसः) भूगोल के (पूर्वे) आधे भाग में (भानुम्) सूर्य के प्रकाश को (अञ्जते) पहुँचाती और (निष्कृण्वानाः) दिन रात को सिद्ध करती हैं वे (आयुधानीव) जैसे वीरों की युद्ध विद्या से छोड़े हुए वाण आदि शस्त्र सूधे तिरछे जाते आते हैं वैसे (धृष्णवः) प्रगल्भता के गुणों को देने (अरुषीः) लालगुणयुक्त और (मातरः) माता के तुल्य सब प्राणियों का मान करने वाली (प्रतिगावः) उस सूर्य के प्रकाश के प्रत्यागमन अर्थात् क्रम से घटने बढ़ने से जगह जगह में (यन्ति) घटती बढ़ती से पहुँचती हैं उनको तुम लोग जानो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस सृष्टि में सदैव सूर्य का प्रकाश भूगोल के आधे भाग को प्रकाशित करता है और आधे भाग में अन्धकार रहता है । सूर्य के प्रकाश के विना किसी पदार्थ का विशेष ज्ञान नहीं होता, सूर्य की किरणें क्षण क्षण भूगोल आदि लोकों के घूमने से गमन करती सी दीख पड़ती हैं जो प्रातः-काल के रक्त प्रकाश अपने अपने देश में हैं वे प्रत्यक्ष और दूसरे देश में हैं वे अप्रत्यक्ष, ये सब प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रातःकाल की वेला सब लोकों में एकसी सब दिशाओं में प्रवेश करती हैं । जैसे शस्त्र आगे पीछे जाने से सीधी उलटी चाल को प्राप्त होते हैं वैसे अनेक प्रकार के प्रातःप्रकाश भूगोल आदि लोकों की चाल से सीधी तिरछी चालों से युक्त होते हैं यह बात मनुष्यों को जाननी चाहिये ॥ १ ॥

उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत ।
अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः ॥ २ ॥

पदार्थ— हे विद्वानो ! जो (अरुणाः) रक्तगुण वाली (स्वायुजः) और अच्छे प्रकार सब पदार्थों से युक्त होती हैं वे (उषसः) प्रातःकालीन सूर्य की

(भानवः) किरणें (वृथा) मिथ्या सी (उत्) ऊपर (अपप्तन्) पड़ती हैं अर्थात् उन में ताप न्यून होता है इससे शीतल सी होती हैं और उनसे (गाः) पृथिवी आदि लोक (अरुषीः) उक्त गुणों से (अयुक्षत) युक्त होते हैं जो (अरुषीः) रक्त गुण वाली सूर्यकी रक्त किरणें (वयुनानि) सब पदार्थों का विशेष ज्ञान वा सब कामों को (अक्रन्) कराती हैं वे (पूर्वथा) पिछले पिछले (रुशन्तम्) अन्धकार के छेदक (भानुम्) सूर्य के समान अलग अलग दिन करने वाले सूर्य का (अशिश्रयुः) सेवन करती हैं उनका सेवन युक्ति से करना चाहिये ॥ २ ॥

भावार्थ—जो सूर्य की किरणें भूगोल आदि लोकों का सेवन अर्थात् उन पर पड़ती हुई क्रम क्रम से चलती जाती हैं वे प्रातः और सायंकाल के समय भूमि के संयोग से लाल होकर बादलों को लाल कर देती हैं और जब ये प्रातःकाल लोकों में प्रवृत्त अर्थात् उदय को प्राप्त होती हैं तब प्राणियों को सब पदार्थों के विशेष ज्ञान होते हैं जो भूमि पर गिरी हुई लाल वर्ण की हैं वे सूर्य के आश्रय होकर और उसको लाल कर ओषधियों का सेवन करती हैं उनका सेवन जागरितावस्था में मनुष्यों को करना चाहिये ॥ २ ॥

अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः ।
इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥

पदार्थ—सूर्य की किरणें (**विष्टिभिः**) अपनी व्याप्तियों से (**समानेन**) समान (**योजनेन**) योग से अर्थात् सब पदार्थों में एकसी व्याप्त होकर (**परावतः**) दूर देश से (**न**) जैसे (**नारीः**) पुरुषों के अनुकूल स्त्रियां (**सुकृते**) धर्मिष्ठ (**सुदानवे**) उत्तम दाता (**सुन्वते**) ओषधि आदि पदार्थों के रस निकाल के सेवन कर्ता (**यजमानाय**) और पुरुषार्थी पुरुष के लिये (**विश्वा**) समस्त उतम उत्तम (**अपसः**) कर्मों और (**इषम्**) अन्नादि पदार्थों को (**आवहन्तीः**) अच्छे प्रकार प्राप्त करती हुई उन के (**अह**) दुःखों के विनाश से (**अर्चन्ति**) सत्कार करती हैं वैसे उषा भी हैं उन का सेवन यथायोग्य सब को करना चाहिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे पतिव्रता स्त्रियां अपने अपने पति का सेवन कर उनका सत्कार करती हैं वैसे ही सूर्य की किरणें भूमि को प्राप्त हुईं वहां से निवृत्त हो और अन्तरिक्ष में प्रकाश प्रकट कर समस्त वस्तुओं को पुष्ट करके सब प्राणियों को सुख देती हैं ॥ ३ ॥

अधि पेशांसि वपते नृतूरिवापोर्णुते वक्ष उस्रेव बर्जहम् ।
ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती गावो न व्रजं व्युषा आवर्त्तमः ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**उषाः**) सूर्य्य की किरण (**नृतूरिव**) जैसे

नाटक करने वाला वा नट वा नाचने वाला वा बहुरूपिया अनेक रूप धारण करता है वैसे (पेशांसि) नाना प्रकार के रूपों को (अधिवपते) ठहराती है वा (वक्षः+उस्रेव) जैसे गौ अपनी छाती को वैसे (वर्जहम्) अन्धेरे को नष्ट करने वाले प्रकाश के नाशक अन्धकार को (अप+ऊर्णुते) ढांपती वा (विश्वस्मै) समस्त (भुवनाय) उत्पन्न हुए लोक के लिये (ज्योतिः) प्रकाश को (कृण्वती) करती हुई (व्रजं, गावो न) जैसे निवास स्थान को गौ जाती है वैसे स्थानान्तर को जाती और (तमः) अन्धकार को (व्यावः) अपने प्रकाश से ढांप लेती हैं वैसे उत्तम स्त्री अपने पति को प्रसन्न करे ॥ ४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो सूर्य्य की केवल ज्योति है वह दिन कहाता और जो तिरछी भूमि पर हुई पड़ती है वह (उषा) प्रातःकाल की वेला कहाती है अर्थात् प्रातःसमय अति मन्द सूर्य्य की उजेली तिरछी चाल से जहां तहां लोक लोकान्तरों पर पड़ती है उसके विना संसार का पालन नहीं हो सकता इससे इस विद्या की भावना मनुष्यों को अवश्य होनी चाहिये ॥ ४॥

प्रत्यर्ची रुशदस्या अदर्शि वि तिष्ठते बाधते कृष्णमभ्वम्।

स्वरुं न पेशो विदथेष्वञ्जञ्चित्रं दिवो दुहिता भानुमश्रेत् ॥ ५ ॥

पदार्थ—जिस (अस्याः) इस प्रातः समय अन्धकार के विनाशरूप उषा की (रुशत्) अन्धकार का नाश करने वाली (अर्चिः) दीप्ति (अभ्वम्) बड़े (कृष्णम्) काले वर्णरूप अन्धकार को (बाधते) अलग करती है जो (दिवः) प्रकाशरूप सूर्य की (दुहिता) पुत्री के तुल्य (स्वरुम्) तपने वाले सूर्य के (न) समान (चित्रम्) अद्भुत (भानुम्) कान्ति (पेशः) रूप को (अश्रेत्) आश्रय करती है वा जैसे ऋत्विज् लोग (विदथेषु) यज्ञ की क्रियाओं में (अञ्जन्) प्राप्त होते हैं वैसे (वितिष्ठते) विविध प्रकार से स्थिर होती है वह प्रातः समय की वेला हम लोगों को (प्रत्यदर्शि) प्रतीत होती है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो सूर्य्य की उजेली आप ही उजाला करती हुई सब को प्रकाशित कर सीधी उलटी दिखलाती है वह प्रातःकाल की वेला सूर्य्य की पुत्री के समान है ऐसा मानना चाहिये ॥ ५ ॥

अतारिष्म तमसस्पारमस्योषा उच्छन्ती वयुना कृणोति।

श्रिये छन्दो न स्मयते विभाती सुप्रतीका सौमनसायाजीगः ॥ ६ ॥

पदार्थ—जो (श्रिये) विद्या और राज्य की प्राप्ति के लिये (छन्दः) वेदों के

(न) समान (उच्छन्ती) अन्धकार को दूर करती और (विभाती) विविध प्रकार के मूर्तिमान् पदार्थों को प्रकाशित और (सुप्रतीका) पदार्थों की प्रतीति कराती है वह (उषाः) प्रातःकाल की वेला सब के (सौमनसाय) धार्मिक जनों के मनोरञ्जन के लिये (वयुनानि) प्रशंसनीय वा मनोहर कामों को (कृणोति) कराती (अजीगः) अन्धकार को निगल जाती और (स्मयते) आनन्द देती है उससे (अस्य) इस (तमसः) अन्धकार के (पारम्) पार को प्राप्त होते हैं वैसे दुःख के परे आनन्द को हम (अतारिष्म) प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जैसे यह उषा कर्म, ज्ञान, आनन्द, पुरुषार्थ, धनप्राप्ति के दुखःरूपी अन्धकार के निवारण का निदान प्रातःकाल की वेला है वैसे इस वेला में उत्तम पुरुषार्थ से प्रयत्न में स्थित हो के सुख की बढ़ती और दुःख का नाश करें ॥ ६ ॥

भास्वती नेत्री सूनृतानां दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः ।
प्रजावतो नृवतो अश्वबुध्यानुषो गोअग्राँ उप मासि वाजान् ॥ ७ ॥

पदार्थ—जैसे (सूनृतानाम्) अच्छे अच्छे काम वा अन्न आदि पदार्थों को (भास्वती) प्रकाशित (नेत्री) और मनुष्यों को व्यवहारों की प्राप्ति कराती वा (दिवः) प्रकाशमान सूर्य्य की (दुहिता) कन्या के समान (उषः) प्रातः समय की वेला (गोतमेभिः) समस्त विद्याओं को अच्छे प्रकार कहने सुनने वाले विद्वानों से स्तुति की जाती है वैसे इसकी मैं (स्तवे) प्रशंसा करूं हे स्त्री ! जैसे यह उषा (प्रजावतः) प्रशंसित प्रजायुक्त (नृवतः) वा सेना आदि कामों के बहुत नायकों से युक्त (अश्वबुध्यान्) जिनसे वेगवान् घोड़ों को वार वार चैतन्य करें (गोअग्रान्) जिनसे राज्य भूमि आदि पदार्थ मिलें उन (वाजान्) संग्रामों को (उपमासि) समीप प्राप्त करती है अर्थात् जैसे प्रातःकाल की वेला से अन्धकार का नाश होकर सब प्रकार के पदार्थ प्रकाशित होते हैं वैसी तू भी हो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सब गुण आगरी सुलक्षणी कन्या से पिता माता चाचा आदि सुखी होते हैं वैसे ही प्रातःकाल की वेला के गुण अपगुण प्रकाशित करने वाली विद्या से विद्वान् लोग सुखी होते हैं ॥ ७ ॥

उषस्तमश्यां यशसं सुवीरं दासप्रवर्गं रयिमश्वबुध्यम् ।
सुदंससा श्रवसा या विभासि वाजप्रसूता सुभगे बृहन्तम् ॥ ८ ॥

पदार्थ—जो (वाजप्रसूता) सूर्य की गति से उत्पन्न हुई (सुभगा) जिस के साथ अच्छे अच्छे ऐश्वर्य के पदार्थ संयुक्त होते हैं वह (उषः) प्रातः समय की

वेला है वह जिस (सुवंससा) अच्छे कर्म वाले (अवसा) पृथिवी आदि अन्न के साथ वर्त्तमान वा (अश्वबुध्यम्) जिस साहयता से घोड़े सिखाये जाते (दासप्रवर्गम्) जिससे सेवक अर्थात् दासी काम करने वाले रह सकते हैं (सुवीरम्) जिससे अच्छे सीखे हुए वीरजन हों उस (बृहन्तम्) सर्वदा अत्यन्त बढ़ते हुए और (यशसम्) सब प्रकार प्रशंसायुक्त (रयिम्) विद्या और राज्य धन को (विभासि) अच्छे प्रकार प्रकाशित करती है (तम्) उस को मैं (अश्याम्) पाऊं ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो लोग प्रातःकाल की वेला के गुण अवगुणों को जताने वाली विद्या से अच्छे अच्छे यत्न करते हैं वे यह सब वस्तु पाकर सुख से परिपूर्ण होते हैं किन्तु और नहीं ॥ ८ ॥

विश्वा॑नि दे॒वी भुव॑नाभि॒चक्ष्या॑ प्रती॒ची चक्षु॑रुर्वि॒या वि भा॑ति ।
विश्वं॑ जी॒वं च॒रसे॒ बो॒धय॑न्ती॒ विश्व॑स्य॒ वाच॑मविदन्मना॒योः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! जैसे (प्रतीची) सूर्य की चाल से परे को ही जाती और (चरसे) व्यवहार करने वा सुख और दुःख भोगने के लिये (विश्वम्) सब (जीवम्) जीवों को (बोधयन्ती) चिताती हुई (देवी) प्रकाश को प्राप्त (उषाः) प्रातः समय की वेला (मनायोः) मान के समान आचरण करने वाले (विश्वस्य) जीव मात्र की (वाचम्) वाणी को (अविदत्) प्राप्त होती (चक्षुः) और आंखों के समान सब वस्तु के दिखाई पड़ने का निदान (विश्वानि) समस्त (भुवना) लोकों को (अभिचक्ष्य) सब प्रकार से प्रकाशित करती हुई (उर्विया) पृथिवी के साथ (विभाति) अच्छे प्रकार प्रकाशित होती है वैसे तू भी हो ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे उत्तम स्त्री सब प्रकार से अपने पति को आनन्दित करती है वैसे प्रातःकाल की वेला समस्त जगत् को आनन्द देती है ॥ ९ ॥

पुनः॑पुनर्जा॒यमा॑ना पुरा॒णी स॑मा॒नं वर्ण॑म॒भि शुम्भ॑माना ।
श्व॒घ्नीव॑ कृ॒त्नुर्विज॑ आमिना॒ना मर्त॑स्य दे॒वी ज॒रय॒न्त्यायुः॑ ॥ १० ॥

पदार्थ—जो (श्वघ्नीव) कुत्ते और हिरणों को मारनेहारी वृकी के समान वा जैसे (कृत्नुः) छेदन करने वाली श्येनी (विजः) इधर उधर चलते हुए पक्षियों का छेदन करती है वैसे (आमिनाना) हिंसका (मर्त्तस्य) मरने जीनेहारे जीवमात्र की (आयुः) आयुर्दा को (जरयन्ती) हीन करती हुई (पुनः पुनः) दिनोंदिन (जायमाना) उत्पन्न होने वाली (समानम्) एकसे (वर्णम्) रूप को (अभि शुम्भमाना) सब ओर से प्रकाशित करती हुई वा (पुराणी) सदा से वर्त्तमान (देवी) प्रकाशमान प्रातःकाल की वेला है वह जागरित होके मनुष्यों को सेवने योग्य है ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे छिप के वा देखते देखते भेड़िया की स्त्री वृकी वन के जीवों को तोड़ती और जैसे बाजिनी उड़ते हुए पखेरुओं को विनाश करती है वैसे ही यह प्रातःसमय की वेला सोते हुए हम लोगों की आयुर्दा को धीरे धीरे अर्थात् दिनों दिन काटती है ऐसा जान और आलस छोड़कर हम लोगों को रात्रि के चौथे प्रहर में जाग के विद्या, धर्म और परोपकार आदि व्यवहारों में नित्य उचित वर्त्ताव रखना चाहिये। जिनकी इस प्रकार की बुद्धि है वे लोग आलस्य और अधर्म्म के बीच में कैसे प्रवृत्त हों॥ १०॥

व्यूर्ण्वती दिवो अन्ताँ अबोध्यप स्वसारं सनुतर्युयोति।
प्रमिनती मनुष्या युगानि योषा जारस्य चक्षसा वि भाति॥ ११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! जो प्रातःकाल की वेला जैसे (योषा) कामिनी स्त्री (जारस्य) व्यभिचारी लम्पट कुमार्गी पुरुष की उमर का नाश करे वैसे सब आयुर्दा को (सनुतः) निरन्तर (प्रमिनती) नाश करती (स्वसारम्) और अपनी बहिन के समान जो रात्रि है उस को (व्यूर्ण्वती) ढांपती हुई (अपयुयोति) उस को दूर करती अर्थात् दिन से अलग करती है और आप (वि) अच्छी प्रकार (भाति) प्रकाशित होती जाती है (चक्षसा) उस प्रातःसमय की वेला के निमित्त उससे दर्शन (दिवः) प्रकाशवान् सूर्य्य के (अन्तान्) समीप के पदार्थों को और (मनुष्या) मनुष्यों के सम्बन्धी (युगानि) वर्षों को (अबोधि) जानती है उस का सेवन तुम युक्ति से किया करो॥ ११॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जैसे व्यभिचारिणी स्त्री जारकर्म करनेहारे पुरुष की उमर का विनाश करती है वैसे सूर्य्य से सम्बन्ध रखने हारे अन्धकार की निवृत्ति से दिन को प्रसिद्ध करने वाली प्रातःकाल की वेला है ऐसा जानकर रात और दिन के बीच युक्ति के साथ वर्त्ताव वर्त्तकर पूरी आयुर्दा को भोगें॥ ११॥

पशून्न चित्रा सुभगा प्रथाना सिन्धुर्न क्षोद उर्विया व्यश्वैत्।
अमिनती दैव्यानि व्रतानि सूर्यस्य चेति रश्मिभिर्दृशाना॥ १२॥

पदार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि (न) जैसे (पशून्) गाय आदि पशुओं को पाकर वैश्य बढ़ता और (न) जैसे (सुभगा) सुन्दर ऐश्वर्य्य करने हारी (प्रथाना) तरङ्गों से शब्द करती हुई (सिन्धुः) अति वेगवती नदी (क्षोदः) जल को पाकर बढ़ती है वैसे सुन्दर ऐश्वर्य्य कराने हारी प्रातःसमय चूं चां करनेहारे पखेरुओं के शब्दों से शब्दवाली और कोसों फैलती हुई (चित्रा) चित्र विचित्र

प्रातःसमय की वेला [(उर्विया) पृथिवी के साथ] (सूर्य्यस्य) मार्त्तण्डमण्डल की (रश्मिभिः) किरणों से (दृशाना) जो देखी जाती है वह (अमिनती) सब प्रकार से रक्षा करती हुई (दैव्यानि) विद्वानों में प्रसिद्ध (व्रतानि) सत्य पालन आदि कामों को (व्यश्वैत्) व्याप्त हो अर्थात् जिसमें विद्वान् जन नियमों को पालते हैं वैसे प्रतिदिन अपने नियमों को पालती हुई (चेति) जानी जाती है उस प्रातः-समय की वेला की विद्या के अनुसार वर्त्ताव रखकर निरन्तर सुखी हों ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे पशुओं की प्राप्ति के विना वैश्य लोग वा जल की प्राप्ति के विना नदी नद आदि अति उत्तम सुख करने वाले नहीं होते, वैसे प्रातःसमय की वेला के गुण जताने वाली विद्या और पुरुषार्थ के विना मनुष्य प्रशंसित ऐश्वर्य वाले नहीं होते ऐसा जानना चाहिये ॥ १२ ॥

उषस्तच्चित्रमा भ॑रास्मभ्यं॑ वाजिनीवति ।
येन॑ तो॒कं च॒ तन॑यं च॒ धाम॑हे ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे सौभाग्यकारिणी स्त्री ! (वाजिनीवति) उत्तम क्रिया और अन्नादि ऐश्वर्य्ययुक्त तू (उषः) प्रभात के तुल्य (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (चित्रम्) अद्भुत सुखकर्त्ता धन को (आभर) धारण कर (येन) जिस से हम लोग (तोकम्) पुत्र (च) और इस के पालनार्थ ऐश्वर्य्य (तनयम्) पौत्रादि (च) स्त्री भृत्य और भूमि के राज्यादि को (धामहे) धारण करें ॥ १३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों से प्रातःसमय से लेके समय के विभागों के योग्य अर्थात् समय समय के अनुसार व्यवहारों को करके ही सब सुख के साधन और सुख किये जा सकते हैं इससे उनको यह अनुष्ठान नित्य करना चाहिये ॥ १३ ॥

उषो॑ अ॒द्येह गो॑मत्यश्वा॑वति विभावरि ।
रे॒व॒द॒स्मे व्युच्छ सूनृतावति ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे स्त्री ! जैसे (गोमति) जिस के सम्बन्ध में गौ होतीं (अश्वावति) घोड़े होते तथा (सूनृतावति) जिसके प्रशंसनीय काम हैं वह (विभावरि) क्षण क्षण बढ़ती हुई दीप्ति वाली (उषः) प्रातःसमय की वेला (अस्मे) हम लोगों के लिये (रेवत्) जिस में प्रशंसित धन हों उस सुख को (वि, उच्छ) प्राप्त कराती है उस से हम लोग (अद्य) आज (इह) इस जगत् में सुखों को (धामहे) धारण करते हैं ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में (धामहे) इस पद की अनुवृत्ति आती है,

मनुष्यों को चाहिये कि प्रतिदिन प्रातःकाल सोने से उठ कर जब तक फिर न सोवें तब तक अर्थात् दिन भर निरालसता से उत्तम यत्न के साथ विद्या, धन और राज्य तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन सब उत्तम उत्तम पदार्थों को सिद्ध करे ॥ १४ ॥

युक्ष्वा हि वाजिनीवत्यश्वाँ अद्यारुणाँ उषः ।
अथा नो विश्वा सौभगान्या वह ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! जैसे (वाजिनीवति) जिस में ज्ञान वा गमन कराने वाली क्रिया हैं वह (उषः) प्रातःसमय की वेला (अरुणान्) लाल (अश्वान्) चमचमाती फैलती हुई किरणों का (युक्ष्व) संयोग करती है (अथः) पीछे (नः) हम लोगों के लिये (विश्वा) समस्त (सौभगानि) सौभाग्यपन के कामों को अच्छे प्रकार प्राप्त कराती (हि) ही है वैसे (अद्य) आज तू शुभ गुणों को युक्त और (आवह) सब ओर से प्राप्त कर ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । प्रतिदिन निरन्तर पुरुषार्थ के विना मनुष्यों को ऐश्वर्य की प्राप्ति नहीं होती इससे उनको चाहिये कि ऐसा पुरुषार्थ नित्य करें जिस से ऐश्वर्य बढ़े ॥ १५ ॥

अश्विना वर्त्तिरस्मदा गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ।
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम् ॥ १६ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग जो (दस्रा) कला कौशलादि निमित्त से दुःख आदि की निवृत्ति करनेहारे (समनसा) एक से विचार के साथ वर्त्तमान के तुल्य (अश्विना) अग्नि जल (अस्मत्) हम लोगों के (गोमत्) जिस में इन्द्रियां प्रशंसित होतीं वा (हिरण्यवत्) प्रशंसित सुवर्ण आदि पदार्थ वा विद्या आदि गुणों के प्रकाश विद्यमान वा (वर्तिः) आने जाने के काम में वर्त्तमान उस (अर्वाक्) नीचे अर्थात् जल स्थलों तथा अन्तरिक्ष में (रथम्) रमण कराने वाले विमान आदि रथ समूह को (न्यायच्छतम्) अच्छे प्रकार नियम में रखते हैं वे उषःकाल से युक्त अग्नि जल तथा उन से युक्त उक्त रथ समूह को प्रतिदिन सिद्ध करते हैं वैसे तुम लोग भी सिद्ध करो ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि प्रतिदिन क्रिया और चतुराई तथा अग्नि और जल आदि की उत्तेजना से विमान आदि यानों को सिद्ध करके नित्य उन्नति को प्राप्त होने वाले धन को प्राप्त होकर सुखयुक्त हों ॥ १६ ॥

यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः ।

आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे शिल्पविद्या के पढ़ाने और उपदेश करनेहारे विद्वानो ! (युवम्) तुम लोग जो (अश्विना) अग्नि और वायु (जनाय) मनुष्य समूह के लिये (दिवः) सूर्य्य के (ज्योतिः) प्रकाश को (आ, चक्रथुः) अच्छे प्रकार सिद्ध करते हैं (इत्था) इसलिये (नः) हम लोगों के लिये (श्लोकम्) उत्तम वाणी और (ऊर्जम्) पराक्रम वा अन्नादि पदार्थों को (आ, वहतम्) सब प्रकार से प्राप्त कराओ ॥ १७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि पवन और बिजुली के विना सूर्य का प्रकाश नहीं होता और न उन दोनों ही के विद्या और उपकार के विना किसी की विद्यासिद्धि होती है ऐसा जानें ॥ १७ ॥

एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्त्तनी ।

उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये ॥ १८ ॥

पदार्थ हे मनुष्यो ! आप लोग जो (देवा) दिव्यगुणयुक्त (मयोभुवा) सुख की भावना कराने हारे (हिरण्यवर्त्तनी) प्रकाश के वर्त्ताव को रखते और (दस्रा) विद्या के उपयोग को प्राप्त हुए समस्त दुःख का विनाश करने वाले अग्नि पवन (उषर्बुधः) प्रातःकाल की वेला को जताने हारी सूर्य्य की किरणों को प्रकट करते हैं उन से (सोमपीतये) जिस व्यवहार में पुष्टि शान्त्यादि तथा गुण वाले पदार्थों का पान किया जाता है उस के लिये सब मनुष्यों को सामर्थ्य (इह) इस संसार में (आवहन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त करें ॥ १८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि उत्पन्न हुए दिनों में भी अग्नि और पवन के विना पदार्थ भोगना नहीं हो सकता इससे अग्नि और पवन से उपयोग लेने का पुरुषार्थ नित्य करें ॥ १८ ॥

इस सूक्त में उषा और अश्वि पदार्थों के गुणों के वर्णन से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ इस सूक्तार्थ की सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह बानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

———

रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः । अग्नीषोमौ देवते । १ अनुष्टुप् । ३ विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । २ भुरिगुष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः । ४ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ५ । ७ । निचृत्त्रिष्टुप् । ६ विराट्त्रिष्टुप् । ८ स्वराट् त्रिष्टुप् । १२ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ९—११गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अग्नीषोमाविमं सु मे शृणुतं वृषणा हवम् ।
प्रति सूक्तानि हर्यतं भवतं दाशुषे मयः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (वृषणा) विद्या और उत्तम शिक्षा देने वाले (अग्नीषोमौ) अग्नि और चन्द्र के समान विशेष ज्ञान और शान्ति गुणयुक्त पढ़ाने और परीक्षा लेने वाले विद्वानो ! तुम दोनों (मे) मेरा (प्रतिसूक्तानि) जिन में अच्छे अच्छे अर्थ उच्चारण किये जाते हैं उन गायत्री आदि छन्दों से युक्त वेदस्थ सूक्तों और (इमम्) इस (हवम्) ग्रहण करने कराने योग्य विद्या के शब्द अर्थ और सम्बन्ध युक्त वचन को (सुशृणुतम्) अच्छे प्रकार सुनो (दाशुषे) और पढ़ने में चित्त देने वाले मुझ विद्यार्थी के लिये (मयः) सुख की (हर्य्यतम्) कामना करो इस प्रकार विद्या के प्रकाशक (भवतम्) हूजिये ॥ १ ॥

भावार्थ—किसी मनुष्य को पढ़ाने और परीक्षा के विना विद्या की सिद्धी नहीं होती और कोई मनुष्य पूरी विद्या के विना किसी दूसरे को पढ़ा और उसकी परीक्षा नहीं कर सकता और इस विद्या के विना समस्त सुख नहीं होते इससे इसका सम्पादन नित्य करें ॥ १ ॥

अग्नीषोमा यो अद्य वामिदं वचः सपर्य्यति ।
तस्मै धत्तं सुवीर्य्यं गवां पोषं स्वश्व्यम् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (अग्नीषोमौ) पढ़ाने और परीक्षा लेने वाले विद्वानो ! (यः) जो पढ़ने वाला (अद्य) आज (वाम्) तुम्हारे (इदम्) इस (वचः) विद्या के वचन को (सपर्यति) सेवे (तस्मै) उस के लिये (स्वश्व्यम्) जो अच्छे अच्छे घोड़ों से युक्त (सुवीर्य्यम्) उत्तम उत्तम बल जिस विद्याभ्यास से हों उस (गवाम्) इन्द्रिय और गाय आदि पशुओं के (पोषम्) सर्वथा शरीर और आत्मा की पुष्टि करने हारे सुख को (धत्तम्) दीजिये ॥ २ ॥

भावार्थ—जो ब्रह्मचारी विद्या के लिये पढ़ाने और परीक्षा करने वालों के प्रति उत्तम प्रीति को करके और उनकी नित्य सेवा करता है वही बड़ा विद्वान् होकर सब सुखों को पाता है ॥ २ ॥

अग्नीषोमा य आहुतिं यो वां दाशाद्धविष्कृतिम् ।
स प्रजया सुवीर्यं विश्वमायुर्व्यश्नवत् ॥ ३ ॥

पदार्थ—(यः) सब के हित को चाहने वाला और (यः) जो यज्ञ का अनुष्ठान करने वाला मनुष्य (अग्नीषोमा) भौतिक अग्नि और पवन (वाम्) इन दोनों के बीच (हविष्कृतिम्) होम करने योग्य पदार्थ का कारणरूप (आहुतिम्) घृत आदि उत्तम उत्तम सुगन्धितादि पदार्थों से युक्त आहुति को (दाशात्) देवे (सः) वह (प्रजया) उत्तम उत्तम सन्तानयुक्त प्रजा से (सुवीर्य्यम्) श्रेष्ठ पराक्रमयुक्त (विश्वम्) समग्र (आयुः) आयुर्दा को (व्यश्नवत्) प्राप्त होवे ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् वायु वृष्टि जल और ओषधियों की शुद्धि के लिये अच्छे संस्कार किये हुए हवि को अग्नि के बीच होम के श्रेष्ठ सोमलतादि ओषधियों की प्राप्ति कर उनसे प्राणियों को सुख देते हैं वे शरीर आत्मा के बल से युक्त होते हुए पूर्ण सुख करने वाली आयु को प्राप्त होते हैं अन्य नहीं ॥ ३ ॥

अग्नीषोमा चेति तद्वीर्यं वां यदमुष्णीतमवसं पणिं गाः ।
अवातिरतं बृसयस्य शेषोऽविन्दतं ज्योतिरेकं बहुभ्यः ॥ ४ ॥

पदार्थ—जो (अग्नीषोमा) वायु और विद्युत् (यत्) जिस (अवसम्) रक्षा आदि (पणिम्) व्यवहार को (अमुष्णीतम्) चोरते प्रसिद्धाप्रसिद्ध ग्रहण करते (गाः) सूर्य्य की किरणों का विस्तार कर (अवातिरतम्) अन्धकार का विनाश करते (बहुभ्यः) अनेकों पदार्थों से (एकम्) एक (ज्योतिः) सूर्य के प्रकाश को (अविन्दतम्) प्राप्त कराते हैं जिनके (बृसयस्य) ढांपने वाले सूर्य का (शेषः) अवशेष भाग लोकों को प्राप्त होता है (वाम्) इन का (तत्) वह (वीर्य्यम्) पराक्रम (चेति) विदित है सब कोई जानते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को यह जानना चाहिये कि जितना प्रसिद्ध अन्धकार को ढांप देने और सब लोकों को प्रकाशित करने हारा तेज होता है उतना सब कारणरूप पवन और बिजुली की उत्तेजना से होता है ॥ ४ ॥

युवमेतानि दिवि रोचनान्यग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम् ।
युवं सिन्धूँरभिशस्तेरवद्यादग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतान् ॥ ५ ॥

पदार्थ—(युवम्) ये (सक्रतू) एकसा काम देने वाले दो अर्थात् (अग्निः) बिजुली (च) और (सोम) बहुत सुख को उत्पन्न करने हारा पवन (दिवि)

तारागण में जो (रोचनानि) प्रकाश हैं (एतानि) इन को (अधत्तम्) धारण करते हैं (युवम्) ये दोनों (सिन्धून्) समुद्रों को धारण करते अर्थात् उन के जल को सोखते हैं उन (गृभीतान्) सोखे हुए नदी नद समुद्रों को वे (अग्नीषोमा) बिजुली और पवन (अवद्यात्) निन्दित (अभिशस्तेः) उन के प्रवाहरूप रमण को रोकने हारे हेतु से (अमुञ्चतम्) छोड़ते हैं अर्थात् वर्षा के निमित्त से उन के लिये हुए जल को पृथिवी पर छोड़ते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को जानना चाहिये कि पवन और बिजुली ये ही दोनों सब लोकों के सुख के धारण आदि व्यवहार के कारण हैं ॥ ५ ॥

आन्यं दिवो मातरिश्वा जभारामथ्नादन्यं परि श्येनो अद्रेः ।
अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधानोरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो (ब्रह्मणा) परमेश्वर से (वावृधाना) उन्नति को प्राप्त हुए (अग्नीषोमा) अग्नि और पवन (यज्ञाय) ज्ञान और क्रियामय यज्ञ के लिये (उरुम्) बहुत प्रकार (लोकम्) जो देखा जाता है उस लोकसमूह को (चक्रथुः) प्रकट करते हैं उन में से (मातरिश्वा) पवन जो कि आकाश में सोने वाला है वह (दिवः) सूर्य्य आदि लोक से (अन्यम्) और दूसरा अप्रसिद्ध जो कारण लोक है उस को (आ, जभार) धारण करता है तथा (श्येनः) वेगवान् घोड़े के समान वर्त्तने वाला अग्नि (अद्रेः) मेघ से (अमथ्नात्) मथा करता है उन को जानकर उपयोग में लाओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो पवन और बिजुली के दो रूप हैं एक कारण और दूसरा कार्य्य उन से जो पहिला है वह विशेष ज्ञान से जानने योग्य और जो दूसरा है वह प्रत्यक्ष इन्द्रियों से ग्रहण करने योग्य है जिस के गुण और उपकार जाने हैं उस पवन वा अग्नि से कारणरूप में उक्त अग्नि और पवन प्रवेश करते हैं, यही सुगम मार्ग है जो कार्य के द्वारा कारण में प्रवेश होता है ऐसा जानो ॥ ६ ॥

अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्य वीतं हर्यतं वृषणा जुषेथाम् ।
सुशर्म्माणा स्ववसा हि भूतमथा धत्तं यजमानाय शं योः ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो (वृषणा) वर्षा होने के निमित्त (सुशर्माणा) श्रेष्ठ सुख करने वाले (अग्नीषोमा) प्रसिद्ध वायु और अग्नि (प्रस्थितस्य) देशान्तर में पहुंचाने वाले (हविषः) होम हुए घी आदि को (वीतम्) व्याप्त होते (हर्य्यतम्) पाते (जुषेथाम्) सेवन करते और (स्ववसा) उत्तम रक्षा करने वाले (भूतम्) होते हैं (अथ) इस के पीछे (हि)

इसी कारण (यजमानाय) जीव के लिये अनन्त (शम्) सुख को (धत्तम्) धारण करते तथा (योः) पदार्थों को अलग अलग करते हैं उन को अच्छे प्रकार उपयोग में लाओ ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को यह जानना चाहिये कि आग में जितने सुगन्धि युक्त पदार्थ होमे जाते हैं सब पवन के साथ आकाश में जा मेघमण्डल के जल को शोध और सब जीवों के सुख के हेतु होकर उसके अनन्तर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि करने हारे होते हैं ॥ ७ ॥

यो अग्नीषोमा हविषा सपर्याद्देवद्रीचा मनसा यो घृतेन ।
तस्य व्रतं रक्षतं पातमंहसो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ॥ ८ ॥

पदार्थ—(यः) जो विद्वान् मनुष्य (देवद्रीचा) उत्तम विद्वानों का सत्कार करते हुए (मनसा) मन से वा (घृतेन) घी और जल तथा (हविषा) अच्छे संस्कार किये हुए हवि से (अग्नीषोमा) वायु और अग्नि को (सपर्यात्) सेवे और (यः) जो क्रिया करने वाला मनुष्य इन के गुणों को जाने (तस्य) उन दोनों के (व्रतम्) सत्यभाषण आदि शील की ये दोनों (रक्षतम्) रक्षा करते (अंहसः) क्षुधा और ज्वर आदि रोग से (पातम्) नष्ट होने से बचाते (विशे) प्रजा और (जनाय) सेवक जन के लिये (महि) अत्यन्त प्रशंसा करने योग्य (शर्म) सुख वा घर को (यच्छतम्) देते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अग्निहोत्र आदि काम से वायु और वर्षा की शुद्धि द्वारा सब वस्तुओं को पवित्र करता है वह सब प्राणियों को सुख देता है ॥ ८ ॥

अग्नीषोमा सवेदसा सहूती वनतं गिरः । सं देवत्रा बभूवथुः ॥ ९ ॥

पदार्थ—जो (सहूती) एकसी वाणी वाले (सवेदसा) बराबर होमे हुए पदार्थ से युक्त (अग्नीषोमा) यज्ञफल के सिद्ध करने हारे अग्नि और पवन (देवत्रा) विद्वान् वा दिव्य गुणों में (सम्बभूवथुः) संभावित होते हैं वे (गिरः) वाणियों को (वनतम्) अच्छे प्रकार सेवते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग यज्ञ आदि उत्तम कामों से वायु के शोधे विना प्राणियों को सुख नहीं हो सकता इससे इस का अनुष्ठान नित्य करें ॥ ९ ॥

अग्नीषोमावनेन वां यो वां घृतेन दाशति । तस्मै दीदयतं बृहत् ॥१०॥

पदार्थ—(यः) जो मनुष्य (वाम्) इन के बीच (अनेन) इस (घृतेन) घी वा जल से आहुतियों को देता है वा (वाम्) इन की उत्तेजना से उपकारों को

ग्रहण करता है उस के लिये (अग्नीषोमा) बिजुली और पवन (बृहत्) बड़े विज्ञान और सुख को (दीदयतम्) प्रकाशित करते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य क्रियारूपी यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं वे इस संसार में अत्यन्त सौभाग्य को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

अग्नीषोमाविमानि नो युवं हव्या जुजोषतम् ।
आ यातमुप नः सचा ॥ ११ ॥

पदार्थ—(युवम्) जो (अग्नीषोमौ) समस्त मूर्तिमान् पदार्थों का संयोग करनेहारे अग्नि और पवन (नः) हम लोगों के (इमानि) इन (हव्या) देने लेने योग्य पदार्थों को (जुजोषतम्) वार वार सेवन करते हैं वे (सचा) यज्ञ के विशेष विचार करने वाले (नः) हम लोगों को (उप, आ, यातम्) अच्छे प्रकार मिलते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—जब यज्ञ से सुगन्धित आदि द्रव्ययुक्त अग्नि वायु सब पदार्थ के समीप मिलकर उन में लगते हैं तब सब की पुष्टि होती है ॥ ११ ॥

अग्नीषोमा पिपृतमर्वतो न आ प्यायन्तामुस्रिया हव्यसूदः ।
अस्मे बलानि मघवत्सु धत्तं कृणुतं नो अध्वरं श्रुष्टिमन्तम् ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे राज प्रजा के पुरुषो ! तुम (अग्नीषोमा) पालन के हेतु अग्नि और पवन के समान (नः) हम लोगों के (अर्वतः) घोड़ों को (पिपृतम्) पालो जैसे (हव्यसूदः) दूध दही आदि पदार्थों की देने वाली (उस्रियाः) गौ (आ,-प्यायन्ताम्) पुष्ट हों वैसे (नः) हम लोगों के (श्रुष्टिमन्तम्) शीघ्र बहुत सुख के हेतु (अध्वरम्) व्यवहार रूपी यज्ञ को (मघवत्सु) प्रशंसित धनयुक्त स्थान व्यवहार वा विद्वानों में (कृणुतम्) प्रकट करो (अस्मे) हम लोगों के लिये (बलानि) बलों को (धत्तम्) धारण करो ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । पवन और बिजुली के विना किसी को बल और पुष्टि नहीं होती, इससे इन को अच्छे विचार से कामों में लाना चाहिये ॥ १२ ॥

इस सूक्त में पवन और बिजुली के गुण वर्णन करने से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

॥ यह ९३ वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

आङ्गिरसः कुत्स ऋषिः। अग्निर्देवता। १। ४। ५। ७। ९। १० निचृज्जगती १२-१४ विराड् जगती छन्दः। निषादः स्वरः। २। ३। १६ त्रिष्टुप्। ६ स्वराट् त्रिष्टुप्। ११ भुरिक् त्रिष्टुप्। ८ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। १५ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥ १॥

पदार्थ--हे (अग्ने) विद्यादि गुणों से विदित विद्वन्! जैसे (वयम्) हम लोग (मनीषया) विद्या क्रिया और उत्तम शिक्षा से उत्पन्न हुई बुद्धि से (अर्हते) योग्य (जातवेदसे) जो कि उत्पन्न हुए जगत् के पदार्थों को जानता है वा उत्पन्न हुए कार्य्यरूप द्रव्यों में विद्यमान उस विद्वान् के लिये (रथमिव) जैसे विहार कराने हारे विमान आदि यान को वैसे (इमम्) काय्यों में प्रवृत्त इस (स्तोमम्) गुणकीर्त्तन को (संमहेम) प्रशंसित करें वा (अस्य) इस (तव) आप के (सख्ये) मित्रपन के निमित्त (संसदि) जिस में विद्वान् स्थित होते हैं उस सभा में (नः) हम लोगों को (भद्रा) कल्याण करने वाली (प्रमतिः) प्रबल बुद्धि है उस को (हि) ही (मा, रिषामा) मत नष्ट करें वैसे आप भी न नष्ट करें॥ १॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जैसे विद्या से सिद्ध होते हुए विमानों को सिद्ध कर मित्रों का सत्कार करें वैसे ही पुरुषार्थ से विद्वानों का भी सत्कार करें। जब जब सभासद् जन सभा में बैठें तब तब हठ और दुराग्रह को छोड़ सब के सुख करने योग्य काम को न छोड़ें। जो जो अग्नि आदि पदार्थों में विज्ञान हो उस उस को सब के साथ मित्रपन का आश्रय करके और सब के लिये दें क्योंकि इस के विना मनुष्यों के हित की संभावना नहीं होती॥ १॥

यस्मै त्वमायजसे स साधत्यनर्वा क्षेति दधते सुवीर्यम्।
स तूताव नैनमश्नोत्यंहतिरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥ २॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सब विद्या के विशेष जानने वाले विद्वान्! (अनर्वा) विना घोड़ों के अग्न्यादिकों से चलाये हुए विमान आदि यान के समान (त्वम्) आप (यस्मै) जिस (आयजसे) सर्वथा सुख को देने हारे जीव के लिये रक्षा को (साधति) सिद्ध करते हो (सः) वह (सुवीर्य्यम्) जिन मित्रों के काम में अच्छे-२ पराक्रम हैं उनको (दधते) धारण करता और वह (तूताव) उस को बढ़ाता भी है (एनम्) इस उत्तम गुणयुक्त पुरुष को (अंहतिः) दरिद्रता (न, अश्नोति) नहीं

प्राप्त होती (सः) वह (क्षेति) सुख में रहता है ऐसे (तव) आप के (सख्ये) मित्रपन में (वयम्) हम लोग (मा, रिषाम) दुखी न हों ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विद्वानों की सभा वा अग्निविद्या में मित्रपन प्रसिद्ध करते हैं वे पूरे शरीर तथा आत्मा के बल को पाकर सुखयुक्त रहते हैं अन्य नहीं ॥ २ ॥

शकेम त्वा समिधं साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ।
त्वमादित्याँ आ वह तान्ह्यु१श्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सब विद्याओं में प्रवीण सभाध्यक्ष ! (वयम्) हम लोग (त्वा) आपका आश्रय लेकर (समिधम्) जिससे अच्छे प्रकार प्रकाश होता है उस क्रिया को कर (शकेम) सकें (त्वम्) आप हम लोगों की (धियः) बुद्धि वा कर्मों को (साधय) सिद्ध कीजिये (त्वे) आप के होते (देवाः) विद्वान् लोग (आहुतम्) अच्छे प्रकार स्वीकार किये हुए (हविः) खाने के योग्य अन्न का (अदन्ति) भोजन करते हैं इससे आप (आदित्यान्) अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य को किये हुए ब्रह्मचारियों को (आ, वह) प्राप्त कीजिये (तान्) उन को (हि) ही हम लोग (उश्मसि) चाहते हैं ऐसे (तव) आप के (सख्ये) मित्रपन में हम लोग (मा, रिषाम) दुखी न हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वानों के सङ्ग का आश्रय लेकर विद्या और अग्निकार्यों के सिद्ध करने के लिये सहनशीलता को धारण करते हैं वे प्रबल विज्ञान और अनेक क्रियाओं से युक्त होकर सुखी होते हैं ॥ ३ ॥

भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणापर्वणा वयम् ।
जीवातवे प्रतरं साधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयन्तव ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! (पर्वणापर्वणा) पूरे पूरे साधन से (चितयन्तः) गुणों को चुनते हुए (वयम्) हम लोग (ते) आप के लिये वा इस अग्नि के लिये (हवींषि) यज्ञ के योग्य जो पदार्थ हैं उन को अच्छे प्रकार (कृणवाम) करें और (इध्मम्) इंधन (भराम) लावें आप (जीवातवे) हमारे जीवन के लिये (धियः) उत्तम बुद्धि वा कर्मों को (प्रतरम्) अति उत्तमता जैसे हो वैसे (साधय) सिद्ध करो ऐसे (तव) आपके वा इस भौतिक अग्नि के (सख्ये) मित्र पन में (वयम्) हम लोग (मा, रिषाम) मत दुःखी हों ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। सेना सभा और प्रजा के जनों में रहने हारे पुरुषों को चाहिये कि जिस सज्जन पुरुष से बुद्धि वा

पुरुषार्थ बढें उस के लिये सब सामग्री अच्छी सिद्ध करें। और उस पुरुष के साथ मित्रता को कोई भी न छोड़े ॥ ४ ॥

विशां गोपा अस्य चरन्ति जन्तवो द्विपच्च यदुत चतुष्पदक्तुभिः ।
चित्रः प्रकेत उषसो महाँ अस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥५॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) उत्तम सुखों के समझाने वाले सभा आदि कामों के अध्यक्ष ! आप के राज्य में वा उत्तम सुखों का विज्ञान कराने वाले (**अस्य**) इस जगीश्वर की सृष्टि में (**विशाम्**) प्रजाजनों के (**यत्**) जो (**गोपाः**) पालने हारे गुण वा (**जन्तवः**) मनुष्य (**चरन्ति**) विचरते हैं वा (**अक्तुभिः**) प्रसिद्ध कर्म प्रसिद्ध मार्ग और प्रसिद्ध रात्रियों के साथ (**उषसः**) दिनों को प्राप्त होते हैं वा जो (**द्विपत्**) दो पग वाले जीव (**च**) वा पगहीन सर्प आदि (**उत**) और (**चतुष्पत्**) चौपाये पशु आदि विचरते हैं तथा जो (**चित्रः**) अद्भुत गुण-कर्मस्वभाववान् (**प्रकेतः**) सब वस्तुओं को जानते हुए जगदीश्वर वा सभाध्यक्ष आप (**महान्**) उत्तमोत्तम (**असि**) हैं उन (**तव**) आप के (**सख्ये**) मित्रपन में (**वयम्**) हम लोग (**मा, रिषाम**) बेमन कभी न हों ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जिस जगदीश्वर वा सभाध्यक्ष विद्वान् के बड़प्पन से जगत् की उत्पत्ति पालना और भङ्ग होते हैं उस के मित्रपन वा मित्र के काम में कभी विघ्न न करे ॥ ५ ॥

त्वमध्वर्युरुत होतासि पूर्व्यः प्रशास्ता पोता जनुषा पुरोहितः ।
विश्वा विद्वाँ आर्त्विज्या धीर पुष्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥६॥

पदार्थ—हे (**धीर**) धारण आदि गुणयुक्त ! (**अग्ने**) उत्तम ज्ञान देने वाले परमेश्वर वा सभाध्यक्ष ! जिस कारण (**पूर्व्यः**) पिछले महाशयों के किये और चाहे हुए (**अध्वर्युः**) यज्ञ के यथोक्त व्यवहार से युक्त करने वर्त्तने और चाहने (**होता**) देने लेने (**प्रशास्ता**) धर्म उत्तम शिक्षा और उपदेश का प्रचार करने (**पोता**) पवित्र और दूसरों को पवित्र करने (**पुरोहितः**) हित प्रसिद्ध करने और (**विद्वान्**) यथावत् जानने हारे (**त्वम्**) आप (**असि**) हैं (**उत**) और (**जनुषा**) उत्पन्न हुए जगत् के साथ (**विश्वा**) समग्र (**आर्त्विज्या**) ऋत्विजों के गुणप्रकाशक कामों को (**पुष्यसि**) दृढ़ करते कराते हैं इससे (**तव**) आप के (**सख्ये**) मित्रपन में (**वयम्**) हम लोग (**मा,रिषाम**) दुःखी कभी न होवें ॥६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। सब के अधिष्ठाता जगदीश्वर वा विद्वानों के विना जगत् के पालने आदि व्यवहारों के होने का संभव

नहीं होता इससे मनुष्यों को चाहिये कि दिन रात ईश्वर की उपासना और विद्वानों का सङ्ग करके सुखी हों ॥ ६ ॥

यो विश्वतः सुप्रतीकः सदृङ्ङसि दूरे चित्सन्तडिदिवाति रोचसे ।
रात्र्याश्चिदन्धो अति देव पश्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥७॥

पदार्थ—हे (**देव**) सत्य के प्रकाश करने और (**अग्ने**) समस्त ज्ञान देने हारे सभाध्यक्ष ! जैसे (**यः**) जो (**सदृङ्**) एक से देखने वाले (**त्वम्**) आप (**सुप्रतीकः**) उत्तम प्रतीति कराने हारे (**असि**) हैं वा मूर्तिमान् पदार्थों को प्रकाशित कराने (**दूरे, चित्**) दूर ही में (**सन्**) प्रकट होते हुए सूर्य्यरूप से जैसे (**तडिदिव**) बिजुली चमके वैसे (**विश्वतः**) सब ओर से (**अति**) अत्यन्त (**रोचसे**) रुचते हैं तथा भौतिक अग्नि सूर्य्यरूप से दूर ही में प्रकट होता हुआ अत्यन्त रुचता है कि जिसके विना (**रात्र्याः**) रात्रि के बीच (**अन्धः, चित्**) अन्धे ही के समान (**अति, पश्यसि**) अत्यन्त देखते दिखलाते हैं उस अग्नि के वा (**तव**) आपके (**सख्ये**) मित्रपन में (**वयम्**) हम लोग (**मा, रिषाम**) प्रीति रहित कभी न हों ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार हैं । दूरस्थ भी सभाध्यक्ष न्यायव्यवस्थाप्रकाश से जैसे बिजुली वा सूर्य्य मूर्त्तिमान् पदार्थों को प्रकाशित करता है वैसे गुणहीन प्राणियों को अपने प्रकाश से प्रकाशित करता है उसके साथ वा उस में किस विद्वान् को मित्रता न करनी चाहिये किन्तु सब को करना चाहिये ॥ ७ ॥

पूर्वो देवा भवतु सुन्वतो रथोऽस्माकं शंसो अभ्यस्तु दूढ्यः ।
तदा जानीतोत पुष्यता वचोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ८ ॥

पदार्थ—दे (**देवाः**) विद्वानो ! तुम जिससे (**अस्माकम्**) हम लोग जो कि शिल्पविद्या को जानने की इच्छा करने हारे हैं उनका (**पूर्वः**) प्रथम सुख करने हारा (**रथः**) विमानादि यान (**दूढ्यः**) जिन को अधिकार नहीं है उन को दुःखपूर्वक विचारने योग्य (**भवतु**) हो तथा उक्त गुण वाला रथ (**शंसः**) प्रशंसनीय (**अभि**) आगे (**अस्तु**) हो (**तत्**) उस विद्या और उत्तम शिक्षा से युक्त (**वचः**) वचन की (**आ, जानीत**) आज्ञा देओ (**उत**) और उसी से आप (**पुष्यत**) पुष्ट होओ तथा हम लोगों को पुष्ट करो हे (**अग्ने**) उत्तम शिल्प विद्या के जानने हारे परमप्रवीण ! (**सुन्वतः**) सुख का निचोड़ करते हुए (**तव**) आप के वा इस भौतिक अग्नि के (**सख्ये**) मित्रपन में (**वयम्**) हम लोग (**मा, रिषाम**) दुखी कभी न हों ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । हे विद्वानो ! जिस ढङ्ग से मनुष्यों में आत्मज्ञान और शिल्पव्यवहार की विद्या प्रकाशित होकर सुख की उन्नति हो वैसा यत्न करो ॥ ८ ॥

वधैर्दुःशंसाँ अप दूढ्यो जहि दूरे वा ये अन्ति वा के चिदत्रिणः ।
अथा यज्ञाय गृणते सुगं कृध्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे सभा सेना और शाला आदि के अध्यक्ष विद्वान् ! आप जैसे (दूढ्यः) दुष्ट बुद्धियों और (दुःशंसान्) जिन की दुःखदेने हारी सिखावटें हैं उन डाकू आदि (अत्रिणः) शत्रुजनों को (वधैः) ताड़नाओं से (अप, जहि) अपघात् अर्थात् दुर्गति से दुःख देओ और शरीर (वा) वा आत्मभाव से (दूरे) दूर (वा) अथवा (अन्ति) समीप में (ये) जो (केचित्) कोई अधर्मी शत्रु वर्त्तमान हों उन को (अपि) भी अच्छी शिक्षा वा प्रबल ताड़नाओं से सीधा करो ऐसे करके (अथ) पीछे (यज्ञाय) क्रियामय यज्ञ के लिये (गृणते) विद्या की प्रशंसा करते हुए पुरुष के योग्य (सुगम्) जिस काम में विद्या पहुँचती है उस को (कृधि) कीजिये इस कारण ऐसे समर्थ (तव) आप के (सख्ये) मित्रपन में (वयम्) हम लोग (मा, रिषाम) मत दुःख पावें ॥ ९ ॥

भावार्थ—सभाध्यक्षादिकों को चाहिये कि उत्तम यत्न के साथ प्रजा में अयोग्य उपदेशों के पढ़ने पढ़ाने आदि कामों को निवार के दूरस्थ मनुष्यों को मित्र के समान मान के सब प्रकार से प्रेमभाव उत्पन्न करें जिससे परस्पर निश्चल आनन्द बढ़े ॥ ९ ॥

यदयुक्था अरुषा रोहिता रथे वातजूता वृषभस्येव ते रवः ।
आदिन्वसि वनिनो धूमकेतुनाग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १० ॥

पदार्थ—(अग्ने) समस्त शिल्पव्यवहार के ज्ञान देने वाले क्रिया चतुर विद्वन् ! जिस कारण आप (यत्) जो कि (ते) आप के वा इस अग्नि के (वृषभस्येव) पदार्थों के ले जाने हारे बलवान् बैल के समान वा (वातजूता) पवन के वेग के समान वेगयुक्त (अरुषा) सीधे स्वभाव (रोहिता) दृढ़ बल आदि युक्त घोड़े (रथे) विमान आदि यानों में जोड़ने के योग्य हैं उन को (अयुक्थाः) जुड़वाते हैं वा यह भौतिक अग्नि जुड़वाता है उस रथ से निकला जो (रवः) शब्द उसके साथ वर्त्तमान (धूमकेतुना) जिस में धूम ही पताका है उस रथ से सब व्यवहारों को (इन्वसि) व्याप्त होते हो वा यह भौतिक अग्नि उक्त प्रकार से व्यवहारों को व्याप्त होता है इससे (आत्) पीछे (वनिनः) जिन को अच्छे विभाग वा सूर्यकिरणों का सम्बन्ध है (तव) उन आप के वा जिस भौतिक अग्नि को किरणों

का सम्बन्ध है उस के (सख्ये) मित्रपन में (वयम्) हम लोग (मा, रिषाम) पीड़ित न हो ॥ १० ॥

इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार है । जिससे शिल्पी और भौतिक अग्नि सर्वहित करने वाले कामों को सिद्ध कर सकते हैं उससे विमान आदि यानों की संभावना करने को योग्य हैं ॥ १० ॥

अध॑ स्व॒नादु॒त बि॑भ्युः पत॒त्रिणो॑ द्र॒प्सा यत्ते॑ यव॒सादो॒ व्यस्थि॑रन् ।
सु॒गं तत्ते॑ ताव॒केभ्यो॒ रथे॒भ्योऽग्ने॑ स॒ख्ये मा रि॑षामा व॒यं तव॑ ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) समस्त विज्ञान देनेहारे शिल्पिन् ! (यत्) जब (ते) तुम्हारे (यवसादः) अन्नादि पदार्थों को खाने हारे (द्रप्साः) हर्षयुक्त भृत्य वा लपट आदि गुण (सुगम्) उस मार्ग को कि जिसमें सुख से जाते हैं (वि) अनेक प्रकारों से (अस्थिरन्) स्थिर होवें (तत्) तब (ते) आप के वा इस भौतिक अग्नि के (तावकेभ्यः) जो आप के वा इस अग्नि के सिद्ध किये हुए रथ हैं उन (रथेभ्यः) विमान आदि रथों से (पतत्रिणः) पक्षियों के तुल्य शत्रु (बिभ्युः) डरें (अध) उसके अनन्तर (उत) एक निश्चय के साथ ही उन रथों के (स्वनात्) शब्द से पक्षियों के समान डरे हुए शत्रु बिलाय जाते हैं ऐसे (तव) आपके वा इस अग्नि के (सख्ये) मित्रपन में (वयम्) हम लोग (मा, रिषाम) मत अप्रसन्न हों ॥ ११ ॥

भावार्थ—जब आग्नेय अस्त्र शस्त्र और विमानादि यानयुक्त सेना इकट्ठी कर शत्रुओं के जीतने के लिये वेग से जाकर शस्त्रों के प्रहार वा अच्छे आनन्दित शब्दों मे शत्रुओं के साथ मनुष्यों का युद्ध कराया जाता है तब दृढ़ विजय होता है यह जानना चाहिये । यह स्थिर दृढ़तर विजय, निश्चय है कि विद्वानों के विरोधियों अग्न्यादि विद्यारहित पुरुषों का कभी नहीं हो सकता इससे सब दिन इसका अनुष्ठान करना चाहिये ॥ ११ ॥

अ॒यं मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्य धाय॑सेऽवया॒तां म॒रुतां॒ हेळो॒ अद्भु॑तः ।
मृ॒ळा सु नो॒ भूत्वे॑षां॒ मनः॒ पुन॒रग्ने॑ स॒ख्ये मा रि॑षामा व॒यं तव॑ ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) समस्त ज्ञान देनेहारे सभा आदि के अधिपति ! जिस कारण आपने (मित्रस्य) मित्र वा (वरुणस्य) श्रेष्ठ के (धायसे) धारण वा सन्तोष के लिये जो (अयम्) यह प्रत्यक्ष (अवयाताम्) धर्मविरोधी (मरुताम्) मरने जीने वाले मनुष्यों का (अद्भुतः) अद्भुत (हेळः) अनादर किया है उससे (एषाम्) इन (नः) हम लोगों के (मनः) मन को (पुनः) बार बार

(सुमृड) अच्छे प्रकार आनन्दित करो ऐसे (भूतु) हो इससे (तव) तुम्हारे (सख्ये) मित्रपन में (वयम्) हम लोग (मा, रिषाम) मत बेमन हों ॥ १२ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि सभाध्यक्ष, को जो श्रेष्ठों का पालन और दुष्टों को ताड़ना देनी है उस को जानकर यह सदा आचरण करें ॥ १२ ॥

देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे ।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) जदीश्वर वा विद्वन् ! जिस कारण आप (अध्वरे) न छोड़ने योग्य उपासना रूपी यज्ञ वा संग्राम में (देवानाम्) दिव्यगुणों से परिपूर्ण विद्वान् वा दिव्यगुणयुक्त पदार्थों में (देवः) दिव्यगुणसंपन्न (अद्भुतः) आश्चर्य-रूप गुण कर्म और स्वभाव से युक्त (चारुः) अत्यन्त श्रेष्ठ (मित्रः) बहुत सुख करने और सब दुःखों का विनाश करने वाले (असि) हैं तथा (वसूनाम्) वसने और वसाने वाले मनुष्यों के बीच (वसुः) वसने और वसाने वाले (असि) हैं इस कारण (तव) आप के (सप्रथस्तमे) अच्छे प्रकार अति फैले हुए गुण कर्म स्वभाव के साथ वर्त्तमान (शर्मन्) सुख में (वयम्) हम लोग अच्छे प्रकार निश्चित (स्याम) हों और (तव) आप के (सख्ये) मित्रपन में कभी (मा, रिषाम) बेमन न हों ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। किसी मनुष्य को भी परमेश्वर और विद्वानों की सुख प्रकट करने वाली मित्रता अच्छे प्रकार स्थिर नहीं होती इस से इसमें हम मनुष्यों को स्थिर मति के साथ प्रवृत्त होना चाहिये ॥ १३ ॥

तत्ते भद्रं यत्समिद्धः स्वे दमे सोमाहुतो जरसे मृळयत्तमः ।
दधासि रत्नं द्रविणं च दाशुषेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) समस्त विज्ञान देने वाले ईश्वर वा विद्वन् ! (यत्) जिस कारण (स्वे) अपने (दमे) दमन किये हुए संसार में (समिद्धः) अच्छे प्रकार प्रकाशित (सोमाहुतः) और ऐश्वर्य करने वाले गुण और पदार्थों से वृद्धि को प्राप्त किये हुए अग्नि के समान (मृळयत्तमः) अत्यन्त सुख देने हारे आप सब विद्वानों से (जरसे) अर्चन पूजन को प्राप्त होते हैं वा (दाशुषे) उत्तम शील के निमित्त अपना वर्त्ताव वर्त्तते हुए मनुष्य के लिये (रत्नम्) अति रमणीय (द्रविणम्) चक्रवर्ति राज्य आदि कामों से सिद्ध धन (च) और विद्या आदि अच्छे गुणों को (दधासि) धारण करते हैं (तत्) इस कारण ऐसे (ते) आप के (भद्रम्) सुख करने वाले स्वभाव को (वयम्) हम लोग कभी (मा, रिषाम) मत भूलें किन्तु (तव) आप के (सख्ये) मित्रपन में अच्छे प्रकार स्थिर हों ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि वेदप्रमाण और संसार के वार वार होने न होने आदि व्यवहार के प्रमाण तथा सत्पुरुषों के वाक्यों से वा ईश्वर और विद्वान् के काम वा स्वभाव को जी में घर सब प्राणियों के साथ मित्रता वर्त्तकर सब दिन विद्या धर्म की शिक्षा की उन्नति करें ॥ १४ ॥

यस्मै त्वं सुद्रविणो ददाशोऽनागास्त्वमदिते सर्वताता ।
यं भद्रेण शवसा चोदयासि प्रजावता राधसा ते स्याम ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे (**सुद्रविणः**) अच्छे अच्छे धनों के देने और (**अदिते**) विनाश को न प्राप्त होने वाले जगदीश्वर वा विद्वन् ! जिस कारण (**त्वम्**) आप (**सर्वताता**) समस्त व्यवहार में (**यस्मै**) जिस मनुष्य के लिये (**अनागास्त्वम्**) निरपराधता को (**ददाशः**) देते हैं तथा (**यम्**) जिस मनुष्य को (**भद्रेण**) सुख करने वाले (**शवसा**) शारीरिक आत्मिक बल और (**प्रजावता**) जिस में प्रशंसित पुत्र आदि हैं उस (**राधसा**) विद्या सुवर्ण आदि धन से युक्त करके अच्छे व्यवहार में (**चोदयासि**) लगाते हैं इससे आप की वा विद्वानों की शिक्षा में वर्त्तमान जो हम लोग अनेकों प्रकार से यत्न करें (**ते**) वे हम इस काल में स्थिर (**स्याम**) हों ॥ १५ ॥

स त्वमग्ने सौभगत्वस्य विद्वानस्माकमायुः प्र तिरेह देव ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥१६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । जिस मनुष्य में अन्तर्यामी ईश्वर धर्मशीलता को प्रकाशित करता है वह मनुष्य विद्वानों के संग में प्रेमी हुआ सब प्रकार के धन और अच्छे अच्छे गुणों को पाकर सब दिनों सुखी होता है इस से इस काम को हम लोग भी नित्य करें ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे (**देव**) सभों को कामना के योग्य (**अग्ने**) जीवन और ऐश्वर्य्य के देने हारे जगदीश्वर ! जो (**त्वम्**) आप ने उत्पन्न किये वा रोग छूटने की ओषधियों को देनेहारे विद्वान् जो आप ने बतलाये (**मित्रः**) प्राण (**वरुणः**) उदान (**अदितिः**) उत्पन्न हुए समस्त पदार्थ (**सिन्धुः**) समुद्र (**पृथिवी**) भूमि (**उत**) और (**द्यौः**) विद्युत् का प्रकाश हैं वे (**नः**) हम लोगों को (**मामहन्ताम्**) उन्नति के निमित्त हों (**तत्**) और वह सब वृत्तान्त (**अस्माकम्**) हम लोगों को (**सौभगत्वस्य**) अच्छे अच्छे ऐश्वर्य्यों के होने का (**आयुः**) जीवन वा ज्ञान है (**इह**) इस कार्य्यरूप जगत् में (**सः**) वह (**विद्वान्**) समस्त विद्या की प्राप्ति कराने वाले जगदीश्वर आप वा प्रमाणपूर्वक विद्या देने वाला विद्वान् तुम दोनों (**प्रतिर**) अच्छे प्रकार दुःखों से तारो ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर और विद्वानों के आश्रय से पदार्थविद्या को पाकर इस संसार में सौभाग्य और आयुर्दा को वढ़ावें ॥ १६ ॥

इस सूक्त में ईश्वर सभाध्यक्ष विद्वान् और अग्नि के गुणों का वर्णन है इस से इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये ॥

यह चौरानवां सूक्त समाप्त हुआ।

आङ्गिरसः कुत्स ऋषिः। सत्यगुणविशिष्टोऽग्निः शुद्धोऽग्निर्वा देवता। १। ३ विराट् त्रिष्टुप्। २। ७। ८। ११ त्रिष्टुप्। ४। ५। ६। १० निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः धैवतः स्वरः। ९ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुप धापयेते।
हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! जो (विरूपे) उजेले और अन्धेरे से अलग अलग रूप और (स्वर्थे) उत्तम प्रयोजन वाले (द्वे) दो अर्थात् रात और दिन परस्पर (चरतः) वर्त्ताव वर्त्तते और (अन्यान्या) परस्पर (वत्सम्) उत्पन्न हुए संसार का (उपधापयेते) खान पान कराते हैं (अन्यस्याम्) दिन से अन्य रात्रि में (स्वधावान्) जो अपने गुण से धारण किया जाता वह औषधि आदि पदार्थों का रस जिस में विद्यमान है ऐसा (हरिः) उष्णता आदि पदार्थों का निवारण करने वाला चन्द्रमा (भवति) प्रकट होता है वा (अन्यस्याम्) रात्रि से अन्य दिवस होने वाली वेला में (शुक्रः) आतपवान् (सुवर्चाः) अच्छे प्रकार उजेला करने वाला सूर्य्य (ददृशे) देखा जाता है वे रात्रि दिन सर्वदा वर्त्तमान हैं इन को रेखा-गणित आदि गणित विद्या से जानकर इन के बीच उपयोग करो ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि दिन रात कभी निवृत्त नहीं होते किन्तु सर्वदा बने रहते हैं अर्थात् एक देश में नहीं तो दूसरे देश में होते हैं जो काम रात और दिन में करने योग्य हों उन को निरालस्य से करके सब कामों की सिद्धि करें ॥ १ ॥

दशेमं त्वष्टुर्जनयन्त गर्भमतन्द्रासो युवतयो विभृत्रम्।
तिग्मानीकं स्वयशसं जनेषु विरोचमानं परि षीं नयन्ति ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (अतन्द्रासः) जो एक नियम के साथ रहने से

निरालसता आदि गुणों से युक्त (युवतयः) जवान स्त्रियों के समान एक दूसरे के साथ मिलने वा न मिलने से सब कभी अजर अमर रहने वाली (दश) दश दिशा (त्वष्टुः) बिजुली वा पवन के (इमम्) इस प्रत्यक्ष अहोरात्र से प्रसिद्ध (गर्भम्) समस्त व्यवहार का कारणरूप (विभृत्रम्) जो कि अनेकों प्रकार की क्रिया को धारण किये हुए (तिग्मानीकम्) जिस में अत्यन्त तीक्ष्ण सेनाजन विद्यमान जो (जनेषु) गणितविद्या के जानने वाले मनुष्यों में (विरोचमानम्) अनेक रीति से प्रकाशमान (स्वयशसम्) अनेक गुण कर्म्म स्वभाव और प्रशंसायुक्त (सीम्) प्राप्त होने के योग्य उस दिन रात के व्यवहार को (जनयन्त) उत्पन्न करतीं और (परि) सब ओर से (नयन्ति) स्वीकार करती हैं उन को तुम लोग जानो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि जिनके देश काल का नियम अनुमान में नहीं आता ऐसी अनन्त-रूप पूर्व आदि क्रम से प्रसिद्ध सब व्यवहारों की सिद्धि कराने वाली दश दिशा हैं उन में नियमयुक्त व्यवहारों को सिद्ध करें, इनमें किसी को विरुद्ध व्यवहार न करना चाहिये ॥ २ ॥

त्रीणि जाना परि भूषन्त्यस्य समुद्र एकं दिव्येकमप्सु ।
पूर्वामनु प्र दिशं पार्थिवानामृतून् प्रशासद्वि दधावनुष्ठु ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे गणितविद्या को जानने वाले मनुष्यो ! जो दिन रात (पूर्वाम्) पूर्व (प्र, दिशम्) प्रदेश जिस का कि मनुष्य उपदेश किया करते हैं उस को (अनुष्ठु) तथा उस के अनुकूल (पार्थिवानाम्) पृथिवी और अन्तरिक्ष में विदित हुए पदार्थों के बीच (ऋतून्) वसन्त आदि ऋतुओं को (प्रशासत्) प्रेरणा देता हुआ (अनु) तदनन्तर उन का (वि, दधौ) विधान करता है (अस्य) इस दिन रात का (एकम्) एक पांव (दिवि) सूर्य्य में एक (समुद्रे) समुद्र में और (एकम्) एक (अप्सु) प्राण आदि पवनों में है तथा इस दिन रात के अङ्ग (त्रीणि) अर्थात् भूत भविष्यत् और वर्त्तमान के पृथग्भाव से उत्पन्न (जाना) मनुष्यों में हुए व्यवहारों को (परि, भूषन्ति) शोभित करते हैं इन सब को जानो ॥ ३ ॥

भावार्थ—दिन रात आदि समय के अङ्गों के वर्त्ताव के विना भूत भविष्यत् और वर्त्तमान कालों की संभावना भी नहीं हो सकती और न इन के विना किसी ऋतु के होने का सम्भव है जो सूर्य्य और अन्तरिक्ष में ठहरे हुए पवन की गति से समय के अवयव अर्थात् दिनरात्रि आदि प्रसिद्ध हैं उन सब को जान के सब मनुष्यों को चाहिये कि व्यवहारसिद्धि करें ॥ ६ ॥

क इमं वो निण्यमा चिकेत वत्सो मातृर्जनयत स्वधाभिः ।
बह्वीनां गर्भो अपसामुपस्थान्महान्कविर्निश्चरति स्वधावान् ॥ ४ ॥

पदार्थ—जो (बह्वीनाम्) अनेकों अन्तरिक्ष और भूमि तथा दिशाओं वा (अपसाम्) जलों के (उपस्थात्) समीपस्थ व्यवहार से (गर्भः) अच्छा आच्छादन करने वाला (स्वधावान्) जिस में कि प्रशंसित अपने अङ्ग विद्यमान हैं (महान्) व्याप्ति आदि गुणों से युक्त (वत्सः) किन्तु अपनी व्याप्ति से सर्वोपरि सब को ढांपने वा (कविः) क्रम क्रम से दृष्टिगत होने वाला समय (निः) (चरति) निरन्तर अर्थात् एकतार चल रहा है और (स्वधाभिः) सूर्य्य वा भूमि के साथ (मातॄः) माता के तुल्य पालने हारी रात्रियों को (जनयत) प्रकट करता है (इमम्) इस (निण्यम्) निश्चय से एक से रहने वाले समय को (कः) कौन मनुष्य (आ, चिकेत) अच्छे प्रकार जान सके (वः) इन समय के अवयवों अर्थात् क्षण घड़ी प्रहर दिन रात मास वर्ष आदि के स्वरूप को भी कौन जान सके ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को जानना चाहिये कि जिस का सूक्ष्म से सूक्ष्म बोध है जो समस्त अपने अवयवों को प्रकट करता सब कामों में व्याप्त होता जिस में सब जगत् एक रस रहता है उस समय को कोई विद्वान् जान सकता है सब कोई नहीं ॥ ४ ॥

आविष्ट्यो वर्द्धते चारुरासु जिह्मानामूर्ध्वः स्वयंशा उपस्थे ।
उभे त्वष्टुर्बिभ्यतुर्जायमानात् प्रतीची सिंहं प्रति जोषयेते ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जिस (जायमानात्) प्रसिद्ध (त्वष्टुः) छेदन करने अर्थात् सब की अवधि को पूरा करने हारे समय से (उभे) दोनों रात्रि और दिन (बिभ्यतुः) सब को डरपाते हैं वा जिस से (प्रतीची) पछांह की दिशा प्रकट होती है वा उक्त रात्रि दिन सब व्यवहारों का (प्रति, जोषयेते) सेवन तथा जो समय (उपस्थे) काम करने वालों के समीप (स्वयशाः) अपनी कीर्ति अर्थात् प्रशंसा को प्राप्त होता वा (जिह्मानाम्) कुटिलों से (ऊर्ध्वः) ऊपर ऊपर अर्थात् उन के शुभ कर्म में नहीं व्यतीत होता (आसु) इन दिशा वा प्रजाजनों में (चारुः) सुन्दर (आविष्ट्यः) प्रकट हुए व्यवहारों में प्रसिद्ध (वर्धते) और उन्नति को पाता है उस (सिंहम्) हम तुम सब को काटने हारे समय को तुम लोग यथावत् जानो ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को यह जानना चाहिये कि संसार की उत्पत्ति के समय से जो उत्पन्न हुआ अग्नि है वह छेदन गुण से ऊर्ध्वगामी अर्थात् जिस की लपट ऊपर को जाती और काष्ठ आदि पदार्थों में अपनी व्याप्ति

से बढ़ता और सूर्यरूप से दिशाओं का बोध कराने वाला है वह भी सब समय से उत्पन्न होकर समय पाकर ही नष्ट होता है ॥ ५ ॥

उभे भद्रे जोषयेते न मेने गावो न वाश्रा उप तस्थुरेवैः ।
स दक्षाणां दक्षपतिर्बभूवाञ्जन्ति यं दक्षिणतो हविर्भिः ॥ ६ ॥

पदार्थ—(भद्रे) सुख देने वाले (उभे) दोनों रात्रि और दिन (मेने) प्रीति करती हुई स्त्रियों के (न) समान (यम्) जिस समय को (जौषयेते) सेवन करते हैं (वाश्चाः) बछड़ों को चाहती हुई (गावः) गौओं के (न) समान समय के और अङ्ग अर्थात् महीने वर्ष आदि (एवैः) सब व्यवहार को प्राप्त कराने वाले गुणों के साथ (उपतस्थुः) समीपस्थ होते हैं वा (दक्षिणतः) दक्षिणायन काल के विभाग से (हविर्भिः) यज्ञसामग्री कर के जिस समय को विद्वान् जन (अञ्जन्ति) चाहते हैं (सः) वह (दक्षाणाम्) विद्या और क्रिया की कुशलताओं में चतुर विद्वान् अत्युत्तम पदार्थों में (दक्षपतिः) विद्या तथा चतुराई का पालने हारा (बभूव) होता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि रात दिन आदि प्रत्येक समय के अवयव का अच्छी तरह सेवन करें धर्म से उन में यज्ञ के अनुष्ठान आदि श्रेष्ठ व्यवहारों का ही आचरण करें और अधर्म व्यवहार वा अयोग्य काम तो कभी न करें ॥ ६ ॥

उद्यं यमीति सवितेव बाहू उभे सिचौ यतते भीम ऋञ्जन् ।
उच्छुक्रमत्कमजते सिमस्मान्नवा मातृभ्यो वसना जहाति ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (भीमः) भयङ्कर (ऋञ्जन्) सब को प्राप्त होता हुआ काल (मातृभ्यः) मान करने हारे क्षण आदि अपने अवयवों से (सवितेव) जैसे सूर्य्यलोक अपनी आकर्षणशक्ति से भूगोल आदि लोकों का धारण करता है वैसे (उद्यंयमीति) वार वार नियम रखता है (बाहू) बल और पराक्रम वा (उभे) सूर्य्य और पृथिवी (सिचौ) वा वर्षा के द्वारा सींचने वाले पवन और अग्नि को (यतते) व्यवहार में लाता है वह काल (अत्कम्) निरन्तर (शुक्रम्) पराक्रम को (सिमस्मात्) सब जगत् से (उद्) ऊपर की श्रेणी को (अजते) पहुँचाता और (नवा) नवीन (वसना) आच्छादनों को (जहाति) छोड़ता है यह जानो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! तुम लोगों को जिस काल से सूर्य आदि जगत् प्रकट होता है और जो क्षण आदि अङ्गों से

सब का आच्छादन करता सब के नियम का हेतु वा सब की प्रवृत्ति का अधिकरण है उस को जान के समय समय पर काम करने चाहियें ॥ ७ ॥

त्वेषं रूपं कृणुत उत्तरं यत्संपृञ्चानः सदने गोभिरद्भिः ।
कविर्बुध्नं परि मर्मृज्यते धीः सा देवताता समितिर्बभूव ॥ ८ ॥

पदार्थ—मनुष्यों को चाहिये (यत्) जो (संपृञ्चानः) अच्छा परिचय करता कराता हुआ (कविः) जिस का क्रम से दर्शन होता है यह समय (सदने) भुवन में (गोभिः) सूर्य्य की किरणों वा (अद्भिः) प्राण आदि पवनों से (उत्तरम्) उत्पन्न होने वाले (त्वेषम्) मनोहर (बुध्नम्) प्राण और बल सम्बन्धी विज्ञान और (रूपम्) स्वरूप को (कृणुते) करता है तथा जो (धीः) उत्तम बुद्धि वा क्रिया (परि) (मर्मृज्यते) सब प्रकार से शुद्ध होती है (सा) वह (देवताता) ईश्वर और विद्वानों के साथ (समितिः) विशेष ज्ञान की मर्यादा (बभूव) होती है इस समस्त उक्त व्यवहार को जानकर बुद्धि को उत्पन्न करें ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि काल के विना कार्य्य स्वरूप उत्पन्न होकर और नष्ट होजाय यह होता ही नहीं और न ब्रह्मचर्य्य आदि उत्तम समय के सेवन विना शास्त्रबोध कराने वाली बुद्धि होती है इस कारण काल के परमसूक्ष्म स्वरूप को जानकर थोड़ा भी समय व्यर्थ न खोवें, किन्तु आलस्य छोड़ के समय के अनुकूल व्यवहार और परमार्थ काम का सदा अनुष्ठान करें ॥ ८ ॥

उरु ते ज्रयः पर्य्येति बुध्नं विरोचमानं महिषस्य धाम ।
विश्वेभिरग्ने स्वयशोभिरिद्धोऽदब्धेभिः पायुभिः पाह्यस्मान् ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वन् ! (ते) आप के सम्बन्ध से जैसे सूर्य्य वैसे (इद्धः) प्रकाशमान हुआ समय (विश्वेभिः) समस्त (स्वयशोभिः) अपने प्रशंसित गुण कर्म और स्वभावों से (अदब्धेभिः) वा किसी से न मिट सकें ऐसे (पायुभिः) अनेक प्रकार के रक्षा आदि व्यवहारों से युक्त (विरोचमानम्) विविध प्रकार से प्रकाशमान (बुध्नम्) प्रथम कहे हुए अन्तरिक्ष को (उरु) वा बहुत (ज्रयः) जिस से आयुर्दा व्यतीत करते हैं उस वृत्त को वा (अस्मान्) हम लोगों को और (महिषस्य) बड़े लोक के (धाम) स्थानान्तर को (पर्येति) पर्य्याय से प्राप्त होता है वैसे हमारी (पाहि) रक्षा कर और उस की सेवा कर ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को यह जानना चाहिये कि समय के विना सूर्य्य आदि कार्य्य जगत् का वार वार वर्त्ताव नहीं होता और न उनसे अलग हम लोगों का कुछ भी काम अच्छी प्रकार होता है ॥ ९ ॥

धन्वन्त्स्रोतः कृणुते गातुमूर्मिं शुक्रैरूर्मिभिरभि नक्षति क्षाम्।
विश्वा सनानि जठरेषु धत्तेऽन्तर्नवासु चरति प्रसूषु॥ १०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! जो समय वा बिजुलीरूप आग (धन्वन्) अन्तरिक्ष में (स्रोतः) जिस से और और वस्तु वा जल प्राप्त होते हैं उस (गातुम्) प्राप्त होने योग्य (ऊर्मिम्) प्रातःसमय की वेला वा जल की तरङ्ग को (कृणुते) प्रकट करता है वा (शुक्रैः) शुद्ध क्रम वा किरणों और (ऊर्मिभिः) पदार्थ प्राप्त कराने हारे तरङ्गों से (क्षाम्) भूमि को भी (अभि, नक्षति) सब ओर से व्याप्त और प्राप्त होता है वा जो (जठरेषु) भीतरले व्यवहारों और पेट के भीतर अन्न आदि पचाने के स्थानों में (विश्वा) समस्त (सनानि) न्यारे न्यारे पदार्थों को (धत्ते) स्थापित करता वा जो (प्रसूषु) पदार्थ उत्पन्न होते हैं उन में वा (नवासु) नवीन प्रजाजनों में (अन्तः) भीतर (चरति) विचरता है उसको यथावत् जानो॥ १०॥

भावार्थ—आप्त विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि व्यापनशील काल और विजुलीरूप अग्नि को जानकर उनके निमित्त से अनेक कामों को यथावत् सिद्ध करें॥ १०॥

एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत्पावक श्रवसे वि भाहि।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥११॥

पदार्थ—हे (पावक) पवित्र (अग्ने) विद्वन्! समय और बिजुली रूप भौतिक अग्नि (नः) हम लोगों के (समिधा) अच्छे प्रकाश को प्राप्त किये हुए अपने भाव से वा इन्धन आदि (वृधानः) बढ़ता वा वृद्धि करता हुआ जिस (रेवत्) परम उत्तम धनवान् (श्रवसे) सुनने तथा अन्न के लिये (एव) ही अनेक प्रकार से प्रकाशित होता है (उत) और (तत्) इस से (मित्रः) प्राण (वरुणः) उदान (अदितिः) अन्तरिक्ष आदि (सिन्धुः) समुद्र (पृथिवी) भूमि वा (द्यौः) विजुली का प्रकाश (नः) हम लोगों को (मामहन्ताम्) वृद्धि देते हैं वैसे आप हम लोगों को (वि, भाहि) प्रकाशित करो वा काल वा भौतिक अग्नि प्रकाशित होता है॥ ११॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। काल और भौतिक अग्नि की विद्या के विना किसी को विद्यायुक्त धन नहीं हो सकता और न कोई समय के अनुकूल वर्त्ताव वर्त्तने के विना प्राणादिकों से उपकार यथावत् ले सकता है इससे इस समस्त उक्त व्यवहार को जान के सब कार्य्य की सिद्धि कर सदा आनन्द करना चाहिये॥ ११॥

इस सूक्त में काल और अग्नि के गुणों के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है ऐसा जानना चाहिये ॥

यह पचानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

आङ्गिरसः कुत्स ऋषिः । द्रविणोदा अग्निः शुद्धोऽग्निर्वा देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

स प्रत्नथा सहसा जायमानः सद्यः काव्यानि बळधत्त विश्वा ।
आपश्च मित्रं धिषणा च साधन्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥१॥

पदार्थ—जो (देवाः) विद्वान् लोग (द्रविणोदाम्) द्रव्य के देने हारे (अग्निम्) परमेश्वर वा भौतिक अग्नि को (धारयन्) धारण करते कराते हैं वे सब कामों को (साधन्) सिद्ध करते वा कराते हैं उन के (आपः) प्राण (च) और विद्या पढ़ाना आदि काम (मित्रम्) मित्र (धिषणा, च) और बुद्धि हस्तक्रिया से सिद्ध होती है जो मनुष्य (सहसा) बल से (प्रत्नथा) प्राचीनों के समान (जायमानः) प्रकट होता हुआ (विश्वा) समस्त (काव्यानि) विद्वानों के किये काव्यों को (सद्यः) शीघ्र (बट्) यथावत् (अधत्त) धारण करता है (सः) वह विद्वान् और सुखी होता ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्य ब्रह्मचर्य्य से विद्या की प्राप्ति के विना कवि नहीं हो सकता और न कविताई के विना परमेश्वर वा बिजुली को जानकर कार्य्यों को कर सकता है इससे उक्त ब्रह्मचर्य्य आदि नियम का अनुष्ठान नित्य करना चाहिये ॥ १ ॥

स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम् ।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ २ ॥

पदार्थ—मनुष्यों को जो (पूर्वया) प्राचीन (निविदा) वेदवाणी (कव्यता) जिससे कि कविताई आदि कामों का विस्तार करें उस से (मनूनाम्) विचारशील पुरुषों के समीप (आयोः) सनातन कारण से (इमाः) इन प्रत्यक्ष (प्रजाः) उत्पन्न होने वाले प्रजा जनों को (अजनयन्) उत्पन्न करता है वा (विवस्वता) (चक्षसा) सब पदार्थों को दिखाने वाले सूर्य्य से (द्याम्) प्रकाश (अपः) जल (च) पृथिवी वा ओषधि आदि पदार्थों तथा जिस (द्रविणोदाम्) धन देने वाले (अग्निम्) परमेश्वर को (देवाः) आप्त विद्वान् जन (धारयन्) धारण करते हैं (सः) वह नित्य उपासना करने योग्य है ॥ २ ॥

भावार्थ—ज्ञानवान् अर्थात् जो चेतनायुक्त है उस के विना उत्पन्न किये कुछ जड़ पदार्थ कार्य्य करने वाला आप नहीं उत्पन्न हो सकता इससे समस्त जगत् के उत्पन्न करने हारे सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर को सब मनुष्य मानें अर्थात् तृणमात्र जो आप से नहीं उत्पन्न हो सकता तो यह कार्य्य जगत् कैसे उत्पन्न हो सके इस से इस को उत्पन्न करने वाला जो चेतनरूप है वही परमेश्वर है ॥ २ ॥

तमीळ्त प्रथमं यज्ञसाधं विश आरीराहुतमृञ्जसानम् ।
ऊर्जः पुत्रं भरतं सृप्रदानुं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**प्रथमम्**) समस्त उत्पन्न जगत् के पहिले वर्त्तमान (**यज्ञसाधम्**) विज्ञान योगाभ्यासादि यज्ञों से जाना जाता (**ऋञ्जसानम्**) विवेक आदि साधनों से अच्छे प्रकार सिद्ध किया जाता (**आहुतम्**) विद्वानों से सत्कार को प्राप्त (**आरीः**) प्राप्त होने योग्य (**विशः**) प्रजाजनों और (**भरतम्**) धारण वा पुष्टि करने वाला (**सृप्रदानुम्**) जिस से कि ज्ञान देना बनता है उस (**ऊर्जः**) कारण रूप पवन से (**पुत्रम्**) प्रसिद्ध हुए प्राण को उत्पन्न करने और (**द्रविणोदाम्**) धन आदि पदार्थों के देने वाले (**अग्निम्**) जगदीश्वर को (**देवाः**) विद्वान् जन (**धारयन्**) धारण करते वा कराते हैं (**तम्**) उस परमेश्वर की तुम नित्य (**ईळत**) स्तुति करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे जिज्ञासु अर्थात् परमेश्वर का विज्ञान चाहने वाले मनुष्यो ! तुम जिस ईश्वर ने सब जीवों के लिये सब सृष्टियों को उत्पन्न करके प्राप्त किई हैं वा जिसने सृष्टि धारण करने हारा पवन और सूर्य रचा है उस को छोड़ के अन्य किसी की कभी ईश्वरभाव से उपासना मत करो ॥ ३ ॥

स मातरिश्वा पुरुवारपुष्टिर्विदद् गातुं तनयाय स्वर्वित् ।
विशां गोपा जनिता रोदस्योर्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जिस ईश्वर ने (**तनयाय**) अपने पुत्र के समान जीव के लिये (**स्वर्वित्**) सुख को पहुँचाने हारा (**गातुम्**) वाणी को (**विदत्**) प्राप्त कराया (**पुरुवारपुष्टिः**) जिससे अत्यन्त समस्त व्यवहार के स्वीकार करने की पुष्टि होती है वह (**मातरिश्वा**) अन्तरिक्ष में सोने और बाहर भीतर रहने वाला पवन बनाया है जो (**विशाम्**) प्रजाजनों का (**गोपाः**) पालने और (**रोदस्योः**) उजेले अन्धेरे को वर्त्ताने हारे लोकसमूहों का (**जनिता**) उत्पन्न करने वाला है जिस (**द्रविणोदाम्**) धन देने वाले के तुल्य (**अग्निम्**) जगदीश्वर

को (देवाः) उक्त विद्वान् जन (धारयन्) धारण करते वा कराते हैं (सः) वह सब दिन इष्टदेव मानने योग्य है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। पवन के निमित्त के विना किसी की वाणी प्रवृत्त नहीं हो सकती न किसी की पुष्टि होने के योग्य और न ईश्वर के विना इस जगत् की उत्पत्ति और रक्षा के होने की संभावना है ॥ ४ ॥

नक्तोषासा वर्णमामेम्याने धापयेते शिशुमेकं समीची ।
द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्विभाति देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्य लोगो ! जिस की सृष्टि में (वर्णम्) स्वरूप अर्थात् उत्पन्न मात्र को (आमेम्याने) बार बार विनाश न करते हुए (समीची) संग को प्राप्त (नक्तोषासा) रात्रि दिवस वा (द्यावाक्षामा) सूर्य्य और भूमि लोक को (शिशुम) बालक को (धापयेते) दुग्धपान कराने वाले माता पिता के समान रस आदि का पान करवाते हैं जिस की उत्पन्न की बिजुली से युक्त (रुक्मः) आप ही प्रकाशस्वरूप प्राण (अन्तः) सब के बीच (वि, भाति) विशेष प्रकाश को प्राप्त होता है जिस (द्रविणोदाम्) धनादि पदार्थ देने हारे के समान (एकम्) अद्वितीयमात्र स्वरूप (अग्निम्) परमेश्वर को (देवाः) आप्त विद्वान् जन (धारयन्) धारण करते वा कराते हैं वही सब का पिता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे दूध पिलाने हारे बालक के समीप में स्थित दो स्त्रियां उस बालक को दूध पिलाती हैं वैसे ही दिन और रात्रि तथा सूर्य और पृथिवी हैं जिस के नियम से ऐसा होता है वह सब का उत्पन्न करने वाला कैसे न हो ॥ ५ ॥

रायो बुध्नः सङ्गमनो वसूनां यज्ञस्य केतुर्मन्मसाधनो वेः ।
अमृतत्वं रक्षमाणास एनं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (वेः) मनोहर (यज्ञस्य) अच्छे प्रकार समझाने योग्य विद्याबोध को (बुध्नः) समझाने और (केतुः) सब व्यवहारों को अनेक प्रकारों से चिताने वाला (मन्मसाधनः) वा विचारयुक्त कामों को सिद्ध कराने तथा (रायः) विद्या चक्रवर्त्ति राज्य धन और (वसूनाम्) तेंतीस देवताओं में अग्नि पृथिवी आदि आठ देवताओं का (संगमनः) अच्छे प्रकार प्राप्त कराने वाला है वा (अमृतत्वम्) मोक्ष मार्ग को (रक्षमाणासः) राखे हुए (देवाः) आप्त विद्वान् जन जिस (द्रविणोदाम्) धन आदि पदार्थ देने वाले के समान सब जगत् को देने

हारे (अग्निम्) परमेश्वर को (धारयन्) धारण करते वा कराते हैं (एनम्), उसी को तुम लोग इष्ट देव मानो ॥ ६ ॥

भावार्थ—जीवनमुक्त अर्थात् देहाभिमान आदि को छोड़े हुए वा शरीरत्यागी मुक्तविद्वान् जन जिस का आश्रय करके आनन्द को प्राप्त होते हैं वही ईश्वर सब के उपासना करने योग्य है ॥ ६ ॥

नू च॑ पु॒रा च॒ सद॑नं रयी॒णां जा॒तस्य॑ च॒ जाय॑मानस्य च॒ क्षाम् ।
स॒तश्च॑ गो॒पां भव॑तश्च॒ भूरे॑र्दे॒वा अ॒ग्निं धा॑रयन्द्रविणो॒दाम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस को (देवाः) विद्वान् जन (नु) शीघ्र और (च) विलम्ब से वा (पुरा) कार्य्य से पहले (च) और बीच में (रयीणाम्) वर्त्तमान पृथिवी आदि कार्य द्रव्यों के (सदनम्) उत्पत्ति स्थिति और विनाश के निमित्त वा (जातस्य) उत्पन्न कार्यजगत् के (च) नाश होने तथा (जायमानस्य) कल्प के अन्त में फिर उत्पन्न होने वाले कार्यरूप जगत् के (च) फिर इसी प्रकार जगत् के उत्पन्न और विनाश होने में (क्षाम्) अपनी व्याप्ति से निवास के हेतु वा (भूरेः) व्यापक (सतः) अनादिवर्त्तमान विनाशरहित कारण-रूप तथा (च) कार्यरूप (भवतः) वर्त्तमान (च) भूत और भविष्यत् उक्त जगत् के (गोपाम्) रक्षक और (द्रविणोदाम्) धन आदि पदार्थों को देने वाले (अग्निम्) जगदीश्वर को (धारयन्) धारण करते वा कराते हैं उसी एक सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर को धारण करो वा कराओ ॥ ७ ॥

भावार्थ—भूत भविष्यत् और वर्त्तमान इन तीन कालों का ईश्वर से विना जानने वाला प्रभु कार्य कारण वा पापी और पुण्यात्मा जनों के कामों की व्यवस्था करने वाला अन्य कोई पदार्थ नहीं है यह सब मनुष्यों को मानना चाहिये ॥ ७ ॥

द्र॒वि॒णो॒दा द्रवि॑णसस्तु॒रस्य॑ द्रवि॒णोदाः सन॑रस्य॒ प्र यं॑सत् ।
द्र॒वि॒णो॒दा वी॒रव॑ती॒मिषं॑ नो द्रवि॒णोदा रा॑सते दी॒र्घमायुः॑ ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (द्रविणोदाः) धन आदि पदार्थों का देने वाला (तुरस्य) शीघ्र सुख करने वाले (द्रविणसः) द्रव्यसमूह के विज्ञान को (प्र, यंसत्) नियम में रक्खे वा जो (द्रविणोदाः) पदार्थों का विभाग जताने वाला (सनरस्य) एक दूसरे से जो अलग किया जाय उस पदार्थ वा व्यवहार के विज्ञान को नियम में रक्खे वा जो (द्रविणोदाः) शूरता आदि गुणों का देने वाला (वीरवतीम्) जिससे प्रशंसित वीर होवें उस (इषम्) अन्नादि प्राप्ति की चाहना को नियम में रक्खें वा जो (द्रविणोदाः) आयुर्वेद अर्थात् वैद्यकशास्त्र का देने वाला

(नः) हम लोगों के लिये (दीर्घम्) बहुत समय तक (आयुः) जीवन (रासते) देवे उस ईश्वर की सब मनुष्य उपासना करें ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जिस परम गुरु परमेश्वर ने वेद के द्वारा सर्व पदार्थों का विशेष ज्ञान कराया है उसका आश्रय करके यथायोग्य व्यवहारों का अनुष्ठान कर धर्म, अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि के लिये बहुत काल पर्य्यन्त जीवन की रक्षा करो ॥ ८ ।

एवा नो॑ अग्ने स॒मिधा॑ वृधा॒नो रे॒वत्पा॑वक॒ श्रव॑से॒ वि भा॑हि ।

तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑तिः॒ सिन्धुः॑ पृथि॒वी उ॒त द्यौः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (पावक) आप पवित्र और संसार को पवित्र करने तथा (अग्ने) समस्त मंगल प्रकट करने वाले परमेश्वर ! (समिधा) जिससे समस्त व्यवहार प्रकाशित होते हैं उस वेदविद्या से (वृधानः) नित्य वृद्धियुक्त जो आप (नः) हम लोगों को (रेवत्) राज्य आदि प्रशंसित श्रीमान् के लिये वा (श्रवसे) समस्त विद्या की सुनावट और अन्नों की प्राप्ति के लिये (एव) ही (वि, भाहि) अनेक प्रकार से प्रकाशमान कराते हैं (तत्) उन आप के बनाये हुए (मित्रः) ब्रह्मचर्य्य के नियम से बल को प्राप्त हुआ प्राण (वरुणः) ऊपर को उठाने वाला उदान वायु (अदितिः) अन्तरिक्ष (सिन्धुः) समुद्र (पृथिवी) भूमि (उत) और (द्यौः) प्रकाशमान सूर्य्य आदि लोक (नः) हम लोगों के (मामहन्ताम्) सत्कार के हेतु हों ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिसकी विद्या के विना यथार्थ विज्ञान नहीं होता वा जिसने भूमि से ले के आकाशपर्यन्त सृष्टि बनाई है और हम लोग जिसकी उपासना करते हैं तुम लोग भी उसी की उपासना करो ॥ ९ ॥

इस सूक्त में अग्नि शब्द के गुणों के वर्णन से इस के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिये ।

यह छानवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

आङ्गिरसः कुत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ७ । ८ पिपीलिकामध्यानिचृद् गायत्री । २ । ४ । ५ गायत्री । ३ । ६ निचृद्गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घमग्ने॑ शुशु॒ग्ध्या र॒यिम् । अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम् ॥१॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सभापते ! आप (नः) हम लोगों के (अघम्) रोग और आलस्यरूपी पाप का (अप, शोशुचत्) बार बार निवारण कीजिये (रयिम्)

धन को (आ) अच्छे प्रकार (शुशुग्धि) शुद्ध और प्रकाशित कराइये तथा (नः) हम लोगों के (अघम्) मन वचन और शरीर से उत्पन्न हुए पाप की (अप,-शोशुचत्) शुद्धि के अर्थ दण्ड दीजिये ॥ १ ॥

भावार्थ—सभाध्यक्ष को चाहिये कि सब मनुष्यों के लिये जो जो उनका अहितकारक कर्म और प्रसाद है उसको मेट के निरालस्यपन से धन की प्राप्ति करावे ॥ १ ॥

सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे । अप नः शोशुचदघम् ॥२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सभाध्यक्ष ! जिन आप को (वसूया) जिससे अपने को धनों की चाहना हो (सुगातुया) जिस में अच्छी पृथिवी हो और (सुक्षे-त्रिया) नाज बोने को जो कि अच्छा खेत हो वह जिस नीति से हो उस से (च) तथा शस्त्र तथा अस्त्र बांधने वाली सेना से हम लोग (यजामहे) संग देते हैं वे आप (नः) हम लोगों के (अघम्) दुष्ट व्यसन को (अपशोशुचत्) दूर कीजिये ॥ २ ॥

भावार्थ—पिछले मन्त्र से (अग्ने) इस पद की अनुवृत्ति आती है। सभाध्यक्ष को चाहिये कि शान्तिवचन कहने दुष्टों को दण्ड देने और शत्रुओं को परस्पर फूट कराने की क्रियाओं से नीति को अच्छे प्रकार प्राप्त हो के प्रजाजनों के दुःख को नित्य दूर करने के लिये उद्यम करे प्रजाजन भी ऐसे पुरुष ही को सभाध्यक्ष करें ॥ २ ॥

प्र यद् भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः । अप नः शोशुचदघम् ॥३॥

पदार्थ—हे अग्ने सभापते ! (यत्) जिन आप की सभा में (एषाम्) इन मनुष्य आदि प्रजाजनों के बीच (अस्माकासः) हम लोगों में से (प्र, सूरयः) अत्यन्त बुद्धिमान् विद्वान् (च) और वीर पुरुष हैं वे सभासद् हों (भन्दिष्ठः) अति कल्याण करते हारे आप (नः) हम लोगों के (अघम्) शत्रुजन्य दुःखरूप पाप को (प्र, अप, शोशुचत्) दूर कीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में भी (अग्ने) इस पद की अनुवृत्ति आती है । जब विद्वान् सभा आदि के अधीश आप्त अर्थात् प्रामाणिक सत्य वचन को कहने वाले सभासद् और आत्मिक शारीरिक बल से परिपूर्ण सेवक हों तब राज्यपालन और विजय अच्छे प्रकार होते हैं इस से उलटे पन में उलटा ही ढङ्ग होता है ॥ ३ ॥

प्र यत्ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम् । अप नः शोशुचदघम् ॥४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) आप उत्तर प्रत्युत्तर से कहने वाले (यत्) जिन (ते)

आप के जैसे (सूरयः) पूरि विद्या पढ़े हुए विद्वान् सभासद् हैं उन (ते) आप के वैसे ही (वयम्) हम लोग भी (प्र, जायेमहि) प्रजाजन हों और ऐसे तुम (नः) हम लोगों के (अघम्) विरोधरूप पाप को (प्र, अप, शोशुचत्) अच्छे प्रकार दूर कीजिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस संसार में जैसे धर्मिष्ठ सभा आदि के अधीश मनुष्य हों वैसे ही प्रजाजनों को भी होना चाहिये ॥ ४ ॥

प्र यद॒ग्नेः सह॑स्वतो वि॒श्वतो॒ यन्ति॑ भा॒नवः॑ । अप॑ नः॒ शोशु॑चद॒घम् ॥५॥

पदार्थ— हे विद्वानो ! तुम (यत्) जिस (सहस्वतः) प्रशंसित बलवाले (अग्नेः) भौतिक अग्नि की (भानवः) उजेला करती हुई किरण (विश्वतः) सब जगह से (प्रयन्ति) फैलाती हैं वा जो (नः) हम लोगों के (अघम्) दरिद्र-पन को (अप, शोशुचत्) दूर करता है उस को कामों में अच्छे प्रकार जोड़ो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मूर्त्तिमान् विजुली के विना ऐसा कोई पदार्थ नहीं कि जो अलग हो अर्थात् सब में बिजुली व्याप्त है और जो भौतिक अग्नि शिल्प-विद्या से कामों में लगाया हुआ धन इकट्ठा करने वाला होता है वह मनुष्यों को अच्छे प्रकार जानना चाहिये ॥ ५ ॥

त्वं हि वि॑श्वतोमुख वि॒श्वतः॑ परि॒भूरसि॑ । अप॑ नः॒ । शोशु॑चद॒घम् ॥६॥

पदार्थ—हे (विश्वतोमुख) सब में व्याप्त होने और अन्तर्यामीपन से सब को शिक्षा देने वाले जगदीश्वर ! जिस कारण (त्वं, हि) आप ही (विश्वतः) सब ओर से (परिभूः) सब के ऊपर विराजमान (असि) हैं इससे (नः) हम लोगों के (अघम्) दुष्ट स्वभाव संगरूप पाप को (अप, शोशुचत्) दूर करा-इये ॥ ६ ॥

भावार्थ—सत्य सत्य प्रेमभाव से प्रार्थना को प्राप्त हुआ अन्तर्यामी जगदीश्वर मनुष्यों के आत्मा में जो सत्य सत्य उपदेश से उन मनुष्यों को पाप से अलग कर शुभ गुण कर्म और स्वभाव में प्रवृत्त करता है इससे यह नित्य उपासना करने योग्य है ॥ ६ ॥

द्विषो॑ नो विश्वतोमु॒खाति॑ ना॒वेव॑ पारय । अप॑ नः॒ शोशु॑च॒दघम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (विश्वतोमुख) सब से उत्तम ऐश्वर्य से युक्त परमात्मन् ! आप (नावेव) जैसे नाव से समुद्र के पार हों वैसे (नः) हम लोगों को (द्विषः) जो धर्म से द्वेष करने वाले अर्थात् उससे विरुद्ध चलने वाले उन से (अति, पारय) पार पहुँचाइये और (नः) हम लोगों के (अघम्) शत्रुओं से उत्पन्न हुए दुःख को (अप शोशुचत्) दूर कीजिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे न्यायाधीश नाव में बैठा कर समुद्र के पार वा निर्जन जङ्गल में डाकुओं को रोक के प्रजा की पालना करता है वैसे ही अच्छे प्रकार उपासना को प्राप्त हुआ ईश्वर अपनी उपासना करने वालों के काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक रूपी शत्रुओं को शीघ्र निवृत्त कर जितेन्द्रियपन आदि गुणों को देता है ॥ ७ ॥

स नः सिन्धुमिव नावयाति पर्षा स्वस्तये। अप नः शोशुचदघम् ॥८॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! (सः) सो आप कृपा करके (नः) हम लोगों के (स्वस्तये) सुख के लिये (नावया) नाव से (सिन्धुमिव) जैसे समुद्र को पार होते हैं वैसे दुःखों के (अति, पर्ष) अत्यन्त पार कीजिये (नः) हम लोगों के (अघम्) अशान्ति और आलस्य को (अप, शोशुचत) निरन्तर दूर कीजिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है जसे पार करने वाला मल्लाह सुखपूर्वक मनुष्य आदि को नाव से समुद्र के पार करता है वैसे तारने वाला परमेश्वर विशेष ज्ञान से दुःखसागर से पार करता और वह शीघ्र सुखी करता है ॥ ८ ॥

इस सूक्त में सभाध्यक्ष अग्नि और ईश्वर के गुणों के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सत्तानवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

आङ्गिरसः कुत्स ऋषिः। वैश्वानरो देवता। १ विराट्त्रिष्टुप्। २ त्रिष्टुप्। ३ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥ १ ॥

पदार्थ—जो (वैश्वानरः) समस्त जीवों को यथायोग्य व्यवहारों में वर्त्ताने वाला ईश्वर वा जाठराग्नि (वा इतः) कारण से (जातः) प्रसिद्ध हुए (इदम्) इस प्रत्यक्ष (कम्) सुख को (विश्वम्) वा समस्त जगत् को (विचष्टे) विशेष भाव से दिखलाता है और जो (सूर्येण) प्राण वा सूर्यलोक के साथ (यतते) यत्न करने वाला होता है वा जो (भुवनानाम्) लोकों का (अभिश्रीः) सब प्रकार से धन है तथा जिस भौतिक अग्नि से सब प्रकार का धन होता है वा (राजा)

जो न्यायाधीश सब का अधिपति है तथा प्रकाशमान बिजुलीरूप अग्नि है उस (**वैश्वानरस्य**) समस्त पदार्थ को देने वाले ईश्वर का भौतिक अग्नि की (**सुमतौ**) श्रेष्ठ मति में अर्थात् जो कि अत्यन्त उत्तम अनुपम ईश्वर की प्रसिद्ध किई हुई मति वा भौतिक अग्नि से अतीव प्रसिद्ध हुई मति उस में (**हि**) ही (**वयम्**) हम लोग (**स्याम**) स्थिर हों ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जो सब से बड़ा व्याप्त होकर सब जगत् को प्रकाशित करता है उसी के अति उत्तम गुणों से प्रसिद्ध उस की आज्ञा में नित्य प्रवृत्त होओ तथा जो सूर्य्य आदि को प्रकाश करने वाला अग्नि है उस की विद्या की सिद्धि में भी प्रवृत्त होओ इस के विना किसी मनुष्य को पूर्ण धन नहीं हो सकते ॥ १ ॥

पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीरा विवेश ।
वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥२॥

पदार्थ—जो (**अग्निः**) ईश्वर वा भौतिक अग्नि (**दिवि**) दिव्यगुण सम्पन्न जगत् में (**पृष्टः**) विद्वानों के प्रति पूछा जाता वा जो (**पृथिव्याम्**) अन्तरिक्ष वा भूमि में (**पृष्टः**) पूछने योग्य है वा जो (**पृष्टः**) पूछने योग्य (**वैश्वानरः**) सब मनुष्यमात्र को सत्यव्यवहार में प्रवृत्त करानेहारा (**अग्निः**) ईश्वर और भौतिक अग्नि (**विश्वा**) समस्त (**ओषधीः**) सोमलता आदि ओषधियों में (**आ, विवेश**) प्रविष्ट हो रहा और (**सहसा**) बल आदि गुणों के साथ वर्त्तमान (**पृष्टः**) पूछने योग्य है वह (**नः**) (**सः**) हम लोगों को (**दिवा**) दिन में (**रिषः**) मारने वाले से और (**नक्तम्**) रात्रि में मारने वाले से (**पातु**) बचावे वा भौतिक अग्नि बचाता है ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के समीप जाकर ईश्वर वा बिजुली आदि अग्नि के गुणों को पूछ कर ईश्वर की उपासना और अग्नि के गुणों से उपकारों का आश्रय कर के हिंसा में न ठहरें ॥ २ ॥

वैश्वानर तव तत्सत्यमस्त्वस्मान्रायो मघवानः सचन्ताम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (**वैश्वानर**) सब मनुष्यों में विद्या का प्रकाश करनेहारे ईश्वर वा विद्वान् ! जो (**तव**) आप का (**सत्यम्**) सत्य शील है (**तत्**) वह (**अस्मान्**) हम लोगों को प्राप्त (**अस्तु**) हो जो ((**मित्रः**) मित्र (**वरुणः**) उत्तम गुणयुक्त स्वभाव वाला मनुष्य (**अदितिः**) समस्त विद्वान् जन (**सिन्धुः**) अन्तरिक्ष में ठहरने वाला जल (**पृथिवी**) भूमि और (**द्यौः**) बिजुली का प्रकाश

(मामहन्ताम्) उन्नति देवे (तत्) वह ऐश्वर्य्य (नः) हम लोगों को प्राप्त हो वा (मघवानः) जिनके परम सत्कार करने योग्य विद्या धन हैं वे विद्वान् वा राजा लोग जिन (रायः) विद्या और राज्यश्री को (सचन्ताम्) निःसन्देह युक्त करें उन को हम लोग (उत) और भी प्राप्त हों ॥ ३ ॥

भावार्थ—ईश्वर और विद्वानों की उत्तेजना से सत्यशील धर्मयुक्त धन धार्मिक मनुष्य और क्रिया कौशलयुक्त पदार्थविद्याओं को पुरुषार्थ से पाकर समस्त सुख के लिये अच्छे प्रकार यत्न करें ॥ ३ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों से सम्बन्ध रखने वाले कर्म के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ की साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह अट्ठानवां सूक्त पूरा हुआ ॥

मरीचिपुत्रः कश्यप ऋषिः । जातवेदा अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ १ ॥

पदार्थ—जिस (**जातवेदसे**) उत्पन्न हुए चराचर जगत् को जानने और प्राप्त होने वाले वा उत्पन्न हुए सर्व पदार्थों में विद्यमान जगदीश्वर के लिए हम लोग (**सोमम्**) समस्त ऐश्वर्य्ययुक्त सांसारिक पदार्थों का (**सुनवाम**) निचोड़ करते हैं अर्थात् यथायोग्य सब को वर्त्तते हैं और जो (**अरातीयतः**) अधर्मियों के समान वर्त्ताव रखने वाले दुष्ट जन के (**वेदः**) धन को (**नि, दहाति**) निरन्तर नष्ट करता है (**सः**) वह (**अग्निः**) विज्ञानस्वरूप जगदीश्वर जैसे मल्लाह (**नावेव**) नौका से (**सिन्धुम्**) नदी वा समुद्र के पार पहुँचाता है वैसे (**नः**) हम लोगों को (**अति**) अत्यन्त (**दुर्गाणि**) दुर्गति और (**अतिदुरिता**) अतीव दुःख देने वाले (**विश्वा**) समस्त पापाचरणों के (**पर्षत्**) पार करता है वही इस जगत् में खोजने योग्य है ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे मल्लाह कठिन बड़े समुद्रों में अत्यन्त विस्तार वाली नावों से मनुष्यादिकों को सुख से पार पहुंचाते हैं वैसे ही अच्छे प्रकार उपासना किया हुआ जगदीश्वर दुःखरूपी बड़े भारी समुद्र में स्थित मनुष्यों को विज्ञानादि दानों से उस के पार पहुँचाता है इसलिये उसकी उपासना करने हारा ही मनुष्य शत्रुओं को हरा

के उत्तम वीरता के आनन्द को प्राप्त हो सकता और का क्या सामर्थ्य है ॥ १ ॥

इस सूक्त में ईश्वर के गुणों के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिये ॥

यह निन्नानवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

वृषागिरो महाराजस्य पुत्रभूता वार्षागिरा ऋज्राश्वाम्बरीषसहदेवभयमानसुराधस ऋषयः । इन्द्रो देवता । १ । ५ । पङ्क्तिः । २ । १३ । १७ स्वराट् पङ्क्तिः । ६ । १० । १६ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३ । ४ । ११ । १८ । विराट् त्रिष्टुप् । ७—६ । १२ । १४ । १५ । १६ । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

स यो वृषा वृष्ण्येभिः समोका महो दिवः पृथिव्याश्च सम्राट् ।
सतीनसत्वा हव्यो भरेषु मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (यः) जो (वृषा) वर्षा का हेतु (समोकाः) जिसमें समीचीन निवास के स्थान हैं (सतीनसत्वा) जो जल को इकट्ठा करता (हव्यः) और ग्रहण करने योग्य (मरुत्वान्) जिस के प्रशंसित पवन हैं जो (महः) अत्यन्त (दिवः) प्रकाश तथा (पृथिव्याः) भूमि लोक (च) और समस्त मूर्तिमान् लोकों वा पदार्थों के बीच (सम्राट्) अच्छा प्रकाशमान (इन्द्रः) सूर्य्यलोक है (सः) वह जैसे (वृष्ण्येभिः) उत्तमता में प्रकट होने वाली किरणों से (भरेषु) पालन और पुष्टि कराने वाले पदार्थों में (नः) हमारे (ऊती) रक्षा आदि व्यवाहरों के लिये (भवतु) होता है वैसे उत्तम यत्न करो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । मनुष्यों को चाहिये कि जो परिणाम से बड़ा वायुरूप कारण से प्रकट और प्रकाशस्वरूप सूर्य्य लोक है उससे विद्यापूर्वक अनेक उपकार लेवें ॥ १ ॥

यस्यानाप्तः सूर्यस्येव यामो भरेभरे वृत्रहा शुष्मो अस्ति ।
वृषन्तमः सखिभिः स्वेभिरेवैर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ २ ॥

पदार्थ—(यस्य) जिस परमेश्वर वा विद्वान् सभाध्यक्ष के (भरेभरे) धारण करने योग्य पदार्थ पदार्थ वा युद्ध युद्ध में (सूर्य्यस्येव) प्रत्यक्ष सूर्यलोक के समान (वृत्रहा) पापियों के यथायोग्य पाप फल को देने से धर्म को छिपाने वालों का विनाश करता और (शुष्मः) जिस में प्रशंसित बल है वह (यामः)

मर्यादा का होना (अनाप्तः) मूर्ख और शत्रुओं ने नहीं पाया (अस्ति) है (सः) वह (वृषन्तमः) अत्यन्त सुख बढ़ाने वाला तथा (मरुत्वान्) प्रशंसित सेना जन-युक्त वा जिसकी सृष्टि में प्रशंसित पवन हैं वह (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् ईश्वर वा सभाध्यक्ष सज्जन (स्वेभिः) अपने सेवकों के (एवैः) पाये हुए प्रशंसित ज्ञानों और (सखिभिः) धर्म के अनुकूल आज्ञा पालनेहारे मित्रों से उपासना और प्रशंसा को प्राप्त हुआ (नः) हम लोगों के (ऊती) रक्षा आदि व्यवहारों के सिद्ध करने के लिये (भवतु) हो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार है। मनुष्यों को यह जानना चाहिये कि यदि सूर्यलोक तथा आप्त विद्वान् के गुण और स्वभावों का पार दुःख से जानने योग्य है तो परमेश्वर का तो क्या ही कहना है इन दोनों के आश्रय के विना किसी की पूर्ण रक्षा नहीं होती इससे इनके साथ सदा मित्रता रक्खें ॥ २ ॥

दिवो न यस्य रेतसो दुघानाः पन्थासो यन्ति शवसापरीताः ।
तरद्द्वेषाः सासहिः पौंस्येभिर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ३ ॥

पदार्थ—(यस्य) जिस ईश्वर वा सभाध्यक्ष वा उपदेश करनेवाले विद्वान् के (दिवः) सूर्य्यलोक के (न) समान (रेतसः) पराक्रम की (शवसा) प्रबलता से (अपरीताः) न छोड़े हुए (दुघानाः) व्यवहारों के पूर्ण करनेवाला (तरद्द्वेषाः) जिन में विरोधों के पार हों वे (पन्थासः) मार्ग (यन्ति) प्राप्त होते और जाते हैं वा जो (पौंस्येभिः) बलों के साथ वर्त्तमान (सासहिः) अत्यन्त सहन करने वाला (मरुत्वान्) जिस की सृष्टि में प्रशंसित प्रजा है वह (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर वा सभाध्यक्ष (नः) हम लोगों के (ऊती) रक्षा आदि व्यवहार के लिये (भवतु) हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार हैं । जैसे सूर्य्य के प्रकाश से समस्त मार्ग अच्छे देखने और गमन करने योग्य वा डाकू चोर और कांटों से यथायोग्य प्रतीत होते हैं वैसे वेदद्वारा परमेश्वर वा विद्वान् के मार्ग अच्छे प्रकाशित होते हैं निश्चय है कि उनमें चले विना कोई मनुष्य वैर आदि दोषों से अलग नहीं हो सकता इससे सब को चाहिये कि इन मार्गों से नित्य चलें ॥ ६ ॥

सो अङ्गिरोभिरङ्गिरस्तमो भूद्वृषा वृषभिः सखिभिः सखा सन् ।
ऋग्मिभिर्ऋग्मी गातुभिर्ज्येष्ठो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ४ ॥

पदार्थ—जो (अङ्गिरोभिः) अङ्गों में रसरूप हुए प्राणों के साथ (अङ्गि-

स्तमः) अत्यन्त प्राण के समान वा (वृषभिः) सुख की वर्षा के कारणों से (वृषा) सुख सींचने वाला वा (सखिभिः) मित्रों के साथ (सखा) मित्र वा (ऋग्मिभिः) ऋग्वेद के पढ़े हुओं के साथ (ऋग्मी) ऋग्वेदी वा (गातुभिः) विद्या से अच्छी शिक्षा को प्राप्त हुई वाणियों से (ज्येष्ठः) प्रशंसा करने योग्य (सन्) हुआ (भूत्) है (सः) वह (मरुत्वान्) अपनी सृष्टि में प्रजा को उत्पन्न करने वाला वा अपनी सेना में प्रशंसित वीर पुरुष रखने वाला (इन्द्रः) ईश्वर और सभापति (नः) हम लोगों के (ऊती) रक्षा आदि व्यवहार के लिये (भवतु) हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो यथावत् उपकार करने वाला सब से अति उत्तम परमेश्वर वा सभा आदि का अध्यक्ष विद्वान् है उस को नित्य सेवन करो ॥ ४ ॥

स सूनुभिर्न रुद्रेभिर्ऋभ्वा नृषाह्ये सासह्वाँ अमित्रान् ।
सनीडेभिः श्रवस्यानि तूर्वन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ५ ॥

पदार्थ—(मरुत्वान्) जिस की सेना में प्रशंसित वीर पुरुष हैं वा (सासह्वान्) जो शत्रुओं का तिरस्कार करता है वह (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य्यवान् सभापति (सूनुभिः) पुत्र वा पुत्रों के तुल्य सेवकों के (न) समान (सनीडेभिः) अपने समीप रहने वाले (रुद्रेभिः) जो कि शत्रुओं को रुलाते हैं उन के और (ऋभ्वा) बड़े बुद्धिमान् मन्त्री के साथ वर्त्तमान (श्रवस्यानि) धनादि पदार्थों में उत्तम वीर जनों को इकट्ठा कर (नृषाह्ये) जो कि शूरवीरों के सहने योग्य है उस संग्राम में (अमित्रान्) शत्रुजनों को (तूर्वन्) मारता हुआ उत्तम यत्न करता है (सः) वह (नः) हम लोगों के (ऊती) रक्षा अदि व्यवहार के लिये (भवतु) हो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो सेना आदि का अधिपति पुत्र के तुल्य सत्कार किये और शस्त्र अस्त्रों से सिद्ध होने वाली युद्धविद्या से शिक्षा दिये हुए सेवकों के साथ वर्त्तमान बलवान् सेना को अच्छे प्रकार प्रकट कर अति कठिन भी संग्राम में दुष्ट शत्रुओं को हार देता और धार्मिक मनुष्यों की पालना करता हुआ चक्रवर्त्ति राज्य कर सकता है वही सब सेना तथा प्रजा के जनों को सदा सत्कार करने योग्य है ॥ ५ ॥

स मन्युमीः समदनस्य कर्त्तास्माकेभिर्नृभिः सूर्यं सनत् ।
अस्मिन्नहन्त्सत्पतिः पुरुहूतो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ६ ॥

पदार्थ—जो (मन्युमीः) क्रोध का मारने वा (समदनस्य) जिसमें आनन्द है उस का (कर्त्ता) करने और (सत्पतिः) सज्जन तथा उत्तम कामों को पालने

हारा (पुरुहूतः) वा बहुत विद्वान् और शूरवीरों ने जिसकी स्तुति और प्रशंसा किई है (मरुत्वान्) जिसकी सेना में अच्छे अच्छे वीरजन हैं (इन्द्रः) वह परमैश्वर्यवान् सेनापति (अस्माकेभिः) हमारे शरीर आत्मा और बल के तुल्य बलों से युक्त वीर (नृभिः) मनुष्यों के साथ वर्त्तमान होता हुआ (सूर्य्यम्) सूर्य के प्रकाश तुल्य युद्ध न्याय को (सनत्) अच्छे प्रकार सेवन करे (सः) वह (अस्मिन्) आज के दिन (नः) हम लोगों के (ऊती) रक्षा आदि व्यवहार के लिये निरन्तर (भवतु) हो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य को प्राप्त होकर सब पदार्थ अलग अलग प्रकाशित हुए आनन्द के करने वाले होते हैं वैसे ही धार्मिक न्यायाधीशों को प्राप्त होकर पुत्र पौत्र स्त्रीजन तथा सेवकों के साथ वर्त्तमान विद्या धर्म और न्याय में प्रसिद्ध आचरण वाले होकर मनुष्य अपने और दूसरों के कल्याण करने वाले होते हैं । जो सब कभी क्रोध को अपने वश में करने और सब प्रकार से नित्य प्रसन्नता आनन्द करने वाला होता है वही सेनाधीश होने में नियत करने योग्य होता है । जो बीते हुए व्यवहार के बचे हुए को जाने, चलते हुए व्यवहार में शीघ्र कर्त्तव्य काम के विचार में तत्पर है वही सर्वदा विजय को प्राप्त होता है दूसरा नहीं ॥६॥

तमूतयो॑ रणय॒ञ्छूर॑सातौ॒ तं क्षेम॑स्य क्षि॒तय॑: कृण्वत॒ त्राम् ।
स विश्व॑स्य क॒रुण॑स्येश॒ एको॑ म॒रुत्वा॑न्नो भवत्विन्द्र॑ ऊ॒ती ॥ ७ ॥

पदार्थ—जिसको (ऊतयः) रक्षा आदि व्यवहार सेवन करें (तम्) उस सेना आदि के अधिपति को (शूरसातौ) जिस में शूरों का सेवन होता है उस संग्राम में (क्षितयः) मनुष्य (त्राम्) अपनी रक्षा करने वाला (कृण्वत) करें जो (क्षेमस्य) अत्यन्त कुशलता का करने वाला है (तम्) उस को अपनी पालना करनेहारा किये हुये उक्त संग्राम में (रणयन्) रटें अर्थात् बार बार उसी की विनती करें जो (एकः) अकेला सभाध्यक्ष (विश्वस्य) समस्त (करुणस्य) करुणारूपी काम को करने में (ईशे) समर्थ है (सः) वह (मरुत्वान्) अपनी सेना में प्रशंशित वीरों का रखने वा (इन्द्रः) सेना आदि की रक्षा करनेहारा (नः) हम लोगों के (ऊती) रक्षा आदि व्यवहार के लिये (भवतु) हो ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जो अकेला भी अनेक योद्धाओं को जीतता है उसका उत्साह संग्राम और व्यवहारों में अच्छे प्रकार बढ़ावें । अच्छे उत्साह से वीरों में जैसी शूरता होती है वैसी निश्चय है कि और प्रकार से नहीं होती ॥ ७ ॥

तमप्सन्त शवस उत्सवेषु नरो नरमवसे तं धनाय ।
सो अन्धे चित्तमसिज्योतिर्विदन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (नरम्) सब काम को यथायोग्य चलानेहारे जिसमनुष्य को (शवसः) विद्या बल तथा धन आदि अनेक बल (अप्सन्त) प्राप्त हों (तम्) उस अत्यन्त प्रबल युद्ध करने से भी युद्ध करने वाले सेना आदि के अधिपति को (उत्सवेषु) उत्सव अर्थात् आनन्द के कामों में सत्कार देओ तथा (तम्) उस को (नरः) श्रेष्ठाधिकार पाने वाले मनुष्य (अवसे) रक्षा आदि व्यवहार और (धनाय) उत्तम धन पाने के लिये प्राप्त होवें जो (अन्धे) अन्धे के तुल्य करनेहारे (तमसि) अन्धेरे में (ज्योतिः) सूर्य्य आदि के उजेले रूप प्रकाश (चित्) ही को (विदत्) प्राप्त होता है (सः) वह (मरुत्वान्) अपनी सेना में उत्तम वीरों को राखने हारा (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् सेनापति वा सभापति (नः) हम लोगों के (ऊती) अच्छे आनन्दों के लिये (भवतु) हो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो शत्रुओं को जीत और धार्मिकों की पालना कर विद्या और धन की उन्नति करता है जिस को पाकर जैसे सूर्य्यलोक का प्रकाश है वैसे विद्या के प्रकाश को प्राप्त होते हैं उस मनुष्य को आनन्द मङ्गल के दिनों में आदर सत्कार देवें क्योंकि ऐसे किये विना किसी को अच्छे कामों में उत्साह नहीं हो सकता ॥ ८ ॥

स सव्येन यमति व्राधतश्चित्स दक्षिणे संगृभीता कृतानि ।
स कीरिणा चित्सनिता धनानि मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ९ ॥

पदार्थ—जो (सव्येन) सेना के दाहिनी ओर खड़ी हुई अपनी सेना से (व्राधतः) अत्यन्त बल बढ़े हुये शत्रुओं को (चित्) भी (यमति) ढङ्ग में चलाता है वह उन शत्रुओं का जीतने हारा होता है जो (दक्षिणे) दाहिनी ओर में खड़ी हुई उस सेना से (संगृभीता) ग्रहण किये हुए सेना के अङ्गों तथा (कृतानि) किये हुए कामों को यथोचित नियम में लाता है (सः) वह अपनी सेना की रक्षा कर सकता है जो (कीरिणा) शत्रुओं के गिराने के प्रबन्ध से (चित्) भी उन के (सनिता) अच्छी प्रकार इकट्ठे किये हुए (धनानि) धनों को लेलेता है (सः) वह (मरुत्वान्) अपनी सेना में उत्तम उत्तम वीरों को राखने हारा (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् सेनापति (नः) हम लोगों के (ऊती) रक्षा आदि व्यवहारों के लिये (भवतु) हो ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो सेना की रचनाओं और सेना के अङ्गों की शिक्षा वा रक्षा के विशेष ज्ञान को तथा पूर्ण युद्ध की सामग्री को इकट्ठा कर सकता है

वही शत्रुओं को जीत लेने से अपनी और प्रजा की रक्षा करने के योग्य है ॥ ९ ॥

स ग्रामेभिः सनिता स रथेभिर्विदे विश्वाभिः कृष्टिभिर्न्वद्य ।

स पौंस्येभिरभिभूरशस्तीर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १० ॥

पदार्थ—जो (मरुत्वान्) अपनी सेना में उत्तम वीरों को राखने हारा (इन्द्रः) परमैश्वर्य्यवान् सेना आदि का अधीश (ग्रामेभिः) ग्रामों में रहने वाले प्रजाजनों के साथ (सनिता) अच्छे प्रकार अलग अलग किये हुए धनों को भोगता है (सः) वह आनन्दित होता है जो (विदे) युद्धविद्या तथा विजयों को जिस से जाने उस क्रिया के लिये (रथेभिः) सेना के विमान आदि अङ्गों और (विश्वाभिः) समस्त (कृष्टिभिः) शिल्प कामों की अति कुशलताओं से प्रकाशमान हो (सः) वह और जो (अशस्तीः) शत्रुओं की बड़ाई करने योग्य क्रियाओं को जान कर उन का (अभिभूः) तिरस्कार करने वाला है (सः) वह (पौंस्येभिः) उत्तम शरीर और आत्मा के बल के साथ वर्त्तमान (नु) शीघ्र (अद्य) आज (नः) हम लोगों के (ऊती) रक्षा आदि व्यवहारों के लिये (भवतु) होवे ॥ १० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जो पुर नगर और ग्रामों का अच्छे प्रकार रक्षा करने वाला वा पूर्ण सेनाङ्गों की सामग्री सहित जिसने कला-कौशल तथा शस्त्र अस्त्रों से युद्ध क्रिया को जाना हो और परिपूर्ण विद्या तथा बल से पुष्ट शत्रुओं के पराजय से प्रजा की पालना करने में प्रसन्न होता है वही सेना आदि का अधिपति करने योग्य है अन्य नहीं ॥ १० ॥

स जामिभिर्यत्समजाति मीळ्हेऽजामिभिर्वा पुरुहूत एवैः ।

अपां तोकस्य तनयस्य जेषे मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ११ ॥

पदार्थ—जो (अपाम्) प्राप्त हुए मित्र शत्रु और उदासीनों वा (तोकस्य) बालकों के वा (तनयस्य) पौत्र आदि के बीच वर्त्ताव रखता हुआ (यत्) जब (मीळ्हे) संग्रामों में (एवैः) प्राप्त हुए (जामिभिः) शत्रुजनों सहित (अजामिभिः)) बन्धुवर्गों से अन्य शत्रुओं के सहित (वा) अथवा उदासीन मनुष्यों के साथ विरोधभाव प्रकट करता हुआ (पुरुहूतः) बहुतों से प्रशंसा को प्राप्त वा युद्ध में बुलाया हुआ (मरुत्वान्) अपनी सेना में उत्तम वीरों को रखने वाला (इन्द्रः) परमैश्वर्य्यवान् सेना आदि का अधीश (जेषे) उक्त अपने बन्धु भाइयों को उत्साह और उत्कर्ष देने वा शत्रुओं के जीत लेने का (समजाति) अच्छा ढङ्ग जानता है तब (सः) वह (नः) हम लोगों के (ऊती) रक्षा आदि के लिये समर्थ (भवतु) हो ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस राज्यव्यवहार में किसी गृहस्थ को छोड़ ब्रह्मचारी वनस्थ वा यति की प्रवृत्ति होने योग्य नहीं है और न कोई अच्छे मित्र और बन्धुजनों के विना युद्ध में शत्रुओं को परास्त कर सकता है ऐसे धार्मिक विद्वानों के विना कोई सेना आदि का अधिपति होने योग्य नहीं है यह जानना चाहिये ॥ ११ ॥

स वंज्रभृद्दस्युहा भीम उग्रः सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा ।
चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १२ ॥

पदार्थ—(चम्रीषः) जो अपनी सेना से शत्रुओं की सेनाओं के मारने हारों के (न) समान (वज्रभृत्) अति कराल शस्त्रों को बांधने (दस्युहा) डांकू चोर लम्पट लवाड़ आदि दुष्टों को मारने (भीमः) उन को डर और (उग्रः) अति कठिन दण्ड देने (सहस्रचेताः) हजारों अच्छे प्रकार के ज्ञान प्रकट करने वाला (शतनीथः) जिस के सैकड़ों यथायोग्य व्यवहारों के वर्त्ताव हैं (पाञ्चजन्यः) जो सब विद्याओं से युक्त पढ़ाने उपदेश करने राज्यसम्बन्धी सभा सेना और सब अधिकारियों के अधिष्ठाताओं में उत्तमता से हुआ है (मरुत्वान्) और अपनी सेना में उत्तम वीरों को राखने वाला (इन्द्रः) परमैश्वर्य्यवान् सेना आदि का अधीश (ऋभ्वा) अतीव (शवसा) बलवान् सेना से शत्रुओं को अच्छे प्रकार प्राप्त होता है (सः) वह (नः) हम लोगों के (ऊती) रक्षा आदि व्यवहारों के लिये (भवतु) होवे ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को जानना चाहिये कि कोई मनुष्य धनुर्वेद के विशेष ज्ञान और उसको यथायोग्य व्यवहारों में में वर्त्तने और शत्रुओं के मारने में भय के देने वाले वा तीव्र अगाध सामर्थ्य और प्रवल वढ़ी हुई सेना के विना सेनापति नहीं हो सकता। और ऐसे हुए विना शत्रुओं का पराजय और प्रजा का पालना हो सके यह भी सम्भव नहीं ऐसा जानें ॥ १२ ॥

तस्य वज्रः क्रन्दति स्मत्स्वर्षा दिवो न त्वेषो रवथः शिमीवान् ।
तं सचन्ते सनयस्तं धनानि मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १३ ॥

पदार्थ—जिस सभाध्यक्ष का (स्मत्) काम के वर्त्ताव की अनुकूता का (स्वर्षाः) सुख से सेवन और (रवथः) भारी कोलाहल शब्द करने वाला (शिमीवान्) जिस से प्रशंसित काम होते हैं वह (वज्रः) शस्त्र और अस्त्रों का समूह (क्रन्दति) अच्छे जनों को बुलाता और दुष्टों को रुलाता है (तस्य) उस के (दिवः) सूर्य्य के (त्वेषः) उजेले के (न) समान गुण कर्म और स्वभाव प्रका-

शित होते हैं जो ऐसा है (तम्) उसको (सनयः) उत्तम सेवा अर्थात् सज्जनों के किये हुए उत्साह (सचन्ते) सेवन करते और (तम्) उसको (धनानि) समस्त धन सेवन करते हैं इस प्रकार (मरुत्वान्) जो सभाध्यक्ष अपनी सेना में उत्तम वीरों को रखने वाला (इन्द्रः) परमैश्वर्य्यवान् तथा (नः) हम लोगों के (ऊती) रक्षादि व्यवहारों के लिये यत्न करता है वह हम लोगो का राजा (भवतु) होवे ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। सभासद्, भृत्य, सेना के पुरुष और प्रजाजनों को चाहिये कि ऐसे उत्तम कामों का सेवन करें कि जिनसे विद्या, न्याय, धर्म वा पुरुषार्थ बढ़े हुए सूर्य के समान प्रकाशित हों क्योंकि ऐसे कामों के विना उत्तम सुखों के सेवन, धन और रक्षा हो नहीं सकती इस से ऐसे काम सभाध्यक्ष आदि को करने योग्य हैं ॥ १३ ॥

यस्याजस्रं शवसा मानमुक्थं परिभुजद्रोदसी विश्वतः सीम् ।
स पारिषत्क्रतुभिर्मन्दसानो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १४ ॥

पदार्थ—(यस्य) जिस सभा आदि के अधीश के (शवसा) शारीरिक तथा आत्मिक बल से युक्त प्रजाजन (मानम्) सत्कार (उक्थम्) वेदविद्या तथा (सीम्) धर्म न्याय की मर्यादा को (विश्वतः) सब ओर से (अजस्रम्) निरन्तर पालन और जो (रोदसी) विद्या के प्रकाश और पृथिवी के राज्य को भी (परि-भुजत्) अच्छे प्रकार पालन करे जो (क्रतुभिः) उत्तम बुद्धिमानी के कामों के साथ (मन्दसानः) प्रशंसा आदि से परिपूर्ण हुआ सुखों से प्रजाओं को (पारिषत्) पालता है (सः) वह (मरुत्वान्) अपनी सेना में उत्तम वीरों का रखने वाला (इन्द्रः) परमैश्वर्य्यवान् सभापति (नः) हम लोगों के (ऊती) रक्षा आदि व्यवहार को सिद्ध करने वाला निरन्तर (भवतु) होवे ॥ १४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्यों का मान, दुष्टों का तिरस्कार, पूरी विद्या, धर्म की मर्यादा, पुरुषार्थ और आनन्द कर सके वही सभाध्यक्षादि अधिकार के योग्य हो ॥ १४ ॥

न यस्य देवा देवता न मर्त्ता आपश्चन शवसो अन्तमापुः ।
स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्ष्मो दिवश्च मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१५॥

पदार्थ—(यस्य) जिस परम ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर के (शवसः) बल की (अन्तम्) अवधि को (देवता) दिव्य उत्तम जनों में (देवाः) विद्वान् लोग (न) नहीं (मर्त्ताः) साधारण मनुष्य (न) नहीं (चन) तथा (आपः) अन्तरिक्ष वा प्राण भी (आपुः) नहीं पाते जो (त्वक्षसा) अपने बलरूप सामर्थ्य से (क्ष्मः)

पृथिवी (दिवः) सूर्य्यलोक तथा (च) और लोकों को (प्ररिक्वा) रच के व्याप्त हो रहा है (सः) वह (मरुत्वान्) अपनी प्रजा को प्रशंसित करने वाला (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (नः) हम लोगों के (ऊती) रक्षा आदि व्यवहार के लिये निरन्तर उद्यत (भवतु) होवे ॥ १५ ॥

भावार्थ—क्या अनन्त गुण कर्म स्वभाव वाले उस परमेश्वर का पार कोई ले सकता है कि जो अपने सामर्थ्य से ही प्रकृतिरूप अति सूक्ष्म सनातन कारण से सब पदार्थों को स्थूलरूप उत्पन्न कर उनकी पालना और प्रलय के समय सब का विनाश करता है वह सब के उपासना करने के योग्य क्यों न होवे ? ॥ १५ ॥

रोहिच्छ्यावा सुमदंशुर्ललामीर्द्युक्षा राय ऋज्राश्वस्य ।
वृषण्वन्तं बिभ्रती धूर्षु रथं मन्द्रा चिकेत नाहुषीषु विक्षु ॥ १६ ॥

पदार्थ—जो (ऋज्राश्वस्य) सीधी चाल से चले हुए जिनके घोड़े वेग वाले उस सभा आदि के अधीश का सम्बन्ध करने वाले शिल्पियों को (सुमदंशुः) जिस का उत्तम जलाना (ललामीः) प्रशंसित जिसमें सौन्दर्य्य (द्युक्षा) और जिस का प्रकाश ही निवास है वह (रोहित्) नीचे से लाल (श्यावा) ऊपर से काली अग्नि की ज्वाला (धूर्षु) लोहे की अच्छी अच्छी बनी हुई कलाओं में प्रयुक्त की गई (वृषण्वन्तम्) वेग वाले (रथम्) विमान आदि यान समूह को (बिभ्रती) धारण करती हुई (मन्द्रा) आनन्द की देने हारी (नाहुषीषु) मनुष्यों के इन (विक्षु) सन्तानों के निमित्त (राये) धन की प्राप्ति के लिये वर्त्तमान है उस को जो (चिकेत) अच्छे प्रकार जाने वह धनी होता है ॥ १६ ॥

भावार्थ—जब विमानों के चलाने आदि कार्यों में इन्धनों से अच्छे प्रकार युक्त किया अग्नि जलता है तब उसके दो ढङ्ग के रूप देख पड़ते हैं—एक उजेला लिये हुए दूसरा काला, इसी से अग्नि को श्यामकर्णाश्व कहते हैं, जैसे घोड़े के शिर पर कान दीखते हैं वैसे अग्नि के शिर पर श्याम कज्जल की चुटेली होती है। यह अग्नि कामों में अच्छे प्रकार जोड़ा हुआ बहुत प्रकार के धन को प्राप्त कराकर प्रजाजनों को आनन्दित करता है ॥ १६ ॥

एतत्त्यत्त इन्द्र वृष्ण उक्थं वार्षागिरा अभि गृणन्ति राधः ।
ऋज्राश्वः प्रष्टिभिरम्बरीषः सहदेवो भयमानः सुराधाः ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परम विद्या ऐश्वर्य से युक्त सभाध्यक्ष ! जो (वार्षागिराः) उत्तम प्रशंसित विद्वान् की वाणियों से प्रशंसित पुरुष (एतत्) इस प्रत्यक्ष (ते) आप के (उक्थम्) प्रशंसा करने योग्य वचन वा काम को सब लोग (अभिगृणन्ति)

आप के मुख पर कहते हैं वह और (त्यत्) अगला वा अनुमान करने योग्य आप का (राधः) धन (वृष्णे) शरीर और आत्मा की प्रसन्नता के लिये होता है तथा जो (अम्बरीषः) शब्द शास्त्र के जानने (सहदेवः) विद्वानों के साथ रहने (भयमानः) अधर्माचरण से डरकर उससे अलग वर्त्ताव वर्त्तने और दुष्टों को भय करने वाले (सुराधाः) जो कि उत्तम उत्तम धनों से युक्त (ऋज्राश्वः) जिन की सीधी बड़ी बड़ी राजनीति है और (प्रष्टिभिः) प्रश्नों से पूछे हुए समाधानों को देते हैं वे हम लोगों को सेवने योग्य कैसे न हों ? ॥ १७ ॥

भावार्थ—जब विद्वान् उत्तम प्रीति के साथ उपदेशों को करते हैं तब अज्ञानी जन विश्वास को पा उन उपदेशों को सुन अच्छी विद्याओं को धारण कर धनाढ्य हो के आनन्दित होते हैं ॥ १७ ॥

दस्यूञ्छिम्यूँश्च पुरुहूत एवैर्हत्वा पृथिव्यां शर्वा नि बर्हीत् ।
सनत्क्षेत्रं सखिभिः श्वित्न्येभिः सनत्सूर्य्यं सनदपः सुवज्रः ॥१८॥

पदार्थ—(सुवज्रः) जिसका श्रेष्ठ अस्त्र और शस्त्रों का समूह और (पुरुहूतः) बहुतों ने सत्कार किया हो वह (शर्वा) समस्त दुःखों का विनाश करने वाला सभा आदि का अधीश (श्वित्न्येभिः) श्वेत अर्थात् स्वच्छ तेजस्वी (सखिभिः) मित्रों के साथ और (एवैः) प्रशंसित ज्ञान वा कर्मों के साथ (दस्यून्) डाकुओं को (हत्वा) अच्छे प्रकार मार (शिम्यून्) शान्त धार्मिक सज्जनों (च) और भृत्य आदि को (सनत्) पाले, दुःखों को (नि, बर्हीत्) दूर करे जो (पृथिव्याम्) अपने राज्य से युक्त भूमि में (क्षेत्रम्) अपने निवासस्थान (सुर्यम्) सूर्य लोक, प्राण (अपः) और जलों को (सनत्) सेवे, वह सब को (सनत्) सदा सेवने के योग्य होवे ॥ १८ ॥

भावार्थ—जो सज्जनों से सहित सभापति अधर्मयुक्त व्यवहार को निवृत्त और धर्म्म व्यवहार का प्रचार करके विद्या की युक्ति से सिद्ध व्यवहार का सेवन कर प्रजा के दुःखों को नष्ट करे वह सभा आदि का अध्यक्ष सब को मानने योग्य होवे, अन्य नहीं ॥ १८ ॥

विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥१९॥

पदार्थ—जो(इन्द्रः) प्रशंसित विद्या और ऐश्वर्य्ययुक्त विद्वान् (नः) हम लोगों के लिये (विश्वाहा) सब दिनों (अधिवक्ता) अधिक अधिक उपदेश करने वाला (अस्तु) हो उससे (अपरिह्वृताः) सब प्रकार कुटिलता को छोड़े हुए हम लोग जिस (वाजम्) विशेष ज्ञान का (सनुयाम) दूसरे को देवें और आप सेवन करें ।

(नः) हमारे (तत्) उस विज्ञान को (मित्रः) मित्र (वरुणः) श्रेष्ठ सज्जन (अदितिः) अन्तरिक्ष (सिन्धुः) समुद्र नदी (पृथिवी) भूमि (उत) और (द्यौः) सूर्य्य आदि प्रकाशयुक्त लोकों का प्रकाश (मामहन्ताम्) मान से बढ़ावें ॥ १९ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उचित है कि जो नित्य विद्या का देने वाला है उस की सीधेपन से सेवा करके विद्याओं को पाकर मित्र श्रेष्ठ आकाश नदियों भूमि और सूर्य्य आदि लोकों से उपकारों को ग्रहण करके सब मनुष्यों में सत्कार के साथ होना चाहिये, कभी विद्या छिपानी नहीं चाहिये किन्तु सब को यह प्रकट करनी चाहिये ॥ १९ ॥

इस सूक्त में सभा आदि के अधिपति, ईश्वर और पढ़ाने वालों के गुणों के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ एकता समझनी चाहिये ॥

यह सौवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

आङ्गिरसः कुत्स ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ४ निचृज्जगती । २ । ५ । ७ विराड्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ३ भुरिक् त्रिष्टुप् । ६ स्वराट् त्रिष्टुप् । ८ । १० निचृत् त्रिष्टुप् । ९ । ११ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना ।
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ १ ॥

पदार्थ—तुम लोग (यः) जो उपदेश करने वा पढ़ाने वाला (ऋजिश्वना) ऐसे पाठ से कि जिस में उत्तम वाणियों की धारणा शक्ति की अनेक प्रकार से वृद्धि हो उससे मूर्खपन को (निः, अहन्) निरन्तर हने उस (मन्दिने) आनन्दी पुरुष और आनन्द देने वाले के लिये (पितुमत्) अच्छा बनाया हुआ अन्न अर्थात् पूरी कचौरी, लड्डू, बालूशाही, जलेबी, इमरती आदि अच्छे अच्छे पदार्थों वाले भोजन और (वचः) पियारी वाणी को (प्रार्चत) अच्छे प्रकार निवेदन कर उसका सत्कार करो । और (अवस्यवः) अपने को रक्षा आदि व्यवहारों को चाहते हुए (कृष्णगर्भाः) जिन्होंने रेखागणित आदि विद्याओं के मर्म खोले हैं वे हम लोग (सख्याय) मित्र के काम वा मित्रपन के लिये (वृषणम्) विद्या की वृद्धि करने वाले (वज्रदक्षिणम्) जिस से अविद्या का विनाश करने वाली वा विद्यादि धन देने वाली दक्षिणा मिले (मरुत्वन्तम्) जिसके समीप प्रशंसित विद्या वाले ऋत्विज् अर्थात्

आप यज्ञ करें, दूसरे को करावें, ऐसे पढ़ाने वाले हों, उस अध्यापक अर्थात् उत्तम पढ़ाने वाले को (हवामहे) स्वीकार करते हैं उसको तुम लोग भी अच्छे प्रकार सत्कार के साथ स्वीकार करो ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जिससे विद्या लेवें उसका सत्कार मन वचन कर्म और धन से सदा करें और पढ़ाने वालों को चाहिये कि जो पढ़ाने योग्य हों उन्हें अच्छे यत्न के साथ उत्तम उत्तम शिक्षा देकर विद्वान् करें और सब दिन श्रेष्ठों के साथ मित्रभाव रख उत्तम उत्तम काम में चित्तवृत्ति की स्थिरता रक्खें ॥ १ ॥

यो व्यंसं जाहृषाणेन मन्युना यः शम्बरं यो अहन् पिप्रुमव्रतम् ।
इन्द्रो यः शुष्णमशुषं न्यावृणङ्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ २ ॥

पदार्थ—(यः) जो सभा सेना आदि का अधिपति (इन्द्रः) समस्त ऐश्वर्य को प्राप्त (जाहृषाणेन) सज्जनों को सन्तोष देने वाले (मन्युना) अपने क्रोधों से दुष्ट और शत्रुजनों को (व्यंसम् नि, अहन्) ऐसा मारे कि जिससे कन्धा अलग हो जाय वा (यः) जो शूरता आदि गुणों से युक्त वीर (शम्बरम्) अधर्म से सम्बन्ध करने वाले को अत्यन्त मारे वा (यः) धर्मात्मा सज्जन पुरुष (पिप्रुम्) जो कि अधर्मी अपना पेट भरता उसको निरन्तर मारे और (यः) जो अति बलवान् (अव्रतम्) जिस के कोई नियम नहीं अर्थात् ब्रह्मचर्य सत्यापालन आदि व्रतों को नहीं करता उस को (अवृणक्) अपने से अलग करे उस (शुष्णम्) बलवान् (अशुषम्) शोकरहित हर्षयुक्त (मरुत्वन्तम्) अच्छे प्रशंसित पढ़ने वालों को रखने हारे सकल ऐश्वर्य युक्त सभापति को (सख्याय) मित्रों के काम वा मित्रपन के लिये हम लोग (हवामहे) स्वीकार करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जो चमकते युए क्रोध से दुष्टों को मारकर विद्या की उन्नति के लिये ब्रह्मचर्यादि नियमों को प्रचारित और मूर्खपन और खोटी सिखावटों को रोक के सब के सुख के लिये निरन्तर अच्छा यत्न करे वही मित्र मानने योग्य है ॥ २ ॥

यस्य द्यावापृथिवी पौंस्यं महद्यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्यः ।
यस्येन्द्रस्य सिन्धवः सश्चति व्रतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ३ ॥

पदार्थ—हम लोग (यस्य) जिस (इन्द्रस्य) परमैश्वर्यवान् जगदीश्वर वा सभाध्यक्ष राजा के (व्रते) सामर्थ्य वा शील में (महत्) अत्यन्त उत्तम गुण और (पौंस्यम्) पुरुषार्थयुक्त बल है (यस्य) जिसका (द्यावापृथवी) सूर्य्य और भूमि के सदृश सहनशीलता औरु नीति का प्रकाश वर्त्तमान है (यस्य) जिसके

(व्रतम्) सामर्थ्य वा शील को (तरुणः) चन्द्रमा वा चन्द्रमा का शान्ति आदि गुण (यस्य) जिस के सामर्थ्य और शील को (सूर्यः) सूर्यमण्डल वा उस का गुण (सश्चति) प्राप्त होता और (सिन्धवः) समुद्र प्राप्त होते हैं उस (मरुत्वन्तम्) समस्त प्राणियों से और समय समय पर यज्ञादि करने हारों से युक्त सभाध्यक्ष को (सख्याय) मित्र के काम वा मित्रपन के लिये (हवामहे) स्वीकार करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि जिस परमेश्वर के सामर्थ्य के विना पृथिवी आदि लोकों की स्थिति अच्छे प्रकार नहीं होती तथा जिस सभाध्यक्ष के स्वभाव और वर्त्ताव की प्रकाश के समान विद्या, पृथिवी के समान सहनशीलता, चन्द्रमा के तुल्य शान्ति, सूर्य्य के तुल्य नीति का प्रकाश और समुद्र के समान गम्भीरता है उस को छोड़के और को अपना मित्र न करें ॥ ३ ॥

यो अश्वा॑नां॒ यो ग॒वां गोप॑ति॒र्व॒शी य आ॑रि॒तः कर्म॑णिकर्मणि स्थि॒रः ।
वी॒ळोश्चि॒दिन्द्रो॒ यो अ॒सु॑न्वतो व॒धो म॒रुत्व॑न्तं स॒ख्याय॑ हवामहे ॥४॥

पदार्थ—(यः) जो (इन्द्रः) दुष्टों का विनाश करने वाला सभा आदि का अधिपति (अश्वानाम्) घोड़ों का अध्यक्ष (यः) जो (गवाम्) गौ आदि पशु वा पृथिवी आदि की रक्षा करने वाला (यः) जो (गोपतिः) अपनी इन्द्रियों का स्वामी अर्थात् जितेन्द्रिय होकर अपनी इच्छा के अनुकूल उन इन्द्रियों को चलाने (वशी) और मन बुद्धि चित्त अहङ्कार को यथायोग्य वश में रखने वाला (आरितः) सभा से आज्ञा को प्राप्त हुआ (कर्मणिकर्मणि) कर्म कर्म में (स्थिरः) निश्चित (यः) जो (असुन्वतः) यज्ञकर्त्ताओं से विरोध करने वाले (वीळोः) बलवान् को (वधः चित्) वज्र के तुल्य मारने वाला हो उस (मरुत्वन्तम्) अच्छे प्रशंसित पढ़ाने वालों को राखने हारे सभापति को (सख्याय) मित्रता वा मित्र के काम के लिये (हवामहे) हम स्वीकार करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—यहां वाचकलुप्तोपमालंकार हैं । मनुष्यों को चाहिये कि जो सब को पालना करने वाला जितेन्द्रिय शान्त और जिस जिस कर्म में सभा की आज्ञा को पावे उसी उसी कर्म में स्थिरबुद्धि से प्रवर्त्तमान बलवान् दुष्ट शत्रुओं को जीतने वाला हो उसके साथ निरन्तर मित्रता की संभावना करके सुखों को सदा भोगें ॥ ४ ॥

यो विश्व॑स्य॒ जग॑तः प्राण॒तस्पति॒र्यो ब्र॒ह्मणे॑ प्र॒थमो गा अवि॑न्दत् ।
इन्द्रो॒ यो दस्यूँ॒रध॑राँ अ॒वाति॑रन्म॒रुत्व॑न्तं स॒ख्याय॑ हवामहे ॥ ५ ॥

पदार्थ—(यः) जो उत्तम दानशील (प्रथमः) सब का विख्यात करने वाला (इन्द्रः) इन्द्रियों से युक्त जीव (ब्रह्मणे) चारों वेदों के जानने वाले के लिये (गाः) पृथिवी इन्द्रियों और प्रकाशयुक्त लोकों को (अविन्दत्) प्राप्त होता वा (यः) जो शूरता आदि गुण वाला वीर (दस्यून्) हठ से औरों का धन हरनेवालों को (अधरान्) नीचता को प्राप्त कराता हुआ (अवातिरत्) अधोगति को पहुँचाता वा (यः) जो सेनाधिपति (विश्वस्य) समग्र (जगतः) जङ्गमरूप (प्राणतः) जीवते जीवसमूह का (पतिः) अधिपति अर्थात् स्वामी हो उस (मरुत्वन्तम्) अपने समीप पढ़ाने वालों को रखने वालों को रखने वाले सभाध्यक्ष को हम लोग (सख्याय) मित्रपन के लिये (हवामहे) स्वीकार करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—पुरुषार्थ के विना विद्या अन्न और धन की प्राप्ति तथा शत्रुओं का पराजय नहीं हो सकता, जो धार्मिक सेनाध्यक्ष सुहृद्भाव से अपने प्राण के समान सब को प्रसन्न करता है उस पुरुष को निश्चय है कि कभी दुःख नहीं होता इससे उक्त विषय का आचरण सदा करना चाहिये ॥ ५ ॥

यः शूरेभिर्हव्यो यश्च भीरुभिर्यो धावद्भिर्हूयते यश्च जिग्युभिः ।
इन्द्रं यं विश्वा भुवनाभि संदधुर्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ६ ॥

पदार्थ—(यः) जो परमैश्वर्यवान् सेना आदि का अधिपति (शूरेभिः) शूरवीरों से (हव्यः) आह्वान करने अर्थात् चाहने योग्य (यः) जो (भीरुभिः) डरने वालों (च) और निर्भयों से तथा (यः) जो धावद्भिः) दौड़ते हुए मनुष्यों से वा (यः) जो (च) बैठे और चलते हुए उन से (जिग्युभिः) वा जीतने वाले लोगों से (हूयते) बुलाया जाता वा (यम्) जिस (इन्द्रम्) उक्त सेनाध्यक्ष को (विश्वा) समस्त (भुवना) लोकस्थ प्राणी (अभि) सम्मुखता से (संदधुः) अच्छे प्रकार धारण करते हैं उस (मरुत्वन्तम्) अच्छे पढ़ाने वालों को रखनेहारे सेनाधीश को (सख्याय) मित्रपन के लिये हम लोग (हवामहे) स्वीकार करते हैं उसको तुम भी स्वीकार करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो परमात्मा और सेना का अधीश सब लोकों का सब प्रकार से मेल करता है वह सब को सेवन करने और मित्रभाव से मानने के योग्य है ॥ ६ ॥

रुद्राणामेति प्रदिशा विचक्षणो रुद्रेभिर्योषा तनुते पृथु ज्रयः ।
इन्द्रं मनीषा अभ्यर्चति श्रुतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ७ ॥

पदार्थ—(विचक्षणः) प्रशंसित चतुराई आदि गुणों से युक्त विद्वान् (रुद्राणाम्) प्राणों के समान बुरे भलों को रुलाते हुए विद्वानों के (प्रदिशा) ज्ञान-

मार्ग से (पृथुः) विस्तृत (त्रयः) प्रताप को (एति) प्राप्त होता है और (रुद्रेभिः) प्राण वा छोटे छोटे विद्यार्थियों के साथ (योषा) विद्या से मिली और मूर्खपन से अलग हुई स्त्री उसको (तनुते) विस्तारती है इससे जो विचक्षण विद्वान् (मनीषा) प्रशंसित बुद्धि से (श्रुतम्) प्रख्यात (इन्द्रम्) शाला आदि के अध्यक्ष का (अभ्यर्चति) सब ओर से सत्कार करता उस (मरुत्वन्तम्) अपने समीप पढ़ाने वालों को रखने वाले को (सख्याय) मित्रपन के लिए हम लोग (हवामहे) स्वीकार करते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—जिन मनुष्यों से, प्राणायामों से प्राणों के, सत्कार से श्रेष्ठों और तिरस्कार से दुष्टो को वश में कर समस्त विद्याओं को फैलाकर परमेश्वर वा अध्यापक का अच्छे प्रकार मान सत्कार, करके उपकार के साथ सब प्राणी सत्कारयुक्त किये जाते हैं वे सुखी होते हैं ॥ ७ ॥

यद्वा मरुत्वः परमे सधस्थे यद्वावमे वृजने मादयासे ।
अत आ याह्यध्वरं नो अच्छा त्वाया हविश्चकृमा सत्यराधः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (मरुत्वः) प्रशंसित विद्यायुक्त (सत्यराधः) विद्या आदि सत्यधनों वाले विद्वान् ! (यत्) जिस कारण आप (परमे) अत्यन्त उत्कृष्ट (सधस्थे) स्थान में और (यत्) जिस कारण (वा) उत्तम (अवमे) अधम (वा) वा मध्यम व्यवहार में (वृजने) कि जिस में मनुष्य दुःखों को छोड़ें (मादयासे) आनन्द देते हैं (अतः) इस कारण (नः) हम लोगों के (अध्वरम्) पढ़ने पढ़ाने के अहिंसनीय अर्थात् न छोड़ने योग्य यज्ञ को (अच्छ) अच्छे प्रकार (आ, याहि) आओ प्राप्त होओ (त्वाया) आप के साथ हम लोग (हविः) ग्रहण करने योग्य विशेष ज्ञान को (चकृम) करें अर्थात् उस विद्या को प्राप्त होवें ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जो विद्वान् सर्वत्र आनन्दित कराने और विद्या का देने हारा सत्य गुण कर्म और स्वभावयुक्त है उस के संग से निरन्तर समस्त विद्या और उत्तम शिक्षा को पाकर सर्वदा आनन्दित होवें ॥ ८ ॥

त्वायेन्द्र सोमं सुषुमा सुदक्ष त्वाया हविश्चकृमा ब्रह्मवाहः ।
अधा नियुत्वः सगणो मरुद्भिरस्मिन् यज्ञे बर्हिषि मादयस्व ॥९॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परम विद्यारूपी ऐश्वर्य से युक्त विद्वान् ! (त्वाया) आप के साथ हुए हमलोग (सोमम्) ऐश्वर्य करने वाले वेदशास्त्र के बोध को (सुषुम) प्राप्त हों। हे (सुदक्ष) उत्तम चतुराई युक्त बल और (ब्रह्मवाहः)

अनन्त धन तथा वेदविद्या की प्राप्ति कराने हारे विद्वान् ! (**त्वाया**) आप के सहित हम लोग (**हविः**) क्रियाकौशलयुक्त काम का (**चकृम**) विधान करें । हे (**नियुत्वः**) समर्थ ! (**अधा**) इस के अनन्तर (**मरुद्भिः**) ऋत्विज् अर्थात् पढ़ाने वालों और (**सगणः**) अपने विद्यार्थियों के गोलों के साथ वर्त्तमान आप (**अस्मिन्**) इस (**बर्हिषि**) अत्यन्त उत्तम (**यज्ञे**) पढ़ने पढ़ाने के सत्कार से पाये हुए व्यवहार में (**मादयस्व**) आनन्दित होओ और हम लोगों को आनन्दित करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—विद्वानों के सङ्ग के विना निश्चय है कि कोई ऐश्वर्य और आनन्द को नहीं पासकता है इससे सब मनुष्य विद्वानों का सदा सत्कार कर इन से विद्या और अच्छी अच्छी शिक्षाओं को प्राप्त होकर सब प्रकार से सत्कारयुक्त होवें ॥ ९ ॥

मादयस्व हरिभिर्ये त इन्द्र वि ष्यस्व शिप्रे वि सृजस्व धेने ।
आ त्वा सुशिप्र हरयो वहन्तूशन्हव्यानि प्रति नो जुषस्व ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (**सुशिप्र**) अच्छा सुख पहुंचाने वाले (**इन्द्र**) परमैश्वर्य्ययुक्त सेना के अधीश ! (**ये**) जो (**ते**) आपके प्रशंसित युद्ध में अति प्रवीण और उत्तमता से चालें सिखाये हुए घोड़े हैं उन (**हरिभिः**) घोड़ों से (**नः**) हम लोगों को (**मादयस्व**) आनन्दित कीजिये (**शिप्रे**) और सर्वसुख प्राप्ति कराने तथा (**धेने**) वाणी के समान समस्त आनन्द रस को देने हारे आकाश और भूमि लोक को (**विष्यस्व**) अपने राज्य से निरन्तर प्राप्ति हो (**विसृजस्व**) और छोड़ अर्थात् वृद्धावस्था में तप करने के लिये उस राज्य को छोड़दे जो (**हरयः**) घोड़े (**त्वाम्**) आप को (**आ, वहन्तु**) ले चलते हैं वा जिन से (**उशन्**) आप अनेक प्रकार की कामनाओं को करते हुए (**हव्यानि**) ग्रहण करने योग्य युद्ध आदि के कामों को सेवन करते हैं उन कामों के प्रति (**नः**) हम लोगों को (**जुषस्व**) प्रसन्न कीजिये ॥ १० ॥

भावार्थ—सेनापति को चाहिये कि सेना के समस्त अङ्गों को पूर्ण बलयुक्त और अच्छी अच्छी शिक्षा दे । उनको युद्ध के योग्य सिद्धकर समस्त विघ्नों की निवृत्ति कर और अपने राज्य की उत्तम रक्षा करके सब प्रजा को निरन्तर आनन्दित करे ॥ १० ॥

मरुत्स्तोत्रस्य वृजनस्य गोपा वयमिन्द्रेण सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥११॥

पदार्थ—जो (**मरुत्स्तोत्रस्य**) पवन आदि के वेगादि गुणों से प्रशंसा को प्राप्त (**वृजनस्य**) और दुःखवर्जित अर्थात् जिसमें दुःख नहीं होता उस व्यवहार का

(गोपाः) रखने वाला सेनाधिपति है उस (इन्द्रेण) ऐश्वर्य के देने वाले सेनापति के साथ वर्त्तमान (वयम्) हम लोग जिस कारण (वाजम्) संग्राम का (सनुयाम) सेवन करें (तत्) इस कारण (मित्रः) मित्र (वरुणः) उत्तम गुणयुक्त जन (अदितिः) समस्त विद्वान् मण्डली (सिन्धुः) समुद्र (पृथिवी) पृथिवी (उत) और (द्यौः) सूर्यलोक (नः) हम लोगों के (मामहन्ताम्) सत्कार करने के हेतु हों ॥ ११ ॥

भावार्थ—निश्चय है कि संग्राम में किन्हीं के पूर्ण वली सेनाधिपति के विना शत्रुओं का पराजय नहीं हो सकता और न कोई सेनाधिपति अच्छी शिक्षा किई हुई पूर्ण वल अङ्ग और उपाङ्ग सहित आनन्दित और पुष्ट सेना के विना शत्रुओं के जीतने वा राज्य की पालना करने को समर्थ हो सकता है न उक्त व्यवहारों के विना मित्र आदि सुख करने के योग्य होते हैं इस से उक्त समस्त व्यवहार सब मनुष्यों को यथावत् मानना चाहिये ॥ ११ ॥

इस सूक्त में ईश्वर सभा सेना और शाला आदि के अधिपतियों के गुणों का वर्णन है इससे इस सूक्तार्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह एकसौ एकवां सूक्त पूरा हुआ ॥

आङ्गिरसः कुत्स ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ जगती । ३ । ५—८ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । २ । ४ । ६ स्वराट् त्रिष्टुप् । १० । ११ निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः धैवतः स्वरः ॥

इमां ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्त आनजे ।
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु ॥ १ ॥

पदार्थ—हे सर्व विद्या देने वाले शाला आदि के अधिपति ! (यत्) जो (ते) (अस्य) इन आप की (धिषणा) विद्या और उत्तम शिक्षा की हुई वाणी (आनजे) सब लोगों ने चाही प्रकट किई और समझी है जिन (ते) आप के (इमाम्) इस (महः) बड़ी (महीम्) सत्कार करने योग्य (धियम्) बुद्धि को (स्तोत्रे) प्रशंसनीय व्यवहार में (प्रभरे) अतीव धरे अर्थात् स्वीकार करे वा (उत्सवे) उत्सव (च) और साधारण काम में वा (प्रसवे) पुत्र आदि के उत्पन्न होने और (च) गमी होने में जिन (सासहिम) अति क्षमापन करने

(इन्द्रम) विद्या और ऐश्वर्य की प्राप्ति कराने वाले आप को (देवासः) विद्वान् जन (शवसा) बल से (अनु, अमदन्) आनन्द दिलाते वा आनन्दित होते हैं (तम्) उन आप को मैं भी अनुमोदित करूं ॥ १ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिये कि सब धार्मिक विद्वानों की विद्या बुद्धियों और कामों को धारण और उन की स्तुति कर उत्तम उत्तम व्यवहारों का सेवन करें जिन से विद्या और सुख मिलते हैं वे विद्वान् जन सब को सुख और दुःख के व्यवहारों में सत्कारयुक्त कर के ही सदा आनन्दित करावें ॥ १ ॥

अस्य श्रवो नद्यः सप्त बिभ्रति द्यावाक्षामा पृथिवी दर्शतं वपुः ।
अस्मे सूर्याचन्द्रमसाभिचक्षे श्रद्धे कमिन्द्र चरतो वितर्तुरम् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य के देने वाले ! (अस्य) निःशेष विद्यायुक्त जगदीश्वर का वा समस्त विद्या पढ़ाने हारे आप लोगों का (श्रवः) सामर्थ्य वा अन्न और (सप्त) सात प्रकार की स्वादयुक्त जल वाली (नद्यः) नदी (दर्शतम्) देखने और (वितर्तुरम्) अनेक प्रकार के नौका आदि पदार्थों से तरने योग्य महानद में तरने के अर्थ (कम्) सुख करने हारे (वपुः) रूप को (बिभ्रति) धारण करतीं वा पोषण करातीं तथा (द्यावाक्षामा) प्रकाश और भूमि मिल कर वा (पृथिवी) अन्तरिक्ष (सूर्याचन्द्रमसा) सूर्य और चन्द्रमा आदि लोक धरते पुष्टि कराते हैं ये सब (अस्मे) हम लोगों के (अभिचक्षे) मुख के सम्मुख देखने (श्रद्धे) और श्रद्धा कराने के लिये प्रकाश और भूमि वा सूर्य चन्द्रमा दो दो (चरतः) प्राप्त होते तथा अन्तरिक्ष प्राप्त होता और भी उक्त पदार्थ प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । परमेश्वर की रचना से पृथिवी आदि लोक और उनमें रहने वाले पदार्थ अपने अपने रूप को धारण करके सब प्राणियों के देखने और श्रद्धा के लिये हो और सुख को उत्पन्न कर चाल चलन के निमित्त होते हैं, परन्तु किसी प्रकार विद्या के विना इन सांसारिक पदार्थों से सुख नहीं होता । इस से सब को चाहिये कि ईश्वर की उपासना और विद्वानों के संग से लोकसम्बन्धी विद्या को पाकर सदा सुखी होवें ॥ २ ॥

तं स्मा रथं मघवन्प्राव सातये जैत्रं यं ते अनुमदाम सङ्गमे ।
आजा न इन्द्र मनसा पुरुष्टुत त्वायद्भ्यो मघवञ्छर्म यच्छ नः ॥३॥

पदार्थ—हे (मघवन्) प्रशंसित और मान करने योग्य धनयुक्त (इन्द्र)

परमैश्वर्य्य के देने वाले सेना के अधिपति ! आप (नः) हम लोगों के (सातये) बहुत से धन की प्राप्ति होने के लिये (जैत्रम्) जिससे संग्रामों में जीतें (तम्) उस (स्म) अद्भुत अद्भुत गुणों को प्रकाशित करने वाले (रथम्) विमान आदि रथसमूह को जुता के (आजा) जहां शत्रुओं से वीर जा जा मिलें उस (संगमे) संग्राम में (प्र, अव) पहुँचाओ अर्थात् अपने रथ को वहाँ ले जाओ, कौन रथ को ? कि (यम्) जिस (ते) आपके रथ को हम लोग (अनु, मदाम) पीछे से सराहें। हे (पुरुष्टुत) बहुत शूरवीर जनों से प्रशंसा को प्राप्त (मघवन्) प्रशंसित धनयुक्त ! आप (मनसा) विशेष ज्ञान से (त्वायद्भ्यः) अपने को आप की चाहना करते हुए (नः) हम लोगों के लिये अद्भुत (शर्म) सुख को (यच्छ) देओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—जब शूरवीर सेवकों के साथ सेनापति को संग्राम करने को जाना होता है तब परस्पर अर्थात् एक दूसरे का उत्साह बढ़ा के अच्छे प्रकार रक्षा शत्रुओं के साथ अच्छा युद्ध उनकी हार और अपने जनों को आनन्द देकर शत्रुओं को भी किसी प्रकार सन्तोष देकर सदा अपना वर्त्ताव रखना चाहिये ॥ ३ ॥

वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन् वृष्ण्या रुज ॥४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) शत्रुओं के दल को विदीर्ण करने वाले सेना आदि के अधीश ! तुम (भरेभरे) प्रत्येक संग्राम में (अस्माकम्) हम लोगों के (वृतम्) स्वीकार करने योग्य (अंशम्) सेनाविभाग को (अव) रक्खो चाहो जानो प्राप्त होओ अपने में रमाओ मांगो प्रकाशित करो उस से आनन्दित होने आदि क्रियाओं से स्वीकार करो वा भोजन वस्त्र धन यान कोश को बांट लेओ तथा (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (वरिवः) अपना सेवन (सुगम्) सुगम (कृधि) करो । हे (मघवन्) प्रशंसित बल वाले ! तुम (वृष्ण्या) शस्त्र वर्षाने वालों की शस्त्रवृष्टि के लिये हितरूप अपनी सेना से (शत्रूणाम्) शत्रुओं की सेनाओं को (प्र, रुज) अच्छी प्रकार काटो और ऐसे साथी (त्वया, युजा) जो आप उनके साथ (वयम्) युद्ध करने वाले हम लोग शत्रुओं के बलों को (उत्,जयेम) उत्तम प्रकार से जीतें ॥ ४ ॥

भावार्थ—राजपुरुष जब जब युद्ध करने को प्रवृत्त होवें तब तब धन शस्त्र, यान, कोश, सेना आदि सामग्री को पूरी कर और प्रशंसित सेना के अधीश से रक्षा को प्राप्त होकर प्रशंसित विचार और युक्ति से शत्रुओं के साथ युद्ध कर उनकी सेनाओं को सदा जीतें, ऐसे पुरुषार्थ के विना किये किसी की जीत होने योग्य नहीं इससे इस वर्त्ताव को सदा वर्त्तें ॥ ४ ॥

नाना हि त्वा हवमाना जना इमे धनानां धर्त्तरवसा विपन्यवः।
अस्माकं स्मा रथमातिष्ठ सातये जैत्रं हीन्द्र निभृतं मनस्तव ॥ ५ ॥

पदार्थ— हे (इन्द्र) यथायोग्य वीरों के रखने वाले ! तुम (धनानाम्) राज्य की विभूतियों के (सातये) अलग अलग बांटने के लिये (स्म) आनन्द ही के साथ जिसमें (तव) तुम्हारी (मनः) विचार करने वाली चित्त की वृत्ति (निभृतम्) निरन्तर धरी हो उस (अस्माकम्) हमारे (जैत्रम्) जो बड़ा दृढ़ जिससे शत्रु जीते जायें (रथम्) ऐसे विजय कराने वाले विमानादि यान (हि) ही को (आतिष्ठ) अच्छे प्रकार स्वीकार कर स्थित हो। हे (धर्त्तः) धारण करने वाले ! तुम्हारी आज्ञा में अपना वर्त्ताव रखते हुए (अवसा) रक्षा आदि आप के गुणों के साथ वर्त्तमान (नाना) अनेक प्रकार (हवमानाः) चाहे हुए (विपन्यवः) विविध व्यवहारों में चतुर बुद्धिमान् (जनाः) जन (इमे) ये प्रत्यक्षता से परीक्षा किये हम लोग (त्वाम्) तुम्हारे अनुकूल (हि) ही वर्त्ताव रक्खें ॥ ५ ॥

भावार्थ—जब मनुष्य युद्ध आदि व्यवहारों में प्रवृत्त होवें तब विरोध, ईर्ष्या, डर और आलस्य को छोड़ एक दूसरे की रक्षा में तत्पर हो शत्रुओं को जीत और जीते हुए धनों को बांट कर सेनापति आदि लड़ने वालों की योग्यता के अनुकूल उन के सत्कार के लिये देवें कि जिससे लड़ने का उत्साह आगे को बढ़े। सब प्रकार से ले लेना प्रीति करने वाला नहीं और देना प्रसन्नता करने वाला होता है यह विचार कर सदा उक्त व्यवहार को वर्त्तें ॥ ५ ॥

गोजिता बाहू अमितक्रतुः सिमः कर्मन्कर्मञ्छतमूतिः खजङ्करः।
अकल्प इन्द्रः प्रतिमानमोजसाथा जना वि ह्वयन्ते सिषासवः ॥६॥

पदार्थ—हे सभापति ! जिन आप की (गोजिता) पृथिवी की जिताने वाली (बाहू) अत्यन्त बल पराक्रमयुक्त भुजा (अथ) इसके अनन्तर जो आप (इन्द्रः) अनेक ऐश्वर्य्ययुक्त (ओजसा) बल से (कर्मन्नुकर्मन्) प्रत्येक को काम में (अमितक्रतुः) अतुल बुद्धि वाले (अकल्पः) और बड़े बड़े समर्थ जनों से अधिक (सिमः) व्यवस्था से शत्रुओं के बांधने और (खजङ्करः) संग्राम करने वाले (शतमूतिः) जिनकी सैकड़ों रक्षा आदि क्रिया हैं (प्रतिमानम्) जिनको अत्यन्त सामर्थ्य वालों की उपमा दी जाती है उन आप को (सिषासवः) सेवन करने की इच्छा करने वाले (जनाः) विद्वान् जन (वि, ह्वयन्ते) चाहते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ--मनुष्यों को चाहिये कि जो सर्वथा समर्थ, प्रत्येक काम के

करने को जानता औरों से न जीतने योग्य आप सत्र को जीतने वाला, सब के चाहने योग्य और अनुपम मनुष्य हो उसको सेनाधिपति करके विजय आदि कामों को साधें ॥ ६ ॥

उत्तें शतान्मंघवन्नुच्च भूयंस उत्सहस्रांद्रिरिचे कृष्टिषु श्रवंः ।
अमात्रं त्वां धिषणां तित्विषे मह्यधां वृत्राणिं जिघ्नसे पुरन्दर ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (मघवन्) असंख्यात ऐश्वर्य्य से युक्त सेनापति ! (ते) आप का (कृष्टिषु) मनुष्यों में (श्रवः) कीर्त्तन श्रवण वा धन (शतात्) सैकड़ों से (उत्) ऊपर (रिरिचे) निकल गया (सहस्रात्) हजारों से (उत्) ऊपर (च) और (भूयसः) अधिक से भी (उत्) ऊपर अर्थात् अधिक निकल गया (अध) इस के अनन्तर (अमात्रम्) परिमाणरहित (त्वा) आप की (मही) महा गुणयुक्त (धिषणा) विद्या और अच्छी शिक्षा को पाये हुई वाणी वा बुद्धि (तित्विषे) प्रकाशित करती है। हे (पुरन्दर) शत्रुओं के पुरों के विदारने वाले (वृत्राणि) जैसे मेघ के अङ्ग अर्थात् बद्दलों को सूर्य्य हनन करता है वैसे आप शत्रुओं को (जिघ्नसे) मारते हो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जैसे सूर्य्य अन्धकार और मेघ आदि का हनन करके अपरिमित अर्थात् जिसका परिमाण न हो सके उस अपने तेज को प्रकाशित कर के सब तेज वाले पदार्थों में बढ़ के वर्त्तमान है वैसे विद्वान् को सभा का अधीश मान के शत्रुओं को जीतें ॥ ७ ॥

त्रिविष्टिधातु प्रतिमानमोजंसस्तिस्रो भूमींर्नृपते त्रीणिं रोचना ।
अतीदं विश्वं भुवनं ववक्षिथाशत्रुरिन्द्र जनुषां सनादंसि ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (नृपते) मनुष्यों के स्वामी ईश्वर वा राजन् ! (इन्द्र) बहुत ऐश्वर्य से युक्त (अशत्रुः) शत्रुरहित आप (त्रिविष्टिधातु) जिस में तीन प्रकार की पृथिवी जल तेज पवन आकाश की व्याप्ति अर्थात् परिपूर्णता है उस संसार की (प्रतिमानम्) परिमाण वा उपमान जैसे हो वैसे (सनात्) सनातन कारण वा (ओजसः) बल वा (जनुषा) उत्पन्न किये हुये काम से (तिस्रः) तीन प्रकार (भूमीः) अर्थात् निचली ऊपरली और बीचली उत्तम अधम और मध्यम भूमि तथा (त्रीणि) तीन प्रकार के (रोचना) प्रकाशयुक्त विद्या शब्द और सूर्य्य और न्याय करने बल और राज्यपालन आदि काम के तुम दोनों यथायोग्य निर्वाह करने वाले (असि) हो और उक्त पञ्चभूतमय (इदम्) इस (विश्वम्) समस्त (भुवनम्) जिसमें कि प्राणी होते हैं उस जगत् के (अति, ववक्षिथ)

अतीव निर्वाह करने की इच्छा करते हो इससे ईश्वर उपासना करने योग्य और विद्वान् आप सत्कार करने योग्य हो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जिसकी उपमा नहीं है उस ईश्वर ने कारण से सब कार्य्यरूप जगत् को रच और उस की रक्षा कर उस का संहार किया है वही इष्टदेव मानने योग्य है तथा जो अतुल सामर्थ्ययुक्त सभापति प्रसिद्ध न्याय आदि गुणों से समस्त राज्य को सन्तोषित करता है सो भी सदा सत्कार करने योग्य है ॥ ८ ॥

त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे त्वं बभूथ पृतनासु सासहिः ।
सेमं नः कारुमुपमन्युमुद्भिदमिन्द्रः कृणोतु प्रसवे रथं पुरः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे सेनापते ! जिस कारण (**त्वम्**) आप (**पृतनासु**) अपनी वा शत्रुओं की सेनाओं में (**सासहिः**) अतीव सहनशील (**बभूथ**) होते हैं इससे (**देवेषु**) विद्वानों में (**प्रथमम्**) पहिले (**त्वाम्**) समग्र सेना के अधिपति तुम को (**हवामहे**) हम लोग स्वीकार करते हैं जो (**इन्द्रः**) समस्त ऐश्वर्य के प्रकट करने हारे आप (**प्रसवे**) जिसमें वीरजन चिताये जाते हैं उस राज्य में (**उद्भिदम्**) पृथिवी का विदारण करके उत्पन्न होने वाले काष्ठ विशेष से बनाये हुए (**रथम्**) विमान आदि रथ को (**पुरः**) आगे कहते हैं (**सः**) वह आप (**नः**) हम लोगों के लिये (**इमम्**) इस (**उपमन्युम्**) समीप में मानने योग्य (**कारुम्**) क्रिया कौशल काम के करने वाले जन को (**कृणोतु**) प्रसिद्ध करें ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जो उत्तम विद्वान् अपनी सेना को पालन और शत्रुओं के बल को विदारने में चतुर शिल्पकार्य्यों को जानने वाला प्रमी युद्ध में आगे होने से अत्यन्त युद्ध करता है उसी को सेना का अधीश करें ॥ ९ ॥

त्वं जिगेथ न धना रुरोधिथार्भेष्वाजा मघवन्महत्सु च ।
त्वामुग्रमवसे सं शिशीमस्यथा न इन्द्र हवनेषु चोदय ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (**मघवन्**) परम सराहने योग्य धन आदि सामग्री लिये हुए (**इन्द्र**) शत्रुओं के विरादने वाले सेनापति ! जो (**त्वम्**) आप चतुरङ्ग अर्थात् चौतरफी नाकेबन्दी की सेना सहित (**अर्भेषु**) थोड़े (**महत्सु**) बड़े (**च**) और मध्यम (**आजा**) संग्रामों में शत्रुओं को (**जिगेथ**) जीते हुए हो और उक्त संग्रामों में (**धना**) धन आदि पदार्थों को (**न**) न (**रुरोधिथ**) रोकते हो उन (**उग्रम्**) शत्रुओं के बल को विदीर्ण करने में अत्यन्त बली (**त्वाम्**) आप को (**अवसे**)

रक्षा आदि के लिये स्वीकार करके हम लोग शत्रुओं को (**संशिशीमसि**) अच्छे प्रकार निर्मूल नष्ट करते हैं (**अथ**) इसके अनन्तर आप भी ऐसा कीजिये कि (**हवनेषु**) ग्रहण करने योग्य कामों में (**नः**) हम लोगों को (**चोदय**) प्रवृत्त कराइये ॥ १० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य शत्रुओं और समय को पाकर धनों को जीतने श्रेष्ठ कामोंमें सब को लगाने और दुष्टों को छिन्न भिन्न करने वाला हो वही सब को सेनाओं का अधीश मानना चाहिये ॥ १० ॥

विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥११॥

पदार्थ—(**अपरिह्वृताः**) आज्ञा को पाये हुए हम लोग जो (**विश्वाहा**) सब शत्रुओं को मारने वाला (**इन्द्रः**) परमैश्वर्य्ययुक्त सभाध्यक्ष (**नः**) हम लोगों की (**अधिवक्ता**) यथावत् शिक्षा देने वाला (**अस्तु**) हो उस के लिये (**वाजम्**) अच्छे संस्कार किये हुए अन्न को (**सनुयाम**) देवें जिससे (**तत्**) उसको (**नः**) हम लोगों के (**मित्रः**) मित्रपन (**वरुणः**) उत्तम गुणयुक्त (**अदितिः**) समस्त विद्वान् अन्तरिक्ष (**सिन्धुः**) समुद्र (**पृथिवी**) पृथिवी (**उत**) और (**द्यौः**) सूर्य्यलोक (**मामहन्ताम्**) बढ़ावें ॥ ११ ॥

भावार्थ—सब सेवकों की यह रीति हो कि जब अपना स्वामी जैसी आज्ञा करे उसी समय उस को वैसे ही करें और जो समग्र विद्या पढ़ा हो उसी से उपदेश सुनने चाहियें ॥ ११ ॥

इस सूक्त में शाला आदि के अधिपति, ईश्वर, पढ़ाने वाले और सेनापति के गुणों के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ से एकता है यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ दो वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

आङ्गिरसः कुत्स ऋषिरिन्द्रो देवता । १ । ३ । ५ । ६ निचृत्त्रिष्टुप् । २ । ४ विराट् त्रिष्टुप् । ७ । ८ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

तत्त इन्द्रियं परमं पराचैरधारयन्त कवयः पुरेदम् ।
क्षमेदमन्यद्दिव्य१न्यदस्य समी पृच्यते समनेव केतुः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! जो (**ते**) आप वा जीव की सृष्टि में (**इदम्**)

वह प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष सामर्थ्य (**परमम्**) प्रबल अति उत्तम (**इन्द्रियम्**) परम ऐश्वर्य्ययुक्त आप और जीव का एक चिह्न जिस को (**कवयः**) बुद्धिमान् विद्वान् जन (**पराचैः**) ऊपर के चिह्नों से सहित (**पुरा**) प्रथम (**अधारयन्त**) धारण करते हुए (**क्षमा**) सब को सहने वाली पृथिवी (**इदम्**) इस वर्त्तमान चिह्न को धारण करती जो (**दिवि**) प्रकाशमान सूर्य्य आदि लोक में वर्त्तमान वा जो (**अन्यत्**) उस से भिन्न कारण में वा (**अस्य**) इस संसार के बीच में है इस को (**ई**) जल धारण करता वा जो (**अन्यत्**) और विलक्षण न देखे हुए कार्य्य में होता है (**तत्**) उस सब को (**समनेव**) जैसे युद्ध में सेना आ जुटे ऐसे (**केतुः**) विज्ञान देने वाले होते हुए आप वा जीव प्रकाशित करता यह सब इस जगत् में (**संपृच्यते**) सम्बद्ध होता है ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! इस जगत् में जो जो रचना विशेष चतुराई के साथ अच्छी अच्छी वस्तु वर्त्तमान है वह वह सब परमेश्वर की रचना से ही प्रसिद्ध है यह तुम जानो क्योंकि ऐसा विचित्र जगत् विधाता के विना कभी होने योग्य नहीं। इससे निश्चय है कि इस जगत् का रचने वाला परमेश्वर है और जीव सम्बन्धी सृष्टि का रचने वाला जीव है ॥ १ ॥

स धा॑रयत् पृथि॒वीं प॒प्रथ॑च्च॒ वज्रे॑ण ह॒त्वा निर॒पः स॑सर्ज ।
अह॒न्नहि॒मभि॑नद्रौहि॒णं व्यह॒न् व्यं॑सं म॒घवा॒ शची॑भिः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**मघवा**) सूर्य्यलोक (**शचिभिः**) कामों से (**पृथिवीम्**) पृथिवी को (**धारयत्**) धारण करता अपने तेज (**च**) और बिजुली आदि को (**पप्रथत्**) फैलाता उस अपने तेज से सब जगत् को प्रकाशित करता (**वज्रेण**) अपने किरणसमूह से मेघ को (**हत्वा**) मार के (**अपः**) जलों को (**निः**) (**ससर्ज**) निरन्तर उत्पन्न करता फिर (**अहिम्**) मेघ को (**अहन्**) हनता (**रौहिणम्**) रोहिणी नक्षत्र में उत्पन्न हुए मेघ को (**अभिनत्**) विदारण करता (**व्यंसम्**) (**वि, अहन्**) केवल साधारण ही विदारता हो सो नहीं किन्तु कटि जाय भुजा आदि जिस की ऐसे रुण्ड मुण्ड मुचण्ड उद्दण्ड वीर के समान विशेष करके मेघों को हनता है (**सः**) वह सूर्य्य लोक ईश्वर ने रचा है यह जानो ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को यह देखना चाहिये कि प्रसिद्ध जो सूर्यलोक है वह मेघों के विदारण लोकों के खींचने और प्रकाश आदि कामों से जल वर्षा पृथिवी को धारण और अप्रकट अर्थात् अन्धकार से ढंपे हुए जो पदार्थ हैं उन को प्रकाशित कर सब प्राणियों को व्यवहार में चलाता है वह परमात्मा के बनाने के विना उत्पन्न नहीं हो सकता ॥ २ ॥

स जातूभर्मा श्रद्दधान ओजः पुरो विभिन्दन्नचरद्वि दासीः ।
विद्वान् वज्रिन्दस्यवे हेतिमस्यार्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (वज्रिन्) प्रशंसित शस्त्रसमूह युक्त (इन्द्र) अच्छे अच्छे पदार्थों के देने वाले सेना आदि के स्वामी ! जो (जातूभर्मा) उत्पन्न हुए सांसारिक पदार्थों को धारण (श्रद्दधानः) और अच्छे कामों में प्रीति करने वाले (विद्वान्) विद्वान् आप (अस्य) इस दुष्ट जन की (दासीः) नष्ट होनेहारीसी दासी प्रधान (पुरः) नगरियों को (दस्यवे) दुष्ट काम करते हुए जन के लिये (विभिन्दन्) विनाश करते हुए (व्यचरत्) विचरते हो (सः) वह आप श्रेष्ठ सज्जनों के लिये (हेतिम्) सुख के बढ़ाने वाले वज्र को (आर्य्यम्) श्रेष्ठ वा अति श्रेष्ठों के इस (सहः) बल (द्युम्नम्) धन वा (ओजः) और पराक्रम को (वर्धय) बढ़ाया करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य समस्त डांकू चोर लवाड़ लम्पट लड़ाई करने वालों का विनाश और श्रेष्ठों को हर्षित कर शारीरिक और आत्मिक बल का संपादन कर धन आदि पदार्थों से सुख को बढ़ाता है वही सब को श्रद्धा करने योग्य है ॥ ३ ॥

तदूचुषे मानुषेमा युगानि कीर्त्तेन्यं मघवा नाम बिभ्रत् ।
उपप्रयन्दस्युहत्याय वज्री यद्ध सूनुः श्रवसे नाम दधे ॥ ४ ॥

पदार्थ – जो (मघवा) बहुत धनों वाला (सूनुः) वीर का पुत्र (वज्री) प्रशंसित शस्त्र अस्त्र बांधे हुए सेनापति जैसे सूर्य प्रकाशयुक्त है वैसे प्रकाशित होकर (ऊचुषे) कहने की योग्यता के लिये वा (दस्युहत्याय) जिस के लिये डाकुओं को हनन किया जाय उस (श्रवसे) धन के लिये (इमा) इन (मानुषा) मनुष्यों में होने वाले (युगानि) वर्षों को तथा (कीर्त्तेन्यम्) कीर्त्तनीय (नाम) प्रसिद्ध और जल को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (उपप्रयन्) उत्तम महात्मा के समीप जाता हुआ (यत्) जिस (नाम) प्रसिद्ध काम को (दधे) धारण करता है (तत्) उस उत्तम काम को (ह) निश्चय से हम लोग भी धारण करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य काल के अवयव अर्थात् संवत्सर महीना दिन घड़ी आदि और जल को धारण कर सब प्राणियों के सुख के लिये अन्धकार का विनाश करके सब को सुख देता है वैसे ही सेनापति सुखपूर्वक संवत्सर और कीर्त्ति को धारण करके शत्रुओं के मारने से सब के सुख के लिये धन को उत्पन्न करे ॥ ४ ॥

यद॑स्येदं प॑श्यता भूरि॑ पुष्टं श्रदिन्द्र॑स्य धत्तन वीर्याय ।
स गा अ॑विन्द॒त्सो अ॑विन्द॒दश्वा॒न् स ओष॑धीः सो अ॒पः स वना॑नि ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (सः) वह सेनापति सूर्य्य के तुल्य (गाः) भूमियों को (अविन्दत्) प्राप्त होता (सः) वह (अश्वान्) बड़े पदार्थों को (अविन्दत्) प्राप्त होता (सः) वह (ओषधीः) ओषधियों अर्थात् गेहूँ उड़द मूँग चना आदि को प्राप्त होता (सः) वह (अपः) सूर्य्य जलों को जैसे वैसे कर्मों को प्राप्त होता (सः) तथा वह सूर्य (वनानि) किरणों को जैसे वैसे जङ्गलों को प्राप्त होता है (अस्य) इस (इन्द्रस्य) सेना बल युक्त सेनापति के (तत्) उस कर्म को वा (इदम्) इस (भूरि) बहुत (पुष्टम्) दृढ़ (श्रत्) सत्य के आचरण को तुम (पश्यत) देखो और (वीर्य्याय) बल होने के लिये (धत्तन) धारण करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि जो श्रेष्ठ जनों के सत्य आचरण से प्राप्ति है उसी को धारण करें उसके विना सत्य पराक्रम और सब पदार्थों का लाभ नहीं होता ॥ ५ ॥

भूरि॑कर्मणे वृष॒भाय॒ वृष्णे॑ स॒त्यशु॑ष्माय सुनवा॒म सोम॑म् ।
य आ॒दृत्या॑ परिप॒न्थीव॒ शूरोऽय॑ज्वनो वि॒भज॒न्नेति वेदः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हम लोग (यः) जो (शूरः) निडर शूरवीर पुरुष (आदृत्य) आदर सत्कार कर (परिपन्थीव) जैसे सब प्रकार से मार्ग में चले हुए डांकू दूसरे का धन आदि सर्वस्व हर लेते हैं वैसे चोरों के प्राण और उनके पदार्थों को छीन छान हर लेवे वह (विभजन्) विभाग अर्थात् श्रेष्ठ और दुष्ट पुरुषों को अलग अलग करता हुआ उन में से (अयज्वनः) जो यज्ञ नहीं करते उन के (वेदः) धन को (एति) छीन लेता उस (भूरिकर्मणे) भारी काम के करने वाले (वृषभाय) श्रेष्ठ (वृष्णे) सुख पहुँचाने वाले (सत्यशुष्माय) नित्य बली सेनापति के लिये जैसे (सोमम्) ऐश्वर्य्य समूह को (सुनवाम) उत्पन्न करें वैसे तुम भी करो ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि जो ऐसा ढीठ है कि जैसे डांकू आदि होते हैं और साहस करता हुआ चोरों के धन आदि पदार्थों को हर सज्जनों का आदर कर पुरुषार्थी बलवान् उत्तम से उत्तम हो उसी को सेनापति करें ॥ ६ ॥

तदि॑न्द्र॒ प्रेव॑ वी॒र्य॑ चकर्थ॒ यत्स॒सन्तं॒ वज्रे॒णाबो॑धयो॒ऽहि॑म् ।
अनु॑ त्वा॒ पत्नी॑र्हृषि॒तं वय॑श्च॒ विश्वे॑ दे॒वासो॑ अमद॒न्ननु॑ त्वा ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) सेनाध्यक्ष ! आप (**ससन्तम्**) सोते हुए वा चिन्ता-रहित (**अहिम्**) सर्प्प वा शत्रु को (**यत्**) जो (**वज्रेण**) तीक्ष्ण शस्त्र से (**अवोधयः**) सचेत कराते हो (तत्) सो (**वीर्य्यम्**) अपने बल को (**प्रेव**) प्रकट सा (**चकर्थ**) करते हो (**अनु**) उस के पीछे (**हृषितम्**) उत्पन्न हुआ है आनन्द जिनको उन (**त्वा**) आप को (**पत्नी**) आप के स्त्री जन और (**वयः**) ज्ञानवान् (**विश्वे**) समस्त (**देवासश्च**) विद्वान् जन भी (**त्वा**) आप को (**अन्वमदन्**) अनुकूलता से प्रसन्न करते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। बलवान् सेनापति से दुष्ट जीव तथा दुष्ट शत्रुजन मारे जाते हैं ॥ ७ ॥

शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रमिन्द्र यदावधीर्वि पुरः शम्बरस्य।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥८॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) सेनापति (**यदा**) जब सूर्य (**शुष्णम्**) बलवान् (**कुयवम्**) जिस से कि यवादि होते और (**पिप्रुम्**) जल आदि पदार्थों को परिपूर्ण करता उस (**वृत्रम्**) मेघ वा (**शम्बरस्य**) अत्यन्त वर्षने वाले बलवान् मेघ की (**पुरः**) पूरी पूरी घटा और घुमड़ी हुई मण्डलियों को हनता है वैसे शत्रुओं की नगरियों को (**वि, अवधीः**) मारते हो (**तत्**) तब (**मित्रः**) मित्र (**वरुणः**) उत्तम गुणयुक्त (**अदितिः**) अन्तरिक्ष (**सिन्धुः**) समुद्र (**पृथिवी**) पृथिवी (**उत**) और (**द्यौः**) सूर्यलोक (**नः**) हम लोगों के (**मामहन्ताम्**) सत्कार कराने के हेतु होते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जैसे सूर्य्य के गुण हैं उन की उपमा अर्थात् अनुसार लेकर अपने गुणों से सेवकादिकों से और पृथिवी आदि लोकों से उपकारों को ले और शत्रुओं को मार कर निरन्तर सुखी हों ॥ ८ ॥

इस सूक्त में ईश्वर सूर्य और सेनाधिपति के गुणों के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह एकसौ तीन वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

आङ्गिरसः कुत्स ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ पङ्क्तिः । २ । ४ । ५ स्वराट् पङ्क्ति ६ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३ । ७ त्रिष्टुप् । ८ । ९ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि तमा निषीद स्वानो नार्वा ।
विमुच्या वयोऽवसायाश्वान्दोषा वस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) न्यायाधीश ! (**ते**) आप के (**निषदे**) बैठने के लिये (**योनिः**) जो राज्यसिंहासन हम लोगों ने (**अकारि**) किया है (**तम्**) उस पर आप (**आ निषीद**) बैठो और (**स्वानः**) हींसते हुए (**अर्वा**) घोड़े के (**न**) समान (**प्रपित्वे**) पहुँचने योग्य स्थान में किसी समय जाया चाहते हुए आप (**वयः**) पक्षी वा अवस्था की (**अवसाय**) रक्षा आदि व्यवहार के लिये (**अश्वान्**) दौड़ते हुए घोड़ों को (**विमुच्य**) छोड़ के (**दोषा**) रात्री वा (**वस्तोः**) दिन में (**वहीयसः**) आकाश मार्ग से बहुत शीघ्र पहुँचाने वाले अग्नि आदि पदार्थों को जोड़ो अर्थात् विमानादि रथों को अग्नि जल आदि की कलाओं से युक्त करो ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । न्यायाधीशों को चाहिये कि न्यायासन पर बैठ के चलते हुए प्रसिद्ध शब्दों से अर्थी प्रत्यर्थी अर्थात् लड़ने और दूसरी ओर से लड़ने वालों को अच्छी प्रकार समझा कर प्रतिदिन यथोचित न्याय करके उन सब को प्रसन्न कर सुखी करें, और अत्यन्त परिश्रम से अवस्थाकी अवश्य हानि होती है जैसे डांक आदि में अति दौड़ने से घोड़ा बहुत मरते हैं इस को विचार कर बहुत शीघ्र जाने आने के लिये क्रिया-कौशल से विमान आदि यानों को अवश्य रचें ॥ १ ॥

ओ त्ये नर इन्द्रमूतये गुर्नू चित्तान्त्सद्यो अध्वनो जगम्यात् ।
देवासो मन्युं दासस्य श्चम्नन्ते न आ वक्षन्त्सुविताय वर्णम् ॥ २ ॥

पदार्थ—(**त्ये**) जो (**नरः**) सज्जन (**ऊतये**) रक्षा के लिये (**इन्द्रम्**) सभा सेना आदि के अधीश के (**सद्यः**) शीघ्र (**ओ, गुः**) सम्मुख प्राप्त होते हैं (**तान्**) उन को (**चित्**) भी यह सभापति (**अध्वनः**) श्रेष्ठ मार्गों को (**जगम्यात्**) निरन्तर पहुंचावे । तथा जो (**देवासः**) विद्वान् जन (**दासस्य**) अपने सेवक के (**मन्युम्**) क्रोध को (**श्चम्नन्**) निवृत्त करें (**ते**) वे (**नः**) हम लोगों की (**सुविताय**) प्रेरणा को प्राप्त हुए दास के लिये (**वर्णम्**) आज्ञा पालन करने को (**नु**) शीघ्र (**आ, वक्षन्**) पहुँचावें ॥ २ ॥

भावार्थ—जो प्रजा वा सेना के जन सत्य के राखने को सभा आदि के अधीशों के शरण को प्राप्त हों उन की वे यथावत् रक्षा करें जो विद्वान् लोग

वेद और उत्तम शिक्षाओं से मनुष्यों के क्रोध आदि दोषों को निवृत्त कर शान्ति आदि गुणों का सेवन करावें वे सब को सेवन करने के योग्य हैं ॥ २ ॥

अव त्मना भरते केतवेदा अव त्मना भरते फेनमुदन्।
क्षीरेण स्नातः कुयवस्य योषे हते ते स्यातां प्रवणे शिफायाः ॥३॥

पदार्थ—(केतवेदाः) जिसने धन जान लिया है वह राजपुरुष (त्मना) अपने से प्रजा के धन को (अव, भरते) अपना कर धर लेता है अर्थात् अन्याय से ले लेता है और जो प्रजापुरुष (त्मना) अपने से (फेनम्) व्याज पर व्याज ले लेकर बढ़ाये हुए वा और प्रकार अन्याय से बढ़ाये हुए राजधन को (अव भरते) अधर्म से लेता है वे दोनों (क्षीरेण) जल से पूरे भरे हुए (उदन्) जलाशय अर्थात् नद नदियों में (स्नातः) नहाते हैं उससे ऊपर से शुद्ध होते भी जैसे (कुयवस्य) धर्म और अधर्म से मिले जिसके व्यवहार हैं उस पुरुष की (योषे) अगले पिछले विवाह की परस्पर विरोध करती हुई स्त्रियां (शिफायाः) अति काट करती हुई नदी के (प्रवणे) प्रवल बहाव में गिर कर (हते) नष्ट (स्याताम्) हों वैसे नष्ट हो जाते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो प्रजा का विरोधी राजपुरुष वा राजा का विरोधी प्रजा पुरुष हैं ये दोनों निश्चय है कि सुखोन्नति को नहीं पाते हैं और जो राजपुरुष पक्षपात से अपने प्रयोजन के लिये प्रजापुरुषों को पीड़ा देके धन इकट्ठा करता तथा जो प्रजापुरुष चोरी वा कपट आदि से राजधन को नाश करता है वे दोनों जैसे एक पुरुष को दो पत्नी परस्पर अर्थात् एक दूसरे से कलह करके क्रोध से नदी के वीच गिर कर मर जाती हैं वैसे ही शीघ्र विनाश हो जाते हैं, इस से राजपुरुष प्रजा के साथ और प्रजापुरुष राजा के साथ विरोध छोड़ के परस्पर सहायकारी होकर सदा अपना वर्त्ताव रक्खें ॥ ३ ॥

युयोप नाभिरुपरस्यायोः प्र पूर्वाभिस्तिरते राष्टि शूरः।
अञ्जसी कुलिशी वीरपत्नी पयो हिन्वाना उदभिर्भरन्ते ॥ ४ ॥

पदार्थ—जब (शूरः) निडर शत्रुओं का मारने वाला शूरवीर (प्र, पूर्वाभिः) प्रजाजनों के साथ (तिरते) राज्य का यथावत् न्याय कर पार होता और (राष्टि) उस राज्य में प्रकाशित होता है तब (आयोः) प्राप्त होने योग्य (उपरस्य) मेघ की (नाभिः) बन्धन चारों ओर से घुमड़ी हुई बादलों की दवन (युयोप) सब को मोहित करती है अर्थात् राजधर्म से प्रजासुख के लिये जलवर्षा भी होती है वह थोड़ी नहीं किन्तु (अञ्जसी) प्रसिद्ध (कुलिशी) जो सूर्य के किरणरूपी वज्र से सब प्रकार रही हुई अर्थात् सूर्य के विकट आतप से सूखने से बची हुई (वीरपत्नी)

बड़ी बड़ी नदी जिन से बड़ा वीर समुद्र ही है वे (पयः) जल को (हिन्वानाः) हिड़ोलती हुई (उदभिः) जलों से (भरन्ते) भर जाती हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—अच्छे राज्य से सब सुख प्रजा में होता है और विना अच्छे राज्य के दुःख और दुर्भिक्ष आदि उपद्रव होते हैं इससे वीर पुरुषों को चाहिये कि रीति से राज्य पालन करें ॥ ४ ॥

प्रति यत्स्या नीथादर्शि दस्योरोको नाच्छा सदनं जानती गात् ।
अध स्मा नो मघवञ्चर्कृतादिन्मा नो मघेव निष्षपी परा दाः ॥५॥

पदार्थ—सभा आदि के स्वामी ने (यत्) जो (नीथा) न्याय रक्षा को पहुंचाई हुई प्रजा (दस्योः) पराया धन हरने वाले डांकू के (ओकः) घर के (न) समान पालीसी (अदर्शि) देख पड़ती है (स्या) वह (अच्छ) अच्छा (जानती) जानती हुई (सदनम्) घर को (प्रति, गात्) प्राप्त होती अर्थात् घर को लौट जाती है । हे (मघवन्) सभा आदि के स्वामी ! (निष्षपी) स्त्री के साथ निरन्तर लगे रहने वाले तू (नः) हम लोगों को (मघेव) जैसे धनों को वैसे (मा, परा, दाः) मत बिगाड़े (अध) इस के अनन्तर (नः) हम लोगों के (चर्कृतात्) निरन्तर करने योग्य काम से (इत्) ही विरुद्ध व्यवहार मत (स्म) दिखावे ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे अच्छा दृढ़ अच्छे प्रकार रक्षा किया हुआ घर चोरों वा शीत गर्मी और वर्षा से मनुष्य और धन आदि पदार्थों की रक्षा करता है वैसे ही सभापति राजाओं की अच्छी पाली हुई प्रजा इन को पालती है जैसे कामी जन अपने शरीर धर्म विद्या और अच्छे आचरण को बिगाड़ता और जैसे पाये हुये बहुत धनों को मनुष्य ईर्ष्या और अभिमान से अन्यायों में फंस कर बहाते हैं वैसे उक्त राजाजन प्रजा का विनाश न करें किन्तु प्रजा के किये हुए निरन्तर उपकारों को जान कर अभिमान छोड़ और प्रेम बढ़ाकर इन को सब दिन पालें और दुष्ट शत्रुजनों से डर के पलायन न करें ॥ ५ ॥

स त्वं न इन्द्र सूर्ये सोऽअप्स्वनागास्त्व आ भज जीवशंसे ।
मान्तरां भुजमारीरिषो नः श्रद्धितं ते महतऽइन्द्रियाय ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सभा के स्वामी जिन (ते) आप के (महते) बहुत और प्रशंसा करने योग्य (इन्द्रियाय) धन के लिये (नः) हम लोगों का (श्रद्धितम्) श्रद्धाभाव है (सः) वह (त्वम्) आप (नः) हम लोगों के (भुजम्) भोग करने योग्य प्रजा को (अन्तराम्) बीच में (मा) मत (आरीरिषः) रिवाइये

मत मारिये और (सः) सो आप (सूर्य्ये) सूर्य्य, प्राण (अप्सु) जल (अनागास्त्वे) और निष्पाप में तथा (जीवशंसे) जिस में जीवों की प्रशंसा स्तुति हो उस व्यवहार में उपमा को (आ, भज) अच्छे प्रकार भजिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—सभापतियों को जो प्रजाजन श्रद्धा से राज्यव्यवहार की सिद्धि के लिये बहुत धन देवें वे कभी मारने योग्य नहीं और जो प्रजाओं में डांकू वा चोर हैं वे सदैव ताड़ना देने योग्य हैं जो सेनापति के अधिकार को पावे वह सूर्य्य के तुल्य न्यायविद्या का प्रकाश जल के समान शान्ति और तृप्ति कर अन्याय और अपराध का त्याग और प्रजा के प्रशंसा करने योग्य व्यवहार का सेवन कर राज्य को प्रसन्न करे ॥ ६ ॥

अधा मन्ये श्रत्ते अस्मा अधायि वृषा चोदस्व महते धनाय ।

मा नो अकृते पुरुहूत योनाविन्द्र क्षुध्यद्भ्यो वय आसुतिं दाः ॥७॥

पदार्थ—हे (पुरुहूत) अनेकों से सत्कार पाये हुए (इन्द्र) परमैश्वर्य्य देने और शत्रुओं का नाश करने हारे सभापति ! (वृषा) अति सुख वर्षाने वाले आप (अकृते) बिना किये विचारे (योनौ) निमित्त में (नः) हम लोगों के (वयः) अभीष्ट अन्न और (आसुतिम्) सन्तान को (मा, दाः) मत छिन्न भिन्न करो और (क्षुध्यद्भ्यः) भुखानों के लिये अन्न जल आदि (अधायि) धरो हम लोगों को (महते) बहुत प्रकार के (धनाय) धन के लिये (चोदस्व) प्रेरणा कर (अध) इस के अनन्तर (अस्मै) इस उक्त काम के लिये (ते) तेरी (श्रत्) यह श्रद्धा वा सत्य आचरण मैं (मन्ये) मानता हूँ ॥ ७ ॥

भावार्थ—न्यायाधीश आदि राजपुरुषों को चाहिये कि जिन्होंने अपराध न किया हो उन प्रजाजनों को कभी ताड़ना न करें, सब दिन इनसे राज्य का कर धन लेवें, तथा इन को अच्छी प्रकार पाल और उन्नति दिलाकर विद्या और पुरुषार्थ के बीच प्रवृत्त कराकर आनन्दित करावें, सभापति आदि के इस सत्य काम को प्रजाजनों को सदैव मानना चाहिये ॥ ७ ॥

मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा मा नः प्रिया भोजनानि प्र मोषीः ।

आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन्मा नः पात्रा भेत्सहजानुषाणि ॥८॥

पदार्थ—हे (मघवन्) प्रशंसित धन युक्त (शक्र) सब व्यवहार के करने को समर्थ (इन्द्र) शत्रुओं को विनाश करने वाले सभा के स्वामी आप (नः) हम प्रजास्थ मनुष्यों को (मा, वधीः) मत मारिये (मा, परा, दाः) अन्याय से दण्ड मत दीजिये स्वभाविक काम और (नः) हम लोगों के (सहजानुषाणि) जो

जन्म से सिद्ध उनके वर्त्तमान (प्रिया) पियारे (भोजनानि) भोजन पदार्थों को (मा, प्र, मोषीः) मत चोरिये (नः) हमारे (आण्डा) अण्डा के समान जो गर्भ में स्थित हैं उन प्राणियों को (मा, निर्भेत्) विदीर्ण मत कीजिये (नः) हम लोगों के (पात्राः) सोने चांदी के पात्रों को (मा, भेत्) मत बिगाड़िये ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे सभापति ! तू, जैसे अन्याय से किसी को न मार के किसी भी धार्मिक सज्जन से विमुख न होकर चोरी चमारी आदि दोषरहित परमेश्वर दया का प्रकाश करता है वैसे ही अपने राज्य के काम करने में प्रवृत्त हो ऐसे वर्त्ताव के विना राजा से प्रजा सन्तोष नहीं पाती ॥ ८ ॥

अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहुरयं सुतस्तस्य पिबा मदाय ।
उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव नः शृणुहि हूयमानः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे सभाध्यक्ष ! जिस से (त्वा) आप को (सोमकामम्) कूटे हुए पदार्थों के रस की कामना करने वाले (आहुः) बतलाते हैं इससे आप (अर्वाङ्) अन्तरङ्ग व्यवहार में (आ, इहि) आओ (अयम्) यह जो (सुतः) निकाला हुआ पदार्थों का रस है (तस्य) उस को (मदाय) हर्ष के लिये (पिब) पिओ (उरुव्यचाः) जिसका बहुत और अनेक प्रकार का पूजन सत्कार है वह आप (जठरे) जिस से सब व्यवहार होते हैं उस पेट में (आ, वृषस्व) आसेचन कर अर्थात् उक्त पदार्थ को अच्छी प्रकार पीओ तथा हम लोगों से (हूयमानः) प्रार्थना को प्राप्त हुए आप (पितेव) जैसे प्रेम करता हुआ पिता पुत्र की सुनता है वैसे (नः) हमारी (शृणुहि) सुनिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—प्रजाजनों को चाहिये कि सभापति आदि राजपुरुषों को खान पान वस्त्र धन पान और मीठी मीठी बातों से सदा आनन्दित बनाये रहें और राजपुरुषों को भी चाहिये कि प्रजाजनों को पुत्र के समान निरन्तर पालें ॥९॥

इस सूक्त में सभापति राजा और प्रजा के करने योग्य व्यवहार के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह एकसौ चार वां सूक्त समाप्त हुआ ।

———

आप्त्यस्त्रित ऋषिराङ्गिरसः कुत्सो वा । विश्वेदेवा देवताः । १ । २ । १२ । १६ । १७ निचृत्पङ्क्तिः । ३ । ४ । ६ । ६ । १५ । १८ । विराट्पङ्क्तिः । ८ । १० स्वराट् पङ्क्तिः । ११ । १४ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ५ निचृद्बृहती । ७ भुरिग्बृहती । १३ महाबृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । १९ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१॥

पदार्थ—हे (रोदसी) सूर्यप्रकाश वा भूमि के तुल्य राज और प्रजा जन-समूह (मे) मुझ पदार्थ विद्या जानने वाले की उत्तेजना से जो (अप्सु) प्राण-रूपी पवनों के (अन्तः) बीच (सुपर्णः) अच्छा गमन करने वा (चन्द्रमा) आनन्द देने वाला चन्द्रलोक (दिवि) सूर्य के प्रकाश में (आ, धावते) अति शीघ्र घूमता है और (हिरण्यनेमयः) जिन को सुवर्णरूपी चमक दमक चिल-चिचिलाहट है वे (विद्युतः) बिजुली लपट झपट से दौड़ती हुई (वः) तुम लोगों की (पदम्) विचार वाली शिल्प चतुराई को (न) नहीं (विन्दन्ति) पाती हैं अर्थात् तुम उन को यथोचित काम में नहीं लाते हो (अस्य) इस पूर्वोक्त विषय को तुम (वित्तम्) जानो ॥ १ ॥

भावार्थ—हे राजा और प्रजा के पुरुष जो चन्द्रमा की छाया और अन्तरिक्ष के जल के संयोग से शीतलता का प्रकाश है उस को जानो तथा जो बिजुली लपट झपट से दमकती हैं वे आंखों से देखने योग्य हैं और जो विलाय जाती हैं उनका चिह्न भी आंख से देखा नहीं जा सकता इस सब को जानकर सुख को उत्पन्न करो ॥ १ ॥

अर्थमिद्वा उ अर्थिन आ जाया युवते पतिम् ।
तुञ्जाते वृष्ण्यं पयः परिदाय रसं दुहे वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ २ ॥

पदार्थ—जैसे (अर्थिनः) प्रशंसित प्रयोजन वाले जन (अर्थम्) जो प्राप्त होता है उसको (वै) ही (पतिम्) पति का (जाया) सम्बन्ध करने वाली स्त्री के समान (आ, युवते) अच्छे प्रकार सम्बन्ध करते हैं (उ) या तो जैसे राजा प्रजा जिस (वृष्ण्यम्) श्रेष्ठों में उत्तम (पयः) अन्न (इत्) और (रसम्) स्वादिष्ठ ओषधियों से निकाले रस को (परिदाय) सब ओर से दे के दुःखों को (तुञ्जाते) दूर करते हैं वैसे उस को मैं भी (दुहे) बढ़ाऊं शेष अर्थ प्रथम मन्त्र में कहे के समान जानना चाहिये ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे स्त्री अपनी

इच्छा के अनुकूल पति को वा पति अपनी इच्छा के अनुकूल स्त्री को पाकर परस्पर आनन्दित करते हैं वैसे प्रयोजन सिद्ध कराने में तत्पर बिजुली पृथिवी और सूर्य प्रकाश की विद्या के ग्रहण से पदार्थों को प्राप्त होकर सदा सुख देती है इस की विद्या को जानने वालों के संग के विना यह विद्या होने को कठिन है और दुःख का भी विनाश अच्छी प्रकार नहीं होता। इस से सब को चाहिये कि इस विद्या को यत्न से लेवें ॥ २ ॥

मो षु देवा अदः स्व१रवपादि दिवस्परि ।

मा सोम्यस्य शंभुवः शूने भूम कदा चन वित्तं मे अस्य रोदसी ॥३॥

पदार्थ—हे (देवाः) विद्वानो ! तुम लोगों से (दिवः) सूर्य के प्रकाश से (परि) ऊपर (अदः) वह प्राप्त होने हारा (स्वः) सुख (कदा, चन) कभी (मो, अव, पादि) न उत्पन्न हुआ है। हम लोग (सोम्यस्य) ऐश्वर्य के योग्य (शंभुवः) सुख जिस से हो उस व्यवहार की (सु, शूने) सुन्दर उन्नति में विरुद्ध भाव से चलनेहारे कभी (मा) (भूम) मत होवें और अर्थ प्रथम मन्त्र के समान जानना चाहिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि इस संसार में धर्म और सुख से विरुद्ध काम नहीं करें और पुरुषार्थ से निरन्तर सुख की उन्नति करें ॥ ३ ॥

यज्ञं पृच्छाम्यवमं स तद्दूतो वि वोचति ।

क्व ऋतं पूर्व्यं गतं कस्तद्बिभर्त्ति नूतनो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! मैं आप के प्रति जिस (अवमम्) रक्षा आदि करने वाले उत्तम वा निकृष्ट (यज्ञम्) समस्त विद्या से परिपूर्ण (पूर्व्यम्) पूर्वजों ने सिद्ध किया (ऋतम्) सत्य मार्ग वा उत्तम जल स्थान (क्व) कहां (गतम्) गया (कः) और कौन (नूतनः) नवीन जन (तत्) उस को (बिभर्त्ति) धारण करता है इस को (पृच्छामि) पूछता हूं (सः) सो (दूतः) इधर उधर से बात चीत वा पदार्थों को जानते हुए आप (तत्) उस सब विषय को (विवोचति) विवेक कर कहो और अर्थ सब प्रथम मन्त्र के तुल्य जानना ॥ ४ ॥

भावार्थ—विद्या को चाहते हुए ब्रह्मचारियों को चाहिये कि विद्वानों के समीप जाकर अनेक प्रकार के प्रश्नों को करके और उन से उत्तर पाकर विद्या को बढ़ावें और हे पढ़ाने वाले विद्वानो ! तुम लोग अच्छा गमन जैसे हो वैसे आओ और हम से इस संसार के पदार्थों की विद्या को सब प्रकार से जान औरों को पढ़ा कर सत्य और असत्य को यथार्थभाव से समझाओ ॥ ४ ॥

अमी ये देवाः स्थन त्रिष्वा रोचने दिवः ।
कद्व ऋतं कदनृतं क्व प्रत्ना व आहुतिर्वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! तुम (दिवः) प्रकाश करने वाले सूर्य्य के (रोचने) प्रकाश में (त्रिषु) तीन अर्थात् नाम स्थान और जन्म में (अमी) प्रकट और अप्रकट (ये) जो (देवाः) दिव्य गुण वाले पृथिवी आदि लोक (आ) अच्छी (स्थन) स्थिति करते हैं (वः) इन के बीच (ऋतम्) सत्य कारण (कत्) कहां और (अनृतम्) झूंठ कार्यरूप (कत्) कहां और (वः) उन के (प्रत्ना) पुराने पदार्थ तथा उन का (आहुतिः) होम अर्थात् विनाश (क) कहां होता है इन सब प्रश्नों के उत्तर कहो । शेष मन्त्र का अर्थ पूर्व के तुल्य जानना चाहिए ॥५॥

भावार्थ—प्रश्न—जब सब लोकों को आहुति अर्थात् प्रलय होता है तब कार्य्यकारण और जीव कहां ठहरते हैं ? इस का उत्तर—सर्वव्यापी ईश्वर और आकाश में कारणरूप से सब जगत् और अच्छी गाढ़ी नींद में सोते हुए के समान जीव रहते हैं । एक एक सूर्य के प्रकाश और आकर्षण के विषय में जितने जितने लोक हैं उतने उतने सब ईश्वर ने बनाये धारण किये तथा इनकी व्यवस्था की है, यह जानना चाहिये ॥ ५ ॥

कद्व ऋतस्य धर्णसि कद्वरुणस्य चक्षणम् ।
कदर्यम्णो महस्पथाति क्रामेम दूढ्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (वः) इन स्थूल पदार्थों के (ऋतस्य) सत्य कारण का (धर्णसि) धारण करने वाला (कत्) कहां है (वरुणस्य) जल आदि कार्य-रूप पदार्थों का (चक्षणम्) देखना (कत्) कहां है तथा (महः) महान् (अर्यम्णः) सूर्य्यलोक वा जो (दूढ्यः) अति गम्भीर दुःख से ध्यान में आने योग्य व्यवहार है उस को (कत्) किस (पथा) मार्ग से हम (अति, क्रामेम) पार हों अर्थात् उस विद्या से परिपूर्ण हों । और शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के तुल्य जानना चाहिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—विद्या करने को चाहते हुए पुरुषों को चाहिये कि विद्वानों के समीप जाकर कार्य्य और कारण को विद्या के मार्ग विषयक प्रश्नों को कर उनसे उत्तर पाकर क्रियाकुशलता से कामों को सिद्ध करके दुःख का नाश कर सुख पावें ॥ ६ ॥

अहं सो अस्मि यः पुरा सुते वदामि कानि चित् ।
तं मा व्यन्त्याध्यो३ वृको न तृष्णजं मृगं वित्तं मे अस्य रोदसी ॥७॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यः) जो (अहम्) संसार का उत्पन्न करने वाला

(सुते) उत्पन्न हुए इस जगत् में (कानि) (चित्) किन्हीं व्यवहारों को (पुरा) सृष्टि के पूर्व वा विद्वान् मैं उत्पन्न हुए संसार में किन्हीं व्यवहारों को विद्या की उत्पत्ति से पहिले (वदामि) कहता हूँ (सः) वह मैं सेवन करने योग्य (अस्मि) हूँ (तम्) उस (मा) मुझ को (आध्यः) अच्छी प्रकार चिन्तन करने वाले आप लोग जैसे (वृकः) चोर वा व्याघ्र (तृष्णजम्) पियासे (मृगम्) हरिण को (न) वैसे (व्यन्ति) चाहो । और शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के तुल्य जानना चाहिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार है। सब मनुष्यों के प्रति ईश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे मैंने सृष्टि को रच के वेद द्वारा जैसे जैसे उपदेश किये हैं उन को वैसे ही ग्रहण करो और उपासना करने योग्य मुझ को छोड़ के अन्य किसी की उपासना कभी मत करो जैसे कोई जीव मृग या रसिक चोर वा बघेरा हरिण को प्राप्त होना चाहता है वैसे ही सब दोषों को निर्मूल छोड़कर मेरी चाहना करो और ऐसे विद्वान् को भी चाहो ॥ ७ ॥

सं मा॑ तपन्त्य॒भितः॑ स॒पत्नी॑रिव॒ पर्श॑वः ।
मूषो॒ न शि॒श्ना व्य॑दन्ति मा॒ध्यः॑ स्तो॒तारं॑
ते शतक्रतो वि॒त्तं मे॑ अ॒स्य रो॑दसी ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (शतक्रतो) असंख्य उत्तम विचारयुक्त वा अनेकों उत्तम उत्तम कर्म करने वाले न्यायाधीश ! (ते) आप की प्रजा वा सेना में रहने और (स्तोतारम्) धर्म का गाने वाला मैं हूँ (मा) उस को जो (पर्शवः) औरों को मारने और तीर के रहने वाले मनुष्य आदि प्राणी (सपत्नीरिव) (अभितः, सम्, तपन्ति) जैसे एक पति को बहुत स्त्रियां दुःखी करती हैं ऐसे दुःख देते हैं। जो (आध्यः) दूसरे के मन में व्यथा उत्पन्न करने हारे (मूषः) मूषे जैसे (शिश्ना) अशुद्ध सूतों को (वि, अदन्ति) विदार विदार अर्थात् काट काट खाते हैं (न) वैसे (मा) मुझको संताप देते हैं उन अन्याय करने वाले जनों को तुम यथावत् शिक्षा करो । और शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के समान जानिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे न्याय करने के अध्यक्ष आदि मनुष्यो ! तुम जैसे सौतेली स्त्री अपने पति को कष्ट देती है वा जैसे अपने प्रयोजन मात्र का बनाव बिगाड़ देखने वाले मूषे पराये पदार्थों का अच्छी प्रकार नाश करते हैं और जैसे व्यभिचारिणी वेश्या आदि कामिनी दामिनी स्त्री दमकती हुई कामीजन के लिङ्ग आदि रोगरूपी कुकर्म्म के द्वारा उस के धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष के करने की रुकावट से उस कामी-

जन को पीड़ा देती हैं वैसे ही जो डांकू चोर चवाई अताई लड़ाई भिड़ाई करने वाले झूठ की प्रतीति और झूठे कामों की बातों में हम लोगों को क्लेश देते हैं उन को अच्छी [प्रकार] दण्ड देकर हम लोगों को तथा उन को भी निरन्तर पालो ऐसे करने के विना राज्य का ऐश्वर्य नहीं बढ़ सकता ॥ ८ ॥

अमी ये सप्त रश्मयस्तत्रा मे नाभिरातता ।

त्रितस्तद्वेदाप्त्यः स जामित्वाय रेभति वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ९॥

पदार्थ—जहां (अमी) (ये) ये (सप्त) सात (रश्मयः) किरणों के समान नीति प्रकाश हैं (तत्र) वहां (मे) मेरी (नाभिः) सब नसों को बांधने वाली तोंद (आतता) फैली है जिस में निरन्तर मेरी स्थिति है (तत्) उस को जो (आप्त्यः) सज्जनों में उत्तम जन (त्रितः) तीनों अर्थात् भूत भविष्यत् और वर्त्तमान काल से (वेद) जाने अर्थात् रात दिन विचारे (सः) वह पुरुष (जामित्वाय) राज्य भोगने के लिये कन्या के तुल्य (रेभति) प्रजाजनों की रक्षा तथा प्रशंसा और चाहना करता है । और अर्थ प्रथम मन्त्रार्थ के समान जानो ॥ ९ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्य्य के साथ किरणों की शोभा और सङ्ग है वैसे राजपुरुषों के साथ प्रजाजनों की शोभा और सङ्ग हो तथा जो मनुष्य कर्म उपासना और ज्ञान को यथावत् जानता है वह प्रजा के पालने में पितृवत् होकर समस्त प्रजाजनों का मनोरञ्जन कर सकता है और नहीं ॥ ९ ॥

अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिवः ।

देवत्रा नु प्रवाच्यं सध्रीचीना नि वावृतुर्वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१०॥

पदार्थ—हे सभाध्यक्ष आदि सज्जनो ! तुम को जैसे (अमी) प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष (उक्षणः) जल सींचने वा सुख सींचने हारे बड़े (पञ्च) अग्नि पवन बिजुली मेघ और सूर्य्यमण्डल का प्रकाश (महः) अपार (दिवः) दिव्य गुण और पदार्थयुक्त आकाश के (मध्ये) बीच (तस्थुः) स्थिर हैं और जैसे (सध्रीचीनाः) एक साथ रहने वाले गुण (देवत्रा) विद्वानों में (नि, वावृतुः) निरन्तर वर्त्तमान हैं वैसे (ये) जो निरन्तर वर्त्तमान हैं उन प्रजा तथा राजाओं के संगियों के प्रति विद्या और न्याय प्रकाश की बात (नु) शीघ्र (प्रवाच्यम्) कहनी चाहिये । और शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के समान जाननी चाहिये ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य आदि घटपटादि पदार्थों में संयुक्त होकर वृष्टि आदि के द्वारा अत्यन्त सुख को उत्पन्न करते हैं और समस्त पृथिवी आदि पदार्थों में आकर्षणशक्ति से

वर्त्तमान हैं वैसे ही सभाध्यक्ष आदि महात्मा जनों के गुणों वा बड़े बड़े उत्तम गुणों से युक्त मनुष्यों को सिद्ध करके इनसे न्याय और प्रीति के साथ वर्त्तकर निरन्तर सुखी करें ॥ १० ॥

सुपर्णा एत आसते मध्य आरोधने दिवः ।
ते सेधन्ति पथो वृकं तरन्तं यह्वतीरपो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥११॥

पदार्थ—हे प्रजाजनो ! आप लोग जैसे (एते) ये (सुपर्णाः) सूर्य्य की किरणें (दिवः) सूर्य्य के प्रकाश से युक्त आकाश के (मध्ये) बीच (आरोधने) रुकावट में (आसते) स्थिर हैं और जैसे (ते) वे (तरन्तम्) पार कर देने वाली (वृकम्) बिजुली को गिरा के (यह्वतीः) बड़ों के वर्त्ताव रखते हुए (अपः) जलों और (पथः) मार्गों को (सेधन्ति) सिद्ध करते हैं वैसे ही आप लोग राज कामों को सिद्ध करो । और शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के तुल्य जानना चाहिये ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे ईश्वर के नियमों में सूर्य की किरणें आदि पदार्थ यथावत् वर्त्तमान हैं वैसे ही तुम प्रजा पुरुषों को भी राजनीति के नियमों में वर्त्तना चाहिये, जैसे ये सभाध्यक्ष आदि जन दुष्ट मनुष्यों की निवृत्ति करके प्रजाजनों की रक्षा करते हैं वैसे तुम लोगों को भी ये ईर्ष्या अभिमान आदि दोषों को निवृत्त करके रक्षा करने योग्य हैं ॥ ११ ॥

नव्यं तदुक्थ्यं हितं देवासः सुप्रवाचनम् ।
ऋतमर्षन्ति सिन्धवः सत्यं तातान सूर्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१२॥

पदार्थ—हे (देवासः) विद्वानो ! आप जैसे (सिन्धवः) समुद्र (सत्यम्) जल की (अर्षन्ति) प्राप्ति करावें और (सूर्य्यः) सूर्य्यमण्डल (ततान) उस का विस्तार कराता अर्थात् वर्षा कराता है वैसे जो (ऋतम्) वेद सृष्टिक्रम प्रत्यक्षादि प्रमाण विद्वानों के आचरण अनुभव अर्थात् आप ही आप कोई बात मन से उत्पन्न होना और आत्मा की शुद्धता के अनुकूल (नव्यम्) उत्तम नवीन नवीन व्यवहारों और (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय वचनों में होने वाला (हितम्) सब का प्रेमयुक्त पदार्थ (तत्) उसको (सुप्रवाचनम्) अच्छी प्रकार पढ़ाना उपदेश करना जैसे बने वैसे प्राप्त कीजिये । शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के समान जानना चाहिये ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे समुद्रों से जल उड़कर ऊपर को चढ़ा हुआ सूर्य्य के ताप से फैल कर बरस के सब प्रजाजनों को सुख देता है वैसे विद्वान् जनों को नित्य नवीन नवीन विचार

से गूढ़ विद्याओं को जान और प्रकाशित कर सब के हित का संपादन और सत्य धर्म्म के प्रचार से प्रजा को निरन्तर सुख देना चाहिये ॥ १२ ॥

अग्ने तव त्यदुक्थ्यं देवेष्वस्त्याप्यम् ।
स नः सत्तो मनुष्वदा देवान्
यक्षि विदुष्टरो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) समस्त विद्याओं को जाने हुए विद्वान् जन्म ! (**तव**) आप का (**त्यत्**) वह जो (**आप्यम्**) पाने योग्य (**मनुष्वत्**) मनुष्यों में जैसा हो वैसा (**उक्थ्यम्**) अति उत्तम विद्यावचन (**देवेषु**) विद्वानों में (**अस्ति**) है (**सः**) वह (**सत्तः**) अविद्या आदि दोषों को नाश करने वाले (**विदुष्टरः**) अति विद्या पढ़े हुए आप (**नः**) हम लोगों को (**देवान्**) विद्वान् करते हुए उन की (**आयक्षि**) संगति को पहुँचाइये अर्थात् विद्वानों की पदवी को पहुँचाइये । और मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के समान है ॥ १३ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् समस्त विद्याओं को पढ़ाकर विद्वान् पन के उत्पन्न कराने में कुशल है उससे समस्त विद्या और धर्म के उपदेशों को सब मनुष्य ग्रहण करें और से नहीं ॥ १३ ॥

सत्तो होता मनुष्वदा देवाँ अच्छा विदुष्टरः ।
अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**सत्तः**) विज्ञानवान् दुःख हरने वाला (**देवान्**) विद्वान् वा दिव्य दिव्य क्रियायोगों का (**होता**) ग्रहण करने वाला (**विदुष्टरः**) अत्यन्त ज्ञानी (**अग्निः**) श्रेष्ठ विद्या का जानने वा समझाने वाला (**मेधिरः**) बुद्धिमान् (**देवेषु**) विद्वानों में (**देवः**) प्रशंसनीय विद्वान् मनुष्य (**मनुष्वत्**) जैसे उत्तम मनुष्य श्रेष्ठ कर्मों का अनुष्ठान कर पापों को छोड़ सुखी होते हैं वैसे (**हव्या**) देने लेने योग्य पदार्थों को (**अच्छ आ, सुषूदति**) अच्छी रीति से अत्यन्त देता है उस उत्तम विद्वान् से विद्या और शिक्षा को ग्रहण करना चाहिये ॥ १४ ॥

भावार्थ—ऐसा भाग्यहीन कौन जन होवे जो विद्वानों के तीर से विद्या और शिक्षा न लेवे और इनका विरोधी हो ॥ १४ ॥

ब्रह्मा कृणोति वरुणो गातुविदं तमीमहे ।
व्यूर्णोति हृदा मतिं नव्यो जायतामृतं वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१५॥

पदार्थ—हम लोग जो (**ऋतम्**) सत्यस्वरूप (**ब्रह्म**) परमेश्वर वा

(वरुणः) सब से उत्तम विद्वान् (गातुविदम्) वेदवाणी के जानने वाले को (कृणोति) करता है (तम्) उस को (ईमहे) याचते अथवा उससे मांगते हैं कि उस की कृपा से जो (नव्यः) नवीन विद्वान् (हृदा) हृदय से (मतिम्) विशेष ज्ञान को (व्यूर्णोति) उत्पन्न करता है अर्थात् उत्तम उत्तम रीतियों को विचारता है वह हम लोगों के बीच (जायताम्) उत्पन्न हो । शेष अर्थ प्रथम मन्त्र के तुल्य जानना चाहिये ॥ १५ ॥

भावार्थ—किसी मनुष्य पर पिछले पुण्य इकट्ठे होने और विशेष शुद्ध क्रियमाण कर्म करने के विना परमेश्वर की दया नहीं होती और उक्त व्यवहार के विना कोई पूरी विद्या नहीं पा सकता इस से सब मनुष्यों को परमात्मा की ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये कि हम लोगों में परिपूर्ण विद्यावान् अच्छे अच्छे गुण कर्म स्वभावयुक्त मनुष्य सदा हों, ऐसी प्रार्थना को नित्य प्राप्त हुआ परमात्मा सर्वव्यापकता से उन के आत्मा का प्रकाश करता है यह निश्चय है ॥ १५ ॥

असौ यः पन्था आदित्यो दिवि प्रवाच्यं कृतः ।
न स देवा अतिक्रमे तं मर्तासो न पश्यथ वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१६॥

पदार्थ—हे (देवाः) विद्वान् लोगो ! (असौ) यह (आदित्यः) अविनाशी सूर्य्य के तुल्य प्रकाश करने वाला (यः) जो (पन्थाः) वेद से प्रतिपादित मार्ग (दिवि) समस्त विद्या के प्रकाश में (प्रवाच्यम्) अच्छे प्रकार से कहने योग्य जैसे हो वैसे (कृतः) ईश्वर ने स्थापित किया (सः) वह तुम लोगों को (अतिक्रमे) उल्लंघन करने योग्य (न) नहीं है । हे (मर्त्तासः) केवल मरने जीने वाले विचार रहित मनुष्यो ! (तम्) उस पूर्वोक्त मार्ग को तुम (न) नहीं (पश्यथ) देखते हो । शेष मन्त्रार्थ पूर्व के तुल्य जानना चाहिये ॥ १६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जो वेदोक्त मार्ग है वही सत्य है ऐसा जान और समस्त सत्यविद्याओं को प्राप्त होकर सदा आनन्दित हों, सो यह वेदोक्त मार्ग विद्वानों को कभी खण्डन करने योग्य नहीं, और यह मार्ग विद्या के विना विशेष जाना भी नहीं जाता ॥ १६ ॥

त्रितः कूपेऽवहितो देवान्हवत ऊतये ।
तच्छुश्राव बृहस्पतिः कृण्वन्नंहूरणादुरु वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१७॥

पदार्थ—जो (उरु) बहुत (तत्) उस विद्या के पाठ को (शुश्राव) सुनता है वह विज्ञान को (कृण्वन्) प्रकट करता हुआ (त्रितः) विद्या शिक्षा और

ब्रह्मचर्य्य इन तीन विषयों का विस्तार करने अर्थात् इन को बढ़ाने (कूपे) कूआ के आकार अपने हृदय में (अवहितः) स्थिरता रखने और (बृहस्पतिः) बड़ी वेद-वाणी का पालने हारा (अंहूरणात्) जिस व्यवहार में अधर्म है उससे अलग होकर (ऊतये) रक्षा आनन्द कान्ति प्रेम तृप्ति आदि अनेकों सुखों के लिये (देवान्) दिव्य गुणयुक्त विद्वानों वा दिव्य गुणों को (हवते) ग्रहण करता है। और शेष मन्त्रार्थ प्रथम के तुल्य जानना चाहिये ॥ १७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य वा देहधारी जीव अर्थात् स्त्री आदि भी अपनी बुद्धि से प्रयत्न के साथ पण्डितों की उत्तेजना से समस्त विद्याओं को सुन, मान, विचार और प्रकट कर खोटे गुण स्वभाव वा खोटे कामों को छोड़ कर विद्वान् होता है वह आत्मा और शरीर की रक्षा आदि को पाकर बहुत सुख पाता है ॥ १७ ॥

अरुणो मासकृद्वृकः पथा यन्तं ददर्श हि ।
उज्जिहीते निचाय्या तष्टेव पृष्ट्यामयी वित्तं मेअस्य रोदसी ॥ १८ ॥

पदार्थ—जो (अरुणः) समस्त विद्याओं को प्राप्त होता वा प्रकाशित करता (वृकः) शान्ति आदि गुणयुक्त चन्द्रमा के समान विद्वान् (मा, सकृत्) मुझ को एक वार (पथा, यन्तम्) अच्छे मार्ग से चलते हुए को (ददर्श) देखता वा उक्त गुण युक्त महीना आदि काल विभागों को करने वाले चन्द्रमा के तुल्य विद्वान् अच्छे मार्ग से चलते हुए को देखता है वह (निचाय्य) यथायोग्य समाधान देकर (पृष्ट्यामयी) पीठ में क्लेशरूप रोगवान् (तष्टेव) शिल्पी विद्वान् जैसे शिल्प व्यवहारों को समझाता वैसे (उज्जिहीते) उत्तमता से समझाता (हि) ही है। शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के तुल्य जानना चाहिये ॥ १८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो विद्वान् चन्द्रमा के तुल्य शान्तस्वभाव और सूर्य्य के तुल्य विद्या के प्रकाश करने को स्वीकार कर के संसार में समस्त विद्याओं को फैलाता है वही आप्त अर्थात् अति उत्तम विद्वान् है ॥ १८ ॥

एनाङ्गूषेण वयमिन्द्रवन्तोऽभि ष्याम वृजने सर्ववीराः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥१९॥

पदार्थ—जिस (एना) इस (आङ्गूषेण) परम विद्वान् से (सर्ववीराः) समस्त वीरजन (इन्द्रवन्तः) जिन का परमैश्वर्य्ययुक्त सभापति है व (वयम्) हम लोग (वृजने) विद्याधर्मयुक्त बल में (अभि, स्याम) अभिमुख हों, अर्थात् सब

प्रकार से उस में प्रवृत्त हों (नः) हम लोगों के (तत्) उस विज्ञान को (मित्रः) प्राण (वरुणः) उदान (अदितिः) अन्तरिक्ष (सिन्धुः) समुद्र (पृथिवी) पृथिवी (उत) और (द्यौः) सूर्य्य प्रकाश वा विद्या का प्रकाश ये सब (मामहन्ताम्) बढ़ावें ॥ १९ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जिसके पढ़ाने से विद्या और अच्छी शिक्षा बढ़े उस के सङ्ग से समस्त विद्याओं का सर्वथा निश्चय करें ॥ १९ ॥

इस सूक्त में समस्त विद्वानों के गुण और काम के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह एकसौ पांच वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

आङ्गिरसः कुत्स ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । १—६ जगतीच्छन्दः । निषादः स्वरः । ७ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमूतये मारुतं शर्धो अदितिं हवामहे ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्त्तन ॥१॥

पदार्थ—(सुदानवः) जिनके उत्तम उत्तम दान आदि काम वा (वसवः) जो विद्यादि शुभ गुणों में बस रहे हों वे हे विद्वानो ! तुम लोग (रथम्) विमान आदि यान को (न) जैसे (दुर्गात्) भूमि जल वा अन्तरिक्ष के कठिन मार्ग से बचा लाते हो वैसे (नः) हम लोगों को (विश्वस्मात्) समस्त (अंहसः) पाप के आचरण से (निष्पिपर्त्तन) बचाओ, हम लोग (ऊतये) रक्षा आदि प्रयोजन के लिये (इन्द्रम्) बिजुली वा परम ऐश्वर्य्य वाले सभाध्यक्ष (मित्रम्) सब के प्राणरूपी पवन वा सर्व मित्र (वरुणम्) काम कराने वाले उदान वायु वा श्रेष्ठ गुणयुक्त विद्वान् (अग्निम्) सूर्य्य आदि रूप अग्नि वा ज्ञानवान् जन (अदितिम्) माता, पिता, पुत्र उत्पन्न हुए समस्त जगत् के कारण वा जगत् की उत्पत्ति (मारुतम्) पवनों वा मनुष्यों के समूह और (शर्द्धः) बल को (हवामहे) अपने कार्य की सिद्धि के लिये स्वीकार करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे मनुष्य अच्छी प्रकार सिद्ध किये हुए विमान आदि यान से अति कठिन मार्गों में भी सुख से जाना आना करके कामों को सिद्ध कर समस्त दरिद्रता आदि दुःख से छूटते हैं वैसे ही ईश्वर की सृष्टि के पृथिवी आदि पदार्थों वा विद्वानों को जान उपकार में लाकर उनका अच्छे प्रकार सेवन कर बहुत सुख को प्राप्त हो सकते हैं ॥ १ ॥

त आदित्या आ गता सर्वतातये भूत देवा वृत्रतूर्येषु शम्भुवः ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्त्तन ॥२॥

पदार्थ—हे (देवाः) दिव्यगुण वाले विद्वान् जनो ! जैसे (आदित्याः) कारणरूप से नित्य दिव्य गुण वाले जो सूर्य्य आदि पदार्थ हैं (ते) वे (वृत्रतूर्य्येषु) मेघावयवों अर्थात् बद्दलों का हिंसन विनाश करना जिनमें होता है उन संग्रामों में (शंभुवः) सुख की भावना कराने वाले होते हैं वैसे ही आप लोग हमारे समीप को (आ, गत) आओ और आकर शत्रुओं का हिंसन जिन में हो उन संग्रामों में (सर्वतातये) समस्त सुख के लिये (शंभुवः) सुख की भावना कराने वाले (भूत) होओ । शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के समान जानना चाहिये ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ईश्वर के बनाये हुए पृथिवी आदि पदार्थ सब प्राणियों के उपकार के लिये हैं वैसे ही सब के उपकार के लिये विद्वानों को नित्य अपना वर्त्ताव रखना चाहिये जैसे अच्छे दृढ़ विमान आदि यान पर बैठ देश देशान्तर को जा आकर व्यापार वा विजय से धन और प्रतिष्ठा को प्राप्त हो दरिद्रता और अयश से छूट कर सुखी होते हैं वैसे ही विद्वान् जन अपने उपदेश से विद्या को प्राप्त कराकर सब को सुखी करें ॥ २ ॥

अवन्तु नः पितरः सुप्रवाचना उत देवी देवपुत्रे ऋतावृधा ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्त्तनः ॥३॥

पदार्थ—(देवपुत्रे) जिनके दिव्यगुण अर्थात् अच्छे अच्छे विद्वान्जन वा अच्छे रत्नों से युक्त पर्वत आदि पदार्थ पालनेवाले हैं वा जो (ऋतावृधा) सत्य कारण से बढ़ते हैं वे (देवी) अच्छे गुणों वाले भूमि और सूर्य्य का प्रकाश जैसे (नः) हम लोगों की रक्षा करते हैं वैसे ही (सुप्रवाचनाः) जिनका अच्छा पढ़ाना और अच्छा उपदेश है वे (पितरः) विशेष ज्ञान वाले मनुष्य हम लोगों को (उत) निश्चय से (अवन्तु) रक्षादि व्यवहारों से पालें । शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्रार्थ के तुल्य समझना चाहिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोलङ्कार है। जैसे दिव्य ओषधियों और प्रकाश आदि गुणों से भूमि और सूर्य्यमण्डल सब को सुख के साथ बढ़ाते हैं वैसे ही आप्त विद्वान् जन सब मनुष्यों को अच्छी शिक्षा और पढ़ाने से विद्या आदि अच्छे गुणों में उन्नति देकर सुखी करते हैं। और जैसे उत्तम रथ आदि पर बैठ के दुःख से जाने योग्य मार्ग के पार सुखपूर्वक जाकर

समग्र क्लेश से छूट के सुखी होते हैं वैसे ही वे उक्त विद्वान् दुष्ट गुण कर्म और स्वभाव से अलग कर हम लोगों को धर्म के आचरण में उन्नति देवें ॥ ३ ॥

नराशंसं वाजिनं वाजयन्निह क्षयद्वीरं पूषणं सुम्नैरीमहे ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्त्तन ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! जैसे (वाजयन्) उत्तमोत्तम पदार्थों के विशेष ज्ञान करान वा युद्ध कराने हारे हम लोग (इह) इस सृष्टि में (सुम्नैः) सुखों से युक्त (नराशंसम्) मनुष्यों के प्रार्थना करने योग्य विद्वान् को तथा (वाजिनम्) विशेष ज्ञान और युद्धविद्या में कुशल (क्षयद्वीरम्) जिसके शत्रुओं को काट करने हारे वीर और जो (पूषणम्) शरीर वा आत्मा की पुष्टि कराने हारा है उस सभाध्यक्ष को (ईमहे) प्राप्त होवें वैसे तू शुभ गुणों की याचना कर । शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के तुल्य जानना चाहिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—हम लोग शुभ गुणों से युक्त सुखी मनुष्यों की मित्रता से प्राप्त होकर श्रेष्ठ होकर यानयुक्त शिल्पियों के समान दुःख से पार हों ॥ ४ ॥

बृहस्पते सदमिन्नः सुगं कृधि शं योर्यत्ते मनुर्हितं तदीमहे ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥५॥

पदार्थ—हे (बृहस्पते) परम अध्यापक अर्थात् उत्तम रीति से पढ़ाने वाले ! (ते) आप का जो (मनुर्हितम्) मन का हित करने वाला (शम्) सुख वा (योः) धर्म अर्थ और मोक्ष की प्राप्ति कराना है तथा (यत्) जो (सदम्, इत्) सदैव तुम (नः) हमारे लिये (सुगम्) सुख (कृधि) करो अर्थात् सिद्ध करो (तत्) उस उक्त समस्त को हम लोग (ईमहे) मांगते हैं । शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के तुल्य समझना चाहिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जैसे गुरुजन से विद्या ली जाती है वैसे ही सब विद्वानों से विद्या लेकर दुःखों का विनाश करें ॥ ५ ॥

इन्द्रं कुत्सो वृत्रहणं शचीपतिं काटे निवाळ्ह ऋषिरह्वदूतये ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ६ ॥

पदार्थ—(कुत्सः) विद्या रूपी वज्र लिये वा पदार्थों को छिन्न भिन्न करने (निवाढः) निरन्तर सुखों को प्राप्त कराने वाला (ऋषिः) गुरु और विद्यार्थी (काटे) जिस में समस्त विद्याओं की वर्षा होती है उस अध्यापन व्यवहार में (ऊतये) रक्षा आदि के लिये जिस (वृत्रहणम्) शत्रुओं को विनाश करने वा

(शचीपतिम्) वेद वाणी के पालने हारे (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवान् शाला आदि के अधीश को (अह्वत्) बुलावे हम लोग भी उसी को बुलावें । शेष मन्त्रार्थ प्रथम मन्त्र के तुल्य जानना चाहिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—विद्यार्थी को कपटी पढ़ाने वाले के समीप ठहरना नहीं चाहिये किन्तु आप्त विद्वानों के समीप ठहर और विद्वान् होकर ऋषिजनों के स्वभाव से युक्त होना चाहिये और अपने आत्मा की रक्षा के लिये अधर्म से डर कर धर्म में सदा रहना चाहिये ॥ ६ ॥

देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥७॥

पदार्थ—जो (देवैः) विद्वानों वा दिव्य गुणों के साथ वर्त्तमान (अप्रयुच्छन्) प्रमाद न करता हुआ (त्राता) सब की रक्षा करने वाला (देवः) विद्वान् है वह (नः) हम लोगों की (नि, पातु) निरन्तर रक्षा करे तथा (देवी) दिव्य गुण भरी सब अगरी (अदितिः) प्रकाश युक्त विद्या सब की (त्रायताम्) रक्षा करे (तत) उस पूर्वोक्त समस्त कर्म को (नः) और हम लोगों को (मित्रः) मित्रजन (वरुणः) श्रेष्ठ विद्वान् (अदितिः) अखण्डित नीति (सिन्धुः) समुद्र (पृथिवी) भूमि (उत) और (द्यौः) सूर्य्य का प्रकाश (मामहन्ताम्) बढ़ावें अर्थात् उन्नति देवें ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जो अप्रमादी विद्वानों में विद्वान् विद्या की रक्षा करने वाला विद्यादान से सब के सुख को बढ़ाता है उस का सत्कार करके विद्या और धर्म का प्रचार संसार में करें ॥ ७ ॥

इस सूक्त में समस्त विद्वानों के गुणों का वर्णन है इससे इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ छःवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

आङ्गिरसः कुत्स ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । १ विराट् त्रिष्टुप् । २ निचृत त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् च च्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृळयन्तः ।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादंहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (मृडयन्तः) हे आनन्दित करते हुए (आदित्यासः) सूर्य्य के

तुल्य विद्यायोग के प्रकाश को प्राप्त विद्वानो ! तुम जो (देवानाम्) विद्वानों की (यज्ञः) संगति से सिद्ध हुआ शिल्प काम (सुम्नम्) सुख को (प्रति, एति) प्रतीति कराता है उसको प्रकट करने हारे (भवत) होओ (या) जो (वः) तुम लोगों को (अंहोः) विशेष ज्ञान जैसे हो वैसे (अर्वाची) इस समय की (सुमतिः) उत्तम बुद्धि (ववृत्यात्) वर्त्ति रही है वह (चित्) भी हम लोगों के लिये (वरिवोवित्तरा) ऐसी हो कि जिससे उत्तर जनों की अच्छी प्रकार शुश्रूषा (आ. असत्) सब ओर से होवे ॥ १ ॥

भावार्थ—इस संसार में विद्वानों को चाहिये कि जो उन्हों ने अपने पुरुषार्थ से शिल्पक्रिया प्रत्यक्ष कर रक्खी हैं उन को सब मनुष्यों के लिये प्रकाशित करें कि जिससे बहुत मनुष्य शिल्पक्रियाओं को करके सुखी हों ॥ १ ॥

उप॑ नो दे॒वा अव॒सा ग॑म॒न्त्वङ्गि॑रसां॒ साम॑भिः स्तू॒यमा॑नाः ।
इन्द्र॑ इन्द्रि॒यैर्म॒रुतो॑ म॒रुद्भि॑रादि॒त्यैर्नो॒ अदि॑तिः॒ शर्म॑ यंसत् ॥ २ ॥

पदार्थ—(सामभिः) सामवेद के गानों से (स्तूयमानाः) स्तुति को प्राप्ति होते हुए (आदित्यैः) पूर्ण विद्यायुक्त मनुष्य वा बारह महीनों (मरुद्भिः) विद्वानों वा पवनों और (इन्द्रियैः) धनों के सहित (इन्द्रः) सभाध्यक्ष (मरुतः) वा पवन (अदिः) विद्वानों का पिता वा सूर्य्य प्रकाश और (देवाः) विद्वान् जन (अङ्गिरसाम्) प्राणविद्या के जानने वालों (नः) हम लोगों के (अवसा) रक्षा आदि व्यवहार से (उप, आ, गमन्तु) समीप में सब प्रकार से आवें और (नः) हम लोगों के लिये (शर्म) सुख (यंसत्) देवें ॥ २ ॥

भावार्थ—ज्ञानप्रचार सीखने हारे जन जिन विद्वानों के समीप वा विद्वान् जन जिन विद्यार्थियों के समीप जावें वे विद्या धर्म और अच्छी शिक्षा के व्यवहार को छोड़ कर और कर्म कभी न करें जिस से दुःख की हानि हो के निरन्तर सुख की सिद्धि हो ॥ २ ॥

तन्न॒ इन्द्र॒स्तद्व॑रु॒णस्तद॒ग्निस्तद॑र्य॒मा तत्स॑वि॒ता चनो॑ धात् ।
तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑तिः॒ सिन्धुः॑ पृथि॒वी उ॒त द्यौः ॥ ३ ॥

पदार्थ—जैसे (मित्रः) मित्रजन (वरुणः) श्रेष्ठ विद्वान् (अदितिः) अखण्डित आकाश (सिन्धुः) समुद्र (पृथिवी) भूमि (उत) और (द्यौः) सूर्य आदि का प्रकाश (नः) हम को (मामहन्ताम्) आनन्दित करते हैं (तत्) वैसे (इन्द्रः) बिजुली । धनाढ्य जन (नः) हमारे लिये (तत्) उस धन वा अन्न की अर्थात् उन के दिये हुए धनादि पदार्थं को (वरुणः) जल वा गुणों से उत्कृष्ट

(तत्) उस शरीरसुख को (अग्निः) पावक अग्नि वा न्यायमार्ग में चलाने वाला विद्वान् (तत्) उस आत्मसुख को (अर्यमा) नियमकर्त्ता पवन वा न्यायकर्त्ता सभाध्यक्ष (तत्) इन्द्रियों के सुख को (सविता) सूर्य वा धर्म कार्य्यों में प्रेरणा करने वाला धर्मज्ञ जन (तत्) उस सामाजिक सुख और (चनः) अन्न को (धात्) धारण करता वा धारण करे ॥ ३ ॥

भावार्थ—जैसे संसारस्थ पृथिवी आदि पदार्थ सुख देने वाले हैं वैसे ही विद्वानों को सुख देने वाले होना चाहिये ॥ ३ ॥

इस सूक्त में समस्त विद्वानों के गुणों का वर्णन है इस से इस सूक्त की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है, यह जानना चाहिये ॥

यह चकसौ सातवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

आङ्गिरसः कुत्सऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । १ । ८ । १२ निचृत् त्रिष्टुप् । २ । ३ । ६ । ११ विराट् त्रिष्टुप् । ७ । ६ । १० । १३ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ भुरिक् पङ्क्तिः । ५ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

य इन्द्राग्नी चित्रतमो रथो वामभि विश्वानि भुवनानि चष्टे ।
तेना यातं सरथं तस्थिवांसाथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ १ ॥

पदार्थ—(यः) जो (चित्रतमः) एकी एका अद्भुत गुण और क्रिया को लिये हुए (रथः) विमान आदि यानसमूह (वाम्) इन (तस्थिवांसा) ठहरे हुए (इन्द्राग्नी) पवन और अग्नि को प्राप्त होकर (विश्वानि) सब (भुवनानि) भूगोल के स्थानों को (अभि, चष्टे) सब प्रकार से दिखाता है (अथ) इसके अनन्तर जिससे ये दोनों अर्थात् पवन और अग्नि (सरथम्) रथ आदि सामग्री सहित सेना वा उत्तम सामग्री को (आ, यातम्) प्राप्त हुए अच्छी प्रकार अभीष्ट स्थान को पहुँचाते हैं तथा (सुतस्य) ईश्वर के उत्पन्न किये हुए (सोमस्य) सोम आदि के रस को (पिबतम्) पीते हैं । (तेन) उस से समस्त शिल्पी मनुष्यों को सब जगह जाना आना चाहिये ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि कलाओं में अच्छी प्रकार जोड़ के चलाये हुये वायु और अग्नि आदि पदार्थों से युक्त विमान आदि रथों से आकाश समुद्र और भूमि मार्गों में एक देश से दूसरे देशों को जा आकर सर्वदा अपने अभिप्राय की सिद्धि से आनन्दरस भोगें ॥ १ ॥

यावदिदं भुवनं विश्वमस्त्युरुव्यचा वरिमता गभीरम् ।
तावाँ अयं पातवे सोमो अस्त्वरमिन्द्राग्नी मनसे युवभ्याम् ॥ २ ॥

पदार्थ- हे मनुष्यो ! तुम (यावत्) जितना (उरुव्यचा) बहुत व्याप्ति अर्थात् पूरे पन और (वरिमता) बहुत स्थूलता के साथ वर्त्तमान (गभीरम्) गहिरा (भुवनम्) सब वस्तुओं के ठहरने का स्थान (इदम्) यह प्रकट अप्रकट (विश्वम्) जगत् (अस्ति) है (तावान्) उतना (अयम्) यह (सोमः) उत्पन्न हुआ पदार्थों का समूह है उसका (मनसे) विज्ञान कराने को (इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि (अरम्) परिपूर्ण हैं इस से (युवभ्याम्) उन दोनों से (पातवे) रक्षा आदि के लिये उतने बोध और पदार्थ को स्वीकार करो ॥ २ ॥

भावार्थ—विचारशील पुरुषों को यह अवश्य जानना चाहिये कि जहां जहां मूर्तिमान् लोक हैं वहा वहां पवन और बिजुली अपनी व्याप्ति से वर्त्तमान हैं जितना मनुष्यों का सामर्थ्य है उतने तक इन के गुणों को जान कर और पुरुषार्थ से उपयोग लेकर परिपूर्ण सुखी होवें ॥ २ ॥

चक्राथे हि सध्र्य१ङ् नाम भद्रं सध्रीचीना वृत्रहणा उत स्थः ।
ताविन्द्राग्नी सध्र्यञ्चा निषद्या वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ॥३॥

पदार्थ— हे मनुष्यो ! जो (सध्रीचीना) एक साथ मिलने और (वृत्रहणा) मेघ के हननेहारे (सध्र्यञ्चा) और एक साथ बड़ाई करने योग्य (निषद्य) नित्य स्थिर होकर (वृष्णः) पुष्टि करते हुए (सोमस्य) रसवान् पदार्थसमूह की (वृषणा) पुष्टि करने हारे (इन्द्राग्नी) पूर्व कहे हुये अर्थात् पवन और सूर्य्यमण्डल (भद्रम्) वृष्टि आदि काम से परम सुख करने वाले (सध्र्यक्) एक संग प्रकट होते हुये (नाम) जल को (चक्राथे) करते हैं (उत) और कार्य्यसिद्धि करने हारे (स्थः) होते (वृषेथाम्) और सुखरूपी वर्षा करते हैं (तौ) उन को (हि) ही (आ) अच्छी प्रकार जानो ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को अत्यन्त उपयोग करने हारे वायु और सूर्य्यमण्डल को जान के कैसे [क्यों] उपयोग में न लाने चाहिये ? ॥ ३ ॥

समिद्धेष्वग्निष्वानजाना यतस्रुचा बर्हिरु तिस्तिराणा ।
तीव्रैः सोमैः परिषिक्तेभिरर्वागेन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो तुम (यतस्रुचा) जिन में स्रुच् अर्थात् होम करने के काम में जो स्रुचा होती हैं उन के समान कलाघर विद्यमान (तिस्तिराणा) वा जो यन्त्रकलादिकों से ढांपे हुये होते हैं (आनजाना) वे आप प्रसिद्ध और

प्रसिद्धि करने वाले (इन्द्राग्नी) वायु और विद्युत् अर्थात् पवन और बिजुली (तीव्रैः) तीक्ष्ण और वेगादिगुणयुक्त (सोमैः) रसरूप जलों से (परिषिक्तेभिः) सब प्रकार की किई हुई सिचाइयों के सहित (समिद्धेषु) अच्छी प्रकार जलते हुये (अग्निषु) कलाघरों की अग्नियों के होते (अर्वाक्) पीछे (बर्हिः) अन्तरिक्ष में (यातम् पहुँचाते हैं (उ) और (सौमनसाय) उत्तम से उत्तम सुख के लिये (आ) अच्छे प्रकार आते भी हैं उन की अच्छी शिक्षा कर कार्यसिद्धि के लिये कलाओं में लगाने चाहियें ॥ ४ ॥

भावार्थ—जब शिल्पियों से पवन और बिजुली कार्यसिद्धि के अर्थ कलायन्त्रों की क्रियाओं से युक्त किये जाते हैं तब ये सर्वसुखों के लाभ के लिये समर्थ होते हैं ॥ ४ ॥

यानीन्द्राग्नी चक्रथुर्वीर्य्याणि यानि रूपाण्युत वृष्ण्यानि ।
या वां प्रत्नानि सख्या शिवानि तेभिः सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥५॥

पदार्थ—हे (इन्द्राग्नी) स्वामि और सेवक (वाम्) तुम्हारे (यानि) जो (वीर्याणि) पराक्रम युक्त काम (यानि) जो (रूपाणि) शिल्पविद्या से सिद्ध चित्र विचित्र अद्भुत जिनका रूप वे विमान आदि यान और (वृष्ण्यानि) पुरुषार्थयुक्त काम (या) वा जो तुम दोनों के (प्रत्नानि) प्राचीन (शिवानि) मङ्गलयुक्त (सख्या) मित्रों के काम हैं (तेभिः) उन से (सुतस्य) निकाले हुये (सोमस्य) संसारी वस्तुओं के रस को (पिबतम्) पिओ (उत) और हम लोगों के लिये (चक्रथुः) उन से सुख करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में इन्द्र शब्द से धनाढ्य और अग्नि शब्द से विद्यावान् शिल्पी का ग्रहण किया जाता है, विद्या और पुरुषार्थ के विना कामों की सिद्धि कभी नहीं होती और न मित्रभाव के विना सर्वदा व्यवहार सिद्ध हो सकता है, इस से उक्त काम सर्वदा करने योग्य हैं ॥ ५ ॥

यदब्रवं प्रथमं वां वृणानो३ऽयं सोमो असुरैर्नो विहव्यः ।
तां सत्यां श्रद्धामभ्या हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे स्वामी और शिल्पी जनो ! (वाम्) तुम्हारे लिये (प्रथमम्) पहिले (यत्) जो मैंने (अब्रवम्) कहा वा (असुरैः) विद्याहीन मनुष्यों की (वृणानः) बड़ाई किई हुई (विहव्यः) अनेकों प्रकार से ग्रहण करने योग्य (अयम्) यह प्रत्यक्ष (सोमः) उत्पन्न हुआ पदार्थों का समूह तुम्हारा है उससे (नः) हम लोगों की (ताम्) उस (सत्याम्) सत्य (श्रद्धाम्) प्रीति को (अभि, आ, यातम्) अच्छी प्रकार प्राप्त होओ (अथ) इस के पीछे

(हि) एक निश्चय के साथ (सुतस्य) निकाले हुए (सोमस्य) संसारी वस्तुओं के रस को (पिबतम्) पिओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—जन्म के समय में सब मूर्ख होते हैं और फिर विद्या का अभ्यास करके विद्वान् भी हो जाते हैं इस से विद्याहीन मूर्ख जन ज्येष्ठ और विद्वान् जन कनिष्ठ गिने जाते हैं। सब को यही चाहिये कि कोई हो परन्तु उसके प्रति सांची ही कहें किन्तु किसी के प्रति असत्य न कहें ॥ ६ ॥

यदि॑न्द्राग्नी॒ मद॑थः॒ स्वे दु॑रो॒णे यद्ब्र॒ह्मणि॒ राज॑नि वा यजत्रा ।

अत॒ः परि॑ वृषणा॒वा हि या॒तमथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (वृषणौ) सुखरूपी वर्षा के करनेहारे (यजत्रा) अच्छी प्रकार मिल कर सत्कार करने के योग्य (इन्द्राग्नी) स्वामी सेवको ! तुम दोनों (यत्) जिस कारण (स्वे) अपने (दुरोणे) घर में वा (यत्) जिस कारण (ब्रह्मणि) ब्राह्मणों की सभा और (राजनि) राजजनों की सभा (वा) और सभा में (मदथः) आनन्दित होते हो (अतः) इस कारण से (परि, आ, यातम्) सब प्रकार से आओ (अथ, हि) इस के अनन्तर एक निश्चय के साथ (सुतस्य) उत्पन्न हुए (सोमस्य) संसारी पदार्थों के रस को (पिबतम्) पिओ ॥ ७ ॥

भावार्थ—जहां जहां स्वामि और शिल्पि वा पढ़ाने और पढ़ने वाले वा राजा और प्रजाजन जायें वा आवें वहां वहां सभ्यता से स्थित हों विद्या और शान्तियुक्त वचन को कह और अच्छे शील का ग्रहण कर सत्य कहें और सुनें ॥ ७ ॥

यदि॑न्द्राग्नी॒ यदु॑षु तु॒र्वशे॑षु॒ यद्द्रु॒ह्युष्वनु॑षु पू॒रुषु॒ स्थः ।

अत॒ः परि॑ वृषणा॒वा हि या॒तमथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्राग्नी) स्वामि शिल्पि जनो ! तुम दोनों (यत्) जिस कारण (यदुषु) उत्तम यत्न करने वाले मनुष्यों में वा (तुर्वशेषु) जो हिंसक मनुष्यों को वश में करें उन में वा (यत्) किस कारण (द्रुह्युषु) द्रोही जनों में वा (अनुषु) प्राण अर्थात् जीवन सुख देने वालों में तथा (पुरुषु) जो अच्छे गुण विद्या वा कामों में परिपूर्ण हैं उन में यथोचित अर्थात् जिस से जैसा चाहिये वैसा व्यवहार वर्तन वाले (स्थः) हो (अतः) इस कारण से सब मनुष्यों में (वृषणौ) सुखरूपी वर्षा करते हुये (आ, यातम्) अच्छे प्रकार आओ (हि) एक निश्चय के साथ (अथ) इस के अनन्तर (सुतस्य) निकासे हुए (सोमस्य) जगत् के पदार्थों के रस को (परि, पिबतम्) अच्छी प्रकार पियो ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो न्याय और सेना के अधिकार को प्राप्त हुए मनुष्यों में यथायोग्य वर्त्तमान हैं सब मनुष्यों को चाहिये कि उनको ही उन कामों में स्थापन अर्थात् मानकर कामों की सिद्धि करें ॥ ८ ॥

यदिन्द्राग्नी अवमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यां परमस्यामुत स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (**इन्द्राग्नी**) न्यायाधीश और सेनाधीश ! (**यत्**) जो तुम दोनों (**अवमस्याम्**) निकृष्ट (**मध्यमस्याम्**) मध्यम (**उत**) और (**परमस्याम्**) उत्तम गुणवाली (**पृथिव्याम्**) अपनी राज्यभूमि में अधिकार पाये हुये (**स्थः**) हो वे सब कभी सब की रक्षा करने योग्य हो (**अतः**) इस कारण इस उक्त राज्य में (**परि, वृषणौ**) सब प्रकार सुख रूपी वर्षा करने हारे होकर (**आ, यातम्**) आओ (**हि**) एक निश्चय के साथ (**अथ**) इस के उपरान्त उस राज्यभूमि में (**सुतस्य**) उत्पन्न हुए (**सोमस्य**) संसारी पदार्थों के रस को (**पिबतम्**) पिओ यह एक अर्थ हुआ ॥१॥ (**यत्**) जो ये (**इन्द्राग्नी**) पवन और बिजुली (**अवमस्याम्**) निकृष्ट (**मध्यमस्याम्**) मध्यम (**उत**) वा (**परमस्याम्**) उत्तम गुण वाली (**पृथिव्याम्**) पृथिवी में (**स्थः**) हैं (**अतः**) इस से यहां (**परि, वृषणौ**) सब प्रकार से सुखरूपी वर्षा करने वाले होकर (**आ, यातम्**) आते और (**अथ**) इस के उपरान्त (**हि**) एक निश्चय के साथ जो (**सुतस्य**) निकाले हुए (**सोमस्य**) पदार्थों के रस को (**पिबतम्**) पीते हैं उन को कामसिद्धि के लिये कलाओं में संयुक्त करके महान् लाभ सिद्ध करना चाहिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । उत्तम मध्यम और निकृष्ट गुण कर्म और स्वभाव के भेद से जो जो राज्य है वहां वहां वैसे ही उत्तम मध्यम निकृष्ट गुण कर्म और स्वभाव के मनुष्यों को स्थापन कर और चक्रवर्त्ती राज्य करके सब को आनन्द भोगना भोगवाना चाहिये ऐसे ही इस सृष्टि में ठहरे और सब लोकों में प्राप्त होते हुए पवन और बिजुली को जान और उन का अच्छे प्रकार प्रयोग कर तथा कार्य्यों की सिद्धि करके दारिद्र्य दोष सब को नाश करना चाहिये ॥ ९ ॥

यदिन्द्राग्नी परमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यामवमस्यामुत स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ १० ॥

पदार्थ—इस मन्त्र का अर्थ पिछले मन्त्र के समान जानना चाहिये ॥ १० ॥

भावार्थ—इन्द्र और अग्नि दो प्रकार के हैं एक तो वे कि जो उत्तम

गुण कर्म स्वभाव में स्थिर वा पवित्र भूमि में स्थिर हैं वे उत्तम और जो अपवित्र गुण कर्म स्वभाव में वा अपवित्र भूमि आदि पदार्थों में स्थिर होते हैं वे निकृष्ट ये दोनों प्रकार के पवन और अग्नि ऊपर नीचे सर्वत्र चलते हैं इस से दोनों मन्त्रों से (अवम) और (परम) शब्द जो पहिले प्रयोग किये हुए हैं उन मे दो प्रकार के (इन्द्र) और (अग्नि) के अर्थ को समझाया है ऐसा जानना चाहिये ॥ १० ॥

यदिन्द्राग्नी दिवि ष्ठो यत्पृथिव्यां यत्पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ११॥

पदार्थ—(यत्) जिस कारण (इन्द्राग्नी) पवन और बिजुली (दिवि) प्रकाशमान आकाश में (यत्) जिस कारण (पृथिव्याम्) पृथिवी में (यत्) वा जिस कारण (पर्वतेषु) पर्वतों (अप्सु) जलों में और (ओषधीषु) ओषधियों में (स्थः) वर्त्तमान हैं (अतः) इस कारण (परि, वृषणौ) सब प्रकार से सुख की वर्षा करने वाले वे (हि) निश्चय से (आ, यातम्) प्राप्त होते (अथ) इस के अनन्तर (सुतस्य) निकाले हुए (सोमस्य) जगत् के पदार्थों के रस को (पिबतम्) पीते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो धनञ्जय पवन और कारणरूप अग्नि सब पदार्थों में विद्यमान हैं वे जैसे के वैसे जाने और क्रियाओं में जोड़े हुए बहुत कामों को सिद्ध करते हैं ॥ ११ ॥

यदिन्द्राग्नी उदिता सूर्यस्य मध्ये दिवः स्वधया मादयेथे ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ १२ ॥

पदार्थ—(यत्) जिस कारण (इन्द्राग्नी) पवन और बिजुली (उदिता) उदय को प्राप्त हुये (सूर्य्यस्य) सूर्य्यमण्डल के वा (दिवः) अन्तरिक्ष के (मध्ये) बीच में (स्वधया) अन्न और जल से सब को (मादयेथे) हर्ष देते हैं (अतः) इससे (वृषणा) सुख की वर्षा करने वाले (परि) सब प्रकार से (आ, यातम्) आते अर्थात् बाहर और भीतर से प्राप्त होते और (हि) निश्चय है कि (अथ) इस के अनन्तर (सुतस्य) निकासे हुये (सोमस्य) जगत् के पदार्थों के रस को (पिबतम्) पीते हैं ॥ १२ ॥

भावार्थ—पवन और बिजुली के विना किसी लोक वा प्राणी की रक्षा और जीवन नहीं होते हैं। इस से संसार की पालना में ये ही मुख्य हैं ॥ १२ ॥

एवेन्द्राग्नी पपिवांसा सुतस्य विश्वास्मभ्यं सं जयतं धनानि ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवीः उत द्यौः ॥१३॥

पदार्थ—(मित्रः) मित्र (वरुणः) श्रेष्ठ गुणयुक्त (अदितिः) उत्तम विद्वान् (सिन्धुः) समुद्र (पृथिवी) पृथिवी (उत) और (द्यौः) सूर्य का प्रकाश जिन को (नः) हम लोगों के लिये (मामहन्ताम्) बढ़ावें (तत्, एव) उन्हीं (विश्वा) समस्त (धनानि) धनों को (सुतस्य) पदार्थों के निकाले हुए रस को (पपिवांसा) पिये हुए (इन्द्राग्नी) अति धनी वा युद्धविद्या में कुशल वीरजन (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (संजयतम्) अच्छी प्रकार जीतें अर्थात् सिद्ध करें ॥ १३ ॥

भावार्थ—विद्वान् बलिष्ठ धार्मिक कोशस्वामी और सेनाध्यक्ष और उत्तम पुरुषार्थ करने वालों के विना विद्या आदि धन नहीं बढ़ सकते हैं, जैसे मित्र आदि अपने मित्रों के लिये सुख देते हैं वैसे ही कोशस्वामी और सेनाध्यक्ष आदि प्रजाजनों के लिये सुख देते हैं इस से सब को चाहिये कि इन की सदा पालना करें ॥ १३ ॥

इस सूक्त में पवन और बिजुली आदि गुणों के वर्णन से उस के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह एकसौ आठवां सूक्त पूरा हुआ ॥

———

आङ्गिरसः कुत्स ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । १ । ३ । ४ । ६ । ८ निचृत्-त्रिष्टुप् । २ । ५ त्रिष्टुप् । ७ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।

विह्यख्यं मनसा वस्य इच्छन्निन्द्राग्नी ज्ञास उत वा सजातान् ।

नान्या युवत्प्रमतिरस्ति मह्यं स वां धियं वाजयन्तीमतक्षम् ॥ १॥

पदार्थ— जैसे (इन्द्राग्नी) बिजुली और जो दृष्टिगोचर अग्नि है उन की (इच्छन्) चाहता हुआ (वस्यः) जिन्होंने चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य्य किया है उन में प्रशंसनीय मैं तथा (ज्ञासः) जो ज्ञाताजन हैं उनको वा जानने योग्य पदार्थों को (सजातान्) वा एक संग हुए पदार्थों को (उत) और (वा) विद्यार्थी वा समझाने वालों को (मनसा) विशेष ज्ञान से जानने की इच्छा करता हुआ (युवत्) सब वस्तुओं को यथायोग्य कार्य्य में लगवाने हारा मैं इनको (हि) निश्चय से

(वि, अख्यम्) औरों के प्रति उत्तमता के साथ कहूँ वैसे तुम लोग भी कहो जो मेरी (प्रमतिः) प्रबल मति (अस्ति) है वह तुम लोगों को भी हो (न, अन्या) और न हो जैसे मैं (वाम्) तुम दोनों पढ़ाने पढ़ने वालों से (वाजयन्तीम्) समस्त विद्याओं को जताने वाली (धियम्) उत्तम बुद्धि को (अतक्षम्) सूक्ष्म करूं अर्थात् बहुत कठिन विषयों को सुगमता से जानूं वैसे (सः) वह पढ़ाने और पढ़ने वाला इस को (मह्यम्) मेरे लिये सूक्ष्म करे ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो लुप्तोपमालङ्कार हैं। मनुष्यों की योग्यता यह है कि अच्छी प्रीति और पुरुषार्थ से श्रेष्ठ विद्या आदि का बोध कराते हुए अति उत्तम बुद्धि उत्पन्न करा कर व्यवहार और परमार्थ की सिद्धि कराने वाले कामों को अवश्य सिद्ध करें ॥ १ ॥

अश्र॑वं॒ हि भू॑रि॒दाव॑त्तरा वां॒ विजा॑मातुरु॒त वां॑ घा स्या॒लात् ।
अथा॒ सोम॑स्य॒ प्रय॑ती यु॒वभ्या॒मिन्द्रा॑ग्नी॒ स्तोमं॑ जनयामि॒ नव्य॑म् ॥ २ ॥

पदार्थ—जो (वाम्) ये (भुरिदावत्तरा) अतीव बहुत से घन की प्राप्ति करानेहारे (इन्द्राग्नी) बिजुली और भौतिक अग्नि हैं वा जो उक्त इन्द्राग्नी (विजामातुः) विरोधी जमाई (स्यालात्) साले से (उत्, वा) अथवा और (घ) अन्य जनों से धनों को दिलाते हैं यह मैं (अश्रवम्) सुन चुका हूं (अथ, हि) अभि (युवभ्याम्) इन से (सोमस्य) ऐश्वर्य्य अर्थात् धनादि पदार्थों की प्राप्ति करने वाले व्यवहार के (प्रयती) अच्छे प्रकार देने के लिये (नव्यम्) नवीन (स्तोमम्) गुण के प्रकाश को मैं (जनयामि) प्रकट करता हूं ॥ २ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को विजुली आदि पदार्थों के गुणों का ज्ञान और उन के अच्छे प्रकार कार्य में युक्त करने से नवीन नवीन कार्य्य की सिद्धि करने वाले कलायन्त्र आदि का विधान कर अनेक कामों को बना कर धर्म अर्थ और अपनी कामना की सिद्धि करनी चाहिये ॥ २ ॥

मा च्छे॑द्म र॒श्मीँरिति॒ नाध॑मानाः पितृ॒णां श॒क्तीर॑नु॒यच्छ॑मानाः ।
इ॒न्द्रा॒ग्निभ्यां॒ कं वृष॑णो मदन्ति॒ ता ह्यद्री॒ धि॒षणा॑या उ॒पस्थे॑ ॥ ३ ॥

पदार्थ—जैसे (वृषणः) बलवान् जन जो (अद्री) कभी विनाश को न प्राप्त होने वाले हैं (ता) उन इन्द्र और अग्नियों को अच्छी प्रकार जान (इन्द्राग्निभ्याम्) इन से (धिषणायाः) अति विचारयुक्त बुद्धि के (उपस्थे) समीप में स्थिर करने योग्य अर्थात् उस बुद्धि के साथ में लाने योग्य व्यवहार में (कम्) सुख को पाकर (मदन्ति) आनन्दित होते हैं वा उस सुख की चाहना करते हैं वैसे (पितॄणाम्) रक्षा करने वाले ज्ञानी विद्वानों वा रक्षा से अनुयोग को प्राप्त हुए

वसन्त आदि ऋतुओं के (रश्मीन्) विद्यायुक्त ज्ञानप्रकाशों को (नाधमानाः) ऐश्वर्य के साथ चाहते (शक्तीः) वा सामर्थ्यों को (अनु यच्छमानाः) अनुकूलता के साथ नियम में लाते हुए हम लोग आनन्दित होते (हि) ही हैं और (इति) ऐसा जान के इन विद्याओं की जड़ को हम लोग (मा, छेद्म) न काटें ॥ ३ ॥

भावार्थ—ऐश्वर्य्य की कामना करते हुए लोगों को कभी विद्वानों का संग और उनकी सेवा को न छोड़ तथा वसन्त आदि ऋतुओं का यथायोग्य अच्छी प्रकार ज्ञान और सेवन का न त्याग कर अपना वर्ताव रखना चाहिये और विद्या तथा बुद्धि की उन्नति और व्यवहारसिद्धि उत्तम प्रयत्न के साथ करना चाहिये ॥ ३ ॥

युवाभ्यां देवी धिषणा मदायेन्द्राग्नी सोमंमुशती सुनोति ।

तावश्विना भद्रहस्ता सुपाणी आ धावतं मधुना पृङ्क्तमप्सु ॥ ४ ॥

पदार्थ—जो (सोमम्) ऐश्वर्य्य की (उशती) कान्ति कराने वाली (देवी) अच्छी अच्छी शिक्षा और शास्त्रविद्या आदि से प्रकाशमान (धिषणा) बुद्धि (मदाय) आनन्द के लिये (युवाभ्याम्) जिन से कामों की (सुनोति) सिद्ध करती है उस बुद्धि से जो (इन्द्राग्नी) बिजुली और भौतिक अग्नि (अप्सु) कला-घरों के जल के स्थानों में (मधुना) जल से (पृङ्क्तम्) संपर्क अर्थात् संबन्ध करते हैं वा (भद्रहस्ता) जिन के उत्तम सुख के करने वाले हाथों के तुल्य गुण (सुपाणी) अच्छे अच्छे व्यवहार वा (अश्विना) जो सब में व्याप्त होने वाले हैं (तौ) वे बिजुली और भौतिक अग्नि रथों में अच्छी प्रकार लगाये हुए उनको (आ,-धावतम्) चलाते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्य जब तक अच्छी शिक्षा उत्तम विद्या और क्रिया-कौशलयुक्त बुद्धियों को नहीं सिद्ध करते हैं तब तक बिजुली आदि पदार्थों से उपकार को नहीं ले सकते इससे इस काम को अच्छे यत्न से सिद्ध करना चाहिये ॥ ४ ॥

युवामिन्द्राग्नी वसुनो विभागे तवस्तमा शुश्रव वृत्रहत्ये ।

तावासद्या बर्हिषि यज्ञे अस्मिन् प्र चर्षणी मादयेथां सुतस्य ॥ ५ ॥

पदार्थ—मैं (वसुनः) धन के (विभागे) सेवन व्यवहार में (वृत्रहत्ये) वा जिस में शत्रुओं और मेघों का हनन हो उस संग्राम में (युवाम्) ये दोनों (इन्द्राग्नी) बिजुली और साधारण अग्नि (तवस्तमा) अतीव बलवान् और बल के देने हारे हैं यह (शुश्रव) सुनता हूं इस से (तौ) वे दोनों (प्रचर्षणी) अच्छे सुख को प्राप्त करने हारे (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) समीप में बढ़ने हारे (यज्ञे)

शिल्पव्यवहार के निमित्त (सुतस्य) उत्पन्न किये विमान आदि रथ को (आसद्य) प्राप्त हो कर (मादयेथाम्) आनन्द देते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्य जिन से धनों का विभाग करते हैं वा शत्रुओं को जीत के समस्त पृथिवी पर राज्य कर सकते हैं उन को कार्य की सिद्धि के लिये कैसे न यथायोग्य कामों में युक्त करें ॥ ५ ॥

प्र चर्षणिभ्यः पृतनाहवेषु प्र पृथिव्या रिरिचाथे दिवश्च ।

प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा प्रेन्द्राग्नी विश्वा भुवनात्यन्या ॥६॥

पदार्थ—(इन्द्राग्नी) वायु और बिजुली (अन्या) (विश्वा) (भुवना) और समस्त लोकों को (महित्वा) प्रशंसित करा के (पृतनाहवेषु) सेनाओं से प्रवृत्त होते हुए युद्धों में (चर्षणिभ्यः) मनुष्यों से (प्र, पृथिव्याः) अच्छे प्रकार पृथिवी वा (प्र, सिन्धुभ्यः) अच्छे प्रकार समुद्रों वा (प्र, गिरिभ्यः) अच्छे प्रकार पर्वतों वा (प्र, दिवश्च) और अच्छे प्रकार सूर्य्य से (प्र, अति रिरिचाथे) अत्यन्त बढ़ कर प्रतीत होते अर्थात् कलायन्त्रों के सहाय से बढ़कर काम देते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । पवन और बिजुली के समान बड़ा कोई लोक नहीं होने योग्य है क्योंकि ये दोनों सब लोकों को व्याप्त होकर ठहरे हुए हैं ॥ ६ ॥

आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू अस्माँ इन्द्राग्नी अवतं शचीभिः ।

इमे नु ते रश्मयः सूर्य्यस्य येभिः सपित्वं पितरो न आसन् ॥ ७ ॥

पदार्थ—(वज्रबाहू) जिन के वज्र के तुल्य बल और वीर्य्य हैं वे (इन्द्राग्नी) हे पढ़ने और पढ़ाने वालो ! तुम दोनों जैसे (इमे) ये (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मयः) किरणें हैं और (ते) रक्षा आदि करते हैं और जैसे (पितरः) पितृजन (येभिः) जिन कामों से (नः) हम लोगों के लिये (सपित्वम्) समान व्यवहारों की प्राप्ति करने वा विज्ञान को देकर उपकार के करने वाले (आसन्) होते हैं वैसे (शचीभिः) अच्छे काम वा उत्तम बुद्धियों से (अस्मान्) हम लोगों को (आ, भरतम्) स्वीकार करो (सिक्षतम्) शिक्षा देओ और (नु) शीघ्र (अवतम्) पालो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो अच्छी शिक्षा से मनुष्यों में सूर्य के समान विद्या का प्रकाशकर्ता और माता पिता के तुल्य कृपा से रक्षा करने वा पढ़ाने वाला तथा सूर्य के तुल्य प्रकाशित बुद्धि को प्राप्त और दूसरा पढ़ने वाला है उन दोनों का नित्य सत्कार करो इस काम के विना कभी विद्या की उन्नति होने का संभव नहीं है ॥ ७ ॥

पुरन्दरा शिक्षतं वज्रहस्ताऽस्माँ इन्द्राग्नी अवतं भरेषु ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥८॥

पदार्थ—जो (पुरन्दरा) शत्रुओं के पुरों को विध्वंस करने वाले वा (वज्रहस्ता) जिन का विद्यारूपी वज्र हाथ के समान है वे (इन्द्राग्नी) उपदेश के सुनने वा करने वाली तुम जैसे (मित्रः) सुहृज्जन (वरुणः) उत्तम गुणयुक्त (अदितिः) अन्तरिक्ष (सिन्धुः) समुद्र (पृथिवी) पृथिवी (उत) और (द्यौः) सूर्य का प्रकाश (नः) हम लोगों को (मामहन्ताम्) उन्नति देता है वैसे (अस्मान्) हम लोगों को (तत्) उन उक्त पदार्थों के विशेष ज्ञान की (शिक्षतम्) शिक्षा देओ और (भरेषु) संग्राम आदि व्यवहारों में (अवतम्) रक्षा आदि करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे मित्र आदि जन अपने मित्रादिकों की रक्षा कर और उन्नति करते वा एक दूसरे की अनुकूलता में रहते हैं वैसे उपदेश के सुनने और सुनाने वाले परस्पर विद्या की वृद्धि कर प्रीति के साथ मित्रपन में वर्ताव रक्खें ॥ ८ ॥

इस सूक्त में इन्द्र और अग्नि शब्द के अर्थ का वर्णन है इस से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिये ।

यह एकसौ नववां सूक्त समाप्त हुआ ।

आङ्गिरसः कुत्स ऋषिः । ऋभवो देवताः । १ । ४ जगती । २ । ३ । ७ विराड्जगती । ६ । ८ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ६ ९ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

ततं मे अपस्तदु तायते पुनः स्वादिष्ठा धीतिरुचथाय शस्यते ।
अयं समुद्र इह विश्वदेव्यः स्वाहाकृतस्य समु तृप्णुत ऋभवः ॥१॥

पदार्थ—हे (ऋभवः) हे बुद्धिमान् विद्वानो ! तुम लोग जैसे (इह) इस लोक में (अयम्) यह (विश्वदेव्यः) समस्त अच्छे गुणों के योग्य (समुद्रः) समुद्र है और जैसे तुम लोगो में (स्वाहाकृतस्य) सत्य वाणी के उत्पन्न हुए धर्म के (उचथाय) कहने के लिये (स्वादिष्ठा) अतीव मधुर गुण वाली (धीतिः) बुद्धि (शस्यते) प्रशंसनीय होती है (उ) वा जैसे (मे) मेरा (ततम्) बहुत फैला हुआ अर्थात् सब को विदित (अपः) काम (तायते) पालता करता है (तत् उ, पुनः) वैसे फिर तो हम लोगों को (सम् तृप्णुत) अच्छा तृप्त करो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । जैसे समस्त रत्न से भरा हुआ समुद्र दिव्य गुणयुक्त है वैसे ही धार्मिक पढ़ाने वालों को चाहिये कि मनुष्यों में सत्य काम और अच्छी बुद्धि का प्रचार कर दिव्य गुणों की प्रसिद्धि करें ॥ १ ॥

आभोगयं प्र यदिच्छन्त ऐतनापाकाः प्राञ्चो मम के चिदापयः ।
सौधन्वनासश्चरितस्य भूमनागच्छत सवितुर्दाशुषो गृहम् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (प्राञ्चः) प्राचीन (आपाकाः) रोटी आदि का स्वयं पाक तथा यज्ञादि कर्म न करने हारे संन्यासी जनो ! आप जो (के, चित्) कोई जन (मम) मेरे (आपयः) विद्या में अच्छी प्रकार व्याप्त होने की कामना किए (यत्) जिस (आ भोगयम्) अच्छी प्रकार भोगने के पदार्थों में प्रशंसित भोग की (इच्छन्तः) चाह रहे हैं उन को उसी भोग को (प्र ऐतन) प्राप्त करो । हे (सौधन्वनासः) धनुष वाण के बाँधने वालों में अतीव चतुरो ! जब तुम (भूमना) बहुत (चरितस्य) किये हुए काम के (सवितुः) ऐश्वर्य्य से युक्त (दाशुषः) दान करने वाले के (गृहम्) घर को (अगच्छत) आओ तब जिज्ञासुओं अर्थात् उपदेश सुनने वालों के प्रति सांचे धर्म के ग्रहण करने का उपदेश करो ॥ २ ॥

भावार्थ—हे गृहस्थ आदि मनुष्यो ! तुम संन्यासियों से सत्य विद्या को पाकर कहीं दान करने वालों की सभा में जा कर वहाँ युक्ति से बैठ और निरभिमानता से वर्त्त कर विद्या और विनय का प्रचार करो ॥ २ ॥

तत्सविता वोऽमृतत्वमासुवदगोह्यं यच्छ्रवयन्त ऐतन ।
त्यं चिच्चमसमसुरस्य भक्षणमेकं सन्तमकृणुता चतुर्वयम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे बुद्धिमानो ! तुम जो (सविता) ऐश्वर्य्य का देने वाला विद्वान् (वः) तुम्हारे लिये (यत्) जिस (अमृतत्वम्) मोक्षभाव के (आ, असुवत्) अच्छे प्रकार ऐश्वर्य का योग करे (तत्) उस को (अगोह्यम्) प्रकट (श्रवयन्तः) सुनाते हुए सब विद्याओं को (ऐतन) समझाओ (असुरस्य) जो प्राणों में रमरहा है उस मेघ के (चमसम्) जिस में सब भोजन करते हैं अर्थात् जिस से उत्पन्न हुए अन्न को सब खाते हैं (त्यम्) उस (भक्षणम्) सूर्य के प्रकाश को निगल जाने के (चित्) समान (चतुर्वयम्) जिस में धर्म अर्थ काम और मोक्ष हैं ऐसे (एकम्) एक (सन्तम्) अपने वर्त्ताव को (अकृणुत) करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जैसे मेघ प्राण की पुष्टि करने वाले अन्न आदि पदार्थों को देने वाला हो कर सुखी करता है वैसे ही आप लोग विद्या

के दान करने वाले हो कर विद्यार्थियों को विद्वान् कर सुन्दर उपकार करो ॥ ३ ॥

विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाघतो मर्त्तासः सन्तोऽअमृतत्वमानशुः ।
सौधन्वना ऋभवः सूरचक्षसः संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः ॥ ४ ॥

पदार्थ—जो (**सौधन्वनाः**) अच्छे ज्ञान वाले (**सूरचक्षसः**) अर्थात् जिन का प्रबल ज्ञान है (**वाघतः**) वा वाणी को अच्छे कहने, सुनने (**मर्त्तासः**) मरने और जीने हारे (**ऋभवः**) बुद्धिमान् जन (**संवत्सरे**) वर्ष में (**धीतिभिः**) निरन्तर पुरुषार्थयुक्त कामों से कार्यसिद्धि का (**समपृच्यन्त**) संबन्ध रखते अर्थात् काम का ढंग रखते हैं वे (**तरणित्वेन**) शीघ्रता से (**विष्ट्वी**) व्याप्त होने वाले (**शमी**) कामों को करते (**सन्तः**) हुए (**अमृतत्वम्**) मोक्षभाव को (**आनशुः**) प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य प्रत्येक क्षण अच्छे अच्छे पुरुषार्थ करते हैं वे संसार से ले के मोक्ष पर्यन्त पदार्थों को प्राप्त हो कर सुखी होते हैं किन्तु आलसी मनुष्य कभी सुखों को नहीं प्राप्त हो सकते ॥ ४ ॥

क्षेत्रमिव वि ममुस्तेजनेनँ एकं पात्रमृभवो जेहमानम् ।
उपस्तुता उपमं नाधमाना अमर्त्येषु श्रव इच्छमानाः ॥ ५ ॥

पदार्थ—जो (**उपस्तुताः**) तीर आने वालों से प्रशंसा को प्राप्त हुए (**नाधमानाः**) और लोगों से अपने प्रयोजन से याचे हुए (**अमर्त्येषु**) अविनाशी पदार्थों में (**श्रवः**) अन्न को (**इच्छमानाः**) चाहते हुए (**ऋभवः**) बुद्धिमान् जन (**तेजनेन**) अपनी उत्तेजना से (**क्षेत्रमिव**) खेत के समान (**जेहमानम्**) प्रयत्नों को सिद्ध कराने हारे (**एकम्**) एक (**उपमम्**) उपमा रूप अर्थात् अति श्रेष्ठ (**पात्रम्**) ज्ञानों के समूह का (**वि, ममुः**) विशेष मान करते हैं वे सुख पाते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे मनुष्य खेत को जोत बोय और सम्यक् रक्षा कर उससे अन्न आदि को पाके उस का भोजन कर आनन्दित होते हैं वैसे वेद में कहे हुए कलाकौशल से प्रशंसित यानों को रच कर उन में बैठ और उन्हें चला और एक देश से दूसरे देश में जाकर व्यवहार वा राज्य से धन को पाकर सुखी होते हैं ॥ ५ ॥

आ मनीषामन्तरिक्षस्य नृभ्यः स्रुचेव घृतं जुहवाम विद्मना ।
तरणित्वा ये पितुरस्य सश्चिर ऋभवो वाजमरुहन्दिवो रजः ॥ ६ ॥

पदार्थ—(ये) जो (ऋभवः) सूर्य्य की किरणें (तरणित्वा) शीघ्रता से (वाजम्) पृथिवी आदि अन्न पर (अरुहन्) चढ़तीं और (दिवः) प्रकाशयुक्त आकाश के बीच (रजः) लोक समूह को (सश्चिरे) प्राप्त होती हैं और (अस्य) इस (अन्तरिक्षस्य) आकाश के बीच वर्त्तमान हुई (नृभ्यः) मनुष्यों के लिये (स्रुचेव) जैसे होम करने के पात्र से घृत को छोड़े वैसे (घृतम्) जल तथा (पितुः) अन्न को प्राप्त कराती हैं उन के सकाश से हम लोग (विद्मना) जिस से विद्वान् सत् असत् का विचार करता है उस ज्ञान से (मनीषाम्) विचार वाली बुद्धि को (आ, जुहवाम) ग्रहण करें ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे ये सूर्य की किरणें लोक लोकान्तरों को चढ़ कर शीघ्र जल वर्षा और उस से ओषधियों को उत्पन्न कर सब प्राणियों को सुखी करती हैं वैसे राजादि प्रजाओं को सुखी करें ॥६॥

ऋभुर्न इन्द्रः शवसा नवीयानृभुर्वाजेभिर्वसुभिर्वसुर्ददिः ।
युष्माकं देवा अवसाहनि प्रियेऽभि तिष्ठेम पृत्सुतीरसुन्वताम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—जो (नवीयान्) अतीव नवीन (ऋभुः) बहुत विद्याओं का प्रकाश करने वाला विद्वान् जैसे (इन्द्रः) सूर्य्य अपने प्रकाश और आकर्षण से सब को आनन्द देता है वैसे (शवसा) विद्या और उत्तम शिक्षा के बल से (नः) हम को सुख देवे वा जो (ऋभुः) धीरबुद्धि आयुर्दा और सभ्यता का प्रकाश करने वाला (वाजेभिः) विज्ञान अन्न और संग्रामों से वा (वसुभिः) चक्रवर्त्ती राज्य आदि के धनों से (वसुः) आप सुख में बसने और (ददिः) दूसरों को सुखों का देने वाला होता है उस से अपने राज्य के और सेनाजनों के (अवसा) रक्षा आदि व्यवहार के साथ वर्त्तमान (देवाः) विद्या और अच्छी शिक्षा को चाहते हुए हम विद्वान् लोग (प्रिये) प्रीति उत्पन्न करने वाले (अहनि) दिन में (असुन्वताम्) अच्छे ऐश्वर्य के विरोधी (युष्माकम्) तुम शत्रुजनों की (पृत्सुतीः) उन सेनाओं के जो कि संबन्ध कराने वालों को ऐश्वर्य पहुँचाने वाली हैं (अभि) सम्मुख (तिष्ठेम) स्थित होवें अर्थात् उन का तिरस्कार करें ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य अपने प्रकाश से तेजस्वी समस्त चर और अचर जीवों और पदार्थों के जीवन कराने से आनन्दित करता है वैसे विद्वान् शूर वीर और विद्वानों में अच्छे विद्वान् के

सहायों से युक्त हम लोग अच्छी शिक्षा किई हुई, प्रसन्न और पुष्ट अपनी सेनाओं से जो सेना को लिए हुए हैं उन शत्रुओं का तिरस्कार कर धार्मिक प्रजाजनों को पाल चक्रवर्त्ति राज्य को निरन्तर सेवें ॥ ७ ॥

निश्चर्मण ऋभवो गार्मपिंशत सं वत्सेनांसृजता मातरं पुनः ।
सौधन्वनासः स्वपस्ययां नरो जिव्री युवांना पितराकृणोतन ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (ऋभवः) बुद्धिमान् मनुष्यो ! तुम (चर्मणः) चाम से (गाम्) गौ को (निरपिंशत) निरन्तर अवयवी करो अर्थात् उसके चाम आदि को खिलाने पिलाने से पुष्ट करो (पुनः) फिर (वत्सेन) उसके बछड़े के साथ (मातरम्) उस माता गौ को (समसृजत) युक्त करो । हे (सौधन्वनासः) धनुर्वेदविद्याकुशल (नरः) और व्यवहारों को यथायोग्य वर्त्ताने वाले विद्वानो ! तुम (स्वपस्यया) सुन्दर जिसमें काम बने उस चतुराई से (जिव्री) अच्छे जीवन युक्त बुड्ढे (पितरा) अपने मा बाप को (युवाना) युवावस्था वालों के सदृश (अकृणोतन) निरन्तर करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—पिछले कहे हुए काम के विना कोई भी राज्य नहीं कर सकते इससे मनुष्यों को चाहिये कि उन कामों का सदा अनुष्ठान किया करें ॥ ८ ॥

वाजेभिर्नो वाजसातावविड्ढ्यृभुमाँ इन्द्र चित्रमा दर्षि राधः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य्ययुक्त सेनाध्यक्ष ! (ऋभुमान्) जिन के प्रशंसित बुद्धिमान् जन विद्यमान हैं वे आप (नः) हमारे लिये जिस (राधः) धन को (मित्रः) सुहृत् जन (वरुणः) श्रेष्ठ गुणयुक्त (अदितिः) अन्तरिक्ष (सिन्धुः) समुद्र (पृथिवी) पृथिवी (उत) और (द्यौः) सूर्य्य का प्रकाश (मामहन्ताम्) बढ़ावें (तत्) उस (चित्रम्) अद्भुत धन को (अविड्ढि) व्याप्त हूजिये अर्थात् सब प्रकार समझिये और (नः) हम लोगों को (वाजेभिः) अन्नादि सामग्रियों से (वाजसातौ) संग्राम में (आदर्षि) आदरयुक्त कीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—कोई सेनाध्यक्ष बुद्धिमानों के सहाय के विना शत्रुओं को जीत नहीं सकता ॥ ९ ॥

इस सूक्त में बुद्धिमानों के काम और गुणों का वर्णन है इस से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

॥ यह एकसौ दसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

———

आङ्गिरसः कुत्स ऋषिः । ऋभवो देवताः । १—४ जगती छन्दः । निषादः स्वरः ५ त्रिष्टुप् छन्दः धैवतः स्वरः ॥

तक्षन्रथं सुवृतं विद्मनापसस्तक्षन्हरी इन्द्रवाहा वृषण्वसू ।
तक्षन् पितृभ्यामृभवो युवद्वयस्तक्षन्वत्साय मातरं सचाभुवम् ॥ १ ॥

पदार्थ—जो (पितृभ्याम्) स्वामी और शिक्षा करने वालों से युक्त (विद्मनापसः) जिनके अति विचारयुक्त कर्म हों वे (ऋभवः) क्रिया में चतुर मेधावीजन (वृषण्वसू) जिन में विद्या और शिल्पक्रिया के बल से युक्त मनुष्य निवास करते कराते हैं (हरी) उन एक स्थान से दूसरे स्थान को शीघ्र पहुँचाने तथा (इन्द्रवाहा) परमैश्वर्य को प्राप्त कराने वाले जल और अग्नि को (तक्षन्) अति सूक्ष्मता के साथ सिद्ध करें वा (सुवृतम्) अच्छे अच्छे कोठे पर कोठेयुक्त (रथम्) विमान आदि रथ को (तक्षन्) अति सूक्ष्म क्रिया से बनावें वा (वयः) अवस्था को (तक्षन्) विस्तृत करें तथा (वत्साय) सन्तान के लिये (सचाभुवम्) विशेष ज्ञान की भावना कराती हुई (मातरम्) माता का (युवत्) मेल जैसे हो वैसे (तक्षन्) उसे उन्नति देवें वे अधिक ऐश्वर्य को प्राप्त होवें ॥ १ ॥

भावार्थ—विद्वान् जन जब तक इस संसार में कार्य्य के दर्शन और गुणों की परीक्षा से कारण को नहीं पहुंचते हैं तब तक शिल्पविद्या को नहीं सिद्ध कर सकते हैं ॥ १ ॥

आ नो यज्ञाय तक्षत ऋभुमद्वयः क्रत्वे दक्षाय सुप्रजावतीमिषम् ।
यथा क्षयाम सर्ववीरया विशा तन्नः शर्द्धाय धासथा स्विन्द्रियम् ॥२॥

पदार्थ—हे बुद्धिमानो ! तुम (नः) हमारी (यज्ञाय) जिससे एक दूसरे से पदार्थ मिलाया जाता है उस शिल्पक्रिया की सिद्धि के लिये वा (क्रत्वे) उत्तम ज्ञान और न्याय के काम और (दक्षाय) बल के लिये (ऋभुमत्) जिसमें प्रशंसित मेधावी अर्थात् बुद्धिमान् जन विद्यमान हैं उस (वयः) जीवन को तथा (सुप्रजावतीम्) जिस में अच्छी प्रजा विद्यमान हो अर्थात् प्रजाजन प्रसन्न होते हों (इषम्) उस चाहे हुए अन्न को (आतक्षत) अच्छे प्रकार उत्पन्न करो (यथा) जैसे हम लोग (सर्ववीरया) समस्त वीरों से युक्त (विशा) प्रजा के साथ (क्षयाम) निवास करें तुम भी प्रजा के साथ निवास करो वा जैसे हम लोग (शर्द्धाय) बल के लिये (तत्) उस (सु, इन्द्रियम्) उत्तम विज्ञान और धन को धारण करें वैसे तुम भी (नः) हमारे बल होने के लिये उत्तम ज्ञान और धन को (धासथ) धारण करो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस संसार में विद्वानों के साथ अविद्वान् और अविद्वानों के

साथ विद्वान् जन प्रीति से नित्य अपना वर्त्ताव रक्खें, इस काम के विना शिल्पविद्यासिद्धि उत्तम बुद्धि बल और श्रेष्ठ प्रजाजन कभी नहीं हो सकते ॥ २ ॥

आ तक्षत सातिमस्मभ्यमृभवः सातिं रथाय सातिमर्वते नरः ।
सातिं नो जैत्रीं सं महेत विश्वहा जामिमजामिं पृतनासु सक्षणिम् ॥३॥

पदार्थ—हे (ऋभवः) शिल्पक्रिया में अति चतुर (नरः) मनुष्यो ! तुम (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (विश्वहा) सब दिन (रथाय) विमान आदि यानसमूह की सिद्धि के लिये (सातिम्) अलग विभाग करना और (अर्वते) उत्तम अश्व के लिये (सातिम्) अलग अलग घोड़ों की सिखावट को (आ, तक्षत) सब प्रकार से सिद्ध करो और (पृतनासु) सेनाओं में (सातिम्) विद्यादि उत्तम उत्तम पदार्थ वा (जामिम्) प्रसिद्ध और (अजामिम्) अप्रसिद्ध (सक्षणिम्) सहन करने वाले शत्रु को जीत के (नः) हमारे लिये (जैत्रीम्) जीत देने हारी (सातिम्) उत्तम भक्ति को (सम्, महेत) अच्छे प्रकार प्रशंसित करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् जन हमारी रक्षा करने और शत्रुओं को जीतने हारे हैं उनका सत्कार हम लोग निरन्तर करें ॥ ३ ॥

ऋभुक्षणमिन्द्रमा हुव ऊतय ऋभून्वाजान्मरुतः सोमपीतये ।
उभा मित्रावरुणा नूनमश्विना ते नो हिन्वन्तु सातये धिये जिषे ॥४॥

पदार्थ—मैं (ऊतये) रक्षा आदि व्यवहार के लिये (ऋभुक्षणम्) जो बुद्धिमानों को वसाता वा समझाता है उस (इन्द्रम्) परमैश्वर्ययुक्त उत्तम बुद्धिमान् को (आहुवे) अच्छी प्रकार स्वीकार करता हूँ मैं (सोमपीतये) पदार्थों के निकाले हुए रस के पिआनेहारे यज्ञ के लिये (वाजान्) जो कि अतीव ज्ञानवान् (मरुतः) और ऋतु ऋतु में अर्थात् समय समय पर यज्ञ करने वा कराने हारे (ऋभून्) ऋत्विज् हैं उन बुद्धिमानों को स्वीकार करता हूं मैं (उभा) दोनों (मित्रावरुणा) सब के मित्र सबसे श्रेष्ठ (अश्विना) समस्त अच्छे अच्छे गुणों में रहने हारे पढ़ाने और पढ़ने हारों को स्वीकार करता हूँ जो (धिये) उत्तम बुद्धि के पाने के लिये (सातये) वा बांट चूंट के लिये वा(जिषे) शत्रुओं के जीतने को (नः) हम लोगों के समझाने वा बढ़ाने को समर्थ हैं (ते) विद्वान् जन हम लोगों को (नूनम्) एक निश्चय से (हिन्वन्तु) बढ़ावें और समझावें ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो शास्त्र में दक्ष सत्यवादी, क्रियाओं में अति चतुर और विद्वानों का सेवन करते हैं वे अच्छी शिक्षायुक्त उत्तम बुद्धि को प्राप्त हो और शत्रुओं को जीतकर कैसे न उन्नति को प्राप्त हों ॥ ४ ॥

ऋभुर्भराय सं शिशातु सातिं समर्यजिद्वाजो अस्माँ अविष्टु ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥५॥

पदार्थ—हे मेधावी (समर्य्यजित्) संग्रामों के जीतने वाले (ऋभुः) प्रशंसित विद्वान् ! (वाजः) वेगादि गुणयुक्त आप (भराय) संग्राम के अर्थ आये शत्रुओं का (संशिशातु) अच्छी प्रकार नाश कीजिये (अस्मान्) हम लोगों की (अविष्टु) रक्षा आदि कीजिये जैसे (नः) हम लोगों के लिये जो (मित्रः) मित्र (वरुणः) उत्तम गुण वाला (अदितिः) विद्वान् (सिन्धुः) समुद्र (पृथिवी) पृथिवी (उत) और (द्यौः) सूर्य्य का प्रकाश (मामहन्ताम्) सिद्ध करें उन्नति देवें वैसे ही आप (तत्) उस (सातिम्) पदार्थों के अलग अलग करने को हम लोगों के लिये सिद्ध कीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—विद्वानों का यही मुख्य कार्य्य है कि जो जिज्ञासु अर्थात् ज्ञान चाहने वाले विद्या के न पढ़े हुए विद्यार्थियों को अच्छी शिक्षा और विद्यादान से बढ़ावें, जैसे मित्र आदि सज्जन वा प्राण आदि पवन सब की वृद्धि करके उन को सुखी करते हैं वैसे ही विद्वान् जन भी अपना वर्त्ताव रक्खें ॥ ५ ॥

इस सूक्त में बुद्धिमानों के गुणों के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ ग्यारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

आङ्गिरसः कुत्स ऋषिः । आदिमे मन्त्रे प्रथमपादस्य द्यावापृथिव्यौ, द्वितीयस्याग्निः, शिष्टस्य सूक्तस्याश्विनौ देवते । १ । २ । ६ । ७ । १३ । १५ । १७ । १८ । २०—२२ निचृज्जगती । ४ । ८ । ९ । ११ । १२ । १४ । १६ । २३ जगती । १९ विराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ३ । ५ । २४ विराट् त्रिष्टुप् । १० भुरिक्त्रिष्टुप् । २५ त्रिष्टुप् च छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

ईळे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तयेऽग्निं घर्मं सुरुचं यामन्निष्टये ।
याभिर्भरे कारमंशाय जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१॥

पदार्थ—हे (अश्विना) विद्याओं में व्याप्त होने वाले अध्यापक और उपदेशक ! आप जैसे (यामन्) मार्ग में (पूर्वचित्तये) पूर्व विद्वानों में संचित किये हुए (इष्टये) अभीष्ट सुख के लिये (द्यावापृथिवी) सूर्य्य का प्रकाश और भूमि (याभिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षाओं से युक्त (भरे) संग्राम में (घर्मम्) प्रताप-

युक्त (सुरुचम्) अच्छे प्रकार प्रदीप्त और रुचिकारक (अग्निम्) विद्युत्रूप अग्नि को प्राप्त होते हैं वैसे (ताभिः) उन रक्षाओं से (अंशाय) भाग के लिये (कारम्) जिस में क्रिया करते हैं उस विषय को (सु, जिन्वथः) उत्तमता से प्राप्त होते हैं (उ) तो कार्य्यसिद्धि करने के लिये (आ गतम्) सदा आवें इस हेतु से मैं (ईळे) आपकी स्तुति करता हूं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे प्रकाशयुक्त सूर्य्यादि और अन्धकारयुक्त भूमि आदि लोक सब घर आदिकों के चिनने और आधार के लिये होते और बिजुली के साथ सम्बन्ध करके सब के धारण करने वाले होते हैं वैसे तुम भी प्रजा में वर्त्ता करो ॥ १ ॥

युवोर्दानाय सुभरा असश्चतो रथमा तस्थुर्वचसं न मन्तवे।
याभिर्धियोऽवथः कर्मन्निष्टये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विनागतम्॥ २ ॥

पदार्थ—हे (अश्विना) पढ़ाने और उपदेश करानेहारे विद्वानो ! (सुभराः) जो अच्छे प्रकार धारण वा पोषण करते कि जो अति आनन्द के सिद्ध करानेहारे हैं वा (असश्चतः) जो किसी बुरे कर्म और कुसंग में नहीं मिलते वे सज्जन (मन्तवे) विशेष जानने के लिये जैसे (वचसं, न) सब ने प्रशंसा के साथ विख्यात किये हुए अत्यन्त बुद्धिमान् विद्वान् जन को प्राप्त होवे वैसे (युवोः) आप लोगों के (रथम्) जिस विमान आदि यान को (आ, तस्थुः) अच्छे प्रकार प्राप्त होकर स्थिर होते हैं उस के साथ (उ) और (याभिः) जिन से (धियः) उत्तम बुद्धियों को (कर्मन्) काम के बीच (इष्टये) चाहे हुए सुख के लिये (अवथः) राखते हैं (ताभिः) उन (ऊतिभिः) रक्षाओं के साथ तुम (दानाय) सुख देने के लिये हम लोगों के प्रति (सु, आ, गतम्) अच्छे प्रकार आओ ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जो तुम को उत्तम बुद्धि की प्राप्ति करावें उनकी सब प्रकार से रक्षा करो, जैसे आप लोग उन का सेवन करें वैसे ही वे लोग भी तुम को शुभ विद्या का बोध कराया करें ॥ २ ॥

युवं तासां दिव्यस्य प्रशासने विशां क्षयथो अमृतस्य मज्मना।
याभिर्धेनुमस्वं१ पिन्वथो नरा ताभिरू षु ऊतिभिरश्विनागतम् ॥३॥

पदार्थ—हे (नरा) विद्या व्यवहार में प्रधान (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक लोगो ! (युवम्) तुम दोनों (दिव्यस्य) अतीव शुद्ध (अमृतस्य) नाशरहित परमात्मा के (मज्मना) अनन्त बल के साथ जो परमात्मा के सम्बन्ध में प्रजाजन हैं (तासाम्) उन (विशाम्) प्रजाओं के (प्रशासने) शिक्षा करने में

(क्षयथः) निवास करते हो (उ) और (याभिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षाओं से (अस्वम्) जो दुष्ट काम को न उत्पन्न करती है उस (धेनुम्) सब सुख वर्षाने वाली वाणी का (पिन्वथः) सेवन करते हो (ताभिः) उन रक्षाओं के साथ (सु, आ, गतम्) अच्छे प्रकार हम लोगों को प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—वे ही धन्य विद्वान् हैं जो प्रजाजनों को विद्या अच्छी शिक्षा और सुख की वृद्धि होने के लिये प्रसन्न करते और उन के शरीर तथा आत्मा के बल को नित्य बढ़ाया करते हैं ॥ ३ ॥

याभिः परिज्मा तनयस्य मज्मना द्विमाता तूर्षु तरणिर्विभूषति ।
याभिस्त्रिमन्तुरभवद्विचक्षणस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (अश्विना) विद्या और उपदेश की प्राप्ति कराने हारे विद्वान् लोगो ! (याभिः) जिन से (द्विमाता) दोनों अग्नि और जल का प्रमाण करने वाला (तूर्षु) शीघ्र करने वालों में (तरणिः) उछलता सा अतीव वेग वाला (परिज्मा) सर्वत्र गमन करता वायु (तनयस्य) अपने से उत्पन्न अग्नि के (मज्मना) बल से (सु, विभूषति) अच्छे प्रकार सुशोभित होता (उ) और (याभिः) जिन से (त्रिमन्तुः) कर्म उपासना और ज्ञान विद्या को मानने हारा (विचक्षणः) विविध प्रकार से सब विद्याओं को प्रत्यक्ष कराने हारा (अभवत्) होवे (ताभिः) उन (ऊतिभिः) रक्षाओं से सहित सब हम लोगों को विद्या देने के लिये (आ, गतम्) प्राप्त हूजिये ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को योग्य है कि प्राण के समान प्रीति और संन्यासियों के समान उपकार करने से सब के लिये विद्या की उन्नति किया करें ॥ ४ ॥

याभी रेभं निवृतं सितमद्भ्य उद्वन्दनमैरयतं स्वर्दृशे ।
याभिः कण्वं प्र सिषासन्तमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥५॥

पदार्थ—(अश्विना) पढ़ाने और उपदेश करने वालो ! तुम (याभिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षाओं से (सितम्) शुद्ध धर्मयुक्त (निवृतम्) निरन्तर स्वीकार किये हुए शास्त्र बोध की (रेभम्) स्तुति और (वन्दनम्) गुण की प्रशंसा करने हारे को (स्वः) सुख के (दृशे) देखने के अर्थ (अद्भ्यः) जलों से (उत, ऐरयतम्) प्रेरणा करो और (याभिः) जिन से (सिषासन्तम्) विभाग कराने को इच्छा करने हारे (कण्वम्) बुद्धिमान् विद्वान् की (प्र, आवतम्) रक्षा करो (ताभिः, उ) उन्हीं रक्षाओं से हम लोगों के प्रति (सु, आ, गतम्) उत्तमता से आइये ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वानों की अच्छे प्रकार रक्षाकर उनसे विद्याओं को प्राप्त हो जलादि पदार्थों से शिल्पविद्या को सिद्ध करके बढ़ते हैं वे सब सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

याभिरन्तकं जसमानमारणे भुज्युं याभिरव्यथिभिर्जिजिन्वथुः ।
याभिः कर्कन्धुं वय्यं च जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥६॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) सभा सेना के स्वामी विद्वान् लोगो ! आप (**याभिः**) जिन (**ऊतिभिः**) रक्षाओं से (**आरणे**) सब ओर से युद्ध होने में (**अन्तकम्**) दुःखों के नाशक और (**जसमानम्**) शत्रुओं को मारते हुए पुरुष और (**याभिः**) जिन (**अव्यथिभिः**) पीड़ा रहित आनन्दकारक रक्षाओं से (**भुज्युम्**) पालने हारे पुरुष को (**जिजिन्वथुः**) प्रसन्न करते (**च**) और (**याभिः**) जिन रक्षाओं से (**कर्कन्धुम्**) कारीगरी करने हारे (**वय्यम्**) ज्ञाता पुरुष की (**जिन्वथः**) प्रसन्नता करते हो (**ताभिः, उ**) उन्हीं रक्षाओं के साथ हम लोगों के प्रति (**सु, आ, गतम्**) अच्छे प्रकार आइये ॥ ६ ॥

भावार्थ— रक्षा करने वाले और अधिष्ठाताओं के विना योद्धा लोग शत्रुओं के साथ संग्राम में युद्ध करने और प्रजाओं के पालने को समर्थ नही हो सकते जो प्रवन्ध से विद्वानों की रक्षा नहीं करते वे पराजय को प्राप्त होकर राज्य करने को समर्थ नहीं होते ॥ ६ ॥

याभिः शुचन्तिं धनसां सुषंसदं तप्तं घर्ममोम्यावन्तमत्रये ।
याभिः पृश्निगुं पुरुकुत्समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥७॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) उपदेश करने और पढ़ाने वालो ! तुम दोनों (**याभिः**) जिन (**ऊतिभिः**) रक्षाओं से (**अत्रये**) जिसमें आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक दुःख नहीं हैं उस व्यवहार के लिये (**शुचन्तिम्**) पवित्रकारक (**धनसाम्**) धन के विभागकर्त्ता (**सुषंसदम्**) अच्छी सभा वाले (**तप्तम्**) ऐश्वर्य्ययुक्त (**घर्मम्**) उत्तम यज्ञवान् (**ओम्यावन्तम्**) रक्षकों को प्राप्त करनेहारे पुरुष प्रशंसित जिसके हैं उसकी और (**याभिः**) जिन रक्षाओं से (**पृश्निगुम्**) विमानादि से अन्तरिक्ष में जानेहारे (**पुरुकुत्सम्**) बहुत शस्त्राऽस्त्रयुक्त पुरुष की (**आवतम्**) रक्षा करें (**ताभिः, उ**) उन्हीं रक्षाओं से हम लोगों को (**सु, आ, गतम्**) उत्तमता से प्राप्त हूजिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—विद्वानों को योग्य है कि धर्मात्माओं की रक्षा और दुष्टों की ताड़ना से सत्यविद्यओं का प्रकाश करें ॥ ७ ॥

याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजं प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे कृथः।
याभिर्वर्त्तिकां ग्रसितामुञ्चतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥८॥

पदार्थ—हे (वृषणा) सुख के वर्षानेहारे (अश्विना) सभा और सेना के अधीशो ! तुम (याभिः) जिन (शचीभिः) रक्षा सम्बन्धी कामों और प्रजाओं से (परावृजम) विरोध करनेहारे (अन्धम्) अविद्यान्धकारयुक्त (श्रोणम्) वधिर के तुल्य वर्त्तमान पुरुष को (चक्षसे) विद्यायुक्त वाणी के प्रकाश के लिये (एतवे) शुभ विद्या प्राप्त होने को (प्र, कृथः) अच्छे प्रकार योग्य करो और (याभिः) जिन रक्षाओं से (ग्रसिताम्) निगली हुई (वर्त्तिकाम्) छोटी चिड़िया के समान प्रजा को दुःखों से (अमुञ्चतम्) छुड़ाओ (ताभिरु) उन्हीं (ऊतिभिः) रक्षाओं से हम लोगों को (सु, आ, गतम्) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—सभा और सेना के पति को योग्य है कि अपनी विद्या और धर्म के आश्रय से प्रजाओं में विद्या और विनय का प्रचार करके अविद्या और अधर्म के निवारण से सब प्राणियों को अभयदान निरन्तर किया करें ॥ ८ ॥

याभिः सिन्धुं मधुमन्तमसश्चतं वसिष्ठं याभिरजरावजिन्वतम्।
याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥९॥

पदार्थ—हे (अश्विना) विद्या पढ़ाने और उपदेश करने वाले (अजरौ) जरावस्था रहित विद्वानो ! तुम (याभिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षाओं से (मधुमन्तम्) मधुर गुणयुक्त (सिन्धुम्) समुद्र को (असश्चतम्) जानो वा (याभिः) जिन रक्षाओं से (वसिष्ठम्) जो अत्यन्त धर्मादि कर्मों में वसने वाला उसकी (अजिन्वतम्) प्रसन्नता करो वा (याभिः) जिनसे (कुत्सम्) वज्र लिये हुए (श्रुतर्यम्) श्रवण से अति श्रेष्ठ (नर्यम्) मनुष्यों में अत्युत्तम पुरुष को (आवतम्) रक्षा करो (ताभिर) उन्हीं रक्षाओं के साथ हमारी रक्षा के लिये (स्वागतम्) अच्छे प्रकार आया कीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि यज्ञविधि से सब पदार्थों को अच्छे प्रकार शोधन कर सबका सेवन और रोगों का निवारण करके सदैव सुखी रहें ॥ ९ ॥

याभिर्विश्पलां धनसामथर्व्यं सहस्रमीळ्ह आजावजिन्वतम्।
याभिर्वशमश्व्यं प्रेणिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१०॥

पदार्थ—हे (अश्विना) सेना और युद्ध के अधिकारी लोगो ! (याभिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षाओं से (सहस्रमीळ्हे) असंख्य पराक्रमादि धन जिसमें हैं उस (आजौ) संग्राम में (विश्पलाम्) प्रजा के पालन करने हारों को ग्रहण करने (धनसाम्) और पुष्कल धन देने हारी (अथर्व्यम्) न नष्ट करने योग्य अपनी सेना को (अजिन्वतम्) प्रसन्न करो वा (याभिः) जिन रक्षाओं से (वशम्) मनोहर (प्रेणिम्) और शत्रुओं के नाश के लिये प्रेरणा करने योग्य (अश्व्यम्) घोड़ों वा अग्न्यादि पदार्थों के वेगों में उत्तम की (आवतम्) रक्षा करो (ताभिरु) उन्हीं रक्षाओं के साथ प्रजापालन केलिये (स्वागतम्) अच्छे प्रकार आया कीजिये ॥ १० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को यह अवश्य जानना चाहिये कि शरीर आत्मा की पुष्टि और अच्छे प्रकार की शिक्षा की हुई सेना के विना युद्ध में विजय और विजय के विना प्रजापालन, धन का संचय और राज्य की वृद्धि होने को योग्य नहीं है ॥ १० ॥

याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरत् ।
कक्षीवन्तं स्तोतारं याभिरावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥११॥

पदार्थ—हे (सुदानू) अच्छे प्रकार दान करने वाले (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक विद्वानो ! (याभिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षाओ से (दीर्घश्रवसे) जिनके वड़े वड़े विद्यादि पदार्थ, अन्न और धन विद्यमान उस (वणिजे) व्यवहार करने वाले (औशिजाय) उत्तम बुद्धिमान् के पुत्र के लिये (कोशः) मेघ (मधु) मधुर गुणयुक्त जल को (अक्षरत्) वर्षता वा तुम (याभिः) जिन रक्षाओं से (कक्षीवन्तम्) उत्तम सहाय से युक्त (स्तोतारम्) विद्या के गुणों की प्रशंसा करने वाले जन की (आवतम्) रक्षा करो (ताभिरु) उन्हीं रक्षाओं से सहित हमारी रक्षा करने को (स्वागतम्) अच्छे प्रकार शीघ्र आया कीजिये ॥ ११ ॥

भावार्थ—राजपुरुषों को योग्य है कि जो द्वीप द्वीपान्तर और देश-देशान्तर में व्यापार करने के लिये जावें आवें उनकी रक्षा प्रयत्न से किया करें ॥ ११ ॥

याभी रसां क्षोदसोद्नः पिपिन्वथुरनश्वं याभि रथमावतं जिषे ।
याभिस्त्रिशोक उस्रिया उदाजत ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१२॥

पदार्थ—हे (अश्विना) अध्यापक और उपदेशको ! आप दोनो (याभिः) जिन शिल्प क्रियाओं से (उद्नः) जल के (क्षोदसा) प्रवाह के साथ (रसाम्) जिस में प्रशंसित जल विद्यमान हो उस नदी को (पिपिन्वथुः) पूरी करो अर्थात् नहरि

आदि के प्रबन्ध से उस में जल पहुंचाओ वा (याभिः) जिन आने जाने की चालों से (जिषे) शत्रुओं को जीतने के लिये (अनश्वम्) विन घोड़ों के (रथम्) विमान आदि रथसमूह को (आवतम्) राखो वा (याभिः) जिन सेनाओं से (त्रिशोकः) जिन को दुष्ट गुण कर्म स्वभाव में शोक है वह विद्वान् (उस्रियाः) किरणों में हुए विद्युत् अग्नि की चिलकों को (उदाजत) ऊपर को पहुँचावे (ताभिरु) उन्हीं (ऊतिभिः) सब रक्षारूप उक्त वस्तुओं से (स्वागतम्) हम लोगों के प्रति अच्छे प्रकार आइये ॥ १२ ॥

भावार्थ—जैसे सब शिल्पशास्त्रों में चतुर विद्वान् विमानादि यानों में कलायन्त्रों को रच के उन में विद्युत् आदि का प्रयोग कर यन्त्र से कलाओं को चला अपने अभीष्ट स्थान में जाना आना करता है वैसे ही सभा सेना के पति किया करें ॥ १२ ॥

याभिः सूर्यं परियाथः परावति मन्धातारं क्षैत्रपत्येष्वावतम् ।
याभिर्विप्रं प्र भरद्वाजमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१३॥

पदार्थ--हे (अश्विना) शिल्पविद्या के स्वामी और भृत्यो ! तुम दोनों (याभिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षादि से (परावति) दूर देश में (सूर्य्यम्) प्रकाशमान सूर्य के समान (मन्धातारम्) विमानादि यान से शीघ्र दूर देश को पहुंचाने वाले बुद्धिमान् को (पर्याथः) सब ओर से प्राप्त होओ (याभिः) जिन रक्षाओं से (क्षैत्रपत्येषु) माण्डलिक राजाओं के काम में उसकी (आवतम्) रक्षा करो और (भरद्वाजम्) विद्या सद्गुणों के धारण करने वालों को समझाने वाले (विप्रम्) मेधावी पुरुष की (प्रावतम्) अच्छे प्रकार रक्षा करो (ताभिः, उ) उन्हीं रक्षाओं से हम लोगों के प्रति (सु, आ, गतम्) प्राप्त हूजिये ॥ १३ ॥

भावार्थ—व्यवहार करने वाले मनुष्यों से विमानादि यानों के विना दूसरे देशों में जाना आना नहीं हो सकता इससे बड़ा लाभ नहीं हो सकता इस कारण नाव विमानादि की रचना अवश्य सदा करनी चाहिये ॥ १३ ॥

याभिर्महामतिथिग्वं कशोजुवं दिवोदासं शम्बरहत्य आवतम् ।
याभिः पूर्भिद्ये त्रसदस्युमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१४॥

पदार्थ—हे (अश्विना) राजा और प्रजा में शूरवीर पुरुषो ! तुम दोनों (शम्बरहत्ये) सेना वा दूसरे के बल पराक्रम का मारना जिस में हो उस युद्धादि व्यवहार में (याभिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षाओं से (महाम्) बड़े प्रशंसनीय (अतिथिग्वम्) अथितियों को प्राप्त होने (कशोजुवम्) जलों को चलाने और (दिवोदासम्) दिव्य विद्यारूप क्रियाओं के देनेवाले सेनापति की (आवतम्)

रक्षा करो वा जिन रक्षाओं से (पूर्भिद्ये) शत्रुओं के नगर विदीर्ण हों जिससे उस संग्राम में (त्रसदस्युम्) डाकुओं से डरे हुए श्रेष्ठ जन की (आवतम्) रक्षा करो (ताभिः) उन्हीं रक्षाओं से हमारी रक्षा के लिये (सु, आ, गतम्) अच्छे प्रकार आइये ॥ १४ ॥

भावार्थ—प्रजा और सेना के मनुष्यों को योग्य है कि सब विद्या में निपुण धार्मिक पुरुष को सभापति कर उस की सब प्रकार रक्षा करके सब को भय देने वाले दुष्ट डांकू को मार के आप सुखों को प्राप्त हों और सब को सुखी करें ॥ १४ ॥

याभि॑र्व॒म्रं वि॑पि॒पा॒नमु॑पस्तु॒तं क॒लिं याभि॑र्वि॒त्तजा॑निं दुव॒स्यथ॑: ।

याभि॒र्व्य॑श्वमु॒त पृथि॑मा॒व॑तं॒ ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्विना॒ ग॑तम् ॥१५॥

पदार्थ—हे (अश्विना) राज प्रजाजनो ! तुम (याभिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षाओं से (विपिपानम्) विशेष कर ओषधियों के रसों को जो पीने के स्वभाव वाला (उपस्तुतम्) आगे प्रतीत हुए गुणों से प्रशंसा को प्राप्त (कलिम्) जो सब दुःखों से दूर करने वा ज्योतिष शास्त्रोक्त गणितविद्या को जानने वाला (वित्तजानिम्) और जिसने हृदय को प्रिय सुन्दर स्त्री पाई हो उस (वम्रम्) रोग निवृत्ति करने के लिये वमन करते हुए पुरुष की (दुवस्यथः) सेवा करो (याभिः) वा जिन रक्षाओं से (व्यश्वम्) विविध घोड़े वा अग्न्यादि पदार्थों से युक्त सेना वा यान की सेवा करो (उत) और (याभिः) जिन रक्षाओं से (पृथिम्) विशाल बुद्धि वाले पुरुष की (आवतम्) रक्षा करो (ताभिः, उ) उन्हीं से आरोग्य को (सु. आ,गतम्) अच्छे प्रकार सब ओर से प्राप्त हूजिये ॥ १५ ॥

भावार्थ— मनुष्यों को उचित है कि सद्वैद्यों के द्वारा उत्तम ओषधियों के सेवन से रोगों का निवारण, बल और बुद्धि को बढ़ा, सेना के अध्यक्ष और विस्तृत पुरुषार्थयुक्त शिल्पीजन की सम्यक् सेवा कर शरीर और आत्मा के सुखों को प्राप्त होवें ॥ १५ ॥

याभि॑र्नरा श॒यवे॒ याभि॒रत्र॑ये॒ याभि॑: पु॒रा मन॑वे गा॒तुमी॒षथु॑: ।

याभि॒: शारी॒राज॑तं॒ स्यूम॑रश्मये॒ ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्वि॒ना ग॑तम् ॥१६॥

पदार्थ—हे (नरा) उत्तम कार्य्य में प्रवृत्त कराने वाले (अश्विना) सब विद्याओं के पढ़ाने और उपदेश करने वाले विद्वान् लोगो ! तुम दोनों (पुरा) प्रथम (याभिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षाओं से (शयवे) सुख से शयन करने वाले को शान्ति वा (याभिः) जिन रक्षाओं से (अत्रये) शरीर, मन. वाणी के दोषों से

रहित पुरुष के लिये सब सुख और (याभिः) जिन रक्षाओं से (मनवे) मननशील पुरुष के लिये (गातुम्) पृथिवी वा उत्तम वाणी को (ईषथुः) प्राप्त कराने की इच्छा करो वा (याभिः) जिन रक्षाओं से (स्यूमरश्मये) सूर्यवत् संयुक्त न्याय प्रकाश करने वाले पुरुष के लिये सुख की इच्छा करो वा जिनसे शत्रुओं को (शारीः) बाणों की गतियों को (आजतम्) प्राप्त कराओ (ताभिरु) उन्हीं रक्षाओं से अपनी सेनाओं की रक्षा के लिये (सु, आ, गतम्) अच्छे प्रकार उत्साह को प्राप्त हूजिये ॥ १६ ॥

भावार्थ—अध्यापक और उपदेष्टाओं को यह योग्य है कि विद्या और धर्म के उपदेश से सब जनों को विद्वान् धार्मिक करके पुरुषार्थयुक्त निरन्तर किया करें ॥ १६ ॥

याभिः पठर्वा जठरस्य मज्मनाग्निर्नादीदेच्चित इद्धो अज्मन्ना ।
याभिः शर्यातमवथो महाधने ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१७॥

पदार्थ—हे (अश्विना) सभा और सेना के अधीश ! तुम दोनों (याभिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षाओं से (पठर्वा) पढ़ने वाले विद्यार्थियों को जो प्राप्त होता वा (मज्मना) बल से (जठरस्य) उदर के मध्य (चितः) सञ्चित किये (इद्धः) प्रदीप्त (अग्निः) अग्नि के (न) समान (अज्मन्) जिस में शत्रुओं को गिराते हैं उस बड़े बड़े धन की प्राप्ति कराने हारे युद्ध में (आ, अदीदेत्) अच्छे प्रदीप्त होवें वा (याभिः) जिन रक्षाओं के (शर्य्यातम्) हिंसा करने हारे को प्राप्त पुरुष की (अवथः) रक्षा करो (ताभिरु) उन्हीं रक्षाओं से प्रजा सेना की रक्षा के लिये (सु, आ, गतम्) आया जाया कीजिये ॥ १७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे कोई शौर्य्यादि गुणों से शोभायमान राजा रक्षणीय की रक्षा करे और मारने योग्यों को मारे और जैसे अग्नि वन का दाह करे वैसे शत्रु की सेना को भस्म करे और शत्रुओं के बड़े बड़े धनों को प्राप्त कराकर आनन्दित करावे वैसे ही सभा और सेना के पति काम किया करें ॥ १७ ॥

याभिरङ्गिरो मनसा निरण्यथोऽग्रं गच्छथो विवरे गोअर्णसः ।
याभिर्मनुं शूरमिषा समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१८॥

पदार्थ—हे (अङ्गिरः) जानने हारे विद्वान् ! तू (मनसा) विज्ञान से विद्या और धर्म्म का सब को बोध करा । हे (अश्विना) सेना के पालन और युद्ध कराने हारे जन ! तुम (याभिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षाओं के साथ (गोअर्णसः)

पृथिवी जल के (विवरे) अवकाश में (निरण्यथः) संग्राम करते और (अग्रम्) उत्तम विजय को (गच्छथः) प्राप्त होते वा (याभिः) जिन रक्षाओं से (शूरम्) शूरवीर (मनुम्) मननशील मनुष्य को (समावतम्) सम्यक् रक्षा करो (ताभिरु) उन्हीं रक्षा और (इषा) इच्छा से हमारी रक्षा के लिये (सु, आ, गतम्) उचित समय पर आया कीजिये ॥ १८ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वान् विज्ञान से सब सुखों को सिद्ध करता है वैसे सब राजपुरुषों को अनेक साधनों से पृथिवी नदी और समुद्र से आकाश के मध्य में शत्रुओं को जीत के सुखों को अच्छे प्रकार प्राप्त होना चाहिये ॥ १८ ॥

याभिः पत्नीर्विमदाय न्यूहथुरा घ वा याभिररुणीरशिक्षतम् ।
याभिः सुदास ऊहथुः सुदेव्यं१ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१९॥

पदार्थ—हे (अश्विना) पढ़ने पढ़ाने हारे ब्रह्मचारी लोगो! तुम (याभिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षाओं से (विमदाय) विविध आनन्द के लिये (पत्नीः) पति के साथ यज्ञसम्बन्ध करने वाली विदुषी स्त्रियों को (न्यूहथुः) निश्चय से ग्रहण करो (वा) वा (याभिः) जिन रक्षाओं से (अरुणीः) ब्रह्मचारिणी कन्याओं को (घ) ही (आ, अशिक्षतम्) अच्छे प्रकार शिक्षा करो और (याभिः) जिन रक्षादि क्रियाओं से (सुदासे) अच्छे प्रकार दान करने में (सुदेव्यम्) उत्तम विद्वानों में उत्पन्न हुए विज्ञान को (ऊहथुः) प्राप्त कराओ (ताभिः) उन रक्षाओं से विद्या (उ) और विनय को (सु, आ, गतम्) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ॥१९॥

भावार्थ—सुख पाने की इच्छा करने वाले पुरुष और स्त्रियों को धर्म से सेवित ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या और युवावस्था को प्राप्त होकर अपनी तुल्यता से ही विवाह करना योग्य है अथवा ब्रह्मचर्य ही में ठहर के सर्वदा स्त्री पुरुषों को अच्छी शिक्षा करना योग्य है क्योंकि तुल्य गुणकर्मस्वभाव वाले स्त्री पुरुषों के विना गृहाश्रम को धारण करके कोई किञ्चित् भी सुख वा उत्तम सन्तान को प्राप्त होने में समर्थ नहीं होते इससे इसी प्रकार विवाह करना चाहिये ॥ १९ ॥

याभिः शन्ताती भवथो ददाशुषे भुज्युं याभिरवथो याभिरध्रिगुम् ।
ओम्यावतीं सुभरामृतस्तुभं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥२०॥

पदार्थ—हे (अश्विना) सभा और सेना के अधीशो ! तुम दोनों (ददाशुषे) विद्या और सुख देने वाले के लिये (याभिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षा आदि

क्रियाओं से (शन्ताती) सुख के कर्त्ता (भवतः) होते वा (याभिः) जिन रक्षाओं से (भुज्युम्) सुख के भोक्ता वा पालन करने हारे की (अवथः) रक्षा करते वा (याभिः) जिन रक्षाओं से (अध्रिगुम्) परमैश्वर्य वाले इन्द्र और (ओम्यावतीम्) रक्षा करनेहारे विद्वानों में उत्पन्न जो उत्तम विद्या उस से युक्त (सुभराम्) जिस से कि अच्छे प्रकार सुखों का (ऋतस्तुभम्) और सत्य का धारण होता है उस नीति की रक्षा करते हो (ताभिरु) उन्हीं रक्षाओं से सत्य को (सु, आ, गतम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥ २० ॥

भावार्थ—राजादि राजपुरुषों को योग्य है कि सब को सुख देवें और आप्त पुरुषों की विद्या और नीति को धारण कर कल्याण को प्राप्त होवें ॥ २० ॥

याभिः कृशानुमसने दुवस्यथो जवे याभिर्यूनो अर्वन्तमावतम् ।
मधु प्रियं भरथो यत्सरड्भ्यस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥२१॥

पदार्थ—हे (अश्विना) सभा और सेना के अधीशो ! तुम दोनों (याभिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षादि क्रियाओं से (असने) फेंकने में (कृशानुम्) दुर्बल की (दुवस्यथः) सेवा करो वा (याभिः) जिन रक्षाओं से (जवे) वेग में (यूनः) युवावस्था युक्त वीरों (अर्वन्तम्) और घोड़े की (आवतम्) रक्षा करो (उ) और (सरड्भ्यः) युद्ध में विजय करने वाले सेनादि जनों से (यत्) जो (प्रियम्) कामना के योग्य है उस मधु मीठे अन्न आदि पदार्थ को (भरथः) धारण करो (ताभिः) उन रक्षाओं से युक्त होकर राज्यपालन के लिये (सु, आ, गतम्) अच्छे प्रकार आया कीजिये ॥ २१ ॥

भावार्थ—राजपुरुषों को योग्य है कि दुःखों से पीड़ित प्राणियों और युवावस्था वाले स्त्री पुरुषों की व्यभिचार से रक्षा करें और घोड़े आदि सेना के अङ्गों की रक्षा के लिये सब प्रिय वस्तु को धारण करें प्रति क्षण सम्हाल के सब को बढ़ाया करें ॥ २१ ॥

याभिर्नरं गोषुयुधं नृषाह्ये क्षेत्रस्य साता तनयस्य जिन्वथः ।
याभी रथाँ अवथो याभिरर्वतस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥२२॥

पदार्थ—हे (अश्विना) सभासेना के अध्यक्ष ! तुम दोनों (नृषाह्ये) वीरों को सहने और (साता) सेवन करने योग्य संग्राम में (याभिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षाओं से (गोषुयुधम्) पृथिवी पर युद्ध करने हारे (नरम्) नायक को (जिन्वथः) प्रसन्न करो (याभिः) वा जिन रक्षाओं से (क्षेत्रस्य) स्त्री

और (तनयस्य) सन्तान को प्रसन्न रक्खो (उ) और (याभिः) जिन रक्षाओं से (रथान्) रथों (अर्वतः) और घोड़ों की (अवथः) रक्षा करो (ताभिः) उन रक्षाओं से सब प्रजाओं की रक्षा करने को (सु, आ, गतम्) अच्छे प्रकार प्रवृत्त हूजिये ॥ २२ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि युद्ध में शत्रुओं को मार अपने भृत्य आदि की रक्षा करके सेना के अङ्गों को बढ़ावें और स्त्री, बालकों, युद्ध के देखने वाले और दूतों को कभी न मारें ॥ २२ ॥

याभिः कुत्समार्जुनेयं शतक्रतू प्र तुर्वीतिं प्र च दभीतिमावतम् ।
याभिर्ध्वसन्तिं पुरुषन्तिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥२३॥

पदार्थ—हे (शतक्रतू) असंख्योत्तम बुद्धिकर्मयुक्त (अश्विना) सभा सेना के पति ! आप दोनों (याभिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षा आदि से सूर्य चन्द्रमा के समान प्रकाशमान होकर (आर्जुनेयम्) सुन्दर रूप के साथ सिद्ध किये हुए (कुत्सम्) वज्र का ग्रहण करके (तुर्वीतिम्) हिंसक (दभीतिम्) दम्भी (ध्वसन्तिम्) नीच गति को जाने वाले पापी को (प्र, आवतम्) अच्छे प्रकार मारो (च) और (याभिः) जिन रक्षाओं से (पुरुषन्तिम्) बहुतों को अलग बांटने वाले की (प्र, आवतम्) रक्षा करो (ताभिः, उ) उन्हीं रक्षाओं से धर्म की रक्षा करने को (सु, आ, गतम्) अच्छे प्रकार तत्पर हूजिये ॥ २३ ॥

भावार्थ—राजादि मनुष्यों को योग्य है कि शस्त्रास्त्र प्रयोगों को जान दुष्ट शत्रुओं का निवारण करके जितने इस संसार में अधर्मयुक्त कर्म हैं उतनों का धर्म्मोपदेश से निवारण कर नाना प्रकार की रक्षा का विधान कर प्रजा का अच्छे प्रकार पालन करके परम आनन्द का भोग किया करें ॥ २३ ॥

अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम् ।
अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥ २४ ॥

पदार्थ—हे (दस्रा) सब के दुःखनिवारक (वृषणा) सुख को वर्षाने हारे (अश्विना) अध्यापक उपदेशक लोगो ! तुम दोनों (अस्मे) हम में (अप्नस्वतीम्) बहुत पुत्र पौत्र करनेहारी (वाचम्) वाणी को (कृतम्) कीजिये (अद्यूत्ये) छलादि दोषरहित व्यवहार में (नः) हमारी (अवसे) रक्षादि के लिये (मनीषाम्) योग विज्ञान वाली बुद्धि को कीजिये (वाजसातौ) युद्धादि व्यवहार में (नः) हमारी (च) और अन्य लोगों की (वृधे) वृद्धि के लिये निरन्तर

(**भवतम्**) उद्यत हूजिये इसी के लिये (**वाम्**) तुम दोनों को मैं (**निह्वये**) नित्य बुलाता हूँ ॥ २४ ॥

भावार्थ—कोई भी पुरुष आप्त विद्वानों के समागम के विना पूर्ण विद्यायुक्त वाणी और बुद्धि को प्राप्त नहीं हो सकता न इन दोनों के विना शत्रुओं का जय और सब ओर से बढ़ती को प्राप्त हो सकता है ॥ २४ ॥

द्युभि॑र॒क्तुभि॒ः परि॑ पातम॒स्मानरि॑ष्टेभिरश्विना॒ सौभ॑गेभिः ।
तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑तिः॒ सिन्धु॑ः पृथि॒वी उ॒त द्यौः ॥२५॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) पूर्वोक्त अध्यापक और उपदेशक लोगो ! तुम दोनों (**द्युभिः**) दिन और (**अक्तुभिः**) रात्रि (**अरिष्टेभिः**) हिंसा के न योग्य (**सौभगेभिः**) सुन्दर ऐश्वर्यों के साथ वर्त्तमान (**अस्मान्**) हम लोगों को सर्वदा (**परि, पातम्**) सब प्रकार रक्षा कीजिये (**तत्**) तुम्हारे उस काम को (**मित्रः**) सब का सुहृद् (**वरुणः**) धर्मादि कार्यों में उत्तम (**अदितिः**) माता (**सिन्धुः**) समुद्र वा नदी (**पृथिवी**) भूमि वा आकाशस्थ वायु (**उत**) और (**द्यौः**) विद्युत् वा सूर्य का प्रकाश (**नः**) हमारे लिये (**मामहन्ताम्**) वार वार बढ़ावें ॥ २५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे माता और पिता अपने अपने सन्तानों सखा मित्रों और प्राण शरीर को प्रसन्न करते हैं और समुद्र गम्भीरतादि पृथिवी वृक्षादि और सूर्य प्रकाश को धारण कर और सब प्राणियों को सुखी करके उपकार को उत्पन्न करते हैं वैसे पढ़ाने और उपदेश करनेहारे सब सत्य विद्या और अच्छी शिक्षा को प्राप्त कराके सब को इष्ट सुख से युक्त किया करें ॥ २५ ॥

इस सूक्त में सूर्य पृथिवी आदि के गुणों और सभा सेना के अध्यक्षों के कर्त्तव्यों तथा उन के किये परोपकारादि कर्मों का वर्णन किया है इससे इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह एकसौ बाहरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

आङ्गिरसः कुत्स ऋषिः । उषा देवता । द्वितीयस्यार्धर्चस्य रात्रिरपि । १ । ३ । ६ । १२ । १७ निचृत्त्रिष्टुप् । ६ त्रिष्टुप् । ७ । १८—२० विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ । ५ स्वराट् पङ्क्तिः । ४ । ८ । १० । ११ । १५ । १६ भुरिक् पङ्क्तिः । १३ । १४ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा ।
यथा प्रसूता सवितुः सवायँ एवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ॥ १ ॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (प्रसूता) उत्पन्न हुई (रात्री) निशा (सवितुः) सूर्य्य के सम्बन्ध से (सवाय) ऐश्वर्य्य के हेतु (उषसे) प्रातःकाल के लिये (योनिम्) घर घर को (आरैक्) अलग अलग प्राप्त होती है वैसे ही (चित्रः) अद्भुत गुण कर्म स्वभाव वाला (प्रकेतः) बुद्धिमान् विद्वान् जिस (इदम्) इस (ज्योतिषाम्) प्रकाशकों के बीच (श्रेष्ठम्) अतीवोत्तम (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप ब्रह्म को (आ, आगात्) प्राप्त होता है (एव) उसी (विभ्वा) व्यापक परमात्मा के साथ सुखैश्वर्य के लिये (अजनिष्ट) उत्पन्न होता और दुःखस्थान से पृथक् होता है ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सूर्योदय को प्राप्त होकर अन्धकार नष्ट हो जाता है वैसे ही ब्रह्मज्ञान को प्राप्त होकर दुःख दूर हो जाता है इस से सब मनुष्यों को योग्य है कि परमेश्वर को जानने के लिये प्रयत्न किया करें ॥ १ ॥

रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः ।
समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिनाने ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो यह (रुशद्वत्सा) प्रकाशित सूर्यरूप बछड़े की कामना करनेहारी वा (रुशती) लाल लालसी (श्वेत्या) शुक्लवर्णयुक्त अर्थात् गुलाबी रङ्ग की प्रभात वेला (आ, अगात्) प्राप्त होती है (अस्याः, उ) इस अद्भुत उषा के (सदनानि) स्थानों को प्राप्त हुई (कृष्णा) काले वर्ण वाली रात (आरैक्) अच्छे प्रकार अलग अलग वर्त्तती है वे दोनों (अमृते) प्रवाह रूप से नित्य (आमिनाने) परस्पर एक दूसरे को फेंकती हुई सी (अनूची) वर्त्तमान (द्यावा) अपने अपने प्रकाश से प्रकाशमान (समानबन्धू) दो सहोदर वा दो मित्रों के तुल्य (वर्णम्) अपने अपने रूप को (चरतः) प्राप्त होती हैं उन दोनों का युक्ति से सेवन किया करो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जिस स्थान में रात्रि वसती है उसी स्थान में कालान्तर में उषा भी वसती है, इन दोनों से उत्पन्न हुआ सूर्य्य जानो दोनों माताओं से उत्पन्न हुए लड़के के समान है और ये दोनों सदा बन्धु के समान जाने आने वाली उषा और रात्रि हैं ऐसा तुम लोग जानो ॥ २ ॥

समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे ।
न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिन (**स्वस्रोः**) वहिनियों के समान वर्त्ताव रखने वाली रात्री और प्रभातवेलाओं का (**अनन्तः**) अर्थात् सीमारहित आकाश (**समानः**) तुल्य (**अध्वा**) मार्ग है जो (**देवशिष्टे**) परमेश्वर के शासन अर्थात् यथावत् नियम को प्राप्त (**विरूपे**) विरुद्धरूप (**समनसा**) तथा समान चित्त वाले मित्रों के तुल्य वर्त्तमान (**सुमेके**) और नियम में छोड़ी हुई (**नक्तोषसा**) रात्रि और प्रभात वेला (**तम्**) उस अपने नियम को (**अन्यान्या**) अलग अलग (**चरतः**) प्राप्त होतीं और वे कदाचित् (**न**) नहीं (**मेथेते**) नष्ट होती और (**न, तस्थतुः**) न ठहरती हैं उन को तुम लोग यथावत् जानो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विरुद्ध स्वरूप वाले मित्र लोग इस निःसीम अनन्त आकाश में न्यायाऽधीश के नियम के साथ ही नित्य वर्त्तते हैं वैसे रात्रि दिन परमेश्वर के नियम से नियत होकर वर्त्तते हैं ॥ ३ ॥

भास्वती नेत्री सूनृतानामचेति चित्रा वि दुरो न आवः ।
प्रार्प्या जगद्व्यु नो रायो अख्यदुषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् मनुष्यो ! तुम लोगों को जो (**भास्वती**) अतीवोत्तम प्रकाश वाले (**सूनृतानाम्**) वाणी और जागृत के व्यवहारों को (**नेत्री**) प्राप्त करने और (**चित्रा**) अद्भुत गुण कर्म स्वभाव वाली (**उषाः**) प्रभात वेला (**नः**) हमारे लिये (**दुरः**) द्वारों (**वि, आवः**) को प्रकट करती हुई सी वा जो (**नः**) हमारे लिये (**जगत्**) संसार को (**प्रार्प्य**) अच्छे प्रकार अर्पण करके (**रायः**) धनों को (**वि, अख्यत्**) प्रसिद्ध करती है (**उ**) और (**विश्वा**) सब (**भुवनानि**) लोकों को (**अजीगः**) अपनी व्याप्ति से निगलती सी है वह (**अचेति**) अवश्य जाननी है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो उषा सब जगत् को प्रकाशित करके सब प्राणियों को जगा सब संसार में व्याप्त होकर सब पदार्थों को वृष्टि द्वारा समर्थ करके पुरुषार्थ में प्रवृत्त करा, धनादि की प्राप्ति करा, माता के समान सब प्राणियों को पालती है इससे आलस्य में उत्तम प्रातः समय की वेला व्यर्थ न गमाना चाहिये ॥ ४ ॥

जिह्मश्ये॒३चरि॑तवे म॒घोन्या॑भो॒गय॑ इ॒ष्टये॑ रा॒य उ॑ त्वम् ।
द॒भ्रं पश्य॑द्भ्य उर्वि॒या वि॒चक्ष॑ उ॒षा अ॑जीग॒र्भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (**त्वम्**) तू जो (**उर्विया**) अनेक रूपयुक्त (**मघोनि**) अधिक धन प्राप्त करानेहारी (**उषाः**) प्राप्तर्वेला (**विश्वा**) सब (**भुवनानि**) लोकों को (**अजीगः**) निगलती (**जिह्मश्ये**) वा जो टेढ़े सोने अर्थात् सोने में टेढ़ापन को प्राप्त हुए जन के लिये वा (**चरितवे**) विचरने को (**विचक्षे**) विविध प्रकटता के लिये (**आभोगये**) सब ओर से सुख के भोग जिस में हों उस पुरुषार्थ से युक्त क्रिया के लिये (**इष्टये**) वा जिस में मिलते हैं उस यज्ञ के लिये वा (**राये**) धनों के लिये वा (**पश्यद्भ्यः**) देखते हुए मनुष्यों के लिये (**दभ्रम्**) छोटे से (**उ**) भी वस्तु को प्रकाश करती है उस उषा को जान ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य रात्री के चौथे प्रहर में जाग कर शयन पर्य्यन्त व्यर्थ समय को नहीं जाने देते वे ही सुखी होते हैं अन्य नहीं ॥ ५ ॥

क्ष॒त्राय॑ त्वं॒ श्रव॑से त्वं म॒हीया॑ इ॒ष्टये॑ त्व॒मर्थ॑मिव त्वमि॒त्यै ।
विस॑दृशा जीवि॒ताभि॑प्र॒चक्ष॑ उ॒षा अ॑जीग॒र्भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् सभाध्यक्ष राजन् ! जैसे (**उषाः**) प्रातर्वेला अपने प्रकाश से (**विश्वा**) सब (**भुवनानि**) लोकों को (**अजीगः**) ढांग लेती है वैसे (**त्वम्**) तू (**अभिप्रचक्षे**) अच्छे प्रकार शास्त्र-बोध से सिद्ध वाणी आदि व्यवहाररूप (**क्षत्राय**) राज्य के लिये और (**त्वम्**) तू (**श्रवसे**) श्रवण और अन्न के लिये (**त्वम्**) तू (**इष्टये**) इष्ट सुख और (**महीयै**) सत्कार के लिये और (**त्वम्**) तू (**इत्यै**) सङ्गति प्राप्ति के लिये (**विसदृशा**) विविध धमयुक्त व्यवहारों के अनुकूल (**अर्थमिव**) द्रव्यों के समान (**जीविता**) जीवनादि को सदा सिद्ध किया कर ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है जैसे विद्या विनय से प्रकाशमान सत्पुरुष सब समीपस्थ पदार्थों को व्याप्त होकर उनके गुणों के प्रकाश से समस्त अर्थों को सिद्ध करने वाले होते हैं वैसे राजादि पुरुष विद्या न्याय और धर्मादि को सब ओर से व्याप्त होकर चक्रवर्ती राज्य की यथावत् रक्षा से सब आनन्द को सिद्ध करें ॥ ६ ॥

ए॒षा दि॒वो दु॑हि॒ता प्रत्य॑दर्शि व्यु॒च्छन्ती॑ युव॒तिः शु॒क्रवा॑साः ।
विश्व॒स्येशा॑ना॒ पार्थि॑वस्य॒ वस्व॒ उषो॑ अ॒द्येह सु॑भगे॒ व्यु॑च्छ ॥ ७ ॥

पदार्थ—जैसे (**शुक्रवासाः**) शुद्ध पराक्रमयुक्त (**विश्वस्य**) समस्त (**पार्थि-**

वस्य) पृथिवी में प्रसिद्ध हुए (वस्वः) धन की (ईशाना) अच्छे प्रकार सिद्ध कराने वाली (व्युच्छन्ती) और नाना प्रकार के अन्धकारों को दूर करती हुई (एषा) यह (दिवः) सूर्य्य की (युवतीः) ज्वान अर्थात् अति पराक्रम वाली (दुहिता) पुत्री प्रभात वेला (प्रत्यदर्शि) वार वार देख पड़ती है वैसे हे (सुभगे) उत्तम भाग्यवती (उषः) सुख में निवास करने हारी विदुषी (अद्य) आज तू (इह) यहां (व्युच्छ) दुःखों को दूर कर ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जब ब्रह्मचर्य किया हुआ सन्मार्गस्थ ज्वान विद्वान् पुरुष अपने तुल्य अपने विद्यायुक्त ब्रह्मचारिणी सुन्दर रूप बल पराक्रम वाली साध्वी अच्छे स्वभावयुक्त सुख देनेहारी युवति अर्थात् वीसवें वर्ष से चौबीसवें वर्ष की आयु युक्त कन्या से विवाह करे तभी विवाहित स्त्री पुरुष उषा के समान सुप्रकाशित होकर सब सुखों को प्राप्त होवें ॥ ७ ॥

परायतीनामन्वेति पाथ आयतीनां प्रथमा शश्वतीनाम् ।
व्युच्छन्ती जीवमुदीरयन्त्युषा मृतं कं चन बोधयन्ती ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे उत्तम सौभाग्य बढ़ानेहारी स्त्री ! जैसे यह (उषाः) प्रभात वेला (शश्वतीनाम्) प्रवाहरूप से अनादिस्वरूप (परायतीनाम्) पूर्व व्यतीत हुई प्रभात वेलाओं के पीछे (आयतीनाम्) आने वाली वेलाओं में (प्रथमा) पहिली (व्युच्छन्ती) अन्धकार का विनाश करती और (जीवम्) जीव को (उदीरयन्ती) कामों में प्रवृत्त कराती हुई (कम्) किसी (चन) (मृतम्) मृतक के समान सोये हुए जन को (बोधयन्ती) जगाती हुई (पाथः) आकाश मार्ग को (अन्वेति) अनुकूलता से जाती है वैसे ही तू पतिव्रता हो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सौभाग्य की इच्छा करने वाली स्त्रीजन उषा के तुल्य भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान समयों में हुई उत्तम शील पतिव्रता स्त्रियों के सनातन वेदोक्त धर्म का आश्रय कर अपने अपने पति को सुखी करती और उत्तम शोभा वाली होती हुई सन्तानों को उत्पन्न कर और सब ओर से पालन करके उन्हें सत्य विद्या और उत्तम शिक्षाओं का बोध कराती हुई सदा आनन्द को प्राप्त करावें ॥ ८ ॥

उषो यदग्निं समिधे चकर्थ वि यदावश्चक्षसा सूर्य्य
यन्मानुषान् यक्ष्यमाणाँ अजीगस्तद्देवेषु चकृषे

पदार्थ—हे (उषः) प्रभात वेला के समान

जो तू (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के (चक्षसा) प्रकाश से (समिधे) अच्छे प्रकार प्रकाश के लिये (अग्निम्) विद्युत् अग्नि को प्रदीप्त (चकर्थ) करती है वा (यत्) जो तू दुःखों को (वि, आवः) दूर करती वा (यत्) जो तू (यक्ष्यमाणान्) यज्ञ के करने वाले (मानुषान्) मनुष्यों को (अजीगः) प्राप्त होकर प्रसन्न करती है (तत्) सो तू (देवेषु) विद्वान् पतियों में वस कर (भद्रम्) कल्याण करने हारे (अप्नः) सन्तानों को उत्पन्न (चकृषे) किया कर ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य की संबन्धिनी प्रातःकाल की वेला सब प्राणियों के साथ संयुक्त होकर सब जीवों को सुखी करती है वैसे सज्जन विदुषी स्त्री अपने पतियों को प्रसन्न करती हुई उत्तम सन्तानों के उत्पन्न करने को समर्थ होती हैं इतर दुष्ट भार्य्या वैसा काम नहीं कर सकतीं ॥ ९ ॥

कियात्या यत्समया भवाति या व्यूषुर्याश्चं नूनं व्युच्छान् ।
अनु पूर्वाः कृपते वावशाना प्रदीध्याना जोषमन्याभिरेति ॥ १० ॥

पदार्थ— हे स्त्रि (यत्) जैसे (याः) जो (पूर्वाः) प्रथम गत हुई प्रभात वेला सब पदार्थों को (कियति) कितने (समया) समय (व्यूषुः) प्रकाश करती रहीं (याः, च) और जो (व्युच्छान्) स्थिर पदार्थों की (वावशाना) कामनासी करती (प्रदीध्याना) और प्रकाश करती हुई (कृपते) अनुग्रह करती (नूनम्) निश्चय से (आ, भवाति) अच्छे प्रकार होती अर्थात् प्रकाश करती उसके तुल्य यह दूसरी विद्यावती विदुषी (अन्याभिः) और स्त्रियों के साथ (जोषमन्वेति) प्रीति की अनुकूलता से प्राप्त होती है वैसे तू मुझ पति के साथ सदा वर्त्ता कर ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । [प्रश्न] कितने समय तक उषःकाल होता है, [उत्तर] सूर्य्योदय से पूर्व पांच घड़ी उषःकाल होता है, [प्रश्न] कौन स्त्री सुख को प्राप्त होती है, [उत्तर] जो अन्य विदुषी स्त्रियों और अपने पतियों के साथ सदा अनुकूल रहती हैं और वे स्त्री प्रशंसा को भी प्राप्त होती हैं जो कृपालु होती हैं, वे स्त्री पतियों को प्रसन्न करती हैं जो पतियों के अनुकूल वर्त्तती हैं वे सदा सुखी रहती हैं ॥१०॥

ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन्व्युच्छन्तीमुषसं मर्त्यासः ।
अस्माभिरू नु प्रतिचक्ष्याऽभूदो ते यन्ति ये अपरीषु पश्यान् ॥ ११॥

पदार्थ—(ये) जो (मर्त्यासः) मनुष्य लोग (व्युच्छन्तीम्) जगाती हुई (पूर्वतराम्) अति प्राचीन (उषसम्) प्रभात वेला को (ईयुः) प्राप्त होवें

वस्य) पृथिवी में प्रसिद्ध हुए (वस्वः) धन की (ईशाना) अच्छे प्रकार सिद्ध कराने वाली (व्युच्छन्ती) और नाना प्रकार के अन्धकारों को दूर करती हुई (एषा) यह (दिवः) सूर्य्य की (युवतीः) ज्वान अर्थात् अति पराक्रम वाली (दुहिता) पुत्री प्रभात वेला (प्रत्यदर्शि) वार वार देख पड़ती है वैसे हे (सुभगे) उत्तम भाग्यवती (उषः) सुख में निवास करने हारी विदुषी (अद्य) आज तू (इह) यहां (व्युच्छ) दुःखों को दूर कर ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जब ब्रह्मचर्य किया हुआ सन्मार्गस्थ ज्वान विद्वान् पुरुष अपने तुल्य अपने विद्यायुक्त ब्रह्मचारिणी सुन्दर रूप बल पराक्रम वाली साध्वी अच्छे स्वभावयुक्त सुख देनेहारी युवति अर्थात् वीसवें वर्ष से चौबीसवें वर्ष की आयु युक्त कन्या से विवाह करे तभी विवाहित स्त्री पुरुष उषा के समान सुप्रकाशित होकर सब सुखों को प्राप्त होवें ॥ ७ ॥

परायतीनामन्वेति पाथ आयतीनां प्रथमा शश्वतीनाम् ।
व्युच्छन्ती जीवमुदीरयन्त्युषा मृतं कं चन बोधयन्ती ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे उत्तम सौभाग्य बढ़ानेहारी स्त्री ! जैसे यह (उषाः) प्रभात वेला (शश्वतीनाम्) प्रवाहरूप से अनादिस्वरूप (परायतीनाम्) पूर्व व्यतीत हुई प्रभात वेलाओं के पीछे (आयतीनाम्) आने वाली वेलाओं में (प्रथमा) पहिली (व्युच्छन्ती) अन्धकार का विनाश करती और (जीवम्) जीव को (उदीरयन्ती) कामों में प्रवृत्त कराती हुई (कम्) किसी (चन) (मृतम्) मृतक के समान सोये हुए जन को (बोधयन्ती) जगाती हुई (पाथः) आकाश मार्ग को (अन्वेति) अनुकूलता से जाती है वैसे ही तू पतिव्रता हो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सौभाग्य की इच्छा करने वाली स्त्रीजन उषा के तुल्य भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान समयों में हुई उत्तम शील पतिव्रता स्त्रियों के सनातन वेदोक्त धर्म का आश्रय कर अपने अपने पति को सुखी करती और उत्तम शोभा वाली होती हुई सन्तानों को उत्पन्न कर और सब ओर से पालन करके उन्हें सत्य विद्या और उत्तम शिक्षाओं का बोध कराती हुई सदा आनन्द को प्राप्त करावें ॥ ८ ॥

उषो यदग्निं समिधे चकर्थ वि यदावश्चक्षसा सूर्य्यस्य ।
यन्मानुषान् यक्ष्यमाणाँ अजीगस्तद्देवेषु चकृषे भद्रमप्नः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (उषः) प्रभात वेला के समान वर्त्तमान विदुषि स्त्रि ! (यत्)

जो तू (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के (चक्षसा) प्रकाश से (समिधे) अच्छे प्रकार प्रकाश के लिये (अग्निम्) विद्युत् अग्नि को प्रदीप्त (चकर्थ) करती है वा (यत्) जो तू दुःखों को (वि, आवः) दूर करती वा (यत्) जो तू (यक्ष्यमाणान्) यज्ञ के करने वाले (मानुषान्) मनुष्यों को (अजीगः) प्राप्त होकर प्रसन्न करती है (तत्) सो तू (देवेषु) विद्वान् पतियों में वस कर (भद्रम्) कल्याण करने हारे (अप्नः) सन्तानों को उत्पन्न (चकृषे) किया कर ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य की संबन्धिनी प्रातःकाल की वेला सब प्राणियों के साथ संयुक्त होकर सब जीवों को सुखी करती है वैसे सज्जन विदुषी स्त्री अपने पतियों को प्रसन्न करती हुई उत्तम सन्तानों के उत्पन्न करने को समर्थ होती हैं इतर दुष्ट भार्य्या वैसा काम नहीं कर सकतीं ॥ ९ ॥

कियात्या यत्समया भवाति या व्यूषुर्याश्च नूनं व्युच्छान् ।
अनु पूर्वाः कृपते वावशाना प्रदीध्याना जोषमन्याभिरेति ॥ १० ॥

पदार्थ— हे स्त्रि (यत्) जैसे (याः) जो (पूर्वाः) प्रथम गत हुई प्रभात वेला सब पदार्थों को (कियति) कितने (समया) समय (व्यूषुः) प्रकाश करती रहीं (याः, च) और जो (व्युच्छान्) स्थिर पदार्थों की (वावशाना) कामनासी करती (प्रदीध्याना) और प्रकाश करती हुई (कृपते) अनुग्रह करती (नूनम्) निश्चय से (आ, भवाति) अच्छे प्रकार होती अर्थात् प्रकाश करती उसके तुल्य यह दूसरी विद्यावती विदुषी (अन्याभिः) और स्त्रियों के साथ (जोषमन्वेति) प्रीति की अनुकूलता से प्राप्त होती है वैसे तू मुझ पति के साथ सदा वर्त्ता कर ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । [प्रश्न] कितने समय तक उषःकाल होता है, [उत्तर] सूर्य्योदय से पूर्व पांच घड़ी उषःकाल होता है, [प्रश्न] कौन स्त्री सुख को प्राप्त होती है, [उत्तर] जो अन्य विदुषी स्त्रियों और अपने पतियों के साथ सदा अनुकूल रहती हैं और वे स्त्री प्रशंसा को भी प्राप्त होती हैं जो कृपालु होती हैं, वे स्त्री पतियों को प्रसन्न करती हैं जो पतियों के अनुकूल वर्त्तती हैं वे सदा सुखी रहती हैं ॥१०॥

ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन्व्युच्छन्तीमुषसं मर्त्यासः ।
अस्माभिरू नु प्रतिचक्ष्याऽभूदो ते यन्ति ये अपरीषु पश्यान् ॥ ११॥

पदार्थ—(ये) जो (मर्त्यासः) मनुष्य लोग (व्युच्छन्तीम्) जगाती हुई (पूर्वतराम्) अति प्राचीन (उषसम्) प्रभात वेला को (ईयुः) प्राप्त होवें

(ते) वे (अस्माभिः) हम लोगों के साथ सुख को (अपश्यन्) देखते हैं जो प्रभात वेला हमारे साथ (प्रतिचक्ष्या) प्रत्यक्ष से देखने योग्य (अभूत्) होती है वह (नु) शीघ्र सुख देने वाली होती है (उ) और (ये) जो (अपरीषु) आने वाली उषाओं में व्यतीत हुई उषा को (पश्यान्) देखें (ते) वे (ओ) हि सुख को (यन्ति) प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य उषा के पहिले शयन से उठ आवश्यक कर्म कर के परमेश्वर का ध्यान करते हैं वे बुद्धिमान् और धार्मिक होते हैं, जो स्त्री पुरुष परमेश्वर का ध्यान करके प्रीति से आपस में बोलते चालते हैं वे अनेक विध सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥

यावयद्द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः सुम्नावरी सूनृता ईरयन्ती ।
सुमङ्गलीर्बिभ्रती देववीतिमिहाद्योषः श्रेष्ठतमा व्युच्छ ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (उषः) उषा के वर्त्तमान विदुषी स्त्रि ! (यावयद्द्वेषाः) जिसने द्वेषयुक्त कर्म दूर किये (ऋतपाः) सत्य की रक्षक (ऋतेजाः) सत्य व्यवहार में प्रसिद्ध (सुम्नावरी) जिसमें प्रशंसित सुख विद्यमान वा (सुमङ्गलीः) जिन में सुन्दर मङ्गल होते उन (सूनृताः) वेदादि सत्यशास्त्रों की सिद्धान्तवाणियों को (ईरयन्ती) शीघ्र प्रेरणा करती हुई (श्रेष्ठतमा) अतिशय उत्तम गुण कर्म और स्वभाव से युक्त (देववीतिम्) विद्वानों की विशेष नीति को (बिभ्रती) धारण करती हुई तू (इह) यहाँ (अद्य) आज (व्युच्छ) दुःख को दूर कर ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रभात वेला अन्धकार का निवारण, प्रकाश का प्रादुर्भाव करा धार्मिकों को सुखी और चोरादि को पीड़ित करके सब प्राणियों को आनन्दित करती है वैसे ही विद्या धर्म प्रकाशवती शमादि गुणों से युक्त विदुषी उत्तम स्त्री अपने पतियों से सन्तानोत्पत्ति करके अच्छी शिक्षा से अविद्यान्धकार को छुड़ा विद्यारूप सूर्य को प्राप्त करा कुल को सुभूषित करें ॥ १२ ॥

शश्वत्पुरोषा व्युवास देव्यथो अद्येदं व्यावो मघोनी ।
अथो व्युच्छादुत्तराँ अनु द्यूनजरामृता चरति स्वधाभिः ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे स्त्रीजन ! (पुरा) प्रथम (देवी) अत्यन्त प्रकाशमान (मघोनी) प्रशंसित धन प्राप्ति करने वाली (अजरा) पूर्ण युवावस्थायुक्त (अमृताः) रोगरहित (उषाः) प्रभात वेला के समान (उवास) वास कर और (अथो) इस के अनन्तर जैसे प्रभात वेला (उत्तरान्) आगे आने वाले (अनु, द्यून्) दिनों के अनुकूल (स्वधाभिः) अपने आप धारण किये हुए पदार्थों के साथ (शश्वत्)

निरन्तर (वि, चरति) विचरती और अन्धकार को (वि, उच्छात्) दूर करती तथा (अद्य) वर्त्तमान दिन में (इदम्) इस जगत् की (व्यावः) विविध प्रकार से रक्षा करती है वैसे तू हो ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे स्त्रि ! जैसे प्रभात वेला कारण और प्रवाहरूप से नित्य हुई तीनों कालों में प्रकाश करने योग्य पदार्थों का प्रकाश करके वर्त्तमान रहती है वैसे आत्मपन से नित्यस्वरूप तू तीनों कालों में स्थित सत्य व्यवहारों को विद्या और सुशिक्षा से प्रकाश करके पुत्र पौत्र ऐश्वर्यादि सौभाग्ययुक्त हो के सदा सुखी हो ॥ १३ ॥

व्य१ञ्जिभिर्दिव आतास्वद्यौदप कृष्णां निर्णिजं देव्यावः ।
प्रबोधयन्त्यरुणेभिरश्वैरोषा याति सुयुजा रथेन ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे स्त्रीजनो ! तुम जैसे (प्रबोधयन्ती) सोतों को जगाती हुई (देवी) दिव्य गुणयुक्त (उषाः) प्रातः समय की वेला (अञ्जिभिः) प्रकट करने हारे गुणों के साथ (दिवः) आकाश से (आतासु) सर्वत्र व्याप्त दिशाओं में सब पदार्थों को (व्यद्यौत्) विशेष कर प्रकाशित करती (निर्णिजम्) वा निश्चित-रूप (कृष्णाम्) कृष्णवर्ण रात्रि को (अपावः) दूर करती वा (अरुणेभिः) रक्तादि गुणयुक्त (अश्वैः) व्यापनशील किरणों के साथ वर्त्तमान (सुयुजा) अच्छे युक्त (रथेन) रमणीय स्वरूप से (आ, याति) आती है उसके समान तुम लोग वर्त्ता करो ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रातःसमय की वेला दिशाओं में व्याप्त है वैसे कन्या लोग विद्याओं में व्याप्त होवें वा जैसे यह उषा अपनी कान्तियों से शोभायमान होकर रमणीय स्वरूप से प्रकाशमान रहती है वैसे यह कन्याजन अपने शील आदि गुण और सुन्दर रूप से प्रकाश-मान हों जैसे यह उषा अन्धकार का निवारण रूप प्रकाश को उत्पन्न करती है वैसे ये कन्या जन मूर्खता आदि का निवारण कर सुसभ्यतादि शुभ गुणों से सदा प्रकाशित रहें ॥ १४ ॥

आवहन्ती पोष्या वार्याणि चित्रं केतुं कृणुते चेकिताना ।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनां विभातीनां प्रथमोषा व्यश्वैत् ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे स्त्री लोगो ! तुम जैसे (उषाः) प्रातर्वेला (पोष्या) पुष्टि कराने और (वार्याणि) स्वीकार करने योग्य धनादि पदार्थों को (आवहन्ती) प्राप्त कराती और (चेकिताना) अत्यन्त चिताती हुई (चित्रम्) अद्भुत (केतुम्) किरण को (कृणुते) करती अर्थात् प्रकाशित करती है (विभातीनाम्) विशेष

कर प्रकाशित करती हुई सूर्य्यकान्तियों और (ईयुषीणाम्) चलती हुई (शश्वतीनाम्) अनादि रूप घड़ियों की (प्रथमा) पहिली (उपमा) दृष्टान्तरूप (व्यश्वैत्) व्याप्त होती है वैसे ही शुभ गुण कर्मों में (चरत) विचरा करो ॥ १५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग यह निश्चित जानो कि जैसे प्रातःकाल से आरंभ करके कर्म उत्पन्न होते हैं वैसे स्त्रियों के आरंभ से घर के कर्म हुआ करते हैं ॥ १५ ॥

उदी॑र्ध्वं जी॒वो असु॑र्न॒ आगा॒दप॒ प्रागा॒त्तम॒ आ ज्योति॑रेति ।
आरै॒क्पन्थां॒ यात॑वे॒ सूर्या॒याग॑न्म॒ यत्र॑ प्रति॒रन्त॒ आयुः॑ ॥ १६ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस उषा की उत्तेजना से (नः) हम लोगों का (जीवः) जीवन का धर्त्ता इच्छादिगुणयुक्त (असुः) प्राण (आ, अगात्) सब ओर से प्राप्त होता (ज्योतिः) प्रकाश (प्र, अगात्) प्राप्त होता (तमः) रात्रि (अप, एति) दूर हो जाती और (यातवे) जाने आने को (पन्थाम्) मार्ग (अरैक्) अलग प्रकट होता जिससे हम लोग (सूर्याय) सूर्य को (आ, अगन्) अच्छे प्रकार प्राप्त होते तथा (यत्र) जिस में प्राणी (आयुः) जीवन को (प्रतिरन्ते) प्राप्त होकर आनन्द से विताते हैं उसको जान कर (उदीर्ध्वम्) पुरुषार्थ करने में चेष्टा किया करो ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे यह प्रातःकाल की उषा सब प्राणियों को जगाती अन्धकार को निवृत्त करती है और जैसे सायंकाल की उषा सब को कार्य्यों से निवृत्त करके सुलाती है अर्थात् माता के समान सब जीवों को अच्छे प्रकार पालन कर व्यवहार में नियुक्त कर देती है वैसे ही सज्जन विदुषी स्त्री होती है ॥ १६ ॥

स्यूम॑ना वा॒च उदि॑यर्ति॒ वह्निः॒ स्तवा॑नो रे॒भ उ॒षसो॑ विभा॒तीः ।
अ॒द्या तदु॑च्छ गृण॒ते म॑घोन्य॒स्मे आयु॒र्नि दि॑दीहि प्र॒जाव॑त् ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे (मघोनि) प्रशंसित धनयुक्त स्त्री ! तू (अस्मे) हमारे और (गृणते) प्रशंसा करते हुए (पत्ये) पति के अर्थ जो (प्रजावत्) बहुत प्रजायुक्त (आयुः) जीव का हेतु अन्न है (तत्) वह (अद्य) आज (नि, दिदीहि) निरन्तर प्रकाशित कर जो तेरा (रेभः) बहुश्रुत (स्तवानः) गुण प्रशंसाकर्त्ता (वह्निः) अग्नि के समान निर्वाह करने हारा पति तेरे लिये (विभातीः) प्रकाशवती (उषसः) प्रभात वेलाओं को जैसे सूर्य वैसे (स्यूमना) सकल विद्याओं से युक्त प्रिय (वाचः) वेदवाणियों को (उत्, इयर्ति) उत्तमता से जानता है उस को तू (उच्छ) अच्छा निवास कराया कर ॥ १७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जब स्त्री पुरुष सुहृद्भाव से परस्पर विद्या और अच्छी शिक्षाओं को ग्रहण कर उत्तम अन्न धनादि वस्तुओं का संचय कर के सूर्य के समान धर्मन्याय का प्रकाश कर सुख में निवास करते हैं तभी गृहाश्रम के पूर्ण सुख को प्राप्त होते हैं ॥ १७ ॥

या गोमतीरुषसः सर्ववीरा व्युच्छन्ति दाशुषे मर्त्याय ।
वायोरिव सूनृतानामुदर्के ता अश्वदा अश्नवत्सोमसुत्वा ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग (याः) जो (सूनृतानाम्) श्रेष्ठ वाणी और अन्नादि की (उदर्के) उत्कृष्टता से प्राप्ति में (वायोरिव) जैसे वायु से (गोमतीः) बहुत गौ वा किरणों वाली (उषसः) प्रभात वेला वर्त्तमान हैं वैसे विदुषी स्त्री (दाशुषे) सुख देने वाले (मर्त्याय) मनुष्य के लिये (व्युच्छन्ति) दुःख दूर करतीं और (अश्वदाः) अश्व आदि पशुओं को देने वाली (सर्ववीराः) जिन के होते समस्त वीरजन होते हैं (ताः) उन विदुषी स्त्रियों को (सोमसुत्वा) ऐश्वर्य की सिद्धि करने हारा जन (अश्नवत्) प्राप्त होता है वैसे ही इनको प्राप्त होओ ॥ १८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । ब्रह्मचारी लोगों को योग्य है कि समावर्त्तन के पश्चात् अपने सदृश विद्या, उत्तम शीलता, रूप और सुन्दरता से सम्पन्न हृदय को प्रिय प्रभात वेला के समान प्रशंसित ब्रह्मचारिणी कन्याओं से विवाह करके गृहाश्रम में पूर्ण सुख करे ॥ १८ ॥

माता देवानामदितेरनीकं यज्ञस्य केतुर्बृहती वि भाहि ।
प्रशस्तिकृद् ब्रह्मणे नो व्यु१च्छा नो जने जनय विश्ववारे ॥ १९ ॥

पदार्थ—हे (विश्ववारे) समस्त कल्याण को स्वीकार करने हारी कुमारी ! (यज्ञस्य) गृहाश्रम व्यवहार में विद्वानों के सत्कारादि कर्म की (केतुः) जताने हारी पताका के समान प्रसिद्ध (अदितेः) उत्पन्न हुए सन्तान की रक्षा के लिये (अनीकम्) सेना के समान (प्रशस्तिकृत्) प्रशंसा करने और (बृहती) अत्यन्त सुख की बढ़ाने हारी (देवानाम्) विद्वानों की (माता) जननी हुई (ब्रह्मणे) वेदविद्या वा परमेश्वर के ज्ञान के लिये प्रभात वेला के समान (विभाहि) विशेष प्रकाशित हो (नः) हमारे (जने) कुटुम्बी जन में प्रीति को (आ, जनय) अच्छे प्रकार उत्पन्न किया कर और (नः) हम को सुख में (व्युच्छ) स्थिर कर ॥ १९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । सत्पुरुष को योग्य

है कि उत्तम विदुषी स्त्री के साथ विवाह करे जिससे अच्छे सन्तान हों और ऐश्वर्य नित्य बढ़ा करे क्योंकि स्त्रीसंबन्ध से उत्पन्न हुए दुःख के तुल्य इस संसार में कुछ भी बड़ा कष्ट नहीं है, उससे पुरुष सुलक्षणा स्त्री की परीक्षा करके पाणिग्रहण करे और स्त्री को भी योग्य है कि अतीव हृदय के प्रिय प्रशंसित रूप गुण वाले पुरुष ही का पाणिग्रहण करे ॥ १९ ॥

यच्चित्रमप्न उषसो वहन्तीजानाय शशमानाय भद्रम् ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥२०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**उषसः**) उषा के समान स्त्री (**शशमानाय**) प्रशंसित गुणयुक्त (**ईजानाय**) संगशील पुरुष के लिये और (**नः**) हमारे लिये (**यत्**) जो (**चित्रम्**) अद्भुत (**भद्रम्**) कल्याणकारी (**अप्नः**) सन्तान को (**वहन्ति**) प्राप्ति करातीं वा जिन स्त्रियों से (**मित्रः**) सखा (**वरुणः**) उत्तम पिता (**अदितिः**) श्रेष्ठ माता (**सिन्धुः**) समुद्र वा नदी (**पृथिवी**) भूमि (**उत**) और (**द्यौः**) विद्युत् वा सूर्यादि प्रकाशमान पदार्थ पालन करने योग्य है उन स्त्रियों वा (**तत्**) उस सन्तान को निरन्तर (**मामहन्ताम्**) उपकार में लगाया करो ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । श्रेष्ठ विद्वान् ही सन्तानों को उत्पन्न अच्छे प्रकार रक्षित और उन को अच्छी शिक्षा करके उनके बढ़ाने को समर्थ होते हैं, जो पुरुष स्त्रियों और जो स्त्री पुरुषों का सत्कार करती हैं उनके कुल में सब सुख निवास करते हैं और दुःख भाग जाते हैं ॥ २० ॥

इस सूक्त में रात्रि और प्रभात समय के गुणों का वर्णन और इन के दृष्टान्त से स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य कर्म का उपदेश किया है इससे इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त मे कहे अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ तेरहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

आङ्गिरसः कुत्स ऋषिः । रुद्रो देवता । १ जगती । २ । ७ निचृज्जगती । ३ । ६ । ८ । ९ विराड् जगती च छन्दः । निषादः स्वरः । ४ । ५ । ११ भुरिक् त्रिष्टुप् । १० निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः ।

यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् ॥१॥

पदार्थ—हम अध्यापक वा उपदेशक लोग (यथा) जैसे (द्विपदे) मनुष्यादि (चतुष्पदे) और गौ आदि के लिये (शम्) सुख (असत्) होवे (अस्मिन्) इस (ग्रामे) बहुत घरों वाले नगर आदि ग्राम में (विश्वम्) समस्त चराचर जीवादि (अनातुरम्) पीड़ारहित (पुष्टम्) पुष्टि को प्राप्त (असत्) हो तथा (तवसे) बलयुक्त (क्षयद्वीराय) जिस के दोषों के नाश करनेहारे वीर पुरुष विद्यमान (रुद्राय) उस चवालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य करने हारे (कपर्दिने) ब्रह्मचारी पुरुष के लिये (इमाः) प्रत्यक्ष आप्तों के उपदेश और वेदादि शास्त्रों के बोध से संयुक्त (मतीः) उत्तम प्रज्ञाओं को (प्र, भरामहे) धारण करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—अत्रोपमालङ्कारः । जब आप्त सत्यवादी धर्मात्मा वेदों के ज्ञाता पढ़ाने और उपदेश करनेहारे विद्वान् तथा पढ़ाने और उपदेश करनेहारी स्त्री उत्तम शिक्षा से ब्रह्मचारी और श्रोता पुरुषों तथा ब्रह्मचारिणी और सुननेहारी स्त्रियों को विद्यायुक्त करते हैं तभी ये लोग शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त हो कर सब संसार को सुखी कर देते हैं ॥ १ ॥

मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते ।
यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (रुद्र) दुष्ट शत्रुओं को रुलानेहारे राजन् ! जो हम (क्षयद्वीराय) विनाश किये शत्रु सेनास्थ वीर जिसने उस (ते) आप के लिये (नमसा) अन्न वा सत्कार से (विधेम) विधान करें अर्थात् सेवा करें उन (नः) हम लोगों को तुम (मृड) सुखी कर और (नः) हम लोगों के लिये (मयः) सुख (कृधि) कीजिये हे (रुद्र) न्यायाधीश (मनुः) मननशील (पिता) पिता के समान आप (यत्) जो रोगों का (शम्) निवारण (च) ज्ञान (योः) दुःखों का अलग करना (च) और गुणों की प्राप्ति का (आयेजे) सब प्रकार सङ्ग कराते हो (तत्) उस को (अश्याम) प्राप्त होवें (उत) वे ही हम लोग (तव) तुम्हारी (प्रणीतिषु) उत्तम नीतियों में प्रवृत्त होकर निरन्तर सुखी होवें ॥ २ ॥

भावार्थ—राजपुरुषों को योग्य है कि स्वयं सुखी होकर सब प्रजाओं को सुखी करें इस काम में आलस्य कभी न करें और प्रजाजन राजनीति के नियम में वर्त के राजपुरुषों को सदा प्रसन्न रक्खें ॥ २ ॥

अश्याम ते सुमतिं देवयज्यया क्षयद्वीरस्य तव रुद्र मीढ्वः ।
सुम्नायन्निद्विशो अस्माकमा चरारिष्टवीरा जुहवाम ते हविः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (मीढ्वः) प्रजा को सुख से सींचने और (रुद्र) सत्योपदेश करने वाले सभाध्यक्ष राजन् ! हम लोग (देवयज्यया) विद्वानों की संगति और

सत्कार से (क्षयद्वीरस्य) वीरों का निवास कराने हारे (तव) तेरी (सुमतिम्) श्रेष्ठ प्रज्ञा को (अश्याम) प्राप्त होवें जो (सुम्नायन्)सुख कराता हुआ तू (अस्माकम्) हमारी (अरिष्टवीरा) हिंसारहित वीरों वाली (विशः) प्रजाओं को (आ, चर) सब ओर से प्राप्त हो उस (ते) तेरी प्रजाओं को हम लोग (इत्) भी प्राप्त हों और (ते) तेरे लिये (हविः) देने योग्य पदार्थ को (जुहवाम) दिया करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—राजा को योग्य है कि प्रजाओं को निरन्तर प्रसन्न रक्खें और प्रजाओं को उचित है कि राजा को आनन्दित करें जो राजा प्रजा से कर ले कर पालन न करे तो वह राजा डाकुओं के समान जानना चाहिये जो पालन की हुई प्रजा राजभक्त न हों वे भी चोर के तुल्य जाननी चाहियें इसीलिये प्रजा राजा को कर देती है कि जिससे यह हमारा पालन करे और राजा इसलिये पालन करता है कि जिससे प्रजा मुझ को कर देवें ॥ ३ ॥

त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं वङ्कुं कविमवसे नि ह्वयामहे ।
आरे अस्मद्दैव्यं हेळो अस्यतु सुमतिमिद्वयमस्या वृणीमहे ॥ ४ ॥

पदार्थ—(वयम्) हम लोग (अवसे) रक्षाआदि केलिये जिस (त्वेषम्) विद्या न्याय प्रकाशवान् (वङ्कुम्) दुष्ट शत्रुओं के प्रति कुटिल (कविम्) समस्त शास्त्रों को क्रम क्रम से देखने और (यज्ञसाधम्) प्रजापालनरूप यज्ञ को सिद्ध करनेहारे ((दैव्यम्) विद्वानों में कुशल (रुद्रम्) शत्रुओं के रोकने हारे को (नि, ह्वयामहे) अपना सुख दुःख का निवेदन करें तथा (वयम्) हम लोग जिस (अस्य) इस रुद्र की (सुमतिम्) धर्मानुकूल उत्तम प्रजा को (आ, वृणीमहे) सब ओर से स्वीकार करें (इत्) वही सभाध्यक्ष (हेडः) धार्मिक जनों का अनादर करनेहारे अधार्मिक जनों को (अस्मत्) हम से (आरे) दूर (अस्यतु) निकाल देवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—जैसे प्रजाजन राजा को स्वीकार करते हैं वैसे राजपुरुष भी प्रजा की आज्ञा को माना करें ॥ ४ ॥

दिवो वराहमरुषं कपर्दिनं त्वेषं रूपं नमसा नि ह्वयामहे ।
हस्ते बिभ्रद् भेषजा वार्याणि शर्म वर्म छर्दिरस्मभ्यं यंसत् ॥ ५ ॥

पदार्थ—हम लोग (नमसा) अन्न और सेवा से जो (हस्ते) हाथ में (भेषजा) रोग निवारक औषध (वार्य्याणि) और ग्रहण करने योग्य साधनों को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (शर्म्म) घर, सुख (वर्म्म) कवच (छर्दिः) प्रकाशयुक्त शस्त्र और अस्त्रादि को (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (यंसत्) नियम से

रक्खे उस (कपर्दिनम्) जटाजूट ब्रह्मचारी वैद्य विद्वान् वा (दिवः) विद्यान्याय-प्रकाशित व्यवहारों वा (वराहम्) मेघ के तुल्य (अरुषम्) घोड़े आदि की (त्वेषम्) वा प्रकाशमान (रूपम्) सुन्दर रूप की (निह्वयामहे) नित्य स्पर्द्धा करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य वैद्य के मित्र पथ्यकारी जितेन्द्रिय उत्तम शील वाले होते हैं वे ही इस जगत् में रोगरहित और राज्यादि को प्राप्त होकर सुख को बढ़ाते हैं ॥ ५ ॥

इदं पित्रे मरुतांमुच्यते वचः स्वादोः स्वादीयो रुद्राय वर्धनम् ।
रास्वा च नो अमृत मर्त्तभोजनं त्मने तोकाय तनयाय मृळ ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (अमृत) मरण दुःख दूर कराने तथा आयु बढ़ानेहारे वैद्यराज वा उपदेशक विद्वान् ! आप (नः) हमारे (त्मने) शरीर (तोकाय) छोटे छोटे बाल बच्चे (तनयाय) ज्वान बेटे (च) और सेवक वैतनिक वा आयुधिक भृत्य अर्थात् चाकरों के लिये (स्वादोः) स्वादिष्ट से (स्वादीयः) स्वादिष्ठ अर्थात् सब प्रकार स्वादु वाला जो खाने में बहुत अच्छा लगे उस (मर्त्यभोजनम्) मनुष्यों के भोजन करने के पदार्थ को (रास्व) देओ जो (इदम्) यह (मरुताम्) ऋतु ऋतु में यज्ञ करनेहारे विद्वानों को (वर्द्धनम्) बढ़ाने वाला (वचः) वचन (पित्रे) पालना करने (रुद्राय) और दुष्टों को रुलानेहारे सभाध्यक्ष के लिये (उच्यते) कहा जाता है उससे हम लोगों को (मृड) सुखी कीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—वैद्य और उपदेश करने वाले को यह योग्य है कि आप नीरोग और सत्याचारी होकर सब मनुष्यों के लिये औषध देने और उपदेश करने से उपकार कर सब की निरन्तर रक्षा करें ॥ ६ ॥

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥७॥

पदार्थ—(रुद्र) न्यायाधीश दुष्टों को रुलाने हारे सभापति (नः) हम लोगों में से (महान्तम्) बुड्ढे वा पढ़े लिखे मनुष्य को (मा) मत (वधीः) मारो (उत) और (नः) हमारे (अर्भकम्) बालक को (मा) मत मारो (नः) हमारे (उक्षन्तम्) स्त्रीसङ्ग करने में समर्थ युवावस्था से परिपूर्ण मनुष्य को (मा) मत मारो (उत) और (नः) हमारे (उक्षितम्) वीर्यसेचन से स्थित हुए गर्भ को (मा) मत मारो (नः) हम लोगों के (पितरम्) पालने और उत्पन्न करनेहारे पिता वा उपदेश करने वाले को (मा) मत मारो (उत) और (मातरम्) मान सन्मान और उत्पन्न करनेहारी माता वा विदुषी स्त्री का (मा)

मत मारो (नः) हम लोगों की (प्रियाः) स्त्री आदि के पियारे (तन्वः) शरीरों को (मा) मत मारो और अन्यायकारी दुष्टों को (रीरिषः) मारो ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे ईश्वर पक्षपात को छोड़ के धार्मिक सज्जनों को उत्तम कर्मों के फल देने से सुख देता और पापियों को पाप का फल देने से पीड़ा देता है वैसे ही तुम लोग भी अच्छा यत्न करो ॥ ७ ॥

मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः।
वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (रुद्र) दुष्टों को रुलानेहारे सभापति ! (हविष्मन्तः) जिन के प्रशंसायुक्त संसार के उपकार करने के काम हैं वे हम लोग जिस कारण (सदम्) स्थिर वर्त्तमान ज्ञान को प्राप्त (त्वाम् इत्) आपही को (हवामहे) अपना करते हैं इससे (भामितः) क्रोध को प्राप्त हुए आप (नः) हम लोगों के (तोके) शीघ्र उत्पन्न हुए बालक वा (तनये) बालिकाई से जो ऊपर है उस बालक में (मा) (रीरिषः) घात मत करो (नः) हम लोगों के (आयौ) जीवन विषय में (मा) मत हिंसा करो (नः) हम लोगों के (गोषु) गौ आदि पशुसंघात में (मा) मत घात करो (नः) हम लोगों के (अश्वेषु) घोड़ों में (मा) घात मत करो (नः) हमारे (वीरान्) वीरों को (मा) मत (वधीः) मारो ॥ ८ ॥

भावार्थ—क्रोध को प्राप्त हुए सज्जन राजपुरुषों को किसी का अन्याय से हनन न करना चाहिये और गौ आदि पशुओं की सदा रक्षा करनी चाहिये । प्रजाजनों को भी राजा के आश्रय से ही निरन्तर आनन्द करना चाहिये और सबों को मिलकर ईश्वर की ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये कि हे परमेश्वर आप की कृपा से हम लोग बाल्यावस्था में विवाह आदि बुरे काम करके पुत्रादिकों का विनाश कभी न करें और वे पुत्र आदि भी हम लोगों के विरुद्ध काम को न करें । तथा संसार का उपकार करने हारे गो आदि पशुओं का भी विनाश न करें ॥ ८ ॥

उप ते स्तोमान् पशुपाइवाकरं रास्वा पितर्मरुतां सुम्नमस्मे ।
भद्रा हि ते सुमतिर्मृळयत्तमाथा वयमव इत्ते वृणीमहे ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (मरुताम्) ऋतु ऋतु में यज्ञ करानेहारे की (पितः) पालना करते हुए दुष्टों को रुलाने हारे सभापति ! (हि) जिस कारण मैं (पशुपा इव) जैसे पशुओं को पालने हारा चरवाहा अहीर गौ आदि पशुओं से दूध, दही, घी, मट्ठा आदि ले के पशुओं के स्वामी को देता है वैसे (स्तोमान्) प्रशंसनीय रत्न आदि पदार्थों को (ते) आपके लिये (उप, आ, अकरम्) आगे करता हूँ इस कारण आप (अस्मे)

मेरे लिये (सुम्नम्) सुख (रास्व) देओ (अथ) इस के अनन्तर जो (ते) आप की (मृडयत्तमा) सब प्रकार से सुख करनेवाली (भद्रा) सुखरूप (सुमतिः) श्रेष्ठ मति और जो (ते) आप का (अवः) रक्षा करना है उस मति और रक्षा करने को (वयम्) हम लोग जैसे (वृणीमहे) स्वीकार करते हैं (इत्) वैसे ही आप भी हम लोगों का स्वीकार करें ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । प्रजा-पुरुष राजपुरुषों से राजनीति और राजपुरुष प्रजापुरुषों से प्रजा व्यवहारको जान जानने योग्य को जाने हुए सनातन धर्म का आश्रय करें ॥ ९ ॥

आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नं क्षयद्वीर सुम्नमस्मे ते अस्तु ।
मृळा च नो अधि च ब्रूहि देवाधा च नः शर्म यच्छ द्विबर्हाः ॥१०॥

पदार्थ—हे (क्षयद्वीर) शूरवीर जनों का निवास कराने और (देव) दिव्य अच्छे अच्छे कर्म करने हारे विद्वान् सभापति ! (पुरुषघ्नम्) पुरुषों को मारने (च) और (गोघ्नम्) गौ आदि उपकार करने हारे पशुओं के विनाश करने वाले प्राणी को निवार करके (ते) आप के (च) और (अस्मे) हम लोगों के लिये (सुम्नम्) सुख (अस्तु) हो (अधा) इसके अनन्तर (नः) हम लोगों को (मृड) सुखी कीजिये (च) और मैं आप को सुख देऊं आप हम लोगों को (अधिब्रूहि) अधिक उपदेश देओ (च) और मैं आपको अधिक उपदेश करूं (द्विबर्हाः) व्यवहार और परमार्थ के बढ़ाने वाले आप (नः) हम लोगों के लिये (शर्म्म) घर का सुख (यच्छ) दीजिये (च) और आप के लिये मैं सुख देऊं सब हम लोग धर्मात्माओं के (आरे) निकट और दुराचारियों से दूर रहें ॥ १० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि यत्न के साथ पशु और मनुष्यों के विनाश करनेहारे दुराचारियों से दूर रहें और अपने से उन का दूर निवास करावें । राजा और प्रजाजनों को परस्पर एक दूसरे से उपदेश कर सभा बना और सब की रक्षा कर व्यवहार और परमार्थ का सुख सिद्ध करना चाहिये ॥ १० ॥

अवोचाम नमो अस्मा अवस्यवः शृणोतु नो हवं रुद्रो मरुत्वान् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥११॥

पदार्थ—(अवस्यवः) अपनी रक्षा चाहते हुए हम लोग (अस्मै) इस मान करने योग्य सभाध्यक्ष के लिये (नमः) "नमस्ते" ऐसे वाक्य को (अवोचाम) कहें और वह (मरुत्वान्) बलवान् (रुद्रः) विद्या पढ़ा हुआ सभापति (तत्) उस (नः) हमारे (हवम्) बुलानेरूप प्रशंसावाक्य को (शृणोतु) सुने हे मनुष्यो !

जो (नः) हमारे "नमस्ते" शब्द को (मित्रः) प्राण (वरुणः) श्रेष्ठ विद्वान् (अदितिः) अन्तरिक्ष (सिन्धुः) समुद्र (पृथिवी) पृथिवी (उत) और (द्यौः) प्रकाश बढ़ाते हैं अर्थात् उक्त पदार्थों को जाननेहारे सभापति को वार वार "नमस्ते" शब्द कहा जाता उसको आप (मामहन्ताम्) वार वार प्रशंसायुक्त करें ॥ ११ ॥

भावार्थ—प्रजापुरुषों को राजा लोगों के प्रिय आचरण नित्य करने चाहियें और राजा लोगों को प्रजाजनों के कहे वाक्य सुनने योग्य हैं ऐसे सब राजा प्रजा मिलकर न्याय की उन्नति और अन्याय को दूर करें ॥११॥

इस सूक्त में ब्रह्मचारी, विद्वान्, सभाध्यक्ष और सभासद् आदि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त में कहे अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ एकता जानने योग्य है ॥

यह एकसौ चौदहवां सूक्त पूरा हुआ ॥

आङ्गिरसः कुत्स ऋषिः । सूर्योदेवता । १ । २ । ६ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् । ४ । ५ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

चित्रं देवानामुद॑गादनी॑कं चक्षु॑र्मित्रस्य॒ वरु॑णस्याग्नेः ।

आप्रा॒ द्यावा॑पृथिवी अ॒न्तरि॑क्षं॒ सूर्य॑ आ॒त्मा जग॑तस्त॒स्थुष॑श्च ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**अनीकम्**) नेत्र से नहीं देखने में आता तथा (**देवानाम्**) विद्वान् और अच्छे अच्छे पदार्थों वा (**मित्रस्य**) मित्र के समान वर्त्तमान सूर्य वा (**वरुणस्य**) आनन्द देने वाले जल चन्द्रलोक और अपनी व्याप्ति आदि पदार्थों वा (**अग्नेः**) बिजुली आदि अग्नि वा और सब पदार्थों का (**चित्रम्**) अद्भुत (**चक्षुः**) दिखाने वाला है वह ब्रह्म (**उद्गात्**) उत्कर्षता से प्राप्त है। जो जगदीश्वर (**सूर्य्यः**) सूर्य्य के समान ज्ञान का प्रकाश करने वाला विज्ञान से परिपूर्ण (**जगतः**) जङ्गम (**च**) और (**तस्थुषः**) स्थावर अर्थात् चराचर जगत् का (**आत्मा**) अन्तर्यामी अर्थात् जिसने (**अन्तरिक्षम्**) आकाश (**द्यावा-पृथिवी**) प्रकाश और भूमिलोक को (**आ, अप्राः**) अच्छे प्रकार परिपूर्ण किया अर्थात् उनमें आप भर रहा है उसी परमात्मा की तुम लोग उपासना करो ॥ १ ॥

भावार्थ—जो देखने योग्य परिमाण वाला पदार्थ है वह परमात्मा होने को योग्य नहीं। न कोई भी उस अव्यक्त सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर के विना समस्त जगत् को उत्पन्न कर सकता है और न कोई सर्वव्यापक सच्चिदानन्दस्वरूप अनन्त अन्तर्यामी चराचर जगत् के आत्मा परमेश्वर के विना संसार के धारण करने, जीवों को पाप और पुण्यों को साक्षीपन और उन

के अनुसार जीवों को सुख दुःख रूप फल देने को योग्य है न इस परमेश्वर की उपासना के विना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के पाने को कोई जीव समर्थ होता है इस से यही परमेश्वर उपासना करने योग्य इष्टदेव सब को मानना चाहिये ॥ १ ॥

सूर्यो॑ दे॒वीमु॒षसं॒ रोच॑मानां॒ मर्यो॒ न योषा॑म॒भ्ये॑ति प॒श्चात् ।
यत्रा॒ नरो॑ देव॒यन्तो॑ यु॒गानि॑ वितन्व॒ते प्रति॑ भ॒द्राय॑ भ॒द्रम् ॥ २ ॥

पदार्थ हे मनुष्यो ! जिस ईश्वर ने उत्पन्न करके (कक्षा) नियम में स्थापन किया यह (सूर्य्यः) सूर्य्यमण्डल (रोचमानाम्) रुचि कराने (देवीम्) और सब पदार्थों को प्रकाशित करनेहारी (उषसम्) प्रातःकाल की वेला को उसके होने के (पश्चात्) पीछे जैसे (मर्य्यः) पति (योषाम्) अपनी स्त्री को प्राप्त हो (न) वैसे (अभ्येति) सब ओर से दौड़ा जाता है (यत्र) जिस विद्यमान सूर्य्य में (देवयन्तः) मनोहर चाल चलन से सुन्दर गणितविद्या को जानते जनाते हुए (नरः) ज्योतिष विद्या के भावों को दूसरों की समझ में पहुँचाने हारे ज्योतिषी जन (युगानि) पांच पांच संवत्सरों की गणना से ज्योतिष में युग वा सत्ययुग त्रेतायुग द्वापरयुग और कलियुग को जान (भद्राय) उत्तम सुख के लिये (भद्रम्) उस उत्तम सुख के (प्रति, वितन्वते) प्रति विस्तार करते हैं उसी परमेश्वर को सब का उत्पन्न करने हारा तुम लोग जानो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे विद्वानो ! तुम लोगों से जिस ईश्वर ने सूर्य्य को बनाकर प्रत्येक ब्रह्माण्ड में स्थापन किया उसके आश्रय से गणित आदि समस्त व्यवहार सिद्ध होते हैं वह ईश्वर क्यों न सेवन किया जाये ॥ २ ॥

भ॒द्रा अश्वा॑ ह॒रितः॒ सूर्य॑स्य चि॒त्रा एत॑ग्वा अनु॒माद्या॑सः ।
न॒म॒स्यन्तो॑ दि॒व आ पृ॒ष्ठम॑स्थुः॒ परि॒ द्यावा॑पृथि॒वी य॑न्ति स॒द्यः ॥ ३ ॥

पदार्थ—(भद्राः) सुख के कराने हारे (अनुमाद्यासः) आनन्द करने के गुण से प्रशंसा के योग्य (नमस्यन्तः) सत्कार करते हुए विद्वान् जन जो (सूर्य्यस्य) सूर्य्यलोक की (चित्राः) चित्र विचित्र (एतग्वाः) इन प्रत्यक्ष पदार्थों को प्राप्त होती हुई (अश्वाः) बहुत व्याप्त होने वाली किरणें (हरितः) दिशा और (द्यावा-पृथिवी) आकाश भूमि को (सद्यः) शीघ्र (परि, यन्ति) सब ओर से प्राप्त होती (दिवः) तथा प्रकाशित करने योग्य पदार्थ के (पृष्ठम्) पिछले भाग पर (आ, अस्थुः) अच्छे प्रकार ठहरती हैं उन को विद्या से उपकार में लाओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि श्रेष्ठ पढ़ाने वाले शास्त्रवेत्ता

विद्वानों को प्राप्त हो उन का सत्कार कर उन से विद्या पढ़ गणित आदि क्रियाओं की चतुराई को ग्रहण कर सूर्यसम्बन्धि व्यवहारों का अनुष्ठान कर कार्यसिद्धि करें ॥ ३ ॥

तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं संजभार ।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यदा) जब (तत्) वह पहिले मन्त्र में कहा हुआ (सूर्य्यस्य) सूर्यमण्डल के (मध्या) बीच में (विततम्) व्याप्त ब्रह्म इस सूर्य्य के (देवत्वम्) प्रकाश (महित्वम्) बड़प्पन (कर्त्तोः) और काम का (संजभार) संहार करता अर्थात् प्रलय समय सूर्य्य के समस्त व्यवहार को हर लेता (आत्) और फिर जब सृष्टि को उत्पन्न करता है तब सूर्य्य को (अयुक्त) युक्त अर्थात् उत्पन्न करता और नियत कक्षा में स्थापन करता है सूर्य्य (सधस्थात्) एक स्थान से (हरितः) दिशाओं को अपनी किरणों से व्याप्त होकर (सिमस्मै) समस्त लोक के लिये (वासः) अपने निवास का (तनुते) विस्तार करता तथा जिस ब्रह्म के तत्व से (रात्री) रात्री होती है (तत्, इत्) उसी ब्रह्म की उपासना तुम लोग करो तथा उसी को जगत् का कर्त्ता जानो ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे सज्जनो ! यद्यपि सूर्य्य आकर्षण से पृथिवी आदि पदार्थों का धारण करता है, पृथिवी आदि लोकों से बड़ा भी वर्त्तमान है, संसार का प्रकाश कर व्यवहार भी कराता है तो भी यह सूर्य्य परमेश्वर के उत्पादन धारण और आकर्षण आदि गुणों के विना उत्पन्न होने, स्थिर रहने और पदार्थों का आकर्षण करने को समर्थ नहीं हो सकता, न इस ईश्वर के विना ऐसे ऐसे लोक लोकान्तरों की रचना धारणा और इन के प्रलय करने को कोई समर्थ होता है ॥ ४ ॥

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे ।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः संभरन्ति ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जिस के सामर्थ्य से (मित्रस्य) प्राण और (वरुणस्य) उदान का (अभिचक्षे) संमुख दर्शन होने के लिये (द्योः) प्रकाश के (उपस्थे) समीप में ठहराया हुआ (सूर्य्यः) सूर्य्यलोक अनेक प्रकार (रूपम्) प्रत्यक्ष देखने योग्य रूप को (कृणुते) प्रकट करता है (अस्य) इस सूर्य के (अन्यत्) सब से अलग (रुशत्) लाल आग के समान जलते हुए (पाजः) बल तथा रात्रि के (अन्यत्) अलग (कृष्णम्) काले काले अन्धकार रूप को

(हरितः) दिशा विदिशा (सं, भरन्ति) धारण करती हैं (तत्) उस (अनन्तम्) देश काल और वस्तु के विभाग से शून्य परब्रह्म का सेवन करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—जिस के सामर्थ्य से रूप दिन और रात्रि की प्राप्ति का निमित्त सूर्य श्वेत कृष्ण रूप के विभाग से दिन रात्रि को उत्पन्न करता है उस अनन्त परमेश्वर को छोड़ कर किसी और की उपासना मनुष्य नहीं करें, यह विद्वानों को निरन्तर उपदेश करना चाहिये ॥ ५ ॥

अद्या देवा उदिता सूर्य्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥६॥

पदार्थ—हे (देवाः) विद्वानो ! (सूर्य्यस्य) समस्त जगत् को उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर की उपासना से (उदिता) उदय अर्थात् सब प्रकार से उत्कर्ष की प्राप्ति में प्रकाशमान हुए तुम लोग (निः) निरन्तर (अवद्यात) निन्दित (अंहसः) पाप आदि कर्म से (निष्पिपृत) निर्गत होओ अर्थात् अपने आत्मा मन और शरीर आदि को दूर रक्खो तथा जिस को (मित्रः) प्राण (वरुणः) उदान (अदितिः) अन्तरिक्ष (सिन्धु :) समुद्र (पृथिवी) पृथिवी (उत) और (द्यौः) प्रकाश आदि पदार्थ सिद्ध करते हैं (तत्) वह वस्तु वा कर्म (नः) हम लोगों को सुख देता है उस को तुम लोग (अद्य) आज (मामहन्ताम्) वार वार प्रशंसित करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि पाप से दूर रह धर्म का आचरण और जगदीश्वर की उपासना कर शान्ति के साथ धर्म. अर्थ, काम और मोक्ष की परिपूर्ण सिद्धि करें ॥ ६ ॥

इस सूक्त में सूर्य्य शब्द से ईश्वर और सूर्य्यलोक के अर्थ का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ एकता है यह जानना चाहिये ।

यह एकसौ पन्द्रहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

कक्षीवानृषिः । अश्विनौ देवते । १ । १० । २२ । २३ विराट्त्रिष्टुप् । २ । ८ । ९ । १२—१५ । १८ । २० । २४ । २५ निचृत्त्रिष्टुप् । ३—५ । ७ । २१ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ६ । १६ । १९ भुरिक्पङ्क्तिः । ११ पङ्क्तिः । १७ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

नासत्याभ्यां बर्हिरिव प्र वृञ्जे स्तोमाँ इयर्म्यभ्रियेव वातः ।
यावर्भगाय विमदाय जायां सेनाजुवा न्यूहतू रथेन ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (नासत्याभ्याम्) सच्चे पुण्यात्मा शिल्पी अर्थात् कारीगरों ने जोड़े हुये (रथेन) विमानादि रथ से (यौ) जो (सेनाजुवा) वेग के साथ सेना को चलाने हारे दो सेनापति (अर्भगाय) छोटे बालक वा (विमदाय) विशेष जिससे आनन्द होवे उस ज्वान के लिये (जायाम्) स्त्री के समान पदार्थों को (न्यूहतुः) निरन्तर एक देश से दूसरे देश को पहुँचाते हैं वैसे अच्छा यत्न करता हुआ मैं (स्तोमान्) मार्ग के सूधे होने के लिये बड़े बड़े पृथिवी पर्वत आदि को (बर्हिरिव) बढ़े हुए जल को जैसे वैसे (प्र, वृञ्जे) छिन्न भिन्न करता तथा (वातः) पवन जैसे (अभ्रियेव) बद्दलों को प्राप्त हो वैसे एक देश को (इयर्मि) जाता हूँ ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । रथ आदि यानों में उपकारी किए पृथिवीविकार जल और अग्नि आदि पदार्थ क्या-क्या अद्भुत कार्यों को सिद्ध नहीं करते हैं ? ॥ १ ॥

वीळुपत्मभिराशुहेमभिर्वा देवानां वा जूतिभिः शाशदाना ।
तद्रासभो नासत्या सहस्रमाजा यमस्य प्रधने जिगाय ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (शाशदाना) पदार्थों को यथायोग्य छिन्न भिन्न करनेहारे (नासत्या) सत्यस्वभावी सभापति और सेनापति ! आप जैसे (वीडुपत्मभिः) बल से गिरते और (आशुहेमभिः) शीघ्र पहुँचाते हुए पदार्थों से (वा) अथवा (देवानाम्) विद्वानों की (जूतिभिः) जिन से अपना चाहा हुआ काम मिले सिद्ध हो उन युद्ध की क्रियाओं से (वा) निश्चय कर अपने कामों को निरन्तर तर्क वितर्क से सिद्ध करते हों वैसे (तत्) उस आचरण को करता हुआ (रासभः) कहे हुये उपयोग को जो प्राप्त उस पृथिवी आदि पदार्थसमूह के समान पुरुष (प्रधने) उत्तम उत्तम गुण जिस में प्राप्त होते उस (आजा) संग्राम में (यमस्य) समीप आये हुये मृत्यु के समान शत्रुओं के (सहस्रम्) असंख्यात वीरों को (जिगाय,) जीते ॥ २ ॥

भावार्थ—जैसे अग्नि वा जल वन वा पृथिवी को प्रवेश कर उस को जलाता वा छिन्न भिन्न करता है वैसे अत्यन्त वेग करने हारे विजुली आदि पदार्थों से किये हुए शस्त्र और अस्त्रों से शत्रु जन जीतने चाहियें ॥ २ ॥

तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघे रयिं न कश्चिन् ममृवाँ अवाहाः ।
तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (अश्विना) पवन और बिजुली के समान बलवान् सेनाधीशो ! तुम (तुग्रः) शत्रुओं को मारने वाला सेनापति शत्रुजन के मारने के लिये जिस (भुज्युम्) राज्य की पालना करने वा सुख भोगने हारे पुरुष को (उदमेघे) जिस के जलों से संसार सींचा जाता है उस समुद्र में जैसे (कश्चित्) कोई (ममृवान्) मरता हुआ (रयिम्) धन को छोड़े (न) वैसे (अवाहाः) छोड़ता है (तम्, ह) उसी को (अपोदकाभिः) जल जिन में आते जाते (अन्तरिक्षप्रुद्भिः) अवकाश में चलती हुई (आत्मन्वतीभिः) और प्रशंसायुक्त विचार वाले क्रिया करने में चतुर पुरुष जिन में विद्यमान उन (नौभिः) नावों से (ऊहथुः) एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँचाओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—जैसे कोई मरण चाहता हुआ मनुष्य धन पुत्र आदि के मोह से छूट के शरीर से निकल जाता है वैसे युद्ध चाहते हुए शूरों को अनुभव करना चाहिये। जब मनुष्य पृथिवी के किसी भाग से किसी भाग को समुद्र उतर कर शत्रुओं के जीतने को जाया चाहें तब पुष्ट बड़ी बड़ी कि जिनमें भीतर जल न जाता हो और जिन में आत्मज्ञानी विचार वाले पुरुष बैठे हों और जो शस्त्र अस्त्र आदि युद्ध की सामग्री से शोभित हों उन नावों के साथ जावें ॥ ३ ॥

तिस्रः क्षपस्त्रिरहातिव्रजद्भिर्नासत्या भुज्युमूहथुः पतङ्गैः ।
समुद्रस्य धन्वन्नार्द्रस्य पारे त्रिभी रथैः शतपद्भिः षडश्वैः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (नासत्या) सत्य से परिपूर्ण सभापति और सेनापति ! तुम दोनों (तिस्रः) तीन (क्षपः) रात्रि (अहा) तीन दिन (अतिव्रजद्भिः) अतीव चलते हुए पदार्थ (पतङ्गैः) जो कि घोड़े के समान वेग वाले हैं उन के साथ वर्त्तमान (षडश्वैः) जिन में जल्दी लेजाने हारे छः कलों के घर विद्यमान उन (शतपद्भिः) सैकड़ों पग के समान वेगयुक्त (त्रिभिः) भूमि अन्तरिक्ष और जल में चलने हारे (रथैः) रमणीय सुन्दर मनोहर विमान आदि रथों से (भुज्युम्) राज्य की पालना करने वाले को (समुद्रस्य) जिस में अच्छे प्रकार परमाणुरूप जल जाते हैं उस अन्तरिक्ष वा (धन्वन्) जिसमें बहुत बालू है उस भूमि वा (आर्द्रस्य) कीच के सहित जो समुद्र उस के (पारे) पार में (त्रिः) तीन वार (ऊहथुः) पहुंचाओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—आश्चर्य इस बात का है कि मनुष्य जो तीन दिन रात्रि में

समुद्र आदि स्थानों के अवार पार जावें आवेंगे तो कुछ भी सुख दुर्लभ रहेगा ? किन्तु कुछ भी नहीं ॥ ४॥

अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे ।
यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम् ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (अश्विनौ) विद्या में व्याप्त होने वाले सभा सेनापति ! (यत्) जो तुम दोनों (अनारम्भणे) जिस में आने जाने का आरम्भ (अनास्थाने) ठहरने की जगह और (अग्रभणे) पकड़ नहीं है उस (समुद्रे) अन्तरिक्ष वा सागर में (शतारित्राम्) जिस में जल की थाह लेने को सौ वल्ली वा सौ खम्भे लगे रहते और (नावम्) जिस को जलाते वा पठाते उस नाव को बिजुली और पवन के वेग के समान (ऊहथुः) वहाओ और (अस्तम्) जिस में दुःखों को दूर करें उस घर में (आतस्थिवांसम्) धरे हुए (भुज्यम्) खाने पीने के पदार्थसमूह को (अवीरयेथाम्) एक देश से दूसरे देश को ले जाओ (तत्) उन तुम लोगों का हम सदा सत्कार करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिये कि निरालम्ब मार्ग में अर्थात् जिस में कुछ ठहरने का स्थान नहीं है वहां विमान आदि यानों से ही जावें जब तक युद्ध में लड़ने वाले वीरों की जैसी चाहिये वैसी रक्षा न किई जाय तब तक शत्रु जीते नहीं जा सकते, जिस में सौ वल्ली विद्यमान हैं वह बड़े फैलाव की नाव बनाई जा सकती है । इस मन्त्र में शत शब्द असंख्यातवाची भी लिया जा सकता है इससे अतिदीर्घ नौका का बनाना इस मन्त्र में जाना जाता है, मनुष्य जितनी बड़ी नौका बना सकते हैं उतनी बड़ी बनानी चाहिये । इस प्रकार शीघ्र जाने वाला पुरुष भूमि और अन्तरिक्ष में जाने आने के भी लिये यानों को बनावे ॥ ५ ॥

यमश्विना ददथुः श्वेतमश्वमघाश्वाय शश्वदित्स्वस्ति ।
तद्वां दात्रं महि कीर्तेन्यं भूत् पैद्वो वाजी सदमिद्धव्यो अर्यः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (अश्विना) जल और पृथिवी के समान शीघ्र सुख के देने हारो सभासेनापति ! तुम दोनों (अघाश्वाय) जो मारने के न योग्य और शीघ्र पहुँचाने वाला है उस वैश्य के लिये (यम्) जिस (श्वेतम्) अच्छे बढ़े हुए (अश्वम्) मार्ग में व्याप्त प्रकाशमान बिजुलीरूप अग्नि को (ददथुः) देते हो तथा जिससे (शश्वत्) निरन्तर (स्वस्ति) सुख को पाकर (वाम्) तुम दोनों की (कीर्त्तेन्यम्) कीर्ति होने के लिये (महि) बड़े राज्यपद (दात्रम्) और देने योग्य (इत्) ही पदार्थ को ग्रहण कर (पैद्वः) सुख से ले जाने हारा (वाजी) अच्छा ज्ञानवान् पुरुष

उस (सदम्) रथ को कि जिस में बैठते हैं रच के (अर्यः) वणियां (हव्यः) पदार्थों के लेने योग्य (भूत्) होता है (तत्, इत्) उसी पूर्वोक्त विमानादि को बनाओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो सभा और सेना के अधिपति वणियों की भली भांति रक्षा कर रथ आदि यानों में बैठा कर द्वीप द्वीपांतर में पहुंचावें वे बहुत धनयुक्त होकर निरन्तर सुखी होते हैं ॥ ॥ ६ ॥

युवं नरा स्तुवते पज्रियाय कक्षीवते अरदतं पुरंन्धिम् ।
कारोतराच्छफादश्वस्य वृष्णः शतं कुम्भाँ असिञ्चतं सुरायाः ॥७॥

पदार्थ—हे (नरा) विनय को पाये हुए सभासेनापति ! (युवम्) तुम दोनों (पज्रियाय) पदों में प्रसिद्ध होने वाले (कक्षीवते) अच्छी सिखावट को सीखे और (स्तुवते) स्तुति करते हुए विद्यार्थी के लिये (पुरन्धिम्) बहुत प्रकार की बुद्धि और अच्छे मार्ग को (अरदतम्) चिन्ताओं तथा (वृष्णः) बलवान् (अश्वस्य) घोड़े के समान अग्नि सम्बन्धी कलाघर के (कारोतरात्) जिससे व्यवहारों को करते हुए शिल्पी लोग तर्क के साथ पार होते हैं उस (शफात्) खुर के समान जल सींचने के स्थान से (सुरायाः) खींचे हुए रस से भरे (शतम्) सौ (कुम्भान्) घड़ों को ले (असिञ्चतम्) सींचा करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो शास्त्रवेत्ता अध्यापक विद्वान् जिस शान्तिपूर्वक इन्द्रियों को विषयों से रोकने आदि गुणों से युक्त सज्जन विद्यार्थी के लिये शिल्पकार्य्य अर्थात् कारीगरी सिखाने को हाथ की चतुराई युक्त बुद्धि उत्पन्न कराते अर्थात् सिखाते हैं वह प्रशंसायुक्त शिल्पी अर्थात् कारीगर होकर रथ आदि को बना सकता है। शिल्पीजन जिस यान अर्थात् उत्तम विमान आदि रथ में जलघर से जल सींच और नीचे आग जलाकर भाफों से उसे चलाते हैं उससे वे घोड़ों से जैसे वैसे बिजुली आदि पदार्थों से शीघ्र एक देश से दूसरे देश को जा सकते हैं ॥ ७ ॥

हिमेनाग्निं घ्रंसमवारयेथां पितुमतीमूर्जमस्मा अधत्तम् ।
ऋबीसे अत्रिमश्विनावनीतमुन्निन्यथुः सर्वगणं स्वस्ति ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (अश्विना) यज्ञानुष्ठान करने वाले पुरुषो ! तुम दोनों (हिमेन) शीतलजल से (अग्निम्) आग और (घ्रंसम्) रात्रि के साथ दिन को (अवारयेथाम्) निर्वारो अर्थात् विताओ (अस्मै) इस के लिये (पितुमतीम्) प्रशंसित अन्नयुक्त (ऊर्जम्) बलरूपी नीति को (अधत्तम्) पुष्ट करो और (ऋबीसे) दुःख से जिस की आभा जाती रही उस व्यवहार में (अत्रिम्) भोगने

हारे (अवनीतम्) पीछे प्राप्त कराये हुए (सर्वगणम्) जिसमें समस्त उत्तम पदार्थों का समूह है उस (स्वस्ति) सुख को (उन्निन्यथुः) उन्नति देओ ।। ८ ।।

भावार्थ—विद्वानों को चाहिये कि इस संसार के सुख के लिये यज्ञ से शोधे हुए जल से और वनों के रखने से अति उष्णता (खुश्की) दूर करें अच्छे बनाए हुए अन्न से बल उत्पन्न करें और यज्ञ के आचरण से तीन प्रकार के दुःख को निवार के सुख को उन्नति देवें ।। ८ ।।

परावतं नासत्यानुदेथामुच्चाबुध्नं चक्रथुर्जिह्मबारम् ।

क्षरन्नापो न पायनाय राये सहस्राय तृष्यते गोतमस्य ।। ९ ।।

पदार्थ—हे (**नासत्या**) आग और पवन के समान वर्त्तमान सभापति ! और सेनाधिपति तुम दोनों (**जिह्मबारम्**) जिस को टेढ़ी लगन और (**उच्चाबुध्नम्**) उससे जिसमें ऊंचा अन्तरिक्ष अर्थात् अवकाश उस रथ आदि को (**अवतम्**) रक्खो और अनेक कामों की सिद्धि (**चक्रथुः**) करो और उसको यथायोग्य व्यवहार में (**परा,-अनुदेथाम्**) लगाओ जो (**गोतमस्य**) अतीव स्तुति करने वाले के रथ आदि पर (**तृष्यते**) प्यासे के लिये (**पायनाय**) पीने को (**आपः**) भाफरूप जल जैसे (**क्षरन्**) गिरते हैं (**न**) वैसे (**सहस्राय**) असंख्यात् (**राये**) धन के लिये अर्थात् धन देने के लिये प्रसिद्ध होता है वैसे रथ आदि को बनाओ ।। ९ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । शिल्पी लोगों को विमानादि यानों में जिस में बहुत मीठे जल की धार आवे ऐसे कुण्ड को बना आग से उस विमान आदि यान को चला उस में सामग्री को धर एकदेश से दूसरे देश को जाय और असंख्यात धन पाय के परोपकार का सेवन करना चाहिये ।। ९ ।।

जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवानात् ।

प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्रादित्पतिमकृणुतं कनीनाम् ।। १० ।।

पदार्थ—हे (**नासत्या**) राजधर्म की सभा के पति ! तुम दोनों (**च्यवानात्**) भागे हुए से (**द्रापिमिव**) कवच के समान (**वव्रिम्**) अच्छे विभाग करने वाले को (**प्रामुञ्चतम्**) भली भांति दुःख से पृथक् करो (**उत**) और (**जुजुरुषः**) बुड्ढे विद्यावान् शास्त्रज्ञ पढ़ाने वाले से (**कनीनाम्**) यौवनपन से तेजधारिणी ब्रह्मचारिणी कन्याओं को शिक्षा (**अकृणुतम्**) करो (**आत्**) इस के अनन्तर नियत समय की प्राप्ति में उन में से एक एक (**इत्**) ही का एक एक (**पतिम्**) रक्षक पति करो । हे (**दस्रा**) वैद्यों के समान प्राण देने हारो ! (**जहितस्य**) त्यागी की (**आयुः**) आयुर्दा को (**प्रातिरतम्**) अच्छे प्रकार पार लों पहुँचाओ ।। १० ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । राजपुरुष और उपदेश करने वालों को देने वालों का दुःख दूर करना चाहिये, विद्याओं में प्रवृत्ति करते हुए कुमार और कुमारियों की रक्षा कर विद्या और अच्छी शिक्षा उन को दिलवाना चाहिये, बालकपन में अर्थात् पच्चीस वर्ष के भीतर पुरुष और सोलह वर्ष के भीतर स्त्री के विवाह को रोक, इस के उपरान्त अड़तालीस वर्ष पर्य्यन्त पुरुष और चौबीस वर्ष पर्यन्त स्त्री का स्वयंवर विवाह कराकर सब के आत्मा और शरीर के बल को पूर्ण करना चाहिये ॥ १० ॥

तद्वां नरा शंस्यं राध्यं चाभिष्टिमन्नासत्या वरूथम् ।
यद्विद्वांसा निधिमिवापगूढमुद्दर्शतादूपथुर्वन्दनाय ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (नरा) धर्म की प्राप्ति (नासत्या) और सदा सत्य की पालना करने और (विद्वांसा) समस्त विद्या जानने वाले धर्मराज, सभापति विद्वानो ! (वाम्) तुम दोनों का (यत्) जो (शंस्यम्) प्रशंसनीय (च) और (राध्यम्) सिद्ध करने योग्य (अभिष्टिमत्) जिस में चाहे हुए प्रशंसित सुख हैं (वरूथम्) जो स्वीकर करने योग्य (अपगूढम्) जिसमें गुप्तपन अलग हो गया ऐसा जो प्रथम कहा हुआ गृहाश्रम संबन्धि कर्म है (तत्) उस को (निधिमिव) धन के कोष के समान (दर्शतात्) दिखनौट रूप से (वन्दनाय) सब ओर से सत्कार करने योग्य संतान और प्रशंसा के लिये (उत्, ऊपथुः) उच्च श्रेणी को पहुँचाओ अर्थात् उन्नति देओ ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! विद्यानिधि के परे सुख देने वाला धन कोई भी तुम मत जानो । न इस कर्म के विना चाहे हुए संतान और सुख मिल सकते हैं और न सत्यासत्य के विचार से निर्णीत ज्ञान के विना विद्या की वृद्धि होती है, यह जानो ॥ ११ ॥

तद्वां नरा सनये दंस उग्रमाविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिम् ।
दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्रयदीमुवाच ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (नरा) अच्छी नीतियुक्त सभा सेना के पति जनो ! (वाम्) तुम दोनों से (दध्यङ्) विद्या धर्म का धारण करने वालों का आदर करने वाला (आथर्वणः) रक्षा करते हुए का संतान मैं (सनये) सुख के भली भांति सेवन करने के लिये जैसे (तन्यतुः) बिजुली (वृष्टिम्) वर्षा को (न) वैसे (यत्) जिस (उग्रम्) उत्कृष्ट (दंसः) कर्म को (आविष्कृणोमि) प्रकट करता हूँ जो (यत्) विद्वान् (वाम्) तुम दोनों के लिये और मेरे लिये (अश्वस्य) शीघ्र गमन कराने हारे पदार्थ के (शीर्ष्णा) शिर के समान उत्तम काम से (मधु)

मधुर (ईम्) शास्त्र के बोध को (ह) (प्रोवाच) कहे (तत्) उसे तुम दोनों लोक में निरन्तर प्रकट करो ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे वृष्टि के विना किसी को भी सुख नहीं होता है वैसे विद्वानों और विद्या के विना सुख और बुद्धि बढ़ना और इसके विना धर्म आदि पदार्थ नहीं सिद्ध होते हैं, इससे इस कर्म का अनुष्ठान मनुष्यों को सदा करना चाहिये ॥ १२ ॥

अजोहवीत् नासत्या करा वां महे यामन्पुरुभुजा पुरंन्धिः ।
श्रुतं तच्छासुरिव वध्रिमत्या हिरंण्यहस्तमश्विनावदत्तम् ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे (नासत्या) असत्य अज्ञान के विनाश से सत्य का प्रकाश करने (पुरुभुजा) बहुत आनन्दों के भोगने तथा (अश्विनौ) शुभ गुण और विद्या में व्याप्त होने वाले अध्यापको ! जो (पुरन्धिः) बहुत विद्यायुक्त विद्वान् (वध्रिमत्याः) प्रशंसित जिसकी वृद्धि है उस उत्तम स्त्री के (करा) कर्म करते हुए दो पुत्रों का (महे) अत्यन्त (यामन्) सुख भोगने के लिये (अजोहवीत्) निरन्तर ग्रहण करे और (वाम्) तुम दोनों का जो (श्रुतम्) सुना पढ़ा है (तत्) उस को (शासुरिव) जैसे पूर्ण विद्यायुक्त पढ़ाने वाले से शिष्य ग्रहण करे वैसे निरन्तर ग्रहण करे वे तुम दोनों विद्या चाहने वाले सब जनों के लिये जो ऐसा है कि (हिरण्यहस्तम्) जिस से हाथ में सुवर्ण आता है उस पढ़े सीखे बोध को (अदत्तम्) निरन्तर देवो ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे विद्वानो ! जैसे विद्वान् जन विदुषी स्त्री का पाणिग्रहण कर गृहाश्रम के व्यवहार को सिद्ध करें वैसे बुद्धिमान् विद्यार्थियों का संग्रह कर पूर्ण विद्याप्रचार को करो और जैसे पढ़ाने वाले से पढ़ने वाले विद्या का संग्रह कर आनन्दित होते हैं वैसे विद्वान् स्त्री पुरुष अपने तथा औरों के सन्तानों को उत्तम शिक्षा से विद्या देकर सदा प्रमुदित होवें ॥ १३ ॥

आस्नो वृकस्य वर्तिकामभीके युवं नरा नासत्यामुमुक्तम् ।
उतो कविं पुरुभुजा युवं ह कृपमाणमकृणुतं विचक्षे ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे (पुरुभुजा) बहुत जनों को सुख का भोग कराने (नासत्या) झूठ से अलग रहने (नरा) और सुखों को पहुँचाने हारे सभा सेनापतियो ! (युवम्) तुम दोनों (अभीके) चाहे हुए व्यवहार में (वृकस्य) भेड़िया के (आस्नः) मुख से (वर्तिकाम्) चिरौटी के समान सब मनुष्यों को अविद्याजन्य दुःख से (अमुमुक्तम्) छुड़ाओ (उतो) और (ह) भी (युवम्) तुम दोनों सब विद्याओं को

(विचक्षे) विख्यात करने को (कृपमाणम्) कृपा करने वाले (कविम्) विद्या के पारगंता पुरुष को (अकृणुतम्) सिद्ध करो ॥ १४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि सुखरूप सब के चाहे हुए विद्या ग्रहण करने के व्यवहार में सब मनुष्यों को प्रवृत्त करके जिसका दुःख फल है उस अन्यायरूप काम से निवृत्त करके उन सब प्राणियों पर कृपाकर सुख देवें ॥ १४ ॥

चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायाम् ।
सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्त्तवे प्रत्यधत्तम् ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे सभा सेनाधिपति ! तुम दोनों से (आजा) संग्राम में (परितक्म्यायाम्) रात्रि में (खेलस्य) शत्रु के खण्ड का (चरित्रम्) स्वाभाविक चरित्र अर्थात् शत्रुजनों की अलग अलग बनी हुई टोली टोली की चालाकियां (वेरिव) उड़ते हुए पक्षी का जैसे (पर्णम्) पंख काटा जाय वैसे (सद्यः) शीघ्र (अच्छेदि) छिन्न भिन्न की जायं तथा तुम (हिते) सुख बढ़ाने वाले (धने) सुवर्ण आदि धन के निमित्त (विश्पलायै) प्रजाजनों को सुख पहुँचाने वाली नीति के लिये (आयसीम्) लोहे के विकार से बनी हुई (जङ्घाम्) जिससे कि मारते हैं उस की खाल को (सर्त्तवे) शत्रुओं पर जाने अर्थात् चढ़ाई करने के लिये (हि) ही (प्रत्यधत्तम्) प्रत्यक्ष धारण करो ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । प्रजाजनों की पालना करने में अत्यन्त चित्त दिये हुए भद्र राजा आदि जनों को चाहिये कि पखेरू के पंखों के समान दुष्टों के चरित्र को युद्ध में छिन्न भिन्न करें । शस्त्र और अस्त्रों को धारण कर प्रजाजनों की पालना करें । क्योंकि जो प्रजाजनों से कर लिया जाता है उस का बदला देना उन प्रजाजनों की रक्षा करना ही समझना चाहिये ॥ १५ ॥

शतं मेषान् वृक्ये चक्षदानमृज्राश्वं तं पितान्धं चकार ।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्तं दस्रा भिषजावनर्वन् ॥ १६ ॥

पदार्थ—जो (वृक्ये) वृकी अर्थात् चोर की स्त्री के लिये (शतम्) सैकड़ों (मेषान्) ईर्ष्या करने वालों को देवे वा जो ऐसा उपदेश करे और जो चोरों में सूधे घोड़ों वाला हो (तम्) उस (चक्षदानम्) स्पष्ट उपदेश करने वा (ऋज्राश्वम्) सूधे घोड़े वाले को (पिता) प्रजाजनों की पालना करने हारा राजा जैसे (अन्धम्) अन्धा दुःखी होवे वैसा दुखी (चकार) करे । हे (नासत्या) सत्य के साथ वर्त्ताव रखने और (दस्रा) रोगों का विनाश करने वाले धर्मराज सभापति

(**भिषजौ**) वैद्यजनों के तुल्य वर्त्ताव रखने वालो ! तुम दोनों जो अज्ञानी कुमार्ग से चलने वाला व्यभिचारी और रोगी है (**तस्मै**) उस (**अनर्वन्**) अज्ञानी के लिये (**विचक्षे**) अनेकविध देखने को (**अक्षी**) व्यवहार और परमार्थ विद्यारूपी आँखों को (**आ, अधत्तम्**) अच्छे प्रकार पोढ़ी करो ॥ १६ ॥

भावार्थ—सभा के सहित राजा हिंसा करने वाले चोर कपटी छली मनुष्यों को काराघर में अन्धों के समान रख कर और अपने उपदेश अर्थात् आज्ञा रूप शिक्षा और व्यवहार की शिक्षा से धर्मात्मा कर धर्म और विद्या में प्रीति रखने वालों को उन की प्रकृति के अनुकूल ओषधि देकर उनको आरोग्य करे ॥ १६ ॥

आ वां रथं दुहिता सूर्य्यस्य कार्ष्मेवातिष्ठदर्वता जयन्ती ।
विश्वे देवा अन्वमन्यन्त हृद्भिः समु श्रिया नासत्या सचेथे ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे (**नासत्या**) अच्छे विज्ञान का प्रकाश करने वाले सभा सेनापति जनो ! (**सूर्य्यस्य**) सूर्य्य की (**दुहिता**) जो उपदेश में हित करने वाली कन्या जैसी कान्ति प्रातःसमय की वेला और (**कार्ष्मेव**) काठ आदि पदार्थों के समान (**वाम्**) तुम लोगों की (**जयन्ती**) शत्रुओं को जीतने वाली सेना (**अर्वता**) घोड़े के जुड़े हुए (**रथम्**) रथ को (**आ, अतिष्ठत्**) स्थित हो अर्थात् रथ पर स्थित होवे वा जिस को (**विश्वे**) समस्त (**देवाः**) विद्वान् जन (**हृद्भिः**) अपने चित्तों से (**अनु, अमन्यन्त**) अनुमान करें उस को (**उ**) तो (**श्रिया**) शुभ लक्षणों वाली लक्ष्मी अर्थात् अच्छे धन से युक्त सेना को तुम लोग (**सं, सचेथे**) अच्छे प्रकार इकट्ठा करो ॥ १७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! समस्त विद्वानों से प्रशंसा की हुई शस्त्र अस्त्र वाहन तथा और सामग्री आदि सहित धनवती सेना को सिद्ध कर जैसे सूर्य्य अपना प्रकाश करे वैसे तुम लोग धर्म और न्याय का प्रकाश कराओ ॥ १७ ॥

यदयातं दिवोदासाय वर्त्तिर्भरद्वाजायाश्विना हयन्ता ।
रेवदुवाह सचनो रथो वां वृषभश्च शिंशुमारश्च युक्ता ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे (**हयन्ता**) चलने (**युक्ता**) योगाभ्यास करने और (**अश्विना**) शत्रु सेना में व्याप्त होने वाले सभा सेना के पतियो ! तुम दोनों (**दिवोदासाय**) न्याय और विद्या प्रकाश के देने वाले (**भरद्वाजाय**) जिस के पुष्ट होते हुए पुष्टिमान् वेग वाले योद्धा हैं उस के लिये (**यत्**) जिस (**वर्त्तिः**) वर्त्तमान (**रेवत्**) अत्यन्त धनयुक्त गृह आदि वस्तु को (**अयातम्**) प्राप्त होओ (**च**) और जो

(वाम्) तुम दोनों का (वृषभः) विजय की वर्षा कराने हारा (शिशुमारः) जिस से धर्म को उल्लङ्घ के चलाने हारों का विनाश करता है जो कि (सचनः) समस्त अपने सेनाङ्गों से युक्त (रथः) मनोहर विमानादि रथ तुम लोगों को चाहे हुए स्थान में (उवाह) पहुँचाता है उस की (च) तथा उक्त गृह आदि की रक्षा करो ॥ १८ ॥

भावार्थ—राजा आदि राजपुरुषों को समस्त अपनी सामग्री न्याय से राज्य की पालना करने ही के लिये बनानी चाहिये ॥ १८ ॥

र॒यिं सु॑क्ष॒त्रं स्व॑प॒त्यमायुः॑ सु॒वीर्यं॑ नासत्या॒ वह॑न्ता ।

आ ज॒ह्नावीं॒ सम॑न॒सोप॒ वाजै॒स्त्रिरह्नो॑ भा॒गं दध॑ती॒मया॑तम् ॥ १९ ॥

पदार्थ—हे (**समनसा**) समान विज्ञान वाले (**वहन्ता**) उत्तम सुख को प्राप्त हुए (**नासत्या**) सत्यधर्म पालक सभा सेना के अधिपतियो ! तुम दोनों सनातन न्याय के सेवन से (**रयिम्**) धनसमूह (**सुक्षत्रम्**) अच्छे राज्य (**स्वपत्यम्**) अच्छे सन्तान (**आयुः**) चिरकाल जीवन (**सुवीर्य्यं**) उत्तम पराक्रम को और (**वाजैः**) ज्ञान वा वेगयुक्त भृत्यादिकों के साथ वर्त्तमान (**जह्नावीम्**) छोड़ने योग्य शत्रुओं की सेना की विरोधिनी इस सेना को तथा (**अह्नः**) दिन के (**भागम्**) सेवने योग्य विभाग अर्थात् समय को और (**त्रिः**) तीन वार (**दधतीम्**) धारण करती हुई सेना के (**उप, आ, आयातम्**) समीप अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥ १९ ॥

भावार्थ—कोई विद्या और सत्यन्याय के सेवन के विना धन आदि पदार्थों को प्राप्त हो और इनकी रक्षा कर सुख नहीं कर सकता है इस से धर्म के सेवन से ही राज्य आदि प्राप्त हो सकता है ॥ १९ ॥

परि॑विष्टं जाहु॒षं वि॒श्वतः॑ सीं सु॒गेभि॒र्नक्त॑मूहथू॒ रजो॑भिः ।

वि॒भि॒न्दुना॑ नासत्या॒ रथे॑न॒ वि पर्व॑ताँ अजर॒यू अ॑यातम् ॥ २० ॥

पदार्थ—हे (**नासत्या**) सत्य धर्म के पालने हारे सभासेनाधीशो ! तुम दोनों जैसे (**अजरयू**) जीर्णता आदि दोषों के रहित सूर्य और चन्द्रमा (**सुगेभिः**) जिन में कि सुख के गमन हो उन मार्ग और (**रजोभिः**) लोकों के साथ (**नक्तम्**) रात्रि और (**पर्वतान्**) मेघ वा पहाड़ों को यथायोग्य व्यवहारों में लाते हैं वैसे (**विभिन्दुना**) विविध प्रकार से छिन्न भिन्न करने वाले (**रथेन**) रथ से सेना को यथायोग्य कार्य में (**ऊहथुः**) पहुंचाओ (**विश्वतः**) सब ओर से (**सीम्**) मर्यादा को (**परिविष्टम्**) व्याप्त होओ (**जाहुषम्**) प्राप्त होने योग्य नगरादि के राज्य को पाकर पर्वत के तुल्य शत्रुओं को (**वि, अयातम्**) विभेद कर प्राप्त होओ ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे राजा के सभासद जन धर्म के अनुकूल मार्गों से राज्य पाकर किला में वा पर्वत आदि स्थानों में ठहरे हुए शत्रुओं को वश में करके अपने प्रभाव को प्रकाशित करते हैं वैसे सूर्य्य और चन्द्रमा पृथिवी के पदार्थों को प्रकाशित करते हैं जैसे इन सूर्य्य और चन्द्रमा के निकट न होने से अन्धकार उत्पन्न होता है वैसे राजपुरुषों के अभाव में अन्यायरूपी अन्धकार प्रवृत्त हो जाता है ॥२०॥

एक॑स्या॒ वस्तो॑रावतं॒ रणा॑य॒ वश॑मश्विना स॒नये॑ स॒हस्रा॑ ।
निर॑हतं दु॒च्छुना॒ इन्द्र॑वन्ता पृथु॒श्रव॑सो वृषणा॒वरा॑तीः ॥ २१ ॥

पदार्थ—हे (वृषणौ) शस्त्र अस्त्र की वर्षा करने वाले (इन्द्रवन्ता) बहुत ऐश्वर्ययुक्त (अश्विना) सूर्य्य और चन्द्रमा के तुल्य सभा और सेना के अधीशो! (दुच्छुनाः) जिस से सुख निकल गया उन शत्रु सेनाओं को जैसे अन्धकार और मेघों को सूर्य्य जीतता है वैसे (एकस्याः) एक सेना के (रणाय) संग्राम के लिये जो पठाना है उस से (वस्तोः) एक दिन के बीच (आवतम्) अपनी सेना के विजय को चाहो और उन सेनाओं को अपने (वशम्) वश में लाकर (सहस्रा) (सनये) हाज़रों धनादि पदार्थों को भोगने के लिये (पृथुश्रवसः) जिन के बहुत अन्न आदि पदार्थ हैं और (अरातीः) जो किसी को सुख नहीं देती उन शत्रु सेनाओं को (निरहतम्) निरन्तर मारो ॥ २१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य और चन्द्रमा के उदय से अन्धकार की निवृत्ति होकर सब प्राणी सुखी होते हैं वैसे धर्मरूपी व्यवहार से शत्रुओं और अधर्म की निवृत्ति होने से धर्मात्मा जन अच्छे राज्य में सुखी होते हैं ॥ २१ ॥

श॒रस्य॑ चि॒दार्च॒त्कस्या॑व॒तादा नी॒चादु॒च्चा च॑क्रथुः॒ पात॑वे॒ वाः ।
श॒यवे॑ चिन्नासत्या॒ शची॑भि॒र्जसु॑रये स्त॒र्य्यं॑ पिप्यथु॒र्गाम् ॥ २२ ॥

पदार्थ—हे (नासत्या) सत्य विज्ञानयुक्त सभासेनाधीशो! तुम दोनों (शचीभिः) अपनी बुद्धियों से (शरस्य) मारने वाले की ओर से आये (नीचात्) नीच कामों का सेवन करते हुए (अवतात्) हिंसा करने वाले से (चित्) और (आर्चत्कस्य) दूसरों की प्रशंसा करने वा सत्कार करते हुए शिष्टजन की ओर से आये (उच्चा) उत्तम कर्म को सेवते हुए रक्षा करने वाले से प्रजाजनों को (पातवे) पालने के लिये बल को (आ, चक्रथुः) अच्छे प्रकार करो (चित्) और (शयवे) सोते हुए और (जसुरये) हिंसक जनों के लिये (स्तर्य्यम्) जो

नौका आदि यानों में अच्छा है उन (वाः) जल और (गाम्) पृथिवी को (पिप्यथुः) बढ़ाओ ॥ २२ ॥

भावार्थ—हे मनुष्या ! तुम शत्रुओं के नाशक और मित्रजनों की प्रशंसा करने वाले जन का सत्कार करो और उस के लिये पृथिवी देओ जैसे पवन और सूर्य भूमि और वृक्षों से जल को खैंच और वर्षा कर सब को बढ़ाते हैं वैसे ही उत्तम कामों से संसार को वढ़ाओ ॥ २२ ॥

अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय ऋजूयते नासत्या शचीभिः ।
पशुं न नष्टमिव दर्शनाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ॥ २३ ॥

पदार्थ—हे (**नासत्या**) असत्य के छोड़ने से सत्य के ग्रहण करने पढ़ाने और उपदेश करने वालो ! तुम दोनों (**शचीभिः**) अच्छी शिक्षा देने वाली वाणियों से (**अवस्यते**) अपनी रक्षा और (**स्तुवते**) धर्म को चाहते हुए (**ऋजूयते**) सीधे स्वभाव वाले के समान वर्त्तने वाले (**कृष्णियाय**) आकर्षण के योग्य अर्थात् बुद्धि जिस को चाहती उस (**विश्वकाय**) संसार पर दया करने वाले (**दर्शनाय**) धर्म अधर्म को देखते हुए मनुष्य के लिये (**पशुम्, न**) जैसे पशु को प्रत्यक्ष दिखावे वैसे और जैसे (**नष्टमिव**) खुए हुए वस्तु को ढूंढ के बतावें वैसे (**विष्णाप्वम्**) विद्या में रमे हुए विद्वानों को जो बोध प्राप्त होता है उस को (**ददथुः**) देओ ॥२३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। शास्त्र के वक्ता उपदेश करने और विद्या पढ़ाने वाले विद्वान् जन जैसे प्रत्यक्ष गौ आदि पशु को वा छिपे हुए वस्तु को दिखाकर प्रत्यक्ष कराते हैं वैसे शम दम आदि गुणों से युक्त बुद्धिमान् श्रोता वा अध्येताओं को पृथिवी से लेके ईश्वर पर्य्यन्त पदार्थों का विज्ञान देने वाली सांगोपांग विद्याओं को प्रत्यक्ष करावें और इस विषय में कपट और आलस्य आदि निन्दित कर्म कभी न करें ॥ २३ ॥

दश रात्रीरशिवेना नव द्यूनवनद्धं श्नथितमप्स्वन्तः ।
विप्रुतं रेभमुदनि प्रवृक्तमुन्निन्यथुः सोममिव स्रुवेण ॥ २४ ॥

पदार्थ—हे (**नासत्या**) असत्य को छोड़ कर सत्य का ग्रहण करने पढ़ाने और उपदेश करने वालो ! तुम दोनों जैसे (**शचीभिः**) अच्छी शिक्षा देने वाली वाणियों से (**अशिवेन**) अमङ्गल करने वाले युद्ध के साथ वर्त्तमान शिल्पी जन (**अवनद्धम्**) नीचे से बन्धी (**श्नथितम्**) ढीली किई (**उदनि**) जल में (**विप्रुतम्**) चलाई (**प्रवृक्तम्**) और इधर उधर जाने से रोकी हुई नौका आदि को (**दश**) दश (**रात्रीः**) रात्रि (**नव**) नौ (**द्यून्**) दिनों तक (**अप्सु**) जलो में (**अन्तः**) भीतर स्थिर कर फिर ऊपर को पहुंचावें उस ढंग से और जैसे (**स्रुवेण**) घी

आदि के उठाने के साधन स्त्रुवा से (सोममिव) सोमलतादि ओषधियों को उठाते हैं वैसे (रेभम्) सब की प्रशंसा करने हारे अच्छे सज्जन को (उन्निन्यथुः) उन्नति) को पहुँचाओ ॥ २४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। पिछले मन्त्र से (नासत्या, शचीभिः) इन दोनों पदों की अनुवृत्ति आती है। हे मनुष्यो ! जैसे जल के भीतर नौका आदि में स्थित हुई सेना शत्रुओं से मारी नहीं जा सकती वैसे विद्या और सत्यधर्म के उपदेशों में स्थापित किये हुए जन अविद्याजन्य दुःख से पीड़ा नहीं पाते जैसे नियत समय पर कारीगर लोग नौकादि यानों को जल में इधर उधर लेजा के शत्रुओं को जीतते हैं वैसे विद्यादान से अविद्याओं को आप जीतो। जैसे यज्ञकर्म में होमा हुआ द्रव्य वायु और जल आदि की शुद्धि करने वाला होता है वैसे सज्जनों का उपदेश आत्मा की शुद्धि करने वाला होता है ॥ २४ ॥

प्र वां दंसांस्यश्विनाववोचमस्य पतिः स्यां सुगवः सुवीरः ।
उत पश्यन्नश्नुवन्दीर्घमायुरस्तमिवेज्जरिमाणं जगम्याम् ॥ २५ ॥

पदार्थ—हे (अश्विनौ) समस्त शुभ कर्म और विद्या में रमे हुए सज्जनो ! मैं (वाम्) तुम दोनों उपदेश करने और पढ़ाने वालों के (दंसांसि) उपदेश और विद्या पढ़ाने आदि कर्मों को (प्र, अवोचम्) कहूँ उस से (सुगवः) अच्छी अच्छी गौ और उत्तम उत्तम वाणी आदि पदार्थों वाला (सुवीरः) पुत्र पौत्र आदि भृत्य युक्त (पश्यन्) सत्य असत्य को देखता (उत) और (दीर्घम्) बड़ी (आयुः) आयुर्दा को (अश्नुवत्) सुख से व्याप्त हुआ (अस्य) इस राज्य वा व्यवहार का (पतिः) पालने वाला (स्याम्) होऊं तथा संन्यासी महात्मा जैसे (अस्तमिव) घर को पाकर निर्लोभ से छोड़ दे वैसे (जरिमाणम्) बुड्ढे हुए शरीर को छोड़ सुख से (इत्) ही (जगम्याम्) शीघ्र चला जाऊं ॥ २५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्य सदा धार्मिक शास्त्रवक्ताओं के कर्मों को सेवन कर धर्म और जितेन्द्रियपन से विद्याओं को पाकर आयुर्दा बढ़ा के अच्छे सहाययुक्त हुए संसार की पालना करें और योगाभ्यास से जीर्ण अर्थात् बुड्ढे शरीरों को छोड़ विज्ञान से मुक्ति को प्राप्त होवें ॥ २५ ॥

इस सूक्त में पृथिवी आदि पदार्थों के गुणों के दृष्टान्त तथा अनुकूलता से सभासेनापति आदि के गुण कर्मों के वर्णन से इस सूक्त में कहे अर्थ की पिछले सूक्त में कहे अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह एकसौ सोलह वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

कक्षीवानृषिः । अश्विनौ देवते । १ निचृत् पङ्क्तिः । ६ । २२ विराट् पङ्क्तिः । ११ । २१ । २५ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । ४ । ७ । १२ । १६—१६ निचृत् त्रिष्टुप् । ८—१० । १३—१५ । २० । २३ विराट् त्रिष्टुप् ३ । ५ । २४ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मध्वः सोमस्याश्विना मदाय प्रत्नो होता विवासते वाम् ।
बर्हिष्मती रातिर्विश्रिता गीरिषा यातं नासत्योप वाजैः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (अश्विना) विद्या में रमे हुए (नासत्या) झूठ से अलग रहने वाले सभा सेनाधीशो ! तुम दोनों (इषा) अपनी इच्छा से (प्रत्नः) पुरानी विद्या पढ़ने हारा (होता) सुखदाता जैसे (वाजैः) विज्ञान आदि गुणों के साथ (मदाय) रोग दूर होने के आनन्द के लिये (वाम्) तुम दोनों की (मध्वः) मीठी (सोमस्य) सोमवल्ली आदि औषध की जो (बर्हिष्मती) प्रशंसित बढ़ी हुई (रातिः) दान-क्रिया और (विश्रिता) विविध प्रकार के शास्त्रवक्ता विद्वानों ने सेवन किई हुई (गीः) वाणी है उसका जो (आ, विवासते) अच्छे प्रकार सेवन करता है उस के समान (उप, यातम्) समीप आ रहो अर्थात् उक्त अपनी क्रिया और वाणी का ज्यों का त्यों प्रचार करते रहो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे सभा और सेना के अधीशो ! तुम उत्तम शास्त्रवेत्ता विद्वानों के गुण और कर्मों की सेवा से विशेष ज्ञान आदि को पाकर शरीर के रोग दूर करने के लिये सोमवल्ली आदि ओषधियों की विद्या और अविद्या अज्ञान के दूर करने को विद्या का सेवन कर चाहे हुए सुख की सिद्धि करो ॥ १ ॥

यो वामश्विना मनसो जवीयान्रथः स्वश्वो विश आजिगाति ।
येन गच्छथः सुकृतो दुरोणं तेन नरा वर्तिरस्मभ्यं यातम् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (नरा) न्याय की प्राप्ति कराने वाले (अश्विना) विचारशील सभा सेनाधीशो ! (यः) जो (सुकृतः) अच्छे साधनों से बनाया हुआ (स्वश्वः) जिस में अच्छे वेगवान् बिजुली आदि पदार्थ वा घोड़े लगे हैं वह (मनसः) विचार-शील अत्यन्त वेगवान् मन से भी (जवीयान्) अधिक वेग वाला और (रथः) युद्ध की अत्यन्त क्रीड़ा करने वाला रथ है वह (विशः) प्रजाजनों की (आजिगाति) अच्छे प्रकार प्रशंसा कराता और (वाम्) तुम दोनों (येन) जिस रथ से (वर्त्तिः) वर्त्तमान (दुरोणम्) घर को (गच्छथः) जाते हो (तेन) उस से (अस्मभ्यम्) हम लोगों को (यातम्) प्राप्त हूजिये ॥ २ ॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिये कि मन के समान वेग वाले बिजुली

आदि पदार्थों से येक्त अनेक प्रकार के रथ आदि यानों को निश्चित कर प्रजाजनों को सन्तोष देवें। और जिस जिस कर्म से प्रशंसा हो उसी उसी का निरन्तर सेवन करें उस से और कर्म का सेवन न करें॥ २॥

ऋषिं नरावंहसः पाञ्चजन्यमृबीसादत्रिं मुञ्चथो गणेन।
मिनन्ता दस्योरशिवस्य माया अनुपूर्वं वृषणा चोदयन्ता॥ ३॥

पदार्थ—हे (नरौ) विद्या प्राप्ति कराने (वृषणा) सुख के वर्षाने (चोदयन्ता) और विद्या आदि शुभ गुणों में प्रेरणा करने वाले तथा (अशिवस्य) सब को दुःख देने हारे (दस्योः) उचक्के की (मायाः) कपटक्रियाओं को (मिनन्ता) काटने वाले सभा सेनाधीशो ! तुम दोनों (अनुपूर्वम्) अनुकूल वेद में कहे और उत्तम विद्वानों में माने हुए सिद्धान्त जिसके उस (पाञ्चजन्यम्) प्राण अपान उदान व्यान और समान में सिद्ध हुई योगसिद्धि को और जिसके सम्बन्ध में (अत्रिम्) आत्मा मन और शरीर के दुःख नष्ट हो जाते हैं उस (गणेन) पढ़ने पढ़ाने वालों के साथ वर्त्तमान (ऋषिम्) वेदपारगन्ता अध्यापक को (ऋबीसात्) नष्ट हुआ है विद्या का प्रकाश जिस से उस अविद्यारूप अन्धकार (अंहसः) और विद्या पढ़ने को रोक देने रूप अत्यन्त पाप से (मुञ्चथः) अलग रखते हो॥ ३॥

भावार्थ—राजपुरुषों का यह अत्यन्त उत्तम काम है जो विद्याप्रचार करने हारों को दुःख से बचाना उन को सुख में राखना और डाकू उचक्के आदि दुष्ट जनों को दूर करना और वे राजपुरुष आप विद्या और धर्मयुक्त हो विद्वानों को विद्या और धर्म्म के प्रचार में लगा कर धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि करें॥ ३॥

अश्वं न गूळ्हमश्विना दुरेवैर्ऋषिं नरा वृषणा रेभमप्सु।
सं तं रिणीथो विप्रुतं दंसोभिर्न वां जूर्यन्ति पूर्व्या कृतानि॥ ४॥

पदार्थ—हे (नरा) सुख की प्राप्ति (वृषणा) और विद्या की वर्षा कराने वाले (अश्विना) सभा सेनापतियो ! तुम दोनों (दुरेवैः) दुःख पहुँचाने वाले दुष्ट मनुष्य आदि प्राणियों (दंसोभिः) और श्रेष्ठ विद्वानों ने आचरण किये हुए कर्मों से ताड़ना को प्राप्त (अश्वम्) अति चलने वाली बिजुली के समान (विप्रुतम्) विविध प्रकार अच्छे व्यवहारों को जानने (रेभम्) समस्त विद्या गुणों की प्रशंसा करने (अप्सु) विद्या में व्याप्त होने और वेदादि शास्त्रों में निश्चय रखने वाले (तम्) उस पूर्व मन्त्र में कहे हुए (ऋषिम्) वेदपारगन्ता विद्वान् के (न) समान (गूढम्) अपने आशय को गुप्त रखने वाले सज्जन पुरुष को सुख

से (सं, रिणीथः) अच्छे प्रकार युक्त करो जिस से (वाम् पूर्व्या, कृतानि) तुम लोगों के जो पूर्वजों ने किए हुए विद्याप्रचाररूप काम वे (न) नहीं (जूर्यन्ति) जीर्ण होते अर्थात् नाश को नहीं प्राप्त होते ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । राजपुरुषों से जैसे डाकुओं से हरे छिपे हुए स्थान में ठहराये और पीड़ा दिये हुए घोड़े को लेकर वह सुख के साथ अच्छी प्रकार रक्षा किया जाता है वैसे मूढ़ दुराचारी मनुष्यों ने तिरस्कार किये हुए विद्याप्रचार करने वाले मनुष्यों को समस्त पीड़ाओं से अलग कर सत्कार के साथ संग कर ये सेवा को प्राप्त किये जाते हैं और जो उन के बिजुली की विद्या के प्रचार के काम हैं वे अजर अमर हैं यह जानना चाहिये ॥ ४ ॥

सुषुप्वांसं न निर्ऋतेरुपस्थे सूर्यं न दस्रा तमसि क्षियन्तम् ।
शुभे रुक्मं न दर्शतं निखातमुदूपथुरश्विना वन्दनाय ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (दस्रा) दुःख का विनाश करने वाले (अश्विना) कृषिकर्म की विद्या में परिपूर्ण सभा सेनाधीशो ! तुम दोनों (वन्दनाय) प्रशंसा करने के लिये (निर्ऋतेः) भूमि के (उपस्थे) ऊपर (तमसि) रात्रि में (क्षियन्तम्) निवास करते और (सुषुप्वांसम्) सुख से सोते हुए के (न) समान वा (सूर्य्यम्) सूर्य के (न) समान और (शुभे) शोभा के लिये (रुक्मम्) सुवर्ण के (न) समान (दर्शतम्) देखने योग्य रूप (निखातम्) फारे से जोते हुए खेत को (उदूपथुः) ऊपर से बोओ ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में तीन उपमालङ्कार हैं । जैसे प्रजास्थ जन अच्छे राज्य को पाकर रात्रि में सुख से सोके दिन में चाहे हुए कामों में मन लगाते हैं वा अच्छी शोभा होने के लिये सुवर्ण आदि वस्तुओं को पाते वा खेती आदि कामों को करते हैं वैसे अच्छी प्रजा को प्राप्त होकर राजपुरुष प्रशंसा पाते हैं ॥ ५ ॥

तद्वां नरा शंस्यं पज्रियेण कक्षीवता नासत्या परिज्मन् ।
शफादश्वस्य वाजिनो जनाय शतं कुम्भाँ असिञ्चतं मधूनाम् ॥६॥

पदार्थ—हे (पज्रियेण) प्राप्त होने योग्यों में प्रसिद्ध हुए (कक्षीवता) शिक्षा करने हारे विद्वान् के साथ वर्तमान (नासत्या) सत्य व्यवहार वर्त्तने वाले (नरा) मनुष्यों में उत्तम सब को अपने अपने ढंग में लगाने हारे सभा सेनाधीशो ! तुम दोनों जो (परिज्मन्) सब प्रकार से जिस में जाते हैं उस मार्ग को (वाजिनः) वेगवान् (अश्वस्य) घोड़ा की (शफात्) टाप के समान बिजुली के वेग से

(जनाय) अच्छे गुणों और उत्तम विद्याओं में प्रसिद्ध हुए विद्वान् के लिये (मधूनाम्) जलों के (शतम्) सैकड़ों (कुम्भान्) घड़ों को (असिञ्चतम्) सुख से सींचो अर्थात् भरो (तत्) उस (वाम्) तुम लोगों के (शंस्यम्) प्रशंसा करने योग्य काम को हम जानते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिये कि मनुष्य आदि प्राणियों के सुख के लिये मार्ग में अनेक घड़ों के जल से नित्य सींचाव कराया करें जिस से घोड़े बैल आदि के पैरों की खूंदन से धूर न उड़े । और जिससे मार्ग में अपनी सेना के जन सुख से आवें जावें इस प्रकार ऐसे प्रशंसित कामों को करके प्रजाजनों को निरन्तर आनन्द देवें ॥ ६ ॥

युवं नरा स्तुवते कृष्णियाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ।
घोषायै चित्पितृषदे दुरोणे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (नरा) सब कामों में प्रधान और (अश्विनौ) सब विद्याओं में व्याप्त सभा सेनाधीशो ! (युवम्) तुम दोनों (कृष्णियाय) खेती के काम की योग्यता रखने और (स्तुवते) सत्य बोलने वाले (पितृषदे) जिस के समीप विद्या विज्ञान देने वाले स्थित होते (विश्वकाय) और जो सभों पर दया करता है उस राजा के लिये (दुरोणे) घर में (विष्णाप्वम्) जिस पुरुष से खेती के भरे हुए कामों को प्राप्त होता उस खेती रखने वाले पुरुष को (ददथुः) देओ (चित्) और (जूर्य्यन्त्यै) बुड्ढेपन को प्राप्त करने वाली (घोषायै) जिसमें प्रशंसित शब्द वा गौ आदि के रहने के विशेष स्थान हैं उस खेती के लिये (पतिम्) स्वामी अर्थात् उस की रक्षा करने वाले को (अदत्तम्) देओ ॥ ७ ॥

भावार्थ—राजा आदि न्यायाधीश खेती आदि कामों के करने वाले पुरुषों से सब उपकार पालना करने वाले पुरुष और सत्य न्याय को प्रजाजनों को देकर उन्हें पुरुषार्थ में प्रवृत्त करें । इन कार्य्यों की सिद्धि को प्राप्त हुए प्रजाजनों से धर्म के अनुकूल अपने भाग को यथायोग्य ग्रहण करें ॥ ७ ॥

युवं श्यावाय रुशतीमदत्तं महः क्षोणस्याश्विना कण्वाय ।
प्रवाच्यं तद्वृषणा कृतं वां यन्नार्षदाय श्रवो अध्यधत्तम् ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (वृषणा) बलवान् (अश्विना) बहुत ज्ञान विज्ञान की बातें सुने जाने हुए सभा सेनाधीशो ! (युवम्) तुम दोनों (महः) बड़े (क्षोणस्य) पढ़ाने वाले के तीर से (श्यावाय) ज्ञानी (कण्वाय) बुद्धिमान् के लिये (रुशतीम्) प्रकाश करने वाली विद्या को (अदत्तम्) देओ तथा (यत्) जो (वाम्) तुम दोनों का (प्रवाच्यम्) भली भांति कहने योग्य शास्त्र (कृतम्)

करने योग्य काम और (श्रवः) सुनना है (तत्) उस को तथा (नार्षदाय) उत्तम उत्तम व्यवहारों में मनुष्य आदि को पहुँचाने हारे जनों में स्थित होते हुए के लड़के को (अध्यधत्तम्) अपने पर धारण करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—सभाध्यक्ष पुरुष से जिस प्रकार का उपदेश अच्छे बुद्धिमानों के प्रति किया जाता हो वैसा ही सब लोकों के स्वामी के लिये उपदेश करें ऐसे ही सब मनुष्यों के प्रति वर्त्ताव करना चाहिये ॥ ८ ॥

पुरू वर्पांस्यश्विना दधाना नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् ।
सहस्रसां वाजिनमप्रतीतमहिहनं श्रवस्यं१ तरुत्रम् ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (अश्विना) शिल्पी जनो ! (पुरु) बहुत (वर्पांसि) रूपों को (दधाना) धारण किये हुए तुम दोनों (पेदवे) शीघ्र जाने के लिये (श्रवस्यम्) पृथिवी आदि पदार्थों में हुए (अप्रतीतम्) गुप्त (वाजिनम्) वेगवान् (अहिहनम्) मेघ के मारने वाले (सहस्रसाम्) हजारों कर्मों को सेवन करने (आशुम्) शीघ्र पहुँचाने वाले (तरुत्रम्) और समुद्र आदि से पार उतारने वाले (अश्वम्) बिजुली रूप अग्नि को (न्यूहथुः) चलाओ ॥ ९ ॥

भावार्थ—ऐसे शीघ्र पहुंचाने वाले बिजुली आदि अग्नि के विना एक देश से दूसरे देश को सुख से जाने आने तथा शीघ्र समाचार लेने को कोई समर्थ नहीं हो सकता है ॥ ९ ॥

एतानि वां श्रवस्या सुदानू ब्रह्माङ्गूषं सदनं रोदस्योः ।
यद्वां पज्रासो अश्विना हवन्ते यातमिषा च विदुषे च वाजम् ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (सुदानू) अच्छे दान देने वाले (अश्विनौ) सभा सेनाधीशो ! (वाम्) तुम दोनों के (एतानि) ये (श्रवस्या) अन्न आदि पदार्थों में उत्तम प्रशंसा योग्य कर्म हैं इस कारण (वाम्) तुम दोनों (पज्रासः) विशेष ज्ञान देने वाले मित्र जन (यत्) जिस (रोदस्योः) पृथिवी और सूर्य के (सदनम्) आधाररूप (आङ्गूषम्) विद्याओं के ज्ञान देने वाले (ब्रह्म) सर्वज्ञ परमेश्वर को (हवन्ते) ध्यान मार्ग से ग्रहण करते (च) और जिस को तुम लोग (यातम्) प्राप्त होते हो उस के (वाजम्) विज्ञान को (इष) इच्छा और (च) अच्छे यत्न तथा योगाभ्यास से (विदुषे) विद्वान् के लिये भली भांति पहुंचाओ ॥ १० ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिये कि सब का आधार सब को उपासना के योग्य सब का रचने हारा ब्रह्म जिन उपायों से जाना जाता है उन से जान औरों के लिये भी ऐसे ही जनाकर पूर्ण आनन्द को प्राप्त होवें ॥१०॥

सूनोर्मानेनाश्विना गृणाना वाजं विप्राय भुरणा रदन्ता ।
अगस्त्ये ब्रह्मणा वावृधाना सं विश्पलां नासत्यारिणीतम् ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (रदन्ता) अच्छे लिखने वाले ! (सूनोः) अपने लड़के के समान (मानेन) सत्कार से (विप्राय) अच्छी सुध रखने वाले बुद्धिमान् जन के लिये (वाजम्) सच्चे बोध को (गृणाना) उपदेश और (भुरणा) सुख धारण करते हुए (नासत्या) सत्य से भरे पूरे (वावृधाना) बुद्धि को प्राप्त और (ब्रह्मणा) वेद से (अगस्त्ये) जानने योग्य व्यवहारों में उत्तम काम के निमित्त (विश्पलाम्) प्रजाजनों के पालने वाली विद्या को (अश्विना) प्राप्त होते हुए सभासेनाधीशो ! तुम दोनों मित्रपने से प्रजा के साथ (समरिणीतम्) मिलो ॥११॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । जैसे माता पिता संतानों और संतान माता पिताओं, पढ़ाने वाले पढ़ने वालों और पढ़ने वाले पढ़ाने वालों, पति स्त्रियों और स्त्री पतियों को तथा मित्र मित्रों को परस्पर प्रसन्न करते हैं वैसे ही राजा प्रजाजनों और प्रजा राजजनों को निरन्तर प्रसन्न करें ॥ ११ ॥

कुह यान्ता सुष्टुतिं काव्यस्य दिवो नपाता वृषणा शयुत्रा ।
हिरण्यस्येव कलशं निखातमुदूपथुर्दशमे अश्विनाहन् ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (यान्ता) गमन करने (नपाता) न गिरने (वृषणा) श्रेष्ठ कामनाओं की वर्षा कराने और (शयुत्रा) सोते हुए प्राणियों की रक्षा करने वाले (अश्विना) सभा सेनाधीशो ! तुम दोनों (दशमे) दशवें (अहन्) दिन (हिरण्यस्येव) सुवर्ण के (निखातम्) बीच में पोले (कलशम्) घड़ा के समान (दिवः) विज्ञानयुक्त (काव्यस्य) कविताई की (सुष्टुतिम्) अच्छी बड़ाई को (कुह) कहाँ (उदूपथुः) उत्कर्ष से बोते हो ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे धनाढ्यजन सुवर्ण आदि धातुओं के वासनों में दूध घी दही आदि पदार्थों को धर और उन को पका कर खाते हुए प्रशंसा पाते हैं वैसे दो शिल्पीजन इस विद्या और न्यायमार्गों में प्रजाजनों का प्रवेश कराकर धर्म और न्याय के उपदेशों से उन को पक्के कर राज्य और धन के सुख को भोगते हुए प्रशंसित कहाँ होवें ? इस का यह उत्तर है कि धार्मिक विद्वान् जनों में होवें ॥ १२ ॥

युवं च्यवानमश्विना जरन्तं पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः ।
युवो रथं दुहिता सूर्यस्य सह श्रिया नासत्यावृणीत ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे (नासत्या) सत्य वर्त्ताव वर्त्तने वाले (अश्विना) शरीर और आत्मा के बल से युक्त सभासेनाधीशो ! (युवम्) तुम दोनों (शचीभिः) अच्छी बुद्धियों वा कर्मों के साथ वर्त्तमान अपने सन्तानों को भली भांति सेवा कर ज्वान (चक्रथुः) करो (पुनः) फिर (युवोः) तुम दोनों की युवती अर्थात् यौवन अवस्था को प्राप्त (सूर्यस्य) सूर्य की किई हुई प्रातःकाल की वेला के समान (दुहिता) कन्या (श्रिया) धन शोभा विद्या वा सेवा के (सह) साथ वर्त्तमान (च्यवानम्) गमन और (जरन्तम्) प्रशंसा करने वाले (युवानम्) ज्वानी से परिपूर्ण (रथम्) रमण करने योग्य मनोहर पति को (अवृणीत) वरे और पुत्र भी ऐसा जवान होता हुआ युवति स्त्री को वरे ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । माता पिता आदि को अतीव योग्य है कि जब अपने सन्तान पूर्ण अच्छी सिखावट, विद्या, शरीर और आत्मा के बल, रूप, लावण्य, स्वभाव, आरोग्यपन, धर्म और ईश्वर को जानने आदि उत्तम गुणों के साथ वर्त्ताव रखने को समर्थ हों तब अपनी इच्छा और परीक्षा के साथ आप ही स्वयंवर विधि से दोनों सुन्दर समान गुण कर्म स्वभाव युक्त पूरे जवान बली लड़की लड़के विवाह कर ऋतु समय में साथ का संयोग करने वाले होकर धर्म के साथ अपना वर्त्ताव वर्त्त कर प्रजा अर्थात् सन्तानों को अच्छे उत्पन्न करें यह उपदेश देने चाहियें विना इस के कभी कुल की उन्नति होने के योग्य नहीं है इस से सज्जन पुरुषों को ऐसा ही सदा करना चाहिये ॥ १३ ॥

युवं तुग्राय पूर्व्येभिरेवैः पुनर्मन्यावभवतं युवाना ।
युवं भुज्युमर्णसो निः समुद्राद्विभिरूहथुर्ऋज्रेभिरश्वैः ॥ १४॥

पदार्थ—हे (पुनर्मन्यौ) वार वार जानने वाले (युवाना) युवावस्था को प्राप्त विद्या पढ़े हुए स्त्री पुरुषो ! (युवम्) तुम दोनों (तुग्राय) बल के लिये (पूर्व्येभिः) अगले सज्जनों ने किये हुए (एवैः) विज्ञान आदि उत्तम व्यवहारों से सुखी (अभवतम्) होओ (युवम्) तुम दोनों (विभिः) आकाश में उड़ने वाले पक्षियों के समान (ऋज्रेभिः) जिन से हाल न लगे उन जोड़े हुए सरल चाल से चलाये और (अश्वैः) शीघ्र जाने वाले बिजुली आदि पदार्थों से बने हुए विमानादि यानों से (अर्णसः) अगाध जल से भरे हुए (समुद्रात्) समुद्र से पार (भुज्युम्) शरीर और आत्मा की पालना करने वाले पदार्थों को (निरूहथुः) निर्वाहो अर्थात् निरन्तर पहुँचाओ ॥ १४ ॥

भावार्थ—स्त्री पुरुष अगले महात्मा ऋषि महर्षियों ने किये जो काम हैं उन का आचरण कर धर्मयुक्त ब्रह्मचर्य्य से शीघ्र पूर्ण विद्याओं को पाकर

क्रिया की कुशलता से विमान आदि यानों को बनाकर भूगोल के सब ओर विहार कर नित्य आनन्दयुक्त हों ॥ १४ ॥

अजोहवीदश्विना तौग्र्यो वां प्रोढः समुद्रमव्यथिर्जगन्वान् ।
निष्टमूहथुः सुयुजा रथेन मनोजवसा वृषणा स्वस्ति ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे (वृषणा) उत्तम बल वाले (अश्विना) विद्या और उत्तम शीलों में व्याप्त स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों जो (वाम्) तुम्हारा (तौग्र्यः) बल से सिद्ध हुआ (प्रोढः) उत्तमता से प्राप्त (अव्यथिः) जिस को व्यथा वा कष्ट नहीं है (जगन्वान्) जो निरन्तर गमन करने वाला सेना का समुदाय है वह (समुद्रम्)समुद्र का (अजोहवीत्) वार वार तिरस्कार करे अर्थात् उससे उत्तीर्ण हो उसकी गम्भीरता न गिने (तम्) उस उक्त सेनासमुदाय को (सुयुजा) सुन्दरता से जुड़े (मनोजवसा) मन के समान वेग से जाते हुए (रथेन) रमणीय विमान आदि यानसमुदाय से (स्वस्ति) सुखपूर्वक (निरूहथुः) निर्वाहो अर्थात् एक देश से दूसरे देश को पहुँचाओ ॥ १५ ॥

भावार्थ—जब ब्रह्मचर्य किये पुरुष शत्रुओं के विजय के लिये समुद्र के पार जाना चाहें तब स्त्री और सेना के साथ ही वेगवान् यानों से जावें आवें ॥ १५ ॥

अजोहवीदश्विना वर्त्तिका वामास्नो यत्सीममुञ्चतं वृकस्य ।
वि जयुषा ययथुः सान्वद्रेर्जातं विष्वाचो अहतं विषेण ॥ १६ ॥

पदार्थ—हे (अश्विना) शीघ्र जाने हारे सभासेनाधीशो ! (वर्त्तिका) संग्राम में वर्त्तमान सेना (यत्सीम्) जिसी समय (वाम्) तुम दोनों को (अजोहवीत्) निरन्तर बुलावे तब उस को (वृकस्य) भेड़िया के (आस्नः) मुख से जैसे वैसे शत्रुमण्डल से (अमुञ्चतम्) छुड़ाओ अर्थात् उस को जीतो और अपनी सेना को बचाओ तुम दानों (जयुषा) जय देने वाले अपने रथ से (अद्रेः) पर्वत के (सानु) शिखर को (वि, ययथुः) विविध प्रकार जाओ और (विष्वाचः) विविध गति वाले शत्रुमण्डल के (जातम्) उत्पन्न हुए बल को (विषेण) उस का विपर्य्यय करने वाले विषरूप अपने बल से (अहतम्) विनाशो नष्ट करो ॥ १६ ॥

भावार्थ—राजपुरुष जैसे बलवान् दयालु शूरवीर बघेले के मुख से छेरी को छुड़ाता है वैसे डाकुओं के भय से प्रजाजनों को अलग रक्खें । जब शत्रुजन पर्वतों में वर्त्तमान मारे नहीं जा सकते हों तब उन के अन्न पान आदि को विदूषित कर उन को वश में लावें ॥ १६ ॥

शतं मेषान् वृक्यें मामहानं तमः प्रणीतमशिवेन पित्रा ।
आक्षी ऋज्राश्वें अश्विनावधत्तं ज्योतिरन्धाय चक्रथुर्विचक्षें ॥१७॥

पदार्थ—हे (**अश्विनौ**) सभा मेनाधीशो ! तुम दोनों जिस (**अशिवेन**) अमंगलकारी (**पित्रा**) प्रजा पालनेहारे न्यायाधीश ने (**तमः**) दुःखरूप अन्धकार (**प्रणीतम्**) भली भांति पहुँचाया उस (**वृक्ये**) भेड़िनी के लिये (**शतम्**) सैकड़ों (**मेषान्**) मेंढ़ों को (**मामहानम्**) देते हुए के समान प्रजाजनों को पीड़ा देते हुए राज्याधिकारी को छुड़ाओ अलग करो (**ऋज्राश्वे**) अच्छे सीखे हुए घोड़े आदि पदार्थों से युक्त सेना में (**अक्षी**) आँखों का (**आ, अधत्तम्**) आधान करो अर्थात् दृष्टि देओ वहाँ के बने बिगड़े व्यवहार को विचारो और (**अन्धाय**) अन्धे के समान अज्ञानी के लिये (**विचक्षे**) विज्ञानपूर्वक देखने के लिये (**ज्योतिः**) विद्याप्रकाश को (**चक्रथुः**) प्रकाशित करो ॥ १७ ॥

भावार्थ—हे सभासेना आदि के पुरुषो ! तुम लोग प्रजाजनों में अन्याय से भेड़िनी अपने प्रयोजन के लिये भेड़ बकरों में जैसे प्रवृत्त होती हैं वैसे वर्त्ताव रखने वाले अपने भृत्यों को अच्छे दण्ड देकर अन्य धर्मात्मा भृत्यों से प्रजाजनों में सूर्य्य के समान रक्षा आदि व्यवहारों को निरन्तर प्रकाशित करो जैसे आँख वाला कुएँ से अन्धे को बचा कर सुख देता है वैसे अन्याय करने वाले भृत्यों से पीड़ा को प्राप्त हुए प्रजाजनों को अलग रक्खो ॥ १७ ॥

शुनमन्धाय भरमह्वयत्सा वृकीरश्विना वृषणा नरेति ।
जारः कनीनंइव चक्षदान ऋज्राश्वः शतमेकं च मेषान ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे (**वृषणा**) सुख वर्षाने और (**नरा**) धर्म और अधर्म का विवेक करने हारे (**अश्विना**) सभा सेनाधीशो ! (**सा**) वह (**वृकीः**) चोर की स्त्री (**शतम्**) सौ (**च**) और (**एकम्**) एक (**मेषान्**) भेड़ मेंढ़ों को (**अह्वयत्**) हांक देकर जैसे बुलावे (**इति**) इस प्रकार वा (**ऋज्राश्वः**) सीधी चाल चलनेहारे घोड़ों वाला (**चक्षदानः**) जिससे कि विद्या वचन दिया जाता है उस (**जारः**) बुड्ढे वा जार कर्म करनेहारे चालाक (**कनीनइव**) प्रकाशमान मनुष्य के समान तुम (**अन्धाय**) अन्धे के लिये (**भरम**) पोषण अर्थात् उस की पालना और (**शुनम्**) सुख धारण करो ॥ १८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । राजपुरुष अविद्या से अन्धे हो रहे जनों को, अन्यायकारियों से उत्तम सती स्त्रियों, को लंपट वेश्यावाजों से जैसे भेड़ियों से भेड़ बकरों को बचावें वैसे निरन्तर बचा कर पालें ॥१८॥

मही वामूतिरश्विना मयोभूरुत स्रामं धिष्ण्या सं रिणीथः ।
अथा युवामिदह्वयत् पुरन्धिरागच्छतं सीं वृषणावोभिः ॥ १९ ॥

पदार्थ—हे (वृषणा) सुख वर्षाने वाले (धिष्ण्या) बुद्धिमान् (अश्विना) सभा और सेना में अधिकार पाये हुए जनो ! (वाम्) तुम दोनों की जो (मही) बड़ी (उत) और (मयोभूः) को उत्पन्न कराने वाली (ऊतिः) रक्षा आदि युक्त नीति है उस से (स्रामम्) दुःख देने वाले सुख अन्याय को (युवाम्) तुम (सं, रिणीथः) भली भांति दूर करो (अथ) इस के पीछे जो (पुरन्धिः) अति बुद्धिमान् ज्वान यौवन से पूर्ण स्त्री को (अह्वयत्) बुलावे (इत्) उसी के समान (अवोभिः) रक्षा आदि के साथ (सीम्) ही (आ, अगच्छतम्) आओ ॥ १९ ॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिये कि न्याय से अन्याय को अलग कर धर्म में प्रवृत्त शरण आये हुए जनों को अच्छे प्रकार पाल के सब ओर से कृतकृत्य हों ॥ १९ ॥

अधेनुं दस्रा स्तर्य्यं१ विषक्तामपिन्वतं शयवे अश्विना गाम् ।
युवं शचीभिर्विमदाय जायां न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषाम् ॥ २० ॥

पदार्थ—हे (दस्रा) दुःख दूर करने हारे (अश्विना) भूगर्भ विद्या को जानते हुए स्त्री पुरुषो ! (युवम्) तुम दोनों (शचीभिः) कर्मों के साथ (विषक्ताम्) विविध प्रकार के पदार्थों से युक्त (स्तर्य्यम्) सुखों से ढाँपने वाली नाव वा (अधेनुम्) नहीं दुहाने हारी (गाम्) गौ को (अपिन्वतम्) जलों से सींचो (विमदाय) विशेष मदयुक्त अर्थात् पूर्ण युवावस्था वाले (शयवे) सोते हुए पुरुष के लिये (पुरुमित्रस्य) बहुत मित्र वाले की (योषाम्) युवति कन्या को (जायाम्) पत्नीपन को (न्यूहथुः) निरन्तर प्राप्त कराओ ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । हे राजपुरुषो ! तुम जैसे सब के मित्र की सुलक्षण मन लगती ब्रह्मचारिणी पण्डिता अच्छे शील स्वभाव की निरन्तर सुख देने वाली धर्मशील कुमारी को भार्य्या करने के लिये स्वीकार कर उसकी रक्षा करते हो वैसे ही साम दान दण्ड भेद अर्थात् शान्ति किसी प्रकार का दवाव दंड देना और एक से दूसरे को तोड़ फोड़ उस को बेमन करना आदि राज कामों से भूमि के राज्य को पाकर धर्म से सदैव उसकी रक्षा करो ॥ २० ॥

यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा ।
अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय ॥ २१ ॥

पदार्थ—हे (दस्रा) दुःख दूर करने हारे (अश्विना) सुख में रमे हुए सभासेनाधीशो ! तुम दोनों (मनुषाय) विचारवान् मनुष्य के लिये (वृकेण) छिन्न भिन्न करने वाले हल आदि शस्त्र अस्त्र से (यवम्) यव आदि अन्न के समान (वपन्ता) बोते और (इषम्) अन्न को (दुहन्ता) पूर्ण करते हुए तथा (आर्य्याय) ईश्वर के पुत्र के तुल्य वर्त्तमान धार्मिक मनुष्य के लिये (बकुरेण) प्रकाशमान सूर्य्य ने किया (ज्योतिः) प्रकाश जैसे अन्धकार को वैसे (दस्युम्) डाकू दुष्ट प्राणी को (अभि, धमन्ता) अग्नि से जलाते हुए (उरु) अत्यन्त बड़े राज्य को (चक्रथुः) करो ॥ २१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । राजपुरुषों को चाहिये कि प्रजाजनों में जो कण्टक लम्पट चोर झूठा और खरे बोलने वाले दुष्ट मनुष्य हैं उनको रोक खेती आदि कामों से युक्त वैश्य प्रजाजनों की रक्षा और खेती आदि कामों की उन्नति कर अत्यन्त विस्तीर्ण राज्य का सेवन करें ॥ २१ ॥

आथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम् ।
स वां मधु प्र वोचदृतायन्त्वाष्ट्रं यद्दस्रावपिकक्ष्यं वाम् ॥ २२ ॥

पदार्थ—हे (दस्रौ) दुःख की निवृत्ति करने और (अश्विना) अच्छे कामों में प्रवृत्त कराने हारे सभा सेनाधीशो ! (वाम्) तुम दोनों (यत्) जिस (आथर्वणाय) जिसके संशय कट गए उसके पुत्र के लिये तथा (दधीचे) विद्या और धर्मों को धारण किये हुए मनुष्यों की प्रशंसा करने वाले के लिये (अश्व्यम्) घोड़ों में हुए (शिरः) उत्तम अङ्ग को (प्रत्यैरयतम्) प्राप्त करो (सः) वह (ऋतायन्) अपने को सत्य व्यवहार चाहता हुआ (वाम्) तुम दोनों के लिये (अपिकक्ष्यम्) विद्या की कक्षाओं में हुए बोधों के प्रति जो वर्त्तमान उस (त्वाष्ट्रम्) शीघ्र समस्त विद्याओं में व्याप्त होने वाले विद्वान् के (मधु) मधुर विज्ञान का (प्र, वोचत्) उपदेश करे ॥ २२ ॥

भावार्थ—सभासेनाधीश आदि राजजन विद्वानों में श्रद्धा करें और अच्छे कामों में प्रेरणा दें और वे तुम लोगों के लिये सत्य का उपदेश देकर प्रमाद और अधर्म से निवृत्त करें ॥ २२ ॥

सदा कवी सुमतिमा चके वां विश्वा धियो अश्विना प्रावतं मे ।
अस्मे रयिं नासत्या बृहन्तमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथाम् ॥ २३ ॥

पदार्थ—हे (नासत्या) सत्य व्यवहार युक्त (कवी) सब पदार्थों में बुद्धि को चलाने और (अश्विना) विद्या की प्राप्ति कराने वाले सभा सेनाधीशो ! (वाम्) तुम लोगों की (सुमतिम्) धर्मयुक्त उत्तम बुद्धि को मैं (आ, चके)

अच्छे प्रकार सुनूं तुम दोनों (मे) मेरे लिये (विश्वाः) समस्त (धियः) धारणावती बुद्धियों को (सदा) सब दिन (प्र, अवतम्) प्रवेश कराओ तथा (अस्मे) हम लोगों के लिये (बृहन्तम्) अति बढ़े हुए (अपत्यसाचम्) पुत्र पौत्र आदि युक्त (श्रुत्यम्) सुनने योग्य (रयिम्) धन को (रराथाम्) दिया करो ॥ २३ ॥

भावार्थ—विद्यार्थी और राजा आदि गृहस्थों को चाहिये कि शास्त्रवेत्ता विद्वानों के निकट से उत्तम बुद्धियों को लेवें और वे विद्वान् भी उन के लिये विद्या आदि धन को दे निरन्तर उन्हें अच्छी सिखावट सिखाय के धर्मात्मा विद्वान् करें ॥ २३ ॥

हिर॑ण्यहस्तमश्विना॒ ररा॑णा पु॒त्रं न॑रा वध्रिम॒त्या अ॑दत्तम् ।
त्रिधा॑ ह॒ श्या॒वम॑श्विना॒ विक॑स्तमु॒ज्जी॒वस॑ ऐरयतं सुदानू ॥ २४ ॥

पदार्थ—हे (रराणा) उत्तम गुणों के देने (नरा) श्रेष्ठ पदार्थों की प्राप्ति कराने और (अश्विना) रक्षा आदि कर्मों में व्याप्त होने वाले अध्यापको ! तुम दोनों (हिरण्यहस्तम्) जिस के हाथ में सुवर्ण आदि धन वा हाथ के समान विद्या और तेज आदि पदार्थ हैं उस (वध्रिमत्याः) वृद्धि देने वाली विद्या की (पुत्रम्) रक्षा करने वाले जन को मेरे लिये (अदत्तम्) देओ । हे (सुदानू) अच्छे दानशील सज्जनों के समान वर्त्तमान (अश्विना) ऐश्वर्य्ययुक्त पढ़ाने वालो ! तुम दोनों उस (श्यावम्) विद्या पाये हुए (विकस्तम्) अनेकों प्रकार शिक्षा देने हारे मनुष्य को (जीवसे) जीवने के लिये (ह) ही (त्रिधा) तीन प्रकार अर्थात् मन वाणी और शरीर की शिक्षा आदि के साथ (उद्, ऐरयतम्) प्रेरणा देओ अर्थात् समझाओ ॥ २४ ॥

भावार्थ—पढ़ाने वाले सज्जन पुत्रों और पढ़ानेवाली स्त्रिया पुत्रियों को ब्रह्मचर्य्य नियम में लगा कर इन के दूसरे विद्याजन्म को सिद्ध कर जीवन के उपाय अच्छे प्रकार सिखाय के समय पर उन के माता पिता को देवें और वे घर को पाकर भी उन गुरुजनों की शिक्षाओं को न भूलें ॥ २४ ॥

ए॒तानि॑ वामश्विना वी॒र्या॑णि॒ प्र पू॒र्व्याण्या॒यवो॑ऽवोचन् ।
ब्रह्म॑ कृ॒ण्वन्तो॑ वृषणा यु॒वभ्यां॑ सु॒वीरा॑सो वि॒दथ॒मा व॑देम ॥ २५ ॥

पदार्थ—हे (वृषणा) विद्या के वर्षाने और (अश्विनौ) प्रशंसित कर्मों में व्याप्त स्त्रीपुरुषो ! (वाम्) तुम दोनों के जो (एतानि) ये प्रशंसित (पूर्व्याणि) अगले विद्वानों ने नियत किये हुए (वीर्याणि) पराक्रमयुक्त काम हैं उन को (आयवः) मनुष्य (प्रावोचन्) भली भांति कहैं (युवभ्याम्) तरुण अवस्था वाले तुम दोनों के लिये (ब्रह्म) अन्न और धन को (कृण्वन्त) सिद्ध करते हुए (सुवीरासः) जिन के अच्छी सिखावट और उत्तम विद्यायुक्त वीर पुत्र पौत्र और सेवक

वे हम लोग (विदथम्) विज्ञान कराने वाले पढ़ने पढ़ाने रूप यज्ञ का (आ, वदेम) उपदेश करें ॥ २५ ॥

भावार्थ—मनुष्य जिन विद्वानों ने लोक के उपकारक विद्या और धर्मोपदेश के प्रचार करने वाले काम किये वा जिन से किये जाते हैं उन की प्रशंसा और अन्न वा धन आदि से सेवा करें क्योंकि कोई विद्वानों के संग के विना विद्या आदि उत्तम उत्तम रत्नों को नहीं पा सकते। न कोई कपट आदि दोषों से रहित शास्त्र जानने वाले विद्वानों के संग और उन से विद्या पढ़ने के विना अच्छी शीलता और विद्या की वृद्धि करने को समर्थ होते हैं ॥ २५ ॥

इस सूक्त में राजा प्रजा और पढ़ने पढ़ाने आदि कामों के वर्णन से पूर्व सूक्तार्थ के साथ इस सूक्त के अर्थ की सङ्गति है, यह समझना चाहिये ॥

यह एकसौ सत्रहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

कक्षीवानृषिः । अश्विनौ देवते १ । ११ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । ५ । ७ त्रिष्टुप् । ३ । ६ । ६ । १० निचृत्त्रिष्टुप् । ४ । ८ विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

आ वां रथो अश्विना श्येनपत्वा सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।
यो मर्त्यस्य मनसो जवीयान् त्रिबन्धुरो वृषणा वातरंहाः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (वृषणा) बलवान् (अश्विना) शिल्प कामों के जानने वाले स्त्री पुरुषो ! (वाम्) तुम दोनों को (यः) जो (त्रिबन्धुरः) त्रिबंधुर अर्थात् जिस में नीचे बीच में और ऊपर बंधन हों (श्येनपत्वा) वाज पखेरू के समान जाने वाला (वातरंहाः) जिस का पवन के समान वेग (मर्त्यस्य) मनुष्य के (मनसः) मन से भी (जवीयान्) अत्यन्त धावने और (सुमृडीकः) उत्तम सुख देने वाला (स्ववान्) जिसमें प्रशंसित भृत्य वा अपने पदार्थ विद्यामन हैं ऐसा (रथः) रथ है वह (अर्वाङ्) नीचे (आ, यातु) आवे ॥ १ ॥

भावार्थ—स्त्री पुरुष जब ऐसे ज्ञान को उत्पन्न कर उपयोग में लावें तब ऐसा कौन सुख है जिस को वे सिद्ध नहीं कर सकें ॥ १ ॥

त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेन त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्वाक् ।
पिन्वतं गा जिन्वतमर्वतो नो वर्धयतमश्विना वीरमस्मे ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (अश्विना) सभासेनाधीशो ! तुम दोनों (त्रिबन्धुरेण) जो तीन प्रकार के बन्धनों से युक्त (त्रिचक्रेण) जिस में कलों के तीन चक्कर लगे (त्रिवृत) और तीन ओढ़ने के वस्त्रों से युक्त जो (सुवृता) अच्छे अच्छे मनुष्य वा उत्तम श्रृङ्गारों के साथ वर्त्तमान (रथेन) रथ है उस से (अर्वाक्) भूमि के नीचे (आ, यातम्) आओ (नः) हम लोगों की (गाः) पृथिवी में जो भूमि हैं उन का (पिन्वतम्) सेवन करो (अर्वतः) राज्य पाये हुए मनुष्य वा घोड़ों को (जिन्वतम्) जीवाओ सुख देओ (अस्मे) हम लोगों को हम लोगों के (वीरम्) शूरबीर पुरुष को (वर्द्धयतम्) बढ़ाओ, वृद्धि देओ ॥ २ ॥

भावार्थ—राजपुरुष अच्छी सामग्री और उत्तम शास्त्रवेत्ता विद्वानों का सहाय ले और सब स्त्री पुरुषों को समृद्धि और सिद्धियुक्त करके प्रशंसित हों ॥ २ ॥

प्रवद्यामना सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः ।
किमङ्ग वां प्रत्यवर्त्तिं गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (प्रवद्यामना) भली भांति चलने वाले (सुवृता) अच्छे अच्छे साधनों से युक्त (रथेन) विमान आदि रथ से (अद्रेः) पर्वत के ऊपर जाने और (दस्रौ) दान आदि उत्तम कामों के करने वाले (अश्विना) सभासेनाधीशो वा हे स्त्री पुरुषो ! (वाम्) तुम दोनों (इमम्) इस (श्लोकम्) वाणी को (शृणुतम्) सुनो कि (अंग) हे उक्त सज्जनो ! (पुराजाः) अगले वृद्ध (विप्रासः) उत्तम बुद्धि वाले विद्वान् जन (गमिष्ठा) अति चलते हुए तुम दोनों के (प्रति) प्रति (किम्) किस (अवर्त्तिम्) न वर्त्तने न कहने योग्य निन्दित व्यवहार का (आहुः) उपदेश करते हैं अर्थात् कुछ भी नहीं ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे राजा आदि स्त्री पुरुषो ! तुम जो जो उत्तम विद्वानों ने उपदेश किया उसी उसी को स्वीकार करो क्योंकि सत्पुरुषों के उपदेश के विना संसार में मनुष्यों की उन्नति नहीं होती । जहाँ उत्तम विद्वानों के उपदेश नहीं प्रवृत्त होते हैं वहां सब अज्ञानरूपी अंधेरे से ढपे ही होकर पशुओं के समान वर्त्ताव कर दुःख को इकट्ठा करते हैं ॥ ३ ॥

आ वां श्येनासो अश्विना वहन्तु रथे युक्तास आशवः पतङ्गाः ।
ये अप्तुरो दिव्यासो न गृध्रा अभि प्रयो नासत्या वहन्ति ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (नासत्या) सत्य के साथ वर्त्तमान (अश्विना) सब विद्याओं में व्याप्त स्त्री पुरुषो ! (ये) जो (अप्तुरः) अन्तरिक्ष में शीघ्रता करने (दिव्यासः) और अच्छे खेलने वाले (गृध्राः) गृध्र पखेरुओ के (नं) समान (प्रयः) प्रीति

किये अर्थात् चाहे हुए स्थान को (अभि, वहन्ति) सब ओर से पहुँचाते हैं वे (श्येनासः) बाज पखेरू के समान चलने (पतङ्गाः) सूर्य के समान निरन्तर प्रकाशमान (आशवः) और शीघ्रतायुक्त घोड़ों के समान अग्नि आदि पदार्थ (रथे) विमानादि रथ में (युक्तासः) युक्त किये हुए (वाम्) तुम दोनों को (आ, वहन्ति) पहुँचाते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे स्त्री पुरुषो ! जैसे आकाश में अपने पङ्खों से उड़ते हुए गृध्र आदि पखेरू सुख से आते जाते हैं वैसे हो तुम अच्छे सिद्ध किये विमान आदि यानों से अन्तरिक्ष में आओ जाओ ॥४॥

आ वां रथं युवतिस्तिष्ठदत्र जुष्ट्वी नरा दुहिता सूर्यस्य ।
परि वामश्वा वपुषः पतङ्गा वयो वहन्त्वरुषा अभीके ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (नरा) सब के नायक सभासेनाधीशो ! (वपुषः) सुन्दर रूप की (जुष्ट्वी) प्रीति को पाये हुए वा सुन्दर रूप की सेवा करती सुन्दरी (युवतिः) नवयौवना (दुहिता) कन्या (सूर्य्यस्य) सूर्य्य की किरण जो प्रातः-समय की वेला जैसे पृथिवी पर ठहरे वैसे (वाम्) तुम दोनों के (रथम्) रथ पर (आ, तिष्ठत्) आ बैठे (अत्र) इस (अभीके) संग्राम में (पतङ्गाः) गमन करते हुए (अरुषा) लाल रङ्गवाले (वयः) पखेरुओं के समान (अश्वाः) शीघ्रगामी अग्नि आदि पदार्थ (वाम्) तुम दोनों को (परि, वहन्तु) सब ओर से पहुँचायें ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य की किरणें सब ओर से आती जाती हैं वा जैसे पतिव्रता उत्तम स्त्री पति को सुख पहुँचाती है वा जैसे पखेरू ऊपर नीचे जाते हैं वैसे युद्ध में उत्तम यान और उत्तम वीर जन चाहे हुए सुख को सिद्ध करते हैं ॥ ५ ॥

उद्वन्दनमैरतं दंसनाभिरुद्रेभं दस्रा वृषणा शचीभिः ।
निष्टौग्र्यं पारयथः समुद्रात्पुनश्च्यवानं चक्रथुर्युवानम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (दस्रा) दुःखों के दूर करने और (वृषणा) सुख वर्षाने वाले सभासेनाधीशो ! तुम दोनों (शचीभिः) कर्म और बुद्धियों वा (दंसनाभिः) वचनों के साथ जैसे (तौग्र्यम्) बलवान् मारने वाला राजा पुत्र (च्यवानम्) जो गमन कर्त्ता बली (युवानम्) ज्वान है उस को (समुद्रात्) सागर से (निः, पारयथः) निरन्तर पार पहुँचाते (पुनः) फिर इस ओर आए हुए को (उत्, चक्रथुः) उधर पहुँचाते हो वैसे ही (वन्दनम्) प्रशंसा करने योग्य यान और (रेभम्) प्रशंसा करने वाले मनुष्य को (उदैरतम्) इधर उधर पहुँचाओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—जैसे नाव के चलाने वाले मल्लाह आदि मनुष्यों को समुद्र के पार पहुंचा कर सुखी करते हैं वैसे राजसभा शिल्पीजनों और उपदेश करने वालों को दुःख से पार पहुंचा कर निरन्तर आनन्द देवें ॥ ६ ॥

युवमत्रयेऽवनीताय तप्तमूर्जमोमानमश्विनावधत्तम् ।
युवं कण्वायापिरिप्ताय चक्षुः प्रत्यधत्तं सुष्टुतिं जुजुषाणा ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (**जुजुषाणा**) सेवा वा प्रीति को प्राप्त (**अश्विनौ**) समस्त गुणों में व्याप्त स्त्री पुरुषो ! (**युवम्**) तुम दोनों (**अवनीताय**) अविद्या अज्ञान के दूर होने (**अपिरिप्ताय**) और समस्त विद्याओं के बढ़ने के लिये (**अत्रये**) जिस को तीन प्रकार का दुःख नहीं है उस (**कण्वाय**) बुद्धिमान् के लिये (**तप्तम्**) तपस्या से उत्पन्न हुए (**ओमानम्**) रक्षा आदि अच्छे कामों की पालना करने वाले (**ऊर्जम्**) पराक्रम को (**अधत्तम्**) धारण करो और (**युवम्**) तुम दोनों उस से (**चक्षुः**) सकल व्यवहारों के दिखलाने हारे उत्तम ज्ञान और (**सुष्टुतिम्**) सुन्दर प्रशंसा को (**प्रति, अधत्तम्**) प्रतीति के साथ धारण करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—सभासेनाधीश आदि राजपुरुषों को चाहिये कि धर्मात्मा जो कि वेद आदि विद्या के प्रचार के लिये अच्छा यत्न करते हैं उन विद्वानों की रक्षा का विधान कर उन से विनय को पाकर प्रजाजनों की पालना करें ॥ ७ ॥

युवं धेनुं शयवे नाधितायापिन्वतमश्विना पूर्व्याय ।
अमुञ्चतं वर्त्तिकामंहसो निः प्रति जङ्घां विश्पलाया अधत्तम् ॥८॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) अच्छी सीख पाये हुए समस्त विद्याओं में रमते हुए स्त्री पुरुषो ! (**युवम्**) तुम दोनों (**नाधिताय**) ऐश्वर्य्ययुक्त (**पूर्व्याय**) अगले विद्वानों ने किये हुए (**शयवे**) जो कि सुख से सोता है उस विद्वान् के लिये (**धेनुम्**) अच्छी सीख दिई हुई वाणी को (**अपिन्वतम्**) सेवन करो जिस को (**अंहसः**) अधर्म के आचरण से (**निरमुञ्चतम्**) निरन्तर छुड़ाओ उस से (**विश्पलायाः**) प्रजाजनों की पालना के लिये (**जङ्घाम्**) सब सुखों की उत्पन्न करने वाली (**वर्त्तिकाम्**) विनय नम्रता आदि गुणों के सहित उत्तम नीति को (**प्रत्यधत्तम्**) प्रीति से धारण करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—राजपुरुष सब ऐश्वर्ययुक्त परस्पर धनीजनों के कुल में हुए प्रजाजनों को सत्य न्याय से सन्तोष दे उन को ब्रह्मचर्य के नियम से विद्या ग्रहण करने के लिये प्रवृत्त करावें जिस से किसी का लड़का और लड़की विद्या और उत्तम शिक्षा के विना न रह जाय ॥ ८ ॥

युवं श्वेतं पेदवे इन्द्रजूतमहिहनमश्विनादत्तमश्वम् ।
जोहूत्रमर्य्यो अभिभूतिमुग्रं सहस्रसां वृषणं वीड्वङ्गम् ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (अश्विना) यज्ञादि कर्म कराने वाली स्त्री और समस्त लोकों के अधिपति पुरुष (युवम्) तुम दोनों (पेद्वे) जाने आने के लिये जो (अर्य्यः) सब का स्वामी सब सभाओं का प्रधान राजा (इन्द्रजूतम्) सभाध्यक्ष राजा ने प्रेरणा किये (जोहूत्रम् अत्यन्त ईर्ष्या करते वा शत्रुओं को घिसते हुए (वृषणम्) शत्रुओं की सेना पर शस्त्र और अस्त्रों की वर्षा कराने वाले (वीड्वङ्गम्) बली पोढ़े अंगों से युक्त (उग्रम्) दुष्ट शत्रुजनों से नहीं सहे जाते (अभिभूतिम्) और शत्रुओं का तिरस्कार करने (सहस्रसाम्) वा हजारों कामों को सेवने वाले (श्वेतम्) सुपेद (अश्वम्) सभों में व्याप्त विजुली रूप आग को (अहिहनम्) मेघ के छिन्न भिन्न करने वाले सूर्य्य के समान तुम दोनों के लिये देता है उस के लिये निरन्तर सुख (अदत्तम्) देओ ॥ ९ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्य्य मेघ को वर्षा के सब प्रजा के लिये सुख देता है वैसे शिल्पविद्या के जानने वाले स्त्री पुरुष समस्त प्रजा के लिये सुख देवें और अपने बीच में जो अतिरथी वीर स्त्रीपुरुष हैं उन का सदा सत्कार करें ॥ ९ ॥

ता वां नरा स्ववसे सुजाता हवामहे अश्विना नाधमानाः ।
आ न उप वसुमता रथेन गिरो जुषाणा सुविताय यातम् ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (सुजाता) श्रेष्ठ विद्याग्रहण करने आदि उत्तम कामों में प्रसिद्ध हुए (गिरः) शुभ वाणियों का (जुषाणा) सेवन और (अश्विना) प्रजा के अङ्गों की पालना करने वाले (नरा) न्याय में प्रवृत्त करते हुए स्त्री पुरुषो ! (नाधमानाः) जिन को कि बहुत ऐश्वर्य्य मिला वे हम जिन (वाम्) तुम लोगों को (अवसे) रक्षा आदि के लिये (सु, हवामहे) सुन्दरता से बुलावें (ता) वे तुम (वसुमता) जिस में प्रशंसित सुवर्ण आदि धन विद्यमान है उस (रथेन) मनोहर विमान आदि यान से (नः) हम लोगों को (सुविताय) ऐश्वर्य्य के लिये (उप, आ, यातम्) आ मिलो ॥ १० ॥

भावार्थ—प्रजाजनों के स्त्री पुरुषों से जो राजपुरुष प्रीति को पावें प्रसन्न हों वे प्रजाजनों को प्रसन्न करें जिस से एक दूसरे की रक्षा से ऐश्वर्यसमूह नित्य बढ़े ॥ १० ॥

आ श्येनस्य जवसा नूतनेनास्मे यातं नासत्या सजोषाः ।
हवे हि वामश्विना रातहव्यः शश्वत्तमाया उषसो व्युष्टौ ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (**नासत्या**) सत्ययुक्त (**अश्विना**) समस्त गुणों में रमे हुए स्त्री पुरुषो वा सभा सेनाधीशो ! (**सजोषाः**) जिस का एकता प्रेम (**रातहव्यः**) वा जिस ने भली भांति होम की (**सामग्री**) दिई वह मैं (**शश्वत्तमायाः**) अतीव अनादि रूप (**उषसः**) प्रातःकाल की वेला के (**व्युष्टौ**) विशेष करके चाहे हुए समय में जिन (**वाम्**) तुम को (**हवे**) स्तुति से बुलाऊं वे तुम (**हि**) निश्चय के साथ (**श्येनस्य**) वाज पखेरू के (**जवसा**) वेग के समान (**नूतनेन**) नये रथ से (**अस्मे**) हम लोगों को (**आ, यातम्**) आमिलो ॥ ११ ॥

भावार्थ—स्त्री पुरुष रात्रि के चौथे प्रहर में उठ अपना आवश्यक अर्थात् शरीर शुद्धि आदि काम कर फिर जगदीश्वर की उपासना और योगाभ्यास को कर के राजा और प्रजा के कामों का आचरण करने को प्रवृत्त हों। राजा आदि सज्जनों को चाहिये कि प्रशंसा के योग्य प्रजाजनों का सत्कार करें और प्रजाजनों को चाहिये कि स्तुति के योग्य राजजनों की स्तुति करें। क्योंकि किसी को अधर्म सेवन वाले दुष्ट जन की स्तुति और धर्म का सेवन करने वाले धर्मात्मा जन की निन्दा करने योग्य नहीं है इस से सब जन धर्म की व्यवस्था का आचरण करें ॥ ११ ॥

इस सूक्त में स्त्री पुरुष और राजा प्रजा के धर्म का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ को पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये ॥

यह एकसौ अठ्ठारहवां सूक्त समाप्त हुआ ।

दैर्घतमसः कक्षीवानृषिः । अश्विनौ देवते । १ । ४ । ६ निचृज्जगती । ३ । ७ । १० जगती । ८ विराड्जगतीछन्दः । निषादः स्वरः । २ । ५ । ९ भुरिक्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

आ वां रथं पुरुमायं मनोजुवं जीराश्वं यज्ञियं जीवसे हुवे ।
सहस्रकेतुं वनिनं शतद्वसुं श्रुष्टीवानं वरिवोधामभि प्रयः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे समस्त गुणों में व्याप्त स्त्रीपुरुषो ! (**प्रयः**) प्रीति करने वाला मैं (**जीवसे**) जीवन के लिये (**वाम्**) तुम दोनों का (**पुरुमायम्**) बहुत बुद्धि से बनाया हुआ (**जीराश्वम्**) जिससे प्राणधारी जीवों को प्राप्त होता वा उनको

इकट्ठा करता (**यज्ञियम्**) जो यज्ञ के देश को जाने योग्य (**सहस्रकेतुम्**) जिस में सहस्रों झंडी लगी हों (**शतद्वसुम्**) सैंकड़ों प्रकार के धन (**वनिनम्**) और बहुत जल विद्यमान हों (**श्रुष्टीवानम्**) जो शीघ्र चालियों को चलता हुआ (**मनोजुवम्**) मन के समान वेग वाला (**वरिवोधाम्**) जिस से मनुष्य सुख सेवन को धारण करता (**रथम्**) उस मनोहर विमान आदि यान की (**अभ्याह्वे**) सब प्रकार प्रशंसा करता हूं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पिछले सूक्त के अन्तिम मन्त्र से (अश्विना) इस पद की अनुवृत्ति आती है। अच्छा यत्न करते हुए विद्वान् शिल्पी जनों ने जो चाहा हो तो जैसा कि सब गुणों से युक्त विमान आदि रथ इस मन्त्र में वर्णन किया वैसा बन सके ॥ १ ॥

ऊर्ध्वा धीतिः प्रत्यस्य प्रयामन्यधायि शस्मन्त्समयन्त आ दिशः ।
स्वदामि घर्मं प्रति यन्त्यूतय आ वामूर्जानी रथमश्विनारुहत् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) सभासेनाधीशो ! (**वाम्**) तुम दोनों की (**शस्मन्**) प्रशंसा के योग्य (**प्रयामनि**) अति उत्तम यात्रा में जो (**ऊर्जानी**) पराक्रमयुक्त नीति और (**ऊर्ध्वा, धीतिः**) उन्नतियुक्त धारण वा ऊंची धारण जिन मनुष्यों ने (**अधायि**) धारण किई वे (**दिशः**) दान आदि उत्तम कर्म करने हारे मनुष्य (**सम्, आ, अयन्ते**) भली भांति आते हैं। जिस (**रथम्**) मनोहर विमान आदि यान का शिल्पी कारुक जन (**आ, अरुहत्**) आरोहण करता अर्थात् उस पर चढ़ता है उस पर तुम लोग चढ़ो । जिस (**घर्मम्**) उज्ज्वल सुगन्धियुक्त भोजन करने योग्य पदार्थ को (**ऊतयः**) मनोहर रक्षा आदि व्यवहार हम लोगों के लिये (**यन्ति**) प्राप्त करते हैं उस को (**प्रति**) तुम प्राप्त होओ और जिस उज्ज्वल सुगन्धियुक्त भोजन करने योग्य पदार्थ का मैं (**स्वदामि**) स्वाद लेऊं (**अस्य**) इस के स्वाद को तुम (**प्रति**) प्रतीति से प्राप्त होओ ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम अच्छे बने हुए रोगों का विनाश करने और बल के देने हारे अन्नों को भोगो। यात्रा में सब सामग्री को लेकर एक दूसरे से प्रीति और रक्षा कर करा देश परदेश को जाओ पर कहीं नीति को न छोड़ो ॥ २ ॥

सं यन्मिथः पस्पृधानासो अग्मत शुभे मखा अमिता जायवो रणे ।
युवोरह प्रवणे चेकिते रथो यदश्विना वहथः सूरिमा वरम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) स्त्री पुरुषो ! (**यत्**) जो विद्वान् (**चेकिते**) युद्ध करने को जानता है वा जो (**युवोः**) तुम दोनों का (**रथः**) अति सुन्दर रथ

(मिथः) परस्पर युद्ध के बीच लड़ाई करने हारा है वा जिस (वरम्) अति श्रेष्ठ (सूरिम्) युद्ध विद्या के जानने वाले धार्मिक विद्वान् को तुम (वहथः) प्राप्त होते उस के साथ वर्त्तमान (अह) शत्रुओं के बांधने वा उन को हार देने में (यत्) जिस (शुभे) अच्छे गुण के पाने के लिये (प्रवणे) जिस में वीर जाते हैं उस (रणे) संग्राम में (पस्पृधानासः) ईर्ष्या से एक दूसरे को बुलाते हुए (मखाः) यज्ञ के समान उपकार करने वाले (अमिताः) न गिराये हुए (जायवः) शत्रुओं को जीतने हारे वीर पुरुष (समग्मत) अच्छे प्रकार जायें उस के लिये (आ) उत्तम यत्न भी करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—राजपुरुष जब शत्रुओं को जीतने को अपनी सेना पठावें तब जिन्होंने धन पाया, जो करे को जानने वाले, युद्ध में चतुर औरों से युद्ध कराने वाले विद्वान् जन वे सेनाओं के साथ अवश्य जावें और सब सेना उन विद्वानों के अनुकूलता से युद्ध करें जिस से निश्चल विजय हो। जब युद्ध निवृत्त हो रुक जाय और अपने अपने स्थान पर वीर बैठें तब उन सब को इकट्ठा कर आनन्द देकर जीतने के ढंग की बातें चीतें करें जिस से ये सब युद्ध करने के लिये उत्साह बांधके शत्रुओं को अवश्य जीतें ॥ ३ ॥

युवं भुज्युं भुरमाणं विभिर्गतं स्वयुक्तिभिर्निवहन्ता पितृभ्य आ ।
यासिष्टं वर्त्तिर्वृषणा विजेन्यं१दिवोदासाय महि चेति वामवः ॥ ४ ॥

पदार्थ—(वृषणा) सुख वर्षाने और सब गुणो में रमने हारे सभासेनाधीशो ! (युवम्) तुम दोनों (वाम्) अपनी (भुरमाणम्) पुष्टि कराने वाले (भुज्युम्) भोजन करने योग्य पदार्थ को (विभिः) पक्षियों ने (गतम्) पाये हुए समान (स्वयुक्तिभिः) अपनी रीतियों से (पितृभ्यः) राज्य की पालना करने हारे वीरों के लिये (निवहन्ता) निरन्तर पहुँचाते हुए (महि) अतीव (अवः) रक्षा करने वाले पदार्थ और (वर्त्तिः) जो सेनासमूह (चेति) जाना जाय उस को भी लेकर (दिवोदासाय) विद्या का प्रकाश देने वाले सेनाध्यक्ष के लिये (विजेन्यम्) जीतने योग्य शत्रुसेनासमूह को (आ, यासिष्टम्) प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—सेनापतियों से जो सेनासमूह हृष्टपुष्ट अर्थात् चैनचान से भरा पूरा खाने पीने से पुष्ट अपने को चाहता हुआ जान पड़े उस को अनेक प्रकार के भोग और अच्छी सिखावट से युक्त कर अर्थात् उक्त पदार्थ उन को दे कर आगे होने वाले लाभ के लिये प्रवृत्त करा ऐसे सेनासमूह से युद्ध कर शत्रु जन जीते जा सकते हैं ॥ ४ ॥

युवोरश्विना वपुषे युवायुजं रथं वाणी येमतुरस्य शर्ध्यम् ।
आ वां पतित्वं सख्याय जग्मुषी योषावृणीत जेन्या युवां पती ॥५॥

पदार्थ—हे (अश्विना) सभासेनाधीशो ! (युवोः) तुम अपने (शर्ध्यम्) बलों से युक्त (युवायुजम्) तुम ने जोड़े (रथम्) मनोहर सेना आदि युक्त यान को (अस्य) इस राजकार्य के बीच में स्थिर हुए (वाणी) उपदेश करने वालों के समान (वपुषे) अच्छे रूप के होने के लिये (येमतुः) नियम में रखते हो (वाम्) तुम दोनों के (सख्याय) मित्रपन अर्थात् अतीव प्रीति के लिये (जेन्या) नियम करते हुओं में श्रेष्ठ (पती) पालना करने हारे (युवाम्) तुम्हारे साथ (पतित्वम्) पतिभाव को (जग्मुषी) प्राप्त होने वाली (योषा) यौवन अवस्था से परिपूर्ण ब्रह्मचारिणी युवती स्त्री तुम में से अपने मन से चाहे हुए एक पति को (आ. अवृणीत) अच्छे प्रकार वरे ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ब्रह्मचर्य्य करके यौवन अवस्था को पाए हुए विदुषी कुमारी कन्या अपने को प्यारे पति को पाय निरन्तर उसकी सेवा करती है और जैसे ब्रह्मचर्य को किए ज्वान पुरुष अपनी प्रीति के अनुकूल चाही हुई स्त्री को पाकर आनन्दित होता है वैसे ही सभा और सेनापति सदा होवें ॥ ५ ॥

युवं रेभं परिषूतेरुरुष्यथो हिमेन घर्मं परितप्तमत्रये ।
युवं शयोरवसं पिप्यथुर्गवि प्र दीर्घेण वन्दनस्तार्यायुषा ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे सब विद्याओं में व्याप्त स्त्री पुरुषो ! जैसे (युवम्) तुम दोनों (अत्रये) आध्यात्मिक अधिभौतिक अधिदैविक ये तीन दुःख जिस में नहीं हैं उस उत्तम सुख के लिये (परिसूतेः) सब ओर से दूसरे विद्या जन्म में प्रसिद्ध हुए विद्वान् से विद्या को पाये हुए (परितप्तम्) सब प्रकार क्लेश को प्राप्त (रेभम्) समस्त विद्या की प्रशंसा करने वाले विद्वान् मनुष्य को (हिमेन) शीत से (घर्मम्) घाम के समान (उरुष्यथः) पालो अर्थात् शीत से घाम जैसे बचाया जावे वैसे पालो (युवम्) तुम दोनों (गवि) पृथिवी में (शयोः) सोते हुए की (अवसम्) रक्षा आदि को (पिप्यथुः) बढ़ाओ (वन्दनः) प्रशंसा करने योग्य व्यवहार (दीर्घेण) लम्बी बहुत दिनों की (आयुषा) आयु से तुम दोनों ने (तारि) पार किया वैसा हम लोग भी (प्र) प्रयत्न करें ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विवाह किये हुए स्त्री पुरुषो ! जैसे शीत से गरमी मारी जाती है वैसे अविद्या को विद्या

से मारो जिससे आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक ये तीन प्रकार के दुःख नष्ट हों। जैसे धार्मिक राजपुरुष चोर आदि को दूर कर सोते हुए प्रजाजनों की रक्षा करते हैं और जैसे सूर्य्य चन्द्रमा सब जगत् को पुष्टि देकर जीवने के आनन्द को देने वाले हैं वैसे इस जगत् में प्रवृत्त होओ ॥ ६ ॥

युवं वन्दनं निर्ऋतं जरण्यया रथं न दस्रा करणा समिन्वथः ।
क्षेत्रादा विप्रं जनथो विपन्यया प्र वामत्र विधते दंसना भुवत् ॥७॥

पदार्थ—हे (करणा) उत्तम कर्मों के करने वा (दस्रा) दुःख दूर करने वाले स्त्री पुरुषो ! (युवम्) तुम दोनों (जरण्यया) विद्यावृद्ध अर्थात् अतीव विद्या पढ़े हुए विद्वानों के योग्य विद्या से युक्त (निर्ऋतम्) जिस में निरन्तर सत्य विद्यमान (वन्दनम्) प्रशंसा करने योग्य (विप्रम्) विद्या और अच्छी शिक्षा के योग से उत्तम बुद्धि वाले विद्वान् को (रथम्) विमान आदि यान के (न) समान (समिन्वथः) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ (क्षेत्रात्) गर्भ के ठहराने की जगह से उत्पन्न हुए सन्तान के समान अपने निवास से उत्तम काम को (आ, जनथः) अच्छे प्रकार प्रकट करो जो (अत्र) इस संसार में (वाम्) तुम दोनों का गृहाश्रम के बीच सम्बन्ध (प्र, भुवत्) प्रबल हो उस में (विपन्यया) प्रशंसा करने योग्य धर्म की नीति से युक्त (दंसना) कामो को (विधते) विधान करने को प्रवृत्त हुए मनुष्य के लिये उत्तम राज्य के अधिकारों को देओ ॥ ७ ॥

भावार्थ—विचार करने वाले स्त्रीपुरुष जन्म से लेके जब तक ब्रह्मचर्य्य से समस्त विद्या ग्रहण करें तब तक उत्तम शिक्षा देकर सन्तानों को यथायोग्य व्यवहारों में निरन्तर युक्त करें ॥ ७ ॥

अगच्छतं कृपमाणं परावति पितुः स्वस्य त्यजसा निबाधितम् ।
स्वर्वतीरित ऊतीर्युवोरह चित्रा अभीके अभवन्नभिष्टयः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे विद्या के विचार में रमे हुए स्त्री पुरुषो ! आप (स्वस्य) अपने (पितुः) पिता के समान वर्त्तमान पढ़ाने वाले से (परावति) दूर देश में भी ठहरे और (त्यजसा) संसार के सुख को छोड़ने से (निबाधितम्) कष्ट पाते हुए (कृपमाणम्) कृपा करने के शील वाले संन्यासी को नित्य (अगच्छतम्) प्राप्त होओ (इतः) इसी यति से (युवोः) तुम दोनों के (अभीके) समीप में (अह) निश्चय से (चित्राः) अद्भुत (अभिष्टयः) चाही हुई (स्वर्वतीः) जिन में प्रशंसित सुख विद्यमान हैं (ऊतीः) वे रक्षा आदि कामना (अभवन्) सिद्ध हों ॥ ८ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य पूरी विद्या जानने और शास्त्रसिद्धान्त में रमने

वाले राग द्वेष और पक्षपातरहित सब के ऊपर कृपा करते सर्वथा सत्ययुक्त असत्य को छोड़े इन्द्रियों को जीते और योग के सिद्धान्त को पाये हुए अगले पिछले व्यवहार को जानने वाले जीवन्मुक्त संन्यास के आश्रम में स्थित संसार में उपदेश करने के लिये नित्य भ्रमते हुए वेदविद्या के जानने वाले संन्यासीजन को पाकर धर्म अर्थ काम और मोक्षों की सिद्धियों को विधान के साथ पावें। ऐसे संन्यासी आदि उत्तम विद्वान् के सङ्ग और उपदेश के सुने विना कोई भी मनुष्य यथार्थ बोध को नहीं पा सकता ॥ ८ ॥

उत स्या वां मधुमन्मक्षिकारपन्मदे सोमस्यौशिजो हुवन्यति ।
युवं दधीचो मन आ विवासथोऽथा शिरः प्रति वामश्व्यं वदत् ॥९॥

पदार्थ—हे मंगलयुक्त राजा और प्रजाजनो ! (**युवम्**) तुम दोनों जो (**औशिजः**) मनोहर उत्तम पुरुष का पुत्र संन्यासी (**मदे**) मद के निमित्त प्रवर्त्तमान (**स्या**) वह (**मक्षिका**) शब्द करने वाली माखी जैसे (**अरपत्**) गूंजती है वैसे (**वाम्**) तुम दोनों को (**मधुमत्**) मधुमत् अर्थात् जिस में प्रशंसित गुण हैं उस व्यवहार के तुल्य (**हुवन्यति**) अपने को देते लेते चाहता है उस (**सोमस्य**) धर्म्म की प्रेरणा करने और (**दधीचः**) विद्या धर्म की धारणा करने हारे के तीर से (**मनः**) विज्ञान को (**आ, विवासथः**) अच्छे प्रकार सेवो (**अथ**) इसके अनन्तर (**उत**) तर्क वितर्क से वह (**वाम्**) तुम दोनों के प्रति प्रीति से इस ज्ञान को और (**अश्व्यम्**) विद्या में व्याप्त हुए विद्वानों में उत्तम (**शिरः**) शिर के समान प्रशंसित व्याख्यान को (**प्रति, वदत्**) कहे ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे माखी पृथिवी में उत्पन्न हुए वृक्ष वनस्पतियों से रस, जिसको सहत कहते हैं उसको, लेकर अपने निवासस्थान में इकट्ठा कर आनन्द करती है वैसे ही योगविद्या के ऐश्वर्य को प्राप्त सत्य उपदेश से सुख का विधान करने वाले ब्रह्म विचार में स्थिर विद्वान् संन्यासी के समीप से सत्यशिक्षा को सुन मान और विचार के सर्वदा तुम लोग सुखी होओ ॥ ९ ॥

युवं पेदवे पुरुवारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः ।
शर्य्यैरभिद्युं पृतनासु दुष्टरं चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम् ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) सब विद्याओं में व्याप्त सभा सेनाधीशो ! (**युवम्**) तुम दोनों (**पेदवे**) पहुँचाने वा जाने को (**स्पृधाम्**) शत्रुओं को ईर्ष्या से बुलाने वालों की (**पृतनासु**) सेनाओं में (**चर्कृत्यम्**) निरन्तर करने योग्य (**श्वेतम्**)

अतीव गमन करने को बढ़े हुए (**पुरुवारम्**) जिससे कि बहुत लेने योग्य काम होते हैं (**दुष्टरम्**) जो शत्रुओं से दुःख के साथ उलांघा जा सकता (**चर्षणीसहम्**) जिससे मनुष्य शत्रुओं को सहते जो (**शर्य्यैः**) तोड़ने फोड़ने के योग्य पेंचों से बांधा वा (**अभिद्युम्**) जिस सब ओर बिजुली की आग चमकती इस (**इन्द्रमिव**) सूर्य के प्रकाश के समान वर्त्तमान (**तरुतारम्**) संदेशों को तारने अर्थात् इधर उधर पहुँचाने वाले तारयन्त्र को (**दुवस्यथः**) सेवो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे मनुष्यों से बिजुली से सिद्ध की हुई तारविद्या से चाहे हुए काम सिद्ध किये जाते हैं वैसे ही संन्यासी के संग से समस्त विद्याओं को पाकर धर्म आदि काम करने को समर्थ होते हैं । इन्हीं दोनों से व्यवहार और परमार्थसिद्धि करी जा सकती है इससे यत्न के साथ तडित्—तारविद्या अवश्य सिद्ध करनी चाहिये ॥ १० ॥

इस सूक्त में राजाप्रजा संन्यासी महात्माओं की विद्या के विचार का आचरण कहने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये ॥

यह एकसौ उन्नीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

उशिक्पुत्रः कक्षीवानृषिः । अश्विनौ देवते । १ । १२ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री । २ भुरिग्गायत्री । १० गायत्री । ११ पिपीलिकामध्याविराड्गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः । ३ स्वराट् ककुबुष्णिक् । ५ आर्ष्युष्णिक् । ६ विराडार्ष्युष्णिक् । ८ भुरिगुष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः । ४ आर्ष्यनुष्टुप् । ७ स्वराडार्ष्यनुष्टुप् । ९ भुरिगनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

का रा॑धद्धोत्रा॑श्विना वां को वां जोष॑ उ॒भयोः॑ ।
क॒था वि॑धा॒त्यप्र॑चेताः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) गृहाश्रम धर्म में व्याप्त स्त्री पुरुषो ! (**वाम्**) तुम (**उभयोः**) दोनों की (**का**) कौन (**होत्रा**) सेना शत्रुओं के बल को लेने और उत्तम जीत देने की (**राधत्**) सिद्धि करे (**वाम्**) तुम दोनों के (**जोषे**) प्रीति उत्पन्न करनेहारे व्यवहार में (**कथा**) कैसे (**कः**) कौन (**अप्रचेताः**) विद्या विज्ञान रहित अर्थात् मूढ़ शत्रुहार को (**विधाति**) विधान करे ॥ १ ॥

भावार्थ—सभासेनाधीश शूर और विद्वान् के व्यवहारों को जानने हारों के साथ अपना व्यवहार करें फिर शूर और विद्वान् के हार देने और उन का जीत को रोकने को समर्थ हों कभी किसी को मूढ़ के सहाय से प्रयोजन नहीं सिद्ध होता इस से सब दिन विद्वानों से मित्रता रक्खें ॥ १ ॥

विद्वांसाविद्दुरः पृच्छेदविद्वानित्थापरो अचेताः ।
नू चिन्नु मर्त्ते अक्रौ ॥ २ ॥

पदार्थ—जैसे (अचेताः) अज्ञान (अविद्वान्) मूर्ख (विद्वांसौ) दो विद्यावान् पण्डितजनों को (दुरः) शत्रुओं के मारनें वा मन को अत्यन्त क्लेश देनेहारी बातों को (पृच्छेत्) पूछे (इत्था) ऐसे (अपरः) और विद्वान् महात्मा अपने ढङ्ग से (इत्) ही (नु) शीघ्र पूछे (अक्रौ) नहीं करने वाले (मर्त्ते) मनुष्य के निमित्ति (चित्) भी (नु) शीघ्र पूछे जिससे यह आलस्य को छोड़ के पुरुषार्थ में प्रवृत्त हो ॥ २ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वान् विद्वानों की सम्मति से वर्त्ताव वर्त्तें वैसे और भी वर्त्तें । सदैव विद्वानों को पूछ कर सत्य और असत्य का निर्णय कर आचरण करें और झूठ को त्याग करें इस बात में किसी को कभी आलस्य न करना चाहिये क्योंकि विना पूछे कोई नहीं जानता है इससे किसी को मूर्खों के उपदेश पर विश्वास न लाना चाहिये ॥ २ ॥

ता विद्वांसा हवामहे वां ता नो विद्वांसा मन्म वोचेतमद्य ।
प्रार्चद्दयमानो युवाकुः ॥ ३ ॥

पदार्थ—जो (विद्वांसा) पूरी विद्या पढ़े उत्तम आप्त अध्यापक तथा उपदेशक विद्वान् (अद्य) इस समय में (नः) हम लोगों के लिये (मन्म) मानने योग्य उत्तम वेदों में कहे हुए ज्ञान का (वोचेतम्) उपदेश करें (ता) उन समस्त विद्या से उत्पन्न हुए प्रश्नों के उत्तर देने और (विद्वांसा) सब उत्तम विद्याओं के जताने हारे (वाम्) तुम दोनों विद्वानों को हम लोग (हवामहे) स्वीकार करते हैं जो (दयमानः) सब के ऊपर दया करता हुआ (युवाकुः) मनुष्यों को समस्त विद्याओं के साथ संयोग कराने हारा मनुष्य (ता) उन तुम दोनों विद्वानों का (प्र, आर्चत्) सत्कार करे उस का तुम सत्कार करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस संसार में जो जिसके लिये सत्य विद्याओं को देवे वह उस को मन वाणी और शरीर से सेवे और जो कपट से विद्या को छिपावे उस को निरन्तर तिरस्कार करे ऐसे सब लोग मिल मिला के विद्वानों का

मान और मूर्खों का अपमान निरन्तर करें जिस से सत्कार को पाये हुए विद्वान् विद्या के प्रचार करने में अच्छे अच्छे यत्न करें और अपमान को पाये हुए मूर्ख भी करें ॥ ३ ॥

वि पृच्छामि पाक्या३ न देवान्वषट्कृतस्याद्भुतस्य दस्रा । पातं च सह्यसो युवं च रभ्यसो नः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (दस्रा) दुःखों के दूर करने पढ़ाने और उपदेश करने हारे विद्वानो ! मैं (युवम्) तुम दोनों को (सह्यसः) अतीव विद्याबल से भरे हुए [रभ्यसः) अत्यन्त उत्तम पुरुषार्थ युक्त (पाक्या) विद्या और योग के अभ्यास से जिन की बुद्धि पक गई उन (देवान्) विद्वानों के (न) समान (वषट्कृतस्य) क्रिया से सिद्ध किये हुए शिल्पविद्या से उत्पन्न होने वाले (अद्भुतस्य) आश्चर्य रूप काम के विज्ञान के लिये प्रश्नों को (वि, पृच्छामि) पूछता हूँ (च) और तुम दोनों उनके उत्तर देवो जिस से मैं तुम्हारी सेवा करता हूं (च) और तुम (नः) हमारी (पातम्) रक्षा करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—विद्वान् जन नित्य बालक आदि वृद्ध पर्य्यन्त मनुष्यों को सिद्धान्त विद्याओं का उपदेश करें जिससे उनकी रक्षा और उन्नति होवे और वे भी उनकी सेवा कर अच्छे स्वभाव से पूछ कर विद्वानों के दिये हुए समाधानों को धारण करें ऐसे हिलमिल के एक दूसरे के उपकार से सब सुखी हों ॥ ४ ॥

प्र या घोषे भृगवाणे न शोभे यया वाचा यजति पज्रियो वाम् । प्रैषयुर्न विद्वान् ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे समस्त विद्याओं में रमे हुए पढ़ाने और उपदेश करने हारे विद्वानो ! (पज्रियः) पाने योग्य बोधों को प्राप्त (इषयुः) सब जनों के अभीष्ट सुख को प्राप्त होने वाला मनुष्य (विद्वान्) विद्यावान् सज्जन के (न) समान (यया) जिस (वाचा) वाणी से (वाम्) तुम्हारा (प्र, यजति) अच्छा सत्कार करता है उस वाणी से मैं (शोभे) शोभा पाऊं (प्र) जो विदुषी स्त्री (भृगवाणे) अच्छे गुणों से पक्की बुद्धि वाले विद्वान् के समान आचरण करने वाला (घोषे) उत्तम वाणी के निमित्त सत्कार करती (न) सी दीखती है उस वाणी से मैं उक्त स्त्री का (प्र) सत्कार करूं ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे पढ़ाने और उपदेश करने हारे विद्वानो ! आप उत्तम शास्त्र जानने हारे श्रेष्ठ सज्जन के समान सब के सुख के लिये नित्य प्रवृत्त रहो ऐसे विदुषी स्त्री भी हो । सब मनुष्य विद्या-

धर्म और अच्छे शीलयुक्त होते हुए निरन्तर शोभायुक्त हों । कोई विद्वान् मूर्ख स्त्री के साथ विवाह न करे और न कोई पढ़ी स्त्री मूर्ख के साथ विवाह करे, किन्तु मूर्ख मूर्खा से और विद्वान् मनुष्य विदुषी स्त्री से सम्बन्ध करें ॥ ५ ॥

श्रुतं गायत्रं तकवानस्याहं चिद्धि रिरेभाश्विना वाम् ।
आक्षी शुभस्पती दन् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (**अक्षी**) रूपों के दिखाने हारी आँखों के समान वर्त्तमान (**शुभस्पती**) धर्म के पालने और (**अश्विना**) विद्या की प्राप्ति कराने वा उपदेश करनेहारे विद्वानो ! (**वाम्**) तुम्हारे तीर से (**तकवानस्य**) विद्या पाये विद्वान् के (**चित्**) भी (**गायत्रम्**) उस ज्ञान को जो गाने वाले की रक्षा करता है वा (**श्रुतम्**) सुने हुए उत्तम व्यवहार को (**आ, दन्**) ग्रहण करता हुआ (**अहम्**) मैं (**हि**) ही (**रिरेभ**) उपदेश करूं ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि जो जो उत्तम विद्वानों से पढ़ा वा सुना है उस उस को औरों को नित्य पढ़ाया और उपदेश किया करें । मनुष्य जैसे औरों से विद्या पावें वैसे ही देवें क्योंकि विद्यादान के समान कोई और धर्म बड़ा नहीं है ॥ ६ ॥

युवं ह्यास्तं महो रन्युवं वा यन्निरततंसतम् ।
ता नो वसू सुगोपा स्यातं पातं नो वृकादघायोः ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (**वसू**) निवास कराने हारे अध्यापक उपदेशको ! (**रन्**) औरों को सुख देते हुए जो (**युवम्**) तुम (**यत्**) जिस पर (**आस्तम्**) बैठो (**वा**) अथवा (**युवम्**) तुम दोनों (**नः**) हम लोगों के (**सुगोपा**) भली भांति रक्षा करने हारे (**स्यातम्**) होओ वे (**महः**) बड़ा (**अघायोः**) जोकि अपने को अन्याय करने से पाप चाहता (**वृकात्**) उस चोर डाकू से (**नः**) हम लोगों को (**पातम्**) पालो और (**ता**) वे (**हि**) ही आप दोनों (**निरततंसतम्**) विद्या आदि उत्तम भूषणों से परिपूर्ण शोभायमान करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे सभा सेनाधीश चोर आदि के भय से प्रजाजनों की रक्षा करें वैसे ये भी सब प्रजाजनों की पालना करने योग्य होवें । सब अध्यापक उपदेशक तथा शिक्षक आदि मनुष्य धर्म में स्थिर हुए अधर्म का विनाश करें ॥ ७ ॥

मा कस्मै धातमभ्यमित्रिणे नो माकुत्रा नो गृहेभ्यो धेनवो गुः ।
स्तनाभुजो अशिश्वीः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे रक्षा करने हारे सभासेनाधीशो ! तुम लोग (कस्मै) किसी (अमित्रिणे) ऐसे मनुष्य के लिये कि जिस के मित्र नहीं अर्थात् सब का शत्रु (नः) हम लोगों को (मा) मत (अभिधातम्) कहो आप की रक्षा से (नः) हम लोगों की ((स्तनाभुजः) दूध भरे हुए थनों से अपने बछड़ों समेत मनुष्य आदि प्राणियों को पालती हुई (धेनवः) गायें (अशिश्वीः) बछड़ों से रहित अर्थात् वन्ध्या (मा) मत हों और वे हमारे (गृहेभ्यः) घरों से (अकुत्र) विदेश में मत (गुः) पहुँचें ॥ ८ ॥

भावार्थ—प्रजाजन राजजनों को ऐसी शिक्षा देवें कि हम लोगों को शत्रुजन मत पीड़ा दें और हमारे गौ, बैल, घोड़े आदि पशुओं को न चोर लें ऐसा आप यत्न करो ॥ ८ ॥

दुहीयन् मित्रधितये युवाकु राये च नो मिमीतं वाजवत्यै ।
इषे च नो मिमीतं धेनुमत्यै ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे सब विद्याओं में व्याप्त सभासेनाधीशो ! तुम दोनों जो गौयें (दुहीयन्) दूध आदि से पूर्ण करती हैं उन को (नः) हमारे (मित्रधितये) जिससे मित्रों की धारणा हो तथा (युवाकु) सुख से मेल वा दुःख से अलग होना हो उस (राये) धन के (च) और जीवने के लिये (मिमीतम्) मानो तथा (वाजवत्यै) जिस में प्रशंसित ज्ञान वा (धेनुमत्यै) गौ का संबन्ध विद्यमान है उस के (च) और (इषे) इच्छा के लिये (नः) हम को(मिमीतम्) प्रेरणा देओ अर्थात् पहुँचाओ ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो गौ आदि पशु मित्रों की पालना ज्ञान और धन के कारण हों उन को मनुष्य निरन्तर राखें और सब को पुरुषार्थ के लिये प्रवृत्त करें जिस से सुख का मेल और दुःख से अलग रहें ॥ ९ ॥

अश्विनोरसनं रथमनश्वं वाजिनीवतोः । तेनाहं भूरि चाकन ॥१०॥

पदार्थ—(अहम्) मैं (वाजिनीवतोः) जिन के प्रशंसित विज्ञानयुक्त सभा और सेना विद्यमान हैं उन (अश्विनोः) सभासेनाधीशों के (अनश्वम्) अनश्व अर्थात् जिस में घोड़ा आदि नहीं लगते (रथम्) उस रमण करने योग्य विमानादि यान का (असनम्) सेवन करूं और (तेन) उस से (भूरि) बहुत (चाकन) प्रकाशित होऊं ॥ १० ॥

भावार्थ—जो भूमि जल और अन्तरिक्ष में चलने के लिये विमान आदि यान बनाये जाते हैं उन में पशु नहीं जोड़े जाते किन्तु वे पानी और अग्नि के कलायन्त्रों से चलते हैं ॥ १० ॥

अयं समह मा तनूह्याते जनाँ अनु । सोमपेयं सुखो रथः ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (समह) सत्कार के साथ वर्त्तमान विद्वान् ! आप जो (अयम्) यह (सुखः) सुख अर्थात् जिस में अच्छे अच्छे अवकाश तथा (रथः) रमण विहार करने के लिये जिस में स्थित होते वह विमान आदि यान है जिस से पढ़ाने और उपदेश करने हारे (अनूह्याते) अनुकूल एक देश से दूसरे देश को पहुँचाए जाते हैं उस से (मा) मुझे (जनान्) वा मनुष्यों अथवा (सोमपेयम्) ऐश्वर्य्ययुक्त मनुष्यों के पीने योग्य उत्तम रस को (तनु) विस्तारो अर्थात् उन्नति देओ ॥ ११॥

भावार्थ—जो अत्यन्त उत्तम अर्थात् जिस से उत्तम और न बन सके उस यान का बनाने वाला शिल्पी हो वह सब को सत्कार करने योग्य है ॥ ११ ॥

अध स्वप्नस्य निर्विदेऽभुञ्जतश्च रेवतः ।
उभा ता बस्रि नश्यतः ॥ १२ ॥

पदार्थ—मैं (स्वप्नस्य) नींद (अभुञ्जतः) आप भी जो नहीं भोगता उस (च) और (रेवतः) धनवान् पुरुष के निकट से (निर्विदे) उदासीन भाव को प्राप्त होऊं (अध) इस के अनन्तर जो (उभा) दो पुरुषार्थहीन हैं (ता) वे दोनों (बस्रि) सुख के रुकने से (नश्यतः) नष्ट होते हैं ॥ १२ ॥

भावार्थ—जो ऐश्वर्यवान् न देने वाला जो दरिद्री उदारचित्त है वे दोनों आलसी होते हुए दुःख भोगने वाले निरन्तर होते हैं इस से सब को पुरुषार्थ के निमित्त अवश्य यत्न करना चाहिये ॥ १२ ॥

इस सूक्त में प्रश्नोत्तर पढ़ने पढ़ाने और राजधर्म के विषय का वर्णन होने से इस के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये ॥

यह एकसौबीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

औशिजः कक्षीवान् ऋषिः । विश्वेदेवा इन्द्रश्च देवताः । १ । ७ । १३ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । ८ । १० त्रिष्टुप् । ३ । ४ । ६ । १२ । १४ । १५ विराट् त्रिष्टुप् । ५ । ६ । ११ निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कदित्था नृँः पात्रं देवयतां श्रवद्गिरो अङ्गिरसां तुरण्यन् ।
प्र यदानड्विश आ हर्म्यस्योरु क्रंसते अध्वरे यजत्राः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे पुरुष ! तू (अध्वरे) न विनाश करने योग्य प्रजापालन रूप व्यवहार मे (यजत्रः) सङ्ग करने वाला (तुरण्यन्) शीघ्रता करता हुआ जैसे ज्ञान चाहने हारा (नृ्न्) सिखाने योग्य बालक वा मनुष्यों की (पात्रम्) पालन करे तथा (देवयताम्) चाहते (अङ्गिरसाम्) और विद्या के सिद्धान्त रस को पाये हुए विद्वानों की (यत्) जिन (गिरः) वेदविद्या की शिक्षारूप वाणियों को (श्रवत्) सुने उन को (इत्था) इस प्रकार से (कत्) कब सुनेगा और जैसे धर्मात्मा राजा (हर्म्यस्य) न्याय घर के बीच वर्त्तमान हुआ विनय से (विशः) प्रजाजनों को (प्रानट्) प्राप्त होवे (उरु) और बहुत (आ, क्रंसते) आक्रमण करे अर्थात् उन के व्यवहारों में बुद्धि को दौड़ावे इस प्रकार का कब होगा ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है । हे स्त्रीपुरुषो ! जैसे शास्त्रवेत्ता विद्वान् सब मनुष्यादि को सत्य बोध कराते और झूठ से रोकते हुए उत्तम शिक्षा देते हैं वैसे अपने सन्तान आदि को आप निरन्तर अच्छी शिक्षा देओ जिससे तुम्हारे कुल में अयोग्य सन्तान कभी न उत्पन्न हों ॥१॥

स्तम्भीद्ध द्यां स धरुणं प्रुषायदृभुर्वाजाय द्रविणं नरो गोः ।
अनु स्वजां महिषश्चक्षत व्रां मेनामश्वस्य परि मातरं गोः ॥ २ ॥

पदार्थ—जैसे (महिषः) बड़ा सूर्य्य (गोः) भूमि का धारण करने वाला है वैसे (ऋभुः) सकल विद्याओं से युक्त आप्त बुद्धि मेधावी (नरः) धर्म और विद्या की प्राप्ति कराने वाला सज्जन (वाजाय) विज्ञान वा अन्न के लिये (अश्वस्य) व्याप्त होने योग्य राज्य की (स्वजाम्) आप से उत्पन्न की गई (व्राम्) स्वीकार करने के योग्य (मातरम्) माता के समान पालने वाली (मेनाम्) विद्या और अच्छी शिक्षा से पाई हुई वाणी को (परि, चक्षत) सब ओर से कहे वा जैसे सूर्य्य (द्याम्) प्रकाश को (स्तम्भीत्) धारण करे वैसे (स, ह) वही (गोः) पृथिवी पर (द्रविणम्) धन को बढ़ा खेत को (धरुणम्) जल के समान (अनु, प्रुषायत्) सींचा करें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो आप्त अर्थात्

उत्तम शास्त्री विद्वान् के सङ्ग से विद्या विनय और न्याय आदि का धारण करे वह सुख से बढ़े और बड़ा सत्कार करने योग्य हो ॥ २ ॥

नक्षद्धवमरुणीः पूर्व्यं राट् तुरो विशामङ्गिरसामनु द्यून् ।
तक्षद्वज्रं नियुतं तस्तम्भद् द्यां चतुष्पदे नर्याय द्विपादे ॥ ३ ॥

पदार्थ—जो (तुरः) तुरन्त आलस्य छोड़े हुए विद्वान् मनुष्य (चतुष्पदे) गोआदि पशु वा (द्विपादे) मनुष्य आदि प्राणियों वा (नर्य्याय) मनुष्यों में अति उतम महात्माजन के लिये (अनु, द्यून्) प्रतिदिन (पूर्व्यम्) अगले विद्वानों ने अनुष्ठान किये हुए (हवम्) देने लेने योग्य और (अरुणीः) प्रातः समय की वेला लाल रंग वाली उजेली के समान राजनीतियों को (नक्षत्) प्राप्त हो (नियुतम्) नित्य कार्य में युक्त किये हुए (वज्रम्) शस्त्र अस्त्रों को (तक्षत्) तीक्षण करके शत्रुओं को मरे तथा उन के (द्याम्) विद्या और न्याय के प्रकाश का (तस्तम्भत्) निबन्ध करे वह (अङ्गिरसाम्) अङ्गों के रस अथवा प्राण के समान प्यारे (विशाम्) प्रजाजनों के बीच (राट्) प्रकाशमान राजा होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य विनय आदि से मनुष्य आदि प्राणी और गौ आदि पशुओं को व्यतीत हुए आप्त निष्कपट सत्यवादी राजाओं के समान पालते और अन्याय से किसी को नहीं मारते हैं वे ही सुखों को पाते हैं और नहीं ॥ ३ ॥

अस्य मदे स्वर्यं दा ऋतायापीवृतमुस्रियाणामनीकम् ।
यद्ध प्रसर्गे त्रिककुम्निवर्त्तदप द्रुहो मानुषस्य दुरो वः ॥ ४ ॥

पादर्थ—(यत्) जो (त्रिककुप्) मनुष्य ऐसा है कि जिस की पूर्व आदि दिशा सेना वा पढ़ाने और उपदेश करने वालों से युक्त हैं (अस्य) इस प्रत्यक्ष (मानुषस्य) मनुष्य के (उस्रियाणाम्) गौओं के (प्रसर्गे) उत्तमता से उत्पन्न कराने रूप (मदे) आनन्द के निमित्त (ऋताय) सत्य व्यवहार वा जल के लिये (अपीवृतम्) सुख और बलों से युक्त (स्वर्यम्) विद्या और अच्छी शिक्षा रूप वचनों में श्रेष्ठ (अनीकम्) सेना को (दाः) देवे तथा इन (द्रुहः) गो आदि पशुओं के द्रोही अर्थात् मारने हारे पशुहिंसक मनुष्यों को (निवर्त्तत्) रोके हिंसा न होने दे (दुरः) उक्त दुष्टों के द्वारे (अपः वः) बन्द कर देवे (ह) वही चक्रवर्त्ती राजा होने को योग्य है ॥ ४ ॥

भावार्थ—वेही राजपुरुष उत्तम होते हैं जो प्रजास्थ मनुष्य और गौ आदि प्राणियों के सुख के लिये हिंसक दुष्ट पुरुषों की निवृत्ति कर धर्म में

प्रकाशमान होते और जो परोपकारी होते हैं। जो अधर्म मार्गों को रोक धर्म मार्गों को प्रकाशित करते हैं वेही राजकामों के योग्य होते हैं ॥ ४ ॥

तुभ्यं पयो यत् पितरावनीतां राधः सुरेतस्तुरणे भुरण्यू ।
शुचि यत्ते रेक्ण आयजन्त सबर्दुघायाः पय उस्रियायाः ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे सज्जन ! (यत्) जिस (तुरणे) दूध आदि पदार्थ के पीने को जल्दी करते हुए (तुभ्यम्) तेरे लिये (भुरण्यू) धारण और पुष्टि करने वाले (पितरौ) माता पिता (सुरेतः)) जिस से उत्तम वीर्य उत्पन्न होता उस (पयः) दूध और (राधः) उत्तम सिद्धि करने वाले धन की (अनीताम्) प्राप्ति करावें और जैसे (यत्) दूध आदि के पीने को जल्दी करते हुए जिस (ते) तेरे लिये दयालु गौ आदि पशुओं को राखने वाले मनुष्य (सबर्दुघायाः) जिससे एकसा सुख धारण करना होता है उस दूध को पूरा करने हारी (उस्रियायाः) उत्तम पुष्टि देती हुई गौ के (शुचि) शुद्ध पवित्र (पयः) पीने योग्य दूध को (रेक्णः) प्रशंसित धन के समान (आ, अयजन्त) भली भांति देवें वैसे उन मनुष्यों की तू निरन्तर सेवा कर और उन के उपकार को कभी मत छोड़ ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग जैसे माता पिता और विद्वानों की सेवा से धर्म के साथ सुखों को प्राप्त होवें वैसे ही गौ आदि पशुओं की रक्षा से धर्म के साथ सुख पावें इन के मन के विरुद्ध आचरण को कभी न करें क्योंकि ये सब का उपकार करने वाले प्राणी हैं इससे ॥ ५ ॥

अध प्र जज्ञे तरणिर्ममत्तु प्र रोच्यस्या उषसो न सूरः ।
इन्दुर्येभिराष्ट स्वेदुहव्यैः स्रुवेण सिञ्चञ्जरणाभि धाम ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे अच्छे कामों के अनुष्ठान करने वाले मनुष्य ! आप (उषसः) प्रभात समय से (सूरः) सूर्य के (न) समान (येभिः) जिन से (स्वेदुहव्यैः) अपने देने लेने के योग्य दूध आदि पदार्थों से ऐश्वर्य्य अर्थात् उत्तम पदार्थ सिद्ध होते हैं उन से और (स्रुवेण) स्रुवा आदि के योग से (धाम) यज्ञभूमि को (अभिसिञ्चन्) सब ओर से सींचते हुए सज्जनों के समान (अस्याः) इस गौ के दूध आदि पदार्थों से (प्र, रोचि) संसार में भली भांति प्रकाशमान हो और (इन्दुः) ऐश्वर्य्ययुक्त (जरणा) प्रशंसित कामों को (आष्ट) प्राप्त हो (तरणिः) दुःख से पार पहुँचे हुए सुख का विस्तार करने अर्थात् बढ़ाने वाले आप (ममत्तु) आनन्द भोगो (अध) इस के अनन्तर (प्र, जज्ञे) प्रसिद्ध होओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। मनुष्य गौ आदि पशुओं को राख और उन की वृद्धि कर वैद्यकशास्त्र के अनुसार

इन पशुओं के दूध आदि को सेवते हुए वलिष्ठ और अत्यन्त ऐश्वर्ययुक्त निरन्तर हों, जैसे कोई हल पटेला आदि साधनों से युक्ति के साथ खेत को सिद्ध कर जल से सींचता हुआ अन्न आदि पदार्थों से युक्त होकर वल और ऐश्वर्य्य से सूर्य्य के समान प्रकाशमान होता है वैसे इन प्रशसा योग्य कामों को करते हुए प्रकाशित हों ॥ ६ ॥

स्विध्मा यद्वनधितिरपस्यात् सूरों अध्वरे परि रोधना गोः ।

यद्ध प्रभासि कृत्व्याँ अनु द्यूनर्नविशे पश्विषे तुराय ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे सज्जन मनुष्य ! तू ने (**यत्**) जो ऐसी उत्तम क्रिया कि (**स्विध्मा**) जिससे सुन्दर सुख का प्रकाश होता वह (**वनधितिः**) वनों की धारणा अर्थात् रक्षा किई और जो (**गोः**) गौ की (**रोधना**) रक्षा होने के अर्थ काम किये हैं उनसे तू (**अध्वरे**) जिस में हिंसा आदि दुःख नहीं हैं उस रक्षा के निमित्त (**कृत्व्यान्**) उत्तम कामों का (**अनु, द्यून्**) प्रतिदिन (**सूरः**) प्रेरणा देने वाले सूर्य लोक से समान (**अर्नविशे**) लढ़ा आदि गाड़ियों में जो बैठना होता उसके लिये और (**पश्विषे**) पशुओं के बढ़ने की इच्छा के लिये और (**तुराय**) शीघ्र जाने के लिये (**यत्**) जो (**ह**) निश्चय से (**प्रभासि**) प्रकाशित होता है सो आप (**पर्यपस्यात्**) अपने को उत्तम उत्तम कामों की इच्छा करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जो मनुष्य पशुओं की रक्षा और वढ़ने आदि के लिये वनों को राख उन्हीं में उन पशुओं को चरा दूध आदि का सेवन कर खेती आदि कामों को यथावत् करें वे राज्य के ऐश्वर्य से सूर्य के समान प्रकाशमान होते हैं और गौ आदि पशुओं के मारने वाले नहीं ॥ ७ ॥

अष्टा महो दिव आदो हरी इह द्युम्नासाहमभि योधान उत्सम् ।

हरिं यत्ते मन्दिनं दुक्षन् वृधे गोरभसमद्रिभिर्वाताप्यम् ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे राजन् ! (**ते**) तुम्हारे (**यत्**) जो (**योधानः**) युद्ध करने वाले (**वृधे**) सुखों के वढ़ने के लिये जैसे (**आदः**) रस आदि पदार्थ का भक्षण करने और (**अष्टा**) सब जगह व्याप्त होने वाला सूर्यलोक (**महः**) बड़ी (**दिवः**) दीप्ति से अपने (**हरी**) प्रकाश और आकर्षण को (**अद्रिभिः**) मेघ वा पर्वतों के साथ प्रचरित करता है वैसे (**इह**) इस संसार में (**उत्सम्**) कुए को बनाय (**द्युम्नसाहम्**) जिस से धन सहे जाते अर्थात् मिलते उस ((**हरिम्**) घोड़ा और (**मन्दिनम्**) मनोहर (**वाताप्यम्**) शुद्ध वायु से पाने योग्य (**गोरभसम्**)

गौओं के बड़प्पन को (अभि, दुक्षन्) सब प्रकार से पूर्ण करें वे आप को सत्कार करने योग्य हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! तुम जैसे सूर्य्य अपने प्रकाश से सब जगत् को आनन्द देकर अपनी आकर्षण शक्ति से भूगोल का धारण करता है वैसे ही नदी, सोता, कुआं, बावरी, तालाब आदि को बना कर वन वा पर्वतों में घास आदि को बढ़ा गौ और घोड़े आदि पशुओं की रक्षा और वृद्धि कर दूध आदि के सेवन से निरन्तर आनन्द को प्राप्त होओ ॥ ८ ॥

त्वमा॑य॒सं प्रति॑ वर्त्तयो॒ गोर्दि॒वो अश्मा॑नमु॒प॑नीतमृ॒भ्वा॑ ।

कुत्सा॑य॒ यत्र॑ पुरुहूत॒ वन्व॒ञ्छुष्ण॑मन॒न्तैः प॑रि॒याति॒ व॒धैः ॥ ९ ॥

पदार्थ हे (वन्वन्) अच्छे प्रकार सेवन करते और (पुरुहूत) बहुत मनुष्यों से ईर्ष्या के साथ बुलाये हुए मनुष्य ! (त्वम्) तू जैसे सूर्य (दिवः) दिव्य सुख देने हारे प्रकाश से अन्धकार को दूर करके (अश्मानम्) व्याप्त होने वाले (उपनीतम्) अपने समीप आये हुए मेघ को छिन्न भिन्न कर संसार में पहुँचाता है वैसे (ऋभ्वा) मेधावी अर्थात् धीरबुद्धि वाले पुरुष के साथ (आयसम्) लोहे से बनाये हुए शस्त्र अस्त्रों को ले के (कुत्साय) वज्र के लिये (शुष्णम्) शत्रुओं के पराक्रम को सुखाने हारे बल को धारण करता हुआ (यत्र) जहां गौओं के मारने वाले हैं वहां उन को (अनन्तैः) जिनकी संख्या नहीं उन (वधैः) गोहिंसकों को मारने के उपायों से (परियासि) सब ओर से प्राप्त होते हो उन को (गोः) गौ आदि पशुओं के समीप मे (प्रति, वर्त्तयः) लौटाओ भी ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे सूर्य मेघ को वर्षा और अन्धकार को दूर कर सब को हर्ष आनन्दयुक्त करता है वैसे गौ आदि पशुओं की रक्षा कर उनके मारने वालों को रोक निरन्तर सुखी होओ । यह काम बुद्धिमानों के सहाय के विना होने को संभव नहीं है इससे बुद्धिमानों के सहाय से ही उक्त काम का आचरण करो ॥ ९ ॥

पु॒रा यत् सूर॒स्तम॑सो॒ अपी॑तेस्त॒मद्रिवः फलि॒गं हे॒तिम॑स्य ।

शुष्ण॑स्य चि॒त् परि॑हितं॒ यदोजो॑ दि॒वस्परि॒ सुग्र॑थितं॒ तदादः॑ ॥ १० ॥

पदार्थ—(अद्रिवः) जिन के राज्य में प्रशंसित पर्वत विद्यमान हैं वैसे विख्यात हे राजन् ! आप जैसे (सूरः) सूर्य (फलीगम्) मेघ छिन्न भिन्न कर

(तमसः) अन्धकार के (अवीतेः) विनाश करनेहारे (दिवः) प्रकाश से प्रकाशित होता है वैसे अपनी सेना से (तम्) उस शत्रुबल को (आ, अदः) विदारो अर्थात् उस का विनाश करो (यत्) जिसको (पुरा) पहिले निवृत्त करते रहे हो उस को (सुग्रथितम्) अच्छा बांध कर ठहराओ (यत्) जो (अस्य) इस का (परिहितम्) सब ओर से सुख देने वाला (ओजः) बल है (तत्) उस को निवृत्त कर (शुष्णस्य) सुखाने वाले शत्रु के (परि) सब ओर से (चित्) भी (हेतिम्) वज्र को उस के हाथ से गिरा देओ जिस से यह गौओं का मारने वाला न हो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। हे राजपुरुषो ! जैसे सूर्य मेघ को मार और उस को भूमि में गिराय सब प्राणियों को प्रसन्न करता है वैसे ही गौओं के मारने वालों को मार गौ आदि पशुओं को निरन्तर सुखी करो ॥ १० ॥

अनु॑ त्वा म॒ही पाज॑सी अच॒क्रे द्यावा॒क्षामा॑ मदतामिन्द्र॒ कर्म॑न् ।
त्वं वृ॒त्रमा॒शया॑नं सि॒रासु॑ म॒हो वज्रे॑ण सिष्वपो व॒राहु॑म् ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्य को पाये हुए सभाध्यक्ष आदि सज्जन पुरुष ! (त्वम्) आप सूर्य जैसे (वृत्रम्) मेघ को छिन्न भिन्न करे वैसे (सिरासु) बन्धनरूप नाड़ियों में (महः) बड़े (वज्रेण) शस्त्र और अस्त्रों के समूह से (वराहुम्) धर्मयुक्त उत्तम व्यवहार वा धार्मिक जनों के मारने वाले दुष्ट शत्रु को मारके (आशयानम्) जिस ने सब ओर से गाढ़ी नींद पाई उसके समान (सिष्वपः) सुलाओ जिस से (मही) बड़े (पाजसी) रक्षा करने हारा और अपने प्रकाश करने में (अचक्रे) न रुके हुए (द्यावाक्षामा) सूर्य और पृथिवी (त्वा) आप को प्राप्त होकर उनमें से प्रत्येक (कर्मन्) राज्य के काम में तुम को अनुकूलता से आनन्द देवें ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। राजपुरुषों को चाहिये कि विनय और पराक्रम से दुष्ट शत्रुओं को बांध मार और निवार अर्थात् उन को धार्मिक मित्र बनाकर समस्त प्रजाजनों को अच्छे कामों में प्रवृत्त करा आनन्दित करें ॥ ११ ॥

त्वमि॑न्द्र॒ नर्यो॒ याँ अवो॒ नॄन् तिष्ठा॒ वात॑स्य सु॒युजो॒ वहि॑ष्ठान् ।
यं ते॑ का॒व्य उ॒शना॑ म॒न्दिनं॒ दाद्वृ॑त्र॒हणं॒ पार्यं॑ ततक्ष॒ वज्र॑म् ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) प्रजा पालने हारे (काव्यः) धीर उत्तम बुद्धिमान् के पुत्र (उशना) धर्म की कामना करने हारे (नर्य्यः) मनुष्यों में साधु श्रेष्ठ हुए जन !

(त्वम्) आप (यान्) जिन (वहिष्ठान्) अतीव विद्या धर्म की प्राप्ति कराने-हारे (वातस्य) प्राण के बीच योगाभ्यास से (सुयुजः) अच्छे युक्त योगी (नॄन्) धार्मिक जनों की (अवः) रक्षा करते हो उनके साथ धर्म के बीच (तिष्ठ) स्थिर होओ जो (ते) आप के लिये (यम्) जिस (वृत्रहणम्) शत्रुओं के मारने-वाले वीर (मन्दिनम्) प्रशंसा के योग्य (पार्य्यम्) जिस से पूर्ण काम बने उस मनुष्य को (दात्) देवे वा जो शत्रुओं पर (वज्रम्) अति तेज शस्त्र और अस्त्रों को (ततक्ष) फेंके उस उस के साथ भी धर्म से वर्त्तो ॥ १२ ॥

भावार्थ—जैसे राजपुरुष परमेश्वर की उपासना करने पढ़ने और उपदेश करने वाले तथा और उत्तम व्यवहारों में स्थिर प्रजा और सेनाजनों की रक्षा करें वैसे वे भी उनकी निरन्तर रक्षा किया करें ॥ १२ ॥

त्वं सूरो हरितो रामयो नॄन् भरच्चक्रमेतशो नायमिन्द्र ।
प्रास्य पारं नवतिं नाव्यानामपि कर्त्तमवर्त्तयोऽयज्यून् ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य के देने वाले सभाध्यक्ष ! (त्वम्) आप (अयम्) यह (सूरः) सूर्य्यलोक जैसे (हरितः) किरणों को वा जैसे (एतशः) उत्तम घोड़ा (चक्रम्) जिस से रथ ढुरकता है उस पहिये को यथायोग्य काम में लगाता है (न) वैसे (अयज्यून्) विषयों में न संग करने और (नॄन्) प्रजाजनों को धर्म की प्राप्ति कराने हारे मनुष्यों की (भरत्) पुष्टि और पालना करो तथा (नाव्यानाम्) नौकाओं से पार करने योग्य जो (नवतिम्) जल में चलने के लिये नब्बे रथ हैं उन को (पारम्) समुद्र के पार (प्रास्य) उत्तमता से पहुंचावो । तथा उन उक्त पुरुषार्थी पुरुषों को (अपि) भी (कर्त्तम्) कूंआ खुदाने और कर्म करने को (अवर्त्तयः) प्रवृत्त कराओ और आप यहां हम लोगो को सदा (रमयः) आनन्द से रमाओ ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमा और श्लेषालङ्कार हैं । जैसे सूर्य्य सब को अपने २ कामों में लगाता है वैसे उत्तम शास्त्र जानने वाले विद्वान् जन मूर्खजनों को शास्त्र और शारीर कर्म में प्रवृत्त करा सब सुखों को सिद्ध करावें ॥ १३ ॥

त्वं नो अस्या इन्द्र दुर्हणायाः पाहि वज्रिवो दुरितादभीके ।
प्र नो वाजान् रथ्यो३अश्वबुध्यानिषे यन्धि श्रवसे सूनृतायै ॥१४॥

पदार्थ—(वज्रिवः) जिस की प्रशंसित विशेष ज्ञानयुक्त नीति विद्यमान सो (इन्द्र) अधर्म का विनाश करने हारे हे सेनाध्यक्ष ! (रथ्यः) रथ का ले जाने वाला होता हुआ (त्वम्) तू (अभीके) संग्राम में (अस्याः) इस प्रत्यक्ष

(दुर्हणायाः) दुःख से मारने योग्य शत्रुओं की सेना और (दुरितात्) दुष्ट आचरण से (नः) हम लोगों की (पाहि) रक्षा कर तथा (इषे) इच्छा (श्रवसे) सुनना वा अन्न और (सूनृतायै) उत्तम सत्य तथा प्रिय वाणी के लिये (नः) हम लोगों के (अश्वबुध्यान्) अन्तरिक्ष में हुए अग्नि आदि पदार्थों को चलाने वा बढ़ाने को जो जानते उन्हें और (वाजान्) विशेष ज्ञान वा वेगयुक्त सम्बन्धियों को (प्र, यन्धि) भली भाँति दे ॥ १४ ॥

भावार्थ—सेनाधीश को चाहिये कि अपनी सेना को शत्रु के मारने से और दुष्ट आचरण से अलग रक्खे तथा वीरों के लिये बल तथा उनकी इच्छा के अनुकूल बल के बढ़ाने वाले पीने योग्य पदार्थ तथा पुष्कल अन्न दे उन को प्रसन्न और शत्रुओं को अच्छे प्रकार जीत कर प्रजा की निरन्तर रक्षा करें ॥ १४ ॥

मा सा ते॑ अ॒स्मत्सु॑म॒तिर्वि द॑स॒द्वाज॑प्रमह॒: समिषो॑ वरन्त ।
आ नो॑ भज मघव॒न्गोष्व॒र्यो मंहि॑ष्ठास्ते सध॒माद॑: स्याम ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे (वाजप्रमहः) विशेष ज्ञान वा विद्वानों ने अच्छे प्रकार सत्कार को प्राप्त किये (मघवन्) और प्रशंसित सत्कार करने योग्य धन से युक्त जगदीश्वर ! (ते) आप की कृपा से जो (सुमतिः) उत्तम बुद्धि है (सा) सो (अस्मत्) हमारे निकट से (मा) मत (वि, दसत्) विनाश को प्राप्त होवे सब मनुष्य (इषः) इच्छा और अन्न आदि पदार्थों को (सं, वरन्त) अच्छे प्रकार स्वीकार करें (अर्यः) स्वामी ईश्वर आप (नः) हम लोगों को (गोषु) पृथिवी वाणी धेनु और धर्म के प्रकाशों में (आ, भज) चाहो जिस से (मंहिष्ठाः) अत्यन्त सुख और विद्या आदि पदार्थों से वृद्धि को प्राप्त हुए हम लोग (ते) आप के (सधमादः) अति आनन्द सहित (स्याम) अर्थात् आप के विचार में मग्न हों ॥ १५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि उत्तम बुद्धि आदि की प्राप्ति के लिये परमेश्वर को स्वामी मानें और उसकी प्रार्थना करें। जिस से ईश्वर के जैसे गुण कर्म और स्वभाव हैं वैसे अपने सिद्ध करके परमात्मा के साथ आनन्द में निरन्तर स्थित हों ॥ १५ ॥

इस सूक्त में स्त्री पुरुष और राज प्रजा आदि के धर्म का वर्णन होने से पूर्व सूक्तार्थ के साथ इस अर्थ की सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह एकसौ इक्कीसवां सूक्त समाप्त हुआ ।

कक्षीवान् ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । १ । ५ । १४ भुरिक् पङ्क्तिः । ४ निचृत्पङ्क्तिः । ३ । १५ स्वराट्पङ्क्तिः । ६ विराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । ६ । १० । १३ विराट् त्रिष्टुप् ८ । १२ निचृत् त्रिष्टुप् । ७ । ११ त्रिष्टुप् च छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

प्र वः पान्तं रघुमन्यवोऽन्धो यज्ञं रुद्राय मीळ्हुषे भरध्वम् ।
दिवो अस्तोष्यसुरस्य वीरैरिषुध्येव मरुतो रोदस्योः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (रघुमन्यवः) थोड़े क्रोध वाले मनुष्यो ! (रोदस्योः) भूमि और सूर्य्यमण्डल में जैसे (मरुतः) पवन विद्यमान वैसे (इषुध्येव) जिसमें बाण धरे जाते उस धनुष से जैसे वैसे (वीरैः) वीर मनुष्यों के साथ वर्त्तमान तुम (मीळ्हुषे) सज्जनों के प्रति सुखरूपी वृष्टि करने और (रुद्राय) दुष्टों के रुलाने हारे सभाध्यक्षादि के लिये (वः) तुम लोगों की (पान्तम्) रक्षा करते हुए (यज्ञम्) सङ्गम करने योग्य उत्तम व्यवहार और (अन्धः) अन्न को तथा (दिवः) विद्या प्रकाशों जो कि (असुरस्य) अविद्वानों के सम्बन्ध में वर्त्तमान उपदेश आदि उनको जैसे (प्र, भरध्वम्) धारण वा पुष्ट करो वैसे मैं इसे तुम्हारे व्यवहार की (अस्तोषि) स्तुति करता हूं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पूर्णोपमा और वाचकलुप्तोपमा ये दोनों अलङ्कार हैं । जब मनुष्यों का योग्य पुरुषों के साथ अच्छा यत्न बनता है तब कठिन भी काम सहज से सिद्ध कर सकते हैं ॥ १ ॥

पत्नीव पूर्वहूतिं वावृधध्या उषासानक्ता पुरुधा विदाने ।
स्तरीर्नात्कं व्युतं वसाना सूर्य्यस्य श्रिया सुदृशी हिरण्यैः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे सरल स्वभावयुक्त उत्तम स्त्री ! तू (पत्नीव) जैसे यज्ञादि कर्म में साथ रहने वाली विद्वान् की स्त्री (ववृधध्यै) बुद्धि करने को अर्थात् गृहस्थाश्रम आदि व्यवहारों के बढ़ाने को (पूर्वहूतिम्) जिसका पहिले बुलाना होता अर्थात् सब कामों से जिसकी प्रथम सेवा करनी होती उस अपने पति को स्वीकार कर (पुरुधा) जो बहुत व्यवहार वा पदार्थों की धारणा करने हारे (विदाने) जाने जाते उन (उषासानक्ता) रात्रि दिन के समान वर्त्ते वैसी वर्त्ता कर तथा (सूर्यस्य) सूर्यमण्डल की (हिरण्यैः) सुवर्ण सी चिलकती हुई ज्योतियों और (श्रिया) उत्तम शोभा से (सुदृशी) जिस तेरा अच्छा दर्शन वह (अत्कम्) कुए के समान (व्युतम्) अनेक प्रकार बने हुए विस्तारयुक्त वस्त्र को (वसाना) पहिनती हुई (स्तरीः) जैसे कलायन्त्रादिकों के संयोग से ढांपी हुई नाव हों (न) वैसी निरन्तर हो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। पतिव्रता स्त्री विद्यमान अपने पति को प्रसन्न करती और स्त्रीव्रत अर्थात् नियम से अपनी स्त्री में रमने हारा पति जैसे दिनरात्रि सम्बन्ध से मिला हुआ वर्त्तमान है वैसे सम्बन्ध से वर्त्तमान कपड़े और गहने पहिने हुए सुशोभित धर्मयुक्त व्यवहार में यथावत् प्रयत्न करें ॥ २ ॥

ममत्तुं नः परिज्मा वसर्हा ममत्तु वातो अपां वृषण्वान् ।
शिशीतमिन्द्रापर्वता युवं नस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ॥ ३ ॥

पदार्थ—जैसे (**वसर्हा**) निवास कराने की योग्यता को प्राप्त होता और (**परिज्मा**) पाये हुए पदार्थों को सब ओर से खाता जलाता हुआ अग्नि (**नः**) हम लोगों को (**ममत्तु**) आनन्दित करावे वा (**अपाम्**) जलों की (**वृषण्वान्**) वर्षा कराने हारा (**वातः**) पवन हम लोगों को (**ममत्तु**) आनन्दयुक्त करावे। हे (**इन्द्रापर्वता**) सूर्य्य और मेघ के समान वर्त्तमान पढ़ाने और उपदेश करने वालो ! (**युवम्**) तुम दोनों (**नः**) हम लोगों को (**शिशीतम्**) अतितीक्ष्ण बुद्धि से युक्त करो वा (**विश्वे**) सब (**देवाः**) विद्वान् लोग (**नः**) हम लोगों के लिये (**वरिवस्यन्तु**) सेवन अर्थात् आश्रय करें वैसे (**तत्**) उन सब को सत्कार युक्त हम लोग निरन्तर करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य जैसे हम लोगों को प्रसन्न करें वैसे हम लोग भी उन मनुष्यों को प्रसन्न करें ॥ ३ ॥

उत त्या मे यशसा श्वेतनायै व्यन्ता पान्तौशिजो हुवध्यै ।
प्र वो नपातमपां कृणुध्वं प्र मातरा रास्पिनस्यायोः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (**मे**) मेरे (**यशसा**) उत्तम यश से (**श्वेतनायै**) प्रकाश के लिये (**व्यन्ता**) अनेक प्रकार के बल से युक्त (**पान्ता**) रक्षा करने वाले (**त्या**) वे पूर्वोक्त पढ़ाने और उपदेश करने हारे (**हुवध्यै**) हम लोगों के ग्रहण करने को (**मातरा**) मान करने हारे (**रास्पिनस्य**) ग्रहण करने योग्य (**आयोः**) जीवन अर्थात् आयुर्दा के बढ़ाने को (**प्र**) प्रवृत्त होते हैं तथा जैसे तुम लोग (**अपाम्**) जलों के (**नपातम्**) विनाशरहित मार्ग को वा जलों के न गिरने को (**प्र, कृणुध्वम्**) सिद्ध करो वैसे (**उत**) निश्चय से (**औशिजः**) कामना करते हुए का सन्तान मैं (**वः**) तुम लोगों की आयुर्दा को निरन्तर बढ़ाऊं ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे सुन्दर शिक्षा से हम लोगों की आयुर्दा को तुम बढ़ाओ वैसे हम भी तुम्हारी आयुर्दा की उन्नति किया करें ॥ ४ ॥

आ वो रुवण्युमौशिजो हुवध्यै घोषेव शंसमर्जुनस्य नंशे।
प्र वः पूष्णे दावन आँ अच्छा वोचेय वसुतातिमग्नेः॥ ५॥

पदार्थ—हे विद्वानो! (**औशिजः**) विद्या की कामना करने वाले का पुत्र मैं (**वः**) तुम लोगों के (**रुवण्युम्**) अच्छे कहे हुए उत्तम उपदेश के (**आ, हुवध्यै**) ग्रहण करने के लिये (**अर्जुनस्य**) रूप के (**शंसम्**) प्रशंसित व्यवहार को वा (**घोषेव**) विद्वानों की वाणी के समान दुःख के (**नंशे**) नाश और (**वः**) तुम लोगों की (**पूष्णे**) पुष्टि करने तथा (**दावने**) दूसरों को देने के लिये (**अग्नेः**) अग्नि के सकाश से जो (**वसुतातिम्**) धन उस को ही (**प्र, आ, अच्छा वोचेव**) उत्तमता से भली भांति अच्छा कहूँ॥ ५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे वैद्यजन सब के लिये आरोग्यपन देके रोगों को जल्दी दूर कराते वैसे सब विद्यावान् सब को सुखी कर अच्छी प्रतिष्ठा वाले करें॥ ५॥

श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमोत श्रुतं सदने विश्वतः सीम्।
श्रोतु नः श्रोतुरातिः सुश्रोतुः सुक्षेत्रा सिन्धुरद्भिः॥ ६॥

पदार्थ—हे (**मित्रावरुणा**) मित्र और उत्तम जन (**सुश्रोतुः, मे**) मुझ अच्छे सुनने वाले के (**इमा**) इन (**हवा**) देने लेने योग्य वचनों को (**श्रुतम्**) सुनो (**उत**) और (**सदने**) सभा वा (**विश्वतः**) सब ओर से (**सीम्**) मर्य्यादा में (**श्रुतम्**) सुनो अर्थात् वहाँ की चर्चा को समझो तथा (**अद्भिः**) जलों से जैसे (**सिन्धुः**) नदी (**सुक्षेत्रा**) उत्तम खेतों को प्राप्त हो वैसे (**श्रोतुरातिः**) जिसका सुनना दूसरे को देना है वह (**नः**) हम लोगों के वचनों को (**श्रोतु**) सुने॥ ६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वानों को चाहिये कि सब के प्रश्नों को सुन के यथावत् उनका समाधान करें॥ ६॥

स्तुषे सा वां वरुण मित्र रातिर्गवां शता पृक्षयामेषु पज्रे।
श्रुतरथे प्रियरथे दधानाः सद्यः पुष्टिं निरुन्धानासो अग्मन्॥ ७॥

पदार्थ—जैसे विद्वान् जन! (**पज्रे**) पदार्थों के पहुँचाने वाले (**श्रुतरथे**) सुने हुए रमण करने योग्य रथ वा (**प्रियरथे**) अति मनोहर रथ में (**सद्यः**) शीघ्र (**पुष्टिम्**) पुष्टि को (**दधानाः**) धारण करते और दुःख को (**निरुन्धानासः**) रोकते हुए (**अग्मन्**) जावें वैसे हे (**वरुण**) गुणों से उत्तमता को प्राप्त और (**मित्र**) मित्र तुम (**पृक्षयामेषु**) जो पूछे जाते उनके यम नियमों में (**गवां,**

शता) सैकड़ों वचनों को प्राप्त होओ । और जो तुम्हारी (रातिः) दान देने वाली स्त्री है (सा) वह (वाम्) तुम दोनों की (स्तुषे) स्तुति करती है वैसे मैं भी स्तुति करूं ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे इस संसार में विद्वान् जन पुरुषार्थ से अनेकों अद्भुत यानों को बनाते हैं वैसे औरों को भी बनाने चाहियें ॥ ७ ॥

अस्य स्तुषे महिमघस्य राधः सचा सनेम नहुषः सुवीराः ।
जनो यः पज्रेभ्यो वाजिनीवानश्वावतो रथिनो मह्यं सूरिः ॥ ८ ॥

पदार्थ – हे विद्वान् ! आप (अस्य) इस (अश्वावतः) बहुत घोड़ों से युक्त (रथिनः) प्रशंसित रथ और (महिमघस्य) प्रशंसा करने योग्य उत्तम धन वाले जन के (राधः) धन की (स्तुषे) स्तुति अर्थात् प्रशंसा करते हो उन आपके उस काम को (सुवीराः) सुन्दर शूरवीर मनुष्यों वाले हम लोग (सचा) सम्बन्ध से (सनेम) अच्छे प्रकार सेवें (यः) जो (नहुषः) शुभ अशुभ कामों से बंधा हुआ (जनः) मनुष्य (पज्रेभ्यः) एक स्थान को पहुँचाने हारे यानों से (वाजिनीवान्) प्रशंसित वेदोक्त क्रियायुक्त होता है वह (सूरिः) विद्वान् (मह्यम्) मेरे लिये इस वेदोक्त शिल्पविद्या को देवे ॥ ८ ॥

भावार्थ—जैसे पुरुषार्थी मनुष्य समृद्धिमान् होता है वै सब लोगों को होना चाहिये ॥ ८ ॥

जनो यो मित्रावरुणावभिध्रुगपो न वां सुनोत्यक्ष्णयाध्रुक् ।
स्वयं स यक्ष्मं हृदये नि धत्त आप यदीं होत्राभिर्ऋतावा ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे सत्य उपदेश और यज्ञ करने वालो ! (यः) जो (जनः) विद्वान् (वाम्) तुम दोनों के (अपः) प्राण अर्थात् बलों को (मित्रावरुणा) प्राण तथा उदान जैसे वैसे (अभिध्रुक्) आगे से द्रोह करता वा (अक्ष्णयाध्रुक्) कुटिलरीति से द्रोह करता हुआ (न) नहीं (सुनोति) उत्पन्न करता (सः) वह (स्वयम्) आप (हृदये) अपने हृदय में (यक्ष्मम्) राजरोग को (नि, धत्ते) निरन्तर धारण करता वा (यत्) जो (ऋतावा) सत्य भाव से सेवन करने वाला (होत्राभिः) ग्रहण करने योग्य क्रियाओं से (ईम्) सब ओर से आप के व्यवहारों को प्राप्त होता है वह (आप) अपने हृदय में सुख को निरन्तर धारण करता है ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य परोपकार करने वाले विद्वानों से द्रोह करता वह सदा दुःखी और जो प्रीति करता है वह सुखी होता है ॥ ९ ॥

स व्राधतो नहुषो दंसुजूतः शर्धस्तरो नरां गूर्त्तश्रवाः ।
विसृष्टरातिर्याति बाढसृत्वा विश्वासु पृत्सु सदमिच्छूरः ॥ १० ॥

पदार्थ—जो (दंसुजूतः) विनाश करने हारे वीरों ने प्रेरणा किया (शर्धस्तरः) अत्यन्त (बलवान् (गूर्त्तश्रवाः) जिस का उद्यम के साथ सुनना और अन्न आदि पदार्थ (विसृष्टरातिः) जिसने अनेक प्रकार के दान आदि उत्तम उत्तम काम सिद्ध किये (बाढसृत्वा) जो प्रशंसित बल से चलने (शूरः) और शत्रुओं को मारने वाला (नहुषः) मनुष्य (नराम्) नायक वीरों की (विश्वासु) समस्त (पृत्सु) सेनाओं में (सदम्) शत्रुओं के मारने वाले वीर सेनाजन को (इत्) ही ग्रहण कर (व्राधतः) विरोध करने वालों को युद्ध के लिये (याति) प्राप्त होता है (सः) वह विजय को पाता है ॥ १० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि अपने शत्रु से अधिक युद्ध की सामग्री को इकट्ठी कर अच्छे पुरुषों के सहाय से उस शत्रु को जीतें ॥ १० ॥

अध ग्मन्ता नहुषो हवं सूरेः श्रोता राजानो अमृतस्य मन्द्राः ।
नभोजुवो यन्निरवस्य राधः प्रशस्तये महिना रथवते ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (मन्द्राः) आनन्द कराने वाले (राजानः) प्रकाशमान सज्जनो! तुम (अमृतस्य) आत्मरूप से मरण धर्म रहित (सूरेः) समस्त विद्याओं को जानने वाले (नहुषः) विद्वान् जन के (हवम्) उपदेश को (श्रोत) सुनो (नभोजुवः) विमान आदि से आकाश में गमन करते हुए तुम (यत्) जो (निरवस्य) रक्षा हीन का (राधः) धन है उसको (ग्मन्त) प्राप्त होओ (अध) इस के अनन्तर (महिना) बड़प्पन से (प्रशस्तये) प्रशंसित (रथवते) बहुत रथ वाले को धन देओ ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो परमेश्वर, परम विद्वान् और अपने आत्मा के सकाश से विरोधी नहीं होते और उन के उपदेशों का ग्रहण करें वे विद्याओं को प्राप्त हुए महाशय होते हैं ॥ ११ ॥

एतं शर्द्धं धाम यस्य सूरेरित्यवोचन् दशतयस्य नंशे ।
द्युम्नानि येषु वसुताती रारन् विश्वे सन्वन्तु प्रभृथेषु वाजम् ॥१२॥

पदार्थ—(वसुतातिः) धन आदि ऐश्वर्य्ययुक्त मैं जैसे विद्वान् जन (यस्य) जिस (दशतयस्य) दश प्रकार की विद्याओं से युक्त (सूरेः) विद्वान् के सकाश से जिस (शर्द्धम्) बलयुक्त (धाम) स्थान को (अवोचन्) कहें वा जो (विश्वे)

सब विद्वान् (वाजम्) ज्ञान वा अन्न को (रारन्) देवें (येषु) जिन (प्रवृयेषु) अच्छे धारण किये हुए पदार्थों में (द्युम्नानि) यश वा धनों का (सन्वन्तु) सेवन करें (इति) इस प्रकार उस ज्ञान और (एतम्) इन पूर्वोक्त सब पदार्थों का सेवन कर दुःखों को (नंशे) नाश करूं ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विद्वान् मनुष्य पूर्ण विद्याओं को जानने हारे समस्त विद्याओं को पाकर औरों को उपदेश देते हैं वे यशस्वी होते हैं॥ १२ ॥

मन्दामहे दशतयस्य धासेर्द्विर्यत्पञ्च बिभ्रतो यन्त्यन्ना।
किमिष्टाश्व इष्टरश्मिरेत ईशानासस्तरुष ऋञ्जते नॄन् ॥ १३ ॥

पदार्थ—(यत्) जो (पञ्च) पढ़ाने उपदेश करने पढ़ने और उपदेश सुनने वाले तथा सामान्य मनुष्य (दशतयस्य) दश प्रकार के (धासेः) विद्या सुख का धारण करने वाले विद्वान् की विद्या को और (अन्ना) अच्छे संस्कार से सिद्ध किये हुए अन्नों को (द्विः) दो वार (यन्ति) प्राप्त होते हैं वा जो (एते) ये (ईशानासः) समर्थ (तरुषः) अविद्या अज्ञान में डुबाने वालों को (ऋञ्जते) प्रसिद्ध करते हैं उन (बिभ्रतः) विद्या सुख से सब की पुष्टि (नॄन्) और विद्याओं की प्राप्ति कराने हारे मनुष्यों की हम लोग (मन्दामहे) स्तुति करते हैं उन की शिक्षा को पाकर मनुष्य (इष्टाश्वः) जिस को घोड़े प्राप्त हुए वा (इष्टरश्मिः) जिस ने कला यन्त्रादिकों की किरणें जोड़ी ऐसा (किम्) क्या नहीं होता है ? ॥१३॥

भावार्थ—जो अच्छी शिक्षा से सब को विद्वान् करते हुए साधनों से चाहे हुए को सिद्ध करने वाले समर्थ विद्वानों का सेवन नहीं करते वे अभीष्ट सुख को भी नहीं प्राप्त होते हैं ॥ १३ ॥

हिरण्यकर्णं मणिग्रीवमर्णस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः।
अर्यो गिरः सद्य आ जग्मुषीरोस्राश्चाकन्तूभयेष्वस्मे ॥ १४ ॥

पदार्थ—जो (विश्वे, देवाः) समस्त विद्वान् (नः) हम लोगों के लिये (जग्मुषीः) प्राप्त होने योग्य (गिरः) वाणियों की (सद्यः) शीघ्र (आ,-चाकन्तु) अच्छे प्रकार कामना करें वा (उभयेषु) अपने और दूसरों के निमित्त तथा (अस्मे) हम लोगों में जो (अर्णः) अच्छा बना हुआ जल है उस की कामना करें और जो (अर्यः) वैश्य प्राप्त होने योग्य सब देश, भाषाओं और (उस्राः) गौओं की कामना करे उस (हिरण्यकर्णम्) कानों में कुण्डल और (मणिग्रीवम्) गले में मणियों को पहिने हुए वैश्य को (तत्) तथा उस उक्त व्यवहार और हम

लोगों की (आ, वरिवस्यन्तु) अच्छे प्रकार सेवा करें उन सब की हम लोग प्रतिष्ठा करावें ॥ १४ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् मनुष्य वा विदुषी पण्डिता स्त्री लड़के लड़कियों को शीघ्र विद्वान् और विदुषी करते वा जो वणियें सब देशों की भाषाओं को जानके देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर से धन को लाय ऐश्वर्ययुक्त होते हैं वे सब को सब प्रकारों से सत्कार करने योग्य हैं ॥ १४ ॥

च॒त्वारो॒ मा मश॒र्शार॑स्य॒ शिश्व॒स्त्रयो॒ राज्ञ॒ आय॑वसस्य जि॒ष्णोः ।
रथो॑ वां मित्रावरुणा दी॒र्घाप्सा॒ः स्यूम॑गभस्ति॒ः सूरो॒ नाद्यौ॑त् ॥१५॥

पदार्थ—हे (मित्रावरुणा) मित्र और उत्तम जन ! जो (वाम्) तुम लोगों का (रथः) रथ है वह (मा) मुझ को प्राप्त होवे जिस (मशर्शारस्य) दुष्ट शब्दों का विनाश करते हुए (आयवसस्य) पूर्ण सामग्री युक्त (जिष्णोः) शत्रुओं को जीतने हारे (राज्ञः) न्याय और विनय से प्रकाशमान राजा का (स्यूमगभस्तिः) बहुत किरणों से युक्त (सूरः) सूर्य के (न) समान रथ (अद्यौत्) प्रकाश करता तथा जिस के (दीर्घाप्साः) जिन को अच्छे गुणों में बहुत व्याप्ति वे (चत्वारः) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वर्ण और ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास, ये चार आश्रम तथा (त्रयः) सेना आदि कामों के अधिपति, प्रजाजन तथा भृत्यजन ये तीन (शिश्वः) सिखाने योग्य हों वह राज्य करने को योग्य हो ॥ १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जिस राजा के राज्य में विद्या और अच्छी शिक्षा युक्त गुण कर्म स्वभाव से नियमयुक्त धर्मात्मा जन चारों वर्ण और आश्रम तथा सेना, प्रजा और न्यायाधीश हैं वह सूर्य्य के तुल्य कीर्त्ति से अच्छी शोभा युक्त होता है ॥ १५ ॥

इस सूक्त में राजा प्रजा और साधारण मनुष्यों के धर्म के वर्णन से इस सूक्त में कहे हुए अर्थ की पिछले सूक्त के साथ एकता है यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ बाईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

दीर्घतमसः पुत्रः कक्षीवानृषिः । उषा देवता । १ । ३ । ६ । ७ । ९ । १० । १३ विराट् त्रिष्टुप् २ । ४ । ८ । १२ निचृत् त्रिष्टुप् ५ त्रिष्टुप् च छन्दः । धैवतः स्वरः । ११ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

पृथू रथो दक्षिणाया अयोज्यैनं देवासो अमृतासो अस्थुः ।
कृष्णादुदस्थादर्या३ विहाया श्चिकित्सन्ती मानुषाय क्षयाय ॥ १ ॥

पदार्थ—जो (मानुषाय) मनुष्यों के इस (क्षयाय) घर के लिये (चिकित्सन्ती) रोगों को दूर करती हुई (विहायाः) बड़ी प्रशंसित (अर्या) वैश्य की कन्या जैसे प्रातःकाल की वेला (कृष्णात्) अंधेरे से (उदस्थात्) ऊपर को उठती उदय करती है वैसे विद्वान् ने (अयोजि) संयुक्त किई अर्थात् अपने सङ्ग लिई और वह (एनम्) इस विद्वान् को पतिभाव से युक्त करती अपना पति मानती तथा जिन स्त्री पुरुषों का (दक्षिणायाः) दक्षिण दिशा से (पृथुः) विस्तारयुक्त (रथः) रथ चलता है उन को (अमृतासः) विनाश रहित (देवसः) अच्छे अच्छे गुण (आ, अस्थुः) उपस्थित होते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो प्रातःसमय की वेला के गुणयुक्त अर्थात् शीतल स्वभाव वाली स्त्री और चन्द्रमा के समान शीतल गुण वाला पुरुष हो उनका परस्पर विवाह हो तो निरन्तर सुख होता है ॥ १ ॥

पूर्वा विश्वस्माद्भुवनादबोधि जयन्ती वाजं बृहती सनुत्री ।
उच्चा व्यख्यद्युवतिः पुनर्भूरोषा अगन्प्रथमा पूर्वहूतौ ॥ २ ॥

पदार्थ—(पूर्वहूतौ) जिसमें वृद्धजनों का बुलाना होता उस गृहस्थाश्रम में जो (पुनर्भूः) विवाहे हुए पति के मरजाने पीछे नियोग से फिर सन्तान उत्पन्न करने वाली होती वह (वाजम्) उत्तम ज्ञान को (जयन्ती) जीतती हुई (बृहती) बड़ी (सनुत्री) सब व्यवहारों को अलग अलग करने और (प्रथमा) प्रथम (युवतिः) युवा अवस्था को प्राप्त होने वाली नवोढ़ा स्त्री जैसे (उषाः) प्रातःकाल की वेला (विश्वस्मात्) समस्त (भुवनात्) जगत् के पदार्थों से (पूर्वा) प्रथम (अबोधि) जानी जाती और (उच्चा) ऊंची ऊंची वस्तुओं को (वि, अख्यत्) अच्छे प्रकार प्रकट करती वैसे (आ, अगन्) आती है वह विवाह में योग्य होती है ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब कन्या पच्चीस वर्ष अपनी आयु को विद्या के अभ्यास करने में व्यतीत कर पूरी विद्या वाली होकर अपने समान पति से विवाह-कर प्रातःकाल की वेला के समान अच्छे रूपवाली हों ॥ २ ॥

यद॒द्य भा॒गं वि॒भजा॑सि नृ॒भ्य उषो॑ देवि मर्त्य॒त्रा सु॑जाते ।
दे॒वो नो॒ अत्र॑ सवि॒ता दमू॑ना॒ अना॑गसो वोचति॒ सूर्या॑य ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (सुजाते) उत्तम कीर्ति से प्रकाशित और (देवि) अच्छे लक्षणों से शोभा को प्राप्त सुलक्षणी कन्या ! तू (अद्य) आज (नृभ्यः) व्यवहारों की प्राप्ति कराने हारे मनुष्यों के लिये (उषः) प्रातःसमय की वेला के समान (यत्) जिस (भागम्) सेवने योग्य व्यवहार का (विभजासि) अच्छे प्रकार सेवन करती और जो (अत्र) इस गृहाश्रम में (दमूनाः) मित्रों में उत्तम (मर्त्यत्रा) मनुष्यों में (सविता) सूर्य के समान (देवः) प्रकाशमान तेरा पति (सूर्याय) परमात्मा के विज्ञान के लिये (नः) हम लोगों को (अनागसः) विना अपराध के व्यवहारों को (वोचति) कहे उन तुम दोनों का सत्कार हम लोग निरन्तर करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जब दो स्त्री पुरुष विद्यावान् धर्म का आचरण और विद्या का प्रचार करनेहारे सब कभी परस्पर में प्रसन्न हों तब गृहाश्रम में अत्यन्त सुख का सेवन करनेहारे होवें ॥ ३ ॥

गृ॒हंगृ॑ह॒मह॑ना या॒त्यच्छा॑ दि॒वेदि॑वे॒ अधि॒ नामा॒ दधा॑ना ।
सिषा॑सन्ती द्योत॒ना शश्व॒दागा॒दग्र॑मग्र॒मिद्भ॑जते॒ वसू॑नाम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—जो स्त्री जैसे प्रातःकाल की वेला (अहना) दिन वा व्याप्ति से (गृहंगृहम्) घर घर को (अच्छाधियाति) उत्तम रीति के साथ अच्छी ऊपर से आती (दिवेदिवे) और प्रतिदिन (नाम) नाम (दधाना) धरती अर्थात् दिन दिन का नाम आदित्यवार सोमवार आदि धरती (द्योतना) प्रकाशमान (वसूनाम्) पृथिवी आदि लोकों के (अग्रमग्रम्) प्रथम प्रथम स्थान को (भजते) भजती और (शश्वत्) निरन्तर (इत्) ही (आ, अगात्) आती है वैसे (सिषासन्ती) उत्तम पदार्थ पति आदि को दिया चाहती हो वह घर के काम को सुशोभित करनेहारी हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य की कान्ति—घाम पदार्थों के अगले अगले भाग को सेवन करती और नियम से प्रत्येक समय प्राप्त होती है वैसे स्त्री को भी होना चाहिये ॥ ४ ॥

भग॑स्य॒ स्वसा॒ वरु॑णस्य जा॒मिरुषः॑ सूनृते प्रथ॒मा ज॑रस्व ।
प॒श्चा स द॑घ्या॒ यो अ॒घस्य॑ धा॒ता जये॑म॒ तं दक्षि॑णया॒ रथे॑न ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (सूनृते) सत्य आचरणयुक्त स्त्री तू (उषः) प्रातःसमय की वेला के समान वा (भगस्य) ऐश्वर्य्य की (स्वसा) बहिन के समान वा (वरुणस्य) उत्तम पुरुष की (जामिः) कन्या के समान (प्रथमा) प्रख्याति प्रशंसा को प्राप्त हुई विद्याओं की (जरस्व) स्तुति कर (यः) जो (अघस्य) अपराध का (धाता) धारण करने वाला हो (तम्) उसको (दक्षिणया) अच्छी सिखाई हुई सेना और (रथेन) विमान आदि यान से जैसे हम लोग (जयेम) जीतें वैसे तू (दध्याः) उसका तिरस्कार कर जो मनुष्य पापी हो (सः) वह (पश्चा) पीछा करने अर्थात् तिरस्कार करने योग्य है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । स्त्रियों को चाहिये कि अपने अपने घर में ऐश्वर्य की उन्नति श्रेष्ठ रीति और दुष्टों का ताड़न निरन्तर किया करें ॥ ५ ॥

उदी॑रतां सू॒नृता॒ उत्पुर॑न्धी॒रुद॒ग्नयः॑ शुशुचा॒नासो॑ अस्थुः ।
स्पा॒र्हा वसू॑नि॒ तम॒साप॑गूळ्हा॒विष्कृ॑ण्वन्त्यु॒षसो॑ विभा॒तीः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे सत्पुरुषो ! (सूनृता) सत्यभाषणादि क्रियावान् होते हुए तुम लोग जैसे (पुरन्धीः) शरीर के आश्रित क्रिया को धारण करती और (शुशुचा-(नासः) निरन्तर पवित्र कराने वाले (अग्नयः) अग्नियों के समान चमकती दमकती हुई स्त्री लोग (उदीरताम्) उत्तमता से प्रेरणा देवें वा (स्पार्हा) चाहने योग्य (वसूनि) धन आदि पदार्थों को (उदस्थुः) उन्नति से प्राप्त हों वा जैसे (उषसः) प्रभातसमय (तमसा) अन्धकार से (अपगूढा) ढंपे हुए पदार्थों और (विभातीः) अच्छे प्रकाशों को (उदाविष्कृण्वन्ति) ऊपर से प्रकट करते हैं वैसे होओ ॥ ६ ॥

भावार्थ - इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जब स्त्रीजन प्रभात समय की वेलाओं के समान वर्त्तमान अविद्या मैलापन आदि दोषों को निराले कर विद्या और पाकपन आदि गुणों को प्रकाश कर ऐश्वर्य की उन्नति करती हैं तब वे निरन्तर सुखयुक्त होती हैं ॥ ६ ॥

अपा॒न्यदेत्य॒भ्य१॒॑न्यदे॑ति॒ विषु॑रूपे॒ अह॑नी॒ सं च॑रेते ।
प॒रि॒क्षितो॒स्तमो॑ अ॒न्या गुहा॑कर॒द्यौदु॒षाः शोशु॑चता॒ रथे॑न ॥ ७ ॥

पदार्थ—जो (विषुरूपे) संसार में व्याप्त (अहनी) रात्री और दिन एक साथ (सं, चरेते) सञ्चार करते अर्थात् आते जाते हैं उन में (परिक्षितोः) सब

ओर से वसने हारे अन्धकार और उजेले के बीच से (गुहा) अन्धकार से संसार को ढांपने वाली (तमः) रात्री (अन्या) और कामों को (अकः) करती तथा (उषाः) सूर्य के पदार्थों को तपाने वाला दिन (शोशुचता) अत्यन्त प्रकाश और (रथेन) रमण करने योग्य रूप से (अद्यौत्) उजेला करता (अन्यत्) अपने से भिन्न प्रकाश को (अप, एति) दूर करता तथा (अन्यत्) अन्य प्रकाश को (अभ्येति) सब ओर से प्राप्त होता इस सब व्यवहार के समान स्त्री पुरुष अपना वर्त्ताव वर्त्तें ॥ ७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । इस जगत् में अन्धेरा उजेला दो पदार्थ हैं जिन से सदैव पृथिवी आदि लोकों के आधे भाग में दिन और आधे में रात्रि रहतो है । जो वस्तु अन्धकार को छोड़ता वह उजेले का ग्रहण करता और जितना प्रकाश अन्धकार को छोड़ता उतना रात्रि लेती दोनों पारी से सदैव अपनी व्याप्ति के साथ पाये पाये हुए पदार्थ को ढांपते और दोनों एक साथ वर्त्तमान हैं उन का जहां जहां संयोग है वहां वहां संध्या और जहां जहां वियोग होता अर्थात् अलग होते वहां वहां रात्रि और दिन होता जो स्त्री पुरुष ऐसे मिल और अलग होकर दुःख के कारणों को छोड़ते और सुख के कारणों को ग्रहण करते वे सदैव आनन्दित होते हैं ॥ ७ ॥

स॒दृशी॑र॒द्य स॒दृशी॒रिदु॒ श्वो दी॒र्घं स॑चन्ते॒ वरु॑णस्य॒ धाम॑ ।
अ॒न॒व॒द्यास्त्रिं॒शतं॒ योज॑ना॒न्येकै॑का॒ क्रतुं॒ परि॑ यन्ति स॒द्यः ॥ ८ ॥

पदार्थ—जो (अद्य) आज के दिन (अनवद्याः) प्रशंसित (सदृशीः) एकसी (उ) अथवा तो (श्वः) अगले दिन (सदृशीः) एकसी रात्रि और प्रभात वेला (वरुणस्य) पवन के (दीर्घम्) बड़े समय वा (धाम) स्थान को (सचन्ते) संयोग को प्राप्त होती और (एकैका) उन में से प्रत्येक (त्रिंशतम्, योजनानि) एकसौ बीस क्रोश और (क्रतुम्) कर्म को (सद्यः) शीघ्र (परि, यन्ति) पर्य्याय से प्राप्त होती हैं वे (इत्) व्यर्थ किसी को न खोना चाहिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—जैसे ईश्वर के नियम को प्राप्त जो हो गये, होते और होने वाले रात्रि दिन हैं उन का अन्यथापन नहीं होता वैसे ही इस सब संसार के क्रम का विपरीत भाव नहीं होता तथा जो मनुष्य आलस को छोड़ सृष्टिक्रम की अनुकूलता से अच्छा यत्न किया करते हैं वे प्रशंसित विद्या और ऐश्वर्य वाले होते हैं और जैसे यह रात्रि दिन नियत समय आता और जाता वैसे ही मनुष्यों को व्यवहारों में सदा अपना वर्त्ताव रखना चाहिये ॥ ८ ॥

जानत्यह्नः प्रथमस्य नाम शुक्रा कृष्णादजनिष्ट श्वितीची ।
ऋतस्य योषा न मिनाति धामाहरहर्निष्कृतमाचरन्ती ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! जैसे (प्रथमस्य) विस्तरित पहिले (अह्नः) दिन वा दिन के आदिम भाग का (नाम) नाम (जानती) जनाती हुई (शुक्रा) शुद्धि करनेहारी (श्वितीची) सुपेदी को प्राप्त होती हुई प्रातःसमय की वेला (कृष्णात्) काले रङ्गवाले अन्धेरे से (अजनिष्ट) प्रसिद्ध होती है वा (ऋतस्य) सत्य आचरणयुक्त मनुष्य की (योषा) स्त्री के समान (अहरहः) दिन दिन (आचरन्ति) आचरण करती हुई (निष्कृतम्) उत्पन्न हुए वा निश्चय को प्राप्त (धाम) स्थान को (न) नहीं (मिनाति) नष्ट करती वैसी तू हो ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रातःसमय की वेला अन्धकार से उत्पन्न होकर दिन को प्रसिद्ध करती है दिन से विरोध करने हारी नहीं होती वैसे स्त्री सत्य आचरण से तथा अपने माता पिता और पति के कुल को उत्तम कीर्त्ति से प्रशस्त कर अपने श्वशुर और पति के प्रति उन के अप्रसन्न होने का व्यवहार कुछ न करे ॥ ९ ॥

कन्येव तन्वा३शाशदानाँ एषि देवि देवमियक्षमाणम् ।
संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (देवि) कामना करने हारी कुमारी ! जो तू (तन्वा) शरीर से (कन्येव) कन्या के समान वर्त्तमान (शाशदाना) व्यवहारों में अति तेजी दिखाती हुई (इयक्षमाणम्) अत्यन्त सङ्ग करते हुए (देवम्) विद्वान् पति को (एषि) प्राप्त होती (पुरस्तात्) और सम्मुख (विभाति) अनेक प्रकार सद्गुणों से प्रकाशमान (युवतिः) ज्वानी को प्राप्त हुई (संस्मयमाना) मन्द मन्द हंसती हुई (वक्षांसि) छाती आदि अङ्गों को (आविः,कृणुषे) प्रसिद्ध करती है सो तू प्रभात वेला की उपमा को प्राप्त होती है ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे विदुषी ब्रह्मचारिणी स्त्री पूरी विद्या शिक्षा और अपने समान मनमाने पति को पा कर सुखी होती है वैसे ही और स्त्रियों को भी आचरण करना चाहिये ॥ १० ॥

सुसंकाशा मातृमृष्टेव योषाविस्तन्वं कृणुषे दृशे कम् ।
भद्रा त्वमुषो वितरं व्युच्छ न तत्ते अन्या उषसो नशन्त ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे कन्या ! (सुसंकाशा) अच्छी सिखावट से सिखाई हुई (योषा)

युवति (मातृमृष्टेव) पढ़ी हुई पण्डिता माता ने सत्यशिक्षा दे कर शुद्ध किई सी जो (दृशे) देखने को (तन्वम्) अपने शरीर को (आविः) प्रकट (कृणुषे) करती (भद्रा) और मङ्गलरूप आचरण करती हुई (कम्) सुखस्वरूप पति को प्राप्त होती है सो (त्वम्) तू (वितरम्) सुख देने वाले पदार्थ और सुख को (व्युच्छ) स्वीकार कर, हे (उषः) प्रभात वेला के समान वर्त्तमान स्त्री ! जैसे (अन्याः) और (उषसः) प्रभात समय (न) नहीं (नशन्त) विनाश को प्राप्त होते वैसे (ते) तेरा (तत्) उक्त सुख न विनाश को प्राप्त हो ।। ११ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे प्रातःकाल की वेला नियम से अपने अपने समय और देश को प्राप्त होती हैं वैसे स्त्री अपने अपने पति को पा कर ऋतुधर्म को प्राप्त होवें ।। ११ ।।

अश्वा॑वती॒र्गोम॑तीर्वि॒श्ववा॑रा॒ यत॑माना र॒श्मिभि॒: सूर्य॑स्य ।
परा॑ च॒ य॒न्ति॒ पुन॒रा च॑ यन्ति भ॒द्रा नाम॒ वह॑माना उ॒षास॑: ।।१२।।

पदार्थ—हे स्त्रियो ! जैसे (सूर्यस्य) सूर्यमण्डल की (रश्मिभिः) किरणों के साथ उत्पन्न (यतमानाः) उत्तम यत्न करती हुई (अश्वावतीः) जिन की प्रशंसित व्याप्तियां (गोमतीः) जो बहुत पृथिवी आदि लोक और किरणों से युक्त (विश्ववाराः) समस्त जगत् को अपने में लेती और (भद्रा) अच्छे (नाम) नामों को (वहमानाः) सब की बुद्धियों में पहुँचाती हुई (उषसः) प्रभात वेला नियम के साथ (परा, यन्ति) पीछे को जाती (च) और (पुनः) फिर (च) भी (आ, यन्ति) आती हैं वैसे नियम से तुम अपना वर्त्ताव वर्त्तो ।। १२ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रभातवेला सूर्य के संयोग से नियम को प्राप्त हैं वैसे विवाहित स्त्रीपुरुष परस्पर प्रेम के स्थिर करने हारे हों ।। १२ ।।

ऋ॒तस्य॑ र॒श्मिम॑नु॒यच्छ॑माना भ॒द्रंभ॑द्रं॒ क्रतु॑म॒स्मासु॑ धेहि ।
उषो॑ नो अ॒द्य सु॒हवा॒ व्यु॑च्छा॒स्मासु॒ रायो॑ म॒घव॑त्सु च॒ स्युः ।।१३।।

पदार्थ—हे (उषः) प्रातःसमय की वेलासी अलवेली स्त्री ! तू (अद्य) आज जैसे (ऋतस्य) जल की (रश्मिम्) किरण को प्रभात समय की वेला स्वीकार करती वैसे मन से प्यारे पति को (अनुयच्छमाना) अनुकूलता से प्राप्त हुई (अस्मासु) हम लोगों में (भद्रंभद्रम्, क्रतुम्) अच्छी अच्छी बुद्धि वा अच्छे अच्छे काम को (धेहि) धर (सुहवा) और उत्तम सुख देने वाली होती हुई (नः) हम लोगों को (व्युच्छ) ठहरा जिससे (मघवत्सु) प्रशंसित धन वाले (अस्मासु) हम लोगों में (रायः) शोभा (च) भी (स्युः) हों ।। १३ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे श्रेष्ठ स्त्री अपने अपने पति आदि की यथावत् सेवा कर बुद्धि धर्म और ऐश्वर्य को नित्य बढ़ाती हैं वैसे प्रभात समय की वेला भी हैं ॥ १३ ॥

इस सूक्त में प्रभात समय की वेला के दृष्टान्त से स्त्रियों के धर्म का वर्णन करने से इस सूक्त में कहे हुए अर्थ की पिछले सूक्त में कहे अर्थ के साथ एकता है यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ तेईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

———

दैर्घतमसः कक्षीवान् ऋषिः । उषा देवता । १ । ३ । ६ । ९—१० निचृत् त्रिष्टुप् । ४ । ७ । ११ त्रिष्टुप् । १२ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ । १३ भुरिक् पङ्क्तिः । ५ पङ्क्तिः । ८ विराट् पङ्क्तिश्च छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

उषा उच्छन्ती समिधाने अग्ना उद्यन्त्सूर्य्य उर्विया ज्योतिरश्रेत् ।
देवो नो अत्र सविता न्वर्थं प्रासावीद् द्विपत्प्र चतुष्पदित्यै ॥ १ ॥

पदार्थ—जब (समिधाने) जलते हुए (अग्नौ) अग्नि का निमित्त (सूर्यः) सूर्यमण्डल (उद्यन्) उदय होता हुआ (उर्विया) पृथिवी के साथ (ज्योतिः) प्रकाश को (अश्रेत्) मिलाता तब (उच्छन्ती) अन्धकार को निकालती हुई (उषाः) प्रातःकाल की वेला उत्पन्न होती है ऐसे (अत्र) इस संसार में (सविता) कामों में प्रेरणा देने वाला (देवः) उत्तम प्रकाशयुक्त उक्त सूर्यमण्डल (नः) हम लोगों को (अर्थम्) प्रयोजन को (इत्यै) प्राप्त कराने के लिये (प्रासावीत्) सारांश को उत्पन्न करता तथा (द्विपत्) दो पग वाले मनुष्य आदि वा (चतुष्पत्) चार पग वाले चौपाये पशु आदि प्राणियों को (नु) शीघ्र (प्र) उत्तमता से उत्पन्न करता है ॥ १ ॥

भावार्थ—पृथिवी का सूर्य की किरणों के साथ संयोग होता है वही संयोग तिरछा जाता हुआ प्रभात समय के होने का कारण होता है, जो सूर्य न हो तो अनेक प्रकार के पदार्थ अलग अलग देखे नहीं जा सकते हैं ॥ १ ॥

अमिनती दैव्यानि व्रतानि प्रमिनती मनुष्या युगानि ।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनामायतीनां प्रथमोषा व्यद्यौत् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे स्त्री ! जैसे (उषाः) प्रातःसमय की वेला (दैव्यानि) दिव्य गुण वाले (व्रतानि) सत्य पदार्थ वा सत्य कर्मों को (अमिनती) न छोड़ती और

(**मनुष्या**) मनुष्यों के सम्बन्धी (**युगानि**) वर्षों को (**प्रमिनती**) अच्छे प्रकार व्यतीत करती हुई (**शश्वतीनाम्**) सनातन प्रभातवेलाओं वा प्रकृतियों और (**इयुषीणाम्**) हो गई प्रभातवेलाओं की (**उपमा**) उपमा दृष्टान्त और (**आयतीनाम्**) आने वाली प्रभातवेलाओं में (**प्रथमा**) पहिली संसार को (**व्यद्यौत्**) अनेक प्रकार से प्रकाशित कराती और जागते अर्थात् व्यवहारी करते हुए मनुष्यों को युक्ति के साथ सदा सेवन करने योग्य है वैसे तू अपना वर्त्ताव रख ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे यह प्रातःसमय की वेला विस्तारयुक्त पृथ्वी और सूर्य के साथ चलने हारी जितने पूर्व देश को छोड़ती उतने उत्तर देश को ग्रहण करती है तथा वर्त्तमान और व्यतीत हुई प्रातःसमय की वेलाओं की उपमा और आने वालियों की पहिली हुई कार्यरूप जगत् का और जगत् के कारण का अच्छे प्रकार ज्ञान कराती और सत्य धर्म के आचरण निमित्तक समय का अङ्ग होने से उमर को घटाती हुई वर्त्तमान है वह सेवन की हुई बुद्धि और आरोग्य आदि अच्छे गुणों को देती है वैसे पण्डिता स्त्री हों ॥ २ ॥

एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥ ३ ॥

पदार्थ—जैसे ही (**एषा**) यह प्रातः समय की वेला (**ज्योतिः**) प्रकाश को (**वसाना**) ग्रहण करती हुई (**समना**) संग्राम में (**दिवः**) सूर्य के प्रकाश की (**दुहिता**) लड़की-सी हम लोगों ने (**पुरस्तात्**) दिन के पहिले (**प्रत्यदर्शि**) प्रतीति से देखी वा जैसे समस्त विद्या पढ़ा हुआ वीर जन (**ऋतस्य**) सत्य कारण के (**पन्थाम्**) मार्ग को (**अन्वेति**) अनुकूलता से प्राप्त होता वा (**साधु**) अच्छे प्रकार जैसे हो वैसे (**प्रजानतीव**) विशेष ज्ञान वाली विदुषी पढ़ी हुई पण्डिता स्त्री के समान प्रभात वेला (**दिशः**) दिशाओं को (**न**) नहीं (**मिनाति**) छोड़ती वैसे अपना वर्त्ताव वर्त्तती हुई स्त्री उत्तम हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अच्छे नियम से वर्त्तमान हुई प्रातःसमय की वेला सब को आनन्दित कराती और वह उत्तम अपने भाव को नहीं नष्ट करती वैसे स्त्री लोग गिरस्ती के धर्म में वर्त्तें ॥ ३ ॥

उपो अदर्शि शुन्ध्युवो न वक्षो नोधाइवाविरकृत प्रियाणि ।
अद्मसन्न ससतो बोधयन्ती शश्वत्तमागात्पुनरेयुषीणाम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—जैसे प्रभात वेला (वक्षः) पाये पदार्थ को (शुन्ध्युवः) सूर्य की किरणों के (न) समान वा (प्रियाणि) प्रिय वचनों की (नोधा इव) सब शास्त्रों की प्रशंसा करने वाले विद्वान् के समान वा (अद्मसत्) भोजन के पदार्थों को पकाने वाले के (न) समान (ससतः) सोते हुए प्राणियों को (बोधयन्ती) निरन्तर जगाती हुई और (एयुषीणाम्) सब ओर से व्यतीत हो गई प्रभात वेलाओं की (शश्वत्तमा) अतीव सनातन होती हुई (पुनः) फिर (आ, अगात्) आती और (आविरकृत) संसार को प्रकाशित करती वह हम लोगों ने (उषो) समीप में (अदर्शि) देखी वैसी स्त्री उत्तम होती है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो स्त्री प्रभात वेला वा सूर्य वा विद्वान् के समान अपने सन्तानों को उत्तम शिक्षा से विद्वान् करती है। वह सब को सत्कार करने योग्य है ॥ ४ ॥

पूर्वे अर्द्धे रजसो अप्त्यस्य गवां जनित्र्यकृत प्र केतुम्।
व्यु प्रथते वितरं वरीय ओभा पृणन्ती पित्रोरुपस्था ॥ ५ ॥

पदार्थ—जैसे प्रातः समय की वेला कन्या के तुल्य (उभा) दोनों लोकों को (पृणन्ती) सुख से पूरती और (पित्रोः) अपने माता पिता के समान भूमि और सूर्यमण्डल की (उपस्था) गोद में ठहरी हुई (वितरम्) जिससे विविध प्रकार के दुःखों से पार होते हैं उस (वरीयः) अत्यन्त उत्तम काम को (वि, उ, प्रथते) विशेष करके तो विस्तारती तथा (गवाम्) सूर्य की किरणों को (जनित्री) उत्पन्न करने वाली (अप्त्यस्य) विस्तार युक्त संसार में हुए (रजसः) लोक समूह के (पूर्वे) प्रथम आगे वर्त्तमान (अर्द्धे) आधे भाग में (केतुम्) किरणों को (प्र, आ, अकृत) प्रसिद्ध करती है वैसा वर्त्तमान करती हुई स्त्री उत्तम होती है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। प्रभात वेला से प्रसिद्ध हुआ सूर्यमण्डल का प्रकाश भूगोल के आधे भाग में सब कहीं उजेला करता है और दूसरे आधे भाग में रात्रि होती है। उन दिन रात्रि के बीच में प्रातःसमय की वेला विराजमान है ऐसे निरन्तर रात्रि प्रभातवेला और दिन क्रम से वर्त्तमान हैं। इस से क्या आया कि जितना पृथिवी का प्रदेश सूर्यमण्डल के आगे होता उतने में दिन और जितना पीछे होता जाता उतने में रात्रि होती तथा सायं और प्रातःकाल की सन्धि में उषा होती है इसी उक्त प्रकार से लोकों के घूमने के द्वारा ये सायं प्रातःकाल भी घूमते से दिखाई देते हैं ॥ ५ ॥

एवेदेषा पुरुतमा दृशे कं नाजामिं न परि वृणक्ति जामिम् ।
अरेपसा तन्वा३ शाशदाना नार्भादीषते न महो विभाती ॥ ६ ॥

पदार्थ—जैसे (अरेपसा) न कँपते हुए निर्भय (तन्वा) शरीर से (शाशदाना) अति सुन्दरी (पुरुतमा) बहुत पदार्थों को चाहने वाली स्त्री (दृशे) देखने के लिये (कम्) सुख को पति के (न) समान (परि, वृणक्ति) सब ओर से (न) नहीं छोड़ती पति भी (जामिम्) अपनी स्त्री के (न) समान सुख को (न) नहीं छोड़ता और (अजामिम्) जो अपनी स्त्री नहीं उस को सब प्रकार से छोड़ता है वैसे (एव) ही (एषा) यह प्रातः समय की वेला (अर्भात्) थोड़े से (इत्) भी (महः) बहुत सूर्य के तेज का (विभाति) प्रकाश कराती हुई बड़े फैलते हुए सूर्य के प्रकाश को नहीं छोड़ती किन्तु समस्त को (ईषते) प्राप्त होती है ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे पतिव्रता स्त्री अपने पति को छोड़ और के पति का सङ्ग नहीं करती वा जैसे स्त्रीव्रत पुरुष अपनी स्त्री से भिन्न दूसरी स्त्री का सम्बन्ध नहीं करता और विवाह किये हुए स्त्रीपुरुष नियम और समय के अनुकूल सङ्ग करते हैं वैसे ही प्रातःसमय की वेला नियम युक्त देश और समय को छोड़ अन्यत्र युक्त नहीं होती ॥ ६ ॥

अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्त्तारुगिव सनये धनानाम् ।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव नि रिणीते अप्सः ॥७ ॥

पदार्थ—यह (उषाः) प्रातः समय की वेला (प्रतीची) प्रत्येक स्थान को पहुँचती हुई (अभ्रातेव) विना भाई की कन्या जैसे (पुंसः) पुरुष को प्राप्त हो उस के समान वा जैसे (गर्त्तारुगिव) दुःखरूपी गढ़े में पड़ा हुआ जन (धनानाम्) धन आदि पदार्थों के (सनये) विभाग करने के लिये राजगृह को प्राप्त हो वैसे सब ऊंचे नीचे पदार्थों को (एति) पहुँचाती तथा (पत्ये) अपने पति के लिये (उशती) कामना करती हुई (सुवासाः) और सुन्दर वस्त्रों वाली (जायेव) विवाहिता स्त्री के समान पदार्थों का सेवन करती और (हस्रेव) हँसती हुई स्त्री के तुल्य (अप्सः) रूप को (नि, रिणीते) निरन्तर प्राप्त होती है ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में चार उपमालङ्कार हैं । जैसे विना भाई की कन्या अपनी प्रीति से चाहे हुए पति को आप प्राप्त होती वा जैसे न्यायाधीश राजा राजपत्नी और धन आदि पदार्थों के विभाग करने के लिये न्यायासन अर्थात् राजगद्दी [को], जैसे हँसमुखी स्त्री आनन्द युक्त पति को प्राप्त

होती और अच्छे रूप से अपने हावभाव को प्रकाशित करती वैसे ही यह प्रातःसमय की वेला है, यह समझना चाहिये ॥ ७ ॥

स्वसा स्वस्रे ज्याय॑स्यै योनि॑मारैगपै॑त्यस्याः प्रतिचक्ष्ये॑व ।

व्युच्छन्ती॑ र॒श्मिभि॒ः सूर्य॑स्याञ्ज्य॑ङ्क्ते समनगाइ॑व व्राः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे कन्या! जैसे (व्युच्छन्ती) अन्धकार का निवारण करती हुई (व्राः) पदार्थों को स्वीकार करने वाली प्रातः समय की वेला (सूर्यस्य) सूर्य-मण्डल की (रश्मिभिः) किरणों के साथ (अञ्जि) प्रसिद्ध रूप को (समनगा इव) निश्चय किये स्थान को जानेवाली स्त्री के समान (अङ्क्ते) प्रकाश करती है वा जैसे (स्वसा) बहिन (ज्यायस्यै) जेठी (स्वस्रे) बहिन के लिये (योनिम्) अपने स्थान को (अरैक्) छोड़ती अर्थात् उत्थान देती तथा (अस्याः) इस अपनी बहिन के वर्त्तमान हाल को (प्रतिचक्ष्येव) प्रत्यक्ष देख के जैसे वैसे विवाह के लिये (अपैति) दूर जाती है वैसी तू हो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। छोटी बहिन जेठी बहिन के वर्त्तमान हाल को जान आप स्वयंवर विवाह के लिये दूर भी ठहरे हुए अपने अनुकूल पति का ग्रहण करे जैसे शान्त पतिव्रता स्त्री अपने अपने पति को सेवन करती हैं वैसे अपने पति का सेवन करे, जैसे सूर्य अपनी कान्ति के साथ और कान्ति सूर्य के साथ नित्य अनुकूलता से वर्त्ते वैसे ही स्त्री पुरुष हों ॥ ८ ॥

आसां पूर्वासामह॑सु स्वसॄ॑णामप॑रा पूर्वाम॒भ्ये॑ति प॒श्चात् ।

ताः प्र॑त्नवन्नव्य॑सीर्नूनम॒स्मे रे॒वदु॑च्छन्तु सु॒दिना॑ उ॒षास॑ः ॥ ९ ॥

पदार्थ—जैसे (आसाम्) इन (पूर्वासाम्) प्रथम उत्पन्न जेठी (स्वसॄणाम्) बहिनों में (अपरा) अन्य कोई पीछे उत्पन्न हुई छोटी बहिन (अहसु) किन्हीं दिनों में अपनी (पूर्वाम्) जेठी बहिन के (अभ्येति) आगे जावे और (पश्चात्) पीछे अपने घर को चली जावे वैसे (सुदिनाः) जिन से अच्छे अच्छे दिन होते वे (उषसः) प्रातः समय की वेला (अस्मे) हम लोगों के लिये (नूनम्) निश्चय युक्त (प्रत्नवत्) जिस में पुरानी धन की धरोहर है उस (रेवत्) प्रशंसित पदार्थ युक्त धन को (नव्यसीः) प्रति दिन अत्यन्त नवीन होती हुई प्रकाश करे (ताः) वे (उच्छन्तु) अन्धकार को निराला करें ॥ ९ ॥

भावार्थ—जैसे बहुत बहिनें दूर दूर देश में विवाही हुई होतीं उन में कभी किसी के साथ कोई मिलती और अपने व्यवहार को कहती है वैसे

पिछली प्रातःसमय की वेला वर्त्तमान वेला के साथ संयुक्त होकर अपने व्यवहार को प्रसिद्ध करती हैं ॥ ९ ॥

प्र बोधयोषः पृणतो मघोन्यबुध्यमानाः पणयः ससन्तु ।
रेवदुच्छ मघवद्भ्यो मघोनि रेवत् स्तोत्रे सूनृते जारयन्ती ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (**मघोनि**) उत्तम धनयुक्त (**उषः**) प्रभातवेला के तुल्य वर्त्तमान स्त्री तू जो (**अबुध्यमानाः**) अचेत नींद में डूबे हुए वा (**पणयः**) व्यवहारयुक्त प्राणी प्रभात समय वा दिन में (**ससन्तु**) सोवें उनको (**पृणतः**) पालना करनेवाला पुष्ट प्राणियों को प्रातःसमय की वेला के प्रकाश के समान (**प्र, बोधय**) बोध करा । हे (**मघोनि**) अतीव धन इकट्ठा करने वाली (**सूनृते**) उत्तम सत्यस्वभावयुक्त युवति ! तू प्रभात वेला के समान (**जारयन्ती**) अवस्था व्यतीत कराती हुई (**मघवद्भ्यः**) प्रशंसित धनवालों के लिये (**रेवत्**) उत्तम धनयुक्त व्यवहार जैसे हो वैसे (**स्तोत्रे**) स्तुति प्रशंसा करने वाले के लिये (**रेवत्**) स्थिर धन की (**उच्छ**) प्राप्ति करा ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । किसी को रात्रि के पिछले पहर में वा दिन में न सोना चाहिये क्योंकि नींद और दिन के घाम आदि की अधिक गरमी के योग से रोगों की उत्पत्ति होने से तथा काम और अवस्था की हानि से, जैसे पुरुषार्थ की युक्ति से बहुत धन को प्राप्त होता वैसे सूर्योदय से पहिले उठ कर यत्नवान् पुरुष दरिद्रता का त्याग करता है ॥ १० ॥

अवेयमश्वैद्युवतिः पुरस्ताद्युङ्क्ते गवामरुणानामनीकम् ।
वि नूनमुच्छादसति प्र केतुर्गृहंगृहमुप तिष्ठाते अग्निः ॥ ११ ॥

पदार्थ—जैसे (**इयम्**) यह प्रभातवेला (**अरुणानाम्**) लाली लिये हुए (**गवाम्**) सूर्य की किरणों के (**अनीकम्**) सेना के समान समूह को (**युङ्क्ते**) जोड़ती और (**पुरस्तादवाश्वैत्**) पहिले से बढ़ती है वैसे (**युवतिः**) पूरी चौबीस वर्ष की ज्वान स्त्री लाल रङ्ग के गौ आदि पशुओं के समूह को जोड़ती पीछे उन्नति को प्राप्त होती इस से (**प्र, केतुः**) उठी है शिखा जिसकी वह बढ़ती हुई प्रभात वेला (**असति**) हो और (**नूनम्**) निश्चय से (**व्युच्छात्**) सब को प्राप्त हो (**अग्निः**) तथा सूर्यमण्डल का तरुण ताप उत्कट घाम (**गृहं गृहम्**) घर घर (**उप, तिष्ठाते**) उपस्थित हो युवती भी उत्तम बुद्धि वाली होती निश्चय से सब पदार्थों को प्राप्त होती और इसका उत्कट प्रताप घर घर उपस्थित होता अर्थात् सब स्त्री पुरुष जानते और मानते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रभातवेला और दिन सदैव मिले हुए वर्त्तमान हैं वैसे ही विवाहित स्त्री पुरुष मेल से अपना वर्त्ताव रक्खें और जिस नियम के जो पदार्थ हों उस नियम से उन को पावें तब इन का प्रताप बढ़ता है ॥ ११ ॥

उत्ते वयश्चिद्वसतेरपप्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।
अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (नरः) मनुष्यो ! (ये) जो (पितुभाजः) अन्न का विभाग करने वाले तुम लोग (चित्) भी जैसे (वयः) अवस्था को (वसतेः) वसीति से (उत् अपप्तन्) उत्तमता के साथ प्राप्त होते वैसे ही (व्युष्टौ) विशेष निवास में (अमा) समीप के घर वा (सते) वर्त्तमान व्यवहार के लिये होओ और हे (उषः) प्रातः समय के प्रकाश के समान विद्याप्रकाश युक्त (देवि) उत्तम व्यवहार की देने वाली स्त्री ! जो तू (च) भी (दाशुषे) देने वाले (मर्त्याय) अपने पति के लिये तथा समीप के घर और वर्त्तमान व्यवहार के लिये (भूरि) बहुत (वामम्) प्रशंसनीय व्यवहार की (वहसि) प्राप्ति करती उस (ते) तेरे लिये उक्त व्यवहार की प्राप्ति तेरा पति भी करे ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे पखेरू ऊपर और नीचे जाते हैं वैसे प्रातःसमय की वेला रात्रि और दिन के ऊपर और नीचे जाती है तथा जैसे स्त्री पति के प्रियाचरण को करे वैसे ही पति भी स्त्री के प्यारे आचरण को करे ॥ १२ ॥

अस्तोढ्वं स्तोम्या ब्रह्मणा मेऽवीवृधध्वमुशतीरुषासः ।
युष्माकं देवीरवसा सनेम सहस्रिणं च शतिनं च वाजम् ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे (उषासः) प्रभात वेलाओं के तुल्य (स्तोम्याः) स्तुति करने के योग्य (देवीः) दिव्य विद्या गुण वाली पण्डिताओ ! (ब्रह्मणा) वेद से (उशतीः) कामना और कान्ति को प्राप्त होती हुई तुम (मे) मेरे लिये विद्याओं की (अस्तोढ्वम्) स्तुति प्रशंसा करो और (अवीवृधध्वम्) हम लोगों की उन्नति कराओ तथा (युष्माकम्) तुम्हारी (अवसा) रक्षा आदि से (सहस्रिणम्) जिसमें सहस्रों गुण विद्यमान (च) और जो (शतिनम्) सैकड़ों प्रकार की विद्याओं से युक्त (च) और (वाजम्) अङ्ग उपाङ्ग उपनिषदों सहित वेदादि शास्त्रों का बोध उसको दूसरों के लिये हम लोग (सनेम) देवें ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रातवेला अच्छे

गुण कर्म और स्वभाव वाली हैं वैसी स्त्री हो और वैसे उत्तम गुण कर्म वाले मनुष्य हों जैसे और विद्वान् से अपने प्रयोजन के लिये विद्या लेवें वैसे ही प्रीति से औरों के लिये भी विद्या देवें ॥ १३ ॥

इस सूक्त में प्रभात वेला के दृष्टान्त से स्त्रियों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ चौबीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

दैर्घतमसः कक्षीवान् ऋषिः । दम्पती देवते १ । ३ । ७ त्रिष्टुप् छन्दः २ । ६ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ । ५ जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्वान् प्रतिगृह्या नि धत्ते ।
तेन प्रजां वर्धयमान आयू रायस्पोषेण सचते सुवीरः ॥ १ ॥

पदार्थ—जो (चिकित्वान्) विशेष ज्ञानवान् (प्रातरित्वा) प्रातःकाल में जागने वाला (सुवीरः) सुन्दर वीर मनुष्य (प्रातः रत्नम्) प्रभात समय में रमण करने योग्य आनन्दमय पदार्थ को (दधाति) धारण करता और (प्रतिगृह्य) दे लेकर फिर (तम्) उसको (नि, धत्ते) नित्य धारण वा (तेन) उस (रायस्पोषेण) धन की पुष्टि से (प्रजाम्) पुत्र पौत्र आदि सन्तान और (आयुः) आयुर्दा को (वर्द्धयमानः) विद्या और उत्तम शिक्षा से बढ़ाता हुआ (सचते) उसका सम्बन्ध करता है वह निरन्तर सुखी होता है ॥ १ ॥

भावार्थ—जो आलस्य को छोड़ धर्म सम्वन्धी व्यवहार से धन को पा उस की रक्षा, उस का स्वयं भोग कर दूसरों को भोग करा और दे ले कर निरन्तर उत्तम यत्न करे वह सब सुखों को प्राप्त होवे ॥ १ ॥

सुगुरसत्सुहिरण्यः स्वश्वो बृहदस्मै वय इन्द्रो दधाति ।
यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वो मुक्षीजयेव पदिमुत्सिनाति ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (प्रातरित्वः) प्रातः समय से लेकर अच्छा यत्न करने हारे (यः) जो (इन्द्रः) ऐश्वर्य्यवान् पुरुष (वसुना) उत्तम धन के साथ (आयन्तम्) आते हुए (त्वा) तुझ को (दधाति) धारण करता (अस्मै) इस कार्य के लिये (बृहत्) बहुत (वयः) चिरकाल तक जीवन और (मुक्षीजयेव) जो मूंज से उत्पन्न होती उससे जैसे बांधना बने वैसे साधन से (पद्विम्) प्राप्त होते हुए धन

को (उत्सिनाति) अत्यन्त बांधता अर्थात् सम्बन्ध करता वह (सुगुः) सुन्दर गौओं (सुहिरण्यः) अच्छे अच्छे सुवर्ण आदि धनों और (स्वश्वः) उत्तम उत्तम घोड़ों वाला (असत्) होवे ॥ २ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् पाये हुए शिष्यों को उत्तम शिक्षा अर्थात् अधर्म और विषय भोग की चञ्चलता के त्याग आदि के उपदेश से बहुत आयुर्दायुक्त विद्या और धन वाले करता है वह इस संसार में उत्तम कीर्तिमान् होता है ॥ २ ॥

आयमद्य सुकृतं प्रातरिच्छन्निष्टेः पुत्रं वसुमता रथेन ।
अंशोः सुतं पायय मत्सरस्य क्षयद्वीरं वर्द्धय सूनृताभिः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे धायि ! मैं (अद्य) आज (वसुमता) प्रशंसित धनयुक्त (रथेन) मनोहर रमण करने योग्य रथ आदि यान से (प्रातः) प्रभात समय (इष्टेः) चाहे हुए गृहाश्रम के स्थान से (सुकृतम्) धर्मयुक्त काम की (इच्छन्) इच्छा करता हुआ जिस (पुत्रम्) पवित्र बालक को (आयम्) पाऊं उस (सुतम्) उत्पन्न हुए पुत्र को (मत्सरस्य) आनन्द कराने वाला जो (अंशोः) स्त्री का शरीर उसके भाग से जो रस अर्थात् दूध उत्पन्न होता उस दूध को (पायय) पिला हे वीर ! (सूनृताभिः) विद्या सत्यभाषण आदि शुभगुणयुक्त वाणियों से (क्षयद्वीरम्) शत्रुओं का क्षय करने वालों में प्रशंसित वीर पुरुष की (वर्द्धय) उन्नति कर ॥ ३ ॥

भावार्थ—स्त्री पुरुष पूरे ब्रह्मचर्य से विद्या का संग्रह और एक दूसरे की प्रसन्नता से विवाह कर धर्मयुक्त व्यवहार से पुत्र आदि सन्तानों को उत्पन्न करें और उनकी रक्षा कराने के लिये धर्मवती धायि को देवें और वह इस सन्तान को उत्तम शिक्षा से युक्त करे ॥ ३ ॥

उप क्षरन्ति सिंधवो मयोभुव ईजानं च यक्ष्यमाणं च धेनवः ।
पृणन्तं च पपुरिं च श्रवस्यवो घृतस्य धारा उप यन्ति विश्वतः ॥४॥

पदार्थ—जो (सिन्धवः) बड़े नदों के समान (मयोभुवः) सुख की भावना कराने वाले मनुष्य और (धेनवः) दूध देने हारी गौओं के समान विवाही हुई स्त्री वा धायी (ईजानम्) यज्ञ करते (च) और (यक्ष्यमाणम्) यज्ञ करने वाले पुरुष के (उप, क्षरन्ति) समीप आनन्द वर्षावें वा जो (श्रवस्यवः) आप सुनने की इच्छा करते हुए विद्वान् (च) और विदुषी स्त्री (पृणन्तम्) पुष्ट होते (च) और (पपुरिम्) पुष्टि हुए ((च) भी पुरुष को शिक्षा देते हैं वे

(विश्वतः) सब ओर से (घृतस्य) जल की (धाराः) धाराओं के समान सुखों को (उप, यन्ति) प्राप्त होते हैं॥ ४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो पुरुष और स्त्री गृहाश्रम में एक दूसरे के प्रिय आचरण और विद्याओं का अभ्यास करके सन्तानों को अभ्यास कराते हैं वे निरन्तर सुखों को प्राप्त होते हैं॥ ४॥

नाकस्य पृष्ठे अधि तिष्ठति श्रितो यः पृणाति स ह देवेषु गच्छति।
तस्मा आपो घृतमर्षन्ति सिन्धवस्तस्मा इयं दक्षिणा पिन्वते सदा॥५॥

पदार्थ—(यः) जो मनुष्य (देवेषु) दिव्यगुण वा उत्तम विद्वानों में (गच्छति) जाता है (सः, ह) वही विद्या के (श्रितः) आश्रय को प्राप्त हुआ (नाकस्य) जिस में किञ्चित् दुःख नहीं उस उत्तम सुख के (पृष्ठे) आधार (अधि, तिष्ठति) पर स्थिर होता वा (पृणाति) विद्या उत्तम शिक्षा और अच्छे बनाए हुए अन्न आदि पदार्थों से आप पुष्ट होता और सन्तान को पुष्ट करता है (तस्मै) उस के लिये (आपः) प्राण वा जल (सदा) सब कभी (घृतम्) घी (अर्षन्ति) वर्षाते तथा (तस्मै) उस के लिये (इयम्) यह पढ़ाने से मिली हुई (दक्षिणा) दक्षिणा और (सिन्धवः) नदीनद (सदा) सब कभी (पिन्वते) प्रसन्नता करते हैं॥ ५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य इस मनुष्य देह का आश्रय कर सत्पुरुषों का सङ्ग और धर्म के अनुकूल आचरण को सदा करते वे सदैव सुखी होते हैं जो विद्वान् वा जो विदुषी पण्डिता स्त्री बालक ज्वान और बुड्ढे मनुष्यों तथा कन्या युवति और बुड्ढी स्त्रियों को निष्कपटता से विद्या और उत्तम शिक्षा को निरन्तर प्राप्त कराते वे इस संसार में समग्र सुख को प्राप्त हो कर अन्तकाल में मोक्ष को अधिगत होते अर्थात् अधिकता से प्राप्त होते हैं॥ ५॥

दक्षिणावतामिदिमानि चित्रा दक्षिणावतां दिवि सूर्यासः।
दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते दक्षिणावन्तः प्रतिरन्त आयुः॥ ६॥

पदार्थ—(दक्षिणावताम्) जिन के धर्म से इकट्ठे किये धन विद्या आदि बहुत पदार्थ विद्यमान हैं उन मनुष्यों को (इमानि) ये प्रत्यक्ष (चित्रा) चित्र विचित्र अद्भुत सुख (दक्षिणावताम्) जिन के प्रशंसित धर्म के अनुकूल धन और विद्या की दक्षिणा का दान होता उन सज्जनों को (दिवि) उत्तम प्रकाश में (सूर्य्यासः) सूर्य्य के समान तेजस्वी जन प्राप्त होते हैं (दक्षिणावन्तः) बहुत विद्यादानयुक्त सत्पुरुष (इत्) ही (अमृतम्) मोक्ष का (भजन्ते) सेवन करते

और (दक्षिणावन्तः) बहुत प्रकार का अभय देने हारे जन (आयुः) आयु के (प्रतिरन्ते) अच्छे प्रकार पार पहुँचे अर्थात् पूरी आयु भोगते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो ब्राह्मण सब मनुष्यों के सुख के लिये विद्या और उत्तम शिक्षा का दान वा जो क्षत्रिय न्याय के अनुकूल व्यवहार से प्रजा जनों को अभय दान वा जो वैश्य धर्म से इकट्ठे किये हुए धन का दान और जो शूद्र सेवा दान करते हैं वे पूर्ण आयु वाले हो कर इस जन्म और दूसरे जन्म में निरन्तर आनन्द को भोगते हैं ॥ ६ ॥

मा पृणन्तो दुरितमेन आरन्मा जारिषुः सूरयः सुव्रतासः ।
अन्यस्तेषां परिधिरस्तु कश्चिदपृणन्तमभि सं यन्तु शोकाः ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप लोग (पृणन्तः) स्वयं वा अपने संतान आदि को पुष्ट करते हुए (दुरितम्) दुःख के लिये जो प्राप्त होता अर्थात् (एनः) पाप का आचरण (मा, आ, अरन्) मत करो और दुःख के लिये प्राप्त होने वाला पापाचरण जैसे हो वैसे (मा, जारिषुः) खोटे कामों को मत करो किन्तु (सुव्रतासः) उत्तम सत्य आचरण वाले (सूरयः) विद्वान् होते हुए धर्म ही का आचरण करो और जो तुम्हारे अध्यापक हों (तेषाम्) उन धार्मिक विद्वानों तथा तुम लोगों के बीच (कश्चित्) कोई (अन्यः) भिन्न परिधिः मर्यादा अर्थात् तुम सभों को ढांपने गुप्त राखने मूर्खपन से बचाने वाला प्रकार (अस्तु) हो और (अपृणन्तम्) धर्म से न पुष्ट होने न दूसरों को पुष्ट करने वाले किन्तु अधर्म से पुष्ट होने तथा अधर्म ही से औरों को पुष्ट करने वाले मनुष्य को (शोकाः) शोक विलाप (अभि, सम्, यन्तु) सब ओर से प्राप्त हों ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस संसार में दो प्रकार के मनुष्य होते हैं एक धार्मिक और दूसरे पापी । ये दोनों अच्छे प्रकार अलग अलग स्थान और आचरण वाले हैं अर्थात् जो धार्मिक हैं वे धर्मात्माओं के अनुकरण ही से धर्म मार्ग में चलते और जो दुष्ट आचरण करने वाले पापी हैं वे अधर्मी दुष्ट जनों के आचरण ही से अधर्म में चलते हैं । कभी किन्हीं धर्मात्माओं को अधर्मी दुष्ट जनों के मार्ग में नहीं चलना चाहिये और अधर्मी दुष्टों को अपनी दुष्टता छोड़ धार्मिकों के मार्ग में चलना योग्य है । इस प्रकार प्रत्येक जाति के पीछे धार्मिक और अधार्मिकों के दो मार्ग हैं । उन में धर्म करने वालों को सुख और अधर्मी दुष्टों को दुःख सदा प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

इस सूक्त में धर्म के अनुकूल आचरण का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ पच्चीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

———

१--५ कक्षीवान् । ६ भावयव्यः । ७ रोमशा ब्रह्मवादिनी चर्षिः । विद्वांसो देवताः । १--२ । ४—५ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ६–७ अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अमन्दान् स्तोमान् प्र भरे मनीषा सिन्धावधि क्षियतो भाव्यस्य ।
यो मे सहस्रममिमीत सवानतूर्तो राजा श्रव इच्छमानः ॥ १ ॥

पदार्थ—(यः) जो (अतूर्त्तः) हिंसा आदि के दुःख को न प्राप्त और (श्रवः) उत्तम उपदेश सुनने की (इच्छमानः) इच्छा करता हुआ (राजा) प्रकाशमान सभाध्यक्ष (सिन्धौ) नदी के समीप (क्षियतः) निरन्तर बसते हुए (भाव्यस्य) प्रसिद्ध होने योग्य (मे) मेरे निकट (सहस्रम्) हजारों (सवान्) ऐश्वर्य योग्य (अमन्दान्) मन्दपनरहित तीव्र और (स्तोमान्) प्रशंसा करने योग्य विद्यासम्बन्धी विशेष ज्ञानों का (मनीषा) बुद्धि से (अमिमीत) निरन्तर मान करता उस को मैं (अधि) अपने मन के बीच (प्र, भरे) अच्छे प्रकार धारण करूं ॥ १ ॥

भावार्थ—जब तक सकल शास्त्र जानने हारे विद्वान् की आज्ञा से पुरुषार्थी विद्वान् न हो तब तक उस का राज्य के अधिकार में स्थापन न करे ॥ १ ॥

शतं राज्ञो नाधमानस्य निष्कान् शतमश्वान् प्रयतान् सद्य आदम् ।
शतं कक्षीवाँ असुरस्य गोनां दिवि श्रवोऽजरमा ततान ॥ २ ॥

पदार्थ—जो (कक्षीवान्) विद्या के बहुत व्यवहारों को जानता हुआ विद्वान् (असुरस्य) मेघ के समान उत्तम गुणी (नाधमानस्य) ऐश्वर्यवान् (राज्ञः) राजा के (शतम्) सौ (निष्कान्) निष्क सुवर्णों (प्रयतान्) अच्छे सिखाये हुए (शतम्) सौ (अश्वान्) घोड़ों और (दिवि) आकाश में (अजरम्) अविनाशी (गोनाम्, शतम्) सूर्यमण्डल की सैकड़ों किरणों के समान (श्रवः) श्रूयमाण यश को (आ, ततान) विस्तारता है उस को मैं (सद्यः) शीघ्र (आदम्) स्वीकार करता हूं ॥ २ ॥

भावार्थ—जो न्यायकारी विद्वान् राजा के समीप से सत्कार को प्राप्त होते वे यश का विस्तार करते हैं ॥ २ ॥

उप मा श्यावाः स्वनयेन दत्ता वधूमन्तो दश रथासो अस्थुः ।
षष्टिः सहस्रमनु गव्यमागात् सनत्कक्षीवाँ अभिपित्वे अह्नाम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—जिस (स्वनयेन) अपने धन आदि पदार्थ के पहुँचाने अर्थात् देने

वाले ने (श्यावाः) सूर्य की किरणों के समान (दत्ताः) दिये हुए (दश) दश (रथासः) रथ (वधूमन्तः) जिन में प्रशंसित बहुएं विद्यमान वे (मा) मुझ सेनापति के (उपास्थुः) समीप स्थित होते तथा जो (कक्षीवान्) युद्ध में प्रशंसित कक्षा वाला अर्थात् जिसकी ओर अच्छे वीर योद्धा हैं वह (अभिपित्वे) सब ओर से प्राप्ति के निमित्त (अह्नाम्, सहस्रम्) हजार दिन (गव्यम्) गौओं के दुग्ध आदि पदार्थ को (अन्वागात्) प्राप्त होता और जिसके (षष्टिः) साठ पुरुष पीछे चलते वह (सनत्) सदा सुख का बढ़ाने वाला है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जिस कारण सब योद्धा राजा के समीप से धन आदि पदार्थ की प्राप्ति चाहते हैं इस से राजा को उन के लिये यथायोग्य धन आदि पदार्थ देना योग्य है, ऐसे बिना किये उत्साह नहीं होता ॥ ३ ॥

चत्वारिंशद्दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति ।
मदच्युतः कृशनावतो अत्यान् कक्षीवन्त उदमृक्षन्त पज्राः ॥ ४ ॥

पदार्थ—जिस (दशरथस्य) दशरथों से युक्त सेनापति के (चत्वारिंशत्) चालीस (शोणाः) लाल घोड़े (सहस्रस्य) सहस्र योद्धा और सहस्र रथों के (अग्रे) आगे (श्रेणिम्) अपनी पाँति को (नयन्ति) पहुँचाते अर्थात् एक साथ होकर आगे चलते वा जिस सेनापति के भृत्य ऐसे हैं (पज्राः) कि जिन के साथ मार्गों को जाते और (कक्षीवन्तः) जिन की प्रशंसित कक्षा विद्यमान अर्थात् जिन के साथी छटे हुए वीर लड़ने वाले हैं वे (मदच्युतः) जो मद को चुआते उन (कृश-नावतः) सुवर्ण आदि के गहने पहिने हुए तथा (अत्यान्) जिन से मार्गों को रमते पहुँचते उन घोड़ा हाथी रथ आदि को (उदमृक्षन्त) उत्कर्षता से सहते हैं वह शत्रुओं को जीतने को योग्य होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—जिन के चार घोड़ा युक्त दशों दिशाओं में रथ, सहस्रों अश्ववार (असवार) लाखों पैदल जाने वाले अत्यन्त पूर्ण कोश धन और पूर्ण विद्या विनय नम्रता आदि गुण हैं वे ही चक्रवर्ति राज्य करने को योग्य हैं ॥ ४ ॥

पूर्वामनु प्रयतिमाददे वस्त्रीन् युक्ताँ अष्टावरिधायसो गाः ।
सुबन्धवो ये विश्या इव व्रा अनस्वन्तः श्रव ऐषन्त पज्राः ॥ ५ ॥

पदार्थ—(ये) जो ऐसे हैं कि (सुबन्धवः) जिन के उत्तम बन्धुजन (अनस्वन्तः) और बहुत लढ़ा छकड़ा विद्यमान (व्राः) तथा जो गमन करने वाले और (पज्राः) दूसरों को प्राप्त वे (विश्याइव) प्रजाजनों में उत्तम वणिक्

जनों के समान (श्रवः) अन्न को (ऐषन्त) चाहें उन (वः) तुम्हारे (त्रीन्) तीन (युक्तान्) आज्ञा दिये और अधिकार पाये भृत्यों (अष्टौ) आठ सभासदों (अरिधायसः) जिन से शत्रुओं को धारण करते समझते उन वीरों और (गाः) बैल आदि पशुओं को तथा इन सभों की (पूर्वाम्) पहिली (प्रयतिम्) उत्तम यत्न की रीति को मैं (अनु, आ, ददे) अनुकूलता से ग्रहण करता हूं ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो जन सभा सेना और शाला के अधिकारी कुशल चतुर आठ सभासदों, शत्रुओं का विनाश करने वाले वीरों, गौ बैल आदि पशुओं, मित्र धनी वणिक्जनों और खेती करने वालों की अच्छे प्रकार रक्षा करके अन्न आदि ऐश्वर्य्य की उन्नति करते हैं वे मनुष्यों में शिरोमणि अर्थात् अत्यन्त उत्तम होते हैं ॥ ५ ॥

आगधिता परिगधिता या कशीकेव जङ्गहे ।
ददाति मह्यं यादुरी याशूनां भोज्या शता ॥ ६ ॥

पदार्थ—(या) जो (आगधिता) अच्छे प्रकार ग्रहण किई हुई (परिगधिता) सब ओर से उत्तम उत्तम गुणों से युक्त (जङ्गहे) अत्यन्त ग्रहण करने योग्य व्यवहार में (कशीकेव) पशुओं के ताड़ना देने के लिये जो ओंगी होती उस के समान (याशूनाम्) अच्छा यत्न करने वालों की (यादुरी) उत्तम यत्न वाली नीति (भोज्या) भोगने योग्य (शता) सैकड़ों वस्तु (मह्यम्) मुझे (ददाति) देती है वह सब को स्वीकार करने योग्य है ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जिस नीति अर्थात् धर्म की चाल से अगणित सुख हों वह सब को सिद्ध करनी चाहिये ॥ ६ ॥

उपोप मे परा मृश मा मे दभ्राणि मन्यथाः ।
सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे पति राजन् ! जो (अहम्) मैं (गन्धारीणाम् इव) पृथिवी के राज्यधारण करने वालियों में जैसे (अविका) रक्षा करने वाली होती है वैसे (रोमशा) प्रशंसित रोमों वाली (सर्वा) सब प्रकार की (अस्मि) हूं उस (मे) मेरे गुणों को (परा, मृश) विचारो (मे) मेरे (दभ्राणि) कामों को छोटे (मा, उपोप) अपने पास में मत (मन्यथाः) मानो ॥ ७ ॥

भावार्थ—रानी राजा के प्रति कहे कि मैं आप से न्यून नहीं हूँ जैसे आप पुरुषों के न्यायाधीश हो वैसे मैं स्त्रियों का न्याय करने वाली होती हूं और जैसे पहिले राजा महाराजाओं की स्त्री प्रजास्थ स्त्रियों की न्याय करने वाली हुई वैसी मैं भी होऊं ॥ ७ ॥

इस सूक्त में राजाओं के धर्म का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ एकता है, यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौछव्वीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

परुच्छेप ऋषिः । अग्निर्देवता १—३ । ८—९ अष्टिश्छन्दः । ४ । ७ । ११ भुरिगष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ५—६ अत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः । १० भुरिगतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमःस्वरः ॥

अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं
सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाऽऽजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे कन्या ! जैसे मैं (यः) जो (ऊर्ध्वया) उत्तम विद्या से (स्वध्वरः) सुन्दर यज्ञ का अनुष्ठान अर्थात् आरम्भ करने वाली वह (देवाच्या) जो कि विद्वानों को प्राप्त होती और जिससे व्यवहार को समर्थ करते उस (कृपा) कृपा से (देवः) जो मनोहर अतिसुन्दर है उस जन को (आजुह्वानस्य) अच्छे प्रकार होमने और (सर्पिषः) प्राप्त होने योग्य (घृतस्य) घी के (शोचिषा) प्रकार के साथ (विभ्राष्टिम्) जिससे अनेक प्रकार पदार्थ को पकाते उस अग्नि के समान (अनुवष्टि) अनुकूलता से चाहता है वा जिस (अग्निम्) अग्नि के समान (होतारम्) ग्रहण करने (दास्वन्तम्) देने वाले (वसुम्) तथा ब्रह्मचर्य से विद्या के बीच में निवास किये हुए (सहसः) बलवान् पुरुष के (सूनुम्) पुत्र को (जातवेदसम्) जिसकी प्रसिद्ध वेदविद्या उस (विप्रम्) मेधावी के (न) समान (जातवेदसम्) प्रकट विद्या वाले विद्वान् को पति (मन्ये) मानती हूँ वैसे ऐसे पति को तू भी स्वीकार कर ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिस की उत्तम गुण वालों में बहुत प्रशंसा, जिस का अति उत्तम शरीर और आत्मा का बल हो उस पुरुष को स्त्री पतिपने के लिये स्वीकार करे, ऐसा पुरुष भी इसी प्रकार की स्त्री को भार्यापन के लिये स्वीकार करे ॥ १ ॥

यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां

विप्र मन्मभिर्विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः ।

परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम् ।

शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (विप्र) उत्तम बुद्धि वाले विद्वान् ! (यजमानाः) व्यवहारों का सङ्ग करने हारे लोग (मन्मभिः) मान करने वाले (विप्रेभिः) विचक्षण विद्वानों के साथ (अङ्गिरसाम्) प्राणियों के बीच (ज्येष्ठम्) अति प्रशंसित (यजिष्ठम्) अत्यन्त यज्ञ करने वाले (त्वा, हुवेम) तुझको प्रशंसित करते हैं (शुक्र) शुद्ध आत्मा वाले धर्मात्मा जन (यम्) जिस (मन्मभिः) विज्ञानों के साथ (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के बीच (होतारम्) दान करने वाले (परिज्मानमिव) सब ओर से भोगने हारे के समान (द्याम्) प्रकाशरूप (शोचिष्केशम्) जिस के लपट जैसे चिलकते हुए केश हैं उस (वृषणम्) बलवान् तुझ को (इमाः) ये (विशः) प्रजाजन (प्रावन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त होवें वह तू (जूतये) रक्षा आदि के लिये (विशः) प्रजाजनों को अच्छे प्रकार प्राप्त हो और पाल ॥ २ ॥

भावार्थ—विद्वान् और प्रजाजन जिस की प्रशंसा करें उसी आप्त सर्वशास्त्रवेत्ता विद्वान् का आश्रय सब मनुष्य करें ॥ २ ॥

स हि पुरू चिदोजसा विरुक्मता

दीद्यानो भवति द्रुहन्तरः परशुर्न द्रुहन्तरः ।

वीळु चिद्यस्य समृतौ श्रुवद्वनेव यत्स्थिरम् ।

निःषहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यस्य) जिस की (समृतौ) अच्छे प्रकार प्राप्ति कराने वाली क्रिया के निमित्त (चित्) ही (वनेव) वनों के समान (वीडु) दृढ़ (स्थिरम्) निश्चल बल को (निःसहमानः) निरन्तर सहनशील वीरों वाला (श्रुवत्) सुनता हुआ शत्रुओं को (यमते) नियम में लाता अर्थात् उन के सुने हुए उस बल को छिन्न भिन्न कर उन को शत्रुता करने से रोकता वा जिस को शत्रुजन (नायते) नहीं प्राप्त होता वा (धन्वासहा) जो अपने धनुष् से शत्रुओं को सहने वाला शत्रु जनों को अच्छे प्रकार जीतता वा (यत्) जिस के विजय को शत्रु जन (नायते) नहीं प्राप्त होता वा जो (द्रुहन्तरः) द्रोह करने वालों को तरता वह (परशुः) फरसा वा कुल्हाड़ा के (न) समान (पुरु) तीव्र बहुत प्रकार से ज्यों हो

त्यों (विरुक्मता) जिस से अनेक प्रकार की प्रतियों हों उस (ओजसा) बल के साथ (दीद्यानः) प्रकाशमान (द्रुहन्तरः) द्रुहन्तर (भवति) होता अर्थात् जिस के सहाय से द्रोह करने वाले शत्रु को जीतता (सः, हि, चित्) वही कभी विजयी होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को जानना चाहिये कि जो शत्रुओं से नहीं पराजित होता और अपने प्रशंसित बल से उन को जीत सकता है वही प्रजा पालने वालों में शिरोमणि होता है ॥ ३ ॥

दृळ्हा चिंदस्मा अनु दुर्यथा विदे ।
तेजिष्ठाभिररणिभिर्दाष्ट्यवसेऽग्नये दाष्ट्यवसे ।
प्र यः पुरूणि गाहते तक्षद्वनेव शोचिषा ।
स्थिरा चिदन्ना निरिणात्योजसा नि स्थिराणि चिदोजसा ॥४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यथा) जैसे विद्वान् (तेजिष्ठाभिः) अत्यन्त तेज वाली (अरणिभिः) अरणियों से (अस्मै) इस (विदे) शास्त्रवेत्ता (अवसे) रक्षा करने वाले (अग्नये) अग्नि के समान वर्त्तमान सभाध्यक्ष के लिये (दाष्टि) ओविली को घिसने से काटता वा विद्वान् जन (दृढा) (स्थिरा) निश्चल (चित्) भी विज्ञानों के (अनु, दुः) अनुक्रम से देवें वैसे (यः) जो (अवसे) रक्षा आदि करने के लिये (दाष्टि) काटता अर्थात् उक्त क्रिया को करता वा (तक्षत्) अपने तेज से जल आदि को छिन्न भिन्न करता हुआ सूर्यमण्डल (वनेव) किरणों को जैसे वैसे (शोचिषा) न्याय और सेना के प्रकाश से (पुरूणि) बहुत शत्रु दलों को (प्र, गाहते) अच्छे प्रकार विलोडता वा (ओजसा) पराक्रम से (स्थिराणि) स्थिर कर्मों को (नि) निरन्तर प्राप्त होता (चित्) और (ओजसा) कोमल काम से (अन्ना) खाने योग्य अन्नों को (चित्) भी (नि, रिणाति) निरन्तर प्राप्त होता है वह सुख को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। जैसे विद्वान् जन विद्या के प्रचार से मनुष्यों के आत्माओं को प्रकाशित कर सब को पुरुषार्थी बनाते हैं वैसे न्यायाधीश विद्वान् प्रजाजनों को उद्यमी करते हैं ॥ ४ ॥

तमस्य पृक्षमुपरासु धीमहि नक्तं
यः सुदर्शतरो दिवातरादप्रायुषे दिवातरात् ।
आदस्यायुर्ग्रभणवद्वीळु शर्म्म न सूनवे ।
भक्तमभक्तमवो व्यन्तो अजरा अग्नयो व्यन्तो अजराः ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यः) जो (सुदर्शतरः) अतीव सुन्दर देखने योग्य पूरी कलाओं से युक्त चन्द्रमा के समान राजा (अस्य) इस संसार का (दिवातरात्) अत्यन्त प्रकाशवान् सूर्य से (अप्रायुषे) जो व्यवहार नहीं प्राप्त होता उस के लिये (नक्तम्) रात्रि में सब पदार्थों को दिखलाता सा है (तम्) उस (पृक्षम्) उत्तम कामों का सम्बन्ध करने वाले को (दिवातरात्) अतीव प्रकाशमान सूर्य के तुल्य उस से (उपरासु) दिशाओं में हम लोग (धीमहि) धारण करें अर्थात् सुनें (आत्) इस के अनन्तर (अस्य) इस मनुष्य का (अभणवत्) जिस में प्रशंसित सब व्यवहारों का ग्रहण उस (वीळु) दृढ (भक्तम्) सेवन किये वा (अभक्तम्) न सेवन किये हुए (अवः) रक्षा आदि युक्त कर्म और (आयुः) जीवन को (सूनवे) पुत्र के लिये (न) जैसे वैसे (शर्म) घर को (व्यन्तः) विविध प्रकार से प्राप्त होते हुए (अजराः) पूरी अवस्था वाले वा (अग्नयः) बिजुली रूप अग्नि के समान (व्यन्तः) सब पदार्थों की कामना करते हुए (अजराः) अवस्था होने से रहित हम लोग धारण करें ॥ ५ ॥

भवार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे चन्द्रमा तारागण और ओषधियों को पुष्ट करता है वैसे सज्जनों को प्रजाजनों का पालन पोषण करना चाहिये, जैसे सन्तानों को पिता माता तृप्त करते हैं वैसे सब प्राणियों को हम लोग तृप्त करें ॥ ५ ॥

स हि शर्धो न मारुतं
तुविष्वणिरप्नस्वतीषूर्वरास्विष्टनिरार्तनास्विष्टनिः ।
आदद्धव्यान्याददिर्यज्ञस्य केतुरर्हणा ।
अध स्मास्य हर्षतो हृषीवतो विश्वे
जुषन्त पन्थां नरः शुभे न पन्थाम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (विश्व) सब (नरः) व्यवहारों की प्राप्ति कराने वाले मनुष्यो ! तुम (हृषीवतः) जो बहुत आनन्द से भरा (हर्षतः) और जिससे सब प्रकार का आनन्द प्राप्त हुआ (अस्य) इस (यज्ञस्य) सङ्ग करने अर्थात् पाने योग्य व्यवहार की (शुभे) उत्तमता के लिये (न) जैसे हो वैसे (पन्थाम्) धर्म-युक्त मार्ग का (जुषन्त) सेवन करो (अध) इसके अनन्तर जो (केतुः) ज्ञानवान् (आददिः) ग्रहण करने हारा (अर्हणा) सत्कार किये अर्थात् नम्रता के साथ हुए (हव्यानि) भोजन के योग्य पदार्थों को (आदत्) खावे वा (मारुतम्) पवनों के (शर्धः) बल के (न) समान (अप्नस्वतीषु) जिनके प्रशंसित सन्तान विद्यमान उन (उर्वरासु) सुन्दरी (आर्त्तनासु) सत्य आचरण करने वाली स्त्रियों के समीप

(तुविष्वणिः) जिस की बहुत उत्तम निरन्तर बोल चाल (इष्टनिः) और जो सत्कार करने योग्य है (सः, स्म) वही विद्वान् (इष्टनिः) इच्छा करने वाला (हि) निश्चय के साथ (पन्थाम्) न्याय मार्ग को प्राप्त होने योग्य होता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमलङ्कार हैं। जो मनुष्य धर्म से इकट्ठे किये हुए पदार्थों का भोग करते हुए प्रजाजनों में धर्म और विद्या आदि गुणों का प्रचार करते हैं वे दूसरों से धर्ममार्ग का प्रचार करा सकते हैं ॥ ६ ॥

द्विता यदीं कीस्तासो अभिद्यवो नमस्यन्त

उपवोचन्त भृगवो मथ्नन्तो दाशा भृगवः ।

अग्निरीशे वसूनां शुचियो धर्णिरेषाम् ।

प्रियाँ अपिधीर्वनिषीष्ट मेधिर आ वनिषीष्ट मेधिरः ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (कीस्तासः) उत्तम वृद्धि वाले विद्वान् (अभिद्यवः) जिन के आगे विद्या आदि गुणों के प्रकाश (नमस्यन्तः) जो धर्म का सेवन (भृगवः) तथा अविद्या और अधर्म के नाश करते ज्ञान को (मथ्नन्तः) मथते हुए (भृगवः) और दुःख मिटाते हैं वे (दाशा) विद्या दान के लिये विद्यार्थियों को (द्विता) जैसे दो का होना हो वैसे अर्थात् एक पर एक (ईम्) सम्मुख प्राप्त हुई विद्या (उपवोचन्त) और गुण का उपदेश करें वा जैसे (एषाम्) इन (वसूनाम्) पृथिवी आदि लोकों के बीच (यः) जो (धर्णिः) शिल्पविद्या विषयक कामों का धारण करने हारा (शुचिः) पवित्र और दूसरों को शुद्ध करने हारा (अग्निः) अग्नि है वा जैसे (मेधिरः) उत्तम बुद्धि वाला (प्रियान्) प्रसन्न चित्त और (अपिधीन्) श्रेष्ठ गुणों का धारण करने और दुःखों को ढाँपने वाले विद्वानों को (वनिषीष्ट) याचे अर्थात् उन से किसी पदार्थ को मांगे वा (मेधिरः) सङ्ग करने वाला पुरुष देने वालों को (आ, वनिषीष्ट) अच्छे प्रकार याचे वा विद्या की (ईशे) ईश्वरता प्रकट करे अर्थात् विद्या के अधिकार को प्रकाशित करे वैसे ही तुम उक्त विद्वान् और अग्नि आदि पदार्थों का सेवन करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो विद्यार्थी विद्वानों से नित्य विद्या मांगें उन के लिये विद्वान् भी नित्य ही विद्या को अच्छे प्रकार देवें क्योंकि इस लेने देने के तुल्य कुछ भी उत्तम काम नहीं है ॥ ७ ॥

विश्वासां त्वा विशां पतिं हवामहे
सर्वासां समानं दम्पतिं भुजे सत्यगिर्वाहसं भुजे ।
अतिथिं मानुषाणां पितुर्न यस्यासया ।
अमी च विश्वे अमृतास आ वयो हव्या देवेष्वा वयः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! जैसे हम लोग (**भुजे**) शरीर में विद्या का आनन्द भोगने के लिये (**विश्वासाम्**) सब (**विशाम्**) प्रजाजनों के वा (**सर्वासाम्**) समस्त क्रियाओं के (**पतिम्**) पालने हारे अधिपति (**त्वा**) तुझको (**हवामहे**) स्वीकार करते हैं (**च**) और जैसे (**अमी**) वे (**देवेषु**) (**आ**) अच्छे प्रकार (**वयः**) विद्यादि गुणों को चाहने वाले (**हव्या**) ग्रहण करने योग्य ज्ञानों का ग्रहण किये और (**आ, वयः**) अच्छे प्रकार विद्या आदि गुणों को पाये हुए (**विश्वे**) सब (**अमृतासः**) अमर अर्थात् विद्या प्रकाश से मृत्यु दुःख से रहित हुए हम लोग (**यस्य**) जिस की (**आसया**) बैठक के (**पितुः**) अन्न के (**न**) समान (**भुजे**) विद्यानन्द भोगने के लिये (**मानुषाणाम्**) मनुष्यों के (**समानम्**) पक्षपात रहित (**अतिथिम्**) अतिथि के तुल्य सत्कार करने योग्य (**सत्यगिर्वाहसम्**) सत्यवाणी की प्राप्ति कराने वाले तुझ पालने हारे को स्वीकार करते वैसे (**दम्पतिम्**) स्त्री पुरुष का सेवन करते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जब तक पक्षपात रहित समग्र विद्या को जाने हुए धर्मात्मा विद्वान् राज्य के अधिकारी नहीं होते हैं तब तक राजा और प्रजाजनों की उन्नति भी नहीं होती है ॥ ८ ॥

त्वमग्ने सहसा सहन्तमः शुष्मिन्तमो जायसे ।
देवतातये रयिर्न देवतातये ।
शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।
अध स्मा ते परि चरन्त्यजर श्रुष्टीवानो नाजर ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (**अजर**) तरुण अवस्था वाले के (**न**) समान (**अजर**) अजन्मा परमेश्वर में रमते हुए (**अग्ने**) शूरवीर विद्वान् ! (**देवतातये**) विद्वान् के लिये (**रयिः**) धन जैसे (**न**) वैसे (**देवतातये**) विद्वानों के सत्कार के लिये (**सहन्तमः**) अतीव सहनशील (**शुष्मिन्तमः**) अत्यन्त प्रशंसित बलवान् (**त्वम्**) आप (**सहसा**) बल से (**जायसे**) प्रकट होते हो जिन (**ते**) आप का (**शुष्मिन्तमः**) अत्यन्त बलयुक्त (**द्युम्निन्तमः**) जिन के सम्बन्ध में बहुत धन

विद्यमान वह अत्यन्त धनी (मदः) हर्ष (उत्) और (क्रतुः) यज्ञ (हि) ही है (अध) अनन्तर (ते) आप के (श्रुष्टीवानः) शीघ्र क्रिया वाले (स्म) ही (परिचरन्ति) सब ओर से चलते वा आपकी परिचर्या करते उन आप का हम लोग आश्रय करें ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य शरीर और आत्मा के बल से युक्त अच्छे प्रकार ज्ञाता विद्या आदि धन प्रकाशयुक्त सन्तानों वाले होते हैं वे सुख करने वाले होते हैं ॥ ९ ॥

प्र वो॑ म॒हे सह॑सा॒ सह॑स्वत उष॒र्बुधे॑ पशु॒षे ना॒ग्नये॒ स्तोमो॑ बभूत्व॒ग्नये॑ ।

प्रति॒ यदीं॑ ह॒विष्मा॒न् विश्वा॑सु॒ क्षासु॒ जोगु॑वे ।

अग्रे॑ रे॒भो न ज॑रत ऋषू॒णां जू॒र्णिर्होत॑ ऋषू॒णाम् ॥ १० ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (वः) तुम लोगों के (सहस्वते) बहुत बलयुक्त (उषर्बुधे) प्रत्येक प्रभात समय में जागने और (पशुषे) प्रबन्ध बांधने हारे (महे) बड़े (जोगुवे) निरन्तर उपदेशक (अग्नये) बिजुली के (न) समान (अग्नये) प्रकाशमान के लिये (विश्वासु) सब (क्षासु) भूमियों में (हविष्मान्) प्रशंसित ग्रहण किये हुए व्यवहार जिस में विद्यमान वह (स्तोमः) प्रशंसा (सहसा) बल के साथ (प्र, बभूतु) समर्थ हो (रेभः) उपदेश करने वाले के (न) समान (अग्रे) आगे (ऋषूणाम्) जिन्होंने विद्या पाई वा जो विद्या को जानना चाहते उन की विद्याओं की (ईम्) सब ओर से (प्रति, जरते) प्रत्यक्ष में स्तुति करता (यत्) जो (होता) भोजन करने वाला (जूर्णिः) जूड़ी आदि रोग से रोगी हो वह (ऋषूणाम्) जिन्होंने वैद्यविद्या पाई अर्थात् उत्तम वैद्य हैं उन के समीप जाकर रोग रहित हो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् जन विद्या प्राप्ति के लिये अच्छा यत्न करते हैं वैसे इस संसार में सब मनुष्यों को प्रयत्न करना चाहिये ॥ १० ॥

स नो॒ नेदि॑ष्ठं॒ ददृ॑शान॒ आ भ॒राग्ने॑ दे॒वेभिः॒

सच॑नाः सु॒चेतु॑ना म॒हो रा॒यः सु॒चेतु॑ना ।

महि॑ शविष्ठ नस्कृधि सं॒चक्षे॑ भु॒जे अ॒स्यै ।

महि॑ स्तो॒तृभ्यो॑ मघव॒न्त्सुवीर्यं॒ मथी॑रु॒ग्रो न शव॑सा ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (मघवन्) प्रशंसित धनयुक्त (शविष्ठ) अतीव बलवान् विद्यादि

गुणों को पाये हुए (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशमान (सः) वह (ददृशानः) देखे हुए विद्वान् ! आप (सुचेतुना) सुन्दर समझने वाले और (देवेभिः) विद्वानों के साथ (नः) हम लोगों के लिये (महः) बहुत (सचनाः) सम्बन्ध करने योग्य (रायः) धनों को (आ, भर) अच्छे प्रकार धारण करें (अस्यै) इस प्रजा के लिये (संचक्षे) उत्तमता में कहने उपदेश देने और (भुजे) इसको पालना करने के लिये (शवसा) अपने पराक्रम से (उग्रः) प्रचण्ड प्रतापवान् (न) के समान (मथीः) दुष्टों को मथने वाले आप (नेदिष्ठम्) अत्यन्त समीप (महि) बहुत (सुवीर्यम्) उत्तम पराक्रम को अच्छे प्रकार धारण करो और इस (सुचेतुना) सुन्दर ज्ञान देने वाले गुण से (महि) अधिकता से जैसे हो वैसे (स्तोतृभ्यः) स्तुति प्रशंसा करने वालों से (नः) हम लोगों को विद्यावान् (कृधि) करो ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विद्यार्थियों को चाहिये कि सकल शास्त्र पढ़े हुए धार्मिक विद्वानों की प्रार्थना और सेवा कर पूरी विद्याओं को पावें जिससे राजा और प्रजाजन विद्यावान् होकर निरन्तर धर्म का आचरण करें ॥ ११ ॥

इस सूक्त में विद्वान् और राजधर्म का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ एकता जाननी चाहिये ॥

यह एकसौ सत्ताईसवां सूक्त समाप्त हुआ ।

परुच्छेप ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । निचृदत्यष्टिः । ३ । ४ । ६ । ८ विराडत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः । २ भुरिगष्टिः । ५ । ७ निचृदष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अयं जायत मनुषो धरीमणि होता यजिष्ठ

उशिजामनु व्रतमग्निः स्वमनु व्रतम् ।

विश्वश्रुष्टिः सखीयते रयिरिव श्रवस्यते ।

अदब्धो होता नि षददिडस्पदे परिवीत इडस्पदे ॥ १ ॥

पदार्थ—जो (अयम्) यह मनुष्य (इळः) स्तुति के योग्य जगदीश्वर के (पदे) प्राप्त होने योग्य विशेष ज्ञान में जैसे वैसे (इळः) प्रशंसित धर्म के (पदे) पाने योग्य व्यवहार में (अदब्धः) हिंसा आदि दोष रहित (होता) उत्तम गुणों

का ग्रहण करने हारा (परिवीतः) जिसने सब ओर से ज्ञान पाया ऐसा हुआ (नि, षदत्) स्थिर होता (रयिरिव) वा धन के समान (विश्वश्रुष्टिः) जिस की समस्त शीघ्र चालें ऐसा हुआ (श्रवस्यते) सुनने वाले के लिये (अग्निः) आग के समान वा (उशिजाम्) कामना करने वाले मनुष्यों के (अनु) अनुकूल (व्रतम्) स्वभाव के तुल्य (अनु, व्रतं, स्वम्) अनुकूल ही अपने आचरण को प्राप्त वा (धरीमणि) जिस में सुखों का धारण करते उस व्यवहार में (होता) देने हारा (यजिष्ठः) और अत्यन्त सङ्ग करता हुआ (जायत) प्रकट होता वह (मनुषः) मननशील विद्वान् सब के साथ (सखीयते) मित्र के समान आचरण करने वाला और सब को सत्कार करने योग्य होवे ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विद्याकी इच्छा करने वालों के अनुकूल चाल चलन चलने वाला सुशील धर्मयुक्त व्यवहार में अच्छी निष्ठा रखने वाला सब का मित्र शुभ गुणों का ग्रहण करने वाला हो वही मनुष्यों का मुकुटमणि अर्थात् अति श्रेष्ठ शिरधरा होवे ॥ १ ॥

तं यज्ञसाधमपि वातयामस्यृतस्य पथा
नमसा हविष्मता देवताता हविष्मता ।
स न ऊर्जामुपाभृत्यया कृपा न जूर्यति ।
यं मातरिश्वा मनवे परावतो देवं भाः परावतः ॥ २ ॥

पदार्थ—जैसे (यम्) जिस (देवम्) गुण देने वाले को (परावतः) दूर से जो (भाः) सूर्य की कान्ति उस के समान (मनवे) मनुष्य के लिये (मातरिश्वा) पवन (परावतः) दूर से धारण करता (सः) वह देने वाला विद्वान् (अया) इस (कृपा) कल्पना से (नः) हम लोगों को (ऊर्जाम्) पराक्रम वाले पदार्थों का (उपाभृति) समीप आया हुआ आभूषण अर्थात् सुन्दरपन जैसे हो वैसे (न) नहीं (जूर्यति) रोगी करता और वह जैसे (देवताता) विद्वान् के समान (हविष्मता) बहुत देने वाले (ऋतस्य) सत्य के (पथा) मार्ग से चलता है वैसे (हविष्मता) बहुत ग्रहण करने वाले (नमसा) सत्कार के साथ (तम्) उस अग्नि के समान प्रतापी (यज्ञसाधम्) यज्ञ साधने वाले विद्वान् को(अपि) निश्चय के साथ हम लोग (वातयामसि) पवन के समान सब कार्यों में प्रेरणा देवें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वान् मनुष्य जैसे पवन सब मूर्त्तिमान् पदार्थों को धारण करके प्राणियों को सुखी करता वैसे ही विद्या और धर्म को धारण कर सब मनुष्यों को सुख देवे ॥ २ ॥

एवेन सद्यः पर्येति पार्थिवं मुहुर्गी रेतो
वृषभः कनिक्रदद्दधद्रेतः कनिक्रदत् ।
शतं चक्षाणो अक्षभिर्देवो वनेषु तुर्वणिः ।
सदो दधान उपरेषु सानुष्वग्निः परेषु सानुषु ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! आप जैसे (मुहुर्गीः) वार वार वाणी को प्राप्त (रेतः) जल को (कनिक्रदत्) निरन्तर गर्जाता सा (रेतः) पराक्रम को (कनिक्रदत्) अतीव शब्दायमान करता और (दधत्) धारण करता हुआ (वृषभः) वर्षा करने और (वनेषु) किरणों में (तुर्वणिः) अन्धकार और शीत का विनाश करता हुआ (देवः) निरन्तर प्रकाशमान (उपरेषु) मेघों और (सानुषु) अलग अलग पर्वत के शिखरों वा (परेषु) उत्तम (सानुषु) पर्वतों के शिखरों में (सदः) जिनमें जन बैठते हैं उन स्थानों को (दधानः) धारण करता हुआ (अग्निः) बिजुली तथा सूर्यरूप अग्नि (एवेन) अपनी लपट झपट चाल से (पार्थिवम्) पृथिवी में जाने हुए पदार्थ को (सद्यः) शीघ्र (पर्येति) सब ओर से प्राप्त होता वैसे (अक्षभिः) इन्द्रियों से (शतम्) सैकड़ों उपदेशों को (चक्षाणः) करने वाले होते हुए प्रसिद्ध हूजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य और वायु सब को धारण और मेघ को वर्षाकर सब जगत् का आनन्द करते वैसे विद्वान् जन वेद विद्या को धारण कर औरों के आत्माओं में अपने उपदेशों को वर्षा कर सब मनुष्यों को सुख देते हैं ॥ ३ ॥

स सुक्रतुः पुरोहितो दमेदमेऽग्निर्यज्ञस्याध्वरस्य
चेतति क्रत्वा यज्ञस्य चेतति ।
क्रत्वा वेधा इषूयते विश्वा जातानि पस्पशे ।
यतो घृतश्रीरतिथिरजायत वह्निर्वेधा अजायत ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (सुक्रतुः) उत्तम बुद्धि और कर्म वाला (पुरोहितः) प्रथम जिसने हित सिद्ध किया और (अग्निः) आग के समान प्रतापी वर्त्तमान (दमेदमे) घर घर में (क्रत्वा) उत्तम बुद्धि वा कर्म से (यज्ञस्य) विद्वानों के सत्कार रूप कर्म की (चेतति) अच्छी चितौनी देते हुए के समान (अध्वरस्य) न छोड़ने (यज्ञस्य) किन्तु सङ्ग करने योग्य उत्तम यज्ञ आदि काम का (चेतति) विज्ञान कराता वा जो (क्रत्वा) श्रेष्ठ बुद्धि वा कर्म से (वेधाः) धीर बुद्धि वाला

(इषूयते) वाण के समान विषयों में प्रवेश करता और (विश्वा) समस्त (जातानि) उत्पन्न हुए पदार्थों का (पस्पशे) प्रबन्ध करता वा (यतः) जिससे (घृतश्रीः) घी का सेवन करता हुआ (अतिथिः) जिसकी कहीं ठहरने की तिथि निश्चित नहीं वह सत्कार के योग्य विद्वान् (अजायत) प्रसिद्ध होवे और (वह्निः) वस्तु के गुणादिकों की प्राप्ति कराने वाले अग्नि के समान (वेधाः) धीर बुद्धि पुरुष (अजायत) प्रसिद्ध होवें (सः) वही विद्वान् विद्या के उपदेश के लिये सब को अच्छे प्रकार आश्रय करने योग्य है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विद्वान् देश देश नगर नगर द्वीप द्वीप गांव गांव और घर घर में सत्य का उपदेश करते वे सब को सत्कार करने योग्य होते हैं ॥ ४ ॥

क्रत्वा यदस्य तविषीषु पृञ्चतेऽग्नेरवेण

मरुतां न भोज्येषिराय न भोज्या ।

स हि ष्मा दानमिन्वति वसूनां च मज्मना ।

स नस्त्रासते दुरितादभिह्रुतः शंसादघादभिह्रुतः ॥ ५ ॥

पदार्थ—(यत्) जो (अस्य) इस सेनापति की (क्रत्वा) बुद्धि और (अवेन) रक्षा आदि काम से (मरुताम्) पवनों और (अग्नेः) बिजुली आग की (इषिराय) विद्या को प्राप्त हुए पुरुष के लिये (भोज्या) भोजन करने योग्य पदार्थों के (न) समान वा (भोज्या) पालने योग्य पदार्थों के (न) समान पदार्थों का (तविषीषु) प्रशंसित बलयुक्त सेनाओं में (पृञ्चते) सम्बन्ध करता वा जो (हि) ठीक ठीक (मज्मना) बल से (वसूनाम्) प्रथम कक्षा वाले विद्वानों तथा (च) पृथिव्यादि लोकों का (दानम्) जो दिया जाता पदार्थ उसको (इन्वति) प्राप्त होता वा जो (नः) हम लोगों को (अभिह्रुतः) आगे आये हुए कुटिल (दुरितात्) दुःखदायी (अभिह्रुतः) सब ओर से टेढ़े मेढ़े छोटे बड़े (अघात्) पाप से (त्रासते) उद्वेग करता अर्थात् उठाता वा (शंसात्) प्रशंसा से संयोग कराता (सः, स्म) वही सुख को प्राप्त होता और (सः) वह सुख करने वाला होता तथा वही विद्वान् सब के सत्कार करने योग्य और वह सभों की ओर से रक्षा करने हारा होता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो उत्तम शिक्षा और विद्या के दान से दुष्टस्वभावी प्राणियों और अधर्म के आचरणों से निवृत्त कराके अच्छे गुणों में प्रवृत्त कराते वे इस संसार में कल्याण करनेवाले धर्मात्मा विद्वान् होते हैं ॥ ५ ॥

विश्वो विहाया अरतिर्वसुर्दधे हस्ते दक्षिणे
तरणिर्न शिश्रथच्छ्रवस्यया न शिश्रथत् ।
विश्वस्मा इदिषुध्यते देवत्रा हव्यमोहिषे ।
विश्वस्मा इत्सुकृते वारमृण्वत्यग्निर्द्वारा व्यृण्वति ॥ ६ ॥

पदार्थ—(विश्व) समग्र (विहायाः) विद्या आदि शुभगुणों में व्याप्त (अरतिः) उत्तम व्यवहारों की प्राप्ति कराता और (तरणिः) तारनेहारा (वसुः) प्रथम श्रेणी का ब्रह्मचारी विद्वान् (श्रवस्यया) अपनी उत्तम उपदेश सुनने की इच्छा से जैसे (अग्निः) बिजुली न (शिश्रथत्) शिथिल हो वैसे (न) नहीं (शिश्रथत्) शिथिल हो वा (दक्षिणे) दाहिने (हस्ते) हाथ में जैसे आमलक वरें वैसे (देवत्रा) विद्वानों में मैं विद्या को (दधे) धारण करूं वा (विश्वस्मै) सब (इषुध्यते) धनुष् के समान आचरण करते हुए जन समूह के लिये तू (हव्यम्) देने योग्य पदार्थ का (आ, ऊहिषे) तर्क वितर्क करता (इत्) वैसे ही जो (विश्वस्मै) सब (सुकृते) सुकर्म करनेवाले जनसमूह के लिए (द्वारा) उत्तम व्यवहारों के द्वारों को (ऋण्वति) प्राप्त होता वह सुख (इत्) ही के (वारम्) स्वीकार करने को (वि ऋण्वति) विशेषता से प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सूर्य सब व्यक्त पदार्थों को प्रकाशित कर सब के लिये सब सुखों को उत्पन्न करता वैसे हिंसा आदि दोषों से रहित विद्वान् जन विद्या का प्रकाश कर सब को आनन्दित करते हैं ॥ ६ ॥

स मानुषे वृजने शंतमो हितोऽग्निर्यज्ञेषु
जेन्यो न विश्पतिः प्रियो यज्ञेषु विश्पतिः ।
स हव्या मानुषाणामिळा कृतानि पत्यते ।
स नस्त्रासते वरुणस्य धूर्तेर्महो देवस्य धूर्तेः ॥ ७ ॥

पदार्थ—जो (प्रियः) तृप्ति करने वाला है वह (विश्पतिः) प्रजाओं का पालक राजा (नः) हम लोगों को (धूर्तेः) हिंसक से (त्रासते) वेमन करता और (सः) वह (धूर्तेः) अविद्या को नाशने और (महः) बड़े (देवस्य) विद्या देने वाले (वरुणस्य) उत्तम विद्वान् के पास से जो (यज्ञेषु) सङ्ग करने योग्य व्यवहारों में (मानुषाणाम्) मनुष्यों के (इळा) अच्छे संस्कारों से युक्त (कृतानि) सिद्ध किये शुद्ध वचन (हव्या) जो कि ग्रहण करने योग्य हों उनको स्थिर करता तथा

(सः) वह सब को (पत्यते) प्राप्त होता वा (यज्ञेषु) अग्निहोत्र आदि यज्ञों में (अग्निः) अग्नि के समान वा (जेन्यः) विजयशील के (न) समान (विश्पतिः) प्रजाजनों का पालने वाला (मानुषे) मनुष्यों के (वृजने) उस मार्ग में कि जिसमें गमन करते (हितः) हित सिद्ध करने वाला (शन्तमः) अतीव सुखकारी होता (सः) वह विद्वान् सब को सत्कार करने योग्य होता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो धर्म मार्ग में मनुष्यों को उपदेश से प्रवृत्त कराते, न्यायाधीश राजा के समान प्रजाजनों को पालने, डाकू आदि दुष्ट प्राणियों से जो डर उसको निवृत्त करानेवाले विद्वानों के मित्रजन हैं वे ही अन्वपरम्परा अर्थात् कुमार्ग के रोकने वाले होने को योग्य होते हैं ॥ ७ ॥

अ॒ग्निं होता॑रमीळते वसु॑धितिं
प्रि॒यं चेति॑ष्ठमर॒तिं न्ये॑रिरे हव्य॒वाहं॒ न्ये॑रिरे ।
वि॒श्वायुं॑ वि॒श्ववे॑दसं॒ होता॑रं यज॒तं क॒विम् ।
दे॒वासो॑ र॒ण्वमव॑से वसू॒यवो॑ गी॒र्भी र॒ण्वं व॑सू॒यवः॑ ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (देवासः) विद्वान् जन जिस (अग्निम्) अग्नि के समान वर्त्तमान (होतारम्) देने वाले (वसुधितिम्) जिसके कि धनों की धारणा है (अरतिम्) और जो विद्या पाये हुए हैं उस (हव्यवाहम्) देने लेने योग्य व्यवहार की प्राप्ति कराने (चेतिष्ठम्) चिताने और (प्रियम्) प्रीति उत्पन्न कराने हारे विद्वान् के जानने की इच्छा किये हुए (न्येरिरे) निरन्तर प्रेरणा देते वा (विश्वायुम्) जो सब विद्यादि गुणों के बोध को प्राप्त होता (विश्ववेदसम्) जिसका समग्र वेद धन उस (होतारम्) ग्रहण करने वाले (यजतम्) सत्कार करने योग्य (कविम्) पूर्णविद्यायुक्त और (रण्वम्) सत्योपदेशक सत्यवादी पुरुष को (वसूयवः) जो धन आदि पदार्थों की इच्छा करते हैं उन के समान (न्येरिरे) निरन्तर प्राप्त होते हैं वा जो (वसूयवः) धन आदि पदार्थों को चाहने वाले (अवसे) रक्षा आदि के लिये (गीर्भिः) अच्छी संस्कार किई हुई वाणियों से (रण्वम्) सत्य बोलने वाले की (ईळते) स्तुति करते हैं उन सबों की तुम भी स्तुति करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! विद्वान् लोग जिसकी सेवा और सङ्ग से विद्यादि गुणों को पाते हैं उसी की सेवा और सङ्ग से तुम लोगों को चाहिये कि इनको पाओ ॥ ८ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ एकता है यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ अट्ठाईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

परुच्छेप ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । २ निचृदत्यष्टिः । ३ विराडत्यष्टिश्छन्दः गन्धारः स्वरः । ४ अष्टिः । ६ । ११ भुरिगष्टिः । १० निचृदष्टिः छन्दः । मध्यमः स्वरः । ५ भुरिगतिशक्वरी । ७ स्वराडतिशक्वरी । पञ्चमः स्वरः । ८ । ९ स्वराट् शक्वरी । धैवतः स्वरः ॥

यं त्वं रथमिन्द्र मेधसातयेऽपाका सन्तमिषिर

प्रणयसि प्रानवद्य नयसि ।

सद्यश्चित्तमभिष्टये करो वशश्च वाजिनम् ।

सास्माकमनवद्य तूतुजान वेधसामिमां वाचं न वेधसाम् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (इषिर) इच्छा करनेवाले (इन्द्र) विद्वान् सभापति ! (त्वम्) आप (मेधसातये) पवित्र पदार्थों के अच्छे प्रकार विभाग करने के लिये (यम्) जिस (अपाका) पूर्ण ज्ञानवाले (सन्तम्) विद्यमान (रथम्) विद्वान् को रमण करने योग्य रथ को (प्रणयसि) प्राप्त कराने के समान विद्या को (प्रणयसि) प्राप्त करते हो (च) और हे (अनवद्य) प्रशंसायुक्त (वशः) कामना करते हुए आप (अभिष्टये) चाहे हुए पदार्थ की प्राप्ति के लिये (वाजिनम्) प्रशंसित ज्ञानवान् के (चित्) समान (तम्) उसको (सद्यः) शीघ्र (करः) सिद्ध करें वा हे (तूतुजान) शीघ्र कार्यों के कर्ता (अनवद्य) प्रशंसित गुणों से युक्त (सः) सो आप (अस्माकम्) हम (वेधसाम्) धीर बुद्धि वालों के (न) समान (वेधसाम्) बुद्धिमानों की (इमाम्) इस (वाचम्) उत्तम शिक्षायुक्त वाणी को सिद्ध करें अर्थात् उसका उपदेश करें ॥ १ ॥

भावार्थ—इसमन्त्र में उपमालङ्कार है । जो विद्वान् जन सब मनुष्यों को विद्या और विनय आदि गुणों में प्रवृत्त कराते हैं वे सब ओर से चाहे हुए पदार्थों की सिद्धि कर सकते हैं ॥ १ ॥

स श्रुधि यः स्मा पृतनासु कासु चिद्दक्षाय्य
इन्द्र भरहूतये नृभिरसि प्रतूर्त्तये नृभिः ।
यः शूरैः स्वः सनिता यो विप्रैर्वाजं तरुता ।
तमीशानास इरधन्त वाजिनं पृक्षमत्यं न वाजिनम् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्ययुक्त सेनापति ! (यः) जो आप (प्रतूर्त्तये) शीघ्र आरम्भ करने के लिये (नृभिः) मुख्य अग्रगन्ता मनुष्यों के समान (नृभिः) अपने अधिकारी कामचारी मनुष्यों से (भरहूतये) दूसरों की पालना करने वाले राजजनों की स्पर्द्धा अर्थात् उनकी हार करने के लिये (कासु चित्) किन्हीं (पृतनासु) सेनाओं में और (दक्षाय्यः) राजकामों में अति चतुर (असि) हो वा (यः) जो आप (शूरैः) निडर शूरवीरों के साथ (स्वः) सुख को (सनिता) अच्छे बांटने वाले वा (यः) जो (विप्रैः) धीर बुद्धि वालों के साथ (वाजम्) विशेष ज्ञान को (तरुता) पार होने वाले (वाजिनम्) विशेष ज्ञान-वान् (अत्यम्) व्याप्त होने वाले के (न) समान (पृक्षम्) सुखों से सींचने वाले (वाजिनम्) घोड़े को धारण करते हो (तम्) उन आप को (ईशानासः) समर्थ जन (इरधन्त) जो प्रेरणा करने वालों को धारण करते उन के जैसा आचरण करें अर्थात् प्रेरणा दें और (सः स्म) वही आप सब के न्याय को (श्रुधि) सुनें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो विद्वान् और न्यायाधीशों के साथ राजधर्म को प्राप्त करते वे प्रजाजनों में आनन्द को अच्छे प्रकार देने वाले होते हैं ॥ २ ॥

दस्मो हि ष्मा वृषणं पिन्वसि
त्वचं कं चिद्यावीररुं शूर मर्त्यं परिवृणक्षि मर्त्यम् ।
इन्द्रोत तुभ्यं तद्दिवे तद्रुद्राय स्वयशसे ।
मित्राय वोचं वरुणाय सप्रथः सुमृळीकाय सप्रथः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (शूर) शत्रुओं को मारने वाले (इन्द्र) सभापति ! (हि) जिस कारण (दस्मः) शत्रुओं को विनाशने हारे आप जिस (कञ्चित्) किसी (त्वचम्) धर्म के ढांपने वाले को (यावीः) पृथक् करते और (वृषणम्) विद्यादि गुणों के वर्षाने (अररुम्) वा दूसरे को उन की प्राप्ति कराने वाले (मर्त्यम्) मनुष्य के समान (मर्त्यम्) मनुष्य को (परिवृणक्षि) सब ओर से छोड़ते स्वतन्त्रता देते वा (पिन्वसि) उसका सेवन करते हैं इस कारण उस

(स्वयशसे) स्वकीर्त्ति से युक्त (मित्राय) सब के मित्र के लिये वा (तुभ्यम्) आप के लिये (तत्) उस व्यवहार को (वोचम्) मैं कहूँ वा (दिवे) कामना करने (रुद्राय) दुष्टों को रुलाने (वरुणाय) श्रेष्ठ धर्म आचरण करने (सुमृलीकाय) और उत्तम सुख करने वाले के लिये (सप्रथः) सब प्रकार के विस्तार से युक्त मनुष्य के समान (सप्रथः) प्रसिद्धि अर्थात् उत्तम कीर्तियुक्त (तत्) उस उक्त आप के उत्तम व्यवहार को (उत) तर्क वितर्क से (स्म) ही कहूँ ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सब मनुष्यों के लिये मित्रभाव से सत्य का उपदेश करते वा धर्म का उपदेश करते वे परम सुख के देनेवाले होते हैं ॥ ३ ॥

अस्माकं व इन्द्रमुश्मसीष्टये

सखायं विश्वायुं प्रासहं युजं वाजेषु प्रासहं युजम् ।

अस्माकं ब्रह्मोतयेऽवा पृत्सुषु कासु चित् ।

नहि त्वा शत्रुः स्तरते स्तृणोषि यं विश्वं शत्रुं स्तृणोषि यम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (अस्माकम्) हमारे और (वः) तुम्हारे (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य्य युक्त वा (वाजेषु) राजजनों को प्राप्त होने योग्य (पृत्सुषु, कासु, चित्) किन्हीं सेनाओं में (प्रासहम्) उत्तमता से सहनशील (युजम्) और योगाभ्यासयुक्त धर्मात्मा पुरुष के समान (प्रासहम्) अतीव सहने (युजम्) और योग करने वाले (विश्वायुम्) समग्र शुभ गुणों को पाये हुए (सखायम्) मित्र जन की (इष्टये) चाहे हुए पदार्थ की प्राप्ति के लिये (उश्मसि) कामना करते हैं वैसे तुम भी कामना करो। हे विद्वन् ! (अस्माकम्) हमारी (ऊतये) रक्षा आदि होने के लिये आप (ब्रह्म) वेद की (अव) रक्षा करो, ऐसे हुए पर (यम्) जिस (विश्वम्) समग्र (शत्रुम्) शत्रुगण को (स्तृणोषि) आच्छादन करते अर्थात् अपने प्रताप से ढांपते और (यम्) जिस विरोध करने वाले को (स्तृणोषि) ढांपते अर्थात् अपने प्रचण्ड प्रताप से रोकते वह (शत्रुः) शत्रु (त्वा) आप को (नहि) नहीं (स्तरते) ढांपता है ॥ ४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जितना सामर्थ्य हो सके उतने से बहुत मित्र करने को उत्तम यत्न करें परन्तु अधर्मी दुष्ट जन मित्र न करने चाहियें और न दुष्टों में मित्रपन का आचरण करना चाहिये, ऐसे हुए पर शत्रुओं का बल नहीं बढ़ता है ॥ ४ ॥

नि षू न॒माति॑मतिं॒ कय॑स्य

चि॒त्तेजि॑ष्ठाभिर॒रणि॑भि॒र्नोति॑भिरु॒ग्राभि॑रुग्रो॒तिभिः॑ ।

नेषि॑ णो॒ यथा॑ पु॒राने॒नाः शू॑र॒ मन्य॑से ।

विश्वा॑नि पू॒रोरप॑ पर्षि॒ वह्नि॑रा॒सा वह्नि॑र्नो॒ अच्छ॑ ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (उग्र) तेजस्वी (शूर) दुष्टों को मारने वाले विद्वान् ! (तेजिष्ठाभिः) अतीव प्रतापयुक्त (अरणिभिः) सुख देने वाली (उग्राभिः) तीव्र (ऊतिभिः) रक्षा आदि क्रियाओं (न) के समान (ऊतिभिः) रक्षाओं से (अतिमतिम्) अत्यन्त विचार वाली बुद्धि को (नि, नम) नमो अर्थात् नम्रता के साथ वर्त्तो वा (यथा) जैसे (अनेनाः) पापरहित मनुष्य (पुरा) पहिले उत्तम कामों की प्राप्ति करता वैसे (नः) हम लोगों को आप (मन्यसे) जानते और (सु, नेषि) सुन्दरता से अच्छे कामों को प्राप्त कराते वा (आसा) अपने पास (वह्निः) पहुंचाने वाले के समान (नः) हम को (अच्छ, पर्षि) अच्छे सींचते वा (कयस्य) विशेष ज्ञान देने और (पूरोः) पूरे विद्वान् मनुष्य के (चित्) भी (वह्निः) पहुंचाने वाले आप (विश्वानि) समग्र दुःखों को (अप) दूर करते हो सो आप हम लोगों के सेवन करने योग्य हों ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्यों की बुद्धि को उत्तम रक्षा से बढ़ा कर पाप कर्मों में अश्रद्धा उत्पन्न करता वही सभों को सुखों को पहुंचा सकता है ॥ ५ ॥

प्र तद्वो॑चेयं॒ भव्या॒येन्द॑वे॒ हव्यो॒ न

य इ॒षवा॒न्मन्म॒ रेज॑ति र॒क्षोहा॒ मन्म॒ रेज॑ति ।

स्व॒यं सो अ॒स्मदा नि॒दो व॒धैर॑जेत दु॒र्मति॑म् ।

अव॑ स्रवेद॒घशं॑सोऽवत॒रमव॑ क्षु॒द्रमि॑व स्रवेत् ॥ ६ ॥

पदार्थ—मैं (स्वयम्) आप जैसे (हव्यः) स्वीकार करने योग्य (रक्षोहा) दुष्ट गुण कर्म स्वभाव वालों को मारने वाला (मन्म) विचार करने योग्य ज्ञान का (रेजति) संग्रह करते हुए के (न) समान (यः) जो (इषवान्) ज्ञानवान् (मन्म) जानने योग्य व्यवहार को (रेजति) संग्रह करता है (तत्) उस उपदेश करने योग्य ज्ञान को (भव्याय) जो विद्याग्रहण की इच्छा करने वाला होता है उस (इन्दवे) आर्द्र अर्थात् कोमल हृदय वाले के लिये (प्र, वोचेयम्) उत्तमता से कहूँ जो (अस्मत्) हम से शिक्षा पाकर (वधैः) मारने के उपायों से (निदः) निन्दा

करने हारों और (**दुर्मतिम्**) दुष्टमति वाले जन को (**अजेत**) दूर करे (**सः**) वह (**अवतरम्**) अधोमुखी लज्जित मुख वाले पुरुष को (**क्षुद्रमिव**) तुच्छ आशय वाले के समान (**अव, स्रवेत्**) उस के स्वभाव से विपरीत दण्ड देवे और (**अघशंसः**) जो पाप की प्रशंसा करता वह चोर डाकू लम्पट लवाड़ आदि जन (**अव, आ, स्रवेत्**) अपने स्वभाव से अच्छे प्रकार उलटी चाल चले ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। अध्यापक विद्वान् जो शुभ गुण कर्म स्वभाव वाले विद्यार्थी हैं उन के लिये प्रीति से विद्याओं को देवे और आप भी सदैव धर्मात्मा हो ॥ ६ ॥

वनेम तद्धोत्रया चितन्त्या वनेम
रयिं रयिवः सुवीर्यं रण्वं सन्तं सुवीर्यम् ।
दुर्मन्मानं सुमन्तुभिरेमिषा पृचीमहि ।
आ सत्याभिरिन्द्रं द्युम्नहूतिभिर्यजत्रं द्युम्नहूतिभिः ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (**रयिवः**) धनवान् ! जैसे हम लोग (**होत्रया**) ग्रहण करने योग्य (**चितन्त्या**) चेताने वाली बुद्धिमती से जिस ज्ञान का (**वनेम**) अच्छे प्रकार सेवन करें वा (**सुवीर्यम्**) श्रेष्ठ पराक्रमयुक्त (**रयिम्**) धन तथा (**सन्तम्**) वर्त्तमान (**रण्वम्**) उपदेश करने वाले (**सुवीर्य्यम्**) विद्या और धर्म से उत्तम आत्मा के बल का (**वनेम**) सेवन करें वा (**सुमन्तुभिः**) उत्तम विद्यायुक्त पुरुषों और (**ईम्**) पाने योग्य (**इषा**) इच्छा से (**दुर्मन्मानम्**) दुष्ट जन मान करने हारे को जो मारने वाला उस का (**आ, पृचीमहि**) अच्छे प्रकार सम्बन्ध करें तथा (**द्युम्नहूतिभिः**) धन वा यश की बातचीतों से (**यजत्रम्**) अच्छे प्रकार सङ्ग करने योग्य व्यवहार के समान (**सत्याभिः**) सत्य आचरण युक्त (**द्युम्नहूतिभिः**) धनविषयक बातों से (**इन्द्रम्**) परम ऐश्वर्य का (**आ**) अच्छे प्रकार सम्बन्ध करें वैसे (**तत्**) उक्त समस्त व्यवहार को आप भजो और उस से सम्बन्ध करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। माता और पिता आदि को वा विद्वानों को चाहिये कि अपने सन्तानों को इस प्रकार उपदेश करें कि जो हमारे धर्म के अनुकूल काम हैं वे आचरण करने योग्य किन्तु और काम आचरण करने योग्य नहीं, ऐसे सत्याचरणों और परोपकार से निरन्तर ऐश्वर्य्य की उन्नति करनी चाहिये ॥ ७ ॥

प्रप्रा वो अस्मे स्वयंशोभिरूती परिवर्ग

इन्द्रो दुर्मतीनां दरीमन् दुर्मतीनाम् ।

स्वयं सा रिषयध्यै या न उपेषे अत्रैः ।

हतेमसन्न वक्षति क्षिप्ता जूर्णिर्न वक्षति ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे मित्रो ! (वः) तुम लोगों के लिये (अस्मे) और हमारे लिये (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् विद्वान् (दुर्मतीनाम्) दुष्ट बुद्धि वाले दुष्ट मनुष्यों के (परिवर्गे) सब ओर से सम्बन्ध में और (दुर्मतीनाम्) दुष्ट बुद्धि वाले दुराचारी मनुष्यों के (दरीमन्) अतिशय कर विदारने में (स्वयशोभिः) अपनी प्रशंसाओं और (ऊती) रक्षा से (प्रप्र, वक्ष्यति) उत्तमता से उपदेश करे (या) जो सेना (नः) हम लोगों के (उपेषे) समीप आने के लिये (अत्रैः) आततायी शत्रुजनों ने (क्षिप्ता) प्रेरित किई अर्थात् पठाई हो (सा) वह (रिषयध्यै) दूसरों को हनन कराने के लिये प्रवृत्त हुई (स्वयम्) आप (ईम्) सब ओर से (हता) नष्ट (असत्) हो किन्तु वह (जूर्णिः) शीघ्रता करने वाली के (न) समान (न) न (वक्षति) प्राप्त हो अर्थात् शीघ्रता करने ही न पावे किन्तु तावत् नष्ट हो जावे ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो दुष्टों के सङ्ग को छोड़ सत्सङ्ग से कीर्तिमान् हो कर अतीव प्रशंसित सेना से प्रजा की रक्षा करते हैं वे उत्तम ऐश्वर्य वाले होते हैं ॥ ८ ॥

त्वं न इन्द्र राया परीणसा याहि पथाँ अनेहसा पुरो याह्यरक्षसा ।

सचस्व नः पराक आ सचस्वास्तमीक आ।

पाहि नो दूरादारादभिष्टिभिः सदा पाह्यभिष्टिभिः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) विद्या वा ऐश्वर्ययुक्त विद्वान् (त्वम्) आप (परीणसा) बहुत (राया) धन से (नः) हम लोगों को (याहि) प्राप्त हो और (अनेहसः) रक्षामय जो धर्म उस से (अरक्षसा) और जिस में दुष्ट प्राणी विद्यमान नहीं उस (पथा) मार्ग से (पुरः) प्रथम जो वर्त्तमान उन को (याहि) प्राप्त हो और (नः) हम को (पराके) दूर देश में (आ, सचस्व) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ मिलो और (अस्तमीके) समीप में हम लोगों को (आ, सचस्व) अच्छे प्रकार मिलो और जो (अभिष्टिभिः) सब ओर से क्रियाओं से सङ्ग करते उन (दूरात्) दूर और (आरात्) समीप से (नः) हम लोगों की (पाहि) रक्षा करो और (सदा) सब कभी (अभिष्टिभिः) सब ओर से चाही हुई क्रियाओं से हम लोगों की (पाहि) रक्षा करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—उपदेशकों को चाहिये कि धर्म के अनुकूल मार्ग से आप प्रवृत्त हों और सब को प्रवृत्त करा कर अपने उपदेश के द्वारा समीपस्थ और दूरस्थ पदार्थों का सङ्ग कर भ्रम मिटाने और सत्यविज्ञान की प्राप्ति कराने से सब को निरन्तर अच्छी रक्षा करें ॥ ९ ॥

त्वं नं इन्द्र राया तरूषसोग्रं चित्
त्वा महिमा सक्षदवसे महे मित्रं नावसे ।
ओजिष्ठ त्रातरविता रथं कं चिदमर्त्य ।
अन्यमस्मद्रिरिषेः कं चिदद्रिवो रिरिक्षन्तं चिदद्रिवः ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त राजन् (त्वम्) आप (तरूषसा) जिससे शत्रुओं के बलों को पार होते उस काल और (राया) उत्तम लक्ष्मी से (महे) अत्यन्त (अवसे) रक्षा आदि सुख के लिये वा (मित्रम्) मित्र के (न) समान (अवसे) रक्षा आदि व्यवहार के लिये जिन (त्वा) आप को (महिमा) बड़प्पन प्रताप (सक्षत्) सम्बन्धे अर्थात् मिले सो आप (चित्) भी (नः) हम लोगों की रक्षा करो । हे (ओजिष्ठ) अतीव प्रतापी (अविता) रक्षा करने वाले (अमर्त्य) अपनी कीर्ति कलाप से मरण धर्म रहित (त्रातः) राज्य पालने हारे आप (कं, चित्) किसी (रथम्) रमण करने योग्य रथ को प्राप्त होओ । हे (अद्रिवः) बहुत मेघों वाले सूर्य के समान तेजस्वी आप (अस्मत्) हम लोगों से (कं, चित्) किसी (अन्यम्) और ही को (रिरिषेः) मारो । हे (अद्रिवः) पर्वत भूमियों के राज्य से युक्त आप (रिरिक्षन्तम्) हिंसा करने की इच्छा करते हुए (उग्रम्) तीव्र प्राणी को (चित्) भी मारो ताड़ना देओ ॥ १० ॥

भावार्थ—मनुष्यों की यही महिमा है जो श्रेष्ठों की पालना और दुष्टों की हिंसा करना ॥ १० ॥

पाहि नं इन्द्र सुष्टुत स्रिधोऽवयाता
सदमिद्दुर्मतीनां देवः सन्दुर्मतीनाम् ।
हन्ता पापस्य रक्षसस्त्राता विप्रस्य मावतः ।
अधा हि त्वा जनिता जीजनद्वसो रक्षोहणं त्वा जीजनद्वसो ॥११॥

पदार्थ—हे (सुष्टुत) उत्तम प्रशंसा को प्राप्त (इन्द्र) सभापति ! (अवयाता) विरुद्ध मार्ग को जाते और (देवः) सत्य न्याय की कामना अर्थात् खोज करते (सन्) हुए (दुर्मतीनाम्) दुष्ट मनुष्यों के (सदम्) स्थान के (इत्)

समान (दुर्मतीनाम्) दुष्ट बुद्धि वाले मनुष्यों के प्रचार का विनाश कर (स्त्रिधः) दुःख के हेतु पाप से (नः) हम लोगों की (पाहि) रक्षा करो। हे (वसो) सज्जनों में वसने हारे (जनिता) उत्पन्न करनेहारा पिता गुरु जिस (रक्षोहणम्) दुष्टों के नाश करने हारे (त्वा) आपको (जीजनत्) उत्पन्न करे। वा हे (वसो) विद्याओं में वास अर्थात् प्रवेश करानेहारे ! जिन रक्षा करने वाले (त्वा) आप को (जीजनत्) उत्पन्न करे सो (हि) ही आप (अथ) इसके अनन्तर (पापस्य) पाप आचरण करनेवाले (रक्षसः) अर्थात् औरों को पीड़ा देने हारे के (हन्ता) मारने वाले तथा (मावतः) मेरे समान (विप्रस्य) बुद्धिमान् धर्मात्मा पुरुष की (त्राता) रक्षा करने वाले हूजिये ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यही विद्वानों का प्रशंसा करने योग्य काम है जो पाप का खण्डन और धर्म का मण्डन करना, किसी को दुष्ट का सङ्ग और श्रेष्ठजन का त्याग न करना चाहिये ॥ ११ ॥

इस सूक्त में विद्वानों और राजजनों के धर्म का वर्णन होने से इस सूक्त में कहे हुए अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जानना चाहिये ॥

यह एकसौ उन्तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

परुच्छेप ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ५ भुरिगष्टिः २ । ३ । ६ । ९ स्वराडष्टिः ४ । ८ अष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः । ७ निचृदत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः । १० विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

एन्द्रं याह्युप नः परावतो नायमच्छा विदथानीव
सत्पतिरस्तं राजेव सत्पतिः ।
हवामहे त्वा वयं प्रयस्वन्तः सुते सचा ।
पुत्रासो न पितरं वाजसातये मंहिष्ठं वाजसातये ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्यवान् राजन् ! (अयम्) यह शत्रुजन (विदथानीव) संग्रामों को जैसे वैसे आकर प्राप्त होता इससे आप (नः) हम लोगों के समीप (परावतः) दूर देश से (न) मत (उपायाहि) आइये किन्तु निकट से आइये (सत्पतिः) धार्मिक सज्जनों का पति (राजेव) जो प्रकाशमान उसके समान (सत्पतिः) सत्याचरण की रक्षा करने वाले आप हमारे (अस्तम्) घर को

प्राप्त हो (**प्रयस्वन्तः**) अत्यन्त प्रयत्नशील (**वयम्**) हम लोग (**सचा**) सम्बन्ध से (**सुते**) उत्पन्न हुए संसार में (**वाजसातये**) युद्ध के विभाग के लिये और (**वाजसातये**) पदार्थों के विभाग के लिये (**पुत्रासः**) पुत्रजन जैसे (**पितरम्**) पिता को (**न**) वैसे (**मंहिष्ठम्**) अति सत्कारयुक्त (**त्वा**) आपकी (**अच्छ**) अच्छे प्रकार (**हवामहे**) स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । समस्त राजप्रजाजन पिता और पुत्र के समान इस संसार में वर्त्त कर पुरुषार्थी हों ॥ १ ॥

पिबा सोमंमिन्द्र सुवानमद्रिंभिः
कोशेंन सिक्तमंवतं न वंसंगस्तातृषाणो न वंसंगः ।
मदांय हर्यतायं ते तुविष्टंमाय धायंसे ।
आ त्वां यच्छन्तु हरितो न सूर्यमहा विश्वेव सूर्यम् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) सभापति ! (**तातृषाणः**) अतीव पियासे (**वंसगः**) बैल के (**न**) समान बलिष्ठ (**वंसगः**) अच्छे विभाग करने वाले आप (**अद्रिभिः**) शिलाखण्डों से (**सुवानम्**) निकालने के योग्य (**कोशेन**) मेघ से (**अवतम्**) बढ़े (**सिक्तम्**) और संयुक्त किये हुए के (**न**) समान (**सोमम्**) सुन्दर ओषधियों के रस को (**पिब**) अच्छे प्रकार पिओ (**तुविष्टमाय**) अतीव बहुत प्रकार (**धायसे**) धारणा करने वाले (**मदाय**) आनन्द के लिये (**हर्य्यताय**) और कामना किये हुए (**ते**) आप के लिये यह दिव्य ओषधियों का रस प्राप्त होवे अर्थात् चाहे हुए (**सूर्यम्**) सूर्य को (**अहा**) (**विश्वेव**) सब दिन जैसे वा (**सूर्यम्**) सूर्यमण्डल को (**हरितः**) दिशा विदिशा (**न**) जैसे वैसे (**त्वा**) आप को जो लोग (**आ, यच्छन्तु**) अच्छे प्रकार निरन्तर ग्रहण करें वे सुख को प्राप्त होवें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो बड़े साधन और छोटे साधनों और आयुर्वेद अर्थात् वैद्यकविद्या की रीति से बड़ी बड़ी ओषधियों के रसों को बनाकर उनका सेवन करते वे आरोग्यवान् होकर प्रयत्न कर सकते हैं ॥ २ ॥

अविंन्दद्दिवो निहिंतं गुहां निधिं
वेर्न गर्भं परिंवीतमश्मंन्यनन्ते अन्तरश्मंनि ।
व्रजं वज्री गवांमिव सिषांसन्नङ्गिंरस्तमः ।
अपांवृणोदिष इन्द्रः परींवृता द्वार इषः परींवृताः ॥ ३ ॥

पदार्थ—जो (वज्री) शासना के लिये दण्ड धारण किये हुए (व्रजं,-गवामिव) जैसे गौओं के समूह गोशाला में गमन करते जाते आते वैसे (सिषासन्) जनों को ताड़ना देने अर्थात् दण्ड देने की इच्छा करता हुआ अथवा जैसे (अङ्गिरस्तमः) अति श्रेष्ठ (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् सूर्य (इषः) इच्छा करने योग्य (परीवृताः) अन्धकार से ढंपी हुई वीथियों को खोले वैसे (परीवृता) ढपी हुई (इषः) इच्छाओं और (द्वारः) द्वारों को (अपावृणोत्) खोले तथा (अनन्ते) देशकाल वस्तु भेद से न प्रतीत होते हुए (अश्मनि) आकाश में (अश्मनि) वर्त्तमान मेघ के (अन्तः) वीच (परिवीतम्) सब ओर से व्याप्त और अति मनोहर जल वा (वेः) पक्षी के (गर्भम्) गर्भ के (न) समान (गुहा) बुद्धि में (निहितम्) स्थित (निधिम्) जिस में निरन्तर पदार्थ धरे जायें उस निधिरूप परमात्मा को (दिवः) विज्ञान के प्रकाश से (अविन्दत्) प्राप्त होता है वह अतुल सुख को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जो योग के अङ्ग धर्म विद्या और सत्सङ्ग के अनुष्ठान से अपने आत्मा में स्थित परमात्मा को जानें वे सूर्य जैसे अन्धकार को वैसे अपने सङ्गियों की अविद्या छुड़ा विद्या के प्रकाश को उत्पन्न कर सब को मोक्षमार्ग में प्रवृत्त करा के उन्हें आनन्दित कर सकते हैं ॥ ३ ॥

दादृहाणो वज्रमिन्द्रो गभस्त्योः क्षद्मेव
तिग्ममसनाय सं श्यदहिहत्याय सं श्यत् ।
संविव्यान ओजसा शवोभिरिन्द्र मज्मना ।
तष्टेव वृक्षं वनिनो नि वृश्चसि परश्वेव नि वृश्चसि ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! आप जैसे सूर्य (अहिहत्याय) मेघ के मारने को (तिग्मम्) तीव्र अपने किरणरूपी वज्र को (सं, श्यत्) तीक्ष्ण करता वैसे (गभस्त्योः) अपनी भुजाओं के (क्षद्मेव) जल के समान (असनाय) फेंकने के लिये तीव्र (वज्रम्) शस्त्र को निरन्तर धारण करके (दादृहाणः) दोषों का विनाश करते (इन्द्रः) और विद्वान् होते हुए शत्रुओं को (सं, श्यत्) अति सूक्ष्म करते अर्थात् उनका विनाश करते वा हे (इन्द्र) दुष्टों का दोष नाशने वाले ! आप (वृक्षम्) वृक्ष को (मज्मना) बल से (तष्टेव) जैसे बढ़ई आदि काटने हारा वैसे (ओजसा) पराक्रम और (शवोभिः) सेना आदि बलों के साथ (संविव्यानः) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हुए (वनिनः) वन वा बहुत किरणें जिनके विद्यमान उनके समान दोषों को (नि, वृश्चसि) निरन्तर काटते वा (परश्वेव)

जैसे फरसा से कोई पदार्थ काटता वैसे अविद्या अर्थात् मूर्खपन को अपने ज्ञान से (नि वृश्चसि) काटते हो वैसे हम लोग भी करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य प्रमाद और आलस्य आदि दोषों को अलग कर संसार में गुणों को निरन्तर धारण करते हैं वे सूर्य की किरणों के समान यहां अच्छी शोभा को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

त्वं वृथा नद्य इन्द्र सर्तवेऽच्छा समुद्रमसृजो
रथाँ इव वाजयतो रथाँ इव ।
इत ऊतीरयुञ्जत समानमर्थमक्षितम् ।
धेनूरिव मनवे विश्वदोहसो जनाय विश्वदोहसः ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (**इन्द्र**) विद्या के अधिपति ! (**त्वम्**) आप जैसे (**नद्यः**) नदी (**समुद्रम्**) समुद्र को (**वृथा**) निष्प्रयोजन भर देती वैसे (**रथानिव**) रथों पर बैठने हारों के समान (**वाजयतः**) संग्राम करते हुओं को (**रथानिव**) रथों के समान ही (**सर्त्तवे**) जाने को (**अच्छ, असृजः**) उत्तम रीति से कलायन्त्रों से युक्त मार्गों को बनावें वा (**जनाय**) धर्मयुक्त व्यवहार में प्रसिद्ध मनुष्य के लिये जो (**विश्वदोहसः**) समस्त जगत् को अपने गुणों से परिपूर्ण करते उनके समान (**मनवे**) विचारशील पुरुष के लिये (**विश्वदोहसः**) संसार सुख को परिपूर्ण करने वाले होते हुए आप (**धेनूरिव**) दूध देने वाली गौओं के समान (**इतः**) प्राप्त हुई (**ऊतीः**) रक्षादि क्रियाओं और (**अक्षितम्**) अक्षय (**समानम्**) समान अर्थात् काम के तुल्य (**अर्थम्**) पदार्थ का (**अयुञ्जत**) योग करते हैं वे अत्यन्त आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो पुरुष गौओं के समान सुख, रथ के समान धर्म के अनुकूल मार्ग का अवलम्ब कर धार्मिक न्यायाधीश के समान होकर सब को अपने समान करते हैं वे इस संसार में प्रशंसित होते हैं ॥ ५ ॥

इमां ते वाचं वसूयन्त आयवो रथं न धीरः
स्वपा अतक्षिषुः सुम्नाय त्वामतक्षिषुः ।
शुम्भन्तो जेन्यं यथा वाजेषु विप्र वाजिनम् ।
अत्यमिव शवसे सातये धना विश्वा धनानि सातये ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (विप्र) मेधावी धीर बुद्धि वाले जन ! जिन (ते) आप के निकट से (इमाम्) इस (वाचम्) विद्या धर्म और सत्ययुक्त वाणी को प्राप्त (आयवः) विद्वान् जन (वसूयन्तः) अपने को विज्ञान आदि धन चाहते हुए (स्वपाः) जिसके उत्तम धर्म के अनुकूल काम वह (धीरः) धीरपुरुष (रथम्) प्रशंसित रमण करने योग्य रथ को (न) जैसे वैसे (अतक्षिषुः) सूक्ष्मबुद्धि को स्वीकार करें वा (शुम्भन्तः) शोभा को प्राप्त हुए (यथा) जैसे (वाजेषु) संग्रामों में (जेन्यम्) जिससे शत्रुओं को जीतते उस (वाजिनम्) अति चतुर वा संग्रामयुक्त पुरुष को (अत्यमिव) घोड़ा के समान (शवसे) बल के लिये और (सातये) अच्छे प्रकार विभाग करने के लिये (धनानि) द्रव्य आदि पदार्थों के समान (विश्वा) समस्त (धना) विद्या आदि पदार्थों को प्राप्त होकर (सुम्नाय) सुख और (सातये) संभोग के लिये (त्वाम्) आप को (अतक्षिषुः) उत्तमता से स्वीकार करें वा अपने गुणों से ढांपें वे सुखी होते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो उपदेश करने वाले धर्मात्मा विद्वान् जन से समस्त विद्याओं को पाकर विस्तारयुक्त बुद्धि अर्थात् सब विषयों में बुद्धि फैलाने हारे होते हैं वे समग्र ऐश्वर्य को पाकर, रथ घोड़ा और धीर पुरुष के समान धर्म के अनुकूल मार्ग को प्राप्त होकर कृतकृत्य होते हैं ॥ ६ ॥

भिनत्पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि
दाशुषे नृतो वज्रेण दाशुषे नृतो ।
अतिथिग्वाय शम्बरं गिरेरुग्रो अवाभरत् ।
महो धनानि दयमान ओजसा विश्वा धनान्योजसा ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (नृतो) अपने अङ्गों को युद्ध आदि में चलाने वा (नृतो) विद्या की प्राप्ति के लिये अपने शरीर की चेष्टा करने (इन्द्र) और दुष्टों का विनाश करने वाले ! जो आप (वज्रेण) शस्त्र वा उपदेश से शत्रुओं की (नवतिम्) नब्बे (पुरः) नगरियों को (भिनत्) विदारते नष्ट भ्रष्ट करते वा (महि) बड़प्पन पाये हुए सत्कारयुक्त (दिवोदासाय) चहीते पदार्थ को अच्छे प्रकार देने वाले और (दाशुषे) विद्यादान किये हुए (पूरवे) पूरे साधनों से युक्त मनुष्य के लिये सुख को धारण करते तथा (अतिथिग्वाय) अतिथियों को प्राप्त होने और (दाशुषे) दान करने वाले के लिये (उग्रः) तीक्ष्ण स्वभाव अर्थात् प्रचण्ड प्रताप-वान् सूर्य (गिरेः) पर्वत के आगे (शम्बरम्) मेघ को जैसे वैसे (ओजसा) अपने पराक्रम से (महः) बड़े बड़े (धनानि) धन आदि पदार्थों के (दयमानः) देने

वाले (ओजसा) पराक्रम से (विश्वा) समस्त (धनानि) धनों को (अवाभरत्) धारण करते सो आप किञ्चित् भी दुःख को कैसे प्राप्त होवें ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । इस मन्त्र में "नवतिम्" यह पद बहुतों का बोध कराने के लिये है, जो शत्रुओं को जीतते अतिथियों का सत्कार करते और धार्मिकों को विद्या आदि गुण देते हुए वर्त्तमान हैं वे सूर्य्य जैसे मेघ को वैसे समस्त ऐश्वर्य धारण करते हैं ॥ ७ ॥

इन्द्रः समत्सु यजमानमार्यं प्रावद्विश्वेषु
शतमूतिराजिषु स्वर्मीळ्हेष्वाजिषु ।
मनवे शासदव्रतान् त्वचं कृष्णामरन्धयत् ।
दक्षन्न विश्वं ततृषाणमोषति न्यर्शसानमोषति ॥ ८ ॥

पदार्थ—जो (शतमूतिः) अर्थात् जिससे असंख्यात रक्षा होती वह (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् राजा (स्वर्मीढेषु) जिन में सुख सिञ्चन किया जाता उन (आजिषु) प्राप्त हुए (आजिषु) संग्रामों में धार्मिक शूरवीरों के समान (विश्वेषु) समग्र (समत्सु) संग्राम में (यजमानम्) अभय के देने वाले (आर्यम्) उत्तम गुण कर्म स्वभाव वाले पुरुष को (प्रावत्) अच्छे प्रकार पाले वा (मनवे) विचारशील धार्मिक मनुष्य की रक्षा के लिये (अव्रतान्) दुष्ट आचरण करने वाले डाकुओं को (शासत्) शिक्षा देवे और इन की (त्वचम्) सम्बन्ध करने वाली खाल को (कृष्णाम्) खेंचता हुआ (अरन्धयत्) नष्ट करे वा अग्नि जैसे (विश्वम्) सब पदार्थ मात्र को (दक्षन्) जलावे और (ततृषाणम्) पियासे प्राणी को (ओषति) दाहे अति जलन देवे (न) वैसे (अर्शसानम्) प्राप्त हुए शत्रुगण को (न्योषति) निरन्तर जलावे वही चक्रवर्त्ति राज्य करने योग्य होता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । मनुष्यों को चाहिये कि श्रेष्ठ गुण कर्म स्वभावों को स्वीकार और दुष्टों के गुण कर्म स्वभावों का त्याग कर श्रेष्ठों को रक्षा और दुष्टों को ताड़ना देकर धर्म में राज्य की शासना करें ॥ ८ ॥

सूरश्चक्रं प्र वृहज्जात ओजसा प्रपित्वे
वाचमरुणो मुषायतीशान आ मुषायति ।
उशना यत्परावतोऽजगन्नूतये कवे ।
सुम्नानि विश्वा मनुषेव तुर्वणिरहाविश्वेव तुर्वणिः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (कवे) विद्वान्! (यत्) जो (ओजसा) अपने बल से (अरुणः) लालरङ्ग युक्त (तुर्वणिः) मेघ को छिन्न भिन्न करता और (जातः) प्रकट होता हुआ (सूरः) सूर्य्यमण्डल जैसे (विश्वेवाहा) सब दिनों को वा (प्रपित्वे) उत्तरायण से (बृहत्) महान् (चक्रम्) चाक के समान वर्त्तमान जगत् को (प्र) प्रकट करता वैसे और (तुर्वणिः) दुष्टों की हिंसा करने वाले उत्तमोत्तम (मनुषेव) मनुष्य के समान (विश्वा) समस्त (सुम्नानि) सुखों और (वाचम्) वाणी को (आ) अच्छे प्रकार प्रकट करें वा सूर्य जैसे (मुषायति) खण्डन करने वाले के समान आचरण करता वैसे (ईशानः) समर्थ होते हुए (उशना) विद्यादि गुणों से कान्तियुक्त आप (ऊतये) रक्षा आदि व्यवहार के लिये (परावतः) परे अर्थात् दूर से (अजगत्) प्राप्त हों और दुष्टों को (मुषायति) खण्ड खण्ड करें सो सब को सत्कार करने योग्य हैं॥ ९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो सूर्य के तुल्य विद्या विनय और धर्म का प्रकाश करने वाले सब की उन्नति के लिये अच्छा यत्न करते हैं वे आप भी उन्नतियुक्त होते हैं॥ ९॥

स नो नव्येभिर्वृषकर्मन्नुक्थैः पुरां दर्त्तः पायुभिः पाहि शग्मैः।
दिवोदासेभिरिन्द्र स्तवानो वावृधीथा अहोभिरिव द्यौः॥ १०॥

पदार्थ—(वृषकर्मन्) जिन के वर्षने वाले मेघ के कामों के समान काम वह (पुराम्) शत्रु-नगरों को (दर्त्तः) दरने विदारने विनाशने (इन्द्र) और सब की रक्षा करने वाले हे सभापति! (दिवोदासेभिः) जो प्रकाश देने वाली (स्तवानः) स्तुति प्रशंसा को प्राप्त हुए हैं (सः) वह आप (नव्येभिः) नवीन (उक्थैः) प्रशंसा करने योग्य (शग्मैः) सुखों और (पायुभिः) रक्षाओं से (द्यौः) जैसे सूर्य (अहोभिरिव) दिनों से वैसे (नः) हम लोगों की (पाहि) रक्षा करें और (वावृधीथाः) वृद्धि को प्राप्त होवें॥ १०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। राजपुरुषों को सूर्य के समान विद्या उत्तम शिक्षा और धर्म के उपदेश से प्रजाजनों को उत्साह देना और उन की प्रशंसा करनी चाहिये और वैसे ही प्रजाजनों को राजजन वर्त्तने चाहियें॥ १०॥

इस सूक्त में राजा और प्रजाजन के काम का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ एकता है यह जाननी चाहिये॥

यह एकसौतीसवां सूक्त समाप्त हुआ॥

परुच्छेप ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । २ निचृदत्यष्टिः । ४ विराडत्यष्टिश्छन्दः गान्धारः स्वरः । ३ । ५ । ६ । ७ भुरिगष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

इन्द्राय हि द्यौरसुरो अनम्नतेन्द्राय
महो पृथिवी वरीमभिर्द्युम्नसाता वरीमभिः ।
इन्द्रं विश्वे सजोषसो देवासो दधिरे पुरः ।
इन्द्राय विश्वा सवनानि मानुषा रातानि सन्तु मानुषा ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस (इन्द्राय) परमैश्वर्ययुक्त ईश्वर के लिये (द्यौः) सूर्य (असुरः) और मेघ वा जिस (इन्द्राय) परमैश्वर्ययुक्त ईश्वर के लिये (मही) बड़ी प्रकृति और (पृथिवी) भूमि (वरीमभिः) स्वीकार करने के योग्य व्यवहारों से (द्युम्नसाता) प्रशंसा के विभाग अर्थात् अलग अलग प्रतीति होने के निमित्त (अनम्नत) नमे नम्रता को धारण करे वा जिस (इन्द्रम्) सर्व दुःख विनाशने वाले परमेश्वर को (सजोषसः) एक सी प्रीति करने हारे (विश्वे) समस्त (देवासः) विद्वान् जन (पुरः) सत्कारपूर्वक (दधिरे) धारण करें उस (इन्द्राय) परमेश्वर के लिये (हि) ही (मानुषा) मनुष्यों के इन व्यवहारों के समान (वरीमभिः) स्वीकार करने योग्य धर्मों से (विश्वा) समस्त (सवनानि) ऐश्वर्य जो (मानुषा) मनुष्य सम्बन्धी हैं वे (रातानि) दिये हुए (सन्तु) होवें इसको जानो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को जानना चाहिये कि जितना कुछ यहां कार्यकारणात्मक जगत् और जितने जीव वर्त्तमान हैं यह सब परनेश्वर का राज्य है ॥ १ ॥

विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं
वृषमण्यवः पृथक् स्वः सनिष्यवः पृथक् ।
तं त्वा नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि ।
इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयवः स्तोमेभिरिन्द्रमायवः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे परमेश्वर (पृथक्, पृथक) अलग अलग (सनिष्यवः) उत्तमता से सेवने वाले (वृषमण्यवः) जिनका बैल के क्रोध के समान क्रोध वे हम लोग जिन (समानम्) सर्वत्र एक रस व्याप्त (एकम्) जिनका दूसरा कोई सहायक नहीं उन (स्वः) सुखस्वरूप (त्वा) आपको (विश्वेषु) समग्र (सवनेषु) ऐश्वर्य आदि पदार्थों में विद्वान् लोग जैसे (तुञ्जते) राखते अर्थात् मानते जानते

हैं वैसे (हि) ही (तम्) उन (त्वा) आपको (शूषस्य) बलवान् पुरुष के (धुरि) धारण करने वाले काठ पर (पर्षणिम्) सींचने योग्य (नावम्) नाव के (न) समान (धीमहि) धारण करें वा (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य कराने वाले सूर्यमण्डल को जैसे उसके (आयवः) चारों ओर घूमते हुए लोक वैसे वा जैसे (यज्ञैः) विद्वानों के सङ्ग और सेवनों से (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य को (न) वैसे (चितयन्तः) अच्छे प्रकार चिन्तवन करते हुए (आयवः) पुरुषार्थ को प्राप्त होने वाले हम लोग (स्तोमेभिः) स्तुतियों से आपकी प्रशंसा करें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । मनुष्यों को चाहिये कि विद्वान् जन जिस सच्चिदानन्दस्वरूप नित्य शुद्ध बुद्ध और मुक्तस्वभाव सर्वत्र एक रस व्यापी सब का आधार सब ऐश्वर्य देने वाले एक अद्वैत कि जिसकी तुल्यता का दूसरा नहीं, परमात्मा की उपासना करते वही निरन्तर सब को उपासना करने योग्य है ॥ २ ॥

वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो
व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः ।
यद् गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि ।
आविष्करिक्रद्वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमऐश्वर्य्य के देने हारे जगदीश्वर ! (सक्षन्तः) सहते हुए (निः सृजः) निरन्तर अनेकानेक व्यवहारों को उत्पन्न करने (अवस्यवः) और अपनी रक्षा चाहनेवाले (निःसृजः) अतीव सम्पन्न (मिथुना) स्त्री और पुरुष दो दो जने (त्वा) आप को प्राप्त हो के (व्रजस्य) जाने योग्य (गव्यस्य) गौओं के लिये हित करने वाले अर्थात् जिस में आराम पाने को गौएँ जातीं उस गोड़ा आदि स्थान के (साता) सेवन में जैसे दुःख छूटें वैसे दुःखों को (विततस्रे) छोड़ते हैं । हे (इन्द्र) दुःखों का विनाश करने वाले (यत्) जो (गव्यन्ता) गौओं के समान आचरण करते (द्वा) दो (स्वः) सुखस्वरूप आप को (यन्ता) प्राप्त होते हुए (जना) स्त्री पुरुषों को (आविष्करिक्रत्) प्रकट करते हुए आप (समूहसि) उन को अच्छे प्रकार चेतना देते हो उन (सचाभुवम्) समवाय सम्बन्ध में प्रसिद्ध होते हुए (वज्रम्) दुष्टों को वज्र के समान दण्ड देने (वृषणम्) सब को सींचने (सचाभुवम्) और सत्य की भावना कराने वाले आप की वे दोनों नित्य उपासना करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो पुरुष और स्त्री

सब जगत् को प्रकाशित करने उत्पन्न करने धारण करने और देने वाले सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर ही का सेवन करते हैं वे निरन्तर सुखी होते हैं ॥३॥

विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र
शारदीरवातिरः सासहानो अवातिरः ।
शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते ।
महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सब के धारण करने हारे ! जैसे (पूरवः) मनुष्य (ते) आप के (अस्य) इस (वीर्य्यस्य) पराक्रम के (पुरः) प्रथम प्रभाव को (विदुः) जानें वैसे और भी जानें और (यत्) जो (सासहानः) सहन करता हुआ जन (इमाः) इन प्रजा और (शारदीः) शरद् ऋतुसम्बन्धी (अपः) जलों को (अवातिरः) प्रकट करे वैसे आप भी जानो और (अवातिरः) प्रकट करो हे (शवसः) बल के (पते) स्वामी (इन्द्र) सब की रक्षा करने हारे ! जैसे आप जिस (अयज्युम्) यज्ञ [न] करने हारे (मर्त्यम्) मनुष्य को (शासः) सिखाओ वा जो (मन्दसानः) कामना करता हुआ (महीम्) बड़ी (पृथिवीम्) पृथिवी को को पाकर (इमाः) इन (अपः) प्राणों के समान वर्त्तमान प्रजाजनों को पीड़ा देवे (तम्) उस को आप (अमुष्णाः) चुराओ छिपाओ और हम भी सिखावें ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो धर्मात्मा सज्जनों के प्रभाव को जान कर धर्माचरण करते हैं वे दुष्टों को सिखला सकते हैं अर्थात् उन की दुष्टता दूर होने को अच्छी शिक्षा दे सकते हैं ॥४॥

आदित्ते अस्य वीर्य्यस्य चर्किरन्मदेषु
वृषन्नुशिजो यदाविथ सखीयतो यदाविथ ।
चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे ।
ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (वृषन्) आनन्द को वर्षाते हुए विद्वान् ! (यत्) जो धर्मात्मा जन (ते) आप के (अस्य) इस (वीर्यस्य) पराक्रम के प्रभाव से (मदेषु) आनन्दों में वर्त्तमान (उशिजः) धर्म की कामना करते हुए जन (चर्किरन्) दुष्टों को निरन्तर दूर करें वा (श्रवस्यन्तः) अपने को अन्न की इच्छा करते हुए (प्रवन्तवे) अच्छे विभाग करने को (पृतनासु) मनुष्यों में (सनिष्णत) सेवन करें अर्थात् (अन्यामन्याम्) अलग अलग (नद्यम्) नदी को जैसे मेघ वैसे (कारम्) जो

किया जाता उस कार का (सनिष्णत) सेवन करें उन (सखीयतः) मित्र के समान आचरण करते हुए जनों को आप (आविथ) पालो (यत्) जिस कारण जिन को (आविथ) पालो इस से उन को पुरुषार्थ वाले (चकर्थ) करो (एभ्यः) इन धार्मिक सज्जनों से सब राज्य की पालना करो और जो आप के कर्मचारी पुरुष हों (ते) वे भी धर्म से (आदित्) ही प्रजाजनों की पालना करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य प्रजा की रक्षा करने में अधिकार पाये हुए हैं वे धर्म के साथ प्रजा पालने की इच्छा करते हुए उत्तम यत्नवान् हों ॥ ५ ॥

उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्य१र्कस्य बोधि
हविषो हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभिः ।
यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिन् चिकेतसि ।
आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (**वज्रिन्**) प्रशंसित शस्त्रयुक्त विद्वान्! (**इन्द्र**) दुष्टों का संहार करने वाले आप जैसे (**अर्कस्य**) सूर्य और (**अस्याः**) इस (**उषसः**) प्रभात वेला के प्रभाव से जन सचेत होते जागते हैं वैसे (**नः**) हम लोगों को (**बोधि**) सचेत करो (**हि, उतो**) और निश्चय से (**स्वर्षाता**) सुखों के अलग अलग करने में (**हवीमभिः**) स्पर्द्धा करने योग्य कामों के समान (**हवीमभिः**) प्रशंसा के योग्य कामों से (**हविषः**) देने योग्य पदार्थ का (**जुषेत**) सेवन करो (**यत्**) जो (**वृषा**) बैल के समान बलवान् आप (**मृधः**) संग्रामों में स्थित शत्रुओं को (**हन्तवे**) मारने को (**चिकेतसि**) जानो (**नवीयसः**) अतीव नवीन विद्या पढ़ने वाले (**वेधसः**) बुद्धिमान् (**मे**) मुझ विद्यार्थी और (**अस्य**) इस (**नवीयसः**) अत्यन्त नवीन पढ़ाने वाले विद्वान् के (**मन्म**) विज्ञान उत्पन्न करने वाले शास्त्र को (**आश्रुधि**) अच्छे प्रकार सुनो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य से प्रकट हुई प्रभात बेला से जागे हुए जन सूर्य के उजेले में अपने अपने व्यवहारों का आरम्भ करते हैं वैसे विद्वानों से सुबोध किये मनुष्य विशेष ज्ञान के प्रकाश में अपने अपने कामों को करते हैं। जो दुष्टों की निवृत्ति और श्रेष्ठों की उत्तम सेवा वा नवीन पढ़े हुए विद्वानों के निकट से विद्या का ग्रहण करते हैं वे चाहे हुए पदार्थ की प्राप्ति में सिद्ध होते हैं ॥ ६ ॥

त्वं तमिन्द्र वावृधानो अस्मयुरमित्रयन्तं
तुविजात मर्त्यं वज्रेण शूर मर्त्यम् ।
जहि यो नो अघायति शृणुष्व सुश्रवस्तमः ।
रिष्टं न यामन्नप भूतु दुर्मतिर्विश्वाप भूतु दुर्मतिः ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (तुविजात) बहुतों में प्रसिद्ध (शूर) शत्रुओं को मारने वाले (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य्य से युक्त (सुश्रवस्तमः) अतीव सुन्दरता से सुनने हारे और (वावृधानः) बढ़ते हुए (अस्मयुः) हम लोगों में अपनी इच्छा करने वाले (त्वम्) आप (वज्रेण) शस्त्र से (अमित्रयन्तम्) शत्रुता करते हुए (मर्त्यम्) मनुष्य को (जहि) मारो (यः) जो (नः) हम लोगों के लिये (अघायति) अपना दुष्कर्म चाहता है (तम्) उस (मर्त्यम्) मनुष्य को मारो और जो (यामन्) रात्रि में (दुर्मतिः) दुष्टमति वाला मनुष्य (अप, भूतु) अप्रसिद्ध हो छिपे उसको (रिष्टम्) दो मारने वाले (न) जैसे मारें वैसे (जहि) मारो अर्थात् अत्यन्त दण्ड देओ जो (दुर्मतिः) दुष्टमति हो वह (विश्वा) समस्त हम लोगों से (अप, भूतु) छिपे दूर हो यह आप (शृणुष्व) सुनो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो धार्मिक राजा और प्रजाजन हों वे सब चतुराइयों से द्वेष वैर करने और पराया माल हरने वाले दुष्टों को मार धर्म के अनुकूल राज्य की शिक्षा और बेखटक मार्ग कर विद्या की वृद्धि करें ॥ ७ ॥

इस सूक्त में श्रेष्ठ और दुष्ट मनुष्यों का सत्कार और ताड़ना के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ इकतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

परुच्छेप ऋषिः। इन्द्रो देवता । १ । ३ । ५ । ६ विराडत्यष्टिश्छन्दः। गन्धारः स्वरः । २ भुरिगतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ४ निचृदष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

त्वया॑ व॒यं म॑घवन् पू॒र्व्ये॑ धन॒ इन्द्र॑त्वोताः

सा॒स॒ह्याम॑ पृतन्य॒तो व॑नु॒याम॑ वनु॒ष्यतः॑ ।

नेदि॑ष्ठे अ॒स्मिन्नह॒न्यधि॑ वोचा॒ नु सु॑न्व॒ते ।

अ॒स्मिन् य॒ज्ञे वि च॑येमा॒ भरे॑ कृ॒तं वा॑ज॒यन्तो॒ भरे॑ कृ॒तम् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (मघवन्) परम प्रशंसित बहुत धन वाले (इन्द्रत्वोताः) अति-उत्तम ऐश्वर्य्ययुक्त जो आप उन्होंने पाले हुए (वयम्) हम लोग (त्वया) आप के साथ (पूर्व्ये) अगले महाशयों ने किये (धने) धन के निमित्त (पृतन्यतः) मनुष्यों के समान आचरण करते हुए मनुष्यों को (सासह्याम) निरन्तर सहें (वनुष्यतः) और सेवन करने वालों का (वनुयाम) सेवन करें तथा (भरे) रक्षा में (कृतम्) प्रसिद्ध हुए को (वाजयन्तः) समझाते हुए हम लोग (अस्मिन्) इस (यज्ञे) यज्ञ में तथा (भरे) संग्राम में (कृतम्) उत्पन्न हुए व्यवहार को (विचयेम) विशेष कर खोजें और (नेदिष्ठे) अति निकट (अस्मिन्) इस (अहनि) आज के दिन (सुन्वते) व्यवहारों की सिद्धि करते हुए के लिये आप सत्य उपदेश (नु) शीघ्र (अधिवोच) सब के उपरान्त करो ॥ १ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिये कि धार्मिक सेनापति के साथ प्रीति और उत्साह कर शत्रुओं को जीत के अति उत्तम धन का समूह सिद्ध करें और सेनापति समय समय पर अपनी वक्तृता से शूरता आदि गुणों का उपदेश कर शत्रुओं के साथ अपने सैनिकजनों का युद्ध करावे ॥ १ ॥

स्व॒र्जेषे॒ भर॑ आ॒प्रस्य॒ वक्म॑न्युष॒र्बुधः॑

स्वस्मि॒न्नञ्ज॑सि क्रा॒णस्य॒ स्वस्मि॒न्नञ्ज॑सि ।

अह॒न्निन्द्रो॒ यथा॑ वि॒दे शी॒र्ष्णाशी॑र्ष्णोपवा॒च्यः॑ ।

अ॒स्म॒त्रा ते॑ स॒ध्र्य॑क् सन्तु रा॒तयो॑ भ॒द्रा भ॒द्रस्य॑ रा॒तयः॑ ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (मनुष्यो! (यथा) जैसे (सध्र्यक्) साथ जाने वाला (इन्द्रः) सूर्य्यमण्डल (स्वर्जेषे) सुख से जीतने वाले (विदे) ज्ञानवान् पुरुष के लिये (शीर्ष्णाशीर्ष्णा) शिर माथे (उपवाच्यः) समीप कहने योग्य है वैसे (भरे) संग्राम में (आप्रस्य) पूर्ण बल (क्राणस्य) करते हुए समय के विभाग (उषर्बुधः) उषःकाल अर्थात् रात्रि के चौथे प्रहर में जागे हुए तुम लोग (वक्मनि) उपदेश में जैसे (स्वस्मिन्) अपने (अञ्जसि) प्रसिद्ध व्यवहार के निमित्त वैसे ((स्वस्मिन्) अपने (अञ्जसि) चाहे हुए व्यवहार में जैसे मेघ को सूर्य्य (अहन्) मारता वैसे शत्रुओं को मारो जो (अस्मत्रा) हम लोगों के बीच (भद्रा) कल्याण करने वाले

(रातयः) दान आदि काम (ते) तुम (भद्रस्य) कल्याण करने वाले के (रातयः) दानों के समान हों वे (ते) तेरे (सन्तु) हों ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो सभापति सब शूरवीरों का अपने समान सत्कार करता है वह शत्रुओं को जीतकर सब के लिये सुख दे सकता है, संग्राम में अपने पदार्थ औरों के लिये और औरों के अपने लिये करने चाहियें ऐसे एक दूसरे में प्रीति के साथ विरोध छोड़ उत्तम जय प्राप्त करना चाहिये ॥ २ ॥

तत्तु प्रयः प्रत्नथा ते शुशुक्वनं यस्मिन्

यज्ञे वारमकृण्वत क्षयमृतस्य वारसि क्षयम् ।

वि तद्वोचेरध द्वितान्तः पश्यन्ति रश्मिभिः ।

स घा विदे अन्विन्द्रो गवेषणो बन्धुक्षिद्भ्यो गवेषणः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! (गवेषणः) जो वाणी की इच्छा करता है उस (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् के समान (ते) आप का (प्रत्नथा) प्राचीन (यस्मिन्) जिस (यज्ञे) व्यवहार में (ऋतस्य) सत्य का (शुशुक्वनम्) अतिप्रकाशित (क्षयम्) निवास का (वारम्) स्वीकार करने को (वाः) जल और (क्षयम्) प्राप्त होने योग्य पदार्थ के समान जो (प्रयः) प्रीति करने वाले वचन को (अकृण्वत) उच्चारण करें उन के (तत्) उस पूर्वोक्त वचन को (तु) तो आप प्राप्त (असि) हैं (अध) इसके अनन्तर (द्विता) दो का होना जैसे हो वैसे (रश्मिभिः) किरणों के साथ (अन्तः) भीतर जिसको (पश्यन्ति) देखते हैं (तत्) उसको तू (वि,-वोचेः) अच्छे कह और (सः) वह (बन्धुक्षिद्भ्यः) बन्धुओं को निवास कराते हुए पुरुषों के लिये (गवेषणः) किरणों को इष्ट सूर्य के समान ऐश्वर्यवान् मैं (अनु,-विदे) अनुकूलता से जानता हूँ (घ) उसी को आप भी जानो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सत्य गुणों में प्रीति करते हैं वे विद्वान् होते और जो विद्वान् हों वे सूर्य के प्रकाश से सब हाथ में आमले के समान पदार्थों को देख सकते हैं ॥ ३ ॥

नू इत्था ते पूर्वथा च प्रवाच्यं ।

यदङ्गिरोभ्योऽवृणोरप व्रजमिन्द्र शिक्षन्नप व्रजम् ।

ऐभ्यः समान्या दिशास्मभ्यं जेषि योत्सि च ।

सुन्वद्भ्यो रन्धया कं चिदव्रतं हृणायन्तं चिदव्रतम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) पढ़ाने से अज्ञान का नाश कराने वाले ! (शिक्षन्) विद्या का ग्रहण कराते हुए आप (अप, व्रजम्) न जानने योग्य कुटिलगामी के समान (व्रजम्) अधर्ममार्गी जन को (अपावृणोः) मत स्वीकार करो (अङ्गिरोभ्यः) प्राणों के समान विद्वान् जनों ने (यत्) जो (पूर्वथा) प्राचीन ढङ्गों से (प्रवाच्यम्) अच्छे प्रकार कहने योग्य उसको (च) भी (नु) शीघ्र ग्रहण करो जो आप (एभ्यः) इन विद्वान् और (सुन्वद्भ्यः) पदार्थों के सार को खींचते हुए (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (समान्या) एक सी वर्त्तमान (दिशा) दिशा से शत्रुओं को (आ, योत्सि) अच्छे प्रकार लड़ते लड़ते (च) और (जेषि) जीतते वा (हृणायन्तम्) हिरण के समान ऊलते फांदते हुए (अव्रतम्) सत्य भाषणादि व्यवहार रहित पुरुष के (चित्) समान (अव्रतम्) झूठे आचार से युक्त जन को (रन्धय) मारो (च) और वैसे (कं, चित्) किसी दुष्ट को दण्ड देने के विना मत छोड़ो (इत्था) ऐसे वर्त्तते हुए (ते) आपको इस जन्म और परजन्म में आनन्द की सिद्धि होगी इसको जानो ॥ ४ ॥

भावार्थ—जिन के राज्य में दुष्ट वचन कहने वाले चोर और व्यभिचारी नहीं हैं वे चक्रवर्त्ति राज्य करने को समर्थ होते हैं ॥ ४ ॥

सं यज्जनान् क्रतुभिः शूर ईक्षयद्धने हिते
तरुषन्त श्रवस्यवः प्र यक्षन्त श्रवस्यवः ।
तस्मा आयुः प्रजावदिद्बाधे अर्चन्त्योजसा ।
इन्द्र ओक्यं दिधिशन्त धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (श्रवस्यवः) अपने को सुनने में चाहना करने वालों के समान वर्त्तमान (श्रवस्यवः) अपने को सुनने की इच्छा करने वाले तुम जैसे (क्रतुभिः) बुद्धि वा कर्मों से (यत्) जिन (जनान्) धार्मिक जनों को (हिते) सुख करने हारे (धने) धन के निमित्त (तरुषन्त) पार करो उद्धार करो और(प्रयक्षन्त) दुष्टों को दण्ड देओ और जो (शूरः) निर्भय शूरवीर पुरुष (समीक्षयत्) ज्ञान करावे व्यवहार को दर्शावे (तस्मै) उस के लिये (प्रजावत्) जिस में बहुत सन्तान विद्यमान वह (आयुः) आयुर्दा हो । हे उत्तम विचारशील पुरुषो ! तुम (धीतयः) धारण करते हुओं के (न) समान (धीतयः) धारणा करने वाले होते हुए परमऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर में (ओक्यम्) घरों में जो श्रेष्ठ व्यवहार उस को सिद्ध कर (देवान्) विद्वानों को (अच्छ) अच्छा (दिधिषन्त) उपदेश करते समझाते हो वे आप (बाधे) दुष्ट व्यवहारों की बाधा के लिये (ओजसा) पराक्रम से (अर्चन्ति) सत्कार करते हुओं के समान कष्ट में (इत्) ही रक्षा करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं। जो विद्वानों के सङ्ग और सेवा में विद्याओं को पाकर पुरुषार्थ से परम ऐश्वर्य्य की उन्नति करते हैं वे सब ज्ञानवान् पुरुषों को सुखयुक्त कर सकते हैं ॥ ५ ॥

युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा
यो नः पृतन्यादप तंतमिद्धतं वज्रेण तंतमिद्धतम् ।
दूरे चत्ताय छन्त्सद् गहनं यदिनक्षत् ।
अस्माकं शत्रून्परि शूर विश्वतो दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (पुरोयुधा) पहिले युद्ध करने वाले (इन्द्रापर्वता) सूर्य्य और मेघ के समान वर्त्तमान सभा सेनाधीशो ! (युवम्) तुम (यः) जो (नः) हम लोगों की (पृतन्यात्) सेना को चाहे (तम्) उस को (वज्रेण) पैने तीक्ष्ण शस्त्र वा अस्त्र अर्थात् कलाकौशल्य से बने हुए शस्त्र से (अप, हतम्) अत्यन्त मारो जैसे तुम दोनों जिस जिस को (हतम्) मारो (तंतम्) उस उस को (इत्) ही हम लोग भी मारें और जिस जिस को हम लोग मारें (तंतम्) उस उस को (इत्) ही तुम मारो। हे (शूर) शूरवीर ! (दर्मा) शत्रुओं को विदीर्ण करते हुए आप जिन (अस्माकम्) हमारे (शत्रून्) शत्रुओं को (विश्वतः) सब ओर से (दर्षीष्ट) दरो विदीर्ण करो इनको हम लोग भी (विश्वतः) सब ओर से (परि) सब प्रकार दरें विदीर्ण दरें (यत्) जो (चत्ताय) मांगे हुए के लिये (गहनम्) कठिन व्यवहार को (दूरे) दूर में (छन्त्सत्) स्वीकार करे और शत्रुओं की सेना को (इनक्षत्) व्याप्त हो उस की तुम निरन्तर रक्षा करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सेना पुरुषों को जो सेनापति आदि पुरुषों के शत्रु हैं वे अपने भी शत्रु जानने चाहियें, शत्रुओं से परस्पर फूट को न प्राप्त हुए धार्मिक जन उन शत्रुओं को विदीर्ण कर प्रजाजनों की रक्षा करें ॥ ६ ॥

इस सूक्त में राजधर्म का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये ॥

यह एकसो बत्तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

परुच्छेप ऋषिः। इन्द्रो देवता। १ त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः। २। ३ निचृदनुष्टुप् ४ स्वराडनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः। ५ आर्षी गायत्री छन्दः। गान्धारः स्वरः। ६ स्वराड् ब्राह्मीजगती छन्दः। निषादः स्वरः। ७ विराडष्टिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

उभे पुनामि रोदसी ऋतेन द्रुहो दहामि सं महीरनिन्द्राः।
अभिव्लग्य यत्र हता अमित्रा वैलस्थानं परि तृळ्हा अशेरन्॥ १॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! जैसे मैं (अनिन्द्राः) जिनमें अविद्यमान राजजन हैं उन (महीः) पृथिवी भूमियों का (अभिव्लग्य) सब ओर से सङ्ग कर अर्थात् उनको प्राप्त होकर (ऋतेन) सत्य से (उभे) दोनों (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी को (पुनामि) पवित्र कर्त्ता हूं और (द्रुहः) द्रोह करने वालों को (सं दहामि) अच्छी प्रकार जलाता हूँ (यत्र) जहां (वैलस्थानम्) विलरूप स्थान को प्राप्त (परि, तृढाः) सब ओर से मारे (हताः) मरे हुए (अमित्राः) मित्रभाव रहित शत्रुजन (अशेरन्) सोवें वहां मैं यत्न करता हूँ वैसा तुम भी आचरण करो॥ १॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सब मनुष्यों को यह निरन्तर इच्छा करनी चाहिये कि जिस सत्यव्यवहार से राज्य की उन्नति पवित्रता शत्रुओं की निवृत्ति और निर्वैरनिश्शत्रु राज्य हो॥ १॥

अभिऽव्लग्या चिदद्रिवः शीर्षा यातुमतीनाम्।
छिन्धि वटूरिणा पदा महावटूरिणा पदा॥ २॥

पदार्थ—हे (अद्रिवः) मेघ के समान वर्त्तमान शूरवीर तू प्रशंसित बल को (अभिव्लग्य) सब ओर से पाकर (यातुमतीनाम्) जिसमें बहुत हिंसक मार धार करने हारे विद्यमान उन सेनाओं के (महावट्टरिणा) बड़े बड़े रङ्ग से युक्त (पदा) चौथे भाग से जैसे (चित्) वैसे (वट्टरिणा) लपेटे हुए (पदा) शस्त्रों के चौथे भाग से वा अपने पैर से दवा के (शीर्षा) शत्रुओं के शिरों को (छिन्धि) छिन्न भिन्न कर॥ २॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो अपने बल की उन्नति कर शत्रुओं के वलों को छिन्न भिन्न कर उन को पैर से दबाता है वह राज्य करने को योग्य होता है॥ २॥

अवासां मघवञ्जहि शर्धो यातुमतीनाम्।
वैलस्थानके अर्मके महावैलस्थे अर्मके॥ ३॥

पदार्थ—हे (मघवन्) परम धनयुक्त राजन् ! (अर्मके) जो दुःख पहुँचाने हारा और (वैलस्थानके) जिसमें विलयुक्त स्थान हैं उनके समान (अर्मके) दुःख पहुँचानेहारे (महावैलस्थे) बड़े बड़े गढ़ेलों से युक्त स्थान में (आसाम्) इन (यातुमतीनाम्) हिंसक सेनाओं के (शर्धः) बल को (अव, जहि) छिन्न भिन्न करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—सेनावीरों को चाहिये कि शत्रुओं की सेनाओं को अतीव दुःख से जाने योग्य गढ़ेले आदि से युक्त स्थान में गिरा कर मारें ॥ ३ ॥

यासां तिस्रः पञ्चाशतोऽभिव्लङ्गैरपावपः ।

तत्सु ते मनायति तकत्सु ते मनायति ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे परम उत्तम धनयुक्त राजन् ! (यासाम्) जिन शत्रुसेनाओं के बीच (तिस्रः) तीन वा (पञ्चाशतः) पचास सेनाओं को (अभिव्लङ्गैः) चारों ओर से जाने आने आदि व्यवहारों से (अपावपः) दूर पहुँचाओ उन सेनाओं का [तत्] वह पहुँचाना (ते) तेरे लिये (सुमनायति) अच्छे अपने मन के समान आचरण करता फिर भी (तकत्) वह (ते) तेरे लिए (सुमनायति) अच्छे अपने मन के समान आचरण करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि ऐसा बल बढ़ावें जिससे एक ही वीर पचास दुष्ट शत्रुओं को जीते और अपने बल की रक्षा करे ॥ ४ ॥

पिशङ्गभृष्टिमम्भृणं पिशाचिमिन्द्र सं मृण । सर्वं रक्षो नि बर्हय ॥५॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) दुष्टों को विदीर्ण करनेहारे राजजन ! आप (पिशङ्गभृष्टिम्) अच्छे प्रकार पीला वर्ण होने से जिस का पाक होता (अम्भृणम्) उस निरन्तर भयङ्कर (पिशाचिम्) पीसने दुःख देने हारे जन को (सम्मृण) अच्छे प्रकार मारो और (सर्वम्) समस्त (रक्षः) दुष्टजन को (निबर्हय) निकालो ॥५॥

भावार्थ—राजपुरुषों को चाहिये कि दुष्ट शत्रुओं को निर्मूल कर सब सज्जनों को निरन्तर बढ़ावें ॥ ५ ॥

अवर्मह इन्द्र दादृहि श्रुधी नः शुशोच हि द्यौः क्षा

न भीषाँ अद्रिवो घृणान्न भीषाँ अद्रिवः ।

शुष्मिन्तमो हि शुष्मिभिर्वधैरुग्रेभिरीयसे ।

अपूरुषघ्नो अप्रतीत शूर सत्वभिस्त्रिसप्तैः शूर सत्वभिः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (अद्रिवः) प्रशंसित-मेघयुक्त सूर्य के समान वर्त्तमान (इन्द्र)

उत्तम गुणों से प्रकाशित पुरुष ! आप (अवः) नीचे को मुख राखने वाले कुटिल को (दादृहि) विदारो मारो (नः) हम लोगों को (शुशोच) शोचो हमारे न्याय को (श्रुधि) सुनो और (द्यौः) प्रकाश जैसे (क्षाः) भूमियों को (न) वैसे (महः) अत्यन्त रक्षा करो हे (अद्रिवः) प्रशंसित पर्वतों वाले ! आप (हि) ही (भीषा) भय से (घृणात्) प्रकाशित के समान न्याय को प्रकाश करो और (भीषा) भय से दुष्टों को दण्ड देओ । हे (शूर) निर्भय निडर शूरवीर पुरुष ! (शुष्मिन्तमः) जिनके अतीव बहुत बल विद्यमान (अपूरुषघ्नः) जो पुरुषों को न मारने वाले आप (उग्रेभिः) तीक्ष्ण स्वभाव वाले (शुष्मिभिः) बली पुरुषों के साथ तीक्ष्ण शत्रुओं के (वधैः) मारने के उपायों से (ईयसे) जाते हो सो आप (त्रिसप्तैः) इक्कीस (सत्वभिः) विद्वानों के साथ ही वर्ताव रक्खो हे (अप्रतीत) न प्रतीत होने वाले गूढ़ विचारयुक्त (शूरः) दुष्टों को मारने वाले आप (हि) ही (सत्वभिः) पदार्थों से युक्त होओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। धार्मिक पुरुषों को नीचपन की निवृत्ति और उत्तमता का प्रचार कर प्रशंसित बल की उन्नति के लिये शूरवीर पुरुषों से प्रजाजनों की अच्छे प्रकार रक्षा कर दश प्राण और एक जीव से दश इन्द्रियों के समान पुरुषार्थ कर यथायोग्य पदार्थों की वृद्धि प्राप्त करने योग्य है ॥ ६ ॥

वनोति हि सुन्वन्क्षयं परीणसः
सुन्वानो हि ष्मा यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः ।
सुन्वान इत्सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः ।
सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—जो (इन्द्रः) सुख देने वाला (सुन्वानाय) पदार्थों का सार निकालते हुए पुरुष को (आभुवम्) जिस में अच्छे प्रकार सुख होता उस (रयिम्) धन को (ददाति) देता है वह (सुन्वानः) पदार्थों के सारों को प्रकट करता हुआ (अवृतः) प्रकट (वाजी) प्रशस्त ज्ञानवान् पुरुष (सहस्रा) हजारों (देवानाम्) विद्वानों के (अव, द्विषः) अति शत्रुओं को (इत्) ही (सिषासति) अलग करने को चाहता है जो (अव, द्विषः) अत्यन्त वैर करने वालों को अलग करना चाहता है वह सब के लिये (आभुवम्) जिसमें उत्तम सुख हो उस धन को (ददाति) देता है और जो (हि) निश्चय से (सुन्वानः) पदार्थों के सार को सिद्ध करता हुआ (यजति) सङ्ग करता है (स्म) वही (परीणसः) बहुत पदार्थों और (क्षयम्) घर को (सुन्वन्) सिद्ध करता हुआ (हि) ही सुख (वनोति) मांगता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो सब में मित्रता की भावना कराकर सब के शत्रुओं की निवृत्ति कराते हैं वे सब के सुख करने वाले होकर सब के लिये बहुत सुख दे सकते हैं ॥ ७ ॥

इस सूक्त में श्रेष्ठों की पालना और दुष्टों की निवृत्ति से राज्य की स्थिरता का वर्णन है इससे इस सूक्त में कहे हुए अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ तेतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

परुच्छेप ऋषिः । वायुर्देवता । १ । ३ निचृदत्यष्टिः । २ । ४ विराडत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः । ५ अष्टिः ६ विराडष्टिश्छन्दः मध्यमः स्वरः ॥

आ त्वा जुवो॑ रारहा॒णा

अ॒भि प्रयो॒ वायो॒ वह॑न्त्वि॒ह पू॒र्वपी॑तये॒ सोम॑स्य पू॒र्वपी॑तये ।

ऊ॒र्ध्वा ते॒ अनु॑ सू॒नृता॒ मन॑स्तिष्ठतु जान॒ती ।

नि॒युत्व॑ता॒ रथे॒ना या॑हि दा॒वने॒ वायो॒ मख॑स्य दा॒वने ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (वायो) पवन के समान वर्त्तमान विद्वान् ! (इह) इस संसार में (सोमस्य) ओषधि आदि पदार्थों के रस को (पूर्वपीतये) अगले सज्जनों के पीने के समान (पूर्वपीतये) जो पीना है उसके लिये (जुवः) वेगवान् (रारहाणाः) छोड़ने वाले पवन (त्वा) आपको (प्रयः) प्रीतिपूर्व (अभि, आ, वहन्तु) चारों ओर से पहुँचावे हे (वायो) ज्ञानवान् पुरुष ! जिस (ते) आप की (ऊर्ध्वा) उन्नतियुक्त अति उत्तम (सूनृता) प्रिय वाणी (जानती) और ज्ञानवती हुई स्त्री (मनः) मन के (अनु, तिष्ठतु) अनुकूल स्थित हो सो आप (मखस्य) यज्ञ के सम्बन्ध में (दावने) दान करने वाले के लिये जैसे वैसे (दावने) देने वाले के लिये (नियुत्वता) जिसमें बहुत घोड़े विद्यमान हैं उस (रथेन) रमण करने योग्य यान से (आ, याहि) आओ ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । विद्वान् लोग सर्व प्राणियों में प्राण के समान प्रिय होकर अनेक घोड़ों से जुते हुए रथों से जावें आवें ॥ १ ॥

मन्दन्तु त्वा मन्दिनो वायविन्दवोऽस्मत्क्राणासः सुकृता
अभिद्यवो गोभिः क्राणा अभिद्यवः ।
यद्ध क्राणा इरध्यै दक्षं सचन्त ऊतयः ।
सध्रीचीना नियुतो दावने धिय उप ब्रुवत ईं धियः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (वायो) पवन के समान मनोहर विद्वन् ! (यत्) जो (अस्मत्) हम लोगों से (क्राणासः) उत्तम कर्म करते हुए (अभिद्यवः) जिन के चारों ओर से विद्या के प्रकाश विद्यमान (सुकृताः) जो सुन्दर उत्तम कर्म वाले (अभिद्यवः) और सब ओर से सूर्य की किरणों के समान अत्यन्त प्रकाशमान (इन्दवः) आर्द्र चित्त (क्राणाः) पुरुषार्थ करते हुए सज्जनों के समान (मन्दिनः) और सुख की कामना करते हुए (त्वा) आपको (मन्दन्तु) चाहें वे (ह) ही (ऊतयः) रक्षा आदि क्रियावान् (क्राणाः) कर्म करने वाले (दक्षम्) बल को (गोभिः) भूमियों के साथ (इरध्यै) प्राप्त होने को (सचन्त) युक्त होते अर्थात् सम्बन्ध करते हैं । जो (दावने) दान के लिये (सध्रीचीनाः) साथ सत्कार पाने वा आने जाने वाले (नियुतः) नियुक्त किई अर्थात् किसी विषय में लगाई हुई (धियः) बुद्धियों का (उप, ब्रुवते) उपदेश करते हैं वे (ईम्) सब ओर से (धियः) कर्मों को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य विद्वानों का सेवन करते और सत्य का उपदेश करते हैं वे शरीर और आत्मा के बल को कैसे न प्राप्त हों ॥ २ ॥

वायुर्युङ्क्ते रोहिता वायुररुणा
वायू रथे अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे ।
प्र बोधया पुरंधिं जार आ ससतीमिव ।
प्र चक्षय रोदसी वासयोषसः श्रवसे वासयोषसः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् (धुरि) सब के आधारभूत जगत् में (वोढवे) पदार्थों के पहुँचाने को (वहिष्ठा) अतीव पहुँचाने वाला (वायुः) पवन (वोढवे) देशान्तर में पहुँचाने के लिये (धुरि) चलाने के मुख्य भाग में (रोहिता) लाल लाल रङ्ग के अग्नि आदि पदार्थों को वा (वायुः) पवन (अरुणा) पदार्थों को पहुँचाने में समर्थ जल धूआं आदि पदार्थों को (वायुः) पवन (अजिरा) फेंकने योग्य पदार्थों को (रथे) रथ में (युङ्क्ते) जोडता है अर्थात् कलाकौशल से प्रेरणा को

प्राप्त हुआ उन पदार्थों का सम्बन्ध करता है इस से आप (जारः) जालम पुरुष जैसे (ससतीमिव) सोती हुई स्त्री को जगावे वैसे (पुरन्धिम्) बहुत उत्तम बुद्धिमती स्त्री को (प्रबोधय) भली भाँति बोध कराओ (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी का (प्र, चक्षय) उत्तम व्याख्यान करो अर्थात् उन के गुणों को कहो (उषसः) दाह आदि के करने वाले पदार्थों अर्थात् अग्नि आदि को कलायन्त्रादिकों में (वासय) वसाओ स्थापन करो और (श्रवसे) सन्देशादि सुनने के लिये (उषसः) दिनों को (वासय) तार बिजुली की विद्या से स्थिर करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जो पवन के समान अच्छा यत्न करते और उत्तम धर्मात्मा के समान मनुष्यों को बोध कराते हैं वे सूर्य्य और पृथिवी के समान प्रकाश और सहनशीलता से युक्त होते हैं ॥ ३ ॥

तुभ्यमुषासः शुचयः परावति भद्रा वस्त्रा तन्वते
दंसु रश्मिषु चित्रा नव्येषु रश्मिषु ।
तुभ्यं धेनुः सबर्दुघा विश्वा वसूनि दोहते ।
अजनयो मरुतो वक्षणाभ्यो दिव आ वक्षणाभ्यः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्य ! जैसे (शुचयः) शुद्ध (उषासः) प्रातः समय के पवन (परावति) दूर देश में (दंसु) जिनमें मनुष्य मन का दमन करते उन (रश्मिषु) किरणों में और (नव्येषु) नवीन (रश्मिषु) किरणों में वैसे (तुभ्यम्) तेरे लिये (चित्रा) चित्र विचित्र अद्भुत (भद्रा) सुख करने वाले (वस्त्रा) वस्त्र वा ढांपने के अन्य पदार्थों का (तन्वते) विस्तार करते वा जैसे (सबर्दुघा) सब कामों को पूर्ण करती हुई (धेनुः) वाणी (तुभ्यम्) तेरे लिये (विश्वा) समस्त (वसूनि) धनों को (दोहते) पूरा करती वा जैसे (अजनयः) न उत्पन्न होने वाले (मरुतः) पवन (वक्षणाभ्यः) जो जलादि पदार्थों को बहाने वाली नदियों में (दिवः) प्रकाश के बीच (वक्षणाभ्यः) बहाने वाली किरणों से जल का (आ) अच्छे प्रकार विस्तार करते वैसा तू हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य किरणों के समान न्याय के प्रकाश और अच्छी शिक्षायुक्त वाणी के समान वक्तृता बोल चाल और नदी के समान अच्छे गुणों की प्राप्ति करते वे समग्र सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

तुभ्यं शुक्रासः शुचयस्तुरण्यवो मदेषूग्रा इषणन्त
भुर्वण्यपामिषन्त भुर्वणि ।
त्वां त्सारी दसमानो भगमीट्टे तक्ववीये ।
त्वं विश्वस्माद्भुवनात्पासि धर्मणासुर्यात्पासि धर्मणा ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो (त्वम्) आप (धर्मणा) धर्म से (असुर्यात्) दुष्टों के निज व्यवहार से (पासि) रक्षा करते हो वा (धर्मणा) धर्म के साथ (विश्वस्मात्) समग्र (भुवनात्) संसार से (पासि) रक्षा करते हो तथा (त्सारी) तिरछे बांके चलते और (दसमानः) शत्रुओं का संहार करते हुए आप (तक्ववीये) जिसमें चोरों का सम्बन्ध नहीं उस मार्ग में (भगम्) ऐश्वर्य की (ईट्टे) प्रशंसा करते उन (त्वाम्) आप को जो (अपाम्) जल वा कर्मों की (भुर्वणि) धारणा वाले व्यवहार में (इषन्त) चाहते हैं वे (तुरण्यवः) पालना और (शुचयः) पवित्रता करने वाले (शुक्रासः) शुद्ध वीर्य (उग्राः) तीव्र जन (मदेषु) आनन्दों में (भुर्वणि) और पालन पोषणे करने वाले व्यवहार में (तुभ्यम्) तुम्हारे लिये (इषणन्त) इच्छा करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों की योग्यता है कि जो जिनकी रक्षा करें उनकी वे भी रक्षा करें, दुष्टों की निवृत्ति से ऐश्वर्य को चाहें और कभी दुष्टों में विश्वास न करें ॥ ५ ॥

त्वन्नो वायवेषामपूर्व्यः सोमानां प्रथमः
पीतिमर्हसि सुतानां पीतिमर्हसि ।
उतो विहुत्मतीनां विशां ववर्जुषीणाम् ।
विश्वा इत्ते धेनवो दुह्र आशिरं घृतं दुह्रत आशिरम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (वायो) प्राण के समान वर्त्तमान परम बलवान् (अपूर्व्यः) जो अगलों ने नहीं प्रसिद्ध किये वे अपूर्व गुणी (त्वम्) आप (नः) हमारे (सुतानाम्) उत्तम क्रिया से निकाले हुए (सोमानाम्) ऐश्वर्य करने वाले बड़ी बड़ी ओषधियों के रसों के (पीतिम्) पीने को (अर्हसि) योग्य हो और (प्रथमः) प्रथम विख्यात आप (एषाम्) इन उक्त पदार्थों के रसों के (पीतिमर्हसि) पीने को योग्य हो जो (ते) आपकी (विश्वाः) समस्त (धेनवः) गौएं (इत्) ही (आशिरम्) भोगने के (घृतम्) कान्तियुक्त घृत को (दुह्रते) पूरा करती और

(आशिरम्) अच्छे प्रकार भोजन करने योग्य दुग्ध आदि पदार्थ को (दुह्रे) पूरा करती उन की और (ववर्जुषीणाम्) निरन्तर दोषों को त्याग करती हुई (विहुत्मतीनाम्) जिनमें विशेषता से होम करने वाला विचारशील मनुष्य विद्यमान उन (विशाम्) प्रजाओं की (उतो) निश्चय से पालना कीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। राजपुरुषों को चाहिये कि ब्रह्मचर्य्य और उत्तम औषध के सेवन और योग्य आहार विहारों से शरीर और आत्मा के बल की उन्नति कर धर्म से प्रजा की पालना करने में स्थिर हों ॥ ६ ॥

इस सूक्त में पवन के दृष्टान्त से शूरवीरों के न्यायविषयकों में प्रजा कर्म के वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये।

यह एकसौ चौंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ।

परुच्छेप ऋषिः । वायुर्देवता । १ । ३ निचृदत्यष्टिः । २ । ४ विराडत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः । ५ । ९ भुरिगष्टिः । ६ । ८ निचृदष्टिः । ७ अष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

स्तीर्णं बर्हिरुप नो याहि वीतये सहस्रेण नियुता नियुत्वते शतिनीभिर्नियुत्वते । तुभ्यं हि पूर्वपीतये देवा देवाय येमिरे । प्र ते सुतासो मधुमन्तो अस्थिरन्मदाय क्रत्वे अस्थिरन् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जिस (देवाय) दिव्य गुण के लिये (तुभ्यम्) (हि) आपको ही (पूर्वपीतये) प्रथम रस आदि पीने को (देवाः) विद्वान् जन (येमिरे) नियम करें उन (ते) आप के (मदाय) आनन्द और (क्रत्वे) उत्तम बुद्धि के लिये (मधुमन्तः) प्रशंसित मधुरगुणयुक्त (सुतासः) उत्पन्न किये हुए पदार्थ (प्रास्थिरन्) अच्छे प्रकार स्थित हों और सुखरूप (अस्थिरन्) स्थिर हों वैसे सो आप (नः) हमारे (स्तीर्णम्) ढंपे हुए (बर्हिः) उत्तम विशाल घर को (वीतये) सुख पाने के लिये (उप, याहि) पास पहुँचो (नियुत्वते) जिसके बहुत घोड़े विद्यमान उसके लिये (सहस्रेण) हजारों (नियुता) निश्चित व्यवहार

से पास पहुँचो और (शतिनीभिः) जिन में सैकड़ों वीर विद्यमान उन सेनाओं के साथ (नियुत्वते) बहुत बल से मिले हुए के लिये अर्थात् अत्यन्त बलवान् के लिये पास पहुँचो ॥ १ ॥

भावार्थ—विद्या और धर्म को जानने की इच्छा करने वाले मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों का बुलाना सब कभी करें उनकी सेवा और सङ्ग से विशेष ज्ञान की उन्नति कर नित्य आनन्दयुक्त हों ॥ १ ॥

तुभ्यायं सोमः परिपूतो अद्रिभिः स्पार्हा वसानः
परि कोशमर्षति शुक्रा वसानो अर्षति ।
तवायं भाग आयुषु सोमो देवेषु हूयते ।
वह वायो नियुतो याह्यस्मयुर्जुषाणो याह्यस्मयुः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (वायो) विद्वान् ! आप (नियुतः) कला कौशल से नियत किये हुए घोड़ों को जैसे पवन वैसे अपने यानों को एक देश से दूसरे देश को (वह) पहुंचाओ और (जुषाणः) प्रसन्न चित्त (अस्मयुः) मेरे समान आचरण करते हुए (याहि) पहुँचो (अस्मयुः) मेरे समान आचरण करते हुए आओ जिस (तव) आप का (अयम्) यह (आयुषु) जीवनों और (देवेषु) विद्वानों में (सोमः) ओषधिगण के समान (भागः) सेवन करने योग्य भाग है वा जो आप (हूयते) स्तुति किये जाते हैं सो (वसानः) वस्त्र आदि ओढ़े हुए (शुक्रा) शुद्ध व्यवहारों को (अर्षति) प्राप्त होते हैं जो (अयम्) यह (अद्रिभिः) मेघों से (परिपूतः) सब ओर से पवित्र हुआ (सोमः) चन्द्रमा के समान प्रशंसा किया जाता वा (कोशम्) मेघ को (पर्य्यर्षति) सब ओर से प्राप्त होता उसके समान (स्पार्हा) चाहे हुए वस्त्रों को (वसानः) धारण किये हुए आप प्राप्त होवें उन (तुभ्यं) आप के लिये उक्त सब वस्तु प्राप्त हों ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य प्रशंसित कपड़े गहने पहिने हुए सुन्दर रूपवान् अच्छे आचरण करते हैं वे सर्वत्र प्रशंसा को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुपयाहि
वीतये वायो हव्यानि वीतये ।
तवायं भाग ऋत्वियः सरश्मिः सूर्ये सचा ।
अध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (वायो) विद्वान् ! (तव) आप के जो (अध्वर्य्युभिः) अपने को यज्ञ की इच्छा करने वालों ने (भरमाणाः) धारण किये मनुष्य (अयंसत) निवृत्त होवें सुख जैसे हो वैसे (अयंसत) निवृत्त हों अर्थात् सांसारिक सुख को छोड़ें जिन आप का (सूर्ये) सूर्य्य के बीच (सचा) अच्छे प्रकार संयोग किये हुई (शुक्राः) शुद्ध किरणों के समान (सरश्मिः) प्रकाशों के साथ वर्त्तमान (ऋत्वियः) जिस का ऋतु समय प्राप्त हुआ वह (अयम्) यह (भागः) भाग है सो आप (वीतये) व्याप्त होने के लिये (हव्यानि) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को (उपयाहि) समीप पहुंचें प्राप्त हों हे (वायो) प्रशंसित बलयुक्त जो (शतिनीभिः) प्रशंसित सैकड़ों अङ्गों से युक्त सेनाओं के साथ वा (सहस्रिणीभिः) जिन में बहुत हज़ार शूरवीरों के समूह उन सेनाओं के साथ वा (नियुद्भिः) पवन के गुण के समान घोड़ों से (वीतये) कामना के लिये (नः) हम लोगोंके (अध्वरम्) राज्य-पालनरूप यज्ञ को प्राप्त होते उनको आप (आ) आकर प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। राजपुरुषों को चाहिये कि शत्रुओं के वल से चौगुना वा अधिक वल कर दुष्ट शत्रुओं के साथ युद्ध करें और वे प्रति वर्ष प्रजाजनों से जितना कर लेना योग्य हो उतना ही लेवें तथा सदैव धर्मात्मा विद्वानों की सेवा करें ॥ ३ ॥

आ वां रथो नियुत्वान्वक्षदवसेऽभि प्रयांसि
सुधितानि वीतये वायो हव्यानि वीतये ।
पिबतं मध्वो अन्धसः पूर्वपेयं हि वां हितम् ।
वायवा चन्द्रेण राधसा गतमिन्द्रश्च राधसा गतम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे सभासेनाधीशो ! जो (वाम्) तुम्हारा (नियुत्वान्) पवन के समान वेगवान् (रथः) रथ (पीतये) आनन्द की प्राप्ति के लिये (सुधितानि) अच्छे प्रकार धारण किये हुए (प्रयांसि) प्रीति के अनुकूल पदार्थों को (अभ्यावक्षत्) चारों ओर से अच्छे प्रकार पहुंचे और (अवसे) विजय की प्राप्ति वा (वीतये) धर्म की प्रवृत्ति के लिये (हव्यानि) देने योग्य पदार्थों को चारों ओर भली भांति पहुंचावे वे तुम जैसे (इन्द्रः) बिजुली रूप आग (च) और पवन आवें वैसे (राधसा) जिस से सिद्धि को प्राप्त होते उस पदार्थ के साथ (आ, गतम्) आओ जो (मध्वः) मीठे (अन्धसः) अन्न का (पूर्वपेयम्) अगले मनुष्यों के पीने योग्य (वाम्) और तुम दोनों के लिये (हितम्) सुखरूप भाग है उस को (पिबतम्) पिओ और (चन्द्रेण) सुवर्णरूप (राधसा) उत्तम सिद्धि करने वाले धन के साथ (आगतम्) आओ हे (वायो) पवन के समान प्रिय ! आप उत्तम

सिद्धि करने वाले सुवर्ण के साथ सुखभोग को (आ) प्राप्त होओ और हे (वायो) दुष्टों की हिंसा करने वाले ! लेने देने योग्य पदार्थों को भी (आ) प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पवन और बिजुली सब में अभिव्याप्त होकर सब वस्तुओं का सेवन करते वैसे सज्जनों को चाहिये कि ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये सब साधनों का सेवन करें ॥४॥

आ वां धियो ववृत्युरध्वराँ उपेममिन्दुं मर्मृजन्त
वाजिनमाशुमत्यं न वाजिनम् ।
तेषां पिबतमस्मयू आ नो गन्तमिहोत्या ।
इन्द्रवायू सुतानामद्रिभिर्युवं मदाय वाजदा युवम् ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्रवायू) सूर्य्य और पवन के समान सभा सेनाधीशो ! जो उपदेश करने वा पढ़ाने वाले विद्वान् जन (वाम्) तुम्हारे (धियः) बुद्धि और कर्मों वा (अध्वरान्) हिंसा न करने वाले जनों (इमम्) इस (इन्दुम्) परम ऐश्वर्य और (वाजिनम्) प्रशंसित वेगयुक्त (आशुम्) काम में शीघ्रता करने वाले (वाजिनम्) अनेक शुभ लक्षणों से युक्त (अत्यम्) निरन्तर गमन करते हुए घोड़े के (न) समान (आ, ववृत्युः) अच्छे प्रकार वर्त्तें कार्य्य में लावें और इस परम ऐश्वर्य्य को (उप, मर्मृजन्त) समीप में अत्यन्त शुद्ध करें (तेषाम्) उनके (अद्रिभिः) अच्छे प्रकार पर्वत के टूक वा उखली मूशलों से (सुतानाम्) सिद्ध किये अर्थात् कूट पीट बनाए हुए पदार्थों के रस को (मदाय) आनन्द के लिये (युवम्) तुम (पिबतम्) पीओ तथा (अस्मयू) हम लोगों के समान आचरण करते हुए (वाजदा) विशेष ज्ञान देने वाले (युवम्) तुम दोनों इस संसार में (ऊत्या) रक्षा आदि उत्तम क्रिया से (नः) हम लोगों को (आगन्तम्) प्राप्त होओ ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो उपदेश करने और पढ़ाने वाले मनुष्यों की बुद्धियों को शुद्ध कर अच्छे सिखाये हुए घोड़े के समान पराक्रम युक्त कराते वे आनन्द सेवन वाले होते हैं ॥ ५ ॥

इमे वां सोमा अप्स्वा सुता
इहाध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत ।
एते वामभ्यसृक्षत तिरः पवित्रमाशवः ।
युवायवोऽति रोमाण्यव्यया सोमासो अत्यव्यया ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे परम ऐश्वर्य्य युक्त और (वायो) पवन के समान बलवान् पुरुष ! जो (इमे) ये (इह) इस संसार में (अध्वर्युभिः) यज्ञ की चाहना करने वालों ने (अप्सु) जलों में (सुताः) उत्पन्न किई (सोमाः) बड़ी बड़ी ओषधि (भरमाणाः) पुष्टि करती हुई तुम दोनों को (अयंसत) देवें और (शुक्राः) शुद्ध वे (अयंसत) लेवें वा जो (एते) ये (आशवः) इकट्ठे होते और (युवायवः) तुम दोनों की इच्छा करते हुए (सोमासः) ऐश्वर्य्ययुक्त (अव्यया) नाशरहित (अति, रोमाणि) अतीव रोमा अर्थात् नारियल की जटाओं के आकार (अति, अव्यया) सनातन सुखों के समान (तिरः) औरों से तिरछे (पवित्रम्) शुद्धि करने वाले पदार्थों और (वाम्) तुम दोनों को (अभि, असृक्षत) चारों ओर से सिद्ध करें उनको तुम पीओ और अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥ ६ ॥

भवार्थ—हे मनुष्यो ! जिन के सेवन से दृढ़ और आरोग्य युक्त देह और आत्मा होते हैं तथा जो अन्तःकरण को शुद्ध करते उनका तुम नित्य सेवन करो ॥ ६ ॥

अति वायो ससतो याहि शश्वतो

यत्र ग्रावा वदति तत्र गच्छतं गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् ।

वि सूनृता ददृशे रीयते घृतमा पूर्णया नियुता

याथो अध्वरमिन्द्रश्च याथो अध्वरम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (वायो) पवन के समान बलवान् विद्वान् ! आप (ससतः) अविद्या को उल्लङ्घन किये और (शश्वतः) सनातन विद्या से युक्त पुरुषों को (याहि) प्राप्त होओ (यत्र) जहाँ (ग्रावा) धीर बुद्धि पुरुष (अति, वदति) अत्यन्त उपदेश करता (तत्र) वहां आप (च) और (इन्द्रः) ऐश्वर्य्ययुक्त मनुष्य (गच्छतम्) जाओ और (गृहम्) घर (गच्छतम्) जाओ जहां (सूनृता) उत्तम शिक्षा युक्त सत्यप्रिय वाणी (वि, ददृशे) विशेषता से देखी जाती और (घृतम्) प्रकाशित विज्ञान (आ, रीयते) अच्छे प्रकार सम्बन्ध होता अर्थात् मिलता वहां (पूर्णया) पूरी (नियुता) पवन की चाल के समान चाल से जो आप (इन्द्रः, च) और ऐश्वर्य्ययुक्त जन (अध्वरम्) अहिंसादि लक्षण धर्म को (याथः) प्राप्त होते हो वे तुम दोनों (अध्वरम्) यज्ञ को (याथः) प्राप्त होते हो ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग जिस देश वा स्थान में शास्त्रवेत्ता आप्त विद्वान् सत्य का उपदेश करें उनके स्थान पर जा के उन के उपदेश को नित्य सुना करें । जिस से विद्यायुक्त वाणी और सत्य विज्ञान और धर्मज्ञान को प्राप्त होवें ॥ ७ ॥

अत्राह तद्वहेथे मध्व आहुतिं यमश्वत्थमुपतिष्ठन्त

जायवोऽस्मे ते सन्तु जायवः ।

साकं गावः सुवते पच्यते यवो न ते वाय

उप दस्यन्ति धेनवो नाप दस्यन्ति धेनवः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (वायो) पवन के समान विद्वान् ! जो पढ़ाने और उपदेश करने वाले (अत्राह) यहीं निश्चय से (तत्) उस विषय को (वहेथे) प्राप्त कराते वा (अश्वत्थम्) जैसे पीपलवृक्ष को पखेरू वैसे (जायवः) जीतने हारे (यम्) जिन आपके (उपतिष्ठन्त) समीप स्थित हों और (मध्वः) मधुर विज्ञान के (आहुतिम्) सब प्रकार ग्रहण करने को उपस्थित हों (ते) वे (अस्मे) हम लोगों के बीच (जायवः) जीतने हारे शूर (सन्तु) हों ऐसे अच्छे प्रकार आचरण करते हुए (ते) आप की (गावः) गौयें (साकम्) साथ (सुवते) बिआती (यवः) मिला वा पृथक् पृथक् व्यवहार साथ (पच्यते) सिद्ध होता तथा (धेनवः) गौएं जैसे (अप, दस्यन्ति) नष्ट नहीं होती (न) वैसे (धेनवः) वाणी (न, उप, दस्यन्ति) नहीं नष्ट होतीं ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जो सब मनुष्यों से श्रेष्ठ मनुष्यों के सङ्ग की कामना और आपस में प्रीति किई जाय तो उन की विद्या बल की हानि और भेद बुद्धि न उत्पन्न हो ॥ ८ ॥

इमे ये ते सु वायो बाह्वोजसोऽन्तर्नदी ते

पतयन्त्युक्षणो महि व्राधन्त उक्षणः ।

धन्वन् चिद्ये अनाशवो जीराश्चिदगिरौकसः ।

सूर्यस्येव रश्मयो दुर्नियन्तवो हस्तयोर्दुर्नियन्तवः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (वायो) विद्वन् ! (ये) जो (इमे) ये योद्धा लोग (ते) आप के सहाय से (बाह्वोजसः) भुजाओं के बल के (अन्तः) बीच (सु, पतयन्ति) पालने वाले के समान आचरण करते उनको (उक्षणः) सींचने में समर्थ कीजिये (ये) जो (ते) आपके उपदेश से (मही) बहुत (व्राधन्तः) बढ़ते हुए अच्छे प्रकार पालने वाले के समान आचरण करते हैं उनको (उक्षणः) बल देने वाले कीजिये जो (धन्वन्) अन्तरिक्ष में (नदी) नदी के (चित्) समान वर्त्तमान (अनाशवः) किसी में व्याप्त नहीं (जीराः) वेगवान् (अगिरौकसः) जिनका अविद्यमान वाणी के साथ ठहरने का स्थान (दुर्नियन्तवः) जो दुःख से ग्रहण करने

के योग्य वे (रश्मयः) किरण जैसे (सूर्यस्येव) सूर्य को वैसे (चित्) और (हस्तयोः) अपनी भुजाओं के प्रताप से शत्रुओं ने (दुर्नियन्तवः) दुःख से ग्रहण करने योग्य अच्छी पालना करने वाले के समान आचरण करें उन वीरों का निरन्तर सत्कार करो ॥ ६ ॥

भावार्थ---इस मन्त्र में [उपमा और] वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। राजपुरुषों को चाहिये कि बाहुबलयुक्त शत्रुओं से न डरने वाले वीर पुरुषों को सेना में सदैव रक्खें जिससे राज्य का प्रताप सदा बढ़े ॥ ६ ॥

इस सूक्त में मनुष्यों का परस्पर वर्त्ताव कहने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ एकता है, यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ पैंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

परुच्छेप ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । षष्ठसप्तमयोर्मन्त्रोक्ता देवताः । १ । ३ । ५ । ६ स्वराडत्यष्टिः । गान्धारः स्वरः । २ निचृदष्टिश्छन्दः । ४ भुरिगष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

प्र सु ज्येष्ठं निचिराभ्यां बृहन्नमो
हव्यं मतिं भरता मृळयद्भ्यां स्वादिष्ठं मृळयद्भ्याम् ।
ता सम्राजा घृतासुती यज्ञेयज्ञ उपस्तुता ।
अथैनोः क्षत्रं न कुतश्चनाधृषे देवत्वं नू चिदाधृषे ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (मृडयद्भ्याम्) सुख देते हुओं के समान (निचिराभ्याम्) निरन्तर सनातन (मृडयद्भ्याम्) सुख करने वाले अध्यापक उपदेशक के साथ (ज्येष्ठम्) अतीव प्रशंसा करने योग्य (स्वादिष्ठम्) अत्यन्त स्वादु (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य पदार्थ (बृहत्) बहुत सा (नमः) अन्न और (मतिम्) बुद्धि को (नु) शीघ्र (प्र, सु, भरत) अच्छे प्रकार सुन्दरता से स्वीकार करो और (यज्ञेयज्ञे) प्रत्येक यज्ञ में (उपस्तुता) प्राप्त हुए गुणों से प्रशंसा को प्राप्त (घृतासुती) जिन का घी के साथ पदार्थों का सार निकालना (सम्राजा) जो अच्छी प्रकाशमान (ता) उन उक्त महाशयों को भली भांति ग्रहण करो (अथ) इसके अनन्तर (एनोः) इन दोनों का (क्षत्रम्) राज्य (आधृषे) ढिठाई देने को (चित्) और (देवत्वम्) विद्वान् पन (आधृषे) ढिठाई देने को (कुतश्चन) कहीं से (न) न नष्ट हो ॥ १ ॥

भावार्थ—जो बहुत काल से प्रवृत्त पढ़ाने और उपदेश करने वालों के समीप से विद्या और अच्छे उपदेशों को शीघ्र ग्रहण करते वे चक्रवर्त्ति राजा होने के योग्य होते हैं और न इनका ऐश्वर्य कभी नष्ट होता है ॥ १ ॥

अदर्शि गातुरुरवे वरीयसी पन्था

ऋतस्य समयंस्त रश्मिभिश्चक्षुर्भगस्य रश्मिभिः ।

द्युक्षं मित्रस्य सादनमर्यम्णो वरुणस्य च ।

अथा दधाते बृहदुक्थ्यं१ वयं उपस्तुत्यं बृहद्वयः ॥ २ ॥

पदार्थ—जिससे (उरवे) बहुत बड़े के लिये (वरीयसी) अतीव श्रेष्ठ (गातुः) भूमि (अदर्शि) दीखती वा जहां सूर्य के (रश्मिभिः) किरणों के समान (रश्मिभिः) किरणों के साथ (चक्षुः) नेत्र (ऋतस्य) जल और (भगस्य) सूर्य के समान धन का (पन्था) मार्ग (समयंस्त) मिलता वा (मित्रस्य) मित्र (अर्यम्णः) न्यायाधीश और (वरुणस्य) श्रेष्ठ पुरुष का (द्युक्षम्) प्रकाश लोकस्थ (सादनम्) जिस में स्थिर होते वह घर प्राप्त होता (अथ) अथवा जैसे (वयः) बहुत पखेरू (बृहत्) एक बड़े काम को वैसे जो (वयः) मनोहर जन (उपस्तुत्यम्) समीप में प्रशंसनीय (बृहत्) बड़े (उक्थ्यम्) और कहने योग्य काम को धारण करते (च) और जो दो मिलकर किसी काम को (दधाते) धारण करते वे सब सुख पाते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य के प्रकाश से भूमि पर मार्ग दीखते हैं वैसे ही उत्तम विद्वानों के सङ्ग से सत्य विद्याओं का प्रकाश होता है वा जैसे पखेरू उत्तम आश्रय स्थान पाकर आनन्द पाते हैं वैसे उत्तम विद्याओं को पाकर मनुष्य सब कभी सुख पाते हैं ॥ २ ॥

ज्योतिष्मतीमदितिं धारयत्क्षितिं

स्वर्वतीमा सचेते दिवेदिवे जागृवांसा दिवेदिवे ।

ज्योतिष्मत् क्षत्रमाशाते आदित्या दानुनस्पती ।

मित्रस्तयोर्वरुणो यातयज्जनोऽर्यमा यातयज्जनः ॥ ३ ॥

पदार्थ—जैसे (आदित्या) सूर्य और प्राण (दिवेदिवे) प्रतिदिन (स्वर्वतीम्) बहुत सुख करने वाले (धारयत्क्षितिम्) और भूमि को धारण करने हुए (ज्योतिष्मतीम्) प्रकाशवान् (अदितिम्) द्युलोक का (आसचेते) सब ओर से

सम्बन्ध करते हैं वैसे (यातयज्जनः) जिस के अच्छे प्रयत्न कराने वाले मनुष्य हैं वह (अर्यमा) न्यायाधीश (वरुणः) श्रेष्ठ प्राण तथा (यातयज्जनः) पुरुषार्थवान् पुरुष (मित्रः) सब का प्राण और (दानुनः) दान की (पती) पालना करने वाले (जागृवांसा) सब काम में जगे हुए सभा सेनाधीश (दिवेदिवे) प्रतिदिन (ज्योतिष्मत्) बहुत न्याययुक्त (क्षत्रम्) राज्य को (आशाते) प्राप्त होते (तयोः) उनके प्रभाव से समस्त प्रजा और सेनाजन अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सूर्य प्राण और योगीजन के समान सचेत होकर विद्या विनय और धर्म से सेना और प्रजा-जनों को प्रसन्न करते हैं वे अत्यन्त यश पाते हैं ॥ ३ ॥

अयं मित्राय वरुणाय शंतमः
सोमो भूत्ववपानेष्वाभगो देवो देवेष्वाभगः ।
तं देवासो जुषेरत विश्वे अद्य सजोषसः ।
तथा राजाना करथो यदीमह ऋतावाना यदीमहे ॥ ४ ॥

पदार्थ—जैसे (अयम्) यह (अवपानेषु) अत्यन्त रक्षा आदि व्यवहारों में (मित्राय) सब के मित्र और (वरुणाय) सब से उत्तम के लिये (आभगः) समस्त ऐश्वर्य (शन्तमः) अतीव सुख (सोमः) और सुखयुक्त ऐश्वर्य करने वाला न्याय (भूतु) हो वैसे जो (देवः) सुख अच्छे प्रकार देने वाला (देवेषु) दिव्य विद्वानों और दिव्य गुणों में (आभगः) समस्त सौभाग्य हो (तम्) उस को (अद्य) आज (सजोषसः) समान धर्म का सेवन करने वाले (विश्वे) समस्त (देवासः) विद्वान् जन (जुषेरत) सेवन करें वा उस से प्रीति करें और जैसे (यत्) जिस व्यवहार को (राजाना) प्रकाशमान सभा सेनापति (करथः) करें (तथा) वैसे उस व्यवहार को हम लोग (ईमहे) मांगते और जैसे (ऋतावाना) सत्य का सम्बन्ध करने वाले (यत) जिस काम को करें वैसे उसको हम लोग भी (ईमहे) याचें मांगें ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। इस संसार में जैसे शास्त्रवेत्ता विद्वान् धर्म के अनुकूल व्यवहार [से] ऐश्वर्य्य की उन्नति कर सब के उपकार करने हारे काम में खर्च करते वा जैसे सत्य व्यवहार को जानने की इच्छा करने वाले धार्मिक विद्वानों को याचते अर्थात् उनसे अपने प्रिय पदार्थ को मांगते वैसे सब मनुष्य अपने ऐश्वर्य को अच्छे काम में खर्च करें और विद्वान् महाशयों से विद्याओं की याचना करें ॥ ४॥

यो मित्राय वरुणायाविधज्जनोऽनर्वाणं
तं परि पातो अंहसो दाश्वांसं मर्त्तमंहसः ।
तमर्यमाभि रक्षत्यृजूयन्तमनु व्रतम् ।
उक्थैर्य एनोः परिभूषति व्रतं स्तोमैराभूषति व्रतम् ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे सभासेनाधीशो ! (यः) जो (जनः) यश से प्रसिद्ध हुआ (मित्राय) सर्वोपकार करने (वरुणाय) और सब से उत्तम स्वभाव वाले मनुष्य के लिये तुम दोनों से (अविधत्) सेवा करे (तम्) उस (अनर्वाणम्) वैर आदि दोषों से रहित (मर्त्तम्) मनुष्य को (अंहसः) दुष्ट आचरण से तुम दोनों (परिपातः) सब ओर से बचाओ तथा (तम्) उस (दाश्वांसम्) विद्या देने वाले मनुष्य को (अंहसः) पाप से बचाओ (यः) जो (अर्यमा) न्याय करने वाला सज्जन (व्रतम्) सत्य आचरण करने और (ऋजूयन्तम्) अपने को कोमलपन चाहते हुए मनुष्य की (अभिरक्षति) सब ओर से रक्षा करता उसकी तुम दोनों (अनु) पीछे रक्षा करो जो (एनोः) इन दोनों के (उक्थैः) कहने योग्य उपदेशों से (व्रतम्) सुन्दर शील को (परिभूषति) सब ओर से सुशोभित करता वा (स्तोमैः) प्रशंसा करने योग्य व्यवहारों से (व्रतम्) सुन्दर शील को (आभूषति) अच्छे प्रकार शोभित करता उसको सब विद्वान् निरन्तर पालें ॥ ५ ॥

भावार्थ—विद्वान् जन, जो लोग धर्म ओर अधर्म को जाना चाहें तथा धर्म का ग्रहण और अधर्म का त्याग करना चाहें उनको पढ़ा और उपदेश कर विद्या और धर्म आदि शुभ गुण कर्म और स्वभाव से सब ओर से सुशोभित करें ॥ ५ ॥

नमो दिवे बृहते रोदसीभ्यां
मित्राय वोचं वरुणाय मीळ्हुषे सुमृळीकाय मीळ्हुषे ।
इन्द्रमग्निमुप स्तुहि द्युक्षमर्यमणं भगम् ।
ज्योग्जीवन्तः प्रजया सचेमहि सोमस्योती सचेमहि ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! जैसे मैं (बृहते) बहुत (दिवे) प्रकाश करने वाले के लिये वा (रोदसीभ्याम्) प्रकाश और पृथिवी से (मित्राय) सब के मित्र (वरुणाय) श्रेष्ठ (मीढुषे) शुभ गुणों से सींचने (सुमृळीकाय) सुख करने और (मीढुषे) अच्छे प्रकार सुख देने वाले जन के लिये (नमः) सत्कार वचन (वोचम्) कहूँ वैसे आप कहो । वा जैसे मैं (इन्द्रम्) परमैश्वर्य वाले (अग्निम्) अग्नि के

समान वर्त्तमान (व्रुक्षम्) प्रकाशयुक्त (अर्य्यमणम्) न्यायाधीश और (भगम्) धर्म सेवने वाले को कहूं वैसे आप (उप, स्तुहि) उसके समीप प्रशंसा करो वा जैसे (जीवन्तः) प्राण धारण किये जीवते हुए हम लोग (प्रजया) अच्छे सन्तान आदि सहित प्रजा के साथ (ज्योक्) निरन्तर (सचेमहि) सम्बद्ध हों और (सोमस्य) ऐश्वर्य्य की (ऊती) रक्षा आदि क्रिया के साथ (सचेमहि) सम्बद्ध हों वैसे आप भी सम्बद्ध होओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में अनेक वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। मनुष्यों को विद्वानों के समान चाल चलन कर पदार्थविद्या के लिये प्रवृत्त हो तथा प्रजा और ऐश्वर्य का पाकर निरन्तर आनन्दयुक्त होना चाहिये ॥ ६ ॥

ऊती देवानां वयमिन्द्रवन्तो मंसीमहि स्वयंशसो मरुद्भिः ।

अग्निर्मित्रो वरुणः शर्मं यंसन् तदश्याम मघवानो वयं च ॥ ७ ॥

पदार्थ—जैसे (मरुद्भिः) प्राणों के समान श्रेष्ठ जनों के साथ (अग्निः) बिजुली आदि रूप वाला अग्नि (मित्रः) सूर्य (वरुणः) चन्द्रमा (शर्म) सुख को (यंसन्) देते हैं वैसे (तत्) उस सुख को (इन्द्रवन्तः) बहुत ऐश्वर्ययुक्त (स्वयशसः) जिनके अपना यश विद्यमान वे (वयम्) हम लोग (देवानाम्) सत्य की कामना करने वाले विद्वानों की (ऊती) रक्षा आदि क्रिया से (मंसीमहि) जानें (च) और इससे (वयम्) हम लोग (मघवानः) परम ऐश्वर्ययुक्त हुए कल्याण को (अश्याम) भोगें ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे इस संसार में पृथिवी आदि पदार्थ सुख और ऐश्वर्य करने वाले हैं वैसे ही विद्वानों की सिखावट और उनके सङ्ग हैं इनसे हम लोग सुख और ऐश्वर्य वाले होकर निरन्तर आनन्दयुक्त हों ॥ ७॥

इस सूक्त में वायु और इन्द्र आदि पदार्थों के दृष्टान्तों से मनुष्यों के लिये विद्या और उत्तम शिक्षा का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ एकता है यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ छत्तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

परुच्छेप ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । १ निचृच्छक्वरीछन्दः । २ विराट्शक्वरी छन्दः । गान्धारः स्वरः । ३ भुरिगतिशक्वरी छन्दः । पञ्चम स्वरः ॥

सुषुमा यातमद्रिभिर्गोश्रीता मत्सरा इमे सोमासो मत्सरा इमे।
आ राजाना दिविस्पृशास्मत्रा गन्तमुप नः।
इमे वां मित्रावरुणा गवाशिरः सोमाः शुक्रा गवाशिरः॥ १॥

पदार्थ--हे (मित्रावरुणा) प्राण और उदान के समान वर्त्तमान (दिविस्पृशा) शुद्ध व्यवहार में स्पर्श करने वाले (राजाना) प्रकाशमान सभासेनाधीशो ! जो (इमे) ये (अद्रिभिः) मेघों से (गोश्रीताः) किरणों को प्राप्त (मत्सराः) आनन्दप्रापक हम लोग (सुषुम) किसी व्यवहार को सिद्ध करें उन को (वाम्) तुम दोनों (आयतम्) आओ अच्छे प्रकार प्राप्त होओ जो (इमे) ये (मत्सराः) आनन्द पहुँचाने हारी (सोमासः) सोमवल्ली आदि ओषधी हैं उनको (अस्मत्रा) हम लोगों में अच्छी प्रकार पहुँचाओ जो (इमे) ये (गवाशिरः) गौएं वा इन्द्रियों से व्याप्त होते उन के समान (शुक्राः) शुद्ध (सोमाः) ऐश्वर्ययुक्त पदार्थ और (गवाशिरः) गौएं वा किरणों से व्याप्त होते उन को और (नः) हम लोगों के (उपागन्तम्) समीप पहुँचो॥ १॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। इस जगत् में जैसे पृथिवी आदि पदार्थ जीवन के हेतु हैं वैसे मेघ अतीव जीवन देने वाले हैं जैसे ये सब वर्त्त रहे हैं वैसे मनुष्य वर्त्तें॥ १॥

इम आ यातमिन्दवः सोमासो दध्याशिरः सुतासो दध्याशिरः।
उत वामुषसो बुधि साकं सूर्यस्य रश्मिभिः।
सुतो मित्राय वरुणाय पीतये चारुर्ऋताय पीतये॥ २॥

पदार्थ—हे पढ़ाने वा पढ़ने वाले ! जो (चारुः) सुन्दर (मित्राय) मित्र के लिये (पीतये) पीने को और (वरुणाय) उत्तम जन के लिये (ऋताय) सत्याचरण और (पीतये) पीने को (उषसः) प्रभात वेला के (बुधि) प्रबोध में सूर्यमण्डल की (रश्मिभिः) किरणों के (साकम्) साथ ओषधियों का रस (सुतः) सब ओर से सिद्ध किया गया है उसको तुम (आयातम्) प्राप्त होओ तथा (वाम्) तुम्हारे लिये (इमे) ये (इन्दवः) गीले वा टपकते हुए (सोमासः) दिव्य ओषधियों के रस और (दध्याशिरः) जो पदार्थ दही के साथ भोजन किये जाते उनके समान (दध्याशिरः) दही से मिले हुए भोजन (सुतासः) सिद्ध किये गये हैं (उत) उन्हें भी प्राप्त होओ॥ २॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि इस संसार में जितने रस वा ओष-

धियों को सिद्ध करें उन सब को मित्रपन और उत्तम कर्म सेवने को तथा आलस्यादि दोषों के नाश करने को समर्पण करें ॥ २ ॥

तां वां धेनुं न वासरीमंशुं दुहन्त्यद्रिभिः सोमं दुहन्त्यद्रिभिः ।
अस्मत्रा गन्तमुप नोऽर्वाञ्चा सोमपीतये ।
अयं वां मित्रावरुणा नृभिः सुतः सोम आ पीतये सुतः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (मित्रावरुणा) प्राण और उदान के समान सर्वमित्र और सर्वोत्तम सज्जनो ! (नः) हमारे (अर्वाञ्चा) अभिमुख होते हुए तुम (वाम्) तुम्हारी जिस (वासरीम्) निवास कराने वाली (धेनुम्) धेनु के (न) समान (अद्रिभिः) पत्थरों से (अंशुम्) बढ़ी हुई सोमवल्ली को (दुहन्ति) दुहते जलादि से पूर्ण करते वा (अद्रिभिः) मेघों से (सोमपीतये) उत्तम ओषधि रस जिसमें पीये जाते उसके लिये (सोमम्) ऐश्वर्य को (दुहन्ति) परिपूर्ण करते (ताम्) उसको (अस्मत्रा) हमारे (उपागन्तम्) समीप पहुंचाओ जो (अयम्) यह (नृभिः) मनुष्यों ने (सोमः) सोमवल्ली आदि लताओं का रस (सुतः) सिद्ध किया है वह (वाम्) तुम्हारे लिये (आपीतये) अच्छे प्रकार पीने को (सुतः) सिद्ध किया गया है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे दूध देने वाली गौयें सुखों को पूरा करती हैं वैसे युक्ति से सिद्ध किया हुआ सोमवल्ली आदि का रस सब रोगों का नाश करता है ॥ ३ ॥

इस सूक्त में सोमलता के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह एकसौ सैंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

परुच्छेप ऋषिः । पूषा देवता । १ । ३ निचृदत्यष्टिः २ विराडत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः । ४ भुरिगष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

प्रप्र पूष्णस्तुविजातस्य शस्यते
महित्वमस्य तवसो न तन्दते स्तोत्रमस्य न तन्दते ।
अर्चामि सुम्नयन्नहमन्त्यूतिं मयोभुवम् ।
विश्वस्य यो मन आयुयुवे मखो देव आयुयुवे मखः ॥ १ ॥

पदार्थ—जिस (अस्य) इस (तुविजातस्य) बहुतों में प्रसिद्ध (पूष्णः) प्रजा की रक्षा करने वाले राजपुरुष का (महित्वम्) बड़प्पन (प्रप्र, शस्यते) अतीव प्रशंसित किया जाता वा जिस (अस्य) इसके (तवसः) बल की (स्तोत्रम्) स्तुति (न) (तन्दते) प्रशासक जन न नष्ट करते अर्थात् न छोड़ते और विद्या को (न) (तन्वते) न नष्ट करते हैं वा (यः) जो (मखः) विद्या पाये हुए (देवः) विद्वान् (विश्वस्य) संसार के (मनः) अन्तःकरण को (आयुयुवे) सब ओर से बांधता अर्थात् अपनी ओर खींचता वा जो (मखः) यज्ञ के समान वर्त्तमान सुख का (आयुयुवे) प्रबन्ध बांधता है उस (अनयद्यूतिम्) अपने निकट रक्षा आदि क्रिया रखने और (मयोभुवम्) सुख की भावना कराने वाले प्रजापोषक का (सुम्नयन्) सुख चाहता हुआ (अहम्) मैं (अर्चामि) सत्कार करता हूँ ॥ १ ॥

भावार्थ—जो शुभ अच्छे कर्मों का आचरण करते हैं वे अत्यन्त प्रशंसित होते हैं, जो सुशीलता और नम्रता से सब के चित्त को धर्मयुक्त व्यवहारों में बांधते हैं वे ही सब को सत्कार करने योग्य हैं ॥ १ ॥

प्र हि त्वा पूषन्नजिरं न यामनि
स्तोमेभिः कृण्व ऋणवो यथा मृध उष्ट्रो न पीपरो मृधः ।
हुवे यत्त्वा मयोभुवं देवं सख्याय मर्त्यः ।
अस्माकमाङ्गूषान्द्युम्निनस्कृधि वाजेषु द्युम्निनस्कृधि ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (पूषन) पुष्टि करने वाले ! (यथा) जैसे आप (मृधः) संग्रामों को (ऋणवः) प्राप्त करो अर्थात् हम लोगों को पहुँचाओ वा (उष्ट्रः) उष्ट्र के (न) समान (मृधः) संग्रामों को (पीपरः) पार कराओ अर्थात् उनसे उद्धार करो वैसे (स्तोमेभिः) स्तुतियों से (यामनि) पहुँचाने वाले व्यवहार में (अजिरम्) ज्ञानवान् अर्थात् अति प्रवीण के (न) समान (त्वा) आपको (प्र, कृण्वे) प्रशंसित करता हूँ और आप को मैं (हुवे) हठ से बुलाता हूं (यत्) जिस कारण (सख्याय) मित्रपन के लिये (मयोभुवम्) सुख करने वाले (देवम्) मनोहर (त्वा) आप को (मर्त्यः) मरण धर्म मनुष्य मैं हठ से बुलाता हूँ इस कारण (अस्माकम्) हमारे (आङ्गूषान्) विद्या पाये हुए वीरों को (द्युम्निनः) यशस्वी (कृधि) करो और (वाजेषु) संग्रामों में (द्युम्निः) प्रशंसित कीर्ति वाले (हि) ही (कृधि) करो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य बुद्धिमान् विद्यार्थियों को विद्यावान् करें शत्रुओं को जीतें वे अच्छी कीर्ति के साथ माननीय हों ॥ २ ॥

यस्य॑ ते पूषन्त्सख्ये विपन्यवः क्रत्वा॑

चित्सन्तोऽव॑सा बुभुज्रिर इति॒ क्रत्वा॑ बुभुज्रिरे ।

तामनु॑ त्वा नवी॑यसीं नियुतं॑ राय ई॑महे ।

अहे॑ळमान उरुशंस सरी॑ भव वाजेवाजे सरी॑ भव ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (पूषन्) पुष्टि करने वाले विद्वन् ! (यस्य) जिस (ते) आपकी (सख्ये) मित्रता में (क्रत्वा) उत्तम बुद्धि से (अवसा) रक्षा आदि के साथ (विपन्यवः) विशेषता से अपनी प्रशंसा चाहने वाले जन (नियुतम्) असंख्यात (रायः) राज्यलक्ष्मियों को (बुभुज्रिरे) भोगते हैं (इति) इस प्रकार (चित्) ही (सन्तः) होते हुए (क्रत्वा) उत्तम बुद्धि से जिस असंख्यात राज्यश्री को (बुभुज्रिरे) भोगते हैं (ताम्) उस (नवीयसीम्) अतीव नवीन उक्त श्री को और (अनु) अनुकूलता से (त्वा) आप को हम लोग (ईमहे) मांगते हैं । हे (उरुशंस) बहुत प्रशंसायुक्त विद्वान् ! हम लोगों से (अहेडमानः) अनादर को न प्राप्त होते हुए आप (वाजेवाजे) प्रत्येक संग्राम में (सरी) प्रशंसित ज्ञाता जन जिस के विद्यमान ऐसे (भव) हूजिये और धर्मयुक्त व्यवहार में भी (सरी) उक्त गुणी (भव) हूजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो बुद्धिमानों के सङ्ग और मित्रपन से नवीन नवीन विद्या को प्राप्त होते हैं वे प्राज्ञ उत्तम ज्ञानवान् होकर विजयी होते हैं ॥ ३ ॥

अस्या ऊ षू ण उप॑ सातये॑ भुवोऽहे॑ळमानो

ररिवाँ अजाश्व श्रवस्यताम॑जाश्व ।

ओ षू त्वा॑ ववृतीमहि स्तोमे॑भिर्दस्म साधुभिः ।

नहि त्वा॑ पूषन्नतिमन्य॑ आघृणे न ते॑ सख्यम॑पह्नुवे ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (पूषन्) पुष्टि करने वाले ! (अजाश्व) जिनके छेरी और घोड़े विद्यमान हैं ऐसे (श्रवस्यताम्) अपने को धन चाहने वालों में (अजाश्व) जिनकी छेरी घोड़ों के तुल्य उनके समान हे विद्वन् ! आप (नः) हमारे लिये (अस्याः) इस उत्तम बुद्धि के (सातये) बांटने को (ररिवान्) देने वाले और (अहेडमानः) सत्कारयुक्त (सूप, भुवः) उत्तमता से समीप में हूजिये हे (आघृणे) सब ओर से प्रकाशमान पुष्टि करने वाले पुरुष ! मैं (ते) आप के (सख्यम्) मित्रपन और मित्रता के काम को (न) न (अपह्नुवे) छिपाऊं (त्वा) आपका (नहि, अतिमन्ये) अत्यन्त मान्य न करूं किन्तु यथायोग्य आपको मानूं

(उ) और (ओ) हे (दस्म) दुःख मिटाने वाले (स्तोमेभिः) स्तुतियों से युक्त (साधुभिः) सज्जनों के साथ वर्त्तमान हम लोग (त्वा) आपको (सु, ववृतीमहि) अच्छे प्रकार निरन्तर वर्त्तें अर्थात् आप के अनुकूल रहें ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । धार्मिक विद्वानों के साथ प्रसिद्ध मित्रभाव को वर्त्त कर सब मनुष्यों को चाहिये कि बहुत प्रकार की उत्तम उत्तम बुद्धियों को प्राप्त होवें और कभी किसी शिष्ट पुरुष का तिरस्कार न करें ॥ ४ ॥

इस सूक्त में पुष्टि करने वाले विद्वान् वा धार्मिक सामान्य जन की प्रशंसा के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के वे अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ अड़तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

———

परुच्छेप ऋषिः । विश्वे देवा देवताः (विभागश्च) १ ? विश्वेदेवाः २ मित्रावरुणौ ३—५ अश्विनौ ६ इन्द्रः ७ अग्निः ८ मरुतः ९ इन्द्राग्नी १० बृहस्पतिः ११ विश्वेदेवाः । १ । १० निचृदष्टिः २ । ३ विराडष्टिः ६ अष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः । ८ स्वराडत्यष्टिः । ४ । ९ भुरिगत्यष्टिः । ७ अत्यष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः । ५ निचृद्बृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः । ११ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध

आ नु तच्छर्धो दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे ।

यद्ध क्राणा विवस्वति नाभा संदायि नव्यसी ।

अध प्र सू न उप यन्तु धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (धीतयः) अङ्गुलियों के (न) समान (धीतयः) धारण करने वाले आप (धिया) कर्म से (नः) हम (देवान्) विद्वान् जनों को (अच्छ) अच्छे प्रकार (उप, यन्तु) समीप में प्राप्त होओ जिन्होंने (विवस्वति) सूर्यमण्डल में (नाभा) मध्य भाग की आकर्षण विद्या अर्थात् सूर्यमण्डल के प्रकाश में बहुत से प्रकाश को यन्त्रकलाओं से खींच के एकत्र उसकी उष्णता करने में (नव्यसी) अतीव नवीन उत्तम बुद्धि वा कर्म (संदायि) सम्यक् दिया उन (क्राणा) कर्म करने के हेतु (इन्द्रवायू) बिजुली और प्राण (ह) ही को हम लोग (सु, वृणीमहे) सुन्दर प्रकार से धारण करें मैं जिस (श्रौषट्) हविष्

पदार्थ को देने वाली विद्या बुद्धि (पुरः) पूर्ण (अग्निम्) विद्युत् और (दिव्यम्) शुद्ध प्राणि में हुए (शर्धः) बल को (आ, दधे) अच्छे प्रकार धारण करूं (यत्) जिन प्राण विद्युत् जन्म सुख को हम लोग (प्र, वृणीमहे) अच्छे प्रकार स्वीकार करें (अध) इसके अनन्तर (तत्) वह सुख सब को (नु अस्तु) शीघ्र प्राप्त हो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे अङ्गुली सब कर्मों में उपयुक्त होती हैं वैसे तुम लोग भी पुरुषार्थ में युक्त होओ जिससे तुम में बल बढ़े ॥ १ ॥

यद्ध त्यन्मित्रावरुणावृतादध्याददाथे
अनृतं स्वेन मन्युना दक्षस्य स्वेन मन्युना ।
युवोरित्थाधि सद्मस्वपश्याम हिरण्ययम् ।
धीभिश्चन मनसा स्वेभिरक्षभिः सोमस्य स्वेभिरक्षभिः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान के समान वर्त्तमान सभा-सेनाधीश पुरुषो ! (सद्मसु) घरों में (मनसा) उत्तम बुद्धि के साथ (धीभिः) कामों से (सोमस्य) ऐश्वर्य के (स्वेभिः) निज उत्तमोत्तम ज्ञान वा (अक्षभिः) प्राणों के समान (स्वेभिः) अपनी (अक्षभिः) इन्द्रियों के साथ वर्त्ताव रखते हुए हम लोग (युवोः) तुम्हारे घरों में (हिरण्ययम्) सुवर्णमय वन को (अधि, अपश्याम) अधिकता से देखें (चन) और भी (यत्) जो सत्य है, (त्यत् ह) उसी को (ऋतात्) सत्य जो धर्म के अनुकूल व्यवहार उससे ग्रहण करें (स्वेन) अपने (मन्युना) क्रोध के व्यवहार के (दक्षस्य) बल के साथ (अनृतम्) मिथ्या व्यवहार को छोड़ तुम भी (स्वेन) अपने (मन्युना) क्रोधरूपी व्यवहार से मिथ्या व्यवहार को छोड़ो जैसे आप सत्य व्यवहार से सत्य (अभि, आ ददाथे) अधिकता से ग्रहण करो (इत्था) इस प्रकार हम लोग भी ग्रहण करें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को सत्य ग्रहण और असत्य का त्याग कर अपने पुरुषार्थ से पूरा बल और ऐश्वर्य सिद्ध कर अपना अन्तःकरण और अपने इन्द्रियों को सत्य काम में प्रवृत्त करना चाहिये ॥ २ ॥

युवां स्तोमेभिर्देवयन्तो अश्विनाश्रावयन्तइव
श्लोकमायवो३युवां हव्याभ्या३यवः ।

युवोर्विश्वा अधि श्रियः पृक्षश्च विश्ववेदसा ।
प्रुषायन्ते वां पवयो हिरण्यये रथे दस्रा हिरण्यये ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (अश्विना) विद्या और न्याय का प्रकाश करने वाले विद्वानो ! (श्लोकम्) तुम्हारे यश का (आश्रावयत्इव) सब ओर से श्रवण करते हुए से (स्तोमेभिः) स्तुतियों से (युवाम्) तुम्हारी (देवयन्तः) कामना करते हुए जन (युवाम्) तुम्हारे (अभि) सम्मुख (हव्या) लेने योग्य होम के पदार्थों को (आयवः) प्राप्त हुए फिर केवल इतना ही नहीं किन्तु हे (दस्रा) दुःख दूर करने हारे (विश्ववेदसा) समग्र ज्ञानयुक्त उक्त विद्वानो ! जैसे (वाम्) तुम्हारे (हिरण्यये) सुवर्णमय (रथे) विहार की सिद्धि करने वाले रथ में (पवयः) चाक वा पहिये के समान (प्रुषायन्ते) मधुरपने आदि को भरते हैं वैसे (युवोः) तुम्हारे सहाय से (हिरण्यये) सुवर्णमय रथ में (विश्वाः) समग्र (अधि) अधिक (श्रियः) सम्पत्तियों को (च) और (पृक्षः) अन्नादि पदार्थों को (आयवः) प्राप्त हुए हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो पूर्ण विद्या की प्राप्ति निमित्त विद्वानों का आश्रय करते हैं वे धनधान्य और ऐश्वर्य आदि पदार्थों से पूर्ण होते हैं ॥ ३ ॥

अचेति दस्रा व्यू१नाकमृण्वथो युञ्जते
वां रथयुजो दिविष्टिष्वध्वस्मानो दिविष्टिषु ।
अधि वां स्थाम वन्धुरे रथे दस्रा हिरण्यये ।
पथेव यन्तावनुशासता रजोऽञ्जसा शासता रजः ॥ ४ ॥

पदार्थ--हे (दस्रा) दुःख दूर करने हारे विद्वानो ! आप जिस (नाकम्) दुःख रहित व्यवहार को (व्यृण्वथः) प्राप्त कराते हो तथा (दिविष्टिषु) आकाश मार्गों में (वाम्) तुम्हारे (रथयुजः) रथों को युक्त करने वाले अग्नि आदि पदार्थ वा (दिविष्टिषु) दिव्य व्यवहारों में (अध्वस्मानः) न नीच दशा में गिरने वाले जन (युञ्जते) रथ को युक्त करते हैं सो (अचेति) ज्ञान होता है जाना जाता है इस से (उ) ही हे (दस्रा) दुःख दूर करने (रजः) लोक को (अनुशासता) अनुकूल शिक्षा देने (अञ्जसा) साक्षात् (रजः) ऐश्वर्य की (शासता) शिक्षा देने (पथेव) जैसे मार्ग से वैसे आकाशमार्ग में (यन्तौ) चलाने हारो (वाम्) तुम्हारे (हिरण्यये) सुवर्णमय (वन्धुरे) दृढ़ बन्धनों से युक्त (रथे) विमान आदि रथ में हम लोग (अधि, स्थाम) अधिष्ठित हों बैठें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो विद्वानों को प्राप्त हो

शिल्प विद्या पढ़ और विमानादि रथ को सिद्ध कर अन्तरिक्ष में जाते हैं वे सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दशस्यतम् ।

सा वां रातिरुप दसत्कदा चनास्मद्रातिः कदा चन ॥ ५ ॥

पदार्थ--हे (शचीवसू) उत्तम बुद्धि का वास कराने हारे विद्वानो ! तुम (दिवा) दिन वा (नक्तम्) रात्रि में (शचीभिः) कर्मों से (नः) हम लोगों को विद्या (दशस्तम्) देओ (वाम्) तुम्हारा (रातिः) देना (कदा, चन) कभी मत नष्ट हो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस संसार में अध्यापक और उपदेशक अच्छी शिक्षायुक्त वाणी से दिन रात विद्या का उपदेश करें जिस से किसी की उदारता न नष्ट हो ॥ ५ ॥

वृषन्निन्द्र वृषपाणास इन्दव इमे सुता

अद्रिषुतास उद्भिदस्तुभ्यं सुतास उद्भिदः ।

ते त्वा मदन्तु दावने महे चित्राय राधसे ।

गीर्भिर्गिर्वाहः स्तवमान आ गहि सुमृळीको न आ गहि ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (वृषन्) सेचन समर्थ अति बलवान् (इन्द्र) परमैश्वर्य्ययुक्त जन ! जो (इमे) ये (तुभ्यम्) तुम्हारे लिये (वृषपाणासः) मेघ जिनसे वर्षते वे वर्षा विन्दु जिन के पान ऐसे (अद्रिषुतासः) जो मेघ से उत्पन्न (उद्भिदः) पृथिवी को विदारण करके प्रसिद्ध होते (इन्दवः) और रसवान् वृक्ष (सुताः) उत्पन्न हुए तथा (उद्भिदः) जो दिारण भाव को प्राप्त अर्थात् कूट पीट बनाये हुए औषध आदि पदार्थ (सुतासः) उत्पन्न हुए हैं (ते) वे (दावने) सुख देने वाले (महे) बड़े (चित्राय) अद्भुत (राधसे) धन के लिये (त्वा) आप को (मदन्तु) आनन्दित करें हे (गिर्वाहः) उपदेशरूपी वाणियों की प्राप्ति कराने हारे आप (गीर्भिः) शास्त्रयुक्त वाणियों से (स्तवमानः) गुणों का कीर्त्तन करते हुए (नः) हम लोगों के प्रति (आ, गहि) आओ तथा (सुमृडीकः) उत्तम सुख देने वाले होते हुए हम लोगों के प्रति (आ, गहि) आओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि उन्हीं ओषधि और ओषधिरसों का सेवन करें कि जो प्रमाद न उत्पन्न करें जिस से ऐश्वर्य की उन्नति हो ॥६॥

ओ षू णों अग्ने शृणुहि त्वमीळितो
देवेभ्यों ब्रवसि यज्ञियेभ्यो राजभ्यो यज्ञियेभ्यः ।
यद्ध त्यामङ्गिरोभ्यो धेनुं देवा अदत्तन ।
वि तां दुह्रे अर्यमा कर्त्तरि सचाँ एष तां वेद मे सचा ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् हम लोगों ने (ईडितः) स्तुति प्रशंसायुक्त किये हुए (त्वम्) आप (यज्ञियेभ्यः) यज्ञानुष्ठान करने को योग्य (देवेभ्यः) विद्वानों और (यज्ञियेभ्यः) अश्वमेधादि यज्ञ करने को योग्य (राजभ्यः) राज्य करने वाले न्यायाधीशों के लिये (ब्रवसि) कहते हो इस कारण आप (नः) हमारे वचन को (ओ, षु. शृणुहि) शोभनता जैसे हो वैसे ही सुनिये हे (देवाः) विद्वानो (यत्) (ह, त्याम्) जिस प्रसिद्ध ही (धेनुम्) गुणों की परिपूर्ण करने वाली वाणी को तुम (अङ्गिरोभ्यः) प्राण विद्या के जानने वालों के लिये (अदत्तन) देओ (ताम्) उस को और जिस को (कर्त्तरि) कर्म करने वाले के निमित्त (सचा) सहानुभूति करने वाला (अर्यमा) न्यायाधीश (वि, दुह्रे) पूरण करता है (ताम्) उस वाणी को (मे) मेरा (सचा) सहायी (एष) यह न्यायाधीश (वेद) जानता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—अध्यापकों की योग्यता यह है कि सब विद्यार्थियों को निष्कपटता से समस्त विद्या प्रतिदिन पढ़ा के परीक्षा के लिये उनका पढ़ा हुआ सुनें जिस से पढ़े हुए को विद्यार्थीजन न भूलें ॥ ७ ॥

मो षु वों अस्मदभि तानि पौंस्या
सना भूवन्द्युम्नानि मोत जारिषुरस्मत्पुरोत जारिषुः ।
यद्वश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम् ।
अस्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरम् ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (मरुतः) ऋतु ऋतु में यज्ञ करने वाले विद्वानो ! (वः) तुम्हारे (तानि) वे (सना) सनातन (पौंस्या) पुरुषों में उत्तम बल (अस्मत्) हम लोगों से (मो, अभि, भूवन्) मत तिरस्कृत हों जो (पुरा, उत) पहिले भी (जारिषुः) नष्ट हुए (उत) वे भी (द्युम्नानि) यश वा धन (अस्मत्) हम लोगों से (मा. जारिषुः) फिर नष्ट न होवें (यत्) जो (वः) तुम्हारा (युगेयुगे) युग युग में (चित्रम्) अद्भुत (अमर्त्यम्) अविनाशी (नव्यम्) नवीनों में हुआ यश (यत्, च) और जो (दुस्तरम्) शत्रुओं को दुःख से पार होने

योग्य बल (यत् च) और जो (दुस्तरम्) शत्रुओं को दुःख से पार होने योग्य काम (घोषात्) वाणी से तुम (दिधृत) धारण करो (तत्) वह समस्त (अस्मासु) हम लोगों में (सु) अच्छापन जैसे हो वैसे धारण करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को इस प्रकार आशंसा इच्छा और प्रयत्न करना चाहिये कि जिस से बल यश धन आयु और राज्य नित्य बढ़े ॥ ८ ॥

दध्यङ् ह मे जनुषं पूर्वो अङ्गिराः प्रियमेधः
कण्वो अत्रिर्मनुर्विदुस्ते मे पूर्वे मनुर्विदुः ।
तेषां देवेष्वायतिरस्माकं तेषु नाभयः ।
तेषां पदेन मह्या नमे गिरेन्द्राग्नी आ नमे गिरा ॥ ९ ॥

पदार्थ—जो (दध्यङ्) धारण करने वालों को प्राप्त होने वाला (पूर्वः) शुभ गुणों से परिपूर्ण (अङ्गिराः) प्राणविद्या का जानने वाला (प्रियमेधः) धारणावती बुद्धि जिस को प्रिय वह (अत्रिः) सुखों का भोगने वाला (मनुः) विचारशील और (कण्वः) मेधावीजन (मे) मेरे (महि) महान् (जनुषम्) विद्यारूप जन्म को (ह) प्रसिद्ध (विदुः) जानते हैं (ते) वे (मे) मेरे (पूर्वे) शुभ गुणों से परिपूर्ण पिछिले जन यह (मनुः) ज्ञानवान् है यह भी (विदुः) जानते हैं (तेषाम्) उन को (देवेषु) विद्वानों में (आयतिः) अच्छा विस्तार है (अस्माकम्) हमारे (तेषु) उनमें (नाभयः) सम्बन्ध हैं (तेषाम्) उन के (पदेन) पाने योग्य विज्ञान और (गिरा) वाणी से मैं (आ, नमे) अच्छे प्रकार नम्र होता हूँ जो (इन्द्राग्नी) प्राण और बिजुली के समान अध्यापक और उपदेशक हों उन को मैं (गिरा) वाणी से (आ, नमे) नमस्कार करता हूँ ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र मे वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जगत् में जो विद्वान् हैं वे ही विद्वान् के प्रभाव को जानने योग्य होते हैं किन्तु क्षुद्राशय नहीं, जो जिन से विद्या ग्रहण करें वे उन के प्रियाचरण का सदा अनुष्ठान करें, सब इतर जनों को आप्त विद्वानों के मार्ग ही मे चलना चाहिये किन्तु और मूर्खों के मार्ग से नहीं ॥ ९ ॥

होता यक्षद्वनिनो वन्त वार्यं बृहस्पतिर्यजति
वेन उक्षभिः पुरुवारेभिरुक्षभिः ।
जगृभ्मा दूरआदिशं श्लोकमद्रेरध त्मना ।
अधारयदररिन्दानि सुक्रतुः पुरू सद्मानि सुक्रतुः ॥ १० ॥

पदार्थ—(होता) सद्गुणों का ग्रहण करने वाला जन (पुरुवारेभिः) जिन के स्वीकार करने योग्य गुण हैं उन (उक्षभिः) महात्माजनों के साथ जिस (वार्यम्) स्वीकार करने योग्य जन का (यक्षत्) सङ्ग कर वा जिन के स्वीकार करने योग्य गुण उन (उक्षभिः) महात्माजनों के साथ वर्त्तमान (वेनः) कामना करने और (बृहस्पतिः) बड़ी वाणी की पालना करने वाला विद्वान् जिस स्वीकार करने योग्य का (यजति) सङ्ग करता है (सुक्रतुः) सुन्दर बुद्धि वाला जन (त्मना) आप से जिन (पुरु) बहुत (सद्मानि) प्राप्त होने योग्य पदार्थों को (अधारयत्) धारण करावे वा (सुक्रतुः) उत्तम काम करने वाला जन (अद्रेः) मेघ से (अररिन्दानि) जलों को जैसे वैसे (दूर आदिशम्) दूर में जो कहा जाय उस विषय और (श्लोकम्) वाणी को धारण करावे उस सब को (वनिनः) प्रशंसनीय विद्या किरणें जिन के विद्यमान हैं वे सज्जन (वन्त) अच्छे प्रकार सेवें (अध) इस के अनन्तर इस उक्त समस्त विषय को हम लोग भी (जगृभ्म) ग्रहण करें ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे मेघ से छूटे हुए जल समस्त प्राणी अप्राणियों अर्थात् जड़ चेतनों को जिलाते उनकी पालना करते हैं वैसे वेदादि विद्याओं के पढ़ाने पढ़ने वालों से प्राप्त हुई विद्या सब मनुष्यों को वृद्धि देती हैं और जैसे महात्मा शास्त्रवेत्ता विद्वानों के साथ सम्बन्ध से सज्जन लोग जानने योग्य विषय को जानते हैं वैसे विद्या के उत्तम सम्बन्ध से मनुष्य चाहे हुए विषय को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

ये दे॑वासो दि॒व्येका॑दश॒ स्थ पृ॑थि॒व्यामध्येका॑दश॒ स्थ ।

अ॒प्सु॒क्षितो॑ महि॒नैका॑दश॒ स्थ ते दे॑वासो य॒ज्ञमि॒मं जु॑षध्वम् ॥ ११॥

पदार्थ—हे (देवासः) विद्वानो ! तुम (ये) जो (दिवि) सूर्यादि लोक में (एकादश) दश प्राण और ग्यारहवां जीव (स्थ) हैं वा जो (पृथिव्याम्) पृथिवी में (एकादश) उक्त एकादश गण के (अधि, स्थ) अधिष्ठित हैं वा जो (महिना) महत्त्व के साथ (अप्सुक्षितः) अन्तरिक्ष वा जलों में निवास करने हारे (एकादश) दशेन्द्रिय और एक मन (स्थ) हैं (ते) वे जैसे है वैसे उन को जान के हे (देवासः) विद्वानो ! तुम (इमम्) इस (यज्ञम्) सङ्ग करने योग्य व्यवहार-रूप यज्ञ को (जुषध्वम्) प्रीतिपूर्वक सेवन करो ॥ ११ ॥

भावार्थ—ईश्वर के इस सृष्टि में जो पदार्थ सूर्यादि लोकों में हैं अर्थात् जो अन्यत्र वर्त्तमान हैं वे ही यहां हैं जितने यहां हैं उतने ही वहां और लोकों में हैं उनको यथावत् जान के मनुष्यों को योगक्षेम निरन्तर करना चाहिये ॥ ११ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के शील का वर्णन होने से इस के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ उनतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ।

दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ५ । ८ जगती । २ । ७ । ११ विराड्-जगती । ३ । ४ । ९ निचृज्जगती च छन्दः । निषादः स्वरः । ६ भुरिक्त्रिष्टुप् । १० । १२ निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । १३ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

वेदिषदे प्रियधामाय सुद्युते धासिमिव प्र भरा योनिमग्नये ।
वस्त्रेणेव वासया मन्मना शुचिं ज्योतीरथं शुक्रवर्णं तमोहनम् ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! आप (**मन्मना**) जिस से मानते जानते उस विचार से (**वेदिषदे**) जो वेदी में स्थिर होता उस (**अग्नये**) अग्नि के लिये (**धासिमिव**) जिस से प्राणों को धारण करते उस अन्न के समान हवन करने योग्य पदार्थ को जैसे वैसे (**प्रियधामाय**) जिसको स्थान पियारा उस (**सुद्युते**) सुन्दर कान्ति वाले विद्वान् के लिये (**योनिम्**) घर का (**प्र, भर**) अच्छे प्रकार धारण कर और उसे (**ज्योतीरथम्**) ज्योति के समान (**तमोहनम्**) अन्धकार का विनाश करने वाले (**शुक्रवर्णम्**) शुद्धस्वरूप (**शुचिम्**) पवित्र मनोहर यान को (**वस्त्रेणेव**) पट वस्त्र से जैसे (**वासय**) ढांपो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे होता जन आग में समिधरूप काष्ठों को अच्छे प्रकार स्थिर कर और उसमें घृत आदि हवि का हवन कर इस आग को बढ़ाते हैं वैसे शुद्ध जन को भोजन और आच्छादन अर्थात् वस्त्र आदि से विद्वान् जन बढ़ावें ॥ १ ॥

अभि द्विजन्मा त्रिवृदन्नमृज्यते संवत्सरे वावृधे जग्धमीं पुनः ।
अन्यस्यासा जिह्वया जेन्यो वृषा न्य१न्येन वनिनो मृष्ट वारणः ॥२॥

पदार्थ—जिसने (**संवत्सरे**) संवत्सर पूरे हुए पर (**त्रिवृत्**) कर्म उपासना और ज्ञानविषय में जो साधनरूप से वर्त्तमान उस (**अन्नम्**) भोगने योग्य पदार्थ का (**ऋज्यते**) उपार्जन किया कर (**अन्यस्य**) और के (**आसा**) मुख और (**जिह्वया**) जीभ के साथ (**ईम्**) वही अन्न (**पुनः**) वार-वार (**जग्धम्**) खाया हो वह (**द्विजन्मा**) विद्या में द्वितीय जन्म वाला ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य कुल का जन (**अभि, वावृधे**) सब ओर से बढ़ता (**जेन्यः**) विजयशील और (**वृषा**) बैल

के समान अत्यन्त बली होता है इससे (अन्येन) और मित्रवर्ग के साथ (वारणः) समस्त दोषों की निवृत्ति करने वाला तू (वनिनः) जलों को (नि, मृष्ट) निरन्तर शुद्ध कर ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य अन्न आदि बहुत पदार्थ इकट्ठे कर उनको बना और भोजन करते वा दूसरों को कराते तथा हवन आदि उत्तम कामों से वर्षा की शुद्धि करते हैं वे अत्यन्त बली होते हैं ॥ २ ॥

कृष्णप्रुतौ वेविजे अस्य सक्षिताउभा तरेते अभि मातरा शिशुम् ।
प्राचाजिह्वं ध्वसयन्तं तृषुच्युतमा साच्यं कुपयं वर्धनं पितुः ॥ ३ ॥

पदार्थ—जिस (प्राचाजिह्वम्) दुग्ध आदि के देने से पहिले अच्छे प्रकार जीभ निकालने (ध्वसयन्तम्) गोदी से नीचे गिरने (तृषुच्युतम्) वा शीघ्र गिरे हुए (आ, साच्यम्) अच्छे प्रकार सम्बन्ध करने अर्थात् उठा लेने (कुपयम्) गोपित रखने योग्य और (पितुः) पिता का (वर्द्धनम्) यश वा प्रेम बढ़ाने वाले (शिशुम्) बालक को (सक्षितौ) एक साथ रहने वाली (मातरा) धायी और माता (अभि, तरेते) दुःख से उत्तीर्ण करती (अस्य) इस बालक की वे (उभा) दोनों मातायें (कृष्णप्रुतौ) विद्वानों के उपदेश से चित्त के आकर्षण धर्म को प्राप्त हुईं (वेविजे) निरन्तर कंपती हैं अर्थात् डरती हैं कि कथंचित् बालक को दुःख न हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—भले बुरे का ज्ञान बढ़ाने रोग आदि बड़े क्लेशों को दूर करने और प्रेम उत्पन्न कराने वाले विद्वानों के उपदेश को पाये हुए भी बालक की माता अर्थात् दूध पिलाने वाली धाय और उत्पन्न कराने वाली निज माता अपने प्रेम से सर्वदा डरती हैं ॥ ३ ॥

मुमुक्ष्वो३ मनवे मानवस्यते रघुद्रुवः कृष्णसीतास ऊ जुवः ।
असमना अजिरासो रघुष्यदो वातजूता उप युज्यन्त आशवः ॥४॥

पदार्थ—जो (मुमुक्ष्वः) संसार से छूटने की इच्छा करने वाले हैं वे जैसे (रघुद्रुवः) स्वादिष्ठ अन्नों को प्राप्त होने वाले (जुवः) वेगवान् (असमनाः) एकसा जिन का मन न हो (अजिरासः) जिनको शील प्राप्त है (रघुस्यदः) जो सन्मार्गों में चलने वाले (वातजूताः) और पवन के समान वेग युक्त (आशवः) शुभ गुणों में व्याप्त (कृष्णसीतासः) जिन के कि खेती का काम निकालने वाली हर की यष्टि विद्यमान वे खेतीहर खेती के कामों का (उ) तर्क वितर्क के साथ

(उप, युज्यन्ते) उपयोग करते हैं वैसे (मानवस्यते) अपने को मनुष्यों की इच्छा करने वाले (मनवे) मननशील विद्वान् योगी पुरुष के लिये उपयोग करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे खेती करने वाले जन खेतों को अच्छे प्रकार जोत बोने के योग्य भली भांति करके और उसमें बीज बोय फलवान् होते हैं वैसे मुमुक्षु पुरुष यम नियम से इन्द्रियों को खैंच और शम अर्थात् शान्तिभाव से मन को शान्त कर अपने आत्मा को पवित्र कर ब्रह्मवेत्ता जनों की सेवा करें ॥ ४ ॥

आदस्य ते ध्वसयन्तो वृथेरते कृष्णमभ्वं महि वर्पः करिक्रतः ।
यत्सीं महीमवनिं प्राभि मर्मृशदभिश्वसन्स्तनयन्नेति नानदत् ॥ ५ ॥

पदार्थ—(यत्) जो (कृष्णम्) काले वर्ण के (अभ्वम्) न होने वाले (महि) बड़े (वर्पः) रूप को (ध्वसयन्तः) विनाश करते हुए से (करिक्रतः) अत्यन्त कार्य करने वाले जन (वृथा) मिथ्या (प्रेरते) प्रेरणा करते हैं (ते) वे (अस्य) हम मोक्ष की प्राप्ति को नहीं योग्य हैं जो (महीम्) बड़ी (अवनिम्) पृथिवी को (अभि, मर्मृशत्) सब ओर से अत्यन्त सहता (अभिश्वसन्) सब ओर से श्वास लेता (नानदत्) अत्यन्त बोलता और (स्तनयन्) बिजुली के समान गर्जना करता हुआ अच्छे गुणों को (सीम्) सब ओर से (एति) प्राप्त होता है (आत्) इसके अनन्तर वह मुक्ति को प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य इस संसार में शरीर का आश्रय कर अधर्म करते हैं वे दृढ़ बन्धन को पाते हैं और जो शास्त्रों को पढ़ योगाभ्यास कर धर्म का अनुष्ठान करते उन्हीं की मुक्ति होती है ॥ ५ ॥

भूषन्न योऽधि बभ्रूषु नम्नते वृषेव पत्नीरभ्येति रोरुवत् ।
ओजायमानस्तन्वश्च शुम्भते भीमो न शृङ्गा दविधाव दुर्गृभिः ॥ ६ ॥

पदार्थ—(यः) जो (भूषन्) अलंकृत करता हुआ (न) सा (बभ्रूषु) धर्म की धारणा करने वालियों में (अधि,नम्नते) अधिक नम्न होता वा (पत्नीः) यज्ञसम्बन्ध करने वाली स्त्रियों को (रोरुवत्) अत्यन्त बातचीत कह सुनाता वा (वृषेव) बैल के समान बल को और (दुर्गृभिः) दुःख से पकड़ने योग्य (भीमः) भयङ्कर सिंह (शृङ्गा) सींगों को (न) जैसे वैसे (ओजायमानः) बैल के समान आचरण करता हुआ (तन्वः) शरीर को (च) भी (शुम्भते) सुन्दर शोभायमान करता वा (दविधाव) निरन्तर चलाता अर्थात् उनसे चेष्टा करता वह अत्यन्त सुख को (अभि, एति) प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य सिंह के तुल्य शत्रुओं से अग्राह्य बैल के तुल्य अति बली पुष्ट नीरोग शरीर वाले बड़ी ओषधियों के सेवन से सब सज्जनों को शोभित करे वे इस जगत् में शोभायमान होते हैं ॥ ६ ॥

स सं॑स्ति॒रो वि॒ष्टिरः॒ सं गृ॑भायति जा॒नन्ने॒व जा॑न॒तीर्नित्य॒ आ श॑ये ।
पुन॑र्वर्धन्ते॒ अपि॑ यन्ति दे॒व्य॑म॒न्यद्वर्पः॑ पि॒त्रोः कृ॑ण्व॒ते सचा॑ ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (सः) वह (संस्तिरः) अच्छा ढांपने (विष्टिरः) वा सुख फैलाने वाला विद्वान् (सं, गृभायति) सुन्दरता से अच्छे पदार्थों का ग्रहण करता वैसे (जानन्) जानता हुआ (नित्यः) नित्य मैं (जानतीः) ज्ञानवती उत्तम स्त्रियों के (एव) ही (आ, शये) पास सोता हूं। जो (पित्रोः) माता पिता के (अन्यत्) और (देव्यम्) विद्वानों में प्रसिद्ध (वर्पः) रूप को (अपि, यन्ति) निश्चय से प्राप्त होते हैं वे (पुनः) बार बार (वर्द्धन्ते) बढ़ते हैं और (कृण्वते) उत्तम उत्तम काय्यों को भी करते हैं वैसे तुम भी (सचा) मिला हुआ काम किया करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जिन विद्वानों के साथ विदुषी स्त्रियों का विवाह होता है वे विद्वान् जन नित्य बढ़ते हैं, जो गुणों का ग्रहण करते वे यहां पुरुषार्थी होकर जन्मान्तर में भी सुखयुक्त होते हैं ॥ ७ ॥

तम॒ग्रुवः॑ के॒शिनीः॒ सं हि रे॑भि॒र ऊ॒र्ध्वास्त॑स्थुर्म॒म्रुषीः॒ प्राय॑वे॒ पुनः॑ ।
तासां॑ ज॒रां प्र॑मु॒ञ्चन्ने॑ति॒ नान॑द॒दसुं॒ परं॑ ज॒नय॑ञ्जी॒वमस्तृ॑तम् ॥ ८ ॥

पदार्थ—जो (अग्रुवः) अग्रगण्य (केशिनीः) प्रशंसनीय केशों वाली युवावस्था को प्राप्त होती हुई कन्या (तम्) उस विद्वान् पति को (सं, रेभिरे) सुन्दरता से कहती हैं वे (हि) ही (प्रायवे) पठाने अर्थात् दूसरे देश उस पति के पहुँचाने को (मम्रुषी) मरीसीं हों (पुनः) फिर उसी के घर आने समय (ऊर्ध्वाः) ऊंची पदवी पाये हुई सी (तस्थुः) स्थिर होती हैं जो (अस्तृतम्) नष्ट न किया गया (परम्) सब को इष्ट (असुम्) ऐसे प्राण को वा (जीवम्) जीवात्मा को (नानदत्) निरन्तर रटावे और (तासाम्) उक्त उन कन्याओं के (जराम्) बुढ़ापे को (प्रमुञ्चन्) अच्छे प्रकार छोड़ता और विद्याओं को (जनयन्) उत्पन्न कराता हुआ उत्तम शिक्षाओं का प्रचार कराता है वह उत्तम जन्म (एति) पाता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो कन्या जन ब्रह्मचर्य के साथ समस्त विद्याओं का अभ्यास

करती हैं वे इस संसार में प्रशंसित हों और बहुत सुख भोग जन्मान्तर में भी उत्तम सुख को प्राप्त होती हैं और जो विद्वान् लोग भी शरीर और आत्मा के बल को नष्ट नहीं करते वे वृद्धावस्था और रोगों से रहित होते हैं ॥ ८ ॥

अधीवासं परि मातू रिहन्नहं तुविग्रेभिः सत्वभिर्याति वि ज्रयः ।
वयो दधत्पद्वते रेरिहत्सदानु श्येनी सचते वर्त्तनीरह ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे वीर ! जैसे (ज्रयः) वेगयुक्त अग्नि (मातुः) मान देने वाली पृथिवी के (अधिवासम्) ऊपर से शरीर को जिससे ढांपते उस वस्त्र के समान घास आदि को (परि, रिहन्) परित्याग करता हुआ (अह) प्रसिद्ध में (तुविग्रेभिः) बहुत शब्दों वाले (सत्वभिः) प्राणियों के साथ (वि, याति) विविध प्रकार से प्राप्त होता है और जैसे (वर्त्तनिः) वर्त्तमान (श्येनी) वाज पक्षी की स्त्री वाजिनी (वयः) अवस्था को (दधत्) धारण करती हुई (पद्वते) पगों वाले द्विपद चतुष्पद प्राणी के लिये (सचते) प्राप्त होती है वैसे दुष्टों को (अनु, रेरिहत्) अनुक्रम से वार वार छोड़ते हुए आप (सदा) सदा (अह) ही उनको निग्रह स्थान को पहुँचाओ ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे अग्नि जङ्गलादिकों को जलाता वा पर्वतों को तोड़ता है वैसे अन्याय और अधर्मात्माओं की निवृत्ति कर और दुष्टों के अभिमानों को तोड़ के सत्य धर्म का तुम प्रचार करो ॥ ९ ॥

अस्माकमग्ने मघवत्सु दीदिह्यध श्वसीवान्वृषभो दमूनाः ।
अवास्या शिशुमतीरदीदेर्वर्मेव युत्सु परिजर्भुराणः ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) पावक के समान वर्त्तमान विद्वान् ! (वृषभः) श्रेष्ठ (दमूनाः) इन्द्रियों का दमन करने वाले (श्वसीवान्) प्राणवान् और (परिजर्भुराणः) सब ओर से पुष्ठ होते हुए आप (अस्माकम्) हमारे (युत्सु) संग्राम और (मघवत्सु) बहुत धन जिनमें उन घरों वा मित्रवर्गों में (वर्मेव) कवच के समान (शिशुमतीः) प्रशंसित बालकों वाली स्त्री वा प्रजाओं को (दीदिहि) प्रकाशित करो (अध) इसके अनन्तर दुःखों को (अवास्य) विरुद्धता से दूर पहुँचा सुखों को (अदीदेः) प्रकाशित करो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे विद्वान् ! संग्राम में जैसे कवच से शरीर संरक्षित किया जाता है वैसे न्याय से प्रजाजनों की रक्षा

कीजिये और युद्ध में स्त्रियों को न मारिये, जैसे धनी पुरुषों की स्त्रियां नित्य आनन्द भोगती हैं वैसे ही प्रजाजनों को आनन्दित कीजिये ॥ १० ॥

इदम॑ग्ने सुधि॑तं दुर्धि॑तादधि॑ प्रियादु॑ चिन्मन्म॑नः प्रेयो॑ अस्तु ते ।
यत्ते॑ शुक्रं तन्वो॒३॑ रोच॑ते शुचि तेना॒स्मभ्यं॑ वनसे रत्नमा त्वम् ॥११॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् ! (दुर्धितात्) दुःख के साथ धारण किये हुए व्यवहार (उ) या तो (प्रियात्) प्रिय व्यवहार से (सुधितम्) सुन्दर धारण किया हुआ (इदम्) यह (मन्मनः) मेरा मन (ते) तुम्हारा (प्रेयः) अतीव पियारा (अस्तु) हो और (यत्) जो (ते) तुम्हारे (चित्) निश्चय के साथ (तन्वः) शरीर का (शुचि) पवित्र करने वाला (शुक्रम्) शुद्ध पराक्रम (अधिरोचते) अधिकतर प्रकाशमान होता है (तेन) उससे (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (त्वम्) आप (रत्नम्) मनोहर धन का (आ, वनसे) अच्छे प्रकार सेवन करते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ – मनुष्यों को दुःख से सोच न करना चाहिये और न सुख से हर्ष मानना चाहिये जिससे एक दूसरे के उपकार के लिये चित्त अच्छे प्रकार लगाया जाय और ऐश्वर्य हो वह सब के सुख के लिये बांटा जाय ॥ ११ ॥

रथा॑य नाव॑मुत नो॑ गृहाय नित्या॑रित्रां पद्वतीं॑ रास्यग्ने ।
अस्माकं॑ वीराँ उत नो॑ मघोनो जनाँ॑श्च या पारया॒च्छर्म॑ या च ॥१२॥

पदार्थ—हे (अग्ने) शिल्पविद्या पाये हुए विद्वान् ! आप (या) जो (अस्माकम्) हमारे (वीरान्) वीरों (उत) और भी (मघोनः) धनवान् (जनान्) मनुष्यों और (नः) हम लोगों को (च) भी समुद्र के (पारयात्) पार उतरे (च) और (या) जो हम को (शर्म) सुख को अच्छे प्रकार प्राप्त करे उस (नित्यारित्राम्) नित्य दृढ़ बन्धनयुक्त जल की गहराई की परीक्षा करते हुए स्तम्भों तथा (पद्वतीम्) पैरों के समान प्रशंसित पहियों से युक्त (नावम्) बड़ी नाव को (नः) हमारे (रथाय) समुद्र आदि में रमण के लिये (उत) वा (गृहाय) घर के लिये (रासि) देते हो ॥ १२ ॥

भावार्थ—विद्वानों को चाहिये कि जैसे मनुष्य और घोड़े आदि पशु पैरों से चलते हैं वैसे चलने वाली बड़ी नाव रच के और एक द्वीप से दूसरे द्वीप वा समुद्र में युद्ध अथवा व्यवहार के लिये जाय आय करके ऐश्वर्य की उन्नति निरन्तर करें ॥ १२ ॥

अभी नो अग्न उक्थमिज्जुगुर्या द्यावाक्षामा सिन्धवश्च स्वगूर्त्ताः।
गव्यं यव्यं यन्तो दीर्घाहेषं वरमरुण्यो वरन्त ॥ १३ ॥

पदार्थ—जैसे (द्यावाक्षामा) अन्तरिक्ष और भूमि (सिन्धवः) समुद्र और नदी तथा (अरुण्यः) उषःकाल (च) और (वरम्) उत्तम रत्नादि पदार्थ (इषम्) अन्न (उक्थम्) प्रशंसनीय (गव्यम्) गौ का दूध आदि वा (यव्यम्) जौ के होने वाले खेत को (यन्तः) प्राप्त होते हुए (स्वगूर्त्ताः) अपने अपने स्वाभाविक गुणों से उद्यत (दीर्घा) बहुत (अहा) दिनों को (वरन्त) स्वीकार करें वैसे हे (अग्ने) विद्वान्! (नः) हम लोगों को (अभि, इत्, जुगुर्याः) सब ओर से उद्यम ही में लगाइये ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को सदा पुरुषार्थी होना चाहिये, जिन यानों से भूमि अन्तरिक्ष समुद्र और नदियों में सुख से शीघ्र जाना हो उन यानों पर चढ़कर प्रतिदिन रात्रि के चौथे पहर में उठकर और दिन में न सोयकर सदा प्रयत्न करना चाहिये जिससे उद्यमी ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ १३ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के पुरुषार्थ और गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ चालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

दीर्घतमा ऋषिः। अग्निर्देवता। १—३। ६। ११ जगती। ४। ७। ६। १० निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः। ५ स्वराट् त्रिष्टुप्। ८ भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः। १२ भुरिक् पङ्क्तिः। १३ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

बळित्था तद्वपुषे धायि दर्शतं देवस्य भर्गः सहसो यतो जनि।
यदीमुप ह्वरते साधते मतिर्ऋतस्य धेना अनयन्त सस्रुतः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! (यत्) जिस (दर्शतम्) देखने योग्य (देवस्यः) विद्वान् के (भर्गः) शुद्ध तेज के प्रति मेरी (मतिः) बुद्धि (उपह्वरते) जाती कार्यसिद्धि करती और (सस्रुतः) जो समान सत्य मार्ग को प्राप्त होतीं वे (ऋतस्य) सत्य व्यवहार की (धेनाः) वाणियों को (ईम्) सब ओर से (अनयन्त) सत्यता को पहुँचातीं तथा (यतः) जिस कारण (तत्) वह तेज

(सहसः) विद्याबल से (जनि) उत्पन्न होता उस कारण (वडित्था) वह सत्य तेज अर्थात् विद्वानों के गुणों का प्रकाश इस प्रकार अर्थात् उक्त रीति से (वपुषे) अपने सुरूप के लिये तुम लोगों से (धायि) धारण किया जाय ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस उत्तम बुद्धि और सत्य आचरण से विद्यावानों का देखने योग्य स्वरूप धारण किया जाता और काम सिद्ध किया जाता उस वाणी और उस सत्य आचार को तुम नित्य स्वीकार करो ॥ १ ॥

पृक्षो वपुः पितुमान्नित्य आ शये द्वितीयमा सप्तशिवासु मातृषु ।
तृतीयमस्य वृषभस्य दोहसे दशप्रमतिं जनयन्त योषणः ॥ २ ॥

पदार्थ—(नित्यः) नित्य (पितुमान्) प्रशंसित अन्नयुक्त मैं पहिले (पृक्षः) पूछने कहने योग्य (वपुः) सुन्दर रूप का (आ शये) आशय लेता अर्थात् आश्रित होता हूं (अस्य) इस (वृषभस्य) यज्ञादि कर्म द्वारा जल वर्षाने वाले का मेरा (द्वितीयम्) दूसरा सुन्दर रूप (सप्तशिवासु) सात प्रकार की कल्याण करने व (मातृषु) और मान्य करने वाली माताओं के समीप (आ) अच्छे प्रकार वर्तमान और (तृतीयम्) तीसरा (दशप्रमतिम्) दश प्रकार की उत्तम मति जिस में होती उस सुन्दर रूप को (दोहसे) कामों की परिपूरणता के लिये (योषणः) प्रत्येक व्यवहारों को मिलाने वाली स्त्री (जनयन्त) प्रकट करती हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य इस जगत् में सात प्रकार के लोकों में ब्रह्मचर्य से प्रथम गृहाश्रम से दूसरे और वानप्रस्थ वा संन्यास से तीसरे कर्म और उपासना के विज्ञान को प्राप्त होते वे दश इन्द्रियों दश प्राणों के विषयक मन बुद्धि चित्त अहङ्कार और जीव के ज्ञान को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

निर्यदीं बुध्नान्महिषस्य वर्पस ईशानासः शवसा क्रन्त सूरयः ।
यदीमनु प्रदिवो मध्व आधवे गुहा सन्तं मातरिश्वा मथायति ॥ ३ ॥

पदार्थ—(यत्) जो (ईशानासः) ऐश्वर्ययुक्त (सूरयः) विद्वान् जन (शवसा) बल से जैसे (आधवे) सब ओर से अन्न आदि के अलग करने के निमित्त (मातरिश्वा) प्राण वायु जाठराग्नि को (मथायति) मथता है वैसे (महिषस्य) बड़े (वर्पसः) रूप अर्थात् सूर्यमण्डल के सम्बन्ध में स्थित (बुध्नात्) अन्तरिक्ष से (ईम्) इस प्रत्यक्ष व्यवहार को (अनुक्रन्त) अनुक्रम से प्राप्त हों वा (मध्व) विशेष ज्ञानयुक्त (प्रदिवः) कान्तिमान् आत्मा के (गुहा) गुहाशय में अर्थात् बुद्धि में (सन्तम्) वर्त्तमान (ईम्) प्रत्यक्ष (यत्) जिस ज्ञान को (निष्क्रन्त) निरन्तर क्रम से प्राप्त हों उससे वे सुखी होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । वे ही ब्रह्मवेत्ता विद्वान् होते हैं जो धर्मानुष्ठन योगाभ्यास और सत्सङ्ग करके अपने आत्मा को जान परमात्मा को जानते हैं और वे ही मुमुक्षु जनों के लिये इस ज्ञान को विदित कराने के योग्य होते हैं ॥ ३ ॥

प्र यत्पितुः परमान्नीयते पर्या पृक्षुधो वीरुधो दंसु रोहति ।
उभा यदस्य जनुषं यदिन्वत आदिद्यविष्ठो अभवद्घृणा शुचिः ॥४॥

पदार्थ—पुरुष से (परमात्) उत्कृष्ट उत्तम यत्न के साथ (यत्) जो (अस्य) प्रत्यक्ष वृक्षजाति का सम्बन्धी (पितुः) अन्न (प्रणीयते) प्राप्त किया जाता है वा जो (दंसु) दूसरों के दबाने आदि के निमित्त में (पृक्षुधः) अत्यन्त भोगने को इष्ट (वीरुधः) अत्यन्त पौंड़ी हुई लताओं पर (पर्य्यारोहति) चारों ओर से पौंडता है (आत्) और (इन्वतः) प्रिय इस यजमान का (यत्) जो (जनुषम्) जन्म (अभवत्) हो तथा (यत्) जो (शुचिः) पवित्र (घृणा) चमक दमक हो उन (उभा) दोनों को (इत्) ही (यविष्ठः) अत्यन्त तरुण जन प्राप्त होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि अन्न और औषध सब से लेवें और संस्कार किये अर्थात् बनाये हुए उस अन्न के भोजन से समस्त सुख होता है, ऐसा जानना चाहिये ॥ ४ ॥

आदिन्मातॄराविशद्यास्वा शुचिरहिंस्यमान उर्विया वि वावृधे ।
अनु यत्पूर्वा अरुहत्सनाजुवो नि नव्यसीष्ववरासु धावते ॥ ५ ॥

पदार्थ—जो (यासु) जिन (नव्यसीषु) अत्यन्त नवीन और (अवरासु) पिछली ओषधियों के निमित्त (नि, धावते) निरन्तर शीघ्र जाता है वा (यत्) जो (सनाजुवः) सनातन वेगवाली (पूर्वाः) पिछली ओषधियों को (अनु, अरुहत्) बढ़ाता है वह उन ओषधियों में (आ शुचिः) अच्छे प्रकार पवित्र और (अहिंस्यमानः) विनाश को न प्राप्त होता हुआ (उर्विया) बहुत प्रकार (विवावृधे) विशेषता से बढ़ता है (आत्) इसके पीछे (इत्) ही (मातॄः) माता के समान मान करने वाली ओषधियों को (आ, अविशत्) अच्छे प्रकार प्रवेश करता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो पुरुष वैद्यक विद्या को पढ़, बड़ी बड़ी ओषधियों का युक्ति के साथ सेवन करते हैं वे बहुत बढ़ते हैं । ओषधी दो प्रकार की होती है अर्थात् पुरानी और नवीन । उन में जो विचक्षण चतुर होते हैं वे ही नीरोग होते हैं ॥ ५ ॥

आदिद्धोतारं वृणते दिविंष्टिषु भगमिव पपृचानास ऋञ्जते।
देवान्यत्क्रत्वा मज्मना पुरुष्टुतो मर्त्तं शंसं विश्वधा वेति धायसे॥६॥

पदार्थ—(यत्) जो (पुरुष्टुतः) बहुतों ने प्रशंसा किया हुआ (विश्वधा) विश्व को धारण करने वाला (क्रत्वा) कर्म वा विशेष बुद्धि से और (मज्मना) बल से (धायसे) धारणा के लिये (शंसम्) प्रशंसायुक्त (मर्त्तम्) मनुष्य को और (देवान्) दिव्य गुणों को (वेति) प्राप्त होता है उसको (आत्) और (होतारम्) देने वाले को जो (पपृचानासः) सम्बन्ध करते हुए जन (दिविष्टिषु) सुन्दर यज्ञों में (भगमिव) धन ऐश्वर्य के समान (वृणते) सेवते हैं वे (इत्) ही दुःखों को (ऋञ्जते) भूंजते हैं अर्थात् जलाते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो अच्छे वैद्य का रत्न के समान सेवन करते हैं वे शरीर और आत्मा के बल वाले होकर सुखी होते हैं ॥ ६ ॥

वि यदस्थाद्यजतो वातचोदितो ह्वारो न वक्वा जरणा अनाकृतः।
तस्य पत्मन्दक्षुषः कृष्णजंहसः शुचिजन्मनो रज आ व्यध्वनः॥७॥

पदार्थ—(यत्) जो (यजतः) सङ्ग करने और (वक्वा) कहने वाला (अनाकृतः) रुकावट को न प्राप्त हुआ (वातचोदितः) प्राण वा पवन से प्रेरित विद्वान् (ह्वारः) कुटिलता करते हुए अग्नि के (न) समान (व्यस्थात्) विशेषता से स्थिर है (तस्य) उस (शुचिजन्मनः) पवित्र जन्मा विद्वान् के (पत्मन्) चाल चलन में (कृष्णजंहसः) काले मारने हैं जिसके उस (दक्षुषः) जलाते हुए (आ, व्यध्वनः) अच्छे प्रकार विरुद्ध मार्ग वाले अग्नि के (रजः) कण के समान (जरणाः) प्रशंसा स्तुति होती हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो धर्म में अच्छी स्थिरता रखते हैं वे सूर्य के समान प्रसिद्ध होते हैं और उनकी किई हुई कीर्ति सब दिशाओं में विराजमान होती है ॥ ७ ॥

रथो न यातः शिक्वंभिः कृतो द्यामङ्गेभिररुषेभिरीयते।
आदस्य ते कृष्णासो दक्षि सूरयः शूरस्येव त्वेषथादीषते वयः॥८॥

पदार्थ—(कृष्णासः) जो खींचते हैं वे (सूरयः) विद्वान् जन जैसे (शिक्वभिः) कीलें और बन्धनों से (कृतः) सिद्ध किया (द्याम्) आकाश को (अरुषेभिः) लाल रंग वाले (अङ्गेभिः) अङ्गों के साथ (यातः) प्राप्त हुआ

(रथः) रथ (ईयते) चलता है (न) वैसे वा (वयः) पक्षि और (शूरस्येव, त्वेषथात्) शूरवीर के प्रकाशित व्यवहार से जैसे वैसे कला कुशलता से (ईषते) देखते हैं वे सुख पाते हैं, हे विद्वन् ! (आत्) इसके अनन्तर जो आप अग्नि के समान पापों को (धक्षि) जलाते हो (अस्य) इन (ते) आपको सुख होता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे उत्तम विमान से अन्तरिक्ष में आना जाना सुख से जन करते हैं वैसे विद्वान् जन विद्या से धर्म सम्बन्धी मार्ग में विचरने को समर्थ होते हैं ॥ ८ ॥

त्वया ह्यग्ने वरुणो धृतव्रतो मित्रः शाशद्रे अर्यमा सुदानवः ।
यत्सीमनु क्रतुना विश्वथा विभुररान्न नेमिः परिभूरजायथाः ॥९॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् ! जैसे (त्वया) तुम्हारे साथ (यत्) जो (वरुणः) श्रेष्ठ (धृतव्रतः) सत्य व्यवहार को धारण किये हुए (मित्रः) सब का मित्र और (अर्यमा) न्यायाधीश (सुदानवः) अच्छे दानशील (हि) ही होते हैं वैसे उनके सङ्ग से आप (नेमिः) पहिया (अरान्, न) अरों को जैसे वैसे (विश्वथा) वा जैसे सब प्रकार से (विभुः) ईश्वर व्यापक है वैसे (क्रतुना) उत्तम बुद्धि से (परिभूः) सर्वोपरि (सीम्) सब ओर से (अनु, अजायथाः) अनुक्रम से होओ जिससे दुःख को (शाशद्रे) नष्ट करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे ईश्वर न्यायकारी और सब विद्याओं में प्रवीण है वैसे विद्वानों के सङ्ग से बुद्धिमान् न्यायकारी और पूरी विद्या वाला हो ॥ ९ ॥

त्वमग्ने शशमानाय सुन्वते रत्नं यविष्ठ देवतातिमिन्वसि ।
तं त्वा नु नव्यं सहसो युवन्वयं भगं न कारे महिरत्न धीमहि ॥१०॥

पदार्थ—हे (सहसः) बलसम्बन्धी (युवन्) यौवनभाव को प्राप्त (यविष्ठ) अत्यन्त तरुण (महिरत्न) प्रशंसा करने योग्य गुणों से रमणीय (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वान् ! जो (त्वम्) आप (शशमानाय) अधर्म को उल्लंघ के धर्म को प्राप्त हुए (सुन्वते) और ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाले उत्तम जन के लिये (रत्नम्) रमणीय ज्ञान वा उसके साधन को और (देवतातिम्) परमेश्वर को (इन्वसि) ध्यान योग से व्याप्त होते हो (तम्) उन (नव्यम्) नवीन विद्वानों में प्रसिद्ध (त्वा) आपको (कारे) कर्त्तव्य व्यवहार में (भगम्) ऐश्वर्य के (न) समान (वयम्) हम लोग (नु) शीघ्र (धीमहि) धारण करें ॥ १० ॥

भावार्थ—जो अधर्म को छोड़ धर्म का अनुष्ठान कर परमात्मा को प्राप्त होते हैं वे अति रमणीय आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

अस्मे र॒यिं न स्व॒र्थं दमू॑नसं॒ भगं॒ दक्षं॒ न प॑पृचासि धर्ण॒सिम् ।
र॒श्मीँरि॑व॒ यो यम॑ति॒ जन्म॑नी उ॒भे दे॒वानां॒ शंस॑मृ॒त आ च॑ सु॒क्रतुः॑ ॥११॥

पदार्थ—जो (**सुक्रतुः**) उत्तम बुद्धि वाला विद्वान् ! (**अस्मे**) हम लोगों के लिये (**स्वर्थम्**) जिससे अच्छा प्रयोजन हो वा जो अनर्थ साधनों से रहित उस (**रयिम्**) धन के (**न**) समान (**दमूनसम्**) इन्द्रियों को विषयों में दबा देने के समानरूप (**भगम्**) ऐश्वर्य्य का और (**दक्षम्**) चतुर के (**न**) समान (**धर्णसिम्**) धारण करने वाले का (**पपृचासि**) सम्बन्ध करता वा (**रश्मींरिव**) जैसे किरणों को वैसे (**ऋते**) सत्य व्यवहार में (**देवानाम्**) विद्वानों के (**उभे**) दो (**जन्मनी**) अगले पिछले जन्म (**च**) और (**शंसम्**) प्रशंसा को (**यः**) जो (**आ, यमति**) बढ़ाता है वह हम लोगों को सत्कार करने योग्य है ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो सूर्य की किरणों के समान सब को धर्मसम्बन्धी पुरुषार्थ में संयुक्त करते हैं और आप भी वैसे ही वर्त्तते हैं वे अगले पिछले जन्मों को पवित्र करते हैं ॥ ११ ॥

उ॒त नः॑ सु॒द्योत्मा॑ जी॒राश्वो॒ होता॑ म॒न्द्रः शृ॑णवच्च॒न्द्ररथः ।
स नो॑ नेष॒न्नेष॑तमै॒रमू॑रो॒ऽग्निर्वा॒मं सु॑वि॒तं वस्यो॒ अच्छ॑ ॥ १२ ॥

पदार्थ—जो (**मन्द्रः**) प्रशंसायुक्त (**चन्द्ररथः**) जिसके रथ में चांदी सोना विद्यमान जो (**सुद्योत्मा**) उत्तम प्रकाश वाला (**जीराश्वः**) जिसके वेगवान् बहुत घोड़े वह (**होता**) दानशील जन (**नः**) हम लोगों को (**शृणवत्**) सुने (**उत**) और जो (**अमूरः**) गमनशील (**वस्यः**) निवास करने योग्य (**अग्निः**) अग्नि के समान प्रकाशमान जन (**सुवितम्**) उत्पन्न किये हुए (**वामम्**) अच्छे रूप को (**नेषतमैः**) अतीव प्राप्ति कराने वाले गुणों से (**अच्छ**) अच्छा (**नेषत्**) प्राप्त करे (**सः**) वह (**नः**) हम लोगों के बीच प्रशंसित होता है ॥ १२ ॥

भावार्थ—जो सब के न्याय का सुनने वाला साङ्गोपाङ्ग सामग्रीसहित विद्याप्रकाश युक्त सब विद्या के उत्साहियों को विद्यायुक्त करता है वह प्रकाशात्मा होता है ॥ १२ ॥

अस्ता॑व्य॒ग्निः शिमी॑वद्भिर॒र्कैः साम्रा॑ज्याय प्र॒तरं॒ दधा॑नः ।
अ॒मी च॒ ये म॒घवा॑नो व॒यं च॒ मिहं॒ न सूरो॒ अति॒ निष्ट॑तन्युः ॥१३॥

पदार्थ—जो (**शिमीवद्भिः**) प्रशंसित कर्मों से युक्त (**अर्कैः**) सत्कार करने

योग्य विद्वानों के साथ (**प्रतरम्**) शत्रुबलों को जिससे तरें उस सेनागण को (**दधानः**) धारण करता हुआ (**अग्निः**) सूर्य के समान सुशीलता से प्रकाशित (**साम्राज्याय**) चक्रवर्त्ति राज्य के लिये (**अस्तावि**) स्तुति पाता है (**च**) और (**ये**) जो (**अमी**) वे (**मघवानः**) परमपूजित धनयुक्त जन (**सूरः**) सूर्य (**मिहम्**) वर्षा को (**न**) जैसे वैसे विद्या को (**अति, नि, ततन्युः**) अतीव निरन्तर विस्तारें उस पूर्वोक्त सज्जन (**च**) पीछे कहे हुए जनों की (**वयम्**) हम लोग प्रशंसा करें ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों में जो धार्मिक विद्वानों से अच्छी शिक्षा को पाये हुए धर्म से राज्य का विस्तार करते हुए प्रयत्न करते हैं वे ही राज्य, विद्या और धर्म के उपदेश में अच्छे प्रकार स्थापन करने योग्य हैं ॥ १३ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति वर्त्तमान है यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ इक्तालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

दीर्घतमा ऋषिः । १--४ अग्निः । ५ बर्हिः । ६ देव्यो द्वारः । ७ उषासानक्ता । ८ दैव्यौ होतारौ । ९ सरस्वतीळाभारत्यः । १० त्वष्टा । ११ वनस्पतिः । १२ स्वाहाकृतिः । १३ इन्द्रश्च देवताः । १ । २ । ५ । ६ । ८ । ९ निचृदनुष्टुप् । ४ स्वराडनुष्टुप । ३ । ७ । १०--१२ अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः । १३ भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

समिद्धो अग्न आ वह देवाँ अद्य यतस्रुचे ।
तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं सुतसोमाय दाशुषे ॥ १ ॥

पदार्थ--हे (**अग्ने**) पावक के समान उत्तम प्रकाश वाले (**समिद्धः**) विद्या से प्रकाशित पढ़ाने वाले विद्वन् ! आप (**अद्य**) आज के दिन (**सुतसोमाय**) जिसने बड़ी बड़ी ओषधियों के रस निकाले और (**यतस्रुचे**) यज्ञ पात्र उठाये हैं उस यज्ञ करने वाले (**दाशुषे**) दानशील जन के लिये (**देवान्**) विद्वानों की (**आ, वह**) प्राप्ति करो और (**पूर्व्यम्**) प्राचीनों के किये हुए (**तन्तुम्**) विस्तार को (**तनुष्व**) विस्तारो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे बालकपन और तरुण अवस्था में माता और पिता आदि सन्तानों को सुखी करें वैसे

पुत्रलोग ब्रह्मचर्य से विद्या को पढ़ युवावस्था को प्राप्त और विवाह किये हुए अपने माता पिता आदि को आनन्द देवें ॥ १ ॥

घृतवन्तमुप मासि मधुमन्तं तनूनपात् ।
यज्ञं विप्रस्य मावतः शशमानस्य दाशुषः ॥ २ ॥

पदार्थ--हे (तनूनपात्) शरीर को न कष्ट करने वाले विद्वन् ! आप (मावतः) मेरे सदृश (दाशुषः) दानशील (शशमानस्य) और दुःख उल्लंघन किये (विप्रस्य) मेधावी जन के (घृतवन्तम्) बहुत घृत और (मधुमन्तम्) प्रशंसित मधुरादि गुणों से युक्त (यज्ञम्) यज्ञ का (उप, मासि) परिमाण करने वाले हो ॥ २ ॥

भावार्थ—विद्यार्थियों को विद्वानों की सङ्गति कर विद्वानों के सदृश होना चाहिये ॥ २ ॥

शुचिः पावको अद्भुतो मध्वा यज्ञं मिमिक्षति ।
नराशंसस्त्रिरा दिवो देवो देवेषु यज्ञियः ॥ ३ ॥

पदार्थ--जो (पावकः) पवित्र करने वाले अग्नि के समान (अद्भुतः) आश्चर्य गुण कर्म स्वभाव वाला (शुचिः) पवित्र (यज्ञियः) यज्ञ करने योग्य (नराशंसः) नरों से प्रशंसा को प्राप्त और (देवः) कामना करता हुआ जन (देवेषु) विद्वानों में (दिवः) कामना से (मध्वा) मधुर शर्करा वा सहत से (यज्ञम्) यज्ञ को (त्रिः) तीन वार (आ, मिमिक्षति) अच्छे प्रकार सींचने वा पूरे करने की इच्छा करता है वह सुख पाता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य वालकाई, ज्वानी और बुढ़ापे में विद्याप्रचाररूपी व्यवहार को करें वे कायिक वाचिक और मानसिक सुखों को प्राप्त होवें ॥ ३ ॥

ईळितो अग्न आ वहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम् ।
इयं हि त्वा मतिर्ममाच्छा सुजिह्व वच्यते ॥ ४ ॥

पदार्थ--हे (सुजिह्व) मधुर भाषिणी जिह्वा वाले (अग्ने) सूर्य के समान प्रकाशस्वरूप विद्वान् (ईडितः) प्रशंसा को प्राप्त हुए आप (इह) इस जन्म में (प्रियम्) प्रीति करने वाले (चित्रम्) चित्र विचित्र नाना प्रकार के (इन्द्रम्) परमैश्वर्य को (आ, वह) प्राप्त करो जो (मम) मेरी (इयम्) यह (मतिः) प्रज्ञा बुद्धि तुम से (अच्छ) अच्छी (वच्यते) कही जाती है (हि) वही (त्वा) आप को प्राप्त हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—सब को पुरुषार्थ से विद्वानों की बुद्धि पाकर महान् ऐश्वर्य का अच्छा संग्रह करना चाहिये ॥ ४ ॥

स्तृणानासो यतस्रुचो बर्हिर्यज्ञे स्वध्वरे ।
वृञ्जे देवव्यचस्तममिन्द्राय शर्म सप्रथः ॥ ५ ॥

पदार्थ--जो (स्वध्वरे) उत्तम शोभायुक्त (यज्ञे) विद्यादानरूप यज्ञ में (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य के लिये (सप्रथः) प्रख्यात गुणों के साथ वर्त्तमान (बर्हिः) बड़े (देवव्यचस्तमम्) विद्वानों से अतीव व्याप्त (शर्म) घर को (स्तृणानासः) ढांपते हुए (यतस्रुचः) उद्यम को प्राप्त होते हैं वे दुःख और दरिद्रपन का (वृञ्जे) त्याग कर देते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—उद्यम करने वालों के विना लक्ष्मी और राज्य श्री प्राप्त नहीं हाती तथा जा अतीव उत्तम विद्वानों के निवास संयुक्त घर में अच्छे प्रकार वसते हैं वे अविद्या और दरिद्रता को निरन्तर नष्ट करते हैं ॥ ५ ॥

वि श्रयन्तामृतावृधः प्रयै देवेभ्यो महीः ।
पावकासः पुरुस्पृहो द्वारो देवीरसश्चतः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये जो (पावकासः) पवित्र करने वाली (ऋतावृधः) सत्य आचरण और उत्तम ज्ञान से बढ़ाई हुई (पुरुस्पृहः) बहुतों से चाही जाती (द्वारः) द्वारों के समान (देवीः) मनोहर (असश्चतः) परस्पर एक दूसरे से विलक्षण (महीः) प्रशंसनीय वाणी वा पृथिवी जिनकी (प्रयै) प्रीति के लिये विद्वान् जन कामना करते उन का आप लोग (वि श्रयन्ताम्) विशेषता से आश्रय करें ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को सब के उपकार के लिये विद्या और अच्छी शिक्षायुक्त वाणी और रत्नों को प्रसिद्ध करने वाली भूमियों की कामना करनी चाहिये और उन के आश्रय से पवित्रता करनी चाहिये ॥ ६ ॥

आ भन्दमाने उपाके नक्तोषासा सुपेशसा ।
यह्वी ऋतस्य मातरा सीदतां बर्हिरा सुमत् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप जैसे (ऋतस्य) सत्य व्यवहार का (मातरा) मान करानेवाली (यह्वी) कारणसे उत्पन्न हुई (उपाके) एकदूसरे के साथ वर्त्तमान (सुपेशसा) उत्तम रूपयुक्त और (भन्दमाने) कल्याण करने वाली (नक्तोषासा) रात्रि और प्रभात वेला (आ, सीदताम्) अच्छे प्रकार प्राप्त हों वैसे (आ, सुमत्) जिसमें बहुत आनन्द को प्राप्त होते हैं उस (बर्हिः) उत्तम घर को प्राप्त होओ ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे दिन रात्रि समस्त प्राणी अप्राणी को नियम से अपनी अपनी क्रियाओं में प्रवृत्त कराता है वैसे सब विद्वानों को सर्वसाधारण मनुष्य उत्तम क्रियाओं में प्रवृत्त करने चाहिये ॥ ७ ॥

मन्द्रजिह्वा जुगुर्वणी होतारा दैव्या कवी ।
यज्ञं नो यक्षतामिमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (अद्य) आज (मन्द्रजिह्वा) जिन की प्रशंसित जिह्वा है वे (जुगुर्वणी) अत्यन्त उद्यमी (होतारा) ग्रहण करने वाले (दैव्या) दिव्य गुणों में प्रसिद्ध (कवी) प्रबल प्रज्ञायुक्त अध्यापक और उपदेशक लोग (नः) हम लोगों के लिये (दिविस्पृशम्) प्रकाश में संलग्नता कराने तथा (सिध्रम्) मङ्गल करने वाले (इमम्) इस (यज्ञम्) विद्यादि की प्राप्ति के साधक व्यवहार का (यक्षताम्) सङ्ग करते हैं वैसे तुम भी सङ्ग करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् जन धर्मयुक्त व्यवहार के साथ परस्पर सङ्ग करते हैं वैसे साधारण मनुष्यों को भी होना चाहिये ॥ ८ ॥

शुचिर्देवेष्वर्पिता होत्रा मरुत्सु भारती ।
इळा सरस्वती मही बर्हिः सीदन्तु यज्ञियाः ॥ ९ ॥

पदार्थ—जो (देवेषु) विद्वानों में (अर्पिता) समर्पण किई हुई (होत्रा) देने लेने योग्य क्रिया वा (मरुत्सु) स्तुति करने वालों में (भारती) धारण पोषण करने वाली (शुचिः) पवित्र (इला) प्रशंसा के योग्य (सरस्वती) प्रशंसित विज्ञान का सम्बन्ध रखने वाली (मही) और बड़ी (यज्ञियाः) यज्ञ सिद्ध कराने के योग्य क्रिया (बर्हिः) समीप प्राप्त बढ़े हुए व्यवहार को (सीदन्तु) प्राप्त होवें उनको समस्त विद्यार्थी प्राप्त होवें ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विद्यार्थियों को ऐसी इच्छा करनी चाहिये कि जो विद्वानों में विद्या वा वाणी वर्त्तमान है वह हम को प्राप्त होवे ॥ ९ ॥

तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरु वारं पुरु त्मना ।
त्वष्टा पोषाय वि ष्यतु राये नाभा नो अस्मयुः ॥ १० ॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! (अस्मयुः) हम लोगों की कामना करने वाले (त्वष्टा) विद्या और धर्म से प्रकाशमान आप (नः) हम लोगों के (पुरु) बहुत

(पोषाय) पोषण करने के लिये और (राये) धन होने के लिये (नाभा) नाभि में प्राण के समान (वि, ष्यतु) प्राप्त होवें और (त्मना) आत्मा से जो (तुरीपम्) तुरन्त रक्षा करने वाला (अद्भुतम्) अद्भुत आश्चर्य्यरूप (पुरु, वा, अरम्) बहुत वा पूरा धन है (तत्) उसको (नः) हम लोगों के लिये प्राप्त कीजिये ॥ १० ॥

भावार्थ—जो विद्वान् हम लोगों की कामना करे उसकी हम लोग भी कामना करें। जो हम लोगों की कामना न करे उसकी हम लोग भी कामना न करें, इससे परस्पर विद्या और सुख की कामना करते हुए आचार्य्य और विद्यार्थी लोग विद्या की उन्नति करें ॥ १० ॥

अवसृजन्नुप त्मना देवान्यक्षि वनस्पते ।
अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरः ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (वनस्पते) रश्मियों के पति सूर्य्य के समान वर्त्तमान ! आप जिस कारण (त्मना) आत्मा से (देवान्) विद्या की कामना करते हुओं को (उपावसृजन्) अपने समीप नाना प्रकार की विद्या से परिपूरित करते हुए (देवेषु) प्रकाशमान लोकों में (देवः) अत्यन्त दीपते हुए (मेधिरः) सङ्ग कराने वाले (अग्निः) जैसे अग्नि (हव्या) होम से देने योग्य पदार्थों को (सुषूदति) सुन्दरता से ग्रहण कर परमाणु रूप करता है वैसे विद्या का (यक्षि) सङ्ग करते हो। इससे सत्कार करने योग्य हो ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्यमण्डल पृथिवी आदि दिव्य पदार्थों में दिव्यरूप हुआ जल को वर्षाता है वैसे विद्वान् जन संसार में विद्यार्थियों में विद्या की वर्षा करावें ॥ ११ ॥

पूषण्वते मरुत्वते विश्वदेवाय वायवे ।
स्वाहा गायत्रवेपसे हव्यमिन्द्राय कर्त्तन ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (स्वाहा) सत्य क्रिया से (पूषण्वते) जिसके बहुत पुष्टि करने वाले गुण (मरुत्वते) जिसमें प्रशंसायुक्त विद्या की स्तुति करने वाले (विश्वदेवाय) वा समस्त विद्वान् जन विद्यमान (वायवे) प्राप्त होने योग्य (गायत्रवेपसे) गाने वाले की रक्षा करता हुआ जिनसे रूप प्रकट होता उस (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य कर्म को (कर्त्तन) करो ॥ १२ ॥

भावार्थ—जिस धन से पुष्टि विद्या विद्वानों का सत्कार वेदविद्या की प्रवृत्ति और सर्वोपकार हो वही धर्म सम्बन्धी धन है और नहीं ॥ १२ ॥

स्वाहाकृतान्या गह्युप हव्यानि वीतये ।

इन्द्रा गहि श्रुधी हवं त्वां हवन्ते अध्वरे ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य को युक्त करने वाले विद्वान् ! आप (अध्वरे) न नष्ट करने योग्य व्यवहार में (वीतये) विद्या की प्राप्ति के लिये (स्वाहाकृतानि) सत्य क्रिया से (हव्यानि) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को (उपागहि) प्राप्त होओ जिन (त्वाम्) तुम्हारी (हवन्ते) विद्या का ज्ञान चाहते हुए विद्यार्थी जन स्तुति करते हैं सो आप (आ, गहि) आओ और (हवम्) स्तुति को (श्रुधि) सुनो ॥ १३ ॥

भावार्थ—अध्यापक जितना शास्त्र विद्यार्थियों को पढ़ावे उसकी प्रतिदिन वा प्रतिमास परीक्षा करे और विद्यार्थियों में जो जिनको विद्या देवें वे उनकी तन मन धन से सेवा करें ॥ १३ ॥

इस सूक्त में पढ़ने पढ़ाने वालों के गुणों और विद्या की प्रशंसा होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जानना चाहिये ॥

यह एकसौ बयालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ७ निचृज्जगती । २ । ३ । ५ विराड्जगती ४ । ६ जगती च छन्दः । निषादः स्वरः । ८ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

प्र तव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्नये वाचो मतिं सहसः सूनवे भरे ।

अपां नपाद्यो वसुभिः सह प्रियो होता पृथिव्यां न्यसीददृत्वियः ॥१॥

पदार्थ—मैं (अपां, नपात्) जलों के बीच (यः) जो न गिरता वह सूर्य (पृथिव्याम्) पृथिवी पर जैसे वैसे जो (वसुभिः) प्रथम कक्षा के विद्वनों के (सह) साथ (प्रियः) प्रीतियुक्त (होता) ग्रहण करने वाला (ऋत्वियः) ऋतुओं की योग्यता रखता हुआ (नि, असीदत्) निरन्तर स्थिर होता है उस (सहसः) शरीर और आत्मा के बलयुक्त अध्यापक के सकाश से (अग्नये) अग्नि के समान तीक्ष्ण बुद्धि (सूनवे) पुत्र वा शिष्य के लिये (वाचः) वाणी की (तव्यसीम्) अत्यन्त बलवती (नव्यसीम्) अतीव नवीन (धीतिम्) जिससे विजय को धारण करें और उस धारणा और (मतिम्) उत्तम बुद्धि को (प्र, भरे) अच्छे प्रकार धारण करता हूं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विद्वानों की योग्यता है कि जैसे सूर्य जलों की धारणा करने वाला है वैसे पवित्र बुद्धिमान् प्रिय आचरण करने और शीघ्र विद्याओं को ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों को लेकर विद्या का विज्ञान शीघ्र उत्पन्न करावें ॥ १ ॥

स जायमानः परमे व्योमन्याविरग्निरभवन्मातरिश्वने ।
अस्य क्रत्वा समिधानस्य मज्मना प्र द्यावा शोचिः पृथिवी अरोचयत् ॥२॥

पदार्थ—जो (मातरिश्वने) अन्तरिक्षस्थ वायु के लिये (अग्निः) अग्नि के समान (परमे) उत्तम (व्योमनि) आकाश के तुल्य सब में व्याप्त सब की रक्षा करने आदि गुणों से युक्त ब्रह्म में (जायमानः) उत्पन्न हुआ हम लोगों के लिये (आविः) प्रकट (अभवत्) होवे उस (अस्य) प्रत्यक्ष (समिधानस्य) उत्तमता से प्रकाशमान जन का (शोचिः) पवित्रभाव (क्रत्वा) प्रज्ञा और कर्म वा (मज्मना) बल के साथ (द्यावा, पृथिवी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (प्रारोचयत्) प्रकाशित करावे (सः) वह पढ़ा हुआ जन सब का कल्याणकारी होता है ॥ २ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् लोग विद्यार्थियों को प्रयत्न के साथ विद्या अच्छी शिक्षा और धर्म नीति से युक्त करें तो वे सर्वदैव कल्याण का सेवन करने वाले होवें ॥ २ ॥

अस्य त्वेषा अजरा अस्य भानवः सुसंदृशः सुप्रतीकस्य सुद्युतः ।
भात्वक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवोऽग्ने रेजन्ते असमन्तो अजराः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (सुसंदृशः) सत्य और असत्य को ज्ञानदृष्टि से देखने वाले (सुप्रतीकस्य) सुन्दर प्रतीति युक्त (सुद्युतः) सब ओर से प्रकाशमान (अग्नेः) सूर्य के (भानवः) किरणों के समान (अस्य) इस अध्यापक के (अजराः) विनाशरहित (त्वेषा) विद्या और शील के प्रकाश होते हैं और वे (अस्य) इस महाशय के अजर अमर (अससन्तः) जागते हुए (भात्वक्षसः) विद्या प्रकाशरूपी बल वाले (सिन्धवः) प्रवाहरूप उक्त तेज (अक्तुः) रात्रि के (न) समान अविद्यान्धकार को (अति, रेजन्ते) अतिक्रमण करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सूर्य के समान विद्या के प्रकाश करने अविद्यान्धकार के विनाश करने और सब को आनन्द देने वाले होते हैं वे ही मनुष्यों के शिरोमणि होते हैं ॥ ३ ॥

यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं नाभा पृथिव्या भुवनस्य मज्मना ।
अग्निं तं गीर्भिर्हिनुहि स्व आ दमे य एको वस्वो वरुणो न राजति ॥४॥

पदार्थ—हे जिज्ञासु पुरुष ! (यम्) जिस (विश्ववेदसम्) अच्छे संसार के वेत्ता परमात्मा को (भृगवः) विद्या से अविद्या को भूजने वाले (एरिरे) सब ओर से जाने वा (यः) जो (एक) एक अति श्रेष्ठ आप्त ईश्वर (मज्मना) अत्यन्त बल से (वरुणः) अति श्रेष्ठ के (न) समान (पृथिव्या) अन्तरिक्ष के वा (भुवनस्य) लोक में उत्पन्न हुए (वस्वः) धनरूप पदार्थ के (नाभा) बीच में अपनी व्याप्ति से (राजति) प्रकाशमान है (तम्) उस (अग्निम्) सूर्य के समान ईश्वर जो कि (स्वे) अपने अर्थात् तेरे (दमे) घररूप हृदयाप्रकाश में वर्त्तमान है उसको (गीर्भिः) प्रशंसित वाणियों से (आ, हिनुहि) जानो ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो विद्वानों से जानने योग्य सब में सब प्रकार व्याप्त प्रशंसा के योग्य सच्चिदानन्दादिलक्षण सर्वशक्तिमान् अद्वितीय अति-सूक्ष्म आप ही प्रकाशमान अन्तर्यामी परमेश्वर है उसको योग के अङ्गों के अनुष्ठान की सिद्धि से अपने हृदय में जानो ॥ ४ ॥

न यो वराय मरुतामिव स्वनः सेनेव सृष्टा दिव्या यथाशनिः ।
अग्निर्जम्भैस्तिगितैरत्ति भर्वति योधो न शत्रून्त्स वना न्यृञ्जते ॥५॥

पदार्थ—(यः) जो (अग्निः) आग (मरुतामिव) पवन वा विद्वानों के (स्वनः) शब्द के समान (सृष्टा, सेनेव) शत्रुदल में चक्रव्यूहादि रचना से रची हुई सेना के समान वा (यथा) जैसे (दिव्या) कारण वा वायु आदि कार्य द्रव्य में उत्पन्न हुई (अशनिः) बिजुली के वैसे (वराय) स्वीकार करने के लिये (न) नहीं हो सकता अर्थात् तेजी के कारण रुक नहीं सकता (सः) वह (तिगितैः) तीक्ष्ण (जम्भैः) स्फूर्तियों से (अत्ति) भक्षण करता अर्थात् लकड़ी आदि को खाता है (योधः) योधा के (नः) समान (शत्रून्) शत्रुओं को (भर्वति) नष्ट करता अर्थात् धनुर्विद्या में प्रविष्ट किया हुआ शत्रुदल को भूंजता है और (वना) वनों को (नि, ऋञ्जते) निरन्तरसिद्ध करता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—प्रचण्ड वायु से प्रेरित अति जलता हुआ अग्नि शत्रुओं को मारने के तुल्य पदार्थों को जलाता है, वह सहसा नहीं रुक सकता ॥ ५ ॥

कुविन्नो अग्निरुचथस्य वीरसद्वसुष्कुविद्वसुभिः काममावरत् ।
चोदः कुवित्तुतुज्यात्सातये धियः शुचिप्रतीकं तमया धिया गृणे ॥६॥

पदार्थ—जो (कुवित्) बड़ा (अग्निः) बिजुली आदि रूप वाला अग्नि

(नः) हमारे लिये (उचथस्य) उचित पदार्थ का (वीः) व्यापक (असत्) हो वा (वसुभिः) वसाने वालों के साथ (कुवित्) बड़ा (वसुः) वसाने वाला (कामम्) काम को (आवरत्) भली भांति स्वीकार करे वा (सातये) विभाग के लिये (कुवित्) बड़ा प्रशंसित जन (चोदः) प्रेरणा दे वा (धियः) बुद्धियों को (तुतुज्यात्) बलवती करे (तम्) उस (शुचिप्रतीकम्) पवित्र प्रतीति देने वाले जन की (अया) इस (धिया) बुद्धि वा कर्म से (गृणे) मैं स्तुति करता हूँ ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो विजुली के समान उचित काम प्राप्त कराने और बुद्धि बल अत्यन्त देने वाले बड़े प्रशंसित विद्वान् अपनी बुद्धि से सब मनुष्यों को विद्वान् करते हैं उनकी सब लोग प्रशंसा करें ॥ ६ ॥

घृतप्रतीकं व ऋतस्य धूर्षदमग्निं मित्रं न समिधान ऋञ्जते ।
इन्धानो अक्रो विदथेषु दीद्यच्छुक्रवर्णामुदु नो यंसते धियम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (समिधानः) अच्छे प्रकार प्रकाशमान विद्वान् (वः) तुम्हारे लिये (धूर्षदम्) हिंसकों में स्थिर होते हुए (घृतप्रतीकम्) जो घृत को प्राप्त होता उस (अग्निम्) आग को (ऋतस्य) सत्य व्यवहार वर्त्तने वाले (मित्रम्) मित्र के (न) समान (ऋञ्जते) प्रसिद्ध करता है (उ) और जो (इन्धानः) प्रकाशमान होता हुआ वा (अक्रः) औरों ने जिसको न दबा पाया वह (विदथेषु) संग्रामों में (दीद्यत्) निरन्तर प्रकाशित होता हुआ (नः) हम लोगों की (शुक्रवर्णाम्) शुद्ध स्वरूप (धियम्) प्रज्ञा को (उद्यंसते) उत्तम रखता है उसको तुम हम पिता के समान सेवें ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो बिजुली के समान समस्त शुभ गुणों की खान मित्र के समान सुख का देने संग्रामों में वीर के तुल्य शत्रुओं को जीतने और दुःख का विनाश करने वाला है उस विद्वान् का आश्रय कर सब मनुष्य विद्याओं को प्राप्त होवें ॥ ७ ॥

अप्रयुच्छन्नप्रयुच्छद्भिरग्ने शिवेभिर्नः पायुभिः पाहि शग्मैः ।
अदब्धेभिरदृपितेभिरिष्टेऽनिमिषद्भिः परि पाहि नो जाः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (इष्टे) सत्कार करने योग्य तथा (अग्ने) विद्या विज्ञान के प्रकाश से युक्त अग्नि के समान विद्वान् ! आप (अप्रयुच्छन्) प्रमाद को न करते हुए (अप्रयुच्छद्भिः) प्रमादरहित विद्वानों के साथ वा (शिवेभिः) कल्याण करने वाले (पायुभिः) रक्षक (शग्मैः) सुखप्रापक विद्वानों के साथ (नः) हम लोगों की (पाहि) रक्षा करो तथा (जाः) सुखों की उत्पत्ति कराने वाले आप (अनि-

मिर्धद्भिः) निरन्तर आलस्यरहित (अदब्धेभिः) हिंसा और (अदृपितेभिः) मोहादि दोष रहित विद्वानों के साथ (नः) हम लोगों की (परि, पाहि) सब ओर से रक्षा करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को निरन्तर यह चाहना और ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि धार्मिक विद्वानों के साथ धार्मिक विद्वान् हमारी निरन्तर रक्षा करें ॥ ८ ॥

इस सूक्त में विद्वान् और ईश्वर के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जानना चाहिये ॥

यह एकसौ तेंतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

———

दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ३—५ । ७ निचृज्जगती । २ जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ६ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

एति प्र होता व्रतमस्य माययोर्ध्वां दधानः शुचिपेशसं धियम् ।
अभि स्रुचः क्रमते दक्षिणावृतो या अस्य धाम प्रथमं ह निंसते ॥१॥

पदार्थ—जो (होता) सद्गुणों का ग्रहण करने वाला पुरुष (मायया) उत्तम बुद्धि से (अस्य) इस शिक्षा करने वाले के (व्रतम्) सत्याचरण शील को (ऊर्ध्वाम्) और उत्तम (शुचिपेशसम्) पवित्र (धियम्) बुद्धि वा कर्म को (दधानः) धारण करता हुआ (प्र, क्रमते) व्यवहारों में चलता है वा (याः) जो (अस्य) इसकी (स्रुचः) विज्ञानयुक्त (दक्षिणावृतः) दक्षिणा का आच्छादन करने वाली बुद्धि हैं उनको और (प्रथमम्) प्रथम (धाम) धाम को (निंसते) जो प्रीति को पहुँचाता है (ह) वही अत्यन्त बुद्धिमान् होता है ॥ १ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य शास्त्रवेत्ता विद्वान् के उपदेश और पढ़ाने से विद्यायुक्त बुद्धि को प्राप्त होते हैं वे सुशील होते हैं ॥ १ ॥

अभीमृतस्य दोहना अनूषत योनौ देवस्य सदने परीवृताः ।
अपामुपस्थे विभृतो यदावसदध स्वधा अधयद्याभिरीयते ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (ऋतस्य) सत्य विज्ञान के (दोहनाः) पूरे करने वाली (परिवृताः) वस्त्रादि से ढपी हुई अर्थात् लज्जावती पण्डिता स्त्री (देवस्य) विद्वान् के (सदने) स्थान वा (योनौ) घर में (अभ्यनूषत) सम्मुख में प्रशंसा करती हैं वा (यत्) जो वायु (अपाम्) जलों के (उपस्थे) समीप में (विभृतः)

विशेषता से धारण किया हुआ (आवसत्) अच्छे प्रकार वसे (अध) इसके अनन्तर जैसे विद्वान् (स्वधाः) जलों को (अधयत्) पिये वा (याभिः) जिन क्रियाओं से (ईम्) सब ओर से उनको (ईयते) प्राप्त होता हे वैसे उन सभों के समान तुम भी वर्त्तो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे आकाश में जल स्थिर हो और वहां से वर्ष कर समस्त जगत् को पुष्ट करता है वैसे विद्वान् जन चित्त में विद्या को स्थिर कर सब मनुष्यों को पुष्ट करे ॥२॥

युयूषतः सवयसा तदिद्वपुः समानमर्थं वितरित्रता मिथः ।
आदीं भगो न हव्यः समस्मदा वोढुर्न रश्मीन्त्समयंस्त सारथिः ॥३॥

पदार्थ—जब (सवयसा) समान अवस्था वाले दो शिष्य (समानम्) तुल्य (वपुः) स्वरूप को (युयूषतः) मिलाने अर्थात् एक दूसरे की उन्नति करने को चाहते हैं (तदित्) तभी (वितरित्रता) अतीव अनेक प्रकार वे (मिथः) परस्पर (अर्थम्) धनादि पदार्थ की सिद्धि करने की इच्छा करते हैं (आत्) इसके अनन्तर (ईम्) सब ओर से (भगः) ऐश्वर्य्य वाला पुरुष जैसे (हव्यः) स्वीकार करने योग्य हो (न) वैसे उक्त विद्यार्थियों में से प्रत्येक (सारथिः) सारथी जैसे (वोढुः) पदार्थ पहुँचाने वाले घोड़े आदि की (रश्मीन्) रस्सियों को (न) वैसे (अस्मत्) हम अध्यापक आदि जनों से पढ़ाइयों को (समायंस्त) भली भाँति स्वीकार करता और उपदेशों को (सम्) भली भांति स्वीकार करता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो अध्यापक और उपदेशक कपट छल के विना औरों को अपने तुल्य करने की इच्छा से उन्हें विद्वान् करें वे उत्तम ऐश्वर्य को पाकर जितेन्द्रिय हों ॥ ३ ॥

यमीं द्वा सवयसा सपर्यतः समाने योना मिथुना समोकसा ।
दिवा न नक्तं पलितो युवाजनि पुरू चरन्नजरो मानुषा युगा ॥४॥

पदार्थ—(सवयसा) समान अवस्थायुक्त (द्वा) दो (समाने) तुल्य (योना) उत्पत्ति स्थान में (मिथुना) मैथुन कर्म करने वाले स्त्री पुरुष (समोकसा) समान घर के साथ वर्त्तमान (दिवा) दिन (नक्तम्) रात्रि के (न) समान (यम्) जिस (ईम्) प्रत्यक्ष बालक का (सपर्यतः) सेवन करें उसको पालें वह (अजरः) जरा अवस्थारूपी रोगरहित (मानुषा) मनुष्य सम्बन्धी (युगा) वर्षों को (पुरु) बहुत (चरन्) चलता भोगता हुआ (पलितः) सुपेद बालों वाला भी हो तो (युवा) ज्वान तरुण अवस्था वाला (अजनि) प्रकट होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे प्रीति के साथ

वर्त्तमान स्त्री पुरुष धर्मसम्बन्धी व्यवहार से पुत्र को उत्पन्न कर उसे अच्छी शिक्षा दे शीलवान् कर सुखी करते हैं वैसे समान पढ़ाने और उपदेश करने वाले दो विद्वान् शिष्यों को सुशील करते हैं । वा जैसे दिन, रात्रि के साथ वर्तमान भी अपने स्थान में रात्रि को निवृत्त करता है वैसे अज्ञानियों के साथ वर्त्तमान पढ़ाने और उपदेश करने वाले विद्वान् मोह में नहीं लगते हैं वा जैसे किया है पूरा ब्रह्मचर्य जिन्होंने वे रूपलावण्य और बलादि गुणों से युक्त सन्तान को उत्पन्न करते हैं वैसे ये सत्य पढ़ाने और उपदेश करने से सब का पूरा आत्मबल उत्पन्न करते हैं ॥ ४ ॥

तमीं हिन्वन्ति धीतयो दश व्रिशो देवं मर्त्तास ऊतये हवामहे ।
धनोरधि प्रवत आ स ऋण्वत्यभिव्रजद्भिर्वयुना नवाधित ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (मर्त्तासः) मरणधर्मा मनुष्य हम लोग (ऊतये) रक्षा आदि के लिये जिस (देवम्) विद्वान् को (हवामहे) स्वीकार करते वा (दश) दश (धीतयः) हाथ पैरों की अङ्गुलियों के समान (व्रिशः) प्रजा जिसको (हिन्वन्ति) प्रसन्न करती हैं (तम्, ईम्) उसी को तुम लोग ग्रहण करो जो धनुर्विद्या का जानने वाला (धनोः) धनुष के (अधि) ऊपर आरोप कर छोड़े (प्रवतः) जाते हुए बाणों को (अधित) धारण करता अर्थात् उनका सन्धान करता है (सः) वह (अभिव्रजद्भिः) सब ओर से जाते हुए विद्वानों के साथ (नवा) नवीन (वयुना) उत्तम उत्तम ज्ञानों को (आ, ऋण्वति) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे हाथों की अङ्गुलियों से भोजन आदि की क्रिया करने से शरीरादि बढ़ते हैं वैसे विद्वानों के अध्यापन और उपदेशों की क्रिया से प्रजाजन वृद्धि पाते हैं वा जैसे धनुर्वेद का जानने वाला शत्रुओं को जीत कर रत्नों को प्राप्त होता है वैसे विद्वानों के सङ्ग के फल को जानने वाला जन उत्तम ज्ञानों को प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

त्वं ह्यग्ने दिव्यस्य राजसि त्वं पार्थिवस्य पशुपा इव त्मना ।
एनी त एते बृहती अभिश्रिया हिरण्ययी वक्वरी बर्हिराशाते ॥६॥

पदार्थ—हे (अग्ने) सूर्य के समान प्रकाशमान विद्वान् ! (त्वं, हि) आप ही (पशुपाइव) पशुओं की पालना करने वाले के समान (त्मना) अपने से (दिव्यस्य) अन्तरिक्ष में हुई वृष्टि आदि के विज्ञान को (राजसि) प्रकाशित

करते वा (त्वम्) आप (पार्थिवस्य) पृथिवी में जाने हुए पदार्थों के विज्ञान का प्रकाश करते हो (एते) ये प्रत्यक्ष (एनी) अपनी अपनी कक्षा में घूमने वाले (बृहती) अतीव विस्तारयुक्त (अभिश्रिया) सब ओर से शोभायमान (हिरण्ययी) बहुत हिरण्य जिनमें विद्यमान (वक्वरी) प्रशंसित सूर्यमण्डल और भूमण्डल वा (ते) आप के ज्ञान के अनुकूल (बर्हिः) वृद्धि को (आशाते) व्याप्त होते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे ऋद्धि और सिद्धि पूरी लक्ष्मी को करती हैं वैसे आत्मवान् पुरुष परमेश्वर और पृथिवी के राज्य में अच्छे प्रकार प्रकाशित होता, जैसे पशुओं का पालने वाला प्रीति से अपने पशुओं की रक्षा करता है वैसे सभापति अपने प्रजाजनों की रक्षा करे ॥ ६ ॥

अग्ने जुषस्व प्रति हर्य तद्वचो मन्द्र स्वधाव ऋतजात सुक्रतो ।
यो विश्वतः प्रत्यङ्ङसि दर्शतो रण्वः संदृष्टौ पितुमाँइव क्षयः ॥७॥

पदार्थ—हे (मन्द्र) प्रशंसनीय (स्वधावः) प्रशंसित अन्न वाले (ऋत-जात) सत्य व्यवहार से उत्पन्न हुए (सुक्रतो) सुन्दर कर्मों से युक्त (अग्ने) बिजुली के समान वर्त्तमान विद्वान् (यः) जो (विश्वतः) सब के (प्रत्यङ्) प्रति जाने वा सब से सत्कार लेने वाले (संदृष्टौ) अच्छे दीखने में (दर्शतः) दर्शनीय (रण्वः) शब्द शास्त्र को जानने वाले विद्वान् आप (क्षयः) निवास के लिये घर (पितुमां इव) अन्नयुक्त जैसे हो वैसे (असि) हैं सो आप जो मेरी अभिलाषा का (वचः) वचन है (तत्) उसको (जुषस्व) सेवो और (प्रति,-हर्य) मेरे प्रति कामना करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो प्रशंसित बुद्धि वाले यथायोग्य आहार विहार से रहते हुए सत्य व्यवहार में प्रसिद्ध धर्म के अनुकूल कर्म और बुद्धि रखने हारे शास्त्रज्ञ विद्वानों के समीप से विद्या और उपदेशों को चाहते और सेवन करते हैं वे सब से उत्तम होते हैं ॥ ७ ॥

इस सूक्त में अध्यापक और उपदेशकों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ चवालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ।

———

दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । १ विराड्जगती । २ । ५ निचृज्जगती च छन्दः । निषादः स्वरः ३ । ४ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

तं पृच्छता स जगामा स वेद स चिकित्वाँ ईयते सान्वीयते ।

तस्मिन्त्सन्ति प्रशिषस्तस्मिन् निष्टयः स

वाजस्य शवसः शुष्मिणस्पतिः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (सः) वह विद्वान् सत्य मार्ग में (जगाम) चलता है (सः) वह (वेद) ब्रह्म को जानता है (सः) वह (चिकित्वान्) विज्ञानयुक्त सुखों को (ईयते) प्राप्त होता (सः) वह (नु) शीघ्र अपने कर्त्तव्य को (ईयते) प्राप्त होता है (तस्मिन्) उस में (प्रशिषः) उत्तम उत्तम शिक्षा (सन्ति) विद्यमान हैं (तस्मिन्) उस में (इष्टयः) सत्सङ्ग विद्यमान हैं (सः) वह (वाजस्य) विज्ञानमय (शवसः) बल वा (शुष्मिणः) बलयुक्त सेनासमूह वा राज्य का (पतिः) पालने वाला स्वामी है (तम्) उसको तुम (पृच्छत) पूछो ॥ १ ॥

भावार्थ—जो विद्या और अच्छी शिक्षा युक्त धार्मिक और यत्नशील सब का उपकारी सत्य की पालना करने वाला विद्वान् हो उसके आश्रय जो पढ़ाना और उपदेश हैं उन से सब मनुष्य चाहे हुए काम और विनय को प्राप्त हों ॥ १ ॥

तमित्पृच्छन्ति न सिमो वि पृच्छति स्वेनेव धीरो मनसा यदग्रभीत् ।

न मृष्यते प्रथमं नापरं वचोऽस्य क्रत्वा सचते अप्रदृपितः ॥ २ ॥

पदार्थ—(अप्रदृपितः) जो अतीव मोह को नहीं प्राप्त हुआ वह (धीरः) ध्यानवान् विचारशील विद्वान् (स्वेनेव) अपने समान (मनसा) विज्ञान से (यत्) जिस (वचः) वचन को (अग्रभीत्) ग्रहण करता है वा जो (अस्य) इस शास्त्रज्ञ धर्मात्मा विद्वान् की (क्रत्वा) बुद्धि वा कर्म के साथ (सचते) सम्बन्ध करता है वह (प्रथमम्) प्रथम (न) नहीं (मृष्यते) संशय को प्राप्त होता और वह (अपरम्) पीछे भी (न) नहीं संशय को प्राप्त होता है जिसको (सिमः) सर्व मनुष्यमात्र (न) नहीं (वि, पृच्छति) विशेषता से पूछता है (तमित्) उसी को विद्वान् जन (पृच्छन्ति) पूछते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । आप्त, साक्षात्कार जिन्होंने धर्मादि पदार्थ किये वे शास्त्रवेत्ता मोहादि दोषरहित विद्वान् योगाभ्यास से पवित्र किये हुए आत्मा से जिस जिस को सत्य वा असत्य निश्चय करें वह

वह अच्छा निश्चय किया हुआ है यह और मनुष्य मानें जो उनका सङ्ग न करके सत्य असत्य के निर्णय को जाना चाहते हैं वे कभी सत्य असत्य का निर्णय नहीं कर सकते इस से आप्त विद्वानों के उपदेश से सत्य असत्य का निर्णय करना चाहिये ॥ २ ॥

तमिद्गच्छन्ति जुह्वः स्तमर्वतीर्विश्वान्येकः शृणवद्वचांसि मे ।
पुरुप्रैषस्ततुरिर्यज्ञसाधनोऽच्छिद्रोतिः शिशुरादत्त सं रभः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! आप (एकः) अकेले (मे) मेरे (विश्वानि) समस्त (वचांसि) वचनों को (शृणवत्) सुनें जो (रभः) बड़ा महात्मा (पुरुप्रैषः) जिसको बहुत सज्जनों ने प्रेरणा दी हो (ततुरिः) जो दुःख से सभों का तारने वाला (यज्ञसाधनः) विद्वानों के सत्कार जिस के साधन अर्थात् जिस की प्राप्ति कराने वाले (अच्छिद्रोतिः) जिस से नहीं खण्डित हुई रक्षणादि क्रिया (शिशुः) और जो अविद्यादि दोषों को छिन्न भिन्न करे, सब के उपकार करने को अच्छा यत्न (समादत्त) भली भांति ग्रहण करे (तम्) उसको (अर्वतीः) बुद्धिमति कन्या (गच्छन्ति) प्राप्त होती (तमित्) और उसी को (जुह्वः) विद्या विज्ञान की ग्रहण करने वाली कन्या प्राप्त होती हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों ने जो जाना और जो जो पढ़ा उस उस की परीक्षा जैसे अपने आप पढ़ाने वाले विद्वान् को देवें वैसे कन्या भी अपनी पढ़ाने वाली को अपने पढ़े हुए की परीक्षा देवें, ऐसे करने के विना सत्याऽसत्य का सम्यक् निर्णय होने को योग्य नहीं है ॥ ३ ॥

उपस्थायं चरति यत्समारत सद्यो जातस्तत्सार युज्येभिः ।
अभि श्वान्तं मृशते नान्द्ये मुदे यदीं गच्छन्त्युशतीरपिष्ठितम् ॥४॥

पदार्थ—हे जिज्ञासु जनो ! (यत्) जो (युज्येभिः) युक्त करने योग्य पदार्थों के साथ (सद्यः) शीघ्र (जातः) प्रसिद्ध हुआ (उपस्थायम्) क्षण क्षण उपस्थान करने को (चरति) जाता है वा (तत्सार) कुटिलपन से जावे वा (श्वान्तम्) परिपक्व पूरे ज्ञान को (अभिमृशते) सब ओर से विचारता है वा बुद्धिमान् जन (यत्) जिस (नान्द्ये) अति आनन्द और (मुदे) सामान्य हर्ष होने के लिये (अपिस्थितम्) स्थिर हुए को और (उशतीः) कामना करती हुई पण्डिताओं को (ईम्) सब ओर से (गच्छन्ति) प्राप्त होते उसको तुम (समारत) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो बालक और जो कन्या शीघ्र पूर्ण विद्यायुक्त होते हैं और कुटिलतादि दोषों को छोड़ शान्ति आदि गुणों को प्राप्त होकर

सब को विद्या तथा सुख होने के लिये वार वार प्रयत्न करते हैं वे जगत् को आनन्द देने वाले होते हैं ॥ ४ ॥

स ईं मृगो अप्यो॑ वनर्गुरुप॑त्वच्युप॒मस्यां नि धा॑यि ।
व्य॑ब्रवीद्वयुना मर्त्ये॑भ्योऽग्निर्विद्वाँ ऋ॑तचिद्धि स॒त्यः ॥ ५ ॥

पदार्थ—विद्वानों से जो (अप्यः) जलों के योग्य (वनर्गुः) वनगामी (मृगः) हरिण के समान (उपमस्याम्) उपमा रूप (त्वचि) त्वगिन्द्रिय में (उप, नि, धायि) समीप निरन्तर धरा जाता है वा जो (ऋतचित्) सत्य व्यवहार को इकट्ठा करने वाला (अग्निः) अग्नि के समान विद्या आदि गुणों से प्रकाशमान (विद्वान्) सब विद्याओं को जानने वाला पण्डित (मर्त्येभ्यः) मनुष्यों के लिये (वयुना) उत्तम उत्तम ज्ञानों का (ईम्) ही (वि, अब्रवीत्) विशेष करके उपदेश देता है (सः, हि) वही (सत्यः) सज्जनों में साधु है ॥ ५ ॥

भावार्थ— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे तृषातुर मृग जल पीने के लिये वन में डोलता डोलता जल को पाकर आनन्दित होता है वैसे विद्वान् जन शुभ आचरण करने वाले विद्यार्थियों को पाकर आनन्दित होते हैं और जो शिक्षा पाकर औरों को नहीं देते वे क्षुद्राशय और अत्यन्त पापी होते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में उपदेश करने और उपदेश सुनने वालों के कर्त्तव्य कामों का वर्णन होने सेइस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ पैंतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । २ विराट्त्रिष्टुप् । ३ । ५ त्रिष्टुप् । ४ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

त्रिमूर्द्धानं॑ स॒प्तर॑श्मिं गृणीषेऽनू॑नम॒ग्निं पि॒त्रोरु॒पस्थे॑ ।
नि॒ष॒त्तम॑स्य॒ चर॑तो ध्रु॒वस्य॒ विश्वा॑ दि॒वो रो॑च॒नाप॑प्रि॒वांस॑म् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे धारणशील उत्तम बुद्धि वाले जन ! जिससे तू (पित्रोः) पालने वाले पवन और आकाश के (उपस्थे) समीप में (निषत्तम्) निरन्तर प्राप्त (त्रिमूर्द्धानम्) तीनों निकृष्ट मध्यम और उत्तम पदार्थों में शिर रखने वाले (सप्तरश्मिम्) सात गायत्री आदि छन्दों वा भूरादि सात लोकों में जिसकी प्रकाशरूप किरणें हों ऐसे

(अनूनम्) हीनपने से रहित और (अस्य) इस (चरतः) अपनी गति से व्याप्त (ध्रुवस्य) निश्चल (दिवः) सूर्यमण्डल के (विश्वा) समस्त (रोचना) प्रकाशों को (आपप्रिवांसम्) जिसने सब ओर पूर्ण किया उस (अग्निम्) बिजुली रूप आग के समान वर्त्तमान विद्वान् की (गृणीषे) स्तुति करता है सो तू विद्या पाने योग्य होता है ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे तीन बिजुली सूर्य और प्रसिद्ध अग्नि रूपों से अग्नि चराचर जगत् के कार्यों को सिद्ध करने वाला है वैसे विद्वान् जन समस्त विश्व का उपकार करने वाले होते हैं ॥ १ ॥

उक्षा म॒हाँ अ॒भि व॑वक्ष एने अ॒जर॑स्तस्थावि॒त ऊ॑तिर्ऋ॒ष्वः ।
उ॒र्व्याः प॒दो नि द॑धाति॒ सानौ॑ रि॒हन्त्यूधो॑ अरु॒षासो॑ अस्य ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (उर्व्याः) पृथिवी से (महान्) बड़ा (उक्षा) वर्षा जल से सींचने वाला (अजरः) हानिरहित (ऋष्वः) गतिमान् सूर्यः (एने) इन अन्तरिक्ष और भूमिमण्डल को (अभि, ववक्षे) एकत्र करता है (इत ऊतिः) वा जिससे रक्षा आदि क्रिया प्राप्त होतीं ऐसा होता हुआ (पदः) अपने अंशों को (नि, दधाति) निरन्तर स्थापित करता है (अस्य) इस सूर्य की (अरुषासः) नष्ट होती हुई किरणें (सानौ) अलग अलग विस्तृत जगत् में (ऊधः) जलस्थान को (रिहन्ति) प्राप्त होती हैं वा जो ब्रह्माण्ड के बीच में (तस्थौ) स्थिर है उसके समान तुम लोग होओ ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को जैसे सूत्रात्मा वायु भूमि और सूर्यमण्डल को धारण करके संसार की रक्षा करता है वा जैसे सूर्य पृथिवी से बड़ा है वैसा वर्त्ताव वर्त्तना चाहिये ॥ २ ॥

स॒मा॒नं व॒त्सम॒भि सं॒चर॑न्ती॒ विष्व॑ग्धे॒नू वि च॑रतः सु॒मेके॑ ।
अ॒न॒प॒वृ॒ज्याँ अध्व॑नो॒ मिमा॑ने॒ विश्वा॒न् केताँ॒ अधि॑ म॒हो दधा॑ने ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे सूर्यलोक और भूमण्डल दोनों (समानम्) तुल्य (वत्सम्) बछड़े के समान वर्त्तमान दिन रात्रि को (अभि, सं, चरन्ती) सब ओर से अच्छे प्रकार प्राप्त होते हुए (सुमेके) सुन्दर जिनका त्याग करना (अध्वनः) मार्ग से (अनपवृज्यान्) न दूर करने योग्य पदार्थों को (मिमाने) बनावट करने वाले (महः) बड़े बड़े (विश्वान्) समग्र (केतान्) बोधों को (अधि, दधाने) अधिकता से धारण करते हुए (धेनू) गौओं के समान (विष्वक्, वि, चरतः) सब ओर से विचर रहे हैं वैसे इन्हें जान पक्षपात को छोड़ सब कामों को पूरा करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सूर्य के समान न्याय गुणों के आकर्षण [और] प्रकाश करने वाले नानाविध मार्गों का निर्माण करते हुए धेनु के समान सब की पुष्टि करते हुए समग्र विद्याओं को धारण करते हैं वे दुःखरहित होते हैं॥ ३॥

धीरा॑सः प॒दं क॒वयो॑ नयन्ति॒ नाना॑ हृ॒दा रक्ष॑माणा अजु॒र्यम्।
सि॒षा॑सन्तः॒ पर्य॑पश्यन्त॒ सिन्धु॑मा॒विरे॑भ्यो अभवत्॒ सूर्यो॒ नॄन्॥ ४॥

पदार्थ--जो (धीरास) ध्यानवान् (कवयः) त्रिविध प्रकार के पदार्थों में आक्रमण करने वाली बुद्धियुक्त विद्वान् (हृदा) हृदय से (नाना) अनेक (नॄन्) मुखियों की (रक्षमाणाः) रक्षा करते और (सिषासन्तः) अच्छे प्रकार विभाग करने की इच्छा करते हुए (सूर्यः) सूर्य के समान अर्थात् जैसे सूर्यमण्डल (सिन्धुम्) नदी के जल को स्वीकार करता वैसे (अजुर्यम्) हानिरहित (पदम्) प्राप्त करने योग्य पद को (नयन्ति) प्राप्त होते हैं वे परमात्मा को (परि, अपश्यन्त) सब ओर से देखते अर्थात् सब पदार्थों में विचारते हैं जो (एभ्यः) इन से विद्या और उत्तम शिक्षा को पा के (आविः) प्रकट (अभवत्) होता है वह भी उस पद को प्राप्त होता है॥ ४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सब को आत्मा के समान सुख दुःख की व्यवस्था में जान न्याय का ही आश्रय करते हैं वे अव्यय पद को प्राप्त होते हैं जैसे सूर्य जल को वर्षा कर नदियों को भरता पूरी करता है वैसे विद्वान् जन सत्य वचनों को वर्षा कर मनुष्यों के आत्माओं को पूर्ण करते हैं॥ ४॥

दि॒दृक्षेण्यः॒ परि॒ काष्ठा॑सु॒ जेन्य॑ ई॒ळेन्यो॑ म॒हो अर्भा॑य जी॒वसे॑।
पु॒रु॒त्रा यदभ॑वत्सूरहै॑भ्यो॒ गर्भे॑भ्यो॒ म॒घवा॑ वि॒श्वद॑र्शतः॥ ५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! (यत्) जो (अह) ही (एभ्यः) इन (गर्भेभ्यः) स्तुति करने के योग्य उत्तम विद्वानों से (महः) बहुत और (अर्भाय) अल्प (जीवसे) जीवन के लिये (पुरुत्रा) बहुतों में (मघवा) परम प्रतिष्ठित धनयुक्त (विश्वदर्शतः) समस्त विद्वानों से देखने के योग्य (दिदृक्षेण्यः) वा देखने की इच्छा से चाहने योग्य (काष्ठासु) दिशाओं में (जेन्यः) जीतने वाला अर्थात् दिग्विजयी (ईळेन्यः) और स्तुति प्रशंसा करने के योग्य (सूः) सब ओर से उत्पन्न (परि, अभवत्) हो सो सब को सत्कार करने के योग्य है॥ ५॥

भावार्थ—जो दिशाओं में व्याप्त कीर्ति अर्थात् दिग्विजयी प्रसिद्ध शत्रुओं को जीतने वाले उत्तम विद्वानों से विद्या उत्तम शिक्षाओं को पाये हुए शुभ गुणों से दर्शनीय जन हैं वे संसार के मङ्गल के लिये समर्थ होते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जानना चाहिये ॥

यह एकसौ छयालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ३ । ४ । ५ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कथा ते अग्ने शुचयन्त आयोर्ददाशुर्वाजेभिराशुषाणाः ।
उभे यत्तोके तनये दधाना ऋतस्य सामन्रणयन्त देवाः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् (ददाशुः) देने वाले (आयोः) विद्वान् ! जो आप (ते) उन तुम्हारे (यत्) जो (वाजेभिः) विज्ञानादि गुणों के साथ (आशुषाणाः) शीघ्र विभाग करने वाले (तनये) पुत्र और (तोके) पौत्र आदि के निमित्त (उभे) दो प्रकार के चरित्रों को (दधानाः) धारण किये हुए (शुचयन्तः) पवित्र व्यवहार अपने को चाहते हुए (देवाः) विद्वान् जन हैं वे (सामन्) सामवेद में (ऋतस्य) सत्य व्यवहार का (कथा) कैसे (रणयन्त) वाद विवाद करें ॥ १ ॥

भावार्थ—सब अध्यापक विद्वान् जन उपदेशक शास्त्रवेत्ता धर्मज्ञ विद्वान् को पूछें कि हम लोग कैसे पढ़ावें, वह उन्हें अच्छे प्रकार सिखावे, क्या सिखावे ? कि जैसे ये विद्या तथा उत्तम शिक्षा को प्राप्त इन्द्रियों को जीतने वाले धार्मिक पढ़ने वाले हों वैसे आप लोग पढ़ावें यह उत्तर है ॥ १ ॥

बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठ मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः ।
पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति वन्दारुस्ते तन्वं वन्दे अग्ने ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (स्वधावः) प्रशंसित अन्न वाले (यविष्ठ) अत्यन्त तरुण ! तू (मे) मेरे (अस्य) इस (मंहिष्ठस्य) अतीव बुद्धियुक्त (प्रभृतस्य) उत्तमता से धारण किये हुए (वचसः) वचन को (बोध) जान । हे (अग्ने) विद्वानों में उत्तम विद्वान् ! जैसे (वन्दारुः) वन्दना करने वाला मैं (ते) तेरे (तन्वम्)

शरीर को (वन्दे) अभिवादन करता हूं वा जैसे (त्वः) दूसरा कोई जन (पीयति) जल आदि को पीता है वा जैसे (त्वः) दूसरा कोई और जन (अनुगृणाति) अनुकूलता से स्तुति प्रशंसा करता है वैसे मैं भी होऊं॥ २॥

भावार्थ—जब आचार्य के समीप शिष्य पढ़े तब पिछले पढ़े हुए की परीक्षा देवे, पढ़ने से पहिले आचार्य को नमस्कार, उस की वन्दना करे और जैसे अन्य धीर बुद्धि वाले पढ़ें वैसे आप भी पढ़े॥ ॥

ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन्।

ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः॥ ३॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वान्! (ते) आप के (ये) जो (पश्यन्तः) अच्छे देखने वाले (पायवः) रक्षा करने वाले (मामतेयम्) प्रजा का अपत्य जो कि (अन्धम्) अविद्या युक्त हो उसको (दुरितात्) दुष्ट आचरण से (अरक्षन्) बचाते हैं (तान्) उन (सुकृतः) सुकृती उत्तम कर्म करने वाले जनों को (विश्ववेदः) समस्त विज्ञान के जानने वाले आप (ररक्ष) पालें जिससे (दिप्सन्तः) हम लोगों को मारने की इच्छा करते हुए (इत्) भी (रिपवः) शत्रुजन (न, अह) नहीं (देभुः) मार सकें॥ ३॥

भावार्थ—जो विद्याचक्षु जन, अन्धे को कूप से जैसे वैसे मनुष्यों को अविद्या और अधर्म के आचरण से बचावें उनका पितरों के समान सत्कार करें और जो दुष्ट आचरणों में गिरावें उन का दूर से त्याग करते रहें॥ ३॥

यो नो अग्ने अररिवाँ अघायुररातीवा मर्चयति द्वयेन।

मन्त्रो गुरुः पुनरस्तु सो अस्मा अनु मृक्षीष्ट तन्वं दुरुक्तैः॥ ४॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वान्! (यः) जो (अररिवान्) दुःखों को प्राप्त करता हुआ (अघायुः) अपने को अपराध की इच्छा करने वाला (अरातीवा) न देने वाले जन के समान आचरण करता (द्वयेन) दो प्रकार के कर्म से वा (दुरुक्तैः) दुष्ट उक्तियों से (नः) हम लोगों को (मर्चयति) कहता है उससे जो हमारे (तन्वम्) शरीर को (अनु, मृक्षीष्ट) पीछे शोधे (सः) वह हमारा और (अस्मै) उक्त व्यवहार के लिये (पुनः) वार वार (मन्त्रः) विचारशील (गुरुः) उपदेश करने वाला (अस्तु) होवे॥ ४॥

भावार्थ—जो मनुष्यों के बीच दुष्ट शिक्षा देते वा दुष्टों को सिखाते हैं वे छोड़ने योग्य और जो सत्य शिक्षा देते वा सत्य वर्त्ताव वर्त्तने वाले को सिखाते वे मानने के योग्य होवें॥ ४॥

उत वा यः सहस्य प्रविद्वान्मर्त्तो मर्त्तं मर्चयति द्वयेन ।
अतः पाहि स्तवमान स्तुवन्तमग्ने माकिर्नो दुरिताय धायीः ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (सहस्य) बलादिक में प्रसिद्ध होने (स्तवमान) और सज्जनों की प्रशंसा करने वाले (अग्ने) विद्वान् ! तू (यः) जो (प्रविद्वान्) उत्तमता से जानने वाला (मर्त्तः) मनुष्य (द्वयेन) अध्यापन और उपदेश रूप से (मर्त्तम्) मनुष्य को (मर्चयति) कहता है अर्थात् प्रशंसित करता है (अतः) इससे (स्तुवन्तम्) स्तुति अर्थात् प्रशंसा करते हुए जन को (पाहि) पालो (उत, वा) अथवा (नः) हम लोगों को (दुरिताय) दुष्ट आचरण के लिये (माकिः) मत कभी (धायीः) धायिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् उत्तम शिक्षा और पढ़ाने से मनुष्यों के आत्मिक और शारीरिक बल को बढ़ा के और उन को अविद्या और पाप के आचरण से अलग करते हैं वे सब को शुद्धि करने वाले होते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में मित्र और अमित्रों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जानना चाहिये ॥

यह एकसौ सैंतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । २ पङ्क्तिः । ५ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३ । ४ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मथीद्यदीं विष्टो मातरिश्वा होतारं विश्वाप्सुं विश्वदेव्यम् ।
नि यं दधुर्मनुष्यासु विक्षु स्व१र्ण चित्रं वपुषे विभावम् ॥ १ ॥

हे मनुष्यो ! (यत्) जो (विष्टः) प्रविष्ट (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष में सोने वाला पवन (विश्वदेव्यम्) समस्त पृथिव्यादि पदार्थों में हुए (विश्वाप्सुम्) समग्र रूप ही जिसका गुण उस (होतारम्) सब पदार्थों के ग्रहण करने वाले अग्नि को (मथीत्) मथता है वा विद्वान् जन (मनुष्यासु) मनुष्यसम्बन्धिनी (विक्षु) प्रजाओं में (स्वः) सूर्य के (न) समान (चित्रम्) अद्भुत और (वपुषे) रूप के लिये (विभावम्) विशेषता से भावना करने वाले (यम्) जिस अग्नि को (ईम्) सब ओर से (नि, दधुः) निरन्तर धारण करते हैं उस अग्नि को तुम लोग धारण करो ॥ १ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पवन के समान व्याप्त होने वाली विजुली रूप

आग को मथ के कार्य्यों की सिद्धि करते हैं वे अद्भुत कार्यों को कर सकते हैं ॥ १ ॥

दुदानमिन्न दंदभन्त मन्माग्निर्वरूथं मम तस्य चाकन् ।
जुषन्त विश्वान्यस्य कर्मोपस्तुतिं भरमाणस्य कारोः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! आप जो (अग्निः) विद्वान् (मम) मेरे और (तस्य) उसके (वरूथम्) उत्तम (मन्म) विज्ञान को (ददानम्) देते हुए उनकी (चाकन्) कामना करता है उसको (नेत्) नहीं (ददभन्त) मारो (अस्य) इस (भरमाणस्य) भरण पोषण करते हुए (कारोः) शिल्पविद्या से सिद्ध होने योग्य कामों को करने वाले उनके (विश्वानि) समस्त (कर्म) कर्मों की (उपस्तुतिम्) समीप प्राप्त हुई प्रशंसा को आप (जुषन्त) सेवो ॥ २ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो जिनके लिये विद्या दें वे उसकी सेवा निरन्तर करें और अवश्य लोग वेद का अभ्यास करें ॥ २ ॥

नित्ये चिन्नु यं सदने जगृभ्रे प्रशंस्तिभिर्दधिरे यज्ञियासः ।
प्र सु नयन्त गृभयन्त इष्टावश्वासो न रथ्यो रारहाणाः ॥ ३ ॥

पदार्थ--(यज्ञियासः) शिल्प यज्ञ के योग्य सज्जन (प्रशस्तिभिः) प्रशंसित क्रियाओं से (नित्ये) नित्य नाशरहित (सदने) बैठें जिस आकाश में और (इष्टौ) प्राप्त होने योग्य क्रिया में (यम्) जिस अग्नि का (जगृभ्रे) ग्रहण करें (चित्) और (नु) शीघ्र (दधिरे) धेरें उसके आश्रय से (रारहाणाः) जाते हुए जो कि (रथ्यः) रथों में उत्तम प्रशंसा करने वाले (अश्वासः) अच्छे शिक्षित घोड़े हैं उनके (न) समान और (गृभयन्तः) पदार्थों को ग्रहण करने वालों के समान आचरण करते हुए रथों की (सु, प्र, नयन्त) उत्तम प्रीति से प्राप्त होवें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो नित्य आकाश में स्थित वायु और अग्नि आदि पदार्थों को उत्तम क्रियाओं से कार्यों में युक्त करते हैं वे विमान आदि यानों को बना सकते हैं ॥ ३ ॥

पुरूणि दस्मो निरिणाति जम्भैराद्रोचते वन आ विभावा ।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरस्तुर्न शर्यामसनामनु द्यून् ॥४॥

पदार्थ--जो (विभावा) विशेषता से दीप्ति करने तथा (दस्मः) दुःख का नाश करने वाला अग्नि (जम्भः) चलाने आदि अपने गुणों से (पुरूणि) बहुत वस्तुओं को (अनु, द्यून्) प्रति दिन (नि, रिणाति) निरन्तर पहुँचाता है (आत्) इसके अनन्तर (वने) जङ्गल में (आ, रोचते) अच्छे प्रकार प्रकाशमान होता है

(आत्) और (अस्य) इसका सम्बन्धी (वातः) पवन (अनु, वाति) इसके पीछे बहता है जिसकी (शोचिः) दीप्ति प्रकाशमान (अस्तुः) प्रेरणा देने वाले शिल्पी जन की (असनाम्) प्रेरणा के (न) समान (शर्याम्) पवन की ताड़ना को प्राप्त होता है उसके उत्तम काम मनुष्यों को सिद्ध करने चाहियें। । ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो विद्या से उत्पन्न किई हुई ताड़नादि क्रियाओं से बिजुली की विद्या को सिद्ध करते हैं वे प्रतिदिन उन्नति को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

न यं रिपवो न रिषण्यवो गर्भे सन्तं रेषणा रेषयन्ति ।
अन्धा अपश्या न दंभन्नभिख्या नित्यास ईं प्रेतारो अरक्षन् ॥ ५ ॥

पदार्थ—(यम्) जिसको (रिपवः) शत्रुजन (न) नहीं (रेषयन्ति) नष्ट करा सकते वा (गर्भे, सन्तम्) मध्य में वर्त्तमान जिस को (रेषणाः) हिंसक (रिषण्यवः) अपने को नष्ट होने की इच्छा करने वाले (न) नष्ट नहीं करा सकते वा (नित्यासः) नित्य अविनाशी (अभिख्या) सब ओर से ख्याति करने और (अपश्याः) न देखने वालों के (न) समान (अन्धाः) ज्ञान दृष्टिरहित न (दभन्) नष्ट कर सकें जो (प्रेतारः) प्रीति करने वाले (ईम्) सब ओर से (अरक्षन्) रक्षा करें उस अग्नि को और उन को सब सत्कार युक्त करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस को रिपु जन नष्ट नहीं कर सकते हैं, जो गर्भ में भी नष्ट नहीं होता है वह आत्मा जानने योग्य है ॥ ५ ॥

इस सूक्त में विद्वान् और अग्नि आदि पदार्थों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानने योग्य है ॥

यह एकसौ अड़तालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । १ भुरिगनुष्टुप् । २ । ४ । निचृदनुष्टुप् । ५ विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः । ३ उष्णिक्छन्दः । ऋषभः । स्वरः ।

महः स राय एषते पतिर्दन्निन इनस्य वसुनः पद आ ।
उप ध्रजन्तमद्रयो विधन्नित् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जो (इनस्य) महान् ऐश्वर्य के स्वामी का (इनः) ईश्वर (वसुनः) सामान्य धन का और (महः) अत्यन्त (रायः) धन का (दन्) देने वाला (पतिः) स्वामी (आ, ईषते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है

वा जो विद्वान् जन इसकी (पदे) प्राप्ति के निमित्त (ध्रजन्तम्) पहुँचते हुए को (अद्रयः) मेघों के (इत्) समान (उपाविधन्) निकट होकर अच्छे प्रकार विधान करे (सः) वह सब को सत्कार करने योग्य है ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । इस संसार में जैसे सुपात्र को देने से कीर्ति होती है वैसे और उपाय से नहीं जो पुरुषार्थ का आश्रय कर अच्छा यत्न करता है वह पूर्ण धन को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

स यो वृषा नरां न रोदस्योः श्रवोभिरस्ति जीवपीतसर्गः ।
प्र यः सस्राणः शिश्रीत योनौ ॥ २ ॥

पदार्थ—(यः) जो (श्रवोभिः) अन्न आदि पदार्थों के साथ (नराम्) मनुष्यों के बीच (न) जैसे वैसे (रोदस्योः) आकाश और पृथिवी के बीच (जीवपीतसर्गः) जीवों के साथ पिया है सृष्टिक्रम जिसने अर्थात् विद्या बल से प्रत्येक जीव के गुण दोषों को उत्पत्ति के साथ जाना वा (यः) जो (सस्राणः) सब पदार्थों के गुण दोषों को प्राप्त होता हुआ (योनौ) कारण में अर्थात् सृष्टि के निमित्त में (प्र, शिश्रीत) आश्रय करे उस में आरुढ़ हो (सः) वह (वृषा) श्रेष्ठ बलवान् (अस्ति) है ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो नायकों में नायक, पृथिवी आदि पदार्थों के कार्य कारण को जानने वालों की विद्या का आश्रय करता है वही सुखी होता है ॥ २ ॥

आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्यः कविर्नभन्यो३नार्वा ।
सूरो न रुरुक्वाञ्छतात्मा ॥ ३ ॥

पदार्थ—(यः) जो (अत्यः) व्याप्त होने वाला (नभन्यः) आकाश में प्रसिद्ध पवन उसके (न) समान (कविः) क्रम क्रम से पदार्थों में व्याप्त होने वाली बुद्धि वाला वा (अर्वा) घोड़ा और (सूरः) सूर्य के (न) समान (रुरुक्वान्) रुचिमान् (शतात्मा) असंख्यात पदार्थों में विशेष ज्ञान रखने वाला जन (नार्मिणीम्) क्रीडाविलासी आनन्द भोगने वाले जनों की (पुरम्) पुरी को (आदीदेत्) अच्छे प्रकार प्रकाशित करे वह न्याय करने योग्य होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो असंख्यात पदार्थों की विद्याओं को जानने वाला अच्छी शोभा युक्त नगरी को वसावे वह ऐश्वर्यों से सूर्य के समान प्रकाशमान हो ॥ ३ ॥

अभि द्विजन्मा त्री रो॑चनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अ॑स्थात् ।
होता यजिष्ठो अपां सधस्थे ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (द्विजन्मा) दो आर्थात् आकाश और वायु से प्रसिद्ध जिसका जन्म ऐसा (होता) आकर्षण शक्ति से पदार्थों को ग्रहण करने और (यजिष्ठः) अतिशय करके सङ्गत होने वाला अग्नि (अपाम्) जलों के (सधस्थे) साथ के स्थान में (त्री) तीन (रोचनानि) अर्थात् सूर्य बिजुली और भूमि के प्रकाशों को और (विश्वा) समस्त (रजांसि) लोकों को (शुशुचानः) प्रकाशित करता हुआ (अभ्यस्थात्) सब ओर से स्थित हो रहा है वैसे तुम होओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्या और धर्मसंयुक्त व्यवहार में विद्वानों के सङ्ग से प्रकाशित हुए स्थान के निमित्त अनुष्ठान करते हैं वे समस्त अच्छे गुण कर्म और स्वभावों के ग्रहण करने के योग्य होते हैं ॥ ४ ॥

अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वां दधे वार्याणि श्रवस्या ।
मर्तो यो अ॑स्मै सुतुको ददाश ॥ ५ ॥

पदार्थ—(यः) जो (सुतुकः) सुन्दर विद्या से बढ़ा उन्नति को प्राप्त हुआ (मर्त्तः) मनुष्य (अस्मै) इस विद्यार्थी के लिये विद्या को (ददाश) देता है वा (यः) जो (द्विजन्मा) गर्भ और विद्या शिक्षा से उत्पन्न हुआ (होता) उत्तम गुणग्राही (विश्वा) समस्त (श्रवस्यां) सुनने में प्रसिद्ध हुए (वार्याणि) स्वीकार करने योग्य विषयों को (दधे) धारण करता है (सः) (अयम्) सो यह पुण्यवान् होता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—जिस को विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त माता पिताओं से एक जन्म और दूसरा जन्म आचार्य और विद्या से हो वह द्विज होता हुआ विद्वान् हो ॥ ५ ॥

इस सूक्त में विद्वान् और अग्न्यादि पदार्थों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह एकसौ उनचासवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ३ भुरिग्गायत्रीच्छन्दः । षड्जः स्वरः । २ निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

पुरु त्वा दाश्वान् वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा ।

तोदस्येव शरण आ महस्य ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् ! (दाश्वान्) दान देने और (अरिः) व्यवहारों की प्राप्ति कराने वाला मैं (महस्य) महान् (तोदस्येव) व्यथा देने वाले के जैसे वैसे (तव) आप के (स्वित्) ही (आ, शरणे) अच्छे प्रकार घर में (त्वा) आप को (पुरु आ, वोचे) बहुत भली भाँति से कहूँ ॥ १ ॥

भावार्थ—जो जिसका रक्खा हुआ सेवक हो वह उसकी आज्ञा का पालन करके कृतार्थ होवे ॥ १ ॥

व्यनिनस्य धनिनः प्रहोषे चिदररुषः ।

कदा चन प्रजिगतो अदेवयोः ॥ २ ॥

पदार्थ—मैं (अदेवयोः) जो नहीं विद्वान् हैं उन को (प्रजिगतः) जो उत्तमता से निरन्तर प्राप्त होता हुआ (अररुषः) अहिंसक (व्यनिनस्य) विशेषता से प्रशंसित प्राण का निमित्त (धनिनः) बहुत धनयुक्त जन है उस के (प्रहोषे) उस को अच्छे ग्रहण करने वाले के लिये (कदा, चन) कभी प्रिय वचन न कहूं ऐसे (चित्) तूं भी मत बोल ॥ २ ॥

भावार्थ—जो अविद्वान् पढ़ाने और उपदेश करने वालों के सङ्ग को छोड़ विद्वानों का सङ्ग करता है वह सुखों से युक्त होता है ॥ २ ॥

स चन्द्रो विप्र मर्त्यो महो व्राधन्तमो दिवि ।

प्रप्रेत्ते अग्ने वनुषः स्याम ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् ! जैसे हम लोग (वनुषः) अलग सब को बांटने वाले (ते) आप के उपकार करने भाले (प्रप्र, इत्, स्याम) उत्तम ही प्रकार से होवें । वा हे (विप्र) धीर बुद्धि वाले जन जैसे (सः) वह (मर्त्यः) मनुष्य (व्राधन्तमः) अतीव उन्नति को प्राप्त जैसे (महः) बड़ा (चन्द्रः) चन्द्रमा (दिवि) आकाश में वर्त्तमान है वैसे तू भी अपना वर्त्ताव रख ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे पृथिव्यादि पदार्थों को जाने हुए विद्वान् जन विद्याप्रकाश में प्रवृत्त होते हैं वैसे और जनों को भी वर्त्ताव रखना चाहिये ॥ ३ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ पचासवां सूक्त समाप्त हुआ ।

दीर्घतमा ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । १ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २—५ विराट् जगती । ६ । ७ । जगती । ८ । ९ निचृज्जगती च छन्दः । निषादः स्वरः ॥

मित्रं न यं शिम्या गोषु गव्यवः स्वाध्यो विदथे अप्सु जीजनन् ।
अरेजेतां रोदसी पाजसा गिरा प्रति प्रियं यजतं जनुषामवः ॥१॥

पदार्थ—(**प्रियम्**) जो प्रसन्न करता वा (**यजतम्**) सङ्ग करने योग्य (**यम्**) जिस अग्नि को (**जनुषाम्**) मनुष्यों के (**अवः**) रक्षा आदि के (**प्रति**) प्रति वा (**स्वाध्यः**) जिन की उत्तम धीरबुद्धि वे (**गोषु**) गौओं में (**गव्यवः**) गौओं की इच्छा करने वाले जन (**मित्रं, न**) मित्र के समान (**विदथे**) यज्ञ में (**शिम्या**) कर्म से (**अप्सु**) प्राणियों के प्राणों में (**जीजनन्**) उत्पन्न कराते अर्थात् उस यज्ञ कर्म द्वारा वर्षा और वर्षा से अन्न होते और अन्नों से प्राणियों के जठराग्नि को बढ़ाते हैं उस अग्नि के (**पाजसा**) बल (**गिरा**) रूप उत्तम शिक्षित वाणी से (**रोदसी**) सूर्यमण्डल और पृथिवीमण्डल (**अरेजेताम्**) कम्पायमान होते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् प्रजापालना किया चाहते हैं वे मित्रता कर समस्त जगत् की रक्षा करें ॥ १ ॥

यद्ध त्यद्वां पुरुमीळ्हस्य सोमिनः प्र मित्रासो न दधिरे स्वाभुवः ।
अध क्रतुं विदतं गातुमर्चत उत श्रुतं वृषणा पस्त्यावतः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (**वृषणा**) शर आदि की वर्षा कराते दुष्टों की शक्ति को बांधते हुए अध्यापक और उपदेशको ! तुम दोनों (**पुरुमीळ्हस्य**) बहुत गुणों से सींचे हुए (**पस्त्यावतः**) प्रशंसित घरों वाले (**सोमिनः**) बहुत ऐश्वर्ययुक्त सज्जन की (**क्रतुम्**) बुद्धि को (**यत्, ह**) जो निश्चय के साथ (**स्वाभुवः**) उत्तमता से परोपकार में प्रसिद्ध होने वाले जन (**मित्रासः**) मित्रों के (**न**) समान (**प्र, दधिरे**) अच्छे प्रकार धारण करते (**त्यत्**) उनकी (**गातुम्**) पृथिवी को (**विदतम्**) प्राप्त होओ (**अधोत**) इसके अनन्तर भी (**वाम्**) तुम दोनों का (**अर्चते**) सत्कार करते हुए जन को (**श्रुतम्**) सुनो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मित्र के समान सब जनों

में उत्तम बुद्धि को स्थापन कर विद्याओं का स्थापन करते हैं वे अच्छे भाग्यशाली होते हैं ॥ २ ॥

आ वां भूषन् क्षितयो जन्म रोदस्योः प्रवाच्यं वृषणा दक्षसे महे ।
यदीमृताय भरथो यदर्वते प्र होत्रया शिम्या वीथो अध्वरम् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (वृषणा) विद्या की वर्षा कराने वाले (यत्) जो (रोदस्योः) अन्तरिक्ष और पृथिवी के बीच वर्त्तमान (क्षितयः) मनुष्य (महे) अत्यन्त (दक्षसे) आत्मबल के लिये (वाम्) तुम दोनों का (प्रवाच्यम्) अच्छे प्रकार कहने योग्य (जन्म) जन्म को (भूषन्) सुशोभित करें उन के सङ्ग से (यत्) जिस कारण (अर्वते) प्रशंसित विज्ञान वाले (ऋताय) सत्यविज्ञान युक्त सज्जन के लिये (होत्रया) ग्रहण करने योग्य (शिम्या) अच्छे कर्मों से युक्त क्रिया से (अध्वरम्) अहिंसा धर्म युक्त व्यवहार को तुम (आ, भरथः) अच्छे प्रकार धारण करते हो और (ईम्) सब ओर से उस को (प्र, वीथः) व्याप्त होते हो इससे आप प्रशंसा करने योग्य हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् बाल्यावस्था से लेकर पुत्र और कन्याओं को विद्या जन्म की अति उन्नति दिलाते हैं वे सत्य के प्रचार से सब को विभूषित करते हैं ॥ ३ ॥

प्र सा क्षितिरसुर या महि प्रिय ऋतावानावृतमा घोषथो बृहत् ।
युवं दिवो बृहतो दक्षमाभुवं गां न धुर्युप युञ्जाथे अपः ॥ ४ ॥

पदार्थ – हे (ऋतावानौ) सत्य आचरण करने वाले (असुर) प्राण के समान बलवान् मित्र वरुण राज प्रजा जन ! (युवम्) तुम दोनों जिस कारण (बृहतः) अति उन्नति को प्राप्त (दिवः) प्रकाश (दक्षम्) बल और (अपः) कर्म को (धुरि) गाड़ी चलाने की धुरि के निमित्त (आभुवम्) अच्छे प्रकार होने वाले (गाम्) प्रबल बैल के (न) समान (उप, युञ्जाथे) उपयोग में लाते हो और (बृहत्) अत्यन्त (ऋतम्) सत्यवहार को (आघोषथः) विशेषता से शब्दायमान कर प्रख्यात करते हो इससे तुम दोनों को (या) जो (महि) अत्यन्त (प्रिया) सुखकारिणी (क्षितिः) भूमि है (सा) वह (प्र) प्राप्त होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो सत्य का आचरण करते और उसका उपदेश करते हैं वे असंख्य बल को प्राप्त होकर पृथिवी के राज्य को भोगते हैं ॥ ४ ॥

मही अत्र महिना वारमृण्वथोऽरेणवस्तुज आ सद्मन्धेनवः ।
स्वरन्ति ता उपरताति सूर्यमा निम्रुच उषसस्तक्ववीरिव ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे पढ़ाने और उपदेश करने वाले सज्जनो ! तुम दोनों (**तक्ववीरिव**) जो सेनाजनों को व्याप्त होता उस के समान (**अत्र**) इस (**मही**) पृथिवी में (**महिना**) बड़प्पन से (**उपरताति**) मेघों के अवकाश वाले अर्थात् मेघ जिस में आते जाते उस अन्तरिक्ष में (**सूर्यम्**) सूर्यमण्डल को (**आ, निम्रुचः**) मर्यादा माने निरन्तर गमन करती हुई (**उषसः**) प्रभात वेलाओं के समान (**अरेणवः**) जो दुष्टों को नहीं प्राप्त (**तुजः**) सज्जनों ने ग्रहण किई हुई (**धेनवः**) जो दुग्ध पिलाती हैं वे गौयें (**सद्मन्**) अपने गोंडों में (**वारम्**) स्वीकार करने योग्य (**आ, स्वरन्ति**) सब ओर से शब्द करती हैं (**ताः**) उन को (**ऋण्वथः**) प्राप्त होओ ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे दूध देने वाली गौयें सब प्राणियों को प्रसन्न करती हैं वैसे पढ़ाने और उपदेश करने वाले जन विद्या और उत्तम शिक्षा को अच्छे प्रकार देकर सब मनुष्यों को सुखी करें ॥५॥

आ वामृताय केशिनीरनूषत मित्र यत्र वरुण गातुमर्चथः ।
अव त्मना सृजतं पिन्वतं धियो युवं विप्रस्य मन्मनामिरज्यथः ॥६॥

पदार्थ—हे (**मित्र**) मित्र और (**वरुण**) श्रेष्ठ विद्वानो ! (**यत्र**) जहां (**ऋताय**) सत्याचरण के लिये (**केशिनीः**) चमक दमक वाली सुन्दरी स्त्री (**वाम्**) तुम दोनों की (**अनूषत**) स्तुति करें वहां (**युवम्**) तुम दोनों (**गातुम्**) सत्य स्तुति को (**आ अर्चथः**) अच्छे प्रकार प्रशंसित करते हो (**त्मना**) अपने से (**विप्रस्य**) धीरबुद्धि युक्त सज्जन की (**धियः**) उत्तम बुद्धियों को (**अव, सृजतम्**) निरन्तर उत्पन्न करो और (**पिन्वतम्**) उपदेश द्वारा सींचो (**मन्मनाम्**) और मान करती हुई को (**इरज्यथः**) ऐश्वर्य्ययुक्त करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो यहां प्रशंसायुक्त स्त्रियां और जो पुरुष हैं वे अपने समान पुरुष स्त्रियों के साथ संयोग करें, ब्रह्मचर्य से और विद्या से विशेष ज्ञान की उन्नति कर ऐश्वर्य को बढ़ावें ॥ ६ ॥

यो वां यज्ञैः शशमानो ह दाशति कविर्होता यजति मन्मसाधनः ।
उपाह तं गच्छथो वीथो अध्वरमच्छा गिरः सुमतिं गन्तमस्मयू ॥७॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको ! (**यः**) जो (**शशमानः**) सब विषयों को पार होता हुआ (**कविः**) अत्यन्त बुद्धियुक्त (**होता**) सब विषयों को

ग्रहण करने वाला (मन्मसाधनः) जिसका विज्ञान ही साधन वह सज्जन (यज्ञैः) मिल के किये हुए कामों से (वाम्) तुम दोनों को सुख (दाशति) देता है और (यजति) तुम्हारा सत्कार करता है (तं, ह) उसी के (अस्मयू) हमारी इच्छा करते हुए तुम (उप, गच्छथः) सङ्ग पहुंचे हो वे आप (अह) वे रोक टोक (अध्वरम्) हिंसा रहित व्यवहार को (गन्तुम्) प्राप्त होओ और (गिरः) सुन्दर शिक्षा की हुई वाणी और (सुमतिम्) सुन्दर विशेष बुद्धि को (अच्छ) उत्तम रीति से (वीथः) चाहो ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो इस संसार में सत्य विद्या की कामना करने वाले सब के लिये विद्या दान से उत्तम शीलपन का सम्पादन करते हुए सुख देते हैं वे सब को सत्कार करने योग्य हैं ॥ ७ ॥

युवां यज्ञैः प्रथमा गोभिरञ्जत ऋतावाना मनसो न प्रयुक्तिषु ।
भरन्ति वां मन्मना संयता गिरोऽदृप्यता मनसा रेवदाशाथे ॥ ८ ॥

पदार्थ— हे अध्यापकोपदेशक सज्जनो ! जो (यज्ञैः) यज्ञों से (गोभिः) और सुन्दर शिक्षित वाणियों से (अञ्जते) कामना करते हैं (ऋतावाना) और सत्य आचरण का सम्बन्ध रखने वाले (प्रथमा) आदि में होने वाले तुम दोनों को (मनसः) अन्तःकरण के (प्रयुक्तिषु) प्रयोगों को उल्लासों में जैसे (न) वैसे व्यवहारों में (भरन्ति) पुष्ट करते हैं तथा (वाम्) तुम दोनों की शिक्षाओं को पाकर (संयता) संयम युक्त (अदृप्यता) हर्ष मोहरहित (मन्मना) विज्ञानरूप (मनसा) मन से (गिरः) वाणियों और (रेवत्) बहुत धनों से भरे हुए ऐश्वर्य को पुष्ट करते हैं और तुम को (आशाथे) प्राप्त होते हैं उनको तुम नित्य पढ़ाओ और सिखाओ ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे विद्वानो ! जो तुम को विद्या प्राप्ति के लिये श्रद्धा से प्राप्त होवें और जो जितेन्द्रिय धार्मिक हों उन सभों को अच्छे यत्न के साथ विद्यावान् और धार्मिक करो ॥ ८ ॥

रेवद्वयो दधाथे रेवदाशाथे नरा मायाभिरितऊति माहिनम् ।
न वां द्यावोऽहभिर्नोत सिन्धवो न देवत्वं पणयो नानशुर्मघम् ॥९॥

पदार्थ—हे (नरा) अग्रगामी जनो ! जो तुम (मायाभिः) मानने योग्य बुद्धियों से (माहिनम्) अत्यन्त पूज्य और बड़ा भी (इतऊति) इधर से रक्षा जिससे उस (वयः) अति रम्य मनोहर (रेवत) प्रशंसित धनयुक्त ऐश्वर्य को (दधाथे) धारण करते हो और (रेवत्) बहुत ऐश्वर्ययुक्त व्यवहार को (आशाथे) प्राप्त होते हो उन (वाम्) आप की (देवत्वम्) विद्वत्ता को (द्यावः) प्रकाश (न) नहीं (अहभिः) दिनों के साथ दिन अर्थात् एकता रसमय (न) नहीं

(उत) और (सिन्धवः) बड़ी बड़ी नदी नद (न) नहीं (आनशुः) व्याप्त होते अर्थात् अपने अपने गुणों से तिरस्कार नहीं कर सकते जीत नहीं सकते अधिक नहीं होवे तथा (पणयः) व्यवहार करते हुए जन (मघम्) तुम्हारे महत् ऐश्वर्य को (न) नहीं व्याप्त होते जीत सकते ॥ ९ ॥

भावार्थ—जिस जिस को विद्वान् प्राप्त करते हैं उस उस को इतर सामान्य जन प्राप्त नहीं होते, विद्वानों की उपमा विद्वान् ही होते हैं और नहीं होते ॥ ९ ॥

इस सूक्त में मित्र वरुण के लक्षण अर्थात् मित्र वरुण शब्द से लक्षित अध्यापक और उपदेशक आदि का वर्णन किया इससे इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ एकावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

दीर्घतमा ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते । १ । २ । ४–६ त्रिष्टुप् । ३ विराट्त्रिष्टुप् । ७ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गाः ।
अवातिरतमनृतानि विश्व ऋतेन मित्रावरुणा सचेथे ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (मित्रावरुणा) प्राण उदान के समान वर्त्तमान पढ़ाने और उपदेश करने वाले ! जो (युवम्) तुम लोग (पीवसा) स्थूल (वस्त्राणि) वस्त्रों को (वसाथे) ओढ़ते हो वा जिन (युवोः) तुम्हारे (अच्छिद्राः) छेद भेद रहित (मन्तवः) जानने योग्य (ह) ही पदार्थ (सर्गाः) रचने योग्य हैं जो तुम (विश्वा) समस्त (अनृतानि) मिथ्या भाषण आदि कामों को (अवातिरतम्) उल्लंघते पार होते और (ऋतेन) सत्य से (सचेथे) सङ्ग करते हो वे तुम हम लोगों को क्यों न सत्कार करने योग्य होते हो ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को सदैव स्थूल छिद्ररहित वस्त्र पहिन कर जानने योग्य के दोषरहित वस्त्र आदि पदार्थ निर्माण करने चाहियें और सदैव धारण किये हुए सत्याचरण से असत्याचरणों को छोड़ धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष अच्छे प्रकार सिद्ध करने चाहियें ॥ १ ॥

एतच्चन त्वो वि चिकेतदेषां सत्यो मन्त्रः कविशस्त ऋघावान् ।
त्रिरश्रिं हन्ति चतुरश्रिरुग्रो देवनिदो ह प्रथमा अजूर्यन् ॥ २ ॥

पदार्थ—(त्व) कोई ही (एषाम्) इन विद्वानों में जो ऐसा है कि (ऋघावान्) बहुत स्तुति और सत्य असत्य की विवेचना करने वाली मतियों से युक्त (कविशस्तः) मेधावी कवियों ने प्रशंसित किया (सत्यः) अव्यभिचारी (मन्त्रः) विचार है (एतत्) इसको (विचिकेतत्) विशेषता से जानता है और जो (चतुरश्रिः) चारों वेदों को प्राप्त होता वह (उग्रः) तीव्र स्वभाव वाला (देवनिदः) जो विद्वानों की निन्दा करते हैं उनको (हन्ति) मारता और (त्रिरश्रिम्) जो तीनों अर्थात् वाणी मन और शरीर से प्राप्त किया जाता है ऐसे उत्तम पदार्थ को जानता है उक्त वे सब (प्रथमाः) आदिम अर्थात् अग्रगामी अगुआ (ह) ही हैं और वे प्रथम (चन) ही (अजूर्यन्) बुड्ढे होते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वानों की निन्दा को छोड़ निन्दकों को निवार के सत्य ज्ञान को प्राप्त हो सत्य विद्याओं को पढ़ाते हुए और सत्य का उपदेश करते हुए विस्तृत सुख को प्राप्त होते हैं वे धन्य हैं ॥ २ ॥

अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद्वां मित्रावरुणा चिकेत ।
गर्भो भारं भरत्या चिदस्य ऋतं पिपर्त्यनृतं नि तारीत् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (मित्रावरुणा) श्रेष्ठ मित्र पढ़ाने और उपदेश करने वाले विद्वानो ! जो (पद्वतीनाम्) प्रशंसित विभागों वाली क्रियाओं में (प्रथमा) प्रथम (अपात्) बिना विभाग वाली विद्या (एति) प्राप्त होती है (तत्) उसको (वाम्) तुम से (कः) कौन (आ, चिकेत) जाने और जो (गर्भः) ग्रहण करने वाला जन (भारम्) पुष्टि को (आ, भरति) सुशोभित करता वा अच्छे प्रकार धारण करता है (चित्) और भी (अस्य) इस संसार के बीच (ऋतम्) सत्य व्यवहार को (पिपर्त्ति) पूर्ण करता है सो (अनृतम्) मिथ्या भाषण आदि काम को (नि, तारीत्) निरन्तर उल्लंघता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो झूठ को छोड़ सत्य को धारण कर अपने सब सामान इकट्ठे करते हैं वे सत्य विद्या को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

प्रयन्तमित्परि जारं कनीनां पश्यामसि नोपनिपद्यमानम् ।
अनवपृग्णा वितता वसानं प्रियं मित्रस्य वरुणस्य धाम ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (कनीनाम्) कामना करती हुई प्रजाओं की (जारम्) अवस्था हरने वाले (प्रयन्तम्) अच्छे यत्न करते (उपनिपद्यमानम्) समीप प्राप्त होते (अनवपृग्णा) सम्बन्ध रहित अर्थात् अलग के पदार्थ जो (वितता) विथरे हैं उनको (वसानम्) आच्छादन करते अर्थात् अपने प्रकाश से प्रकाशित करते हुए सूर्य के समान (मित्रस्य) मित्र वा (वरुणस्य) श्रेष्ठ विद्वान् के (इत्)

ही (प्रियम्) प्रिय (धाम) सुखसाधक घर को ((परि, पश्यामसि) देखते हैं इससे विरुद्ध (न) न हों वैसे तुम भी इसको प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग जैसे रात्रियों के निहन्ता अपने प्रकाश का विस्तार करते हुए सूर्य को देख कर कार्य्यों को सिद्ध करते हैं वैसे अविद्यान्धकार का नाश और विद्या का प्रकाश करने वाले आप्त अध्यापक और उपदेशक के सङ्ग को पाकर क्लेशों को नष्ट करें ॥ ४ ॥

अनश्वो जातो अनभीशुरर्वा कनिक्रदत्पतयदूर्ध्वसानुः ।
अचित्तं ब्रह्म जुजुषुर्युवानः प्र मित्रे धाम वरुणे गृणन्तः ॥ ५ ॥

पदार्थ– जो (युवानः) युवावस्था को प्राप्त जन (अनभीशुः) नियम करने वाली किरणों से रहित (अनश्वः) जिस के जल्दी चलने वाले घोड़े नहीं (कनिक्रदत्) और वार वार शब्द करता वा (पतयत्) गमन करता हुआ (जातः) प्रसिद्ध हुआ और (ऊर्ध्वसानुः) जिस के ऊपर को शिखा (अर्वा) प्राप्त होने वाले सूर्य के समान (मित्रे) मित्र वा (वरुणे) उत्तम जन के निमित्त (धाम) स्थान की (गृणन्तः) प्रशंसा करते हुए (अचित्तम्) चित्त रहित (ब्रह्म) वृद्धि को प्राप्त धन आदि पदार्थों से युक्त अन्न को (प्र, जुजुषुः) सेवें वे बलवान् होते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ – इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे घोड़े वा रथ आदि सवारी से रहित आकाश के वीच ऊपर को स्थित सूर्य ईश्वर के अवलम्ब से प्रकाशमान होता है वैसे विद्वानों की विद्या के आधारभूत मनुष्य वहुत धन और अन्न को पाकर धर्मयुक्त व्यवहार में विराजमान होते हैं ॥ ५ ॥

आ धेनवो मामतेयमवन्तीर्ब्रह्मप्रियं पीपयन्त्सस्मिन्नूधन् ।
पित्वो भिक्षेत वयुनानि विद्वानासाविवासन्नदितिमुरुष्येत् ॥ ६ ॥

पदार्थ--जैसे (धेनवः) धेनु गौवें (सस्मिन्) अपने (ऊधन्) ऐन में हुए दूध से वछड़ों को पुष्ट करती हैं वैसे जो स्त्री (ब्रह्मप्रियम्) वेदाध्ययन जिस को प्रिय उस (मामतेयम्) ममत्व से माने हुए अपने पुत्र की (अवन्तीः) रक्षा करती हुई (आ, पीपयन्) उसकी वृद्धि उन्नति करती हैं वा जैसे (विद्वान्) विद्यावान् जन (आसा) मुख से (पित्वः) अन्न की (भिक्षेत) याचना करे और (अदितिम्) न नष्ट होने वाली विद्या का (आविवासन्) सब ओर से सेवन करता हुआ (वयुनानि) उत्तम ज्ञानों को (उरुष्येत्) सेवे वैसे पढ़ाने वाले पुरुष औरों को विद्या और सिखावट का ग्रहण करावें ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे माता जन अपने लड़कों को दूध आदि के देने से बढ़ाती हैं वैसे विदुषी स्त्री और विद्वान् पुरुष कुमार और कुमारियों को विद्या और अच्छी शिक्षा से बढ़ावें, उन्नति युक्त करें॥ ६॥

आ वां मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं नमसा देवाववसा ववृत्याम्।

अस्माकं ब्रह्म पृतनासु सह्या अस्माकं वृष्टिर्दिव्या सुपारा॥ ७॥

पदार्थ--हे (देवौ) दिव्य स्वभाव वाले (मित्रावरुणा) मित्र और उत्तम जन ! जैसे मैं (वाम्) तुम दोनों की (नमसा) अन्न से (हव्यजुष्टिम्) ग्रहण करने योग्य सेवा को (आ, ववृत्याम्) अच्छे प्रकार वर्त्तूं वैसे तुम दोनों (अवसा) रक्षा आदि काम से (अस्माकम्) हमारे (पृतनासु) मनुष्यों में (ब्रह्म) धन की वृद्धि कराइये। हे विद्वन् ! जो (अस्माकम्) हमारी (दिव्या) शुद्ध (सुपारा) जिससे कि सुख के साथ सब कामों की परिपूर्णता हो ऐसी (वृष्टिः) दुष्टों की शक्ति बंधाने वाली शक्ति है उसको (सह्याः) सहो॥ ७॥

भावार्थ—जैसे विद्वान् जन अति प्रीति से हमारे लिये विद्याओं को देवें वैसे हम लोग इनको अत्यन्त श्रद्धा से सेवें जिससे हमारी शुद्ध प्रशंसा सर्वत्र विदित हो॥ ७॥

इस सूक्त में पढ़ाने और उपदेश करने वाले तथा उन शिष्यों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

यह एकसौ बावनवां सूक्त समाप्त हुआ॥

दीर्घतमा ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते। १। २ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः। ४ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

यजामहे वां महः सजोषा हव्येभिर्मित्रावरुणा नमोभिः।

घृतैर्घृतस्नू अध यद्वामस्मे अध्वर्यवो न धीतिभिर्भरन्ति॥ १॥

पदार्थ—हे (घृतस्नू) घृत फैलाने (मित्रावरुणा) मित्र और श्रेष्ठ जनो ! (वाम्) तुम दोनों का (सजोषाः) समान प्रीति किये हुए हम लोग (धीतिभिः) अंगुलियों से (अध्वर्यवः) अहिंसा धर्म की कामना वालों के (न) समान

(हव्येभिः) देने योग्य (नमोभिः) अन्नादि पदार्थों से (घृतैः) और घी आदि रसों से (महः) अत्यन्त (यजामहे) सत्कार करते हैं (अध) इस के अनन्तर (यत्) जिस व्यवहार को (वाम्) तुम दोनों के लिये और (अस्मे) हमारे लिये विद्वान् जन (भरन्ति) धारण करते हैं उस व्यवहार को धारण करो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे यजमान अग्निहोत्र आदि अनुष्ठानों से सब के सुख को बढ़ाते हैं वैसे समस्त विद्वान् जन अनुष्ठान करें ॥ १ ॥

प्रस्तुतिर्वां धाम न प्रयुक्तिरयामि मित्रावरुणा सुवृक्तिः ।
अनक्ति यद्वां विदथेषु होता सुम्नं वां सूरिर्वृषणावियक्षन् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (वृषणौ) सुख वृष्टि करने हारे (मित्रावरुणा) मित्र और श्रेष्ठ जन (इयक्षन्) प्राप्त होने की इच्छा करता हुआ (सूरिः) विद्वान् (सुवृक्तिः) जिस का सुन्दर रोकना (प्रस्तुतिः) और उत्तम स्तुति (होता) वह ग्रहण करने वाला (प्रयुक्तिः) उत्तम युक्ति में (धाम) स्थान के (न) समान (वाम्) तुन दोनों को (अयामि) प्राप्त होता हूँ । वा (यत्) जो विद्वान् (वाम्) तुम दोनों से (विदथेषु) विज्ञानों में (अनक्ति) कामना करता है वा (वाम्) तुम दोनों के लिये (सुम्नम्) सुख देता है उस को मैं प्राप्त होता हूँ ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य पाप हरने और प्रशंसित गुणों को ग्रहण करने वाले, जिन को विद्वानों का सङ्ग प्यारा है और सब के लिये सुख देने वाले होते हैं वे कल्याण को सेवने वाले होते हैं ॥ २ ॥

पीपाय धेनुरदितिर्ऋताय जनाय मित्रावरुणा हविर्दे ।
हिनोति यद्वां विदथे सपर्यन्त्स रातहव्यो मानुषो न होता ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (मित्रावरुणा) सत्य उपदेश करने वारे मित्रावरुणो ! (यत्) जो (अदितिः) अखण्डित, विनाश को नहीं प्राप्त हुई (धेनुः) दूध देने वाली गौ के समान (हविर्दे) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को देता उस (ऋताय) सत्य व्यवहार को प्राप्त हुए (जनाय) प्रसिद्ध विद्वान् के लिये (सुम्नम्) सुख को (पीपाय) बढ़ाता और (विदथे) विज्ञान के निमित्त (वाम्) तुम दोनों की (सपर्यन्) सेवा करता हुआ (रातहव्यः) जिसने ग्रहण करने योग्य पदार्थ दिये वह (होता) लेने वाले (मानुषः) मनुष्य के (न) समान (हिनोति) वृद्धि को प्राप्त कराता है और (सः) वह जन उत्तम होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो विद्या

देने लेने में कुशल पढ़ाने और उपदेश करने वाले सब को उन्नति देते हैं वे शुभ गुणों से सब से अधिक उन्नति को पाते हैं ॥ ३ ॥

उत वां विक्षु मद्यास्वन्धो गाव आपंश्च पीपयन्त देवीः ।

उतो नो अस्य पूर्व्यः पतिर्दन्वीतं पातं पयंस उस्रियायाः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मित्र और वरुण श्रेष्ठ जन ! जैसे (देवीः) दिव्य (गावः) वाणी (आपः, च) और जल (मद्यासु) हर्षित करने योग्य (विक्षु) प्रजाजनों में (वाम्) तुम दोनों को (पीपयन्त) उन्नति देते हैं (उत) और (अन्धः) अन्न अच्छे प्रकार देवें (उतो) और (पूर्व्यः) पूर्वजों ने नियत किया हुआ (पतिः) पालना करने वाला (नः) हमारे (अस्य) पढ़ाने के काम सम्बन्धी (उस्रियायाः) दुग्ध देने वाली गौ के (पयसः) दूध को (दन्) देता हुआ वर्त्तमान है वैसे तुम दोनों विद्या को (वीतम्) व्याप्त होओ और दुग्ध (पातम्) पिओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो यहां गौओं के समान सुख देने वाले और प्राण के समान प्रिय प्रजाजनों में वर्त्तमान हैं वे इस संसार में अतुल आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

इस सूक्त में मित्र और वरुण के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह एकसौ त्रेपनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

दीर्घतमा ऋषिः। विष्णुर्देवता। १। २ विराट्त्रिष्टुप् ३। ४। ६ निचृत् त्रिष्टुप्। ५ त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।

यो अस्कंभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यः) जो (पार्थिवानि) पृथिवी में विदित (रजांसि) लोकों को अर्थात् पृथिवी में विख्यात सब स्थलों को (नु) शीघ्र (विममे) अनेक प्रकार से याचता वा (यः) जो (उरुगायः) बहुत वेदमन्त्रों से गाया जाता वा स्तुति किया जाता (उत्तरम्) प्रलय से अनन्तर (सधस्थम्) एक साथ के स्थान को (त्रेधा) तीन प्रकार से (विचक्रमाणः) विशेषकर कंपाता हुआ (अस्कभायत्) रोकता है बस (विष्णोः) सर्वत्र व्याप्त होने वाले

परमेश्वर के (वीर्याणि) पराक्रमों को (प्र वोचम्) अच्छे प्रकार कहूं और उससे (कम्) सुख पाऊं वैसे तुम करो ॥ १ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्य अपनी आकर्षण शक्ति से सब भूगोलों को धारण करता है वैसे सूर्य्यादि लोक, कारण और जीवों को जगदीश्वर धारण कर रहा है जो इन असंख्य लोकों को शीघ्र निर्माण करता और जिस में प्रलय को प्राप्त होते हैं वही सब को उपासना करने योग्य है ॥ १ ॥

प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यस्य) जिस जगदीश्वर के निर्माण किये हुए (त्रिषु) जन्म नाम और स्थान इन तीन (विक्रमणेषु) विविध प्रकार के सृष्टि क्रमों में (विश्वा) समस्त (भुवनानि) लोक लोकान्तर (अधिक्षियन्ति) आधाररूप से निवास करते हैं (तत्) वह (विष्णुः) सर्वव्यापी परमात्मा अपने (वीर्येण) पराक्रम से (कुचरः) कुटिलगामी अर्थात् ऊंचे नीचे नाना प्रकार विषम स्थलों में चलने और (गिरिष्ठाः) पर्वत कन्दराओं में स्थिर होने वाले (मृगः) हरिण के (न) समान (भीमः) भयङ्कर समस्त लोक लोकान्तरों को (प्रस्तवते) प्रशंसित करता है ॥ २ ॥

भावार्थ—कोई भी पदार्थ ईश्वर और सृष्टि के नियम को उल्लङ्घ नहीं सकता है, जो धार्मिक जनों को मित्र के समान आनन्द देने दुष्टों को सिंह के समान भय देने और न्यायादि गुणों का धारण करने वाला परमात्मा है वही सब का अधिष्ठाता और न्यायाधीश है यह जानना चाहिये ॥ २ ॥

प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे ।
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित्पदेभिः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यः) जो (एकः) एक (इत्) ही परमात्मा (त्रिभिः) तीन अर्थात् स्थूल सूक्ष्म (पदेभिः) जानने योग्य अंशों से (इदम्) इस (दीर्घम्) बढ़े हुए (प्रयतम्) उत्तम यत्नसाध्य (सधस्थम्) सिद्धान्तावयवों से एक साथ के स्थान को (प्रविममे) विशेषता से रचता है उस (वृष्णे) अनन्त पराक्रमी (गिरिक्षिते) मेघ वा पर्वतों को अपने अपने में स्थिर रखने वाले (उरुगायाय) बहुत प्राणियों से वा बहुत प्रकारों से प्रशंसित (विष्णवे) व्यापक परमात्मा के लिये (मन्म) विज्ञान (शूषम्) और बल (एतु) प्राप्त होवे ॥३॥

भावार्थ—कोई भी अनन्त पराक्रमी जगदीश्वर के विना इस विचित्र

जगत् के रचने धारण करने और प्रलय करने को समर्थ नहीं हो सकता, इस से इस को छोड़ और की उपासना किसी को न करनी चाहिये ॥ ३ ॥

यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति ।
य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**यस्य**) जिस ईश्वर के वीच (**मधुना**) मधुरादि गुण से (**पूर्णा**) पूर्ण (**अक्षीयमाणा**) विनाशरहित (**त्री**) तीन (**पदानि**) प्राप्त होने योग्य पद अर्थात् लोक (**स्वधया**) अपने अपने रूप के धारण करने रूप क्रिया से (**मदन्ति**) आनन्द को प्राप्त होते हैं (**यः**) और जो (**एकः**) (**उ**) एक अर्थात् अद्वैत परमात्मा (**पृथिवीम्**) पृथिवीमण्डल (**उत**) और (**द्याम्**) सूर्यमण्डल तथा (**त्रिधातु**) जिन में सत्व रजस् तमस् ये तीनों धातु विद्यमान उन (**विश्वा**) समस्त (**भुवनानि**) लोक लोकान्तरों को (**दाधार**) धारण करता है वही परमात्मा सब को मानने योग्य है ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो अनादि कारण से सूर्य आदि के तुल्य प्रकाशमान पृथिवियों को उत्पन्न कर समस्त भोग्य पदार्थों के साथ उन का संयोग करा उन को आनन्दित करता है उस के गुण कर्म की उपासना से आनन्द ही सब को बढ़ाना चाहिये ॥ ४ ॥

तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः ॥५॥

पदार्थ—मैं (**यत्र**) जिस में (**देवयवः**) दिव्य लोगों की कामना करने वाले (**नरः**) अग्रगन्ता उत्तम जन (**मदन्ति**) आनन्दित होते हैं (**तत्**) उस (**अस्य**) इस (**उरुक्रमस्य**) अनन्त पराक्रम युक्त (**विष्णोः**) व्यापक परमात्मा के (**प्रियम्**) प्रिय (**पाथः**) मार्ग को (**अभ्यश्याम्**) सब ओर से प्राप्त होऊं जिस परमात्मा के (**परमे**) अत्युत्तम (**पदे**) प्राप्त होने योग्य मोक्ष पद में (**मध्वः**) मधुरादि गुणयुक्त पदार्थ का (**उत्सः**) कूपसा तृप्ति करने वाला गुण वर्त्तमान है (**सः, हि**) वही (**इत्था**) इस प्रकार से हमारा (**बन्धुः**) भाई के समान दुःख विनाश करने से दुख देने वाला है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो परमेश्वर से वेदद्वारा दिई हुई आज्ञा के अनुकूल चलते हैं वे मोक्ष सुख को प्राप्त होते हैं। जैसे जन बन्धु को प्राप्त होकर सहायता को पाते हैं वा प्यासे

जन मीठे जल से पूर्ण कुये को पाकर तृप्त होते हैं वैसे परमेश्वर को प्राप्त होकर पूर्ण आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

ता वां वास्तूंन्युश्मसि गमंध्यै यत्र गावो भूरिंशृङ्गा अयासंः ।
अत्राह तदुंरुगायस्य वृष्णंः परमं पदमवं भाति भूरिं ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे शास्त्रवेत्ता विद्वानो ! (यत्र) जहां (अयासः) प्राप्त हुए (भूरिशृङ्गाः) बहुत सींगों के समान उत्तम तेजों वाले (गावः) किरण हैं (ता) उन (वास्तूनि) स्थानों को (वाम्) तुम अध्यापक और उपदेशक परम योगीजनों के (गमध्यै) जाने को हम लोग (उश्मसि) चाहते हैं । जो (उरुगायस्य) बहुत प्रकारों से प्रशंसित (वृष्णः) सुख वर्षाने वाले परमेश्वर को (परमम्) प्राप्त होने योग्य (पदम्) मोक्षपद (भूरिः) अत्यन्त (अव, भाति) उत्कृष्टता से प्रकाशमान है (तत्) उसको (अत्राह) यहां ही हम लोग चाहते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जहां विद्वान् जन मुक्ति पाते हैं वहां कुछ भी अन्धकार नहीं है और वे मोक्ष को प्राप्त हुए प्रकाशमान होते हैं, वही आप्त विद्वानों का मुक्तिपद है सो ब्रह्म सब का प्रकाश करने वाला है ॥ ६ ॥

इस सूक्त में परमेश्वर और मुक्ति का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह एकसौ चौवनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

दीर्घतमा ऋषिः । विष्णुर्देवता । १ । ३ । ६ भुरिक् त्रिष्टुप् । ४ स्वराट् त्रिष्टुप् । ५ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

प्र वः पान्तमन्धंसो धियायते महे शूरांय विष्णंवे चार्चत ।
या सानुंनि पर्वंतानामदांभ्या महस्तस्थतुरर्वंतेव साधुना ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (धियायते) प्रज्ञा और धारण की इच्छा करने वाले (महे) बड़े और (शूराय) शूरता आदि गुणों से युक्त (विष्णवे, च) और शुभ गुणों में व्याप्त महात्मा के लिये (वः) तुम्हारे (अन्धसः) गीले अन्न आदि पदार्थ के (पान्तम्) पान को तुम (प्र अर्चत उत्तमता से सत्कार के साथ देओ तथा (या) जो (अदाभ्या) हिंसा न करने योग्य मित्र और वरुण अर्थात् अध्यापक

और उपदेशक (**पर्वतानाम्**) पर्वतों के (**सानुनि**) शिखर पर (**अर्वतेव**) जाने वाले घोड़े के समान (**साधुना**) उत्तम सिखाये हुए शिष्य से (**महः**) बड़ा जैसे हो वैसे (**तस्थतुः**) स्थित होते अर्थात् जैसे घोड़ा से ऊंचे स्थान पर पहुँच जावें वैसे विद्या पढ़ा कर कीर्ति के शिखर पर चढ़ जाते हैं उनका भी उत्तम सत्कार करो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो विद्यादान उत्तम शिक्षा और विज्ञान से जनों को वृद्धि देते हैं वे महात्मा होते हैं ॥ १ ॥

त्वेषमित्था समरणं शिमीवतोरिन्द्राविष्णू सुतपा वामुरुष्यति ।
या मर्त्याय प्रतिधीयमानमित्कृशानोरस्तुरसनामुरुष्यथः ॥ २ ॥

पदार्थ—जो (**शिमीवतोः**) प्रशस्त कर्मयुक्त अध्यापक और उपदेशक की उत्तेजना से (**समरणम्**) अच्छे प्रकार प्राप्ति कराने वाले (**त्वेषम्**) प्रकाश को प्राप्त होकर (**मर्त्याय**) मनुष्य के लिये (**प्रतिधीयमानम्**) अच्छे प्रकार धारण किये हुए व्यवहार को (**उरुष्यति**) बढ़ाता है वह (**सुतपाः**) सुन्दर तपस्या वाला सज्जन पुरुषः (**या**) जो (**इन्द्राविष्णू**) बिजुली और सूर्य के समान पढ़ाने और उपदेश करने वाले तुम दोनों (**अस्तुः**) एक देश से दूसरें देश को पदार्थ पहुँचा देने वाले (**कृशानोः**) बिजुली रूप आग की (**असनाम्**) पहुँचाने की क्रिया को जैसे (**इत्**) ही (**उरुष्यथः**) सेवते हो (**इत्था**) इसी प्रकार से (**वाम्**) तुम दोनों को सेवें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो तपस्वी जितेन्द्रिय होते हुए विद्या का अभ्यास करते हैं वे सूर्य और बिजुली के समान प्रकाशितात्मा होते हैं ॥ २ ॥

ता ईं वर्द्धन्ति मह्यस्य पौंस्यं नि मातरा नयति रेतसे भुजे ।
दधाति पुत्रोऽवरं परं पितुर्नाम तृतीयमधि रोचने दिवः ॥ ३ ॥

पदार्थ—जो विदुषी स्त्रियां (**अस्य**) इस लड़के के (**रेतसे**) वीर्य चढ़ाने और (**भुजे**) भोगादि पदार्थ प्राप्त होने के लिये (**महि**) अत्यन्त (**पौंस्यम्**) पुरुषार्थ को (**ईम्**) सब ओर से (**वर्द्धन्ति**) बढ़ाती हैं वह (**ताः**) उन को (**नयति**) प्राप्त होता है इस में कारण यह है कि जिस से (**पुत्रः**) पुत्र (**पितुः**) पिता और माता की उत्तेजना से शिक्षा को प्राप्त हुआ (**दिवः**) प्रकाशमान सूर्यमण्डल के (**अधि, रोचने**) ऊपरी प्रकाश में (**अवरम्**) निकृष्ट (**परम्**) वा पिछले अगले वा उरले और (**तृतीयम्**) तीसरे (**नाम**) नाम को तथा (**नि, मातरा**) निरन्तर मान करने वाले माता पिता को (**दधाति**) धारण करता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—वे ही माता पिता हितैषी होते हैं जो अपने सन्तानों को दीर्घ ब्रह्मचर्य से पूरी विद्या उत्तम शिक्षा और युवावस्था को प्राप्त करा विवाह कराते हैं, वे ही प्रथम ब्रह्मचर्य दूसरी पूरी विद्या उत्तम शिक्षा और तृतीय युवावस्था को प्राप्त हो कर सूर्य के समान प्रकाशमान होते हैं ॥३॥

तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसीनस्य त्रातुरवृकस्य मीढुषः ।

यः पार्थिवानि त्रिभिरिद्विगामभिरुरु क्रमिष्टोरुगायाय जीवसे ॥ ४ ॥

पदार्थ--(यः) जो (विगामभिः) विविध प्रशंसायुक्त (त्रिभिः) तीन सत्व रजस् तमो गुणों के साथ (उरुगायाय) बहुत प्रशंसित (जीवसे) जीवन के लिये (पार्थिवानि) पृथिवी के किरणों से उत्पन्न हुए (इत्) ही पदार्थों को (उरु, क्रमिष्ट) क्रम से अत्यन्त प्राप्त होता है (तत्तत्) उस उस (त्रातुः) रक्षा करने वाले (इनस्य) समर्थ ईश्वर के समान (अस्य) किये हुए ब्रह्मचर्य जितेन्द्रिय इस (अवृकस्य) चोरी आदि दोषरहित (मीढुषः) वीर्य सेचन समर्थ पुरुष के (पौंस्यम्) पुरुषार्थ को (इत्) ही हम लोग (गृणीमसि) प्रशंसा करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि सुख से चिरकाल तक जीवने के लिये दीर्घ ब्रह्मचर्य का अच्छे प्रकार सेवन कर आरोग्य और धातुओं की समता बढ़ाने से शरीर के बल और विद्या धर्म तथा योगाभ्यास के बढ़ाने से आत्मबल की उन्नति कर सदैव सुख में रहें । जो लोग इस ईश्वर की आज्ञा का पालन करते हैं वे बाल्यावस्था में स्वयंवर विवाह कभी नहीं करते, इस के विना पूर्ण पुरुषार्थ की वृद्धि की संभावना नहीं है ॥ ४ ॥

द्वे इदस्य क्रमणे स्वर्दृशोऽभिख्याय मर्त्यो भुरण्यति ।

तृतीयमस्य नकिरा दधर्षति वयश्चन पतयन्तः पतत्रिणः ॥ ५ ॥

पदार्थ--जो (मर्त्यः) मनुष्य (स्वर्दृशः) सुख देने वाले (अस्य) इस ब्रह्मचारी के (द्वे, क्रमणे) दो अनुक्रम से चलने वाले अर्थात् वर्त्ताव वर्त्तने वाले शरीर बल तथा आत्मबल को (अभिख्याय) सब ओर से प्रख्यात करने को (भुरण्यति) धारण करता है वह (पतयन्तः) ऊपर नीचे जाते हुए (पतत्रिणः) पङ्खों वाले (वयः) पखेरू (चन) भी (इत्) जैसे किसी पदार्थ का विस्तार करें वैसे भी (अस्य) इस ब्रह्मचारी के (तृतीयम्) तीसरे विद्या जन्म का (नकिः, आ, दधर्षति) तिरस्कार नहीं करता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो माता पिता अपने सन्तानों की ब्रह्मचर्य के अनुक्रम से

विद्याजन्म को बढ़ाते हैं वे अपने सन्तानों को दीर्घ आयु वाले बलवान् सुन्दर शीलयुक्त करके नित्य हर्षित होते हैं ॥ ५ ॥

चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभिश्चक्रं न वृत्तं व्यतीँरवीविपत् ।

बृहच्छरीरो विमिमान ऋक्वभिर्युवाकुमारः प्रत्येत्याहवम् ॥ ६ ॥

पदार्थ--जो (विमिमानः) विशेषता से धातुओं की वृद्धि का निर्माण करता हुआ (बृहच्छरीरः) बली स्थूल शरीर वाला (अकुमारः) पच्चीस वर्ष की अवस्था से निकल गया (युवा) किन्तु युवावस्था को प्राप्त ब्रह्मचारी (वृत्तम्) गोल (चक्रम्) चक्र के (न) समान (चतुर्भिः) चार (नामभिः) नामों के(साकम्) साथ (नवतिं, च) और नव्वे अर्थात् चौरानवे नामों से (व्यतीन्) विशेषता से जिनको बल प्राप्त हुआ उन बलवान् योद्धाओं को एक भी (अवीविपत्) अत्यन्त भ्रमाता है वह (ऋक्वभिः) प्रशंसित गुण कर्म स्वभाव से (आहवम्) प्रतिष्ठा के साथ बुलाने को (प्रति, एति) प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

भावार्थ--इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो अड़तालीस वर्ष भर अखण्डित ब्रह्मचर्य का सेवन करता है वह इकेला भी गोलचक्र के समान चौरानवे योद्धाओं को भ्रमा सकता है। मनुष्यों में दश वर्ष तक बाल्यावस्था पच्चीस वर्ष तक कुमारावस्था तदनन्तर छब्बीसवें वर्ष के आरम्भ में युवावस्था पुरुष की होती है और सत्रहवें वर्ष से कन्या की युवावस्था का आरम्भ है इस के उपरान्त जो स्वयंवर विवाह को करते कराते हैं वे भाग्यशाली होते हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त में अध्यापकोपदेशक और ब्रह्मचर्य के फल के वर्णन से इस के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ पचपनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

दीर्घतमा ऋषिः । विष्णुर्देवता । १ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ५ स्वराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ निचृज्जगती । ४ जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

भवा मित्रो न शेव्यो घृतासुतिर्विभूतद्युम्न एवया उ सप्रथाः ।

अधा ते विष्णो विदुषा चिदर्ध्यः स्तोमो यज्ञश्च राध्यो हविष्मता ॥१॥

पदार्थ--हे (विष्णो) समस्त विद्याओं में व्याप्त ! (ते) तुम्हारा जो (अर्द्धयः) बढ़ने (स्तोमः) और स्तुति करने योग्य व्यवहार (यज्ञः, च) और सङ्गम करने योग्य ब्रह्मचर्य नाम वाला यज्ञ (हविष्मता) प्रशस्त विद्या देने और

ग्रहण करने से युक्त व्यवहार (राध्यः) अच्छे प्रकार सिद्ध करने योग्य है उस का अनुष्ठान आरम्भ कर (अध) इस के अनन्तर (शेव्यः) सुखी करने योग्य (मित्रः) मित्र के (न) समान (एवयाः) रक्षा करने वालों को प्राप्त होने वाला (उ) तर्क वितर्क के साथ (सप्रथाः) उत्तम प्रसिद्धियुक्त (विदुषा) और आप्त उत्तम विद्वान् के साथ (चित्) भी (घृतासुतिः) जिससे घृत उत्पन्न होता (विभूतद्युम्नः) और जिस से विशेष धन वा यश हुए हों ऐसा तू (भव) हो ॥ १ ॥

भावार्थ—विद्वान् जन जिस ब्रह्मचर्यानुष्ठानरूप यज्ञ की वृद्धि स्तुति और उत्तमता से सिद्धि करने की इच्छा करते हैं उस का अच्छे प्रकार सेवन कर विद्वान् हो के सब का मित्र हो ॥ १ ॥

यः पूर्व्याय वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे ददाशति ।
यो जातमस्य महतो महि ब्रवत्सेदु श्रवोभिर्युज्यं चिदभ्यसत् ॥ २ ॥

पदार्थ—(यः) जो (नवीयसे) अत्यन्त विद्या पढ़ा हुआ नवीन (सुमज्जानये) सुन्दरता से पाई हुई विद्या से प्रसिद्ध (पूर्व्याय) पूर्वज विद्वानों ने अच्छी सिखावटों से सिखाये हुए (वेधसे) मेधावी अर्थात् धीर (विष्णवे) विद्या में व्याप्त होने का स्वभाव रखने वाले के लिये विज्ञान (ददाशति) देता है वा (यः) जो (अस्य) इस (महतः) सत्कार करने योग्य जन के (महि) महान् प्रशंसित (जातम्) उत्पन्न हुए विज्ञान को (ब्रवत्) प्रकट कहे (उ) और (श्रवोभिः) श्रवण मनन और निदिध्यासन अर्थात् अत्यन्त धारण करने विचारने से अत्यन्त उत्पन्न हुए (युज्यम्) समाधान के योग्य विज्ञान का (अभ्यसत्) अभ्यास करे (सः, चित्) वही विद्वान् हो और (इत्) वही पढ़ाने को योग्य हो ॥ २ ॥

भावार्थ—जो निष्कपटता से बुद्धिमान् विद्यार्थियों को पढ़ाते वा उनको उपदेश देते हैं और जो धर्मयुक्त व्यवहार से पढ़ते और अभ्यास करते हैं वे सब अतीव विद्वान् और धार्मिक होकर बड़े सुख को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथा विद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्त्तन ।
आस्य जानन्तो नाम चिद्विवक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (स्तोतारः) समस्त विद्याओं की स्तुति करने वाले सज्जनो ! (यथा) जैसे तुम (जनुषा) विद्याजन्म से (पूर्व्यम्) पूर्व विद्वानों ने किये हुए (तम्) उस आप्त अध्यापक विद्वान् को (विद) जानो और (ऋतस्य) सत्य व्यवहार के (गर्भम्) विद्या सम्बन्धी बोध को (उ) तर्क वितर्क से (पिपर्त्तन) पालो वा विद्याओं से और सेवा से पूरा करो । तथा (अस्य) इसका (चित्) भी

(नाम) नाम (आ. जानन्तः) अच्छे प्रकार जानते हुए (विवक्तन) कहो उपदेश करो वैसे हम लोग भी जानें पालें और पूरा करें। हे (विष्णो) सकल विद्याओं में व्याप्त विद्वान् ! हम जिन (ते) आप से (महः) महती (सुमतिम्) सुन्दर बुद्धि को (भजामहे) भजते सेवते हैं सो आप हम लोगों को उत्तम शिक्षा देवें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्य विद्या की वृद्धि के लिये शास्त्रवक्ता अध्यापक को पाकर और उसकी उत्तम सेवा कर सत्यविद्याओं को अच्छे यत्न से ग्रहण करके पूरे विद्वान् हों ॥ ३ ॥

तमस्य राजा वरुणस्तमश्विना क्रतुं सचन्त मारुतस्य वेधसः ।
दाधार दक्षमुत्तममहर्विदं व्रजं च विष्णुः सखिवाँ अपोर्णुते ॥ ४ ॥

पदार्थ – जो (सखिवान्) बहुत पवनरूप मित्रों वाला (विष्णुः) अपनी दीप्ति से व्यापक सूर्यमण्डल (उत्तमम्) प्रशंसित (दक्षम्) बल को (दाधार) धारण करे और (अहर्विदम्) जो दिनों को प्राप्त होता अर्थात् जहां दिन होता उस (व्रजं, च) प्राप्त हुए देश को (अपोर्णुते) प्रकाशित करता उस (अस्य) इस (मरुतस्य) पवनरूप सखायों वाले (वेधसः) विधाता सूर्यमण्डल के (तम्) उस (क्रतुम्) कर्म को (वरुणः) श्रेष्ठ (राजा) प्रकाशमान सज्जन और (तम्) उस कर्म को (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक लोग (सचन्त) प्राप्त होवें ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे और सज्जन आप्त विद्वान् से विद्या ग्रहण कर उत्तम बुद्धि की उन्नति कर पूरे बल को प्राप्त होते हैं वा जैसे जहां जहां सविता अन्धकार को निवृत्त करता है वैसे वहां वहां उस सवितृमण्डल के महत्त्व को देख के समस्त लटे मोटे धनी निर्धनी जन पूर्ण विद्या वाले से विद्या और शिक्षाओं को पाकर अविद्यारूपी अन्धकार को निवृत्त करें ॥ ४ ॥

आ यो विवाय सचथाय दैव्य इन्द्राय विष्णुः सुकृते सुकृत्तरः ।
वेधा अजिन्वत्त्रिषधस्थ आर्यमृतस्य भागे यजमानमाभजत् ॥ ५ ॥

पदार्थ—(यः) जो (दैव्यः) विद्वानों का सम्बन्धी (त्रिसधस्थः) कर्म उपासना और ज्ञान इन तीनों में स्थित (सुकृत्तरः) अतीव उत्तम कर्म वाला (विष्णुः) विद्या को प्राप्त (वेधाः) मेधावी धीरबुद्धि सज्जन (सचथाय) धर्म सम्बन्ध को प्राप्त (सुकृते) धर्मात्मा (इन्द्राय) परमैश्वर्यवान् जन के लिये (ऋतस्य) सत्य के (भागे) सेवने के निमित्त (आर्य्यम्) समस्त शुभ गुण कर्म और स्वभावों में वर्त्तमान (यजमानम्) विद्या देने वाले को (आ, अभजत्) अच्छे प्रकार सेवे

और जो सब को विद्या और शिक्षा देने से (अजिन्वत्) प्राण पोषण करे वह पूरे सुख को (आ, विवाय) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो विद्वानों के प्रिय किये को जानने मानने वाले सुकृति सर्वविद्यावेत्ता जन सत्य धर्म विद्या पहुँचाने से सब जनों को सुख देते हैं वे अखिल सुख भोगने वाले होते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में विद्वान् अध्यापक और अध्येताओं के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये ॥

यह एकसौ छप्पनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

दीर्घतमा ऋषिः । अश्विनौ देवते । १ त्रिष्टुप् । ५ निचृत् त्रिष्टुप् । ६ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ । ४ जगती । ३ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अबो॑ध्य॒ग्निर्ज्म उदे॑ति॒ सूर्यो॒ व्यु१॒॑षाश्च॒न्द्रा म॒ह्याव॑ो अ॒र्चिषा॑ ।
आयु॑क्षातामश्विना॒ यात॑वे॒ रथं॒ प्रासा॑वीद्दे॒वः स॑वि॒ता जग॒त् पृथ॑क् ॥१॥

पदार्थ—जैसे (अग्निः) विद्युदादि अग्नि (अबोधि) जाना जाता है (ज्मः) पृथिवी से अलग (सूर्यः) सूर्य (उदेति) उदय होता है (मही) बड़ी (चन्द्रा) आनन्द देने वाले (उषाः) प्रभात वेला (व्यावः) फैलती उजेली देती है वा (सविता) ऐश्वर्य करने वाला (देवः) दिव्यगुणी सूर्यमण्डल (अर्चिषा) अपने किरण समूह से (जगत्) मनुष्यादि प्राणिमात्र जगत् को (पृथक्) अलग (प्रासावीत्) अच्छे प्रकार प्रेरणा देता है वैसे (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक विद्वान् (यातवे) जाने के लिये (रथम्) विमानादि यान को (अयुक्षाताम्) युक्त करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे बिजुली सूर्य और प्रभातवेला अपने प्रकाश से आप प्रकाशित हो समस्त जगत् को प्रकाशित कर ऐश्वर्य की प्राप्ति कराते हैं वैसे ही अध्यापक और उपदेशक लोग पदार्थ तथा ईश्वरसम्बन्धी विद्याओं को प्रकाशित कर समस्त ऐश्वर्य की उत्पत्ति करावें ॥

यद्यु॒ञ्जाथे॒ वृष॑णमश्विना॒ रथं॑ घृ॒तेन॑ नो॒ मधु॑ना क्ष॒त्रमु॑क्षतम् ।
अ॒स्माकं॒ ब्रह्म॒ पृत॑नासु जिन्वतं व॒यं धना॒ शूर॑साता भजेमहि ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (अश्विना) सभा और सेना के अधीशो ! तुम (यत्) जिस से (वृषणम्) शत्रुओं की शक्ति को रोकने वाले (रथम्) विमान आदि यान को (युञ्जाथे) युक्त करते हो इससे (घृतेन) जल और (मधुना) मधुरादि गुणयुक्त रस से (नः) हम लोगों के (क्षत्रम्) क्षत्रिय कुल को (उक्षतम्) सींचो (अस्माकम्) हमारी (पृतनासु) सेनाओं में (ब्रह्म) ब्राह्मण कुल को (जिन्वतम्) प्रसन्न करो और (वयम्) हम प्रजा सेनाजन (शूरसाता) शूरों के सेवने योग्य संग्राम में (धना) धनों को (भजेमहि) सेवन करें ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को राजनीति के अङ्गों से राज्य को रख कर धनादि को बढ़ाय और संग्रामों को जीत कर सब के लिये सुख की उन्नति करनी चाहिये ॥ २ ॥

अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः ।
त्रिवन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शं न आ वक्षद्द्विपदे चतुष्पदे ॥३॥

पदार्थ—जो (अश्विनोः) विद्वानों की क्रिया में कुशल सज्जनों की उत्तेजना से (सुष्टुतः) सुन्दर प्रशंसित (मधुवाहनः) जल से वहाने योग्य (त्रिचक्रः) जिस में तीन चक्कर (जीराश्वः) वेगरूप घोड़े और (त्रिवन्धुरः) तीन बन्धन विद्यमान वा (विश्वसौभगः) समस्त सुन्दर ऐश्वर्य भोग जिससे होते वह (अर्वाङ्) नीचले देश अर्थात् जल आदि में चलने वाला (मघवा) प्रशंसित धनयुक्त (रथः) रथ (नः) हमारे (द्विपदे) द्विपाद मनुष्यादि वा (चतुष्पदे) चौपाद गौ आदि प्राणी के लिये (शम्) सुख का (आ, वक्षत्) आवाहन करावे और हम लोगों को (यातु) प्राप्त हो ॥ ३ ॥

भवार्थ—मनुष्यों को इस प्रकार प्रयत्न करना चाहिये जिससे पदार्थ-विद्या से प्रशंसायुक्त यानों को बनाने को समर्थ हों ऐसे करने के विना समस्त सुख होने को योग्य नहीं ॥ ३ ॥

आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवं मधुमत्या नः कशया मिमिक्षतम् ।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक ! (युवम्) तुम दोनों (मधुमत्या) बहुत जल वाष्पों के वेगों से युक्त (कशया) गति वा शिक्षा से (नः) हम लोगों के लिये (ऊर्जम्) पराक्रम की (आ, वहतम्) प्राप्ति करो (मिमिक्षतम्) पराक्रम की प्राप्ति कराने की इच्छा (नः) हमारी (आयुः) उमर को (प्र, तारिष्टम्) अच्छे प्रकार पार पहुँचाओ (द्वेषः) वैरभावयुक्त

(रपांसि) पापों को (निः, सेधतम्) दूर करो हम लोगों को (मृक्षतम्) शुद्ध करो और हमारे (सचाभुवा) सहकारी (भवतम्) होओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—अध्यापक और उपदेशक लोग ऐसी शिक्षा करें कि जिससे हम लोग सब के मित्र होकर पक्षपात से उत्पन्न होने वाले पापों को छोड़ अभीष्ट सिद्धि पाने वाले हों ॥ ४ ॥

युवं ह गर्भं जगतीषु धत्थो युवं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः ।
युवमग्निं च वृषणावपश्च वनस्पतीँरश्विनावैरयेथाम् ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (वृषणा) जल वर्षा कराने वाले (अश्विनौ) सूर्य और चन्द्रमा के समान अध्यापक और उपदेशक (युवम्) तुम दोनों (जगतीषु) विविध पृथिवी आदि सृष्टियों में (गर्भम्) गर्भ के समान विद्या के बोध को (धत्थः) धरते हो (युवं, ह) तुम्हीं (विश्वेषु) समस्त (भुवनेषु) लोक लोकान्तरो के (अन्तः) बीच (अग्निम्) अग्नि को (च) भी (ऐरयेथाम्) चलाओ तथा (युवम्) तुम (अपः) जलों और (वनस्पतीन्) वनस्पति आदि वृक्षों को (च) डुलाओ ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्य जैसे यहां सूर्य और चन्द्रमा विराजमान हुए पृथिवी में वर्षा से गर्भ धारण करा कर समस्त पदार्थों को उत्पन्न कराते हैं वैसे विद्यारूप गर्भ को धारण करा के समस्त सुखों को उत्पन्न करावें ॥ ५ ॥

युवं ह स्थो भिषजा भेषजेभिरथो ह स्था रथ्या राथ्येभिः ।
अथो ह क्षत्रमधि धत्थ उग्रा यो वां हविष्मान्मनसा ददाश ॥६॥

पदार्थ—हे विद्यादि सद् गुणों में व्याप्त सज्जनो ! (युवं, ह) तुम्हीं (भेषजेभिः) रोग दूरने वाले वैद्यों के साथ (भिषजा) रोग दूर करने वाले (स्थः) हो (अथो) इसके अनन्तर (ह) निश्चय से (राथ्येभिः) रथ पहुँचाने वाले अश्वादिकों के साथ (रथ्या) रथ में प्रवीण रथ वाले (स्थः) हो (अथो) इस के अनन्तर हे (उग्रा) तीव्र स्वभाव वाले सज्जनो ! (यः) जो (हविष्मान्) बहुदानयुक्त जन (वाम्) तुम दोनों के लिये (मनसा) विज्ञान से (ददाश) देता है अर्थात् पदार्थों का अर्पण करता है (ह) उसी के लिये (क्षत्रम्) राज्य को (अधि, धत्थः) अधिकता से धारण करते हो ॥ ६ ॥

भावार्थ—जब मनुष्य विद्वान् वैद्यों का सङ्ग करते हैं तब वैद्यक विद्या को प्राप्त होते हैं जब शूर दाता होते हैं तब राज्य धारण कर और प्रशंसित होकर निरन्तर सुखी होते हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त में अश्वियों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह एकसौ सत्तावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

दीर्घतमा ऋषिः । अश्विनौ देवते १ । ४ । ५ निचृत् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ६ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

वसू रुद्रा पुरुमन्तू वृधन्ता दशस्यतं नो वृषणावभिष्टौ ।
दस्रा ह यद्रेक्ण औचथ्यो वां प्र यत्सस्राथे अकवाभिरूती ॥ १ ॥

पदार्थ—हे सभा ओर शालाधीशो ! (**यत्**) जो (**वाम्**) तुम दोनों का (**औचथ्यः**) उचित अर्थात् प्रशंसितों में हुआ (**रेक्णः**) धन है उस धन को (**यत्**) जो तुम दोनों (**अकवाभिः**) प्रशंसित (**ऊती**) रक्षाओं से हम लोगों के लिये (**सस्राथे**) प्राप्त कराते हो वे (**ह**) हीं (**वृधन्ता**) वढ़ते हुए (**पुरुमन्तू**) बहुतों के मानने योग्य (**दस्रा**) दुःख के नष्ट करने हारे (**वृषणौ**) बलवान् (**वसु**) निवास दिलाने वाले (**रुद्रा**) चालीस वर्ष लों ब्रह्मचर्य से धर्मयुक्त विद्या पढ़े हुए सज्जनो (**अभिष्टौ**) इष्ट सिद्धि के निमित्त (**नः**) हमारे लिये सुख (**प्र, दशस्यतम्**) उत्तमता से देओ ॥ १ ॥

भावार्थ—जो सूर्य और पवन के समान सब का उपकार करते हैं वे धनवान् होते हैं ॥ १ ॥

को वां दाशत्सुमतये चिदस्यै वसू यद्धेथे नमसा पदे गोः ।
जिगृतमस्मे रेवतीः पुरन्धीः कामप्रेणेव मनसा चरन्ता ॥ २ ॥

पदार्थ—(**यत्**) जो (**वसू**) सुखों में निवास कराने हारे सभा शालाधीशो तुम (**अस्यै**) प्रत्यक्ष (**सुमतये**) सुन्दर बुद्धि के लिये (**नमसा**) अन्न आदि से (**गोः**) पृथिवी के (**पदे**) प्राप्त होने योग्य स्थान में (**पुरन्धीः**) पुरग्राम को धारण करती हुई (**रेवतीः**) प्रशंसित धनयुक्त नगरियों को (**धेथे**) धारण करते हो और (**कामप्रेणेव**) कामना पूरण करने वाले (**मनसा**) विज्ञानवान् अन्तःकरण से (**चरन्ता**) प्राप्त होते हुए तुम दोनों (**अस्मे**) हम लोगों के लिये (**जिगृतम्**) जागृत हो उन (**वाम्**) आप के लिये इस मति को (**चित्**) भी (**कः**) कौन (**दाशत्**) देवे ॥ २ ॥

भावार्थ—जो पूर्णविद्या और कामना वाले पुरुष मनुष्यों को सुन्दर बुद्धि वाले करने को प्रयत्न करते हैं पृथिवी में सत्कारयुक्त होते हैं ॥ २ ॥

युक्तो ह यद्वां तौग्र्याय पेरुर्वि मध्ये अर्णसो धायि पज्रः ।
उप वामवः शरणं गमेयं शूरो नाज्म पतयद्भिरेवैः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे सभाशालाधीशो ! (वाम्) तुम दोनों का (यत्) जो (तौग्र्याय) बलों में उत्तम बल उसके लिये (युक्तः) युक्त (पेरुः) सभों की पालना करने वाला (पज्रः) बलवान् मैं (अर्णसः) जल के (मध्ये) बीच (वि, धायि) विधान किया जाता हूं अर्थात् जल सम्बन्धी काम के लिये युक्त किया जाता हूं तथा (अज्म) बल को (शूरः) शूर जैसे (न) वैसे (पतयद्भिः) इधर उधर दौड़ाते हुए (एवैः) पदार्थों की प्राप्ति कराने वालों के साथ (वाम्) तुम्हारे (अवः) रक्षा आदि काम को और (शरणम्) आश्रय को (उप, गमेयम्) निकट प्राप्त होऊं उस मुझ को (ह) ही तुम वृद्धि देओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो जिज्ञासु पुरुष साधन और उपसाधनों से अध्यापक आप्त विद्वानों के आश्रय को प्राप्त हों वे विद्वान् होते हैं और जो अच्छे प्रकार प्रीति के साथ विद्या और अच्छी शिक्षा को बढ़ाते हैं वे इस संसार में पूज्य होते हैं ॥ ३ ॥

उपस्तुतिरौचथ्यमुरुष्येन्मा मामिमे पतत्रिणी वि दुग्धाम् ।
मा मामेधो दशतयश्चितो धाक्प्र यद्वां बद्धस्त्मनि खादति क्षाम् ॥४॥

पदार्थ—हे सभा शालाधीशो ! (वाम्) तुम दोनों का (यत्) जो (दशतयः) दशगुणा (एधः) इन्धन (बद्धः) निरन्तर युक्त किया और (चितः) संचित किया हुआ अग्नि (क्षाम्) भूमि को (प्र, धाक्) जलावे वैसे (त्मनि) अपने में (माम्) मुझ को (मा) मत (खादति) खावे (इमे) ये (पतत्रिणी) नष्ट कराने के लिये कुशिक्षा (औचथ्यम्) उचित उचित कामों में उत्तम (माम्) मुझे (मा) मत (वि, दुग्धाम्) अपूर्ण करें, मेरी परिपूर्णता को मत नष्ट करें और (उपस्तुतिः) समीप प्राप्त हुई स्तुति भी (उरुष्येत्) सेवें ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे इन्धनों से निर्वात स्थान में अच्छे प्रकार बढ़ा हुआ अग्नि पृथिवी और काष्ठ आदि पदार्थों को जलाता है वैसे मुझे शोकरूप अग्नि मत जलावे और अज्ञात वा कुशील मत प्राप्त हों किन्तु शान्ति और विद्या निरन्तर बढ़े ॥ ४ ॥

न मा गरन्नद्यो मातृतमा दासा यदीं सुसमुब्धमवाधुः ।
शिरो यदस्य त्रैतनो वितक्षत्स्वयं दास उरो अंसावपि ग्ध ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (दासाः) सुख देने वाले दास जन (सुसमुब्धम्) अति सूधे स्वभाव वाले (यत्) जिस मुझे (ईम्) सब ओर से (अवाधुः) पीड़ित करें उस (मा) मुझे (मातृतमाः) माताओं के समान मान करने कराने वाली (नद्यः) नदियां (न) न (गरन्) निगलें न गलावें, (यत्) जो (त्रैतनः) तीन अर्थात् शारीरिक, मानसिक और आत्मिक सुखों का विस्तार करने वाला (दासः) सेवक (अस्य) इस मेरे (शिरः) शिर को (वितक्षत्) विविध प्रकार से पीड़ा देवे वह (स्वयम्) आप अपने (उरः) वक्षस्थल और (अंसौ) स्कन्धों को (अपि, ग्ध) काटे ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि ऐसा प्रयत्न करें जिस से नदी और समुद्र आदि न डुबा मारें। शूद्र आदि दास जन सेवा करने पर नियत हुआ भी आलस्यवश अति सूधे स्वभाव वाले स्वामी को पीड़ा दिया करता अर्थात् उन का काम मन से नहीं करता इस से उस को अच्छी शिक्षा देवे और अनुचित करने में ताड़ना भी दे तथा अपने अपने शरीर के अङ्गों की सदा पुष्टि करें ॥ ५ ॥

दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान्दशमे युगे ।
अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः ॥ ६ ॥

पदार्थ—जो (दीर्घतमा) जिस से दीर्घ अन्धकार प्रकट होता वह (मामतेयः) ममता में कुशल जन (दशमे) दशमे (युगे) वर्ष में (जुजुर्वान्) रोगी हो जाता है जो (सारथिः) रथ हांकने वाले जन के समान (अपाम्) विद्या विज्ञान और योगशास्त्र में व्याप्त (यतीनाम्) संन्यासियों के (अर्थम्) प्रयोजन को प्राप्त होता वह (ब्रह्मा) सकल वेदविद्या का जानने वाला (भवति) होता है ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो इस संसार में अत्यन्त अविद्या अज्ञानयुक्त लोभातुर हैं वे शीघ्र रोगी होते और जो पक्षपातरहित संन्यासियों के सकाश से हर्ष शोक तथा निन्दा स्तुति रहित, विज्ञान और आनन्द को प्राप्त होते हैं वे आप दुःख के पारगामी होकर औरों को भी उस के पार करते हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त में शिष्य और शिक्षा देने वाले के काम का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह एकसौ अट्ठावनवां सूक्त समाप्त हुआ ।

दीर्घतमा ऋषिः । द्यावापृथिव्यौ देवते । १ विराट् जगती । २ । ३ । ५ निचृज्जगती । ४ जगती च छन्दः । निषादः स्वरः ॥

प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी ऋतावृधा मही स्तुषे विदथेषु प्रचेतसा ।
देवेभिर्ये देवपुत्रे सुदंससेत्था धिया वार्याणि प्रभूषतः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! (ये) जो (ऋतावृधा) कारण से बढ़े हुए (प्रचेतसा) उत्तमता से प्रबल ज्ञान कराने हारे (देवपुत्रे) दिव्य प्रकृति के अंशों से पुत्रों के समान उत्पन्न हुए (सुदंससा) प्रशंसित कर्म वाले (मही) बड़े (द्यावापृथिवी) सूर्यमण्डल और भूमिमण्डल (यज्ञैः) मिले हुए व्यवहारों से (विदथेषु) जानने योग्य पदार्थों में (देवेभिः) दिव्य जलादि पदार्थों और (धिया) कर्म के साथ (वार्य्याणि) स्वीकार करने योग्य पदार्थों को (प्रभूषतः) सुभूषित करते हैं और आप उन की (प्र, स्तुषे) प्रशंसा करते हैं (इत्था) इस प्रकार उनकी हम लोग भी प्रशंसा करें ॥ १ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य उत्तम यत्न के साथ पृथिवी और सूर्यमण्डल के गुण कर्म स्वभाव को यथावत् जानें वे अतुल सुख से भूषित हों ॥ १ ॥

उत मन्ये पितुरद्रुहो मनो मातुर्महि स्वतवस्तद्धवीमभिः ।
सुरेतसा पितरा भूम चक्रतुरुरु प्रजाया अमृतं वरीमभिः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! मैं अकेला (हवीमभिः) स्तुति करने योग्य गुणों के साथ जिस (अद्रुहः) द्रोहरहित (मातः) माता (उत) और (पितुः) पिता के (स्वतवः) अपने बल वाले (महि) बड़े (मनः) मन को (उरु) बहुत (मन्ये) जानूं (तत्) उस को (सुरेतसा) सुन्दर पराक्रम वाले (पितरा) माता पिता के समान वर्त्तमान भूमि और सूर्य (वरीमभिः) स्वीकार करने योग्य गुणों से (प्रजायाः) मनुष्य आदि सृष्टि के लिये (अमृतम्) अमृत के समान वर्त्तमान (भूम) बड़ा उत्साहित (चक्रतुः) करते हैं अर्थात् शिल्पव्यवहारों से प्रोत्साहित करते मलीन नहीं रहने देते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—जैसे माता पिता लड़कों को अच्छे प्रकार पालन कर उन को बढ़ाते हैं वैसे भूमि और सूर्य्य प्रजाजनों के लिये सुख की उन्नति करते हैं ॥ २ ॥

ते सूनवः स्वपसः सुदंससो मही जज्ञुर्मातरा पूर्वचित्तये ।
स्थातुश्च सत्यं जगतश्च धर्म्मणि पुत्रस्य पाथः पदमद्वयाविनः ॥३॥

पदार्थ—जो (स्वपसः) सुन्दर कर्म और (सुदंससः) शोभन कर्मयुक्त

व्यवहार वाले जन (पूर्वचित्तये) पूर्व पहली जो चित्त अर्थात् किन्हीं पदार्थों का इकट्ठा करना है उसके लिये (जज्ञुः) प्रसिद्ध होते हैं (ते) वे (मही) बड़ी (मातरा) मान करने वाली माताओं को जानें। हे माता पिताओ ! जो तुम (स्थातुः) स्थावर धर्म वाले (च) और (जगतः) जङ्गम जगत् के (च) भी (धर्मणि) साधर्म्य में (अद्वयाविनः) इकले (पुत्रस्य) पुत्र के (सत्यम्) सत्य (पदम्) प्राप्त होने योग्य पदार्थ की (पाथः) रक्षा करते हो उनकी (सूनवः) पुत्र जन निरन्तर सेवा करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—क्या भूमि और सूर्य सब के पालन के निमित्त नहीं हैं ? जो पिता माता चराचर जगत् का विज्ञान पुत्रों के लिये ग्रहण कराते हैं वे कृत-कृत्य क्यों न हों ? ॥ ३ ॥

ते मायिनो ममिरे सुप्रचेतसो जामी सयोनी मिथुना समोकसा ।
नव्यंनव्यं तन्तुमा तन्वते दिवि समुद्रे अन्तः कवयः सुदीतयः ॥४॥

पदार्थ—जो (सुप्रचेतसः) सुन्दर प्रसन्नचित्त (मायिनः) प्रशंसित बुद्धि वा (सुदीतयः) सुन्दर विद्या के प्रकाश वाले (कवयः) विद्वान् जन (समोकसा) समीचीन जिन का निवास (मिथुना) ऐसे दो (सयोनी) समान विद्या वा निमित्त (जामी) सुख भोगने वालों को प्राप्त हो वा जान कर (दिवि) बिजुली और सूर्य के तथा (समुद्रे) अन्तरिक्ष वा समुद्र के (अन्तः) बीच (नव्यंनव्यम्) नवीन नवीन (तन्तुम्) विस्तृत वस्तुविज्ञान को (ममिरे) उत्पन्न करते हैं (ते) वे सब विद्या और सुखों का (आ, तन्वते) अच्छे प्रकार विस्तार करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य आप्त अध्यापक और उपदेशकों को प्राप्त हो विद्याओं को प्राप्त हो वा भूमि और बिजुली को जान समस्त विद्या के कामों को हाथ में आमले के समान साक्षात् कर औरों को उपदेश देते हैं वे संसार को शोभित करने वाले होते हैं ॥ ४ ॥

तद्राधो अद्य सवितुर्वरेण्यं वयं देवस्य प्रसवे मनामहे ।
अस्मभ्यं द्यावापृथिवी सुचेतुना रयिं धत्तं वसुमन्तं शतग्विनम् ॥५॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशको ! (वयम्) हम लोग (अद्य) आज (सवितुः) जगत् के उत्पन्न करने (देवस्य) और प्रकाश करने वाले ईश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए इस जगत् में जिस (वरेण्यम्) स्वीकार करने योग्य (राधः) द्रव्य को (मनामहे) जानते हैं (तत्) उस (शतग्विनम्) सैकड़ों गौओं वाले (वसुमन्तम्) नाना प्रकार के धनों से युक्त (रयिम्) धन को

(सुचेतुना) सुन्दर ज्ञान से (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (द्यावापृथिवी) भूमिमण्डल और सूर्यमण्डल के समान तुम (धत्तम्) धारण करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । विद्वान् जन जैसे द्यावापृथिवी सब प्राणियों को सुखी करते हैं वैसे सब को विद्या और धन की उन्नति से सुखी करें ॥ ५ ॥

इस सूक्त में बिजुली और भूमि के समान विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये ॥

यह एकसौ उनसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

दीर्घतमा ऋषिः । द्यावापृथिव्यौ देवते । १ विराट् जगती । २—५ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

ते हि द्यावापृथिवी विश्वशम्भुव ऋतावरी रजसो धारयत्कवी ।
सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते देवो देवी धर्म्मणा सूर्य्यः शुचिः ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जो (विश्वशम्भुवा) संसार में सुख की भावना करने हारे करके (ऋतावरी) सत्य कारण से युक्त (धारयत्कवी) अनेक पदार्थों की धारणा कराते और प्रबल जिनका देखना (सुजन्मनी) सुन्दर जन्म वाले (धिषणे) उत्कट सहनशील (देवी) निरन्तर दीपते हुए (द्यावापृथिवी) बिजुली और अन्तरिक्ष लोक (धर्मणा) अपने धर्म्म से अर्थात् अपने भाव से (रजसः) लोकों को (अन्तः) अपने बीच में धरते हैं । जिन उक्त द्यावापृथिवियों में (शुचिः) पवित्र (देवः) दिव्य गुण वाला (सूर्य्यः) सूर्यलोक (ईयते) प्राप्त होता है (ते) उन दोनों को (हि) ही तुम अच्छे प्रकार जानो ॥ १ ॥

भावार्थ—जैसे सब लोकों के वायु बिजुली और आकाश ठहरने के स्थान हैं वैसे ईश्वर उन वायु आदि पदार्थों का आधार है । इस सृष्टि में एक एक ब्रह्माण्ड के बीच एक एक सूर्यलोक है, यह सब जानें ॥ १ ॥

उरुव्यचसा महिनी असश्चता पिता माता च भुवनानि रक्षतः ।
सुधृष्टमे वपुष्ये३ न रोदसी पिता यत्सीमभि रूपैरवासयत् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (पिता) पालन करने वाला विद्युदग्नि (यत्) जिन (रोदसी) सूर्य और भूमिमण्डल को (रूपैः) शुक्ल, कृष्ण, हरित, पीतादि

रूपों से (सीम्) सब ओर से (अभ्यवासयत्) ढांपता है उन (असश्चता) विलक्षण रूप वाले (महिनी) बड़े (उरुव्यचसा) बहुत व्याप्त होने वाले (सुधृष्टमे) सुन्दर अत्यन्त उत्कर्षता से सहने वाले (वपुष्ये) रूप में प्रसिद्ध हुए सूर्यमण्डल और भूमिमण्डलों के (न) समान (मातः) मान्य करने वाली स्त्री (पितः, च) और पालना करने वाला जन (भुवनानि) जिन में प्राणी होते हैं उन लोकों की (रक्षतः) रक्षा करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—जैसे समस्त प्राणियों को भूमि और सूर्यमण्डल पालते और धारण करते हैं वैसे माता पिता सन्तानों की पालना और रक्षा करते हैं। जो जलों और पृथिवी वा इन के विकारों में रूप दिखाई देता है वह व्याप्त अग्नि ही का है यह समझना चाहिये ॥ २ ॥

स वह्निः पुत्रः पित्रोः पवित्रवान्पुनाति धीरो भुवनानि मायया ।
धेनुं च पृश्निं वृषभं सुरेतसं विश्वाहा शुक्रं पयो अस्य धुक्षत ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (पवित्रवान्) जिसके बहुत शुद्ध कर्म वर्त्तमान (पित्रोः) तथा जो वायु और आकाश के (पुत्रः) सन्तान के समान वर्त्तमान है (सः) वह (वह्निः) पदार्थों की प्राप्ति कराने वाला अग्नि (भुवनानि) लोकों को (पुनाति) पवित्र करता है। जो (धेनुम्) गौ के समान वर्त्तमान वाणी (सुरेतसम्) सुन्दर जिस का बल जो (वृषभम्) सब लोकों को रोकने वाला (पृश्निम्) सूर्य है उस (शुक्रम्) शीघ्रता करने वाले को और (पयः) दूध को (च) और (विश्वाहा) सब दिनों को पवित्र करता है जिस को (धीरः) ध्यानवान् पुरुष (मायया) उत्तम बुद्धि से जानता है (अस्य) उस अग्नि की उत्तेजना से अभीष्ट सिद्धि को तुम (धुक्षत) पूरी करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्य समस्त लोकों को धारण करता और पवित्र करता है वैसे सुपुत्र कुल को पवित्र करते हैं ॥ ३ ॥

अयं देवानामपसामपस्तमो यो जजान रोदसी विश्वशम्भुवा ।
वि यो ममे रजसी सुक्रतूययाजरेभिः स्कम्भनेभिः समानृचे ॥ ४ ॥

पदार्थ—जो (अयम्) यह (देवानाम्) पृथिवी आदि लोकों के (अपसाम्) कर्मों के बीच (अपस्तमः) अतीव क्रियावान् है वा (यः) जो (विश्वशम्भुवा) सब में सुख की भावना कराने वाले कर्म से (रोदसी) सूर्यलोक और भूमिलोक को (जजान) प्रकट करता है वा (यः) जो (सुक्रतुयया) उत्तम बुद्धि कर्म और (स्कम्भनेभिः) रुकावटों से और (अजरेभिः) हानि रहित प्रबन्धों के साथ

(रजसी) भूमिलोक और सूर्य्यलोक का (वि, ममे) विविध प्रकार से मान करता उसकी मैं (समानृचे) अच्छे प्रकार स्तुति करता हूँ ॥ ४ ॥

भावार्थ—सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय करने आदि काम जिस जगदीश्वर के होते हैं जो निश्चय के साथ कारण से समस्त नाना प्रकार के कार्य को रच कर अनन्त बल से धारण करता है उसी को सब लोग सदैव प्रशंसित करें ॥ ४ ॥

ते नो गृणाने महिनी महि श्रवः क्षत्रं द्यावापृथिवी धासथो बृहत् ।
येनाभि कृष्टीस्ततनाम विश्वहा पनाय्यमोजो अस्मे समिन्वतम् ॥५॥

पदार्थ—जो (गृणाने) स्तुति किये जाते हुए (महिनी) बड़े (द्यावापृथिवी) भूमि और सूर्य लोक हैं (ते) वे (नः) हम लोगों के लिये (बृहत्) अत्यन्त (महि) प्रशंसनीय (श्रवः) अन्न और (क्षत्रम्) राज्य को (धासथः) धारण करें (येन) जिससे हम लोग (विश्वहा) सब दिनों (कृष्टीः) मनुष्यों का (अभि, ततनाम) सब ओर से विस्तार करें और उस (पनाय्यम्) प्रशंसा करने योग्य (ओजः) पराक्रम को (अस्मे) हम लोगों के लिये (समिन्वतम्) अच्छे प्रकार बढ़ावें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो जन भूमि के गुणों को जानने वालों की विद्या को जान के उससे उपयोग करना जानते हैं वे अत्यन्त बल को पाकर सब पृथिवी का राज्य कर सकते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में द्यावापृथिवी के दृष्टान्त से मनुष्यों का यह उपकार ग्रहण करना कहा, इस से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह समझना चाहिये ॥

यह एकसो साठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

दीर्घतमा ऋषिः । ऋभवो देवताः । १ विराट् जगती । २ । ५ । ६ । ८ । १२ निचृज्जगती । ७ । १० जगती च छन्दः । निषादः स्वरः । ३ निचृत् त्रिष्टुप् । ४ । १३ भुरिक् त्रिष्टुप् । ६ स्वराट् त्रिष्टुप् । ११ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । १४ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगन्किमीयते दूत्यं१ कद्यदूचिम ।
न निन्दिम चमसं यो महाकुलोऽग्ने भ्रातर्द्रुण इद्भूतिमूदिम ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (भ्रातः) बन्धु (अग्ने) विद्वान् ! (यः) जो (महाकुलः) बड़े कुल वाला (द्रुणः) शीघ्रगामी पुरुष (चमसम्) मेघ को प्राप्त होता है उस की हम लोग (न) नहीं (निन्दिम) निन्दा करते (नः) हम लोगों को (किम्) क्या (श्रेष्ठः) श्रेष्ठ (किम्) क्या (उ) तो (यविष्ठः) अतीव ज्वान पुरुष (आजगन्) वार वार प्राप्त होता है (यत्) जिस को हम लोग (ऊचिम) कहें सो (किम्) क्या (दूत्यम्) दूतपन वा दूत के काम को (ईयते) प्राप्त होता है उस को प्राप्त हो के (इत्) ही (कत्) कब (भूतिम्) ऐश्वर्य्य को (ऊदिम) कहें उपदेश करें ॥ १ ॥

भावार्थ—जिज्ञासु जन विद्वानों को ऐसा पूछें कि हम को उत्तम विद्या कैसे प्राप्त हो और कौन इस विद्या विषय में श्रेष्ठ बलवान् दूत के समान पदार्थ है, किस को पा कर हम लोग सुखी होवें ? ॥ १ ॥

एकं चमसं चतुरः कृणोतन तद्वो देवा अब्रुवन् तद्व आगमम् ।
सौधन्वना यद्येवा करिष्यथ साकं देवैर्यज्ञियासो भविष्यथ ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (सौधन्वनाः) उत्तम धनुषों में कुशल ! जिस (एकम्) इकेले (चमसम्) मेघ को (देवाः) विद्वान् जन (वः) तुम लोगों के प्रति (अब्रुवन्) कहें अर्थात् उस के गुणों का उपदेश करें (तत्) उस को तुम लोग (कृणोतन) करो और जिसको (वः) तुम लोगों की उत्तेजना से मैं (आगमम्) प्राप्त होऊं (तत्) उस को करो (यदि) जो (देवैः) विद्वानों के (साकम्) साथ (चतुरः) वायु, अग्नि, जल, भूमि इन चारों को पूछो तो अपने काम को सिद्ध (एव) ही (करिष्यथ) करो और (यज्ञियासः) यज्ञ के अनुष्ठान के योग्य (भविष्यथ) होओ ॥ २ ॥

भावार्थ—जो विद्वानों की उत्तजना से प्रश्नोत्तरों से विद्याओं को पा कर उस में कहे हुए कामों को करते हैं वे विद्वान् होते हैं। पिछले प्रश्नों के यहां ये उत्तर हैं कि जो हम लोगों में विद्या में अधिक है वह श्रेष्ठ। जो जितेन्द्रिय है वह अत्यन्त बलवान्। जो अग्नि है वह दूत और जो पुरुषार्थ-सिद्धि है वह विभूति है ॥ २ ॥

अग्निं दूतं प्रति यदब्रवीतनाश्वः कर्त्वो रथं उतेह कर्त्वः ।
धेनुः कर्त्वा युवशा कर्त्वा द्वा तानि भ्रातरनु वः कृत्व्येमसि ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (भ्रातः) बन्धु विद्वान् ! (यत्) जो (अश्वः) शीघ्रगामी (कर्त्वः) करने योग्य अर्थात् कला यन्त्रादि सिद्ध होने वाला नाना विध शिल्पक्रिया-जन्य पदार्थ (उत) अथवा (इह) यहां (रथः) रमण करने का साधन (कर्त्वः)

करने योग्य विमान आदि यान हैं उस को (अग्निम्) बिजुली आदि (दूतम्) दूत कर्मकारी अग्नि के (प्रति) प्रति जो (अब्रवीतन) कहे उसके उपदेश से जो (कर्त्वा) करने योग्य (धेनुः) वाणी है वा जो (कर्त्वा) करने योग्य (युवशा) मिले अनमिले व्यवहारों से विस्तृत काम हैं वा जो अग्नि और वाणी (द्वा) दो हैं (तानि) उन सब को (वः) तुम्हारी उत्तेजना से सिद्ध (कृत्वी) कर हम लोग (अनु, आ, इमसि) अनुक्रम से उक्त पदार्थों को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो जिस के लिये सत्य विद्या को कहे और अग्नि आदि से कर्त्तव्य का उपदेश करे वह उस को बन्धु के समान जाने और वह करने योग्य कामों को सिद्ध कर सके ॥ ३ ॥

चकृवांसं ऋभवस्तदपृच्छत क्वेदभूद्यः स्य दूतो न आजगन् ।
यदावाख्यंच्चमसाञ्चतुरः कृतानादित्त्वष्टा ग्नास्वन्तर्न्यानजे ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (चकृवांसः) कर्म करने वाले (ऋभवः) मेधावि सज्जनो ! (यः) जो (दूतः) दूत (नः) हमारे प्रति (आ, अजगन्) वार वार प्राप्त होवे (स्यः) वह (क्व) कहां (अभूत्) उत्पन्न हुआ है (तत्, इत्) उस ही को विद्वानों के प्रति आप लोग (अपृच्छत) पूछो । जो (त्वष्टा) सूक्ष्मता करने वाला (यदा) जब (चमसान्) मेघों को (अवाख्यत्) विख्यात करे तब वह (चतुरः) चार पदार्थों को अर्थात् वायु, अग्नि, जल और भूमि को (कृतान्) किये हुए अर्थात् पदार्थ विद्या से उपयोग में लिये हुए जाने (आत्) और (इत्) वही (ग्नासु) गमन करने योग्य भूमियों के (अन्तः) बीच यानों को (नि, आनजे) चलावे ॥४॥

भावार्थ—जो विद्वानों के समीप में उत्तम शिक्षा और विद्या को पा कर समस्त सिद्धान्तों के उत्तरों को जान कार्यों में अत्युत्तम योग करते हैं वे बुद्धिमान् होते हैं ॥ ४ ॥

हनामैनाँ इति त्वष्टा यदब्रवीच्चमसं ये देवपानमनिन्दिषुः ।
अन्या नामानि कृण्वते सुते सचाँ अन्यैरेनान्कन्या३नामभिः स्परत् ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (त्वष्टा) छिन्न भिन्न करने वाला सूर्य के समान विद्वान् (यत्) जिस (देवपानम्) किरण वा इन्द्रियों से पीने योग्य (चमसम्) मेघ जल को (अब्रवीत्) कहता है (ये) जो इस की (अनिन्दिषुः) निन्दा करें उन (एनान्) इन को हम लोग (हनाम) मारें नष्ट करें । जो (सचान्) संयुक्त (अन्यैः) और (नामभिः) नामों से (अन्या) और (नामानि) नामों को (सुते) उत्पन्न किये हुए व्यवहार में (कृण्वते) प्रसिद्ध करते हैं (एनान्) इन जनों को (कन्या) कुमारी कन्या (स्परत्) प्रसन्न करे (इति) इस प्रकार से उन के प्रति तुम भी वर्त्तो ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो विद्वानों की निन्दा करें, विद्वानों में मूर्ख बुद्धि और मूर्खों में विद्वद्बुद्धि करें वे ही खल सब को तिरस्कार करने योग्य हैं ॥५॥

इन्द्रो हरी युयुजे अश्विना रथं बृहस्पतिर्विश्वरूपामुपाजत ।
ऋभुर्विभ्वा वाजो देवाँ अगच्छत स्वपसो यज्ञियं भागमैतन ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (इन्द्रः) बिजुली के समान परमैश्वर्यकारक सूर्य (हरी) धारण आकर्षण कर्मों की विद्या को (युयुजे) युक्त करे (अश्विना) शिल्पविद्या वा उस की क्रिया हथोटी के सिखाने वाले विद्वान् जन (रथम्) रमण करने योग्य विमान आदि यान को जोड़ें (बृहस्पतिः) बड़े बड़े पदार्थों की पालना करने वाले सूर्य के समान तुम लोग (विश्वरूपाम्) जिस में समस्त अर्थात् छोटे, बड़े, मोटे, पतरे, टेढ़े, बकुचे, कारे, पीरे, रङ्गीले, चटकीले रूप विद्यमान हैं उस पृथिवी को (उप, आजत) उत्तमता से जानो (ऋभुः) धनञ्जय सूत्रात्मा वायु के समान (विभ्वा) अपने व्याप्ति बल से (वाजः) अन्न को जैसे वैसे (देवान्) विद्वानों को (अगच्छत) प्राप्त होओ और (स्वपसः) जिन के सुन्दर धर्मसम्बन्धी काम हैं ऐसे हुए तुम (यज्ञियम्) जो यज्ञ के योग्य (भागम्) सेवन करने योग्य भोग है उस को (ऐतन) जानो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो बिजुली के समान कार्य को युक्त करने शिल्पविद्या के समान सब कार्यों को यथायोग्य व्यवहारों में लगाने सूर्य के समान राज्य को पालने वाले, बुद्धिमानों के समान विद्वानों का सङ्ग करने और धार्मिक के समान कर्म करने वाले मनुष्य हैं वे सौभाग्यवान् होते हैं ॥ ६ ॥

निश्चर्म्मणो गामरिणीत धीतिभिर्या जरन्ता युवशा ता कृणोतन ।
सौधन्वना अश्वादश्वमतक्षत युक्त्वा रथमुप देवाँऽअयातन ॥ ७ ॥

पदार्थ--हे मनुष्यो ! तुम (धीतिभिः) अङ्गुलियों के समान धारणाओं से (चर्मणः) शरीर की त्वचा के समान शरीर के ऊपरी भाग का सम्बन्ध रखने वाली (गाम्) पृथिवी को (अरिणीत) प्राप्त होओ (या) जो (जरन्ता) स्तुति प्रशंसा करते हुए (युवशा) युवा विद्यार्थियों को समीप रखने वाले शिल्पी होवें (ता) वे कारीगरी के कामों में अच्छे प्रकार प्रवृत्त हुए (निरकृणोतन) निरन्तर उन शिल्पकार्यों को करें। (सौधन्वनाः) उत्तम धनुष में कुशल होते हुए सज्जन (अश्वात्) वेगवान् पदार्थ से (अश्वम्) वेग वाले पदार्थ को (अतक्षत) छांटो और वेग देने में ठीक करो। और (रथम्) रथ को (युक्त्वा) जोड़ के (देवान्) दिव्य भोग वा दिव्य गुणों को (उपायातन) उपगत होओ प्राप्त होओ ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य अङ्गुलियों के समान कर्म के करने और शिल्पविद्या में प्रीति रखने वाले पदार्थ के गुणों को जान कर यान आदि कार्यों में उन का उपयोग करते हैं वे दिव्य भोगों को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

इदमुदकं पिबतेत्यब्रवीतनेदं वा घा पिबता मुञ्जनेजनम्।
सौधन्वना यदि तन्नेव हर्यथ तृतीये घा सवने मादयाध्वै ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (**सौधन्वनाः**) उत्तम धनुष वालों में कुशल अच्छे वैद्यो! तुम पथ्य भोजन चाहने वालों से (**इदम्**) इस (**उदकम्**) जल को (**पिबत**) पिओ (**इदम्**) इस (**मुञ्जनेजनम्**) मूंज के तृणों से शुद्ध किये हुए जल को पिओ (**वा**) अथवा (**नेव**) नहीं (**पिबत**) पिओ (**इति**) इस प्रकार से (**घ**) ही (**अब्रवीतन**) कहो औरों को उपदेश देओ (**यदि**) जो (**तत्**) उसको (**हर्यथ**) चाहो तो (**तृतीये**) तीसरे (**सवने**) ऐश्वर्य में (**घ**) ही निरन्तर (**मादयाध्वै**) आनन्दित होओ ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। वैद्य वा माता पिताओं को चाहिये कि समस्त रोगी और सन्तानों के लिये प्रथम ऐसा उपदेश करें कि तुम को शारीरिक और आत्मिक सुख के लिये यह सेवन करना चाहिये, यह न सेवन करना चाहिये, यह अनुष्ठान करना चाहिये यह नहीं। जिस कारण ये पूर्ण आत्मिक और शारीरिक सुखयुक्त निरन्तर हों ॥ ८ ॥

आपो भूयिष्ठा इत्येको अब्रवीदग्निर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अब्रवीत्।
वधर्यन्तीं बहुभ्यः प्रैको अब्रवीदृता वदन्तश्चमसाँ अपिंशत ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! तुम जैसे (**एकः**) एक पुरुष संयुक्त पृथिवी आदि में (**आपः**) जल (**भूयिष्ठा**) अधिक हैं (**इति**) ऐसा (**अब्रवीत्**) कहता है (**अन्यः**) और दूसरा (**अग्निः**) अग्नि (**भूयिष्ठः**) अधिक है (**इति**) ऐसा (**प्राब्रवीत्**) उत्तमता से कहता है तथा (**एकः**) कोई (**बहुभ्यः**) बहुत पदार्थों में (**वधर्यन्तीम्**) बढ़ती हुई भूमि को अधिक (**अब्रवीत्**) बतलाता है इसी प्रकार (**ऋता**) सत्य बातों को (**वदन्तः**) कहते हुए सज्जन (**चमसान्**) मेघों के समान पदार्थों को (**अपिंशत**) अलग अलग करो ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस संसार में स्थूल पदार्थों के बीच कोई जल को अधिक कोई अग्नि को अधिक और कोई भूमि को बड़ी बड़ी बतलाते हैं परन्तु स्थूल पदार्थों में भूमि ही अधिक है इस प्रकार सत्यविज्ञान से मेघ के अवयवों का जो ज्ञान उस के समान सब पदार्थों को अलग अलग कर सिद्धान्तों

की सब परीक्षा करें इस काम के विना यथार्थ पदार्थविद्या को नहीं जान सकते ॥ ९ ॥

श्रोणमेक उद॒कं गामवाजति मांसमेकः पिंशति सूनयाभृतम् ।
आ निम्रुचः शकृदेको अपाभरत्किं स्वित्पुत्रेभ्यः पितरा उपावतुः ॥१०॥

पदार्थ—जैसे (एकः) विद्वान् (श्रोणाम्) सुनने योग्य (गाम्) भूमि और (उदकम्) जल को (अवाजति) जानता कलायन्त्रों से उस को प्रेरणा देता है वा जैसे (एकः) इकेला (सूनया) हिंसा से (आभृतम्) अच्छे प्रकार धारण किये हुए (मांसम्) मरे हुए के अङ्ग के टूक टेड़े को (पिंशति) अलग करता है। वा जैसे (एकः) एक (निम्रुचः) नित्य प्राप्त प्राणी (शकृत्) मल के समान (अप, आ, अभरत्) पदार्थ को उठाता है वैसे (पितरौ) माता पिता (पुत्रेभ्यः) पुत्रों के लिये (किं स्वित्) क्या (उपावतुः) समीप में चाहें ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो पिता माता जैसे गौएं बछड़े को सुख चाहती दुःख से बचाती वा बहेलिया मांस को लेके अनिष्ट को छोड़े वा वैद्य रोगी के मल को दूर करे वैसे पुत्रों को दुर्गुण से पृथक् कर शिक्षा और विद्यायुक्त करते हैं, वे सन्तान के सुख को पाते हैं ॥ १० ॥

उद्वत्स्वस्मा अकृणोतना तृणं निवत्स्वपः स्वपस्यया नरः ।
अगोह्यस्य यदसस्तना गृहे तदद्येदमृभवो नानु गच्छथ ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (नरः) नेता अग्रगन्ता जनो ! तुम (स्वपस्यया) अपने को उत्तम काम की इच्छा से (अस्मै) इस गवादि पशु के लिये (निवत्सु) नीचे और (उद्वत्सु) ऊंचे प्रदेशों में (तृणम्) काटने योग्य घास को और (अपः) जलों को (अकृणोतन) उत्पन्न करो। हे (ऋभवः) मेधावी जनो ! तुम (यत्) जो (अगोह्यस्य) न लुकाये रखने योग्य के (गृहे) घर में वस्तु है (तत्) उस को (न) न (असस्तन) नष्ट करो (अद्य) इस उत्तम समय में (इदम्) इस के (अनु, गच्छथ) पीछे चलो ॥ ११ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि ऊंचे नीचे स्थलों में पशुओं के राखने के लिये जल और घास आदि पदार्थों को राखें और अरक्षित अर्थात् गिरे पड़े वा प्रत्यक्ष में धरे हुए दूसरे के पदार्थ को भी अन्याय से लेने की इच्छा कभी न करें। धर्म, विद्या और बुद्धिमान् जनों का सङ्ग सदैव करें ॥ ११ ॥

संमील्य यद्भुवना पर्यसर्पत क्व स्वित्तात्या पितरा व आसतुः ।
अशपत यः करस्नं व आददे यः प्राब्रवीत्प्रो तस्मा अब्रवीतन ॥१२॥

पदार्थ—हे विद्यार्थि जनो ! तुम (**संमील्य**) आंखे मिलमिला के (**यत्**) जो (**भुवना**) भूमि आदि लोक हैं उन को (**पर्यसर्पत**) सब ओर से जानो तब (**वः**) तुम्हारे (**तात्या**) उस समय होने वाले (**पितरा**) माता पिता अर्थात् विद्याऽध्ययन समय के माता पिता (**क्व**) (**स्वित्**) कहीं (**आसतुः**) निरन्तर बसें (**यः**) और जो (**वः**) तुम्हारी (**करस्नम्**) भुजा को (**आददे**) पकड़ता है वा जिस को (**अशपत**) अपराध हुए पर कोशो (**यः**) जो आचार्य तुम को (**प्र, अब्रवीत्**) उपदेश सुनावे (**तस्मै**) उस के लिये (**प्रो, अब्रवीतन**) प्रिय वचन बोलो ॥ १२ ॥

भावार्थ—जब पढ़ाने वालों के समीप विद्यार्थी आवें तब ये यह पूछने योग्य है कि तुम कहां के हो, तुम्हारा निवास कहां है, तुम्हारे माता पिता का क्या नाम है, क्या पढ़ना चाहते हो अखण्डित ब्रह्मचर्य करोगे वा न करोगे इत्यादि पूछ करके ही इन को विद्या ग्रहण करने के लिये ब्रह्मचर्य की शिक्षा देवें और शिष्य जन पढ़ाने वालों की निन्दा और उन के प्रतिकूल आचरण कभी न करें ॥ १२ ॥

सुषुप्वांस ऋभवस्तदपृच्छतागोह्य क इदं नो अबूबुधत् ।
श्वानं बस्तो बोधयितारमब्रवीत्संवत्सर इदमद्या व्यख्यत ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे (**सुसुप्वांसः**) सोने वाले (**ऋभवः**) बुद्धिमान् जनो ! तुम जिस काम को (**अपृच्छत**) पूछो और जिस को (**वि, अख्यत**) प्रसिद्ध कहो (**तत्, इदम्**) उस इस काम को (**नः**) हम लोगों को (**कः**) कौन (**अबूबुधत्**) जनावे । हे (**अगोह्य**) न गुप्त राखने योग्य (**बस्तः**) ढांपने छिपाने वाला (**श्वानम्**) कार्य्यों में प्रेरणा देने और (**बोधयितारम्**) शुभाशुभ विषय जनाने वाले को जैसे जिस विषय को (**अब्रवीत्**) कहे वैसे उस (**इदम्**) प्रत्यक्ष विषय को (**संवत्सरे**) एक वर्ष में वा (**अद्य**) आज तू कह ॥ १३ ॥

भावार्थ—बुद्धिमान् जन जिस जिस विषय को विद्वानों को पूछ कर निश्चय करें उस उस को मूर्ख निर्बुद्धि जन निश्चय नहीं कर सकें, जड़ मन्दमति जन जितना एक सवंत्सर में पढ़ता है उतना बुद्धिमान् एक दिन में ग्रहण कर सकता है ॥ १३ ॥

दिवा यान्ति मरुतो भूम्याग्निरयं वातो अन्तरिक्षेण याति ।
अद्भिर्याति वरुणः समुद्रैर्युष्माँ इच्छन्तः शवसो नपातः ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे (शवसः) बलवान् के सन्तान (नपातः) पतन नहीं होता जिन का वे विद्वानो तुम जैसे (मरुतः) पवन (दिवा) सूर्यमण्डल के साथ (यान्ति) जाते हैं (अयम्) यह (अग्निः) बिजुली रूप अग्नि (भूम्या) पृथिवी के साथ और (वातः) लोकों के बीच का वायु (अन्तरिक्षेण) अन्तरिक्ष के साथ (याति) जाता है वैसे (वरुणः) उदान वायु (अद्भिः) जल और (समुद्रैः) सागरों के साथ (याति) जाता है वैसे (युष्मान्) तुम को (इच्छन्तः) चाहते हुए जन जावें ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य, पवन, भूमि, अग्नि, वायु, अन्तरिक्ष तथा वरुण और जलों का एक साथ निवास है वैसे मनुष्य विद्या और विद्वानों के साथ वास कर नित्य सुखयुक्त और बली होवें ॥ १४ ॥

इस सूक्त में मेधावि के कर्मों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ इकसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

दीर्घतमा ऋषिः । मित्रादयो लिङ्गोक्ता देवताः । १ । २ । ६ । १० । १७ । २० निचृत् त्रिष्टुप् । ४ । ७ । ८ । १८ त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् । ६ । ११ । २१ भुरिक् त्रिष्टुप् । १२ । स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । १३ । १४ भुरिक् पङ्क्तिः । १५ । १९ । २२ स्वराड् पङ्क्तिः । १६ विराड् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परि ख्यन् ।
यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तेः प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि ॥ १ ॥

पदार्थ—ऋतु ऋतु में यज्ञ करने हारे हम लोग (विदथे) संग्राम में (यत्) जिस (वाजिनः) वेगवान् (देवजातस्य) विद्वानों के वा दिव्य गुणों से प्रकट हुए (सप्तेः) घोड़ा के (वीर्याणि) पराक्रमों को (प्रवक्ष्यामः) कहेंगे उस (नः) हमारे घोड़ों के पराक्रमों को (मित्रः) मित्र (वरुणः) श्रेष्ठ (अर्यमा) न्यायाधीश (आयुः) ज्ञाता (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (ऋभुक्षा) बुद्धिमान् और (मरुतः)

ऋत्विज् लोग (मा, परि, ख्यन्) छोड़ के मत कहें और उसके अनुकूल उस की प्रशंसा करें ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को प्रशंसित बलवान् अच्छे सीखे हुए घोड़े ग्रहण करने चाहिये जिससे सर्वत्र विजय और ऐश्वर्यों को प्राप्त हों ॥ १ ॥

यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति ।

सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूप इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः ॥ २ ॥

पदार्थ - (यत्) जो (निर्णिजा) नित्यशुद्ध (रेक्णसा) धनसे (प्रावृतस्य) ढपे हुए (गृभीताम्) ग्रहण किये (रातिम्) देने को (मुखतः) मुख से (नयन्ति) प्राप्त करते अर्थात् मुख से कहते हैं और जो (मेम्यत्) अज्ञानियों में निरन्तर मारता पीटता हुआ (विश्वरूपः) जिस के सब रूप विद्यमान (सुप्राङ्) सुन्दरता से पूछता और (अजः) नहीं उत्पन्न होता अर्थात् एक वार पूर्णभाव से विद्या पढ़ बार बार विद्वत्ता से नहीं उत्पन्न होता वह विद्वान् जन (इन्द्रापूष्णोः) ऐश्वर्य्यवान् और पुष्टिमान् प्राणियों के (प्रियम्) मनोहर (पाथः) जल को (अप्येति) निश्चय से प्राप्त होता है वे सब सुख को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—जो न्याय से संचित किये हुए धन से मुख्य धर्म्म सम्वन्धी काम करते हैं वे परोपकारी होते हैं ॥ २ ॥

एष छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः ।

अभिप्रियं यत्पुरोळाशमर्वता त्वष्टेदेनं सौश्रवसाय जिन्वति ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! जिस पुरुष ने (वाजिना) वेगवान् (अश्वेन) घोड़ा के साथ (एषः) यह प्रत्यक्ष (विश्वदेव्यः) समस्त दिव्य गुणों में उत्तम (पूष्णः) पुष्टि का (भागः) भाग (छागः) छाग (पुरः) पहिले (नीयते) पहुँचाया वा (यत्) जो (त्वष्टा) उत्तम रूप सिद्ध करने वाला जन (सौश्रवसाय) सुन्दर अन्नों में प्रसिद्ध अन्न के लिये (अर्वता) विशेष ज्ञान के साथ (एनम्) इस (अभिप्रियम्) सब ओर से प्रिय (पुरोडाशम्) सुन्दर बनाये हुए अन्न को (इत्) ही (जिन्वति) प्राप्त होता है वह सुखी होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य घोड़ों की पुष्टि के लिये छेरी का दूध उन को पिलाते और अच्छे बनाये हुए अन्न को खाते हैं वे निरन्तर सुखी होते हैं ॥ ३ ॥

यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति ।

अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥ ४ ॥

पदार्थ—(**यत्**) जो (**मानुषाः**) मनुष्य (**ऋतुशः**) बहुत ऋतुओं में (**हविष्यम्**) ग्रहण करने योग्य पदार्थों में उत्तम (**देवयानम्**) विद्वानों की यात्रा सिद्ध कराने वाले (**अश्वम्**) शीघ्रगामी रथ को (**त्रिः**) तीन वार (**परिणयन्ति**) सब ओर से प्राप्त होते अर्थात् स्वीकार करते हैं वा जो (**अत्र**) इस जगत् में (**देवेभ्यः**) दिव्य गुणों के लिये (**पूष्णः**) पुष्टि करने वाले का (**प्रथमः**) पहिला (**भागः**) सेवने योग्न भाग (**प्रतिवेदयन्**) अपने गुण को प्रत्यक्षता से जनाता हुआ (**अजः**) पाने योग्य छाग (**यज्ञम्**) सङ्ग करने योग्य व्यवहार को (**एति**) प्राप्त होता है उन को और इस छाग को सब सज्जन यथायोग्य सत्कार युक्त करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो समस्त ऋतुओं के सुख सिद्ध करने वाले यानों को रच घोड़े और बकरे आदि पशुओं को बढ़ा कर जगत् का हित सिद्ध करते हैं वे शारीरिक वाचिक और मानसिक तीनों प्रकार के सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शंस्ता सुविप्रः ।
तेन यज्ञेन स्वरङ्कृतेन स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम् ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (**होता**) यज्ञ सिद्ध कराने (**अध्वर्युः**) अपने को नष्ट न होने की इच्छा करने (**आवयाः**) अच्छे प्रकार मिलने (**अग्निमिन्धः**) अग्नि को प्रकाशित करने (**ग्रावग्राभः**) प्रशंसा को ग्रहण करने (**उत**) और (**शंस्ता**) प्रशंसा करने वाला (**सुविप्रः**) सुन्दर बुद्धिमान् विद्वान् है (**तेन**) उस के साथ (**स्विष्टेन**) उत्तम चाहे और (**स्वरङ्कृतेन**) सुन्दर पूर्ण किये हुए (**यज्ञेन**) यज्ञकर्म से (**वक्षणाः**) नदियों को तुम (**आ, पृणध्वम्**) अच्छे प्रकार पूर्ण करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य दुर्गन्ध के निवारने और सुख की उन्नति के लिये यज्ञ का अनुष्ठान कर सर्वत्र देशों में सुगन्धित जलों को वर्षा कर नदियों को परिपूर्ण करें अर्थात् जल से भरें ॥ ५ ॥

यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति ।
ये चार्वते पचनं संभरन्त्युतो तेषामभिगूर्त्तिर्न इन्वतु ॥ ६ ॥

पदार्थ—(**ये**) जो (**यूपव्रस्काः**) खम्भे के लिये काष्ठ काटने वाले (**उत**) और भी (**ये**) जो (**यूपवाहाः**) खम्भे को प्राप्त कराने वाले जन (**अश्वयूपाय**) घोड़ों के बांधने के लिये (**चषालम्**) किसी विशेष वृक्ष को

(तक्षति) काटते हैं (ये, च) और जो (अर्वते) घोड़े के लिये (पचनम्) पकाने को (संभरन्ति) धारण करते और पुष्टि करते है जो (तेषाम्) उन के बीच (उतो) निश्चय से (अभिगूर्त्तिः) सब ओर से उद्यमी है वह (नः) हम हम लोगों को (इन्वतु) प्राप्त होवे ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य घोड़े आदि पशुओं के बांधने के लिये काठ के खम्भे वा खूंटे करते बनाते हैं वा जो घोड़ों के राखन को पदार्थ दाना, घास, चारा, घुड़सार आदि स्वाकार करते बनाते हैं वे उद्यमी होकर सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

उप प्रागा॑त्सु॒मन्मे॑ऽधायि॒ मन्म॑ दे॒वाना॒माशा॒ उप॑ वी॒तपृ॑ष्ठः ।
अन्वे॑नं॒ विप्रा॒ ऋष॑यो मदन्ति दे॒वानां॑ पु॒ष्टे च॑कृमा सु॒बन्धु॑म् ॥ ७ ॥

पदार्थ—जिस ने (देवानाम्) विद्वानों का और (मे) मेरे (मन्म) विज्ञान और (आशाः) प्राप्ति की इच्छाओं को (उप, अधायि) समीप होकर धारण किया वा जो (सुमत्) सुन्दर मानता (वीतपृष्ठः) सिद्धान्तों में व्याप्त हुआ विद्वान् जन उक्त ज्ञान और उक्त आशाओं को (उप, प्र, अगात्) समीप होकर अच्छे प्रकार प्राप्त हो वा जो (ऋषयः) वेदार्थज्ञान वाले (विप्राः) धीरबुद्धि जन (सुबन्धुम्) जिस के सुन्दर भाई हैं उस को (अनु, मदन्ति) अनुमोदित करते हैं (एनम्) इस सुबन्धु सज्जन को उक्त (देवानाम्) व्याप्त साक्षात् कृतशास्त्रसिद्धान्त विद्वान् जनों को (पुष्ठे) पुष्टियुक्त व्यवहार में हम लोग (चकृम) करें अर्थात् नियत करें ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो विद्वानों के सिद्धान्त किये हुए विज्ञान का धारण कर तदनुकूल हो विद्वान् होते हैं वे शरीर और आत्मा की पुष्टि से युक्त होते हैं ॥ ७ ॥

यद्वा॒जिनो॒ दाम॑ स॒न्दान॒मर्व॑तो॒ या शी॑र्ष॒ण्या॑ रश॒ना रज्जु॑रस्य ।
यद्वा॑ घास्य॒ प्रभृ॑तमा॒स्ये॒३॒॑ तृणं॒ सर्वा॒ ता ते॒ अपि॑ दे॒वेष्व॑स्तु ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे विद्वान्! (अस्य) इस (अर्वतः) शीघ्र दूसरे स्थान को पहुँचाने वाले (वाजिनः) बलवान् घोड़ा की (यत्) जो (संदानम्) अच्छे प्रकार दिई जाती (दाम) और घोड़ों को दमन करती अर्थात् उन के बल को दावती हुई लगाम है (या) जो (शीर्षण्या) शिर में उत्तम (रशना) व्याप्त होने वाली (रज्जुः) रस्सी है (यत्, वा) अथवा जो (अस्य, घ) इसी के (आस्ये) मुख में (तृणम्) तृणवीरुध घास (प्रभृतम्) अच्छे प्रकार भरी

(अस्तु) हो (ता) वे (सर्वा) समस्त (ते) तुम्हारे पदार्थ (देवेषु) विद्वानों में (अपि) भी हों ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो घोड़ों को सुशिक्षित अच्छे इन्द्रिय दमन करने वाले उत्तम गहनों से युक्त और पुष्ट कर इन से कार्यों को सिद्ध करते हैं वे समस्त विजय आदि व्यवहारों को सिद्ध कर सकते हैं ॥ ८ ॥

यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति।
यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! (क्रविषः) क्रमणशील अर्थात् चाल से पैर रखने वाले (अश्वस्य) घोड़ा का (यत्) जिस (रिप्तम्) लिये हुए मल को (मक्षिका) शब्द करती अर्थात् भिन भिनाती हुई माखी (आश) खाती है (वा) अथवा (यत्) जो (स्वधितौ) आप धारण किये हुए (स्वरौ) हींसना और कष्ट से चिल्लाना है (शमितुः) यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले के (हस्तयोः) हाथों में (यत्) जो है और (यत्) जो (नखेषु) जिन में आकाश नहीं विद्यमान है उन नखों में (अस्ति) है (ता) वे (सर्वा) समस्त पदार्थ (ते) तुम्हारे हों तथा यह सब (देवेषु) विद्वानों में (अपि) भी (अस्तु) हो ॥ ९ ॥

भावार्थ—भृत्यों को घोड़े दुर्गन्ध लेप रहित शुद्ध माखी और डांश से रहित राखने चाहियें। अपने हाथ तथा रज्जु आदि से उत्तम नियम कर अपने इच्छानुकूल चाल चलवाना चाहिये, ऐसे करने से घोड़े उत्तम काम करते हैं ॥ ९ ॥

यदूवध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति।
सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेधं शृतपाकं पचन्तु ॥ १० ॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (शमितारः) प्राप्त हुए अन्न को सिद्ध करने बनाने वाले आप (यः) जो (उदरस्य) उदर में ठहरे हुए (आमस्य) कच्चे (क्रविषः) क्रम से निकलने योग्य अन्न का (गन्धः) गन्ध (अपवाति) अपान वायु के द्वारा जाता निकलता है वा (यत्) जो (ऊवध्यम्) ताड़ने के योग्य (अस्ति) है (तत्) उस को (कृण्वन्तु) काटो (उत) और (मेधम्) प्राप्त हुए (शृतपाकम्) परिपक्व पदार्थ को (पचन्तु) पकाओ ऐसे उसे सिद्ध कर (सुकृता) सुन्दरता से बनाये हुए पदार्थों को खाओ ॥ १० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य उदररोग निवारने के लिये अच्छे वनाये अन्न और ओषधियों को खाते हैं वे सुखी होते हैं ॥ १० ॥

यत्ते गात्रा॑द॒ग्निना॑ प॒च्यमा॑नाद॒भि शूलं॒ निह॑तस्याव॒धाव॑ति ।
मा तद्भूम्या॒मा श्रि॑ष॒न्मा तृणे॑षु दे॒वेभ्य॒स्तदु॒शद्भ्यो॑ रा॒तम॑स्तु ॥११॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! (निहतस्य) निरन्तर चलायमान हुए (ते) तुम्हारे (अग्निना) क्रोधाग्नि से (पच्यमानात्) तपाये हुए (गात्रात्) हाथ से (यत्) जो शस्त्र (अभि, शूलम्) लखके शूल के समान पीड़ाकारक शत्रु के सम्मुख (अव, धावति) चलाया जाता है (तत्) वह (भूम्याम्) भूमि में (मा, आ, श्रिषत्) न गिरे वा लगे और वह (तृणेषु) घासादि में (मा) मत आश्रित हो किन्तु (उशद्भ्य) आपके पदार्थों की चाहना करने वाले (देवेभ्यः) दिव्य गुणी शत्रु के लिये (रातम्) दिया (अस्तु) हो ॥ ११ ॥

भावार्थ—बलिष्ठ विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि संग्राम में शस्त्र चलाने के समय विचारपूर्वक ही शस्त्र चलावें जिससे क्रोधपूर्वक चला शस्त्र भूमि आदि में न पड़े किन्तु शत्रुओं को ही मारने वाला हो ॥ ११ ॥

ये वा॒जिनं॑ परि॒पश्य॑न्ति प॒क्वं य ई॑मा॒हुः सु॑र॒भिर्निर्ह॒रेति॑ ।
ये चार्व॑तो मांसभि॒क्षामु॒पास॑त उ॒तो तेषा॑म॒भिगू॑र्त्तिर्न इन्वतु ॥ १२ ॥

पदार्थ—(ये) जो लोग (वाजिनम्) जिसमें बहुत अन्नादि पदार्थ विद्यमान उस भोजन को (पक्वम्) पकाने से अच्छा बना हुआ (परिपश्यन्ति) सब ओर से देखते हैं वा (ये) जो (ईम्) जल को पका (आहुः) कहते हैं (ये, च) और जो (अर्वतः) प्राप्त हुए प्राणी के (मांसभिक्षाम्) मांसके न प्राप्त होने को (उतो) तर्क वितर्क से (उपासते) सेवन करते हैं (तेषाम्) उनका (अभिगूर्त्तिः) उद्यम और (सुरिभः) सुगन्ध (नः) हम लोगों को (इन्वतु) व्याप्त वा प्राप्त हो । हे विद्वान् ! तू (इति) इस प्रकार अर्थात् मांसादि अभक्ष्य के त्याग से रोगों को (निर्हर) निरन्तर दूर कर ॥ १२ ॥

भावार्थ—जो लोग अन्न और जल को शुद्ध करना, पकाना, उसका भोजन करना जानते और मांस को छोड़ कर भोजन करते वे उद्यमी होते हैं ॥ १२ ॥

यन्नीक्ष॑णं मां॒स्पच॑न्या उ॒खाया॒ या पात्रा॑णि यू॒ष्ण आ॒सेच॑नानि ।
ऊ॒ष्म॒ण्या॑पि॒धाना॑ च॒रूणा॑म॒ङ्काः सू॒नाः परि॑ भूष॒न्त्यश्व॑म् ॥ १३ ॥

पदार्थ—(यत्) जो (मांस्पचन्याः) मांसाहारी जिसमें मांस पकाते हैं उस (उखायाः) पाक सिद्ध करने वाली बटलोई का (नीक्षणम्) निरन्तर देखना करते उस में वैमनस्य कर (या) जो (यूष्णः) रस के (आसेचनानि) अच्छे प्रकार

सेचन के आधार वा (पात्राणि) पात्र वा (ऊष्मण्या) गरमपन उत्तम पदार्थ (अपिधाना) बटलोइयों के मुख ढांपने की ढकनियां (चरूणाम्) अन्न आदि के पकाने के आधार बटलोई कढ़ाही आदि वर्त्तनों के (अङ्काः) लक्षण हैं उनको अच्छे जानते और (अश्वम्) घोड़े को (परिभूषन्ति) सुशोभित करते हैं वे (सूनाः) प्रत्येक काम में प्रेरित होते हैं ॥ १३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य मांसादि के पकाने के दोष से रहित बटलोई के धरने, जल आदि उस में छोड़ने, अग्नि को जलाने और उसको ढक्कनों से ढांपने को जानते हैं वे पाकविद्या में कुशल होते हैं। जो घोड़ा को अच्छा सिखा उन को सुशोभित कर चलाते हैं वे सुख से मार्ग को जाते हैं ॥ १३ ॥

निक्रमणं निषदनं विवर्त्तनं यच्च पड्वीशमर्वतः ।
यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे घोड़े के सिखाने वाले ! (अर्वतः) शीघ्र जाने वाले घोड़े का (यत्) जो (निक्रमणम्) निश्चित चलना (निषदनम्) निश्चित बैठना (विवर्त्तनम्) नाना प्रकार से चलाना फिराना (पड्वीशम्, च) और पिछाड़ी बांधना तथा उस को उड़ाना है और यह घोड़ा (यत्, च) जो (पपौ) पीता (यत्, घासिम्, च) और जो घास को (जघास) खाता है (ता) वे (सर्वा) समस्त उक्त काम (ते) तुम्हारे हों। और यह समस्त (देवेषु) विद्वानों में (अपि) भी अस्तु हो ॥ १४ ॥

भावार्थ—जैसे सुन्दर सिखाये हुए घाड़े सुशील अच्छी चाल चलने वाले होते हैं वैसे विद्वानों की शिक्षा पाये हुए जन सभ्य होते हैं, जैसे घोड़े आहार भर पी, खा के पचाते हैं वैसे विचक्षणबुद्धि विद्या से तीव्र पुरुष भी हों ॥ १४ ॥

मा त्वाऽग्निर्ध्वनयीद्धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभि विक्त जघ्रिः ।
इष्टं वीतमभिगूर्त्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रति गृभ्णन्त्यश्वम् ॥१५॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! जिस (इष्टम्) इष्ट अर्थात् जिससे यज्ञ वा सङ्ग किया जाता (वषट्कृतम्) जो क्रिया से सिद्ध किये हुए (वीतम्) व्याप्त होने वाले (अभिगूर्त्तम्) सब ओर से उद्यमी (अश्वम्) घोड़े के समान शीघ्र पहुचाने वाले विजुलीरूप अग्नि को (देवासः) विद्वान् जन (त्वा) तुम्हें (प्रतिः, गृभ्णन्ति) प्रतीति से ग्रहण कराते हैं (तम्) उस को तुम ग्रहण करो सो (धूमगन्धि) धूम में गन्ध रखने वाला (अग्निः) अग्नि (मा, ध्वनयीत्) मत ध्वनि दे मत बहुत शब्द दे और (भ्राजन्ती) प्रकाशमान (उखा) अन्न पकाने की बटलोई (जघ्रिः)

अन्न गन्ध लेती हुई अर्थात् जिस के भीतर से भाफ उठ लौट के उसी में जाती वह (मा, अभि विक्त) मत अन्न को अपने में से सब ओर अलग करे, उगले ॥ १५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अग्नि वा घोड़े से रथों को चलाते हैं वे लक्ष्मी से प्रकाशमान होते हैं जो अग्नि में सुगन्धि आदि पदार्थों को होमते हैं वे रोग और कष्ट के शब्दों से पीड्यमान नहीं होते हैं ॥ १५ ॥

यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै ।
संदानमर्वन्तं पड्वीशं प्रिया देवेष्वा यामयन्ति ॥ १६ ॥

पदार्थ—जो विद्वान् जन (अस्मै) इस (अश्वाय) घोड़े के लिये (यत्) जिस (वासः) ओढ़ने के वस्त्र को (उपस्तृणन्ति) उठाते वा जिस (अधीवासम्) ऐसे चारजामा आदि को कि जिस के ऊपर ढांपने का वस्त्र पड़ता वा (संदानम्) समीचीन जिस से दान बनता उस यज्ञ आदि को (अर्वन्तम्) प्राप्त करते हुए (पड्वीशम्) प्राप्त पदार्थ को बांटने छिन्न भिन्न करने हारे अग्नि को उठाते ढांपते कलाघरों में लगाते हैं और उस से (या) जिन (प्रिया) प्रिय मनोहर (हिरण्यानि) प्रकाशमय पदार्थों को (देवेषु) विद्वानों में (आ, यामयन्ति) विस्तारते हैं वे उन पदार्थों को पाकर श्रीमान् होते हैं ॥ १६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य बिजुली आदि रूप वाले अग्नि के उपयोग करने और उस को वढ़ाने को जानें तो बहुत सुखों को प्राप्त हों ॥ १६ ॥

यत्ते सादे महसा शूकृतस्य पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद ।
स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि ॥ १७ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! (यत्) जो (ते) तेरे (सादे) स्थित होने में (महसा) अत्यन्त बल से (शूकृतस्य) शीघ्र उत्पन्न किये हुए पदार्थ के (पार्ष्ण्या) छूने वाले पदार्थ से (वा) वा (कशया) जिस से प्रेरणा दिई जाती उस कोड़ा से घोड़े को (तुतोद) प्रेरणा देवे (वा) वा (अध्वरेषु) न नष्ट करने योग्य यज्ञों में (हविषः) होमने योग्य वस्तु के (स्रुचेव) जैसे स्रुचा से काम बनें वैसे (ता) उन कामों को प्रेरणा देवे (ता) उन (सर्वा) सब (ते) तेरे कामों को (ब्रह्मणा) धन से मैं (सूदयामि) अलग अलग करता हूं ॥ १७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् जन कोड़ा वा बेंत से घोड़े को, पनेड़ी से बैलों, को अंकुश से हाथी को अच्छी ताड़ना दे उन को शीघ्र चलाते हैं वैसे ही कलायन्त्रों से अग्नि को अच्छे प्रकार चला कर विमान आदि यानों को शीघ्र चलावें ॥ १७ ॥

चतुस्त्रिंशद्वाजिनो देवबन्धोर्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति ।
अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत परुष्परुरनुघुष्या वि शस्त ॥ १८ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् जन ! तुम (देवबन्धोः) प्रकाशमान पृथिव्यादिकों के सम्बन्धी (वाजिनः) वेग वाले (अश्वस्य) शीघ्रगामी अग्नि की जो (स्वधितिः) बिजुली (समेति) अच्छे प्रकार जाती है उसको और (चतुस्त्रिंशत) चौंतीस प्रकार की (वङ्क्रीः) टेढ़ी मेढ़ी गतियों को (वि, शस्त) तड़काओ अर्थात् कलों को ताड़ना दे उन गतियों को निकालो । तथा (परुष्परुः) प्रत्येक मर्म स्थल पर (अनुघुष्य) अनुकूलता से कलायन्त्रों का शब्द करा कर (अच्छिद्रा) दो टूक होने छिन्न भिन्न होने से रहित (गात्रा) अङ्ग और (वयुना) उत्तम ज्ञान कर्मों को (कृणोत) करो ॥ १८ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस कारण से बिजुली उत्पन्न होती है वह कारण सब पृथिव्यादिकों में व्याप्त है । इस से बिजुली की ताड़ना आदि से किसी का अङ्ग भङ्ग न हो उतनी बिजुली काम में लाओ । जो अग्नि के गुणों को जान कर यथायोग्य क्रिया से उस अग्नि का प्रयोग किया जाय तो कौन काम न सिद्ध होने योग्य हों अर्थात् सभी यथेष्ट काम बनें ॥ १८ ॥

एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथ ऋतुः ।
या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ताता पिण्डानां प्र जुहोम्यग्नौ ॥१९॥

पदार्थ--हे विद्वान् ! (ते) तेरी विद्या और क्रिया से सिद्ध किये हुए (त्वष्टुः) बिजुली रूप (अश्वस्य) व्याप्त अग्नि का (एकः) एक (ऋतुः) वसन्तादि ऋतु (विशस्ता) छिन्न भिन्न करने वाला अर्थात् भिन्न भिन्न पदार्थों में लगाने वाला और (द्वा) दो (यन्तारा) उस को नियम में रखने वाले (भवतः) होते हैं (तथा) उसी प्रकार से (या) जो (गात्राणाम्) शरीरों के (ऋतुथा) ऋतु ऋतु में काम उन को और (पिण्डानाम्) अनेक पदार्थों में संघातों के जो जो अङ्ग हैं (ताता) उन उन का काम में प्रयोग मैं (कृणोमि) कराता हूँ और (अग्नौ) अग्नि में (प्र, जुहोमि) होमता हूँ ॥ १९ ॥

भावार्थ—जो सब पदार्थों के छिन्न भिन्न करने वाले ऋतु के अनुकूल पाये हुए पदार्थों में व्याप्त बिजुलीरूप अग्नि के काल और सृष्टिक्रम नियम करने वालों और प्रशंसित गुणों को जान अभीष्ट कामों को सिद्ध करते हुए मोटे मोटे लक्कड़ आदि पदार्थों को आग में छोड़ बहुत कामों को सिद्ध करें वे शिल्पविद्या को जानने वाले कैसे न हों ? ॥ १९ ॥

मा त्वा तपत्प्रिय आत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्व१ आ तिष्ठिपत्ते ।
मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः ॥२०॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! (ते) तेरा (प्रियः) मनोहर (आत्मा) आत्मा (अपियन्तम्) मरते हुए (त्वा) तुझे (मा, तपत्) मत कष्ट देवे और (स्वधितिः) वज्र के समान बिजुली तेरे (तन्वः) शरीरों को (मा, आ, तिष्ठिपत्) मत ढेर करे तथा (गृध्नुः) अभिकाङ्क्षा करने वाला प्राणी (असिना) तलवार से (ते) तेरे (अविशस्ता) न मारे हुए अर्थात् निर्घायल और (छिद्रा) छिद्र इन्द्रिय सहित (गात्राणि) अङ्गों को (अतिहाय) अतीव छोड़ (मिथू) परस्पर एकता (मा, कः) मत करे ॥ २० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य योगाभ्यास करते हैं वे मृत्यु रोग से नहीं पीड़ित होते और उन को जीवन में रोग भी दुःखी नहीं करते हैं ॥ २० ॥

न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ इदेषि पथिभिः सुगेभिः ।
हरी ते युञ्जा पृषती अभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य ॥ २१ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! यदि जो (ते) तुम्हारे मन वा आत्मा यथायोग्य करने में (युञ्जा) युक्त (हरी) धारण और आकर्षण गुण वाले (पृषती) वा सींचने वाले जल का गुण रखते हुए (अभूताम्) होते हैं उन का जो (उपास्थात्) उपस्थान करे वा (रासभस्य) शब्द करते हुए रथ आदि की (धुरि) धुरी में (वाजी) वेग तुल्य हो तो (एतत्) इस उक्त रूप को पाकर (न, वै, म्रियसे) नहीं मरते (न, उ) अथवा तो न (रिष्यसि) किसी को मारते हो और (सुगेभिः) सुखपूर्वक जिन से जाते हैं उन (पथिभिः) मार्गों से (इत्) ही (देवान्) विद्वानों वा दिव्य पदार्थों को (एषि) प्राप्त होते हो ॥ २१ ॥

भावार्थ—जो योगाभ्यास से समाहित चित्त दिव्य योगी जनों को अच्छे प्रकार प्राप्त हो धर्मयुक्त मार्ग से चलते हुए परमात्मा में अपने आत्मा को युक्त करते हैं वे मोक्ष पाये हुए होते हैं ॥ २१ ॥

सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुंसः पुत्राँ उत विश्वापुषं रयिम् ।
अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं
नो अश्वो वनतां हविष्मान् ॥ २२ ॥

पदार्थ—जैसे यह (वाजी) वेगवान् अग्नि (नः) हमारे (सुगव्यम्) सुन्दर गौओं में हुए पदार्थ जिस में हैं उसको (स्वश्व्यम्) सुन्दर घोड़ों में उत्पन्न हुए को (पुंसः) पुरुषत्व वाले (पुत्रान्) पुत्रों (उत) और (विश्वापुषम्)

सब की पुष्टि देने वाले (रयिम्) धन को (कृणोतु) करे सो (अदितिः) अखण्डित नाश को प्राप्त हुआ (नः) हम को (अनागास्त्वम्) पापपने से रहित (क्षत्रम्) राज्य को प्राप्त करे सो (हविष्मान्) मिले हैं होम योग्य पदार्थ जिस में वह (अश्वः) व्याप्तिशील अग्नि (नः) हम लोगों को (वनताम्) सेवे वैसे हम लोग इस को सिद्ध करें ॥ २२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो पृथिवी आदि की विद्या से गौ घोड़े और पुरुष सन्तानों की पूरी पुष्टि और धन को संचित करके शीघ्र गामी अश्वरूप अग्नि की विद्या से राज्य को बढ़ा के निष्पाप हो के सुखी हों वे औरों को भी ऐसे ही करें ॥ २२ ॥

इस सूक्त में अश्वरूप अग्नि की विद्या का प्रतिपादन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ बासठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

दीर्घतमा ऋषिः । अश्वोऽग्निर्देवता । १ । ६ । ७ । १३ त्रिष्टुप् । २ भुरिक् त्रिष्टुप् । ३ । ८ विराट् त्रिष्टुप् । ५ । ९ । ११ निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ । १० । १२ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (अर्वन्) विज्ञानवान् विद्वन् ! (यत्) जिस कारण तू (समुद्रात्) अन्तरिक्ष से (उत) अथ (वा) वा (पुरीषात्) पूर्ण कारण से (उद्यन्) उदय को प्राप्त होते हुए सूर्य के तुल्य (जायमानः) उत्पन्न होता (प्रथमम्) पहिले (अक्रन्दः) शब्द करता है जिस (ते) तेरा (श्येनस्य) वाज के (पक्षा) पखों के समान (हरिणस्य) हरिण के (बाहू) बाधा करने वाली भुजा के तुल्य (उपस्तुत्यम्) समीप से प्रशंसा के योग्य (महि, जातम्) बड़ा उत्पन्न हुआ काम साधक अग्नि है सो सब को सत्कार करने योग्य है ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो धर्मयुक्त ब्रह्मचर्य से विद्याओं को पढ़ते हैं वे सूर्य के समान प्रकाशमान वाज के समान वेगवान् और हरिण के समान कूदते हुए प्रशंसित होते हैं ॥ १ ॥

यमेनं दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ।
गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात्सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (वसवः) चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य के सेवन से विद्या को प्राप्त हुए सज्जनो ! तुम जिस (यमेन) नियमकर्त्ता वायु से (दत्तम्) दिये हुए (एनम्) इस पूर्वोक्त प्रशंसित अग्नि को (त्रितः) अनेकों पदार्थ वा अनेकों व्यवहारों को तरने वाला (इन्द्रः) बिजुली रूप अग्नि (आयुनक्) शिल्प कामों में नियुक्त करे (प्रथमः) वा प्रख्यातिमान् पुरुष (एनम्) इस उक्त प्रशंसित अग्नि का (अध्यतिष्ठत) अधिष्ठाता हो वा (गन्धर्वः) पृथिवी को धारण करने वाला वायु (अस्य) इस की (रशनाम्) स्नेह क्रिया को और (सूरात्) सूर्य से (अश्वम्) शीघ्रगमन कराने वाले अग्नि को (अगृभ्णत्) ग्रहण करे उस का (निरतष्ट) निरन्तर काम में लाओ ॥ २ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वानों के उपदेश से पाई हुई विद्या को ग्रहण कर बिजुली से उत्पन्न हुए कारण से फैले वायु से धारण किये सूर्य से प्रकट हुए शीघ्रगामी अग्नि को प्रयोजन में लाते हैं वे दरिद्रपन के नाश करने वाले होते हैं ॥ २ ॥

असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन ।
असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (यमः) नियम का करने वाला (असि) है (आदित्यः) अन्तरिक्ष में प्रसिद्ध होने वाला सूर्यरूप (असि) है (अर्वन्) सर्वत्र प्राप्त है (गुह्येन) गुप्त करने योग्य (व्रतेन) शील से (त्रितः) अच्छे प्रकार व्यवहारों का करने वाला (असि) है (सोमेन) चन्द्रमा वा ओषधि गण से (समया) समीप में (विपृक्तः) अपने रूप से अलग (असि) है (ते) उस अग्नि के (दिवि) दिव्य पदार्थ में (त्रीणि) तीन (बन्धनानि) प्रयोजन अगले लोगों ने (आहुः) कहे हैं उस को तुम लोग जानो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो गूढ़ अग्नि पृथिव्यादि पदार्थों में वायु और ओषधियों में प्राप्त है जिस के पृथिवी अन्तरिक्ष और सूर्य में बन्धन हैं उस को सब मनुष्य जानें ॥ ३ ॥

त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे ।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रा त आहुः परमं जनित्रम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (अर्वन्) विशेष ज्ञान वाले सज्जन ! (यत्र) जहां (ते) तेरा

(परमम्) उत्तम (जनित्रम्) जन्म (आहुः) कहते हैं वहां मेरा भी उत्तम जन्म है (वरुणः) श्रेष्ठ तू जैसे (छन्त्सि) बलवान् होता है वैसे मैं बलवान् होता हूं जैसे (ते) तेरे (त्रीणि) तीन (अन्तः) भीतर (समुद्रे) अन्तरिक्ष में (त्रीणि) तीन (अप्सु) जलों में (त्रीणि) तीन (दिवि) प्रकाशमान अग्नि में भी (बन्धनानि) बन्धन (आहुः) अगले जनों ने कहे हैं (उतेव) उसी के समान (मे) मेरे भी हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे अग्नि के कारण सूक्ष्म और स्थूल रूप हैं वायु, अग्नि, जल और पृथिवी के भी हैं वैसे सब उत्पन्न हुए पदार्थों के तीन स्वरूप हैं, हे विद्वान् ! जैसे तुम्हारा विद्या जन्म उत्तम है वैसा मेरा भी हो ॥ ४ ॥

इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफानां सनितुर्निधाना ।
अत्रा ते भद्रा रशना अपश्यमृतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (वाजिन्) विज्ञानवान् सज्जन ! जो (इमा) ये (ते) आप के (शफानाम्) कल्याण को देने वाले व्यवहारों के (अवमार्जनानि) शोधन वा जो (इमा) ये (सनितुः) अच्छे प्रकार विभाग करते हुए आप के (निधाना) पदार्थों के स्थापन करने हैं और (याः) जो (ते) आप के (ऋतस्य) सत्य कारण के (भद्राः) सेवन करने और (रशनाः) स्वाद लेने योग्य पदार्थों को (गोपाः) रक्षा करने वाले (अभिरक्षन्ति) सब ओर से पालते हैं उन सब पदार्थों को (अत्र) यहां मैं (अपश्यम्) देखूं ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अनुक्रम अर्थात् एक के पीछे एक एक के पीछे एक ऐसे क्रम से समस्त पदार्थों के कारण और संयोग को जानते हैं वे पदार्थवेत्ता होते हैं ॥ ५ ॥

आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम् ।
शिरो अपश्यं पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे मैं (ते) तेरे (आत्मानम्) सब के अधिष्ठाता आत्मा को (मनसा) विज्ञान से (आरात्) दूर से वा निकट से (अपश्यम्) देखूं वैसे तू मेरे आत्मा को देख जैसे मैं तेरे (अवः) पालने को वा (पतत्रि) गिरने के स्वभाव को और (शिरः) जो सेवन किया जाता उस शिर को देखूं वैसे तू मेरे उक्त पदार्थ को देख जैसे (अरेणुभिः) धूलि से रहित (सुगेभिः) सुख से जिन में जाते उन (पथिभिः) मार्गों से (जेहमानम्) उत्तम यत्न करते (दिवा)

अन्तरिक्ष में (पतयन्तम्) जाते हुए (पतङ्गम्) प्रत्येक स्थान में पहुँचने वाले अग्निरूप घोड़े को (अजानाम्) देखूं वैसे तू भी देख ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो अपने वा पराये आत्मा के जानने वाले विज्ञान से उत्पन्न कार्यों की परीक्षा द्वारा कारण गुणों को जानते हैं वे सुख से विद्वान् होते हैं जो विन ढपे विन धूल के संयोग अन्तरिक्ष में अग्नि आदि पदार्थों के योग से विमानादिकों को चलाते हैं वे दूर देश को भी शीघ्र जाने को योग्य होते हैं ॥ ६ ॥

अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पदे गोः ।
यदा ते मर्त्तो अनु भोगमानळादिद्ग्रसिष्ठ ओषधीरजीगः ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! (यदा) जब (ग्रसिष्ठः) अतीव खाने वाला (मर्त्तः) मनुष्य (अनु, भोगम्) अनुकूल भोग को (आनट्) प्राप्त होता है तब (आत्, इत्) उसी समय (ओषधीः) यवादि ओषधियों को (अजीगः) निरन्तर प्राप्त हो जैसे (अत्र) इस विद्या और योगाभ्यास व्यवहार में मैं (ते) तुम्हारे (जिगीषमाणम्) जीतने की इच्छा करने वाले (उत्तमम्) उत्तम (रूपम्) रूप को (आ,-अपश्यम्) अच्छे प्रकार देखूं और (गोः) पृथिवी के (पदे) पाने योग्य स्थान में (ते) आप के (इषः) अन्नादिकों को प्राप्त होऊं वैसे आप भी ऐसा विधान कर इस उक्त व्यवहारादि को प्राप्त होओ ॥ ७ ॥

भावार्थ—उद्योगी पुरुष ही को अच्छे अच्छे पदार्थ भोग प्राप्त होते हैं किन्तु आलस्य करने वाले को नहीं, जो यत्न के साथ पदार्थविद्या का ग्रहण करते हैं वे अति उत्तम प्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

अनु त्वा रथो अनु मर्य्यो अर्वन्ननु गावोऽनु भगः कनीनाम् ।
अनु व्रातासस्तव सख्यमीयुरनु देवा ममिरे वीर्य्यं ते ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (अर्वन्) घोड़े के समान वर्त्तमान ! जिस (त्वा) तेरे (अनु) पीछे (रथः) विमानादि रथ फिर (अनु) पीछे (मर्य्यः) मरण धर्म रखने वाला मनुष्य फिर (अनु) पीछे (गावः) गौयें और (कनीनाम्) कामना करते हुए सज्जनों को (अनु) पीछे (भगः) ऐश्वर्य तथा (व्रातासः) सत्य आचरणों में प्रसिद्ध (देवाः) विद्वान् जन (ते) तेरे (वीर्यम्) पराक्रम को (अनु, ममिरे) अनुकूलता से सिद्ध करते हैं वे उक्त विद्वान् (तव) तेरी (सख्यम्) मित्रता वा मित्र के काम को (अनु, ईयुः) अनुकूलता से प्राप्त होवें ॥ ८ ॥

भावार्थ—जैसे अग्नि के अनुकूल विमानादि यानों को मनुष्य प्राप्त होते हैं वैसे अध्यापक और उपदेशक के अनुकूल विज्ञान को प्राप्त होते हैं

जो विद्वानों को मित्र करते हैं वे सत्याचरणशील और पराक्रमवान् होते हैं ॥ ८ ॥

हिरण्यशृङ्गोऽयो अस्य पादा मनोजवा अवर इन्द्र आसीत् ।
देवा इदस्य हविरद्यमायन्यो अर्वन्तं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो ऐसा है कि (हिरण्यशृङ्गः) जिस के तेजःप्रकाश शृङ्गों के समान हैं तथा जिस (अस्य) इस बिजुलीरूप अग्नि के (मनोजवाः) मन के समान वेग वाले (अयः) प्राप्तिसाधक धातु (पादाः) जिन से चलें उन पैरों के समान हैं वह (अवरः) एक निराला (इन्द्रः) सूर्य (आसीत्) है और (यः) जो (प्रथमः) विख्यात (अर्वन्तम्) वेग वाले अश्वरूप अग्नि का (अध्यतिष्ठत्) अधिष्ठाता होता जिस (अस्य) इस के सम्बन्ध में (हविरद्यम्) खाने योग्य होमने के पदार्थ (इत्) ही को (देवाः) विद्वान् वा भूमि आदि तेंतीस देव (आयन्) प्राप्त हैं वह बहुतों में व्याप्त होने वाला बिजुली के समान अग्नि है ऐसा जानो ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस जगत् में तीन प्रकार का अग्नि है एक अति सूक्ष्म जो कारण रूप कहाता, दूसरा वह जो सूक्ष्म मूर्त्तिमान् पदार्थों में व्याप्त होने वाला और तीसरा स्थूल सूर्यादि स्वरूप वाला जो इस को गुण कर्म स्वभाव से ज्ञान कर इस का अच्छे प्रकार प्रयोग करते हैं वे निरन्तर सुखी होते हैं ॥ ९ ॥

ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः सं शूरणासो दिव्यासो अत्याः ।
हंसाइव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः ॥ १० ॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (यत्) जो (शिलिकमध्यमासः) स्थान में प्रसिद्ध हुए (ईर्मान्तासः) कम्पन जिन का अन्त (शूरणासः) हिंसक अर्थात् कलायन्त्र को प्रबलता से ताड़ना देते हुए प्रकाशमान (दिव्यासः) दिव्यगुण कर्म स्वभाव वाले (अत्याः) निरन्तर जाने वाले (अश्वाः) शीघ्र जाने वाले अग्न्यादि रूप घोड़े (हंसा इव) हंसों के समान (श्रेणिशः) पङ्क्ति सी किये हुए वर्त्तमान (सं, यतन्ते) अच्छा प्रयत्न कराते हैं और (दिव्यम्) अन्तरिक्ष में हुए (अज्मम्) मार्ग को (आक्षिषुः) व्याप्त होते हैं उन वायु अग्नि और जलादिकों को कार्यों में अच्छे प्रकार लगाओ ॥ १० ॥

भावार्थ—जो शिलिकादि यन्त्रों से अर्थात् जिन में कोठे दर कोठे कलाओं के होते हैं उन यन्त्रों से बिजुली आदि उत्पन्न कर और विमान आदि यानों में उन का संप्रयोग कर कार्यसिद्धि को करते हैं वे मनुष्य बड़ी भारी लक्ष्मी को पाते हैं ॥ १० ॥

तव शरीरं पतयिष्णवर्वन्तव चित्तं वातइव ध्रजीमान् ।
तव शृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा चरन्ति ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (अर्वन्) गमनशील घोड़े के समान वर्ताव रखने वाले ! जैसे (पतयिष्णु) गमनशील विमान आदि यान वा (तव) तेरा (शरीरम्) शरीर वा (ध्रजीमान्) गति वाला (वातइव) पवन के समान तव तेरा (चित्तम्) चित्त वा (पुरुत्रा) बहुत (अरण्येषु) वनों में (विष्ठिता) विशेषता से ठहरे हुए (जर्भुराणा) अत्यन्त पुष्ट (शृङ्गाणि) सींगों के तुल्य ऊंचे वा उत्कृष्ट अत्युत्तम काम अग्नि से (चरन्ति) चलते हैं वैसे (तव) तेरे इन्द्रिय और प्राण वर्त्तमान हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—जिन्हों से चलाई हुई विजुली मन के समान जाती वा पर्वतों के शिखरों के समान विमान आदि यान रचे हैं और जो वन की आग के समान अग्नि के घरों में अग्नि जला कर विमान आदि रथों को चलाते हैं वे सर्वत्र भूगोल में विचरते हैं ॥ ११ ॥

उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यानः ।
अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात्कवयो यन्ति रेभाः ॥ १२ ॥

पदार्थ—जो (दीध्यानः) देदीप्यमान (अजः) कारणरूप से अजन्मा (वाजी) वेगवान् (अर्वा) घोड़े के समान अग्नि (देवद्रीचा) विद्वानों का सत्कार करते हुए (मनसा) मन से (अस्य) इस कलाधर के (शसनम्) ताड़न को (उप, प्रागात्) सब प्रकार से प्राप्त किया जाता है जिस से इस का (नाभिः) बन्धन (पुरः) प्रथम से और (पश्चात्) पीछे (नीयते) प्राप्त किया जाता है जिस को (रेभाः) शब्दविद्या को जाने हुए (कवयः) मेधावी बुद्धिमान् जन (अनु, यन्ति) अनुग्रह से चाहते हैं उस को सब सेवें ॥ १२ ॥

भावार्थ—खैंचना वा ताड़ना आदि शिल्पविद्याओं के विना अग्नि आदि पदार्थ कार्यों के सिद्ध करने वाले नहीं होते हैं ॥ १२ ॥

उपप्रागात्परमं यत्सधस्थमर्वाँ अच्छा पितरं मातरं च ।
अद्या देवाञ्जुष्टतमो हि गम्या अथा शास्ते दाशुषे वार्याणि ॥ १३ ॥

पदार्थ—(यत्) जो (देवान्) विद्वान् वा दिव्य भोग और गुणों को (जुष्टतमः) अतीव सेवता हुआ (अर्वान्) अग्नि आदि पदार्थरूपी घोड़ों को (अद्य) आज के दिन (परमम्) उत्तम (सधस्थम्) एक साथ के स्थान को (मातरम्) उत्पन्न करने वाली माता (पितरं, च) और जन्म कराने वाले पिता वा अध्यापक को (अच्छ, उप, प्रागात्) अच्छे प्रकार सब ओर से प्राप्त होता (अथ)

अथवा (दाशुषे) देने वाले के लिये (वार्य्याणि) स्वीकार करने योग्य सुख और (हि) निश्चय से (गम्याः) गमन करने योग्य प्यारी स्त्रियों वा प्राप्त होने योग्य क्रियाओं की (आ, शास्ते) आशा करता है वह अत्यन्त सुख को प्राप्त होता है ॥१३॥

भावार्थ—जो माता पिता और आचार्य से शिक्षा पाये प्रशंसित स्थानों के निवासी विद्वानों के सङ्ग की प्रीति रखने वाले सब के सुख देने वाले वर्त्तमान हैं वे यहां उत्तम आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ १३ ॥

इस सूक्त में विद्वान् और विजुली के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह एकसौ तिरेसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

दीर्घतमा ऋषिः । अस्येत्यारभ्य गौरीर्मिमायेत्येतदन्तानामेकचत्वारिंशतो मन्त्राणां विश्वेदेवाः । तस्याः समुद्रा इत्यस्याः पूर्वभागस्य वाक् । उत्तरार्द्धस्यापः । शकमयमित्यस्याः पुरोभागस्य शकधूमः । चरमभागस्य सोमः । त्रयः केशिन इत्यस्या अग्निवायुसूर्याः । चत्वारिवागित्यस्या वाक् । इन्द्रमित्यस्याः कृष्णं नियानमित्यस्याश्च सूर्यः । द्वादशप्रधय इत्यस्याः संवत्सरात्मा कालः । यस्ते स्तन इत्यस्याः सरस्वती । यज्ञेनेत्यस्याः साध्याः । समानमेतदित्यस्याः सूर्यः पर्जन्यो वाऽग्नयो वा । दिव्यं सुपर्णमित्यस्याः सरस्वान् सूर्यो वा देवताः ॥

१ । ६ । २७ । ३५ । ४० । ५० विराट् त्रिष्टुप् । ३—८ । ११ । १८ । २६ । ३१ । ३३ । ३४ । ३७ । ४३ । ४६ । ४७ । ४९ । निचृत् त्रिष्टुप् । २ । १० । १३ । १६ । १७ । १९ । २१ । २४ । २८ । ३२ । ५२ त्रिष्टुप् । १४ । ३९ । ४१ । ४४ । ४५ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

१२ । १५ । २३ जगती । २९ । ३६ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । २० भुरिक् पङ्क्तिः । २२ । २५ । ४८ स्वराट् पङ्क्तिः । ३० । ३८ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ४२ भुरिक् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । ५१ विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः । तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् ॥ १ ॥

पदार्थ—(वामस्य) शिल्प के गुणों से प्रशंसित (पलितस्य) वृद्धावस्था को प्राप्त (अस्य) इस सज्जन का बिजुली रूप पहिला (होतुः) देने वा हवन करने वाले (तस्य) उस के (भ्राता) बन्धु के समान (अश्नः) पदार्थों का भक्षण करने वाला (मध्यमः) पृथिवी आदि लोकों में प्रसिद्ध हुआ दूसरा और

(घृतपृष्ठः) घृत वा जल जिस के पीठ पर अर्थात् ऊपर रहता वह (अस्य) इस के (भ्राता) भ्राता के समान (तृतीयः) तीसरा (अस्ति) है (अत्र) यहां (सप्तपुत्रम्) सात प्रकार के तत्त्वों से उत्पन्न (विश्पतिम्) प्रजाजनों की पालना करने वाले सूर्य को मैं (अपश्यम्) देखूं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। इस जगत् में तीन प्रकार का अग्नि है एक बिजुलीरूप दूसरा काष्ठादि में जलता हुआ भूमिस्थ और तीसरा वह है जो कि सूर्यमण्डलस्थ होकर समस्त जगत् की पालना करता है॥ १ ॥

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥ २ ॥

पदार्थ—(यत्र) जहां (एकचक्रम्) एक सब कलाओं के घूमने के लिये जिस में चक्कर है उस (रथम्) विमान आदि यान को (सप्तनामा) सप्तनामों वाला (एकः) एक (अश्वः) शीघ्रगामी वायु वा अग्नि (वहति) पहुँचाता है वा जहां (सप्त) सात कलों के घर (युञ्जन्ति) युक्त होते हैं वा जहां (इमा) ये (विश्वा) समस्त (भुवना) लोकलोकान्तर (अधि, तस्थुः) अधिष्ठित होते होते हैं वहां (अनर्वम्) प्राकृत प्रसिद्ध घोड़ों से रहित (अजरम्) और जीर्णता से रहित (त्रिनाभि) तीन जिस में बन्धन उस (चक्रम्) एक चक्कर को शिल्पी जन स्थापन करें ॥ २ ॥

भावार्थ—जो लोग बिजुली और जलादि रूप घोड़ों से युक्त विमानादि रथ को बनाय सब लोकों के अधिष्ठान अर्थात् जिस में सब लोक ठहरते हैं उस आकाश में गमनाऽगमन सुख से करें वे समग्र ऐश्वर्य को प्राप्त हों ॥ २ ॥

इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः ।
सप्त स्वसारो अभि सं नवन्ते यत्र गवां निहिता सप्त नाम ॥ ३ ॥

पदार्थ—(यत्र) जिस में (गवाम्) किरणों के (सप्त) सात (नाम) नाम (निहिता) निरन्तर धरे स्थापित किये हुए हैं और वहां (स्वसारः) बहिनों के समान वर्त्तमान (सप्त) सात कला (अभि, सं, नवन्ते) सामने मिलती हैं (सप्त) सात (अश्वाः) शीघ्रगामी अग्नि पदार्थ (वहन्ति) पहुँचाते हैं उस (इमम्) इस (सप्तचक्रम्) सात चक्कर वाले (रथम्) रथ को (ये) जो (सप्त) सातजन (अधि, तस्थुः) अधिष्ठित होते हैं वे इस जगत् में सुखी होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो स्वामी अध्यापक अध्येता रचने वाले नियम कर्त्ता और चलाने वाले अनेक चक्कर और तत्त्वादियुक्त विमानादि यानों को रचने को जानते हैं वे प्रशंसित होते हैं जिन में छेदन वा आकर्षण गुण वाले किरण वर्त्तमान हैं वहां प्राण भी हैं ॥ ३ ॥

को द॑दर्श प्रथ॒मं जाय॑मानमस्थ॒न्वन्तं॒ यद॑न॒स्था बिभ॑र्त्ति ।
भू॒म्या असु॒रसृ॑गा॒त्मा क्व॑ स्वि॒त्को वि॒द्वांस॒मुप॑गा॒त्प्रष्टु॑मे॒तत् ॥ ४ ॥

पदार्थ—(यत्) जिस (प्रथमम्) प्रख्यात प्रथम अर्थात् सृष्टि के पहिले (जायमानम्) उत्पन्न होते हुए (अस्थन्वन्तम्) हड्डियों से युक्त देह को (भूम्याः) भूमि के बीच (अनस्था) हड्डियों से रहित (असुः) प्राण (असृक्) रुधिर और (आत्मा) जीव (बिभर्त्ति) धारण करता उस को (क्व, स्वित्) कहीं भी (कः) कौन (ददर्श) देखता है (कः) और कौन (एतत्) इस उक्त विषय के (प्रष्टुम्) पूछने को (विद्वांसम्) विद्वान् के (उप, गात्) समीप जावे ॥ ४ ॥

भावार्थ—जब सृष्टि के पहिले ईश्वर ने सब के शरीर बनाये तब कोई जीव इन का देखने वाला न हुआ । जब उनमें जीवात्मा प्रवेश किये तब प्राण आदि वायु रुधिर आदि धातु और जीव भी मिल कर देह को धारण करते हुए और चेष्टा करते हुए इत्यादि विषय की प्राप्ति के लिये विद्वान् को कोई ही पूछने को जाता है किन्तु सब नहीं ॥ ४ ॥

पाकः॑ पृच्छामि॒ मन॒साऽवि॑जानन् दे॒वाना॑मे॒ना निहि॑ता प॒दानि॑ ।
व॒त्से ब॒ष्कये॒ऽधि॑ स॒प्त तन्तू॒न् वि त॑त्निरे क॒वय॒ ओत॒वा उ॑ ॥ ५ ॥

पदार्थ—जो (कवयः) बुद्धिमान् जन (ओतवै) विस्तार के लिये (बष्कये) देखने योग्य (वत्से) सन्तान के निमित्त (सप्त) सात (तन्तून्) विस्तृत धातुओं को (व्यधि, तत्निरे) अनेक प्रकार से अधिक अधिक विस्तारते हैं (उ) उन्हीं (देवानाम्) दिव्य विद्वानों के (एना) इन (निहिता) स्थापित किये हुए (पदानि) प्राप्त होने वा जानने योग्य पदों को अधिकारों को (अविजानन्) न जानता हुआ (पाकः) ब्रह्मचर्यादि तपस्या के पारिक होने योग्य मैं (मनसा) अन्तःकरण से (पृच्छामि) पूछता हूँ ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि बाल्यावस्था को लेकर अविदित शास्त्रों को विद्वानों से पढ़ कर दूसरों को पढ़ाने से सब विद्याओं को फैलावें ॥ ५ ॥

अचिकित्वाश्चिकितुषश्चिदत्र कवीन्पृच्छामि विद्मने न विद्वान्।
वि यस्तस्तम्भ षळिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम् ॥ ६ ॥

पदार्थ – (अचिकित्वान्) अविद्वान् मैं (चित्) भी (अत्र) इस विद्या-व्यवहार में (चिकितुषः) अज्ञानरूपी रोग के दूर करने वाले (कवीन्) पूरी विद्यायुक्त आप्त विद्वानों को (विद्वान्) विद्यावान् (विद्मने) विशेष जानने के लिये (न) जैसे पूछे वैसे (पृच्छामि) पूछता हूं (यः) जो (षट्) छः (इमा) इन (रजांसि) पृथिवी आदि स्थूल तत्वों को (वि, तस्तम्भ) इकट्ठा करता है (अजस्य) प्रकृति अर्थात् जगत् के कारण वा जीव के (रूपे) रूप में (किम्) क्या (स्वित् अपि) ही (एकम्) एक हुआ है इसको तुम कहो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे अविद्वान् विद्वानों को पूछ कर विद्वान् होते हैं वैसे विद्वान् भी परम विद्वानों को पूछ कर विद्या की वृद्धि करें ॥ ६ ॥

इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः।
शीर्ष्णः क्षीरं दुह्रते गावो अस्य वव्रिं वसाना उदकं पदापुः ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (अङ्ग) प्यारे (यः) जो (अस्य) इस (वामस्य) प्रशंसित (वेः) पक्षी के (निहितम्) धरे हुए (पदम्) पद को (वेद) जानता है वह (इह) इस प्रश्न में (ईम्) सब ओर से उत्तर (ब्रवीतु) कह देवे जैसे (वसानाः) झूल ओढ़े हुई (गावः) गौयें (क्षीरम्) दूध को (दुह्रते) पूरा करती अर्थात् दुहाती हैं वा वृक्ष (पदा) पग से (उदकम्) जल को (अपुः) पीते हैं वैसे (शीर्ष्णः, अस्य) इस के शिर के (वव्रिम्) स्वीकार करने योग्य सब व्यवहार को जानें ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे पक्षी अन्तरिक्ष में भ्रमते हैं वैसे ही सब लोक अन्तरिक्ष में भ्रमते हैं, जैसे गौयें बछड़ों के लिये दूध देकर बढ़ाती हैं वैसे कारण कार्यों को बढ़ाते हैं वा जैसे वृक्ष जड़ से जल पीकर बढ़ते हैं वैसे कारण से कार्य बढ़ता है ॥ ७ ॥

माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे।
सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ॥ ८ ॥

पदार्थ—(बीभत्सुः) जो भयङ्कर (गर्भरसा) जिस के गर्भ में रसरूप विद्यमान (निविद्धा) निरन्तर बन्धी हुई (सा) वह (माता) पृथिवी (धीती)

धारण से (अग्रे) सृष्टि के पूर्व (पितरम्) सूर्य के (ऋते) विना सब का (आ, बभाज) अच्छे प्रकार सेवन करती है जिस को (हि) निश्चय के साथ (मनसा) विज्ञान से (सं, जग्मे) सङ्गत होते प्राप्त होते उस को प्राप्त हो कर (नमस्वन्तः) प्रशंसित अन्नयुक्त हो कर (इत्) ही (उपवाकम्) जिस में वचन मिलता उस भाग को (ईयुः) प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—यदि सूर्य के विना पृथिवी हो तो अपनी शक्ति से सब को क्यों न धारण करे जो पृथिवी न हो तो सूर्य आप ही प्रकाशमान कैसे न हो इस कारण इस सृष्टि में अपने अपने स्वभाव से सब पदार्थ स्वतन्त्र हैं और सापेक्ष व्यवहार में परतन्त्र भी हैं ॥ ८ ॥

युक्ता मातासीद्धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद्गर्भो वृजनीष्वन्तः ।
अमीमेद्वत्सो अनु गामपश्यद्विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ॥ ९ ॥

पदार्थ--जो (गर्भः) ग्रहण करने के योग्य पदार्थ (वृजनीषु) वर्जनीय कक्षाओं में (अन्तः) भीतर (अतिष्ठत्) स्थिर होता है जिसके (दक्षिणायाः) दाहिनी (धुरि) धारण करने वाली धुरी में (माता) पृथिवी (युक्ता) जड़ी हुई (आसीत्) है । और (वत्सः) बछड़ा (गाम्) गौ को जैसे वैसे (अमीमेत्) प्रक्षेप करता है तथा (त्रिषु) तीन (योजनेषु) बन्धनों में (विश्वरूप्यम्) समस्त पदार्थों में हुए भाव को (अन्वपश्यत्) अनुकूलता से देखता है वह पदार्थ विद्या के जानने को योग्य है ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे गर्भरूप मेघ चलते हुए बद्दलों में विराजमान है वैसे सब को मान्य देने वाली भूमि आकर्षणों में युक्त है, जैसे बछड़ा गौ के पीछे जाता है वैसे यह भूमि सूर्य का अनुभ्रमण करती है जिस में समस्त सुपेद, हरे, पीले लाल आदि रूप हैं वही सब का पालन करने वाली है ॥ ९ ॥

तिस्रो मातॄस्त्रीन्पितॄन्बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमवग्लापयन्ति ।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम् ॥ १० ॥

पदार्थ—जो (तिस्र) तीन (मातॄः) उत्तम, मध्यम, अधम, भूमियों तथा (त्रीन्) बिजुली और सूर्यरूप तीन (पितॄन्) पालक अग्नियों को (ईम्) सब ओर से (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (ऊर्ध्वः) ऊपर ऊंचा (एकः) एक सूत्रात्मा वायु (तस्थौ) स्थिर होता है जो विद्वान् जन उसको (अव, ग्लापयन्ति) कहते सुनते अर्थात् उस के विषय में वार्त्तालाप करते हैं तथा (अविश्वमिन्वाम्)

जो सब से न सेवन किई गई (विश्वमिदम्) सब लोग उस को प्राप्त होते उस (वाचम्) वाणी को (मन्त्रयन्ते) सब ओर से विचारपूर्वक गुप्त कहते हैं वे (अमुष्य) उस दूरस्थ (दिवः) प्रकाशमान सूर्य के (पृष्ठे) परभाग में विराजमान होते हैं वे (न) नहीं दुःख को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ—जो सूत्रात्मा वायु अग्नि जल और पृथिवी को धारण करता है उसको अभ्यास से जान के सत्य वाणी का औरों के लिये उपदेश करे ॥ १० ॥

द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्त्ति चक्रं परि द्यामृतस्य ।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः ॥११॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् ! तू (अत्र) इस संसार में जो (द्वादशारम्) जिसके बारह अङ्ग हैं वह (चक्रम्) चक्र के समान वर्त्तमान संवत्सर (द्याम्) प्रकाशमान सूर्य के (परि, वर्वर्त्ति) सब ओर से निरन्तर वर्त्तमान है (तत्) वह (जराय) हानि के लिये (नहि) नहीं होता है जो इस संसार में (ऋतस्य) सत्य कारण से (सप्त) सात (शतानि) सौ (विंशतिः) बीस (च) भी (मिथुनासः) संयोग से उत्पन्न हुए (पुत्राः) पुत्रों के समान वर्त्तमान तत्त्व विषय (आ, तस्थुः) अपने अपने विषयों में लगे हैं उनको जान ॥ ११ ॥

भावार्थ—काल अनन्त अपरिणामी और विभु वर्त्तमान है न उस की कभी उत्पत्ति है और न नाश है इस जगत् के कारण में सात सौ बीस जो तत्त्व हैं वे मिल के स्थूल ईश्वर के निर्माण किए हुए योग से उत्पन्न हुए हैं इनका कारण अज और नित्य है जब तक अलग अलग इन तत्त्वों को प्रत्यक्ष में न जाने तब तक विद्या की वृद्धि के लिये मनुष्य यत्न किया करे ॥ ११ ॥

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्द्धे पुरीषिणम् ।
अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षळरं आहुरर्पितम् ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (पञ्चपादम्) क्षण, मुहूर्त्त, प्रहर, दिवस, पक्ष, ये पांच पग जिस के (पितरम्) पिता के तुल्य पालना कराने वाले (द्वादशाकृतिम्) बारह महीने जिस का आकार (पुरीषिणम्) और मिले हुए पदार्थों की प्राप्ति वा हिंसा कराने वाले अर्थात् उन की मिलावट को अलग अलग करानेहारे संवत्सर को (दिवः) पकाशमान सूर्य के (परे) परले (अर्द्धे) आधे भाग में विद्वान् (आहुः) कहते हैं बताते हैं (अथ) इस के अनन्तर (इमे) ये (अन्ये) और विद्वान् जन (षळरे) जिसमें छः ऋतु आरारूप और (सप्तचक्रे) सात चक्र

घूमने की परिधि विद्यमान उस (उपरे) मेघमण्डल में (विचक्षणम्) वाणी के विषय को (अर्पितम्) स्थापित (आहुः) कहते हैं उसको जानो ॥ १२ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम इस मन्त्र में काल के अवयव कहने को अभीष्ट हैं जिस विभु एक रस सनातन काल में समस्त जगत् उत्पत्ति स्थिति प्रलयान्त लब्ध होता है उस के सूक्ष्मत्व से उस काल का बोध कठिन है इससे इस को प्रयत्न से जानो ॥ १२ ॥

पञ्चारे चक्रे परिवर्त्तमाने तस्मिन्ना तस्थुर्भुवनानि विश्वा ।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (पञ्चारे) जिसमें पांच तत्व अरारूप हैं (परिवर्त्तमाने) और जो सब ओर से वर्त्तमान (तस्मिन्) उस (चक्रे) पहिये के समान ढुलकते हुए पञ्चतत्व के पञ्चीकरण में (विश्वा) समस्त (भुवनानि) लोक (आ, तस्थुः) अच्छे प्रकार स्थिर होते हैं (तस्य) उस का (अक्षः) अगला भाग अर्थात् जो उससे प्रथम ईश्वर है वह (न) नहीं (तप्यते) कष्ट को प्राप्त होता अर्थात् संसार के सुख दुःख का अनुभव नहीं करता (सनाभिः) और जिस का समान बन्धन है अर्थात् क्रिया के साथ में लगा हुआ है और (भूरिभारः) जिन में बहुत भार हैं बहुत कार्य कारण आरोपित हैं वह काल (सनात्) सनातनपन से (नेव) नहीं (शीर्यते) नष्ट होता ॥ १३ ॥

भावार्थ—जैसे यह चक्ररूप कारण काल आकाश और दिशात्मक जगत् परमेश्वर में व्याप्य है वैसे ही काल आकाश और दिशाओं में कार्यकारणात्मक जगत् व्याप्य है ॥ १३ ॥

सनेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति ।
सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (सनेमि) समान नेमि नाभि वाला (अजरम्) जरा दोष से रहित (चक्रम्) चक्र के समान वर्त्तमान कालचक्र (उत्तानायाम्) उत्तम विथरे हुए जगत् में (वि, ववृते) विशेष कर बार बार आता है और उस कालचक्र को (दश) दश प्राण (युक्ताः) युक्त (वहन्ति) बहाते हैं। जो (सूर्यस्य) सूर्य का (चक्षुः) व्यक्ति प्रकटता करने वाला भाग (रजसा) लोकों के साथ (आवृतम्) सब ओर से आवरण को (एति) प्राप्त होता है अर्थात् ढंप जाता है (तस्मिन्) उसमें (विश्वा) समस्त (भुवनानि) भूगोल (आर्पिता) स्थापित हैं ऐसा तुम जानो ॥ १४ ॥

भावार्थ—जो विभु नित्य और सब लोकों का आधार समय वर्त्तमान

है उसी काल की गति से सूर्य आदि लोक प्रकाशित होते हैं ऐसा सब लोगों को जानना चाहिये ॥ १४ ॥

साकंजानां सप्तथमाहुरेकजं षळिद्यमा ऋषयो देवजा इति ।
तेषामिष्टानि विहितानि धामशः स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः ॥१५॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! तुम (साकंजानाम्) एक साथ उत्पन्न हुए पदार्थों के बीच में जिस (एकजम्) एक कारण से उत्पन्न महत्तत्त्व को (सप्तथम्) सातवां (आहुः) कहते हैं जहां (षट्) छः (देवजाः) देदीप्यमान बिजुली से उत्पन्न हुए (यमाः) नियन्ता अर्थात् सब को यथायोग्य व्यवहारों में वर्त्ताने वाले (ऋषयः) आप सब में मिलने वाले ऋतु वर्त्तमान हैं (तेषाम्) उनके बीच जिन (धामशः) प्रत्येक स्थान में (इष्टानि) मिले हुए पदार्थों को ईश्वर ने (विहितानि) रचा है और जो (रूपशः) रूपों के साथ (विकृतानि) अवस्थान्तर को प्राप्त हुए (स्थात्रे) स्थित कारण के बीच (रेजन्ते) चलायमान होते उन सब को (इत्) ही (इति) इस प्रकार से जानो ॥ १५ ॥

भावार्थ—जो इस जगत् में पदार्थ हैं वे सब ब्रह्म के निश्चित किये हुए व्यवहार से एक साथ उत्पन्न होते हैं । यहां रचना में क्रम की आकाङ्क्षा नहीं है क्योंकि परमेश्वर के सर्वव्यापक और अनन्त सामर्थ्य वाला होने से इससे वह आप अचलित हुआ सब भुवनों को चलाता है और वह ईश्वर विकार-रहित होता हुआ सब को विकारयुक्त करता है, जैसे क्रम से ऋतु वर्त्तमान हैं और अपने अपने चिह्नों को समय समय में उत्पन्न करते हैं वैसे ही उत्पन्न होते हुए पदार्थ अपने अपने गुणों को प्राप्त होते हैं ॥ १५ ॥

स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः ।
कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात्स पितुष्पितासत् ॥१६॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिनको (अक्षण्वान्) विज्ञानवान् पुरुष (पश्यत्) देखे (अन्धः) और अन्ध अर्थात् अज्ञानी पुरुष (न) नहीं (वि, चेतत्) विविध प्रकार से जाने और जिनको (सतीः) विद्या तथा उत्तम शिक्षादि शुभ गुणों से युक्त (स्त्रियः) स्त्रियां (आहुः) कहती हैं (तान्) उन्हीं (मे) मेरे (पुंसः) पुरुषों को जानो (यः) जो (कविः) विक्रमण करने अर्थात् प्रत्येक पदार्थ में क्रम क्रम से पहुँचाने वाली बुद्धि रखने वाला (पुत्रः) पवित्र वृद्धि को प्राप्त पुरुष (ता) उन इष्ट पदार्थों को (ईम्) सब ओर से (आ, विजानात्) अच्छे प्रकार जाने (सः) वह विद्वान् हो और (यः) जो विद्वान् हो (सः) वह (पितुः) पिता का (पिता) पिता (असत्) हो यह तुम (चिकेत) जानो ॥ १६ ॥

भावार्थ—जिसको विद्वान् जानते हैं उसको अविद्वान् नहीं जान सकते जैसे विद्वान् जन पुत्रों को पढ़ाकर विद्वान् करें वैसे विदुषी स्त्रियां कन्याओं को विदुषी करें। जो पृथिवी से लेके ईश्वरपर्यन्त पदार्थों के गुण कर्म स्वभावों को जान धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करते हैं वे ज्वान भी बुड्ढों के पिता होते हैं ॥ १६ ॥

अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात् ।
सा कद्रीची कं स्विदर्द्धं परागात्क्व स्वित्सूते नहि यूथे अन्तः ॥१७॥

पदार्थ—जो (**वत्सम्**) उत्पन्न हुए मनुष्यादि संसार को (**बिभ्रती**) धारण करती हुई (**गौः**) गमन करने वाली जिस (**परेण**)परले वा (**अवरेण**) उरले (**पदा**) प्राप्त करने वाले गमन-रूप चरण से (**अवः**) नीचे से (**उदस्थात्**) उठती है (**एना**) इस से (**परः**) पीछे से उठती है जो (**यूथे**) समूह के (**अन्तः**) बीच में (**कम्. स्वित्**) किसी को (**अर्द्धम्**) आधा (**सूते**) उत्पन्न करती है (**सा**) वह (**कद्रीची**) अप्रत्यक्ष गमन करने वाली (**क्व, स्वित्**) किसी में (**नहि**) नहीं (**परा, अगात्**) पर को लौट जाती है ॥ १७ ॥

भावार्थ—यह पृथिवी सूर्य से नीचे ऊपर और उत्तर दक्षिण को जाती है इसकी गति विद्वानों के विना न देखी जाती, इसके परले आधे भाग में सदा अन्धकार और उरले आधे भाग में प्रकाश वर्त्तमान है। बीच में सब पदार्थ वर्त्तमान हैं सो यह पृथिवी माता के तुल्य सब की रक्षा करती है ॥ १७ ॥

अवः परेण पितरं यो अस्यानुवेद पर एनावरेण ।
कवीयमानः क इह प्र वोचद्देवं मनः कुतो अधि प्रजातम् ॥ १८ ॥

पदार्थ—जो विद्वान् (**अस्य**) इस के (**अवः**) अधोभाग से और (**परेण**) परभाग से वर्त्तमान (**पितरम्**) पालने वाले सूर्य को (**अनुवेद**) विद्या पढ़ने के अनन्तर जानता है (**यः**) जो (**परः**) पर और (**एना**) इस उक्त (**अवरेण**) नीचे के मार्ग से जानता है वह (**कवीयमानः**) अतीव विद्वान् है और (**कुतः**) कहाँ से यह (**देवम्**) दिव्य गुण सम्पन्न (**मनः**) अन्तःकरण (**प्रजातम्**) उत्पन्न हुआ ऐसा (**इह**) इस विद्या वा जगत में (**कः**) कौन (**अधि, प्र, वोचत**) अधिकतर कहे ॥ १८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य बिजुली को लेकर सूर्यपर्यन्त अग्नि को पिता के समान पालने वाला जानें जिसके पराऽवर भाग में कार्यकारण स्वरूप हैं उस का उपदेश दिव्य अन्तःकरण वाले होकर इस संसार में कहें ॥ १८ ॥

ये अर्वाञ्चस्ताँ उ पराच आहुर्ये पराञ्चस्ताँ उ अर्वाच आहुः ।
इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ॥१९॥

पदार्थ—हे (सोम) ऐश्वर्य युक्त विद्वान् ! (ये) जो (अर्वाञ्चः) नीचे जाने वाले पदार्थ हैं (तान्, उ) उन्हीं को (पराचः) परे को पहुँचे हुए (आहुः) कहते हैं । और (ये) जो (पराञ्चः) परे से व्यवहार में लाये जाते अर्थात् परभाग में पहुँचने वाले हैं (तान्, उ) उन्हें तर्क वितर्क से ((अर्वाचः) नीचे जाने वाले (आहुः) कहते हैं उन को जानो (इन्द्रः) सूर्य (च) और वायु (या) जिन भुवनों को धारण करते हैं (तानि) उन को (युक्ताः) युक्त हुए अर्थात् उन में सम्बन्ध किये हुए पदार्थ (धुरा) धारण करने वाली धुरी में जुडे हुए घोड़ों के (न) समान (रजसः) लोकों को (वहन्ति) बहाते चलाते उनको हे पढ़ाने और उपदेश करने वालो ! तुम विदित (चक्रथुः) करो जानो ॥१९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! यहां जो नीचे ऊपर परे उरे मोटे सूक्ष्म छुटाई बड़ाई के व्यवहार हैं वे सापेक्ष हैं एक की अपेक्षा से यह इस से ऊँचा जो कहा जाता है वही दोनों कथनों को प्राप्त होता है जो इस से परे है वही और से नीचे हैं जो इस से मोटा है वह और से सूक्ष्म जो जो इस से छोटा है वह और से बड़ा गुरु है यह तुम जानो । यहां कोई वस्तु अपेक्षा रहित नहीं है और न निराधार ही है ॥ १९ ॥

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥ २० ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (सुपर्णा) सुन्दर पंखों वाले (सयुजा) समान सम्बन्ध रखने वाले (सखाया) मित्रों के समान वर्त्तमान (द्वा) दो पखेरू (समानम्) एक (वृक्षम्) जो काटा जाता उस वृक्ष का (परि, सस्वजाते) आश्रय करते हैं (तयोः) उन में से (अन्यः) एक (पिप्पलम्) उस वृक्ष के पके हुए फल को (स्वादु) स्वादुपन से (अत्ति) खाता है और (अन्यः) दूसरा (अनश्नन्) न खाता हुआ (अभि, चाकशीति) सब ओर से देखता है अर्थात् सुन्दर चलने फिरने वा क्रियाजन्य काम को जानने वाले व्याप्यव्यापकभाव से साथ ही सम्बन्ध रखते हुए मित्रों के समान वर्त्तमान जीव और ईश--जीवात्मा समान कार्य कारण रूप ब्रह्माण्ड देह का आश्रय करते हैं उन दोनों अनादि जीव ब्रह्म में जो जीव है वह पाप पुण्य से उत्पन्न सुख दुःखात्मक भोग को स्वादुपन से भोगता है और दूसरा ब्रह्मात्मा कर्मफल को न भोगता हुआ उस भोगते हुए जीव को सब ओर से देखता अर्थात् साक्षी है यह तुम जानो ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में रूपकालङ्कार है। जीव परमात्मा और जगत् का कारण ये तीन पदार्थ अनादि और नित्य हैं जीव और ईश परमात्मा यथाक्रम से अल्प अनन्त चेतन विज्ञानवान् सदा विलक्षण व्याप्यव्यापकभाव से संयुक्त और मित्र के समान वर्त्तमान हैं, वैसे ही जिस अव्यक्त परमाणुरूप कारण से कार्य्यरूप जगत् होता है वह भी अनादि और नित्य है। समस्त जीव पाप पुण्यात्मक कार्यों को करके उन के फलों को भोगते हैं और ईश्वर एक सब ओर से व्याप्त होता हुआ न्याय से पाप पुण्य के फल को देने से न्यायाधीश के समान देखता है ॥ २० ॥

यत्रा॑ सु॒प॒र्णा अ॒मृत॑स्य भा॒गमनि॑मेषं वि॒दथा॑भि॒स्वर॑न्ति ।
इ॒नो विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य गो॒पाः स मा॒ धीरः॒ पाक॒मत्रा॒ वि॑वेश ॥२१॥

पदार्थ—(यत्र) जिस (विदथा) विज्ञानमय परमेश्वर में (सुपर्णाः) शोभन कर्म वाले जीव (अमृतस्य) मोक्ष के (भागम्) सेवने योग्य अंश को (अनिमेषम्) निरन्तर (अभिस्वरन्ति) सन्मुख कहते अर्थात् प्रत्यक्ष कहते वा जिस परमेश्वर में (विश्वस्य) समग्र (भुवनस्य) लोकलोकान्तर का (गोपाः) पालने वाला (इनः) स्वामी सूर्यमण्डल (आ, विवेश) प्रवेश करता अर्थात् सूर्यादि लोकलोकान्तर सब लय को प्राप्त होते हैं जो इसको जानता है (सः) वह (धीरः) ध्यानवान् पुरुष (अत्र) इस परमेश्वर में (पाकम्) परिपक्व व्यवहार वाले (मा) मुझ को उपदेश देवे ॥ २१ ॥

भावार्थ—जिस परमात्मा में सवितृमण्डल को आदि लेकर लोक लोकान्तर और द्वीपद्वीपान्तर सब लय हो जाते हैं, तद्विषयक उपदेश से ही साधक जन मोक्ष पाते हैं और किसी तरह से मोक्ष को प्राप्त नहीं हो सकते ॥ २१ ॥

यस्मि॑न्वृ॒क्षे म॒ध्वदः॑ सु॒प॒र्णा नि॑वि॒शन्ते॒ सुव॑ते॒ चाधि॒ विश्वे॑ ।
तस्येदा॑हुः॒ पिप्प॑लं स्वा॒द्वग्रे॒ तन्नोन्न॑श॒द्यः पि॒तरं॒ न वेद॑ ॥ २२ ॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (यस्मिन्) जिस (विश्वे) समस्त (वृक्षे) वृक्ष पर (मध्वदः) मधु को खाने वाले (सुपर्णाः) सुन्दर पंखों से युक्त भौंरा आदि पक्षी (नि, विशन्ते) स्थिर होते हैं (अधि, सुवते, च) और आधारभूत होकर अपने बालकों को उत्पन्न करते (तस्य, इत्) उसी के (पीप्पलम्) जल के समान निर्मल फल को (अग्रे) आगे (स्वादु) स्वादिष्ठ (आहुः) कहते हैं और (तत्) वह (न) न (उत् नशत्) नष्ट होता है अर्थात् वृक्षरूप इस जगत् में मधुर कर्म फलों को खाने वाले उत्तम कर्मयुक्त जीव स्थिर होते और उसमें सन्तानों को

उत्पन्न करते हैं उसका जल के समान निर्मल कर्मफल संसार में होना इस को आगे उत्तम कहते हैं और नष्ट नहीं होता अर्थात् पीछे अशुभ कर्मों के करने से संसार रूप वृक्ष का जो फल चाहिये सो नहीं मिलता (यः) जो पुरुष (पितरम्) पालने वाले परमात्मा को (न, वेद) नही जानता वह इस संसार के उत्तम फल को नहीं पाता ॥ २२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में रूपकालङ्कार है। अनादि अनन्त काल से यह विश्व उत्पन्न होता और नष्ट होता है जीव उत्पन्न होते और मरते भी जाते हैं, इस संसार में जीवों ने जैसा कर्म किया वैसा ही अवश्य ईश्वर के न्याय से भोग्य है, कर्म जीव का भी नित्यसम्बन्ध है जो परमात्मा और उसके गुण कर्म स्वभावों के अनुकूल आचरण को न जानकर मनमाने काम करते हैं वे निरन्तर पीड़ित होते हैं और जो उस से विपरीत हैं वे सदा आनन्द भोगते हैं ॥ २२ ॥

यद्गा॑य॒त्रे अधि॑ गाय॒त्रमाहि॑तं॒ त्रैष्टु॑भाद्वा॒ त्रैष्टु॑भं॒ निर॒तक्ष॑त ।
यद्वा॒ जग॒ज्जग॒त्याहि॑तं प॒दं य इत्तद्वि॒दुस्ते अ॑मृत॒त्वमा॑नशुः ॥ २३ ॥

पदार्थ—(ये) जो लोग (यत्) जो (गायत्रे) गायत्रीछन्दोवाच्य वृत्ति में (गायत्रम्) गाने वालों की रक्षा करने वाला (अधि, आहितम्) स्थित है (त्रैष्टुभात्, वा) अथवा त्रिष्टुप् छन्दोवाच्य वृत्त से (त्रैष्टुभम्) त्रिष्टुप् में प्रसिद्ध हुए अर्थ को (निरतक्षत) निरन्तर विस्तारते हैं (वा) वा (यत्) जो (जगति) संसार में (जगत्) प्राणि आदि जगत् (पदम्) जानने योग्य (आहितम्) स्थित है (तत्) उसको (विदुः) जानते हैं (ते) वे (इत्) ही (अमृतत्वम्) मोक्षभाव को (आनशुः) प्राप्त होते हैं ॥ २३ ॥

भावार्थ—जो सृष्टि के पदार्थ और तत्रस्थ ईश्वरकृत रचना को जान कर परमात्मा का सब ओर से ध्यान कर विद्या और धर्म की उन्नति करते हैं वे मोक्ष पाते हैं ॥ २३ ॥

गा॒य॒त्रेण॒ प्रति॑ मिमीते अ॒र्कम॒र्केण॒ साम॒ त्रैष्टु॑भेन वा॒कम् ।
वा॒केन॑ वा॒कं द्वि॒पदा॒ चतु॑ष्पदा॒क्षरे॑ण मिमते स॒प्त वाणी॑ः ॥ २४ ॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जो जगदीश्वर (गायत्रेण) गायत्री छन्द से (अर्कम्) ऋक् (अर्केण) ऋचाओं के समूह से (साम) साम (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुप् छन्द वा तीन वेदों की विद्याओं को स्तुतियों से (वाकम्) यजुर्वेद (द्विपदा) दो पद जिस में विद्यमान वा (चतुष्पदा) चार पद वाले (अक्षरेण) नाशरहित (वाकेन)

यजुर्वेद से (वाकम्) अथर्ववेद और (सप्त) गायत्री आदि सात छन्द युक्त (वाणीः) वेदवाणी को (प्रति, मिमीते) प्रतिमान करता है और जो उस के ज्ञान को (मिमते) मान करते हैं वे कृतकृत्य होते हैं ॥ २४ ॥

भावार्थ—जिस जगदीश्वर ने वेदस्थ अक्षर, पद, वाक्य, छन्द, अध्याय आदि बनाये हैं उस को सब मनुष्य धन्यवाद देवें ॥ २४ ॥

जगता सिन्धुं दिव्यस्तभायद्रथन्तरे सूर्यं पर्यपश्यत् ।
गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहुस्ततो मह्ना प्र रिरिचे महित्वा ॥२५॥

पदार्थ--जो जगदीश्वर (जगता) संसार के साथ (सिन्धुम्) नदी आदि को (दिवि) प्रकाश (रथन्तरे) और अन्तरिक्ष में (सूर्यम्) सवितृलोक को (अस्त-भायत्) रोकता वा सब को (पर्य्यपश्यत्) सब ओर से देखता है वा जिन (गाय-त्रस्य) गायत्री छन्द से अच्छे प्रकार से साधे हुए ऋग्वेद की उत्तेजना ले (तिस्रः, समिधः) अच्छे प्रकार प्रज्वलित तीन पदार्थों को अर्थात् भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान तीनों काल के सुखों को (आहुः) कहते हैं (ततः) उनसे (मह्ना) बड़े (महित्वा) प्रशंसनीय भाव से (प्र, रिरिचे) अलग होता है अर्थात् अलग गिना जाता है वह सब को पूजने योग्य है ॥ २५ ॥

भावार्थ—जब ईश्वर ने जगत् बनाया तभी नदी और समुद्र आदि बनाये। जैसे सूर्य आकर्षण से भूगोलों को धारण करता है वैसे सूर्य आदि जगत् को ईश्वर धारण करता है। जो सब जीवों के समस्त पाप पुण्यरूपी कर्म्मों को जान के फलों को देता है वह ईश्वर सब पदार्थों से बड़ा है ॥२५॥

उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् ।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचम् ॥ २६ ॥

पदार्थ--जैसे (सुहस्त) सुन्दर जिसके हाथ और (गोधुक्) गौ को दुहता हुआ मैं (एताम्) इस (सुदुघाम्) अच्छे दुहाती अर्थात् कामों को पूरा करती हुई (धेनुम्) दूध देने वाली गौरूप विद्या को (उप, ह्वये) स्वीकार करूं (उत) और (एनाम्) इस विद्या को आप भी (दोहत्) दुहते वा जिस (श्रेष्ठम्) उत्तम (सवम्) ऐश्वर्य को (सविता) ऐश्वर्य का देने वाला (नः) हमारे लिये (साविषत्) उत्पन्न करे। वा जैसे (अभीद्धः) सब ओर से प्रदीप्त अर्थात् अति तपता हुवा (घर्मः) घाम वर्षा करता है (तदु) उसी सब को जैसे मैं (सु, प्र, वोचम्) अच्छे प्रकार कहूँ वैसे तुम भी इसको अच्छे प्रकार कहो ॥ २६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में रूपकालङ्कार है। अध्यापक विद्वान् जन पूरी विद्या से भरी हुई वाणी को अच्छे प्रकार देवें। जिस से उत्तम ऐश्वर्य को

शिष्य प्राप्त हों। जैसे सविता समस्त जगत् को प्रकाशित करता है वैसे उपदेशक लोग सब विद्यार्थों को प्रकाशित करें॥ २६॥

हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात्।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्द्धतां महते सौभगाय॥ २७॥

पदार्थ--जैसे (हिङ्कृण्वती) हिंकारती और (मनसा) मन से (वत्सम्) बछड़े को (इच्छन्ती) चाहती हुई (इयम्) यह (अघ्न्या) मारने को न योग्य गौ (अभि, आ, आगात्) सब ओर से आती वा जो (अश्विभ्याम्) सूर्य और वायु से (पयः) जल वा दूध को (दुहाम्) दुहते हुए पदार्थों में वर्त्तमान पृथिवी है (सो) वह (वसूनाम्) अग्नि आदि वसुसञ्ज्ञकों में (वसुपत्नी) वसुओं की पालन वाली (महते) अत्यन्त (सौभगाय) सुन्दर ऐश्वर्य के लिये (वर्द्धताम्) बढ़े उन्नति को प्राप्त हो॥ २७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पृथिवी महान् ऐश्वर्य को बढ़ाती है वैसे गौयें अत्यन्त सुख देती हैं इससे ये गौयें कभी किसी को मारनी न चाहियें॥ २७॥

गौरमीमेदनु वत्सं मिषन्तं मूर्द्धानं हिङ्ङकृणोन्मातवा उ।
सृक्वाणं घर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः॥ २८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! जैसे (वावशाना) निरन्तर कामना करती हुई (गौः) गौ (मिषन्तम्) मिमयाते हुए (वत्सम्) बछड़े को तथा (मूर्द्धानम्) मूड़ को (अनु, हिङ्, अकृणोत्) लखकर मूड़ को चाटती हुई हिंकारती है और (मातवै) मान करने (उ) ही के लिये उस बछड़े के दुःख को (अमीमेत्) नष्ट करती वैसे (पयोभिः) जलों के साथ वर्त्तमान पृथिवी (घर्मम्) आतप को (सृक्वाणम्) रचते हुए दिन को और (मायुम्) वाणी को प्रसिद्ध करती हुई (पयते) अपने भचक्र में जाती है और सुख का (अभि, मिमाति) सब ओर से मान करती अर्थात् तोल करती है॥ २८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे गौओं के पीछे बछड़े और बछड़ों के पीछे गौयें जाती वैसे पृथिवियों के पीछे पदार्थ और पदार्थों के पीछे पृथिवी जाती हैं॥ २८॥

अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता।
सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यं विद्युद्भवन्ती प्रति वव्रिमौहत॥२९॥

पदार्थ—(सः) सो (अयम्) यह बछड़े के समान मेघ भूमि को लख

(शिङ्क्ते) गर्जन का अव्यक्त शब्द करता है कौन कि (येन) जिससे (ध्वसनौ) ऊपर नीचे और बीच में जाने को परकोटा उस में (अधि, श्रिता) घरी हुई (अभीवृता) सब ओर पवन से आवृत (गौः) पृथिवी (मायुम्) परिमित मार्ग को (प्रति, मिमाति) प्रति जाती है (सा) वह (चित्तिभिः) परमाणुओं के समूहों से (मर्त्यम्) मरणधर्मा मनुष्य को (चकार) करती है उस पृथिवी (हि) ही में (भवन्ती) वर्त्तमान (विद्युत्) बिजुली (वव्रिम्) अपने रूप को (नि, औहत) निरन्तर तर्क वितर्क से प्राप्त होती है ॥ २९ ॥

भावार्थ—जैसे पृथिवी से उत्पन्न हो उठकर अन्तरिक्ष में बढ़ फैल मेघ पृथिवी में वृक्षादि को अच्छे सींच उन को बढ़ाता है वैसे पृथिवी सब को बढ़ाती है और पृथिवी में जो विजुली है वह रूप को प्रकाशित करती। जैसे शिल्पी जन क्रम से किसी पदार्थ के इकट्ठा करने और विज्ञान से घर आदि बनाता है वैसे परमेश्वर ने यह सृष्टि वनाई है ॥ २९ ॥

अनच्छये तुरगातु जीवमेजद्ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम् ।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥ ३० ॥

पदार्थ—जो ब्रह्म (तुरगातु) शीघ्र गमन को (अनत्) पुष्ट करता हुआ (जीवम्) जीव को (एजत्) कंपाता और (पस्त्यानाम्) घरों के अर्थात् जीवों के शरीर के (मध्ये) बीच (ध्रुवम्) निश्चल होता हुआ (शये) सोता है। जहां (अमर्त्यः) अनादित्व से मृत्युधर्मरहित (जीवः) जीव (स्वधाभिः) अन्नादि और (मर्त्येन) मरणधर्मा शरीर के साथ (सयोनिः) एक स्थानी होता हुआ (मृतस्य) मरण स्वभाव वाले जगत् के बीच (आ, चरति) आचरण करता है उस ब्रह्म में सब जगत् वसता है यह जानना चाहिये ॥ ३० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में रूपकालङ्कार है। जो चलते हुए पदार्थों में अचल अनित्य पदार्थों में नित्य और व्याप्य पदार्थों में व्यापक परमेश्वर है उसकी व्याप्ति के विना सूक्ष्म से सूक्ष्म भी वस्तु नहीं है, इससे सब जीवों को जो यह अन्तर्यामिरूप से स्थित हो रहा है वह नित्य उपासना करने योग्य है ॥ ३० ॥

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥ ३१ ॥

पदार्थ—मैं (गोपाम्) सब की रक्षा करने (अनिपद्यमानम्) मन आदि इन्द्रियों को न प्राप्त होने और (पथिभिः) मार्गों से (आ, च) आगे और (परा, च) पीछे (चरन्तम्) प्राप्त होने वाले परमात्मा वा विचरते हुए जीव को

(अपश्यम्) देखता हूं (सः) वह जीवात्मा (सध्रीचीः) साथ प्राप्त होती हुई गतियों को (सः) वह जीव और (विषूचीः) नाना प्रकार की कर्मानुसार गतियों को (वसानः) ढांपता हुआ (भुवनेषु) लोकलोकान्तरों के (अन्तः) बीच (आ, वरीवर्त्ति) निरन्तर अच्छे प्रकार वर्त्तमान है ॥ ३१ ॥

भावार्थ—सब के देखने वाले परमेश्वर के देखने को जीव समर्थ नहीं और परमेश्वर सब को यथार्थ भाव से देखता है। जैसे वस्त्रों आदि से ढंपा हुआ पदार्थ नहीं देखा जाता वैसे जीव भी सूक्ष्म होने से नहीं देखा जाता। ये जीव कर्मगति से सब लोकों में भ्रमते हैं इनके भीतर बाहर परमात्मा स्थित हुआ पापपुण्य के फल देनेरूप न्याय से सब को सर्वत्र जन्म देता है ॥ ३१ ॥

य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात् ।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश ॥ ३२ ॥

पदार्थ--(यः) जो जीव (ईम्) क्रियामात्र (चकार) करता है (सः) वह (अस्य) इस अपने रूप को (न) नहीं (वेद) जानता है (यः) जो (ईम्) समस्त क्रिया को (ददर्श) देखता और अपने रूप को जानता है (सः) वह (तस्मात्) इससे (हिरुक्) अलग होता हुआ (मातुः) माता के (योना) गर्भाशय के (अन्तः) बीच (परिवीतः) सब ओर से ढंपा हुआ (बहुप्रजाः) बहुत बार जन्म लेने वाला (निर्ऋतिम्) भूमि को (इत्) ही (नु) शीघ्र (आ, विवेश) प्रवेश करता है ॥ ३२ ॥

भावार्थ—जो जीव कर्ममात्र करते किन्तु उपासना और ज्ञान को नहीं प्राप्त होते हैं वे अपने स्वरूप को भी नहीं जानते और जो कर्म उपासना और ज्ञान में निपुण हैं वे अपने स्वरूप और परमात्मा को जानने को योग्य हैं जीवों के अगले जन्मों का आदि और पीछे अन्त नहीं है। जब शरीर को छोड़ते हैं तब आकाशस्थ हो गर्भ में प्रवेश कर और जन्म पाकर पृथिवी में चेष्टा से क्रियावान् होते हैं ॥ ३२ ॥

द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम् ।
उत्तानयोश्चम्वो३र्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥ ३३ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! जहां (पिता) पितृस्थानी सूर्य (दुहितुः) कन्या रूप उषा प्रभात वेला के (गर्भम्) किरणरूपी वीर्य को (आ, अधात्) स्थापित करता है वहां (चम्वोः) दो सेनाओं के समान स्थित (उत्तानयोः) उपरिस्थ ऊंचे स्था-

पित किये हुए पृथिवी और सूर्य के (अन्तः) बीच मेरा (योनिः) घर है (अत्र) इस जन्म में (मे) मेरा (जनिता) उत्पन्न करने वाला (पिता) पिता (द्यौः) प्रकाशमान सूर्य बिजुली के समान तथा (अत्र) यहां (मे) मेरा (नाभिः) बन्धनरूप (बन्धुः) भाई के समान प्राण और (इयम्) यह (मही) बड़ी (पृथिवी) भूमि के समान (माता) मान देने वाली माता वर्त्तमान है यह जानना चाहिये ॥ ३३ ॥

भावार्थ— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। भूमि और सूर्य सब के माता पिता और बन्धु के समान वर्त्तमान हैं, यही हमारा निवासस्थान है जैसे सूर्य अपने से उत्पन्न हुई उषा के बीच किरणरूपी वीर्य को संस्थापन कर दिनरूपी पुत्र को उत्पन्न करता है वैसे माता पिता प्रकाशमान पुत्र को उत्पन्न करें ॥ ३३ ॥

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः ।
पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥३४॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! (त्वा) आपको (पृथिव्याः) पृथिवी के (परम्) पर (अन्तम्) अन्त को (पृच्छामि) पूछता हूँ (यत्र) जहां (भुवनस्य) लोकसमूह का (नाभिः) बन्धन है उस को (पृच्छामि) पूछता हूं (वृष्णः) वीर्यवान् वर्षाने वाले (अश्वस्य) घोड़ों के समान वीर्यवान् के (रेतः) वीर्य को (त्वा) आप को (पृच्छामि) पूछता हूँ और (वाचः) वाणी के (परमम्) परम (व्योम) व्यापक अवकाश अर्थात् आकाश को आप को (पृच्छामि) पूछता हूँ ॥ ३४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में चार प्रश्न हैं और उन के उत्तर अगले मन्त्र में वर्त्तमान हैं। ऐसे ही जिज्ञासुओं को विद्वान् जन नित्य पूछने चाहियें ॥ ३४ ॥

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।
अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥३५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (पृथिव्याः) भूमि का (परः) पर (अन्तः) भाग (इयम्) यह (वेदिः) जिस में शब्दों को जानें वह आकाश और वायु रूप वेदि (अयम्) यह (यज्ञः) यज्ञः (भुवनस्य) भूगोल समूह का (नाभिः) आकर्षण से बन्धन (अयम्) यह (सोमः) सोमलतादि रस वा चन्द्रमा (वृष्णः) वर्षा करने और (अश्वस्यः) शीघ्रगामी सूर्य के (रेतः) वीर्य के समान और (अयम्) यह (ब्रह्मा) चारों वेदों का प्रकाश करने वाला विद्वान् वा परमात्मा (वाचः) वाणी का (परमम्) उत्तम (व्योम) अवकाश है उनको यथावत् जानो ॥ ३५ ॥

भावार्थ—पिछले मन्त्र में कहे हुए प्रश्नों के यहां क्रम से उत्तर जानने चाहिये। पृथिवी के चारों ओर आकाशयुक्त वायु एक एक ब्रह्माण्ड के बीच सूर्य और बल उत्पन्न करने वाली ओषधियां तथा पृथिवी के बीच विद्या की अवधि समस्त वेदों का पढ़ना और परमात्मा का उत्तम ज्ञान है यह निश्चय करना चाहिये ॥ ३५ ॥

स॒प्तार्द्ध॑ग॒र्भा भुव॑नस्य॒ रेतो॒ विष्णो॑स्तिष्ठन्ति प्र॒दिशा॒ विध॑र्मणि ।
ते धी॒तिभि॒र्मन॑सा॒ ते वि॑प॒श्चितः॑ परि॒भुवः॒ परि॑ भवन्ति वि॒श्वतः॑ ॥३६॥

पदार्थ—जो (सप्त) सात (अर्द्धगर्भाः) आधे गर्भरूप अर्थात् पञ्चीकरण को प्राप्त महत्तत्त्व अहङ्कार, पृथिवी अप, तेज वायु, आकाश के सूक्ष्म अवयवरूप शरीरधारी (भुवनस्य) संसार के (रेतः) बीज को उत्पन्न कर (विष्णोः) व्यापक परमात्मा की (प्रदिशा) आज्ञा से अर्थात् उसकी आज्ञारूप वेदोक्त व्यवस्था से (विधर्मणि) अपने से विरुद्ध धर्म वाले आकाश में (तिष्ठन्ति) स्थित होते हैं (ते) वे (धीतिभिः) कर्म और (ते) वे (मनसा) विचार के साथ (परिभुवः) सब ओर से विद्या में कुशल (विपश्चितः) विद्वान् जन (विश्वतः) सब ओर से (परि, भवन्ति) तिरस्कृत करते अर्थात् उनके यथार्थ भाव के जानने को विद्वान् जन भी कष्ट पाते हैं ॥ ३६ ॥

भावार्थ—जो महत्तत्त्व अहङ्कार पञ्चसूक्ष्मभूत सात पदार्थ हैं वे पञ्चीकरण को प्राप्त हुए सब स्थूल जगत् के कारण हैं चेतन से विरुद्ध धर्म्म वाले जड़रूप अन्तरिक्ष में सब बसते हैं। जो यथावत् सृष्टिक्रम को जानते हैं वे विद्वान् जन सब ओर से सत्कार को प्राप्त होते हैं और जो इस को नहीं जानते वे सब ओर से तिरस्कार को प्राप्त होते हैं ॥ ३६ ॥

न वि जा॑नामि॒ यदि॑वे॒दमस्मि॑ नि॒ण्यः संन॑द्धो॒ मन॑सा चरामि ।
य॒दा माग॑न्प्रथम॒जा ऋ॒तस्यादिद्वा॒चो अ॑श्नुवे भा॒गम॒स्याः ॥ ३७ ॥

पदार्थ—(यदा) जब (प्रथमजाः) उपादान कारण प्रकृति से उत्पन्न हुए पूर्वोक्त महत्तत्त्वादि (मा) मुझ जीव को (आ, अगन्) प्राप्त हुए अर्थात् स्थूल शरीरावस्था हुई (आत्, इत्) उसके अनन्तर ही (ऋतस्य) सत्य और (अस्याः) इस (वाचः) वाणी के (भागम्) भाग को विद्या विषय को मैं (अश्नुवे) प्राप्त होता हूं। जब तक (इदम्) इस शरीर को प्राप्त नहीं (अस्मि) होता हूं तब तक उस विषय को (यदिव) जैसे के वैसा (न) नहीं (वि, जानामि) विशेषता से जानता हूं। किन्तु (मनसा) विचार से (संनद्धः) अच्छा बन्धा हुआ (निण्यः) अन्तर्हित अर्थात् भीतर उस विचार को स्थित किये (चरामि) विचरता हूं ॥३७॥

भावार्थ—अल्पज्ञता और अल्पशक्तिमत्ता के कारण साधनरूप इन्द्रियों के विना जीव सिद्ध करने योग्य वस्तु को नहीं ग्रहण कर सकता, जब श्रोत्रादि इन्द्रियों को प्राप्त होता है तब जानने को योग्य होता है जबतक विद्या से सत्य पदार्थ को नहीं जानता तबतक अभिमान करता हुआ पशु के समान विचरता है ॥ ३७ ॥

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्तान्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् ॥३८॥

पदार्थ—जो (स्वधया) जल आदि पदार्थों के साथ वर्त्तमान (अपाङ्) उलटा (प्राङ्) सीधा (एति) प्राप्त होता है और जो (गृभीतः) ग्रहण किया हुआ (अमर्त्यः) मरणधर्मरहित जीव (मर्त्येन) मरणधर्म सहित शरीरादि के साथ (सयोनिः) एक स्थान वाला हो रहा है (ता) वे दोनों (शश्वन्ता) सनातन (विषूचीना) सर्वत्र जाने और (वियन्ता) नाना प्रकार से प्राप्त होने वाले वर्त्तमान हैं उन में से उस (अन्यम्) एक जीव और शरीर आदि को विद्वान् जन (नि, चिक्युः) निरन्तर जानते और अविद्वान् (अन्यम्) उस एक को (न, नि, चिक्युः) वैसा नहीं जानते ॥ ३८ ॥

भावार्थ—इस जगत् में दो पदार्थ वर्त्तमान हैं एक जड़ दूसरा चेतन। उनमें जड़ और को और अपने रूप को नहीं जानता और चेतन अपने को और दूसरे को जानता है, दोनों अनुत्पन्न अनादि और विनाशरहित वर्त्तमान हैं, जड़ अर्थात् शरीरादि परमाणुओं के संयोग से स्थूलावस्था को प्राप्त हुआ हुआ चेतन जीव संयोग वा वियोग से अपने रूप को नहीं छोड़ता किन्तु स्थूल वा सूक्ष्म पदार्थ के संयोग से स्थूल वा सूक्ष्म सा भान होता है परन्तु वह एकतार स्थित जैसा है वैसा ही ठहरता है ॥ ३८ ॥

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥३९॥

पदार्थ—(यस्मिन्) जिस (ऋचः) ऋग्वेदादि वेदमात्र से प्रतिपादित (अक्षरे) नाशरहित (परमे) उत्तम (व्योमन्) आकाश के बीच व्यापक परमेश्वर में (विश्वे) समस्त (देवाः) पृथिवी सूर्य लोकादि देव (अधि, निषेदुः) आधेयरूप से स्थित होते हैं। (यः) जो (तत्) उस परब्रह्म परमेश्वर को (न, वेद) नहीं जानता वह (ऋचा) चार वेद से (किम्) क्या (करिष्यति) कर सकता है और (ये) जो (तत्) उस परब्रह्म को (विदुः जानते हैं (ते) (इमे, इत्) वे ही ये ब्रह्म में (समासते) अच्छे प्रकार स्थिर होते हैं ॥ ३९ ॥

भावार्थ—जो सब वेदों का परमप्रमेय पदार्थरूप और वेदों से प्रतिपाद्य ब्रह्म अमर और जीव तथा कार्यकारणरूप जगत् है, इन सभों में से सब का आधार अर्थात् ठहरने का स्थान आकाशवत् परमात्मा व्यापक और जीव तथा कार्य कारणरूप जगत् व्याप्य है इसी से सब जीव आदि पदार्थ परमेश्वर में निवास करते हैं। और जो वेदों को पढ़ के इस प्रमेय को नहीं जानते वे वेदों से कुछ भी फल नहीं पाते और जो वेदों को पढ़ के जीव कार्य कारण और ब्रह्म को गुण कर्म स्वभाव से जानते हैं वे सब धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से सिद्ध होते आनन्द को प्राप्त होते हैं॥ ३९ ॥

सूयवसाद्भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥ ४० ॥

पदार्थ—हे (अघ्न्ये) न हनने योग्य गौ के समान वर्त्तमान विदुषी! तू (सुयवसात्) सुन्दर सुखों की भोगने वाली (भगवती) बहुत ऐश्वर्यवती (भूयाः) हो कि (हि) जिस कारण (वयम्) हम लोग (भगवन्तः) बहुत ऐश्वर्ययुक्त (स्याम) हों। जैसे गौ (तृणम्) तृण को खा (शुद्धम्) शुद्ध (उदकम्) जल को पी और दूध देकर बछड़े आदि को सुखी करती है वैसे (विश्वदानीम्) समस्त जिस में दान उस क्रिया का (आचरन्ती) सत्य आचरण करती हुई (अथो) इसके अनन्तर सुख को (अद्धि) भोग और विद्यारस को (पिब) पी॥ ४० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जबतक माताजन वेदवित् न हों तबतक उनके सन्तान भी विद्यावान् नहीं होते हैं। जो विदुषी हो स्वयंवर विवाह कर सन्तानों को उत्पन्न कर और उनको अच्छी शिक्षा देकर उन्हें विद्वान् करती हैं वे गौओं के समान समस्त जगत् को आनन्दित करती हैं॥ ४० ॥

गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ॥ ४१ ॥

पदार्थ—हे स्त्री पुरुषो! जो (एकपदी) एक वेद का अभ्यास करने वाली वा (द्विपदी) दो वेद जिसने अभ्यास किये वा (चतुष्पदी) चार वेदों की पढ़ाने वाली वा (अष्टापदी) चार वेद और चार उपवेदों की विद्या से युक्त वा (नवपदी) चार वेद चार उपवेद और व्याकरणादि शिक्षायुक्त (बभूवुषी) अतिशय करके विद्याओं में प्रसिद्ध होती और (सहस्राक्षरा) असंख्यात अक्षरों वाली होती हुई (परमे) सब से उत्तम (व्योमन्) आकाश के समान व्याप्त निश्चल परमा-

त्मा के निमित्त प्रयत्न करती है और (गौरीः) गौरवर्णयुक्त विदुषी स्त्रियों को (मिमाय) शब्द कराती अर्थात् (सलिलानि) जल के समान निर्मल वचनों को (तक्षती) छांटती अर्थात् अविद्यादि दोषों से अलग करती हुई (सा) वह संसार के लिये अत्यन्त सुख करने वाली होती है ॥ ४१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो स्त्री समस्त साङ्गोपाङ्ग वेदों को पढ़ के पढ़ाती हैं वे सब मनुष्यों की उन्नति करती हैं ॥ ४१ ॥

तस्याः॑ समु॒द्रा अधि॒ वि क्ष॑रन्ति॒ तेन॑ जीवन्ति प्र॒दिश॒श्चत॑स्रः ।
ततः॑ क्षरत्य॒क्षर॒ं तद्विश्व॒मुप॑ जीवति ॥ ४२ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (तस्याः) उस वाणी के (समुद्राः, अधि, वि. क्षरन्ति) शब्दरूपी अर्णव समुद्र अक्षरों की वर्षा करते हैं (तेन) उस काम से (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) दिशा और चारों उपदिशा (जीवन्ति) जीवती हैं और (ततः) उससे जो (अक्षरम्) न नष्ट होने वाला अक्षरमात्र (क्षरति) वर्षता है (तत्) उस से (विश्वम्) समस्त जगत् (उप,जीवति) उपजीविका को प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥

भावार्थ—समुद्र के समान आकाश है, उस के वीच रत्नों के समान शब्द, शब्दों के प्रयोग करने वाले रत्नों का ग्रहण करने वाले हैं उन शब्दों के उपदेश सुनने से सब की जीविका और सब का आश्रय होता है ॥ ४२ ॥

श॒क॒मयं॑ धू॒मसा॒राद॑पश्यं विषू॒वता॑ प॒र ए॒नाव॑रेण ।
उ॒क्षाणं॒ पृश्नि॑मपचन्त वी॒रास्तानि॒ धर्मा॑णि प्रथ॒मान्या॑सन् ॥ ४३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! मैं (आरात्) समीप से (शकमयम्) शक्तिमय समर्थ (धूमम्) ब्रह्मचर्य कर्मानुष्ठान के अग्नि के धूम को (अपश्यम्) देखता हूँ (एना, अवरेण) इस नीचे इधर उधर जाते हुए (विषूवता) व्याप्तिमान् धूम से (परः) पीछे (वीराः) विद्याओं में व्याप्त पूर्ण विद्वान् (पृश्निम्) आकाश और (उक्षाणम्) सींचने वाले मेघ को (अपचन्त) पचाते अर्थात् ब्रह्मचर्य विषयक अग्निहोत्राग्नि तपते हैं (तानि) वे (धर्माणि) धर्म (प्रथमानि) प्रथम ब्रह्मचर्य-सञ्ज्ञक (आसन्) हुए हैं ॥ ४३ ॥

भावार्थ—विद्वान् जन अग्निहोत्रादि यज्ञों से मेघमण्डलस्थ जल को शुद्ध कर सब वस्तुओं को शुद्ध करते हैं इससे ब्रह्मचर्य के अनुष्ठान से सब के शरीर आत्मा और मन को शुद्ध करावें । सब मनुष्यमात्र समीपस्थ धूम और अग्नि वा और पदार्थ को प्रत्यक्षता से देखते हैं और अगले पिछले भाव

को जानने वाला विद्वान् तो भूमि से लेके परमेश्वर पर्यन्त वस्तु समूह को साक्षात् कर सकता है ॥ ४३ ॥

त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम् ।
विश्वमेको अभि चष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥ ४४ ॥

पदार्थ—हे पढ़ने पढ़ाने वाले लोगों के परीक्षको ! तुम जैसे (**केशिनः**) प्रकाशवान् वा अपने गुण को समय पाय जताने वाले (**त्रयः**) तीन अर्थात् सूर्य, बिजुली और वायु (**संवत्सरे**) संवत्सर अर्थात् वर्ष में (**ऋतुथा**) वसन्तादि ऋतु के प्रकार से (**शचीभिः**) जो कर्म उन से (**वि, चक्षते**) दिखाते अर्थात् समय समय के व्यवहार को प्रकाशित कराते हैं (**एषाम्**) इन तीनों में (**एकः**) एक बिजुलीरूप अग्नि (**वपते**) जीवों को उत्पन्न कराता (**एकः**) सूर्य (**विश्वम्**) समग्र जगत् को (**अभि, चष्टे**) प्रकाशित करता और (**एकस्य**) वायु की (**ध्राजिः**) गति और (**रूपम्**) रूप (**न**) नहीं (**ददृशे**) दीखता वैसा तुम यहां प्रवर्त्तमान होओ ॥ ४४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! तुम वायु सूर्य और बिजुली के समान अध्ययन अध्यापन आदि कर्मों से विद्याओं को बढ़ाओ जैसे अपने आत्मा का रूप नेत्र से नहीं दीखता वैसे विद्वानों की गति नहीं जानी जाती, जैसे ऋतु संवत्सर को आरम्भ करते हुए समय का विभाग करते हैं वैसे कर्म्मारम्भ विद्या अविद्या और धर्म्म अधर्म्म को पृथक् पृथक् करें ॥ ४४ ॥

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥४५॥

पदार्थ--(**ये**) जो (**मनीषिणः**) मन को रोकने वाले (**ब्राह्मणाः**) व्याकरण, वेद और ईश्वर के जानने वाले विद्वान् जन (**वाक्**) वाणी के (**परिमिता**) परिमाणयुक्त जो (**चत्वारि**) नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात चार (**पदानि**) जानने को योग्य पद हैं (**तानि**) उन को (**विदुः**) जानते हैं उन में से (**त्रीणि**) तीन (**गुहा**) बुद्धि में (**निहिता**) धरे हुए हैं (**न, इङ्गयन्ति**) चेष्टा नहीं करते । जो (**मनुष्याः**) साधारण मनुष्य हैं वे (**वाचः**) वाणी के (**तुरीयम्**) चतुर्थ भाग अर्थात् निपातमात्र को (**वदन्ति**) कहते हैं ॥ ४५ ॥

भावार्थ—विद्वान् और अविद्वानों में इतना ही भेद है कि जो विद्वान् हैं वे नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात इन चारों को जानते हैं । उन में से तीन ज्ञान में रहते हैं चौथे सिद्ध शब्दसमूह को प्रसिद्ध व्यवहार में सब

कहते हैं और जो अविद्वान् हैं वे नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपातों को नहीं जानते किन्तु निपातरूप साधन ज्ञान रहित प्रसिद्ध शब्द का प्रयोग करते हैं ॥ ४५ ॥

इन्द्रं॑ मि॒त्रं वरु॑णम॒ग्निमा॑हु॒रथो॑ दि॒व्यः स सु॑प॒र्णो ग॒रुत्मा॑न् ।

एकं॒ सद्विप्रा॑ बहु॒धा व॑दन्त्य॒ग्निं य॒मं मा॑त॒रिश्वा॑नमाहुः ॥ ४६ ॥

पदार्थ—(विप्राः) बुद्धिमान् जन (इन्द्रम्) परमैश्वर्ययुक्त (मित्रम्) मित्रवत् वर्त्तमान (वरुणम्) श्रेष्ठ (अग्निम्) सर्वव्याप्त विद्युदादि लक्षण युक्त अग्नि को (बहुधा) बहुत प्रकारों से बहुत नामों से (आहुः) कहते हैं । (अथो) इसके अनन्तर (सः) वह (दिव्यः) प्रकाश में प्रसिद्ध प्रकाशमय (सुपर्णः) सुन्दर जिसके पालना आदि कर्म (गरुत्मान्) महान् आत्मा वाला है इत्यादि बहुत प्रकारों बहुत नामों से (वदन्ति) कहते हैं तथा वे अन्य विद्वान् (एकम्) एक (सत्) विद्यमान परब्रह्म परमेश्वर को (अग्निम्) सर्वव्याप्त परमात्मारूप (यमम्) सर्व नियन्ता और (मातरिश्वानम्) वायु लक्षण लक्षित भी (आहुः) कहते हैं ॥ ४६ ॥

भावार्थ—जैसे अग्न्यादि पदार्थों के इन्द्र आदि नाम हैं वैसे एक परमात्मा के अग्नि आदि सहस्रों नाम वर्त्तमान हैं, जितने परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव हैं, उतने ही इस परमात्मा के नाम हैं यह जानना चाहिये ॥४६॥

कृ॒ष्णं नि॒यानं॒ हर॑यः सुप॒र्णा अ॒पो वसा॑ना॒ दिव॒मुत्प॑तन्ति ।

त आव॑वृत्र॒न्त्सद॑नादृ॒तस्यादिद्घृ॒तेन॑ पृथि॒वी व्यु॑द्यते ॥ ४७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (अपः) प्राण वा जलों को (वसानाः) ढांपती हुई (हरयः) हरणशील (सुपर्णाः) सूर्य की किरणें (कृष्णम्) खींचने योग्य (नियानम्) नित्य प्राप्त भूगोल वा विमान आदि यान को वा (दिवम्) प्रकाशमय सूर्य के (उत् पतन्ति) ऊपर गिरती हैं और (ते) वे (आववृत्रन्) सूर्य के सब ओर से वर्त्तमान हैं (ऋतस्य) सत्यकारण के (सदनात्) स्थान से प्राप्त (घृतेन) जल से (पृथिवी) भूमि (वि, उद्यते) विशेषतर गीली किई जाती है उस को (आत्, इत्) इस के अनन्तर ही यथावत् जानो ॥ ४७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार । जैसे अच्छे सीखे हुए घोड़े रथों को शीघ्र पहुंचाते हैं वैसे अग्नि आदि पदार्थ विमान रथ को आकाश में पहुंचाते हैं जैसे सूर्य की किरणें भूमितल से जल को खींच और वर्षा समस्त वृक्ष आदि आर्द्र करती हैं वैसे विद्वान् जन सब मनुष्यों को आनन्दित करते हैं ॥ ४७ ॥

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः ॥४८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस रथ में (त्रिशता) तीनसौ (शंकवः) बांधने वाली कीलों के (न) समान (साकम्) साथ (अर्पिताः) लगाई हुई (षष्टिः) साठ कीलों (न) जैसी कीलें जो कि (चलाचलासः) चल अचल अर्थात् चलती और न चलती और (तस्मिन्) उसमें (एकम्) एक (चक्रम्) पहिया जैसा गोल चक्कर (द्वादश) बारह (प्रधयः) पहिओं की हालें अर्थात् हाल लगे हुए पहिये और (त्रीणि) तीन (नभ्यानि) पहिओं की बीच की नाभियों में उत्तमता से ठहरने वाली धुरी स्थापित किई हों (तत्) उस को (कः) कौन (उ) तर्क वितर्क से (चिकेत) जाने ॥ ४८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । कोई ही विद्वान् जैसे शरीर-रचना को जानते हैं वैसे विमान आदि यानों को बनाना जानते हैं, जब जल स्थल और आकाश में शीघ्र जाने के लिये रथों को बनाने की इच्छा होती है तब उन में अनेक जल अग्नि के चक्कर अनेक बन्धन अनेक धारण और कीलें रचनी चाहियें ऐसा करने से चाही हुई सिद्धि होती है ॥ ४८ ॥

यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि ।
यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवे कः ॥ ४९ ॥

पदार्थ—हे (सरस्वति) विदुषी स्त्री ! (ते) तेरा (यः) जो (शशयः) सोतासा शान्त और (यः) जो (मयोभूः) सुख की भावना करने हारा (स्तनः) स्तन के समान वर्त्तमान शुद्ध व्यवहार (येन) जिससे तू (विश्वा) समस्त (वार्याणि) स्वीकार करने योग्य विद्या आदि वा धनों को (पुष्यसि) पुष्ट करती है (यः) जो (रत्नधाः) रमणीय वस्तुओं को धारण करने और (वसुवित्) धनों को प्राप्त होने वाला और (यः) जो (सुदत्रः) सुदत्र अर्थात् जिससे अच्छे अच्छे देने हों (तम्) उस अपने स्तन को (इह) यहां गृहाश्रम में (धातवे) सन्तानों के पीने को (कः) कर ॥ ४९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे माता अपने स्तन के दूध से सन्तान की रक्षा करती है वैसे विदुषी स्त्री सब कुटुम्ब की रक्षा करती है, जैसे सुन्दर घृतान्न पदार्थों के भोजन करने से शरीर बलवान् होता है वैसे माता की सुशिक्षा को पाकर आत्मा पुष्ट होता है ॥ ४९ ॥

यज्ञेन॑ यज्ञम॑यजन्त देवास्तानि॒ धर्मा॑णि प्रथमान्या॑सन् ।

ते ह॒ नाकं॑ महि॒मानः॑ सचन्त॒ यत्र॒ पूर्वे॑ साध्याः सन्ति॑ देवाः ॥५०॥

पदार्थ—जो (देवाः) विद्वान् जन (यज्ञेन) अग्नि आदि दिव्य पदार्थों के समूह से (यज्ञम्) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के व्यवहार को (अयजन्त) मिलते प्राप्त होते हैं और जो ब्रह्मचर्य आदि (धर्माणि) धर्म (प्रथमानि) प्रथम (आसन्) हैं (तानि) उन का सेवन करते और कराते हैं (ते, ह) वे ही (यत्र) यहां (पूर्वे) पहिले अर्थात् जिन्हों ने विद्या पढ़ लिई (साध्याः) तथा औरों को विद्यासिद्धि के लिये सेवन करने योग्य (देवाः) विद्वान् जन (सन्ति) हैं वहां (महिमानः) सत्कार को प्राप्त हुए (नाकम्) दुःखरहित सुख को (सचन्त) प्राप्त होते हैं ॥ ५० ॥

भावार्थ—जो लोग प्रथमावस्था में ब्रह्मचर्य से उत्तम उत्तम शिक्षा आदि सेवन करने योग्य कामों को प्रथम करते हैं वे आप्त अर्थात् विद्यादि गुण धर्म्मादि कार्यों को साक्षात् किये हुए जो विद्वान् उन के समान विद्वान् होकर विद्यानन्द को प्राप्त होकर सर्वत्र सत्कार को प्राप्त होते हैं ॥ ५० ॥

समानमे॒तदु॑द॒कमुच्चैत्यव॒ चाह॑भिः ।

भूमिं॑ प॒र्जन्या॒ जिन्व॑न्ति॒ दिवं॑ जिन्वन्त्य॒ग्नयः॑ ॥ ५१ ॥

पदार्थ—जो (उदकम्) जल (अहभिः) बहुत दिनों से (उत्, ऐति) ऊपर को जाता अर्थात् सूर्य के ताप से कण कण हो और पवन के बल से उठकर अन्तरिक्ष में ठहरता (च) और (अव) नीचे को (च) भी आता अर्थात् वर्षा काल पाय भूमि पर वर्षता है उस के (एतत्) यह पूर्वोक्त विद्वानों का ब्रह्मचर्य अग्निहोत्र आदि धर्मादि व्यवहार (समानम्) तुल्य है । इसी से (पर्जन्यः) मेघ (भूमिम्) भूमि को (जिन्वन्ति) तृप्त करते और (अग्नयः) बिजुली आदि अग्नि (दिवम्) अन्तरिक्ष को (जिन्वन्ति) तृप्त करते अर्थात् वर्षा से भूमि पर उत्पन्न जीव जीते और अग्नि के अन्तरिक्ष वायु मेघ आदि शुद्ध होते हैं ॥ ५१ ॥

भावार्थ—ब्रह्मचर्य आदि अनुष्ठानों में किये हुए हवन आदि से पवन और वर्षा जल की शुद्धि होती है उस से शुद्ध जल वर्षने से भूमि पर जो उत्पन्न हुए जीव वे तृप्त होते हैं, इससे विद्वानों का पूर्वोक्त ब्रह्मचर्यादि कर्म जल के समान है जैसे ऊपर जाता और नीचे आता वैसे अग्निहोत्रादि से पदार्थ का ऊपर जाना और नीचे आना है ॥ ५१ ॥

दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तमपां गर्भं दर्शतमोषधीनाम् ।
अभीपतो वृष्टिभिस्तर्पयन्तं सरस्वन्तमवसे जोहवीमि ॥ ५२ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (अवसे) रक्षा आदि के लिये (दिव्यम्) दिव्य गुण स्वभावयुक्त (सुपर्णम्) जिस में सुन्दर गमनशील रश्मि विद्यमान (वायसम्) जो अत्यन्त जाने वाले (बृहन्तम्) सब से बड़े (अपाम्) अन्तरिक्ष के (गर्भम्) बीच गर्भ के समान स्थित (ओषधीनाम्) सोमादि ओषधियों को (दर्शतम्) दिखाने वाले (वृष्टिभिः) वर्षा से (अभीपतः) दोनों ओर आगे पीछे जल से युक्त जो मेघादि उससे (तर्पयन्तम्) तृप्ति करने वाले (सरस्वन्तम्) बहुत जल जिसमें विद्यमान उस सूर्य के समान वर्त्तमान विद्वान् को (जोहवीमि) निरन्तर ग्रहण करते हैं वैसे इस को तुम भी ग्रहण करो ॥ ५२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य लोक भूगोलों के बीच स्थित हुआ सब को प्रकाशित करता है वैसे ही विद्वान् जन सब लोकों के मध्य स्थिर होता हुआ सब के आत्माओं को प्रकाशित करता है जैसे सूर्य वर्षा से सब को सुखी करता है वैसे ही विद्वान् विद्या उत्तम शिक्षा और उपदेशवृष्टियों से सब जनों को आनन्दित करता है ॥ ५२ ॥

इस सूक्त में अग्नि काल सूर्य विमान आदि पदार्थ तथा ईश्वर विद्वान् और स्त्री आदि के गुण वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ चौंसठवां सूक्त समाप्त हुआ ।

अगस्त्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ३—५ । ११ । १२ विराट् त्रिष्टुप् । २ । ८ । ९ त्रिष्टुप् । १३ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ६ । ७ । १० । १४ भुरिक् पङ्क्तिः । १५ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

कया शुभा सवयसः सनीळाः समान्या मरुतः सं मिमिक्षुः ।
कया मती कुत एतास एतेऽर्चन्ति शुष्मं वृषणो वसूया ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (सवयसः) समान अवस्था वाले (सनीळाः) समीपस्थ (मरुतः) पवनों के समान वर्त्तमान विद्वान् जन (कया) किस (समान्या) तुल्य क्रिया के साथ (शुभा) शुभ गुण कर्म से (संमिमिक्षुः) अच्छे प्रकार सेचनादि कर्म करते हैं तथा (एतासः) अच्छे प्रकार प्राप्त हुए (वृषणः) वर्षने वाले

(एते) ये (वसूया) अपने को धनों की इच्छा के साथ (कया) किस (मती) मति से (कुतः) कहां से (शुष्मम्) बल को (अर्चन्ति) प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। (प्रश्न) जैसे पवन वर्षा कर सब को तृप्त करते हैं वैसे विद्वान् जन भी रागद्वेषरहित धर्मयुक्त किस क्रिया से जनों की उन्नति करावें और किस विज्ञान वा अच्छी क्रिया से सब का सत्कार करें, इस विषय में उत्तर यही है कि आप्त सज्जनों की रीति और वेदोक्त क्रिया से उक्त कार्य करें ॥ १ ॥

कस्य ब्रह्मा॑णि जुजुषु॒र्युवा॑नः॒ को अ॑ध्व॒रे म॒रुत॒ आ व॑वर्त्त ।
श्ये॒नाँ॑इव॒ ध्रज॑तो अ॒न्तरि॑क्षे॒ केन॑ म॒हा मन॑सा रीरमाम ॥ २ ॥

पदार्थ—जो (मरुतः) पवनों के समान वेगयुक्त (युवानः) ब्रह्मचर्य और विद्या से युवावस्था को प्राप्त विद्वान् (कस्य) किस के (ब्रह्माणि) वृद्धि को प्राप्त होते जो अन्न वा धन उनको (जुजुषुः) सेवते हैं और (कः) कौन इस (अध्वरे) न नष्ट करने योग्य धर्मयुक्त व्यवहार में (आ, ववर्त्त) अच्छे प्रकार वर्त्तमान है हम लोग (केन) कौन (महा) बड़े (मनसा) मन से (ध्रजतः) जाने वाले (श्येनानिव) घोड़ों के समान किनको लेकर (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (रीरमाम) सब को रमावें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे वायु संसारस्थ पदार्थों को सेवन करते हैं वैसे ब्रह्मचर्य और विद्या के बोध से परम श्री को सेवें, जैसे अन्तरिक्ष में उड़ते हुए श्येनादि पक्षियों को देखते हैं वैसे ही भूगोल के साथ हम लोग आकाश में रमें और सब को रमावें इस को विद्वान् ही जान सकते हैं ॥ २ ॥

कुत॒स्त्वमि॑न्द्र॒ माहि॑नः॒ सन्नेको॑ यासि सत्पते॒ किं त॑ इ॒त्था ।
सं पृ॑च्छसे समरा॒णः शु॑भा॒नैर्वो॒चेस्तन्नो॑ हरिवो॒ यत्ते॑ अ॒स्मे ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य युक्त (सत्पते) सज्जनों के पालने वाले ! (माहिनः) महिमायुक्त (एकः) इकले (सन्) होते हुए (त्वम्) आप सूर्य के समान (कुतः) कहां से (यासि) जाते हैं (ते) आपका (इत्था) इस प्रकार से (किम्) क्या है। हे (हरिवः) प्रशंसित गुणों वाले ! (समराणः) अच्छे प्रकार प्राप्त हुए आप (यत्) जो (ते) आप के मन में (अस्मे) हम लोगों के लिये वर्त्तता है (तत्) उस को (शुभानैः) उत्तम वचनों से (नः) हम लोगों के प्रति (वोचेः) कहो जिस से आप (संपृच्छसे) सम्यक् पूछते भी हैं अर्थात् हमारी व्यवस्था आप पूछते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य एका एकी सब को खींच के आप प्रकाशमान होता है वा जैसे आप्त विद्वान् सर्वत्र भ्रमण करता हुआ सब को सत्य पालने वाले करता है वैसे तू कहां जाता है कहां से आता है क्या करता है यह पूछता हूं उत्तर कह। धर्मयुक्त मार्गों को जाता हूं गुरुकुल से आता हूं पढ़ाना वा उपदेश करता हूं। यह समाधान है ॥ ३ ॥

ब्रह्माणि मे मतयः शं सुतासः शुष्म इयर्त्ति प्रभृतो मे अद्रिः ।

आ शासते प्रति हर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो अच्छ ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (प्रभृतः) शास्त्रविज्ञान से भरा हुआ (शुष्मः) बलवान् (अद्रिः) मेघ के समान (मे) मेरा उपदेश सब को (इयर्ति) प्राप्त होता। वा जैसे (सुतासः) प्राप्त हुए (मतयः) मननशील मनुष्य (मे) मेरे (ब्रह्माणि) धनों वा अन्नों को और (शम्) सुख को (आशासते) चाहते हैं वा (इमा) इन (उक्था) कहने के योग्य पदार्थों की (प्रति, हर्यन्ति) प्रीति से कामना करते हैं वा जैसे (ता) वे (हरी) धारण आकर्षण गुण (नः) हम लोगों को (अच्छ) अच्छा (वहतः) प्राप्त होते हैं वैसे तुम सब होओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो उदार हैं वे मेघ के समान सब के लिये समान सुखों को वर्षाते हैं सब के लिये विद्यादान की कामना करते हैं। जैसे अपने को सुख की इच्छा करते हैं वैसे औरों को सुख करने और दुःखों का विनाश करने को सब चाहैं ॥ ४ ॥

अतो वयमन्तमेभिर्युजानाः स्वक्षत्रेभिस्तन्वः शुम्भमानाः ।

महोभिरेताँ उप युज्महे न्विन्द्र स्वधामनु हि नो बभूथ ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त पुरुष ! जिस कारण आप (हि) ही (नः) हमारे (स्वधाम्) अन्न और जल का (अनु, बभूथ) अनुभव करते हैं (अतः) इस से (वयम्) हम लोग (एतान्) इन पदार्थों को (युजानाः) युक्त और (स्वक्षत्रेभिः) अपने राज्यों से (तन्वः) शरीरों को (शुम्भमानाः) शुभ गुणयुक्त करते हुए (अन्तमेभिः) समीपस्थ (महोभिः) अत्यन्त बड़े कामों से (नु) शीघ्र (उप, युज्महे) उपयोग लेते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो शरीर से बल और आरोग्ययुक्त धार्मिक बलिष्ठ विद्वानों से सब कामों का समाधान करते हुए सब के सुख के लिये वर्त्तमान अत्यन्त राज्य के न्याय के लिये उपयोग करते हैं वे शीघ्र धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

क्व१ स्या वो मरुतः स्वधासीद्यन्मामेकं समधत्ताहिहत्ये ।
अहं ह्यु१ग्रस्तविषस्तुविष्मान्विश्वस्य शत्रोरनमं वधस्नैः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (मरुतः) प्राण के समान वर्त्तमान विद्वानो ! (यत्) जिससे (माम्) मुझ (एकम्) एक को (अहिहत्ये) मेघ के वर्षण होने में (समधत्त) अच्छे प्रकार धारण करो (स्या) वह (वः) आप का (स्वधा) अन्न और जल (क्व) कहां (आसीत्) है वैसे (तुविष्मान्) बलवान् (उग्रः) तीव्र स्वभाव वाला (अहम्) मैं जो (तविषः) बलवान् (विश्वस्य) समग्र (शत्रोः) शत्रु के (वधस्नैः) वध से न्हवाने वाले शस्त्र उनके साथ (अनमम्) नमता हूं (हि) उसी मुझ को तुम सुख में धारण करो ॥ ६ ॥

भावार्थ— जो मनुष्य विद्याओं को धारण कर सूर्य जैसे मेघ को वैसे शत्रु बल को निवृत्त करें वे सब विद्वान् के प्रति पूछें कि जो सब को धारण करने वाली शक्ति है वह कहां है ? सर्वत्र स्थित है यह उत्तर है ॥ ६ ॥

भूरि चकर्थ युज्येभिरस्मे समानेभिर्वृषभ पौंस्येभिः ।
भूरीणि हि कृणवामा शविष्ठेन्द्र क्रत्वा मरुतो यद्वशाम ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (वृषभ) उपदेश की वर्षा करने वाले ! जैसे आप (समानेभिः) समान तुल्य (युज्येभिः) योग्य कर्मों वा (पौंस्येभिः) पुरुषार्थों से (अस्मे) हमारे लिये (भूरि) बहुत सुख (चकर्थ) करते हैं उन आप के लिये हम लोग (भूरीणि) बहुत सुख (कृणवाम) करें । हे (शविष्ठ) बलवान् (इन्द्र) सब को सुख देने वाले ! जैसे आप (क्रत्वा) उत्तम बुद्धि से हम लोगों को विद्वान् करते हैं वैसे हम लोग आपकी सेवा करें । । हे (मरुतः) विद्वान् मनुष्यो ! तुम (यत्) जिस की कामना करो उसकी हम भी (वशाम, हि) कामना ही करें ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे इस संसार में विद्वान् जन पुरुषार्थ से सब को विद्या और उत्तम शिक्षा से युक्त करते हैं वैसे इनको सब सत्कारयुक्त करें। जो सब विद्याओं के पढ़ाने और सब के सुख को चाहने वाले हों वे पढ़ाने और उपदेश करने में प्रधान हों ॥ ७ ॥

वधीं वृत्रं मरुत इन्द्रियेण स्वेन भामेन तविषो बभूवान् ।
अहमेता मनवे विश्वश्चन्द्राः सुगा अपश्चकर वज्रबाहुः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (मरुतः) प्राण के समान प्रिय विद्वानो ! (वज्रबाहुः) जिस के हाथ में वज्र है (बभूवान्) ऐसा होने वाला (अहम्) मैं जैसे सूर्य (वृत्रम्) मेघ को मार (अपः) जलों को (सुगाः) सुन्दर जाने वाले करता है वैसे (स्वेन)

अपने (भामेन) क्रोध से और (इन्द्रियेण) मन से (तविषः) बल से शत्रुओं को (वधीम्) मारता हूँ और (मनवे) विचारशील मनुष्य के लिये (विश्वचन्द्राः) समस्त सूर्यादि धन जिन से होते (एताः) उन लक्ष्मियों को (चकर) करता हूँ ॥८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य से प्रेरित वर्षा से समस्त जगत् जीवता है वैसे शत्रुओं से होते हुए विघ्नों को निवारने से सब प्राणी जीवते हैं ॥ ८ ॥

अनु॑त्तमा ते मघवन्नकि॒र्नु न त्वावाँ॑ अस्ति दे॒वता॒ विदा॑नः ।

न जाय॑मानो॒ नश॑ते॒ न जा॒तो यानि॑ करि॒ष्या कृ॑णु॒हि प्र॑वृद्ध ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (मघवन्) परमधनवान् विद्वान्! (ते) आपका (अनुत्तम्) न प्रेरणा किया हुआ (नकिः) नहीं कोई विद्यमान है और (त्वावान्) तुम्हारे सदृश और (देवता) दिव्य गुण वाला (विदानः) विद्वान् (न) नहीं (अस्ति) है। तथा (जायमानः) उत्पन्न होने वाला (नु) शीघ्र (न) नहीं (नशते) नष्ट होता (जातः) उत्पन्न हुआ भी (न) नहीं नष्ट होता। हे (प्रवृद्ध) अत्यन्त विद्या से प्रतिष्ठा को प्राप्त आप (यानि) जो (करिष्या) करने योग्य काम हैं उनको शीघ्र (आ कृणुहि) अच्छे प्रकार करिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—जैसे अन्तर्यामी ईश्वर से अव्याप्त कुछ भी नहीं विद्यमान है न कोई उसके सदृश उत्पन्न होता न उत्पन्न हुआ और न होगा न वह नष्ट होता है किन्तु ईश्वरभाव से अपने कर्त्तव्य कामों को करता है वैसे ही विद्वानों को होना और जानना चाहिये ॥ ९ ॥

एक॑स्य चि॒न्मे वि॒भ्व१॒॑स्त्वोजो॒ या नु द॑धृ॒ष्वान् कृ॒णवै॑ मनी॒षा ।

अ॒हं ह्यु१॒॑ग्रो म॑रुतो॒ विदा॑नो॒ यानि॒ च्यव॒मिन्द्र॒ इदी॑श एषाम् ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (मरुतः) पवनों के समान वर्त्तमान सज्जनो! जैसे (एकस्य) एक (चित्) ही (मे) मेरे को (विभु) व्यापक (ओजः) बल (अस्तु) हो और (या) जिनको (दधृष्वान्) अच्छे प्रकार सहने वाला मैं होऊं वैसे वह बल (हि) निश्चय से तुम्हारा हो और उन का सहन तुम करो। जैसे (अहम्) मैं (मनीषा) बुद्धि से (नु) शीघ्र (कृणवै) विद्या कर सकूं और (उग्रः) तीव्र (विदानः) विद्वान् (इन्द्र) दुःख का छिन्न-भिन्न करने वाला होता हुआ (यानि) जिन पदार्थों को (च्यवम्) प्राप्त होऊं और (एषाम्, इत्) इन्हीं का (ईशे) स्वामी होऊं वैसे तुम वर्त्तो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे जगदीश्वर अनन्त पराक्रमी और व्यापक है वैसे विद्वान् जन समस्त शास्त्र और धर्म-

कृत्यों में व्याप्त होवें और न्यायाधीश होकर इन मनुष्यादि के सुखों को सम्पादन करें ॥ १० ॥

अमन्दन्मा मरुतः स्तोमो अत्र यन्मे नरः श्रुत्यं ब्रह्म चक्र।
इन्द्राय वृष्णे सुमखाय मह्यं सख्ये सखायस्तन्वे तनूभिः ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (मरुतः) विद्वानो ! जैसे (मे) मेरे लिये (यत्) जो (श्रुत्यम्) सुनने योग्य (ब्रह्म) वेद और (स्तोमः) स्तुतिसमूह है वह (अत्र) यहां (मा) मुझे (अमन्दत्) आनन्दित करे वैसे तुम को भी आनन्दित करावे। हे (नरः) अग्रगामी मुखिया जनो ! जैसे तुम (सुमखाय) उत्तम यज्ञानुष्ठान करने वाले (वृष्णे) बलवान् (इन्द्राय) विद्या से प्रकाशित (सख्ये) सब के मित्र (मह्यम्) मेरे लिये (सखायः) सब के सुहृद् होते हुए (तनूभिः) शरीरों के साथ मेरे (तन्वे) शरीर के लिये सुख (चक्र) करो वैसे मैं भी इसको करूं ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वान् जन जैसे पढ़े और शब्दार्थ सम्बन्ध से जाने हुए वेद पढ़ने वाले के आत्मा को सुख देते हैं वैसे ही औरों को भी सुखी करेंगे ऐसा मान के वे अध्यापक शिष्य को पढ़ावें, जैसे आप ब्रह्मचर्य से रोगरहित बलवान् होकर दीर्घजीवी हों वैसे औरों को भी करें ॥ ११ ॥

एवेदेते प्रति मा रोचमाना अनेद्यः श्रव एषो दधानाः।
संचक्ष्या मरुतश्चन्द्रवर्णा अच्छान्त मे छदयाथा च नूनम् ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (मरुतः) प्राणों के समान प्रिय विद्वान् जनो ! जैसे (इषः) इच्छाओं को (आ, दधानाः) अच्छे प्रकार धारण किये हुए (मा, इत्) मेरे ही (प्रति, रोचमानाः) प्रति प्रकाशमान होते हुए (एते) ये तुम (अनेद्यः) प्रशंसनीय (श्रवः) सुनने के साधन शास्त्र को (संचक्ष्य) पढ़ा वा उसका उपदेशमात्र कर (चन्द्रवर्णाः) चन्द्रमा के समान उज्ज्वल कान्ति वाले हुए मुझे (अच्छान्त) विद्या से ढांपते हुए वैसे (एव) ही अब (च) भी (नूनम्) निश्चय से (मे, छदयाथ) विद्याओं से आच्छादित करो मेरी अविद्या को दूर करो और विद्या देओ ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो स्त्री पुरुषों को विद्याओं में प्रकाशित और उन्हें प्रशंसित गुण कर्म स्वभाव वाले कर धर्मयुक्त व्यवहारों में लगाते हैं वे सब के सुभूषित करने वाले हों ॥ १२ ॥

को न्वत्र मरुतो मामहे वः प्र यातन सखीँरच्छा सखायः ।
मन्मानि चित्रा अपिवातयन्त एषां भूत नवेदा म ऋतानाम् ॥१३॥

पदार्थ—हे (मरुतः) प्राणवत्प्रिय विद्वानो ! (अत्र) इस स्थान में (वः) तुम लोगों को (कः) कौन (नु) शीघ्र (मामहे) सत्कारयुक्त करता है । हे (सखायः) मित्र विद्वानो ! तुम (सखीन्) अपने मित्रों को (अच्छ) अच्छे प्रकार (प्र, यातन) प्राप्त होओ । हे (चित्राः) अद्भुत कर्म करने वाले विद्वानो ! (मन्मानि) विज्ञानों को (अपिवातयन्तः) शीघ्र पहुंचाते हुए तुम (मे) मेरे (एषाम्) इन (ऋतानाम्) सत्य व्यवहारों के बीच (नवेदाः) नवेद अर्थात् जिनमें दुःख नहीं हैं ऐसे (भूत) होओ ॥ १३ ॥

भावार्थ—मनुष्य सब में मित्र हो और उन को विद्या पहुँचा कर सब को धर्मयुक्त पुरुषार्थ में संयुक्त करें । जिससे ये सर्वत्र सत्कारयुक्त हों और आप सत्य असत्य जान औरों को उपदेश दें ॥ १३ ॥

आ यद्दुवस्याद्दुवसे न कारुरस्माञ्चक्रे मान्यस्य मेधा ।
ओ षु वर्त्त मरुतो विप्रमच्छेमा ब्रह्माणि जरिता वो अर्चत् ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे (मरुतः) विद्वानो ! (यत्) जिस कारण (दुवस्यात्) सेवन करने वाले से (दुवसे) सेवन करने वाले अर्थात् एक से अधिक दूसरे के लिये जैसे (न) वैसे हम लोगों के लिये प्राप्त हुई (मान्यस्य) मानने योग्य योग्यता को प्राप्त सज्जन की (कारुः) शिल्पकार्यों को सिद्ध करने वाली (मेधा) बुद्धि (अस्मान्) हम लोगों को (आ, चक्रे) करती है अर्थात् शिल्प कार्यों में निपुण करती है इससे तुम (विप्रम्) मेधावी बुद्धि वाले पुरुष के (ओ, षु, वर्त्त) सम्मुख वर्त्तमान होओ किस लिये (जरिता) स्तुति करने वाला (इमा) इन (ब्रह्माणि) वेदों को सग्रह कर (अच्छ) अच्छे प्रकार (वः) तुम लोगों को (अर्चत्) सेवे ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे शिल्पीजन शिल्पविद्या से सिद्ध किई हुई वस्तुओं का सेवन करते हैं वैसे वेदार्थ और वेदज्ञान सब को सेवने चाहियें जिस कारण वेदविद्या के विना अतीव सत्कार करने योग्य विद्वान् नहीं होता ॥ १४ ॥

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे (मरुतः) उत्तम विद्वानो ! (एषः) यह (वः) तुम लोगों

के लिये (स्तोमः) स्तुतियों का समूह और (मान्दार्यस्य) स्तुति के योग्य वा उत्तम गुण कर्म स्वभाव वाले (मान्यस्य) मानने योग्य (कारोः) कार करने वाले पुरुषार्थी जन की (इयम्) यह (गीः) वाणी है इससे तुम में से प्रत्येक (तन्वे) बढ़ाने के लिये (इषा) इच्छा के साथ (आ, यासीष्ट) आओ प्राप्त होओ (वयाम्) और हम लोग (इषम्) अन्न (वृजनम्) बल (जीरदानुम्) और जीवन को (विद्याम) प्राप्त होवें ॥ १५ ॥

भावार्थ—जो आप्त शास्त्रज्ञ धर्मात्मा पुरुषार्थी विद्वान् पुरुषों की उत्तेजना से विद्या और शिक्षा को प्राप्त होकर धर्मयुक्त व्यवहार का आचरण करते हैं उन के जन्म की सफलता है, यह जानना चाहिये ॥ १५ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह एकसौ पैंसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

मैत्रावरुणोऽगस्त्य ऋषिः । मरुतो देवताः । १ । २ । ८ जगती । ३ । ५ । ६ । १२ । १३ निचृज्जगती । ४ विराट् जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ७ । ९ । १० भुरिक् त्रिष्टुप् । ११ विराट् त्रिष्टुप् १४ । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । १५ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

तन्नु वोचाम रभसाय जन्मने पूर्वं महित्वं वृषभस्य केतवे ।
ऐधेव यामन्मरुतस्तुविष्वणो युधेव शक्रास्तविषाणि कर्त्तन ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (तुविष्वणः) बहुत प्रकार के शब्दों वाले (शक्राः) शक्तिमान् (मरुतः) मनुष्यो ! तुम्हारे प्रति (वृषभस्य) श्रेष्ठ सज्जन का (रभसाय) वेगयुक्त अर्थात् प्रबल (केतवे) विज्ञान (जन्मने) जो उत्पन्न हुआ उस के लिये जो (पूर्वम्) पहिला (महित्वम्) माहात्म्य (तत्) उसको हम (वोचाम) कहें उपदेश करें तुम (ऐधेव) काष्ठों के समान वा (यामन्) मार्ग में (युधेव) युद्ध के समान अपने कर्मों से (तविषाणि) बलों को (नु) शीघ्र (कर्त्तन) करो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । विद्वान् जन जिज्ञासु जनों के प्रति वर्त्तमान जन्म और पूर्व जन्मों के सञ्चित कर्मों के निमित्त ज्ञान को उन के कार्यों को देख कर उपदेश करें और जैसे मनुष्यों के ब्रह्मचर्य और जितेन्द्रियत्वादि गुणों से शरीर और आत्मबल पूरे हों वैसे करें ॥ १ ॥

नित्यं न सूनुं मधु बिभ्रत उप क्रीळन्ति क्रीळा विदथेषु घृष्वयः
नक्षन्ति रुद्रा अवसा नमस्विनं न मर्द्धन्ति स्वतवसो हविष्कृतम् ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जो लोग (नित्यम्) नाशरहित जीव के (न) समान (मधु) मधुरादि गुणयुक्त पदार्थ को (बिभ्रतः) धारण करते हुए (सूनुम्) पुत्र के समान (उप, क्रीडन्ति) समीप खेलते हैं वा (विदथेषु) संग्रामों में (घृष्वयः) शत्रु के बल को सहने और (क्रीडाः) खेलने वाले (नक्षन्ति) प्राप्त होते हैं वा (रुद्राः) प्राणों के समान (अवसा) रक्षा आदि कर्म से (नमस्विनम्) बहुत अन्नयुक्त जन को (न) नहीं (मर्द्धन्ति) लड़ाते और (स्वतवसः) अपना बल पूर्ण रखते हुए (हविष्कृतम्) दानों से सिद्ध किये हुए पदार्थ को रखते हैं उस का नित्य सेवन करो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो सब के उपकार में प्राण के समान तृप्ति करने में जल अन्न के समान और आनन्द में सुन्दर लक्षणों वाली विदुषी के पुत्र के समान वर्त्तमान हैं वे श्रेष्ठों को बढ़ा और दुष्टों को नमा सकते हैं अर्थात् श्रेष्ठों को उन्नति दे सकते और दुष्टों को नम्र कर सकते हैं ॥ २ ॥

यस्मा ऊमासो अमृता अरासत रायस्पोषं च हविषा ददाशुषे ।
उक्षन्त्यस्मै मरुतो हिताइव पुरू रजांसि पयसा मयोभुवः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (अमृताः) नाशरहित (ऊमासः) रक्षणादि कर्म वाले आप जैसे (मयोभुवः) सुख की भावना करने वाले (हिता इव) हित सिद्ध करने वालों के समान (मरुतः) पवन (अस्मै) इस प्राणी के लिये (पयसा) जल से (पुरु) बहुत (रजांसि) लोकों वा स्थलों को (उक्षन्ति) सींचते हैं वैसे (यस्मै) जिस (ददाशुषे) देने वाले के लिये (हविषा) विद्यादि देने से (रायः) धर्मयुक्त धन की (पोषम्) पुष्टि को (च) और विद्या को (अरासत) देते हैं वह भी ऐसे ही वर्त्तें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को वायु के समान सब के सुखों को अच्छे प्रकार विद्या और सत्योपदेश से जल से वृक्षों के समान सींचकर मनुष्यों की वृद्धि करनी चाहिये ॥ ३ ॥

आ ये रजांसि तविषीभिरव्यत प्र व एवासः स्वयतासो अध्रजन् ।
भयन्ते विश्वा भुवनानि हर्म्या चित्रो वो यामः प्रयतास्वृष्टिषु ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (ये) जो (वः) तुम्हारे (एवासः) गमनशील (स्वयतासः) अपने बल से नियम को प्राप्त अर्थात् अश्वादि के विना आप ही गमन करने में सन्नद्ध रथ (तविषीभिः) बलों के साथ (रजांसि) लोकों को (आ, अव्यत) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं वे (प्र, अध्रजन्) अत्यन्त धावते हैं उनके धावन में (विश्वा) समस्त (भुवनानि) लोक (हर्म्या) उत्तमोत्तम घर (भयन्ते) कांपते हैं इस कारण (प्रयतासु) नियत (ऋष्टिषु) प्राप्तियों में (चित्रः) अद्भुत (वः) तुम्हारा (यामः) पहुँचना है ॥ ४ ॥

भावार्थ—विद्वान् जन निज शास्त्रीय अद्भुत बल से रथादि बना के नियत वृत्तियों में जा आकर सत्य विद्या पढ़ाने और उनके उपदेशों से सब मनुष्यों को पाल के असत्य विद्या के उपदेशों को निवृत्त करें ॥ ४ ॥

यत्त्वेषयामा नदयन्त पर्वतान्दिवो वा पृष्ठं नर्या अचुच्यवुः ।
विश्वो वो अज्मन्भयते वनस्पती रथियन्तीव प्र जिहीत ओषधिः ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (यत्) जब (त्वेषयामाः) अग्नि का प्रकाश होने से गमन करने वाले (नर्याः) मनुष्यों के लिये अत्यन्त साधक तुम्हारे रथ (दिवः) अन्तरिक्ष के (पर्वतान्) मेघों को (नदयन्त) शब्दायमान करते अर्थात् तुम्हारे रथों के वेग से अपने स्थान से तितर वितर हुए मेघ गर्जनादि शब्द करते हैं (वा) अथवा पृथिवी के (पृष्ठम्) पृष्ठ भाग को (अचुच्यवुः) प्राप्त होते तब (विश्वः, वनस्पतिः) समस्त वृक्ष (रथियन्तीव) अपने रथी को चाहती हुई सेना के समान (वः) तुम्हारे (अज्मन्) मार्ग में (भयते) कंपता है अर्थात् जो वृक्ष मार्ग में होता वह थराथरा उठता और (ओषधिः) सोमादि ओषधि (प्र, जिहीते) अच्छे प्रकार स्थान त्याग कर देती अर्थात् कपकपाहट में स्थान से तितर बितर होती है ॥ ५ ॥

भावार्थ—अन्तरिक्ष के मार्गों में विद्वानों के प्रयोग किये हुए आकाशगामी यानों के अत्यन्त वेग से कभी मेघों के तितर वितर जाने का सम्भव और पृथिवी के कम्पन से वृक्ष वनस्पति के कम्पने का सम्भव होता है ॥ ५ ॥

यूयं न उग्रा मरुतः सुचेतुनारिष्टग्रामाः सुमतिं पिपर्त्तन ।
यत्रा वो दिद्युद्रदति क्रिविर्दती रिणाति पश्वः सुधितेव बर्हणा ॥६॥

पदार्थ—हे (उग्राः) तीव्रगुणकर्मस्वभावयुक्त (मरुतः) पवनों के समान शीघ्रता करने वाले विद्वानो ! (यूयम्) तुम (अरिष्टग्रामाः) जिन से ग्राम के ग्राम अहिंसक होते अर्थात् पशु आदि जीवों को जिन्होंने ताड़ना देना छोड़ दिया ऐसे

होते हुए (नः) हमारी (सुमतिम्) प्रशस्त उत्तम बुद्धि को (सुचेतुना) सुन्दर विज्ञान से (पिपर्त्तन) पूरी करो । (यत्र) जहां (क्रिविर्दती) हिंसा करने रूप दांत हैं जिसके वह (वः) तुम्हारे सम्बन्ध से (दिद्युत्) अत्यन्त प्रकाशमान बिजुली (रदति) पदार्थों को छिन्न भिन्न करती है वहां (सुधितेव) अच्छे प्रकार धारण किई हुई वस्तु के समान (बर्हणा) बढ़ती हुई (पश्वः) पशुओं को अर्थात् पशुभावों को (रिणाति) प्राप्त होती जैसे पशु घोड़े, बैल आदि रथादिकों को जोड़े हुए उनको चलाते हैं वैसे उन रथों को अति वेग से चलाती हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । शिल्पव्यवहार से सिद्ध किई बिजुलीरूप आग घोड़े आदि पशुओं के समान कार्य सिद्ध करने वाली होती है, उसकी क्रिया को जानने वाले विद्वान् अन्य जनों को भी उस विद्युद्विद्या से कुशल करें ॥ ६ ॥

प्र स्कम्भदेष्णा अनवभ्रराधसोऽलातृणासो विदथेषु सुष्टुताः ।
अर्चन्त्यर्कं मदिरस्य पीतये विदुर्वीरस्य प्रथमानि पौंस्या ॥ ७ ॥

पदार्थ—जो (स्कम्भदेष्णाः) स्तम्भन देने वाले अर्थात् रोक देने वाले (अनवभ्रराधसः) जिनका धन विनाश को नहीं प्राप्त हुआ (अलातृणासः) पूर्ण शत्रुओं को मारनेहारे (सुष्टुताः) अच्छी प्रशंसा को प्राप्त जन (विदथेषु) संग्रामों में (वीरस्य) शूरता आदि गुणयुक्त युद्ध करने वाले के (प्रथमानि) प्रथम (पौंस्या) पुरुषार्थों बलों को (विदुः) जानते हैं वे (मदिरस्य) आनन्ददायक रस के (पीतये) पीने को (अर्कम्) सत्कार करने योग्य विद्वान् का (प्र, अर्चन्ति) अच्छा सत्कार करते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो यथायोग्य आहार विहार करने शूरजनों से प्रीति रखने वाले अपनी सेना के बलों को बढ़ाते हैं वे शत्रुरहित असङ्ख्य धनयुक्त बहुत दान देने वाले और प्रशंसा को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

शतभुजिभिस्तमभिह्रुतेरघात् पूर्भी रक्षता मरुतो यमावत ।
जनं यमुग्रास्तवसो विरप्शिनः पाथना शंसात्तनयस्य पुष्टिषु ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (तनयस्य) सन्तान की (पुष्टिषु) पुष्टि करने वाले कामों में प्रयत्न करते हुए (उग्राः) तेजस्वी तीव्र प्रतापयुक्त (तवसः) अत्यन्त बढ़े हुए बल से युक्त (विरप्शिनः) पूर्ण विद्या पूर्ण शिक्षा और पूर्ण पराक्रम वाले (मरुतः) पवनों के समान वर्त्तमान विद्वानो ! तुम (शतभुजिभिः) असङ्ख्य सुख भोगने को जिन का शील (पूर्भिः) पूरण पालन और सुखयुक्त नगरों के साथ (यम्) जिस की

(अभिह्रुतः) सब ओर से कुटिल (अघात्) पाप से (रक्षत) रक्षा करो बचाओ वा (यम्) जिस (जनम्) जन को (आवत) पालो वा जिस की (शंसात्) आत्मप्रशंसारूप दोष से (पाथन) पालना करो (तम्) उस की हम लोग भी सब ओर से रक्षा करें ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य युक्त आहार विहार उत्तम शिक्षा ब्रह्मचर्य और विद्यादि गुणों से अपने सन्तानों को पुष्टि युक्त सत्य की प्रशंसा करने वाले और पाप से अलग रहने वाले करते और प्राण के समान प्रजा को आनन्दित करते हैं वे अनन्त सुखभोक्ता होते हैं । ॥ ८ ॥

विश्वा॑नि भ॒द्रा म॑रुतो॒ रथे॑षु वो मिथ॒स्पृध्ये॑व तवि॒षाण्याहि॑ता ।
अंसे॒ष्वा व॒ः प्रप॑थेषु खा॒दयोऽक्षो॑ वश्च॒क्रा स॒मया॒ वि वा॑वृते ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (मरुतः) पवनों के समान बली सज्जनो ! (वः) तुम्हारे (रथेषु) रमणीय यानों में (विश्वानि) समस्त (भद्रा) कल्याण करने वाले (मिथस्पृध्येव) संग्रामों में जैसे परस्पर सेना है वैसे (तविषाणि) बल (आहिताः) सब ओर से धरे हुए हैं (वः) तुम्हारे (अंसेषु) स्कन्धों में उक्त बल है तथा (प्रपथेषु) उत्तम सीधे मार्गों में (खादयः) खाने योग्य विशेष भक्ष्य भोज्य पदार्थ हैं (वः) तुम्हारे (अक्षः) रथ का अक्षभाग धुरी (चक्रा) पहियों के (समया) समीप (आ, वि, ववृते) विविध प्रकार से प्रत्यक्ष वर्त्तमान है ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो आप बलवान् कल्याण के आचरण करने वाले सुमार्गगामी परिपूर्ण धन सेनादि सहित हैं वे प्रत्यक्ष शत्रुओं को जीत सकते हैं ॥ ९ ॥

भूरी॑णि भ॒द्रा नर्ये॑षु बा॒हुषु॒ वक्ष॑स्सु रु॒क्मा र॑भ॒सासो॑ अ॒ञ्जय॑ः ।
अंसे॒ष्वेता॑ः प॒विषु॑ क्षु॒रा अधि॒ वयो॒ न प॒क्षान्व्यनु॒ श्रियो॑ धिरे ॥१०॥

पदार्थ—जिन के (नर्येषु) मनुष्यों के लिये हितरूप पदार्थों में (भूरीणि) बहुत (भद्रा) सेवन करने योग्य धर्मयुक्त कर्म वा (बाहुषु) प्रचण्ड भुजदण्डों और (वक्षस्सु) वक्षःस्थलों में (रुक्माः) सुवर्ण और रत्नादि युक्त अलङ्कार (अंसेषु) स्कन्धों में (एताः) विद्या की शिक्षा में प्राप्त (रभसासः) वेग जिन में विद्यमान ऐसे (अञ्जयः) प्रसिद्ध प्रशंसायुक्त पदार्थ (पविषु, अधि) उत्तम शिक्षायुक्त वाणियों में (क्षुराः) धर्मानुकूल शब्द वर्त्तमान हैं वे (वयः) पखेरू (पक्षान्) पंखों को (न) जैसे वैसे (श्रियः) लक्ष्मियों को (वि, अनु, धिरे) विशेषता से अनुकूल धारण करते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ—जो ब्रह्मचर्य से विद्याओं को प्राप्त हुए गृहाश्रम में आभूषणों को धारण किये पुरुषार्थयुक्त परोपकारी वानप्रस्थाश्रम में वैराग्य को प्राप्त पढ़ाने में रमे हुए और संन्यास आश्रम में प्राप्त हुआ यथार्थभाव जिनको और परोपकारी सर्वत्र विचरते सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग कराते हुए समस्त मनुष्यों को वढ़ाते हैं वे मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

महान्तो मह्ना विभ्वो३ विभूतयो दूरेदृशो ये दिव्याइव स्तृभिः ।
मन्द्राः सुजिह्वाः स्वरितार आसभिः
संमिश्ला इन्द्रे मरुतः परिष्टुभः ॥ ११ ॥

पदार्थ—जो विद्वान् जन (मह्ना) अपनी महिमा से (महान्तः) बड़े (विभ्वः) समर्थ (विभूतयः) नाना प्रकार के ऐश्वर्यों को देने वाले (दूरेदृशः) दूरदर्शी (इन्द्रे) बिजुली के विषय में (संमिश्लाः) अच्छे मिले हुए (स्तृभिः) आच्छादन करने संसार पर छाया करने हारे तारागणों के साथ वर्त्तमान (परिष्टुभः) सब ओर से धारण करने हारे (मरुतः) पवनों के समान तथा (दिव्या इव) सूर्यस्थ किरणों के समान (मन्द्राः) कमनीय मनोहर (सुजिह्वा) सत्य वाणी बोलने वाले (स्वरितारः) पढ़ाने और उपदेश करने वाले होते हुए (आसभिः) मुखों से पढ़ाते और उपदेश करते हैं वे निर्मल विद्यावान् होते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोमालङ्कार है । जैसे पवन समस्त मूर्त्तिमान् पदार्थों को धारण करने वाले बिजुली के संयोग से प्रकाशक और सर्वत्र व्याप्त है वैसे विद्वान् जन मूर्त्तिमान् द्रव्यों की विद्या के उपदेष्टा विद्या और विद्यार्थियों के संयोग के विशेष ज्ञान को देने वाले सकल विद्या और शुभ आचरणों में व्याप्त होते हुए मनुष्यों में उत्तम होते हैं ॥ ११ ॥

तद्वः सुजाता मरुतो महित्वनं दीर्घं वो दात्रमदितेरिव व्रतम् ।
इन्द्रश्चन त्यजसा वि ह्रुणाति तज्जनाय यस्मै सुकृते अराध्वम् ॥१२॥

पदार्थ—हे (सुजाता) सुन्दर प्रसिद्ध (मरुतः) पवनों के समान वर्त्तमान ! जो (वः) तुम्हारा (अदितेरिव) अन्तरिक्ष की जैसे वैसे (महित्वनम्) महिमा (दीर्घम्) विस्तारयुक्त (दात्रम्) दान और (वः) तुम्हारा (व्रतम्) शील है (तत्) उसको तथा जो (इन्द्रः) बिजुली (चन) भी (त्यजसा) त्याग से अर्थात् एक पदार्थ छोड दूसरे पर गिरने से (वि, ह्रुणाति) टेढ़ी बेढ़ी जाती (तत्) उस वृत को भी (यस्मै) जिस (सुकृते) सुन्दर धर्म करने वाले (जनाय) सज्जन के लिये (अराध्वम्) देओ वह संसार का उपकार कर सके ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जिन की प्राण के तुल्य महिमा विस्तारयुक्त विद्या का दान आकाशवत् शान्तियुक्त शील और बिजुली के समान दुष्टाचरण का त्याग है वे सब को सुख देने को योग्य हैं ॥ १२ ॥

तद्वो जामित्वं मरुतः परे युगे पुरू यच्छंसममृतास आवत ।
अया धिया मनवे श्रुष्टिमाव्या साकं नरो दंसनैरा चिकित्रिरे ॥१३॥

पदार्थ—हे (अमृतासः) मृत्युधर्मरहित (मरुतः) प्राणों के समान अत्यन्त प्रिय विद्वान् जनो ! (परे, युगे) परले वर्ष में वा परजन्म में (यत्) जो (वः) तुम लोगों का (पुरु) बहुत (जामित्वम्) सुख दुःख का भोग वर्त्तमान है (तत्) उसको (शंसम्) प्रशंसारूप (आवत) रक्खो और (अया) इस (धिया) बुद्धि से (मनवे) मनुष्य के लिये (श्रुष्टिम्) प्राप्त होने योग्य वस्तु की (आव्य) रक्षा कर (नरः) धर्मयुक्त व्यवहारों में मनुष्यों को पहुँचाने वाले मनुष्य (साकम्) तुम्हारे साथ (दंसनैः) शुभ अशुभ सुख दुःख फलों की प्राप्ति कराने वाले कर्मों से (आ, चिकित्रिरे) सब को अच्छे प्रकार जानें ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे वायु इस सृष्टि में और वर्त्तमान प्रलय में वर्त्तमान हैं वैसे नित्य जीव हैं तथा जैसे वायु जड़ वस्तु को भी नीचे ऊपर पहुँचाते हैं वैसे जीव भी कर्मों के साथ पिछले बीच के और अगले समय में समय और अपने कर्मों के अनुसार चक्कर खाते फिरते हैं ॥ १३ ॥

येन दीर्घं मरुतः शूशवाम युष्माकेन परीणसा तुरासः ।
आ यत्ततनन्वृजने जनास एभिर्यज्ञेभिस्तदभीष्टिमश्याम् ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे (तुरासः) शीघ्रता करने वाले (मरुतः) पवन के समान विद्याबलयुक्त विद्वानो ! हम लोग (येन) जिस (युष्माकेन) आप लोगो के सम्बन्ध के (परीणसा) बहुत उपदेश से (दीर्घम्) दीर्घ अत्यन्त लम्बे ब्रह्मचर्य को प्राप्त होके (शूशवाम) वृद्धि को प्राप्त हों जिससे (जनासः) बिद्या से प्रसिद्ध मनुष्य (वृजने) बल के निमित्त (यत्) जिस क्रिया को (आ, ततनन्) विस्तारें (तत्) उस (अभीष्टिम्) सब प्रकार से चाही हुई क्रिया को (एभिः) इन (यज्ञेभिः) विद्वानों के सङ्गरूपयज्ञों से मैं (अश्याम्) पाऊं ॥ १४ ॥

भावार्थ—जिन के सहाय से मनुष्य बहुत विद्या धर्म और बल वाले हों उनकी नित्य वृद्धि करें विद्वान् जन जैसे धर्म्म का आचरण करें वैसा ही और भी जन करें ॥ १४ ॥

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १५ ॥

पदार्थ—हे (मरुतः) विद्वानो ! (वः) तुम्हारा जो (एषः) यह (स्तोमः) स्तुति और (मान्दार्यस्य) आनन्द करने वाले धर्मात्मा (मान्यस्य) सत्कार करने योग्य (कारोः) अत्यन्त यत्न करते हुए जन की (इयम्) यह (गीः) वाणी और जिस क्रिया को (तन्वे) शरीर के लिये (इषा) इच्छा के साथ कोई (आ, यासीष्ट) अच्छे प्रकार प्राप्त हो उस क्रिया (इषम्) अन्न (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) जीवन को (वयाम्) हम लोग (विद्याम) प्राप्त होवें ॥ १५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को विद्वानों की स्तुति कर शास्त्रज्ञ धर्मात्माओं की वाणी सुन शरीर और आत्मा के बल को बढ़ा दीर्घजीवन प्राप्त करना चाहिये ॥ १५ ॥

इस सूक्त में मरुच्छब्दार्थ से विद्वानों के गुण का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ छियासठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अगस्त्य ऋषिः । इन्द्रो मरुच्च देवता । १ । ४ । ५ भुरिक् पङ्क्तिः । ७ । ९ स्वराट् पङ्क्तिः । १० निचृत् पङ्क्तिः । ११ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । ३ । ६ । ८ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

सहस्रं त इन्द्रोतयो नः सहस्रमिषो हरिवो गूर्त्ततमाः ।
सहस्रं रायो मादयध्यै सहस्रिण उप नो यन्तु वाजाः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (हरिवः) धारणाकर्षणादि युक्त (इन्द्र) परमैश्वर्य वाले विद्वान् ! जो (ते) आप की (सहस्रम्) सहस्रों (ऊतयः) रक्षायें (सहस्रम्) सहस्रों (इषः) अन्न आदि पदार्थ (सहस्रम्) सहस्रों (गूर्त्ततमाः) अत्यन्त उद्यम वा (रायः) धन हैं वे (नः) हमारे हों और (सहस्रिणः) सहस्रों पदार्थ जिन में विद्यमान वे (वाजाः) बोध (मादयध्यै) आनन्दित करने के लिये (नः) हम लोगों को (उप, यन्तु) निकट प्राप्त हों ॥ १ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को जो भाग्यशालियों को सर्वोत्तम सामग्री से और

यथायोग्य क्रिया से असंख्य सुख होते हैं वे हमारे हों ऐसा मानकर निरन्तर प्रयत्न करना चाहिये ॥ १ ॥

आ नोऽवोभिर्मरुतो यान्त्वच्छा ज्येष्ठेभिर्वा बृहद्दिवैः सुमायाः ।
अध यदेषां नियुतः परमाः समुद्रस्य चिद्धनयन्त पारे ॥ २ ॥

पदार्थ—(यत्) जो (सुमायाः) सुन्दर बुद्धि वाले (बृहद्दिवैः) जिन की अतीव विद्या प्रसिद्ध उन (ज्येष्ठेभिः) विद्या और अवस्था से बढ़े हुओं के (वा) अथवा (अवोभिः) रक्षा आदि कर्मों के साथ (मरुतः) पवनों के समान सज्जन (नः) हम लोगों को (अच्छ) अच्छे प्रकार (आ, यान्तु) प्राप्त होवें (अध) इस के अनन्तर (एषाम्, चित्) इन के भी (समुद्रस्य) सागर के (पारे) पार (परमाः) अत्यन्त उत्तम (नियुतः) पवन के समान बिजुली आदि अश्व (धनयन्त) अपने को धन की इच्छा करते हैं उनका हम लोग सत्कार करें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो अतीव बड़ी नौकाओं से पवन के समान वेग से व्यवहारसिद्धि के लिये समुद्र के वार पार जा आ के धन को उन्नति करते हैं वे अतुल सुख को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

मिम्यक्ष येषु सुधिता घृताची हिरण्यनिर्णिगुपरा न ऋष्टिः ।
गुहा चरन्ती मनुषो न योषा सभावती विदथ्येव संवाक् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! आप (येषु) जिन में (घृताची) जल को शीतलता से छोड़ने वाली रात्रि के समान वा (सुधिता) अच्छे प्रकार धारण किई हुई (उपरा) ऊपरली दिशा के (न) समान वा (ऋष्टिः) प्रत्येक पदार्थ को प्राप्त कराने वाली (हिरण्यनिर्णिक्) जो सुवर्ण से पुष्टि होती और (गुहा, चरन्ती) गुप्त स्थलों में विचरती हुई (मनुषः) मनुष्य की (योषा) स्त्री (न) उसके समान वा (विदथ्येव) संग्राम वा विज्ञानों में हुई क्रिया आदि के समान (सभावती) सभा सम्बन्धिनी (वाक्) वाणी है उस को (सम्, मिम्यक्ष) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य सत्य असत्य के निर्णय के लिये सब शुभ गुण कर्म स्वभाव वाली विद्या सुशिक्षायुक्त शास्त्रज्ञ धर्मात्मा विद्वानों की वाणी को प्राप्त होते हैं वे बहुत ऐश्वर्यवान् होते हुए दिशाओं में सुन्दर कीर्त्ति को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

परा शुभ्रा अयासो यव्या साधारण्येव मरुतो मिमिक्षुः ।
न रोदसी अप नुदन्त घोरा जुषन्त वृधं सख्याय देवाः ॥ ४ ॥

पदार्थ—जैसे (शुभ्राः) स्वच्छ (अयासः) शीघ्रगामी (मरुतः) पवन (यव्या) मिली न मिली हुई चाल से (रोदसी) आकाश और पृथिवी को (मिमिक्षुः) सींचते और (घोराः) बिजुली के योग से भयङ्कर होते हुए (न, परा, अप, नुदन्त) उनको परावृत्त नहीं करते उलट नहीं देते वैसे (देवाः) विद्वान् जन (वृधम्) वृद्धि को (सख्याय) मित्रता के लिये (साधारण्येव) साधारण क्रिया से जैसे वैसे (जुषन्त) सेवें॥ ४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे वायु और बिजुली के योग से उत्पन्न हुई वर्षा अनेक ओषधियों को उत्पन्न कर सब प्राणियों को जीवन देकर दुःखों को दूर करती है वा जैसे उत्तम पतिव्रता स्त्री पति को आनन्दित करती है वैसे ही विद्वान् जन विद्या और उत्तम शिक्षा की वर्षा से और धर्म के सेवन से सब मनुष्यों को आह्लादित करें॥ ४॥

जोषद्यदीमसुर्या सचध्यै विषितस्तुका रोदसी नृमणाः।
आसूर्येव विधतो रथं गात्त्वेषप्रतीका नभसो नेत्या॥ ५॥

पदार्थ—(यत्) जो (असुर्या) मेघों में प्रसिद्ध (विषितस्तुका) विविध प्रकार की जिस की स्तुति सम्बन्धी और (नृमणाः) जो अग्रगामी जनों में चित्त रखती हुई (ईम्) जल के (सचध्यै) संयोग के लिये (सूर्येव) सूर्य की दीप्ति के समान (रोदसी) आकाश और पृथिवी को (जोषत्) सेवे अर्थात् उन के गुणों में रमे वा (त्वेषप्रतीका) प्रकाश की प्रतीति कराने वाली और (इत्या) प्राप्त होने के योग्य होती हुई (नभसः) जल सम्बन्धी (रथम्) रमण करने योग्य रथ के (न) समान व्यवहार की ओर (विधतः) ताड़ना करने वालों को (आ, गात्) प्राप्त होती वह स्त्री प्रवर है॥ ५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे अग्नि बिजुलीरूप से सब को सब प्रकार से व्याप्त होकर प्रकाशित करती है वैसे सब विद्या उत्तम शिक्षाओं को पाकर स्त्री समग्र कुल को प्रशंसित करती है॥ ५॥

आस्थापयन्त युवतिं युवानः शुभे निमिश्लां विदथेषु पज्राम्।
अर्को यद्वो मरुतो हविष्मान् गायद्गाथं सुतसोमो दुवस्यन्॥ ६॥

पदार्थ—हे (मरुतः) विद्यायुक्त प्राण के समान प्रिय सज्जनो! (युवानः) यौवनावस्था को प्राप्त आप (शुभे) गुण कर्म और स्वभाव ग्रहण करने के लिये (निमिश्लाम्) निरन्तर पूर्ण विद्या और सुशिक्षायुक्त और (विदथेषु) धर्मयुक्त व्यवहारों में (पज्राम्) जाने वाली (युवतिम्) युवती स्त्री को (आ, अस्थापयन्त) अच्छे प्रकार स्थापित करते। और (यत्) जो (वः) तुम्हारा (अर्कः) सत्कार

करने योग्य अन्न है उस को अच्छे प्रकार स्थापित करते हो। तथा जो (हविष्मान्) बहुत विद्यावान् (सुतसोमः) जिसने ऐश्वर्य उत्पन्न किया और (गायत्) स्तुति करे वह (गाथम्) प्रशंसनीय उपदेश को (दुवस्यन्) सेवता हुआ निरन्तर आनन्द करे ॥ ६ ॥

भावार्थ—सब राजपुरुषादिकों को अत्यन्त योग्य है कि अपने कन्या और पुत्रों को दीर्घ ब्रह्मचर्य में संस्थापित कर विद्या और उत्तम शिक्षा उन को ग्रहण करा पूर्ण विद्या वाले परस्पर प्रसन्न पुत्र कन्याओं का स्वयंवर विवाह करावें जिस से जब तक जीवन रहे तब तक आनन्दित रहें ॥ ६ ॥

प्र तं विविक्मि वक्म्यो य एषां मरुतां महिमा सत्यो अस्ति ।
सचा यदीं वृषमणा अहंयुः स्थिरा चिज्जनीर्वहते सुभागाः ॥ ७॥

पदार्थ—(यः) जो (एषाम्) इन (मरुताम्) पवनों के समान विद्वानों का (वक्म्यः) कहने योग्य (सत्यः) सत्य (महिमा) बड़प्पन (अस्ति) है (तम्) उसको और (यत्) जो (अहंयुः) अहङ्कार वाला अभिमानी (वृषमनाः) जिस का वीर्य सींचने में मन वह (ईम्) सब ओर से (सचा) सम्बन्ध के साथ (स्थिरा, चित्) स्थिर ही (सुभागाः) सुन्दर सेवन करने (जनीः) अपत्यों को उत्पन्न करने वाली स्त्रियों को (वहते) प्राप्त होता उस को भी मैं (प्र,-विविक्मि) अच्छे प्रकार विशेषता से कहता हूँ ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों का यही बड़प्पन है जो दीर्घ ब्रह्मचर्य से कुमार और कुमारी शरीर और आत्मा के पूर्ण बल के लिये विद्या और उत्तम शिक्षा को ग्रहण कर चिरञ्जीवी दृढ़ जिन के शरीर और मन ऐसे भाग्यशाली सन्तानों को उत्पन्न कर उनको प्रशंसित करना ॥ ७ ॥

पान्ति मित्रावरुणाववद्याच्चयत ईमर्य्यमो अप्रशस्तान् ।
उत च्यवन्ते अच्युता ध्रुवाणि वावृध ईं मरुतो दातिवारः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (मरुतः) विद्वानो ! आप लोग और (मित्रावरुणौ) मित्र और और श्रेष्ठ सज्जन वा अध्यापक और उपदेशक जन (अवद्यात्) निन्द्य पापाचरण से (पान्ति) मनुष्यों की रक्षा करते हैं तथा (अर्यमो) न्याय करने वाला राजा (अप्रशस्तान्) दुराचारी जनों को (ईम्) प्रत्यक्ष (चयते) इकट्ठा करता है (उत) और वे (अच्युता) विनाशरहित (ध्रुवाणि) ध्रुव दृढ़ कामों को (च्यवन्ते) प्राप्त होते हैं और (दातिवारः) दान को लेने वाला (ईम्) सब ओर से (ववृधे) बढ़ता है ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य विद्या धर्म और उत्तम शिक्षा के देने से अज्ञानियों को अधर्म से निवृत्त कर ध्रुव और शुभ गुण कर्मों को प्राप्त कराते हैं वे सुख से अलग नहीं होते ॥ ८ ॥

नही नु वो मरुतो अन्त्यस्मे आरात्ताच्चिच्छवसो अन्तमापुः ।
ते धृष्णुना शवसा शूशुवांसोऽर्णो न द्वेषो धृषता परि ष्ठुः ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (मरुतः) महा बलवान् विद्वानो ! जो (वः) तुम्हारे और (अस्मे) हमारे (अन्ति) समीप में (शवसः) बल की (अन्तम्) सीमा को (नु) शीघ्र (नहि) नहीं (आपुः) प्राप्त होते और जो (आरात्तात्) दूर से (चित्) भी (धृष्णुना) दृढ़ (शवसा) बल से (शूशुवांसः) बढ़ते हुए (अर्णः) जल के (न) समान (धृषता) प्रगल्भता से ढिठाई से (द्वेषः) वैर आदि दोष वा धर्मविरोधी मनुष्यों को (परि, स्थुः) सब ओर से छोड़ने में स्थित हों (ते) वे आप्त अर्थात् शास्त्रज्ञ धर्मात्मा हों ॥ ९ ॥

भावार्थ—यदि हम लोग पूर्ण शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त होवें तो शत्रुजन हमारा और तुम्हारा पराजय न कर सकें । जो दुष्ट और लोभादि दोषों को छोड़ें वे अति बली होकर दुःख के पार पहुंचें ॥ ९ ॥

वयमद्येन्द्रस्य प्रेष्ठा वयं श्वो वोचेमहि समर्ये ।
वयं पुरा महि च नो अनु द्यून्तन्न ऋभुक्षा नरामनु ष्यात् ॥ १० ॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (वयम्) हम लोग (अद्य) आज (इन्द्रस्य) परम-विद्या और ऐश्वर्ययुक्त धार्मिक विद्वान् के (प्रेष्ठाः) अत्यन्त प्रिय हैं (वयम्) हम लोग (श्वः) कलह के आने वाले दिन (समर्ये) संग्राम में (वोचेमहि) कहें (च) और (पुरा) प्रथम जो (नः) हम लोगों का (महि) बड़प्पन है (तत्) उसको (वयम्) हम लोग (अनु, द्यून्) प्रतिदिन कहें और (नराम्) मनुष्यों के बीच (नः) हमारे लिये (ऋभुक्षाः) मेधावी बुद्धिमान् वीर पुरुष (अनु, ष्यात्) अनुकूल हों ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वानों से प्रीति, युद्ध में उत्साह और मनुष्यादिकों का प्रिय काम का पहिले से आचरण करते हैं वे सब के पियारे होते हैं ॥ १० ॥

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (मरुतः) विद्वानो ! (एषः) यह (वः) तुम्हारी (स्तोमः) स्तुति और (मान्दार्यस्य) आनन्द के देने वाले उत्तम (मान्यस्य) मान सत्कार करने योग्य (कारोः) सब का सुख करने वाले सज्जन की (इमम्) यह (गीः) वेदविद्या की उत्तम शिक्षा से युक्त वाणी है इसकी जो (इषा) इच्छा के साथ (आ यासीष्ट) प्राप्ति हो (वयाम्) हम लोग (तन्वे) शरीर के लिये उस (इषम्) इच्छा (जीरदानुम्) जीवन के निमित्त और (वृजनम्) बल को (विद्याम) जानें ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो सब से प्रशंसा करने योग्य गुणों को प्राप्त होकर आप्त धर्मात्मा सज्जनों का सत्कार कर शरीर और आत्मा के बल के लिये विद्या और पराक्रम सम्पादन करते हैं वे सुख से जीते हैं ॥ ११ ॥

इस सूक्त में वायु के दृष्टान्त से सज्जन विद्वान् जनों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह समझना चाहिये ॥

यह एकसौ सरसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अगस्त्य ऋषिः । मरुतो देवताः १ । ४ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । २ । ५ विराट् त्रिष्टुप् । ३ स्वराट् त्रिष्टुप् । ६ । ७ भुरिक् त्रिष्टुप् । ८ त्रिष्टुप् । ९ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । १० पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

यज्ञायज्ञा वः समना तुतुर्वणिर्धियंधियं वो देवया उ दधिध्वे ।
आ वोऽर्वाचः सुविताय रोदस्योर्महे ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥१॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जैसे (देवयाः) दिव्य गुणों को जो प्राप्त होते वे प्राण वायु (वः) तुम्हारे (धियंधियम्) काम काम को धारण करते वैसे (उ) ही तुम उनको (दधिध्वे) धारण करो । जैसे उन पवनों की (यज्ञायज्ञा) यज्ञ यज्ञ में और (समना) समान व्यवहारों में (तुतुर्वणिः) शीघ्र गति है वैसे (वः) तुम्हारी गति हो जैसे हम लोग (रोदस्योः) आकाश और पृथिवी सम्बन्धी (सुविताय) ऐश्वर्य के लिये और (महे) अत्यन्त (अवसे) रक्षा के लिये (वः) तुम्हारे (सुवृक्तिभिः) सुन्दर त्यागों के साथ (अर्वाचः) नीचे आने जाने वाले पवनों को (आ ववृत्याम्) अच्छे वर्त्ताने के लिये चाहते हैं वैसे तुम चाहो ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे पवन नियम से अनेक विध गतिमान् होकर विश्व का धारण करते हैं वैसे विद्वान् जन

विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त होकर विद्यार्थियों को धारण करें जिससे असंख्य ऐश्वर्य प्राप्त हो ॥ १ ॥

वव्रासो न ये स्वजाः स्वतवस इषं स्वरभिजायन्त धूतयः ।
सहस्रियासो अपां नोर्मय आसा गावो वन्द्यासो नोक्षणः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (ये) जो (स्वजाः) अपने ही कारण से उत्पन्न (स्वतवसः) अपने बल से बलवान् (धूतयः) जाने वा दूसरों को कम्पाने वाले मनुष्य (वव्रासः) शीघ्रगामियों के (न) समान वा (अपाम्) जलों की (सहस्रियासः) हजारों (ऊर्मयः) तरङ्गों के (न) समान (आसा) सुख से (वन्द्यासः) वन्दना और कामना के योग्य (गावः) गौयें जैसे (उक्षणः) बैलों को (न) वैसे (इषम्) ज्ञान और (स्वः) सुख को (अभिजायन्त) प्रकट करते हैं उनको तुम जानो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो पवन के समान बलवान् तरङ्गों के समान उत्साही, गौओं के समान उपकार करने वाले, कारण के तुल्य सुखजनक दुष्टों को कम्पाने भय देने वाले मनुष्य हों वे यहां धन्य होते हैं ॥ २ ॥

सोमासो न ये सुतास्तृप्तांशवो हृत्सु पीतासो दुवसो नासते ।
ऐषामंसेषु रम्भिणीव रारभे हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च सं दधे ॥३॥

पदार्थ—मैं (ये) जो पवनों के समान विद्वान् (तृप्तांशवः) जिन से सूर्य किरण आदि पदार्थ तृप्त होते और वे (सुताः) कूट पीट निकाले हुए (सोमासः) सोमादि ओषधि रस (हृत्सु) हृदयों में (पीतासः) पीये हुए हों उनके (न) समान वा (दुवसः) सेवन करने वालों के (न) समान (आसते) बैठते स्थिर होते (एषाम्) इसके (अंसेषु) भुजस्कन्धों में (रम्भिणीव) जैसे प्रत्येक काम का आरम्भ करने वाली स्त्री संलग्न हो वैसे (आ, रारभे) संलग्न होता हूं और जिन्हों ने (हस्तेषुः) हाथों में (खादिः) भोजन (च) और (कृतिः) क्रिया (च) भी धारण किई है उनके साथ क्रियाओं को (सम्, दधे) अच्छे प्रकार धारण करता हूँ ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो सज्जन ओषधियों के समान दुष्ट शिक्षा और दुष्टाचार के विनाश करने सेवकों के समान सुख देने और पतिव्रता स्त्री के समान प्रिय आचरण करने वाले क्रियाकुशल हैं वे इस सृष्टि में सब विद्याओं के अच्छे धारण करने यथायोग्य कामों में वर्त्तने को योग्य होते हैं ॥ ३ ॥

अवस्वयुक्ता दिव आ वृथा ययुरमर्त्याः कशया चोदत त्मना।
अरेणवस्तुविजाता अचुच्यवुर्दृढानि चिन्मरुतो भ्राजदृष्टयः॥ ४॥

पदार्थ—हे मनुष्यो! तुम (त्मना) आत्मा से (कशया) शिक्षा या गति से जैसे (स्वयुक्ताः) अपने से गमन करने वाले (अमर्त्याः) मरणधर्मरहित (अरेणवः) जिन में रेणु वालू नहीं विद्यमान (तुविजाताः) बल के साथ प्रसिद्ध और (भ्राजदृष्टयः) जिनकी प्रकाशमान गति वे (मरुतः) पवन (दिवः) आकाश से (आ, ययुः) आते प्राप्त होते हैं और (दृढानि) पुष्ट (चित्) भी पदार्थों को (वृथा) निष्काम (अव, अचुच्यवुः) प्राप्त होते वैसे इन को (चोदत) प्रेरणा देओ॥ ४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पवन आप ही जाते आते हैं और अग्नि आदि पदार्थों को धारण कर दृढ़ता से प्रकाशित करते हैं वैसे विद्वान् जन आप ही पढ़ाने और उपदेशों में नियुक्त हो व्यर्थ कामों को छोड़ कर और छुड़वा के विद्या और उत्तम शिक्षा से सब जनों को प्रकाशित करते हैं॥ ४॥

को वोऽन्तर्मरुत ऋष्टिविद्युतो रेजति त्मना हन्वेव जिह्वया।
धन्वच्युत इषां न यामनि पुरुप्रैषा अहन्यो३ नैतशः॥ ५॥

पदार्थ—हे (पुरुप्रैषाः) बहुतों से प्रेरणा को प्राप्त (ऋष्टिविद्युतः) ऋष्टि—द्विधारा खड्ग को बिजुली के समान तीव्र रखने वाले (मरुतः) विद्वानो! (वः) तुम्हारे (अन्तः) बीच में (कः) कौन (रेजति) कम्पता है और (जिह्वया) वाणी से (हन्वेव) कनफटी जैसे डुलाई जावें वैसे (त्मना) अपने से कौन तुम्हारे बीच में कम्पता है (इषाम्) और इच्छाओं के सम्बन्ध में में (धन्वच्युतः) अन्तरिक्ष में प्राप्त मेघों के (न) समान वा (अहन्यः) दिन में प्रसिद्ध होने वाले (एतशः) घोड़े के (न) समान (यामनि) मार्ग में तुम लोगों को कौन संयुक्त करता है॥ ५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जब जिज्ञासु जन विद्वानों के प्रति पूछें तब विद्वान् जन इन के लिये यथार्थ उत्तर देवें॥ ५॥

क्व स्विदस्य रजसो महस्परं क्वावरं मरुतो यस्मिन्नायय।
यच्च्यावयथ विथुरेव संहितं व्यद्रिणा पतथ त्वेषमर्णवम्॥ ६॥

पदार्थ—हे (मरुतः) विद्वानो! (अस्य) इस (रजसः) भूगोल का (महः) बड़ा (परम्) कारण (क्व, स्वित्) निश्चय से कहां और (क्व)

कहां (अवरम्) कार्य्य वर्त्तमान है इस को हम लोग पूछते हैं (यस्मिन्) जिस में तुम (आयय) आओ (यत्) जिस को (च्यावयथ) चलाओ जिसमें (विथुरेव) दबाये पदार्थों के समान (संहितम्) मेल किये हुए यह जगत् है जिससे (अद्रिणा) मेघवृन्द के पवन (त्वेषम्) सूर्य के प्रकाश और (अर्णवम्) समुद्र को (वि, पतथ) नीचे प्राप्त होते हैं वही परब्रह्म सब जगत् का बड़ा कारण है यही प्रश्नों का उत्तर है ॥ ६ ॥

भावार्थ—जिसमें यह भूगोल आदि जगत् जाता आता कम्पता उसी को आकाश के समान कारण जानो, जिसमें ये लोक उत्पन्न होते भ्रमते और प्रलय हो जाते हैं वह परम उत्कृष्ट निमित्त कारण ब्रह्म है ॥ ६ ॥

सातिर्न वोऽमवती स्वर्वती त्वेषा विपाका मरुतः पिपिष्वती ।
भद्रा वो रातिः पृणतो न दक्षिणा पृथुज्रयी असुर्येव जञ्जती ॥७॥

पदार्थ—हे (मरुतः) विद्वानो ! (वः) तुम्हारी जो (पिपिष्वती) बहुत अङ्गों वाली (अमवती) ज्ञानवती (स्वर्वती) जिस में सुख विद्यमान (विपाका) विविध प्रकार के गुणों से परिपक्व (त्वेषा) उत्तम दीप्ति (सातिः) लोकों की विभक्ति अर्थात् विशेष भाग के (न) समान है और (वः) तुम्हारी जो (पृणतः) पालन करने वा विद्यादि गुणों से परिपूर्ण करने वाले की (दक्षिणा) देने योग्य दक्षिणा के (न) समान (पृथुज्रयी) बहुत वेगवती (असुर्येव) प्राणों में होने वाली बिजुली के समान वा (जञ्जती) युद्ध में प्रवृत्त झंझिणाति हुई सेना के समान (भद्रा) कल्याण करने वाली (रातिः) देनी है उससे सब को बढ़ाओ ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो इन जीवों की पाप पुण्य से उत्पन्न हुई सुख दुःख फल वाली गति है उससे समस्त जीव विचरते हैं। जो पुरुषार्थी जन सेना जन शत्रुओं को जैसे वैसे पापों को जीत, निवारि धर्म का आचरण करते हैं वे सदैव सुखी होते हैं ॥ ७ ॥

प्रति ष्टोभन्ति सिन्धवः पविभ्यो यदभ्रियां वाचमुदीरयन्ति ।
अव स्मयन्त विद्युतः पृथिव्यां यदी घृतं मरुतः प्रुष्णुवन्ति ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! (यत्) जब (मरुतः) पवन (अभ्रियाम्) मेघों में हुई गर्जनारूप (वाचम्) वाणी को (उदीरयन्ति) प्रेरणा देते अर्थात् बद्दलों को गर्जाते हैं तब (सिन्धवः) नदियां (पविभ्यः) वज्र तुल्य किरणों से अर्थात् बिजुली की लपट झपटों से (प्रति, ष्टोभन्ति) क्षोभित होती हैं और (यदि) जब पवन (घृतम्) मेघों के जल (प्रुष्णुवन्ति) वर्षाते हैं तब (विद्युतः)

बिजुलियाँ (पृथिव्याम्) भूमि पर (अव, स्मयन्त) मुसुकियाती सी जान पड़ती है वैसे तुम होओ ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य नदी के समान आर्द्रचित्त बिजुली के समान तीव्र स्वभाव वाले विद्या को पढ़ कर पढ़ाते हैं वे सूर्य के समान सत्य और असत्य को प्रकाश करने वाले होते हैं ॥ ८ ॥

असूत पृश्निर्महते रणाय त्वेषमयासां मरुतामनीकम् ।
ते सप्सरासोऽजनयन्ताभ्वमादित्स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ॥ ९ ॥

पदार्थ--(एषाम्) इन (अयासाम्) गमनशील (मरुताम्) मनुष्यों का (पृश्निः) आदित्य के समान प्रचण्ड प्रतापवान् (त्वेषम्) प्रदीप्त (अनीकम्) गण (महते) महान् (रणाय) संग्राम के लिये (असूत) उत्पन्न होता है (आत्) इसके अनन्तर (इत्) ही (ते) वे (इषिराम्) प्राप्त होने योग्य पदार्थों के बीच (स्वधाम्) अन्न को (अजनयन्त) उत्पन्न करते और (सप्सरासः) गमन करते हुए (अभ्वम्) अविद्यमान अर्थात् जो प्रत्यक्ष विद्यामान नहीं उसको (पर्यपश्यन्) सब ओर से देखते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विचक्षण राजपुरुष विजय के लिये प्रशंसित सेना को स्वीकार कर अन्नादि ऐश्वर्य की उन्नति करते हैं वे तृप्ति को प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (मरुतः) श्रेष्ठ विद्वानो ! जो (एषः) यह (वः) तुम्हारा (स्तोमः) प्रश्नोत्तररूप अलाप कथन (मान्दार्यस्य) सब के लिये आनन्द देने वाले उत्तम (मान्यस्य) जानने योग्य (कारोः) क्रियाकुशल सज्जन की जो (इयम्) यह (गीः) सत्यप्रिया वाणी और जो (इषा) इच्छा के साथ (तन्वे) शरीर सुख के लिये (आ, यासीष्ट) प्राप्त हो उससे (वयाम्) हम लोग (इषम्) अन्न (वृजनम्) शत्रुओं को दुःख देने वाले बल और (जीरदानुम्) जीवों की दया को (विद्याम) प्राप्त होवें ॥ १० ॥

भावार्थ—जो समस्त विद्या की स्तुति और प्रशंसा करने और आप्तवाक् अर्थात् धर्मात्मा विद्वानों की वाणियों में रहने तथा जीवों की दया से युक्त सज्जन पुरुष हैं वे सभों के सुखों को उत्पन्न कराने वाले होते हैं ॥१०॥

इस सूक्त में पवनों के दृष्टान्त से विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ अरसठवां सूक्त समाप्त हुआ ।

अगस्त्य ऋषिः । इन्द्रो देवता १ । ३ भुरिक् पङ्क्तिः । २ पङ्क्तिः ५ । ६ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ४ ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । ७ । ८ निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

म॒हश्चि॒त्त्वमि॑न्द्र य॒त ए॒तान्म॒हश्चि॑दसि॒ त्यज॑सो वरू॒ता ।
स नो॑ वेधो म॒रुतां॑ चिकि॒त्वान्त्सु॒म्ना व॑नुष्व॒ तव॒ हि प्रेष्ठा॑ ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) दुःख के विदारण करने वाले ! अत्यन्त विद्यागुण-सम्पन्न ! (यतः) जिस कारण (त्वम्) आप (एतान्) इन विद्वानों को (महः) अत्यन्त (चित्) भी (त्यजसः) त्याग से (वरूता) स्वीकार करने वाले (असि) हैं इस कारण (महश्चित्) बड़े भी हैं । हे (मरुताम्) विद्वान् सज्जनों के बीच (वेधः) अत्यन्त बुद्धिमान् ! (सः) सो (चिकित्वान्) ज्ञानवान् आप जो (सुम्ना) सुख (तव) आप को (प्रेष्ठा) अत्यन्त प्रिय हैं उनको (नः) हमारे लिये (वनुष्व, हि) निश्चय से देओ ॥ १ ॥

भावार्थ—जो विरक्त संन्यासियों के सङ्ग से बुद्धिमान् होते हैं उनको कभी अनिष्ट दुःख नहीं उत्पन्न होता ॥ १ ॥

अयु॑ज्र॒न्त इ॑न्द्र वि॒श्वकृ॑ष्टीर्विदा॒नासो॑ नि॒ष्षिधो॑ मर्त्य॒त्रा ।
म॒रुतां॑ पृत्सु॒तिर्हास॑माना॒ स्व॑र्मीळ्हस्य प्र॒धन॑स्य सा॒तौ ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सुख के देनेहारे विद्वान् ! जो (निष्षिधः) अधर्म का निषेध करने हारे (मर्त्यत्रा) मनुष्यों में (विदानासः) विद्वान् होते हुए (स्वर्मीढस्य) सुखों से सींचने हारे (प्रधनस्य) उत्तम धन के (सातौ) अच्छे प्रकार भाग में (विश्वकृष्टीः) सब मनुष्यों को (अयुज्रन्) युक्त करते हैं (ते) वे जो (मरुताम्) मनुष्यों की (हासमाना) आनन्दमयी (पृत्सुतिः) वीरसेना है उस को प्राप्त होवें ॥ २ ॥

भावार्थ—जो पहले ब्रह्मचर्य से विद्या को पढ़कर धर्मात्मा शास्त्रज्ञ विद्वानों के सङ्ग से समस्त शिक्षा को पाकर धार्मिक होते हैं वे संसार को सुख देने वाले होते हैं ॥ २ ॥

अभ्यक्सा त इन्द्र ऋष्टिरस्मे सनेम्यभ्वं मरुतो जुनन्ति ।
अग्निश्चिद्धि ष्मातसे शुशुक्वानापो न द्वीपं दधति प्रयांसि ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) दुष्टों को विदारण करने वाले! जिससे (मरुतः) मनुष्य (सनेमि) प्राचीन और (अभ्वम्) नेत्र से प्रत्यक्ष देखने में अप्रसिद्ध उत्तम विषय को (जुनन्ति) प्राप्त होते हैं (सा) वह (ते) आपकी (ऋष्टिः) प्राप्ति (अस्मे) हमारे लिये (अभ्यक्) सीधी चाल को प्राप्त होती है अर्थात् सरलता से आप हम लोगों को प्राप्त होते हैं। और (शुशुक्वान्) शुद्ध करने वाले (अग्निः) अग्नि के समान (चित्) ही आप (हि) निश्चय के साथ (स्म) जैसे आश्चर्यवत् (आपः) जल (द्वीपम्) दो प्रकार से जिस में जल आवें जावें उस बड़े भारी नद को प्राप्त हों (न) वैसे सब के अनादि कारण को (अतसे) निरन्तर प्राप्त होते हैं इससे सब मनुष्य (प्रयांसि) सुन्दर मनोहर चाहने योग्य वस्तुओं को (दधति) धारण करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जिस अनादि कारण को विद्वान् जानते उसको और जन नहीं जान सकते हैं ॥ ३ ॥

त्वं तू न इन्द्र तं रयिं दा ओजिष्ठया दक्षिणयेव रातिम् ।
स्तुतश्च यास्ते चकनन्त वायोः स्तनं न मध्वः पीपयन्त वाजैः ॥४॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) बहुत पदार्थों के देने वाले! (त्वम्) आप (तु) तो (नः) हमारे लिये (ओजिष्ठया) अतीव बलवती (दक्षिणयेव) दक्षिणा के साथ दान जैसे दिया जाय वैसे (रातिम्) दान को तथा (तम्) उस (रयिम्) दुग्धादि धन को (दाः) दीजिये कि जिससे (ते) आप की और (वायोः) पवन की (च) भी (याः) जो (स्तुतः) स्तुति करने वाली हैं वे (मध्वः) मधुर उत्तम (स्तनम्) दूध के भरे हुए स्तन के (न) समान (चकनन्त) चाहती और (वाजैः) अन्नादिकों के साथ (पीपयन्त) बछरों को पिलाती हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जैसे बहुत पदार्थों को देने वाला यजमान ऋतु ऋतु में यज्ञादि कराने वाले पुरोहित के लिये बहुत धन देकर उसको सुशोभित करता है वा जैसे पुत्र माता का दूध पी के पुष्ट हो जाते हैं वैसे सभाध्यक्ष के परितोष से भृत्यजन पूर्ण धनी और उनके दिये भोजनादि पदार्थों से बलवान् होते हैं ॥ ४ ॥

त्वे राय इन्द्र तोशतमाः प्रणेतारः कस्य चिदृतायोः ।
ते षु णो मरुतो मृळयन्तु ये स्मा पुरा गातूयन्तीव देवाः ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) देने वाले ! (ये) जो (कस्य, चित्) किसी (ऋतायोः) अपने को सत्य की चाहना करने वाले (प्रणेतारः) उत्तम साधक (तोशतमाः) और अतीव प्रसन्न चित्त होते हुए (मरुतः) पवनविद्या को जानने वाले (देवाः) विद्वान् जन (त्वे) तुम्हारे रक्षक होते (रायः) धनों की प्राप्ति करा (नः) हम लोगों को (सु, मृळयन्तु) अच्छे प्रकार सुखी करें वा (पुरा) पूर्व (गातुयन्तीव) अपने को पृथिवी चाहते हुए प्रयत्न करते हैं (ते, स्म) वे ही रक्षा करने वाले हों ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो वायुविद्या के जानने वाले परोपकार और विद्यादान देने में प्रसन्न चित्त पृथिवी के समान सब प्राणियों को पुरुषार्थ में धारण करते हैं वे सर्वदा सुखी होते हैं ॥ ५ ॥

प्रति प्र याहीन्द्र मीळ्हुषो नॄन्महः पार्थिवे सदने यतस्व ।
अध यदेषां पृथुबुध्नास एतास्तीर्थे नार्यः पौंस्यानि तस्थुः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) प्रयत्न करने वाले ! आप (यत्) जो (पृथुबुध्नासः) विस्तारयुक्त अन्तरिक्ष वाले जन (एताः) ये स्त्रीजन और (एषाम्) इनके (पौंस्यानि) बल (तीर्थे) जिससे समुद्ररूप जल समूहों को तरें उस नौका में (अर्यः) वैश्य के (न) समान (तस्थुः) स्थिर होते हैं उन (मीढुषः) सुखों से सींचने वाले (नॄन्) अग्रगामी मनुष्यों को (प्रति) (प्र, याहि) प्राप्त होओ (अध) इसके अनन्तर (महः) बड़े (पार्थिवे) पृथिवी में विदित (सदने) घर में (यतस्व) यत्न करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो पुरुष और जो स्त्री ब्रह्मचर्य से बलों को बढ़ाकर आप्त धर्म्मात्मा शास्त्रवक्ता सज्जनों की सेवा करते हैं वे पुरुष विद्वान् और वे स्त्रियां विदुषी होती हैं ॥६॥

प्रति घोराणामेतानामयासां मरुतां शृण्व आयतामुपब्दिः ।
ये मर्त्यं पृतनायन्तमूमैर्ऋणावानं न पतयन्त सर्गैः ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (घोरानाम्) मारने वाली (एतानाम्) इन पूर्वोक्त (अयासाम्) प्राप्त हुए वा (आयताम्) (मरुताम्) आते हुए पवन वत् शीघ्रकारी मनुष्य स्त्री जनों की जो (उपब्दिः) वाणी है उसको (प्रति, शृण्वे) वार वार सुनता हूँ और (ये) जो (पृतनायन्तम्) अपने को सेना की इच्छा करते हुए (मर्त्यम्) मनुष्य को (ऋणावानम्) ऋणयुक्त को जैसे (न) वैसे (ऊमैः) रक्षाणादि (सर्गैः) संसर्गों से युक्त विषयों के साथ (पतयन्त) स्वामी के समान मानें उसका सेवन करता हूं वैसे तुम भी आचरण करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो दुष्ट पुरुषों और स्त्रियों के कठोर शब्दों को सुनकर नहीं सोच करते हैं वे शूरवीर होते हैं ॥ ७ ॥

त्वं मानेभ्य इन्द्र विश्वजन्या रदा मरुद्भिः शुरुधो गोअग्राः ।
स्तवानेभिः स्तवसे देव देवैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (देव) विद्वान् (इन्द्र) सभापति ! जैसे हम लोग (मानेभ्यः) सत्कारों से (स्तवसे) स्तुति के लिये (स्तवानेभिः) समस्त विद्याओं की स्तुति प्रशंसा करने वाले (मरुद्भिः) पवनों की विद्या जानने वाले (देवैः) विद्वानों से (विश्वजन्या) विश्व को उत्पन्न करने और (शुरुधः) निज हिंसक किरणों के धारण करने वाले (गो, अग्राः) जिनके सूर्य किरण आगे विद्यमान उन जल और (इषम्) अन्न (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) जीवनस्वरूप को (विद्याम) जानें वैसे इन जल और अन्नादि को (त्वम्) आप (रद) प्रत्यक्ष जानो अर्थात् उनका नाम धामरूप सब प्रकार जानो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि विद्वानों के सत्कार से विद्याओं को अध्ययन कर पदार्थविद्या के विज्ञान को प्राप्त होवें ॥ ८ ॥

इस सूक्त में विद्वान् आदि के गुणों का वर्णन होने से इस के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह एकसौ उनहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अगस्त्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ स्वराडनुष्टुप् । २ अनुष्टुप् । ३ विराडनुष्टुप् । ४ निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः । ५ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

न नूनमस्ति नो श्वः कस्तद्वेद यदद्भुतम् ।
अन्यस्य चित्तमभि संञ्चरेण्यमुताधीतं वि नश्यति ॥ १ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (अन्यस्य) औरों को (सञ्चरेण्यम्) अच्छे प्रकार जानने योग्य (चित्तम्) अन्तःकरण की स्मरणात्मिका वृत्ति (उत) और (आधीतम्) सब ओर से धारण किया हुआ विषय (न) न (अभि- वि,- नश्यति) नहीं विनाश को प्राप्त होता न आज होकर (नूनम्) निश्चित रहता (अस्ति) है और (नो) न (श्वः) अगले दिन निश्चित रहता है (तत्) उस

(अद्भुतम्) आश्चर्य स्वरूप के समान वर्त्तमान को (कः) कौन (वेद) जानता है॥ १॥

भावार्थ—जो जीवरूप होकर उत्पन्न नहीं होता और न उत्पन्न होकर विनाश को प्राप्त होता है नित्य आश्चर्य गुण कर्म स्वभाव वाला अनादि चेतन है उसका जानने वाला भी आश्चर्यस्वरूप होता है॥ १॥

किं नं इन्द्र जिघांससि भ्रातंरो मरुतस्तवं ।

तेभिः कल्पस्व साधुया मा नंः समरंणे वधीः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सभापति विद्वान्! जो हम (मरुतः) मनुष्य लोग (तव) आप के (भ्रातरः) भाई हैं उन (नः) हम लोगों को (किम्) क्या (जिघांससि) मारने की इच्छा करते हो? (तेभिः) उन हम लोगों के साथ (साधुया) उत्तम काम से (कल्पस्व) समर्थ होओ और (समरणे) संग्राम में (नः) हम लोगों को (मा, वधीः) मत मारिये॥ २॥

भावार्थ—जो कोई बन्धुओं को पीड़ा देना चाहैं वे सदा पीड़ित होते हैं और जो बन्धुओं की रक्षा किया चाहते हैं वे समर्थ होते हैं अर्थात् सब काम उनके प्रबलता से बनते हैं जो सब का उपकार करने वाले हैं उन को कुछ भी काम अप्रिय नहीं प्राप्त होता॥ २॥

किन्नो भ्रातरगस्त्य सखा सन्नति मन्यसे ।

विद्मा हि ते यथा मनोऽस्मभ्यमिन्न दित्ससि ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (अगस्त्य) विज्ञान में उत्तमता रखने वाले (भ्रातः) भाई विद्वान् (सखा) मित्र (सन्) होते हुए आप (नः) हम लोगों को (किम्) क्या (अति, मन्यसे) अतिमान करते हो? अर्थात् हमारे मान को छोड़कर वर्त्तते हो? (यथा) जैसे (ते) तुम्हारा अपना (मनः) अन्तःकरण (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (हि) ही (न) न (दित्ससि) देना चाहते हो अर्थात् हमारे लिये अपने अन्तःकरण को उत्साहित क्या नहीं किया चाहते हो? वैसे (इत्) ही तुमको हम लोग (विद्म) जानें॥ ३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो जिन के मित्र हों वे मन वचन और कर्म से उन की प्रसन्नता का काम करें और जितना विद्या ज्ञान अपने को हो उतना मित्र के समर्पण करें॥ ३॥

अरं कृण्वन्तु वेदिं समग्निमिन्धतां पुरः ।

तत्रामृतंस्य चेतंनं यज्ञं ते तनवावहै ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मित्र ! जैसे विद्वान् जन जहां (पुरः) प्रथम (वेदिम्) जिस से प्राणी विषयों को जानता है उस प्रज्ञा और (अग्निम्) अग्नि के समान देदीप्यमान विज्ञान को (समिन्धताम्) प्रदीप्त करें वा (अरम्, कृण्वन्तु) सुशोभित करें (तत्र) वहां (अमृतस्य) विनाश रहित जीवमात्र (ते) आप के (चेतनम्) चेतन अर्थात् जिस से अच्छे प्रकार यह जीव जानता और (यज्ञम्) विषयों को प्राप्त होता उस को वैसे हम पढ़ाने और उपदेश करने वाले (तनवावहै) विस्तारें ॥ ४ ॥

भावार्थ—जैसे ऋतु ऋतु में यज्ञ कराने वाले और यजमान अग्नि में सुगन्धादि द्रव्य का हवन कर उससे वायु और जल को अच्छे प्रकार शोध कर जगत् को सुख से युक्त करते हैं वैसे अध्यापक और उपदेशक औरों के अन्तःकरणों में विद्या और उत्तम शिक्षा संस्थापन कर सब के सुख का विस्तार करें ॥ ४ ॥

त्वमीशिषे वसुपते वसूनां त्वं मित्राणां मित्रपते धेष्ठः ।
इन्द्र त्वं मरुद्भिः सं वदस्वाध प्राशान ऋतुथा हवींषि ॥ ५ ॥

पदार्थ—(वसूनाम्) किया है चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य जिन्होंने और जो पृथिव्यादिकों के समान सहनशील हैं उन (वसुपते) हे धनों के स्वामी ! (त्वम्) तुम (ईशिषे) ऐश्वर्यवान् हो वा ऐश्वर्य्य बढ़ाते हो। हे (मित्राणाम्) मित्रों में (मित्रपते) मित्रों के पालने वाले श्रेष्ठ मित्र ! (त्वम्) तुम (धेष्ठः) अतीव धारण करने वाले होते हो। हे (इन्द्र) परमैश्वर्य्य के देने वाले ! (त्वम्) तुम (मरुद्भिः) पवनों के समान वर्त्तमान विद्वानों के साथ (संवदस्व) संवाद करो। (अध) इस के अनन्तर (ऋतुथा) ऋतु ऋतु के अनुकूल (हवींषि) खाने योग्य अन्नों को (प्र, अशान) अच्छे प्रकार खाओ ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो धनवान् सब के मित्र बहुतों के साथ संस्कार किये हुए अन्नों को खाते और विद्या से परिपूर्ण विद्वानों के साथ संवाद करते हैं वे समर्थ और ऐश्वर्यवान् होते हैं ॥ ५ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ सत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

———

अगस्त्य ऋषिः । मरुतो देवताः । १ । ५ निचृत् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ४ । ६ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

प्रति व एना नमसाहमेमि सूक्तेन भिक्षे सुमतिं तुराणाम् ।
रराणता मरुतो वेद्याभिर्नि हेळो धत्त वि मुचध्वमश्वान् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (मरुतः) विद्वानो ! (अहम्) मैं (एना) इस (नमसा) नमस्कार सत्कार वा अन्न से (वः) तुम्हारे (प्रति, एमि) प्रति आता हूँ और (सूक्तेन) सुन्दर कहे हुए विषय से (तुराणाम्) शीघ्रकारी जनों की (सुमतिम्) उत्तम मति को (भिक्षे) मांगता हूँ। हे विद्वानो ! तुम (रराणता) रमण करते हुए मन से (वेद्याभिः) दूसरे को बताने योग्य क्रियाओं से (हेडः) अनादर को (नि, धत्त) धारण करो अर्थात् सत्कार असत्कार के विषयों को विचार के हर्ष शोक न करो। और (अश्वान्) अतीव उत्तम वेगवान् अपने घोड़ों को (वि, मुचध्वम्) छोड़ो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे शुद्ध अन्तः-करण से नाना प्रकार के विज्ञानों को प्राप्त होते हैं वे कहीं अनादर नहीं पाते ॥ १ ॥

एष वः स्तोमो मरुतो नमस्वान् हृदा तष्टो मनसा धायि देवाः ।
उपेमा यात मनसा जुषाणा यूयं हि ष्ठा नमस इद्वृधासः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (देवाः) कामना करते हुए (मरुतः) विद्वानो ! जिससे (एषः) यह (वः) तुम्हारा (नमस्वान्) सत्कारात्मक (हृदा) हृदयस्थ विचार से (तष्टः) विधान किया (स्तोमः) सत्कारात्मक स्तुति विषय (मनसा) मन से (धायि) धारण किया जाय (हि) उसी को (मनसा) मन से (जुषाणाः) सेवते हुए (यूयम्) तुम लोग (उप, आ, यात) समीप आओ और (नमसः) अन्नादि ऐश्वर्य की (इत्) ही (ईम्) सब ओर से (वृधासः) वृद्धि को प्राप्त वा उसको बढ़ाने वाले (स्थ) होओ ॥ २ ॥

भावार्थ—जो धार्मिक विद्वानों के शील को स्वीकार करते हैं वे प्रशं-सित होते हैं ॥ २ ॥

स्तुतासो मरुतो मृळयन्तूत स्तुतो मघवा शम्भविष्ठः ।
ऊर्ध्वा नः सन्तु कोम्या वनान्यहानि विश्वा मरुतो जिगीषा ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (मरुतः) बलवान् विद्वानो ! हम लोगों से (स्तुतासः) स्तुति

किये हुए आप (नः) हम को (मृळयन्तु) सुखी करो (उत) और (स्तुतः) प्रशंसा को प्राप्त होता हुआ (मघवा) सत्कार करने योग्य पुरुष (शम्भविष्ठः) अतीव सुख की भावना करने वाला हो। हे (मरुतः) शूरवीर जनो ! जैसे (नः) हमारे (विश्वा) समस्त (कोम्या) प्रशंसनीय (जिगीषा) जीतने और (वनानि) सेवने योग्य (अहानि) दिन (ऊर्ध्वा) उत्कृष्ट हैं वैसे तुम्हारे (सन्तु) हों ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जिन में जैसे गुण कर्म स्वभाव हों उनकी वैसी ही प्रशंसा करें और प्रशंसा योग्य वे ही हों जो औरों की सुखोन्नति के लिये प्रयत्न करें और वे ही सेवने योग्य हों जो पापाचरण को छोड़ धार्मिक हों वे प्रतिदिन विद्या और उत्तम शिक्षा की वृद्धि के अर्थ उद्योगी हों ॥ ३ ॥

अस्मादहं तविषादीषमाण इन्द्राद्भिया मरुतो रेजमानः।
युष्मभ्यं हव्या निशितान्यासन्तान्यारे चकृमा मृळता नः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (मरुतः) प्राण के समान सभासदो ! (अस्मात्) इस (तविषात्) अत्यन्त बलवान् से (ईषमाणः) ऐश्वर्य करता और (इन्द्रात्) परमैश्वर्यवान् सभा सेनापति से (भिया) सब के साथ (रेजमानः) कम्पता हुआ (अहम्) मैं यह निवेदन करता हूँ कि जो (युष्मभ्यम्) तुम्हारे लिये (हव्या) ग्रहण करने योग्य (निशितानि) शस्त्र अस्त्र तीव्र (आसन्) हैं (तानि) उनको हम लोग (आरे) समीप (चकृम) करें और उनसे (नः) हम लोगों को तुम जैसे (मृळत) सुखी करो वैसे हम भी तुम लोगों को सुखी करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—जब किसी राजपुरुष से अन्यायपूर्वक पीड़ा को प्राप्त होता हुआ प्रजा जन सभा के बीच अपने दुःख का निवेदन करे तब उसके मन के कांटों को उपाड़ देवें अर्थात् उसके मन की शुद्ध भावना करा देवें जिससे राजपुरुष न्याय में वर्त्तें और प्रजा जन भी प्रसन्न हों जितने स्त्री पुरुष हों वे सब शस्त्र का अभ्यास करें ॥ ४ ॥

येन मानासश्चितयन्त उस्रा व्युष्टिषु शवसा शश्वतीनाम्।
स नो मरुद्भिर्वृषभ श्रवो धा उग्र उग्रेभिः स्थविरः सहोदाः ॥ ५ ॥

पदार्थ—(येन) जिस (शवसा) बल से वर्त्तमान (शश्वतीनाम्) सनातन (व्युष्टिषु) नाना प्रकार की वस्तियों में (उस्राः) मूल राज्य में परम्परा से निवास करते हुए (मानासः) विचारवान् विद्वान् जन प्रजाजनों को (चितयन्ते) चैतन्य करते हैं। हे (वृषभ) सुखों की वर्षा करने वाले सभापति ! (उग्रेभिः) तेजस्वी (मरुद्भिः) विद्वानों के साथ (उग्रः) तीव्रस्वभाव (स्थविरः) कृतज्ञ वृद्ध

(सहोदाः) बल के देने वाले होते हुए आप (श्रवः) अन्न आदि पदार्थ को (धाः) धारण कीजिये और (सः)सो आप (नः) हमारे राजा हूजिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—जहां सभा में मूल जड़ के अर्थात् निष्कलङ्क कुल परम्परा से उत्पन्न हुए और शास्त्रवेत्ता धार्मिक सभासद् सत्य न्याय करें और विद्या तथा अवस्था से वृद्ध सभापति भी हो वहां अन्याय का प्रवेश नहीं होता है ॥ ५ ॥

त्वं पाहीन्द्र सहीयसो नॄन्भवा मरुद्भिरवयातहेळाः ।
सुप्रकेतेभिः सासहिर्दधानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सभापति ! (त्वम्) आप (सुप्रकेतेभिः) सुन्दर उत्तम ज्ञानवान् (मरुद्भिः) प्राण के समान रक्षा करने वाले विद्वानों के साथ (सहीयसः) अतीव बलयुक्त सहने वाले (नॄन्) मनुष्यों की (पाहि) रक्षा कीजिये और (अवयातहेळाः) दूर हुआ अनादर अपकीर्तिभाव जिससे ऐसे (भव) हूजिये जैसे (इषम्) विद्या योग से उत्पन्न हुए बोध (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) जीवात्मा को (दधानः) धारण करते हुए (सासहिः) अतीव सहनशील होते हो वैसे हुए इसको हम लोग (विद्याम) जानें ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य क्रोधादि दोषरहित विद्या विज्ञान धर्म्मयुक्त क्षमावान् जन सज्जनों के साथ जो दण्ड देने योग्य नहीं हैं उनकी रक्षा करते और दण्ड देने योग्यों को दण्ड देते हैं, वे राजकर्मचारी होने के योग्य हैं ॥६॥

इस सूक्त में विद्वानों के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह एकसौ इकहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अगस्त्य ऋषिः । मरुतो देवताः । १ विराड् गायत्री । २ । ३ गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

चित्रो वोऽस्तु यामश्चित्र ऊती सुदानवः ।
मरुतो अहिभानवः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (ऊती) रक्षा आदि के साथ वर्त्तमान (अहिभानवः) मेघ का प्रकाश करने वाले (सुदानवः) सुन्दर दानशील और (मरुतः) प्राण के समान वर्त्तमान जनो ! जैसे पवनों का (चित्रः) अद्भुत (यामः) गमन करना वा (चित्रः) चित्र विचित्र स्वभाव है वैसे (वः) तुम्हारा (अस्तु) हो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे जीवन का अच्छे प्रकार देना, वर्षा करना आदि पवनों के अद्भुत कर्म्म हैं वैसे तुम्हारे भी हों ॥ १ ॥

आरे सा वः सुदानवो मरुत ऋञ्जती शरुः ।
आरे अश्मा यमस्यथ ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (सुदानवः) प्रशंसित दान करने वाले (मरुतः) वायुवत् बलवान् विद्वानो ! (वः) तुम्हारी जो (ऋञ्जती) पचाती जलाती (शरुः) दुष्टों को विनाशती हुई द्विधारा तलवार है (सा) वह हम से (आरे) दूर रहे और (यम्) जिस विशेष शस्त्र को (अश्मा) मेघ के समान तुम (अस्यथ) छोड़ते हो वह हमारे (आरे) समीप रहे ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य मेघ के समान सुख देने वाले दुष्टों को छोड़ने वाले श्रेष्ठों के समीप और दुष्टों से दूर वसते हैं वे सङ्ग करने योग्य हैं ॥ २ ॥

तृणस्कन्दस्य नु विशः परि वृङ्क्त सुदानवः ।
ऊर्ध्वान्नः कर्त्त जीवसे ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (सुदानवः) उत्तम दान देने वाले ! तुम (तृणस्कन्दस्य) जो तृणों को प्राप्त अर्थात् तृणमात्र का लोभ करता वा दूसरों को उस लोभ पर पहुँचाता उसकी (विशः) प्रजा को (नु) शीघ्र (परि, वृङ्क्त) सब ओर से छोड़ो और (जीवसे) जीवने के अर्थ (नः) हम लोगों को (ऊर्ध्वान्) उत्कृष्ट (कर्त्त) करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जैसे वायु समस्त प्रजा की रक्षा करता वैसे सभापति वर्त्ते। जैसे प्रजाजनों की पीड़ा नष्ट हो, मनुष्य उत्कृष्ट अति उत्तम बहुत जीवने वाले उत्पन्न हों वैसा कार्य्यारम्भ सब को करना चाहिये ॥ ३ ॥

इस सूक्त में पवन के तुल्य विद्वानों के गुणों की प्रशंसा होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह एकसौ बहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अगस्त्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ५ । ११ पङ्क्तिः । ६ । ६ । १० । १२ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । ८ विराट् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ७ । १३ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

गायत्साम नभन्यं१ यथा वेरर्चाम तद्वावृधानं स्वर्वत् ।
गावो धेनवो बर्हिष्यदब्धा आ यत्सद्मानं दिव्यं विवासान् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (यत्) जो (स्वर्वत्) सुख सम्बन्धी वा सुखोत्पादक (वावृधानम्) अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त (नभन्यम्) आकाश के बीच में साधु अर्थात् गगनमण्डल में व्याप्त (साम) साम गान को विद्वान् आप (यथा) जैसे (वेः) स्वीकार करें वैसे (गायत) गावें और (बर्हिषि) अन्तरिक्ष में जो (गावः) किरणें उनके समान जो (अदब्धाः) न हिंसा करने योग्य (धेनवः) दूध देने वाली गौयें (दिव्यम्) मनोहर (सद्मानम्) जिसमें स्थित होते हैं उस घर को (आ, विवासान्) अच्छे प्रकार सेवन करें (तत्) उस सामगान और उन गौओं को हम लोग (अर्चाम) सराहें उनका सत्कार करें ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे किरणें अन्तरिक्ष में विथुर कर सब का प्रकाश करती हैं वैसे हम लोगों को विद्या से सब के अन्तःकरण प्रकाशित करने चाहियें, जैसे निराधार पक्षी आकाश में जाते आते हैं वैसे विद्वानों और लोकलोकान्तरों की चाल है ॥१॥

अर्चद्वृषा वृषभिः स्वेदुहव्यैर्मृगो नाश्नो अति यज्जुगुर्यात् ।
प्र मन्दयुर्मनां गूर्त्त होता भरते मर्यो मिथुना यजत्रः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (वृषा) सत्योपदेशरूपी शब्दों की वर्षा करने वाला (अश्नः) शुभ गुणों में व्याप्त (मन्दयुः) अपनी प्रशंसा चाहता हुआ (होता) दानशील (यजत्रः) सङ्ग करने वाला (मर्यः) मरणधर्म्मा मनुष्य (स्वेदुहव्यैः) आप ही प्रकाशित किये देने लेने के व्यवहारों और (वृषभिः) उपदेश करने वालों के साथ (यत्) जो (मृगः) हरिण के (न) समान (अति, जुगुर्यात्) अतीव उद्यम करे अति यत्न करे और (भरते) धारण करता (मनाम्) विचारशीलों का सङ्ग (अर्चत्) सराहे प्रशंसित करे वा जैसे (मिथुना) स्त्री पुरुष दो दो मिल के सङ्ग धर्म को करें वैसे तुम (प्र, गूर्त्त) उत्तम उद्यम करो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे स्वयंवर किये हुए स्त्री पुरुष परस्पर उद्योग कर हरिण के समान वेग से घर के कामों को सिद्ध कर विद्वानों के सङ्ग से सत्य का स्वीकार कर

असत्य को छोड़कर परमेश्वर और विद्वानों का सत्कार करते हैं वैसे समस्त मनुष्य सङ्ग करने वाले हों ॥ २ ॥

नक्षद्धोता परि सद्म मिता यन्भरद्गर्भमा शरदः पृथिव्याः ।
क्रन्ददश्वो नयमानो रुवद्गौरन्तर्दूतो न रोदसी चरद्वाक् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (होता) ग्रहण करने वाला (मिता) प्रमाण युक्त (सद्म) घरों को (नक्षत्) प्राप्त होवे वा (शरदः) शरद् ऋतु सम्बन्धी (पृथिव्याः) पृथिवी के (गर्भम्) गर्भ को (आ, भरत्) पूरा करता वा (नयमानः) पदार्थों को पहुँचाता हुआ (अश्वः) घोड़े के समान (क्रन्दत्) शब्द करता वा (गौः) वृषभ के समान (रुवत्) शब्द करता वा (दूतः) समाचार पहुँचाने वाले दूत के (न) समान वा (वाग्) वाणी के समान (रोदसी) आकाश और पृथिवी के (अन्तः) बीच (चरत्) विचरता वैसे आप लोग (परि, यन्) पर्यटन करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे घोड़ा और गौयें परिमित मार्ग को जाती हैं वैसे अग्नि नियत किये हुए देश-स्थान को जाता है, जैसे धार्मिक जन अपने पदार्थ लेते हैं वैसे ऋतु अपने चिह्नों को प्राप्त होते हैं वा जैसे द्यावापृथिवी एक साथ वर्त्तमान हैं वैसे विवाह किये हुए स्त्री पुरुष वर्त्तें ॥ ३ ॥

ता कर्माषतरास्मै प्र च्यौत्नानि देवयन्तो भरन्ते ।
जुजोषदिन्द्रो दस्मवर्चा नासत्येव सुग्म्यो रथेष्ठाः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (देवयन्तः) अपने को विद्वानों की इच्छा करने वाले सज्जन (अस्मै) जिन (अषतरा) अतीव पदार्थों और (च्यौत्नानि) इस आगे कहने योग्य ऐश्वर्य चाहने वाले सभापति आदि के लिए स्तुतियों को (प्र भरन्ते) उत्तमता से धारण करते हैं (ता) उनको (दस्मवर्चाः) शत्रुओं में जिस का पराक्रम वर्त्त रहा है वह (सुग्म्यः) सुख साधन पदार्थों में उत्तम (रथेष्ठाः) रथ में बैठने वाला (इन्द्रः) ऐश्वर्य चाहता हुआ (नासत्येव) सूर्य और चन्द्रमा के समान (जुजोषत्) सेवे, वैसे हम लोग (कर्म) करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जो सूर्य चन्द्रमा के समान शुभ गुण कर्म स्वभावों से प्रकाशित आप्त शास्त्रज्ञ धर्मात्माओं के तुल्य आचरण करते हैं वे क्या क्या सुख नहीं पाते हैं ॥ ४ ॥

तमुँष्टहीन्द्रं यो ह सत्वा यः शूरौ मघवा यो रथेष्ठाः ।
प्रतीचश्चिद्योधीयान्वृषण्वान्ववव्रुषश्चित्तमसो विहन्ता ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! आप (यः) जो (सत्वा) बलवान् (यः, चित्) और जो (शूरः) शूर (मघवा) परमपूजित धनयुक्त (यः चित्) और जो (रथेष्ठाः) रथ में स्थित होने वाला (योधीयान्) अत्यन्त युद्धशील (वृषण्वान्) बलवान् (प्रतीचः) प्रति पदार्थ प्राप्त होने वाले (ववव्रुषः) रूपयुक्त (तमसः) अन्धकार का (विहन्ता) विनाश करने वाले सूर्य के समान हैं (तम्, उ, ह) उसी (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवान् सेनापति की (स्तुहि) प्रशंसा करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि उसी की स्तुति करें जो प्रशंसित कर्म करे और उसी की निन्दा करें जो निन्दित कर्मों का आचरण करे, वही स्तुति है जो सत्य कहना और वही निन्दा है जो किसी के विषय में झूठ बकना है ॥ ५ ॥

प्र यदित्था महिना नृभ्यो अस्त्यरं रोदसी कक्ष्ये३ नास्मै ।
सं विव्य इन्द्रो वृजनं न भूमा भर्ति स्वधावाँ ओपशमिव द्याम् ॥६॥

पदार्थ-(यत्) जो (इन्द्रः) सूर्य (वृजनम्) बल के (न) समान (भूम) बहुत पदार्थों को (सम्, विव्ये) अच्छे प्रकार स्वीकार करता और (स्वधावान्) अन्नादि पदार्थ वाला यह सूर्यमण्डल (ओपशमिव) अत्यन्त एक में मिले हुए पदार्थ के समान (द्याम्) प्रकाश को (प्र, भर्त्ति) धारण करता (अस्मै) इसके लिये (कक्ष्ये) अपनी अपनी कक्षाओं में प्रसिद्ध हुए (रोदसी) द्युलोक और पृथिवी लोक (न) नहीं (अरम्) परिपूर्ण होते वह (इत्था) इस प्रकार (महिना) अपनी महिमा से (नृभ्यः) अग्रगामी मनुष्यों के लिये परिपूर्ण (अरमस्ति) समर्थ है ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे प्रकाश रहित पृथिवी आदि पदार्थ सब का आच्छादन करते हैं वैसे सूर्य अपने प्रकाश से सब का आच्छादन करता है, जैसे भूमिज पदार्थों को पृथिवी धारण करती है ऐसे ही सूर्य भूगोलों को धारण करता है ॥ ६ ॥

समत्सु त्वा शूर सतामुराणं प्रपथिन्तमं परितंसयध्यै ।
सजोषस इन्द्रं मदे क्षोणीः सूरिं चिद्ये अनुमदन्ति वाजैः ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (शूर) दुष्टों की हिंसा करने वाले सेनाधीश ! (ये) जो

(सजोषसः) समान प्रीति सेवने वाले (समत्सु) सङ्ग्रामों में (परितंसयध्यै) सब ओर से भूषित करने के लिये (सताम्) सत्पुरुषों में (उराणम्) अधिक बल करते हुए (प्रपथिन्तमम्) आवश्यकता से उत्तम पथगामी (इन्द्रम्) सेनापति (त्वा) तुम को (मदे) हर्ष आनन्द के लिये (क्षोणीः) भूमियों को (सूरिम्) विद्वान् के (चित्) समान (वाजैः) वेगादि गुणयुक्त वीर वा अश्वादिकों के साथ (अनु, मदन्ति) अनुमोद आनन्द देते हैं, उनको तू भी आनन्दित कर ॥ ७ ॥

भावार्थ—वे ही निर्वैर हैं जो अपने समान और प्राणियों को जानते हैं, उन्हीं का राज्य बढ़ता है जो सत्पुरुषों का ही प्रतिदिन सङ्ग करते हैं ॥७॥

एवा हि ते शं सवना समुद्र आपो यत्त आसु मदन्ति देवीः ।
विश्वा ते अनु जोष्या भूद्गौः सूरीँश्चिद्यदि धिषा वेषि जनान् ॥८॥

पदार्थ—हे सभापति ! (समुद्रे) अन्तरिक्ष में (आपः) जलों के समान (ते) आप के (हि) ही (सवना) ऐश्वर्य (शम्) सुख (एव) ही करते हैं वा (ते) आप की (देवीः) दिव्य गुण सम्पन्न विदुषी (यत्) जब (आसु) इन जलों में (मदन्ति) हर्षित होती हैं और आप (यदि) जो (धिषा) उत्तम बुद्धि से (सूरीन्) विद्वान् (चित्) मात्र (जनान्) जनों को (वेषि) चाहते हो तब (ते) आपकी (विश्वा) समस्त (गौः) विद्या सुशिक्षायुक्त वाणी (अनु,-जोष्या) अनुकूलता से सेवने योग्य (भूत्) होती है ॥ ८ ॥

भावार्थ— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य आकाश में मेघ की उन्नति कर सब को सुखी करता है वैसे सज्जन पुरुष का बढ़ता हुआ ऐश्वर्य सब को आनन्दित करता है, जैसे पुरुष विद्वान् हों वैसे स्त्री भी हों ॥ ८ ॥

असाम यथा सुषखाय एन स्वभिष्टयो नरां न शंसैः ।
असद्यथा न इन्द्रो वन्दनेष्ठास्तुरो न कर्म नयमान उक्था ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (एन) पुरुषार्थ से सुखों को प्राप्त होते हुए विद्वान् ! (यथा) जैसे (स्वभिष्टयः) सुन्दर अभिप्राय और (सुसखायः) उत्तम मित्र जिनके वे हम लोग (नराम्) अग्रगामी प्रशंसित पुरुषों की (शंसैः) प्रशंसाओं के (न) समान उत्तम गुणों से आप को प्राप्त (असाम) होवें वा (यथा) जैसे (वन्दनेष्ठाः) स्तुति में स्थिर होता हुआ (तुरः) शीघ्रकारी (इन्द्रः) परमैश्वर्य युक्त मित्र (कर्म) धर्म युक्त कर्म के (न) समान (नः) हमारे (उक्था) प्रशंसायुक्त विद्वानों को (नयमानः) प्राप्त करता वा कराता हुआ (असत्) हो वैसा आचरण हम लोग करें ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो सब प्राणियों में मित्रभाव से वर्त्तमान हैं वे सब को अभिवादन करने योग्य हों, जो सब को उत्तम बोध को प्राप्त करते हैं वे अतीव उत्तम विद्या वाले होते हैं॥ ९॥

विष्पर्धसो नरां न शंसैरस्माकासदिन्द्रो वज्रहस्तः।

मित्रायुवो न पूर्पतिं सुशिष्टौ मध्यायुव उप शिक्षन्ति यज्ञैः॥ १०॥

पदार्थ—(वज्रहस्तः) शस्त्र और अस्त्रों की शिक्षा जिस के हाथ में है वह (इन्द्रः) सभापति (अस्माक) हमारा (असत्) हो अर्थात् हमारा रक्षक हो ऐसी (नराम्) धर्म की प्राप्ति कराने वाले पुरुषों की (शंसैः) प्रशंसायुक्त विवादों के (न) समान वादानुवादों से (विष्पर्द्धसः) परस्पर विशेषता से स्पर्द्धा ईर्ष्या करते और (मित्रायुवः) अपने को मित्र चाहते हुए जनों के (न) समान (मध्यायुवः) मध्यस्थ चाहते हुए विद्वान् जन (सुशिष्टौ) उत्तम शिक्षा के निमित्त (यज्ञैः) पढ़ना पढ़ाना उपदेश करना और संग मेल मिलाप करना इत्यादि कर्मों से (पूर्पतिम्) पुरी नगरियों के पालने वाले सभापति राजा को (उप, शिक्षन्ति) उपशिक्षा देते हैं अर्थात् उसके समीप जाकर उसे अच्छे बुरे का भेद सिखाते हैं॥ १०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे सत्याचरण में स्पर्द्धा करने वाले सब के मित्र पक्षपात रहित सत्य का आचरण करते हुए जन सत्य का उपदेश करते हैं वैसे ही सभापति राजा प्रजाजनों में वर्त्तें॥ १०॥

यज्ञो हि ष्मेन्द्रं कश्चिदृन्धञ्जुहुराणश्चिन्मनसा परियन्।

तीर्थे नाच्छा तातृषाणमोको दीर्घो न सिध्रमा कृणोत्यध्वा॥११॥

पदार्थ—(कश्चित्) कोई (यज्ञः) राजधर्म (हि, ष्म) निश्चय से ही (इन्द्रम्) सभापति को (ऋन्धन्) उन्नति देता वा (मनसा) विचार के साथ (जुहुराणः) दुष्टजनों में कुटिल क्रिया अर्थात् कुटिलता से वर्त्ता (चित्) सो (परियन्) सब ओर से प्राप्त होता हुआ (तीर्थे) जलाशय के (न) समान स्थान में (अच्छ) अच्छे (तातृषाणम्) निरन्तर पियासे को (दीर्घः) बड़ा (ओकः) स्थान जैसे मिले (न) वैसे (अध्वा) सन्मार्गरूप हुआ (सिध्रम्) शीघ्रता को (आ, कृणोति) अच्छे प्रकार करता है॥ ११॥

भावार्थ—पूर्व मन्त्र में अति शीघ्रता से रक्षा चाहते हुए विद्वान् बुद्धिमान् जन शिक्षा करना रूप आदि यज्ञों से अपनी पुरी नगरी के पालने वाले राजा को समीप जाकर शिक्षा देते हैं, यह जो विषय कहा था वहां यज्ञ से शीघ्रता का उपदेश करते हुए (यज्ञो हि०) इस मन्त्र का उपदेश करते

हैं, इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं—जो सुख के बढ़ाने की इच्छा करें तो सब धर्म का आचरण करें और जो परोपकार करने की इच्छा करें तो सत्य का उपदेश करें ॥ ११ ॥

मो षू णं इन्द्रात्रं पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः ।
महश्चिद्यस्यं मीढुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः ॥ १२ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य की प्राप्ति कराने वाले विद्वान् ! आप (अत्र) यहां (देवैः) विद्वान् वीरों के साथ (नः) हम लोगों के (पृत्सु) संग्रामों में (हि) जिस कारण (सु, अस्ति) अच्छे प्रकार सहायकारी हैं (स्म) ही और हे (शुष्मिन्) अत्यन्त बलवान् ! (अवयाः) जो विरुद्ध कर्म को नहीं प्राप्त होता ऐसे होते हुए आप (यस्य) जिन (मीढुषः) सींचने वाले (हविष्मतः) बहुत विद्यादान सम्बन्धी (महः) बड़े (ते) आप (मरुतः) विद्वान् की (यव्या) नदी के समान (गीः) सत्य गुणों से युक्त वाणी (वन्दते) स्तुति करती अर्थात् सब पदार्थों की प्रशंसा करती (चित्) सी वर्त्तमान हैं वे आप हम लोगों को (मो) मत मारिये ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो बल को प्राप्त हो वह सज्जनों में शत्रु के समान न वर्त्ते, सदा आप्त शास्त्रज्ञ धर्मात्मा जनों के उपदेश को स्वीकार करे, इतर अधर्मात्मा के उपदेश को न स्वीकार करे ॥ १२ ॥

एष स्तोम इन्द्र तुभ्यमस्मे एतेनं गातुं हरिवो विदो नः ।
आ नो ववृत्याः सुवितायं देव विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१३॥

पदार्थ—हे (देव) सुख देने वाले (इन्द्र) प्रशंसायुक्त ऐश्वर्यवान् ! जो (एषः) यह (अस्मे) हमारी (स्तोमः) स्तुति पूर्वक चाहना है वह (तुभ्यम्) तुम्हारे लिये हो । हे (हरिवः) प्रशंसित घोड़ों वाले ! आप (एतेन) इस न्याय से (गातुम्) भूमि और (नः) हम लोगों को (विदः) प्राप्त हूजिये (नः) हमारे (सुविताय) ऐश्वर्य के लिये (आ, ववृत्याः) आ वर्त्तमान हूजिये जिस से हम लोग (इषम्) इच्छासिद्धि (वृजनम्) सन्मार्ग और (जीरदानुम्) दीर्घ जीवन को (विद्याम) प्राप्त होवें ॥ १३ ॥

भावार्थ—किसी भद्रजन को अपने मुख से अपनी प्रशंसा नहीं करनी चाहिये तथा और से कही हुई अपनी प्रशंसा सुनकर न आनन्दित होना चाहिये अर्थात् न हंसना चाहिये, जैसे अपने से अपनी उन्नति चाही जावे वैसे औरों की उन्नति सदैव चाहनी ॥ १३ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के विषय का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह एकसौ तिहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अगस्त्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ निचृत् पङ्क्तिः । २ । ३ । ६ । ८ । १० भुरिक् पङ्क्तिः । ४ स्वराट् पङ्क्तिः । ५ । ७ । ९ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षा नॄन्पाह्यसुर त्वमस्मान् ।
त्वं सत्पतिर्मघवा नस्तरुत्रस्त्वं सत्यो वसवानः सहोदाः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त ! (त्वम्) आप (सत्पतिः) वेद वा सज्जनों को पालने वाले (मघवा) परमप्रशंसित धनवान् (नः) हम लोगों को (तरुत्रः) दुःखरूपी समुद्र से पार उतारने वाले हैं (त्वम्) आप (सत्यः) सज्जनों में उत्तम (वसवानः) धन प्राप्ति कराने और (सहोदाः) बल के देने वाले हैं तथा (त्वम्) आप (राजा) न्याय और विनय से प्रकाशमान राजा हैं इससे हे (असुर) मेघ के समान (त्वम्) आप (अस्मान्) हम (नॄन्) मनुष्यों को (पाहि) पालो (ये, च) और जो (देवाः) श्रेष्ठ गुणों वाले धर्मात्मा विद्वान् हैं उनकी (रक्ष) रक्षा करो ॥ १ ॥

भावार्थ—जो राजा होना चाहे वह धार्मिक सत्पुरुष विद्वान् मन्त्री जनों को अच्छे प्रकार रख के उन से प्रजाजनों की पालना करावे, जो ही सत्याचारी बलवान् सज्जनों का सङ्ग करने वाला होता है वह राज्य को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

दनो विश इन्द्र मृध्रवाचः सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्त् ।
ऋणोरपो अनवद्यार्णा यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) विद्युत् अग्नि के समान वर्त्तमान ! (यत्) जो आप (सप्त) सात (शारदीः) शरद् ऋतु सम्बन्धिनी (पुरः) शत्रुओं की नगरी और (शर्म) शत्रु घर को (दर्त्) विदारने वाले होते हैं (मृध्रवाचः) अति बढ़ी हुई जिनकी वाणी उन (विशः) प्रजाओं को (दनः) शिक्षा देते राज्य के अनुकूल शासन देते हैं सो हे (अनवद्य) प्रशंसा को प्राप्त राजन् ! जैसे सूर्यमण्डल (पुरुकुत्साय) बहुत वज्ररूपी अपनी किरणें जिसमें वर्त्तमान उस (यूने) तरुण प्रबलतर वा सुख दुःख से मिलते न मिलते हुए संसार के लिये (वृत्रम्) मेघ को प्राप्त करा के

(अर्णाः) नदी सम्बन्धी (अपः) जलों को वर्षाता वैसे आप (ऋणोः) प्राप्त होओ (रन्धीः) अच्छे प्रकार कार्य सिद्धि करने वाले होओ ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । राजा को चाहिये कि शत्रुओं के पुर नगर शरद् आदि ऋतुओं में सुख देने वाले स्थान आदि वस्तु नष्ट कर शत्रुजन निवारणे चाहियें और सूर्य मेघजल से जैसे जगत् की रक्षा करता है वैसे राजा को प्रजा की रक्षा करनी चाहिये ॥ २ ॥

अजा वृतं इन्द्र शूरपत्नीर्द्यां च येभिः पुरुहूत नूनम् ।
रक्षो अग्निमशुषं तूर्वयाणं सिंहो न दमे अपांसि वस्तोः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (पुरुहूत) बहुतों ने सत्कार किये हुए (इन्द्र) शत्रुदल के नाशक (वृतः) राज्याधिकार में स्वीकार किये हुए राजन् ! आप (येभिः) जिन के साथ (शूरपत्नीः) शूरों की पत्नी और (द्यांच) प्रकाश को (नूनम्) निश्चित (अज) जानो उनके साथ (सिंहः) सिंह के (न) समान (दमे) घर में (अपांसि) कर्मों के (वस्तोः) रोकने को (तूर्वयाणम्) शीघ्र गमन कराने वाले यान जिससे सिद्ध होते उस (अशुषम्) शोष रहित जिसमें अर्थात् लोहा तांबा पीतल आदि धातु पिघिला करें गीले हुआ करें उस (अग्निम्) अग्नि को (रक्षो) अवश्य रक्खो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सिंह अपने भिटे में बल से सब को रोकता ले जाता है वैसे राजा निज बल से अपने घर में लाभ-प्राप्ति के लिये प्रयत्न करे, जिस अच्छे प्रकार प्रयोग किये अग्नि से यान शीघ्र जाते हैं उस अग्नि से सिद्ध किये हुए यान पर स्थिर होकर स्त्री पुरुष इधर उधर से जावें आवें ॥ ३ ॥

शेषन्नु त इन्द्र सस्मिन् योनौ प्रशस्तये पवीरवस्य मह्ना ।
सृजदर्णांस्यव यद्युधा गास्तिष्ठद्धरी धृषता मृष्ट वाजान् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सेनापति ! (प्रशस्तये) तेरी उत्कर्षता के लिये (सस्मिन्) उस (योनौ) स्थान में वा संग्राम में (ते) तेरे (पवीरवस्य) वज्र की ध्वनि के (मह्ना) महिमा से (नु) शीघ्र (शेषन्) शत्रुजन सोवें (यत्) जिस संग्राम में सूर्य जैसे (अर्णांसि) जलों को (अव, सृजत्) उत्पन्न करे अर्थात् मेघ से वर्षावे वैसे (युधा) युद्ध से (गाः) भूमियों और जो यानों को लेजाते उन घोड़ों को (तिष्ठत्) अधिष्ठित होता और हे (मृष्ट) शत्रुबल को सहने वाले ! (धृषता) दृढ़ बल से (वाजान्) शत्रुओं के वेगों को अधिष्ठित होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो अपने स्वभावानुकूल शूरवीर हों वे अपने अपने अधिकार में न्याय से वर्त्तकर शत्रुजनों को विशेष कर धर्म के अनुकूल अपनी महिमा वा प्रकाश करावें ॥ ४ ॥

वह कुत्समिन्द्र यस्मिंश्चाकन्त्स्यूमन्यू ऋज्रा वातस्याश्वा ।
प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीकेऽभि स्पृधो यासिषद्वज्रबाहुः ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सभापति ! आप (यस्मिन्) जिस संग्राम में (वातस्य) पवन की सी शीघ्र और सरल गति (स्यूमन्यू) चाहने और (ऋज्रा) सरल चाल चलने वाले (अश्वा) घोड़ों को (चाकन्) चाहते हैं उस में (कुत्सम्) वज्र को (वह) पहुँचाओ वज्र चलाओ अर्थात् वज्र से शत्रुओं का संहार करो (सूरः) सूर्य के समान प्रतापवान् (वज्रबाहुः) शस्त्र अस्त्रों को भुजाओं में धारण किये हुए आप (चक्रम्) अपने राज्य को (प्र, वृहताम्) बढ़ाओ और (अभीके) संग्राम में (स्पृधः) ईर्षा करते हुए शत्रुओं के (अभि, यासिषत्) सन्मुख जाने की इच्छा करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य प्रतापवान् है वैसा प्रतापवान् राजा अस्त्र और शस्त्रों के प्रहारों से संग्राम में शत्रुओं को अच्छे प्रकार जीतकर अपने राज्य को बढ़ावे ॥ ५ ॥

जघन्वाँ इन्द्र मित्रेरूञ्चोदप्रवृद्धो हरिवो अदाशून् ।
प्र ये पश्यन्नर्यमणं सचायोस्त्वया शूर्ता वहमाना अपत्यम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (हरिवः) बहुत घोड़ों वाले (इन्द्र) सूर्य के समान सभापति ! (चोदप्रवृद्धः) सदुपदेशों की प्रेरणा से अच्छे प्रकार बढ़े हुए आप (अदाशून्) दान न देने और (मित्रेरून्) मित्रों की हिंसा करने वाले शत्रुओं को (जघन्वान्) मारने वाले हो इससे (ये) जो (आयोः) दूसरे को सुख पहुँचाने वाले सज्जन के (अपत्यम्) सन्तान को (वहमानाः) पहुँचाने अर्थात् अन्यत्र ले जाने वाले धूर्त्तजन (त्वया) आप ने (शूर्त्ताः) छिन्न भिन्न किये वे (सचा) उस सम्बन्ध से तुम (अर्य्यमणम्) न्यायाधीश को (प्र, पश्यन्) देखते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो मित्र के समान बात चीत करते हुए दुष्टप्रकृति चतुर शत्रुजन सज्जनों को उद्वेग कराते उनको राजा समूल जैसे वे नष्ट हों वैसे मारे और न्यायासन पर बैठ कर अच्छे प्रकार देख विचार अन्याय को निवृत्त करे ॥ ६ ॥

रपत्कविरिन्द्रार्कसातौ क्षां दासायोपबर्हणीं कः ।
करत्तिस्रो मघवा दानुचित्रा नि दुर्योणे कुयवाचं मृधि श्रेत् ॥७॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सूर्य के समान सभापति ! जो (कविः) सर्वशास्त्रों का जानने वाला (अर्कसातौ) अन्नों के अच्छे प्रकार विभाग में (दासाय) शूद्र वर्ग के लिये (उपबर्हणीम्) अच्छी वृद्धि देने वाली (क्षाम्) भूमि को (कः) नियत करता वह सत्य स्पष्ट (रपत्) कहे जो (मघवा) उत्तम धन का सम्बन्ध रखने वाला (तिस्रः) उत्तम मध्यम और निकृष्ट कि (दानुचित्राः) अद्भुत दान जिसमें होता उन क्रियाओं को (करत्) नियत करे वह (दुर्योणे) समरभूमि विषयक (मृधि) युद्ध में (कुयवाचम्) कुत्सित यवों की प्रशंसा करने वाले सामान्य जन का (नि, श्रेत्) आश्रय लेवे ॥ ७ ॥

भावार्थ—शास्त्र जानने वाले सभापति शूद्र वर्ग के लिये शास्त्र की शिक्षा के साथ उत्तमान्नादि की वृद्धि करने वाली भूमि को संपादन करावें और सत्यशील तथा दान की विचित्रता संपादन करने के लिये उत्तम मध्यम निकृष्ट दानव्यवहारों को सिद्ध करे और सब काल में संग्रामादि भूमियों में शत्रुओं का संहार कर अपने राज्य को बढ़ाता रहे ॥ ७ ॥

सना ता त इन्द्र नव्या आगुः सहो नभोऽविरणाय पूर्वीः ।
भिनत्पुरो न भिदो अदेवीर्ननमो वधरदेवस्य पीयोः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सूर्य के समान प्रतापवान् राजन् ! आप (अविरणाय) युद्ध की निवृत्ति के लिये (नभः) हिंसक शत्रुजनों को (सहः) सहते हो। आप जैसे (पूर्वीः) प्राचीन (पुरः) शत्रुओं की नागरियों को (भिनत्) छिन्न भिन्न करते हुए (न) वैसे (भिदः) भिन्न अलग अलग (अदेवीः) शत्रुवर्गों की दुष्ट नागरिकों को (ननमः) नमाते ढहाते हो उससे (अदेवस्य, पीयोः) राक्षसपन संचारते हुए शत्रुगण का (वधः) नाश होता है यह जो (ते) आपके (सना) प्रसिद्ध शूरपने के काम हैं (ता) उनको (नव्याः) नवीन प्रजाजन (आगुः) प्राप्त होवें ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। राजजन संग्रामादि भूमियों में ऐसे शूरता दिखलाने वाले कामों का आचरण करें जिन को देख के ही जिन्होंने पिछले शूरता के काम नहीं देखे वे नवीन दुष्ट प्रजाजन भयभीत हों ॥ ८ ॥

त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः ।
प्र यत्समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सूर्य के समान वर्त्तमान (धुनिः) शत्रुओं को कंपाने वाले ! (त्वम्) आप बिजुलीरूप सूर्यमण्डलस्थ अग्नि जैसे (धुनिमतीः) कंपते हुए (अपः) जलों को वा बिजुलीरूप उठराग्नि जैसे (स्रवन्तीः) चलती हुई (सीराः) नाडियों को (न) वैसे प्रजाजनों को (प्रार्णोः) प्राप्त हूजिये । हे (शूर) शत्रुओं की हिंसा करने वाले ! (यत्) जो आप (समुद्रम्) समुद्र को (अति, पर्षि) अति क्रमण करने उतरि के पार पहुँचते हो सो (यदुम्) यत्नशील और (तुर्वशम्) जो शीघ्र कार्यकर्त्ता अपने वश को प्राप्त हुआ उस जन को (स्वस्ति) कल्याण जैसे हो वैसे (पारय) समुद्रादि नद के एक तट से दूसरे तट को झटपट पहुंचवाइये ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे शरीरस्थ बिजुलीरूप अग्नि नाड़ियों में रुधिर को पहुंचाती है और सूर्यमण्डल जल को जगत् में पहुंचाता है वैसे प्रजाओं में सुख को प्राप्त करावें और दुष्टों को कंपावें ॥६॥

त्वमस्माकमिन्द्र विश्वध स्या अवृकतमो नरां नृपाता ।

स नो विश्वासां स्पृधां सहोदा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सुख देने वाले ! (त्वम्) आप (अस्माकम्) हमारे बीच (विश्वध) सब प्रकार से (नराम्) मनुष्यों में (नृपाता) मनुष्यों की रक्षा करने वाले अर्थात् प्रजाजनों की पालना करने वाले और (अवृकतमः) जिन के सम्बन्ध में चोरजन नहीं ऐसे (स्याः) हूजिये तथा (सः) सो आप (नः) हमारे (विश्वासाम्) समस्त (स्पृधाम्) युद्ध की क्रियाओं के (सहोदाः) बल देने वाले हूजिये जिससे हम लोग (जीरदानुम्) जीव के रूप को (वृजनम्) धर्म युक्त मार्ग को और (इषम्) शस्त्रविज्ञान को (विद्याम) प्राप्त होवें ॥ १० ॥

भावार्थ—जो नियमों से युक्त नियत इन्द्रियों वाले प्रजाजनों के रक्षक चौर्यादि कर्मों को छोड़े हुए अपने राज्य में निवास करते हैं वे अत्यन्त ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

इस सूक्त में राजजनों के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह एकसौ चौहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

———

अगस्त्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ स्वराडनुष्टुप् । २ विराडनुष्टुप् । ५ अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ३ निचृत् त्रिष्टुप् । ६ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।
वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (हरिवः) प्रशंसित घोड़ों वाले ! (महः) बड़े (पात्रस्येव) पात्र के बीच जैसे रक्खा हो वैसे जो (ते) आप का (मत्सरः) हर्ष करने वाला (मदः) नीरोगता के साथ जिससे जन आनन्दित होते हैं वह ओषधियों का सार आपने (अपायि) पिया है उस से आप (मत्सि) आनन्दित होते हैं और वह (वाजी) वेगवान् (सहस्रसातमः) अतीव सहस्र लोगों का विभाग करने वाला (वृष्णे) सींचने वाले बलवान् जो (ते) आप उनके लिये (वृषा) बल और (इन्दुः) ऐश्वर्य करने वाला होता है ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे घोड़े दूध आदि पी घास खा बलवान् और वेगवान् होते हैं वैसे पथ्य ओषधियों के सेवन करने वाले मनुष्य आनन्दित होते हैं ॥ १ ॥

आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।
सहावाँ इन्द्र सानसिः पृतनाषाळमर्त्यः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सभापति ! (ते) आप का जो (मत्सरः) सुख करने वाला (वरेण्यः) स्वीकार करने योग्य (वृषा) वीर्यकारी (सहावान्) जिसमें बहुत शहनशीलता विद्यमान (सानसिः) जो अच्छे प्रकार रोगों का विभाग करने वाला (पृतनाषाट्) जिस से मनुष्यों की सेना को सहते हैं और (अमर्त्यः) जो मनुष्य स्वभाव से विलक्षण (मदः) ओषधियों का रस है वह (नः) हम लोगों को (आ, गन्तु) प्राप्त हो ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि आप्त धर्मात्मा जनों का ओषधि रस हम को प्राप्त हो ऐसी सदा चाहना करें ॥ २ ॥

त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।
सहावान्दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे सेनापति ! (हि) जिस कारण (शूर,) शूरवीर निडर (सनिता) सेना को संविभाग करने अर्थात् पद्मादि व्यूह रचना से बांटने वाले (त्वम्) आप (मनुषः) मनुष्यों और (रथम्) युद्ध के लिये प्रवृत्त किये हुए रथ

को (चोदयः) प्रेरणा दें अर्थात् युद्ध समय में आगे को बढ़ावें और (सहावान्) बलवान् आप (शोचिषा) दीपते हुए अग्नि की लपट से जैसे (पात्रम्) काष्ठ आदि के पात्र को (न) वैसे (अव्रतम्) दुश्शील दुराचारी (दस्युम्) हठ कर पराये धन को हरने वाले दुष्ट जन को (ओषः) जलाओ इससे भाग्यभागी होओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो सेनापति युद्ध समय में रथ आदि यान और योद्धाओं को ढङ्ग से चलाने को जानते हैं वे आग जैसे काष्ठ को वैसे डाकुओं को भस्म कर सकते हैं ॥ ३ ॥

मुषाय सूर्य्यं कवे चक्रमीशान ओजसा ।
वह शुष्णाय वधं कुत्सं वातस्याश्वैः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (कवे) क्रम क्रम से दृष्टि देने समस्त विद्याओं के जानने वाले सभापति ! (ईशानः) ऐश्वर्य्यवान् समर्थ ! आप (सूर्य्यम्) सूर्यमण्डल के समान (ओजसा) बल से युक्त (चक्रम) भूगोल के राज्य को (मुषाय) हर के (शुष्णाय) औरों के हृदय को सुखाने वाले दुष्ट के लिये (वातस्य) पवन के (अश्वैः) वेगादि गुणों के समान अपने बलों से (कुत्सम्) वज्र को घुमा के (वधम्) वध को (वह) पहुँचाओ अर्थात् उक्त दुष्ट को मारो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो चक्रवर्त्ती राज्य करने की इच्छा करें वे डाकू और दुष्टाचारी मनुष्यों को निवार के न्याय को प्रवृत्त करावें ॥ ४ ॥

शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।
वृत्रघ्ना वरिवोविदा मंसीष्ठा अश्वसातमः ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे सब के ईश्वर सभापति ! (हि) जिस कारण (ते) आप का (शुष्मिन्तमः) अतीव बल वाला (मदः) आनन्द (उत) और (द्युम्निन्तमः) अतीव यशयुक्त (क्रतुः) पराक्रमरूप कर्म है उस से (वृत्रघ्ना) मेघ को छिन्न भिन्न करने वाले सूर्य के समान प्रकाशमान (वरिवोविदा) जिस से कि सेना को प्राप्त होता उस पराक्रम से (अश्वसातमः) अतीव अश्वादिकों का अच्छे विभाग करने वाले आप दूसरे के विषय को (मंसीष्ठाः) मानो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सूर्य के समान तेजस्वी विजुली के समान पराक्रमी यशस्वी अत्यन्त बली जन विद्या विनय और धर्म का सेवन करते हैं वे सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्यं इन्द्र मयंइवापो न तृष्यते बभूर्थ।
तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) विद्यैश्वर्ययुक्त ! (यथा) जिस प्रकार नित्य विद्या से (पूर्वेभ्यः) प्रथम विद्या अध्ययन किये (जरितृभ्यः) समस्त विद्या गुणों की स्तुति करने वाले जनों के लिये (मयइव) सुख के समान वा (तृष्यते) तृषा से पीड़ित जन के लिये (आपः) जलों के (न) समान आप (बभूथ) हूजिये (ताम्) उस (निविदम्) नित्य विद्या के (अनु) अनुकूल (त्वा) आपको मैं (जोहवीमि) निरन्तर स्तुति करता हूँ। और इसी से हम लोग (इषम्) इच्छासिद्धि (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) आत्मस्वरूप को (विद्याम) प्राप्त होवें ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो ब्रह्मचर्य के साथ शास्त्रज्ञ धर्मात्माओं से विद्या और शिक्षा पाकर औरों को देते हैं वे सुख से तृप्त होते हुए प्रशंसा को प्राप्त होते हैं और जो विरोध को छोड़ परस्पर उपदेश करते हैं वे विज्ञान बल और जीवात्मा परमात्मा के स्वरूप को जानते हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त में राजव्यवहार के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह एकसौ पचहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अगस्त्य ऋषिः। इन्द्रो देवता। १। ४ अनुष्टुप्। २ निचृदनुष्टुप्। ३ विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः। ५ भुरिगुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः। ६ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

मत्सि नो वस्यइष्टय इन्द्रमिन्दो वृषा विश।
ऋघायमाण इन्वसि शत्रुमन्ति न विन्दसि ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (इन्दो) चन्द्रमा के समान शीतल शान्तस्वरूप वाले न्यायाधीश ! जो (वृषा) बलवान् (ऋघायमाणः) वृद्धि को प्राप्त होते हुए आप (नः) हमारे (वस्यइष्टये) अत्यन्त धन की सङ्गति के लिये (इन्द्रम्) परमैश्वर्य को प्राप्त होकर (मत्सि) आनन्द को प्राप्त होते हो और (शत्रुम्) शत्रु को (इन्वसि) व्याप्त होते अर्थात् उनके किये हुए दुराचार को प्रथम ही जानते हो किन्तु (अन्ति) अपने समीप (न) नहीं (विन्दसि) शत्रु पाते सो आप सेना को (आ, विश) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ॥ १ ॥

भावार्थ—जो प्रजाजनों के चाहे हुए सुख के लिये दुष्टों की निवृत्ति कराते और सत्य आचरण को व्याप्त होते वे महान् ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

तस्मिन्ना वेशया गिरो य एकश्चर्षणीनाम् ।
अनु स्वधा यमुप्यते यवं न चर्कृषद्वृषा ॥ २ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! (तस्मिन्) उस में (गिरः) उपदेशरूप वाणियों को (आ, वेशय) अच्छे प्रकार प्रविष्ट कराइये कि (यः) जो (चर्षणीनाम्) मनुष्यों में (एकः) एक अकेला सहायरहित दीनजन है और (यम्) जिस का (अनु) पीछा लखिकर (चर्कृषत्) निरन्तर भूमि को जोतता हुआ (वृषा) कृषिकर्म में कुशल जन जैसे (यवम्) यव अन्न को (न) बोओ वैसे (स्वधा) अन्न (उप्यते) बोया जाता अर्थात् भोजन दिया जाता है ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे कृषीवल खेती करने वाले उन खेतों में वीजों को बोकर अन्नों वा धनों को पाते हैं वैसे विद्वान् जन ज्ञानविद्या चाहने वाले शिष्य जनों के आत्मा में विद्या और उत्तम शिक्षा प्रवेशकरा सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

यस्य विश्वानि हस्तयोः पञ्च क्षितीनां वसु ।
स्पाशयस्व यो अस्मध्रुग्दिव्येवाशनिर्जहि ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! (यस्य) जिनके आप (हस्तयोः) हाथों में (पञ्च) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद इन जातियों के (क्षितीनाम्) मनुष्यों के (विश्वानि) समस्त (वसु) विद्याधन हैं सो आप (यः) जो (अस्मध्रुक्) हम लोगों को द्रोह करता है उसको (स्पाशयस्व) पीड़ा देओ और (अशनिः) बिजुली (दिव्येव) जो आकाश में उत्पन्न हुई और भूमि में गिरी हुई संहार करती है उसके समान (जहि) नष्ट करे ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिसके अधिकार में समग्र विद्या हैं, जो उत्पन्न हुए शत्रुओं को मारता है वह दिव्य ऐश्वर्य प्राप्ति कराने वाला होता है ॥ ३ ॥

असुन्वन्तं समं जहि दूणाशं यो न ते मयः ।
अस्मभ्यमस्य वेदनं दद्धि सूरिश्चिदोहते ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे राजन् ! आप उस (असुन्वन्तम्) पदार्थों के सार खींचने आदि

पुरुषार्थ से रहित (दूणाशम्) और दुःख से विनाशने योग्य (समम्) समस्त आलसीगण को (जहि) मारो दण्ड देओ कि (यः) जो (सूरिः) विद्वान् के (चित्) समान (ओहते) व्यवहारों की प्राप्ति करता है और (ते) तुम्हारे (मयः) सुख को (न) नहीं पहुँचाता तथा आप (अस्य) इसके (वेदनम्) धन को (अस्मभ्यम्) हमारे अर्थ (दद्धि) धारण करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो आलसी जन हों उनको राजा ताड़ना दिलावे जैसे विद्वान् जन सब के लिये सुख देता है वैसे जितना अपना सामर्थ्य हो उतना सुख सब के लिये देवे ॥ ४ ॥

आवो यस्य द्विबर्हसोऽर्केषु सानुषगसत् ।
आजाविन्द्रस्येन्दो प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (इन्दो) अपनी प्रजाओं में चन्द्रमा के समान वर्त्तमान ! (यस्य) जिस (द्विबर्हसः) विद्या पुरुषार्थ से बढ़ते हुए जन के (अर्केषु) अच्छे सराहे हुए अन्नादि पदार्थों में (सानुषक्) सानुकूलता ही (असत्) हो जिसकी आप (आवः) रक्षा करें वह (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य सम्बन्धी (आजौ) संग्राम में (वाजेषु) वेगों में वर्त्तमान (वाजिनम्) बलवान् आप को (प्र, आवः) अच्छे प्रकार रक्षायुक्त करे अर्थात् निरन्तर आपकी रक्षा करे ॥ ५ ॥

भावार्थ—जैसे सेनापति सब चाकरों की रक्षा करे वैसे वे चाकर भी उस की निरन्तर रक्षा करें ॥ ५ ॥

यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मयइवापो न तृष्यते बभूथ ।
तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) योग के ऐश्वर्य का ज्ञान चाहते हुए जन ! (यथा) जैसे योग जानने की इच्छा वाले (पूर्वेभ्यः) किया है योगाभ्यास जिन्होंने उन प्राचीन (जरितृभ्यः) योग गुण सिद्धियों के जानने वाले विद्वानों से योग को पाकर और सिद्ध कर सिद्ध होते अर्थात् योग सम्पन्न होते हैं वैसे होकर (मयइव) सुख के समान और (तृष्यते) पियासे के लिये (आपः) जलों के (न) समान (बभूथ) हूजिये और (ताम्) उस विद्या के (अनु) अनुवर्त्तमान (निविदम्) और निश्चित प्रतिज्ञा जिन्होंने किई उन (त्वा) आप को (जोहवीमि) निरन्तर कहता हूँ ऐसे कर हम लोग (इषम्) इच्छा सिद्धि (वृजनम्) दुःखत्याग और (जीरदानुम्) जीव दया को (विद्याम) प्राप्त हों ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो जिज्ञासु जन योगारूढ़ पुरुषों से योगशिक्षा को प्राप्त

होकर पुरुषार्थ से योग का अभ्यास कर सिद्ध होते हैं वे पूर्ण सुख को पाते और जो उत्तम योगियों का सेवन करते वे भी सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त में विद्या पुरुषार्थ और योग का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह एकसौ छिहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अगस्त्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । २ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ४ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

आ चर्षणिप्रा वृषभो जनानां राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।
स्तुतः श्रवस्यन्नवसोप मद्रिग्युक्त्वा हरी वृषणा याह्यर्वाङ् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! जैसे (वृषभः) अतीव बलवान् (जनानाम्) शुद्ध गुणों में प्रसिद्ध हुए जनों में (चर्षणिप्राः) मनुष्यों को विद्या से पूर्ण करने वाला (राजा) प्रकाशमान और (कृष्टीनाम्) मनुष्यों में (पुरुहूतः) बहुतों से सत्कार को प्राप्त हुआ (स्तुतः) प्रशंसित (श्रवस्यन्) अपने को अन्न की इच्छा करता हुआ (मद्रिक्) जो काम को प्राप्त होता वह (इन्द्रः) ऐश्वर्य का देने वाला (वृषभा) अति बली (हरी) हरणशील घोड़ों को (युक्त्वा) जोड़कर (अर्वाङ्) नीचली भूमियों में जाता है वैसे (अवसा) रक्षा आदि के साथ आप हम लोगों के (उप, आ, याहि) समीप आओ ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे शुभ गुण कर्म स्वभाव वाले सभाध्यक्ष प्रजाजनों में चेष्टा करें वैसे प्रजाजनों को भी चेष्टा करनी चाहिये, जैसे कोई विमान पर चढि और ऊपर को जायकर नीचे आता है वैसे विद्वान् जन अगले पिछले विषय को जानने वाले हों ॥ १ ॥

ये ते वृषणो वृषभास इन्द्र ब्रह्मयुजो वृषरथासो अत्याः ।
ताँ आ तिष्ठ तेभिरा याह्यर्वाङ् हवामहे त्वा सुत इन्द्र सोमे ॥ २ ॥

पदार्थ— हे (इन्द्र) सूर्य के समान वर्त्तमान राजन् ! (ते) आप के (ये) जो (वृषणः) प्रबल ज़ववान (वृषभासः) वृषभ (ब्रह्मयुजः) उत्तम अन्न का योग करने वाले (वृषरथासः) शक्ति बन्धक और रमण साधन रथ (अत्याः) और निरन्तर गमनशील घोड़े हैं (तान्) उनको (आ, तिष्ठ) यत्नवान् करो अर्थात् उन पर चढ़ो उन्हें कार्यकारी करो । । हे (इन्द्र) सूर्य के समान वर्त्तमान राजन् !

हम लोग (सुते) उत्पन्न हुए (सोमे) ओषधि आदिकों के गुण के समान ऐश्वर्य के निमित्त (त्वा) आपको (हवामहे) स्वीकार करते हैं आप (तेभिः) उनके साथ (अर्वाङ्) सम्मुख (आ, याहि) आओ ॥ २ ॥

भावार्थ—जो राजजन समस्त साधनों से साध्य रथों, प्रबल घोड़ों और बैलों को कार्य्यों में संयुक्त कराते हैं वे प्रशस्त यान आदि पदार्थों से युक्त हुए राजराजन ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

आ तिष्ठ रथं वृषणं वृषा ते सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।
युक्त्वा वृषभ्यां वृषभ क्षितीनां हरिभ्यां याहि प्रवतोप मद्रिक् ॥३॥

पदार्थ—हे (वृषभ) दूसरों के सामर्थ्य रोकने से बलिष्ठ राजन् ! (मद्रिक्) हम लोगों को प्राप्त होते और (वृषा) रस आदि से परिपूर्ण होते हुए आप जो (ते) अपने लिये (सोमः) सोमलता आदि का रस (सुतः) उत्पन्न किया गया है उस में (मधूनि) मीठे मीठे पदार्थ (परिषिक्ता) सब ओर से सींचे हुए हैं उस रस को पी कर (क्षितीनाम्) मनुष्यों के (वृषभ्याम्) प्रबल (हरिभ्याम्) हरणशील घोड़ों से (वृषणम्) दृढ़ (रथम्) रथ को (युक्त्वा) जोड़ युद्ध का (आ, तिष्ठ) यत्न करो वा युद्ध की प्रतिज्ञा पूर्ण करो और (प्रवता) नीचे मार्ग से (उप, याहि) समीप आओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो आहार विहार से युक्त सोमादि ओषधियों के रस के सेवने वाले दीर्घ ब्रह्मचर्य्य किये हुए शरीर और आत्मा के बल से युक्त राजजन बिजुली आदि पदार्थों के वेग से युक्त यानों को सिद्ध कर दण्ड से दुष्टों को निवारण कर न्याय से राज्य की रक्षा कराया करें वे ही सुखी होते हैं ॥३॥

अयं यज्ञो देवया अयं मियेध इमा ब्रह्माण्ययमिन्द्र सोमः ।
स्तीर्णं बर्हिरा तु शक्र प्र याहि पिबा निषद्य वि मुचा हरी इह ॥४॥

पदार्थ—हे (शक्र) शक्तिमान् (इन्द्र) सभापति ! (अयम्) यह (देवयाः) जिस से दिव्य गुण वा उत्तम विद्वानों को प्राप्त होना होता वह (यज्ञः) राजधर्म और शिल्प की सङ्गति से उन्नति को प्राप्त हुआ यज्ञ वा (अयम्) यह (मियेधः) जिसकी पदार्थों के डारने से वृद्धि होती वह (अयम्) यह (सोमः) बड़ी बड़ी ओषधियों का रस वा ऐश्वर्य (तु) और यह (स्तीर्णम्) ढंपा हुआ (बर्हिः) उत्तम आसन है (निषद्य) इस आसन पर बैठ (इमा) इन (ब्रह्माणि) धनों को (प्रायाहि) उत्तमता को प्राप्त होओ । इस उक्त ओषधि को (पिब) पी (इह) यहां (हरी) बिजुली के धारण और आकर्षणरूपी घोड़ों को स्वीकार कर और दुःख को (विमुच) छोड़ ॥ ४ ॥

भावार्थ—सब मनुष्यों को व्यवहार में अच्छा यत्न कर जब राजा ब्रह्मचारी तथा विद्या और अवस्था से बढ़ा हुआ सज्जन आवे तब आसन आदि से उस का सत्कार कर पूछना चाहिए, वह उन के प्रति यथोचित धर्म के अनुकूल विद्या की प्राप्ति करने वाले वचन को कहे जिससे दुःख की हानि सुख की वृद्धि और बिजुली आदि पदार्थों की भी सिद्धि हो ॥ ४ ॥

ओ सुष्टुत इन्द्र याह्यर्वाङुप ब्रह्माणि मान्यस्य कारोः ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ५ ॥

पदार्थ—(ओ, इन्द्र) हे धन देने वाले सभापति ! जैसे हम लोग (मान्यस्य) सत्कार करने योग्य (कारोः) कार करने वाले के (ब्रह्माणि) धनों को (वस्तोः) प्रतिदिन (उप, विद्याम) समीप में जानें वा जैसे (अवसा) रक्षा आदि के साथ (गृणन्तः) स्तुति करते हुए हम लोग (इषम्) प्राप्ति (वृजनम्) उत्तम गति और (जीरदानुम्) जीवात्मा को (विद्याम) जानें वैसे आप (सुष्टुतः) अच्छे प्रकार स्तुति को प्राप्त हुए (अर्वाङ्) (याहि) सम्मुख आओ ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो धन को प्राप्त हों वे औरों का सत्कार करें जो क्रियाकुशल शिल्पीजन ऐश्वर्य को प्राप्त हों वे सब को सत्कार करने योग्य हों, जैसे जैसे विद्या आदि अच्छे गुण अधिक हों वैसे वैसे अभिमान रहित हों ॥ ५ ॥

यहां राजा आदि विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ सतहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अगस्त्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । २ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३ । ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

यद्ध स्या त इन्द्र श्रुष्टिरस्ति यया बभूथ जरितृभ्य ऊती ।
मा नः कामं महयन्तमा धग्विश्वा ते अश्यां पर्याप आयोः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) सेनापति ! (यत्) जो (स्या) यह (ते) आप की (श्रुष्टिः) सुनने योग्य विद्या (अस्ति) है (यया) जिससे आप (जरितृभ्यः) समस्त विद्या की स्तुति करने वालों के लिये उपदेश करने वाले (बभूथ) होते हैं

उस (ऊती) रक्षा आदि कर्म से युक्त विद्या से (नः) हमारे (महयन्तम्) सत्कार प्रशंसा करने योग्य (कामम्) काम को (मा, आ, धक्) मत जलाओ (ते) आपके (ह) ही (आयोः) जीवन के जो (आपः) प्राण बल हैं उन (विश्वा) सभों को (पर्यश्याम्) सब ओर से प्राप्त होऊं ॥ १ ॥

भावार्थ—जो सेनापति आदि राजपुरुष [हैं वे] अपने प्रयोजन के लिये किसी के काम को न विनाशें सदैव पढ़ाने और पढ़ने वालों की रक्षा करें जिससे बहुत बलवान् आयुयुक्त जन हों ॥ १ ॥

न घा राजेन्द्र आ दंभन्नो या नु स्वसारा कृणवन्त योनौ ।
आपश्चिदस्मै सुतुका अवेषन्गमन्न इन्द्रः सख्या वयश्च ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (इन्द्रः) परमैश्वर्ययुक्त (राजा) विद्या और विनय से प्रकाशमान राजा (नः) हम लोगों को (न) न (आ, दभत्) मारे न दण्ड देवे वैसे हम लोग (नु) भी उसको (घ) ही मत दुःख देवें जैसे (या) जो (स्वसारा) दो बहिनियों के समान दो स्त्री (योनौ) घर में बन्धु को न मारें वैसे उनके समान हम किसी को न मारें जैसे विद्वान् जन हिंसा नहीं करते हैं वैसे सब लोग न (कृणवन्त) करें जैसे (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् (अस्मै) इस सज्जन के लिये (सख्या) मित्रपन के काम (वयः) जीवन (च) और (सुतुकाः) सुन्दर ग्रहण करने वाली स्त्री (आपः) जलों को (अवेषन्) व्याप्त होती हैं (चित्) उनके समान (नः) हम लोगों को (गमत्) प्राप्त हो वैसे उनको हम भी प्राप्त होवें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे शास्त्रज्ञ धर्मात्मा दयालु विद्वान् किसी को नहीं मारते वैसे सब आचरण करें ॥ २ ॥

जेता नृभिरिन्द्रः पृत्सु शूरः श्रोता हवं नाधमानस्य कारोः ।
प्रभर्त्ता रथं दाशुष उपाक उद्यन्ता गिरो यदि च त्मना भूत् ॥ ३ ॥

पदार्थ—(यदि) जो (नृभिः) नायक वीरों के साथ (शूरः) शत्रुओं की हिंसा करने वाला (जेता) विजयशील (नाधमानस्य) मांगते हुए (कारोः) कार्यकारी पुरुष के (हवम्) ग्रहण करने योग्य विद्याबोध को (श्रोता) सुनने वाला (प्रभर्त्ता) उत्तम विद्याओं का धारण करने वाला (दाशुषः) दानशील के (उपाके) समीप (गिरः) वाणियों का (उद्यन्ता) उद्यम करने वाला (इन्द्रः) सेनाधीश तू (त्मना) अपने से (पृत्सु) संग्रामों में (रथम्) रथ को (च) भी ग्रहण करके प्रवृत्त (भूत्) होवे उसका दृढ़ विजय हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो विद्या की याचना करें उनको निरन्तर विद्या देवें, जो

जितेन्द्रिय सत्यवादी होते हैं उन्हीं को विद्या प्राप्त होती है, जो विद्या और शरीर बलों से शत्रुओं के साथ युद्ध करते हैं उनका कैसे पराजय हो ॥ ३ ॥

एवा नृभिरिन्द्रः सुश्रवस्या प्रखादः पृक्षो अभि मित्रिणो भूत् ।
समर्य्य इषः स्तवते विवाचि सत्राकरो यजमानस्य शंसः ॥ ४ ॥

पदार्थ—(नृभिः) वीर पुरुषों के साथ (इन्द्रः) सेनापति (सुश्रवस्या) उत्तम अन्न की इच्छा से (पृक्षः) दूसरे को बता देने को चाहा हुआ अन्न उस को (प्रखादः) अतीव खाने वाला और (मित्रिणः) मित्र जिसके वर्त्तमान उसके (अभि, भूत्) सम्मुख हो तथा (विवाचि) नाना प्रकार की विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त वीर जन के निमित्त (सत्राकरः) सत्य व्यवहार करने और (यजमानस्य) देने वाले की (शंसः) प्रशंसा करने वाला (समर्य्ये) उत्तम वणिये के निमित्त (इषः) अन्नों की (स्तवते) स्तुति प्रशंसा करता (एव) ही है ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो उद्योगी और सत्यवादी जन सत्योपदेश करते हैं वे नायक अधिपति और अग्रगामी होते हैं ॥ ४ ॥

त्वया वयं मघवन्निन्द्र शत्रूनभि ष्याम महतो मन्यमानान् ।
त्वं त्राता त्वमु नो वृधे भूर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (मघवन्) परम प्रशंसित धनयुक्त (इन्द्र) शत्रुओं को विदीर्ण करने वाले ! (त्वया) आप के साथ वर्त्तमान (वयम्) हम लोग (महतः) प्रबल (मन्यमानान्) अभिमानी (शत्रून्) शत्रुओं को जीतने वाले (अभि,-ष्याम) सब ओर से होवें (त्वम्) आप (नः) हमारे (त्राता) रक्षक सहायक और (त्वम्, उ) आप तो ही (वृधेः) वृद्धि के लिये (भूः) हो जिससे हम लोग (इषम्) प्रत्येक काम की प्रेरणा (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) जीव स्वभाव को (विद्याम) पावें ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो युद्ध करने वाले भृत्यों का सर्वथा सत्कार कर और उनको उत्साह दे युद्ध करते हैं, युद्ध करते हुओं की निरन्तर रक्षा और मरे हुओं के पुत्र कन्या और स्त्रियों की पालना करें वे सब सर्वत्र विजय करने वाले हों ॥ ५ ॥

इस सूक्त में सेनापति के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ अठहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ।

लोपामुद्राऽगस्त्यौ ऋषी । दम्पती देवता । १ । ४ त्रिष्टुप् । २ । ३ निचृत् त्रिष्टुप् । ६ विराट् त्रिष्टुप छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषा वस्तोरुषसो जरयन्तीः ।
मिनाति श्रियं जरिमा तनूनामप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः ॥ १ ॥

पदार्थ—जैसे (अहम्) मैं (पूर्वीः) पहिले हुई (शरदः) वर्षों तथा (दोषाः) रात्रि (वस्तोः) दिन (जरयन्तीः) सब की अवस्था को जीर्ण करती हुई (उषसः) प्रभात वेलाओं भर (शश्रमाणा) श्रम करती हुई हूं (अपि, उ) और तो जैसे (तनूनाम्) शरीरों की (जरिमा) अतीव अवस्था को नष्ट करने वाला काल (श्रियम्) लक्ष्मी को (मिनाति) विनाशता है वैसे (वृषणः) वीर्य्य सेचने वाले (पत्नीः) अपनी अपनी स्त्रियों को (नु) शीघ्र (जगम्युः) प्राप्त होवें ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे बाल्यावस्था को लेकर विदुषी स्त्रियों ने प्रतिदिन प्रभात समय से घर के कार्य और पति की सेवा आदि कर्म किये हैं वैसे किया है ब्रह्मचर्य जिन्होंने उन स्त्री पुरुषों को समस्त कार्यों का अनुष्ठान करना चाहिये ॥ १ ॥

ये चिद्धि पूर्व ऋतसाप आसन्त्साकं देवेभिरवदन्नृतानि ।
ते चिदवासुर्नह्यन्तमापुः समू नु पत्नीर्वृषभिर्जगम्युः ॥ २ ॥

पदार्थ—(ये) जो (ऋतसापः) सत्यव्यवहार में व्यापक वा दूसरों को व्याप्त कराने वाले (पूर्वे) पूर्व विद्वान् (देवेभिः) विद्वानों के (साकम्) साथ (ऋतानि) सत्यव्यवहारों को (अवदन्) कहते हुए (ते, चित्, हि) वे भी सुखी (आसन्) हुए । और जो (नु) शीघ्र (पत्नीः) स्त्रीजन (वृषभिः) वीर्य्यवान् पतियों के साथ (सम् जगम्युः) निरन्तर जावें (चित्) उनके समान (अवासुः) दोषों को दूर करें वे (उ) (अन्तम्) अन्त को (नहि) नहीं (आपुः) प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । ब्रह्मचर्य्यस्थ विद्यार्थियों को उन्हीं से विद्या और अच्छी शिक्षा लेनी चाहिये कि जो पहिले विद्या पढ़े हुए सत्याचारी जितेन्द्रिय हों । और उन ब्रह्मचारिणियों के साथ विवाह करें जो अपने तुल्य गुण कर्म स्वभाव वाली विदुषी हों ॥ २ ॥

न मृषा श्रान्तं यदवन्ति देवा विश्वा इत्स्पृधो अभ्यश्नवाव ।
यजावेदत्र शतनीथमाजिं यत्सम्यञ्चा मिथुनावभ्यजाव ॥ ३ ॥

पदार्थ—(देवाः) विद्वान् जन (यत्) जिस कारण (अत्र) इस जगत् में (मृषा) मिथ्या (श्रान्तम्) खेद करते हुए की (न) नहीं (अवन्ति) रक्षा करते हैं इससे हम (विश्वा, इत्) सभी (स्पृधः) संग्रामों को (अभि, अश्नवाव) सम्मुख होकर (यत्) जिस कारण गृहाश्रम को (सम्यञ्चा) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हुए (मिथुनौ) स्त्रीपुरुष हम दोनों (अभ्यजाव) सब ओर से उसके व्यवहारों को प्राप्त होवें इससे (शतनीथम्) जो सैकड़ों से प्राप्त होने योग्य (आजिम्) संग्राम को (यजावेत्) जीतते ही हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—जिस कारण आप विद्वान् जन मिथ्याचारी मूढ़ विद्यार्थी जनों को नहीं पढ़ाते हैं इससे स्त्रीपुरुष मिथ्या आचार और व्यभिचारादि दोषों को त्यागें। और जैसे गृहाश्रम का उत्कर्ष हो वैसे स्त्रीपुरुष परस्पर धर्म के आचरण करने वाले हों ॥ ३ ॥

नदस्य मा रुधतः काम आगन्नित आजातो अमुतः कुतश्चित् ।
लोपामुद्रा वृषणं नी रिणाति धीरमधीरा धयति श्वसन्तम् ॥ ४ ॥

पदार्थ—(इतः) इधर से वा (अमुतः) उधर से वा (कुतश्चित्) कहीं से (आजातः) सब ओर से प्रसिद्ध (रुधतः) वीर्य रोकने वा (नदस्य) अव्यक्त शब्द करने वाले वृषभ आदि का (कामः) काम (मा) मुझ को (आगन्) प्राप्त होता अर्थात् उनके सदृश कामदेव उत्पन्न होता है और (अधीरा) धीरज से रहित वा (लोपामुद्रा) लोप होजाना लुकि जाना ही प्रतीत का चिह्न है जिसका सो यह स्त्री (वृषणम्) वीर्यवान् (धीरम्) धीरजयुक्त (श्वसन्तम्) श्वासें लेते हुए अर्थात् शयनादि दशा में निमग्न पुरुष को (नीरिणाति) निरन्तर प्राप्त होती और (धयति) उससे गमन भी करती है ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो विद्या धैर्य आदि रहित स्त्रियों को विवाहते हैं वे सुख नहीं पाते हैं, जो पुरुष काम रहित कन्या को वा कामरहित पुरुष को कुमारी विवाहे वहां कुछ भी सुख नहीं होता, इससे परस्पर प्रीति वाले गुणों में समान स्त्री पुरुष विवाह करें वहां ही मङ्गल समाचार है ॥ ४ ॥

इमं नु सोममन्तितो हृत्सु पीतमुप ब्रुवे ।
यत्सीमागश्चकृमा तत्सु मृळतु पुलुकामो हि मर्त्यः ॥ ५ ॥

पदार्थ—मैं (यत्) जिस (इमम्) इस (हृत्सु) हृदयों में (पीतम्) पिये हुए (सोमम्) ओषधियों के रस को (उप, ब्रुवे) उपदेश पूर्वक करता हूं उसको (पुलुकामः) बहुत कामना वाला (मर्त्यः) पुरुष (हि) ही (सुमृळतु) सुख संयुक्त करे अर्थात् अपने सुख में उसका संयोग करे। जिस (आगः) अपराध को हम लोग (चकृम) करें (तत्) उस को (नु) शीघ्र (सीम्) सब ओर से (अन्तितः) समीप से सभी जन छोड़ें अर्थात् क्षमा करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो महौषधियों के रस को पीते हैं वे रोग रहित बलिष्ठ होते हैं, जो कुपथ्याचरण करते हैं वे रोगों से पीड्यमान होते हैं ॥ ५ ॥

अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः प्रजामपत्यं बलमिच्छमानः।
उभौ वर्णावृषिरुग्रः पुपोष सत्या देवेष्वाशिषो जगाम ॥ ६ ॥

पदार्थ—जैसे (खनित्रैः) कुद्दाल फांवड़ा कसी आदि खोदने के साधनों से भूमि को (खनमानः) खोदता हुआ खेती करने वाला धान्य आदि अनाज पाके सुखी होता है वैसे ब्रह्मचर्य और विद्या से (प्रजाम्) राज्य (अपत्यम्) सन्तान और (बलम्) बल की (इच्छमानः) इच्छा करता हुआ (अगस्त्यः) निरपराधियों में उत्तम (ऋषिः) वेदार्थवेत्ता (उग्रः) तेजस्वी विद्वान् (पुपोष) पुष्ट होता है (देवेषु) और विद्वानों में वा कामों में (सत्याः) अच्छे कर्मों में उत्तम सत्य और (आशिषः) सिद्ध इच्छाओं को (जगाम) प्राप्त होता है वैसे (उभौ) दोनों (वर्णौ) परस्पर एक दूसरे का स्वीकार करते हुए स्त्री पुरुष होवें ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे कृषि करने वाले अच्छे खेतों में उत्तम बीजों को बोय कर फलवान् होते हैं और जैसे धार्मिक विद्वान् जन सत्य कामों को प्राप्त होते हैं वैसे ब्रह्मचर्य से युवावस्था को प्राप्त होकर अपनी इच्छा से विवाह करें वे अच्छे खेत में उत्तम बीज सम्बन्धी के समान फलवान् होते हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त में विदुषी स्त्री और विद्वान् पुरुषों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ उनासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अगस्त्य ऋषिः। अश्विनौ देवते। १। ४। ७ निचृत् त्रिष्टुप्। ३। ५। ६। ८ विराट् त्रिष्टुप्। १० त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। २। ९ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

युवो रजांसि सुयमासो अश्वा रथो यद्वां पर्य्यर्णांसि दीयत् ।
हिरण्ययां वां पवयः प्रुषायन्मध्वः पिबन्ता उषसः सचेथे ॥ १ ॥

पदार्थ—हे स्त्रीपुरुषो ! (यत्) जब (युवोः) तुम दोनों को (सुयमासः) संयम चाल के नियम को पकड़े हुए (अश्वाः) वेगवान् अग्नि आदि पदार्थ (रजांसि) लोकलोकान्तरों को और (वाम्) तुम्हारा (रथः) रथ (अर्णांसि) जल-स्थलों को (परि, दीयत्) सब ओर से जावें (वाम्) तुम दोनों के रथ के (हिरण्ययाः) बहुत सुवर्ण युक्त (पवयः) चाक पहिये (प्रुषायन्) भूमि को छेदते भेदते हैं तथा (मध्वः) मधुर रस को (पिबन्तौ) पीते हुए आप (उषसः) प्रभात समय का (सचेथे) सेवन करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—जो स्त्री पुरुष लोक का विज्ञान रखते और पदार्थविद्या संसाधित रथ से जाने वाले अच्छे आभूषण पहिने दुग्धादि रस पीते हुए समय के अनुरोध से कार्य्यसिद्धि करने वाले हैं वे ऐश्वर्य्य को प्राप्त हों ॥१॥

युवमत्यस्याव नक्षथो यद्विपत्मनो नर्य्यस्य प्रयज्योः ।
स्वसा यद्वां विश्वगूर्त्ती भराति वाजायेट्टे मधुपाविषे च ॥ २ ॥

पदार्थ—हे स्त्री पुरुषो ! (यत्) जो (युवम्) तुम दोनों (प्रयज्योः) प्रयोग करने योग्य अर्थात् कार्य्य संचार में वर्त्तने योग्य (नर्यस्य) मनुष्यों में उत्तम (विपत्मनः) विशेष चलने वाले (अत्यस्य) घोड़े को (अव, नक्षथः) प्राप्त होते (यत्) जिस (विश्वगूर्त्ती) समस्त उद्यम के करने वाली (वाम्) तुम दोनों को (स्वसा) बहिन तुम्हारी (भराति) पाले पोषे (वाजाय, च) और विज्ञान होने के लिये (ईट्टे) तुम दोनों की स्तुति करती अर्थात् प्रशंसा करती वे (मधुपौ) मधुर मीठे को पीते हुए तुम दोनों (इषे) अन्नादि पदार्थों के होने के लिये उत्तम यत्न करो ॥ २ ॥

भावार्थ—जो स्त्री पुरुष अग्नि आदि पदार्थों को शीघ्रगामी करने की विद्या को जानें तो यथेष्ट स्थान को जा सकते हैं, जिसकी बहिन पण्डिता हो उसकी प्रशंसा क्यों न हो ? ॥ २ ॥

युवं पय उस्रियायामधत्तं पक्वमामायामव पूर्व्यं गोः ।
अन्तर्यद्वनिनो वामृतप्सू ह्वारो न शुचिर्यजते हविष्मान् ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (ऋतप्सू) जल खानेहारे स्त्रीपुरुषो ! (युवम्) तुम दोनों (शुचिः) पवित्र (हविष्मान्) शुद्ध सामग्री युक्त (ह्वारः) क्रोध के निवारण

करने वाले सज्जन के (न) समान (वाम्) तुम दोनों की (उस्रियायाम्) गौ में (यत्) जो (पयः) दुग्ध वा (आमायाम्) जो युवावस्था को नहीं प्राप्त हुई उस गौ में (पक्वम्) अवस्था से परिपक्व भाग (गोः) गौ का (पूर्व्यम्) पूर्वज लोगों ने प्रसिद्ध किया हुआ है वा (वनिनः) किरणों वाले सूर्यमण्डल के (अन्तः) भीतर अर्थात् प्रकाश रूप (यजते) प्राप्त होता है उसको (अधाधत्तम्) अच्छे प्रकार धारण करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे सूर्यमण्डल रस को खींचता है और चन्द्रमा वर्षाता पृथिवी की पुष्टि करता, जैसे अध्यापक उपदेश करने वाले वर्त्ताव रक्खें, जैसे क्रोधादि दोष रहित जन शान्तिआदि गुणों से सुखों को प्राप्त होते हैं वैसे तुम भी होओ ॥ ३ ॥

युवं ह घर्मं मधुमन्तमत्रयेऽपो न क्षोदोऽवृणीतमेषे ।
तद्वां नरावश्विना पश्वइष्टी रथ्येव चक्रा प्रति यन्ति मध्वः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (नरौ) नायक अग्रगन्ता (अश्विना) बिजुली आदि की विद्या में व्याप्त स्त्री पुरुषो ! (युवम्) तुम दोनों (एषे) सब ओर से इच्छा करते हुए (अत्रये) और भूत भविष्यत् वर्त्तमान तीनों काल में जिस को दुःख नहीं ऐसे सर्वदा सुखयुक्त रहने वाले पुरुष के लिये (मधुमन्तम्) मधुरादि गुणयुक्त (घर्मम्) दिन और (क्षोदः) जल को (अपः) प्राणों के (न) समान (अवृणीतम्) स्वीकार करो जिस कारण (वाम्) तुम दोनों की (पश्वइष्टिः) पशुकुल की सङ्गति (रथ्येव) रथों में उत्तम (चक्रा) पहियों के समान (मध्वः) मधुर फलों को (प्रति, यन्ति) प्रति प्राप्त होते हैं (तत्, ह) इस कारण प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। यदि स्त्रीपुरुष गृहाश्रम में मधुरादि रसों से युक्त पदार्थों और उत्तम पशुओं को रथ आदि यानों को प्राप्त होवें तो उन के सब दिन सुख से जावें ॥ ४ ॥

आ वां दानाय ववृतीय दस्रा गोरोहेण तौग्र्यो न जिव्रिः ।
अपः क्षोणी सचते माहिना वां जूर्णो वामक्षुरंहसो यजत्रा ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (दस्रा) दुःख दूर करने और (यजत्रा) सर्वव्यवहार की सङ्गति कराने वाले स्त्री पुरुषो ! (जिव्रिः) जीर्णवृद्ध (तौग्र्यः) बलवानों में बली जन के (न) समान मैं (गोरोहेण) पृथिवी के बीज स्थापन से (वाम्) तुम दोनों को (दानाय) देने के लिये (आववृतीय) अच्छे वर्त्तें जैसे (माहिना) बड़ी होने से (क्षोणी) भूमि (अपः) जलों का (सचते) सम्बन्ध करती है वैसे (जूर्णः)

रोगवान् मैं (वाम्) तुम्हारा सम्बन्ध करूं और (अक्तुः) व्याप्त होने को शील-स्वभाव वाला मैं (अंहसः) दुष्टाचार से (वाम्) तुम दोनों को अलग रखूं ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । विद्वान् जन स्त्री पुरुषों के लिये ऐसा उपदेश करें कि जैसे हम लोग तुम्हारे लिये विद्यायें देवें दुष्ट आचारों से अलग रक्खें वैसा तुम को भी आचरण करना चाहिये और पृथिवी के समान क्षमा तथा परोपकारादि कर्म करने चाहियें ॥ ५ ॥

नि यद्युवेथे नियुतः सुदानू उप स्वधाभिः सृजथः पुरंन्धिम् ।
प्रेषद्वेषद्वातो न सूरिरा महे ददे सुव्रतो न वाजम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—(यत्) जब हे (सुदानू) सुन्दर दानशील स्त्रीपुरुषो ! (नियुतः) पवन के वेगादि गुणों के समान निश्चित पदार्थों को (नियुवेथे) एक दूसरे से मिलाते हो तब (स्वधाभिः) अन्नादि पदार्थों से जिससे (पुरन्धिम्) प्राप्त होने योग्य विज्ञान को (उप, सृजथः) उत्पन्न करते हो वह (सूरिः) विद्वान् (प्रेषत्) प्रसन्न हो (वातः) पवन के (न) समान (वेषत्) सब ओर से गमन करे और (सुव्रतः) सुन्दर व्रत अर्थात् धर्म के अनुकूल नियमों से युक्त सज्जन पुरुष के (न) समान (महे) महत्व अर्थात् बडप्पन के लिये (वाजम्) विशेष ज्ञान को (आददे) ग्रहण करता हूं ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । पितादिकों को चाहिये कि शिल्पक्रिया की कुशलता को पुत्रादिकों में उत्पन्न करावें, शिक्षा को प्राप्त हुए पुत्रादि समस्त पदार्थों को विशेषता से जानें और कलायन्त्रों से चलाये हुए पवन के समान जिस में वेग उस यान से जहां तहां चाहे हुए स्थान को जावें ॥ ६ ॥

वयं चिद्धि वां जरितारः सत्या विपन्यामहे वि पणिर्हितावान् ।
अधा चिद्धि ष्मांश्विनावनिन्द्या पाथो हि ष्मा वृषणावन्तिदेवम् ॥७॥

पदार्थ—हे (अनिन्द्या) निन्दा के न योग्य (वृषणौ) बलवान् (अश्विनौ) समस्त पदार्थ गुण व्यापी स्त्रीपुरुषो ! तुम जैसे (हितावान्) हित जिसके विद्यमान वह (विपणिः) विशेषतर व्यवहार करने वाला जन (वाम्) तुम दोनों की प्रशंसा करता है वैसे हम लोग प्रशंसा करें । वा जैसे (चित्, हि) ही (जरितारः) स्तुति प्रशंसा करने और (सत्याः) सत्य व्यवहार वर्त्तने वाले (वयम्) हम लोग तुम दोनों की (विपन्यामहे) उत्तम स्तुति करते हैं वैसे (स्म, हि) ही (अन्तिदेवम्) विद्वानों में विद्वान् जन की सेवा करें वा जैसे (हि, स्म) ही आश्चर्यरूप

(पाथः) जल (चित्) निश्चय से तृप्ति करता है वैसे (अध) इसके अनन्तर विद्वानों का सत्कार करें ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि जैसे विद्वान् जन प्रशंसा करने योग्यों की प्रशंसा करते और निन्दा करने योग्यों की निन्दा करते हैं वैसे वर्त्ताव रक्खें ॥ ७ ॥

युवां चिद्धि ष्माश्विनावनु द्यून्विरुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ ।
अगस्त्यो नरां नृषु प्रशस्तः काराधुनीव चितयत्सहस्रैः ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (अश्विनौ) सूर्य और चन्द्रमा के तुल्य गुण वाले स्त्रीपुरुषो ! जैसे (युवां, चित्) तुम ही (हि, स्म) जिस कारण (विरुद्रस्य) विविध प्रकार से प्राण विद्यमान उस (प्रस्रवणस्य) उत्तमता से जाने वाले शरीर की (सातौ) संभक्ति में (अनु,द्यून्) प्रतिदिन अपने सन्तानों को उपदेश देओ वैसे उसी कारण (नराम्) मनुष्यों के बीच (नृषु) श्रेष्ठ मनुष्यों में (प्रशस्तः) उत्तम (अगस्त्यः) अपराध को दूर करने वाला जन (सहस्रैः) हज़ारों प्रकार से (काराधुनीव) शब्दों को कंपाते हुए वादित्र आदि के समान सब को (चितयत्) उत्तम चितावे ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जो स्त्रीपुरुष निरन्तर सूर्य और चन्द्रमा के समान अपने सन्तानों को विद्या और उत्तम उपदेशों से प्रकाशित कराते हैं वे प्रशंसावान् होते हैं ॥ ८ ॥

प्र यद्वहेथे महिना रथस्य प्र स्पन्द्रा याथो मनुषो न होता ।
धत्तं सूरिभ्य उत वा स्वश्व्यं नासत्या रयिषाचः स्याम ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (स्पन्द्रा) उत्तम चाल चलने और (नासत्या) सत्य स्वभावयुक्त स्त्री पुरुषो ! (यत्) जो तुम (होता) दान करने वाले (मनुषः) मनुष्य के (न) समान (महिना) बडप्पन के साथ (रथस्य) रमण करने योग्य विमानादि रथ को (प्रवहेथे) प्राप्त होते और (प्रयाथः) एक देश से दूसरे देश पहुँचाते हो वे आप (सूरिभ्यः) विद्वानों के लिये धन को (धत्तम्) धारण करो (उत, वा) अथवा (स्वश्व्यम्) सुन्दर घोड़ा जिसमें विराजमान उत्तम धनादि विभव को प्राप्त होओ जिससे हम लोग (रयिषाचः) धन के साथ सम्बन्ध करने वाले (स्याम) हों ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनुष्य जैसे अपने सुख के लिये जिन साधनों की इच्छा करें उन्हीं को औरों के आनन्द के लिये चाहें, जो सुपात्र पढ़ाने वालों को धनदान देते हैं वे श्रीमान् धनवान् होते हैं ॥ ९ ॥

तं वां रथं वयमद्या हुवेम स्तोमैरश्विना सुविताय नव्यम् ।
अरिष्टनेमिं परि द्यामियानं विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (अश्विना) सर्वगुणव्यापी पुरुषो ! (वयम्) हम लोग (अद्य) आज (सुविताय) ऐश्वर्य के लिये (स्तोमैः) प्रशंसाओं से (अरिष्टनेमिम्) दुःखनिवारक (नव्यम्) नवीन (द्याम्) आकाश को (परि, इयानम्) सब ओर से जाते हुए (तम्) उस पूर्व मन्त्रोक्त (वाम्) तुम दोनों के (रथम्) रथ को (हुवेम) स्वीकार करें तथा (इषम्) प्राप्तव्य सुख (वृजनम्) गमन और (जीरदानुम्) जीव को (विद्याम) प्राप्त होवें ॥ १० ॥

भावार्थ—मनुष्यों को सदैव नवीन नवीन विद्या के कार्य सिद्ध करने चाहियें जिससे इस संसार में प्रशंसा हो और आकाशादिकों में जाने से इच्छा-सिद्धि पाई जावे ॥ १० ॥

इस सूक्त में स्त्री पुरुषों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ अस्सीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अगस्त्य ऋषिः । अश्विनौ देवते । १ । ३ विराट् त्रिष्टुप् । २ । ४ । ६-९ निचृत् त्रिष्टुप् । ५ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कदु प्रेष्ठाविषां रयीणामध्वर्यन्ता यदुन्निनीथो अपाम् ।
अयं वां यज्ञो अकृत प्रशस्तिं वसुधिती अवितारा जनानाम् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (इषाम्) अन्न और (रयीणाम्) धनादि पदार्थों के विषय (प्रेष्ठौ) अत्यन्त प्रीति वाले (जनानाम्) मनुष्यों की (अवितारा) रक्षा और (वसुधिती) धनादि पदार्थों को धारण करने वाले अध्यापक और उपदेशको ! तुम (कत्, उ) कभी (अध्वर्यन्ता) अपने को यज्ञ की इच्छा करते हुए (यत्) जो (अपाम्) जल वा प्राणों की (उत् निनीथः) उन्नति को पहुँचाते अर्थात् अत्यन्त व्यवहार में लाते हैं सो (अयम्) यह (वाम्) तुम्हारा (यज्ञः) द्रव्यमय वा वाणीमय यज्ञ (प्रशस्तिम्) प्रशंसा को (अकृत) करता है ॥ १ ॥

भावार्थ—जब विद्वान् जन मनुष्यों को विद्याओं की प्राप्ति कराते हैं तब वे सब के पियारे ऐश्वर्यवान् होते हैं, जब पढ़ने और पढ़ाने से और सुगन्धादि पदार्थों के होम से जीवात्मा और जलों की शुद्धि कराते हैं तब प्रशंसा को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

आ वामश्वासः शुचयः पयस्पा वातरंहसो दिव्यासो अत्याः ।
मनोजुवो वृषणो वीतपृष्ठा एह स्वराजो अश्विना वहन्तु ॥ २ ॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जो (अश्वासः) शीघ्रगामी घोड़े (शुचयः) पवित्र (पयस्पाः) जल के पीने वाले (दिव्यासः) दिव्य (वातरंहसः) पवन के समान वेग वा (मनोजुवः) मनोवद्वेग वाले (वृषणः) परशक्ति बन्धक (वीतपृष्ठाः) जिन्हों से पृथिवी तल व्याप्त (स्वराजः) जो आप प्रकाशमान (अत्याः) निरन्तर जाने वाले (आ) अच्छे प्रकार हैं वे (इह) इस स्थान में (वाम्) तुम (अश्विना) अध्यापक और उपदेशकों को (आ, वहन्तु) पहुँचावें ॥ २ ॥

भावार्थ—विद्वान् जन जिन बिजुली आदि पदार्थों को गुण कर्म स्वभाव से जानें और उनका औरों के लिये भी उपदेश देवें जब तक मनुष्य सृष्टि की पदार्थविद्या को नहीं जानते तब तक संपूर्ण सुख को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

आ वां रथोऽवनिर्न प्रवत्वान्त्सृप्रवन्धुरः सुवितायं गम्याः ।
वृष्णः स्थातारा मनसो जवीयानहंपूर्वो यजतो धिष्ण्या यः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (स्थातारा) स्थित होने वाले (धिष्ण्या) धृष्टप्रगल्भ अध्यापक और उपदेशको ! (यः) जो (वाम्) तुम्हारा (अवनिः) पृथिवी के (न) समान (प्रवत्वान्) जिसमें प्रशस्त वेगादि गुण विद्यमान (सृप्रवन्धुरः) जो मिले हुए बन्धनों से युक्त (मनसः) मन से भी (जवीयान्) अत्यन्त वेगवान् (अहंपूर्वः) यह मैं हूं इस प्रकार आत्मज्ञान से पूर्ण (यजतः) मिला हुआ (रथः) रथ (सुविताय) ऐश्वर्य्य के लिये होता है जिसमें (वृष्णः) बलवान् (आ, गम्याः) चलाने को योग्य अग्न्यादि पदार्थ अच्छे प्रकार जोड़े जाते हैं उसको मैं सिद्ध करूं ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों से जो ऐश्वर्य्य की उन्नति के लिये पृथिवी के तुल्य वा मन के वेग के तुल्य वेगवान् यान बनाये जाते हैं वे यहां स्थिर सुख देने वाले होते हैं ॥ ३ ॥

इहेह जाता समवावशीतामरेपसा तन्वा३ नामभिः स्वैः ।
जिष्णुर्वामन्यः सुमखस्य सूरिर्दिवो अन्यः सुभगः पुत्र ऊहे ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (अरेपसा) निष्पाप सर्वगुणव्यापी अध्यापक और उपदेशक जन ! (इहेह) इस जगत् में (जाता) प्रसिद्ध हुए आप लोगो अपने (तन्वा) शरीर से और (स्वैः) अपने (नामभिः) नामों के साथ (सम्, अवावशीताम्) निरन्तर

कामना करने वाले हूजिये (वाम्) तुम में से (जिष्णुः) जीतने को स्वभाव वाला (अन्यः) दूसरा (सुमखस्य) सुख के (दिवः) प्रकाश से (सूरिः) विद्वान् (अन्यः) और (सुभगः) सुन्दर ऐश्वर्य्यवान् (पुत्रः) पवित्र करता है उस को (ऊहे) तर्कता हूं—तर्क से कहता हूं ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! इस सृष्टि में भूगर्भादि विद्या को जान के जो जीतने वाला अध्यापक बहुत ऐश्वर्य वाला सब का रक्षक पदार्थविद्या को तर्क से जाने वह प्रसिद्ध होता है ॥ ४ ॥

प्र वां निचेरुः ककुहो वशाँ अनु पिशङ्गरूपः सदनानि गम्याः ।
हरी अन्यस्य पीपयन्त वाजैर्मथ्ना रजांस्यश्विना वि घोषैः ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (अश्विना) पवन और सूर्य के समान अध्यापक और उपदेशको ! जिन (वाम्) तुम्हारा जैसे (पिशङ्गरूपः) पीला सुवर्ण आदि से मिला हुआ रूप है जिसका वह (ककुहः) सब दिशाओं को (निचेरुः) विचरने वाला (वशान्) वशवर्त्ति जनों को (अनु) अनुकूल वर्त्तता है उन में से प्रत्येक तुम (सदनानि) लोकों को (प्र, गम्याः) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ जैसे (अन्यस्य) और अर्थात् अपने से भिन्न पदार्थ की (हरी) धारण और आकर्षण के समान बल पराक्रम (वाजैः) वेगादि गुणों और (घोषैः) शब्दों से (मथ्ना) अच्छे प्रकार मथे हुए (रजांसि) लोकों को बढ़ाते हैं वैसे मनुष्य उन को (वि, पीपयन्त) विशेष कर परिपूर्ण करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे पवन सब को अपने वश में करता है तथा वायु और सूर्य लोक सब को धारण करते हैं वैसे विद्या धर्म्म को धारण कर तुम भी सुखी होओ ॥ ५ ॥

प्र वां शरद्वान्वृषभो न निष्षाट् पूर्वीरिषश्चरति मध्व इष्णन् ।
एवैरन्यस्य पीपयन्त वाजैर्वेषन्तीरूर्ध्वा नद्यो न आगुः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे अध्यापकोपदेशक जनो ! जैसे (वाम्) तुम्हारा (शरद्वान्) शरद् जो ऋतुएं वे जिसमें विद्यमान वह (वृषभः) वर्षा कराने वाला जो सूर्यमण्डल उस के (न) समान (निष्षाट्) निरन्तर सहनशील जन (पूर्वीः) अगले समय में प्राप्त हुई प्रजा (इषः) और जानने योग्य प्रजा जनों को (चरति) प्राप्त होता है वा (मध्वः) मधुर पदार्थों को (इष्णन्) चाहता हुआ (एवैः) प्राप्ति कराने वाले पदार्थों से (अन्यस्य) दूसरे की पिछली वा जानने योग्य अगली प्रजाओं को प्राप्त होता है वैसे (वाजैः) वेगों के साथ वर्त्तमान (ऊर्ध्वाः) ऊपर को जाने

वाली लपटें वा (वेषन्तीः) इधर उधर व्याप्त होने वाली (नद्यः) नदियां (नः) हम लोगों को (प्र, पीपयन्त) वृद्धि दिलाती हैं और (आगुः) प्राप्त होती हैं ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो आप्त अध्यापक और उपदेशकों से विद्याओं को प्राप्त हो के औरों को देते हैं वे अग्नि के तुल्य तेजस्वी शुद्ध होकर सब ओर से वर्त्तमान हैं ॥ ६ ॥

असर्जि वां स्थविरा वेधसा गीर्बाढे अश्विना त्रेधा क्षरन्ती ।
उपस्तुताववतं नाधमानं यामन्नयामञ्छृणुतं हवं मे ।। ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (वेधसा) प्राज्ञ उत्तम बुद्धि वाले (अश्विना) सत्योपदेशव्यापी अध्यापकोपदेशको ! (वाम्) तुम्हारी जो (स्थविरा) स्थूल और विस्तार को प्राप्त (त्रेधा) तीन प्रकारों से (क्षरन्ती) प्राप्त होती हुई (गीः) वाणी (बाढे) प्राप्ति कराने वाले व्यवहार में (असर्जि) रची गई उसको (उपस्तुतौ) अपने समीप दूसरे से प्रशंसा को प्राप्त होते हुए तुम दोनों (अवतम्) प्राप्त होओ तुम दोनों को (नाधमानम्) विद्या और ऐश्वर्य्ययुक्त संपादित करता हुआ अर्थात् तुम्हारे ऐश्वर्य्य को वर्णन करते हुए (मे) मेरे (हवम्) सुनने योग्य शब्द को (यामन्) सत्य मार्ग (अयामन्) और न जाने योग्य मार्ग में (शृणुतम्) सुनिये ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो श्रेष्ठ धर्मात्मा विद्वानों की वाणी को सुनते हैं वे कुमार्ग को छोड़ सुमार्ग को प्राप्त होते हैं जो मन और कर्म से झूठ बोलने को नहीं चाहते वे माननीय होते हैं ॥ ७ ॥

उत स्या वां रुशतो वप्ससो गीस्त्रिबर्हिषि सदसि पिन्वते नॄन् ।
वृषा वां मेघो वृषणा पीपाय गोर्न सेके मनुषो दशस्यन् ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (वृषणा) दुष्टों की सामर्थ्य बांधने वाले अध्यापकोपदेशको ! (वाम्) तुम दोनों के (रुशतः) प्रकाशित (वप्ससः) रूप की जो (गीः) वाणी है (स्या) वह (त्रिबर्हिषि) तीन वेदवेत्ता वृद्ध जिसमें उस (सदसि) सभा में (नॄन्) अग्रगन्ता मनुष्यों को (पिन्वते) सेवती है और (वाम्) तुम दोनों का जो (वृषा) सेचने में समर्थ (मेघः) मेघ के समान वाणी विषय (दशस्यन्) चाहे हुए फल को देता हुआ (गोः) पृथिवी के (सेके) सेचने में (न) जैसे वैसे अपने व्यवहार में (मनुषः) मनुष्यों की (पीपाय) उन्नति कराता है उस को (उत) भी हम सेवें ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्य जब सत्य कहते हैं तब उनके मुख की आकृति मलीन नहीं होती और जब झूंठ कहते हैं तब उनका

मुख मलीन हो जाता है । जैसे पृथिवी पर ओषधियों का बढ़ाने वाला मेघ है वैसे जो सभासद् उपदेश करने योग्यों को सत्य भाषण से बढ़ाते हैं वे सब हितैषी होते हैं ॥ ८ ॥

युवां पूषेवांश्विना पुरंन्धिरग्निमुषां न जंरते हविष्मान् ।

हुवे यद्वां वरिवस्या गृणानो विद्यामेषं वृजनं जीरदांनुम् ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे (**अश्विना**) सत्योपदेश और रक्षा करने वाले विद्वानो ! (**अग्निम्**) अग्नि और (**उषाम्**) प्रभात वेला को (**यत्**) जो (**पुरन्धिः**) जगत् को धारण करने और (**पूषेव**) पुष्टि करने वाले सूर्य के समान (**हविष्मान्**) प्रशस्त दान जिसके विद्यमान वह जन (**युवाम्**) तुम दोनों की (**न**) जैसे (**जरते**) स्तुति करता है वैसे (**वाम्**) तुम दोनों की (**वरिवस्या**) सेवा में हुए कर्मों की (**गृणानः**) प्रशंसा करता हुआ वह मैं तुम को (**हुवे**) स्वीकार करता हूँ ऐसे करते हुए हम लोग (**इषम्**) विज्ञान (**वृजनम्**) बल और (**जीर-दानुम्**) दीर्घजीवन को (**विद्याम**) जानें ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सूर्य सब की पुष्टि करने वाला अग्नि और प्रभात समय को प्रकट करता वैसे प्रशंसित दानशील पुरुष विद्वानों के गुणों को अच्छे प्रकार कहता है ॥ ९ ॥

इस सूक्त में अश्वि के दृष्टान्त से अध्यापक और उपदेशकों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की सङ्गति पिछले सूक्त के साथ समझनी चाहिये ॥

यह एकसौ इक्यासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अगस्त्य ऋषिः । अश्विनौ देवते । १ । ५ । ७ निचृज्जगती । ३ जगती । ४ विराट् जगती छन्दः । निषादः स्वरः । २ स्वराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ६ । ८ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अभूदिदं वयुनमो षु भूषता रथो वृषंण्वान्मदंता मनीषिणः ।

धियंजिन्वा धिष्ण्या विश्पलांवसू दिवो नपांता सुकृते शुचिंव्रता ॥१॥

पदार्थ—(**ओ**) ओ (**मनीषिणः**) धीमानो ! जिनसे (**इदम्**) यह (**वयुनम्**) उत्तम ज्ञान (**अभूत्**) हुआ और (**वृषण्वान्**) यानों की वेगशक्ति को बांधने वाला (**रथः**) रथ हुआ उन (**सुकृते**) सुकर्मरूप शोभन मार्ग में (**धियं-**

जिव्हा) बुद्धि को तृप्त रखते (दिवः) विद्यादि प्रकाश के (नपाता) पवन से रहित (धिष्ण्या) दृढ़ प्रगल्भ (शुचिव्रता) पवित्र कर्म करने के स्वभाव से युक्त (विश्पलावसू) प्रजाजनों की पालनकरने और वसाने वाले अध्यापक और उपदेशकों को तुम (सु, भूषत) सुशोभित करो और उन के सङ्ग से (मदत) आनन्दित होओ ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! वे श्रेष्ठ अध्यापक और उपदेशक नहीं हैं कि जिन के सङ्ग से प्रजा पालना, सुशीलता, ईश्वरधर्म और शिल्पव्यवहार की विद्या न बढ़ें ॥ १ ॥

इन्द्रतमा हि धिष्ण्या मरुत्तमा दस्रा दंसिष्ठा रथ्या रथीतमा ।
पूर्णं रथं वहेथे मध्व आचितं तेन दाश्वांसमुप याथो अश्विना ॥२॥

पदार्थ—हे (अश्विना) अध्यापकोपदेशक जनो ! (हि) तुम्हीं (इन्द्रतमा) अतीव ऐश्वर्ययुक्त (धिष्ण्या) प्रगल्भ (मरुत्तमा) अत्यन्त विद्वानों को साथ लिये हुए (दस्रा) दुःख के दूर करने वाले (दंसिष्ठा) अतीव पराक्रमी (रथ्या) रथ चलाने में श्रेष्ठ और (रथीतमा) प्रशंसित पराक्रमयुक्त हों और (मध्वः) मधु से (आचितम्) भरे हुए (पूर्णम्) शस्त्र और अस्त्रों से परिपूर्ण जिस (रथम्) रथ को (वहेथे) प्राप्त होते हो (तेन) और उस से (दाश्वांसम्) विद्या देने वाले जन के (उप, याथः) समीप जाते हो वे हम लोगों को नित्य सत्कार करने योग्य हों ॥ २ ॥

भावार्थ—जो विजुली अग्नि जल और वायु इनसे चलाये हुए रथ पर स्थित हो देशदेशान्तर को जाते हैं वे परिपूर्ण धन जोतने वाले होते हैं ॥ २ ॥

किमत्र दस्रा कृणुथः किमासाथे जनो यः कश्चिदहविर्महीयते ।
अति क्रमिष्टं जुरतं पणेरसुं ज्योतिर्विप्राय कृणुतं वचस्यवे ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (दस्रा) दुःख के नाश करने वाले अध्यापक उपदेशको ! तुम (यः) जो (कः, चित्) कोई ऐसा है कि (अहविः) जिसके लेना वा भोजन करना नहीं विद्यमान हैं वह (जनः) मनुष्य (महीयते) अपने को त्यागबुद्धि से बहुत कुछ मानता है उस (वचस्यवे) अपने को वचन की इच्छा करते हुए (विप्राय) मेधावी उत्तम धीरबुद्धि पुरुष के लिये (ज्योतिः) प्रकाश (कृणुतम्) करो अर्थात् विद्यादि सद्गुणों का आविर्भाव करो और (पणेः) सत् और असत् पदार्थों का व्यवहार करने वाले जन की (असुम्) बुद्धि को (अति, क्रमिष्टम्) अतिक्रमण करो और (जुरतम्) नाश करो अर्थात् उसकी अच्छे काम में लगने

वाली बुद्धि को विवेचन करो और असत् काम में लगी हुई बुद्धि को विनाशो तथा (किम्) क्या (अत्र) इस व्यवहार में (आसाथे) स्थिर होते और (किम्) क्या (कृणुथः) करते हो ? ॥ ३ ॥

भावार्थ—अध्यापक और उपदेशक जैसे आप्त विद्वान् सब के सुख के लिये उत्तम यत्न करता है वैसे अपना वर्त्ताव वर्त्तें ॥ ३ ॥

जम्भयंतमभितो रायंतः शुनों हृतं मृधों विदथुस्तान्यंश्विना ।
वाचंवाचं जरितू रत्निनीं कृतमुभा शंसं नासत्यावतं मम ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (नासत्या) सत्य व्यवहार वर्त्तने और (अश्विना) विद्या बल में व्याप्त होने वाले सज्जनो ! जो तुम (रायतः) भौंकते हुए मनुष्यभक्षी दुष्ट (शुनः) कुत्तों को (अभितः, जम्भयतम्) सब ओर से विनाशो तथा (मृधः) संग्रामों को (हतम्) विनाशो और (तानि) उन सब कामों को (विदथुः) जानते हो तथा (जरितुः) स्तुति प्रशंसा करने वाले अध्यापक और उपदेशक से (रत्निनीम्) रमणीय (वाचंवाचम्) वाणी वाणी को जानते हो और (शंसम्) स्तुति (कृतम्) करो वे (उभा) दोनों तुम (मम) मेरी वाणी को (अवतम्) तृप्त करो ॥ ४ ॥

भावार्थ—जिनका दुष्टों के बांधने शत्रुओं के जीतने और विद्वानों के उपदेश के स्वीकार करने में सामर्थ्य है वे ही हम लोगों के रक्षक होते हैं ॥ ४ ॥

युवमेतं चंक्रथुः सिन्धुंषु प्लवमात्मन्वन्तं पक्षिणं तौग्र्याय कम् ।
येनं देवत्रा मनंसा निरूहथुंः सुपप्तनी पेंतथुः क्षोदंसो महः ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे उक्त गुण वाले अध्यापकोपदेशको ! (युवम्) तुम (सिन्धुषु) नदी वा समुद्रों में (तौग्र्याय) बलवानों में प्रसिद्ध हुए जन के लिये (एतम्) इस (आत्मन्वन्तम्) अपने जनों से युक्त (पक्षिणम्) और पक्ष जिसमें विद्यमान ऐसे (कम्) सुखकारी (प्लवम्) उस नौकादि यान को जिससे पार अवार अर्थात् इस पार उस पार जाते हैं (चक्रथुः) सिद्ध करो कि (येन) जिससे (देवत्रा) देवों में (मनसा) विज्ञान के साथ (सुपप्तनी) जिनका सुन्दर गमन है वे आप (निरूहथुः) निरन्तर उस नौकादि यान को बहाइये और (महः) बहुत (क्षोदसः) जल के (पेतथुः) पार जावें ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो जन लम्बी चौड़ी ऊंची नावों को रच के समुद्र के बीच जाना आना करते हैं वे आप सुखी होकर औरों को सुखी करते हैं ॥ ५ ॥

अवविद्धं तौग्र्यमप्स्व१न्तरनारम्भणे तमसि प्रविद्धम् ।
चतस्रो नावो जठलस्य जुष्टा उदश्विभ्यामिषिताः पारयन्ति ॥ ६ ॥

पदार्थ—जो (अश्विभ्याम्) वायु और अग्नि से (इषिताः) प्रेरणा दिई हुई अर्थात् पवन और अग्नि के बल से चली हुई एक एक चौतरफी (चतस्रः) चार चार (नावः) नावें (जठलस्य) उदर के समान समुद्र में (जुष्टाः) सेवन किई हुई (अनारम्भणे) जिसका अविद्यमान आरम्भण उस (तमसि) अन्धकार में (प्रविद्धम्) अच्छे प्रकार व्यथित (अप्सु) जलों के (अन्तः) भीतर (अवविद्धम्) विशेष पीड़ा पाये हुए (तौग्र्यम्) बल को ग्रहण करने वालों में प्रसिद्ध जन को (उत्पारयन्ति) उत्तमता से पार पहुंचाती हैं वे विद्वानों को बनानी चाहियें ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्य जब नौका में बैठ के समुद्र के मार्ग से जाने की इच्छा करें तब बड़ी नाव के साथ छोटी छोटी नावें जोड़ समुद्र में जाना आना करें ॥ ६ ॥

कः स्विद्वृक्षो निष्ठितो मध्ये अर्णसो
यं तौग्र्यो नाधितः पर्यषस्वजत् ।
पर्णा मृगस्य पतरोरिवारभ उदश्विना ऊहथुः श्रोमताय कम् ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (अश्विना) जल और अग्नि के समान विमानादि यानों के रचने और पहुँचाने वाले विद्वानो ! (अर्णसः) जल के (मध्ये) बीच में (कः, स्वित्) कौन (वृक्षः) वृक्ष (निष्ठितः) निरन्तर स्थिर हो रहा है (यम्) जिस को (नाधितः) कष्ट को प्राप्त (तौग्र्यः) बलवानों में प्रसिद्ध हुआ पुरुषः (पर्यषस्वजत्) लगता अर्थात् जिसमें अटकता है और (मृगस्य) शुद्ध करने योग्य (पतरोरिव) जाते हुए प्राणी के (पर्णा) पङ्खों के समान (श्रोमताय) प्रशस्त कीर्त्तियुक्त व्यवहार के लिये (आरभे) आरम्भ करने को (कम्) कौन यान को (उत्, ऊहथुः) ऊपर के मार्ग से पहुँचाते हो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे नौका पर जाने वालो ! समुद्र में कोई वृक्ष है जिस में बन्धी हुई नौका स्थिर हों वहां नहीं वृक्ष और न आधार है किन्तु नौका ही आधार, वल्ली ही खम्भे हैं ऐसे ही जैसे पखेरू ऊपर को जाय फिर नीचे आते हैं वैसे ही विमानादि यान हैं ॥ ७ ॥

तद्वां नरा नासत्यावनु ष्याद्यद्वां मानास उचथमवोचन् ।
अस्मादद्य सदसः सोम्यादा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (नरा) नायक अग्रगामी (नासत्यौ) असत्य आचरण से रहित अध्यापकोपदेशको ! (यत्) जो (वाम्) तुम दोनों को (अनु, ष्यात्) चाहते हुए के अनुकूल हो (तत्) वह आप लोगों को हो अर्थात् परिपूर्ण हो और (मानासः) विचारशील सज्जन पुरुष (यत्) जिस (उचथम्) कहने योग्य विषय को (अवोचन्) कहें उसको तुम दोनों ग्रहण करो जैसे (अद्य) आज (तस्मात्) इस (सोम्यात्) सोम गुण सम्पन्न (सदसः) सभास्थान से (इषम्) इच्छासिद्धि (वृजनम्) बल (जीरदानुम्) जीवन के उपाय को हम लोग (आ) (विद्याम) प्राप्त होवें ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को यह अच्छे प्रकार उचित है कि अपने प्रयोजन को चाहें तथा परोपकार भी चाहें और विद्वान् जन जिस जिस का उपदेश करें उस उस को प्रीति से सब लोग ग्रहण करें ॥ ८ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ बयासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अगस्त्य ऋषिः । अश्विनौ देवते १ । ४ । ६ त्रिष्टुप् । २ । ३ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

तं युञ्जाथां मनसो यो जवीयान् त्रिवन्धुरो वृषणा यस्त्रिचक्रः ।
येनोपयाथः सुकृतो दुरोणं त्रिधातुना पतथो विर्न पर्णैः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (वृषणा) बलवान् सर्वविद्यासम्पन्न शिल्पविद्या के अध्यापकोपदेशको ! तुम (यः) जो (पर्णैः) पङ्खों से (विः, न) पखेरू के समान (मनसः) मन से (जवीयान्) अत्यन्त वेग वाला (त्रिवन्धुरः) और तीन बन्धन जिसमें विद्यमान (यः) तथा जो (त्रिचक्रः) तीन चक्कर वाला रथ है (येन) जिस (त्रिधातुना) तीन धातुओं वाले रथ से (सुकृतः) धर्मात्मा पुरुष के (दुरोणम्) घर को (उपयाथः) निकट जाते हो (तम्) उसको (युञ्जाथाम्) जोड़ो जोतो ॥ १ ॥

भावार्थ—जो शीघ्र ले जाने और पखेरू के समान आकाश में चलाने वाले साङ्गोपाङ्ग अच्छे बने हुए रथ को नहीं सिद्ध करते हैं वे कैसे ऐश्वर्य को पावें ? ॥ १ ॥

सुवृद्रथो वर्त्तते यन्नभि क्षां यत्तिष्ठथः क्रतुमन्ता नु पृक्षे ।
वपुर्वपुष्या सचतामियं गीर्दिवो दुहित्रोषसा सचेथे ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (क्रतुमन्ता) बहुत उत्तम बुद्धियुक्त रथों के चलाने और सिद्ध करने वाले विद्वानो ! तुम (सुवृत्) सुन्दरता से स्वीकार करने (रथः) और रमण करने योग्य रथ (क्षाम्) पृथिवी को (यन्) जाता हुआ (अभि) सब ओर से (वर्त्तते) वर्त्तमान है (यत्) जिस में (पृक्षे) दूसरों के सम्बन्ध में तुम लोग (तिष्ठथः) स्थिर होते हो और जो (वपुः) रूप है अर्थात् चित्रसा बन रहा है उस सब से (वपुष्या) सुन्दर रूप में प्रसिद्ध हुए व्यवहारों का (अनु, सचताम्) अनुकूलता से सम्बन्ध करो । और जैसे (इयम्) यह (गीः) सुशिक्षित वाणी और कहने वाला पुरुष (दिवः) सूर्य की (दुहित्रा) कन्या के समान वर्त्तमान (उषसा) प्रभात वेला से तुम दोनों को (सचेथे) संयुक्त होते हैं वैसे कैसे न तुम भाग्यशाली होते हो ? ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्य जिस यान से जाने को चाहैं वह सुन्दर पृथिव्यादिकों में शीघ्र चलने योग्य प्रभात वेला के समान प्रकाशमान जैसे वैसे अच्छे विचार से बनावें ॥ २ ॥

आ तिष्ठतं सुवृतं यो रथो वामनु व्रतानि वर्त्तते हविष्मान् ।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्त्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (नरा) अग्रगामी नायक (नासत्या) सत्य विद्या क्रियायुक्त पुरुषो ! (यः) जो (हविष्मान्) बहुत खाने योग्य पदार्थों वाला (रथः) रथ (वाम्) तुम दोनों के (अनु, वर्त्तते) अनुकूल वर्त्तमान है (येन) जिस से (इषयध्यै) ले जाने को (व्रतानि) शील उत्तम भावों को बढ़ा कर (तनयाय) सन्तान के लिये (च) और (त्मने) अपने लिये भी (वर्त्तिः) मार्ग को (याथः) जाते हो (सुवृतम्) उस सर्वाङ्ग सुन्दर रथ को तुम दोनों (आ, तिष्ठतम्) अच्छे प्रकार स्थिर होओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्य अपने सन्तानों की सुखोन्नति के लिये अच्छा दृढ़ लम्बे चौड़े साङ्गोपाङ्ग सामग्री से पूर्ण शीघ्र चलने वाले भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य अर्थात् चट पट खाने उत्तमता से धीरज में खाने, चाटने और चूषने

योग्य पदार्थों से युक्त रथ से पृथिवी समुद्र और आकाश मार्गों में अति उत्त-मता से सावधानी के साथ जावें और आवें ॥ ३ ॥

मा वां वृको मा वृकीरा दधर्षीन्मा परि वर्क्तमुत माति धक्तम् ।
अयं वां भागो निहित इयं गीर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥४॥

पदार्थ—हे (**दस्रौ**) दुःखनाशक शिल्पविद्याऽध्यापक उपदेशको ! (**वाम्**) तुम दोनों के (**इमे**) ये (**मधूनाम्**) मधुरादि गुणयुक्त पदार्थों के (**निधयः**) राशी समूह (**वाम्**) तुम दोनों का (**अयम्**) यह (**भागः**) सेवने योग्य अधिकार (**निहितः**) स्थापित और (**इयम्**) यह (**गीः**) वाणी है तुम दोनों हम को (**मा, परि, वर्क्तम्**) मत छोड़ो (**उत**) और (**मा, अति,धक्तम्**) मत विनाशो और जिस से (**वाम्**) तुम दोनों को (**वृकः**) चोर, ठग, गठकटा आदि दुष्ट जन (**मा**) मत (**वृकीः**) चोरी, ठगी, गठकटी आदि दुष्ट औरतें (**मा, आ, दधर्षीत्**) मत विनाशें मत नष्ट करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्य जब घर में निवास करें वा यानों में और वन में प्रतिष्ठित होवें तब भोग करने के लिये पूर्ण भोग और उपभोग योग्य पदार्थों शस्त्र वा अस्त्रों और वीरसेना को संस्थापन कर निवास करें वा जावें जिस से कोई विघ्न न हो ॥ ४ ॥

युवां गोतमः पुरुमीळ्हो अत्रिर्दस्रा हवतेऽवसे हविष्मान् ।
दिशं न दिष्टामृजूयेव यन्ता मे हवं नासत्योप यातम् ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (**दस्रा**) दुःख दारिद्र्य विनाशने (**नासत्या**) सत्यप्रिय शिल्प-विद्याऽध्यापकोपदेशक विद्वानो ! (**युवाम्**) तुम दोनों (**यः**) जो (**हविष्मान्**) प्रशंसित ग्रहण करने योग्य (**पुरुमीळ्हः**) बहुत पदार्थों से सींचा हुआ (**अत्रिः**) निरन्तर गमनशील (**गोतमः**) मेधावी जन (**अवसे**) रक्षा आदि के लिये (**हवते**) उत्तम पदार्थों को ग्रहण करता है वैसे और जैसे (**यन्ता**) नियमकर्त्ता जन (**ऋजूयेव**) सरल मार्ग से जैसे तैसे (**दिष्टाम्**) निर्देश किई (**दिशम्**) पूर्वादि दिशा के (**न**) समान (**मे**) मेरे (**हवम्**) दान को (**उप, आ, यातम्**) अच्छे प्रकार समीप प्राप्त होओ ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे नौकादि यान से जाने वाले जन सरल मार्ग से बताई हुई दिशा को जाते हैं वैसे सीखने वाले विद्यार्थी जन आप्त विद्वानों के समीप जावें ॥ ५ ॥

अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (अश्विनौ) शिल्पविद्याव्यापी सज्जनो ! जैसे (इह) यहां (वाम्) तुम दोनों का (स्तोमः) स्तुति योग्य व्यवहार (अधायि) धारण किया गया वैसे तुम्हारे (प्रति) प्रति हम (अस्य) इस (तमसः) अन्धकार के (पारम्) पार को (अतारिष्म) तरें पहुँचें जैसे हम (इषम्) इच्छासिद्धि (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) जीवन को (विद्याम) प्राप्त होवें वैसे तुम दोनों (देवयानैः) विद्वान् जिन मार्गों से जाते उन (पथिभिः) मार्गों से हम लोगों को (आ, यातम्) प्राप्त होओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो अतीव शिल्पविद्यावेत्ता जन हों वे ही नौकादि यानों से भू समुद्र और अन्तरिक्ष मार्गों से पार अवार लेजा लेआ सकते हैं, वे ही विद्वानों के मार्गों में अग्नि आदि पदार्थों से बने हुए विमान आदि यानों से जाने को योग्य हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त में विद्वानों की शिल्पविद्या के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह एकसौ तिरासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अगस्त्य ऋषिः । अश्विनौ देवते । १ पङ्क्तिः । ४ भुरिक् पङ्क्तिः । ५—६ निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । ३ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

ता वामद्य तावपरं हुवेमोच्छन्त्यामुषसि वह्निरुक्थैः ।
नासत्या कुह चित्सन्तावर्यो दिवो नपाता सुदास्तराय ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (नपाता) जिनका पात विद्यमान नहीं वे (नासत्या) मिथ्या व्यवहार से अलग हुए सत्यप्रिय विद्वानो ! हम लोग (अद्य) आज (उच्छन्त्याम्) नाना प्रकार का वास देने वाली (उषसि) प्रभात वेला में (ता) उन (वाम्) तुम दोनों महाशयों को (हवेम) स्वीकार करें (तौ) और उन आप को (अपरम्) पीछे भी स्वीकार करें तुम (कुह, चित्) किसी स्थान में (सन्तौ) हुए हो और जैसे (वह्निः) पदार्थों को एक स्थान को पहुंचाने वाले अग्नि के समान (अर्य्यः) वणियां (सुदास्तराय) अतीव सुन्दरता से उत्तम देने वाले के लिये (उक्थैः) प्रशंसा करने के योग्य वचनों से (दिवः) व्यवहार के बीच वर्त्तमान है वैसे हम लोग वर्त्तें ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् जन आकाश और पृथिवी से उपकार करते हैं वैसे हम लोग विद्वानों से उपकार को प्राप्त हुए वर्त्तें ॥ १ ॥

अस्मे ऊ षु वृषणा मादयेथामुत्पणीँर्हतमूर्म्या मदन्ता ।
श्रुतं मे अच्छोक्तिभिर्मतीनामेष्टा नरा निचेतारा च कर्णैः ॥ २ ॥

पदार्थ—(**वृषणा**) बलवान् (**निचेतारा**) नित्य ज्ञानवान् और ज्ञान के देने वाले (**नरा**) अग्रगामी विद्वानो ! तुम (**पणीन्**) प्रशंसित व्यवहार करने वाले (**अस्मे**) हम लोगों को (**सु, मादयेथाम्**) सुन्दरता से आनन्दित करो (**ऊर्म्या**) और रात्रि के साथ (**मदन्ता**) आनन्दित होते हुए तुम लोग दुष्टों का (**उत्, हतम्**) उद्धार करो अर्थात् उनको उस दुष्टता से बचाओ और (**मतीनाम्**) मनुष्यों की (**अच्छोक्तिभिः**) अच्छी उक्तियों अर्थात् सुन्दर वचनों से जो मैं (**एष्टा**) विवेक करने वाला हूं उस (**च, मे**) मेरी भी सुन्दर उक्ति को (**कर्णैः**) कानों से (**उ, श्रुतम्**) तर्क वितर्क के साथ सुनो ॥ २ ॥

भावार्थ—जैसे अध्यापक और उपदेश करने वाले जन पढ़ाने और उपदेश सुनाने योग्य पुरुषों को वेदवचनों से अच्छे प्रकार ज्ञान देकर विद्वान् करते हैं वैसे उन के वचन को सुन के वे सब काल में सब को आनन्दित करने योग्य हैं ॥ २ ॥

श्रिये पूषन्निषुकृतेव देवा नासत्या वहतुं सूर्यायाः ।
वच्यन्ते वां ककुहा अप्सु जाता युगा जूर्णेव वरुणस्य भूरेः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (**पूषन्**) पुष्टि करने वाले ! तू (**देवा**) देने वाले (**नासत्या**) मिथ्या व्यवहार के विरोधी अध्यापक उपदेशक (**सूर्यायाः**) सूर्य की क्रान्ति की (**वहतुम्**) प्राप्ति करने वाले व्यवहार को (**इषुकृतेव**) जैसे बाणी से सिद्ध किये हुए दो पदार्थ हों वैसे (**श्रिये**) लक्ष्मी के लिये प्रयत्न कर। और हे अध्यापक उपदेशको ! (**अप्सु**) अन्तरिक्ष प्रदेशों में (**जाताः**) प्रसिद्ध हुई (**ककुहाः**) दिशा (**वरुणस्य**) उत्तम सज्जन वा जल के (**भूरेः**) बहुत उत्कर्ष से (**युगा**) वर्षों जो (**जूर्णेव**) पुरातन व्यतीत हुईं उनके समान (**वाम्**) तुम दोनों की (**वच्यन्ते**) प्रशंसा करती हैं अर्थात् दिशा दिशान्तरों में तुम्हारी प्रशंसा होती है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसी बाणकृत सेना अर्थात् बाण के समान प्रेरणा दिई हुई सेना शत्रुओं को जीतती है वैसे धन के श्रेष्ठ उपाय को शीघ्र ही करे, काल के विशेष विभागों में जो

दिन हैं उन में कार्य जैसे बनते हैं वैसे रात्रि भागों में नहीं उत्पन्न होते हैं, श्रेष्ठ गुणीजनों की सब जगह प्रशंसा होती है ॥ ३ ॥

अस्मे सा वां माध्वी रातिरस्तु स्तोमं हिनोतं मान्यस्य कारोः ।
अनु यद्वां श्रवस्या सुदानू सुवीर्याय चर्षणयो मदन्ति ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (**सुदानू**) अच्छे देने वाले ! जो (**वाम्**) तुम दोनों की (**माध्वी**) मधुरादि गुणयुक्त (**रातिः**) देनि वर्त्तमान है (**सा**) वह (**अस्मे**) हम लोगों के लिये (**अस्तु**) हो । और तुम (**मान्यस्य**) प्रशंसा के योग्य (**कारोः**) कार करने वाले की (**स्तोमम्**) प्रशंसा को (**हिनोतम्**) प्राप्त होओ और (**श्रवस्या**) अपने को सुनने की इच्छा से (**यत्**) जिन (**वाम्**) तुम को (**सुवीर्याय**) उत्तम पराक्रम के लिये (**चर्षणयः**) साधारण मनुष्य (**अनु, मदन्ति**) अनुमोदन देते हैं तुम्हारी कामना करते हैं उनको हम भी अनुमोदन देवें ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो आप्त श्रेष्ठ सद्धर्मी सज्जनों की नीति और विद्वानों की स्तुति मनोहर हो वह उत्तम पराक्रम के लिये समर्थ होती है ॥ ४ ॥

एष वां स्तोमो अश्विनावकारि मानेभिर्मघवाना सुवृक्ति ।
यातं वर्त्तिस्तनयाय त्मने चागस्त्ये नासत्या मदन्ता ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (**मघवाना**) परमपूजित अध्यापकोपदेशको ! (**एषः**) यह (**वाम्**) तुम दोनों की (**स्तोमः**) प्रशंसा (**मानेभिः**) जो मानते हैं उन्हीं ने (**सुवृक्ति**) सुन्दर त्याग जैसे हो वैसे (**अकारि**) किई है अर्थात् कुछ मुखदेखी मिथ्या प्रशंसा नहीं किई । और हे (**नासत्या**) सत्य में निरन्तर स्थिर रहने वाले (**अश्विनौ**) अध्यापक उपदेशक लोगो ! (**अगस्त्ये**) अपराध रहित मार्ग में (**मदन्ता**) शुभ कामना करते हुए तुम (**तनयाय**) उत्तम सन्तान और (**त्मने, च**) अपने लिये (**वर्त्तिः**) अच्छे मार्ग को (**यातम्**) प्राप्त होओ ॥ ५ ॥

भावार्थ—वही स्तुति होती है जिसको विद्वान् जन मानते हैं, वैसा ही परोपकार होता है जैसा अपने सन्तान और अपने लिये चाहा जाता है और वही धर्ममार्ग हो कि जिसमें श्रेष्ठ धर्मात्मा विद्वान् जन चलते हैं ॥ ५॥

अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (**अश्विनौ**) विशेष उपदेश देने वाले ! (**इह**) इस जानने योग्य व्यवहार में जो (**स्तोमः**) प्रशंसा (**वाम्**) तुम दोनों के (**प्रति**) प्रति

(अधायि) धारण किई गई उससे (अस्य) इस (तमसः) अविद्यान्धकार के (पारम्) पार को (अतारिष्म) पहुँचें जैसे तुम (देवयानैः) आप्त विद्वान् जिन में जाते हैं उन (पथिभिः) मार्गों से (इषम्) इष्ट सुख (वृजनम्)शारीरिक और आत्मिक बल तथा (जीरदानुम्) जीवात्मा को (आ, यातम्) प्राप्त होओ वैसे इस को हम भी (विद्याम) प्राप्त होवें ॥ ६ ॥

भावार्थ—वे ही विद्या के परमपार मनुष्यों को पहुंचा सकते हैं जो धर्म मार्ग से ही चलते हैं और यथार्थ के उपदेशक भी हैं ॥ ६॥

इस सूक्त में अध्यापक और उपदेशकों के लक्षणों को कहने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये ॥

यह एकसौ चौरासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अगस्त्य ऋषिः । द्यावापृथिव्यौ देवते । १ । ६—८ । १० । ११ त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ३—५ । ९ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कतरा पूर्वा कतरापरायोः कथा जाते कवयः को वि वेद ।
विश्वं त्मना बिभृतो यद्ध नाम वि वर्त्तेते अहनी चक्रियेव ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (कवयः) विद्वान् पुरुषो ! (अयोः) द्यावापृथिवी में वा कार्य कारणों में (कतरा) कौन (पूर्वा) पूर्व (कतरा) कौन (अपरा) पीछे है ये द्यावापृथिवी वा संसार के कारण और कार्यरूप पदार्थ (कथा) कैसे (जाते) उत्पन्न हुए इस विषय को (कः) कौन (वि, वेद) विविध प्रकार से जानता है (त्मना) आप प्रत्येक (यत्) जो (ह) निश्चित (विश्वम्) समस्त जगत् (नाम) प्रसिद्ध है उसको (बिभृतः) धारण करते वा पुष्ट करते हैं और वे (अहनी) दिन रात्रि (चक्रियेव) चाक के समान घूमते वैसे (वि वर्त्तेते) विविध प्रकार से वर्त्तमान है ॥ १ ॥

भावार्थ—हे विद्वानो ! जो इस जगत् में द्यावापृथिवी और जो प्रथम कारण और परकार्य्यरूप पदार्थ हैं तथा जो आधाराधेय सम्बन्ध से दिन रात्रि के समान वर्त्तमान हैं उन सब को तुम जानो ॥ १ ॥

भूरिं द्वे अचरन्ती चरन्तं पद्वन्तं गर्भमपदी दधाते ।
नित्यं न सूनुं पित्रोरुपस्थे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ २ ॥

पदार्थ—हे (द्यावापृथिवी) द्यावापृथिवी के समान वर्त्तमान मातापितरो ! जैसे (अचरन्ती) इधर उधर अपनी कक्षा को छोड़ न जाने वाले (अपदी) पैरों

से रहित (द्वे) दोनों द्यावापृथिवी (भूरिम्) बहुत (पद्वन्तम्) पग वाले (चरन्तम्) चलते हुए (गर्भम्) कार्य्यरूप जगत् को (पित्रोः) माता पिता के (उपस्थे) गोद में नित्य (सूनुम्) पुत्र के (न) समान (दधाते) धारण करते हैं वैसे (अभ्वात्) मिथ्याचरण से उत्पन्न हुए दुःख से (नः) हम लोगों की (रक्षतम्) रक्षा करो ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे भूमि सूर्य दृढ़ होते हुए स्थावर, जङ्गम, चर, अचर, जगत् को बहुत प्रकार से पाल के बढ़ाते हैं वैसे माता, पिता, अतिथि, आचार्य्य, सन्तान और शिष्यों की अच्छे प्रकार रक्षा कर विद्या और उत्तम शिक्षा से बढ़ावें ॥ २ ॥

अनेहो दात्रमदितेरनर्वं हुवे स्वर्वदवधं नमस्वत् ।
तद्रोदसी जनयतं जरित्रे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ३ ॥

पदार्थ—मैं (अदितेः) पृथिवी वा सूर्य के (अनेहः) न विनाशने योग्य (अनर्वम्) जिसमें अश्व का सम्बन्ध नहीं ऐसे (स्वर्वत्) सुखयुक्त तथा (अवधम्) जिस का नाश नहीं (नमस्वत्) जिसमें प्रशंसित अन्न विद्यमान उस (दात्रम्) दानपात्रमात्र का (हुवे) स्वीकार करता हूँ। हे (रोदसी) दिन रात्रि के समान वर्त्तमान माता पिताओ ! (तत्) उस दान कर्म को (जरित्रे) स्तुति करते हुए मेरे लिये (जनयतम्) उत्पन्न करो। हे (द्यावापृथिवी) द्यावापृथिवी के समान वर्त्तमान माता पिताओ ((नः) हम लोगों को (अभ्वात्) अधर्म्म से (रक्षतम्) बचाओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो ये भूमि सूर्य और प्रत्यक्ष पदार्थ दीखते हैं वे अविनाशी अनादिकारण से हुए हैं ऐसा जानना चाहिए ॥ ३ ॥

अतप्यमाने अवसावन्ती अनु ष्याम रोदसी देवपुत्रे ।
उभे देवानामुभयेभिरह्नां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (अतप्यमाने) सन्तापरहित (अवसा) रक्षा आदि (अवन्ती) रक्षा करती हुई (देवपुत्रे) देव जो परमात्मा उस के पुत्र के समान वर्त्तमान (उभे) दोनों (रोदसी) प्रकाशभूमि (अह्नाम्) दिनों के बीच (उभयेभिः) स्थावर और जङ्गमों के साथ (देवानाम्) दिव्य जलादि पदार्थों से जीवनरक्षा करते हैं वैसे हे (द्यावा, पृथिवी) आकाश और पृथिवी के समान वर्त्तमान माता पिताओ ! तुम दोनों (अभ्वात्) अपराध से (नः) हमारी (रक्षतम) रक्षा कीजिये जिस से हम लोग (अनु, स्याम) पीछे सुखी होवें ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पृथिवी आदि

पदार्थ समस्त स्थावर जङ्गम की पालना करते हैं वैसे माता पिता आचार्य्य और राजा आदि प्रजा की रक्षा करें ॥ ४ ॥

संगच्छमाने युवती समन्ते स्वसारा जामी पित्रोरुपस्थे ।
अभिजिघ्रन्ती भुवनस्य नाभिं द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥५॥

पदार्थ—(**पित्रोः**) माता पिता की (**उपस्थे**) गोद में (**संगच्छमाने**) मिलाती हुई (**जामी**) दो कन्याओं के समान वा (**युवती**) तरुण दो स्त्रियों के समान वा (**समन्ते**) पूर्ण सिद्धान्त जिनका उन दो (**स्वसारा**) बहिनियों के समान (**भुवनस्य**) संसार के (**नाभिम्**) मध्यस्थ आकर्षण को (**अभि, जिघ्रन्ती**) गन्ध के समान स्वीकार करती हुई (**द्यावा, पृथिवी**) आकाश और पृथिवी के समान माता पिताओ ! तुम (**नः**) हम लोगों की (**अभ्वात्**) अपराध से (**रक्षतम्**) रक्षा करो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे ब्रह्मचर्य से विद्यासिद्धि किये हुए तरुण जिन को परस्पर पूर्ण प्रीति है वे कन्या वर सुखी हों वैसे द्यावापृथिवी जगत् के हित के लिये वर्त्तमान हैं ॥ ५ ॥

उर्वी सद्मनी बृहती ऋतेन हुवे देवानामवसा जनित्री ।
दधाते ये अमृतं सुप्रतीके द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे माता पिताओ ! (**ये**) जो (**उर्वी**) बहुत विस्तार वाली (**सद्मनी**) सब की निवासस्थान (**बृहती**) बड़ी (**ऋतेन**) जल से और (**अवसा**) रक्षा आदि के साथ (**देवानाम्**) विद्वानों की (**जनित्री**) उत्पन्न करने वाली (**सुप्रतीके**) सुन्दर प्रतीति का विषय (**द्यावा, पृथिवी**) आकाश और पृथिवी (**अमृतम्**) जल को (**दधाते**) धारण करती हैं और मैं उनकी (**हुवे**) प्रशंसा करता हूं वैसे (**अभ्वात्**) अपराध से (**नः**) हम लोगों की तुम (**रक्षतम्**) रक्षा करो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो माता पिता सत्योपदेश से सूर्य के समान विद्या प्रकाश से युक्त सर्वगुण सम्भृत पृथिवी जैसे जल से वृक्षों को वैसे शारीरिक बल से बढ़ाते हैं वे सब की रक्षा करने को योग्य हैं ॥ ६ ॥

उर्वी पृथ्वी बहुले दूरेअन्ते उप ब्रुवे नमसा यज्ञे अस्मिन् ।
दधाते ये सुभगे सुप्रतूर्ती द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ७ ॥

पदार्थ—(**दूरेअन्ते**) दूर में और समीप में (**बहुले**) बहुत वस्तुओं को ग्रहण करने वाली (**उर्वी**) बहुत पदार्थ युक्त (**पृथ्वी**) बड़ी आकाश और पृथिवी का (**अस्मिन्**) इस संसार के व्यवहार (**यज्ञे**) जो कि सङ्ग करने योग्य उसमें (**नमसा**) अन्न के साथ मैं (**उप, ब्रुवे**) उपदेश करता हूं और (**ये**) जो (**सुभगे**) सुन्दर ऐश्वर्य की प्राप्ति करने वाली (**सुप्रतूर्त्ती**) अति शीघ्र गतियुक्त आकाश और पृथिवी (**दधाते**) समस्त पदार्थों को धारण करते हैं उन (**द्यावा-पृथिवी**) आकाश और पृथिवी के समान वर्त्तमान माता पिताओ ! (**नः**) हम को (**अभ्वात्**) अपराध से (**रक्षतम्**) बचाओ ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे पृथिवी के समीप में चन्द्रलोक की भूमि है वैसे सूर्य लोकस्थ भूमि दूर में है ऐसे सब जगह प्रकाश और अन्धकाररूप लोकद्वय वर्त्तमान हैं उन लोकों से जैसे उन्नति हो वैसा यत्न सब को करना चाहिये ॥ ७ ॥

देवान्वा यच्चकृमा कच्चिदागः सखायं वा सदमिज्जास्पतिं वा ।

इयं धीर्भूया अवयानमेषां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥८॥

पदार्थ—(**यत्**) जो (**कच्चित्**) कुछ (**देवान्**) विद्वानों (**वा**) वा (**सखायम्**) मित्र (**वा**) वा (**सदमित्**) सदैव (**वा**) वा (**जास्पतिम्**) स्त्री की पालना करने वाले के भी प्रति (**आगः**) अपराध (**चकृम**) करें (**एषाम्**) इन सब अपराधों का (**इयम्**) यह (**धीः**) कर्म वा तत्त्वज्ञान (**अवयानम्**) दूर करने वाला (**भूयाः**) हो । हे (**द्यावा, पृथिवी**) आकाश और पृथिवी के समान वर्त्तमान माता पिताओ ! (**नः**) हम लोगों को (**अभ्वात्**) अपराध से (**रक्षतम्**) बचाओ ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो माता पिता सन्तानों को अन्न जल के समान नहीं पालते वे अपने धर्म्म से गिरते हैं और माता पिताओं की रक्षा नहीं करते वे सन्तान भी अधर्मी होते हैं ॥ ८ ॥

उभा शंसा नर्य्या मामविष्टामुभे मामूती अवसा सचेताम् ।

भूरि चिदर्य्यः सुदास्तरायेषा मदन्त इषयेम देवाः ॥ ९ ॥

पदार्थ—(**उभा**) दोनों (**शंसा**) प्रशंसा को प्राप्त (**नर्य्या**) मनुष्यों में उत्तम द्यावापृथिवी के समान माता पिता (**माम्**) मेरी (**अविष्टाम्**) रक्षा करें और (**माम्**) मुझे (**उभे**) दोनों (**ऊती**) रक्षाएँ (**अवसा**) औरों की रक्षा आदि के साथ (**सचेताम्**) प्राप्त होवें । हे (**देवाः**) विद्वानो ! (**अर्य्यः**) वणिया

(सुदास्तराय) अतीव देने वाले के लिये (भूरि, चित्) बहुत जैसे देवे वैसे (मदन्तः) सुखी होते हुए हम लोग (इषा) इच्छा से (इषयेम) प्राप्त होवें ॥ ९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य और चन्द्रमा सब का संयोग कर प्राणियों को सुखी करते हैं तथा जैसे धनाढ्य वैश्य बहुत अन्न आदि पदार्थ देकर भिखारियों को प्रसन्न करता है वैसे विद्वान् जन सब के प्रसन्न करने में प्रवृत्त होवें ॥ ९ ॥

ऋतं दिवे तदवोचं पृथिव्या अभिश्रावार्य प्रथमं सुमेधाः ।
पातामवद्याद्दुरितादभीके पिता माता च रक्षतामवोभिः ॥ १० ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (सुमेधाः) सुन्दर बुद्धि वाला मैं (अभिश्रावाय) जो सब ओर से सुनता वा सुनाता उसके लिये और (पृथिव्यै) पृथिवी के समान वर्त्तमान क्षमाशील स्त्री के लिये जो (प्रथमम्) प्रथम (ऋतम्) सत्य (अवोचम्) उपदेश करूं और कहूं (तत्) उसको (दिवे) उत्तम दिव्य वाले के लिये भी उपदेश करूं कहूं जैसे (अभीके) कामना किये हुए व्यवहार में वर्त्तमान (अवद्यात्) निन्दा योग्य (दुरितात्) दुष्ट आचरण से उक्त दोनों (पाताम्) रक्षा करें वैसे (पिता) पिता (च) और (माता) माता (अवोभिः) रक्षा आदि व्यवहारों से मेरी (रक्षताम्) रक्षा करें ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । उपदेश करने वाले को उपदेश सुनने योग्यों के प्रति ऐसा कहना चाहिये कि जैसा प्रिय लोकहितकारी वचन मुझ से कहा जावे वैसे आप लोगों को भी कहना चाहिये, जैसे माता पिता अपने सन्तानों की सेवा करते हैं वैसे ये सन्तानों को भी सदा सेवने योग्य हैं ॥ १० ॥

इदं द्यावापृथिवी सत्यमस्तु पितर्मातर्यदिहोपब्रुवे वाम् ।
भूतं देवानामवमे अवोभिर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (द्यावापृथिवी) आकाश और पृथिवी के समान वर्त्तमान (मातः,-पितः) माता पिताओ ! (देवानाम्) विद्वानों के (अवमे) रक्षादि व्यवहार में (भूतम्) उत्पन्न हुए (यत्) जिस व्यवहार से (इह) यहां (वाम्) तुम्हारे (उपब्रुवे) समीप कहता हूं (तत्) सो (इदम्) यह (सत्यम्) सत्य (अस्तु) हो जिससे हम तुम्हारी (अवोभिः) पालनाओं से (इषम्) इच्छासिद्धि (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) जीवन को (विद्याम) प्राप्त होवें ॥ ११ ॥

भावार्थ—माता पिता जब सन्तानों के प्रति ऐसा उपदेश करें कि जो

हमारे धर्मयुक्त कर्म हैं वे ही तुम को सेवने चाहियें और नहीं तथा सन्तान पिता माता आदि अपने पालने वालों से ऐसे कहें कि जो हमारे सत्य आचरण हैं वे ही तुम को आचरण करने चाहियें और उन से विपरीत नहीं ॥११॥

इस सूक्त में द्यावापृथिवी के दृष्टान्त से उत्पन्न होने योग्य और उत्पादक के कर्मों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ पचासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अगस्त्य ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। १। ८। ९ त्रिष्टुप्। २। ४ निचृत् त्रिष्टुप्। ११ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ३। ५। ७ भुरिक् पङ्क्तिः। ६ पङ्क्तिः। १० स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

आ न इळाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देव एतु ।
अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा ॥ १ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! आप जैसे (विश्वानरः) सब प्राणियों को पहुँचाने वाला अर्थात् अपने अपने शुभाऽशुभ कर्मों के परिणाम करने वाला (देवः) देदीप्यमान अर्थात् (सविता) सूर्य के समान आप प्रकाशमान ईश्वर (सुशस्ति) सुन्दर प्रशंसाओं से (अभिपित्वे) सब ओर से पाने योग्य (विदथे) विज्ञानमय व्यवहार में (विश्वम्) समग्र (जगत्) जगत् को प्राप्त है वैसे (इडाभिः) अन्नादि पदार्थ वाणियों के साथ (नः) हम लोगों को (आ, एतु) प्राप्त हो आवे, हे (युवानः) यौवनावस्था को प्राप्त तरुण जनो ! (यथा) जैसे तुम (मनीषा) उत्तम बुद्धि से इस व्यवहार में (मत्सथ) आनन्दित होवो वैसे (नः) हम को (अपि) भी आनन्दित कीजिये ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे परमात्मा पक्षपात को छोड़ के सब का न्याय और सभों में समान प्रीति करता है वैसे विद्वानों को भी होना चाहिये, जैसा युवावस्था वाले पुरुष अपने समान मन को प्यारी युवती स्त्रियों के साथ विवाह कर सुखयुक्त होते हैं वैसे विद्वान् जन विद्यार्थियों को विद्वान् कर प्रसन्न होते हैं ॥ १ ॥

आ नो विश्व आस्क्रा गमन्तु देवा मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ।
भुवन्यथा नो विश्वे वृधासः करन्त्सुषाहा विथुरं न शवः ॥ २ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! वैसे मित्रः) प्राण के समान वर्त्तमान (अर्य्यमा) न्यायकारी (वरुणः) अति श्रेष्ठ (सजोषाः) समान प्रीति का सेवन रखने वाला और (आस्क्राः) शत्रुबल को पादाक्रान्त करने पाद तले दबाने वाले (विश्वे) समस्त (देवाः) विद्वान् जन (नः) हम लोगों को (आ, गमन्तु) सब ओर से प्राप्त होवें कि (यथा) जैसे (विश्वे) समस्त वे विद्वान् (नः) हमारा (वृधासः) सुख बढ़ाने वाले (भुवन्) होवें और (सुषाहा) सुन्दर जिस का सहन क्षमा शान्तिपन वह जन (विथुरम्) व्यथा पीड़ा देते हुए पदार्थ के (न) समान तीव्र (शवः) बल (करन्) करें ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जिस मार्ग से विद्वान् जन चलें उसी से सर्व लोग चलें, जैसे आप्त शास्त्रज्ञ विद्वान् जन औरों के सुख दुःखों को अपने तुल्य जानते हैं वैसे ही सब को होना चाहिये ॥ २ ॥

प्रेष्ठं वो अतिथिं गृणीषेऽग्निं शस्तिभिस्तुर्वणिः सजोषाः ।
असद्यथा नो वरुणः सुकीर्त्तिरिषश्च पर्षदरिगूर्त्तः सूरिः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! जैसे (तुर्वणिः) शीघ्र जाने और (सजोषाः) समान प्रीति रखने वाले आप (शस्तिभिः) प्रशंसाओं से (अग्निम्) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्या से प्रकाशित (प्रेष्ठम्) अति प्रिय (अतिथिम्) अतिथिवद्वर्त्तमान विद्वान् की (गृणीषे) प्रशंसा करते हो वा (यथा) जैसे (अरिगूर्त्तः) शत्रुओं में उद्यम करने और (सुकीर्त्तिः) पुण्य प्रशंसा वाला (वरुणः) उत्तम विद्वान् (नः) हम लोगों को (इषः) अन्नादि पदार्थ (च) और इच्छाओं को (पर्षत्) सींचें वा (सूरिः) अतीव प्रवीण विद्वान् (असत्) हों वैसे (वः) तुम लोगों के प्रति वर्तें ॥ ३ ॥

भावार्थ – इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो गृहस्थजन प्रीति के साथ श्रेष्ठ उत्तम शास्त्रज्ञ विद्वानों और अतिथि की सेवा करते हैं धर्मयुक्त व्यवहार में उद्योगवान् होते वे यथार्थ विज्ञान को पाकर श्रीमान होते हैं ॥ ३ ॥

उप॑ व॒ एषे॒ नम॑सा जिगी॒षोषासा॒नक्ता॑ सु॒दुघे॑व धे॒नुः ।
स॒मा॒ने अह॑न्वि॒मिमा॑नो अ॒र्कं विषु॑रूपे॒ पय॑सि॒ सस्मि॒न्नूध॑न् ॥ ४ ॥

पदार्थ—(समाने) एकसे (अहन्) दिन में (अर्कम्) सत्कार करने योग्य अन्न को (विमिमानः) विशेषता से बनाने वाला मैं (उषासानक्ता) दिन रात्रि के समान वा (धेनुः) वाणी जो (सुदुघेव) सुन्दर कामना पूरण करने वाली उस के समान (नमसा) अन्नादि पदार्थ से (जिगीषा) जीतने की इच्छा जैसे हो वैसे (विषुरूपे) नानाप्रकार के रूप वाले (पयसि) जल और (सस्मिन्) समान

(ऊधन्) दूध के निमित्त (वः) तुम लोगों के (उप, आ, ईषे) समीप सब ओर से प्राप्त होता हूं ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो रात्रि दिवस के समान वर्त्तमान विद्या अविद्या को जान कर सब समय में उद्योग कर धेनु के समान प्राणियों का उपकार कर दुष्टों को जीतते वे दूध में घी के तुल्य संसार में सारभूत होते हैं ॥ ४ ॥

उत नोऽहिर्बुध्न्यो३ मयस्कः शिशुं न पिप्युषीव वेति सिन्धुः ।
येन नपातमपां जुनाम मनोजुवो वृषणो यं वहन्ति ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! हम लोग (येन) जिस से (अपाम्) जलों के (नपातम्) पतन को न प्राप्त पदार्थ को (जुनाम) बांधें वा (मनोजुवः) मन के तुल्य वेग जिन का वे बिजुली आदि (वृषणः) वृष्टि कराने वाले (यम्) जिसको (वहन्ति) प्राप्त होते हैं वह (बुध्न्यः) अन्तरिक्षस्थ (अहिः) व्याप्तिशील मेघ (पिप्युषीव) बढ़ाती हुई वृद्धि देती उन्नति करती हुई स्त्री (शिशुम्) बालक को (न) जैसे वैसे (नः) हम लोगों को (वेति) व्याप्त होता (उत) और (सिन्धुः) नदी (मयः) सुख को (कः) करती है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मेघ न हो तो माता के तुल्य प्राणियों की पालना कौन करे ? जो सूर्य बिजुली और पवन न हों तो इस मेघ को कौन धारण करे ? ॥ ५ ॥

उत न ईं त्वष्टा गन्त्वच्छा स्मत्सूरिभिरभिपित्वे सजोषाः ।
आ वृत्रहेन्द्रश्चर्षणिप्रास्तुविष्टमो नरां न इह गम्याः ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! जैसे (इह) यहां (वृत्रहा) मेघ का हनने वाला (चर्षणिप्राः) मनुष्यों को सुखों से पूर्ण करने वाला (तुविष्टमः) अतीव बली (त्वष्टा) प्रकाशमान (इन्द्रः) सूर्य (ईम्) जल को वर्षाता है वैसे तुम (नराम्) सब मनुष्यों के बीच (नः) हम लोगों को (आ, गम्याः) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ (उत) और (स्मत्) प्रशंसायुक्त (अभिपित्वे) सब ओर से पाने योग्य व्यवहार में (सजोषाः) समान प्रीति रखने वाले आप (सूरिभिः) विद्वानों के साथ (नः) हम लोगों के प्रति (अच्छ, आ, गन्तु) अच्छे प्रकार आइये ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सूर्य के समान विद्या का प्रकाश कराते हैं और अपने आत्मा के तुल्य सब को मान सुखी करते हैं वे बलवान् होते हैं ॥ ६ ॥

उत नं ईं मतयोऽश्वयोगाः शिशुं न गावस्तरुणं रिहन्ति ।
तमीं गिरो जनयो न पत्नीः सुरभिष्टमं नरां नसन्त ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (अश्वयोगाः) अश्वयोग अर्थात् अश्वों का योग कराते हैं वे (मतयः) मनुष्य (तरुणम्) तरुण (शिशुम्) बछड़ों को (न) जैसे (गावः) गौयें वैसे (नः) हम लोगों को (ईम्) सब ओर से (रिहन्ति) प्राप्त होते हैं जिस (नराम्) मनुष्यों के बीच (सुरभिष्टमम्) अतिशय करके सुगन्धित सुन्दर कीर्तिमान को (जनयः) उत्पत्ति कराने वाले जन (पत्नीः) अपनी पत्नियों को जैसे (न) वैसे (नसन्त) प्राप्त होवें वह (ईम्) सब ओर से (गिरः) वाणियों को प्राप्त होता है (तम्) उस को (उत) ही हम लोग सेवें ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे घुड़चढ़ा शीघ्र एक स्थान से दूसरे स्थान को वा जैसे गौयें बछड़ों को वा स्त्रीव्रत जन अपनी अपनी पत्नियों को प्राप्त होते हैं वैसे विद्वान् जन विद्या और श्रेष्ठ विद्वानों की वाणियों को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

उत नं ईं मरुतो वृद्धसेनाः स्मद्रोदसी समनसः सदन्तु ।
पृषदश्वासोऽवनयो न रथा रिशादसो मित्रयुजो न देवाः ॥ ८ ॥

पदार्थ—(मरुतः) पवन (ईम्) जल को जैसे वैसे (वृद्धसेनाः) बढ़ी हुई प्रौढ़ तरुण प्रचण्ड बल वेग वाली जिसकी सेना वे (नः) हम लोगों को (सदन्तु) प्राप्त होवें (उत) और (समनसः) समान जिनका मन वे परोपकारी विद्वान् (स्मत्) ही (रोदसी) आकाश और पृथिवी को प्राप्त हों (पृषदश्वासः) पुष्ट जिन के घोड़ा वे विद्वान् जन वा (अवनयः) भूमि (रथाः) रमणीय यानों के (न) समान (रिशादसः) रिसहा शत्रुओं को नाश कराते और (मित्रयुजः) मित्रों के साथ संयोग रखते उन (देवाः) विद्वानों के (न) समान होते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—जिन की वीर सेना जो समान मति रखने वाले बड़े बड़े रथादि, यान जिन के तीर पृथिवी के समान क्षमाशील मित्रप्रिय विद्वान् जन सब का प्रिय आचरण करते हैं वे प्रसन्न होते हैं ॥ ८ ॥

प्र नु यदेषां महिना चिकित्रे प्र युञ्जते प्रयुजस्ते सुवृक्ति ।
अध यदेषां सुदिने न शरुर्विश्वमेरिणं प्रुषायन्त सेनाः ॥ ९ ॥

पदार्थ—(यत्) जो (एषाम्) इन विद्वानों के (महिम्ना) महिमा से (प्र, चिकित्रे) उत्तमता से विशेष ज्ञानवान् विद्वान् के लिये (प्रयुजः) उत्तमता से

योग करते उनको (नु) शीघ्र (प्रयुञ्जन्ते) अच्छे प्रकार युक्त करते हैं (अध) इसके अनन्तर (यत्) जो जन (एषाम्) इन अच्छे योग करने वालों के (सुदिने) उत्तम समय में (विश्वम्) समस्त (इरिणम्) कम्पायमान जगत् को (शरुः) मारने वाला वीर जन (सेनाः) सेनाओं को जैसे (न) वैसे (आ, प्रुषायन्त) सेवन करें (ते) वे (सुवृक्ति) सुन्दर गमन जिस में हो उस उत्तम सुख वा मार्ग को प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। जो राजजन पूरी विद्या वाले अध्यापकों को विद्याप्रचार के लिये प्रवृत्त करते हैं वे महिमा—बड़ाई को प्राप्त होते हैं जो किये को जानने वाले कुलीन शूरवीरों की सेनाओं को पुष्ट करते वे सदा विजय को प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

प्रो अश्विनावव॑से कृणुध्वं॒ प्र पू॒षणं॒ स्वत॑वसो॒ हि सन्ति॑ ।

अ॒द्वे॒षो विष्णु॒र्वात॑ ऋभु॒क्षा अच्छा॑ सु॒म्नाय॑ ववृतीय दे॒वान् ॥१०॥

पदार्थ—हे राजा प्रजाजनो ! तुम जो (हि) ही (स्वतवसः) अपना बल रखने वाले (अद्वेषः) निर्वैर विद्वान् जन (सन्ति) हैं उन को जो (अश्विनौ) विद्याव्याप्त अध्यापक और उपदेशक मुख्य परीक्षक हैं वे विद्या की (अवसे) रक्षा पढ़ाना विचारना उपदेश करना इत्यादि के लिये (प्र, कृणुध्वम्) अच्छे प्रकार नियत करें और जैसे (वातः) पवन के समान (विष्णुः) गुण व्याप्तिशील (ऋभुक्षाः) मेधावी मैं (सुम्नाय) सुख के लिये (देवान्) विद्वानों को (अच्छ, ववृतीय) अच्छा वर्त्ताऊं वैसे तुम (पूषणम्) पुष्टि करने वाले को (प्रो) उत्तमता से नियत करो ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो रागद्वेषरहित विद्याप्रचार के प्रिय पूरे शारीरिक आत्मिक बल वाले धार्मिक विद्वान् हैं उन को सब लोग विद्याप्रचार के लिये संस्थापन करें जिस से सुख बढ़े ॥१०॥

इ॒यं सा वो॑ अ॒स्मे दीधि॑तिर्यजत्रा अपि॒प्राणी॑ च॒ सद॑नी च भूयाः ।

नि या दे॒वेषु॒ यत॑ते वसू॒युर्वि॒द्यामे॒षं वृ॒जनं॑ जी॒रदा॑नुम् ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (यजत्राः) विद्वानों के पूजने वालो ! (या) जो (वसूयुः) धनों को चाहने वाली अर्थात् जिससे धनादि उत्तम पदार्थ सिद्ध होते हैं उस विद्या की उत्तम दीप्ति कान्ति (देवेषु) विद्वानों में (नि, यतते) निरन्तर यत्न करती है कार्यकारिणी होती है (सा, इयम्) सो यह (वः) तुम्हारी (दीधितिः) उक्ति कान्ति (अस्मे) हमारे लिये (अपिप्राणी) निश्चित प्राण बल की देने वाली (च) और (सदनी) दुःख विनाशने से सुख देने वाली (च) भी (भूयाः) हो जिससे

हम लोग (इषम्) इच्छासिद्धि वा अन्नादि पदार्थ (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) जीवन को (विद्याम) प्राप्त होवें ॥ ११ ॥

भावार्थ—विद्या ही मनुष्यों को सुख देने वाली है, जिसने विद्या धन न पाया वह भीतर से सदा दरिद्रसा वर्त्तमान रहता है ॥ ११ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जानना चाहिये ॥

यह एकसौ छःयासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अगस्त्य ऋषिः । ओषधयो देवताः । १ उष्णिक् । ६ । ७ भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । २ । ८ निचृद् गायत्री । ४ विराट् गायत्री । ९ । १० । गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः । ३ । ५ निचृदनुष्टुप् । ११ स्वराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम् ।
यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत् ॥ १ ॥

पदार्थ—(यस्य) जिस का (त्रितः) मन वचन कर्म से (वि, ओजसा) विविध प्रकार के पराक्रम से (विपर्वम्) विविध प्रकार के अङ्ग और उपाङ्गों से पूर्ण (वृत्रम्) स्वीकार करने योग्य धन को (अर्दयत्) प्राप्त करे उस के लिये (नु) शीघ्र (पितुम्) अन्न (महः) बहुत (धर्माणम्) धर्म करने वाले और (तविषीम्) बल की मैं (स्तोषम्) प्रशंसा करूं ॥ १ ॥

भावार्थ—जो बहुत अन्न को ले अच्छा संस्कार कर और उस के गुणों को जान और यथायोग्य व्यञ्जनादि पदार्थों के साथ मिला के खाते हैं वे धर्म के आचरण करने वाले होते हुए शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त होकर पुरुषार्थ से लक्ष्मी की उन्नति कर सकते हैं ॥ १ ॥

स्वादो पितो मधो पितो वयं त्वा ववृमहे ।
अस्माकमविता भव ।

पदार्थ—हे परमात्मन् ! आप के रचे (स्वादो) स्वादु (पितो) पीने योग्य जल तथा (मधो) मधुर (पितो) पालना करने वाले (त्वा) उस अन्न को (वयम्) हम लोग (ववृमहे) स्वीकार करते हैं इससे आप उस अन्नपान के दान से (अस्माकम्) हमारी (अविता) रक्षा करने वाले (भव) हूजिये ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को मधुरादि रस के योग से स्वादिष्ठ अन्न और व्यञ्जन को आयुर्वेद की रीति से बनाकर सदा भोजन करना चाहिये जो रोग को नष्ट करने से आयुर्दा बढ़ाने से रक्षा करने वाला हो ॥ २ ॥

उप नः पितवा चर शिवः शिवाभिरूतिभिः ।
मयोभुरद्विषेण्यः सखा सुशेवो अद्वयाः ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (पितो) अन्नव्यापी परमात्मन् ! (मयोभुः) सुख की भावना कराने वाले (अद्विषेण्यः) निर्वैर (सुशेवः) सुन्दर सुखयुक्त (अद्वयाः) जिस में द्वन्द्व भाव नहीं (सखा) जो मित्र आप (शिवाभिः) सुखकारिणी (ऊतिभिः) रक्षा आदि क्रियाओं के साथ (नः) हम लोगों के लिये (शिवः) सुखकारी (उप, आ,-चर) समीप अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ—अन्नादि पदार्थव्यापी परमेश्वर आरोग्य देने वाली रक्षारूप क्रियाओं से सब जीवों को मित्रभाव से अच्छे प्रकार पालता हुआ सब का मित्र हुआ ही वर्त्त रहा है ॥ ३ ॥

तव त्ये पितो रसा रजांस्यनु विष्ठिताः ।
दिवि वाताइव श्रिताः ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (पितो) अन्नव्यापिन् परमात्मन् ! (तव) उस अन्न के बीच जो (रसाः) स्वादु खट्टा मीठा तीखा चरपरा आदि छः प्रकार के रस (दिविः) अन्तरिक्ष में (वाताइव) पवनों के समान (श्रिताः) आश्रय को प्राप्त हो रहे हैं (त्ये) वे (रजांसि) लोकलोकान्तरों को (अनु, विष्ठिताः) पीछे प्रविष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस संसार में परमात्मा की व्यवस्था से लोकलोकान्तरों में भूमि जल और पवन के अनुकूल रसादि पदार्थ होते हैं किन्तु सब पदार्थ सब जगह प्राप्त नहीं हो सकते ॥ ४ ॥

तव त्ये पितो ददतस्तव स्वादिष्ठ ते पितो ।
प्र स्वाद्मानो रसानां तुविग्रीवाइवेरते ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (पितो) अन्नव्यापी पालक परमात्मन् ! (ददतः) देते हुए (तव) आप के जो अन्न वा (त्ये) वे पूर्वोक्त रस हैं। हे (स्वादिष्ठ) अतीव स्वादुयुक्त (पितो) पालक अन्नव्यापक परमात्मन् (तव) आप के उस अन्न के सहित (ते) वे रस (रसानाम्) मधुरादि रसों के बीच (स्वाद्मानः) अतीव स्वादु

(तुविग्रीवाइव) जिन का प्रबल गला उन जीवों के समान (प्रेरते) प्रेरणा देते अर्थात् जीवों को प्रीति उत्पन्न कराते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—सब पदार्थों में व्याप्त परमात्मा ही सभों के लिये अन्नादि पदार्थों को अच्छे प्रकार देता है और उसके किये हुए ही पदार्थ अपने गुणों के अनुकूल कोई अतीव स्वादु और कोई अतीव स्वादुतर हैं यह सब को जानना चाहिये ॥ ५ ॥

त्वे पि॑तो म॒हानां॑ दे॒वा॒नां॒ मनो॑ हि॒तम् ।

अका॑रि॒ चारु॑ के॒तुना॒ तवाहि॒मव॒सावधीत् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (पितो) अन्नव्यापी पालना करने वाले ईश्वर ! (तव) जिस आप की (अवसा) रक्षा आदि से सूर्य (अहिम्) मेघ को (अवधीत्) हन्ता है उन आप के (केतुना) विज्ञान से जो (चारु) श्रेष्ठतर (अकारि) किया जाता है वह (महानाम्) महात्मा पूज्य (देवानाम्) विद्वानों का (मनः) मन (त्वे) आप में (हितम्) धरा है वा प्रसन्न है ॥ ६ ॥

भावार्थ—यदि अन्न भोजन न किया जाय तो किसी का मन आनन्दित न हो क्योंकि मन अन्नमय है इस कारण जिस की उत्पत्ति के लिये मेघ निमित्त है उस अन्न को सुन्दरता से बनाकर भोजन करना चाहिये ॥ ६ ॥

य॒द॒दो पि॑तो॒ अज॑गन्वि॒व॒स्व॒ पर्व॑तानाम् ।

अत्रा॑ चिन्नो मधो पि॒तोऽरं॑ भ॒क्षाय॑ गम्याः ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (पितो) अन्नव्यापिन् पालकेश्वर ! (यत्) जिस (अदः) प्रत्यक्ष अन्न को विद्वान् जन (अजगन्) प्राप्त होते हैं उस में (विवस्व) व्याप्तिमान् हूजिये । हे (मधो) मधुर (पितो) पालकान्नदाता ईश्वर ! (अत्र, चित्) इन (पर्वतानाम्) मेघों के बीच भी जो कि अन्न के निमित्त कहे हैं (नः) हमारे (भक्षाय) भक्षण करने के लिये अन्न को (अरम्) परिपूर्ण (गम्याः) प्राप्त कराइये ॥ ७ ॥

भावार्थ—सब पदार्थों में व्याप्त परमेश्वर को भक्षण आदि समय में स्मरण करे जिस कारण जिस परमात्मा की कृपा से अन्नादि पदार्थ विविध प्रकार के पूर्वादि दिशा देश और काल के अनुकूल वर्त्तमान हैं उस परमात्मा ही का संस्मरण कर सब पदार्थ ग्रहण करने चाहियें ॥ ७ ॥

यदपामोषधीनां परिंशमारिशामहे । वातापे पीव इद्भव ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे (वातापे) पवन के समान सर्वपदार्थ व्यापक परमेश्वर ! हम लोग (अपाम्) जलों और (ओषधीनाम्) सोमादि ओषधियों के (यत्) जिस (परिशम्) सब ओर से प्राप्त होने वाले अंश को (आरिशामहे) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं उस से आप (पीवः) उत्तम वृद्धि करने वाले (इत्) ही (भव) हूजिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—जल अन्न और घृत के संस्कार से प्रशंसित अन्न और व्यञ्जन इलायची, मिरच वा घृत दूध पदार्थों को उत्तम बनाकर उन पदार्थों के भोजन करने वाले जन युक्त आहार और विहार से पुष्ट होवें ॥ ८ ॥

यत्ते सोम गवाशिरो यवाशिरो भजामहे । वातापे पीव इद्भव ॥९॥

पदार्थ—हे (सोम) यवादि ओषधि रसव्यापी ईश्वर ! (गवाशिरः) गौ के रस से बनाये वा (यवाशिरः) यवादि ओषधियों के संयोग से बनाये हुए (ते) उस अन्न के (यत्) जिस सेवनीय अंश को हम लोग (भजामहे) सेवते हैं उस से हे (वातापे) पवन के समान सब पदार्थों में व्यापक परमेश्वर ! (पीवः) उत्तम वृद्धि करने वाले (इत्) ही (भव) हूजिये ॥ ९ ॥

भावार्थ—जैसे मनुष्य अन्नादि पदार्थों में उन उन की पाकक्रिया के अनुकूल सब संस्कारों को करते हैं वैसे रसों को भी रसोचित संस्कारों से सिद्ध करें ॥ ९ ॥

करम्भ ओषधे भव पीवो वृक्क उदारथिः ।
वातापे पीव इद्भव ॥ १० ॥

पदार्थ—हे (ओषधे) ओषधि व्यापी परमेश्वर ! आप (करम्भः) करने वाले (उदारथिः)जाठराग्नि के प्रदीपक (वृक्कः) रोगादिकों के वर्जन कराने और (पीवः) उत्तम वृद्धि कराने वाले (भव) हूजिये। तथा हे (वातापे) पवन के समान सर्वव्यापक परमात्मन् आप (पीवः) उत्तम वृद्धि देने वाले (इत्) ही (भव) हूजिये ॥ १० ॥

भावार्थ—जैसे संयमी पुरुष शुभाचार से शरीर और आत्मा को बलयुक्त करता है वैसे संयम से सब पदार्थों को सब वर्त्तो ॥ १० ॥

तं त्वा वयं पितो वचोभिर्गावो न हव्या सुषूदिम ।
देवेभ्यस्त्वा सधमादमस्मभ्यं त्वा सधमादम् ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे (पितो) अन्न व्यापी पालकेश्वर ! (तम्) उन पूर्वोक्त (त्वा) आप का (आश्रय लेकर (वचोभिः) स्तुति वाक्यों प्रशंसाओं से (गावः) दूध देती हुई गौवें (न) जैसे दूध, घी दही आदि पदार्थों को देवें वैसे उस अन्न से (वयम्) हम जैसे (हव्या) भोजन करने योग्य पदार्थों को (सुषूदिम) निकाशें तथा हम (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (सधमादम्) साथ आनन्द देने वाले (त्वा) आप का हम तथा (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (सधमादम्) साथ आनन्द देने वाले (त्वा) आप का विद्वान् जन आश्रय करें ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे गौवें तृण घास आदि खाकर रत्न दूध देती हैं वैसे अन्नादि पदार्थों से श्रेष्ठतर भाग निकाशना चाहिये । जो अपने सङ्गियों का अन्नादि पदार्थों से सत्कार करते और परस्पर एक दूसरे के आनन्द की इच्छा से परमात्मा का आश्रय लेते हैं वे प्रशंसित होते हैं ॥ ११ ॥

इस सूक्त में अन्न के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये ॥

यह एकसौ सतासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अगस्त्य ऋषिः । आप्रियो देवताः । १ । ३ । ५—७ । १० निचृद्गायत्री । २ । ४ । ८ । ९ । ११ गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

समिद्धो अद्य राजसि देवो देवैः सहस्रजित् ।

दूतो हव्या कविर्वह ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (सहस्रजित्) सहस्रों शत्रुओं को जीतने वाले राजन् ! (समिद्धः) जलती हुई प्रकाशयुक्त अग्नि के समान प्रकाशमान (देवैः) विजय चाहते हुए वीरों के साथ (देवः) विजय चाहने वाले और (दूतः) शत्रुओं के चित्तों को सन्ताप देते हुए (कविः) प्रबल प्रज्ञायुक्त आप (अद्य) आज (राजसि) अधिकतर शोभायमान हो रहे हैं सो आप (हव्या) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को (वह) प्राप्त कीजिये ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो अग्नि के समान दुष्टों को सब ओर से कष्ट देता सज्जनों के सङ्ग से शत्रुओं को जीतता विद्वानों के सङ्ग से बुद्धिमान् होता हुआ प्राप्त होने योग्य वस्तुओं को प्राप्त होता वह राज्य करने को योग्य है ॥ १ ॥

तनूनपादृतं यते मध्वा यज्ञः समज्यते । दधत्सहस्रिणीरिषः ॥ २ ॥

पदार्थ—जो (सहस्रिणीः) सहस्रों (इषः) अन्नादि पदार्थों को (दधत्) धारण करता हुआ (तनूनपात्) शरीरों को न गिराने न नाश करने हारा अर्थात् पालने वाला (यज्ञः) पदार्थों में संयुक्त करने योग्य अग्नि (ऋतम्) यज्ञ सत्य व्यवहार और जलादि पदार्थ को (मध्वा) मधुरता आदि के साथ (यते) प्राप्त होते हुए जन के लिये (समज्यते) अच्छे प्रकार प्रकट होता है उस को सब सिद्ध करें ॥ २ ॥

भावार्थ—जिस कर्म से अतुल धन-धान्य प्राप्त होते हैं उस का अनुष्ठान आरम्भ मनुष्य निरन्तर करें ॥ २ ॥

आजुह्वानो न ईड्यो देवाँ आ वक्षि यज्ञियान् ।
अग्ने सहस्रसा असि ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वान् ! जिस कारण हम लोगों से जिस प्रकार (आजुह्वानः) होम को प्राप्त (ईड्योः) ढूंढने योग्य (सहस्रसाः) सहस्रों पदार्थों का विभाग करने वाला अग्नि हो वैसे आमन्त्रण बुलावे को प्राप्त स्तुति प्रशंसा के योग्य सहस्रों पदार्थों को देने वाले आप (असि) हैं इस से (नः) हम लोगों के (यज्ञियान्) यज्ञ सिद्ध कराने वाले (देवान्) विद्वान् वा दिव्य गुणों को (आ, वक्षि) अच्छे प्रकार प्राप्त कराते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे गुण कर्म स्वभाव से अच्छे प्रकार सेवन किया हुआ अग्नि बहुत कार्यों को सिद्ध करता है वैसे सेवा किया हुआ आप्त विद्वान् समस्त शुभ गुणों और कार्यसिद्धियों को प्राप्त कराता है ॥ ३ ॥

प्राचीनं बर्हिरोजसा सहस्रवीरमस्तृणन । यत्रादित्या विराजथ ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (यत्र) जिस सनातन कारण में (आदित्याः) सूर्य्यादि लोक (ओजसा) पराक्रम वा प्रताप से (सहस्रवीरम्) सहस्रों जिस में वीर उस (प्राचीनम्) पुरातन (बर्हिः) अच्छे प्रकार बढ़े हुए विज्ञान को (अस्तृणन्) ढांपते हैं वहां तुम लोग (विराजथ) विशेषता से प्रकाशित होओ ॥ ४ ॥

भावार्थ—जिस सनातन कारण में सूर्य्यादि लोक लोकान्तर प्रकाशित होते हैं वहां तुम हम प्रकाशित होते हैं ॥ ४ ॥

विराट् सम्राड्विभ्वीः प्रभ्वीर्बह्वीश्च भूयसीश्च याः ।
दुरो घृतान्यक्षरन् ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् (विराट्) जो विविध प्रकार के गुणों और कर्मों में प्रकाशमान वा (सम्राट्) जो चक्रवर्त्ती के समान विद्याओं में सुन्दरता से प्रकाशमान सो आप (याः) जो (विभ्वीः) व्याप्त होने वाली (प्रभ्वीः) समर्थ (ह्वीः) बहुत अनेक (भूयसीः च) और अधिक से अधिक सूक्ष्म मात्रा (दुरः) द्वारे अर्थात् सर्व कार्य सुखों को और (घृतानि, च) जलों को (अक्षरन्) प्राप्त होती हैं उनको जानो ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो सब जगत् को बहुत तत्त्वयुक्त सत्व रजस्तमो गुण वाली सूक्ष्ममात्रा नित्यस्वरूप से सदा वर्त्तमान हैं उन को लेकर पृथिवी पर्यन्त पदार्थों को जान सब कार्य सिद्ध करने चाहियें ॥ ५ ॥

सुरुक्मे हि सुपेशसाधि श्रिया विराजतः उषासावेह सीदताम् ॥६॥

पदार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक लोगो ! जैसे (इह) इस कार्यकारण विद्या में (सुरुक्मे) सुन्दर रमणीय (सुपेशसा) प्रशंसित स्वरूप कार्य्यकारण (श्रिया) शोभा से (अधि, विराजतः) देदीप्यमान होते हैं (हि) उन्हीं को जानकर (उषासौ) रात्रि, दिन के समान आप लोग परोपकार में (आ, सीदताम्) अच्छे प्रकार स्थिर होओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो इस सृष्टि में विद्या और अच्छी शिक्षा को पाकर कार्य्यज्ञान पूर्वक कारणज्ञान को प्राप्त होते हैं वे सूर्य चन्द्रमा के समान परोपकार में रमते हैं ॥ ६ ॥

प्रथमा हि सुवाचसा होतारा दैव्या कवी ।
यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥ ७ ॥

पदार्थ--हे मनुष्यो ! (हि) जिस कारण (होतारा) ग्रहणकर्त्ता (दैव्या) दिव्य बोधों में कुशल (प्रथमा) प्रथम विद्या बल को बढ़ाने वाले (सुवाचसा) सुन्दर जिन का वचन (कवी) जो सकल विद्या के वेत्ता अध्यापकोपदेशक जन हैं वे (नः) हमारे (इमम्) इस प्रत्यक्षता से वर्त्तमान (यज्ञम्) धनादि पदार्थों के मेल कराने वा व्यवहार का (यक्षताम्) सङ्ग करावें ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस संसार में जो जिन का उपकार करते हैं वे उन को सत्कार करने योग्य होते हैं ॥ ७ ॥

भारतीळे सरस्वति या वः सर्वा उपब्रुवे । ता नंश्चोदयत श्रिये ॥८॥

पदार्थ—हे (भारति) समस्त विद्या के धारण करने वाली वा (इळे) हे प्रशंसावती वा (सरस्वति) हे विज्ञान और उत्तम गति वाली ! (याः) जो (वः) तुम (सर्वाः) सभों को समीप में (उपब्रुवे) उपयोग करने वाले वचन का उपदेश करूं (ताः) वे तुम (नः) हम लोगों को (श्रिये) लक्ष्मी प्राप्त होने के लिये (चोदयत) प्रेरणा देओ ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो प्रशंसित सौन्दर्य उत्तम लक्षणों से युक्त देखी गई श्रेष्ठतर शास्त्रविज्ञान में रमने वाली कन्या हों वे अपने पाणिग्रहण करने वाले पतियों को पाकर धर्म से धनादि पदार्थों की उन्नति करें ॥ ८ ॥

त्वष्टा रूपाणि हि प्रभुः पशून्विश्वान्त्समानजे ।
तेषां नः स्फातिमा यंज ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! जैसे (त्वष्टा) सब जगत् का निर्माण करने वाला (प्रभुः) समर्थ ईश्वर (हि) ही (विश्वान्) समस्त (पशून्) गवादि पशुओं और (रूपाणि) समस्त विविध प्रकार से स्थूल वस्तुओं को (समानजे) अच्छे प्रकार प्रकट करता और (तेषाम्) उन की (स्फातिम्) वृद्धि को प्रकट करता है वैसे आप (नः) हमारी वृद्धि को (आ, यज) अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थ— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे जगदीश्वर ने इन्द्रियों से परे जो अति सूक्ष्म कारण है उस से चित्र विचित्र सूर्य चन्द्रमा पृथिवी ओषधि और मनुष्य के शरीरावयवादि वस्तु बनाई हैं वैसे इस सृष्टि के गुण कर्म और स्वभाव क्रम से अनेक व्यवहार सिद्ध करने वाली वस्तुयें बनानी चाहियें ॥ ९ ॥

उप त्मन्या वनस्पते पाथो देवेभ्यः सृज ।
अग्निर्हव्यानि सिष्वदत् ॥ १० ॥

पदार्थ--हे (वनस्पते) वनों के पालने वाले ! (त्मन्या) अपने बीच उत्तम क्रिया से जैसे (अग्निः) अग्नि (देवेभ्यः) विद्वान् वा दिव्य गुणों के लिये (हव्यानि) भोजन करने योग्य पदार्थों को (सिष्वदत्) स्वादिष्ठ करता है वैसे आप विद्वान् वा दिव्य गुणों के लिये (पाथः) अन्न को (उप, सृज) उन के लिये देओ ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो वनादिकों की रक्षा से घास फूस और ओषधियों को बढ़ाते हैं वे सब का उपकार करने योग्य होते हैं ॥ १० ॥

पुरोगा अग्निर्देवानां गायत्रेण समंज्यते ।

स्वाहाकृतीषु रोचते ॥ ११ ॥

पदार्थ--जो परोपकारी जन हैं वे जैसे (देवानाम्) दिव्य गुण वा पृथिव्यादिकों के बीच (पुरोगाः) अग्रगामी (अग्निः) अग्नि (गायत्रेण) गायत्री छन्द से कहे हुए बोध से (स्वाहाकृतीषु) स्वाहा शब्द से जिन व्यवहारों में क्रियायें होतीं उन में (समज्यते) प्रकट किया जाता और वह (रोचते) प्रदीप्त होता है वैसे अग्रगामी होकर सर्वत्र सत्कार को प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यदि मनुष्य अग्नि प्रधान दिव्य पदार्थों को व्यवहारसिद्धि के लिये संयुक्त करें तो वे ऐश्वर्ययुक्त होकर माननीय होते, हैं यह समझना चाहिये ॥ ११ ॥

इस सूक्त में अग्नि के दृष्टान्त से राजा अध्यापक उपदेशक स्त्रीपुरुष ईश्वर और देने वाले के गुणों का वर्णन होने से इस के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये ॥

यह एकसौ अठासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अगस्त्य ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ४ । ८ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ भुरिक् पङ्क्तिः । ३ । ५ । ६ स्वराट् पङ्क्तिः । ७ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अग्ने नयं सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।

युयोध्य१स्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥ १ ॥

पदार्थ--हे (देव) मनोहर आनन्द के देने वाले (अग्ने) स्वप्रकाशस्वरूपेश्वर (विद्वान्) सकल शास्त्रवेत्ता ! आप (अस्मान्) हम मुमुक्षु अर्थात् मोक्ष चाहते हुए जनों को (राये) धनादि प्राप्ति के लिये (सुपथा) धर्मयुक्त सरल मार्ग से (विश्वानि) समस्त (वयुनानि) उत्तम उत्तम ज्ञानों को (नय) प्राप्त कराइये (जुहुराणम्) खोटी चाल से उत्पन्न हुए (एनः) पाप को (अस्मत्) हम

से (युयोधि) अलग करिये जिस में हम (ते) आप की (भूयिष्ठाम्) अधिकतर (नमउक्तिम्) सत्कार के साथ स्तुति का (विधेम) विधान करें॥ १॥

भावार्थ—मनुष्यों को धर्म तथा विज्ञान मार्ग की प्राप्ति और अधर्म की निवृत्ति के लिये परमेश्वर की अच्छे प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये और सदा सुमार्ग से चलना चाहिये दुःखरूपी अधर्म मार्ग से अलग रहना चाहिये जैसे विद्वान् लोग परमेश्वर में उत्तम अनुराग करते वैसे अन्य लोगों को भी करना चाहिये॥ १॥

अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान्त्स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा।
पूश्च पृथ्वी बहुला न उर्वी भवा तोकाय तनयाय शं योः॥ २॥

पदार्थ--हे (अग्ने) परमेश्वर! (त्वम्) आप (स्वस्तिभिः) सुखों से (अस्मान्) हम लोगों को (विश्वा) समस्त (अति, दुर्गाणि) अत्यन्त दुर्ग व्यवहारों के (पारय) पार कीजिये जैसे (नव्यः) नवीन विद्वान् और (पूः) पुररूप (बहुला) बहुत पदार्थों को लेने वाली (उर्वी) विस्तृत (पृथ्वी, च) भूमि भी है वैसे (नः) हमारे (तोकाय) अत्यन्त छोटे और (तनयाय) कुछ बड़े बालक के लिये (शं, योः) सुख को प्राप्त कराने वाले (भव) हूजिये॥ २॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे परमेश्वर पुण्यात्मा जनों को दुष्ट आचार से अलग रखता और पृथिवी के समान पालना करता है वैसे विद्वान् जन सुन्दर शिक्षा से उत्तम कर्म करने वालों को दुष्ट आचरण से अलग कर सुन्दर व्यवहार से रक्षा करता है॥ २॥

अग्ने त्वमस्मद्युयोध्यमीवा अनग्नित्रा अभ्यमन्त कृष्टीः।
पुनरस्मभ्यं सुविताय देव क्षां विश्वेभिरमृतेभिर्यजत्र॥ ३॥

पदार्थ--हे (यजत्र) सङ्ग करते हुए (देव) कामना करने वाले (अग्ने) ईश्वर के समान विद्वान् वैद्य जन! (त्वम्) आप जो (अनग्नित्राः) ऐसे हैं कि यदि उनके साथ ज्वर न विद्यमान हो तो अविद्यमान ज्वर से शरीर की रक्षा करने वाले हैं वे (अमीवाः) रोग (कृष्टीः) मनुष्यों को (अभ्यमन्त) सब ओर से रुग्ण करते कष्ट देते हैं उनको (अस्मत्) हम लोगों से (युयोधि) अलग कर (पुनः) फिर (विश्वेभिः) समस्त (अमृतेभिः) अमृतरूप ओषधियों से (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (सुविताय) ऐश्वर्य प्राप्त होने के लिये (क्षाम्) भूमि के राज्य को प्राप्त कीजिये॥ ३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ईश्वर वेद-

द्वारा अविद्यारूपी रोग से मनुष्यों को अलग करता है वैसे अच्छे वैद्य मनुष्यों को रोगों से निवृत्त कर अमृतरूपी ओषधियों से बढ़ाकर ऐश्वर्य की प्राप्ति कराते हैं ॥ ३ ॥

पाहि नो अग्ने पायुभिरजस्रैरुत प्रिये सदन आ शुशुक्वान् ।

मा ते भयं जरितारं यविष्ठ नूनं विदन्मापरं सहस्वः ॥ ४ ॥

पदार्थ--हे (अग्ने) अग्नि के समान विद्वान् ! (शुशुक्वान्) विद्या और विनय से प्रकाश को प्राप्त (अजस्रैः) निरन्तर (पायुभिः) रक्षा के उपायों से (प्रिये) मनोहर (सदने) स्थान (उत) वा शरीर में वा बाहर (नः) हम लोगों को (आ, पाहि) अच्छे प्रकार पालिये जिससे हे (यविष्ठ) अत्यन्त युवावस्था वाले (सहस्वः) सहनशील विद्वन् ! (ते) आप (जरितारम्) स्तुति करने वाले को (भयम्) भय (मा) मत (विदत्) प्राप्त होवे (नूनम्) निश्चय कर (अपरम्) और को भय (मा) मत प्राप्त होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—वे ही प्रशंसनीय जन हैं जो निरन्तर प्राणियों की रक्षा करते हैं और किसी के लिये भय वा निर्बलता को नहीं प्रकाशित करते हैं ॥ ४ ॥

मा नो अग्नेऽव सृजो अघायाविष्यवे रिपवे दुच्छुनायै ।

मा दत्वते दशते मादते नो मा रीषते सहसावन्परा दाः ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् ! आप (नः) हम लोगों को (अघाय) पापी जन के लिये (अविष्यवे) वा जो धर्म को नहीं व्याप्त उस (रिपवे) शत्रुजन अथवा (दुच्छुनाऐ) दुष्ट चाल जिस की उन के लिये (मावसृजः) मत मिलाइये । हे (सहसावन्) बहुत बल वा बहुत सहनशीलतायुक्त विद्वान् (दत्वते) दातों वाले और (दशते) दाढों से विदीर्ण करने वाले के (मा) मत तथा (अदते) विना दातों वाले दुष्ट के लिये (मा) मत और (रिषते) हिंसा करने वाले के लिये (नः) हम लोगों को (मा, परा, दाः) मत दूर कीजिये अर्थात् मत अलग कर उनको दीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को विद्वान् राजा अध्यापक और उपदेशकों के प्रति ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये कि हम लोगों को दुष्ट स्वभाव और दुष्ट सङ्ग वाले को मत पहुंचाओ किन्तु सदैव श्रेष्ठाचार धर्ममार्ग और सत्सङ्गों में संयुक्त करो ॥ ५ ॥

वि घ त्वावाँ ऋतजात यंसद्गृणानो अग्ने तन्वे३ वरूथम् ।

विश्वाद्रिरिक्षोरुत वा निनित्सोरभिहुतामसि हि देव विष्पट् ॥६॥

पदार्थ—हे (ऋतजात) सत्य आचार में प्रसिद्धि पाये हुए (देव) विजय चाहने वाले ! (अग्ने) बिजुली के तुल्य चञ्चल तापयुक्त (त्वावान्) तुम्हारे सदृश (गृणानः) स्तुति करता हुआ विद्वान् (तन्वे) शरीर के लिये (वरूथम्) स्वीकार करने के योग्य (घ) ही पदार्थ को (वि, यंसत्) देवे । जो (विष्पट्) व्याप्तिमानों को प्राप्त होते आप (विश्वात्) समस्त (रिरिक्षोः) हिंसा करना चाहते हुए (उत, वा) अथवा (निनित्सोः) निन्दा करना चाहते हुए से अलग देवें (हि) इसी से आप (अभिह्रुताम्) सब ओर से कुटिल आचरण करने वालों को शिक्षा देने वाले (असि) होते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो गुण दोषों के जानने वाले सत्याचरणवान् जन समस्त हिंसक निन्दक और कुटिल जनों से अलग रहते हैं वे समस्त कल्याण को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

त्वं ताँ अग्न उभयान्वि विद्वान् वेषि प्रपित्वे मनुषो यजत्र ।

अभिपित्वे मनवे शास्यो भूर्मर्मृजेन्य उशिग्भिर्नाक्रः ॥ ७ ॥

पदार्थ—हे (यजत्र) सत्कार करने योग्य (अग्ने) दुष्टों को शिक्षा देने वाले (विद्वान्) विद्वान् जन ! जो (त्वम्) आप (तान्) उन (उभयान्) दोनों प्रकार के कुटिल निन्दक वा हिंसक (मनुषः) मनुष्यों को (प्रपित्वे) उत्तमता से प्राप्त समय में (वि, वेषि) प्राप्त होते वह आप (अभिपित्वे) सब ओर से प्राप्त व्यवहार में (मनवे) विचारशील मनुष्य के लिये (शास्यः) शिक्षा करने योग्य (भूः) हूजिये और (उशिग्भिः) कामना करते हुए जनों से (मर्मृजेन्यः) अत्यन्त शोभा करने योग्य आप (नाक्रः) दुष्टों को उल्लंघते नहीं, छोड़ते नहीं, अर्थात् उनकी दुष्टता को निवारण कर उन्हें शिक्षा देते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो विद्वान् जन जितना हो सके उतना हिंसक क्रूर और निन्दक जनों को अपने बल से सब ओर से मींजमांज उन का बल नष्ट कर सत्य की कामना करने वालों को हर्ष दिलाते हैं वे शिक्षा देने वाले होकर शुद्ध होते हैं ॥ ७ ॥

अवोचाम निवचनान्यस्मिन्मानस्य सूनुः सहसाने अग्नौ ।

वयं सहस्रमृषिभिः सनेम विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (मानस्य) विज्ञानवान् जन का (सूनुः) सन्तान है उस के प्रति (अस्मिन्) इस (सहसाने) सहन करते हुए (अग्नौ) अग्नि के

समान विद्वान् के निमित्त (निवचनानि) परीक्षा से निश्चित किये वचनों को जैसे (वयम्) हम लोग (अवोचाम) उपदेश करें वा (ऋषिभिः) वेदार्थ के जानने वालों से (सहस्रम्) असंख्य सुख का (सनेम) सेवन करें वा (इषम्) इच्छासिद्धि (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) जीवन को (विद्याम) प्राप्त होवें वैसा तुम भी आचरण करो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे आप्त शान्त उपदेश करने वाले विद्वान् जन श्रोताजनों के लिये सत्य वस्तुओं का उपदेश दे सुखी करते हैं उन के साथ और विद्वान् होते हैं वैसे उपदेश दे दूसरे का श्रवण कर विद्यावृद्धि सब करें ॥ ८ ॥

इस सूक्त में परमेश्वर विद्वान् और शिक्षा देने वाले के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह एकसौ नवासीवां सूक्त समाप्त हुआ ।

अगस्त्य ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । १—२ निचृत् त्रिष्टुप् । ४ । ८ त्रिष्टुप् छन्दः । ५—७ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अनर्वाणं वृषभं मन्द्रजिह्वं बृहस्पतिं वर्द्धया नव्यमर्कैः ।

गाथान्यः सुरुचो यस्य देवा आशृण्वन्ति नवमानस्य मर्त्ताः ॥ १ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् गृहस्थ ! (देवाः) देने वाले (मर्त्ताः) मनुष्य (यस्य) जिस (नवमानस्य) स्तुति करने योग्य (सुरुचः) सुन्दर धर्मयुक्त काम में प्रीति रखने वाले (गाथान्यः) धर्मोपदेशों की प्राप्ति करने अर्थात् औरों के प्रति कहने वाले सज्जन की प्रशंसा (आ शृण्वन्ति) सब ओर से करते हैं उस (अनर्वाणम्) अनर्वा अर्थात् अश्व की सवारी न रखने किन्तु पैरों से देश देश घूमने वाले (वृषभम्) श्रेष्ठ (मन्द्रजिह्वम्) हर्ष करने वाली जिह्वा जिस की उस (बृहस्पतिम्) अत्यन्त शास्त्रबोध की पालना करने वाले (नव्यम्) नवीन विद्वानों की प्रतिष्ठा को प्राप्त अतिथि को (अर्कैः) अन्न, रोटी, दाल, भात आदि उत्तम उत्तम पदार्थों से उस को (वर्द्धय) बढ़ाओ उन्नति देओ उसकी सेवा करो ॥ १ ॥

भावार्थ—जो गृहस्थ प्रशंसा करने वाले धार्मिक विद्वान् वा अतिथि

संन्यासी अभ्यागत आदि सज्जनों की प्रशंसा सुनें उन्हें दूर से भी बुलाकर अच्छी प्रीति अन्न पान वस्त्र और धनादिक पदार्थों से सत्कार कर उनसे सङ्ग कर विद्या की उन्नति से शरीर आत्मा के बल को बढ़वा न्याय से सभों को सुख के साथ संयोग करावें ॥ १ ॥

तमृत्विया उप वाचः सचन्ते सर्गो न यो देवयतामसर्जि ।
बृहस्पतिः स ह्यञ्जो वरांसि विभ्वा भवत्समृते मातरिश्वा ॥ २ ॥

पदार्थ—(यः) जो (मातरिश्वा) पवन के समान (ऋते) सत्य व्यवहार में (अञ्जः) सभों को कामना करने योग्य (बृहस्पतिः) अनन्त वेदवाणी का पालने वाला (विभ्वा) व्यापक परमात्मा ने बनाया हुआ (समभवत्) अच्छे प्रकार हो और जो (वरांसि) उत्तम कर्मों को करने वाला हो (स, हि) वही (देवयताम्) अपने को विद्वान् करते हुओं के बीच (असर्जि) सिद्ध किया जाता है (तम्) उस का (ऋत्वियाः) जो ऋतु समय के योग्य होती वे (वाचः) विद्या सुशिक्षायुक्त वाणी (सर्गः) संसार के (न) समान ही (उप, सचन्ते) सम्बन्ध करती हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे जल नीचे मार्ग से जाकर गढेले में ठहरता वैसे जिस को विद्या शिक्षा प्राप्त होती हैं वह अभिमान छोड़ के नम्र हो विद्याशय और उचित कहने वाला प्रसिद्ध हो जसे सर्वत्र व्याप्त ईश्वर ने यथायोग्य विविध प्रकार का जगत् बनाया वैसे विद्वानों की सेवा करने वाला समस्त काम करने वाला हो ॥२॥

उपस्तुतिं नमस उद्यतिञ्च श्लोकं यंसत्सवितेव प्र बाहू ।
अस्य क्रत्वाहन्यो३ यो अस्ति मृगो न भीमो अरक्षसस्तुविष्मान् ॥३॥

पदार्थ—(यः) जो (नमसः) नम्रजन की (उपस्तुतिम्) प्राप्त हुई प्रशंसा (उद्यतिम्) उद्यम और (श्लोकम्) सत्य वाणी को तथा (सवितेव) सूर्य से जल जैसे भूगोलों को वैसे (बाहू, च) अपनी भुजाओं को भी (प्रयंसत्) प्रेरणा देवे (अस्य) इस (अरक्षसः) श्रेष्ठ पुरुष की (क्रत्वा) उत्तम बुद्धि के साथ जो (अहन्यः) दिन में प्रसिद्ध (अस्ति) है वह (मृगः) सिंह के (न) समान वीर (भीमः) भयङ्कर (तुविष्मान्) बहुत जिस के बलवान् वीर पुरुष विद्यमान हों ऐसा होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जिस के सूर्य-

प्रकाश के तुल्य विद्याकीर्त्ति उद्यम प्रज्ञा और बल हों वह सत्य वाणी वाला सब को सत्कार करने योग्य है ॥ ३ ॥

अस्य श्लोको दिवीयते पृथिव्यामत्यो न यंसद्यक्षभृद्विचेताः ।
मृगाणां न हेतयो यन्ति चेमा बृहस्पतेरहिमायाँ अभि द्यून् ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! (**अस्य**) इस आप्त विद्वान् की (**श्लोकः**) वाणी और (**पृथिव्याम्**) पृथिवी पर (**अत्यः**) घोड़ा (**न**) जैसे (**दिवि**) दिव्य व्यवहार में (**ईयते**) जाता है तथा जो (**यक्षभृत्**) पूज्य विद्वानों को धारण करने वाला (**विचेताः**) जिस की नाना प्रकार की बुद्धि वह विद्वान् (**मृगाणाम्**) मृगों की (**हेतयः**) गतियों के (**न**) समान (**यंसत्**) उत्तम ज्ञान देवे (**च**) और जो (**इमाः**) ये (**बृहस्पतेः**) परम विद्वान् की वाणी (**अभि, द्यून्**) सब ओर से वर्त्तमान दिनों में (**अहिमायान्**) मेघ की माया के समान जिन की बुद्धि उन सज्जनों को (**यन्ति**) प्राप्त होतीं उन सभों का मनुष्य सेवन करें ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो दिव्य विद्या और प्रज्ञाशील विद्वानों की सेवा करता है वह मेघ के डंग डमालयुक्त दिनों के समान वर्त्तमान अविद्यायुक्त मनुष्यों को प्रकाश को सविता जैसे वैसे विद्या देकर पवित्र कर सकता है ॥ ४ ॥

ये त्वा देवोस्रिकं मन्यमानाः पापा भद्रमुपजीवन्ति पज्राः ।
न दूढ्ये३ अनु ददासि वामं बृहस्पते चयस इत्पियारुम् ॥ ५ ॥

पदार्थ—हे (**देव**) विद्वान् ! (**ये**) जो (**मन्यमानाः**) विज्ञानवान् (**पापाः**) अधर्माचारी (**पज्राः**) प्राप्त हुए जन (**उस्रिकम्**) गौओं के साथ विचरते उन (**भद्रम्**) कल्याणरूपी (**त्वा**) आप के (**उप, जीवन्ति**) समीप जीवित हैं वे आप की शिक्षा पाने योग्य हैं । हे (**बृहस्पते**) बड़े विद्वानों की पालना करने वाले जो आप (**दूढ्ये**) दुष्ट—बुरा विचार करने वाले को (**न, अनु, ददासि**) अनुक्रम से सुख नहीं देते (**वामम्**) प्रशंसित (**पियारुम्**) पान की इच्छा करने वाले को (**इत्**) ही (**चयसे**) प्राप्त होते वे आप सभों को उपदेश देओ ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् जन अपने निकटवर्त्ती अज्ञ अभिमानी पापी जनों को उपदेश दे धार्मिक करते हैं वे कल्याण को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

सुप्रैतुः सूयवसो न पन्था दुर्नियन्तुः परिप्रीतो न मित्रः ।
अनर्वाणो अभि ये चक्षते नोऽपीवृता रपोर्णुवन्तो अस्थुः ॥ ६ ॥

पदार्थ—(ये) जो (अनर्वाणः) धर्म से अन्यत्र अधर्म में अपनी चाल चलन नहीं रखते (अपीवृताः) और समस्त पदार्थों के निश्चय में वर्त्तमान (नः) हम लोगों को (अपोर्णुवन्तः) अविद्यादि दोषों से न ढांपते हुए जन (सुयवसः) जिस के सुन्दर अन्न विद्यमान उस (सुप्रतुः) उत्तम विद्यायुक्त विद्वान् का (पन्थाः) मार्ग (न) जैसे वैसे तथा (दुर्नियन्तुः) जो दुःख से नियम करने वाला उस के (परिप्रीतः) सब ओर से प्रसन्न (मित्रः) मित्र के (न) समान (अभि, चक्षते) अच्छे प्रकार उपदेश करते हैं वे हम लोगों के उपदेशक (अस्युः) ठहराये जावें ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो विद्वान् जन पूर्ण साधन और उपसाधनों से युक्त उत्तम मार्ग से अविद्या युक्तों को विद्या और धर्म के बीच प्राप्त करते और जिसने इन्द्रिय नहीं जीते उसको जितेन्द्रियता देने वाले मित्र के समान शिष्यों को उत्तम शिक्षा देते हैं वे इस जगत् में अध्यापक और उपदेशक होने चाहियें ॥ ६ ॥

सं यं स्तुभोऽवनयो न यन्ति समुद्रं न स्रवतो रोधचक्राः ।
स विद्वाँ उभयंश्चष्टे अन्तर्बृहस्पतिस्तर आपश्च गृध्रः ॥ ७ ॥

पदार्थ—बुद्धिमान् विद्यार्थीजन (स्तुभः) जलादि को रोकने वाली (अवनयः) किनारे की भूमियों के (न) समान (समुद्रम्) सागर को (स्रवतः) जाती हुई (रोधचक्राः) भ्रमर मेढ़ा जिन के जल में पड़ते उन नदियों के (न) समान (यम्) जिस अध्यापक को (सम्, यन्ति) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं (सः) वह (तपः) सर्व विषयों के पार होने (गृध्रः) और सब के सुख को चाहने वाला (विद्वान्) विद्वान् (बृहस्पतिः) अत्यन्त बढ़ी हुई वाणी वा वेदवाणी का पालने वाला जन उस को (उभयम्) दोनों अर्थात् व्यावहारिक और पारमार्थिक विज्ञान का (चष्टेः) उपदेश देता है तथा (अन्तः) भीतर (च) और बाहर के (आपः) जलों के समान अन्तःकरण की और बाहर की चेष्टाओं को शुद्ध करता है वह सब का सुख करने वाला होता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सब का आधार भूमि सूर्य्य के चारों ओर जाती है वा जैसे नदी समुद्र को प्रवेश करती हैं वैसे सज्जन श्रेष्ठ विद्वानों और विद्या को प्राप्त हो धर्म में प्रवेश कर बाहरले और भीतर के व्यवहारों को शुद्ध करें ॥ ७ ॥

एवा महस्तुविजातस्तुविष्मान् बृहस्पतिर्वृषभो धायि देवः ।
स नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥

पदार्थ—विद्वानों से जो (महः) बड़ा (तुविजातः) विद्यावृद्ध जन से प्रसिद्ध विद्या वाला (तुविष्मान्) शरीर और आत्मा के बल से युक्त (वृषभः) विद्वानों में शिरोमणि (देवः) अति मनोहर (स्तुतः) प्रशंसायुक्त (बृहस्पतिः) वेदों का अध्यापन पढ़ाने और उपदेश करने से पालने वाला विद्वान् जन (धायि) धारण किया जाता है (सः, एव) वही (नः) हम लोगों के लिये (वीरवत्) बहुत जिसमें वीर विद्यमान वा (गोमत्) प्रशंसित वाणी विद्यमान उस विज्ञान को (धातु) धारण करे जिससे हम लोग (इषम्) विज्ञान (वृजनम्) बल और (जीरदानुम्) जीवन को (विद्याम) प्राप्त होवें ॥ ८ ॥

भावार्थ—विद्वानों को चाहिये कि सकल शास्त्रों के विचार के सार से विद्यार्थी जनों को शास्त्रसम्पन्न करें जिस से वे शारीरिक और आत्मिक बल और विज्ञान को प्राप्त होवें ॥ ८ ॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुण कर्म और स्वभावों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये ॥

यह एकसौ नव्बेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अगस्त्य ऋषिः । अबोषधिसूर्य्या देवताः । १ उष्णिक् । २ भुरिगुष्णिक् । ३ । ७ स्वराडुष्णिक् । १३ विराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । ४ । ६ । १४ विराडनुष्टुप् । ५ । ८ । १५ । निचृदनुष्टुप् । ६ अनुष्टुप् । १० । ११ निचृत् ब्राह्म्यनुष्टुप् । १२ विराड् ब्राह्म्यनुष्टुप् । १६ भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अङ्कतो न कङ्कतोऽथों सतीनकङ्कतः ।
द्वाविति प्लुषी इति न्य१दृष्टा अलिप्सत ॥ १ ॥

पदार्थ—जो मनुष्य (कङ्कतः) विष वाले प्राणी के (न) समान (कङ्कतः) चंचल (अथो) और जो (सतीनकङ्कतः) जल के समान चञ्चल हैं वे (द्वाविति) दोनों इस प्रकार के जैसे (प्लुषी, इति) जी जलाने वाले दुःखदायी दूसरे के सङ्ग लगें वैसे (अदृष्टाः) जो नहीं दीखते विषधारी जीव वे (नि, अलिप्सत) निरन्तर चिपटते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे कोई चञ्चल जन अध्यापक और उपदेशक को पाकर चञ्चलता देता है वैसे न देखे हुए छोटे छोटे विषधारी मत्कुण डांश आदि क्षुद्र जीव बार बार निवारण करने पर भी ऊपर गिरते हैं ॥ १ ॥

अदृष्टान्हन्त्यायत्यथो हन्ति परायती ।
अथो अवघ्नती हन्त्यथो पिनष्टि पिंषती ॥ २ ॥

पदार्थ—(आयती) अच्छे प्रकार प्राप्त हुई ओषधी (अदृष्टान्) अदृष्ट विषधारी जीवों को (हन्ति) नष्ट करती (अथो) इसके अनन्तर (परायती) प्राप्त हुई ओषधी (हन्ति) विषधारियों को दूर करती है (अथो) इसके अनन्तर (अवघ्नती) अत्यन्त दुःख देती हुई ओषधि (हन्ति) विषधारियों को नष्ट करती (अथो) इसके अनन्तर (पिंषती) पीई जाती हुई ओषधि (पिनष्टि) विषधारियों को पीषती है ॥ २ ॥

भावार्थ—जो आये न आये वा आने वाले विषधारियों को अगली पिछली ओषधियों के देने से निवृत्त कराते हैं वे विषधारियों के विषों से नहीं पीड़ित होते हैं ॥ २ ॥

शरासः कुशरासो दर्भासः सैर्या उत ।
मौञ्जा अदृष्टा वैरिणाः सर्वे साकं न्यलिप्सत ॥ ३ ॥

पदार्थ—जो (शरासः) बांस के तुल्य भीतर छिद्र वाले तृणों में ठहरने वाले वा जो (कुशरासः) निन्दित उक्त तृणों में ठहरते वा (दर्भासः) कुशस्थ वा जो (सैर्याः) तालाबों के तटों में प्राय्यः होने वाले तृणों में ठहरते वा (मौंजाः) मूंज में ठहरते (उत) और (वैरिणाः) गाड़र में होने वाले छोटे छोटे (अदृष्टाः) जो नहीं देखे गये जीव हैं वे (सर्वे) समस्त (साकम्) एक साथ (न्यलिप्सत) निरन्तर मिलते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो नाना प्रकार के तृणों में कहीं स्थानादि के लोभ से और कहीं उन तृणों के गन्ध लेने को अलग अलग छोटे छोटे विषधारी छिपे हुए जीव रहते हैं वे अवसर पाकर मनुष्यादि प्राणियों को पीड़ा देते हैं ॥ ३ ॥

नि गावो गोष्ठे असदन्नि मृगासो अविक्षत ।
नि केतवो जनानां न्यदृष्टा अलिप्सत ॥ ४ ॥

पदार्थ—जैसे (गोष्ठे) गोशाला वा गोहरे में (गावः) गौयें (न्यसदन्) स्थित होतीं वा बन में (मृगासः) भेड़िया हरिण आदि जीव (न्यविक्षत) निरन्तर प्रवेश करते वा (जनानाम्) मनुष्यों के (केतवः) ज्ञान बुद्धि स्मृति आदि (नि) निवेश कर जातीं अर्थात् कार्य्यों में प्रवेश कर जातीं वैसे (अदृष्टाः)

जो दृष्टिगोचर नहीं होते वे छिपे हुए विषधारी जीव वा विषधारी जन्तुओं के विष (नि, अलिप्सत) प्राणियों को मिल जाते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे नाना प्रकार के जीव निज निज सुखसंभोग के स्थान को प्रवेश करते हैं वैसे विषधर जीव जहां तहां पाये हुए स्थान को प्रवेश करते हैं ॥ ४ ॥

एत उ त्ये प्रत्यदृश्रन्प्रदोषं तस्कराइव ।

अदृष्टा विश्वदृष्टाः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥ ५ ॥

पदार्थ—(त्ये) वे (एते) (उ) ही पूर्वोक्त विषधर वा विष (प्रदोषम्) रात्रि के आरम्भ में (तस्कराइव) जैसे चोर वैसे (प्रत्यदृश्रन्) प्रतीति से दिखाई देते हैं । हे (अदृष्टाः) दृष्टिपथ न आने वालो वा (विश्वदृष्टाः) सब के देखे हुए विषधारियो ! तुम (प्रतिबुद्धाः) प्रतीत ज्ञान से अर्थात् ठीक समय से युक्त (अभूतन) होओ ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे चोरों में डांकू देखे और न देखे होते हैं वैसे मनुष्य नाना प्रकार के प्रसिद्ध अप्रसिद्ध विषधारियों वा विषों को जानें ॥ ५ ॥

द्यौर्वः पिता पृथिवी माता सोमो भ्रातादितिः स्वसा ।

अदृष्टा विश्वदृष्टास्तिष्ठतेलयता सु कम् ॥ ६ ॥

पदार्थ—हे (अदृष्टाः) दृष्टिगोचर न होने वाले और (विश्वदृष्टाः) सब के देखे हुए विषधारियो ! जिन का (द्यौः) सूर्य के समान सन्ताप करने वाला (वः) तुम्हारा (पिता) पिता (पृथिवी) पृथिवी के समान (माता) माता (सोमः) चन्द्रमा के समान (भ्राता) भ्राता और (अदितिः) विद्वानों की अदीन माता के समान (स्वसा) बहिन है वे तुम (सु, कम्) उत्तम सुख जैसे हो (तिष्ठत) ठहरो और अपने स्थान को (इलयत) जावो ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विषधारी प्राणी हैं वे शान्त्यादि उपायों और ओषध्यादिकों से विषनिवारण करने चाहियें ॥ ६ ॥

ये अंस्या ये अङ्ग्याः सूचीका ये प्रकङ्कताः ।

अदृष्टाः किं चनेह वः सर्वे साकं नि जस्यत ॥ ७ ॥

पदार्थ--हे (अदृष्टाः) दृष्टिगोचर न हुए विषधारी जीवो ! (इह) इस

संसार में (ये) जो (वः) तुम्हारे बीच (अंस्याः) स्कन्धों में प्रसिद्ध होने वाले (ये) जो (अङ्ग्याः) अङ्गों में प्रसिद्ध होने वाले और (सूचीकाः) सूचि के समान व्यथा देने वाले बीछी आदि विषधारी जीव तथा (ये) जो (प्रकङ्कताः) अति पीड़ा देने वाले चञ्चल हैं और जो (किञ्चन) कुछ विष आदि है ये (सर्वे) सब तुम (साकम्) एक साथ अर्थात् विष समेत (नि, जस्यत) हम लोगों को छोड़ देओ वा छुड़ा देओ ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को उत्तम यत्न के साथ शरीर और आत्मा को दुःख देने वाले विष दूर करने चाहियें जिससे यहां निरन्तर पुरुषार्थ बढ़े ॥ ७ ॥

उत्पुरस्तात्सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा ।
अदृष्टान्त्सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ८ ॥

पदार्थ--हे वैद्यजनो ! तुम को जैसे (सर्वान्) सब पदार्थ (अदृष्टान्) जो कि न देखे गये उन को (जम्भयन्) अङ्ग अङ्ग के साथ दिखलाता हुआ (अदृष्टहा) जो नहीं देखा गया अन्धकार उसको विनाशने वाला (विश्वदृष्टः) संसार में देखा (सूर्यः) सूर्यमण्डल (पुरस्तात्) पूर्व दिशा में (उदेति) उदय को प्राप्त होता है वैसे (सर्वाः) (च) (यातुधान्यः) सभी दुराचारियों को धारण करने वाली दुर्व्यथा निवारण करनी चाहिये ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य अन्धकार को निवारण करके प्रकाश को उत्पन्न करता है वैसे वैद्यजनों को विषहरण ओषधियों से विषों को निर्मूल करना विनाशना चाहिये ॥ ८ ॥

उदपप्तदसौ सूर्यः पुरु विश्वानि जूर्वन् ।
आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ॥ ९ ॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जैसे (असौ) यह (सूर्यः) सूर्यमण्डल (विश्वानि) समस्त अन्धकार जन्य दुःखों को (पुरु) बहुत (जूर्वन्) विनाश करता हुआ (उत्, अपप्तत्) उदय होता है और जैसे (आदित्यः) आदित्य सूर्य (पर्वतेभ्यः) पर्वत वा मेघों से उदय को प्राप्त होता है वैसे (अदृष्टहा) गुप्त विषों को विनाश करने वाला (विश्वदृष्टः) सभों ने देखा हुआ विष हरने वाला वैद्य विष को निवृत्त करने का प्रयत्न करे ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सविता अपने प्रकाश से सब पदार्थों को प्राप्त होता है वैसे विषहरणशील वैद्यजन विष-संयुक्त पवन आदि पदार्थों को हरते और प्राणियों को सुखी करते हैं ॥ ९ ॥

सूर्ये विषमा संजामि दृतिं सुरावतो गृहे ।
सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनं हरिष्ठा
मधुं त्वा मधुला चंकार ॥ १० ॥

पदार्थ—मैं (सुरावतः) सुरा खींचने वाले शूण्डिया कलार के (गृहे) घर में (दृतिम्) चाम का सुरापात्र जैसे हो वैसे (सूर्ये) सूर्यमण्डल में (विषम्) विष का (आ, सजामि) आरोपण करता हूँ (सः, चित् नु) वह भी (न, मराति) नहीं मारा जाय और (नो) न (वयम्) हम लोग (मराम) मारे जावें (अस्य) इस विष का (योजनम्) योग (आरे) दूर होता है । हे विषधारी ! (हरिष्ठाः) जो हरण में अर्थात् विषहरण में स्थिर है विषहरण विद्या जानता है वह (त्वा) तुझे (मधु) मधुरता को प्राप्त (चकार) करता है यह (मधुला) इस की मधुरता को ग्रहण करने वाली विषहरण मधुविद्या है ॥ १० ॥

भावार्थ—जो रोगनिवारक सूर्य के प्रकाश के संयोग से विषहरी वैद्य-जन बड़ी बड़ी ओषधियों से विष को दूर करते हैं और मधुरता को सिद्ध करते हैं सो यह सूर्य का विध्वंस करने वाला काम नहीं होता और वे विष हरने वाले भी दीर्घायु होते हैं ॥ १० ॥

इयत्तिका शंकुन्तिका सका जंघास ते विषम् ।
सो चिन्नु नं मंराति नो वयं मंरामारे अस्य योजनं हरिष्ठा
मधुं त्वा मधुला चंकार ॥ ११ ॥

पदार्थ—हे विष के भय से डरते हुए जन ! जो (इयत्तिका) इतने विशेष देश में हुई (शकुन्तिका) कपिञ्जली पक्षिणी है (सका) वह (ते) तेरे (विषम्) विष को (जघास) खा लेती है (सो, चित्, नु) वह भी शीघ्र (न) नहीं (मराति) मरे और (वयम्) हम लोग (नो) न (मराम) मारे जायें और (अस्य) इस उक्त पक्षिणी के संयोग से विष का (योजनम्) योग (आरे) दूर होता है । हे विषधारी (हरिष्ठाः) विषहरण में स्थिर विष हरने वाले वैद्य ! (त्वा) तुझे (मधु) मधुरता को (चकार) प्राप्त करता है इस की (मधुला) मधुरता ग्रहण कराने और विष हरने वाली विद्या है ॥ ११ ॥

भावार्थ—मनुष्य जो विष हरने वाले पक्षी हैं उन्हें पालन कर उनसे विष हराया करें ॥ ११ ॥

त्रिः सप्त विष्पुलिङ्गका विषस्य पुष्यमक्षन् ।
ताश्चिन्नु न मरन्ति नो वयं मरामारे अस्य योजनं हरिष्ठा
मधु त्वा मधुला चकार ॥ १२ ॥

पदार्थ—जो (त्रिः, सप्त, विष्पुलिङ्गकाः) इक्कीस प्रकार की छोटी छोटी चिड़ियां (विषस्य) विष के (पुष्यम) पुष्ट होने योग्य पुष्प को (अक्षन्) खाती हैं (ताः, चित्, नु) वे भी (न) न (मरन्ति) मरती हैं और (वयम्) हम लोग (नो) न (मराम) मरें (हरिष्ठाः) विष हरने वाला वैद्यवर (अस्य) इस विष का (योजनम्) योग (आरे) दूर करता है वह हे विषधारी ! (त्वा) तुझे (मधु) मधुरता को (चकार)प्राप्त करता है यही इस की (मधुला) विषहरण मधु ग्रहण करने वाली विद्या है ॥ १२ ॥

भावार्थ—जैसे जोंक विष हरने वाली हैं वैसे इक्कीस छोटी छोटी पक्षिणी पंखों वाली चिड़ियां विष खाने वाली हैं उन से और ओषधियों से जो विष सम्बन्धी रोगों का नाश करते हैं वे चिरजीवी होते हैं ॥ १२ ॥

नवानां नवतीनां विषस्य रोपुषीणाम् ।
सर्वासामग्रभं नामारे अस्य योजनं
हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥ १३ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् ! जैसे मैं (विषस्य) विष की (सर्वासाम्) सब (रोपुषीणाम्) विमोहन करने वाली (नवानाम्) नव (नवतीनाम्) नब्बे अर्थात् निन्यानवे विषसम्बन्धी पीड़ा की तरङ्गों का (नाम) नाम (अग्रभम्) लेऊं और (अस्य) इस विष का (योजनम्) योग (आरे) दूर करता हूं वैसे हे विषधारिन् (हरिष्ठाः) विष हरने में स्थिर वैद्य ! (त्वा) तुझे (मधु) मधुरता को (चकार) प्राप्त करता है वही इस को (मधुला) मधुरता को ग्रहण करने वाली विषहरण विद्या है ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! हम लोग जो यहां निन्यानवे प्रकार का विष है उस के नाम, गुण, कर्म और स्वभावों को जान कर उस विष का प्रतिषेध करने वाली ओषधियों को जान और उनका सेवन कर विषसम्बन्धी रोगों को दूर करें ॥ १३ ॥

त्रिः सप्त मयूर्यः सप्त स्वसारो अग्रुवः ।
तास्ते विषं वि जभ्रिर उदकं कुम्भिनीरिव ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (सप्त) सात (स्वसारः) वहनियों के समान तथा (अग्रुवः) आने जाने वाली नदियों के समान (त्रिः सप्त) इक्कीस (मयूर्यः) मोरिनी हैं (ताः) वे (उदकम्) जल को (कुम्भिनीरिव) जल का जिन को अधिकार है वे घट ले जाने वाली कहारियों के समान (ते) तेरे (विषम) विष को (वि, जभ्रिरे) विशेषता से हरें ॥ १४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को जो इक्कीस प्रकार की मयूर की व्यक्ति हैं वे न मारनी चाहियें किन्तु सदैव उन की वृद्धि करने योग्य है जो नदी स्थिर जल वाली हो वे रोग के कारण होने से न सेवनी चाहिये, जो जल चलता है सूर्यकिरण और वायु को छूता है वह रोग दूर करने वाला उत्तम होता है ॥ १४ ॥

इयत्तकः कुषुम्भकस्तकं भिनद्म्यश्मना ।
ततो विषं प्र वावृते पराचीरनु संवतः ॥ १५ ॥

पदार्थ—जो (इयत्तकः) मैला कुचैला निन्द्य (कुषुम्भकः) छोटा सा नकुल विषयुक्त है (तकम्) उस दुष्ट को (अश्मना) विष हरने वाले पत्थर से मैं (भिनद्मि) अलग करता हूँ (ततः) इस कारण (विषम्) उस विष को छोड़ (संवतः) विभाग वाली (पराचीः) जो पूरे दूर प्राप्त होतीं उन दिशाओं को (अनु) पीछा लखि (प्र, वावृते) प्रवृत्त होता है उन से भी निकल जाता है ॥ १५ ॥

भावार्थ—जो पुरुष विष हरने वाले रत्नों से विष को निवृत्त करते हैं वे विष से उत्पन्न हुए रोगों को मार वली होकर शत्रु-भूत रोगों को जीतते हैं ॥ १५ ॥

कुषुम्भकस्तदब्रवीद्गिरेः प्रवर्त्तमानकः ।
वृश्चिकस्यारसं विषमरसं वृश्चिक ते विषम् ॥ १६ ॥

पदार्थ—(गिरेः) पर्वत से (प्रवर्त्तमानकः) प्रवृत्त हुआ (कुषुम्भकः) छोटा नेउला (वृश्चिकस्य) वीछी के (विषम्) विष को (अरसम्) नीरस जो

(अब्रवीत्) कहता अर्थात् चेष्टा से दूसरों को जताता है (तत्) इस कारण हे (वृश्चिक) अङ्गों को छेदन करने वाले प्राणी ! (ते) तेरे (अरसम्) अरस (विषम्) विष है ॥ १६ ॥

भावार्थ—मनुष्य बीछी आदि छोटे छोटे जीवों के विष हरने वाले पर्वतीय निउले का संरक्षण करें जिससे विष रोगों को निवारण करने में समर्थ होवें ॥ १६ ॥

इस सूक्त में विष हरने वाली ओषधी, विष हरने वाले जीव और विष-हारी वैद्य के गुण का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति है, यह समझना चाहिये ॥

यह एकसौ एक्यानवां सूक्त और प्रथम मण्डल समाप्त हुआ ॥

वेद "सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।

— महर्षि दयानन्द